

ॐ श्री शङ्खेश्वरपार्ष्वनाथाय नमः ॐ  
॥ सकलागमरहस्यवेदिपरमज्योर्विच्छ्रीमद्विजयदानसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥  
नानावृत्तिविभूषिताः

# विवारः प्राचीनाः कर्मग्रन्थाः

तथा

प्राकृतभाषागाथाबद्धटिप्पणक-यन्त्रकादिना-ऽलङ्कृतः

# सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

तथा

प्राकृतभाषानिबद्धटिप्पणक-वृत्तिभ्यां विराजितं

# सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

तथा

परिशिष्टद्वयम्

ॐ

यन्त्र-टिप्पणकादिना समलङ्कृत्य सम्पादकः संशोधकश्च  
प्रवचनकौशल्याधार-सिद्धान्तमहोदधि-सुविशालगच्छाधिपति-परमशासनप्रभावक-  
कर्मसाहित्यनिष्णात-परमपूज्य-स्वर्गताचार्यदेवेश-श्रीमद्विजयप्रसूरीश्वर-  
विनीताऽन्तेवासि-निःस्पृहतासलिलनिधि-परमगीतार्थ-परम-  
पूज्या-ऽऽचार्यदेव-श्रीमद्विजयहोरसूरीश्वर-  
विनेयरत्नमुनि-श्रीललितशेखरविजय-  
शिष्यरत्न-मुनि-श्रीराजशेखरविजय-  
शिष्यः-

मुनि-श्रीवीरशेखरविजयः

प्रकाशिका-भारतीय-प्राच्य-तत्त्व-प्रकाशन-समितिः, पिन्डवाडा (राज०)

प्रथम आवृत्ति-  
प्रति- २५०+२५

राजसंस्करण-४०) रु०  
राजाधिराज ,, -५०) रु०

वीर सप्त २५००  
विक्रम सप्त २०३०

\* प्राप्तिस्थान \*

भारतीय-प्राच्यतन्त्र प्रकाशन-समिति

C/o रमणलाल लालचंद  
१३५/१३७ छवैरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय प्राच्यतन्त्र-प्रकाशन-समिति

C/o शा समरथमल रायचंदज  
पिहवाड़ा, (राज०)  
स्टे० सिरोदी रोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतन्त्र-प्रकाशन-समिति

शा. रमणलाल घजेचन्द,  
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,  
मस्कती मार्केट,  
अहमदाबाद २.

•

मुद्रक—

ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिहवाड़ा

**CHATVARAH**  
**PRACHINAH KARMA-GRANTHAH**  
*And*  
**Saptatikabbidhah Sastha Karmagranthah**  
*And*  
**Suksmaarth Vicharsar Prakaranam**  
*With*  
**Different Commentaries**



Edited by  
**Muni shri Virashekhharvijay**

---

Published by  
**Bharatiya Prachya-Tattva Prakashan Samiti, Pindwara**  
**(Rajasthan) (India)**

First Edition  
Copies 250+25

DELUXE EDITION RS. 40  
SUPER DELUXE ,, RS. 50

{ A. D. 1974

AVAILABLE FROM :

1. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI.

C/o .Shah Ramanlal Lalchand,  
135/137 Zaveri Bazaar  
BOMBAY-2.  
(INDIA)



2. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI.

C/o. Shah Samarathmal Rayohandji,  
PINDWARA, (Rajasthan)  
St. Sirohi Road (W. R.)  
(INDIA)



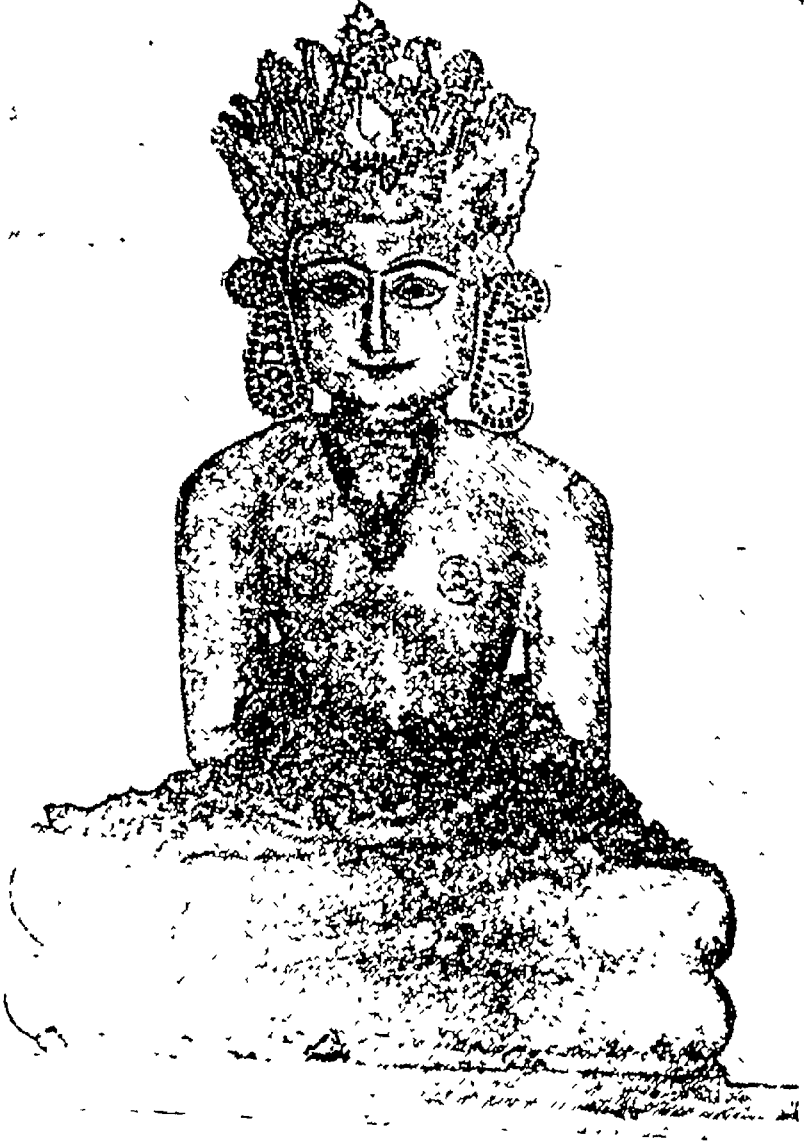
3. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI

Shah Ramanlal Vajechand,  
C/o Dilipkumar Ramanlal,  
Maskati Market,  
AHMEDABAD-2.  
(INDIA)



Printed by :  
Gyanodaya Printing Press  
PINDWARA. (Raj.)  
St. Sirohi Road, (W.R.)  
(INDIA)

श्रीपालनगरमण्डन भूगर्भगृह मूणनायक  
श्रीभुनिप्रतस्वामी भगवान



आ अ-धरता प्रकाशनमां द्रव्यसहायकेणे ने श्रीपालनगरना निर्माषुमां भाग स्तीषा छे, ते  
एनप्रसाहमां भूगर्भगृहना मूणनायक तरीके विराजमान परमदशनीय प्रशांत एनभिज्ज

શ્રીપાલ નગરમહાકલ મૂળનાયક  
શ્રી આદીશ્વર ભગવાન



આ અન્વરત્નના પ્રકાશનમાં દ્રવ્યસહાયકોએ જે શ્રીપાલ નગરના જીનમંદિરના નિર્મોલ્લ ભાગ  
લીધા છે, તે જીનપ્રસાદમાં મૂળનાયક તરીકે ખિરાજમાન પરમદર્શનીય પ્રશાંત જીનખિખ



परमपूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद्विजयदानसूरीश्वरजी महाराजा

श्रीमत्पूर्वाचार्यकृतव्याख्यया श्रीमत्परमानन्दसूरिविरचितवृत्त्या च समेतः  
श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

## कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

श्वेतपटाचार्यश्रीमद्गोविन्दगणितुम्फितटीकया समलङ्कृतः

## कर्मस्तवाख्यौ द्वितीयः कर्मग्रन्थः

श्रीमद्हरिभद्रसूरिविरचितव्याख्योपेतः

## बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः

श्रीहरिभद्रसूरिविरचितविष्टृत्या श्रीमन्मलयगिरिसूरिविरचितवृत्त्या श्रीमद्यशोभद्रसूरीश्वरप्रणीतटीकया  
श्रीमद्दुरामदेवगणिविष्टृतविवरणेन च विभूषितः श्रीमञ्जिनवल्लभगणितुम्फितनिर्मितः

## षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः

श्रीमद्दुरामदेवगणिकृतप्राकृतभाषागाथानिबद्धटिप्पनकेन विराजितः

## सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

श्रीमद्दुरामदेवगणिविहितप्राकृतभाषाटिप्पन-वृत्तिभ्यां शोभितं  
श्रीमञ्जिनवल्लभगणितुम्फितप्रणीतं

## सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

- १३० -

## प्रथमं परिशिष्टम्

षडशीतिप्रकरणसत्कैकादशयन्त्रकलक्षणम्

## द्वितीयं परिशिष्टम्

प्राचीनकर्मग्रन्थपट्टकसत्कमूलगाथा-द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठकर्मग्रन्थभाष्यगाथा-  
सप्ततिकासारगाथा-सूक्ष्मार्थविचारसारमूल-भाष्यगाथात्मकम्



## \* प्रकाशकीय निवेदन \*

यह सूचित करते हुए हमें अन्यन्व आनंद हो रहा है कि अल्प समय में परमपूज्य सिद्धांत-महोदधि कर्मसाहित्य निष्णात स्वर्गताचार्यदेवेश श्रीमद्विजयप्रेमसुरीश्वरजी महाराजा की परम पाषाणी निष्ठा में उनकी ही परमकृपा दृष्टि से संकलित किया हुआ और श्लोकवद्ध प्राकृत भाषा में रचे हुए मूलग्रन्थ तथा संस्कृत भाषा में रचे हुये टीका ग्रन्थ रूप लावोदलोक प्रमाण कर्म साहित्य का सर्जन हो चुका है, और भी सर्जन चालु है जिनके वोल्युम (महाग्रन्थ) ६ ग्रन्थरत्न हमारी संस्था द्वारा आपके कर कमलों में पहुंच चुके हैं और ग्रन्थों का मुद्रण कार्य चालु है। जिसे यथा समय आप प्राप्त कर सकेंगे। इसके अलावा इस कर्मसाहित्य विषयक मुनिचन्द्रसूरि विरचित टिप्पणक से युक्त पूर्वाचार्य-कृत चूर्णि और उदयप्रममूर्ति विहित टिप्पणक इन दोनों से विभूषित किया हुआ ऐसा पूर्वघर वाचक श्रीशिवशर्मसूरिप्रणीत "बन्धशतकम्" नाम का प्राचीन ग्रन्थरत्न भी इस समिति द्वारा प्रकाशित किया गया है। उन्नी तरह पूर्वाचार्य कृत मूल टीका सहित "चत्वार प्राचीनाः कर्मग्रन्थाः" नाम का प्राचीन ग्रन्थरत्न हमारी संस्था द्वारा प्रकाशित हो चुका है। ठीक उसी तरह प्रस्तुत ग्रन्थरत्न भी प्रकाशित हो रहा है।

इनमें प्राचीन ४ कर्मग्रन्थों पैकी प्रथम कर्मग्रन्थ परमपूज्य गर्गमहर्षि विरचित १६८ गाथा प्रमाण है। उनमें एक पूर्वाचार्यकृत और दूसरी पूज्य परमानन्दसूरि रचित टीकाओं हैं। दूसरा कर्मग्रन्थ प्राचीना-चार्यविहित ५५ आर्या प्रमाण है। उसमें श्रीमद् गोविन्दगणि रचित टीका है। तीसरा कर्मग्रन्थ जिसके रचयिता का नाम का उल्लेख नहीं मिलता है वह पूर्वकालीन महर्षि ने रचा हुआ ५४ गाथा प्रमाण है। उस में श्रीमद् हरिमद्रसूरि म. ने टीका लिखी हुई है। चतुर्थ कर्मग्रन्थ को श्रीमद् जिनवल्लभगणि ने ८६ आर्या में बनाया है उस पर की हुन्नी ४ टीकाओं यहां दी गई है। श्री हरिमद्रसूरिकृत टीका और श्री मलयगिरिसूरि विहित टीका दोनों साथ में दी गई है। बाद में तीसरी श्रीशोभद्रसूरि प्रणीतवृत्ति ली गयी है। अंत में श्री रामदेवगणि की चौथी टीका जो प्राकृत भाषा में है वह दी गई है। प्राचीना-चार्यरचित सप्ततिकाख्य षष्ठ कर्मग्रन्थ ७२ गाथा प्रमाण है। उनमें रामदेवगणिकृत विभिन्नप्रकार की दो टिप्पणी प्राकृतभाषा में श्लोकवद्ध है। श्रीमद् जिनवल्लभगणि प्रणीत सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण १५१ गाथा प्रमाण है। उनमें प्रथम रामदेवगणिकृत टिप्पणी और दूसरी वृत्ति है। दोनों प्राकृत भाषा में गद्य में निबद्ध है। इसमें चतुर्थ कर्मग्रन्थ की दो टीका तक के ४ कर्मग्रन्थों के पृष्ठ क्रमांक एक साथ में दिये हैं। जिन में प्रथम कर्मग्रन्थ के पृष्ठ १ से ८८ तक दूसरे कर्मग्रन्थ के पृष्ठ ८१ से १२६ तक, तीसरे कर्मग्रन्थ के पृष्ठ १२७ से १५३ तक तथा चतुर्थ कर्मग्रन्थ के १५४ से २६२ तक है। बादमें तीसरी श्री शोभद्रसूरि कृत टीका युक्त चतुर्थ कर्मग्रन्थ के १ से ५८ बाद श्री रामदेवगणि विहित प्राकृतवृत्ति साहित्य चतुर्थ कर्मग्रन्थ के १ से ३५ पृष्ठ है बादमें टिप्पणसहित सप्ततिकाग्रन्थ के १ से ८४ पेज है, उनके बादमें सूक्ष्मार्थविचारसार टिप्पण के १ से ५८ पेज है अंत में सूक्ष्मार्थविचारसार प्रकरणवृत्ति के १ से ४८ पेज है इन में से अन्तिम चतुर्थ कर्मग्रन्थ की दो टीकाओं को छोड़कर प्राचीन चारों कर्मग्रन्थ पहले मुद्रित हो चुकने पर भी ग्रन्थ के पृष्ठ जीर्ण हो जाने से और इनकी जेसलमेर के मंडार की हस्त लिखित प्रत के साथ में मिळान की हुन्नी प्रत मिलने से तथा श्रीमद्विशोभद्रसूरि कृत टीका युक्त और श्री रामदेवगणिकृत टीकायुक्त चतुर्थ कर्मग्रन्थ और रामदेवगणिकृत टिप्पणक युक्त सप्ततिकाख्य षष्ठ कर्मग्रन्थ तथा रामदेवगणिरचित टिप्पणक और वृत्ति सहित सूक्ष्मार्थविचारसार-प्रकरण मुद्रित नहीं होने से तथा उनकी हस्तलिखित प्रत एवं प्रेस कॉपियां भी मिलने से इन प्राचीन चार कर्मग्रन्थों आदि का मुद्रण आवश्यक बन गया था।

**संपादन-संशोधन :-**

परमपूज्य सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्य निष्णात सुविशालगच्छाधिपति स्वर्गत आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयप्रेमसुरीश्वरजी महाराज साहेब के शिष्यरत्न परमपूज्य गीतार्थ निःपृहतानीरधि आचार्य-देवेश श्रीमद् विजयहीरसुरीश्वर म. सा. के शिष्यरत्न प. पू. मुनिराज श्री ललितशेखरविजयजी म. सा. के शिष्यरत्न प. पू. मुनिराज श्री राजशेखरविजयजी म. सा. के शिष्यरत्न प. पू. मुनिराज श्री वीरशेखरविजयजी म. सा. ने कर्मसाहित्य के नव निर्माण के विराट कार्य को करते हुए भी अपने अमूल्य समय का भोग देकर इस प्राचीन चार कर्मग्रन्थों और सप्ततिकाटिप्पणक तथा सूक्ष्मार्थ-विचारसारप्रकरण का संशोधन कर, हस्तलिखित प्रत्यादि के साथ मिलानादि करके यन्त्र-टिप्पणकादि बनवा कर संपादन किया है।

**संपादन-पद्धति :-**

मूलग्रन्थ-टीकाग्रन्थ-साक्षिग्रन्थ-प्रतीक-टिप्पणी आदि के लिये विभिन्न छोटे बड़े-खुन्ने व गहरे एवं विविध प्रकार के टाइप पसंद कर अभ्यास कर्ताओं की अनुकूलता बनाए रखने का ठीक प्रयत्न किया है, जैसे मूल ग्रन्थ २० पोईन्ट ब्लेक टाईपों में, टीकाग्रन्थ १६ पोईन्ट सामान्य टाईप में, प्रतीक १६ पोईन्ट ब्लेक टाईप में टिप्पणी १२ पोईन्ट चालू टाईप में, साक्षिग्रन्थ १६ पोईन्ट ब्लेक टाईप में, चतुर्थग्रन्थ की अंतिम दो टीकाग्रन्थ के और सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण की टिप्पण तथा वृत्तिग्रन्थ के साक्षिग्रन्थ १२ पोईन्ट सामान्य टाईप में, दूसरे परिशिष्ट में छ कर्मग्रन्थ की मूलगाथाएँ और कर्मस्तव-षडशीति-शतक-सप्ततिका प्रकरण की माध्यगाथाएँ तथा सप्ततिकासार की गाथा और सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण की मूल गाथा तथा माध्यगाथा १६ पोईन्ट सामान्य टाईप में, विषयानुक्रम और शुद्धिपत्रक १२ पोईन्ट सामान्य टाईप में रखे हैं।

**शुद्धिपत्रक में सहायक :-**

ग्रन्थसुश्रित हो जाने के बाद में भी अनासोग सुप्रबोधोपादि के कारण रही हुआ अशुद्धियों के समाजर्जन के लिये शुद्धिपत्रक में प. पू. स्व. आचार्यदेव के शिष्यरत्न प. पू. आगमप्रज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् विजयलम्बूसुरीश्वरजी म. सा. तथा प. पू. वीरशेखरविजयजी म. सा. और जैन भैयाकर महल पाठशाला मेहसाणा के अध्यापक सुभाषक श्रीधर पुष्करामभाई ने शोधित वसंतसाई आदि द्वारा सहयोग दिया है यह शुद्धिपत्रक ग्रन्थ के अंत में दिया गया है। तबनुसार ग्रन्थ सुधीर करने का ध्यान रखने की ज्ञान-पिपासु वाचकों से हार्दिक अपील है।

**कृतज्ञता प्रदर्शन :-**

अंत में सबसे पहले स्व. परम गुरुदेव सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्य निष्णात आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयप्रेमसुरीश्वरजी म. सा. का जितना उपकार और आभार माने उनना कम है। क्योंकि उनकी ही परमकृपा और प्रभाष से इस समिति का उत्थान और कर्मसाहित्य का विशाल सर्जन हो सका है। साहित्य की इस इमारत की नींव की इंट तो आन ही हैं।

साथ में हस्तलिखित प्रतियाँ आदि के साथ में मिलाकर टिप्पणियाँ बनाकर, षडशीति प्रकरण के सब पदार्थों के ग्यारह (११) यंत्रों बनाकर उनका प्रथम परिशिष्ट और टिप्पणियुक्त पाँचों प्राचीन कर्मग्रन्थ तथा सप्ततिका नाम के षष्ठ कर्मग्रन्थ की मूलगाथा, द्वितीय-चतुर्थ पञ्चम षष्ठ कर्मग्रन्थ की माध्यगाथा तथा सप्ततिकासार की गाथा और सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण की मूलगाथा तथा माध्य गाथा का दूसरा परिशिष्ट बनवाकर जी-वोड परिश्रम से जिन्होंने इस ग्रन्थरत्न का संपादन किया है वह पूज्य मुनिराजश्री वीरशेखरविजयजी म. सा. के अवर्णनीय उपकार के इस विर श्रुणी है।

इस ग्रन्थ के शुद्धिपत्रक के सहायक प. पू. आगमप्रज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् विजयजम्बूसूरीश्वरजी म. सा. तथा प. पू. सु. वीरशेखरविजयजी म. सा. और महेसाणा के प्राध्यापक पुखराजभाई तथा वसंतभाई आदि का हार्दिक आभार मानते हैं ।

जिसलमेर की प्रति के साथ मिलाई हुई प्राचीन चार कर्मग्रन्थ की प्रति को जिन्होंने इस कार्य के लिये भेजी वह पू. आगमप्रभाकर मुनिराजश्री पुण्यविजयजी म. सा. का हार्दिक उपकार एवं आभार मानते हुये हमें बड़ा गर्व और आनन्द होता है । यशोमद्रसूरि कृत टीका से युक्त षडशीति प्रकरण की हस्तलिखित प्रत को जिन्होंने वडौदा के 'प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी शास्त्रसंग्रह' नाम के इन ज्ञान मण्डार में से कोशिश कर भिजवायी वह पू. मुनिराजश्री भुवनचन्द्रविजयजी म. सा. का और इस ज्ञान मण्डार के कार्यवाहकों का, श्री यशोमद्रसूरिकृत टीका से युक्त और श्री रामदेवगणिविहित टीका से युक्त षडशीति प्रकरण की दो प्रेस कॉपियां तथा श्रीरामदेवगणिविहित वनवायी हुई सप्ततिकाटिप्पणी और सूक्ष्मार्थविचारसार टिप्पणी की प्रेस कॉपियां हमोई के "श्री जम्बूस्वामि जैन मुक्ताबाई आगममन्दिर" नाम ज्ञान मण्डार के लिए तैयार की हुई जिन्होंने इस कार्य के लिये भीजवायी उन पूज्य आगमप्रज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् विजयजम्बूसूरि. म. सा. का हृदय पूर्वक उपकार और आभार मानते हैं । प्राचीन छः कर्मग्रन्थ की मूलगाथा एवं द्वितीय-चतुर्थादि प्राचीन कर्मग्रन्थ की भाष्यगाथा-सूक्ष्मार्थसारप्रकरण की मूलगाथा हस्तलिखितप्रत को इस कार्य के लिये भेजने वाले लालभाई दलपतभाई विद्यामंदिर के कार्यवाहकों का तथा श्रीरामदेवगणिविहित की हीरवी हुई विभिन्नप्रकार की टिप्पणी की हस्तलिखित प्रत और सूक्ष्मार्थविचारसार प्रकरणवृत्ति की फोटोकॉपी के लिए सुविधा करवानेवाले भोजक अमृतलालभाई का एवं इन सब प्रत्यादिकी प्राप्ति करवाने में सहाय करने वाले पू. मुनिराजश्री जयघोषविजयजी म. सा. तथा पू. मुनिराजश्री धर्मानन्दविजयजी म. सा. का भी हार्दिक उपकार मानते हैं । वडौदा मण्डार की हस्तलिखित प्रति पर से केवल श्रुतमक्ति से प्रेरित होकर प्रेस कॉपी की नकल बनाने वाले मंडवाडिया निवासी श्रीमान् खेमचंद मूलचवनी का आभार मानते हैं । हमोई के मण्डार के लिये तैयार की हुई रामदेवगणिविहित कृत टीका से युक्त षडशीति प्रकरण प्रेस कॉपी की नकल करने कराने वाले बैलंबर निवासी सबगृहस्थों का भी हम आभार मानते हैं । 'प्रफ रीडिंग' सहायक महेसाणा वाले मास्टर चम्पकलाल का तथा मुद्रण कार्य को आत्मीयता तथा तेजी से करने वाले ज्ञानोदय प्रिन्टिंग प्रेस - पिंढवाडा के व्यवस्थापक व्याघर निवासी श्रीमान् फतहचवनी जैन (हालावाले) एवं उनके सहयोगी कर्मचारीगण की निष्ठा एवं तत्परता के कारण उनकी स्मृति सदा सराहनीय बनी रहेगी ।

द्रव्य सहायक :-

सूचित करते अत्यन्त हर्ष होता है कि इस ग्रन्थरत्न के मुद्रण-व्यय में ५०००) पाटी जैन उपाश्रय साबडी के साधारण खाते में साबडी निवासी शा पुखराजजी हीराचंदजी ने अर्पण कर वहां के ज्ञान खाते से यह रकम हमारी संस्था को अर्पण करवाई तथा ५०००) पिंढवाडा निवासी शा लालचवनी छगनलालजी ने अर्पण कर श्रुत-मक्ति का अर्घ्य प्राप्त किया ।

इन दोनों द्रव्य-सहायकों ने स्व. पुण्यालुभाष से विपुल लक्ष्मी उपार्जित की और धर्म क्षेत्र में भी ठीक प्रमाण से व्यय कर उसे सार्थक की है । जैसे पुखराजजी ने प्रसिद्ध-वीर्य राणकपुर में परमपूज्य

आ ग्रंथना द्रव्य सहायको  
सुश्रावक पुखराजजी हीराचंदजी  
तथा सुश्रावक लालचंदजी छगनलालजी



स्व. शाह छगनलालजी रूपचंदजी

आराध्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहज की निष्ठा में ओली की आराधना करवाई, उसमें अपने द्रव्य का सद्व्यय किया वैसे ही लालचन्दजी ने भी वामणवाडजी तीर्थ में पू. आ. श्रीमद्विजयजन्मसूरीश्वर म. सा. की निष्ठा में ओली की आराधना करवाई और पिंढवाडा में धावन-जिनालय की प्रतिष्ठा अवसर पर भी अच्छा सद्व्यय किया तथा मन्दिर के पृष्ठ भाग में श्री प्रेमसूरीश्वरजी गुरुमन्दिर वाले उपाश्रय के निर्माण में भाग लिया और गुरु मूर्ति की प्रतिष्ठा का काम भी स्वयं ने लिया।

इम उपरांत भी यह दोनों महानुभाव तन मन धन से संघ और शासन की उपासना करते रहते हैं जैसे कि बम्बई वालकेश्वर विभाग में श्रीपालनगर के मन्दिर ओर उपाश्रय के निर्माण में काफी सहकार दिया है और वहां स्वम्भ रूप बने हैं।

श्री हुकमीचंदजी कोल्हापुर वाले ने अपने स्व० पिताजी श्री हुंगाजी की पुण्य स्मृति में इस ग्रन्थ के मुद्रण-व्यय में रु ५०००) की द्रव्य सहाय करके अपूर्व श्रुत मक्ति की है।

श्री हुंगाजी का जन्म विक्रम संवत् १९१९ में राजस्थान-सिरोही जिले के कुंगणी गाँव में हुआ था। व्यवसाय का प्रारम्भ महाराष्ट्र में कोल्हापुर जिले के बडगाँव में कपडे की दुकान से हुआ। आर्थिक स्थिति सामान्य होने पर भी नीतिमत्ता असामान्य थी। क्षमा-परोपकार-सहनशीलतादि साष्टिक गुणों से जीवन एक सुभाषक के उचित था। सामायिक प्रतिक्रमण पूजा पक्कवखानादि नित्य कृत्यों में तथा श्री संघ के कार्यों में सदैव अप्रमत्त और उत्साही रहते थे। फलतः विक्रम सं० १९८० में मुनि भगवन्तों की निष्ठा में अनशन की माषना के साथ सर्व-संग का त्यागकर दिवंगत हुए।

हुकमीचंदजी के परिवार में धर्म संपन्नता आचारशीलता और नीतिमत्ता का जो उत्कर्ष है उसका श्रेयः स्व० हुंगाजी को ही है।

इनका यह वानादि धर्म उत्तरोत्तर वृद्धि को पाता रहे और भाव-धर्म का स्वरूप लेकर मोक्षदायक बने यही शुभेच्छा।

निरुक्त मधिष्य में और अधिक ग्रन्थों के प्रकाशन की आशा में।

भवदीय-

(i) पिंढवाडा

स्टे. सिरोहीरोड (राजस्थान)

(i) १३५/१३७ जौहरी बाजार  
बम्बई-२

शा. समरथमल रायचन्दजी (मंत्री)

शा. लालचन्द छगनलालजी(मंत्री)

भारतीय प्राक्य-तत्त्व प्रकाशन समिति

### ❀ समिति का ट्रस्टी मंडल ❀

- |                                         |                                         |
|-----------------------------------------|-----------------------------------------|
| (१) शेठ रमणलाल दलसुखभाइ (प्रमुख) खंभात  | (६) शा. लालचंद छगनलालजी मंत्री पिंढवाडा |
| (२) शेठ माणिकलाल चुनीलाल बम्बई          | (७) शेठ रमणलाल वजेचन्द अहमदाबाद।        |
| (३) शेठ जीवतलाल प्रतापशी बम्बई          | (८) शा. हिम्मतमल रुगनाथजी वेडा          |
| (४) शा. खूबचन्द अचलदासजी पिंढवाडा       | (९) शेठ जेठालाल चुनीलाल धीवाले बम्बई    |
| (५) शा. समरथमल रायचंदजी मंत्री पिंढवाडा | (१०) शा. इन्द्रमल हीराचन्दजी पिंढवाडा   |

# अध्याज्जलि

\*\*\*\*\*

जिन्होंने भवरूपी सागर से मुझे बाहर निकल कर चारित्ररूप नौका पर चढाया और दीक्षा दिन से लेकर बारह वर्ष तक आपने सानिध्य में रख कर ग्रहणशिक्षा और आसेवनशिक्षा के साथ साथ ही संस्कृत-प्राकृतव्याकरण न्याय दर्शन काव्य कोश छन्द अलङ्कार प्रकरण छेद आगमादि विविध विषयक ग्रन्थों के अभ्यास द्वारा अमृतपान करवाया । जिन्होंने की सतत सत्प्रेरणा और परम कृपा से ही महागंभीर और अतिमगीरथ ऐसे कर्मसाहित्य के नवनिर्माण में आज तेरह तेरह वर्ष तक लगातार प्रयत्नशील रहा हूँ और भी ऐसे नवसर्जनादि अनेक कार्यों में व्यस्त रहने पर भी जिस पुण्यपुरुष की अमीदृष्टि से ही इस ग्रन्थरत्न की सम्पादनता में भी सफलता पा रहा हूँ । उन कर्मसाहित्य के स्रष्टा सिद्धान्तमहोदधि सच्चारित्रचूडामणि परमशासनप्रभावक सुविशालगच्छाधिपति परमाराध्यापाद स्वर्गीय आचार्यदेवेश—

श्रीसद् विजय प्रेससूरीश्वरजी महाराजा  
की परमपावनी स्मृति में

ॐ

भवदीय कृपैकामिलापी  
मुनि वीरशेखर विजय

आ ग्रन्थमंजना प्रेरक, मांगदशक अंतं संशोधक  
विद्वान्तमहोदधि, कर्मशास्त्रचिन्ता, सुविशालगच्छाधिपति, सकल सधकौशक्याधार.  
स्व. परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीधरजी महाराज



---

नानावृत्तिविभूषिताः

चत्वारः प्राचीनाः कर्मग्रन्थाः

तथा

प्राकृतभाषागाथात्रिद्वटिप्पनक-यन्त्रकादिना-ऽलङ्कृतः

सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

तथा

प्राकृतभाषानिबद्धटिप्पनक-वृत्तिभ्यां विराजितं

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

तथा

परिशिष्टद्वयम्

---



# \* विषयानुक्रमः \*

## कर्मविपाकसंज्ञकः प्रथमः कर्मग्रन्थः

गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः	गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
	टीकाकृन्मङ्गलश्लोकादिकम्	१	६३-६५	अ युर्म लोत्तरभेदस्वरूपम्	३७
१	मङ्गलादिचतुष्टयम्	२	६६	आयुर्निगमस्य नामोपक्रमः	३८
२	कर्मशब्दव्युत्पत्तिः	४	६७-७०	नाम्नः स्वरूपम्, ४२-६७ ६३-१०३	
३	मोदकदृष्टान्तेन प्रकृत्यादिभेदचतुष्टयम्	५		प्रकृतिभेदसङ्ख्याकथनम्	६६
४	मूलोत्तरप्रकृतिसङ्ख्या	६	७१-७५	नाम्नो द्विचत्वारिंश प्रकृतिभेदाः	४१
५-६	मूलप्रकृतयः	६	७६-७६	नाम्नः सप्तषष्टि	४४
७-८	प्रत्येकमूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतिसंख्या	८	७८-८०	बन्धप्रयोगसर्वोत्तरप्रकृतिविंशत्यधि- कशत भेदाः	४५
९	पटाद्योपम्येन प्रत्येकमूलकर्मणां स्वरूपम्	९	८१-८२	नाम्नस्त्रिंशत्प्रकृतिभेदाः	४६
१०-१२	पटदृष्टान्तेन मूलोत्तरज्ञानावरण- स्याच्छादकत्वदर्शनम्	१०	८३	नाम्नस्त्रिंशत्प्रकृतिभेदाः	४७
१३	मतिज्ञानावरणस्वरूपम्	१०	८४-८५	गतिनामस्वरूपम्	४८
१४	श्रुत	११	८६-८७	इन्द्रिय	४९
१५	अवधि	१२	८८-८९	शरीर	५०
१६	मनःपर्यव	१३	९०-९२	अङ्गोपाङ्ग	५१
१७	केवल	१४	९३-१०५	बन्धन	५२
१८	ज्ञानावरणनिगमनदर्शनावरणप्रस्तावौ.	४	१०६-१०७	सघातन	५७
१९-२१	प्रतिहारदृष्टान्तेन दर्शनावरणस्वरूपम्	१५	१०८-११०	संघयण	५८
२२-२६	दर्शनावरणभेदनवकस्वरूपम्	१६	१११-११३	संस्थान	६०
२७	दर्शनावरणनिगमनवेदनीयप्रस्तावौ	१९	११४	वर्ण	६१
२८-२९	दृष्टान्तेन वेदनीयस्वरूपम्	१६	११५	गन्ध	६२
३०-३२	सामान्यतो गतिचतुष्टये च वेदनीय- द्वयविपाकः	२०	११६	रस	६२
३३	वेदनीयोपसहारमोहनीयप्रारम्भौ	२१	११७	स्पर्श	६३
३४	मद्यदृष्टान्तेन मोहनीयस्वरूपम्	२२	११८	अगुरुलघु	६३
३५	मोहनीयस्य द्वैविध्यम्	२२	११९	सपघात	६४
३६	दर्शनमोहनीयस्य त्रिविधता	२२	१२०	पराघात	६४
३७-३९	क्रमेण सम्यक्त्वादित्रयस्य स्वरूपम्	२३	१२१-१२३	आनुपूर्वी	६५
४०	चारित्रमोहनीयस्य द्विविधता	२५	१२४	सच्छ्वास	६६
४१	षोडशकषायनामानि	२५	१२५-१२६	आतप	६७
४२-४३	अनन्तानुबन्धकषायचतुष्कस्वरूपम्	२६	१२७	सद्योत	६७
४४-४५	अप्रत्याख्यानावरण	२८	१२८-१२९	विहायोगति	६८
४६-४७	प्रत्यक्ष्यानावरण	२९	१३०-१३१	त्रसदशक-थावरदशकनामानि अवान्तरसंज्ञाश्च	६९
४८-४९	संज्ञलान	३०	१३४-१४७	दशकद्वयप्रकृतिनामस्वरूपम्	७१
५०-६१	नोकषायभेदसङ्ख्यास्वरूपम्	३१	१४८	निर्माण	७७
६२	मोहनीयनिगमनायुःप्रकर्मौ	३०	१४९	तीर्थकर	७९

આ ગ્રન્થમાં દ્રવ્યસહાયક



શાહ હુકમચંદલ કુંગાલ રાઠોડ (કુગણી)  
(કોલાપુર)

गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः	गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
१५०	नामकर्म निगमय्य गोत्रकर्मोपक्रमते	७९	१६७	अन्तराय-निगमनपूर्वकग्रन्थकारनाम-	
१५१-१५५	गोत्र-तद्भेदद्वयस्वरूपम्	८०		निर्देशः	८७
१५६	गोत्रमुपसंख्यन्तरायप्रस्तावना	८१	१६८	ग्रन्थतो गाथासङ्ख्यानिर्देशपुरस्सरं	
१५७-१३६	अन्तराय तदुत्तरभेदपञ्चकस्वरूपम्	८२		तद्विषयज्ञानोपायः	८८

**कर्मस्तवार्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः**

१	मङ्गलादिकम्	८९	६-१०	मूलोत्तरप्रकृति समुत्कीर्तना	१०२
२	गुणस्थाननामस्वरूपवर्णनम्	९०		, , वर्णना	१०४
२-३	बन्धमाश्रित्य गुणस्थानकेषु व्यवच्छिद्यमानप्रकृतिसङ्ख्या	९६	११-२४	बन्धमधिकृत्य गुणस्थानकेषु व्यवच्छिद्यमानप्रकृतयः	१४४
४	उदयमाश्रित्य गुणस्थानकेषु व्यवच्छिद्यमानप्रकृतिसङ्ख्या	९८	२५-३८	उदयमधिकृत्य गुणस्थानकेषु व्यवच्छिद्यमानप्रकृतयः	११८
५	उदीरणामधिकृत्य गुणस्थानकेषु व्यवच्छिद्यमानप्रकृतिसङ्ख्या	९९	३९-४२	उदीरणामधिकृत्य गुणस्थानकेषु व्यवच्छिद्यमानप्रकृतयः	१२२
६-८	सत्तामाश्रित्य गुणस्थानकेषु व्यवच्छिद्यमानप्रकृतिसङ्ख्या	१००	४३-५४	सत्तामधिकृत्य गुणस्थानकेषु व्यवच्छिद्यमानप्रकृतयः	१२६
			५५	सिद्धमगवत्स्तुतिपूर्वकमिष्टार्थाभ्यर्थना	१२६

**बन्धस्वामित्वाभिधस्तृतीयः कर्मग्रन्थः**

१	मङ्गलादिकम्	१६७	२६-३४	योगभेदेषु बन्धस्वामित्वम्	१४०
२	मूलमार्गणा	१२७	३५	वेदकषायभेदेषु	१४४
३	गतिभेदेषु गुणस्थानानि जीवस्थानानि च	१२८	३६	ज्ञानभेदेषु	१४५
	मूलोत्तरप्रकृतयः	१२९	३७-३८	संयमभेदेषु	१४५
४-५	प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोर्बन्धविद्यमानप्रकृतयः	१३०	३९	दशानभेदेषु	१४५
६-६	नरकगतिभेदेषु बन्धस्वामित्वम्	१३१	४०-४६	लेख्याभेदेषु	१४६
१०-१२	तिर्यग्गतिभेदद्वये	१३३	४६	मठ्या-उपन्यभेदद्वये	१४६
१३-१४	मनुष्यगतिभेदद्वये	१३४	५०-५२	सन्धक्त्वभेदेषु	१५०
१५-२१	देवगतिभेदेषु	१३६	५२-५३	संज्ञ्यसंज्ञिभेदद्वये	१५०
२२-२४	इन्द्रियभेदेषु	१३९	५३	आहारका उनाहारकभेदद्वये	१५१
२५	कायभेदेषु	१४०	५४	प्रकरणोपसंहारः	१५२
				टीकाकृतप्रशस्तिः	१५३

**षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः**

	हारि.मल. यशो.	राम०	८-१०			
१-२	मङ्गलादिकम्	१५४/१५५	१-२	१	१०	उपयोगाः १६६ ७ ६
३	जीवस्थानस्वरूपम्	१६२	३	२		लेख्याः १७१ ८ ६
४-५	जीवस्थानेषु गुणस्थानानि	१६३	४	२		मार्गणास्थानानि ७
६-८	योगाः	१६७	५	४		बन्धहेतवः ८
					११	बन्धोदयोदीर्णासत्तास्थानानि १७१ ८ ८

गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः	गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
१२	मूळमागगास्थानानि	१७४ १० १	६६-६६	योगाः	२४३ ४५ २७
१३-१७	उत्तर " "	१७६ १० ६	६६-७१	उपयोगाः	२४५ ४६ २७
१८-२५	मार्गगास्थानेषु जीवस्थानानि १७६ १५ १०		७२	द्वेषुचिदर्थेषु सिद्धान्तमतस्या- नभिक्रानता	२४७ ४७ २८
२६	गुणस्थानानि	१८७ २१ १३	७३	गुणस्थानेषु लेख्याः	२-६ ४७ २८
२७-३३	" "	२०४ २६ १३	"	मार्गगास्थानानि	२६
३४	योगाः	२११ २६ १५	७४-७६	बन्धहेतवः	२४६ ४८ ३०
३५-४१	" "	२१४ ३० १५	७७	" "	२५१ ५० ३१
४२	उपयोगाः	२२० ३२ १७	७८	अष्टमूलप्रकृतयः	२५४ ५२ ३३
४३-४६	" "	२२१ ३३ १७	७९	बन्धोदयोदीरणासत्तास्थानानि	२५५ ५३ ३३
४९-५०	योगत्रये गुणस्थान-जीवस्थानो- पयोग-योगसत्कमतान्तराणि	२२६ ३५ १६	८०	गुणस्थानेषु बन्धस्थानानि	२५५ ५३ ३३
५१-५२	मार्गगा स्थानेषु लेख्याः	२२७ ३६ २०	८१	" उदयसत्ता "	२५५ ५३ ३३
५३-६४	" अल्पबहुत्वम्	२२८ ३७ २०	८२-८३	" उदीरणा "	२५७ ५४ ३४
"	मार्गगास्थानानि	२३	८४-८५	" अल्पबहुत्वम्	२५९ ५५ ३४
"	बन्धहेतवः	२६	८६	सोपसंहारं निजनामोत्लेखनम्	२६० ५६ ३५
६५	गुणस्थानेषु जीवस्थानानि	२४३ ४४ २७		टीकाकृतप्रशस्तिः	२६१-२६२ ५६ ३५

### सप्ततिकाभिधानः षष्ठः कर्मग्रन्थः

सूत्रकृत्या टिप्पनककृन्मङ्गलादिकम्	१	सामान्यतो नामोत्तरप्रकृतीनां	
सामान्यतो मूलप्रकृतीनां		बन्धोदयसत्तास्थानसंबन्धः	३२-३७
बन्धोदयसत्तास्थानानि तत्संबन्धश्च	१-२	चतुर्विंश जीवस्थानेषु ज्ञानावरणा-उन्तराययो-	
जीवस्थानेषु	" "	रूपरप्रकृतीनां	३७-३८
गुणस्थानेषु	" "	" दर्शनावरणोत्तरप्रकृतीनां बन्धोदयसत्ता-	
सामान्यतो उत्तरप्रकृतीनां	३	स्थानानि तद्भङ्गाश्च	३८
" ज्ञानावरणाउन्तरायोत्तरप्र० "	" "	" वेदनीया-ऽऽयुर्नोत्रकर्मोत्तरप्रकृतीनां	३८-३९
" दर्शनावरणोत्तरप्रकृतीनां "	" "	" मोहनीयोत्तरप्रकृतीनां	" ३९-४४
" गोत्र-वेदनीया-ऽऽयुरूपरप्रकृतीनां	" "	" नामोत्तरप्रकृतीनां	" ४५-५५
" मोहनीयोत्तरप्रकृतीनां	" "	गुणस्थानकेषु ज्ञानावरणा-उन्तराययोदर्शनाव-	
" " बन्धस्थानमङ्गाः	८-९	रणस्य श्रोत्तरप्रकृतीना	" ५५-५६
" " बन्धस्थानेषुदयस्थानानि	६	" वेदनीयो-नोत्रा-ऽऽयुत्तरप्रकृतीनां	" ५६-५७
" " उदयस्थानमङ्गाः	६ १३	" मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनां	" ५८-६२
" " बन्धस्थानेषु सत्तास्थानानि	१४	" " योगानाभित्योदयस्थानमङ्गाः	६३-६४
" " गुणस्थानानि प्रतीत्य बन्धो-		" " उपयोगाना	" " ६५-६६
दयसत्तास्थानसंबन्धः	१५-१६	" " लेख्या आभित्योदय	६६
" नामोत्तरप्र. बन्धस्थानानि, तद्भङ्गाश्च	१७-२१	" नामोत्तरप्रकृतिबन्धोदयसत्तास्थानानि	६६-७५
" " उदय	" "	गतिमार्गगाचतुष्टके " तद्भङ्गाः संबन्धश्च	७५-८०
" " सत्ता	" "		

### सूदमार्थविचारसारप्रकरणम्

टिप्पनकम्	वृत्तिः	२	कर्मणः प्रकृत्यादिभेदतो	टिप्प० वृ०
१ मङ्गलादिकम्	१	१	मूलोत्तरप्रकृतिभेदप्रदर्शनम्	२ १-३

गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः	गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
	धुत्तौ कर्मबन्धहेतुमूलोत्तरभेद- निरूपणम्	२-३	४३-४६	शुभा-ऽशुभप्रकृतयः	१६ २०
३	मूलप्रकृतीनां नामानि तदु- त्तरभेदसङ्ख्यानिरूपणम्	२ ३	४७	परावर्त्तमाना-ऽपरावर्त्तमानप्रकृतयः	१७ २१
४	दर्शनावरणोत्तरप्रकृतयः	२ ३-४	४८-४९	पुद्गल-भवक्षेत्र-जीवविपा- किन्यः प्रकृतयः	१७ २१
५	ज्ञानावरणा-ऽन्तरायकर्मपो- रुत्तरप्रकृतयः	२-३ ४	५०	मूलभाव-तदुत्तरभावसङ्ख्या	१७-१८ २१
६	मोहनीया-ऽऽयुगौत्र-वेदनी- योत्तरप्रकृतयः	३ ५-६	५१-५४	उत्तरभावानां निरूपणम्	१८ २२
७-८	पिण्ड-प्रत्येकप्रकृतयः	३ ६	५५-५७	साभिपातिकमावे संभवि- नोऽसंभविनो भेदाः	१८-२० २२-१३
९-१०	अस-स्थावरदशकद्वयप्रकृतयः	३-४ ६-७	५८	अष्टमूलकर्मसु मूलभावानां प्रदर्शनम्	२० २३
	अथवा सप्रतिपक्षाः प्रकृतयः		५९	चतुर्दशगुणस्थानकेषु	२०-२१ २३
११	असचतुष्कादिसंज्ञानिर्दर्शनम्	४ ७	६० ६२	चतुर्दशजीवस्थानानि, तत्त्वस्व- रूपम्, तत्र भावनिरूपणम्,	२१-२२ २४-२५
१२	पिण्डप्रकृत्युत्तरप्रकृतिसङ्ख्यामणनम्	७	६३	मूलप्रकृतीनां ज्येष्ठस्थिति- प्रमाणम्	२२ २५
१३-१८	नामानि क्रमशस्तथा मनुष्यद्विकत्रिकादिसंज्ञा	४-६-७-९	६४	जघन्य	२२ २५
१९	नाम्नो विविधापेक्षयोत्तरप्रकृतीनां मिथ्यमिथ्यसङ्ख्या	६ १२	६५	जघन्य	२२-२३ २५
२०	बन्धादिषु नामादिप्रकृतीनां विष- क्षाविशेषदर्शनम्	६-७ १२	६५-७१	उत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्ट	२३-२५ २६-२७
२१	पञ्चदशबन्धननिरूपणम्	७ १२	६६	तमगाथायां पुनराहारक- द्विक-जिननाम्नो जघन्यस्थि- तिबन्धप्रमाणमपि	२३-२५ २६-२७
२२	वर्णादीनां शुभा-ऽशुभत्वमणनम्	७ १३	७२-७३	नां जघन्य	२५-२७ २७
२३	ध्रुवाध्रुव-बन्धोदय-सत्ताकानां तथा सर्व-देशवात्य-ऽघाति- चतुर्विपाकानां प्रकृतयः	७-८ १३	७४-७५	जघन्योत्कृष्टस्थिति- प्रमाणमेकेन्द्रियधिकले- न्द्रिया-ऽसंक्षिप्त तथाऽऽयुषां जघन्यस्थिति प्रमाणम्	२७-२८ २८
२४	ध्रुवा-ध्रुवबन्धप्रकृतयः	८ १३	७६	धैक्रियषट्कस्य मतान्तरेणा- ऽऽहारकद्विक-जिननाम्नोर्ज- घन्यस्थितिप्रमाणम्	२८ २८
२५-२६	एकेन्द्रियादीनां बन्धायोग्य प्र०	८ १४	७७	जघन्यावाधाननिरूपणम्	२९ २८
२७-२९	उत्तरप्रकृत्यबन्धकालाः	१०-११ १४-१५	७८-७९	जुल्लकभवप्रमाणम्	२९-३० २९
३०-३३	उत्तरप्रकृतिसत्कबन्धकालः	११-१३ १५-१६	८०	गुणस्थानकादिषु स्थिति- बन्धप्रमाणम्	३० २९
३४	ध्रुवा-ध्रुवोदयप्रकृतयः	१३ १७	८१	जघन्योत्कृष्टस्थितिबन्धात्य- बहुत्वम्	३०-३२ २९
३५	ध्रुवा-ऽध्रुवोदयानां मङ्ग- विभागनिर्दर्शनम्	१३ १७	८२	जघन्यत्वामित्वम्	३२ ३०
३६	ध्रुवा-ऽध्रुवसत्ताकप्रकृतयः	१३ १७	८३	जघन्यपरिणामप्र- रूपणम्	३२ ३३ ३०
३७-३९	गुणस्थानमाश्रित्य मिथ्यात्वा- दीनां ध्रुवा-ऽध्रुवत्वम्	१४-१५ १८-१९	८४-८५	चतुर्दशजीवस्थानेषु जघ- न्योत्कृष्टयोगात्पबहुत्वम्	३३-३४ ३१
४०-४२	सर्वेघाति-देशवात्य-ऽघा- तिप्रकृतयः	१५-१६ १९	८६	स्थितिस्थानात्पबहुत्वम्	३४ ३२

गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः	गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
८७	जीवस्थानेषु योगवृद्धिविशेष- निरूपणम्	३४-३५ ३२	११२	क्षेत्रस्य सूक्ष्मत्वप्रदर्शनम्	४८ ४०
८८	प्रत्येकस्थितिरुत्थानगताभ्य- वसायप्रसाणम्	३५ ३३	११३	सूचिश्रेणि-प्रतरप्ररूपणम्	४८ ४०
८९	शुभा-ऽशुभप्रकृतिसत्कज- घन्योत्कृष्टानुमागहेतुकाभ्य- वसायनिरूपणम्	३५-३६ ३३	११४-११६	प्रकृतिभेदादिनिरूपणम्	४८-४९ ४१
९०-९३	रसस्थाननिरूपणम्	३६-३७ ३३-३४	११७-११८	शुभा-ऽशुभप्रकृतीनां कपा- योदयेष्वनुमागवन्धाध्यव- सायस्थानतारतम्याल्पबहुत्वम्	४९-५० ४२
९४-९६	वर्गणास्वरूपम्	३७-४० ३४-३५	११९	अनुमागस्थानपरिमाण- दर्शनार्थमल्पबहुत्वम्	५० ३९
९७	वर्गणाद्रव्योत्पत्तिप्रदर्शनम्	४० ३५	१२०	कर्मस्कन्धस्वरूपम्	५० ४२
९८	जघन्योत्कृष्टप्रदेशवन्धवस्था- मित्वम्	४० ३६	१२१	,, ,, प्रदेशगतरसाणुप्रमाणम्	५० ४३
९९-१००	दलविमागनिरूपणम्	४१ ३६	१२२-१४८	सङ्ख्यास्वरूपम्	५१-५७- ४३-४८
१०१-१०३	एकादशगुणषेणिरूपणम्	४२-४३ ३७	१४९	सप्तमा-ऽसङ्ख्य-सप्तमान- न्तविषयकं सनान्तरम्	५७ ४८
१०४	गुणस्थानकजघन्योत्कृष्टान्तरम्	४३ ३८	१५१-१५२	उत्सूत्रसत्कमिध्यादुष्कृतपुर- स्सरं निजनामोल्लेखपूर्वकं भ्रमण-ज्ञान-बोधन-शोधना- दिप्रार्थनया सार्धं ग्रन्थसमापनम्	५८ ४९
१०५-१०६	पुद्गलपराधर्तस्वरूपम्	४४-४६ ३८-३९			
११०-१११	योगस्थानादीनामल्पबहु- त्वम्	४६-४८ ४०			

### प्रथमं परिशिष्टम्

यन्त्राङ्कः

१	जीवस्थानेषु गुणस्थानक-योगो-पयोग- बन्धो-दयो-वीरणा-सत्तास्थान- बन्ध- हेत्वऽल्पबहुत्वानि	
२	जीवस्थानेषु मार्गणास्थानानि	३
३	मार्गणास्थानेषु जीवस्थानानि	४
४	,, गुणस्थानानि	५
५	,, योगाः	६

यन्त्राङ्कः

६	मार्गणास्थानेषु उपयोगलेश्याः	७
७	,, अल्पबहुत्वम्	८
८	,, बन्धहेतवः	
९	,, मार्गणास्थानानि	१०-१३
१०	गुणस्थानेषु जीवस्थान-योगो-पयोग-१४-१५ लेश्या-बन्धो-दयो वीरणा-सत्तास्थान- बन्धहेत्वऽल्पबहुत्वानि	१४-१५
११	गुणस्थानेषु मार्गणास्थानानि	१६

### द्वितीयं परिशिष्टम्

गाथाङ्कः

१-१६८	प्रथमकर्मग्रन्थमूलगाथाः	१-१४
१-५७	द्वितीय " " "	१५-१९
१-५४	तृतीय " " "	२०-२४
१-८६	चतुर्थ " " "	२५-३२
१-१०५	पञ्चम " " "	३३-४१
१-७१	षष्ठ " " "	४२-५१

गाथाङ्कः

१-३२-२४/२३	द्वितीय कर्मग्रन्थमाध्यगाथाः	५१-५४
१-३८	चतुर्थ " " "	५५-५८
१-२५	पञ्चम " " "	५९-६०
१-१८१	षष्ठ " " "	६१-७७
१-६६	," " " सार	७८-८४
१-१५२/१७६	सूक्ष्मार्थविचारसारमूलगाथाः	१-१६
१-२७	," " " माध्य	१७-१८

ॐ ह्रीं अहं श्री शंखेश्वरपाश्र्वेनाथाय नमः

॥ न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरभ्यो नमः ।

सिद्धान्तमहोदधिश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ।

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

## कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः ।

पूर्वाचार्यकृतव्याख्यया श्रीमत्परमानन्दसूरिविरचितवृत्त्या च समेतः ।

( पूर्वाचार्यकृतव्याख्या )

॥ नमः सिद्धेभ्यः ॥

रागादिवर्गहन्तारं, प्रणेतारं \*सदागमम् ।  
प्रणौमि शिरसा देवं, वीरं श्रीजिनसत्तमम् ॥ १ ॥  
स्तौमि देवीं सदा भक्त्या, जिनाऽऽस्याम्भुजवासिनीम् ।  
यत्प्रसादाद्द्वरं काव्यं, कवीनां जायतेऽमलम् ॥ २ ॥  
'कः शक्तो विवरीतु' स्यात्, सूत्रं जिनमतेऽखिलम् ।  
अनन्तगमपर्यायं, मतेर्मान्द्याश्च बालिशः ॥ ३ ॥  
गुरुपादप्रसादेन, तथाऽपि जडबुद्धिना ।  
क्रियते विवरणं किञ्चिद्, विपाके कर्मसंज्ञके ॥ ४ ॥  
दोषान्मुक्त्वा वचो ग्राह्यं, मदीयं कृतिमिः सदा ।  
सतामभ्यर्थना येन, न (यत्न) कदाचिन्निष्फला भवेत् ॥५॥

नत्रेष्टदेवतास्तत्रामिधायिकां प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्त्यर्थं विघ्नविनायकोपशान्तये शिष्टसमयप्रति-  
पालनाय च प्रयोजनाभिन्नेयसंबन्धगर्भां सूत्रकार आद्यामिमां गाथामाह—

१. "सदागमे" इति जे० । १ "विवरीतु" समर्थः स्यात्कः सूत्रं जिनमतेऽखिलम्" जे० । २ "गमाः सदृश-  
पाठाः. पर्यायाः नवपुराणादयः" जे० टिप्पणी । ३ "पर्यायान्मते" जे० । ४—"सुबालिशः" इत्यपि ॥

गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः	गाथाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
८७	जीवस्थानेषु योगवृद्धिविशेष- निरूपणम्	३४-३५ ३२	११२	क्षेत्रस्य सूक्ष्मत्वप्रदर्शनम्	४८ ४०
८८	प्रत्येकस्थितिस्थानगताध्य- वसायप्रमाणम्	३५ ३३	११३	सूचिश्रेणि-प्रतरप्ररूपणम्	४८ ४०
८९	शुभा-ऽशुभप्रकृतिसत्कज- घन्योत्कृष्टानुभागहेतुकाध्य- वसायनिरूपणम्	३५-३६ ३३	११४-११६	प्रकृतिभेदादिनिरूपणम्	४८-४९ ४१
१०-९३	रसस्थाननिरूपणम्	३६-३७ ३३-३४	११७-११८	शुभा-ऽशुभप्रकृतीनां कपा- योदयेष्वनुभागवन्धाध्यव- सायस्थानतारतम्याल्पबहुत्वम्	४९-५० ४२
९४-९६	वर्गणास्वरूपम्	३७-४० ३४-३५	११९	अनुभागस्थानपरिमाण- दर्शनार्थमल्पबहुत्वम्	५० ३९
९७	वर्गणास्वरूपयोरेषत्तिप्रदर्शनम्	४० ३५	१२०	कर्मस्कन्धस्वरूपम्	५० ४२
९८	जघन्योत्कृष्टप्रदेशवन्धस्वा- मित्वम्	४० ३६	१२१	,, ,, प्रदेशगतरसाणुप्रमाणम्	५० ४३
९९-१००	दलविभागनिरूपणम्	४१ ३६	१२२-१४८	सङ्ख्यास्वरूपम्	५१-५७- ४३-४८
१०१-१०३	एकादशगुणश्रेणिप्ररूपणा	४२-४३ ३७	१४९	सप्तमा-ऽसङ्ख्य-सप्तमान- न्तविषयकं मनान्तरम्	५७ ४८
१०४	गुणस्थानकजघन्योत्कृष्टान्तरम्	४३ ३८	१५१ १५२	उत्सूत्रसत्कमिथ्यादुष्कृतपुर- स्सरं निजनामोत्प्लेखपूर्वकं श्रवण-ज्ञान-बोधन-शोधना- दिप्रार्थनया सार्धं ग्रन्थसमापनम्	५८ ५८
१०५-१०६	पुद्गलपरावर्तस्वरूपम्	४४-४६ ३८-३९			
११०-१११	योगस्थानादीनामल्पबहु- त्वम्	४६-४८ ४०			

### प्रथमं परिशिष्टम्

यन्त्राङ्कः	यन्त्राङ्कः
१ जीवस्थानेषु गुणस्थानक-योगो-पयोग- बन्धो-दयो-दीरणा-सत्तास्थान- बन्ध- हेत्वऽल्पबहुत्वानि	६ मार्गणास्थानेषु उपयोगलेइयाः ७ ७ ,, ,, अल्पबहुत्वम् ८ ८ ,, ,, बन्धहेत्वः ९ ९ ,, ,, मार्गणास्थानानि १०-१३
२ जीवस्थानेषु मार्गणास्थानानि ३	१० गुणस्थानेषु जीवस्थान-योगो-पयोग-१४-१५ लेइया-बन्धो-दयो दीरणा-सत्तास्थान- बन्धहेत्वऽल्पबहुत्वानि
३ मार्गणास्थानेषु जीवस्थानानि ४	११ गुणस्थानेषु मार्गणास्थानानि १६
४ ,, गुणस्थानानि ५	
५ ,, योगाः ६	

### द्वितीयं परिशिष्टम्

गाथाङ्काः	गाथाङ्काः
१-१६८ प्रथमकर्मग्रन्थमूलगाथाः १-१४	१-३२-२४/२३ द्वितीय कर्मग्रन्थमाध्यगाथाः ५९-५४
१-५७ द्वितीय ,, ,, ,, १५-१९	१-३८ चतुर्थ्यं ,, ,, ,, ,, ५५-५८
१-५४ तृतीय ,, ,, ,, २०-२४	१-२५ पञ्चमं ,, ,, ,, ,, ५६-६०
१-८६ चतुर्थ्यं ,, ,, ,, २५-३२	१-१८१ षष्ठं ,, ,, ,, ,, ६१-७७
१-१०५ पञ्चमं ,, ,, ,, ३३-४१	१-६६ ,, ,, ,, सारं ,, ७८-८४
१-७१ षष्ठं ,, ,, ,, ४२-५१	१-१५२/१७६-सूक्ष्मार्थविचारसारमूलगाथाः १-१६
	१-२७ ,, ,, ,, माध्यं ,, १७-१८



ननु गमेर्गत्यर्थत्वात्कथमभावार्थः स्यात् ? उच्यते, विअपपूर्वो गमिः स्वभावात् अनेकार्थत्वाद्वा  
घातूनामभावार्थोऽपि दृष्टः । तथा- 'कर्मगतिकुशलं' इति कर्मणां गतिः परिच्छित्तिः, तत्परि-  
णासो वा कर्मगतिः, तत्र कुशलो निपुणः सर्वथा तत्परिच्छेदकः । तं नत्वा वक्ष्ये 'कर्मविपाकं'  
कर्मणां विपाकोऽनुभवः कर्मविपाकस्तम् । कथंभूतम् ? 'गुरुपदिष्टं' गुरुभिरुपदिष्टो गुरुपदिष्टो ५  
गुरुकथितस्तम् । कथं वक्ष्ये ? 'समासेन' संचेपेण, इति गाथाऽक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयम्-व्यप-  
गतकर्मकलङ्ककम्, इत्यनेनापायापगमातिशय उक्तः । वीरं नत्वा, इत्यनेन स्तोतव्यसंपत्पूर्वको  
नमस्कारोऽभिहितः । कर्मगतिकुशलम्, अनेन तु स्तोतव्यस्यैव ज्ञानातिशयः प्रतिपादितः ।  
कर्मविपाकम्, इत्यनेन त्वभिधेयम् । गुरुपदिष्टम्, पुनरनेनावयवेन शास्त्रस्य पारतन्त्र्यमाह  
गुरुपूर्वक्रमलक्षणसंबन्धकम् । समासेन, इत्यनेन पुनः पदेन प्रयोजनाभिधानम्, 'व्यासाभिधा- १०  
नात्समासाभिधानं प्रयोजनम्' इत्युक्तेः । कर्मविपाकार्थोऽभिधेयः । अभिधानं तु इदमेव  
प्रकरणम् । अभिधानाभिधेयलक्षणश्च संबन्धः । इति गाथाभावार्थः ३ । पदविग्रहस्तु पदार्थं दर्श-  
यन्निर्दिशति एव ४ । वीरमित्यनेनैव स्तोतव्यसंपदोऽभिहितत्वात् किमर्थं शेषपदोपन्यासः ? इति  
चालना ५ । प्रत्यवस्थानमाह-वीर इत्येतावन्मात्रे कृते 'नानाविधवीरप्रसङ्गः स्यात् । तद्व्यु दा-  
सार्थं व्यपगतकर्मकलङ्कमित्याह, तर्हि व्यपगतकर्मकलङ्कमित्येतदेवास्तु किं शेषपदैः ? इत्यत्राह- १५  
कौश्लिद्वयपगतकर्मकलङ्कोऽप्यसर्वज्ञ इष्यते किञ्चिज्ज्ञत्वात्, तद्व्यवच्छेदार्थं कर्मगतिकुशलं सर्वज्ञ-  
त्वामिधायकं पदमाह, तेन भाववीरं अशेषकल्मषध्वान्तरहितं सर्वज्ञं सर्वदाशिनमित्यभिहितं  
भवति । ननु किमन्यैः कर्मविपाको नाभिहितः येनाभिधीयते भवता कर्मविपाकः ? इत्यत्रोच्यते  
उक्तोऽन्यैः, किन्तु व्यासेन, अत्र तु समासेन । इति गाथासमुदायार्थः ॥ १ ॥

क्रियत इति कर्म, इमां व्युत्पत्तिमाश्रित्य कर्मशब्दप्रवृत्तिः, जीवस्य च कर्मणा सार्द्धं मना- २०  
दिमंयोगोऽभिधीयते तत्कथमिदमविरोधि ? इत्याह—

(पारमा०) तत्र 'वीरमिति' विशेष्यम् । तं 'नस्था कर्मविपाकं वक्ष्ये' इति संबन्धः ।  
शेषतीर्थकृतामपि भावमङ्गलत्वे साधारणे सत्यासन्नोपकारित्वादस्य नमस्कारः । कीदृशं वीरम् ?  
कर्माण्येव जीवचन्द्रमसः स्वभावशुद्धस्य कलुषत्वापादनेन कलङ्कः, स व्यपगतोऽस्येति व्यपग-  
तकर्मकलङ्कः । एतेन घातिकर्मविलयनप्रतिपादनेन भगवतः स्वस्वरूपापत्तिरुच्यते, अत एव २५  
'कर्मगतिकुशलमिति' विशेषणं सुघटम् । कर्मणां गतिः परिणतिः, तत्र कुशलं विज्ञम् । नहि  
विमलक्रेवलं विना क्रोऽपि कर्मगतिं परिच्छेत्तुमलम् । यदुक्तम्—“जीवाण गर्हं कम्माण  
परिणई पुग्गलाण परियट्ठी । सुत्तूण जिणं तह जिण-मयं च क्रो जाणिउं तरह्” ?  
॥१॥ एवं च शास्त्रादौ भावमङ्गलं नमस्कारं कुर्वता व्याख्याङ्गान्यपि सूचितानि । तथाहि—

( श्रीमत्परमानन्दसू रिविचित्रचित्तः )

निःशेषकर्मोदयमेघजालमुक्ती दिनाधीश इशोत्रनेजाः ।

प्रदर्शिताशेषपदार्थसाधो, सुदेऽस्तु नः श्रीजिनवर्द्धमानः ॥१॥

इह हि सन्तः संसारसागरतरणतरणिकल्पं जिनशामनमवाप्य सकलजन्मजीवितमारं परोप- ५  
कारं मन्यन्ते । म च संसारिणां सकलामङ्गलनिलयकर्मस्वरूपनिरूपणात्तदुन्मूलनप्रवृत्तानां मिद्धो  
भवतीत्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणप्रवृत्तं प्रकरणं चिकीर्षु र्गर्गमहापिर्मङ्गलाभिधेयमंबन्धाभिधानवन्धुर्गं  
गाथामाह—

ववगयकम्मकलंकं वीरं नमिऊण कम्मगइकुमलं ।

'वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइट्टं ममासेणं ॥१॥

१०

(पू०) अस्या व्याख्या—सा च संहितादिक्रमेण—“सहिता च पदं चैव, पदार्थः  
पदविग्रहः । चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या तन्त्रस्य षड्विधा” ॥ १ ॥ तत्रास्त्रलित-  
पदोच्चारणं संहिता । सा चैयम्—व्यपगतकर्मकलङ्कं, वीरं नत्वा कर्मगतिक्षुशलं । वक्ष्ये  
कर्मविपाकं, गुरूपदिष्टं समासेन । १ । पदानि पुनः सैव संहिता विच्छेदेनोच्चार्यमाणा २ ।  
पदार्थस्त्वयम्—वीरं नत्वा वक्ष्ये कर्मविपाकम् । इति क्रियाकारकसंबन्धः । विर,जनाद्धीरः । विपूर्व- १५  
स्य 'राजू दोसौ' इत्यस्य घातोः औणादिहच्प्रत्ययान्तस्य “अन्येषामपि” इति दीर्घत्वे वीर  
इति रूपम् । तस्यार्थः—विराजते शोभते प्रकाशते वा वीरः । 'शूर वीर विक्रान्तौ' इत्यस्य वा ।  
तत्रार्थः—महाविक्रान्तोऽपरवादिशत्रुजयात्, परीपहाद्यक्षोभ्यत्वाद्वा । ईर गतिप्रेरणयोः' इत्यस्य  
वा विपूर्वस्याच्प्रत्यये रूपम् । तस्य पुनरयमर्थः—विशेषेण ईरयति कर्म गमयति याति वा शिवमिति  
कृत्वा वीरः, गौर्णं नाम भगवतः । अर्थव्युत्पत्त्यनुसारेणान्येऽप्यर्थाः सन्ति, अतस्तेऽप्यवबोद्ध- २०  
व्याः । तथा चोक्तम्—“विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते । तपोवोर्येण युक्तञ्च.  
तस्माद्धोर इति स्मृतः ॥१॥” “णम् प्रकृत्वे शब्दे [च]” इत्यस्य घातोः क्त्वान्तस्य नत्वेति  
रूपम् । 'नत्वा' प्रणम्य “वोच्छं” वक्ष्ये अभिधास्ये, किं श्रुतं वीरम् ? इत्याह—व्यपगतकर्म-  
कलङ्कं' वि-अप-पूर्वस्य गमेः क्तान्तस्य व्यपगतमिति रूपम् । कर्मेव कलङ्कं कर्मकलङ्कम् ।  
यदा प्रथमात्तत्पुरुषस्तदाऽयमर्थः—कलङ्कं दूषणं जीवस्वभावस्य कर्मेवाशुभपरिणामपरिणतं कलङ्कं २५  
कर्मकलङ्कम् । विशब्दो विशेषार्थः, अपशब्दोऽभावार्थः, विशेषेणापगतं कर्मकलङ्कं यस्यासौ  
व्यपगतकर्मकलङ्कोऽन्यपदार्थः, अतस्तम् । यदा पुनर्ब्रूयः, कर्म च कलङ्कं च कर्मकलङ्के, तदा  
कर्म ज्ञानावरणीयादि प्रतीतं, कलङ्कं बाधाम्यन्तरमेदमिच्छम् । तत्र बाधामकीर्त्यादि, आभ्यन्तर-  
मनुबाध्यवसायादि । ते [ विशेषेण ] अपगते अतीते यस्यासौ व्यपगतकर्मकलङ्कः, अतस्तम् ।

ननु गमेर्गत्यर्थत्वात्कथमभावार्थः स्यात् ? उच्यते, विअपपूर्वो गमिः स्वभावात् अनेकार्थत्वाद्वा  
घातूनामभावार्थोऽपि दृष्टः । तथा- 'कर्मगतिकुशलं' इति कर्मणां गतिः परिच्छित्तिः, तत्परि  
णासौ वा कर्मगतिः, तत्र कुशलो निपुणः सर्वथा तत्परिच्छेदकः । तं नत्वा वक्ष्ये 'कर्मविपाकं'  
कर्मणां विपाकोऽनुभवः कर्मविपाकस्तम् । कथंभूतम् ? 'गुरुपदिष्टं' गुरुभिरुपदिष्टो गुरुपदिष्टो  
गुरुकथितस्तम् । कथं वक्ष्ये ? 'समासेन' संक्षेपेण, इति गाथाऽक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयम्-व्यप-  
गतकर्मकलङ्ककम्, इत्यनेनापायापगमातिशय उक्तः । वीरं नत्वा, इत्यनेन स्तोतव्यमंपत्पूर्वको  
नमस्कारोऽमिहितः । कर्मगतिकुशलम्, अनेन तु स्तोतव्यस्यैव ज्ञानातिशयः प्रनिपादितः ।  
कर्मविपाकम्, इत्यनेन त्वभिधेयम् । गुरुपदिष्टम्, पुनरनेनावयवेन शास्त्रस्य पारतन्व्यमाह  
गुरुपर्वक्रमलक्षणसंबन्धकम् । समासेन, इत्यनेन पुनः पदेन प्रयोजनाभिधानम्, 'व्यासाभिधा- १०  
नात्समासाभिधानं प्रयोजनम्' इत्युक्तेः । कर्मविपाकार्थोऽभिधेयः । अभिधानं तु इदमेव  
प्रकरणम् । अभिधानाभिधेयलक्षणश्च संबन्धः । इति गाथाभावार्थः ३ । पदविग्रहस्तु पदार्थं दर्श-  
यद्भिर्दर्शित एव ४ । वीरमित्यनेनैव स्तोतव्यसंपदोऽमिहितत्वात् किमर्थं शेषपदोपन्यासः ? इति  
चालना ५ । प्रत्यवस्थानमाह-वीर इत्येतावन्मात्रे कृते 'नानाविधवीरप्रसङ्गः स्यात् । तद्वच्चु दा-  
सार्थं व्यपगतकर्मकलङ्कमित्याह, तर्हि व्यपगतकर्मकलङ्कमित्येतदेवास्तु किं शेषपदैः ? इत्यत्राह- १५  
कैश्चिद्व्यपगतकर्मकलङ्कोऽप्यसर्वज्ञ इत्येते किञ्चिज्ज्ञत्वात्, तद्वचवच्छेदार्थं कर्मगतिकुशलं सर्वज्ञ-  
त्वाभिधायकं पदमाह, तेन भाववीरं अशेषकन्म<sup>१</sup>षध्वान्तरहितं सर्वज्ञं सर्वदर्शिनमित्यभिहितं  
भवति । ननु किमन्यैः कर्मविपाको नामिहितः येनाभिधीयते भवता कर्मविपाकः ? इत्यत्रोच्यते  
उक्तोऽन्यैः, किन्तु व्यासेन, अत्र तु समासेन । इति गाथासमुदायार्थः ॥ १ ॥

क्रियत इति कर्म, इमां व्युत्पत्तिमाश्रित्य कर्मशब्दप्रवृत्तिः, जीवस्य च कर्मणा सार्द्ध<sup>३</sup>मना- २०  
दिसंयोगोऽभिधीयते तत्कथमिदमविरोधि ? इत्याह—

(पारमा०) तत्र 'वीरमिति' विशेष्यम् । तं 'नत्वा कर्मविपाकं वक्ष्ये' इति संबन्धः ।  
शेषतीर्थकृतामपि भावमङ्गलत्वे साधारणे सत्यासन्नोपकारित्वादस्य नमस्कारः । कीदृशं वीरम् ?  
कर्माण्येव जीवचन्द्रमसः स्वभावशुद्धस्य कलुषत्वापादनेन कलङ्कः, स व्यपगतोऽस्येति व्यपग-  
तकर्मकलङ्कः । एतेन घातिकर्मविलयनप्रतिपादनेन भगवतः स्वस्वरूपापत्तिरुक्ता, अत एव २५  
'कर्मगतिकुशलमिति' विशेषणं सुघटम् । कर्मणां गतिः परिणतिः, तत्र कुशलं विज्ञम् । नहि  
विमलकेवलं विना कोऽपि कर्मगतिं परिच्छेत्तुमलम् । यदुक्तम्—“जीवाण गर्ह कम्माण  
परिणहं पुग्गलाण परिचटो । सुत्तूण जिणं तह जिण-मयं च को जाणिउं तरह” ?  
॥१॥ एवं च शास्त्रादौ भावमङ्गलं नमस्कारं कुर्वता व्याख्याङ्गान्यपि सूचितानि । तथाहि—

१ नामादिवीरप्रसङ्गः जे० । २ षसङ्करहितं जे० । ३ मनादिः सं० जे० ।

( श्रीमत्परमानन्दसूरिविरचितवृत्तिः )

निःशेषकर्मोदयमेघजालमुक्ती दिनाधीश इत्रोप्रतेजाः ।

प्रदर्शिताशेषपदार्थसार्थो, मुदेऽस्तु नः श्रीजिन्वर्द्धमानः ॥१॥

इह हि सन्तः संसारसागरतरणतरणिकल्पं जिनशासनमवाप्य सकलजन्मजीवितसारं परोप-  
कारं मन्यन्ते । म च संसारिणां सकलामङ्गलनिलयकर्मस्वरूपनिरूपणात्तदुन्मूलनप्रवृत्तानां मिद्धो  
भवतीत्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणप्रवृत्तं प्रकरणं चिकीर्षुर्गर्गमहर्षिर्मङ्गलामिवेयमंवन्याभिधानवन्धुरां  
गाथामाह—

ववगायकम्मकलंकं वीरं नमिऊण कम्मगइकुमलं ।

'वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइट्टुं ममासंणं ॥१॥

१०

(पू०) अस्या व्याख्या—सा च संहितादिक्रमेण—“संहिता च पदं चैव, पदार्थः  
पदविग्रहः । चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या तन्त्रस्य षष्ठिवधा” ॥ १ ॥ तत्रास्वलित-  
पदोच्चारणं संहिता । सा चेयम्—व्यपगतकर्मकलङ्कं, वीरं नत्वा कर्मगतिशुशलं । वक्ष्ये  
कर्मविपाकं, गुरूपदिष्टं समासेन । १। पदानि पुनः सैव संहिता विच्छेदेनोच्चार्यमाणा २ ।  
पदार्थस्त्वयम्—वीरं नत्वा वक्ष्ये कर्मविपाकम् . इति क्रियाकारकसंबन्धः । विरजनाद्वीरः । विपूर्व- १५  
स्य 'राजू बोधौ' इत्यस्य घातोः औणादिहृत्प्रत्ययान्तस्य "अन्येषामपि" इति दीर्घत्वे वीर  
इति रूपम् । तस्यार्थः—विराजते शोभते प्रकाशते वा वीरः । 'शूर वीर विक्रान्तौ' इत्यस्य वा ।  
तत्रार्थः—महाविक्रान्तोऽपरवादिशत्रुजयात्, परीषहाद्यक्षोभ्यत्वाद्वा । ईर गतिप्रेरणयोः' इत्यस्य  
वा विपूर्वस्याच्प्रत्यये रूपम् । तस्य पुनरयमर्थः—विशेषेण ईरयति कर्म गमयति याति वा शिवमिति  
कृत्वा वीरः, गौर्णं नाम मगवतः । अर्थव्युत्पत्त्यनुसारेणान्येऽप्यर्थाः सन्ति, अतस्तेऽप्यवबोद्ध- २०  
व्याः । तथा चोक्तम्—“विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते । तपोवीर्येण युक्तश्च.  
तस्माद्वीर इति स्मृतः ॥१॥” “णम् प्रहृत्वे शब्दे [ष]’ इत्यस्य घातोः क्त्वान्तस्य नत्वेति  
रूपम् । 'नत्वा' प्रणम्य “वोच्छं” वक्ष्ये अभिधास्ये, किं श्रुतं वीरम् ? इत्याह—व्यपगतकर्म-  
कलङ्कं' वि-अप-पूर्वस्य गमेः क्तान्तस्य व्यपगतमिति रूपम् । कर्मेव कलङ्कं कर्मकलङ्कम् ।  
यदा प्रथमात्पुरुषस्तदाऽयमर्थः—कलङ्कं दूषणं जीवस्वभावस्य कर्मेवाशुभपरिणामपरिणतं कलङ्कं २५  
कर्मकलङ्कम् । विशब्दो विशेषार्थः, अपशब्दोऽभावार्थः, विशेषेणापगतं कर्मकलङ्कं यस्यासौ  
व्यपगतकर्मकलङ्कोऽन्यपदार्थः, अतस्तम् । यदा पुनर्द्वन्द्वः, कर्म च कलङ्कं च कर्मकलङ्के, तदा  
कर्म ज्ञानावरणीयादि प्रतीतं, कलङ्कं बाह्याभ्यन्तरमेदमिदम् । तत्र बाह्यमकीर्त्यादि, आभ्यन्तर-  
मशुभाध्यवसायादि । ते [ विशेषेण ] अपगते अतीते यस्यासौ व्यपगतकर्मकलङ्कः, अतस्तम् ।

१ वोच्छं जे० । २० न्तः कषायशत्रु० जे० । ३ णम् प्रहृत्वे शब्दे अ-य घातोः जे० । ४ वोच्छं जे० ।

ननु गमेर्गत्यर्थत्वात्कथमभावार्थः स्यात् ? उच्यते, विअपपूर्वो गमिः स्वभावात् अनेकार्थत्वाद्वा  
 घातूनामभावार्थोऽपि दृष्टः । तथा- 'कर्मगतिकुशलं' इति कर्मणां गतिः परिच्छित्तिः, तत्परि  
 णामो वा कर्मगतिः, तत्र कुशलो निपुणः सर्वथा तत्परिच्छेदकः । तं नत्वा वक्ष्ये 'कर्मविपाकं'  
 कर्मणां विपाकोऽनुभवः कर्मविपाकस्तम् । कथंभूतम् ? 'गुरूपदिष्टं' गुरुभिरुपदिष्टो गुरूपदिष्टो  
 गुरुकथितस्तम् । कथं वक्ष्ये ? 'समासेन' संक्षेपेण, इति गाथाऽक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयम्-व्यप-  
 गतकर्मकलङ्ककम्, इत्यनेनापायापगमातिशय उक्तः । वीरं नत्वा, इत्यनेन स्तोतव्यसंपत्पूर्वको  
 नमस्कारोऽभिहितः । कर्मगतिकुशलम्, अनेन तु स्तोतव्यस्यैव ज्ञानातिशयः प्रतिपादितः ।  
 कर्मविपाकम्, इत्यनेन त्वभिधेयम् । गुरूपदिष्टम्, पुनरनेनावयवेन शास्त्रस्य पारतन्व्यमाह  
 गुरुपर्वक्रमलक्षणसंबन्धकम् । समासेन, इत्यनेन पुनः पदेन प्रयोजनाभिधानम्, 'व्यासाभिधा- १०  
 नारसमासाभिधानं प्रयोजनम्' इत्युक्तेः । कर्मविपाकार्थोऽभिधेयः । अभिधानं तु इदमेव  
 प्रकरणम् । अभिधानाभिधेयलक्षणश्च संबन्धः । इति गाथाभावार्थः ३ । पदविग्रहस्तु पदार्थं दर्श-  
 यद्भिर्दर्शित एव ४ । वीरमित्यनेनैव स्तोतव्यसंपदोऽभिहितत्वात् किमर्थं शेषपदोपन्यासः ? इति  
 चालना ५ । प्रत्यवस्थानमाह-वीर इत्येतावन्मात्रे कृते 'नानाविधवीरप्रसङ्गः स्यात् । तद्वद्यु दा-  
 सार्थं व्यपगतकर्मकलङ्कमित्याह, तर्हि व्यपगतकर्मकलङ्कमित्येतदेवास्तु किं शेषपदैः ? इत्यत्राह- १५  
 कैश्चिद्व्यपगतकर्मकलङ्कोऽप्यसर्वज्ञ इष्यते किञ्चिज्ज्ञत्वात्, तद्वथवच्छेदार्थं कर्मगतिकुशलं सर्वज्ञ-  
 त्वाभिधायकं पदमाह, तेन भाववीरं अशेषकल्मषघ्नान्तरहितं सर्वज्ञं सर्वदर्शिनमित्यभिहितं  
 भवति । ननु किमन्यैः कर्मविपाको नामिहितः येनाभिधीयते भवता कर्मविपाकः ? इत्यत्रोच्यते  
 उक्तोऽन्यैः, किन्तु व्यासेन, अत्र तु समासेन । इति गाथासमुदायार्थः ॥ १ ॥

क्रियत इति कर्म, इमां व्युत्पत्तिमाश्रित्य कर्मशब्दप्रवृत्तिः, जीवस्य च कर्मणा सार्द्धं मना- २०  
 दिसंयोगोऽभिधीयते तत्कथमिदमविरोधि ? इत्याह—

(पारमा०) तत्र 'वीरमिति' विशेष्यम् । तं 'नत्वा कर्मविपाकं वक्ष्ये' इति संबन्धः ।  
 शेषतीर्थकृतामपि भावमङ्गलत्वे साधारणे सत्यासन्नोपकारित्वादस्य नमस्कारः । कीदृशं वीरम् ?  
 कर्माण्येव जीवचन्द्रमसः स्वभावशुद्धस्य क्लृप्तत्वापादनेन कलङ्कः, स व्यपगतोऽस्येति व्यपग-  
 तकर्मकलङ्कः । एतेन घातिकर्मविलयनप्रतिपादनेन भगवतः स्वस्वरूपापत्तिरुक्ता, अत एव २५  
 'कर्मगतिकुशलमिति' विशेषणं सुघटम् । कर्मणां गतिः परिणतिः, तत्र कुशलं विज्ञम् । नहि  
 विमलक्रेवलं विना कोऽपि कर्मगतिं परिच्छेत्तुमलम् । यदुक्तम्—“जीवाण गर्ह कम्माण  
 परिणर्ह पुग्गलाण परियट्ठो । सुत्तूण जिणं तह जिण-मयं च को जाणिउं तरह” ?  
 ॥१॥ एवं च शास्त्रादौ भावमङ्गलं नमस्कारं कुर्वता व्याख्याङ्गान्यपि सूचितानि । तथाहि—

कर्मविपाकं वक्ष्ये, इत्यनेनाभिधेयाभिधानम् । गुरुपदिष्टम्, इत्यनेन गुरुपर्वक्रमलक्षणमन्वधा-  
भिधायिना स्वमनीषिकापरिहारोपदर्शनम् । यथा सुधर्मस्वामिना जम्बूस्वामिनः । इत्यादिक्रमेण  
यावन्मद्गुरुणा ममोपदिष्टं, न तु स्वबुद्धिवैभवोद्भावितमिति । 'ममासेन' संक्षेपेण, इत्यनेन  
संक्षेपरुचिश्रोतृप्रवर्तनम् । नमस्कारश्च चतुरतिशयोपेतस्य भवति, तं चेत्यमत्र भावनीयाः ।<sup>५</sup>  
तथाहि—आद्यपदेनापायागमानिशयः प्रतिपादितः । अपायभूतानि हि घातिकर्माणि, तत्रप्रच्ये च  
ज्ञानातिशयोऽवश्यंभावी, स च कर्मगतिकुशलं, इत्यनेनोक्तः । तद्वनश्च प्रायेण वचनातिशयः  
स्फुट एव । एतदुपेतश्च भवत्येव देवदानवमानवमाननीयः, इति वचनातिशयपूजातिशयावाक्षिप्तौ,  
इति चतुरतिशयोपेतत्वम् । इति गाथार्थः ॥१॥

'कर्मविपाक वक्ष्ये' इत्युक्तम्, अतः कर्मणः शब्दव्युत्पत्तिप्रतिपादनपुरःसरं स्वरूपं<sup>१०</sup>  
निरूपयति—

'कीरइ जओ जिणं, मिच्छत्ताईहिं चउगडगणं ।

तेणिह भण्णइ कम्मं अणाइयं तं पत्राहेणं ॥२॥

(पू०) अस्या व्याख्या—'क्रियते' निष्पाद्यते 'यत्तः' यस्मात्कारणात् 'जीवेन'  
प्राणिना, कैः ? 'मिथ्यात्वादिभिः' मिथ्यात्वमादिर्येषां ते मिथ्यात्वादयः । तत्र मिथ्यात्व-<sup>१२</sup>  
मतत्त्वेषु तत्त्वामिनिवेशः । आदिशब्दादविरतिप्रमादकषायाज्ञानादयो गृह्यन्ते । क (केन) क्रियते ?  
'चतुर्गतिगतेन' नारकतिर्यङ्गरामरभवान्तर्गतेन, 'तेन' कारणेन 'इह' प्रवचने लोके वा  
'भण्यते' उच्यते कर्त्तुः । न विद्यते आदिर्यस्य तदनादि, अनाद्येवानादिकम् । स्वार्थं कः ।  
'प्रवाहेण' सन्तत्या एकमवापेक्षया सादि, प्रवाहापेक्षया पुनरनादि । यदि प्रवाहापेक्षयाऽपि  
सादि स्यात्तदा जीवानां पूर्वं कर्मवियुक्तत्वमासीत्, पश्चादकर्मकस्य जीवस्य कर्मणा सह संयोगः<sup>२०</sup>  
सञ्जातः, एवं च सति मृक्तानामपि कर्मयोगः स्यात्, अकर्मकत्वा<sup>३</sup> विशेषत्वात्ततश्च मृक्ता अमृक्ताः  
स्युः । न चेदं कस्यचिदिष्टम्, इष्टौ वा प्रत्यक्षागमविरोधस्तस्मात्स्थितमेतत्—अनादिजीवस्य  
कर्मणा सह संयोगः । नन्वनादिसंयोगे कथं वियोगः कर्मणा जीवस्य स ? उच्यते, अनादि-  
संयोगेऽपि वियोगो दृष्टः, सुवर्णोपलवत् । तथाहि—सुवर्णे पापाणानां यद्यप्य<sup>४</sup>नादिः संयोगस्तथा-  
ऽपि तथाविधनरे(रसे)न्द्रादिसद्भावे धमनादिना किञ्चिवियोगो दृष्टः । एवं जीवस्याप्यनादिकर्म-<sup>२५</sup>  
योगयुक्तस्य ज्ञानदर्शनचारित्र्यनानलादिभिर्वियोगः सिद्धः । इति गाथार्थः ॥२॥

प्रागमिहितस्यैव कर्मणः स्वरूपमेदा<sup>५</sup>नाह—

(पारमा०) 'क्रियते' निष्पाद्यते 'यत्तः' यस्मात् 'जीवेन' प्राणिना 'मिथ्यात्वा-  
दिभिः' मिथ्यात्वाविरतिकपाययोगैः 'चतुर्गतिगतेन' नारकतिर्यङ्गरामरस्थेन । 'तेन'

कारणेन 'इह' ग्रन्थे प्रवचने वा कर्म भण्यते । ननु क्रियत इति कर्त्तुं, इत्यनया व्युत्पत्त्या यादि-  
त्वापत्तिः, ततश्चायमर्थः प्रसजति—यदुत सर्वेऽपि जीवाः पूर्वमकर्माणः सन्तः पश्चात्कर्मणा युज्यन्ते,  
अकर्मणां च कर्मयोगे मुक्तानामपि कर्मयोगः प्राप्नोत्यकर्मत्वाविशेषात्, ततो भुङ्क्ता अयमुक्ताः  
स्युः, इत्युक्तमनादि तत् । नन्वनादित्वेऽङ्गीक्रियमाणे पारिणामिकजीवत्वस्यैव वियोगो न  
प्राप्नोति, इत्यत उक्तम्—'प्रवाहेण' सन्तत्या पितृ (पुत्र) संतानवत् । अनादिर्गपि पितृपुत्रसंतानो  
व्यवच्छिद्यमानो दृष्टः । तथा च सति प्राक्कृतं निर्जरयति विपाकोदयादिभिः, नवीनं चार्जयति  
मिथ्यात्वादिभिः । इति गाथार्थः ॥२॥

संप्रति श्रुकुलितस्यैव कर्मणश्चातूरूप्यमाह—

'तस्स उ चउरो भेया, पगईमाईउ हु'ति नायव्वा ।

मोयगदिट्टु'तेणं, पगईभेओ इमो होइ' ॥३॥

(पू०) व्याख्या—'तस्य तु' पुनः कर्मणः प्राक्प्रतिपादितस्य चत्वारो भेदाः यामान्येन ।  
के ते ? इत्याह—'प्रकृत्यादयः' प्रकृतिरादौ येषां ते प्रकृत्यादयः, आदिशब्दात्स्थित्यनुभाग-  
प्रदेशबन्धा गृह्यन्ते । भवन्ति 'ज्ञातव्याः' अवबोद्धव्याः 'मोदकदृष्टान्तेन' लड्डुकोदाहरणेन,  
तथाहि—लड्डुकस्य प्रकृतिः कणिकागुडादयः १, स्थितिः सप्ताहपचादिका २, अनुभाग इयता  
भागेन कणिका, इयद्भागेन गुडः, इयच्च घृतं, शुण्ठ्यादि चैतत्परिमाणम् ३, प्रदेशो रसवर्ध-  
विपाकः ४ । एवं कर्मणोऽपि, प्रकरणं प्रकृतिः प्रकृष्टा वा कृतिः प्रकृतिर्ज्ञानावरणीयादिलक्षणा  
१ । स्थीयतेऽनयेति स्थितिरुत्कृष्टाद्या २ । अनुरूपो भागः अनुभागः कर्मणामेव विभागेनानु-  
भवनम् ३ । प्रकृष्टो देशः प्रदेशः, तेनानुभवः प्रदेशानुभवो जीवप्रदेशैः कर्मपुद्गलानामनुभवनम् ।  
अयं लड्डुकदृष्टान्तार्थः, अनेन प्रकृतिभेदः 'इमो' अयं वक्ष्यमाणलक्षणः 'शृणुत' आकर्णयत  
युयम् । तस्येति पाठान्तरं वा, तत्र 'तस्य' कर्मणः, शेषं पूर्ववत् । इति गाथार्थः ॥३॥

स च मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतिभेदाद् द्विधा, अत आह—

(पारमा०) 'तस्य' पुनः कर्मणश्चत्वारो 'भेदाः' प्रकाराः प्रकृत्यादयः, मकारोऽलाक्षणिकः,  
प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशलक्षणा भवन्ति ज्ञातव्याः । केन पुनर्निर्देशनेन ? इत्याह—'मोद-  
कदृष्टान्तेन' तथाहि—त्रातापहारिद्रव्यजन्मा मोदकः प्रकृत्या वातमपहरति, पित्तापहर्तृ द्रव्य-  
निष्पन्नः पित्तम्, श्लेष्माणनायकद्रव्यकृतः श्लेष्माणामिति । स्थित्या तु स एव कश्चिद्दिनमेक-  
मत्रतिष्ठते, अन्यस्तु दिनद्वयम्, इतरस्तु दिनत्रयम्, यावन्मासादिकमपि कश्चिद्वतिष्ठते, ततः  
परं विनश्यतीति । अनुभागेनापि स्निग्धमधुरत्वलक्षण्येन स एव कश्चिदेकगुणानुभागः, अपरस्तु  
द्विगुणानुभागः, अन्यस्तु त्रिगुणानुभाग इत्यादि । प्रदेशाः कणिकादिद्रव्यरूपाः, तैः स एव

१ "पि" इत्यपि । ० तस्स उ गाथा । तस्य पुनःकर्मणः जे० । ३ व्याख्याकारेण तु "इमो सुणह" इति  
पाठानुसारेण व्याख्यातम् । ४ यथाहि जे० ।

कश्चिदेकप्रसृतिमानः, अपरस्तु द्वयादिप्रसृतिमान इति । एवं कर्मापि ज्ञानावारकादिपुद्गलैः प्रकृत्या किञ्चिज्ज्ञानमावृणोति, किञ्चिद्दर्शनं किञ्चित्सुखदुःखानुभवं जनयतीत्यादि । स्थित्या तु तदेव किञ्चिच्चित्रशल्सागरोपमकोटीकोट्यादिकालावस्थायि भवति । अनुभूयते तदेव एकस्थानिकद्विस्थानिकत्रिरथानिकचतुःस्थानिकमन्दतीव्रतीव्रतस्तीव्रतमरसयुक्तम् । प्रदेशतस्तु तदेवाल्पबहु-  
प्रदेशनिष्पन्नमिति । यदाह—'स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः, स्थितिः कालावधारणम् । अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो बलसञ्चयः ॥१॥' इति । संप्रति प्रकृतिस्थि-यनुभाग-प्रदेशानामाद्यभेदप्रदर्शनार्थमाह—प्रकृतिभेद एष वक्ष्यमाणो भवति । अयमभिप्रायः—अस्मिन् ग्रन्थे प्रकृतिप्ररूपणैव करिष्यते । इति गाथार्थः ॥३॥

संप्रति मूलोत्तरप्रकृतिसंख्यामाह—

मूलपयडीउ' अट्ट उ, उत्तरपयडीण अट्टवन्नसयं ।

तासिं सभावभेया, हुंति हु भेया इमे सुणह ॥ ४ ॥

(पू०) व्याख्या—मूले प्रकृतयो 'मूलप्रकृतयः' प्रथमा इत्यर्थः । मूलभूता वा प्रकृतयो मूलप्रकृतय आद्या इत्यर्थः । 'अष्ट तु' अष्टैव, न तु नव, नापि सप्त, तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् । उत्तराः प्रकृतय उत्तरप्रकृतयः, तासामुत्तरप्रकृतीनां पुनरष्टपञ्चाशदधिकं शतम्, पूर्वतन-तुशब्दस्यैव विशेषणार्थत्वात् । विशेषणार्थत्वं चानेकार्थत्वादव्ययानाम् । 'तासां' प्रकृतीनां १५ 'स्वभाषभेदात्' धर्मभेदाद्भवन्त्येव भेदाः 'इमे' एते । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । तांश्च वक्ष्यमाणलक्षणान् 'शृणुत' आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥४॥

प्रागभिहितमूलप्रकृतिभेदानाह पठममित्यादिगाथाद्वयेन —

(पारमा०) मूलप्रकृतयोऽष्टौ, उत्तरप्रकृतीनां चाष्टापञ्चाशं शतं भवति । संप्रति भेदसमर्थिकां युक्तिं प्रतिपादयंस्तानेवाह—'तासां' मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतीनां 'स्वभाषभेदात्' स्वरूपवै-  
चित्र्याद्भवन्ति 'भेदाः' प्रकाराः 'एते' अनन्तरग्रन्थेन विवक्षिताः शृणुतेति विलम्बपरिहारार्थम् । इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

वचसः क्रमवर्तित्वात्प्रथमं मूलप्रकृतीः प्रतिपादयति—

पठमं नाणावरणं वीयं पुण दंमणस्स आवरणं ।

तइयं च वेयणीयं, तहा चउत्थं च' मोहणीयं ॥५॥

आऊ नामं गोयं, अट्टमयं अंतराइयं होइ ।

मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ॥ ६ ॥



(पू०) व्याख्या-‘प्रथमं’ आद्यं ‘ज्ञानावरणं’ ज्ञानस्य मतिज्ञानादेर्गवर्णमाच्छादनं क्रियते येन कर्मणा तज्ज्ञानावरणम्, द्वितीयं पुनः ‘दर्शनस्यावरणं’ चतुर्दर्शनादेः स्वरूपतिरोधायकम् । तृतीयं च ‘वेदनीय’ वेद्यते येन सातासातस्वरूपं कर्मणा तद् वेदनीयं भवति । चतुर्थं तु मोहनीयमेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । मोहयतीति कृत्वा मोहनीयम् । इति गाथार्थः ॥ ५ ॥  
 आयुःकर्म पञ्चमं जीवस्य चतुर्पतिः प्रवृत्त्यतिकारणम् । जीवमनेकरूपैरुच्चात्रचैर्नामयतीति कृत्वा नाम, तच्च षष्ठम् । गां वाचं त्रायतीति गोत्रम्, उच्चैर्गोत्रादिमेदभिन्नं सप्तमम् । अष्टमकमन्तरायिकं भवति । अन्तरायं दानादिविघ्नहेतुः कर्म, अन्तराये भवं अन्तरायिकम् । अन्तरायस्वरूपं वाऽन्तरायिकं दानत्वादिमेदभिन्नम् । ‘मूलप्रकृतयः’ आद्यप्रकृतयः ‘एताः’ उक्तलक्षणः । उत्तरप्रकृतयः’ तासामेव मूलप्रकृतीनां भेदान्तराणि किञ्चिद्विशेषकृतानि । ताश्च १० ‘कीर्तयामि’ संशब्दयामि । इति गाथाद्वयार्थः ॥ ६ ॥

उक्ता मूलप्रकृतिभेदाः, साम्प्रतमुत्तरप्रकृतिभेदानाह गाथाद्वयेन—

(पारमा०) प्रथमं ‘ज्ञानावरणं’ ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधः, आविद्यतेऽनेनेत्यावरणम्, मिथ्यात्वादिसचिद्विषयव्यापाराद्गतकर्मवर्णान्तःपाती विशिष्टपृथक्त्वसमूहः । ज्ञानस्यावरणं ज्ञानावरणम् १ । द्वितीयं पुनः १५ ‘दर्शनस्यावरणम्’ दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको बोधः, तस्यावरणं दर्शनावरणम् २ । तृतीयं च ‘वेदनीयं’ वेद्यते आह्लादादिरूपेणालुभूयते यत्तद् वेदनीयम् । यद्यपि च सर्वं कर्म वेद्यते तथाऽपि पङ्कजादिशब्दवत् वेदनीयशब्दस्य रूढिविषयत्वात्सातासातरूपमेव कर्म वेदनीयम्, इत्युच्यते, न शेषम् ३ । तथा चतुर्थं च ‘मोहनीयं’ मोहयति सद्मद्विवेकविकलं करोत्यात्मानमिति प्रवचनीयादित्वात्कर्तव्यनीयः ४ ॥५॥ ‘आयुः’ २० अर्थात्पञ्चमम्, एति गच्छति प्रतिबन्धकर्ता नारकादिक्लृप्ततेर्निष्कमितुमनसो जन्तोर्तियायुः । यद्वा एति गच्छति गत्यन्तरमनेनेत्यायुः ५ । ‘नाम’ अर्थात् षष्ठम्, नामवति गत्यादिपर्यायात्सुम्वनं प्रति प्रवणयति जीवमिति नाम ६ । ‘गोत्रं’ अर्थात्सप्तमम्, गूयते छन्दयते उच्चावचैः शब्दैरात्मा यस्मात्तद् गोत्रम् ७ अष्टमकमन्तरायिकं कर्म भवति । जीवं दानादिकं चान्तरायति, न जीवस्य दानादिकं कर्तुं ददातीत्यन्तरायम्, अन्तरायमेवान्तरायकम् । आर्षत्वाद् १५ यकारस्वेकारः ८ । मूलप्रकृतय एताः । अत्र च ज्ञानदर्शनरूपोऽयमात्मेत्यन्तरङ्गत्वादादेव तदावरणोपादानम् । समानेऽपि चैतदन्तरङ्गत्वे ज्ञानोपयोगे एव सर्वलब्धीनामवाप्तिः । यदुक्तम्—‘सञ्चाओ छञ्चीओ सागरोवडसस्स ।’ इति । अतो ज्ञानस्य प्राधान्यमिति तदावरणस्य प्रथमतः । तदनु दर्शनावरणस्य । ततः केवलिनोऽप्येकविधबन्धकस्य सातवन्धोऽस्तीति व्यापित्वाद् वेदनीयस्य । ततोऽपि प्रायः संसारिणामिष्टानिष्टापचितो रागद्वेषौ, तद्रूपं च मोहनी-

कश्चिदेकप्रसृतिमानः, अपरस्तु द्वयादिप्रसृतिमान इति । एवं कर्मापि ज्ञानावारकादिपुद्गलैः प्रकृत्या किञ्चिज्ज्ञानमावृणोति, किञ्चिदर्शनं किञ्चित्सुखदुःखानुभवं जनयतीत्यादि । स्थित्या तु तदेव किञ्चिन्निशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिकालावस्थायि भवति । अनुभगतस्तु तदेव एकस्थानिकद्विस्थानिकत्रिस्थानिकचतुःस्थानिकमन्दतीव्रतीव्रतस्तीव्रतमरसयुक्तम् । प्रदेशतस्तु तदेवाल्पबहु-<sup>५</sup> प्रदेशनिष्पन्नमिति । यदाह—‘स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः, स्थितिः कालावधारणम् । अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः ॥१॥’ इति । संप्रति प्रकृतिस्थित्यनुभाग-प्रदेशानामाद्यभेदप्रदर्शनार्थमाह—प्रकृतिभेद एष वक्ष्यमाणो भवति । अयमभिप्रायः—अस्मिन् ग्रन्थे प्रकृतिप्ररूपणैव करिष्यते । इति गाथार्थः ॥३॥

संप्रति मूलोत्तरप्रकृतिसंख्यामाह—

मूलपयडीउ<sup>१</sup> अट्ट उ, उत्तरपयडीण अट्टवन्नसयं ।

तासिं सभावभेया, हुंति हु भेया इमे सुणह ॥ ४ ॥

(पू०) व्याख्या—मूले प्रकृतयो ‘मूलप्रकृतयोः’ प्रथमा इत्यर्थः । मूलभूता वा प्रकृतयो मूलप्रकृतय आद्या इत्यर्थः । ‘अष्ट तु’ अष्टैव, न तु नव, नापि सप्त, तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् । उत्तराः प्रकृतय उत्तरप्रकृतयोः, तासांमूलप्रकृतीनां पुनरष्टपञ्चाशदधिकं शतम्, पूर्वतन-तुशब्दस्यैव विशेषणार्थत्वात् । विशेषणार्थत्वं चानेकार्यत्वादव्ययानाम् । ‘तासां’ प्रकृतीनां<sup>१५</sup> ‘स्वभावभेदात्’ धर्मभेदान्भवन्त्येव भेदाः ‘इमे’ एते । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । तांश्च वक्ष्यमाणलक्षणान् ‘शृणुत्’ आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥४॥

प्रागभिहितमूलप्रकृतिभेदानाह पठममित्यादिगाथाद्वयेन<sup>२</sup> —

(पारमा०) मूलप्रकृतयोऽष्टौ, उत्तरप्रकृतीनां चाष्टापञ्चाशं शतं भवति । संप्रति भेदसमर्थिकां युक्तिं प्रतिपादयंस्तानेवाह—‘तासां’ मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतीनां ‘स्वभावभेदात्’ स्वरूपवै-<sup>२०</sup> चित्र्याद्भवन्ति ‘भेदाः’ प्रकाराः ‘एते’ अनन्तरग्रन्थेन विवक्षिताः शृणुतेति विलम्बपरिहारार्थम् । इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

वचसः क्रमवर्तित्वात्प्रथमं मूलप्रकृतीः प्रतिपादयति—

पढमं नाणावरणं बीयं पुण दंमणस्स आवरणं ।

तइयं च वेयणीयं, तहा चउत्थं च<sup>३</sup> मोहणीयं ॥५॥

आऊ नामं गोयं, अट्टमयं अंतराइयं होइ ।

मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ॥ ६ ॥

(५०) व्याख्या-‘प्रथमं’ आद्यं ‘ज्ञानावरणं’ ज्ञानस्य मतिज्ञानादेरावरणमाच्छादनं क्रियते येन कर्मणा तज्ज्ञानावरणम् , द्वितीयं पुनः ‘दर्शनस्यावरणं’ चतुर्दर्शनादः स्वरूपतिगो-  
 धायकम् । तृतीयं च ‘वेदनोय’ वेद्यते येन सातासातस्वरूपं कर्मणा तद् वेदनीयं भवति । चतुर्थं तु मोहनीयमेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । मोहयतीति कृत्वा मोहनीयम् । इति गाथार्थः ॥ ५ ॥  
 आयुःकर्म पञ्चमं जीवस्य चतुर्गतिभ्रवस्थितिकारणम् । जीवमनेकरूपैरुच्चावचैर्नामयतीति कृत्वा नाम, तच्च षष्ठम् । गां वाचं त्रायतीति गोत्रम् , उच्चैर्गोत्रादिभेदभिन्नं सप्तमम् । अष्टमक-  
 मन्तरायिकं भवति । अन्तरायं दानादिविघ्नहेतुः कर्म, अन्तराये भवं अन्तरायिकम् । अन्तरा-  
 यस्वरूपं वाऽन्तरायिकं दानलाभादिभेदभिन्नम् । ‘मूलप्रकृतयः’ आद्यप्रकृतयः ‘एताः’ उक्तल-  
 च्छणाः । उत्तरप्रकृतयः’ तासामेव मूलप्रकृतीनां भेदान्तराणि किञ्चिद्विशेषकृतानि । ताश्च १०  
 ‘कीलंयामि’ संशब्दयामि । इति गाथाद्वयार्थः ॥ ६ ॥

उक्ता मूलप्रकृतिभेदाः, साम्प्रतमुत्तरप्रकृतिभेदानाह गाथाद्वयेन—

(पारमा०) प्रथमं ‘ज्ञानावरणं’ ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्तुनेनेति ज्ञानं सामान्यविशेषा-  
 त्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधः, आव्रियतेऽनेनेत्यावरणम् , मिथ्यात्वादिसचिवजीवव्या-  
 पाराहृतकर्मवर्गणान्तःपाती विशिष्टपुद्गलसमूहः । ज्ञानस्यावरणं ज्ञानावरणम् १ । द्वितीयं पुनः १५  
 ‘दर्शनस्यावरणम्’ दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको  
 बोधः, तस्यावरणं दर्शनावरणम् २ । तृतीयं च ‘वेदनोय’ वेद्यते आह्लादादिरूपेणानुभूयते  
 यत्तद् वेदनीयम् । यद्यपि च सर्वं कर्म वेद्यते तथाऽपि पङ्कजादिशब्दवत् वेदनीयशब्दस्य रूढि-  
 विषयत्वात्सातासातरूपमेव कर्म वेदनीयम् , इत्युच्यते, न शेषम् ३ । तथा चतुर्थं च ‘मोहनोय’  
 मोहयति सदसद्विवेकविकलं करोत्यात्मानमिति प्रवचनीयादित्वात्कर्तर्यनीयः ४ ॥५॥ ‘आयुः’ २०  
 अर्थात्पञ्चमम् , एति गच्छति प्रतिबन्धकर्ता नारकादिकुगतेर्निष्कमितुमनसो जन्तोरित्यायुः ।  
 यद्वा एति गच्छति गत्यन्तरमनेनेत्यायुः ५ । ‘नाम’ अर्थात् षष्ठम् , नामयति गत्यादिपर्याया-  
 नुसवनं प्रति प्रवणयति जीवमिति नाम ६ । ‘गोत्रं’ अर्थात्सप्तमम् , गूयते शब्दयते उच्चावचैः  
 शब्दैरात्मा यस्मात्तद् गोत्रम् ७ अष्टमकमन्तरायिकं कर्म भवति । जीवं दानादिकं चान्तरा  
 एति, न जीवस्य दानादिकं कर्तुं ददातीत्यन्तरायम् , अन्तरायमेवान्तरायकम् । आर्षत्वाद् २५  
 यकारस्येकारः ८ । मूलप्रकृतय एताः । अत्र च ज्ञानदर्शनरूपोऽयमात्मेत्यन्तरङ्गत्वादादा-  
 चेव तदावरणोपादानम् । समानेऽपि चैतदन्तरङ्गत्वे ज्ञानोपयोगे एव सर्वलब्धीनामवाप्तिः । यदु-  
 क्तम्—‘सव्वाओ लब्धीओ सागरोषवत्तस्त ।’ इति । अतो ज्ञानस्य प्राधान्यमिति तदा-  
 वरणस्य प्रथमतः । तदनु दर्शनावरणस्य । ततः केवलिनोऽप्येकविधबन्धकस्य सातबन्धोऽस्तीति  
 व्यापित्वाद् वेदनीयस्य । ततोऽपि प्रायः संसारिणामिष्टानिष्टापचितो रागादेषौ, तद्रूपं च मोहनी-

यमिति तस्य । तन्त्र्यं तत्प्रकर्षापकर्षभावेत्त्वादायुर्वन्धनिवन्धनानां महारम्भपरिग्रहत्वादीनाम् , तदुद्भवं चायुष्कमिति तस्य । तदुदयश्च गत्यादिनामोदयाविनाभावीत्यतो नाम्नः । ततोऽपि च नरकगत्यादिनामोदयमहमाच्येव गोत्रकर्मोदय इति गोत्रस्य । तस्माच्चोच्चनीचभेदभिन्नात्प्रायो दानादिलब्धिभावाभावौ, तयोश्चान्तरायक्षयोदयावन्तरङ्गहेतू, इति तदनन्तरमन्तरायस्येति । ५  
उत्तरप्रकृतिप्रस्तावनायाह—उत्तरप्रकृतीः कीर्तयामि ॥६॥

ताश्चेमाः—

‘पञ्चविह नाणवरणं, नव भेया दंमणम्म दो वेए।

अट्टावीमं मोहे, चत्तारि य आउए हुंति ॥७॥

नामं तिउत्तरमयं, दो गोए अंतराइए पंच ।

एणमि भेयाणं, होइ<sup>१</sup> विवागो इमो सुणह ॥८॥

(पू०) व्याख्या—‘पञ्चविधं’ पञ्चप्रकारं ‘ज्ञानावरणं’ कर्म ज्ञानस्वरूपतिरोधायकम् । ‘नव भेदाः’ नव प्रकाराः ‘दर्शनस्य’ दर्शनावरणकर्मणः । ‘द्वौ भेदौ वेदे’ वेदनीयकर्मणि । अष्टाविंशतिभेदाः ‘मोहे’ मोहनीयकर्मणि । चत्वारश्च ‘आयुष्के’ आयुष्ककर्मणि ‘भवन्ति’ जायन्ते ‘भेदाः’ विशेषाः । लुप्तानुस्वारकारे प्रथमे द्वे पदे आर्षत्वात्प्राकृतत्वाद्वा । १५  
ज्ञानस्य वरणं ज्ञानवरणम्, इति पाठान्तरं<sup>१</sup> वा । एतावत्पाठे सुस्थमेव । इति प्रथमगाथार्थः ॥७॥ द्वितीयगाथामाह<sup>२</sup>—‘नामं’ नामकर्मणि ‘अ्युत्तरं शतं’ त्र्यधिकं शतं भेदानामिति गम्यते । द्वौ भेदौ गोत्रे, अन्तरायिके पञ्च भेदाः । ‘एतेषां भेदानां’ सर्वेषामपि विशेषाणां ‘भवन्ति’ जायन्ते ह्युः पादपूर्णे, ‘भेदाः’ विशेषाः सामान्य स्वरूपविशेषरवरूपनिर्दिष्टाः ‘इमे’ एते ‘शृणुत’ आकर्णयत युयम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥८॥

दृष्टान्तद्वारेणैतेषामेव सामान्यविशेषभेदानां स्वरूपं स्फुटीकुर्वन्माह—

(पारमा०) पञ्चविधज्ञानावरणं, आर्षत्वादाकारलोपः । ‘वरण’ इत्यस्य वाऽऽवरणार्थता । यथा गुरुवरणकमेव तम इत्यत्र । एवमग्रेऽप्यवगन्तव्यम् । नव भेदा दर्शनस्य । द्वौ वेदनीये । अष्टाविंशतिभेदे । चत्वारश्चायुषि भवन्ति ॥७॥ नामकर्मणि अ्युत्तरं शतम् । द्वौ गोत्रे । अन्तरायिके पञ्च । एतेषां भेदानां भवति विपाकः ‘एषः’ अनन्तरगाथया वक्ष्यमाणः । इति गाथा- २५  
द्वयार्थः ॥ ८ ॥

प्रतिज्ञातमाह—

१ पंचविधं गाहा । पञ्चविधं जे० । २ व्याख्याकारेण तु “हुंति हु भेया इमे सुणह” इत्येतत्पाठानु-  
सारेण व्याख्यानम् । ३ आयुष्कर्मणि जे० । ४ वा तस्मिन् पाठे जे० । ५ ०ह-नामे० गाहा । नामे नामकर्मणि  
जे० । ६ अन्यविशेषं ७ । पट० गहा । पटः जे० ।

पटपडिहारसिमजा-हडिचित्तकुलालभंडगारीणं ।

जह एएसिं भावा. 'कम्माण वि जाण तह चैव ॥९॥

(पू०) व्याख्या—पटः=शाटकः, प्रतीहारो=राजदौवारिकः, असिः=हड्गाम्, मद्य=मागवः.

हडिः १पोटकः, चित्रं=चित्रकर्म चित्रकरो वेति, कुलालः=कुम्भकारः, भाण्डागारिको=भाण्डागारे ५ नियुक्तः। पटश्च प्रतीहारश्चासिश्च मद्यं च—मद्यशब्दस्या-ऽऽकारोऽस्लाक्षणिकः प्राकृतत्वान्, हडिश्च 'चित्रं च कुलालश्च भाण्डागारी च द्वन्द्वः (एषां द्वन्द्वस्तेषां)। यथा एतेषां 'भावाः' स्वरूपाणि गर्भार्थाः कर्मणां 'तथा' तेनैव प्रकारेण 'मन्तव्याः' ज्ञातव्याः स्वरूपभेदाः। इति गाथार्थः॥९॥

पटादिदृष्टान्तानेव प्रकटयन्नाह—

(पारमा०) पटप्रतीहारअसिमद्यहडिचित्रमिति सूचनात्सूत्रस्य चित्रकरोऽभिधीयते, कुलाल- १० भाण्डागारिकाणाम्। यथा एतेषां 'भावाः' आवारकादिस्वरूपाणि कर्मणामपि जानीहि तथा चैव। इति गाथार्थः ॥ ९ ॥

संप्रति ज्ञानावरणस्य पटौपम्यं भावयति—

सरउगगयसमिनिम्मल-यरस्स जीवस्स छायाणं जमिह ।

नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥१०॥ १५

(पू०) व्याख्या—शरदि उद्गतः शरदुद्गतः, स चासौ शशी च शरदुद्गतशशी, तस्मान्निर्मल- तरः तस्य, 'जीवस्य' प्राणिनः 'छादनं' स्वभावतिरस्करणं यद् 'इह' लोके तदिह ज्ञानावरणं कर्म भण्यते, तच्च 'पटौपमं' भवति जीवस्य पटतुल्यम्। इति गाथार्थः ॥ १० ॥

ज्ञानावरणस्य पटौपमामभिधाय साम्प्रतं यथा तज्जीवस्य 'छादनं भवति तथा दृष्टान्तेनाह—

(पारमा०) शरदुद्गतशशिनिर्मलतरस्य 'जीवस्य छादनं' जीवस्वभावस्य नैर्मन्यस्य २० तिरोधायकं यत्तद् 'इह' लोके ज्ञानावरणं कर्म पटौपमं भवति। 'एषं' वक्ष्यमाणरीत्या। 'तुः' पुनरर्थे। इति गाथार्थः ॥ १० ॥

ज्ञानावरणस्य पटौपम्यमुक्तम्। सम्प्रति पटस्यावारकत्वमभिधाय ज्ञानावरणे योजयति—

जह निम्मलावि चक्खू, पडेण केणावि छाइया संती ।

मंदं मंदतरागं, पिच्छइ सा निम्मला जइवि ॥११॥ २५

तह महसुयनाणाणं, ओहीमणकेवलाण आवरणं ।

जीवं निम्मलरूवं, आवरइ इमेहि भेएहि ॥१२॥

१ व्याख्याकारेण तु—“कम्माणं तह मुण्येयव्वा” इत्येतत्ताठानुसारेण व्याख्यातम्। २ 'भावा' इत्यपि अत्रचित्। ३ खोटकः, जे०। ४ हडिश्च जे०। ५ छादकं जे०।

(पू०) व्याख्या—यथा 'निर्मलाऽपि' काचकामलादिदोषरहिताऽपि 'चक्षुः' दृष्टिः 'पटेन' वस्त्रेण 'केनापि' अनिर्दिष्टनाम्ना 'लादिना' श्रुतिगता मती मन्दं मन्दतरं पश्यति आवागकविशेषान् । मा निर्मला यद्यपि स्वभावेन । इति गाथार्थः ॥ ११ ॥ उक्तो दृष्टान्तः, दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

तथा मतिश्रुतज्ञानावरणं अवधिमनःकेवलानामावरणं यत्तज्जीवं 'निर्मलरूपं' शुद्धस्वरूपम् ५  
'आवृणोति' च्छादयति 'एभिर्भेदैः' वक्ष्यमाणलक्षणैः । इति गाथार्थः ॥ १२ ॥

मतिज्ञानभेदनिदर्शनद्वारेणावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) यथा निर्मलमपि चक्षुः पटेन 'केनापि' मसृणमसृणतरादिना छादितं सत् मन्दं 'मन्दतरकं' मन्दतरमेव मन्दतरकं पश्यति 'तन्निर्मलं यद्यपि' चक्षुर्हि स्वभावनिर्मलमपि मसृणपटेनाच्छादितं मन्दं पश्यति मसृणतरेण तु मन्दतरमिति । चक्षुःशब्दस्य प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वम् १०  
॥ ११ ॥ तथा मतिश्रुतज्ञानयोर्द्विवचनस्य बहुवचनं प्राकृतत्वात् । अवधिमनःकेवलानां मनःशब्देन मनःपर्यवस्यते, सूचनात्सूत्रस्य, मतिश्रुतज्ञानयोरवधिमनःपर्यवकेवलानां चावरणं तथेति । कोऽर्थः ? यथा यथा मतिज्ञानावरणादीनां निचितत्वं, तथा तथा पटावृतचक्षुष इवाल्पज्ञानं जीवस्य । एतदेवाह—जीवं 'निर्मलरूपं' अकलुषस्वभावमावृणोति 'एभिर्भेदैः' अमिधास्य-  
रानैः । मत्यादिव्युत्पत्तिस्तु व्याख्यानावसरे निरूपयिष्यते । इति गाथाद्वयार्थः ॥ १२ ॥ १५

सम्प्रति मतिज्ञानावरणं सप्रभेदमाह—

अट्टावीसइभेयं, मइनाणं इत्थ वण्णियं समए ।

तं आवरेइ जं तं, मइआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥

(पू०) व्याख्या—अष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानं संख्यया 'अत्र' लोके 'वर्णितं' कथितं 'समये' सिद्धान्ते तद् 'आवृणोति' च्छादयति यत्तन्मत्यावरणं भवति 'प्रथमं' आद्यम् । इति २०  
गाथासमासार्थः । साधार्थस्त्वयम्-यदुक्तमष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानं तत्कथं स्यात् ? उच्यते—आगमा-  
नुसारेण—व्यञ्जनावग्रहः, अर्थावग्रहश्च । तत्र व्यज्यन्ते व्यक्तीक्रियन्ते एभिरर्थाः व्यञ्जनानीन्द्रि-  
याणि तैरवग्रहणमवग्रहः' सामयिकः, सामान्यार्थपरिच्छेदः व्यञ्जनावग्रहः । स च चतुर्विधो  
'नयनमनो'वर्ज्यम्" इति वचनात् । तथाहि—न चक्षुषाऽर्थो व्यज्यते=गम्यते=प्राप्यते, अप्रा-  
प्यकारित्वाच्चक्षुषः । किन्तु योग्यदेशस्थमेव चक्षुर्योग्यदेशस्थमर्थं गृह्णाति साक्षात्करोति, न पुनः २५  
प्राप्य गृह्णाति । प्राप्यग्रहणे चक्षुषः स्फोटादिरनिन्द्रियं चाधिष्ठानं स्यात् । तथा मनोऽप्येवमेव  
द्रष्टव्यम्, तस्याप्यप्राप्यकारित्वात् । अर्थस्यावग्रहणमवग्रहोऽर्थपरिच्छेदः । सोऽपि सामयिक एव ।  
न च पड्विधः, इन्द्रियपञ्चकेन मनसा चार्थग्रहणात् । तदुत्तरकालभाविनी ईहा, ईहनभीहा=चेष्टा  
कायवाङ्मनोलक्षणा । सा तु मौहूर्तिकी षड्विधा । तदनन्तरमपायो निश्चयः । सोऽपि षड्विध

१ हः एकनामयिकः, जे० । २ ०वर्ज्यम् । ३ प्राप्यं जे० । तस्याप्राप्या० जे० ।

एव मौहूर्तिकः । ततो धारणा, 'स्मृतिः कालन्तरेऽर्थस्मरणरूपा अर्थाविच्युतिर्वा, साऽपि पद्धविधा, असंख्यकालिकी मंख्येयकालिकी वा । एवं सर्वेऽपि मिलिताश्चतुर्विंशतिभेदा व्यञ्जनावग्रहचतुर्भेद-सहिता अष्टाविंशतिभेदा मतिज्ञानस्य जायन्ते । एतच्चाष्टाविंशतिभेदभिन्नं मतिज्ञानं येन कर्मणा छाद्यते स्वकार्यजननं प्रति अकिञ्चित्करं क्रियते तन्मतिज्ञानावरणम् । इति गाथाभावार्थः ॥१३॥ ५

उक्तं मतिज्ञानावरणम् । श्रुतज्ञानावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'मन ज्ञाने' मजनं मतिः । यद्वा मन्यते इन्द्रियमनोद्वारेण नियतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनयेति मतिः, योग्यदेशावस्थितवस्तुविषय इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेषः । मति-श्चासौ ज्ञानं च मतिज्ञानम् । तच्चाष्टाविंशतिभेदम् 'अत्र' जैने समये वर्णितम् । तद्यथा—अवग्रह-ईहाऽप्यायो धारणा च । तत्रावग्रहो द्विधा, व्यञ्जनावग्रहोऽर्थावग्रहश्च । तत्र व्यञ्जनावग्रहश्चतु- १० र्मनोवर्जेन्द्रियाणां स्वविषयद्रव्यैः सह संबन्धः, ततश्चतुर्धा नयनमनमोरप्राप्यकारित्वेन विषय-संबन्धाभावादस्य चेन्द्रियत्रिपययोः संबन्धग्राहकत्वादिति भावः । अर्थावग्रहः, किमपीदमित्य-व्यक्तं ज्ञानम् । स च मनःसहितेन्द्रियपञ्चकजन्यत्वात्पोढा । अवगृहीतस्यैव वस्तुनोऽपि किमयं भवेत् ? स्थाणुः पुरुषो वा ?, इत्यादिवस्तुधर्मान्वेषणात्मको वितर्क ईहा । साऽपि मनःपष्टेन्द्रिय-पञ्चकजन्या इत्यतः षोडशैव वस्तुनः स्थाणुरेवायं न पुरुषः, इति निश्चयात्मको बोधोऽप्यायः । १५ अयमपि पूर्ववत्षोडशैव । निश्चितस्यैवाविच्युतवासनात्मकं धरणं धारणा । साऽप्युक्तरीत्या षोडशैव । तदेवमर्थावग्रहादीनां चतुर्णां प्रत्येकं पद्धिवधत्वाच्चतुर्विंशतिः । ततश्च व्यञ्जनावग्रहभेदचतुष्टयेन सहाष्टाविंशतिविधं मतिज्ञानम् । तथा आगमः—“पंचह्रिचि इंदिएहिं, मणसा अत्थोग्गहो मुणेयन्वी । चक्खिंदि यं मणरहियं, वंजणमोहाइयं छच्छा” ॥१॥ इति तदेवमष्टाविंशति-भेदं मतिज्ञानमावृणोति यत्कर्म तदष्टाविंशतिभेदमपि सामान्येन मतिज्ञानावरणं भवति 'प्रथमं' २० आद्यम् । इति गाथार्थः ॥१३॥

अधुना श्रुतज्ञानावरणमाह—

चोदसभोएसु गयं, सुयनाणं इत्थ वणिणयं समए ।

तस्सावरणं जं पुण, सुयआवरणं हवइ बीयं ॥१४॥

(पू०) व्याख्या—चतुर्भिरधिका दश चतुर्दश, ते च ते भेदाश्च चतुर्दशभेदाः, तेषु 'गत' २५ स्थितं 'श्रुतज्ञानं' प्रतीतं 'अत्र' कर्मव्याख्याप्रस्तावे 'वर्णितं' प्रतिपादितम् 'समये' सिद्धान्ते, 'तस्य' श्रुतज्ञानस्य 'आवरणं' छादनं यत्पुनः तच्छ्रुतावरणं भवति द्वितीयमिति गाथाक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयम्—श्रुतज्ञानं चतुर्दशविधं प्रतिपादितं तद्यथा भवति तथा दर्श्यते श्रुतानुसारेण—अक्षररूपं श्रुतमक्षरश्रुतम् ? । तत्प्रतिपक्षोऽनक्षरश्रुतं उच्छ्वसितादि २ । संज्ञिनो

? श्रुतिः जे० । २ तिभेवा जे० । ३ 'मणवच्चं' इत्यपि ।

(पू०) व्याख्या—यथा 'निर्मलाऽपि' काचकामलादिदोषरहिताऽपि 'चक्षुः' दृष्टिः 'पटेन' वस्त्रेण 'केनापि' अनिर्दिष्टनाम्ना 'लादिना' अथगिता सती मन्दं मन्दतरं पश्यति आवारकविशेषान् । मा निर्मला यद्यपि स्वभावेन । इति गाथार्थः ॥ ११ ॥ उक्तो दृष्टान्तः, दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—  
तथा मतिश्रुतज्ञानावरणं अवधिमनःकेवलानामावरणं यत्तज्जीवं 'निर्मलरूपं' शुद्धस्वरूपम् ५  
'आवृणोति' छादयति 'एभिर्भेदैः' वक्ष्यमाणलक्षणैः । इति गाथार्थः ॥ १२ ॥

मतिज्ञानभेदनिदर्शनद्वारेणावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) यथा निर्मलमपि चक्षुः पटेन 'केनापि' मसृणममृणतरादिना छादितं सत् मन्दं 'मन्दतरकं' मन्दतरमेव मन्दतरकं पश्यति 'तन्निर्मलं यद्यपि' चक्षुर्हि स्वभावनिरमलमपि मसृणपटेनाच्छादितं मन्दं पश्यति मसृणतरेण तु मन्दतरमिति । चक्षुःशब्दस्य प्राकृतत्वात्स्वीत्वम् १०  
॥ ११ ॥ तथा मतिश्रुतज्ञानयोर्द्विवचनस्य ब्रह्मवचनं प्राकृतत्वात् । अवधिमनःकेवलानां मनःशब्देन मनःपर्यवमुच्यते, सूचनात्सूत्रस्य, मतिश्रुतज्ञानयोरवधिमनःपर्यवकेवलानां चावरणं तथेति । कोऽर्थः ? यथा यथा मतिज्ञानावरणादीनां निचितत्वं तथा तथा पटावृतचक्षुष इवाल्पज्ञानं जीवस्य । एतदेवाह—जीवं 'निर्मलरूपं' अकलुषस्वभावमावृणोति 'एभिर्भेदैः' अभिधास्य-  
गानैः । मत्यादिव्युत्पत्तिस्तु व्याख्यानावसरे निरूपयिष्यते । इति गाथाद्वयार्थः ॥ १२ ॥ १५

सम्प्रति मतिज्ञानावरणं सप्रभेदमाह—

अट्टावीसहभेयं, महनाणं इत्थ वणिणयं समए ।

तं आवरेइ जं तं, महआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥

(पू०) व्याख्या—अष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानं संख्यया 'अत्र' लोके 'वणिणं' कथितं 'समये' सिद्धान्ते तद् 'आवृणोति' छादयति यत्तन्मत्यावरणं भवति 'प्रथमं' आद्यम् । इति २०  
गाथासमासार्थः । भाषार्थस्त्वयम्-यदुक्तमष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानं तत्कथं स्यात् ? उच्यते—आगमा-  
नुसारेण—व्यञ्जनावग्रहः, अर्थावग्रहश्च । तत्र व्यज्यन्ते व्यक्तीक्रियन्ते एमिरर्थाः व्यञ्जनानीन्द्रि-  
याणि तैरवग्रहणमवग्रहः सामयिकः, सामान्यार्थपरिच्छेदः व्यञ्जनावग्रहः । स च चतुर्विधो  
'नयनमनोवर्ज्यम्' इति वचनात् । तथाहि—न चक्षुषाऽर्थो व्यज्यते=गम्यते=प्राप्यते, अप्रा-  
प्यकारित्वाच्चक्षुषः । किन्तु योग्यदेशस्थमेव चक्षुर्योग्यदेशस्थमर्थं गृह्णाति साक्षात्करोति, न पुनः २५  
प्राप्य गृह्णाति । प्राप्यग्रहणे चक्षुषः स्फोटादिरनिन्द्रियं चाधिष्ठानं स्यात् । तथा मनोऽप्येवमेव  
दृष्टव्यम्, तस्याप्यप्राप्यकारित्वात् । अर्थस्यावग्रहणमवग्रहोऽर्थपरिच्छेदः । सोऽपि सामयिक एव ।  
स च षड्विधः, इन्द्रियपञ्चकेन मनसा चार्थग्रहणात् । तदुत्तरकालभाविनी ईहा, ईहनमीहा=चेष्टा  
कायवाङ्मनोलक्षणा । सा तु मौहूर्तिकी षड्विधा । तदनन्तरमपायो निश्चयः । सोऽपि षड्विध

१ हः एकसामयिकः, जे० । २ वर्ज्यम् । ३ प्राप्यं जे० । तस्याप्राप्या० जे० ।



(पू०) व्याख्या—अनुगमनशीलोऽनुगामी, वर्द्धनशीलो वर्द्धमानः, वर्द्धमान एव वर्द्धमानकः, अत्रार्थे कः । अनुगामी च वर्द्धमानकश्चानुगामिवर्द्धमानकौ, तौ च तौ भेदौ चानुगामिवर्द्धमानक-भेदौ, तां आदिर्येषां भेदानां तेऽनुगामिवर्द्धमानकभेदादयः, तेषु 'वर्णिनः' कथितः 'इह' प्रवचने व्याख्याप्रस्तावे वा । अनुस्वारः प्राकृतत्वात् । 'अवधिः' मर्यादापरिच्छेदलक्षणम् 'आवृणोति' च्छादयति यदपि च कर्म 'अवध्यावरणकं तदपि' अवध्याच्छादकं तदपि ज्ञातव्यमित्यध्याहारः । इति गाथार्थः ॥१५॥

उक्तमवधिज्ञानावरणम् । मनःपर्यवज्ञानावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) अवशब्दोऽवःशब्दार्थः । अव=अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते परिच्छिद्यतेऽने-नेत्यवधिः । यद्वाऽवधि=मर्यादा रूपिद्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलक्षितं ज्ञानमप्य-वधिः । स च अनुगामिवर्द्धमानकभेदादिषु, इति तृतीयार्थे सप्तमी । ततश्चानुगामिवर्द्धमानक-भेदादिभिः 'वर्णिनः' प्रतिपादितः इहेति पूर्ववत् । तदावृणोति यत्कर्म तद् 'अवध्यावरणम्' अवधिज्ञानावरणमिति जानीहि । इति गाथार्थः ॥१७॥

मनःपर्यवज्ञानावरणमाह—

रिउमइविउलम ईहिं, मणषज्जवनाण वण्णणं समए ।

तं आवरियं जेणं, तं पि हु मणपज्जवावरणं ॥१६॥

(पू०) व्याख्या—ऋज्वी मतिर्यस्मिन् तदृजुमति, विपुला मतिर्यस्मिन् तद्विपुलमति । ऋजुमति च विपुलमति च ऋजुमतिविपुलमतिनी ताभ्यां, 'मनःपर्यवज्ञानवर्णनं' मनोगत-भावपरिच्छेदकथनं 'समये' सिद्धान्ते प्रतिपादितं 'तदावृत्तं येन' तदाच्छादितं येन तदपि 'हुः' पादपूरणे, 'मनःपर्यवध्यावरणं' मनोगतभावपरिच्छेदकाच्छादकं जानीहि [इति] क्रिया-ध्याहारः । इति गाथार्थः ॥१६॥

अभिहितं मनःपर्यवज्ञानावरणम् । केवलज्ञानावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) पर्यवति=समन्तादत्रगच्छतीति पर्यवम् । मनसः पर्यवं मनःपर्यवम्; तच्च तज्ज्ञानं च मनःपर्यवज्ञानम्, तस्य वर्णनं=प्रकाशकत्वादिगुणकथनं मनःपर्यवज्ञानवर्णनम्, ऋज्वी मतिरस्येति ऋजुमतिः, विपुला मतिरस्येति विपुलमतिः, ताभ्यां ऋजुमतिविपुलमतिभ्यां कृत्वा 'समये' सिद्धान्ते क्रियत इति शेषः । यत् उक्तं मनःपर्यवज्ञानप्ररूपणायाम्—'तं इविहं तंजहा—उज्जुमई विउलमई अ' इत्यादि । अशेषविशेषास्तु नन्दित एवावसेयाः, संक्षेप मात्रत्वादस्येति । तदावृत्तं येन कर्मणा तज्जानीहि मनःपर्यवज्ञानावरणम् । इति गाथार्थः ॥१॥

१ "ईहि य" इत्यपि पाठः । २ "वण्णणं" इत्यपि पाठः । ३ 'तं पुण' इत्यपि ४ नःपर्यवज्ञानावरणं-जे० ५ परिच्छेदाच्छादकं जे० ।

मनोयुक्तस्य श्रुतं संज्ञिश्रुतम् ३ । तद्विपरीतमसंज्ञिश्रुतम् ४ । सम्यग्=विपरीतं श्रुतं मम्यक्श्रुतम् , मम्यग्दृष्टेर्वा यच्छ्रुतं तत्सम्यक्श्रुतम् ५ । तद्विपरीतं मिथ्याश्रुतम् ६ । सादि, आदियुक्तं श्रुतं मादिश्रुतम् , । 'अनादिश्रुतं, अविद्यमानादि श्रुतमनादिश्रुतम्' ८ । सह पर्यवसानेन वर्तते यत्तत्सपर्यवसितम् ९ । तद्विपरीतं त्वपर्यवसितम् १० । गमाः सदृशपाठविशेषाः, ते विद्यन्ते यस्य तत्र वा भवं तद्रमिकम् ११ । तत्प्रतिपक्षस्त्वगामिकम् १२ । अङ्गप्रविष्टं अङ्गश्रुतम् १३ । तद्विपरीतं त्वनङ्गश्रुतम् १४ । एवंभूतमिदं श्रुतज्ञानमावृणोति=च्छादयति यज्ज्ञानं तच्छ्रुतज्ञानावरणम् । इति गाथाभावार्थः ॥१४॥

अवधिज्ञानावरणस्वरूपमेदाभाह—

(पारमा०) श्रवणं श्रुतम्, अभिलाषावितार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषः । एवमाकारं वस्तु १० वदशब्दामिलाप्यं जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थम्, इत्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारण-समानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमनिशेष इत्यर्थः । श्रुतं च तज्ज्ञानं च श्रुतज्ञानं चतुर्दशभेदेषु गतम्, इति द्वितीयार्थे सप्तमी । ततश्चतुर्दशभेदान् प्राप्तं चतुर्दशभेदमिति यावत् । ते चामी-अक्षरश्रुतं, अक्षरश्रवणदर्शनादेरर्थप्रतीतिः १ । अनक्षरश्रुतं, सेण्डितादिश्रवणान्मामाह्वयतीत्यादिरूपाभिप्रायपरिज्ञानम् २ । समनस्कस्य मनोयुक्तेन्द्रिय-जमुक्तरूपं श्रुतं संज्ञिश्रुतम् ३ । तदेवामनस्कस्य मनोरहितेन्द्रियजमसंज्ञिश्रुतम् ४ । सम्यग्दृष्टे-जिनप्रणीतमितरद्वा श्रुतं यथास्वरूपागमात् सम्यक्श्रुतम् ५ । तदेव मिथ्यादृष्टेरन्यथावगमा-न्मिथ्याश्रुतम् ६ । सादिश्रुतं, ज्ञानात्मकं सम्यग्दृष्टेरज्ञानात्मकं वा सम्यक्त्वच्युतस्य मिथ्यादृष्टेः ७ पूर्वमलब्धसम्यक्त्वस्य तु तदेवानादिश्रुतम् । ८ सपर्यवसितं भव्यानां केवलोत्पत्तौ ध्रुवं पर्यवसा-नात् ९ । अपर्यवसितमभव्यानां केवलोत्पादाभावात् १० । अर्थभेदे सदृशालापकं गामिकम् ११ । २० इतरदगामिकम् १२ । अङ्गप्रविष्टमाचाराद्यङ्गानि १३ । अनङ्गप्रविष्टं, शेषं प्रकीर्णकादि १४ । एवं चतुर्दशभेदं श्रुतज्ञानम् 'अत्र' जैनसमये 'वर्णितं' कथितम् । स चायम्—'अक्षरसन्नो सम्मं, सार्ह्यं खलु सपञ्चसिद्यं च । गमियं अङ्गप्रविष्टं, ससवि एए सपञ्चिवक्त्वा ॥१॥' इति । तस्यावरणं यत्पुनस्तत् 'श्रुतज्ञानावरणम्' इति श्रुतज्ञानावरणं भवति द्वितीयम् । इति गाथार्थः ॥१४॥

२५

इदानीमवधिज्ञानावरणमाह—

अणुगामिवड्ढमाणय-भेयाइसु वण्णिओ इहं ओही ।

तं आवरेइ जं तं, अवहीआवरणयं जाण ॥१५॥

१ अनादि, अधिद्य० जे० । २ "जं पि य ओहीआवरणयं तं पि" इत्येतत्पाठमनुसृत्य व्याख्याकारेण व्याख्यातम् ।

दंमणमीले जीवे, दंमणघायं करेइ जं कम्मं ।

तं पडिहारसमाणं, दंमणवरणं भवे वीयं ॥१९॥

व्याख्या—'दर्शनशीले' दर्शनस्वभावे 'जीवे' प्राणिनि 'दर्शनघातं' दर्शनहननं 'करोति' विदधाति 'यत्' कर्म तत् 'प्रतीहारसमानं' प्रतीहारतुल्यं 'दर्शनावरणं' दर्शनच्छादनं 'भवति' जायते जीवस्य । इति गाथार्थः ॥१९॥

दृष्टान्तमाह—

(पारमा०) दर्शनं शीलं स्वभावो यस्य स तथा 'दर्शनशील' इति पट्टीसप्तम्योरर्थं प्रत्यभेदादर्शनशीलस्य जीवस्येत्यर्थः । एवमन्यत्रापि भावनीयम् । दर्शनघातं करोति यत्कर्म तत्प्रतीहारसमानं दर्शनावरणं भवेद् द्वितीयम् । इति गाथार्थः ॥१९॥

१०

प्रतीहारसाम्यं च तद्भ्रमविगमे सुज्ञानम्, अतस्तत्स्वरूपं दृष्टान्तेनाह—

जह रण्णो पडिहारो. अणभिप्पेयस्स सो उ लोयस्स ।

रण्णो तहि दरिसावं. न देइ दद्दुं पि कामस्स ॥२०॥

व्याख्या—यथा 'राज्ञः' भूपतेः 'प्रतीहारः' राजदौवारिकः 'अनभिप्रेतस्य' अनभीष्टस्य 'स तु' स एव दौवारिको लोकस्य' प्राणिसमूहस्य 'राज्ञः' भूमृतः 'तत्र' तस्मिन् स्थाने 'दर्शनं' गह्वो निरीक्षणं 'न ददाति' न प्रयच्छति 'द्रष्टुकामस्याऽपि' दर्शनाभिलाषिणोऽपि । राजा ह्येवं मन्यते यद्यहं मेतं लोकं पश्यामि, लोकोऽप्येवमिच्छति यदि राज्ञा सह दर्शनं भवति तदा शोभनं भवति, निषेधकेन तथाऽपि प्रतीहारवैगुण्येन तद्दर्शनं न सम्पद्यते । इति गाथार्थः ॥२०॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथेति दृष्टान्तोपन्यासे सशब्दोऽप्रेतनोऽत्र योज्यते । ततो यथा स असिद्धो राज्ञः प्रतीहारोऽनभिप्रेतस्य लोकस्य 'तुः' एवकारार्थे भिन्नक्रमश्च योक्ष्यते 'राज्ञः' प्रतीतस्य 'तत्र' राजकुलादौ 'दर्शयि' दर्शनं दर्शयः, अवनभावो दर्शयः आवो दर्शयः दर्शनप्रतीतिः, तां न ददात्येव द्रष्टुकामस्यापि राज्ञः राजा ह्येवं चिन्तयति यद्यहमेतं जनं निरन्तरमेवावलोकये । प्रतीहारस्त्वभिभरादिभयमुद्भाव्यान्तरायीभवति । इति गाथार्थः ॥२०॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

२५

१ "दर्शनशीलो दर्शनस्वभावो जीवः प्राणी" इत्यपि पाठः । २ "प्रतीहारो दौवारिकस्तस्य समानं दर्शनावरणं, द्वितीयं भवति" इत्येवंरूपोऽपि पाठो दृश्यते । ३ दर्शनावरणं दर्शनाच्छादनं जे० । ४ "भ्रम-मेवार्थं माधयति—" इत्यपि ॥ ५ ०मेनं जे० ।

केवलज्ञानावरणमाह—

लोयालोगएसुं, भावेसुं जं गयं महाविमलं ।

तं आवरियं जेणं, केवलआवरणयं तं पि ॥१७॥

व्याख्या—लोकश्चतुर्दशरज्ज्वात्मको धर्मास्तिकायादियुक्तः, अलोकस्तु धर्मास्तिकायादि-  
वियुक्तः लोकश्चालोकश्च लोकालोकौ, तयोर्गता लोकालोकगताः, तेषु 'भावेषु' पदार्थेषु  
'यद्गतं' यद्गन्तं, महश्च तद्विमलं च 'महाविमलं' बृहदमलं तद् 'आवृतं' स्थगितं 'येन'  
कर्मणा 'केवलावरणकं तदपि' केवलाच्छादकं तदपि मन्तव्यमिति क्रियाध्याहारः । इति  
गाथार्थः ॥१७॥

मतिज्ञानाध्यावरणं निगमयन् दर्शनावरणस्वरूपमाह—

१०

(पारमा०) लोकालोकगतेषु 'भावेषु' जीवाजीवादिषु 'यद्गतं' स्थितं अनन्तत्वात् ।  
ननु चालोके किमनेन गतेन ? तत्र जीवाजीवादिपरिच्छेधाभावात्, नैवम्, अजीवस्यालोका-  
काशस्य विद्यमानत्वात् । तथा चोक्तम्—“लोकालोकव्यापकमाकाशम्” इति । “महा-  
विमलं” अतिशुद्धं तदावरणमलकलङ्कापगमात्, तत्केवलज्ञानं 'आवृतं' आच्छादितं 'येन'  
कर्मणा तत्पुनः 'केवलावरणम्' सूचकत्वात्सूत्रस्य केवलज्ञानावरणम् । इति गाथार्थः ॥१७॥ १५

ज्ञानावरणं निगमयन् दर्शनावरणप्रस्तावनामाह—

एवं पंचवियर्ष्यं, नाणावरणं ममासओ भणियं ।

वीयं दंसणवरणं, नवभेदं भण्णए सुणह ॥१८॥

(पू०) व्याख्या—'एवं' उक्तप्रकारेण 'पञ्चविकल्पं' पञ्चप्रकारं ज्ञानावरणं कर्म 'समा-  
सतः' संक्षेपतो 'भणितं' प्रतिपादितम् । द्वितीयं दर्शनावरणं कर्म, तच्च 'नवभेदं' नवप्रकारं २०  
'भण्यते' उच्यते, 'दृणुत' आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥१८॥

दर्शनावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'एवं' उक्ताप्रकारेण 'पञ्चविकल्पं' पञ्चभेदं ज्ञानावरणं कर्म 'समासतः'  
संक्षेपतो 'भणितं' प्रतिपादितम् । द्वितीयं दर्शनावरणं 'नवभेदं' नवप्रकारं भण्यते, दृणुत ।  
इति गाथार्थः ॥१८॥ २५

मंप्रति दर्शनावरणम्य पूर्वोद्दिष्टं प्रतीहारसाम्यमाह—

दंमणमीले जीवे, दंमणघायं करेइ जं कम्मं ।

तं पडिहारसमाणं, दंमणवरणं भवे वीयं ॥१९॥

व्याख्या—<sup>१</sup> 'दर्शनशीले' दर्शनस्वभावे 'जीवे' प्राणिनि 'दर्शनघातं' दर्शनहननं 'करोति' विदधाति 'यत्' कर्म तत् <sup>२</sup> 'प्रतीहारसमानं' प्रतीहारतुल्यं 'दर्शनावरणं' दर्शनच्छादनं <sup>५</sup> 'भवति' जायते जीवस्य । इति गाथार्थः ॥१९॥

<sup>७</sup>दृष्टान्तमाह—

(पारमा०) दर्शनं शीलं स्वभावो यस्य स तथा 'दर्शनशील' इति पृष्ठीसप्तम्योरर्थं प्रत्य-  
भेदाद्दर्शनशीलस्य जीवस्येत्यर्थः । एवमन्यत्रापि भावनीयम् । दर्शनघातं करोति यत्कर्म तत्प्रती-  
हारसमानं दर्शनावरणं भवेद् द्वितीयम् । इति गाथार्थः ॥१९॥

१०

प्रतीहारसाम्यं च तद्वर्मावगमे सुज्ञानम्, अतस्तत्स्वरूपं दृष्टान्तेनाह—

जह रण्णो पडिहारो. अणभिप्पेयस्स सो उ लोयस्स ।

रण्णो तहि दरिसावं. न देइ दड्ढुं पि कामस्स ॥२०॥

व्याख्या—यथा 'राज्ञः' भूपतेः 'प्रतीहारः' राजदौवारिकः 'अनभिप्रेतस्य' अनभीष्टस्य  
'स तु' स एव दौवारिको लोकस्य प्राणिसमूहस्य 'राज्ञः' भूमृतः 'तत्र' तस्मिन् स्थाने 'दर्शनं' <sup>१५</sup>  
राज्ञो निरीक्षणं 'न ददाति' न प्रयच्छति 'द्रष्टुकामस्याऽपि' दर्शनाभिलाषिणोऽपि । राजा  
ह्येवं मन्यते यद्यहमेतं लोकं पश्यामि, लोकोऽप्येवमिच्छति यदि राज्ञा सह दर्शनं भवति तदा  
शोभनं भवति, निषेधकेन तथाऽपि प्रतीहारवैगुण्येन तद्दर्शनं न सम्पद्यते । इति गाथार्थः ॥२०॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथेति दृष्टान्तोपन्यासे सशब्दोऽप्रेतनोऽत्र योज्यते । ततो यथा स श्रिसिद्धो <sup>२०</sup>  
राज्ञः प्रतीहारोऽनभिप्रेतस्य लोकस्य 'तुः' एवकारार्थे भिन्नक्रमश्च योक्ष्यते 'राज्ञः' प्रतीतस्य  
'तत्र' राजकुलादौ 'दर्शाव' दर्शनं दर्शः, अवनभावो दर्शो आवो दर्शावो दर्शनप्रतीतिः, तां न  
ददात्येव द्रष्टुकामस्यापि राज्ञः राजा ह्येवं चिन्तयति यद्यहमेतं जनं निरन्तरमेवावलोकये ।  
प्रतीहारस्त्वभिमरादिभयमुद्भान्वान्तरायीभवति । इति गाथार्थः ॥२०॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

२५

१ "दर्शनशीलो दर्शनस्वभावो जीवः प्राणी" इत्यपि पाठः । २ "प्रतीहारो दौवारिकस्तस्य समानं दर्शनावरणं, द्वितीयं भवति" इत्येवंरूपोऽपि पाठो दृश्यते । ३ दर्शनवरणं दर्शनाच्छादनं जे० । ४ "अमु-  
मेवार्थं भाषयति—" इत्यपि ॥ ५ ०मेनं जे० ।

जह राया तह जीवो, पडिहारसमं तु दंसणावरणं ।  
तेणिह विवंधणं, न पिच्छए सो घडाईयं ॥२१॥

व्याख्या—यथा राजा तथा जीवः 'प्रतीहारसमं तु' प्रतीहारतुल्यं तु दर्शनावरणं कर्म 'तेन' दर्शनावरणेन 'इह' लोके 'विबन्धकेन' [प्रतिकूलेन] 'न प्रेक्षते' न पश्यति स घटा-<sup>५</sup>दिकं लोककल्पम् । आदिशब्दाज्जीवादितत्त्वम् । इति सूत्रार्थः ॥२१॥

दर्शनावर्णायस्य भेदानाह—

(पारमा०) यथा राजा तथा जीवः, राजस्थानीयो जीव इत्यर्थः । प्रतीहारसमं दर्शनावरणं कर्म तेन 'इह' संसारे 'विबन्धकेन' अननुकूलेन न प्रेक्षते 'सः' जीवो घटादिकम् । अयमाशयः—यथा राजा प्रतीहारेणाऽननुकूलेन दिदृक्षितमपि लोकं न पश्यति, तथा राजस्थानीयो<sup>१०</sup> जीवः प्रतीहारस्थानीयेन दर्शनावरणेनाऽननुकूलेन लोकस्थानीयं घटपटादिवस्तु न पश्यति । इति गाथार्थः ॥२१॥

उक्तः पूर्वोद्दिष्टः प्रतीहारदृष्टान्तः, दर्शनावरणस्य सम्प्रति नवविधत्वं गाथापूर्वाद्धेनाह—

निहापणगं तत्थ उ, चउ भेया दंसणस्स आवरणे ।

(पू०) व्याख्या—निद्रापञ्चकं, 'तत्र तु' दर्शनावरणे चत्वारो भेदाः, दर्शनस्य संबन्धिनि<sup>५</sup> 'आवरणे' छादने ॥

दर्शनावरणभेदानभिधाय निद्रादिलक्षणमाह—

(पारमा०) 'निद्रापञ्चकम्' निद्रा—निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानद्धिलक्षणम् । 'तत्र' दर्शनावरणकर्मणि 'चत्वारो भेदाः' चक्षुर्दर्शनावरण-अचक्षुर्दर्शनावरण-अवधिदर्शनावरण-केवलदर्शनावरणलक्षणाः, दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं तस्य आवरण इति दर्शनावरणकर्मणो भेदान-<sup>२०</sup>भिधाय सार्द्धगाथाद्वयेन निद्रापञ्चकं तावद्व्याचष्टे—

सुहपडिवोहो निहा, वीया पुण 'निहनिहा य ॥२२॥

सा ढुकखवोहणीया, पयला पुण जा ठियस्स उद्धाइ ।

पयलापयल चउत्थी तीए उदओ उ चंक्रमणे ॥२३॥

थीणद्धी पुण दिणचिं-तियस्स अत्थस्स साहणी पायं ।

मा संकिलिडुकम्मस्स उदयओ होइ नियमेणं ॥२४॥

व्याख्या—‘सुखप्रतिबोधो निद्रा’ प्रसुप्तः सन् सुखेनैव यस्यां प्रबोधं गच्छति सा निद्रा । द्वितीया पुनर्निद्रानिद्रा च भवति ज्ञातव्या । इति गाथार्थः ॥२२॥ द्वितीयनिद्रालक्षण-  
माह—तस्या उदये दुःखेन बोध्यते प्रसुप्तः सन् । प्रकर्षेण चलनं यस्यां सा ‘प्रचला’ सा पुनः  
का ? या ‘स्थितस्य’ अवस्थितस्यावस्थितवतः ‘उद्भावति’ उद्गच्छति उत्पद्यते उद्भवतीत्यर्थः ।  
प्रचलाप्रचला चतुर्थी निद्रा, तस्याश्चोदयः ‘चङ्कमणे’ गमने भवति, यस्या ‘उदयेन पुनः  
पुनः प्रचलनं भवति, सा च प्रचलाप्रचलोच्यते । इति गाथार्थः ॥२३॥ स्त्यानद्विस्वरूपमाह—  
‘स्त्यानं कठिनीभूतमृद्धि चित्तं यस्यां सा ‘स्त्यानद्विः’ सा पुनः ‘दिनचिन्तितस्य’ दिवसध्या-  
तस्य ‘धर्थस्य’ प्रयोजनस्य ‘साधनी’ निष्पादनी ‘प्रायः’ बाहुल्येन । अनुस्वारः प्राकृतत्वात् ।  
सा संक्लिष्टस्याशुभस्य कर्मणः ‘उदयतः’ प्रादुर्भावात् ‘भवति’ जायते ‘नियमेन’ अवश्यं- १०  
तया । इति गाथार्थः ॥२४॥

निद्रापञ्चकं निगमयन् चक्षुर्दर्शनावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) सुखेन प्रतिबोधो जागरणं यस्मिन् स्वापे स सुखप्रतिबोधः=नखच्छोटिकामात्रेण  
जागरणं, स च निद्रा=नितरां द्राति=कुत्सितत्वं=अविस्पष्टत्वं गच्छति चैतन्यमनयेति । द्वितीया  
पुनर्निद्रा निद्रातोऽतिशायिनी निद्रा निद्रानिद्रा । मयूरन्वयंसकादित्वात्नमच्यपदलोपी समासः १५  
॥२२॥ दुःखेन बोलनादिमिर्बोध्यते यस्यां सा दुःखबोधनीया । अत एव सुखप्रतिबोधनिद्रातो-  
ऽतिशायित्वम् । प्रचलति घूर्णतेऽस्यामिति ‘प्रचला’ पुनर्या ‘स्थितस्य’ उपविष्टस्य ऊर्ध्वस्थस्य  
वा ‘उद्भावति’ प्रावन्त्येनायाति न तु गतिमतः । प्रचलातोऽतिशायिनी प्रचला प्रचलाप्रचला  
चतुर्थी, तस्या उदयश्चङ्कमणे । अत एव स्थानस्थितस्वप्नमवप्रचलातोऽतिशायित्वम् ॥२३॥  
स्त्याना पिण्डीभूता ऋद्धिः आत्मनः शक्तिरूपा यस्यां स्वापावस्थायां सा ‘स्त्यानद्विः’ सा च २०  
पुनर्दिनचिन्तितस्या-ऽर्थस्य साधनी प्रायः । श्रूयते च सिद्धान्ते—यथा कोऽपि लुप्तको दिवा द्विर-  
दखलीकृतस्तस्मिन् बद्धामिनिवेशे रजन्यां रत्यानद्भ्यु दयावेशादुत्थाय तदन्तमृगलपुगलमुत्पाठ्यो-  
पाश्रयद्वारि विहाय पुनः सुप्त इत्यादि । सा संक्लिष्टकर्मण उदयाद्भवति ‘नियमेन’ अवश्यं,  
ततो नरकगमनात् । इति सार्द्धगाथाद्वयार्थः ॥२४॥

निद्रापञ्चकं निगमयन् चक्षुर्दर्शनावरणमाह—

१५

निद्रापणं एयं, चक्षु आवरह चक्षुआवरणं ।  
सेसिदियआवरणं, होइ अचक्षुस्स आवरणं ॥२५॥

व्याख्या—निद्रापञ्चकमेतदुक्तस्वरूपम् । चक्षुष आवरणं चक्षुरावरणं, चक्षुर्दर्शनावरणमिति दर्शनशब्दोऽत्र द्रष्टव्यः, यत्कर्म चक्षुर्दर्शनं छादयति तच्चक्षुरावरणमुच्यते । शेषेन्द्रियाणामावरणं शेषेन्द्रियावरणम्, अतस्तेषां घ्राणरसनस्पर्शनश्रवणमनसामावरणं छादनं भवत्यचक्षुषः 'आवरणं स्थगनम् । इति गाथार्थः ॥२५॥

उक्तं चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणम् । साम्प्रतमवधिदर्शनावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) निद्रापञ्चकमेतत् पूर्वोक्तम् । एतच्च सूत्रकृता क्रमेण नोक्तम् । क्रमश्चैवम्—निद्रा प्रचला निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानद्विरेति । यथोत्तरं विपाकाधिक्यात् ॥ तथा च सति स्त्याद्वित्रिरुमित्युक्ते स्त्यानद्विमहचरितं निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानद्विलक्षणं प्रबलविपाकं निद्रात्रिकं परिगृह्यते । आगमेऽप्येवमेवासां क्रमः । तथाहि—“निद्रा तद्देव पयला निद्रानिद्रा १० य पयलपयला य । तस्यो य थोणगिद्धी, उ पंषमा होइ नायच्वा ॥१॥” अत्र तूत्क्रमाभिधानमत्रानुपूर्व्यपि व्याख्याङ्गमिति न दोषः । चक्षुरिति चक्षुर्दर्शनं, तद् 'आवृणोति' आच्छादयतीति चक्षुर्दर्शनावरणम् । शेषेन्द्रियमिति शेषेन्द्रियदर्शनम् । शेषाणि स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रमनांसि तेषामावरणं भवति 'अचक्षुरावरणं' अचक्षुर्दर्शनावरणम् । इति गाथार्थः ॥२५॥

अवधिदर्शनावरणकेवलदर्शनावरणे व्याचिख्यासुराह—

सामन्नवओगं जं, वरेइ तं ओहिदंसणावरणं ।

केवलसामन्नं जं, वरेइ तं केवलस्स भवे ॥२६॥

व्याख्या—उपयुज्यतेऽसावित्युपयोगः, सामान्यश्चासावुपयोगश्च सामान्योपयोगोऽववेरिति गम्यते । तं 'सामान्योपयोगं' सामान्यपरिच्छेदं यद् 'वृणोति' छादयति कर्म तद् 'अवधिदर्शनावरणं' अवधिसामान्यावबोधावरणं भवेदिति संबन्धः । 'केवलसामान्यं' केवलदर्शनं २० 'वृणोति' छादयति यत्कर्म तद् 'केवलस्य' केवलदर्शनस्यावरणं 'भवेत्' भवति जायते । इति गाथार्थः ॥२६॥

उक्तं द्वितीयकर्म, तृतीयमाह—

(पारमा०) सामान्यमविशेषग्राहि रूपिद्रव्याणामिति गम्यते, रूपिद्रव्यसामान्यमित्यर्थः । तस्योपयोगो रूपिद्रव्यसामान्यग्रहणमिति यावत् । तत् कर्मभूतं यदावृणोति तदवधिदर्शनावरणम् । केवलस्यक्तरूपस्यो सामान्यं सकलजगद्भावविस्तृतोमग्रहणरूपं केवलदर्शनमित्यर्थः । यद् 'वृणोति' आच्छादयति तद् 'केवलस्य' इति केवलदर्शनस्य भवेदावरणमिति संबन्धः । इति गाथार्थः ॥२६॥



अत्रधि-केवलदर्शनावरणस्वरूपं वेदनीयद्वयस्वरूपञ्च ।

दर्शनावरणं निगमयन् वेदनीयप्रस्तावनायाह—

भणियं दंसणवरणं, तइयं कम्मं तु होइ वेयणियं  
तं अमिधारामरिसं जह होइ तहा निगामेह ॥२७॥

व्याख्या 'भणितं' उक्तं 'दर्शनावरणं' कर्म । तृतीयं कर्म 'तु' पुनः 'भवति' जायते ५  
वेदनीयं तत्- 'असिधारासदृशं' खङ्गधारातुल्यं 'यथा' येन प्रकारेण भवति 'तथा' तेन  
प्रकारेण 'निशमयत' आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥२७॥ दृष्टान्तेन स्वरूपं प्रकटयन्नाह-  
(पारमा०) भणितं दर्शनावरणं द्वितीयं कर्मेत्यर्थाद्रम्यते । तृतीयं कर्म पुनर्भवति वेदनीयं  
तदसिधारासदृशं यथा भवति तथा निशमयत । इति गाथार्थः ॥२८॥

मधुलिप्तनिमित्तकरवा-लधारजीहाइ 'जारिसं लिहणं ।  
तारिसयं वेयणियं सुहदुहउप्पायगं मुणह ॥२८॥

व्याख्या-मधुना लिप्तं मधुलिप्तं, तच्चतन्निश्चितकरवालं च मधुलिप्तनिश्चितकरवालम्,  
तस्य धारा मधुलिप्तनिश्चितकरवालधारा तस्याः जिह्वया यादृशं लेहनं, य इव दृश्यते 'यादृशः'  
शब्दन्त उपमानभूतः, तल्लेहनमास्वादनं, स इव दृश्यते तादृशः, तादृश एव तादृशकः कश्चन्तः ।  
अतस्तद् 'वेदनीयं' कर्म वेदनस्वरूपं सुखदुःखोत्पादकं 'मुणह' जानीत 'लिप्तं' दिग्धं १५  
'निश्चितं' तीक्ष्णम् । इति गाथार्थः ॥२८॥

वेदनीयस्य दृष्टान्तद्वारेण स्वरूपमाह—

(पारमा०) मधुना-क्षौद्रभ्रामरादिना लिप्तः=उपदिग्धो निश्चितः=तीक्ष्णः, स चासौ  
करवालश्च मधुलिप्तनिश्चितकरवालः, तद्वाराया जिह्वया यादृशं लेहनं तादृशं 'वेदनीयं' सुख-  
दुःखोत्पादकं जानीत । 'शो जाणमुणौ' (८-३-७) इति प्राकृते आदेशविधानात् 'मुणह' इति २५  
सिद्धयति । इति गाथार्थः ॥२८॥

सुखदुःखोत्पादकत्वमेव भावयति—

महुआसायणसरिसो, सायावेयस्स होइ हु विवागो ।  
जं असिणा तहि छिज्जइ, सो उ विवागो असायस्स ॥२९॥

व्याख्या-मधु भ्रमरीरसः शर्करादि वा, तस्यास्वादनं 'लेहनं', तेन सदृशस्तेन तुल्यः २५  
'सायावेयस्स' सातावेदनीयस्यैव सुखानुभवरूपस्य भवति 'विपाकः' अनुभवः । हुशब्दस्यै-

१ व्याख्याकारेण- "जारिसयलिहणम्" इत्येतत्पाठानुसारेण व्याख्यातम् ॥ 'जारिसं लेहनं' इत्यपि  
पाठो दृश्यते । २ "तेजितम्" जे० टिप्पणी । ३-६ लिहनं (१) जे० । ४ यादृशं तदुपमानभूतं तस्मिन् (तल्ले?)  
हनं जे० । ५ मन्वीत जा० जे० ।

वकारार्थत्वात् । उक्तं सातवेदनीयस्वरूपम् । असातवेदनीयस्वरूपमाह—यच्च अस्मिना' खड्गेन  
'छिद्यते' द्विधाक्रियते सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः । 'असातवेदनीयस्यैव' असुखानु-  
भवस्यैव । इति गाथार्थः ॥२६॥

निगमनपूर्वकं गतिचतुष्के सुखदुःखमतिदिशन्नाह—

(पारमा०) 'मध्वास्वादनसदृशाः' मधुलिप्तनिशितनिस्त्रिंशधागज्वलेहने यत् प्रथमतो  
मधुरससंवेदनं तत्सदृशः सातवेदनीयस्य भवति विपाकः । 'हुः' निश्चये । यदस्मिना तत्र छिद्यते  
म पुनर्विपाकः 'असातस्य' भीमो भीमसेन इतिवदसातवेदनीयस्य । इति गाथार्थः ॥२६॥

सम्प्रति चतुर्गतिविषयत्वं नियतगतिव्यवस्थया प्रस्तौति—

एयं सुहदुःखकरं, चउगइमावन्नयाण जीवाणं ।

सामन्नेणं भणिमो, सुहदुःखं दुसु दुसु गईसु ॥३०॥

व्याख्या—'एवं' उक्तनीत्या 'सुखदुःखकरं' सुखदुःखोत्पादकं, केषाम् ? इत्याह—  
'चतुर्गत्यापन्नानां' चतुर्गत्यवस्थितानां 'जीवानां' प्राणिनां सामान्येन 'भणिमो' मणामः ।  
किं तत् ? इत्याह—सुखदुःखं द्वयोर्द्वयोर्गत्योः । इति गाथार्थः ॥३०॥

सातावेदनीयानुभवं गतिद्वये निदर्शयन्नाह—

(पारमा०) 'एतद्' वेदनीयं सुखदुःखकरं चतुर्गत्यापन्नानां 'जीवानां' नारकतिर्यङ्मन-  
गमरस्थानां सामान्येन मणामः 'सुखदुःखं द्वयोर्द्वयोर्गत्योः' सुखं द्वयोर्देवमनुजगत्योः, दुःखं  
द्वयोर्नारकतिर्यङ्गत्योः । इति गाथार्थः ॥३०॥

एतदेवाह—

देवेषु य मणुएसु य, तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेषु ।

जं उवभुंजइ जीवो, सो उ विवागो उ सायस्स ॥३१॥

व्याख्या—'देवेषु च' अमरेषु 'मनुष्येषु च' पुरुषेषु च 'तत्र' तयोर्विशिष्टेषु 'काम-  
भोगेषु' काम्यन्त इति कामा इच्छाकामा मदनकामाः, मृज्यन्त इति भोगा भवनविलयादयः  
यत्तत्सुखं 'मनुक्कि' अनुभवति 'जीवः' प्राणी, सः 'तु' पुनर्विपाकः 'सातस्य' सातवेदनीयस्य ।  
ननु नरामरगत्योः किं सातोदय एव ? नारकतिर्यङ्गत्योश्चासातोदय एव ? येन भवन्निर्दर्श्यते  
गतिद्वये गतिद्वये सातासातोदयः पृथक् पृथक्, उच्यते—प्रायोवृत्तिमाश्रित्येदमुक्तम् । अन्यथा तु

१ असातावे० जे० । २ 'वं सु' इत्येतदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम्, 'तर्हि सु' इत्यपि  
पाठः. एवमपि तनगाथायामपि । ३ 'अ सा०' इत्यपि पाठः ॥

यथा नरामरगतौ सातोदयोऽस्ति तथा-ऽसातोदयोऽपीति प्रधान्यान्नोक्तस्तथा नारकतिर्यग्गतौ मातो-  
दयः । इति गाथार्थः ॥३१॥

नारकतिर्यग्गत्योर्दुःखस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'देवेषु मनुष्येषु च' इति देवमनुजगत्योः, 'तत्थ विसिद्धेसु काम-  
भोगेसु' इति अत्र द्वितीयार्थे सप्तमी । विशिष्टान् 'कामान्' शब्दरूपलक्षणान्, 'भोगान्'  
गन्धरसस्पर्शलक्षणान् . यदागमः—“कइविहा णं भंते ! कामा पन्नत्ता ? गोयमा ! दुविहा  
कामा पन्नत्ता, सहा रुवा य । कइविहा णं भंते ! भोगा पन्नत्ता ? गोयमा !  
निविहा भोगा पन्नत्ता, तंजहा-गंधा रसा फासां य” इति । यदुपभृङ्क्ते जीवः, स  
तु विपाकः सातस्यैव । देवेषु च मनुजेषु च, इत्यत्र चकारावनुक्तसमृच्चये तेन नरकेष्वपि<sup>१०</sup>  
नारकाणां जिनजन्ममहादौ, तिर्यक्ष्वपि पद्महस्त्यादीनां सुखसंवेदनं सातविपाकः । इति  
गाथार्थः ॥३१॥

नरकतिर्यग्गत्योरसातमाह—

'नरएसु य तिरिएसु य, तेसु य दुक्खाइं णेगरूवाइं ।

जं उवभू जइ जीवो, सो उ विवागो असायस्स ॥३२॥

१५

व्याख्या—नरान् कायन्ति शब्दयन्ति नरकास्तेषु, तथा तिरश्चीनमञ्चन्ति गच्छन्ति=तिर्यश्च-  
स्तेषु च, 'दुःखानि' 'असातवेदनीयानि 'अनेकरूपाणि' नानारूपाणि यत्तद्भूयस्ते जीवः,  
सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः 'असातस्य' दुःखस्य । इति गाथार्थः ॥३२॥

मोहनीययुक्तस्य जीवस्य विपरीतस्वरूपं दृष्टान्तेन प्रकटयन्माह—

(पारमा०) 'नरकेषु' नरकगतौ 'तिर्यक्षु' तिर्यग्गतौ 'तेसु य' इति न केवलं नरकगति-<sup>२०</sup>  
तिर्यग्गत्योः 'तयोश्च' देवमनुजगत्योर्दुःखान्यनेकरूपाणि यदुपभृङ्क्ते आमियोग्यदारिद्र्यादि  
जीवः, स तु विपाकोऽसातस्य । इति गाथार्थः, ॥३२॥

वेदनीयं निगमयन् मोहनीयप्रस्तावनामाह—

एयमिह वेयणीयं, चउत्थकम्मं तु होइ मोहणियं ।

तं मज्जपाणसरिसं, जइ होइ तहा निसामेह ॥३३॥

१६

व्याख्या—एतदस्मिन् वेदनीयमुक्तम् । चतुर्थं कर्म पुनर्भवति मोहनीयं, तन्मद्यपानसदृशं  
यथा भवति तथा 'निशमयत । इति गाथार्थः ॥३३॥

१ 'तिरिएसुय नरएसु य तैसि दुक्खाइं' इत्यपि पाठो दृश्यते । २ असातावे० जे० । ३ एयमिह० सटी  
कर्म गाथा जे० प्रतौ नास्ति । ४ निशमयत जि० ॥

वकारार्थत्वात् । उक्तं सातवेदनीयस्वरूपम् । असातवेदनीयस्वरूपमाह—यच्च 'असिना' खद्गेन 'छिद्यते' द्विधाक्रियते सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः 'असातवेदनीयस्यैव' असुखानुभवस्यैव । इति गाथार्थः ॥२६॥

निगमनपूर्वकं गतिचतुष्के सुखदुःखमतिदिशन्नाह—

(पारमा०) 'मध्वास्थादनसदृशः' मधुलिप्तनिशितनिस्त्रिशधागऽवलेहने यत् प्रथमतो मधुरससंवेदनं तत्सदृशः सातवेदनीयस्य भवति विपाकः । 'हुः' निश्चये । यदसिना तत्र छिद्यते स पुनर्विपाकः 'असातस्य' भीमो भीमसेन इतिवदसातवेदनीयस्य । इति गाथार्थः ॥२६॥

सम्प्रति चतुर्गतिविषयत्वं नियतगतिव्यवस्थया प्रस्तौति—

एयं सुहदुःखकरं, चउगइमावन्नयाण जीवाणं ।

सामन्नेणं भणिमो, सुहदुःखं दुसु दुसु गईसु ॥३०॥

व्याख्या—'एषं' उक्तनीत्या 'सुखदुःखकरं' सुखदुःखोत्पादकं, केषाम् ? इत्याह— 'चतुर्गत्यापन्नानां' चतुर्गत्यवस्थितानां 'जीवानां' प्राणिनां सामान्येन 'भणिमो' भणामः । किं तत् ? इत्याह—सुखदुःखं द्वयोर्द्वयोर्गत्योः । इति गाथार्थः ॥३०॥

सातावेदनीयानुभवं गतिद्वये निदर्शयन्नाह—

(पारमा०) 'एतद्' वेदनीयं सुखदुःखकरं चतुर्गत्यापन्नानां 'जीवानां' नारकतिर्यङ्गनरामरस्थानां सामान्येन भणामः 'सुखदुःखं द्वयोर्द्वयोर्गत्योः' सुखं द्वयोर्देवमनुजगत्योः, दुःखं द्वयोर्नरकतिर्यङ्गत्योः । इति गाथार्थः ॥३०॥

एतदेवाह—

देवेसु य मणुएसु य, तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेसु ।

जं उवभुंजह जीवो, सो उ विवागो उ सायस्स ॥३१॥

व्याख्या—'देवेषु च' अमरेषु 'मनुष्येषु च' पुरुषेषु च 'नर' तयोर्विशिष्टेषु 'कामभोगेषु' काम्यन्त इति कामा इच्छाकामा मदनकामाः, भुज्यन्त इति भोगा भवनविलयादयः यत्तत्सुखं 'मनुक्ति' अनुभवति 'जीवः' प्राणी, सः 'तु' पुनर्विपाकः 'सातस्य' सातवेदनीयस्य । ननु नरामरगत्योः किं सातोदय एव ? नारकतिर्यङ्गत्योश्चासातोदय एव ? येन भवद्भिर्दर्श्यते २५ गतिद्वये गतिद्वये सातासातोदयः पृथक् पृथक्, उच्यते—प्रायोवृत्तिमाश्रित्येदमुक्तम् । अन्यथा तु

१ असातावे० जे० । २ 'तं मु' इत्येतदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम्, 'तहिं मु' इत्यपि पाठः, एवमत्रे तनगाथायामपि । ३ 'अ सा०' इत्यपि पाठः ॥

यथा नरामरगतौ सातोदयोऽस्ति तथा-ऽसातोदयोऽपीति प्रधान्याचोक्तस्तथा नारकतिर्यग्गतौ सातो-  
दयः । इति गाथार्थः ॥३१॥

नारकतिर्यग्गत्योर्दुःखस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'देवेषु मनुष्येषु च' इति देवमनुजगत्योः, 'तन्थ विसिद्धेसु काम-  
भोगेसु' इति अत्र द्वितीयार्थे सप्तमी । विशिष्टान् 'कामान्' शब्दरूपलक्षणान्, 'भोगान्'  
गन्धरसस्पर्शलक्षणान् . यदागमः—'कइविहा णं मंते । कामा पन्नता ? गोयमा ! इविहा  
कामा पन्नता, सहा रूवा य । कइविहा णं मंते ! भोगा पन्नता ? गोयमा !  
निविहा भोगा पन्नता, तंजहा-गंवा रसा फासां य" इति । यदुपमृद्ध्यते जीवः, स  
तु विपाकः सातस्यैव । देवेषु च मनुजेषु च, इत्यत्र चकारावनुक्तसमृद्धये तेन नरकेष्वपि<sup>१०</sup>  
नारकाणां जिनजन्ममहादौ, तिर्यक्ष्वपि पट्टहस्त्यादीनां सुखसंवेदनं सातविपाकः । इति  
गाथार्थः ॥३१॥

नरकतिर्यग्गत्योरसातमाह—

'नरएसु य तिरिएसु य, तेसु य दुक्खाइं णेरूवाइं ।

जं उवभुं जइ जीवो, सो उ विवागो असायस्स ॥३२॥

१५

व्याख्या—नरान् कायन्ति शब्दयन्ति नरकास्तेषु, तथा तिरश्चीनमश्नन्ति गच्छन्ति=तिर्यश्च-  
स्तेषु च, 'दुःखानि' 'असातवेदनीयानि 'अनेकरूपाणि' नानारूपाणि यत्तन्नूनक्ति जीवः,  
सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः 'असातस्य' दुःखस्य । इति गाथार्थः ॥३२॥

मोहनीययुक्तस्य जीवस्य विपरीतस्वरूपं दृष्टान्तेन प्रकटयन्माह—

(पारमा०) 'नरकेषु' नरकगतौ 'तिर्यक्षु' तिर्यग्गतौ 'तेसु य' इति न केवलं नरकगति-<sup>२०</sup>  
तिर्यग्गत्योः 'तद्योश्च' देवमनुजगत्योर्दुःखान्यनेकरूपाणि यदुपमृद्ध्यते आमियोग्यदारिद्र्यादि  
जीवः, स तु विपाकोऽसातस्य । इति गाथार्थः, ॥३२॥

वेदनीयं निगमयन् मोहनीयप्रस्तावनामाह—

एयमिह वेयणीयं, चउत्थकम्मं तु होइ मोहणियं ।

तं मज्जपाणसरिसं, जइ होइ तथा निसामेह ॥३३॥

१६

व्याख्या—एतदस्मिन् वेदनीयमुक्तम् । चतुर्थं कर्म पुनर्भवति मोहनीयं, तन्मद्यपानसदृशं  
यथा भवति तथा 'निशमयत । इति गाथार्थः ॥३३॥

१ 'तिरिएसुय नरएसु य तेंसिं दुक्खाइं' इत्यपि पाठो दृश्यते । २ असातावे० जे० । ३ एयमिह० सदी  
कयं गाथा जे० प्रती नास्ति । ४ निशमयत जि० ॥

(पारमा०) एतत् सातासातरूपं 'इह' प्रवचने वेदनीयमुच्यते इति गम्यते, चतुर्थकर्म भवति मोहनीयं तन्मद्यपानसदृशं यथा भवति तथा निश्चयत । इति गाथार्थः ॥३३॥

जह मज्जपाणमूढो, लोए पुरिमो परव्वमो होइ ।

तह मोहेण वि मूढां, जीवो वि परव्वमो होइ ॥३४॥

व्याख्या—यथा 'मद्यपानमूढः' मद्य=मामवविशेषः, तस्य पानं='घुटनं तेन मूढो=मोहितो व्याप्तो 'लोके' मनुष्यलोके 'पुरुषः' मनुष्यः 'परवशाः' परायत्तो, वकारस्य प्राकृतत्वाद्गुरुत्वम्, 'मद्यनि' जायते 'तथा' तेनैव प्रकारेण मोहेनापि 'मूढः' छादितस्वरूपः 'जीवः' प्राणी 'परवशाः' आत्मानायत्तः 'मद्यनि' मपद्यते । इति गाथार्थः ॥३४॥

मोहनीयस्वरूपं समेदमाह—

(पारमा०) यथा 'मद्यपानमूढः' मद्यपानेन नष्टचेतनो लोके पुरुषः 'परवशाः' परायत्तो भवति तथा मोहेनापि मूढो जीवोऽपि परवशो भवति इति गाथार्थः ॥३४॥

संप्रति शब्दार्थकथनपूर्वकं मोहनीयस्य द्वैविध्यं तावदाह—

मोहेइ मोहणीयं, तंपि समासेण भण्णए दुविहं ।

दंसणमोहं पढमं चरित्तमोहं भवे वीयं ॥३५॥

व्याख्या='मूढ वैचिन्त्ये' 'मोहयति' वैचित्यमुत्पादयत्यात्मन इतिकृत्वा मोहनीयम् । तदपि 'समासेन' संक्षेपेण भवति 'द्विविधं' द्विप्रकारम् । द्वैविध्यमेवाह—दर्शनमोहं 'प्रथमं' आद्यम्, चरित्रमोहं भवेत् 'द्वितीयं' अप्रथमम् । इति गाथार्थः ॥३५॥

प्रथमस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'मोहयति' वैचित्यमापादयतीति मोहनीयम् । तदपि 'समासेन' संक्षेपेण 'भण्यते' प्रतिपाद्यते द्विविधम् । दृश्यते यथावदलोक्यते वस्त्वनेनेति दर्शनम्, तन्मोहयति मूढतां नयति यत्कर्म तद्दर्शनमोहं प्रथमम् । चर्यते तदिति चरित्रम्, तन्मोहयति यत्कर्म तच्चरित्रमोहं द्वितीयम् । इति गाथार्थः ॥३५॥

संक्षेपतो मोहनीयस्य द्वैविध्यमभिधाय प्रथमं दर्शनमोहनीयमेदानीह—

दंसणमोहं निविहं, मम्मं पीमं च तह य मिच्छत्तं ।

मुद्धं अद्दविमुद्धं, अविमुद्धं तं जहाकम्ममो ॥३६॥

१ घोटनं जे० घुटनं जि० । २ व्याख्याकारेण तु "होइ दुविहं तु" इत्यपि पाठः, तदनुसारेण व्याख्यानम् ।

व्याख्या—‘दृशिर् प्रेक्षणे’ दृष्टिर्दर्शनं यथाऽवस्थितवस्तुपरिच्छेदः, तन्मोहयति यत्कर्म  
येन कर्मणाऽन्यथास्थितं वस्तु अन्यथा परिच्छिद्यते तद्दर्शनमोहम् । तच्च त्रिविधम्, ‘सम्मं  
भीरुं च तद् य मिच्छत्तं’ सम्यक्त्वं सम्यग्मिध्यात्वं तथा मिध्यात्वं चेति । चस्य परतः  
संबन्धः । शुद्धं अर्द्धविशुद्धं अविशुद्धं चेति । तत्र मिध्यात्वपुद्गला एव शोधिताः कागणामावे १  
विकाराजनकत्वेन शुद्धाः सम्यक्त्वमुच्यते १ । तथा त एवार्द्धविशुद्धाः स्वरूपतः किञ्चिद्वि-  
कारजनकत्वेन अर्द्धविशुद्धं सम्यग्मिध्यास्वमुच्यते २ । त एव मिध्यात्वपुद्गला अतत्त्वेपु तत्त्वा-  
मिनिवेशरूपाः अविशुद्धं मिध्यात्वमुच्यते, विपविकारतुल्यमिति तात्पर्यम् ३ ‘यथाक्रमशो’  
यथा परिपाट्या वक्ष्यते । इति गाथार्थः ॥३६॥

हेतुद्वारेण सम्यक्त्वस्वरूपं समर्थयन्नाह—

१०

(पारमा०) दर्शनमोहं त्रिविधम् । ‘सम्यग्’ इति सम्यक्त्वम्, सम्यगित्येतस्य भावः  
सम्यक्त्वम्, इत्यतो ‘मिश्रं’ सम्यग्मिध्यात्वं । तथा मिध्यात्वं च, शुद्धं अर्द्धविशुद्धं अवि-  
शुद्धम्, ‘तथाक्रमशः’ इति सम्यक्त्वं शुद्धं, मिश्रमर्द्धविशुद्धं, मिध्यात्वमविशुद्धम् । इति  
गाथार्थः ॥३६॥

सम्यक्त्वस्वरूपमाह—

१२

केवलनाणुवलद्धे, जीवाहपयत्थ सदहे जेणं ।

तं सम्मत्तं कम्मं, सिवसुहसंपत्तिपरिणामं ॥३७॥

व्याख्या—केवलमसहायं ज्ञानं केवलज्ञानम्, तेनोपलब्धा ज्ञातास्तीर्थकृद्भिर्ये जीवादिप-  
दार्थाः तानागमाभिसर्गाद्वा विज्ञाय ‘अदधीत’ प्रतिपद्येत ‘येन’ कर्मणा हेतुभूतेन तत्सम्यक्त्वं  
कर्म यथाऽवस्थितवस्तुपरिच्छेदात्मकं प्रतिपत्तिरूपं सम्यग्दर्शनमित्यर्थः । शिवं निरुपद्रवस्थानं २०  
मोक्षः तस्मिन् सुखं परमानन्दरूपं तस्य संप्राप्तिरवाप्तिः सा परिणामो यस्य तत् शिवसुखसं-  
प्राप्तिपरिणामम् । इति गाथार्थः ॥३७॥

मिश्रस्वरूपमाह—

(पारमा०) केवलज्ञानेनोपलब्धानधिगतानर्थान् । केवलिभिर्जीवादिपदार्थान् जीवाजीवपु-  
ण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षलक्षणान् अदधीत ‘येन’ कर्मणा हेतुभूतेन तत्सम्यक्त्वं कर्म । २२  
विशेषणद्वारेणैतत्फलमाह—‘शिवसुखसंप्राप्तिपरिणामं’ शिवसुखसंप्राप्तिः परिणामः परिणतिर्य-  
म्य । इति गाथार्थः ॥३७॥

मिश्रमाह—

१ अविशुद्धं मिध्यात्वपुद्गला एव शो० जे० जि० । २ वक्ष्ये इति जे० ।

रागं नवि जिणधम्मे 'नवि दोसं जाइ जस्स उदएणं ।

सो मीसस्स विवागो, अंतमुहुरां भवे कालं ॥३८॥

व्याख्या—'रागं' प्रीतिलक्षणं 'नापि' नैव, अपिशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, 'जिनधर्मे' तीर्थकृद्धर्मे 'न च' नैव 'द्वेषं' अप्रीतिलक्षणं 'याति' गच्छति 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' ५ प्रादुर्भावेन, स मिश्रस्य 'विपाकः' अनुभव उदयो वा । स च भवन् कियन्तं कालं यावद्भवति ? अत आह—अन्तमुहूर्तमात्रं कालं मुहूर्तस्यान्तः=द्विघटिको मुहूर्तस्तस्य मध्यः । इति गाथार्थः ॥३८॥

मिथ्यात्वस्वरूपमाह—

(पादमा०) 'रागं' नापि प्रीतिलक्षणं जिनधर्मे नापि 'द्वेषं' अप्रीतिलक्षणं गच्छति, किन्तु १० मध्यस्थपरिणामः 'यस्य' कर्मण उदयेन भवति स मिश्रस्य 'विपाकः' उदयः 'अन्तमुहूर्तं भवेत्कालं' किञ्चिन्पूनघटिकाद्वयलक्षणम्, तत ऊर्ध्वमवश्यं मिथ्यात्वे वा गमनात् । इति गाथार्थः ॥३८॥

मिथ्यात्वमाह—

जिणधम्मंमि पओसं, वहइ य हियएण जस्स उदएणं ।

तं मिच्छतां कम्मं, संकिट्ठो तस्स उ विवागो ॥३९॥

१५

व्याख्या—'जिनधर्मस्य' वीतरागधर्मस्य 'प्रद्वेषं' मत्सरं 'वहति च' याति च 'हृदयेन' चेतसा, करोतीत्यर्थः 'यस्य' कर्मणः 'उदये' विपाकानुभवे । चकाराच्च केवलं हृदि प्रद्वेषं वहति, तदुदयजनितं कार्यं चावर्णवादादि शासनस्य विघत्ते, 'तन्मिथ्यात्वं कर्म' मिथ्याऽलीकं विपरीतं वा तत्त्वपरिज्ञानं यस्मिन् तन्मिथ्यात्वं, 'संकिट्ठः' अशुभतरः, तुशब्दस्य पुनःशब्दार्थत्वात्तस्य पुनः 'विपाकः' अनुभव उदयो वा । तदुदयेऽवश्यमशुभरूपस्य कर्मणो २० बन्धो भवति । इति गाथार्थः ॥३९॥

उक्तं दर्शनमोहम्, साम्प्रतं चारित्रमोहमाह—

(पादमा०) जिनधर्मे प्रद्वेषं वहति हृदयेन 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकवेदनेन । चकाराच्च केवलं हृदि प्रद्वेषं धारयति तत्फलमपि चावर्णवादादि करोति, तन्मिथ्यात्वं कर्म, संकिल्ल-ष्टन्तस्य पुनर्विपाकः, नरकादिप्रापकत्वात् । इति गाथार्थः ॥३९॥

२५

दर्शनमोहनीयं त्रिविधमप्युक्त्वा चारित्रमोहनीयं गाथाऽऽद्यदत्तेनाह—

१ न्याय्याकारेण तु—'न य' इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ 'हृदयं कालं' इत्यपि पाठः ।

३ 'जिणधम्मंमि पओसं वहइ उदएणं जस्स कम्मस्स' । इत्यपि पाठः ।



जं पि य चरित्तमोहं. 'तं पि हु दुविहं' ममामओ होइ ।  
सोलस जाण कसाया, नव भेया नोकसायाणं ॥४०॥

व्याख्या—यदपि च चरित्रमोहं यदिति प्रागभिहितं चरित्रमोहं, अपिशब्दः संभावने मसृञ्चये वा, 'चः' पाइपूरणे, 'चरेरित्रनप्रत्ययान्तस्य चरित्रमिति रूपम् । 'निरुक्तं तु चित्तस्य कर्मणो रिक्तीकरणाच्चरित्रं व्रतं नियमो 'वासर्थः, तदपि 'समासेन' संक्षेपेण द्विविधं 'भणितं' प्रतिपादितम् । तुशब्दाच्च केवलं मोहनीयं, चरित्रमपि द्विप्रकारमेव । षोडश 'जानीहि' विद्धि 'कषायान्' क्रोधमानमायालोमान् प्रत्येकं चतुर्विकल्पान् । ते चामी—'जलरेणुपुढविपव्व-यराईसरिसो षडच्चिहो कोहो । तिणिसलयाकड्डिडियसेलत्थंभोचमो माणो ॥१॥ मायाषलेहिगोमुत्तिमिहसिंघघणवंसमूलसमा । 'लोहो हलिद्वंजणकहमकिमिराग सारिच्छो ॥२॥ पक्खषउमासवच्छरजावज्जीवाणुगामिणो कमसो । देवनरतिरियनारयगइसाहणहेयवो भणिया ॥३॥' इति । षट् च दश च षोडश, षस्य उत्त्वं दस्य हत्वं निपातनात्, षडधिका दश षोडश, कषो=भवस्तस्यायो=लामो येषु सत्सु तान् । तथा नव 'भेदाः' विशेषा नोकषायाणाम् । कषाया 'नो भवन्ति नोकषायाः, प्रतिषेधवाचको नोशब्दः, वेदत्रयहास्यादिरूपाः, तानिमान् स्त्रीषु नपुंसकवेदहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सादीन् । इति १५ गाथार्थः ॥४०॥

षोडशकषायभेदानाह—

(पारमा०) यदपि च चरित्रमोहं तदपि द्विविधं, न केवलं मोहनीयं दर्शनमोहनीयचरित्रमोहनीयभेदाद् द्विविधम् । चरित्रमोहनीयमपि हुशब्दस्यैवकारार्थत्वाद् द्विविधमेव समासतो भवति, कषायनोकषायभेदात् । तांश्रोत्तराद्धेनाह—'षोडश' षोडशसंख्यापरिच्छिन्नान् जानीहि, क्रोध-मानमायालोमानां चतुर्णामपि प्रत्येकं चतुर्विधत्वात् । कष्यन्ते=ईस्यन्ते परस्परं प्राणिनोऽस्मिन्निति कषः=संसारः, तं अयन्ते=गच्छन्ति जन्तव एमिरिति कषायास्तान्, नव भेदान् नोकषायाणां वेदत्रयहास्यादिषट्कलक्षणान्, जानीहीति अत्रापि संबध्यते । इति गाथार्थः ॥४०॥

कषायान्नामोद्देशेनाह—

कोहो माणो माया, लोभो चउरोवि हुंति चउभेया ।

अणअप्पच्चक्खाणा, पच्चक्खाणा य संजलणा ॥४१॥

१ "तं पि समासेण होइ दुविहं तु" इत्यपि पाठो दृश्यते, व्याख्याकारेण तु "तं पि समासेण दुविहं मपिहं तु" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम्, अत्र 'दुविहं' इति पदं प्राकृतत्वाल्लुप्तविभक्तिकं ज्ञेयम् । २ चरेरित्रच-प्रत्य० जे० । ३ "पदभञ्जकं" जे० टिप्पणी । ४० मो वेलथं, तदपि जे० । ५ लोभो जे० । ६ न जे० ।

व्याख्या—'क्रोधः' असहनरूपः, 'मानः' स्तम्भरूपः, 'माया' कुटिलम्बभावा, 'लोभः' मश्वयशीलता, चत्वारोऽपि 'भवन्ति' जायन्ते 'चतुर्भेदाः' चतुर्विकल्पाः । 'अण' इति अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः, अनन्त=आसंसारं यावत् अनुबन्धः=प्रवाहो येषां तेऽनन्तानुबन्धिनः । अप्रत्याख्यानाश्चत्वारः—न विद्यते देशसर्वनिपेधरूपं प्रत्याख्यानं श्रेषामुदये तेऽप्रत्याख्यानाः, प्रसज्यनभूममासस्य निपेधमात्रत्वात् । प्रत्याख्यानाश्चेति प्रत्याख्यानावरणा गृह्यन्ते, यथा सत्यमामा मामेति, आह्मर्यादायाम् । प्रत्याख्यानमा मर्यादया वृण्वन्ति=च्छादयन्ति येषामुदये सर्वप्रत्याख्यानं न भवति देशतस्तु भवति ते प्रत्याख्यानावरणाश्चत्वारः । 'संज्वलयन्ति यत्किंचिदेव स्वल्पमपि दुर्वचनादिकमासाद्योदयं यान्ति <sup>३</sup>उपशाम्यन्ति च संज्वलनाश्चत्वारः । इति गार्थः ॥४१॥

अनन्तानुबन्धुदये फलाभावप्रदर्शनायाह—

(पारमा०) क्रोधो मानो माया लोभश्चत्वारोऽपि प्रत्येकं चतुर्भेदा भवन्ति । कथम् ? 'अण' इति अनन्तानुबन्धिनः, तत्रानन्तं संसारमनुबन्धन्तीत्येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः । तथा 'अप्रत्याख्यानाः' प्रत्याख्यानं च द्विधा, देशविरतिसर्वविरतिमेदात् । तत्र देशविरतिः सर्वविरत्यपेक्षयाऽल्पं प्रत्याख्यानम्, ततश्च न विद्यतेऽल्पमपि प्रत्याख्यानं यदुदयात्ते तथा । <sup>१५</sup> यत् उक्तम्—“नाल्पमप्युत्सहेद्येषां, प्रत्याख्यातुमिहोदयात् । अप्रत्याख्यानसंज्ञाऽगो द्वितीयेषु निवेशिता ॥१॥” अथवाऽल्पं प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानम्, तदप्यावृण्वन्तीत्यप्रत्याख्यानावरणा अध्येते तदाह—“आवृण्वन्ति प्रत्याख्यानं स्वल्पमपि येन जावस्य । तेनाऽप्रत्याख्यानावरणास्ते नञिह सोऽल्पाथः ॥१॥” 'प्रत्याख्यानाः' इति प्रत्याख्यानावरणाः, प्रत्याख्यानं सर्वविरतिरूपमावृण्वन्तीति, बहुलवचनात्कर्तार्यनद् । तथा 'संज्वलनाः' सं <sup>२०</sup> ईपत्परीपहोपसर्गसंसर्गे चारित्रिणमपि ज्वलयन्तीतिकृत्वा । इति गार्थः ॥४१॥

सम्प्रत्याद्यान् विशेषेणाह—

कोहो माणो माया लोभो पढमा<sup>१</sup> अर्णतबंधीउ ।

एयाणुदए जीवो इह सम्मत्तं न पावेइ ॥४२॥

व्याख्या—क्रोधमानमायालोभा उक्तस्वरूपाः 'प्रथमास्तु' आद्यास्तु पर्वतराजिशीलस्तम्भ- <sup>२५</sup> वनवंशकुडोङ्गिरागाः 'अनन्तानुबन्धिनः' अनन्तं=संसारं कर्म वा व्रतन्तीत्येवंशीला अनन्तबन्धिनः । 'अनन्तानुबन्धिनः' इति वा पाठो द्रष्टव्यो व्याख्यायाम् । सा धेयम्-अनन्तः=अनन्तकालं यावत्, अनुबन्ध=बन्धितस्याशुभोऽनुशयः प्रवाहोऽनन्तकालेनापि पश्चाद्भित्तिर्न भवति,

१ 'लोभः' अतिमन्वय० जे० । २ सञ्ज्वलयन्ति जे० । ३ उपशमन्ति जे० । ४ व्याख्याकारेणतु "पढमा अर्णतबंधी उ" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् ॥

तन्नुबन्धन्तीत्येवंशीला अन्तानुबन्धिनः । सूत्रे तु प्राकृतत्वाद्वाथामङ्गभयाच्चैवं पाठः । तुशब्द-  
स्तु प्रथमेत्यत्र पुनःशब्दार्थः । 'एयाणं' इत्यत्र चार्थात्संबन्धनीयः । अनन्तानुबन्धिनां क्रोध-  
मानमायालोभानां 'उदये' अनुभवे 'इह' मनुष्यलोके सम्यक्त्वं 'न प्राप्नोति' नासादयति ।  
इति गाथार्थः ॥४२॥

तेषां चोदयो गुणस्थानकेषु कियद्दुरं यावद्भवति ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधो मानो माया लोभः प्रथमाः, 'अणंतबंधीउ' इति, आर्पत्त्वादनन्तानु-  
बन्धिनः । एतेषामुदये जीवः 'इह' संसारे 'सम्यक्त्वं' उक्तस्वरूपं न प्राप्नोति । इति गाथार्थः  
॥४२॥

सम्प्रति येषु गुणस्थानेष्वेषामुदयो येषु च न इत्येतदाह—

जं परिणामो किट्टो. मिच्छाओ जाव सासणो ताव ।

सम्मामिच्छाईसु, एसिं उदओ 'अओ नत्थि ॥४३॥

व्याख्या—'यत्' यस्मात्कारणात् 'परिणामः' अध्यवसायः 'क्लिष्टः' अशुभतमः  
'मिथ्यात्वात्' मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्सकाशाधावत्सास्वादनः, सहास्वादनेन वर्तते सास्वादनः,  
सम्यक्त्वमास्वाद्य पुनर्भवति अन्तर्मुहूर्तमात्रकालात् सास्वादनगुणस्थानकं यावत्तावत्क्लिष्टप- १५  
रिणामोऽनुवर्तते । ननु 'मिथ्यात्वात्' इति पञ्चम्यैवावध्यर्थो लभ्यते तत्किमर्थं यावत्तावच्छब्द-  
योर्द्वयोरुपादानमिति ? उच्यते—सापेक्षतया यावत्तावतोरुपादानमविरुद्धम्, अथवा मिथ्यादृ-  
ष्टिगुणस्थानकमवधिमवधिमत्सास्वादनगुणस्थानकम्, अवधिमत् एव यावच्छब्दोऽवधिमत्सामि-  
व्याप्तिप्रदर्शकः तावच्छब्दस्तु तस्यैवावधिमत्ः पर्यन्तप्रदर्शकः, 'संबन्धशब्दो वा, मिथ्यादृष्टिगुण-  
स्थानकात्सकाशात्सास्वादनगुणस्थानकं यावद्भवति, न परतो भवति क्लिष्टाध्यवसायः, तत एव २०  
निवर्तते इति तात्पर्यार्थः । ननु कथमिदमवसीयते ? इत्यत आह—'सम्यग्मिथ्यात्वादिष्टु'  
सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकेषु, आदिशब्दादविरतादिगुणस्थानकेषु च 'एतेषां' अनन्तानुबन्धिनां  
उदयः, अनुभवः 'यत्तः' यस्मात्कारणात् 'नास्ति' न विद्यते इति युक्तिः । इति गाथार्थः ॥४३॥

द्वितीयकपायोदये विगत्यभावमाह—

(पारमा०) एतद्व्याख्या च गुणस्थानात्सुज्ञाना इति गुणस्थाननामस्वरूपप्ररूपणाय शास्त्रान्त- २५  
रश्लोकाः । तथाहि—'मिथ्यादृष्टिः १ सास्वादन २—सम्यग्मिथ्यादृशावपि ३ । अविर-  
तसम्यग्दृष्टिः ४, विरताविरतोऽपि च ५ ॥१॥ प्रमत्तश्चा ६ प्रमत्तश्च ७, निवृत्ति-

१ व्याख्याकारेण तु "जओ" इत्येतत्पाठानुसारेण व्याख्यातम् जे० । २ "मासाद्य" जे० । ३ क्लिष्टः परि०  
जे० । ४ श्लोकात्तया यावत्ता० जे० । ५ सम्बन्धिशब्दो जे० ।

बादरस्ततः ८ । अनिवृत्तिबादर ९ आ-५थ सूक्ष्मसंपरायकः १० ॥२॥ ततः प्रशान्त-  
मोहश्च ११ क्षीणमोहश्च १२ योगवान् १३ । अयोगवानिति १४ गुण-स्थानानि  
स्युश्चतुर्वश ॥३॥ मिथ्यादृष्टिर्भवेन्मिथ्या-दर्शनस्योदये सति । गुणस्थानत्वमेतस्य,  
भद्रकत्वाद्यपेक्षया १ ॥४॥ मिथ्यात्वस्यानुदयेऽनन्तानुबन्धुदये सति । सास्वाद-  
नसम्यग्दृष्टिः, स्यादुत्कर्षात्षड्भावली २ ॥५॥ सम्यक्त्वमिथ्यात्वयोगात्, सुदूर्तं  
मिश्रदर्शनः ३ । अविरतसम्यग्दृष्टिरप्रत्याख्यानकोदये ४ ॥६॥ विरताविरतस्तु  
स्यात्, प्रत्याख्यानोदये सति ५ । प्रमत्तसंयतः प्राप्तसंयमो य प्रमाद्यति ६ । ७॥  
सोऽप्रमत्तसंयतो यः, संयमे न प्रमाद्यति ७ । उभावपि पराधक्या, स्यातामान्त-  
मौहूर्तिकौ ॥८॥ कर्मणां स्थितिघातादो-नपूर्वान् कुरुते यतः । तस्मादपूर्वकरणः, १०  
क्षपकः शमकश्च सः ॥९॥ यद्बादरकषायाणां, प्रविष्टानामिमं मिथः । परिणामा  
निवर्तन्ते निवृत्तिबादराऽपि तत् ८ ॥१०॥ परिणामा निवर्तन्ते, मिथो यत्र न  
यत्ततः । अनिवृत्तिबादरः स्यात्, क्षपकः शमकश्च सः ९ ॥११॥ लोभाभिघः  
संपरायः, सूक्ष्मकिट्टीकृतो यतः । स सूक्ष्मसंपरायः स्यात्, क्षपकः शमकोऽपि च  
१० ॥१२॥ अथोपशान्तमोहः स्यात्, मोहस्योपशमे सति ११ मोहस्य तु क्षये १२  
जाते, क्षीणमोहं प्रचक्षते १२ ॥१३॥ सयोगिकेवली घाति-क्षयादुत्पन्नकेवलः १३ ।  
योगानां तु क्षये जाते, स एवायोगिकेवली १४ ॥१४॥” प्रतिपादितानि प्रस्तुतोपयोगीनि  
गुणस्थानानि । सम्प्रति सूत्रं व्याख्यायते—‘यत्’ यस्मात् परिणामः क्लिष्टो ‘मिथ्यात्वात्’  
मिथ्यादृष्टिगुणस्थानाद्यावत्सास्वादनस्तावत् । अतः सास्वादनगुणस्थानेऽनन्तानुबन्धनो व्यव-  
च्छिन्नाः । सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिष्वेषामुदयोऽतः क्लिष्टपरिणामाभावाच्चास्ति । इति गाथार्थः ॥४३॥ २०

द्वितीयकषायानाह—

कोहो माणो माया, लोभो बीया अपञ्चखाणा उ ।

एयाणुदए जीवो, विरयाविरइं न पावेइ ॥४४॥

व्याख्या—क्रोधमानमायलोमा द्वितीयाः पृथ्वीराजिअस्थिमेपमृङ्गकर्मतुल्याः अप्रत्या-  
ख्यानास्तु’ सर्वथा विरत्यभावस्वरूपाः । तुशब्दः पुनःशब्दार्थः एतेषामित्यत्र संबन्धनीयः । २५  
एतेषां पुनः उदये विपाके ‘जीवः’ प्राणी ‘विरताविरतिं’ देशविरतिं न प्राप्नोति, सम्यक्त्वं  
तु प्राप्नोति योग्यतायाम् । इति गाथार्थः ॥४४॥

एतेषामुदये किमितिकृत्वा विरताविरतिं न प्राप्नोति ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधादयो द्वितीया अप्रत्याख्यानाः, उच्यन्ते इत्यध्याहारः । एषामुदये जीवो  
देशविरतिं न प्राप्नोति । इति गाथार्थः ॥४४॥

एषां च यत्पर्यन्तेषु गुणस्थानेषुदयस्तदाह—

एसिं 'जाण विवागो, मिच्छाओ जाव अविरओ ताव ।

परओ देमजयाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४५॥

व्याख्या—'एतेषां' अप्रत्याख्यानकपायाणां 'येन' कारणेन 'विपाकः' उदयः, 'मिच्छाओ' ५ जाव अविरओ ताव' मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावदविर 'तगुणस्थानकं तावदुदयइति हृदयम्' 'परओ देसजयाइसु' परतो देशयत्यादिषु विरताविरतादिषु 'नास्ति विपाको' न विद्यते अनुभवश्च-तुर्णामपि द्वितीयाप्रत्याख्यानकपायाणां येन कारणेन । इति गाथार्थः ॥४५॥

तृतीयकपायोदये सर्वविरत्यभावमाह—

(पारमा०) 'एषां' अप्रत्याख्यानानां विपाको 'मिथ्यात्वात्' मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकाद्या- १० चत् 'अविरतः' अविरतसम्यग्दृष्टिस्तावत्, इतेरेष्याहारादिति जानीहि । परतो 'देशयतादिषु' विरताविरतादिषु नास्ति विपाकश्चतुर्णामपि । इति गाथार्थः ॥४५॥

तृतीयानाह—

'कोहो माणो माया, लोभो तइया उ पच्चक्खाणा उ ।

एयाणुदए जीवो, पावेइ न सब्वविरइं तु ॥४६॥

१६

व्याख्या—क्रोधमानमायालोभाः 'तृतीयास्तु' तृतीयाः पुना रेणुरेखाकाष्ठगोमूत्रिकाखञ्जनसदृशाः 'प्रत्याख्यानानास्तु' प्रत्याख्यानानावरणा एव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । एतेषां 'उदये' विपाके 'प्राप्नोति' आसादयति, न 'सर्वविरतिं तु' संयतत्वमेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, देशयतित्वं पुनः प्राप्नोति । इति गाथार्थः ॥४६॥

किमितिकृत्वा सर्वविरतिं न प्राप्नोति ? इत्याह—

१७

(पारमा०) क्रोधादयस्त्वृतीयाः 'प्रत्याख्यानानाः' इति प्रत्याख्यानानावरणाः, उच्यन्त इति ज्ञेयः । एतेषामुदये जीवः पुनः सर्वविरतिं न प्राप्नोति । इति गाथार्थः ॥४६॥

एषामुदयावधिभूमिमाह—

१ व्याख्याकारेण तु "जेण" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । पद्यमत्रेऽपि ज्ञेयम् ॥ २ तस्त्वाव-  
दुदय जे० ३ "एषामुदयभूमिमाह" इत्यपि ॥

एसिं जाण विवागो, मिच्छाओ जाव विरयविरओ उ ।

परओ पमत्तमाइसु, नत्थि विवागो चउण्हं पि ॥४७॥

व्याख्या—‘एतेपां’ प्रागुक्ततृतीयकषायाणां ‘येन’ कारणेन ‘विपाकः’ उदयोऽनुभवो मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावद् ‘विरताविरतस्तु’ तुशब्दस्यैवकारार्थत्वाद्विरताविरतगुणस्थानकमेव यावद्दुदयः । ‘परतः’ अग्रतः प्रमत्तमादिर्येषां गुणस्थानकानां तानि प्रमत्तादीनि प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम्, आदिशब्दादप्रमत्तादिमंयतगुणस्थानकानि गृह्यन्ते, [तेषु] नास्ति ‘विपाकः’ अनुभवश्चतुर्णामपि यावत्येव गुणस्थानके तेषामुदयस्तावत्येव तं सर्वविरतेर्विबन्धका नोत्तरत्र, भवत्येवात्र सर्वविरतिः, प्राक् पुनः कषायोदयो विबन्धकोऽस्तीत्यनेन कारणेन सर्वविरत्यभावः । इति गाथार्थः ॥४७॥

चरमकषायानाह—

(पारमा०) एपां प्रत्याख्यानरणानां विपाको मिथ्यात्वाद् यावद्विरताविरतस्तावदेवेति जानीहि, परतः प्रमत्तादिषु चतुर्णामपि नास्ति विपाकः । इति गाथार्थः ॥४७॥

चतुर्थकषायानाह—

कोहो माणो माया, लोभो चरिमा उ हुंति संजलणा ।

एयाणुदए जीवो, न लहइ अहखायचारित्तं ॥४८॥

व्याख्या—क्रोधमानमायालोभाः ‘चरमास्तु’ पुनः पश्चिमाः ‘भवन्ति’ जायन्ते ‘संज्वलनाः’ प्रागभिहितः । एतेषां ‘उदये’ विपाकानु ‘भवे’ जीवः ‘सत्त्वः’ ‘न लभ्यते’ न प्राप्नोति, यथैवाख्यातं कथितं यथाख्यातम्, तच्च तश्चारित्रं च । इति गाथार्थः ॥४८॥

किमितिकृत्वा न लभते ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधादयश्चरमाश्चत्वारो भवन्ति ‘संज्वलनाः’ संज्वलनामिधानाः । एषामुदये जीवो न लभते यथाख्यातचारित्रम् । इति गाथार्थः ॥४८॥

एतद्दुदयावधिमाह—

एसिं जाण विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो तिण्हं ।

लाभम्म जाव सुहुमो, होइ विवागो न परओ उ ॥४९॥

व्याख्या—‘एतेषां’ उक्तन्वरूपकषायाणां ‘येन’ कारणेन ‘विपाकः’ उदयो मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावद्वाद्वाद्गुणस्थानकं ‘तिण्हं’ त्रयाणां जलरेखातिनिशुषुक्षलताअवलोहधनुलिखनरूपाणां,

'लोभाय' पुनर्हरिद्रारागतुल्यस्य यावत्सूक्ष्मःसंपरायो लोभो यस्मिन् गुणस्थानके तत्सूक्ष्मसंपरायं तस्मिन् , 'भवति' जायते 'विपाकः' उदयः, न परस्मिन्नुपशान्तमोहादौ । इति गाथार्थः ॥४९॥

साम्प्रतं नोकपायानाह—

(पारमा०) एषां संज्वलनानां 'त्रयाणां' क्रोधमानमायाःलक्षणानां विपाको मिथ्यात्वा-  
द्यावद्वादरोऽनिष्टुत्तिवादर इति जानीहि, न परतः, इत्यत्रापि संबध्यते । 'लोभस्य' चतुर्थसंज्व-  
लनस्य यावत् , 'सूक्ष्मः' सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानं तावद्विपाको भवति, न परतः पुनः प्रशान्त-  
मोहादिषु । इति गाथार्थः ॥४९॥

उक्ताः कपायाः । सम्प्रति नोकपायप्रतिपादनायह—

नव नोकमाय भणिमो, वेया तिन्नो व हासद्वकं च ।

१०

इत्थीपुरिसनपुंसग, तेसि सरूवं इमं होइ ॥५०॥

व्याख्या—नव सख्यया नोकपायाः पूर्वोक्तस्वरूपाः तान् , 'भणिमो' इति प्रतिपाद-  
यामः । वेदास्य उक्तलक्षणाः, हास्यद्वकं च । तत्र तावद् वेदाः स्त्रीपुंसकरूपाः, तेषां च  
स्वरूपं 'इमं' वक्ष्यमाणलक्षणं 'भवति' विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥५०॥

'यथोद्देशस्तथा निर्देशः' इदि न्यायात् स्त्रीवेदं लक्षणपूर्वकं दृष्टान्तपुरस्सरमाह— १५

(पारमा०) कपायसहचरिता नोकपायाः, नोशब्दोऽत्र सहचारवाची, कपायसहचरितत्वं  
च कपायैः सह सर्वदा वर्तमानत्वात् । ते च नव, तान् भणामः, वेदत्रयं हास्यादिपदकं च ।  
तत्र वेदत्रिकमाह-स्त्रीपुरुषनपुंसकेति स्त्रीवेदः पुरुषवेदो नपुंसकवेदश्च । तेषां स्वरूपमिदं वक्ष्यमाणं  
भवति । इति गाथार्थः ॥५०॥

तत्र स्त्रीवेदमाह—

२०

पुरिसं पइ अहिलासो, उदणं होइ जस्स कम्मस्स ।

मो कुं कुमदाहसमो, इत्थीवेयस्स उ विवागो ॥५१॥

व्याख्या—'पुरुषं प्रति' पुरुषमङ्गीकृत्य 'अभिलाषः' इच्छाविशेषः, यद्यहं पुरुषं सेवया-  
मीत्येवंरूपः, 'उदयेन' विपाकेन यस्य 'भवति' जायते 'कर्मणः' मोहनीयविशेषस्य, 'सः'  
अभिलाषः कुम्फुमाया दाहः कुम्फुमादाहः तेन समः-तेन तुल्यः कारीपदाहसदृशः, यथा यथा  
चात्यते तथा तथा ज्वलति दहति च । एवमत्रापि यथा यथा संस्पृश्यते पुरुषेण तथा तथा-  
ऽभ्या अधिकतरोऽभिलाषो जायते । अमुज्यमानायां तु छन्नकारीपदाहतुल्योऽभिलाषो मन्द  
इत्यर्थः । 'स्त्रीवेदस्य तु' योपि द्वेदस्यैवायं 'विपाकः' अनुभवः । इति गाथार्थः ॥५१॥ पुरुष-  
वेदस्वरूपमाह—

एमिं जाण विवागो, मिच्छाओ जाव विरयधिरओ उ ।

परओ पमत्तमाइसु, नत्थि विवागो चउण्हं पि ॥४७॥

व्याख्या—‘एतेषां’ प्रागुक्ततृतीयकपायाणां ‘येन’ कारणेन ‘विपाकः’ उदयोऽनुभवो मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावद् ‘विरताविरतस्तु’ तुशब्दस्यैवकारार्थत्वाद्विरताविरतगुणस्थानकमेव याव-  
दुदयः । ‘परतः’ अग्रतः प्रमत्तमादिर्येषां गुणस्थानकानां तानि प्रमत्तादीनि प्रमत्तसंयतगुणस्थान-  
कम्, आदिशब्दादप्रमत्तादिमंयतगुणस्थानकानि गृह्यन्ते, [तेषु] नास्ति ‘विपाकः’ अनुभवश्चतु-  
र्णामपि यावत्येव गुणस्थानके तेषामुदयस्तावत्येव ते सर्वविरतेर्विवन्धका नोत्तरत्र, भवत्येवात्र  
सर्वविरतिः, प्राक् पुनः कपायोदयो विवन्धकोऽस्तीत्यनेन कारणेन सर्वविरत्यभावः । इति  
गाथार्थः ॥४७॥

चरमकपायानाह—

(पारमा०) एषां प्रत्याख्यानरणानां विपाको मिथ्यात्वाद् यावद्विरताविरतस्तावदेवेति  
जानीहि, परतः प्रमत्तादिषु चतुर्णामपि नास्ति विपाकः । इति गाथार्थः ॥४७॥

चतुर्थकपायानाह—

कोहो माणो माया, लोभो चरिमा उ हुंति संजलणा ।

एयाणुदए जीवो, न लहइ अहखायचारित्तं ॥४८॥

व्याख्या—क्रोधमानमायालोभाः ‘चरमास्तु’ पुनः पश्चिमाः ‘भवन्ति’ जायन्ते ‘संज्वलनाः’  
प्रागभिहिताः । एतेषां ‘उदये’ विपाकानु भवे ‘जीवः’सत्त्वः ‘न लभ्यते’ न प्राप्नोति, यथैवा-  
ख्यातं कथितं यथाख्यातम्, तच्च तच्चारित्रं च । इति गाथार्थः ॥४८॥

क्लिमिनिकृत्वा न लभते ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधादयश्चरमाश्चत्वारो भवन्ति ‘संज्वलनाः’ संज्वलनाभिधानाः । एषामुदये  
जीवो न लभते यथाख्यातचारित्रम् । इति गाथार्थः ॥४८॥

एतदुदयावधिमाह—

एसि जाण विवागो, मिच्छाओ जाव वायरो तिण्हं ।

लाभम्म जाव सुहुमो, होइ विवागो न परओ उ ॥४९॥

व्याख्या—‘एतेषां’ उक्त्वनन्वरूपकपायाणां ‘येन’ कारणेन ‘विपाकः’ उदयो मिथ्यात्वात्सका-  
शाद्यावद्भाद्रणस्थानकं ‘तिण्हं’ त्रयाणां जलरेखातिनिशृक्षलताअवलोहधनुलिखनरूपाणा,



'लोभाय' पुनर्हरिद्रारागतुल्यस्य यावत्सूक्ष्मःसंपरायो लोभो यस्मिन् गुणस्थानके तत्सूक्ष्मसंपरायं नस्मिन्, 'भवति' जायते 'विपाकः' उदयः, न परस्मिन्नुपशान्तमोहादौ । इति गाथार्थः ॥४९॥

सम्प्रतं नोकषायानाह—

(पारमा०) एषां संज्वलनानां 'अग्नाणां' क्रोधमानमायालक्षणानां विपाको मिथ्यात्वा-  
द्यावद्बादरोऽनिवृत्तिबादर इति जानीहि, न परतः, इत्यत्रापि संवध्यते । 'लोभस्य' चतुर्थसंज्व-  
लनस्य यावत्, 'सूक्ष्मः' सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानं तावद्विपाको भवति, न परतः पुनः प्रज्ञान्त-  
मोहादिषु । इति गाथार्थः ॥४९॥

उक्ताः कपायाः । सम्प्रति नोकपायप्रतिपादनायह—

नव नोकमाय भणिमो, वेया तिन्नोव हासच्छकं च ।

१०

इत्थीपुरिसनपुंसग, तेसि सरूवं इमं होइ ॥५०॥

व्याख्या—नव सख्यया नोकपायाः पूर्वोक्तस्वरूपाः तान्, 'भणिमो' इति प्रतिपाद-  
यामः । वेदास्त्रय उक्तलक्षणाः, हास्यषट्कं च । तत्र तावद् वेदाः स्त्रीपुंनपुंसकरूपाः, तेषां च  
स्वरूपं 'इमं' वक्ष्यमाणलक्षणं 'भवति' विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥५०॥

'यथोद्देशस्तथा निर्देशः' इदि न्यायात् स्त्रीवेदं लक्षणपूर्वकं दृष्टान्तपुरस्सरमाह— १५

(पारमा०) कपायसहचरिता नोकपायाः, नोशब्दोऽत्र सहचारवाची, कपायसहचरितत्त्व  
च कपायैः सह सर्वदा वर्तमानत्वात् । ते च नव, तान् भणामः, वेदत्रयं हास्यादिषट्कं च ।  
तत्र वेदत्रिकमाह-स्त्रीपुरुषनपुंसकेति स्त्रीवेदः पुरुषवेदो नपुंसकवेदश्च । तेषां स्वरूपमिदं वक्ष्यमाणं  
भवति । इति गाथार्थः ॥५०॥

तत्र स्त्रीवेदमाह—

२०

पुरिसं पइ अहिलासो, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।

मो कुं कुमदाहसमो, इत्थीवेयस्स उ विवागो ॥५१॥

व्याख्या—'पुरुषं प्रति' पुरुषमङ्गीकृत्य 'अभिलाषः' इच्छाविशेषः, यद्यहं पुरुषं सेवया-  
मीत्येवंरूपः, 'उदयेन' विपाकेन यस्य 'भवति' जायते 'कर्मणः' मोहनीयविशेषस्य, 'सः'  
अभिलाषः कुम्कुमाया दाहः कुम्कुमादाहः तेन समः-तेन तुल्यः कारीषदाहसदृशः, यथा यथा  
चात्प्यते तथा तथा ज्वलति दहति च । एवमवलापि यथा यथा संस्पृश्यते पुरुषेण तथा तथा-  
ऽभ्या अधिकतरोऽभिलाषो जायते । अशुज्यमानायां तु छन्नकारीषदाहतुल्योऽभिलाषो मन्द  
इत्यर्थः । 'स्त्रीवेदस्य तु' योपि द्वेदस्यैवायं 'विपाकः' अनुभवः । इति गाथार्थः ॥५१॥ पुरुष-  
वेदस्वरूपमाह—

(पारमा०) पुरुषं प्रत्यभिलाषः स्त्रिया यस्य कर्मण उदयेन भवति, पित्तोदये मधुरामिलाषवत्, स क्लीषामिदाहममः स्त्रीवेदस्य विपाकः । इति गाथार्थः ॥५१॥

पुरुषवेदमाह—

इत्थीए पुण उवरि. 'जस्मिह उदएण 'रागउप्पज्जे' ।

सो तणदाहममाणो, होइ विवागो 'पुरिमवेए ॥५२॥

(पू०) व्याख्या—'स्त्रियः पुनरुपरि' स्त्रीमस्त्रीकृत्य, पुरुषस्येति सामर्थ्याल्लभ्यते गाथायामनुपात्तमपि, उत्पद्यते इति क्रियोपादानात् । नहि कर्तारस्मन्तरेण क्रिया संभवति, 'क्रियाऽप्युपात्ता सामर्थ्यात्कर्तारमाक्षिपति कर्म च, कर्म चोपात्तं कर्तारं क्रियां चाक्षिपति, न कर्तृव्यतिरेकेण क्रिया संभवति नापि कर्म विना क्रिया, इति सामर्थ्यादेकस्मिन्नुक्ते इतरयोर्ग्रहणम् । १०  
'यस्य' कर्मणो मोहनीयविशेषस्योदयेनैव 'रागः' अभिप्रेतलक्षणः स्त्रीं सेवयाभीत्येवंरूपः 'उत्पद्यते' जायेत, स तृणदाहसमानः, यथा तृणानां दाहे ज्वलनं झटिति विध्यापनं च भवति, एवं पुंवेदोदये स्त्र्यासेवनं प्रत्यभिलाषो भवति, निवर्तते च, तत्सेवने शीघ्रं 'भवति' संजायते 'विपाकः' अनुभवः 'पुंवेद एष' पुरुषवेद एव । इति गाथार्थः ॥५२॥ नपुंसकवेदस्वरूपमाह—

(पारमा०) स्त्रिया उपरि पुनर्यस्येह कर्मण उदयेन राग उत्पद्यते, श्लेष्मोदयेऽभ्लामिलाषवत्, स तृणदाहसमानो भवति विपाकः 'पुरषवेदे' पुरुषवेदस्य । इति गाथार्थः ॥५२॥ नपुंसकवेदमाह—

इत्थीपुरिसाणुवरिं, 'जस्सिह उदएण 'राग उप्पज्जे' ।

नगरमहादाहसमो, 'सो उ विवागो' अपुमवेए ॥५३॥

व्याख्या—स्त्री च पुरुषश्च स्त्रीपुरुषौ प्रतीतौ तयोरुपरि 'यस्य' मोहनीयविशेषस्य 'उदयेन' विपाकेन रागः 'उत्पद्येतैव' जायेतैव । किंभूतोऽसौ ? 'इत्याह—नगरमहादाहसमः' नगरस्य महादाहो नगरमहादाहः तेन समस्तुन्यः, यथा नगरं दहमानं महता कालेन दह्यते विध्याति च महतैव । एवं नपुंसकवेदोदयेऽपि स्त्रीपुरुषयोः सेवनं प्रत्यभिलाषातिरेको महताऽपि कालेन न निवर्तते नापि सेवने तृप्तिः 'जानीहि' अवबुध्यस्व 'विपाकः' अनुभवः 'अपुंवेदे' २५

१-६ "जस्सुदएणं तु" इत्यपि पाठः. तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । २-७ "रागमुप्पज्जे" इत्यपि पाठः । ३ व्याख्याकारेण तु "सो उ पुमवेए" इति पाठमनुमृत्य व्याख्यातम् । ४ क्रिया ह्युत्पन्ना सामर्थ्यात् च । ५ 'उत्पद्यते' जायते । ६ "होइ" इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु—"जाण विवागो" इत्येतन्पाठानुसारेण व्याख्यातम् । ६ 'नपुंसकस्य' इत्यपि पाठः ।

नपुंसकवेदस्य । अपुंवेदग्रहणेनात्र नपुंसकवेदो गृह्यते न स्त्रीवेदः, तत्स्वरूपस्य प्रागभिहितत्वात् ।  
इति गाथार्थः ॥५३॥ कियद्दूरमेते गुणस्थानकेषु गच्छन्ति ? इत्याह—

(पारमा०) स्त्रीपुरुषयोरुपरि यस्येह कर्मण उदयेन राग उत्पद्यते, पित्तश्लेष्मोदये मार्जिता-  
मिलाषवत्, नगरमहादाहसमः पुनर्विपाकः 'अपुंवेदे' नपुंसकवेदस्य । इति गाथार्थः ॥५३॥  
गुणस्थानेष्वेतद्विपाकवेदनाय हास्यादिषट्कोद्देशाय चाह—

'तिण्ह वि होइ विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो ताव ।  
हासरईअरइभयं, सोगदुगंछा उ अह भणिमो ॥५४॥

व्याख्या—त्रयाणामपि 'भवति' जायते 'विपाकः' अनुभवो मिथ्यात्वात्सकाशाद्या-  
त्रद्वादरगुणस्थानकं तावदनुवृत्तिः, परतो नास्त्यनुवृत्तिः । उक्तं वेदत्रिकम्, हास्यादिषट्कमाह—  
'हास्यरत्यरतिभयं' हास्यं च रतिश्चारतिश्च भयं च द्वन्द्वैकवद्भावादेकत्वम् । शोकजुगुप्से च  
'अथ' अनन्तरं 'भणामः' प्रतिपाद्यामः । इति गाथार्थः ॥५४॥

हास्यस्वरूपमाह—

(पारमा०) त्रयाणामपि स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदानां विपाको भवति मिथ्यात्वाद्  
यावद्भादरोऽनिवृत्तिबादरस्तावत् । न परतः । हास्यरत्यरतिभयमिति समाहारः । शोकजुगुप्से  
अथ भणामः । इति गाथार्थः ॥५४॥

तत्र हास्यमोहनीयमाह—

मनिमित्तंनिमित्तं वा, जं हासं होइ इत्थ जीवस्स ।  
सो हासमोहणीयस्स होइ कम्मस्म उ विवागो ॥५५॥

व्याख्या—सह निमित्तेन वर्तत इति सनिमित्तं सकारणं, न विद्यते निमित्तं करणं यस्मिन्  
तदनिमित्तम्, तद्वा 'यच्छास्यं' मुखविकासलक्षणमदृष्टहासरूपं वा 'भवति' जायते 'अथ'  
संसारे 'जीवस्य' प्राणिनः, सः 'हास्यमोहनीयस्यैव' मुखविकासलक्षणस्यादृष्टहासरूपस्य  
वा भवति कर्मणस्तु 'विपाकः' अनुभवनम् । स इति विपाकापेक्षया पुंल्लिङ्गनिर्देशः । इति  
गाथार्थः ॥५५॥ रतिमोहनीयस्वरूपमाह—

(पारमा०) सनिमित्तं दर्शनभाषणश्रवणरूपवाङ्मकारणापेक्षं, अनिमित्तं बाह्यहेतुमन्तरेण  
किमप्यन्तःस्मृतवतो यद्वास्यं भवति । यदुक्तं श्रीस्थानाङ्गे—“अवहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती

१ "तिण्हवि जाण विवागो" इत्यपि पाठः । २ "य" इत्यपि पाठः । ३ "एत्थ" इत्यपि पाठः ।

सिद्धा । तंजहा-पासित्ता, भासित्ता, सुभित्ता, संभरित्ता” इति । अत्र संसारे जीवस्य  
म हास्यमोहनीयस्य कर्मणो भवति विपाकः । इति गाथार्थः ॥५५॥

रतिमोहनीयमाह—

सच्चित्ताचित्तेषु य, बाहिरदब्बेषु जस्स उदएणं ।

होइ रई रइमोहे, 'सो उ विवागो वियाणाहि ॥५६॥

(पू०) व्याख्या—सच्चित्ताश्चाचित्ताश्च—सच्चित्ताश्चाचित्ताः कलत्रगृहादयः तेषु च, 'बाह्यद्रव्येषु'  
आत्मव्यतिरिक्तेषु, 'यस्य' मोहनीयविशेषस्य 'उदयेन' विपाकेन भवति 'रतिः' प्रीतिः, ।  
( 'रतिमोहे' ) रतिमोहनीयस्यैव कर्मणस्तं विपाकं 'विजानीहि' अवबुध्यस्व । इति गाथार्थः ॥५६॥

अरतिमोहनीयमाह—

(पारमा०) सच्चित्तेषु देहकलत्रादिषु, अचित्तेषु कनकादिषु, चकारान्मिश्रेष्वलङ्कृतस्त्र्या-  
दिषु, बाह्यशब्देनान्तरसम्यक्त्वादीनां व्युदासेन द्रव्येषु यस्य कर्मण उदयेन रतिर्भवति रतिमोहे ।  
स 'तु' पुनर्विपाक इति विजानीहि । इति गाथार्थः ॥५६॥

अरतिमोहनीयमाह—

सच्चित्ताचित्तेषु य, बाहिरदब्बेषु जस्स उदएणं ।

अरई होइ हु जीवे, सो उ विवागो अरइमोहे ॥५७॥

(पू०) व्याख्या—'सच्चित्ताचित्तेषु च' स्त्र्यादिवेशमादिष्वशोभनेषु च 'बाह्यद्रव्येषु'  
आत्मनः पृथग्भूतेषु 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन अरतिः 'भवति' जायते रणरण-  
करूपा 'जीवे' जीवस्य स 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः 'अरतिमोहे' रणरणकरूपे,  
मोहस्यैव नान्यस्य । सर्वत्र पृथग्रथे सप्तमी प्राकृतत्वात् । इति गाथार्थः ॥५७॥

भयस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'सच्चित्ताचित्तेषु' उक्तस्वरूपेषु बाह्यद्रव्येषु यस्य कर्मण उदयेनारतिर्भवति  
जीवे, स 'तु' पुनर्विपाकोऽरतिमोहे । इति गाथार्थः ॥५७॥

भयमोहनीयमाह—

भयवज्जियम्मि जीवे, जस्सिह उदएणं हुंति कम्मस्स ।

सत्तवि भयटाणाइं, भयमोहे सो विवागो उ ॥५८॥

१ व्याख्याकारेण तु—“तं तु विवागं” इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ रूपमोहस्यैव जे० ।

३ “होइ” इत्यपि पाठः ।

(पू०) व्याख्या—‘भयवर्जिते’ भयरहिते ‘जीवे’ प्राणिनि यस्य ‘कर्मणः’ मोहनीय-  
विशेषस्योदयेन ‘भवन्ति’ जायन्ते ‘सप्तापि भयस्थानानि’ इहपरलोकादानाकस्मादाजीव-  
मरणाश्लाघारूपाणि । तत्रेहलोकभयं मनुष्यो मनुष्याद्धिमेति १ । परलोकभयं मनुष्यो गवादे-  
र्नरकादेर्वा विमेति २ । आदानं ग्रहणं तस्मान्द्वयमादानभयम् , अस्माकभयं राजादिर्धनादि  
ग्रहीष्यते, ३ । अकस्माद्भयमिदं घवलगृहादि ममोपरि निपतिष्यतीत्येवंरूपम् ४ । आजीविकाभयं  
दुष्कालादौ पतिते कथं वयं जीविष्यामः ? ५ । मरणभयं मरिष्यामो वयमित्येवं हृदयकम्परूपम्  
६ । अश्लाघामयं ममावर्णवादं लोकः करिष्यतीत्येवंरूपम् ७ । भयरूपं मोहं भयमोहं तस्य सः  
‘तु’ पुनः ‘विपाकः’ अनुभवः तुरेवकारार्थो वा । इति गाथार्थः ॥५८॥

शोकमोहनीयमाह—

(पारमा०) भयवर्जिते जीवे यस्य कर्मण इहोदयेन भवन्ति सप्तापि भयस्थानानि,  
भयमोहे स पुनर्विपाकः । भयस्थानानि च इहलोकपरलोकादानाकस्मादाजीवमरणाश्लाघारूपाणि ।  
तत्र मनुष्यस्य मनुष्याद्भयमितीहलोकभयम् १ । मनुष्यस्य महिषादेर्नरकादेर्वा भयं परलोक-  
भयम् २ । मम सकाशादयमिदमादास्यतीति भयमादानभयम् ३ । उपविष्टस्य सुप्तस्य वा  
मत्तमातङ्गादिनिमित्तमन्तरेण भयमकस्माद्भयम् ४ । धान्यहीनस्य दुष्कालपतनाघाकर्णनाद्भय-  
माजीविकाभयम् ५ । नैमित्तिकादिना मरिष्यसि त्वमधुनेत्यादिकथिते भयं मरणभयम् ६ ।  
अकार्यप्रकरणोन्मुखस्य विवचनार्या जनापवादमुत्प्रेक्ष्य भयमश्लाघाभयम् । इति गाथार्थः  
॥५८॥ शोकमोहनीयमाह—

सोगरहियमि जीवे, जस्सिह उदएण होइ कम्मस्स ।

अकंदणाइसोगो, तं जाणह सोगमोहणियं ॥५९॥

(पू०) व्याख्या—‘शोकरहिते’ व्यपगतशोके ‘जीवे’ प्राणिनि स्वभावेन यस्य ‘तु’ पुन-  
मोहस्य ‘उदयेन’ विपाकेन ‘भवन्ति’ जायते कर्मणः, किम् ! इत्याह—‘आक्रन्दनादिशोकः’  
आक्रन्दनमादिर्यस्य शोकस्य तदाक्रन्दनादिशोकः । आक्रन्दनं सशब्दं सदुःखं सताडनं प्रल-  
पनम् । आदिशब्दादुरोऽभिघातादि, तत् ‘जानोहि’ अवबुध्यस्व शोकमोहनीयम् इति गाथार्थः  
॥५९॥ जुगुप्सामोहनीयमाह—

(पारमा०) शोकरहिते जीवे यस्य कर्मण उदयादिहाक्रन्दनादि, आदिशब्दादुरस्ताडन-

१ “विवेचनायाम्” इत्यपि । २ “व्याख्याकारेण तु—“जस्स उ उदएण” इत्येवत्पाठानुसारेण  
व्याख्यातम् । ३ “सोगं” इत्यपि पाठः । ४ “जाणह्यु” इत्यपि पाठः ।

भूषीठलुठनादिशोको भवति, तज्जानीहि शोकमोहनीयम् । इति गाथार्थः ॥५६॥ जुगुप्सा-  
मोहनीयमाह—

दुग्गंधमलिणगेषु य, 'अन्भितरबाहिरेषु दव्वंसु ।

जेण विलीयं जीवे, उण्णज्जइ सा 'दुगु' छा उ ॥६०॥

(पू०) व्याख्या—दुर्गन्धाश्च मलिनाश्च दुर्गन्धमलिनाः, दुर्गन्धमलिना एव दुर्गन्ध-  
मलिनकाः, स्वार्थे कन् । दुर्गन्धा विरूपगन्धाः मलिना रेणुगुण्डिताः तेषु च, सहाभ्यन्तर-  
बाह्यैर्वर्तन्त इति साभ्यन्तरबाह्यानि, तेषु च, द्रवन्ति क्षरन्ति च तान् तान् पर्यायानिति-  
द्रव्याणि (तेषु), आभ्यन्तराणि रसासृगादीनि, बाह्यान्यशुच्यादीनि, चकारादपरेषु च तथाविध-  
द्रव्येषु 'येन' कर्मणा 'व्यलीकं' चित्तस्यान्यथात्वं जीवे' जीवस्य 'उत्पद्यते' जायते 'सा  
जुगुप्सा' सैव जुगुप्सामोहनीयं, नान्या । इति गाथार्थः ॥६०॥

कियद्दूरं हास्यादीनामनुष्टुप्तिर्मवति ? इत्याह—

(पारमा०) दुर्गन्धमलिनकेष्वभ्यन्तरबाह्येषु द्रव्येषु, आभ्यन्तराणि रसासृगादीनि, बाह्या-  
न्यशुच्यादीनि, तेषु येन कर्मणा व्यलीकं मुखमोटननासाकुञ्चनादिकं जीवस्योत्पद्यते सा जुगु-  
प्सा । इति गाथार्थः ॥६०॥

हास्यादिषट्कस्य गुणस्थानकेषूदयमाह—

'छण्ह वि होइ विवागो, मिच्छाओ जा अपुव्वकरणस्स ।

चरमसमउत्ति परओ, नत्थि विवागो 'उ छण्हं पि ॥६१॥

व्याख्या—'षण्णामपि' हास्यादीनां 'येन' कारणेन 'विपाकः' उदयो 'मिथ्यात्वात्'  
उक्तस्वरूपात्सकाशाद्यावत् 'अपूर्वकरणस्य' निवृत्तिबादरगुणस्थानकस्या 'प्राप्तपूर्वकस्य' करणस्य  
वा 'चरमसमयः' अपश्चिमसमयः, 'इतिः' समाप्तौ । 'परतः' अग्रतो 'नास्ति' न विद्यते  
'विपाकस्तु' अनुभवस्तु 'षण्णामपि' हास्यादीनाम् । इति गाथार्थः ॥६१॥

उक्तं मोहनीयम्, आयुष्कमाह—

(पारमा०) षण्णामपि भवति 'विपाकः' उदयो मिथ्यात्वाद्यावदपूर्वकरणस्य चरमसमय  
इति । परतोऽनिवृत्तिबादरतोऽनिवृत्तिबादरादिषु पुनर्नास्ति विपाकः षण्णामपि । इति गाथार्थः ॥६१॥

अथ मोहनीयं निगमयन्नायुष्कर्मप्रस्तावनामाह—

१ व्याख्याकारेण तु "सन्भितरबा—" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ "दुग्गंछा उ" इत्यपि  
पाठः जे० । ३ 'प्सा' तदे (दे?) च जुगुप्सामो० जे० । ४ "छण्हवि जाण" इत्यपि पाठः । व्याख्या-  
कारेण तु—"जेण" इत्येतत्पाठानुसारे व्याख्यातम् । ५ "य" इत्यपि पाठः । ६ प्राप्तिपूर्वन्य जे० ।

भणिओ मोहविवागो आयुष्कर्मं तु पंचमं भणिमां ।

तं होइ चउपयारं, नरतिरिमणुदेवभेएहिं ॥६२॥

व्याख्या—‘भणितः’ प्रतिपादितः ‘मोहविपाकः’ मोहनीयोदयः । ‘आयुष्कर्म तु’ उक्तस्वरूपं ‘पञ्चम’ मन्त्रयया ‘भणिमो’ इति प्रतिपादयामः साम्प्रतम् । ‘तदपि’ आयुष्कर्मचतुष्प्रकारमेव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, कथम् ? इत्याह—‘नरतिरिमणुदेवभेदेः’ नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवभेदरूपमायुः । नरशब्देन नरकायुर्गृह्यते । मनुष्येति पृथगुपादाना(ना ?)न्नरकेति नोक्तं गाथामङ्गभयात् । इति गाथार्थः ॥६२॥

ननु किमायुः सुखदुःखे प्रयच्छति ? उत न ? इत्याह—

(पारमा०) भणितो मोहविपाकः । आयुष्कर्म पञ्चमं मणामः । तद्भवति चतुष्प्रकारं, नरेति नरकायुः, उचरन्न मनुष्यायुषः पृथगुपादानात्सूत्रस्य सूचकत्वाच्च । निरिति तिर्यगायुः, मन्विति मनुष्यायुर्देवायुश्च भेदैः प्रकारैः इति गाथार्थः ॥६२॥

सामान्येनायुस्वरूपं प्रतिपादयति—

दुस्खं न देइ आउं, नैव सुहं देइ चउसुवि गईसु ।

दुस्खसुहाणाहारं, धरेइ देहट्टियं जीवं ॥६३॥

(पू०) व्याख्या—‘दुस्खं’ असातावेदनीयं ‘न ददाति’ न प्रयच्छति ‘आयुः’ कर्म, तर्हि सुखं दास्यति ? इत्याह—‘नैव सुखं ददाति’ न प्रयच्छति । ‘सुतसुखपि गतिषु’ नारकतिर्यङ्गनरामरलक्षणासु दुःखसुखयोः ‘आधारं’ आश्रयं ‘धारयति’ अवस्थापयति ‘देहस्थितं’ शरीराश्रितं ‘जीवं’ प्राणिनम् । इति गाथार्थः ॥ ६३ ॥

‘नरकायुष्कस्वरूपमाह—

(पारमा०) ‘दुस्खं’ असातं न ददाति ‘आयुः’ कर्म नैव च सुखं, सुखदुःखदाने सातासातरूपस्य वेदनीयस्यैव समर्थत्वात् । आयुस्तु दुःखसुखाधारभूतं जीवं देहस्थितं धारयति, एतावत् एव सामर्थ्यस्य सद्भावात् । इति गाथार्थः ॥६३॥

सम्प्रति नरकायुः प्रतिपादयन् हृदिदृष्टान्तं भाषयति—

जं नेरइयं नारथभवम्मि तर्हि धरइ उन्वियंतंपि ।

जाणसु तं निरयाउं, हडिसरिसो तस्स उ विवागो ॥६४॥

१ व्याख्याकारेण तु ‘तंपि हु चउपयारं’ इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ मोहनीयविपाकः जे० । ३ ० दानान्नरकेति जे० । ४ ‘न पि अ’ इत्यपि पाठः । ५ नारका जे० ।

(पू०) व्याख्या—‘यत्’ यस्मात् ‘नारकिकं’ नरकोत्पन्नप्राणिनं ‘नारकमवे’ नारकाणां भवो नारकमवो नारकोत्पत्तिस्थानं तस्मिन्, ‘तं’ नारकं ‘धारयति’ अवस्थापयति “उद्विजन्तमपि” चेतस्युद्वेगं कुर्वाणमपि ‘जानीहि’ विद्धि, तत् ‘नरकायुः’ नरकेषु प्राणिनोऽवस्थितिरूपम् । ‘हृदिः’, प्रतीता तथा सदृशस्तुल्यस्तत्तुल्यः, ‘तस्य तु’ पुनर्नारकायुष्कस्य ‘विपाकः’ अनुभवः । यथा हि राज्ञा ‘हृदौ क्षिप्तश्रौगदिहृदयेनोद्वेगं कुर्वन्नपि’ तथा ध्रियते विवक्षितकालं यावत्, तस्या विघटनाभावे न निर्गच्छति तथा नरकादावपि । इति गाथार्थः ॥६४॥

उक्तं नरकायुष्कम्, तिर्यगादीनामतिदेशमाह—

(पारमा०) ‘यत्’ कर्म नैरयिकं निरयोत्पन्नजीवं नारकमवे तस्मिन् धारयति उद्विजन्तमपि तत्कर्म निरयायुर्जानीहि । निष्क्रान्ता अयाद् इष्टफलदैवात्तत्रोत्पन्नानां सातवेदनाभावेनेति निरयाः । हृदिसदृशस्तस्य तु विपाकः, यथा चौगादिस्तलवरादिना हृदिक्षिप्तो गन्तुमना अपि तथा धारयते तथा जीवोऽपि नरकादिदुर्गतेर्निष्क्रमितुमना अपि नरकाधायुषा हृदिसदृशेन धारयते । इति गाथार्थः ॥६४॥

नरकायुरुक्त्वा तिर्यगायुष्कादीनामतिदेशमाह—

एवं तिरियं मणुयं देवं तिरियाइएसु भावेषु ।

जं धरइ तवभवगयं, तं तेसिं आउयं भणियं ॥६५॥

व्याख्या—‘एवं’ उक्तेनैव प्रकारेण ‘निर्यञ्च’ गवादिकं ‘मनुष्यं’ पुरुषादिकं ‘देवं’ भवनपत्यादिकं ‘तिर्यगादिषु भावेषु’ भवानुभूतिलक्षणेषु यद् ‘धारयति’ अवस्थापयति, तेषां भवस्तद्भवस्तद्गतं नारकादिभवगतं ‘तद्’ आयुः ‘तेषां’ तिर्यङ्मनुष्यदेवानामायुष्कं मणितम् । तिर्यग्भवे तिर्यगायुष्कं, मनुष्यभवे मनुष्यायुष्कं, देवभवे देवायुष्कं ‘मणितं’ प्रतिपादितम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

उक्तनायुष्कर्म, पठं नामाह—

(पारमा०) ‘एवं’ उक्तप्रकारेण ‘निर्यञ्च’ ‘गवादिकं’ मनुष्यं पुरुषादिकं ‘देवं’ भवनपत्यादिकं ‘तिर्यगादिषु भावेषु’ भवानुभूतिलक्षणेषु ‘यत्’ धारयति तद्भवगतम्, तेषां तिर्यगादीनां भवः तत्र स्थितं तत्तेषां तिर्यगादीनामायुरुक्तम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

आयुर्निगमयन् नामप्रस्तायनामाह—

भणियं आउयकम्मं, ऋट्टं, कम्मं तु भणणए नामं ।



तं चित्तगरसमाणं, 'जह होइ तहा निसामेह ॥६६॥

(पू०) व्याख्या—'भणित्त' प्रतिपादित्तमायुष्कर्म । षष्ठं नाम कर्म भण्यते । नामदष्टान्त-  
माह - तत् 'चित्रकरसमान' चित्रकरसदृशं 'अनेकरूपं' नानारूपं ' 'जीव' इति प्राणिनं  
'करोति' निर्वर्तयति । इति गाथार्थः ॥६६॥

दष्टान्तमेव व्यक्तीकुर्वन्माह—

(पारमा०) मणित्तमायुष्कर्म, षष्ठं कर्म पुनर्नाम भण्यते । तच्चित्रकरसमाने यथा भवति,  
यथा निश्चमयत । इति गाथार्थः ॥६६॥

प्रतिज्ञातमाह—

जह चित्तयरो निउणो, अणेगरूवाइं कुणइ रूवाइं ।

सोहणमसोहणाइं, 'चोक्खाचोक्खेहि वण्णेहिं ॥६७॥

व्याख्या—यथेति दष्टान्तार्थः । 'चित्रकरः' 'विज्ञानिकः' 'निपुणः' नैपुण्ययुक्तः 'अनेक-  
रूपाणि' बहुरूपाणि 'करोति' विदधाति 'रूपाणि' प्रतिविम्बानिः । तन्त्र्येवाह—'शोभनानि'  
सुरूपाणि 'अशोभनानि' विरूपाणि, चोक्षाः निर्मला अचोक्षाः अशुद्धा अनिर्मलास्त्वैर्षणकैर्ह-  
रितालादिभिः । इति गाथार्थः ॥६७॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथा चित्रकरो 'निपुणः' स्वकर्मणि प्रवीणः 'अनेकरूपाणि' 'नानाप्रका-  
राणि 'रूपाणि' हस्त्यश्वादीनि करोति 'शोभनाशोभनानि' रम्यारम्याणि ' 'चोक्षाचोक्षैः'  
विशदाविशदैः 'वर्णैः' हरितालादिभिः । इति गाथार्थः ॥६७॥

दार्ष्टान्तिके योजयति—

तह नामंपि य कम्मं, अणेगरूवाइं कुणइ जीवस्स ।

सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइं लोयस्स ॥६८॥

व्याख्या—'तथा' तेनैव प्रकारेण नामापि कर्म 'अनेकरूपाणि' नानारूपाणि श्रु-  
कुब्जवामनादिलक्षणानि 'करोति' निर्वर्तयति 'जीवस्य' आत्मनः, अनेकरूपाण्येवाह—शोभ-  
नानि सुरूपाणि, अशोभनानि विरूपाणि, किभूतानि च तानि १ इत्याह—'इष्टानिष्टानि'  
अभिमतानभिमतानि 'लोकस्य' प्राणिसमूहस्य । सर्वत्रानुस्वारोऽक्षाक्षणिकः प्राकृतत्वाद्द्रष्टव्यः ।  
इति गाथार्थः ॥६८॥

१ "अणेगरूवं जियं कुणइ" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । २ जियमिति प्रा० जे०  
३ "चुक्खमचोक्खेहिं" इत्यपि पाठः । ४ "विज्ञानिकः" इत्यपि पाठः ५ "नानाकाराणि" इत्यपि पाठः । ६  
"चुक्खा चुक्खैः" इत्यपि पाठः । ७ ०नि लोकस्य अभिमता जे० ।

(पू०) व्याख्या—‘यत्’ यस्मात् ‘नारकिकं’ नरकोत्पन्नप्राणिनं ‘नारकभवे’ नारकाणां भवो नारकभवो नारकोत्पत्तिस्थानं तस्मिन्, ‘तं’ नारकं ‘धारयति’ अवस्थापयति ‘उद्विजन्तमपि’ चेतस्युद्भेगं कुर्वाणमपि ‘जानोहि’ विद्धि, तत् ‘नरकायुः’ नरकेषु प्राणिनोऽवस्थितिरूपम् । ‘हृदिः’, प्रतीता तथा सदृशस्तुल्यरतत्तुल्यः, ‘तस्य तु’ पुनर्नारकायुष्कस्य ‘विपाकः’ अनुभवः । यथा हि राज्ञा ‘हृदौ क्षिप्तश्रौंगदिहृदयेनोद्भगं कुर्वन्नपि’ तथा ध्रियते विवक्षितकालं यावत्, तस्या विघटनाभावे न निर्गच्छति तथा नरकादावपि । इति गाथार्थः ॥६४॥

उक्तं नरकायुष्कम्, तिर्यगादीनां मतिदेशमाह—

(पारमा०) ‘यत्’ कर्म नैरयिकं निरयोत्पन्नजीवं नारकभवे तस्मिन् धारयति उद्विजन्तमपि तत्कर्म निरयायुर्जानीहि । निष्क्रान्ता अयाद् इष्टफलदैवात्तत्रोत्पन्नानां सातवेदनाभावेनेति निरयाः । हृदिसदृशस्तस्य तु विपाकः, यथा चौरादिस्तलवरादिना हृदिक्लिप्तो गन्तुमना अपि तथा धार्यते तथा जीवोऽपि नरकादिदुर्गतेनिष्क्रमितुमना अपि नरकाधायुषा हृदिसदृशेन धार्यते । इति गाथार्थः ॥६४॥

नरकायुष्कत्वा तिर्यगायुष्कादीनामतिदेशमाह—

एवं तिरियं मणुयं देवं तिरियाहएसु भावेषु ।

जं धरइ तन्नभवगयं, तं तेसिं आउयं भणियं ॥६५॥

व्याख्या—‘एषं’ उक्तैर्नैव प्रकारेण ‘तिर्यञ्च’ गवादिकं ‘मनुष्यं’ पुरुषादिकं ‘देवं’ भवनपत्यादिकं ‘तिर्यगादिषु भावेषु’ भवानुभूतिलक्षणेषु यद् ‘धारयति’ अवस्थापयति, तेषां भवस्तद्भवस्तद्भूतं नारकादिभवगतं ‘तद्’ आयुः ‘तेषां’ तिर्यङ्मनुष्यदेवानामायुष्कं मणितम् । तिर्यग्भवे तिर्यगायुष्कं, मनुष्यभवे मनुष्यायुष्कं, देवभवे देवायुष्कं ‘भणितं’ प्रतिपादितम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

उक्तमायुष्कर्म, पठं नामाह—

(पारमा०) ‘एवं’ उक्तप्रकारेण ‘तिर्यञ्च’ ‘गवादिकं’ मनुष्यं पुरुषादिकं ‘देवं’ भवनपत्यादिकं ‘तिर्यगादिषु भावेषु’ भवानुभूतिलक्षणेषु ‘यत्’ धारयति तद्भवगतम्, तेषां तिर्यगादीनां भवः तत्र स्थितं तत्तेषां तिर्यगादीनामायुष्कम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

आयुर्निगमयन्न नामप्रस्तावनामाह—

भणियं आउयकम्मं, छट्टं, कम्मं तु भणणं नामं ।

तं चित्तगरसमाणं, 'जह होइ तहा निसामेह ॥६६॥

(पू०) व्याख्या—'भणित' प्रतिपादितमायुष्कर्म । षष्ठं नाम कर्म भण्यते । नामदष्टान्त-  
माह - तत् 'चित्रकरसमान' चित्रकरसदृशं 'अनेकरूपं' नानारूपं ' 'जोष' इति प्राणिनं  
'करोति' निर्वर्तयति । इति गाथार्थः ॥६६॥

दष्टान्तमेव व्यक्तीकुर्वन्माह—

(पारमा०) भणितमायुष्कर्म, षष्ठं कर्म पुनर्नाम भण्यते । तच्चित्रकरसमानं यथा भवति  
नथा निक्षमयत । इति गाथार्थः ॥६६॥

प्रतिज्ञातमाह—

जह चित्तयरो निउणो, अणेगरूवाइं कुणइ रूवाइं ।

सोहणमसोहणाइं, 'चोक्खाचोक्खेहि वण्णेहिं ॥६७॥

व्याख्या—यथेति दष्टान्तार्थः । 'चित्रकरः' 'विज्ञानिकः' 'निपुणः' नैपुण्ययुक्तः 'अनेक-  
रूपाणि' बहुरूपाणि 'करोति' विदधाति 'रूपाणि' प्रतिविम्बानिः । तान्येवाह—'शोभनानि'  
सुरूपाणि 'अशोभनानि' विरूपाणि, चोक्षाः निर्मला अचोक्षाः अशुद्धा अनिर्मलास्तैर्वर्णकैर्ह-  
रितालादिभिः । इति गाथार्थः ॥६७॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथा चित्रकरो 'निपुणः' स्वकर्मणि प्रवीणः 'अनेकरूपाणि' 'नानाप्रका-  
राणि 'रूपाणि' हस्त्यश्वादीनि करोति 'शोभनाशोभनानि' रम्यारम्याणि ' 'चोक्षाचोक्खैः'  
विशदाविशदैः 'वर्णैः' हरितालादिभिः । इति गाथार्थः ॥६७॥

दार्ष्टान्तिके योजयति—

तह नामंपि य कम्मं, अणेगरूवाइं कुणइ जीवस्स ।

सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइं लोयस्स ॥६८॥

व्याख्या—'तथा' तेनैव प्रकारेण नामापि कर्म 'अनेकरूपाणि' नानारूपाणि श्रृजु-  
कुब्जवामनादिलक्षणानि 'करोति' निर्वर्तयति 'जोषस्य' आत्मनः, अनेकरूपाण्येवाह—शोभ-  
नानि सुरूपाणि, अशोभनानि विरूपाणि, किभूतानि च तानि ? इत्याह—'इष्टानिष्टानि' ।  
अभिमतानभिमतानि 'लोकस्य' प्राणिसमूहस्य । सर्वत्रानुस्वारोऽस्लाक्षणिकः प्राकृतत्वाद्द्रष्टव्यः ।  
इति गाथार्थः ॥६८॥

१ "अणेगरूवे जियं कुणइ" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । २ जियमिति प्रा० जे०  
३ "चुक्खमचोक्खेहिं" इत्यपि पाठः । ४ "विज्ञानिकः" इत्यपि पाठः । ५ "नानाकाराणि" इत्यपि पाठः । ६  
"चुक्षा चुक्खैः" इत्यपि पाठः । ७ ०नि लोकस्य अभिमता जे० ।

नाम्नो 'निरुवतेन शब्दं व्युत्पादयंस्तस्यैव भेदानाह—

(पारमा०) तथा नामकर्माणि जीवस्य 'अनेकानि' बहूनि रूपाणि 'शोभना-  
शोभनानि' शुभाशुभानि, अत एव लोकस्येष्टानिष्टानि करोति । अयमाशयः—शुभान्यपि  
बहुभेदानि अशुभान्यपि बहुभेदान्येव । एतेन मामान्यतः शुभाशुभभेदाद् द्विविधमपि नाम भवतीत्य  
गन्तव्यम् । यदागमः—'नामं कर्मं दुविहं. सुहमसुहं च अहिय । सुहस्स उ बहू भेगा,  
एमेव असुहस्सवि ॥१॥' इति गाथार्थः ॥६८॥ नामकर्मणो व्युत्पत्तिपूर्वकं भेदोपक्षेपमाह—

गह्याइएसु जीवं नामइ भेएसु जं तओ नामं ।

तस्म उ बायालीसं. भेया अहवावि सत्तटी ॥६९॥

(पू०) व्याख्या—गतिरादिर्येषां ते गत्यादयः, गतिर्नरकगत्यादिका आदिशब्दाज्जात्यादयो  
गृह्यन्ते तेषु च, 'जिय' प्राणिनं, 'सः' पादपूरणे, नामयति 'भेदेषु' विशेषेषु 'यद्' यस्मा-  
त्कारणात् 'ततः' तस्मादन्वर्थवलाक्षाम उच्यते, तस्य तु पुनर्नाम्नः कर्मणो द्विचत्वारिंशद्  
'भेदाः' विशेषाः मंग्यया, अथवेति पक्षान्तरमसूचकः । पक्षान्तरमाश्रित्य सप्तषष्टरपि भवन्ति  
भेदाः । इति गाथार्थः ॥६९॥

नाम्न एवोत्तरभेदानाह—

(पारमा०) 'गह्यादिषु' वक्ष्यमाणेषु भेदेषु 'जीव' प्राणिनं 'नामयति' तत्तत्पर्या-  
याद्युभवनं प्रति प्रवणयति 'यद्' यस्मात् 'ततः' तस्मान्नामेत्युच्यते । तस्य पुनर्द्विचत्वारिंश-  
द्भेदाः, अथवाऽपि सप्तषष्टिः ॥६९॥

अहवावि हु तेणउई, भेया पयडीण हुंति नामस्स ।

अहवा तिउत्तरसयं, सव्वेवि जहकमं भणिमो ॥७०॥

(पू०) व्याख्या—'अथवा' इति पक्षान्तरार्थ एव 'अपिः' संभावने समुच्चये वा । 'हुः'  
पादपूरणे । पक्षान्तरमङ्गीकृत्य 'त्रिनवतिरपि संभाव्यते' त्रिभिरधिका नवतिः, त्रिनवतिः,  
साऽपि संभवति । 'भेदाः' विशेषाः 'प्रकृतीनां' कर्मप्रकृतीनां 'भवन्ति' जायन्ते, कस्य ?  
'नाम्नः' कर्मणोऽथवा 'त्र्युत्तरशतं' त्रिभि रूत्तरं शतं त्र्युत्तरशतं भवति, भेदानामिति शेषः,  
नाम्न एव । यद्येवं ततः किम् ? इत्याह—मर्वेऽप्येते प्रागभिहिता भेदाः 'यथाकर्म' यथापरिपाठ्या  
'भणामः' प्रतिपादयामः । इति गाथार्थः ॥७०॥

१ 'पदमखुनेन० जे० टिप्पणी । २ व्याख्याकारेण तु "सु य जियं" इतिपाठानुसारेण व्याख्यातम् ३  
"य" इत्यपि पाठः । ४ "जीवं" जे० । ५—"इयि" इति व्याख्याकाराः । ६ "होति" इत्यपि पाठः । ७  
'अभिन्' जे० टिप्पणी ।

‘यथोद्देशस्तथा निर्देशः’ इति न्यायान्नाम्नः प्रकृतभेदानाह—

(पारमा०) अथवाऽपि त्रिनवतिर्भेदाः । अथवा त्र्युत्तरशतं नाग्नः प्रकृतीनां भवति । सर्वानपि द्विचत्वारिंशत्सप्तषष्टित्रिनवतित्र्युत्तरशतलक्षणान् यथाक्रमं भणामः, भेदानिति योज्यम् । इति गाथार्थः ॥७०॥

तत्र द्विचत्वारिंशत्माह—

पठमा बायालीसा, गहजाइसरीरअंगुवंगे य ।  
 बंधणसंघायणसंघयणसंठाणनामं च ॥ ७१ ॥  
 तह वण्णगंधरसफासनामअगुरुलहुयं च बोद्धव्वं ।  
 उवघायपराघायाणुपुव्विउस्सासनामं च ॥ ७२ ॥  
 आयावुज्जोयविहायगई तसथावराभिहाणं च ।  
 बायरसुट्टुमं पज्जत्तापज्जत्तं च नायव्व ॥ ७३ ॥  
 पत्तेयं माहारण,थिरमथिर‘सुभासुभं च नायव्वं ।  
 ‘सूभगदूभगनामं, सूसर तह दूसरं चैव ॥ ७४ ॥  
 आइज्जमणाइज्जं, जसकितीनाममजसकिती य ।  
 निम्माणं तित्थयरं, भेयाणवि हुंति मे भेया ॥ ७५ ॥

(पू०) व्याख्या—‘प्रथमा’ आद्या उद्देशापेक्षया द्विचत्वारिंशदवगन्तव्याः, काः १ इत्याह-  
 गत्यादिकाः । गम्यतेऽस्यामिति गतिर्गमनं वा, गतिर्नरकादिका, जातिपक्षसमाश्रयणात्सर्वत्रैकत्वं  
 द्रष्टव्यम्, यस्योदये नारकतिर्यङ्गरामरलक्षणा गतिर्भवति जीवस्य तद्गतिनाम उच्यते १ ।  
 जायते जन्यते वा जातिरेकेन्द्रियादिका, यदुदये एकेन्द्रियादिकत्वं भवति जीवस्य तदेकेन्द्रिय-  
 (यादिजाति) नाम भवति ज्ञातव्यम् २ । शीर्यत इति शरीरमौदारिकादि, यस्य कर्मण उदये  
 औदारिकादिशरीरं संपद्यते देहिनां तच्छरीरं नामावबोद्धव्यं ज्ञातव्यमिति सर्वत्र क्रिया ३ ।  
 अङ्गानि शिरःप्रभृतीनि, उपाङ्गान्यङ्गुल्यादीनि, यस्य कर्मण उदये सर्वाण्येवाङ्गोपाङ्गानि निष्प-  
 दन्ते तदङ्गोपाङ्गनाम च ज्ञातव्यम् ४ । वध्यत इति बन्धनमौदारिकबन्धनादि, तद्येन कर्मणा  
 क्रियते तदौदारिक(कादि)बन्धनं नाम भवति ज्ञातव्यमिति क्रियाध्याहारः क्रियाऽभावे ५ । संघा-

१ “सुहासुहं” इत्यपि पाठः २ “सूहगदूहगं” इत्यपि पाठः । ३ नाम च बो० जे० । ४ ०नादिना येन कर्मणा जे० ।

नाम्नो 'निरुवतेन शब्दं व्युत्पादयंस्तस्यैव भेदानाह—

(पारमा०) तथा नामकर्मापि जीवस्य 'अनेकानि' ब्रह्मि रूपाणि 'शोभना-  
शोभनानि' शुभाशुभानि, अत एव लोकस्येष्टानिष्टानि करोति । अयमाशयः—शुभान्यपि  
बहुभेदानि अशुभान्यपि बहुभेदान्येव । एतेन सामान्यतः शुभाशुभभेदाद् द्विविधमपि नाम भवतीत्य  
गन्तव्यम् । यदागमः—'नामं कम्मं दुविहं. सुहमसुहं च अहिय । सुहस्स उ बहू भेगा,  
एमेव असुहस्सवि ॥१॥' इति गाथार्थः ॥६८॥ नामकर्मणो व्युत्पत्तिपूर्वकं भेदोपक्षेपमाह—

गइयाइएसु जीवं नामइ भेएसु जं तओ नामं ।

तस्म उ वायालीसं भेया अहवावि सत्तट्ठी ॥६९॥

(पू०) व्याख्या—गतिरादिर्येषां ते गन्यादयः, गतिर्नरकगत्यादिका आदिशब्दाज्जात्यादयो  
गृह्यन्ते तेषु च, 'जिय' प्राणिनं, 'चः' पादपूरणे, नामयति 'भेदेषु' विशेषेषु 'यद्' यस्मा-  
त्कारणात् 'ततः' तस्मादन्वर्थब्रह्मनाम उच्यते, तस्य तु पुनर्नामनः कर्मणो द्विचत्वारिंशद्  
'भेदाः' विशेषाः संख्यया. अथवेति पक्षान्तरसंख्यचकः । पक्षान्तरमाश्रित्य सप्तषष्टिरपि भवन्ति  
भेदाः । इति गाथार्थः ॥६९॥

नाम्न एवोत्तरभेदानाह—

(पारमा०) 'गत्यादिषु' वक्ष्यमाणेषु भेदेषु 'जीव' प्राणिनं 'नामयति' तत्तत्पर्या-  
यानुभवनं प्रति प्रवणयति 'यद्' यस्मात् 'ततः' तस्मान्नामेत्युच्यते । तस्य पुनर्द्विचत्वारिंश-  
द्भेदाः. अथवाऽपि सप्तषष्टिः ॥६९॥

अहवावि हु तेणउई, भेया पयडीण हुंति नामस्स ।

अहवा तिउत्तरसयं, सव्वेवि जहकमं भणिमो ॥७०॥

(पू०) व्याख्या—'अथवा' इति पक्षान्तरार्थ एव 'अपिः' संभावने समुच्चये वा । 'हुः'  
पादपूरणे । पक्षान्तरमङ्गीकृत्य 'त्रिनवतिरपि संभाव्यते' त्रिभिरधिका नवतिः, त्रिनवतिः,  
साऽपि संभवति । 'भेदाः' विशेषाः 'प्रकृतीनां' कर्मप्रकृतीनां 'भवन्ति' जायन्ते, कस्य ?  
'नाम्नः' कर्मणोऽथवा 'श्रुत्तरशतं' त्रिभिरुत्तरं शतं श्रुत्तरशतं भवति, भेदानामिति शेषः,  
नाम्न एव । यद्येवं ततः किम् ? इत्याह—सर्वेऽप्येते प्रागभिहिता भेदाः 'यथाक्रमं' यथापरिपाठ्या  
'भणामः' प्रतिपादयामः । इति गाथार्थः ॥७०॥

१ 'दृढमञ्जनेन० जे० टिप्पणी । २ व्याख्याकारेण तु "सु य जियं" इतिपाठानुसारेण व्याख्यातम् ३  
"च" इत्यत्रि पाठ । ४ "जीवं" जे० । ५—"इयि" इति व्याख्याकाराः । ६ "होति" इत्यत्रि पाठः । ७  
'अभिदं' जे० टिप्पणी ।

र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येक-जीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, 'यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् ३८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तन्स्थिरनाम २६ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रसृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, 'ज्ञातव्य' ३मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, 'यस्योदये सौभाग्य-युक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तसौभाग्यनाम ३३ । 'दुभगमिति' दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्देगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । ३'सूसरं' इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सूसरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । 'दूसरं' इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्यस्मात्तद्दूसरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदया-ज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदया-ज्जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवह्नां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यशश्च कीर्तिश्च यशःकीर्त्ती, तल्लक्षणं नाम यशःकीर्त्तिनाम, यशसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः । 'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,' 'पराक्रमकृत यशः' इतिवचनात्, यदुदयाद्यशःकीर्त्तिर्भवति जीवस्य तद्यशःकीर्त्तिनाम ३९ । अयशःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तद्यशःकीर्त्तिनाम ४० । 'निम्माणं' इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम द्व्यधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वत्रिभूवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विच-त्वारिंशतो 'भेदाः' विशेषाः, 'भेदानामपि' विशेषाणामपि 'भवन्ति' जायन्ते 'इमे' वक्ष्य-माणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गो-पाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

१ यदा व्याप्तौ जे० । २ "भवबोद्धव्य० जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ यस्य नद्० जे० ।

त्यते येन तत्संघातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरी-  
रऽपि येने कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां 'संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६ । संहननं  
शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्षभनाराचादिर्मवति तत्संहनननाम ७ । संस्थी-  
यते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं  
भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८ । इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समुच्चयार्थः । वर्णनं वर्णो  
वर्णणाद्वा (?) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम  
९ । गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १० ।  
रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकषायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां  
तद्रसनाम ११ । स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चापघ्ना सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति  
तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२ । अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि  
लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३ । उपहन्यते येन कर्मणा तदुपधा-  
तनाम, यदुदये जीवस्य स्वावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४ । परानाहन्ति पराघातनाम  
यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५ । आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ  
गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुवद्बुधमस्य १६ । उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वा-  
सनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७ । इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥  
आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन  
आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८ । उद्धोतनमुद्धोतस्तदुपलक्षितं नाम उद्-  
घोतनाम, यथा स्वघोतक उद्धोतयति उद्धोतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये  
उद्धोतयति तत्कर्म तस्योद्धोतनामोच्यते १९ । विहायसा गम्यते यथा प्राणिभिः सा  
विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २० । न केवलमातपोद्धोते  
अवगन्तव्ये, विहायोगतिश्चावबोद्धव्या । अस्रस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधा-  
नमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१ । स्थावर इत्यभिधानं  
नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२ । वादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम  
वादरनाम, यदुदये जीवो वादरपरिणामपरिणतो भवति २३ । छक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण  
उदये जीवः छक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्छक्ष्मनाम २४ । पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तपर्याप्तं  
तल्लक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५ । अप-

१ संघातनं सं० जे० । २ ०दि भवति जे० । ३ वर्णनाद्वा जे० । ४ सुकुमालादिः । ५ 'आकाशेन जे०  
टिप्पणी । ६ आवापृष्टव्या जे० ।



र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिमिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येक-जीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, 'यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् ३८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २६ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति - कृत्वाऽशुभनामोच्यते, 'ज्ञातव्य' ३मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, 'यस्योदये सौभाग्य-युक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तसौभाग्यनाम ३३ । 'दुर्भगमिति' दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयोद्वेगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । ३'सूसरं' इति शोमनः स्वरो यस्य तत्सूसरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । 'दूसरं' इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्यस्मात्तद्दूसरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदया-ज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ब्राह्मणाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदया-ज्जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्याक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यश्चक्षु कीर्तिश्च यशःकीर्त्ती, तल्लक्षणं नाम यशःकीर्त्तिनाम, यशसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः । 'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,' 'पराक्रमकृत यशः' इतिवचनात्, यदुदयाद्यशःकीर्त्तिर्भवति जीवस्य तद्यशःकीर्त्तिनाम ३९ । अयशःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयशःकीर्त्तिनाम ४० । 'निम्माणं' इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्ततीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विच-त्वारिंशतो 'भेदाः' विशेषाः, 'भेदानामपि' विशेषाणामपि 'भवन्ति' जायन्ते 'इमे' वक्ष्य-माणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गो-पाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

१ यदा व्याप्ती जे० । २ "भवबोद्धव्य० जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ यस्य तद्० जे० ।

त्यते येन तन्मंघातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरी-  
रऽपि येने कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां 'संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६ । संहननं  
शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्षभनाराचादिर्भवति तत्संहनननाम ७ । संस्थी-  
यते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं  
भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८ । इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समृद्धयार्थः । वर्णनं वर्णो  
'वर्णाद्वा (१) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम  
९ । गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १० ।  
रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकपायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां  
तद्रसनाम ११ । स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति  
तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२ । अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि  
लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३ । उपहन्यते येन कर्मणा तदुपधा-  
ननाम, यदुदये जीवस्य स्वावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४ । परानाहन्ति पराघातनाम  
यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५ । आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ  
गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुवृक्षवृषभस्य १६ । उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वा-  
सनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासावौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७ । इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥  
आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन  
आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८ । उद्घोतनमुद्घोतस्तदुपलक्षितं नाम उद्-  
घोतनाम, यथा स्वघोतक उद्घोतयति उद्घोतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये  
उद्घोतयति तत्कर्म तस्योद्घोतनामोच्यते १९ । विहायसा गम्यते यथा प्राणिभिः सा  
विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २० । न केवलमातपोद्घोते  
अवगन्तव्ये, विहायोगतिश्चावबोद्धव्या । त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधा-  
नमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१ । स्थावर इत्यभिधानं  
नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२ । वादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम  
वादरनाम, यदुदये जीवो वादरपरिणामपरिणतो भवति २३ । सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण  
उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४ । पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तापर्याप्तं  
तद्भक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५ । अप-

१ नंघातनं सं० जे० । २०दि भवति जे० । ३ वर्णनाद्वा जे० । ४ सुकुमालादिः । ५ 'आकाशेन जे०  
टिप्पणी । ६ आवद्रष्टव्या जे० ।

र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येक-जीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, 'यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् ३८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २६ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रसृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, 'ज्ञानव्य' 'मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, 'यस्योदये सौभाग्य-युक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तत्सौभाग्यनाम ३३ । 'दुभगमिति' दुर्मगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्देगकारी तद्दुर्मगनाम ३४ । 'सूसरं' इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सुस्वरनाम, यदुदयाञ्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्मवति ३५ । 'दूसरं' इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्यस्मात्तद्दुःस्वरनाम, यदुदयाञ्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदया-ञ्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदया जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विषत्ते तदनादेयनाम ३८ । यज्ञश्च कीर्त्तिश्च यज्ञःकीर्त्ति, तल्लक्षणं नाम यज्ञःकीर्त्तिनाम, यज्ञसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यज्ञःकीर्त्तिः । 'दानपुण्यफला कोर्त्तिः,' 'पराक्रमकृत यज्ञः' इतिवचनात्, यदुदयाद्यज्ञःकीर्त्तिर्मवति जीवस्य तद्यज्ञःकीर्त्तिनाम ३९ । अयज्ञःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाञ्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयज्ञःकीर्त्तिनाम ४० । 'निम्माणं' इति निर्माणनाम, यदुदयाञ्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विषत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विच-त्वारिंशतो 'भेदाः' विशेषाः, 'भेदानामपि' विशेषाणामपि 'भवन्ति' जायन्ते 'हमे' वक्ष्य-माणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गो-पाङ्गनि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

१ यदा व्याप्तौ जे० । २ "भवबोद्धव्य० जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ यस्य तद्० जे० ।

त्यते येन तन्मंघानननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरी-  
रऽपि येन कर्मणा बाहुकलाचीप्रभूर्तानां 'मंघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६ । संहननं  
शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्पभनाराचादिर्भवति तत्संहनननाम ७ । संस्थी-  
यते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं  
भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् = । इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समञ्चयार्थः । वर्णनं वर्णो  
'व्रणाद्वा (१) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम  
१ । गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १० ।  
रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकषायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां  
तद्रसनाम ११ । स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा 'सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति  
तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२ । अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि  
लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३ । उपहन्यते येन कर्मणा तदुपघा-  
तनाम, यदुदये जीवस्य स्वावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४ । परानाहन्ति पराघातनाम  
यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५ । आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ  
गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुषद्वृषभस्य १६ । उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वा-  
सनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासावै भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७ । इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥  
आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन  
आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८ । उद्धोतनमुद्धोतस्तदुपलक्षितं नाम उद्-  
धोतनाम, यथा स्वधोतक उद्धोतयति उद्धोतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये  
उद्धोतयति तत्कर्म तस्योद्धोतनामोच्यते १९ "विहायसा गम्यते यथा प्राणिभिः सा  
विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २० । न केवलमातपोद्धोते  
अवगन्तव्ये, विहायोगतिश्चावधोद्धव्या । त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधा-  
नमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१ । स्थावर इत्यभिधानं  
नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२ । वादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम  
वादरनाम, यदुदये जीवो वादरपरिणामपरिणतो भवति २३ । सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण  
उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४ । पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तपर्याप्तं  
तल्लक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिसिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५ । अप-

१ संघाननं सं० जे० । २ ०दि भवति जे० । ३ वर्णनाद्वा जे० । ४ सुकुमालादिः । ५ 'आकाशेन जे०  
टिप्पणी । ६ आवद्रष्टव्या जे० ।

र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येक-जीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, 'यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् ३८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २९ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, 'ज्ञातव्य' 'मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, 'यस्योदये सौभाग्य-युक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तसौभाग्यनाम ३३ । 'दुर्भगमिति' दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्देगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । 'सूसरं' इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सूसरनाम, यदुदयाञ्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । 'दूसरं' इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्यस्मात्तद्दूसरनाम, यदुदयाञ्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदया-ञ्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदया-ञ्जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यद्यश्च कीर्त्तिश्च यद्यःकीर्त्तिः, तल्लक्षणं नाम यद्यःकीर्त्तिनाम, यद्यसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यद्यःकीर्त्तिः । 'दानपुण्यफला कोर्त्तिः,' 'पराक्रमकृत यद्यः' इतिवचनात्, यदुदयाद्यद्यःकीर्त्तिर्भवति जीवस्य तद्यद्यःकीर्त्तिनाम ३९ । अयद्यःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाञ्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तद्यद्यःकीर्त्तिनाम ४० । 'निम्माणं' इति निर्माणनाम, यदुदयाञ्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिवन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विच-त्वारिंशतो 'भेदाः' विशेषाः, 'भेदानामपि' विशेषाणामपि 'भवन्ति' जायन्ते 'इमे' वक्ष्य-माणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गो-पाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

१ यदा व्याप्तौ जे० । २ "भवबोद्धव्यं जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ यस्य तद्० जे० ।

त्यते येन तन्मघातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरी-  
रऽपि येन कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६ । संहननं  
शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्षभनाराचा<sup>१</sup>दिर्मवति तत्संहनननाम ७ । संस्थी-  
यते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं  
भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८ । इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समुच्चयार्थः । वर्णनं वर्णो  
वर्णनाद्वा (१) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम  
९ । गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १० ।  
रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकपायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां  
तद्रसनाम ११ । स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति  
तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२ । अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि  
लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३ । उपहन्यते येन कर्मणः तदुपघा-  
ननाम, यदुदये जीवस्य स्त्रावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४ । परानाहन्ति पराघातनाम  
यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५ । आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ  
गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुबद्धवृषभस्य १६ । उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वा-  
सनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७ । इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥  
आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन  
आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८ । उद्धोतनमुद्धोतस्तदुपलक्षितं नाम उद्-  
धोतनाम, यथा स्वधोतक उद्धोतयति उद्धोतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये  
उद्धोतयति तत्कर्म तत्स्योद्धोतनामोच्यते १९ । विहायसा गम्यते यथा प्राणिभिः सा  
विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २० । न केवलमातपोद्धोते  
अवगन्तव्ये, विहायोगतिं श्रावबोद्धव्या । त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधा-  
नमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१ । स्थावर इत्यभिधानं  
नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२ । वादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम  
वादरनाम, यदुदये जीवो वादरपरिणामपरिणतो भवति २३ । सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण  
उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४ । पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तापर्याप्तं  
तल्लक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५ । अप-

१ संघातनं सं० जे० । २ ०दि भवति जे० । ३ वर्णनाद्वा जे० । ४ सुकुमालादिः । ५ 'आकाशेन जे०  
टिप्पणी । ६ श्रावद्रष्टव्या जे० ।

र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येक-जीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्रप्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, 'यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् ३८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २९ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, 'ज्ञातव्य' 'मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, 'यस्योदये सौभाग्य-युक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तसौभाग्यनाम ३३ । 'दुर्भगमिति' दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं. यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्देगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । 'सूसरं' इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सूसरनाम. यदुदयाजीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । 'दूसरं' इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्यस्मात्तद्दूसरनाम, यदुदयाजीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदया-जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदया जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यज्ञश्च कीर्तिश्च यज्ञःकीर्त्तिः, तल्लक्षणं नाम यज्ञःकीर्त्तिनाम, यज्ञसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यज्ञःकीर्त्तिः । 'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,' 'पराक्रमकृत यज्ञः' इतिवचनात्, यदुदयायज्ञःकीर्त्तिर्भवति जीवस्य तद्यज्ञःकीर्त्तिनाम ३९ । अयज्ञःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाजीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयज्ञःकीर्त्तिनाम ४० । 'निम्माणं' इति निर्माणनाम, यदुदयाजीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिवन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरणनाम ४२ । एते प्रथमा द्विचत्वारिंशतो 'भेदाः' विशेषाः, 'भेदानामपि' विशेषाणामपि 'भवन्ति' जायन्ते 'इमे' वक्ष्य-माणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तपष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गो-पाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

१ यदा व्याप्तौ जे० । २ "भवबोद्धव्य० जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ यन्म नह० जे० ।

त्यते येन तन्मघातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरी-  
रऽपि येने कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां 'संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६ । संहननं  
शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्मनाराचा<sup>१</sup>दिर्मवति तत्संहनननाम ७ । संस्थी-  
यते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं  
भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८ । इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समुच्चयार्थः । वर्णनं वर्णो  
<sup>३</sup>वरणाद्वा (१) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम  
९ । गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १० ।  
रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकषायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां  
तद्रसनाम ११ । रपृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा 'सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति  
तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२ । अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि  
लघु शरीरं जीवस्य तद्गुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३ । उपहन्यते येन कर्मणा तदुपघा-  
तनाम, यदुदये जीवस्य स्त्रावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४ । परानाहन्ति पराघातनाम  
यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५ । आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ  
गच्छति, नरकादिनयने कारणं रञ्जु च्छुच्छुषभस्य १६ । उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वा-  
सनाम, यदुदयाजीवस्योच्छ्वासनिःश्वासौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७ । इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥  
आतपनामातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन  
आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८ । उद्धोतनमुद्धोतस्तदुपलक्षितं नाम उद्-  
घोतनाम, यथा स्वघोतक उद्धोतयति उद्धोतनामोदये, एवमन्येऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये  
उद्धोतयति तत्कर्म तस्योद्धोतनामोच्यते १९ । विहायसा गम्यते यथा प्राणिभिः सा  
विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २० । न केवलमातपोद्धोते  
अवगन्तव्ये, विहायोगति<sup>२</sup>श्चावबोद्धव्या । त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधा-  
नमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१ । स्थावर इत्यभिधानं  
नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२ । वादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम  
वादरनाम, यदुदये जीवो वादरपरिणामपरिणतो भवति २३ । सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण  
उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४ । पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तापर्याप्तं  
तल्लक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५ । अप-

१ संघातनं सं० जे० । २०दि भवति जे० । ३ वर्णनाह्वा जे० । ४ सुकुमालादिः । ५ 'आकारेण जे०  
टिप्पणी । ६ त्रावद्रष्टव्या जे० ।



र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येक-जीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्रप्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, 'यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् ३८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २६ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, 'ज्ञातव्य' 'मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, 'यस्योदये सौभाग्य-युक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तसौभाग्यनाम ३३ । 'दुर्भगमिति' दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्देगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । 'सूसरं' इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सूसरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्मवति ३५ । 'दूसरं' इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्यस्मात्तद्दूसरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदया-ज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदया-ज्जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यज्ञश्च कीर्त्तिश्च यज्ञःकीर्त्तिं, तल्लक्षणं नाम यज्ञःकीर्त्तिनाम, यज्ञसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यज्ञःकीर्त्तिः । 'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,' 'पराक्रमकृत यज्ञः' इतिवचनात्, यदुदयाद्यज्ञःकीर्त्तिर्मवति जीवस्य तद्यज्ञःकीर्त्तिनाम ३९ । अयज्ञःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयज्ञःकीर्त्तिनाम ४० । 'निम्माणं' इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विचत्वारिंशतो 'भेदाः' विशेषाः, 'भेदानामपि' विशेषाणामपि 'भवन्ति' जायन्ते 'इमे' वक्ष्य-माणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गो-पाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

१ यदा व्याप्तौ जे० । २ "भवबोद्धव्य० जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ यस्य तद्० जे० ।

दिभिः प्रत्येकं योगः ॥७१॥ तथा वर्ण ९ गन्ध १० रस ११ स्पर्शनाम १२, इत्यत्रापि वर्णा-  
दिभिर्योज्यम् । अगुरुलघुकं च ब्रह्मव्यम् १३ । उपघात १४ पराघात १५ आनुपूर्वी १६  
उच्छ्वासनाम १७ च, इत्यगुरुलघ्वादिभिर्योज्यं आतपादिभिश्च ॥७२॥ आतप १८ उद्योत १९  
विहायोगतयः २० त्रसं २१ स्थावरा २२ऽभिधानं च । त्रसं च स्थावरं च त्रसस्थावरम् । इत्यादौ  
द्वन्द्वनिर्देशः । त्रसस्थावरादीनां यशःकीर्त्यशःकीर्त्तिपर्यन्तानां सेतरत्वं ज्ञापयति । ततश्चैते  
त्रसादयः सेतरत्वात्त्रसादिविंशतिरिति संज्ञां लभन्ते । इति तयोरभिधानं नाम त्रसनाम स्थावर-  
नाम च । वादर २३ सूक्ष्म २४ पर्याप्ता २५ऽपर्याप्तं २६ च ज्ञातव्यम् ॥७३॥ 'पक्षेद्यं  
साहरणत्ति' प्रत्येकं २७ साधारणं २८ । 'धिरमधिरत्ति' स्थिरा २९ऽस्थिरं ३० शुभा  
३१ऽशुभं च ज्ञातव्यम् । सुभग ३३ दुर्भगनाम ३४ इति पूर्ववद्वादरादिभिर्योज्यम् । 'सुसर  
तह दूसरंति' तथा सुस्वरं ३५ दुःस्वरं ३६ चैव ॥७४॥ 'आइञ्जमणाइञ्जंति' आदेया ३७  
ऽनादेयं ३८ "जसक्त्तिनाममजसक्त्ती यत्ति" यशःकीर्त्तिनामा ३९ऽयशःकीर्त्तिनाम ४०  
चेति सुस्वरादिभिर्निर्माणादिभिर्योज्यम् । अनुस्वारलोपागमव्यत्ययादिकं प्राकृतत्वादवसेयम् ।  
निर्माणं ४१ तीर्थकरम् ४२ । इति द्विचत्वारिंशद्भेदाः । उत्तरमेदप्रस्तावनामाह—मेदानामपि  
द्विचत्वारिंशद्रूपाणां भवन्तीमे भेदाः सप्तषष्टिनिवतिव्युत्तरशतलक्षणा इति गाथापञ्चकार्थः ॥७५॥

तत्र सप्तषष्टिमाह—

गइ होइ 'चउब्भेया, जाईवि य पंचहा मुणेयव्वा ।

पंच य हुंति सरीरा, अंगोवंगाई 'तिन्नेव ॥७६॥

(६०) व्याख्या—गतिः 'भवति' जायते 'चतुर्भेदा' चतुष्प्रकारा नारक १ तिर्यङ् २  
नरा ३ऽमर ४ लक्षणा । जातिरपि च पञ्चधा 'मन्तव्या' ज्ञातव्या एकेन्द्रिय १ द्वि २ त्रि ३  
चतु ४ पञ्चन्द्रिय ५ रूपा । न केवलमेकविधा जातिः पञ्चविधाऽपि इत्यपिशब्दार्थः । 'चः'  
पूर्वया गत्या सह समुच्चयार्थः । पञ्च च भवन्ति शरीराणि औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारक ३  
तैजस ४ कर्मण ५ लक्षणानि 'भवन्ति' जायन्ते । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव भवन्ति औदारिक १  
वैक्रिया २ऽऽहारका ३ऽङ्गोपाङ्गरूपाणि, तैजसकर्मणयोरङ्गोपाङ्गाभावादित्यवधारणम् । इति  
गाथार्थः ॥७६॥

उक्ता गतिजातिशरीराङ्गोपोङ्गविभागाः, साम्प्रतं संहननादिभेदानाह—

(पारमा०) गतिर्भवति चतुर्भेदा ४ नरकगत्यादिभेदात् । जातिरपि च पञ्चधा ९ एके-  
न्द्रियजात्यादिभेदाज् ज्ञातव्या । पञ्च च भवन्ति शरीराणि १४ औदारिकादिभेदात् । अङ्गोपा-  
ङ्गानि त्रीण्येव १७, न तु पञ्चाप्याद्यशरीरत्रय एव तद्भावात् ॥७६॥

छस्संघयणा जाणसु, संठाणावि य ह्वंति छच्चेव ।

चण्णाईण चउकं, अगुरुलहुवघायपरघायं ॥७७॥

(पू०) व्याख्या—षट् 'संहननानि 'जानीहि' विद्धि वज्रर्पमनाराच १ ऋषभनाराच २ नाराचा ३ऽर्द्धनाराच ४ कीलिका ५ छेवड्ड (सेवात्त) ६ रूपाणि । संस्थानान्यपि च तथैव षडेव यथा 'संहननानि,—समचतुरस्र १ न्यग्रोधमण्डल २ सादि ३ वामन ४ कुब्ज ५ हुण्ड ६ रूपाणि । वर्ण आदियेषां ते वर्णादयः तेषां, चतुष्कं वर्ण १ गन्ध २ रस ३ स्पर्श ४ लक्षणम् । 'अगुरु च लघु च अगुरुलघुनाम भवति ज्ञातव्यम् । उपघातश्च पराघातश्चोपघातपराघातं भवति ज्ञातव्यम् । इति गाथार्थः ॥७७॥ उक्ताः संहननादयः आनुपूर्व्यादीनाह—

(पारमा०) षट् संहननानि २३ वज्रर्पमनाराचादीनि जानीहि । संस्थानान्यपि च २९ समचतुरस्रादीनि भवन्ति षडेव 'वर्णादीनां' वर्णगन्धरसस्पर्शानां चतुष्कं ३३, अवान्तरमेदावि-  
वचणात् । अगुरुलघु ३४ उपघातं ३५ परघातम् ३६ ॥७७॥

अणुपूर्वी चउभेया, ऊसासं आयवं च उज्जोयं ।

सुहअसुहविहायगई, तसाहवीसं च निम्माणं ॥७८॥

(पू०) व्याख्या—'अणुपूर्व्वानि' आनुपूर्वी 'चतुर्मेदा' चतुष्प्रकारा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगा-  
नुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ लक्षणा 'उच्छ्वासां' उच्छ्वासानाम, 'आत्तपंच' आत्-  
पनाम, 'उद्घोत' उद्घोतनाम, शुभाशुभविहायोगती, शुभा=प्रशस्ता, अशुभा=अप्रशस्ता ।  
त्रसनाम 'आदौ येषां तत्रसादिविंशतिः, निर्माणमिति । आनुपूर्वीत्याकारो ह्रस्वः सूत्रे गाथा-  
मङ्गलमयात् प्राकृतत्वाच्च । इति गाथार्थः ॥७८॥

उक्ता आनुपूर्व्यादयः, तीर्थकरयुक्तां सप्तषष्टियोजनामाह—

(पारमा०) आनुपूर्वी ४० चतुर्मेदा, नरकानुपूर्व्यादिभेदात् । उच्छ्वासां ४१ आत्तपं ४२  
उद्घोतं ४३ शुभाशुभविहायोगतिः ४५ त्रसादिविंशतिश्च प्राङ् निरूपिता ६५ निर्माणम् ६६ ॥७८॥

\*तित्थयरेण य सहिया, सत्तटी एव हुंति पयडीओ ।

सम्मामीसेहि विणा, तेवन्ना सेसकम्माणं ॥७९॥

(पू०) व्याख्या—तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं, तल्लक्षणं नाम तीर्थकरनाम, तेन सहिता सप्त-  
भिरधिका षष्टिः सप्तषष्टिः ६७ । एवमुक्तनीत्या, एवेति छुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् ।

१ व्याख्याकारेण तु "तद्देव" इति पाठानुसारेण व्याख्या कृता ॥ २-३ संघयनानि जे० । ४ छ शक्ति वा  
० । ५ अगुरुनाम भवति ज्ञा० (१) जे० । ६ आदौ यस्य तत् त्रसादिविंशतितमं निर्मा० जे० ।  
७ "सहिया" इत्यपि पाठः ।

दिभिः प्रत्येकं योगः ॥७१॥ तथा वर्ण ९ गन्ध १० रस ११ स्पर्शनाम १२, इत्यत्रापि वर्णा-  
दिभिर्योज्यम् । अगुरुलघुकं च त्रौद्वयम् १३ । उपघात १४ पराघात १५ आनुपूर्वी १६  
उच्छ्रयामनाम १७ च, इत्यगुरुलघ्वादिभिर्योज्यं आतपादिमिश्र ॥७२॥ आतप १८ उद्योत १९  
विहायोगतयः २० त्रसं २१ स्थावरा २२ऽभिधानं च । त्रसं च स्थावरं च त्रसस्थावरम् । इत्यादौ  
द्वन्द्वनिर्देशः । त्रसस्थावरादीनां यशःकीर्त्त्यशःकीर्त्तिपर्यन्तानां सेतरत्वं ज्ञापयति । ततश्चैते  
त्रसादयः सेतरत्वात्त्रसादिविंशतिरिति संज्ञां लभन्ते । इति तयोरभिधानं नाम त्रसनाम स्थावर-  
नाम च । वादर २३ सूक्ष्म २४ पर्याप्ता २५ऽपर्याप्ता २६ च ज्ञातव्यम् ॥७३॥ 'पत्तेयं  
साहरणत्ति' प्रत्येकं २७ साधारणं २८ । 'थिरमथिरत्ति' स्थिरा २९ऽस्थिरं ३० शुभा  
३१ऽशुभं च ज्ञातव्यम् । सुभग ३३ दुर्मगनाम ३४ इति पूर्ववद्वादरादिभिर्योज्यम् । 'सुस्वर  
तह दूस्वरंति' तथा सुस्वरं ३५ दुःस्वरं ३६ चैव ॥७४॥ 'आइज्जमणाइज्जंति' आदेया ३७  
ऽनादेयं ३८ "जसक्किन्तीनाममजसक्कीत्ती यत्ति" यशःकीर्त्तिनामा ३९ऽयशःकीर्त्तिनाम ४०  
चेति सुस्वरादिभिर्निर्माणदिभिर्योज्यम् । अनुस्वारलोपागमव्यत्ययादिकं प्राकृतत्वादवसेयम् ।  
निर्माणं ४१ तीर्थकरम् ४२ । इति द्विचत्वारिंशद्भेदाः । उत्तरमेदप्रस्तावनामाह—भेदानामपि  
द्विचत्वारिंशद्रूपाणां भवन्तीमे भेदाः सप्तषष्टिभिनवतित्र्युत्तरशतलक्षणा इति गाथापञ्चकार्थः ॥७५॥

तत्र सप्तषष्टिमाह—

गह होइ 'चउब्भेया, जाईवि य पंचहा मुणेयव्वा ।

पंच य हुंति सरीरा, अंगोवंगाइं तिण्णेव ॥७६॥

(पू०) व्याख्या—जातिः 'भवति' जायते 'चतुर्भेदा' चतुष्प्रकारा नारक १ तिर्यङ् २  
नरा ३ऽमर ४ लक्षणा । जातिरपि च पञ्चधा 'मन्तव्या' ज्ञातव्या एकेन्द्रिय १ द्वि २ त्रि ३  
चतु ४ पञ्चेन्द्रिय ५ रूपा । न केवलमेकविधा जातिः पञ्चविधाऽपि इत्यपिशब्दार्थः । 'चः'  
पूर्वया गत्या सह समुच्चयार्थः । पञ्च च भवन्ति शरीराणि औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारक ३  
तैजस ४ कर्मण ५ लक्षणानि 'भवन्ति' जायन्ते । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव भवन्ति औदारिक १  
वैक्रिया २ऽऽहारका ३ऽङ्गोपाङ्गरूपाणि, तैजसकर्मणयोरङ्गोपाङ्गाभावादित्यवधारणम् । इति  
गाथार्थः ॥७६॥

उक्ता गतिजातिशरीराङ्गोपोङ्ग<sup>३</sup>विभागाः, साम्प्रतं संहननादिभेदानाह—

(पारमा०) गतिर्भवति चतुर्भेदा ४ नरकगत्यादिभेदात् । जातिरपि च पञ्चधा ९ एके-  
न्द्रियजात्यादिभेदाज् ज्ञातव्या । पञ्च च भवन्ति शरीराणि १४ औदारिकादिभेदात् । अङ्गोपा-  
ङ्गानि त्रीण्येव १७, न तु पञ्चाप्याद्यशरीरत्रय एव तद्भावात् ॥७६॥

छस्संघयणा जाणसु, संठाणावि य ह्वंति छच्चेव ।

चण्णाईण चउकं, अगुरुलहुवघायपरघायं ॥७७॥

(पू०) व्याख्या—षट् 'संहननानि 'जानीहि' विद्धि वज्रर्षभनाराच १ ऋषभनाराच २ नाराचा ३ऽर्द्धनाराच ४ कीलिका ५ छेवट्ट (सेवार्त्त) ६ रूपाणि । संस्थानान्यपि च तथैव षडेव यथा 'संहननानि,—समचतुरस्र १ न्यग्रोधमण्डल २ सादि ३ वामन ४ कुब्ज ५ हुण्ड ६ रूपाणि । वर्ण आदियेषां ते वर्णादयः तेषां, चतुष्कं वर्ण १ गन्ध २ रस ३ स्पर्श ४ लक्षणम् । 'अगुरु च लघु च अगुरुलघुनाम भवति ज्ञातव्यम् । उपघातश्च पराघातश्चोपघातपराघातं भवति ज्ञातव्यम् । इति गाथार्थः ॥७७॥ उक्ताः संहननादयः आनुपूर्व्यादीनाह—

(पारमा०) षट् संहननानि २३ वज्रर्षभनाराचादीनि जानीहि । संस्थानान्यपि च २९ समचतुरस्रादीनि भवन्ति षडेव 'वर्णादीनां' वर्णगन्धरसस्पर्शानां चतुष्कं ३३, अवान्तरमेदावि-  
वक्षणात् । अगुरुलघु ३४ उपघातं ३५ परघातम् ३६ ॥७७॥

अणुपुन्वी चउभेया, ऊसासं आयवं च उज्जोयं ।

सुहअसुहविहायगई, तसाइवीसं च निम्माणं ॥७८॥

(पू०) व्याख्या—'अणुपुन्वाति' आनुपूर्वी 'चतुर्भेदा' चतुष्कारा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगा-  
नुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ लक्षणा 'उच्छ्वासं' उच्छ्वासनाम, 'आत्पंच' आत्-  
पनाम, 'उद्द्योतं' उद्द्योतनाम, शुभाशुभविहायोगती, शुभा=प्रशस्ता, अशुभा=अप्रशस्ता ।  
त्रसनाम 'आदौ येषां तत्रसादिविंशतिः, निर्माणमिति । आनुपूर्वीत्याकारो इस्वः सूत्रे गाथा-  
मङ्गभयात् प्राकृतत्वाच्च । इति गाथार्थः ॥७८॥

उक्ता आनुपूर्व्यादयः, तीर्थकरयुक्तां सप्तषष्टियोजनामाह—

(पारमा०) आनुपूर्वी ४० चतुर्भेदा, नरकानुपूर्व्यादिभेदात् । उच्छ्वासं ४१ आत्पं ४२  
उद्द्योतं ४३ शुभाशुभविहायोगतिः ४५ त्रसादिविंशतिश्च प्राह् निरूपिता ६५ निर्माणम् ६६ ॥७८॥

\*तित्थयरेण य सहिया, सत्तट्ठी एव हुंति पयडीओ ।

सम्मामीसेहि विणा, तेवन्ना सेसकम्माणं ॥७९॥

(पू०) व्याख्या—तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं, तल्लक्षणं नाम तीर्थकरनाम, तेन सहिता सप्त-  
भिरधिक्रा पटिः सप्तशष्टिः ६७ । एवमुक्तनीत्या, एवेति छुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् ।

१ व्याख्याकारेण तु "तद्देव" इति पाठानुसारेण व्याख्या कृता ॥ २-३ संघयनानि जे० । ४ छ शक्ति वा  
(?) जे० । ५ अगुरुनाम भवति ज्ञा० (?) जे० । ६ आदौ यस्य तत् त्रसादिविंशतितमं निर्मा० जे० ।  
७ तित्थयरेणं सहिया" इत्यपि पाठः ।

दिभिः प्रत्येकं योगः ॥७१॥ तथा वर्ण ९ गन्ध १० रस ११ स्पर्शनाम १२, इत्यत्रापि वर्णा-  
दिभिर्योज्यम् । अगुरुलघुकं च बोद्धव्यम् १३ । उपघात १४ पराघात १५ आनुपूर्वी १६  
उच्छ्रयामनाम १७ च, इत्यगुरुलघ्वादिभिर्योज्यं । आतपादिभिश्च ॥७२॥ आतप १८ उद्योत १९  
विहायोगतयः २० त्रसं २१ स्थावरा २२ऽभिधानं च । त्रसं च स्थावरं च त्रसस्थावरम्, इत्यादौ  
द्वन्द्वनिर्देशः । त्रसस्थावरादीनां यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपर्यन्तानां सेतरत्वं ज्ञापयति । ततश्चैते  
त्रसादयः सेतरत्वात्त्रसादिविंशतिरिति मंज्ञां लभन्ते । इति तयोरभिधानं नाम त्रसनाम स्थावर-  
नाम च । वादर २३ सूक्ष्म २४ पर्याप्ता २५ऽपर्याप्तं २६ च ज्ञातव्यम् ॥७३॥ 'पक्षेयं  
साहरणत्ति' प्रत्येकं २७ साधारणं २८ । 'थिरमथिरत्ति' स्थिरा २९ऽस्थिरं ३० शुभा  
३१ऽशुभं च ज्ञातव्यम् । सुभग ३३ दुर्भगनाम ३४ इति पूर्वषट्वादरादिभिर्योज्यम् । 'सूस्वर  
तह दूसरंति' तथा सुस्वरं ३५ दुःस्वरं ३६ चैव ॥७४॥ 'आइज्जमणाइज्जंति' आदेया ३७  
ऽनादेयं ३८ "जसक्त्तिनाममजसक्त्ती यत्ति" यशःकीर्त्तिनामा ३९ऽयशःकीर्त्तिनाम ४०  
चेति सुस्वरादिभिर्निर्माणादिभिर्योज्यम् । अनुस्वारलोपागमव्यत्ययादिकं प्राकृतत्वादवसेयम् ।  
निर्माणं ४१ तीर्थकरम् ४२ । इति द्विचत्वारिंशद्भेदाः । उत्तरमेदप्रस्तावनामाह—भेदानामपि  
द्विचत्वारिंशद्रूपाणां भवन्तीमे भेदाः सप्तपष्टिनिवतिच्युत्तरशतलक्षणा इति गाथापञ्चकार्थः ॥७५॥

तत्र सप्तपष्टिमाह—

गह होइ 'चउब्भेया, जाईवि य पंचहा मुणेयवा ।

पंच य हुंति सरीरा, अंगोवंगाईं तिन्नेव ॥७६॥

(पू०) व्याख्या—गतिः 'भवति' जायते 'चतुर्भेदा' चतुष्प्रकारा नारक १ तिर्यङ् २  
नरा ३ऽमर ४ लक्षणा । जातिरपि च पञ्चधा 'मन्तव्या' ज्ञातव्या एकेन्द्रिय १ द्वि २ त्रि ३  
चतु ४ प्यञ्चन्द्रिय ५ रूपा । न केवलमेकविधा जातिः पञ्चविधाऽपि इत्यपिशब्दार्थः । 'चः'  
पूर्व्या गत्या सह समुच्चयार्थः । पञ्च च भवन्ति शरीराणि औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारक ३  
तैजस ४ कार्मण ५ लक्षणानि 'भवन्ति' जायन्ते । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव भवन्ति औदारिक १  
वैक्रिया २ऽऽहारका ३ऽङ्गोपाङ्गरूपाणि, तैजसकार्मणयोरङ्गोपाङ्गभावादित्यवधारणम् । इति  
गाथार्थः ॥७६॥

उक्ता गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गविभागाः, साम्प्रतं संहननादिभेदानाह—

(पारमा०) गतिर्भवति चतुर्भेदा ४ नरकगत्यादिभेदात् । जातिरपि च पञ्चधा ९ एके-  
न्द्रियजात्यादिभेदाज् ज्ञातव्या । पञ्च च भवन्ति शरीराणि १४ औदारिकादिभेदात् । अङ्गोपा-  
ङ्गानि त्रीण्येव १७, न तु पञ्चाप्याद्यशरीरत्रय एव तद्भावात् ॥७६॥

छस्संघयणा जाणसु, संठाणावि य ह्वंति छच्चेव ।

वण्णार्इण चउक्कं, अगुरुलहुवघायपरघायं ॥७७॥

(पू०) व्याख्या—षट् 'संहननानि 'जानीहि' विद्धि वज्रर्षमनाराच १ ऋषभनाराच २ नाराचा ३ऽर्द्धनाराच ४ कीलिका ५ छेवट्ट (सेवार्त्त) ६ रूपाणि । संस्थानान्यपि च तथैव पडेव यथा 'संहननानि,—समचतुरस्र १ न्यग्रोधमण्डल २ सादि ३ वामन ४ कुब्ज ५ हुण्ड ६ रूपाणि । वर्ण आदियेषां ते वर्णादयः तेषां, चतुष्कं वर्ण १ गन्ध २ रस ३ स्पर्श ४ लक्षणम् । 'अगुरु च लघु च अगुरुलघुनाम भवति ज्ञातव्यम् । उपघातश्च पराघातश्चोपघातपराघातं भवति ज्ञातव्यम् । इति गाथार्थः ॥७७॥ उक्ताः संहननादयः आनुपूर्व्यादीनाह—

(पारमा०) षट् संहननानि २३ वज्रर्षमनाराचादीनि जानीहि । संस्थानान्यपि च २९ समचतुरस्रादीनि भवन्ति षडेव 'वर्णादीनां' वर्णगन्धरसस्पर्शानां चतुष्कं ३३, अवान्तरभेदावि-  
वक्षणात् । अगुरुलघु ३४ उपघातं ३५ परघातम् ३६ ॥७७॥

अणुपुन्वी चउभेया, ऊसासं आयवं च उज्जोयं ।

सुहअसुहविहायगई, तसाइवीसं च निम्माणं ॥७८॥

(पू०) व्याख्या—'अणुपुन्वीति' आनुपूर्वी 'चतुर्भेदा' चतुष्प्रकारा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगा-  
नुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ लक्षणा 'उच्छ्वासं' उच्छ्वासनाम, 'आतपं च' आत-  
पनाम, 'उद्द्योतं' उद्द्योतनाम, शुभाशुभविहायोगती, शुभा=प्रशस्ता, अशुभा=अप्रशस्ता ।  
त्रसनाम 'आदौ येषां तत्रसादिविंशतिः, निर्माणमिति । आनुपूर्वीत्याकारो ह्रस्वः सूत्रे गाथा-  
मङ्गमयात् प्राकृतत्वाच्च । इति गाथार्थः ॥७८॥

उक्ता आनुपूर्व्यादयः, तीर्थकरयुक्तां सप्तषष्टियोजनामाह—

(पारमा०) आनुपूर्वी ४० चतुर्भेदा, नरकानुपूर्व्यादिभेदात् । उच्छ्वासं ४१ आतपं ४२  
उद्द्योतं ४३ शुभाशुभविहायोगतिः ४५ त्रसादिविंशतिश्च प्राद् निरूपिता ६५ निर्माणम् ६६ ॥७८॥

\*तिथ्यरेण य सहिया, सत्तट्टी एव हुंति पयडीओ ।

सम्मीसेहि विणा, तेवन्ना सेसकम्माणं ॥७९॥

(पू०) व्याख्या—तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं, तल्लक्षणं नाम तीर्थकरनाम, तेन सहिता सप्त-  
भिरधिका षष्टिः सप्तषष्टिः ६७ । एवमुक्तनीत्या, एवेति छुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् ।

१ व्याख्याकारेण तु "तद्देव" इति पाठानुसारेण व्याख्या कृता ॥ २-३ संघयनानि जे० । ४ छ शक्ति वा  
(१) जे० । ५ अगुरुनाम भवति ज्ञा० (१) जे० । ६ आदौ यस्य तत् त्रसादिविंशतितमं निर्मा० जे० ।  
७ तित्य्यरेणं सहिया" इत्यपि पाठः ।

‘भवन्ति’ जायन्ते ‘प्रकृतयः’ उत्तरविशेषाः ‘सम्यग्मिश्राभ्यां विना’ सम्यक्त्वसम्यग्मि-  
थ्यात्वाभ्यां विना त्रिभिरधिका पञ्चाशत्त्रिपञ्चाशत् ‘शेषकर्मणां’ ज्ञानावरणाद्यन्तरायपर्यन्ता-  
नाम् । इति गाथार्थः ॥७९॥

उक्ताः सप्तपष्टिभेदाः, इदानीमेककालं जीवस्य प्रकृतिबन्धसंख्यामाह—

(पारमा०) तीर्थकरेण च सहिता ६७ सप्तपष्टिः, एवं भवन्ति प्रकृतयः । सम्प्रति सप्तष-  
ट्त्वेर्वन्धोपयोगित्वं प्रतिपिपादयिषुर्वन्धप्रायोग्याः शेषकर्मप्रकृतीरपि प्रसङ्गत आह—सम्यग्मिश्राभ्यां  
विना त्रिपञ्चाशच्छेषकर्मणाम् । तथाहि—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकसंहतौ चतुर्दश वेदनीय-  
द्विकसंकलने षोडश । मम्यक्त्वमिश्रे बन्धे नायात इति तद्वर्जितमोहनीयषड्विंशतिक्षेपे द्विचत्वारिंशत् । आयुषश्चतुष्टयमीलने षट्चत्वारिंशत् । गोत्रद्वयमंहतावष्टचत्वारिंशत् । अन्तरायपञ्चक-  
युक्तौ यथोक्ता त्रिपञ्चाशत् । इति सप्तपष्टिप्रतिपादकगाथाचतुष्टयस्यार्थः ॥७९॥

एतन्मीलने यद्भवति तदाह—

एवं विसुत्तरमयं, बधे पयडीण होइ नायव्वं ।

बंधणसंघाया वि य, मरीरग्रहणेण इह गहिया ॥८०॥

(पू०) व्याख्या ‘एवं’ उक्तनीत्या ‘विंशत्युत्तरं शतं’ विंशतिरुत्तरा यस्मिन् तद्विंश-  
त्युत्तरं तच्च तत् शतं च विंशत्युत्तरशतं बन्धनरूपाः प्रकृतयो बन्धनप्रकृतयः तासां भवति ज्ञातव्यम्  
एकस्य जीवस्य सामान्ये नैकदा यद्युत्कृष्टो बन्धो भवति तदा विंशत्युत्तरशतिको भवति नाधिको  
बन्धः । ननु सप्तपष्टिभेदमध्ये बन्धनसंघातभेदौ नोक्तौ तयोर्ग्रहणम् ?, इत्याह—बन्धनसंघातावपि  
च शरीरग्रहणेन ‘इह’ पक्षान्तरगृहीतौ तदन्तर्गतत्वात्तयोः । इति गाथार्थः ॥८०॥ उक्ता सप्त-  
पष्टिः, इदानीं त्रिनवतिमाह—

(पारमा०) एवं सप्तपष्टिपञ्चाशत्त्रय मीलने विंशत्युत्तरं शतं प्रकृतीनां बन्धे ज्ञातव्यं  
भवति । ननु सप्तपष्टिभेदमध्ये बन्धनसंघातौ नोक्तौ तत्कथं तयोर्ग्रहणम् ?, इत्याह—बन्धनसंघा-  
तावपि शरीरग्रहणेन सप्तपष्टिपक्षे गृहीतौ । औदारिकशरीरनामग्रहणेन औदारिकबन्धनसंघात-  
नाम्नी, वैक्रियशरीरनामग्रहणेन वैक्रियबन्धनसंघातनाम्नी, इत्यादि । इति गाथार्थः ॥८०॥

उक्तं प्रसङ्गागतं बन्धोपयोगि विंशत्युत्तरं प्रकृतिशतं, सम्प्रति त्रिनवतिमाह—

बंधणभेया पंच उ, संघाया वि य हवंति पंचेव ।

पण वण्णा दो गंधा, पंच रसा अट्ट फासा य ॥८१॥



(५०) व्याख्या—बन्धनं पूर्वोक्तं तस्य भेदा विशेषाः पञ्च, 'तुः' पुनः, संघाता अपि च 'भवन्ति' जायन्ते पञ्चैवोक्तलक्षणाः । पञ्च वर्णाः प्रतीताः । द्वौ गन्धौ सुगन्धदुर्गन्धौ । पञ्च ग्मा व्याख्यातार्थाः । अष्टौ स्पर्शा वक्ष्यमाणाः । इति गाथार्थः ॥८१॥

सर्वसंख्याप्रक्षेपार्थमाह—

(पारमा०) औदारिकादिभेदाद्बन्धनभेदाः पञ्च । संघाता अपि पञ्चैव भवन्ति, औदारिकादिभेदादेवेत्यात्म्या दश । पञ्च वर्णाः, कृष्णादिभेदात् । द्वौ गन्धौ सुरभिर्दुरभिश्च । पञ्च रसास्तिक्ताद्याः । अष्ट स्पर्शा गुर्वाद्याः । एवमेता विंशतिः प्रकृतयः । एतासां च मध्याष्टतुष्कं वर्णगन्धरसस्पर्शानां चतुर्णां सप्तषष्टिपक्षे सामान्यतो गृहीतानामत्र विशेषोपादानादपगतानां स्थानपूरणे गतमिति शेषाः षोडश ॥८१॥

दस सोलस छव्वीसा, एया मेलेहिं सत्तसट्टीए ।

तणउई होह तओ, बंधणमेया उ पन्नरस ॥८२॥

(५०) व्याख्या—दश बन्धनसंघातभेदाः, षोडश वर्णगन्धरसस्पर्शाः, तत्रेऽपि मिलिताः षड्विंशतिः' षड्विंशतिका विंशतिः षड्विंशतिः । ननु कथमेते वर्णादयः षोडश भवन्ति गण्यमाना विंशतिः ? इति उच्यते—सप्तषष्टिभेदेषु 'वर्णादीनां षतुष्कं' अनेनावयवेन चत्वारो भेदाः प्रतिपादिताः, तेष्वपनीतेषु वर्णगन्धरसस्पर्शविंशतिभेदानां मध्यात्षोडश एव भवन्ति, अत एतान् 'मौल्य' एकीकुरु सप्तषष्ट्यां, त्रिमिरधिका नवतिस्त्रिनवतिः 'भवन्ति' जायते । तत उक्ता त्रिनवतिः, बन्धभेदास्तु पुनः पञ्चदश वक्ष्यमाणलक्षणाः । इति गाथार्थः ॥८२॥ ग्रं० ५३५॥

श्रुत्तरशतमाह—

(पारमा०) तथा च दश पूर्वाद्धोक्ताः, एताश्च षोडश, उभयमीलने च षड्विंशतिप्रकृतयः, एता मील्य सप्तषष्टौ, ततस्त्रिनवतिर्भवति । इति पादोनगाथाद्वयार्थः । सम्प्रति श्रुत्तरशतमाह—बन्धनभेदाः पुनः पञ्चदश परस्परसंयोगाद्भवति ॥८२॥

सव्वेहि वि छूढेहिं, तिगअहिगसयं तु होह नामस्स ।

एएसिं तु विवागं, वूच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥८३॥

(५०) व्याख्या—सर्वैरपि क्षिप्तैः सप्तषष्टिमध्ये षड्विंशतिभिस्त्रिनवतिमध्ये बन्धनभेदैर्दशभिः प्रवेशितैस्त्रिकैनाधिकं शतं त्रिकाधिकशतं, 'न न्यूनाधिकमित्यर्थः, नाम्नः कर्मणाः । ननु बन्धनभेदाः पञ्चदश, तत्रातिक्षेपे त्रिनवतौ कथं श्रुत्तरशतम् ? इति, उच्यते—बन्धनभेदा दशैव,

पञ्चानां मत्पष्टिमध्ये प्रक्षेपात् । एतेषां तु पुनः सर्वेषां 'चतुर्विध्योक्तानां 'विपाकं' अनुभवरूपं 'बुच्छामि' वक्ष्यामि, 'यथानुपूर्व्याः' यथापरिपाठ्या । इति गाथार्थः ॥८३॥

नारकादिगतिमन्त्या यतश्चैवं भवति तदाह—

(पारमा०) सर्वैरपि क्षिप्तैर्वन्धनमेदैरिति, अयं भावः—एषां मध्यादौदारिकादिवन्धनपञ्चकस्य त्रिनवतिपक्षोपात्तस्य शेषैर्दशभिरपि क्षिप्तैस्त्र्युत्तरं शतं भवति नाम्नः प्रकृतीनामिति गम्यम् । विपाकभणनं प्रस्ताति-एतेषां' द्वित्वारिंशत्सप्तपष्टित्रिनवतित्र्युत्तरशतानां पुनर्विपाकं वक्ष्ये 'यथानुपूर्व्या'क्रमानतिक्रमेण । इति मपादगाथार्थः ॥८३॥

प्रतिज्ञातमाह—

नारयतिगिनरामर-गइभेया चउविहा गई होइ ।

एमा खलु ओदइए. होइ हु भावे जओ आह ॥८४॥

(पू०) व्याख्या—नारकतिर्यङ्गनगरगतिमेदाद्विशेषाच्चतुर्विधा गतिर्भवति । 'एषा' प्राशुक्ता 'खलु' निश्चयेन, कस्मिन् भावे भवति ? इति आह-औदायिके भावे भवति, न क्षायिकादौ । दृशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । यत आह मूत्रकार एव । इति गाथार्थः ॥८४॥

नरकगतिस्वरूपमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्गनगरगतिमेदाच्चतुर्विधा गम्यन्ते=प्राप्यते तथाविधकर्मसचिवैरिति गतिर्भवति । एषा 'खलु' निश्चितसौदायिके भावे भवति । यत आहेतिपदमुदारोक्या कर्तृनिर्देश-मन्तरेणोपानं यत्र कुत्रचिद्विश्रान्त्यभावात्तीर्थकृतमाक्षिपति । इति गाथार्थः ॥८४॥

किमाह ? इति चेदुच्यते—

जीए उदएण जीवां, नेरइओ होइ नरयपुढवीए ।

सा भणिया नरयगई, सेसगईओ वि एमेव ॥८५॥

(पू०) व्याख्या—'यस्याः' नरकगतेः 'उदयेन' प्रादुर्भावेन 'जीवः' प्राणी नारकिको 'भवति' मपद्यते, क ? 'नरक'पृथ्व्यां' प्रतीतायाम् । सा 'भणिता' प्रतिपादिता नरकगतिः शेषगतयो-ऽपि' तिर्यङ्गनगरलक्षणा अपि 'एवमेव' उक्तन्यायेन । इति गाथार्थः ॥८५॥ उक्ता गतिः, एकेन्द्रियादिज्ञातिमाह—

(पारमा०) यस्या गतेः उदयेन जीवो नैरयिको भवति नरकपृथिव्यां, सा भणिता नरक-गतिः शेषगतयोऽप्येवमेवेति । अयमाशयः—यस्या उदयेन तिर्यङ्ग भवति सा तिर्यङ्गगतिः ।

यदुदयान्मनुष्यः सा मनुष्यगतिः । यदुदयाच्च देवः सा देवगतिरिति । ननु भवद्भिरित्युक्तं यदु-  
ताह तीर्थकृत् , इदं तु सूत्रकृता स्वयमेवोक्तमिति, नैवम् , तस्यायमाशयः-सर्वोऽपि जिनागमो-  
ऽर्थतो जि नप्रणीतः, ततस्तदागमोद्धृतत्वादिदमपि तदुक्तमेवेत्यदोषः । इति गाथार्थः ॥८५॥

जातिनामाह—

इगदुगतिगचउरिंदिय-जाई पंचिंदियाण पंच मिया ।

खयउवसमिए भावे, हुंति हु एया जओ आह ॥८६॥

(पू०) व्याख्या—एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिः । जातिशब्दस्य प्रत्येकं  
संबन्धः । चतस्रो जातयः । पञ्चेन्द्रियाणां पञ्चमिका जातिरुक्तलक्षणा । पञ्चप्रकाराऽपीयं कस्मिन्  
भावे भवति?, इत्याह—क्षायोपशमिकभावे । क्षयश्च केषांचित्कर्मणाम्, उपशमश्च कर्मणामेव क्षयो-  
पशमः, तेन निवृत्तः ठक् (नेन निवृत्तं पा० ५-१-७१) क्षायोपशमिकः, आदिवृद्धीकादेशौ,  
भावशब्दस्य विशेषणम् । क्षायोपशमिक एव भावे 'भवन्ति' जायन्ते 'भेदाः' विशेषाः ।  
हृशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । यत् आह सूत्रकारः । इति गाथार्थः ॥८६॥

(पारमा०) एकेन्द्रियादीनामेकेन्द्रियत्वादिसमानपरिणतिलक्षणमेकेन्द्रियादिशब्दव्यपदेश-  
माक् यत् सामान्यं सा जातिः एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिः, एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः,  
त्रीन्द्रियजातिः, चतुरिन्द्रियजातिः । जातिरित्यस्यात्रापि योगात्पञ्चेन्द्रियाणां जातिः पञ्चमिका ।  
क्षायोपशमिके भावे भवन्त्येताः । यत् आह—क्षायोपशमिकानोन्द्रियाणि तन्निमिता च जातिः  
इति गाथार्थः ॥८६॥

एगिंदिएसु जीवो, जस्सिह उदएण 'होइ कम्मस्स ।

सा एगिंदियजाई, जाईओ एव 'सेसा उ ॥८७॥

(पू०) व्याख्या—एकमिन्द्रियं स्पर्शनलक्षणं येषां ते एकेन्द्रियास्तेषु च, जीवतीति जीवो यस्य  
कर्मणाः "उदयेन" प्रादुर्भावेन 'जाति' गच्छति एकेन्द्रियेषु सा 'एकेन्द्रियजातिः' एकेन्द्रिय-  
नाम तत् । "जातयः" द्वीन्द्रियादिजातयः एवेति छुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् । एवं शेषा अपि  
द्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियलक्षणा यदुदयेन द्वीन्द्रियादिपूतपद्यते सा द्वीन्द्रियादिजातिरुच्यते । इति  
गाथार्थः ॥८७॥ उक्ता एकेन्द्रियादिजातिः, शरीराण्याह—

(पारमा०) 'एकेन्द्रियेषु' पृथिव्यादिषु 'जीवः' प्राणी 'यस्य' एकेन्द्रियव्यपदेशहेतोः  
कर्मण इहोदयेन भवति, सा एकेन्द्रियजातिः । जातय एवं शेषा अपि । ननु इह यस्य कर्मण

१ विहा इत्यपि पाठः । २ "भेया इति व्याख्याकारः । ३ व्याख्याकारेण तु "जाह" इति पाठानुसारेण  
व्याख्यातम् । ४ व्याख्याकारेण तु "सेसावि" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् ।

पञ्चानां मत्पष्टिमध्ये प्रक्षेपात् । एतेषां तु पुनः सर्वेषां 'चतुर्विध्योक्तानां 'विपाकं' अनुभवरूपं 'बुच्छामि' वक्ष्यामि, 'यथानुपूर्व्याः' यथापरिपाद्या । इति गाथार्थः ॥८३॥

नारकादिगतिमंख्या 'यत्श्चैवं भवति तदाह—

(पारमा०) सर्वैरपि क्षिप्तैर्वन्धनभेदैरिति, अयं भावः—एषां मध्यादौदारिकादिबन्धनपञ्चकस्य त्रिनवतिपक्षोपात्तस्य शेषैर्दशभिरपि क्षिप्तैस्त्र्युत्तरं शतं भवति नाम्नः प्रकृतीनामिति गम्यम् । विपाकभणनं प्रस्ताति—'एतेषां' द्वित्वारिंशत्सप्तपष्टित्रिनवतित्र्युत्तरशतानां पुनर्विपाकं वक्ष्ये 'यथानुपूर्व्याः' क्रमानतिक्रमेण । इति मपादगाथार्थः ॥८३॥

प्रतिज्ञातमाह—

नारयतिगिनरामर-गइमेया चउविहा गई होइ ।

एमा खलु ओदइए. होइ हु भावे जओ आह ॥८४॥

(पू०) व्याख्या—नारकतिर्यङ्गनगरमरगतिभेदाद्विशेषाच्चतुर्विधा गतिर्भवति । 'एषा' प्रागुक्ता 'खलु' निश्चयेन, कस्मिन् भावे भवति ? इति आह—औदायिके भावे भवति, न क्षायिकादौ । दुःशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । यत् आह सूत्रकार एव । इति गाथार्थः ॥८४॥

नरकगतिस्वरूपमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्गनगरमरगतिभेदाच्चतुर्विधा गम्यते—प्राप्यते तथाविधकर्मसच्चिदैरिति गतिर्भवति । एषा 'खलु' निश्चितमौदायिके भावे भवति । यत् आह—तिपदमुदारोक्या कर्तृनिर्देश-मन्तरेणोपानं यत्र कुत्रचिद्विश्रान्त्यभावात्तीर्थकृतमाक्षिपति । इति गाथार्थः ॥८४॥

किमाह ? इति चेदुच्यते—

जीए उदएण जीवो, नेरइओ होइ नरयपुढवीए ।

सा भणिया नरयगई, सेसगईओ वि एमेव ॥८५॥

(पू०) व्याख्या—'यस्याः' नरकगतः 'उदयेन' प्रादुर्भावेन 'जीवः' प्राणी नारकिको 'भवति' संपद्यते, क ? 'नरकपृथ्व्यां' प्रतीतायाम् । सा 'भणित्वा' प्रतिपादिता नरकगतिः शेषगतयो-ऽपि' तिर्यङ्गनगरमरगत्तणा अपि 'एवमेव' उक्तन्यायेन । इति गाथार्थः ॥८५॥ उक्ता गतिः, एकैन्द्रियादिजातिमाह—

(पारमा०) यस्या गतेऽदयेन जीवो नैरगिको भवति नरकपृथिव्यां, सा भणित्वा नरक-गतिः नेपगतयोऽप्येवमेवेति । अयमाशयः—यस्या उदयेन तिर्यङ्ग भवति सा तिर्यग्गतिः ।

ओरालियं सरीरं. उदणं होइ जस्स कम्मस्स ।  
तं ओरालियनामं, सेससरीरा वि एमेव ॥८९॥

(पू०) व्याख्या—औदारिकं शरीरं प्रतिपादितम्—‘उदयेन’ विपाकेन यस्य भवति कर्म-  
णस्तदौदारिकशरीरनाम । ‘शेषशरोराण्यपि’ वैक्रियादिशरीराण्यप्येवमेव । यथौदारिकं शरी-  
रमुदयेन यस्य कर्मणो भवति तदौदारिकनाम, तथा वैक्रियाशरीराद्यपि यस्य कर्मण उदयेन भवति  
तद्वैक्रियादिशरीरनाम । एवमेव शब्दार्थः । इति गाथार्थः ॥८९॥

उक्तानि शरीराणि, अङ्गोपाङ्गान्याह—

(पारमा०) औदारिकं शरीरं यस्य कर्मण उदयेन भवति तदौदारिकनाम । इदमुक्तं  
भवति—यदुदयवशादौदारिकशरीरप्रायोग्यान् पुद्गलानादाय औदारिकशरीररूपतया परिणम्य च  
जीवः स्वप्रदेशैः सहान्योऽन्यानुगमरूपतया संबन्धयति तदौदारिकनाम । शेषशरीराण्यप्येवमेवेति  
शेषशरीरनामस्वपीयं भावना कार्या । इति गाथार्थः ॥८९॥

अङ्गोपाङ्गनामाह—

अंगोवंगविभागो, उदणं होइ जस्स कम्मस्स ।  
तं अंगवंगनामं, तस्स विवागो इमो होइ ॥९०॥

(पू०) व्याख्या—अङ्गोपाङ्गविभागो विशेषः ‘उदयेन’ विपाकेन यस्य भवति कर्मणस्त-  
दङ्गोपाङ्गनामोच्यते । ‘तस्य’ अङ्गोपाङ्गनाम्नः ‘विपाकः’ अनुभवः ‘अयं’ (एषः) वक्ष्यमाण-  
लक्षणो भवति । इति गाथार्थः ॥९०॥

(पारमा०) अङ्गानि च उपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि, अङ्गोपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि च  
अङ्गोपाङ्गानि, ‘स्यादावसंख्येयः’ (सि० ३-१-११९) इत्येकशेषः, तेषां विभागः पृथक्त्वं  
यस्य कर्मण उदयेन भवति तदङ्गोपाङ्गनाम, तस्य विपाक एव पृथक्त्वभवनलक्षण उक्तरूपो  
भवति । इति गाथार्थः ॥९०॥

अधुनाऽङ्गानि उपाङ्गानि अङ्गोपाङ्गानि च यान्युच्यन्ते तान्याह—

सीसमुरोयरपिडी, दो वाहू ऊरुआ य अट्टंगा ।  
अंगुलिमाइ उवंगाइं, अंगोवंगाइं सेसाइं ॥९१॥

उदयादंकेन्द्रियो भवति सा एकेन्द्रियजातिरित्युक्तम्, पूर्वं तु एकद्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियजातयः  
 श्रायोपशमिके भावे भवन्तीति तत्कथमेतत् ? इति, उच्यते—कारणकारणस्यापि कारणत्वविवक्षया  
 श्रायोपशमिकभावे जातीनां भणनम् । तथाहि—क्षायोपशमिकभावेनेन्द्रियं जन्यते, तन्निमित्ता च  
 व्यपदेशहेतुरौदयिकी जातिरिति, तर्हि जातिनाम किमर्थम्, एकेन्द्रियाद्यावरणक्षयोपशमे एकेन्द्रि-  
 यादिव्यपदेशं प्राप्स्यति ? इति सत्यम्, एकेन्द्रियावरणक्षयोपशमे एकेन्द्रयोऽयमिति व्यपदेशः  
 स्यात्, परं नियमो न स्यात्, यदुत स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशम एवैकेन्द्रियः । स्पर्शनरस-  
 नावरणक्षयोपशम एव द्वीन्द्रियः । स्पर्शनरसघ्राणावरणक्षयोपशम एव त्रीन्द्रियः । स्पर्शनरस-  
 घ्राणचक्षुरावरणक्षयोपशम एव चतुरिन्द्रियः । स्पर्शनरसघ्राणचक्षुःश्रोत्रावरणक्षयोपशमे तु  
 पञ्चेन्द्रियोऽयम् । इति गाथार्थः ॥८७॥ शरीराण्याह—

ओरालियवेउव्विय—आहारगतेयकम्मए 'चेव ।

एवं पंच सरीरा. तेसि विवागो इमो होइ ॥८८॥

(पू०) व्याख्या—औदारिकं च वैक्रियं चाहारकं च तैजसं च कर्मणं चेति द्वन्द्वः, औदारिक-  
 वैक्रियाहारकतैजसकार्मणानि च 'एवं' उक्तनीत्या पञ्चैव शरीराणि भवन्तीति शेषः । 'तेषां  
 च' शरीराणां च 'विपाकं' अनुभवं 'इमं' वक्ष्यमाणलक्षणं 'शृणुत' आकर्णयत यूयम् ।  
 इति गाथार्थः ॥८८॥

औदारिकस्वरूपमाह—

(पारमा०) औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणानि चैव । तत्रोदारं प्रधानं, प्राधान्यं चास्य  
 तीर्थकरगणधरापेक्षया । ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्यापि अनन्तगुणहीनत्वात् । उदारमेवौदारिकं,  
 विनयादित्वादिकणि । विविधा क्रिया विक्रिया, तस्यां भवं वैक्रियम् । तथाहि—तदेकं भूत्वाऽनेकं  
 भवति । अणु भूत्वा महद्भवति । खचरं भूत्वा भूमिचरं भवति । अदृश्यं भूत्वा दृश्यं भवति ।  
 अनेकं भूत्वा एकम्, इत्यादि । आह्रियते निर्वर्त्यते चतुर्दशपूर्वविदा तीर्थकरश्चद्विस्फातिदर्श-  
 नादिकप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादित्याहारकम्, तच्च वैक्रियापेक्षयाऽत्यन्तशुभम् ।  
 तेजसा तेजःपुद्गलैर्निर्द्ध्यं च तैजसं यदाहारपरिणमनस्य तेजोलेश्यानिर्गमनस्य च हेतुः । कर्मणो  
 विकारः कर्मणम् । कर्मपरमाणव आत्मप्रदेशैः सह क्षीरनीरवदन्योऽन्यानुगताः सन्तः कर्मण-  
 शरीरम् । इदं च जन्तोर्गीत्यन्तरमंक्रान्तौ साधकतमं करणम् । 'एवं' उक्तप्रकारेण पञ्च शरी-  
 राणि, तेषां विपाक एव वक्ष्यमाणो भवति । इति गाथार्थः ॥८८॥

१ व्याख्याकारेण तु 'चेव' । पंचैव सरीरा तेसि च विवागं इमं सुणोह' इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् ।

२ विदात्तः अनुभवः अयं वक्ष्यमाणलक्षणः शृणुत जे० ।

ओरालियं सरीरं. उदणं होइ जस्स कम्मस्स ।  
तं ओरालियनामं, सेससरीरा वि एमेव ॥८९॥

(पू०) व्याख्या—औदारिकं शरीरं प्रतिपादितम्—‘उदयेन’ विपाकेन यस्य भवति कर्म-  
णस्तदौदारिकशरीरनाम । ‘शेषशरीराण्यपि’ वैक्रियादिशरीराण्यप्येवमेव । यथौदारिकं शरी-  
रमुदयेन यस्य कर्मणो भवति तदौदारिकनाम, तथा वैक्रियाशरीराद्यपि यस्य कर्मण उदयेन भवति  
तद्वैक्रियादिशरीरनाम । एवमेव शब्दार्थः । इति गाथार्थः ॥८९॥

उक्तानि शरीराणि, अङ्गोपाङ्गान्याह—

(पारमा०) औदारिकं शरीरं यस्य कर्मण उदयेन भवति तदौदारिकनाम । इदमुक्तं  
भवति—यदुदयवशादौदारिकशरीरप्रायोग्यान् पुद्गलानादाय औदारिकशरीररूपतया परिणम्य च  
जीवः स्वप्रदेशैः सहान्योऽन्यानुगमरूपतया संबन्धयति तदौदारिकनाम । शेषशरीराण्यप्येवमेवेति  
शेषशरीरनामस्वपीयं भावना कार्या । इति गाथार्थः ॥८९॥

अङ्गोपाङ्गनामाह—

अंगोवंगविभागो, उदणं होइ जस्स कम्मस्स ।  
तं अंगवंगनामं, तस्स विवागो इमो होइ ॥९०॥

(पू०) व्याख्या—अङ्गोपाङ्गविभागो विशेषः ‘उदयेन’ विपाकेन यस्य भवति कर्मणस्त-  
दङ्गोपाङ्गनामोच्यते । ‘तस्य’ अङ्गोपाङ्गनाम्नः ‘विपाकः’ अनुभवः ‘अयं’ (एषः) वक्ष्यमाण-  
लक्षणो भवति । इति गाथार्थः ॥९०॥

(पारमा०) अङ्गानि च उपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि, अङ्गोपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि च  
अङ्गोपाङ्गानि, ‘स्यादावसंख्येयः’ (सि० ३-१-११९) इत्येकशेषः, तेषां विभागः पृथक्त्वं  
यस्य कर्मण उदयेन भवति तदङ्गोपाङ्गनाम, तस्य विपाक एष पृथक्त्वमवतलक्षण उक्तरूपो  
भवति । इति गाथार्थः ॥९०॥

अधुनाऽङ्गानि उपाङ्गानि अङ्गोपाङ्गानि च यान्युच्यन्ते तान्याह—

सीसमुरोयरपिटी, दो बाहू ऊरुआ य अट्टंगा ।  
अंगुलिमाइ उवंगाई, अंगोवंगाई सेसाई ॥९१॥

(पू०) व्याख्या—शिरो=मस्तकमुरो=वक्षः, उदरं=पोट्टु, पृष्ठिः प्रतीता, द्वौ बाहू प्रतीतौ, 'ऊरु च' ऊरू=जङ्घे, अष्टावङ्गानि । अङ्गुलिरादियेषां तान्यङ्गुल्यादीन्युपाङ्गानि, अङ्गोपाङ्गानि, 'शोषाणि' उक्तव्यतिरिक्तानि । इति गाथार्थः ॥९१॥

यथा येषामङ्गोपाङ्गानि भवन्ति येषां च न भवन्ति तत्प्रदर्शयन्नाह—

(पारमा०) शीर्षे उरः उदरं पृष्ठिद्वौ बाहू ऊरुके च, अष्टावङ्गानि, 'अङ्गुल्यादीनि' अङ्गुलिभ्रूजिह्वादीन्युपाङ्गानि । 'शोषाणि' तत्प्रत्यवयवभूतानि अङ्गुलिपर्वरेखादीनि अङ्गोपाङ्गानि । इति गाथार्थः ॥९१॥

सम्प्रति त्रैविध्यमाह—

आइह्लाणं तिण्हं, हुंति मरीराण अंगुवंगाइं ।

णो तेयगकम्माणं, बंधणनामं इमं होइ ॥९२॥

(पू०) व्याख्या—'आद्यानां' औदारिकवैक्रियाहारकाणां 'निण्हं' त्रयाणां 'भवन्ति' जायन्ते शरीराणामङ्गोपाङ्गानि । 'नौ' नैव तैजसकार्मणयोः, तत्कारणाभावात् । बन्धननाम पुनः 'इदं' वक्ष्यमाणलक्षणं भवति । इति गाथार्थः ॥९२॥

उक्तमङ्गोपाङ्गनाम, बन्धननाम प्राह—

(पारमा०) 'आद्यानां' औदारिकवैक्रियाहारकाणां 'त्रयाणां' शरीराणामङ्गोपाङ्गानि भवन्ति । इदमुक्तं भवति-अङ्गोपाङ्गनाम त्रिधा, औदारिकाङ्गोपाङ्गनामवैक्रियाङ्गोपाङ्गनामआहारकाङ्गोपाङ्गनामभेदात् । तैजसकार्मणयोस्तु नाङ्गोपाङ्गनाम, जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वादिति । बन्धननाम प्रसूतानि-बन्धननाम 'इदं' वक्ष्यमाणं पञ्चदशप्रकारं भवति । इति गाथार्थः ॥९२॥

सम्प्रत्यौदारिकबन्धनचतुष्टयमाह—

ओरालियओरालिय, ओरालियतेयबंधणं वीयं ।

ओरालकम्मबंधण, तिण्हवि जोगे चउत्थं तु ॥९३॥

(पू०) व्याख्या—औदारिकौदारिकबन्धनं प्रथमम् । औदारिकपुद्गलानामौदारिकपुद्गलैरेव संबन्धः प्रथमं बन्धनम् । औदारिकाणामेव पुद्गलानां तेजःपुद्गलैर्यः संबन्धो द्वितीयबन्धनमेतत् । औदारिकपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यत्संबन्धकरणं तत्ततीयम्, त्रयाणामपि 'योगे' संबन्धे चतुर्थं तु बन्धनं, औदारिकतैजसकार्मणपुद्गलानां पुनर्मीलने चतुर्थं बन्धनम् । इति गाथार्थः ॥९३॥

औदारिकादिबन्धनस्वरूपमाह—

(पारमा०) वक्ष्यतेऽनेनेति बन्धनम् । औदारिकस्यौदारिकेन सह बन्धनं औदारिकौदारिक-बन्धनम्, अर्थादाद्यम् । एवमौदारिकतैजसबन्धनं द्वितीयम् । औदारिककार्मणबन्धनमर्थात्तृतीयम् । त्रयाणामप्यौदारिकतैजसकार्मणानां योगे पुनश्चतुर्थम् ॥९३॥ एतदेव व्याचष्टे—



ओरालपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे उरालत्ते ।

अन्ने 'उ वज्झमाणा, ओरालियपुग्गला जे 'य ॥९४॥

(पू०) व्याख्या—उदाराश्च ते पुद्गलाश्च ते उदारपुद्गलाः 'इह' अस्मिन्नोक्ते 'बद्धाः' गृहीता 'जीवेन' प्राणिना, 'ये' पुद्गलाः क ? 'उदारत्वे' उदारभावे । किमुक्तं भवति-यैः पुद्गलैरुत्तर-कालमौदारिकं शरीरं निर्वर्तयति जीवः ते जीवेनात्मसात्कृता 'अन्ये च बध्यमानाः' वर्तमानकालभाविन एष्यत्कालभाविनश्चौदारिकपुद्गला 'ये तु' य एव बद्धा बध्यमानाश्च त एवौदारिकबन्धनकारणम् । इति गाथार्थः ॥९४॥

औदारिकपुद्गलमबन्धनेन बन्धनमाह—

(पारमा०) औदारिकपुद्गला इह संगारे जीवेन ये औदारिकत्वेन बद्धाः, तथाऽन्ये पुनर्वध्यमाना औदारिकपुद्गला ये च ॥९४॥

तेसिं जं संबन्धं.<sup>B</sup> अवरोप्पपुरग्गलाणमिह कुणइ ।

तं जउसरिसं जाणसु, ओरालियबंधणं पढमं ॥९५॥

(पू०) व्याख्या—'तेषां' 'प्राग्बद्धबध्यमानपुद्गलानां 'यत्' कर्म 'संबन्धं' घटनां 'परस्परं' अन्योऽन्यं 'पुद्गलानां' उक्तस्वरूपाणां 'इह' लोके 'करोति' निर्वर्तयति 'तत्' कर्म 'जतुसदृशं' लाक्षातुल्यम् । यथाहि—लाक्षया काहलादिषु दण्डिकाद्यवयवानां पृथग्भूतानां संबन्धः=संयोगः क्रियते, एवमनेनापि कर्मणां पृथग्भूतानां बद्धबध्यमानपुद्गलानां संबन्धः=संयोगः क्रियते इति लाक्षयोपमीयते । 'जानीहि' विद्धि औदारिकबन्धनं 'प्रथमं' आद्यम् । इति गाथार्थः ॥९५॥

उक्तं प्रथमबन्धनम्, द्वितीयादीन्याह—

(पारमा) तेषां बद्धबध्यमानानां पुद्गलानां यत्कर्मान्योऽन्यं संबन्धं करोति तत् 'जतुसदृशं' लाक्षातुल्यमौदारिकबन्धनं प्रथमं जानीहि ॥९५॥

शेषत्रयातिदेशमाह—

एवोरालियतेयग, ओरालियकम्मबंधणं तह य ।

ओरालतेयकम्मग—बंधणनामंपि एमेव ॥ ९६ ॥

(पू०) व्याख्या—'एवं' उक्तप्रकारेण, मकारस्य प्राकृतत्वाद्धोपः, यथौदारिकपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां संयोजकं कर्म औदारिकबन्धनमुच्यते, तथौदारिकपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां तैजसपुद्गलैर्यत्संबन्धकरणं तदौदारिकतैजसबन्धनं द्वितीयम् । औदारिकपुद्गलानामेव बद्धबध्यमा-

१ 'य' इत्यपि पाठः । २ 'उ' इत्यपि पाठः । एतत्पाठद्वयानुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । २ B अव-  
पर 'इत्यपि पाठः । ३ प्रासुक्तबध्यमान० जे० । ४ पुद्गलवद्धबध्यमानसंयो० जे० । ५ क तैजोबन्धनं जे० ।

नानां-कार्मणपुद्गलैः यः संबन्धः, तथा च तत्तृतीयम् । उदारतेजःकर्मपुद्गलानां बन्धनं संयोजनं बन्धननाम एतदप्येवमेव. यथौदारिकपुद्गलानां द्विकसंयोगे तेजःप्रभृतिभिः संयोजकं कर्मौदारिकादिबन्धनं नाम. यथौदारिकतेजःकार्मणपुद्गलानां बद्धबध्यमानानामौदारिकतेजःकार्मणपुद्गलैर्यत्संयोजकं कर्म तद्बन्धनं नाम चतुर्थम् । इति गाथार्थः ॥१६॥

उक्तान्यौदारिकादिबन्धनानि. साम्प्रतं वैक्रियबन्धनान्याह—

(पारमा०) एवं ये औदारिकपुद्गला बद्धाः, ये च तैजसपुद्गला बध्यमानाः, तेषां यत्कर्म संबन्धं विदधाति तदौदारिकनैजमनाम । एवमौदारिकपुद्गला बद्धाः कार्मणपुद्गलाश्च बध्यमानाः, तेषां संबन्धविधायकं यत्कर्म तदौदारिककार्मणनाम । एवमौदारिकपुद्गला बद्धाः, तैजसकार्मणपुद्गलाश्च बध्यमानाः, तेषां संबन्धकारकं कर्म औदारिकनैजसकार्मणनाम । इति गाथाचतुष्टयार्थः ॥१६॥

वैक्रियबन्धनचतुष्टयमाह—

वेउव्वियवेउव्विय, वेउव्वियतेयबंधणं वीयं ।

वेउव्विकम्मबंधण. तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१७॥

(पू.) व्याख्या—वैक्रियाणां पुद्गलानां वैक्रियैरेव संबन्धः प्रथमं बन्धनम् । वैक्रियपुद्गलानामेव तेजःपुद्गलैर्यत्संबन्धस्तद् द्वितीयं बन्धनम् । वैक्रियपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यत्संबन्धकं कर्म तत्तृतीयं बन्धनम् । त्रयाणामपि वैक्रियतेजःकार्मणपुद्गलानां 'योगे एव' संबन्धे एव चतुर्थम् । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वाद् । इति गाथार्थः ॥१७॥

उक्तवैक्रियबन्धनान्येव व्यक्तीकुर्वन्नाह—

वेउव्वियपुग्गला इह, वद्धा जीवेण जे विउव्वित्ते ।

अन्ने य वज्झमाणा. वेउव्वियपुग्गला जे उ ॥१८॥

(पू०) व्याख्या—'वैक्रियपुद्गलाः' वैक्रियशरीरनिर्वर्तनप्रायोग्याः 'इह' लोकं 'बद्धाः' गृहीताः 'जीवेन' प्राणिना 'ये' पुद्गलाः 'विउव्वित्ते' वैक्रियभावे, अन्ये च 'बध्यमानाः' आगामिकालभाविनो वैक्रियपुद्गला ये तु इति गाथार्थः ॥१८॥

वैक्रियपुद्गलबन्धनमभिधाय साम्प्रतं संबन्धद्वारेण बन्धनमाह—

तेमिं जं संबन्धं, 'अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।

तं जउमरिसं जाणसु. वेउव्वियबंधणं पढमं ॥१९॥

(पू०) व्याख्या—'तेषां' प्रागुक्तपुद्गलानां यत् 'संबन्धं' संयोगं 'परस्परं' अन्योऽन्यं पुद्गलानां 'इह' अस्मिन् संसारे 'करोति' निर्वर्तयति 'तत्र' कर्म 'जतुसदृशं' लाक्षातुल्यं 'जानोहि' अवबुध्यस्व 'वेउव्वियबन्धणं' [वैक्रियबन्धनं] 'प्रथमं' आद्यम् । इति गाथार्थः ॥९९॥ ॥६००॥

उक्तं वैक्रियबन्धनं, द्वितीयादीन्याह—

एवं विउव्वितेयग. वेउव्वियकम्मबंधणं तह य ।

वेउव्वितेयकम्मग—बंधणनामंपि एमेव ॥ १०० ॥

(पू०) व्याख्या—एवेति लुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात्, उक्तनीत्या । उक्तनीतिश्चेयम्—यथा वैक्रियपुद्गलानां बद्धव्यमानानां वैक्रियैरेव यत्संबन्धकरणं तद् वैक्रियवैक्रियबन्धनमुच्यते । तथा वैक्रियपुद्गलानामुक्तस्वरूपाणां तैजसैर्यत्संबन्धकरणं तद्वितीयं बन्धनं वैक्रियतेजोलक्षणम् । वैक्रियपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यद्बन्धनं तथा च तत्तृतीयं वैक्रियकार्मणलक्षणम् । वैक्रियतेजः-कार्मणबन्धननामाप्येवमेव । यथा प्रागुक्ते द्वे बन्धने द्विकसंयोगे तथेदमपि ज्ञातव्यम् । केवलं त्रिकसंयोगे चतुर्थम् इति गाथार्थः ॥१००॥

उक्तानि वैक्रियबन्धनानि, आहारकबन्धनान्याह—

(पारमा०) चतस्रोऽपि स्फुटार्थाः ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

आहारकबन्धनचतुष्टयमाह—

आहारगआहारग, 'आहारगतेयबंधणं वीयं ।

आहारकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१०१॥

(पू०) व्याख्या—आहारकपुद्गलानामाहारकपुद्गलैरेव यः संबन्धः स प्रथमं बन्धनम् । आहारकपुद्गलानामेव तैजसैर्बन्धनं संबन्धो द्वितीयम् । आहारकपुद्गलानामेव पुद्गलैर्बन्धनं संयोगस्तृतीयम् । त्रयाणामपि योगे आहारकतैजसकार्मणसंबन्धे चतुर्थम् । इति गाथार्थः १०१ ॥

आहारकबन्धनकारणमाह—

आहारपुग्गला इह, आहारत्तेण जे निबद्धा उ ।

अन्ने य बज्झमाणा, आहारगपुग्गला जे उ ॥१०२॥

(पू०) व्याख्या—'आहारपुद्गलाः' आहारकशरीरप्रायोग्याः 'इह' अस्मिन् संसारे 'आहार-त्वेन ये निष द्वास्तु' आहारकभावेन-ये, क्व ? प्राक् शरीरग्रहणकाले जीवेन गृहीता एव ।

१ 'धद्धा जीवेण आहारतेज०' इत्यपि पाठः ।

नानां कार्मणपुद्गलैः यः संबन्धः, तथा च तत्तृतीयम् । उदारतेजःकर्मपुद्गलानां बन्धनं संयोजनं बन्धननाम एतदप्येवमेव, यथौदारिकपुद्गलानां द्विकसंयोगे तेजःप्रभृतिभिः संयोजकं कर्मौदारिकादिवन्धनं नाम, यथौदारिकतेजःकार्मणपुद्गलानां बद्धबध्यमानानामौदारिकतेजःकार्मणपुद्गलैर्यत्संयोजकं कर्म तद्वन्धनं नाम चतुर्थम् । इति गाथार्थः ॥९६॥

उक्तान्यौदारिकादिवन्धनानि, साम्प्रतं वैक्रियबन्धनान्याह—

(पारमा०) एवं ये औदारिकपुद्गला बद्धाः, ये च तैजसपुद्गला बध्यमानाः, तेषां यत्कर्म संबन्धं विदधाति तदौदारिकतैजसनाम । एवमौदारिकपुद्गला बद्धाः कार्मणपुद्गलाश्च बध्यमानाः, तेषां संबन्धविधायकं यत्कर्म तदौदारिककार्मणनाम । एवमौदारिकपुद्गला बद्धाः, तैजसकार्मणपुद्गलाश्च बध्यमानाः, तेषां संबन्धकारकं कर्म औदारिकतैजसकार्मणनाम । इति गाथाचतुष्टयार्थः ॥९६॥

वैक्रियबन्धनचतुष्टयमाह—

वेउव्वियवेउव्विय, वेउव्वियतेयबंधणं बीर्यं ।

वेउव्विकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥९७॥

(पू०) व्याख्या—वैक्रियाणां पुद्गलानां वैक्रियैरेव संबन्धः प्रथमं बन्धनम् । वैक्रियपुद्गलानामेव तेजःपुद्गलैर्यत्संबन्धस्तद् द्वितीयं बन्धनम् । वैक्रियपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यत्संबन्धकं कर्म तत्तृतीयं बन्धनम् । त्रयाणामपि वैक्रियतेजःकार्मणपुद्गलानां 'योगे एष' संबन्धे एव चतुर्थम् । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥९७॥

उक्तवैक्रियबन्धनान्येव व्यक्तीकुर्वन्नाह—

वेउव्विपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे विउव्विरो ।

अन्ने य बज्झमाणा, वेउव्वियपुग्गला जे उ ॥९८॥

(पू०) व्याख्या—'वैक्रियपुद्गलाः' वैक्रियशरीरनिर्वर्तनप्रायोग्याः 'इह' लोके 'बद्धाः' गृहीताः 'जीवेन' प्राणिना 'ये' पुद्गलाः 'विउव्विस्से' वैक्रियभावे, अन्ये च 'बध्यमानाः' आगामिकालभाविनो वैक्रियपुद्गला ये तु इति गाथार्थः ॥९८॥

वैक्रियपुद्गलबन्धनमभिधाय साम्प्रतं संबन्धद्वारेण बन्धनमाह—

तेसिं जं संबन्धं, अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।

तं जउसरिसं जाणसु, वेउव्वियबंधणं पढमं ॥९९॥

(पू०) व्याख्या—‘तेषां’ प्रागुक्तपुद्गलानां यत् ‘संबन्ध’ संयोगं ‘परस्परं’ अन्योऽन्यं पुद्गलानां ‘इह’ अस्मिन् संसारे ‘करोति’ निर्वर्तयति ‘तत्’ कर्म ‘जतुसदृशं’ लाक्षातुल्यं ‘जानीहि’ अवबुध्यस्व ‘वेउव्वियबन्धणं’ [वैक्रियबन्धनं] ‘प्रथमं’ आद्यम् । इति गाथार्थः ॥१९॥ ॥६००॥

उक्तं वैक्रियबन्धनं, द्वितीयादीन्याह—

एवं विउव्वितेयग. वेउव्वियकम्मबंधणं तह य ।

वेउव्वितेयकम्मग—बंधणनामंपि एमेव ॥ १०० ॥

(पू०) व्याख्या—एवेति लुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात्, उक्तनीत्या । उक्तनीतिश्चेयम्—यथा वैक्रियपुद्गलानां बद्धब्रह्मणानां वैक्रियैरेव यत्संबन्धकरणं तद् वैक्रियवैक्रियबन्धनमुच्यते । तथा वैक्रियपुद्गलानामुक्तस्वरूपाणां तैजसैर्यत्संबन्धकरणं तद्विचारीयं बन्धनं वैक्रियतेजोलक्षणम् । वैक्रियपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यद्बन्धनं तथा च तत्तृतीयं वैक्रियकार्मणलक्षणम् । वैक्रियतेजः-कार्मणबन्धननामाप्येवमेव । यथा प्रागुक्ते द्वे बन्धने द्विकसंयोगे तथेदमपि ज्ञातव्यम् । केवलं त्रिकसंयोगे चतुर्थम् इति गाथार्थः ॥१००॥

उक्तानि वैक्रियबन्धनानि, आहारकबन्धनान्याह—

(पारमा०) चतस्रोऽपि स्फुटार्थाः ॥१७॥ ॥१८॥ ॥१९॥ ॥१००॥

आहारकबन्धनचतुष्टयमाह—

आहारगआहारग, 'आहारगतेयबंधणं वीयं ।

आहारकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१०१॥

(पू०) व्याख्या—आहारकपुद्गलानामाहारकपुद्गलैरेव यः संबन्धः स प्रथमं बन्धनम् । आहारकपुद्गलानामेव तैजसैर्बन्धनं संबन्धो द्वितीयम् । आहारकपुद्गलानामेव पुद्गलैर्बन्धनं संयोगस्तृतीयम् । त्रयाणामपि योगे आहारकतैजसकार्मणसंबन्धे चतुर्थम् । इति गाथार्थः १०१ ॥

आहारकबन्धनकारणमाह—

आहारपुग्गला इह, आहारत्तेण जे निबद्धा उ ।

अन्ने य बज्झमाणा, आहारगपुग्गला जे उ ॥१०२॥

(पू०) व्याख्या—‘आहारपुद्गलाः’ आहारकशरीरप्रायोग्याः ‘इह’ अस्मिन् संसारे ‘आहार-त्वेन ये निष हास्तु’ आहारकभावेन ये, क्व ? प्राक् शरीरग्रहणकाले जीवेन गृहीता एव ।

१ ‘वद्धा जीवेण आहारतेजो’ इत्यपि पाठः ।

'अन्ये च' उत्तरकालभाविनो 'बध्यमानाः' गृह्यमाणा एवाहारकपुद्गलाः, 'ये तु' य एवा-  
-ऽऽहारकशरीरनिवर्तनक्षमाः । इति गाथार्थः ॥१०२॥

आहारकपुद्गलबन्धद्वारेण बन्धनमाह—

तेमिं जं संबंधं, 'अवरोपर पुग्गलाणमिह कुण्ड ।

तं जउमरिसं जाणसु, आहारगबंधणं पढमं ॥१०३॥

(पू०) व्याख्या— तेषां' उक्तस्वरूपाहारकपुद्गलानां 'यत्' कर्म संबन्ध' योग्यं 'परस्परं'  
अन्योऽन्यं बद्धबध्यमानानां 'इह' अस्मिन्नोक्ते 'करोति' निवर्तयति 'तत्' 'जतुसदृशां'  
लाक्षातुल्यमुक्तन्यायेन 'जानोहि' विद्धि आहारकबन्धनं 'प्रथमं' आद्यम् । इति गाथार्थः ॥१०३॥

उक्तमाहारकबन्धनं प्रथमम्, द्वितीयादीन्याह—

एवाहारगतेयग, आहारगकम्मबंधणं तह य ।

आहारतेयकम्मग—बंधणनामं पि एमेव ॥१०४॥

(पू०) व्याख्या— एवशब्दव्याख्या प्राग्बत् । यथाऽऽहारकपुद्गलानामाहारकपुद्गलैरेवाहारका-  
हारकबन्धनम्, तथाऽऽहारकतेजःपुद्गलैरेवाहारकतेजोबन्धनं द्रष्टव्यं द्वितीयम् । तथाऽऽहारक-  
कार्मणबन्धनं च तृतीयम् । आहारक'तैजसकार्मणबन्धननामा-ऽप्येवमेव । यथा-ऽऽहारक'बन्धने  
व्याख्यातं तथा-ऽत्रा-ऽपि द्रष्टव्यम् । इति गाथार्थः ॥१०४॥

उक्तान्याहारकबन्धनानि, तेजोबन्धनान्याह—

(पारमा०) पाठसिद्धा एव ॥१०१॥ १०२॥ १०३॥ १०४॥

ममप्रति तैजसतैजस-तैजसकार्मण-कार्मणकार्मणबन्धनान्याह—

एवं तेयगतेयग, तेयग 'कम्मे य बंधणं तह य ।

'कम्महगंकम्महगं, बंधणनामं पि 'पनरसमं ॥१०५॥

(पू०) व्याख्या— तैजसपुद्गलानां बद्धानां प्राग्बध्यमानानामेव्यत्काले तेजःपुद्गलैरेव यः संबन्धः  
क्रियते तनेजस्तेजोबन्धनं प्रथमम् । तेजःपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां कार्मणपुद्गलैश्च बन्धनं  
संबन्धस्तथा च तद्द्वितीयं तेजःकार्मणसंज्ञकं बन्धनम् । कार्मणपुद्गलानामतीतकालबद्धानां भवि-  
ष्यकाले च बध्यमानानां कार्मणपुद्गलैरेव यः संबन्धस्तत्कार्मणबन्धनं पञ्च'दशम् । औदारिका-

१ "अवरोपर पुग्गलाण" इत्यपि पाठः । २ योगं जे० । ३ ० कतेजःकार्मण जे० । ४ बन्धनन्याख्यानां  
तथाऽत्रापि जे० । ५ "कम्मयगबंधणं" इत्यपि पाठः । ६ "कम्मइयंकम्मइयं" इत्यपि पाठः । ७ "तु पन्नरसं"  
इत्यपि पाठः । ८ ० इज्जन्म ते० ।

दिद्विकादिसंयोगे चत्वारि, वैक्रियसंयोगे चत्वारि, तथाऽऽहारकसंयोगे चत्वारि, तैजससंयोगे द्वे, कार्मणसंयोगे चैकम्, सर्वाण्यपि मिलितानि पञ्चदश । इति गाथार्थः ॥१०५॥

उक्तानि बन्धनानि, तदुक्तेर्वन्धननामा 'प्युक्तमेव, साम्प्रतं संघातनामाह—

(पारमा०) तैजसपुद्गलानां बद्धानां बध्यमानानां च तैजसपुद्गलैः सह संबन्धकारि तैजस-तैजसबन्धनम् । तैजसपुद्गलानां बद्धानां बध्यमानकार्मणपुद्गलैः सह संबन्धकारि तैजसकार्मण-बन्धनम् । कार्मणपुद्गलानां बद्धानां बध्यमानानां च संबन्धहेतुः कार्मणकार्मणबन्धनं पञ्चदश-मिति । एवं चत्वार्यौदारिकबन्धनानि, चत्वारि वैक्रियबन्धनानि, चत्वार्याहारकबन्धनानि, इत्ये-तानि द्वादश, तैजसतैजस-तैजसकार्मण-कार्मणकार्मणबन्धनत्रयसमन्वितानि पञ्चदशेति । ननु यत्र बन्धनपञ्चकमेवोपादीयते तत्र कथमेतावतां ग्रहः १, उच्यते—तदेवमवगन्तव्यम्, गृहीतगृह्यमाणा-नामौदारिकपुद्गलानां तैजसकार्मणपुद्गलैश्च सह संबन्धकारि औदारिकबन्धनम् । एवं वैक्रियपुद्ग-लानां बद्धबध्यमानानां तैजसकार्मणपुद्गलैश्च सह संबन्धकारि वैक्रियबन्धनम् । एवमाहारक-पुद्गलानां बद्धबध्यमानानां तैजसकार्मणपुद्गलैश्च सह संबन्धाघायकमाहारकबन्धनम् । एवं त्रिभिर्द्वादश संगृहीतानि । तथा तैजसपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां कार्मणपुद्गलैश्च । सह संब-न्धहेतुस्तैजसबन्धनम् । एवमनेन चतुर्थेन द्वयसंग्रहः । यदुक्तं शतकधृह्चूर्णौ बन्धनपञ्च-कमणनप्रस्तावे—“गह्वियच्चिप्पमाणाणं पुग्गलाणं अन्नसरोरपुग्गलेहिं वा समं बंधो जस्स उदएणं भवइ तं बंधणनामं” इति । पञ्चमं तु कार्मणबन्धनमिति बन्धनपञ्चकपक्षेऽपि पञ्चदशसंग्रहः । इति गाथार्थः ॥१०५॥

उक्तं सप्रमेदं बन्धननाम, अधुना संघातनामाह—

संघायनामं भहुणा, संघायइ जेण तेण संघायं ।

ओरालियसंघायं, वेउव्विय जाव 'कम्मइगं ॥१०६॥

(पू०) व्याख्या—‘संघायनामं’ इत्यनुस्वारोऽस्लाक्षणिकः प्राकृतत्वात्, ‘अधुना’ साम्प्रतमुच्यते—‘संघातयति’ इति मीलयति वियुतानि द्रव्याण्येकीकरोतीत्यर्थः, ‘जेण’ कारणेन ‘तेन’ कारणेन संघातनाम भण्यते । तत्रौदारिकस्य संघात औदारिकसंघातः तं, जानीहीति क्रिया सर्वत्र । वैक्रियसंघातं, आहारकसंघातं, तैजससंघातं यावत्कार्मणसंघातम्, इति पञ्च संघातनामानि । इति गाथार्थः ॥१०६॥

औदारिकादिसंघातस्वरूपमाह—

१. प्युक्तम् सा० जे० । २ “भहुणा” इत्यपि पाठः ३ “कम्मइयं” इत्यपि पाठः ।

(पारमा०) संघातनाम 'अधुना' बन्धननामानन्तरं मण्यत इत्यध्याहारः । व्युत्पत्तिमाह-  
'संघातयन्ति' पिण्डीकरोति औदारिकादिपुद्गलान् येन तेन हेतुना संघातमुच्यते । तच्च पञ्च-  
धेत्याह—औदारिकसंघातं, वैक्रियसंघातं, यवत्करणादाहारकसंघातं, तैजससंघातं, कार्मणसंघा-  
तम् । इति गाथार्थः ॥१०६॥ एतद्व्याचष्टे—

ओरालार्हं जे देहपुद्गला 'होंति जम्मि ठाणम्मि ।

ते 'ठंति तम्मि ठाणे. संघायण'कम्मणो उदए ॥१०७॥

(पू०) व्याख्या—औदारिकमादिर्येषां ते औदारिकादयः, आदिशब्दाद् वै क्रियाहारकतैजसकार्म-  
णपुद्गलपरिग्रहः । ये देहे पुद्गला देहपुद्गलाः 'भवन्ति' जायन्ते यस्मिन् स्थाने ते औदा-  
रिकादयः पुद्गलास्तस्मिन्नेव स्थाने भवन्ति नापरत्र, संघातनकर्मणः 'उदये' प्रादुर्भावे । अयमत्र  
भावार्थः—ये औदारिकादिषु शरीरेषु शिरःप्रभृत्यवयवानां निर्वर्तका औदारिकादिपुद्गला ये यस्य  
स्थानस्य योग्यास्ते तस्मिन्नेव शिरःप्रभृतिस्थानके भवन्ति । न विपर्ययेण यस्य कर्मणः प्रमा-  
वाचत्संघातनामकर्मोच्यते । इति गाथार्थः ॥१०७॥

उक्तं संघातनाम, अधुना संहननान्याह—

(पारमा०) औदारिकादयो ये देहपुद्गला यस्मिन् स्थाने भवन्ति ते संघातकर्मण उदयेन  
तस्मिन् स्थाने तिष्ठन्ति । अयमभिप्रायः—ये औदारिकपुद्गला यत्र योग्यास्तान् तत्र संघातयति  
यत्कर्म निजोदयात् । यथा शिरोयोग्यान् शिरसि, पादयोग्यान् पादयोः शेषाङ्गयोग्यान् शेषाङ्गेषु,  
तदौदारिकसंघातनाम । एवं वैक्रियाहारकतैजसकार्मणेष्वपि वाच्यम्, इति गाथार्थः ॥१०७॥

सम्प्रत्यस्थिरचनात्मकस्य संहननस्यावसरः, तच्चौदारिकशरीर एव नान्येषु, तेषामस्थिर-  
हितत्वात्, तच्च पोदेत्याह—

'वज्जरिसहनारायं रिसहं नारायमद्धनारायं ।

कीलिय तह छेवट्ठं, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१०८॥

(पू०) व्याख्या—वज्रश्चभनाराचं प्रथममाद्यं, द्वितीयं च ऋषभनाराचं, नाराचं तृतीयं, अर्द्ध-  
नाराचं चतुर्थं, कीलिका पञ्चमं, तथा षष्ठं पुनरछेवट्ठं (सेवार्त्तं) संहननं भवतीति ज्ञातव्यम् ।  
इति गाथार्थः ॥१०८॥

ऋषभादीन् व्याख्यानयन्नाह—

(पारमा०) वज्रऋषभनाराचं ऋषभं इत्युक्ते ऋषभनाराचमिति द्रष्टव्यम् । नाराचं,  
अर्द्धनाराचं, कीलिका, तथा सेवार्त्तम् । तेषां स्वरूपमिदं भवति ॥१०८॥

१ "हुंति" इत्यपि पाठः । २ "हुंति" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम् । ३ "कम्मणो"  
इत्यपि पाठः । ४ "वज्जरिसहनारायं षष्ठं वीमं च रिसहनारायं । नारायमद्धनारायकीलिया तह य छेवट्ठं"  
॥१०८॥ इत्यपि पाठः, एतत्पाठानुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम् ।



तथाहि—

रिसहो 'य होइ पट्टो, वज्रं पुण कीलिया मुण्येव्वा ।

उभओ<sup>२</sup> मकडबंधं. नारायं तं वियाणाहि ॥१०९॥

(पू०) व्याख्या—ऋषमस्त्वागमभाषया दीर्घोऽल्पबाहल्यः, पृथुत्वयुक्तः कपाटादिषु लोह-पट्टकाकारः पट्टोऽभिधीयते । वज्रं पुनः कीलिका मन्तव्या, सा च प्रतीता । उभयतो द्वयोरपि पार्श्वयोर्मर्कटबन्धः प्रतीतः, स विद्यते यस्मिन् संहनने तन्माराचसंहननं 'विजानीहि' अवबु-ध्यस्व । अयमत्र भावार्थः—यथा हस्तयोरुभयतो मर्कटबन्धेन कलाचीग्रहणे मध्यदेशे लोहपट्टकेन वेष्टयित्वा पट्टबन्धनमध्यदेशे वेधं दत्त्वा कीलिका प्रक्षिप्यते, तस्यां प्रक्षिप्तार्थां यादृशः सञ्चयो भवत्यचलः कालान्तरस्थायी बलवांस्तथाऽस्थिसञ्चयो यस्मिन् संहनने सति भवति तत्संहननं वज्रऋषमनाराचं भवति । इति गाथार्थः ॥१०९॥

संहननोदयद्वारेण वज्रऋषमनाराचमंज्ञामाह—

(पारमा०) —ऋषमः परिवेष्टनपट्टो भवति । वज्रं कीलिका ज्ञातव्या । उभयतो मर्कट-बन्धं नाराचं तद्विजानीहि । अयमर्थः—द्वयोरस्थनोरुभयतो मर्कटबन्धेन ऋषयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयमेदि कीलिकापरपर्यायं वज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद्वज्रर्षमनाराचम् । यत्पुनः कीलिकारहितं तद् ऋषमनाराचम् । यत्र पुनः कीलिकया ऋषम-संज्ञपट्टेन च रहितो मर्कटबन्धो भवति तन्माराचम् । यत्र त्वेकपार्श्वे मर्कटबन्धो द्वितीयपार्श्वे च कीलिका भवति तद्वर्द्धनाराचम् । यत्र त्वस्थीनि कीलिकामात्रबद्धान्येव भवन्ति तत्कीलिका । यत्र तु परस्परं पर्यन्तसंस्पर्शलक्षणां सेवामाश्रितान्यागतान्यस्थीनि भवन्ति स्नेहाम्यवहारतैला-भ्यङ्गविश्रामणादिरूपां च परिशीलनां नित्यमपेक्षते तत्सेवार्तम् । इति गाथाद्वयभावार्थः ॥१०९॥

एतद्विपाकदर्शनायाह—

जस्सुदणं जीवे, संघयणं होइ वज्जरिसहं तु ।

तं वज्जरिसहनामं, सेसावि हु एव संघयणा ॥११०॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'बद्धयेन' अनुभवेन 'जीवे' प्राणिनि 'संहननं' उक्तलक्षणं 'भवति' जायते वज्रऋषमनाराचं उक्तस्वरूपं, 'तुः' एवकारार्थः, स च व्यवहितः प्राक्संघयत उदयेनैवेत्यत्र, तद्वज्रऋषमनाराचनामोच्यते । शेषाण्यपि न केवलमिदं प्रागुक्तम्, 'हूः' पादपूरणे, ऋषमनाराचादीन्यपि इत्यपिशब्दार्थः । 'एवं' उक्तनीत्या, छुत्तानुस्वारः

प्राकृतत्वात्, 'संघयणा' [संहननानि] । उक्तनीतिश्चेयम्—वज्रऋषभनाराचमंहननं यस्य कर्मण उदयेन प्रादुर्भवति तद्वज्रऋषभनाराचसंहननं यथोच्यते, तथा ऋषभनाराचनाराचार्द्ध-  
नाराचकीलिकाछेवद्वानि यस्य कर्मण उदये भवन्ति तान्यपि तथा ऋषभनाराचनाराचार्द्धनारा-  
चकीलिकाछेवद्वानामान्यन्वर्थत उच्यन्ते इत्येवशब्दार्थः । इति गाथार्थः ॥११०॥

उक्तानि संहननानि, अधुना संस्थानान्याह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयेन 'जीवे' इति जीवस्य संहननं भवति, 'वज्रर्षभं तु' इति सूचनात् वज्रर्षभनाराचं तद् वज्रर्षभनाराचनाम । शेषाण्यपि संहननानि एवमेव । हुशब्द-  
स्यैवकारार्थस्यात्र योगात् । इति गाथार्थः ॥११०॥

संस्थाननामाह—

समचउरंसे नगगोहमंडले साइवामणे खुज्जे ।

हुंडेवि य संठाणे, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१११॥

तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहुं च मडह'कोट्टं च ।

हिठिल्लकायमडहं, सब्वत्थासंठियं हुंडं ॥११२॥

(पू०) व्याख्या—समचतुरस्रं यस्मिन् तत्समचतुरस्रं संस्थानमिति सर्वत्र संवन्धनीयम्, मन्त-  
व्यमिति क्रिया । न्यग्रोधस्येव मण्डलं यस्मिन् तन्न्यग्रोधमण्डलम् । सातिः शक्तिः । तथा  
वामनकुब्जे प्रतीते । हुण्डमपि च संस्थानं मन्यव्यमिति । तेषां च स्वरूपं 'इमं' वक्ष्यमाणल-  
क्षणम् ॥१११॥

लक्षणमाह—

तुल्यं समपादाद्गुणग्रादादरभ्य केशान्तं यावत्स्थितमूदूर्ध्वं यत्सूत्रं तावन्मात्रमेव तिर्यक्प्रसा-  
रितयोर्भ्रुजयोः प्रमाणसूत्रमेवंभूतं तुल्यं समचतुरस्रसंस्थानमुच्यते । \*विस्तारो बहुर्यस्मिन् तद्वि-  
स्तरबहु, प्राकृतत्वाद्बह्वर्थे लच् । यस्मिन् विस्तारो वटस्येव बहु दैर्घ्यं पुनः स्तोकं \*तद्विस्तरबहुलं  
न्यग्रोधमण्डलं संस्थानमुच्यते द्वितीयम् । उत्सेधो बहुर्यस्मिन् तदुत्सेधबहु उच्चैस्त्वयुक्तं च । साति-  
संस्थानेनोपमीयते सातिः शक्तिरुच्यते, शक्तिवद्यस्मिन् पुरुषस्य शिरोऽधोबाहुविस्तरस्तोकस्तत्सा-  
तिसंस्थानं तृतीयम् । मडहं कोष्ठं यस्मिन् तन्मडहकोष्ठम्, कोष्ठमुदरं तच्च वामनसंस्थानं चतु-  
र्थम् । हेठिल्लकायोऽधःकायः स मडहो यत्र तद् हेठिल्लकायमडहं \*कुब्जसंस्थानं पञ्चमम् । सर्वत्र  
शिरःप्रभृत्यङ्गावयवेषु न विद्यते संस्थितिर्यस्मिन्नो लङ्ककवत्सर्वावयववन्धुनं तद् हुण्डसंस्थानं  
षष्ठम् । इति गाथार्थः ॥११२॥

१ उदये भवति त० जे० । २ "संठाणा जीवाणं छ दुयेयव्वा ॥१११॥" इत्यपि पाठः ३ "कुट्टं" इत्यपि पाठः ।  
४ विस्तारो जे० । ५ तद्विस्तर० जे० । ६ कुत्रं सं० । ७ लोललङ्ककवत् जे० टिप्पणी । तत्सर्वावयवानां तद्  
हुण्डमंत्रं संस्थानं प० जे० ।

कर्मण उद्यद्वारेण समचतुरस्रस्वरूपमाह—

(पारमा) तत्र समास्तुल्या यथोक्तप्रमाणाश्चतस्रोऽस्त्रयश्चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीराव-  
यवा यस्य तत्समचतुरस्रम् । समासान्तोऽत्प्रत्ययः । न्यग्रोधवत्परिमण्डलं विस्तरभृरि न्यग्रोध-  
परिमण्डलम् । यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवोऽधस्तु हीनः, तथा यत्संस्थानं नाभेरुपरि संपू-  
र्णप्रमाणं, अधस्तु न तथा तन्न्यग्रोधपरिमण्डलम् । यत्र नाभेरधः सर्वावयवाः समचतुरस्रलक्षणा-  
ऽविसंबादिनः, उपरि तु न तदनुरूपास्तत् 'सादि उत्सेधवहुसंस्थानं, 'सादीति शाब्मलीतरुमाच-  
श्रते प्रावचनिकाः । तस्य हि स्कन्धो द्राघीयान्, उपरि तु न तदनुरूपा विशालतेति । तथा  
यत्र शिरो ग्रीवं हस्तपादादिकं च यथोक्तप्रमाणोपपन्नं कोष्ठं उरउदारादि मडहं लघु तद्वामन-  
संस्थानम्, कुब्जमित्यन्ये । यत्र तु उरउदारादि यथोक्तप्रमाणोपेतं, अधस्तनकायस्तु पादादिः,  
उपलक्षणत्वात् शिरोग्रीवादिकं च मडहं लघु भवति तत्कुब्जम्, वामनमित्यन्ये । यत्र सर्वेऽप्य-  
वयवा असंस्थिता यथोक्तप्रमाणहीनास्तत् हुण्डसंस्थानम् । तेषां स्वरूपमिदं तुन्यादिकं भवति ।  
इति गाथार्थः ॥११॥ ११२॥

एतदुदयमादर्शयति—

जस्सुदणं जीवे, चउरंसं नाम होइ संठाणं ।

तं चउरंसं नामं सेसावि हु एव संठाणा ॥११३॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' अनुभवेन 'जीवे' जीवस्य 'चतुरस्रं'  
ऊर्ध्वावस्थितसूत्रसमं 'तिर्यक्प्रमाणं चतुरस्रमुच्यते संस्थानं 'मघति' जायते 'नाम' संज्ञा स्फुटं  
षा 'संस्थानम्' आकारविशेषस्तच्चतुरस्रं नाम । 'शेषाण्यपि' न्यग्रोधमण्डलादीन्यप्येवमेव  
संस्थानानि द्रष्टव्यानि । 'अपि' समुच्चये, 'हुः' पादपूरणे, समचतुरस्रसंस्थानोक्तन्यायेनेति भावः ।  
इति गाथार्थः ॥११३॥

उक्तं संस्थाननाम, वर्णनामाह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयाश्चतुरस्रं नाम संस्थानं भवति जीवस्य तच्चतुरस्रनाम  
समचतुरस्रसंस्थाननाम । शेषाण्यपि संस्थानान्येवमेव । इति गाथार्थः ॥११३॥

उक्तं संस्थानम्, सम्प्रति वर्णनाम, तच्च पञ्चधा, तदुदयाश्च यद्भवति तदाह—

'किण्हानीलालोहिय, हालिद्वा तह य हुंति 'सुक्किलया ।

जियदेहाणां वण्णा उदणं वन्ननामस्स ॥११४॥

१-२ साचि इत्यपि पाठः । ३ तिर्यक् समानं चतु० जे० । ४ व्याख्याकारेण व्यस्ततया व्याख्यातम्,  
एवमत्रेऽपि ॥ ५ "सुक्का य" इति धृत्योः ॥

प्राकृतत्वात्, 'संघयणा' [संहननानि] । उक्तनीतिश्चेयम्—वज्रऋषभनाराचमंहननं यस्य कर्मण उदयेन प्रादुर्भवति तद्वज्रऋषभनाराचमंहननं यथोच्यते, तथा ऋषभनाराचनाराचार्द्ध-  
नाराचकीलिकाछेवद्द्वानि यस्य कर्मण उदये भवन्ति तान्यपि तथा ऋषभनाराचनाराचार्द्धनारा-  
चकीलिकाछेवद्द्वानामान्यन्वर्थत उच्यन्ते इत्येवशब्दार्थः । इति गाथार्थः ॥११०॥

उक्तानि संहननानि, अधुना संस्थानान्याह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयेन 'जीवे' इति जीवस्य संहननं भवति, 'वज्रर्षभं तु' इति सूचनात् वज्रर्षभनाराचं तद् वज्रर्षभनाराचनाम । शेषाण्यपि संहननानि एवमेव । हुशब्द-  
म्यैवकारार्थस्यात्र योगात् । इति गाथार्थः ॥११०॥

संस्थाननामाह—

समचउरंसे नगगोहमंडले साइवामणे खुज्जे ।

हुंडेवि य संठाणे, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१११॥

तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहुं च मडहं कोट्टं च ।

हिठिल्लकायमडहं, सब्वत्थासंठियं हुंडं ॥११२॥

(पू०) व्याख्या—समचतुरस्रं यस्मिन् तत्समचतुरस्रं संस्थानमिति सर्वत्र संबन्धनीयम्, मन्त-  
व्यमिति क्रिया । न्यग्रोधस्येव मण्डलं यस्मिन् तन्न्यग्रोधमण्डलम् । सातिः शक्तिः । तथा  
वामनकुब्जे प्रतीते । हुण्डमपि च संस्थानं मन्यव्यमिति । तेषां च स्वरूपं 'इमं' वक्ष्यमाणल-  
क्षणम् ॥१११॥

लक्षणमाह—

तुल्यं समपादाङ्गुष्ठाग्रादारम्य केशान्तं यावत्स्थितमूर्ध्वं यत्सूत्रं तावन्मात्रमेव तिर्यक्प्रसा-  
रितयोर्भुजयोः प्रमाणद्वत्रमेवंभूतं तुल्यं समचतुरस्रसंस्थानमुच्यते । \*विस्तारो बहुर्यस्मिन् तद्वि-  
स्तरबहु, प्राकृतत्वाद्बहुर्थे लच् । यस्मिन् विस्तारो वटस्येव बहु दैर्घ्यं पुनः स्तोक् \*तद्विस्तरबहुलं  
न्यग्रोधमण्डलं संस्थानमुच्यते द्वितीयम् । उत्सेधो बहुर्यस्मिन् तदुत्सेधबहु उच्चैस्त्वयुक्तं च । साति-  
संस्थानेनोपमीयते सातिः शक्तिरुच्यते, शक्तिवद्यस्मिन् पुरुषस्य शिरोऽधोवाहुविस्तरस्तोकस्तत्सा-  
तिसंस्थानं तृतीयम् । मडहं कोष्ठं यस्मिन् तन्मडहकोष्ठम्, कोष्ठमुदरं तच्च वामनसंस्थानं चतु-  
र्थम् । हेठिल्लकायोऽधःकायः स मडहो यत्र तद् हेठिल्लकायमडहं \*कुब्जसंस्थानं पञ्चमम् । सर्वत्र  
शिरःप्रमृत्यङ्गावयवेषु न विद्यते संस्थितिर्यस्मिन् लङ्ककवत्सर्वावयववन्तुं तद् हुण्डसंस्थानं  
षष्ठम् । इति गाथार्थः ॥११२॥

१ उदये भवति त० जे० । २ "संठाणा जीवाणं छ सुणेयन्वा ॥१११॥" इत्यपि पाठः ३ "कुट्टं" इत्यपि पाठः ।  
४ विस्तारो जे० । ५ तद्विस्तर० जे० । ६ कुब्जं सं० । ७ डोलडहुकवत् जे० टिप्पणी । तत्सर्वावयवानां तद्  
हुण्डसंस्थानं प० जे० ।

कर्मण उदयद्वारेण समचतुरस्रस्वरूपमाह—

(पारमा) तत्र समास्तुल्या यथोक्तप्रमाणाश्चतस्रोऽस्त्रयश्चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीराव-  
यवा यस्य तत्समचतुरस्रम् । समासान्तोऽत्प्रत्ययः । न्यग्रोधवत्परिमण्डलं विस्तरभूरि न्यग्रोध-  
परिमण्डलम् । यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवोऽधस्तु हीनः, तथा यत्संस्थानं नामेरुपरि संपू-  
र्णप्रमाणं, अधस्तु न तथा तन्न्यग्रोधपरिमण्डलम् । यत्र नामेरधः सर्वावयवाः समचतुरस्रलक्षणा-  
ऽविसंवादिनः, उपरि तु न तदनुरूपास्तत् 'सादि उत्सेधचहुसंस्थानं, 'सादीति शान्मलीतरुमाच-  
श्नते प्रावचनिकाः । तस्य हि स्कन्धो द्राघीयान्, उपरि तु न तदनुरूपा विशालतेति । तथा  
यत्र शिरो ग्रीवं हस्तपादादिकं च यथोक्तप्रमाणोपपन्नं कोष्ठं उरउदारादि मडहं लघु तद्वामन-  
संस्थानम्, कुब्जमित्यन्ये । यत्र तु उरउदरादि यथोक्तप्रमाणोपेतं, अधस्तनकायस्तु पादादिः,  
उपलक्षणत्वात् शिरोग्रीवादिकं च मडहं लघु भवति तत्कुब्जम्, वामनमित्यन्ये । यत्र सर्वेऽप्य-  
वयवा असंस्थिता यथोक्तप्रमाणहीनास्तत् हुण्डसंस्थानम् । तेषां स्वरूपमिदं तुल्यादिकं भवति ।  
इति गाथार्थः ॥११॥ ११२॥

एतदुदयमादर्शयति—

जस्मुदणं जीवे, चउरंसं नाम होइ संठाणं ।

तं चउरंसं नामं सेसावि हु एव संठाणा ॥११३॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' अनुभवेन 'जीवे' जीवस्य 'चतुरस्रं'  
उद्भवाविस्थितस्रस्रसं 'तिर्यक्प्रमाणं चतुरस्रमुच्यते संस्थानं 'भवति' जायते 'नाम' संज्ञा स्फुटं  
षा 'संस्थानम्' आकारविशेषस्तच्चतुरस्रं नाम । 'शेषाप्यपि' न्यग्रोधमण्डलादीन्यप्येवमेव  
संस्थानानि द्रष्टव्यानि । 'अपि' समुच्चये, 'हुः' पादपूरणे, समचतुरस्रसंस्थानोक्तन्यायेनेति भावः ।  
इति गाथार्थः ॥११३॥

उक्तं संस्थाननाम, वर्णनामाह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयाच्चतुरस्रं नाम संस्थानं भवति जीवस्य तच्चतुरस्रनाम  
समचतुरस्रसंस्थाननाम । शेषाप्यपि संस्थानान्येवमेव । इति गाथार्थः ॥११३॥

उक्तं संस्थानम्, सम्प्रति वर्णनाम, तच्च पञ्चधा, तदुदयाच्च यद्भवति तदाह—

'किण्हानीलालोहिय, हालिदा तह य हुंति 'सुक्किलया ।

जियदेहाणां वण्णा उदणं वन्ननामस्स ॥११४॥

१-२ साचि इत्यपि पाठः । ३ तिर्यक् समानं चतु० जे० । ४ व्याख्याकारेण व्यस्ततया व्याख्यातम्, मयममे ऽपि ॥ ५ "सुक्का य" इति घृत्योः ॥

(पू०) व्याख्या—कृष्णा नीला लोहिता हारिद्रा तथा भवन्ति शुक्लाश्च जीवदेहानां प्राणि-  
शरीराणां 'वर्णाः' प्रतीताः 'उदयेन' अनुभवेन 'वर्णनाम्नः' कर्मणः । इति गाथार्थः ॥११४॥  
उक्तं वर्णनाम, गन्धनामाह—

(पारमा०) वर्ण्यतेऽलंक्रियते शरीरमनेनेति वर्णः । तत्र कृष्णनीललोहितहारिद्रशुक्ला  
जीवदेहानां वर्णा वर्णनाम्न उदयेन भवन्ति । इदमुक्तं भवति—कृष्णवर्णनाम्न उदयात्कृष्णदेहो  
भवतीति । नीलवर्णनाम्न उदयात्नीलदेह इत्यादि । इति गाथार्थः ॥११४॥ गन्धनाम्नो द्विविध-  
स्यापि विपाकमाह—

गंधेण सुरभिगंधं, अहवा गंधेण दुरभिगंधं तु ।

होइ जिया'णं देहं, उदएणं गंधनामस्स ॥११५॥

(पू०) व्याख्या—घ्राणेन्द्रियास्वाधेन 'सुरभिगन्ध' शोभनगन्धम् । अथवा गन्धेन 'दुर-  
भिगन्धं तु' दृष्टगन्धमेव 'भवन्ति' जायते 'जीवानां' प्राणिनां 'देहः' शरीरं 'उदयेन'  
अनुभवेन 'गन्धनाम्नः' कर्मणः । इति गाथार्थः ॥११५॥

उक्तं गन्धनाम, रसनाम प्राह—

(पारमा०) गन्ध्यते आघ्रायते इति गन्धः, तन्निबन्धनं नाम गन्धनाम । सुष्टु रमते  
सुरभिः, ततश्च गन्धेन सुरभिगन्धम् । अथवा गन्धेन दुरभिगन्धं तु दुष्टं अमि आमिद्युख्यं यत्र  
एवंभूतं जीवानां देहं, सुगमिदुरभिमेदभिन्नस्य गन्धनाम्न उदयेन भवति इति गाथार्थः ॥११५॥  
रसनाम प्रतिपादयति—

तिक्तकड्डुया कसाया, अंबिलमहुरा रसावि पंच भवे ।

तेवि हु जियदेहाणं, रसनामुदएण खज्जंता ॥११६॥

(पू०) व्याख्या—तिक्तनाश्च कटुकाश्च तिक्तकटुकाः तिक्ताः कटुकाद्याः, कटुकाः शुण्ठ्या-  
दयः, कपाया हरीतक्याद्याः, अम्ला वीजपूरादयः, मधुरा इक्ष्वादयः रसास्तु पञ्चैव भवन्ति,  
लवणरसः सर्वानुयायित्वात्र पृथगुक्तो जा(ज्ञा)यते न केवलं 'रसादयः, तेऽपि 'जीवदेहाना-  
मेव' प्राणिशरीराणामेव 'रसनाम्नः' कर्मणः 'उदयेन' अनुभवेन 'खाद्यमानाः' भक्ष्य-  
माणाः । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥११६॥

उक्तं रसनाम, साम्प्रतं स्पर्शनामाह—

(पारमा०) तिक्तकटुकाकपायाअम्लमधुरा रसा अपि पञ्च, न केवलं वर्णाः, किं तु रसा  
अपि पञ्च जीवदेहानां खाद्यमाना रसनाम्नः पञ्चप्रकारस्योदयेन भवेयुः । लवणस्य तु एतदनु-

१ "८ण शरीरं" इत्यपि पाठः । २ ०नां शरीरं देहं उ० जे० । ३ "तिक्तकड्डुयकसाया" इत्यपि पाठः ।  
४ 'रसा उ' इति व्याख्याकाराः । ५ वर्णादयः जे० ।

यायित्वात् केवलस्यानुपयोगाच्च पृथगुपादानं न कृतम् । इति गाथार्थः ॥११६॥

स्पर्शनाम प्राह—

गुरुलहुमिउकठिणावि य, निद्रा लुक्खा य होंति सीउण्हा ।

जियदेहाणं फासा, उदएणं फासनामस्स ॥११७॥

(पू०) व्याख्या—गुरुश्च लघुश्च मृदुश्च कठिनश्च गुरुलघुमृदुकठिनाः, तेऽपि च, अपिशब्दः समुच्चये 'च.' स्वगतानेकभेदसंज्ञचनार्थः स्निग्धा रूक्षाश्च भवन्तीति प्रत्येकमभिसंबध्यते । शीताश्च उष्णाश्च क्षीतोष्णाः 'जीवदेहानां' प्राणिशरीराणां 'स्पर्शाः' स्पर्शनेन्द्रियग्राह्या जायन्ते 'उदयेन' विपाकेन 'स्पर्शनाम्नः' कर्मणः । तत्र गुरुर्महान् वज्रसीसकादिवत् । लघु अल्पतरं शान्मलीतूलवत् । मृदुः सुकुमारः पट्टस्पर्शवत् । कठिनो निर्वरः अन्धपाषाणवत् । स्निग्धः सस्नेहो घृतपूरमिन्द्रिकापत्रयोरिव । रूक्षः स्नेहरहितः सुधावत् । शीतः प्रतीत उदकस्येव । उष्णस्तद्विपरीतोऽग्नोरिव । स्पर्शशब्दः सर्वत्र संबन्धनीयः । इति गाथार्थः ॥११७॥

उक्तं स्पर्शनाम, अगुरुलघुनामाह—

(पारमा०) तत्र गुरुलघ्वादयः प्रायः स्पर्शत्वेन जने न प्रसिद्धा इति तत्स्वरूपनिरूपणा क्रियते । तत्र यतः स्पर्शाद्वस्तूनामधोगमनक्रिया भवति स स्पर्शो गुरुः, यदाह—'धधोगते-शु'रुः' १ । यतो वस्तूनां प्रायः तिर्यगूर्ध्वं च गमनं स स्पर्शो लघुः, यदाह—'तिर्यगूर्ध्वगतै-र्लघुः' २ । यतो वस्तूनां नमनक्रिया स स्पर्शो मृदुः, यदाह—'सन्नतेर्मुदुः' ३ । यतो वस्तूनां नमनक्रियाऽभावः स स्पर्शः कठिनः, यदाह—'प्रायोऽनमनस्य हेतुः कठिनः' ४ । विक्रणत्वपरिणामः स्निग्धः ५ । अचिक्रणत्वपरिणामस्तु रूक्षः ६, यदाह—'चिक्रणत्वाचिक्र-णत्वे स्निग्धरूक्षौ' ५-६ । यतो वस्तूनां काठिन्यापाकौ भवतः स स्पर्शः शीतः, यदाह—'काठि-न्यापाकयोःशीतः, ७ ।' यतो वस्तूनां मार्दवविक्रिलत्ती भवतः स स्पर्श उष्णः, यदाह—'मार्द-वपाकयोःरूष्णः' ८ । इत्यष्टावपि स्पर्शा जीवदेहानां स्पर्शान्मनोऽष्टविधस्योदयाद्भवन्ति इति गाथार्थः ॥११७॥

अगुरुलघुनामाह—

गरुयं न होइ देहं, न य लहुयं होइ सब्वजीवाणं ।

होइ हु अगुरुयलहुयं, अगुरुलहुयनामउदएणं ॥११८॥

(पू०) व्याख्या—'गुरुकं' मारयुक्तं 'न भवति' शिक्षपादिसारवत् न जायते 'देहं' शरीरम् । 'न च' नैव लघुरेव लघुकमेरुण्डकाष्ठवद् भवति 'सर्वजोधानां' सर्वप्राणिनां देहमिति वर्तते,

हुशब्दस्यैवकारार्थत्वान् , भवत्येवागुरुलघुकं शरीरम् । केन ? इत्याह—‘अगुरुलघुनाम्नः’ कर्मणः  
‘उदयेन’ अनुभवेन । इति गाथार्थः ॥११८॥

उत्तमगुरुलघुनाम, साम्प्रतम्लपघातनामाह—

(पारमा०) आत्मापेक्षया सर्वजीवानां देहं न गुरुकं भवति, नापि लघुकं भवति, उपलक्ष-  
णत्वान्नापि गुरुलघुकं, किन्तु अगुरुलघुकं भवति । अन्यापेक्षया तु गुरुकं लघुकं गुरुलघुकं वा  
भवति । यदाह—‘अन्नं विक्त्वा ए तिम्रिषि संभवन्ति’ इति अगुरुलघुनाम्न उदयात् ।  
इति गाथार्थः ॥११८॥

उपघातनामाह—

अंगावयवो पडिजिब्भिया'इ जो अप्पणो उवग्घायं ।

कुणइ हु देहम्मि ठिओ सो उवघायस्स उ विवागो ॥११९॥

(पू०) व्याख्या—अङ्गं शिरःप्रभृति, तस्यावयवो नासिकादि प्रतिजिह्विका च । जिह्वाया  
उपरि लक्ष्मी जिह्वा प्रतिजिह्विका । योऽवयवः ‘आत्मनस्तु’ शरीरस्यैव ‘उपघातं’ विनाशं  
करोत्येव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । ‘देहे स्थितः’ शरीरावस्थितः स उपघातनाम्न एव कर्मणो  
‘विपाकः’ अनुभवः, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥११९॥ व्याख्यातम्लपघातनाम,  
अधुना पराघातनामाह—

(पारमा०) यः प्रतिजिह्वागल्लवृन्दाद्यङ्गावयवो ‘देहे स्थितः’ इति शरीरान्तः पीडाका-  
रित्वेन स्थित आत्मन उपघातं करोति स उपघातस्य विपाक उपघातनामकर्मोदयात् स उपघा-  
तकारीति भावः । इति गाथार्थः ॥११९॥

पराघातमाह—

तयविसदंतविसाई, अंगावयवो 'य जो उ अन्नेसिं ।

जीवाण कुणइ घायं, सो परघायस्स उ विवागो ॥१२०॥

(पू०) व्याख्या—त्वक् ‘शरीरांशो विपं यस्मिन्नङ्गावयवे स त्वग्विपः, दन्ता विपं यस्या-  
वयवस्यासौ दन्तविपः, त्वग्विपश्च दन्तविपश्च त्वग्विपदन्तविपौ तौ आदिर्यस्यावयवस्य स त्वग्वि-  
पदन्तविपादिः, आदिशब्दान्नखविपादिपरिग्रहः । अङ्गस्यावयवोऽङ्गावयवः, ‘तु’ पुनः ‘यस्तु’ य  
एव ‘अन्नेषां’ आत्मव्यतिरिक्तानां ‘जीवानां’ प्राणिनां ‘करोति’ विधत्ते ‘विघातं’ विनाशं  
सः ‘परघातनाम्न एव’ कर्मणः ‘विपाकः’ अनुभवः । इति गाथार्थः ॥१२०॥ उक्तं पराघा-  
तनाम, साम्प्रतमानुपूर्व्या विषयमाह—

१ “०य जो अत्तणो उवघायं” इत्यपि पाठः । २ शरीरे अथ० जे० ३ ‘उ’ इत्यपि पाठस्तदनुसारेण  
व्याख्याकारैरङ्गान्यानाम ॥ ४ शरीरं मधिपं य० जे० ।



(पारमा०) त्वग्विषदन्तविषाद्यङ्गावयवश्च यः पुनरन्येषां जीवानां घातं करोति, चकारादृ-  
ष्यमोजो वाक्सोष्ठवं वा नृपसमादिगतस्य सभ्यादीनामपि क्षोभकृत्, प्रतिपक्षप्रतिभाप्रतिघातं च  
यत्करोति स पराघातस्य विपाकः । इति गाथार्थः ॥१२०॥

द्वित्रिचतुःसामयिकेन विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिगमननिमि-  
त्तमानुपूर्वीनामाह—

नारयतिरियनरामर-भवेसु जंतस्स अंतरगईए ।

अणुपुव्वीए उदओ, सा चउहा 'सुणसु जह होइ ॥१२१॥

(पू०) व्याख्या—'नारकतिर्यङ्गनरामरमवेषु' प्रतीतेषु 'जंतस्स' गच्छतः सतः  
'अन्तरगतौ' अपान्तरालगतौ 'आनुपूर्व्याः' नामकर्मविशेषस्य 'उदयः' विपाकः । सा  
चानुपूर्वी कियत्प्रकाराः भवति ? इत्येतदाह—'चतुर्द्धा' चतुर्मेदा शृणुत' आकर्णयत 'यथा'  
येन प्रकारेण 'भवन्ति' जायते । इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरकानुपूर्व्या विषयमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्गनरामरमवेषु गच्छतो जीवस्य 'अन्तरगत्या' अपान्तरालगत्या  
वक्रगमनरूपयाऽऽनुपूर्व्या उदयः सा चतुर्द्धा शृणु यथा भवति । इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरयाउअस्स उदए नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।

नरयाणुपुव्वियाए. 'तहि' उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥

(पू०) व्याख्या—'नरकायुषः' नरकेऽवस्थितिकारकस्य 'उदये' प्रादुर्भावे 'नरके' प्रतीते 'वक्रेण'  
कुटिलेन 'गच्छमाणस्स' इति गच्छतः सतः 'नरकानुपूर्व्याः' नरकप्रापणे रज्जुकन्याया  
वृषभस्येवाभिमतदेशनयने 'उदयः' अनुभवः 'तत्र' वक्के । 'अन्यत्र' अजुगतौ 'नास्ति' न  
विद्यते । इति गाथार्थः ॥१२२॥

उक्तो नरकानुपूर्वीविषयः, अधुना तिर्यगाद्यानुपूर्वीविषयमाह—

(पारमा०) नरकायुष उदये 'वक्रेण' कूर्परलाङ्गलगोमृशिकाकाररूपेण 'यथाक्रमं' द्वित्रि-  
चतुःसमयप्रमाणेन नरके गच्छतो नरकानुपूर्व्यास्तत्रोदयः । 'अन्यत्र' अजुगतौ नास्ति ।  
इति गाथार्थः ॥१२२॥

एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।

तेसिमणुपुव्वियाणं, 'तहि' उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥

१ "सुणह" इत्यपि पाठस्तत्पाठानुगन्तारा व्याख्याकाराः । २ ति, अत आह जे० । ३-४ "उदओ तहि"

हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् , भवत्येवागुरुलघुकं शरीरम् । केन ? इत्याह—‘अगुरुलघुनाम्नः’ कर्मणः ‘उद्येन’ अनुभवेन । इति गाथार्थः ॥११८॥

उक्तमगुरुलघुनाम, साम्प्रतमुपघातनामाह—

(पारमा०) आत्मापेक्षया मर्वजीवानां देहं न गुरुकं भवति, नापि लघुकं भवति, उपलक्षणत्वात्नापि गुरुलघुकं, किन्तु अगुरुलघुकं भवति । अन्यापेक्षया तु गुरुकं लघुकं गुरुलघुकं वा भवति । यदाह—“अघ्नकाविकम्बाए तिम्लिवि संभवन्ति” इति अगुरुलघुनाम्न उदयात् । इति गाथार्थः ॥११८॥

उपघातनामाह—

अंगावयवो पडिजिभिभया'इ जो अप्पणो उवग्घायं ।

कुणइ हु देहम्मि ठिओ सो उवघायस्स उ विवागो ॥११९॥

(पू०) व्याख्या—अङ्गं शिरःप्रभृति, तस्यावयवो नासिकादि प्रतिजिह्विका च । जिह्वाया उपरि लघ्वी जिह्वा प्रतिजिह्विका । योऽवयवः ‘आत्मनस्तु’ शरीरस्यैव ‘उपघातं’ विनाशं करोत्येव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । ‘देहे स्थितः’ ‘शरीरावस्थितः स उपघातनाम्न एव कर्मणो ‘विपाकः’ अनुभवः, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥११९॥ व्याख्यातमुपघातनाम, अधुना पराघातनामाह—

(पारमा०) यः प्रतिजिह्वागलघुन्दाद्यङ्गावयवो ‘देहे स्थितः’ इति शरीरान्तः पीडाकारित्वेन स्थित आत्मन उपघातं करोति स उपघातस्य विपाक उपघातनामकर्मोदयात् स उपघातकारीति भावः । इति गाथार्थः ॥११९॥

पराघातमाह—

तयविसदंतविसाई, अंगावयवो 'य जो उ अन्नेसिं ।

जीवाण कुणइ घायं, सो परघायस्स उ विवागो ॥१२०॥

(पू०) व्याख्या—त्वक् ‘शरीरांशो विषं यस्मिन्नङ्गावयवे स त्वग्विषः, दन्ता विषं यस्यावयवस्यासौ दन्तविषः, त्वग्विषश्च दन्तविषश्च त्वग्विषदन्तविषौ तौ आदिर्यस्यावयवस्य स त्वग्विषदन्तविषादिः, आदिशब्दात्त्रयविषादिपरिग्रहः । अङ्गस्यावयवोऽङ्गावयवः, ‘तु’ पुनः ‘यस्तु’ य एव ‘अन्येषां’ आत्मध्यतिरिक्तानां ‘जीवानां’ प्राणिनां ‘करोति’ विधत्ते ‘विघातं’ विनाशं सः ‘परघातनाम्न एव’ कर्मणः ‘विपाकः’ अनुभवः । इति गाथार्थः ॥१२०॥ उक्तं पराघातनाम, साम्प्रतमानुपूर्व्या विषयमाह—

१ “य जो अत्तणो उवघायं” इत्यपि पाठः । २ शरीरे अथ० जे० ३ ‘उ’ इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्याख्यातम् ॥ ४ शरीरं सविषं य० जे० ।

(पारमा०) त्वन्विषदन्तविषाद्यङ्गावयवश्च यः पुनरन्येषां जीवानां घातं करोति, चकारादधृ-  
ष्यमोजो वाक्सोष्ठवं वा नृपसमादिगतस्य सभ्यादीनामपि क्षोभकृत्, प्रतिपक्षप्रतिभाप्रतिघातं च  
यत्करोति स पराघातस्य विपाकः । इति गाथार्थः ॥१२०॥

द्वित्रिचतुःसामयिकेन विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिगमननिमि-  
त्तमानुपूर्वीनामाह—

नारयतिरियनरामर-भवेसु जंतस्स अंतरगईए ।

अणुपुंवीए उदओ, सा चउहा 'सुणसु जइ होइ ॥१२१॥

(पू०) व्याख्या—'नारकतिर्यङ्गरामरभवेष्टु' प्रतीतेषु 'जंतस्स' गच्छतः सतः  
'अन्तरगतौ' अपान्तरालगतौ 'आनुपूर्व्याः' नामकर्मविशेषस्य 'उदयः' विपाकः । सा  
चानुपूर्वी कियत्प्रकाराः भवति ? इत्येतदाह—'चतुर्द्धा' चतुर्भेदा शृणुत' आकर्णयत 'यथा'  
येन प्रकारेण 'भवति' जायते । इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरकानुपूर्व्यां विषयमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्गरामरभवेष्टु गच्छतो जीवस्य 'अन्तरगत्या' अपान्तरालगत्या  
वक्रगमनरूपयाऽऽनुपूर्व्या उदयः सा चतुर्द्धा शृणु यथा भवति । इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरयाउअस्स उदए नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।

नरयाणुपुंवियाए, 'तहिँ उदओ अन्नहिँ नत्थि ॥१२२॥

(पू०) व्याख्या—'नरकायुषः' नरकेऽवस्थितिकारकस्य 'उदये' प्रादुर्भावे 'नरके' प्रतीते 'वक्केण'  
कुटिलेन 'गच्छमाणस्स' इति गच्छतः सतः 'नरकानुपूर्व्याः' नरकप्रापणे रज्जुकल्पया  
वृषभस्येवाभिमतदेशनयने 'उदयः' अनुभवः 'सअ' वक्के । 'अन्यत्र' शृजुगतौ 'नास्ति' न  
विद्यते । इति गाथार्थः ॥१२२॥

उक्तो नरकानुपूर्वीविषयः, अधुना तिर्यगाद्यानुपूर्वीविषयमाह—

(पारमा०) नरकायुष उदये 'वक्केण' कूर्परलाङ्गलगोमूत्रिकाकाररूपेण 'यथाक्रमं' द्वित्रि-  
चतुःसमयप्रमाणेन नरके गच्छतो नरकानुपूर्व्यास्तत्रोदयः । 'अन्यत्र' शृजुगतौ नास्ति ।  
इति गाथार्थः ॥१२२॥

एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।

तेसिमणुपुंवियाणं, 'तहिँ उदओ अन्नहिँ नत्थि ॥१२३॥

“१” “सुणह” इत्यपि पाठस्त्व्याठानुगन्तारा व्याख्याकाराः । २ ति, अत आह जे० । ३-४ “उदओ तहिँ”  
इत्यपि पाठः ।

हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् , भवत्येवागुरुलघुकं शरीरम् । केन ? इत्याह—‘अगुरुलघुनाम्नः’ कर्मणः ‘उद्येन’ अनुभवेन । इति गाथार्थः ॥११८॥

उक्तमगुरुलघुनाम, साम्प्रतमुपघातनामाह—

(पारमा०) आत्मापेक्षया सर्वजीवानां देहं न गुरुकं भवति, नापि लघुकं भवति, उपलक्षणत्वान्नापि गुरुलघुकं, किन्तु अगुरुलघुकं भवति । अन्यापेक्षया तु गुरुकं लघुकं गुरुलघुकं वा भवति । यदाह—“अन्नं विक्त्वा ए निन्नं वि संभवंति” इति अगुरुलघुनाम्न उदयात् । इति गाथार्थः ॥११८॥

उपघातनामाह—

अंगावयवो पडिजिब्भिया'इ जो अप्पणो उवग्घायं ।

कुणइ हु देहम्मि ठिओ सो उवघायस्स उ विवागो ॥११९॥

(पू०) व्याख्या—अङ्गं शिरःप्रभृति, तस्यावयवो नासिकादि प्रतिजिह्विका च । जिह्वाया उपरि लघ्वी जिह्वा प्रतिजिह्विका । योऽवयवः ‘आत्मनस्तु’ शरीरस्यैव ‘उपघातं’ विनाशं करोत्येव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । ‘देहे स्थितः’ शरीरावस्थितः स उपघातनाम्न एव कर्मणो ‘विपाकः’ अनुभवः, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥११९॥ व्याख्यातमुपघातनाम, अधुना पराघातनामाह—

(पारमा०) यः प्रतिजिह्वागलघुन्दाद्यङ्गावयवो ‘देहे स्थितः’ इति शरीरान्तः पीडाकारित्वेन स्थित आत्मन उपघातं करोति स उपघातस्य विपाक उपघातनामकर्मोदयात् स उपघातकारीति भावः । इति गाथार्थः ॥११९॥

पराघातमाह—

तयविसदंतविसाई, अंगावयवो 'य जो उ अन्नेसिं ।

जीवाण कुणइ घायं, सो परघायस्स उ विवागो ॥१२०॥

(पू०) व्याख्या—त्वक् शरीरांशो विषं यस्मिन्नङ्गावयवे स त्वग्विषः, दन्ता विषं यस्यावयवस्यासौ दन्तविषः, त्वग्विषश्च दन्तविषश्च त्वग्विषदन्तविषौ तौ आदिर्यस्यावयवस्य स त्वग्विषदन्तविषादिः, आदिशब्दाभ्रविषादिपरिग्रहः । अङ्गस्यावयवोऽङ्गावयवः, ‘तु’ पुनः ‘यस्तु’ य एव ‘अन्येषां’ आत्मव्यतिरिक्तानां ‘जीवानां’ प्राणिनां ‘करोति’ विधत्ते ‘विघातं’ विनाशं सः ‘पराघातनाम्न एव’ कर्मणः ‘विपाकः’ अनुभवः । इति गाथार्थः ॥१२०॥ उक्तं पराघातनाम, साम्प्रतमानुपूर्व्या विषयमाह—

१ “०य जो अन्तणो उवघायं” इत्यपि पाठः । २ शरीरे अव० जे० ३ ‘उ’ इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम् ॥ ४ शरीरं सधियं य० जे० ।

(पारमा०) त्वग्निषदन्तविषाद्यङ्गावयवश्च यः पुनरन्येषां जीवानां घातं करोति, चकारादधृ-  
व्यमोजो वाक्सौष्ठवं वा नृपसभादिगतस्य सभ्यादीनामपि क्षोभकृत्, प्रतिपक्षप्रतिभाप्रतिघातं च  
यत्करोति स पराघातस्य विपाकः । इति गाथार्थः ॥१२०॥

द्वित्रिचतुःसामयिकेन विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिगमननिमि-  
त्तमानुपूर्वीनामाह—

नारयतिरियनरामर-भवेसु जंतस्स अंतरगईए ।

अणुपुव्वीए उदओ, सा चउहा 'सुणसु जह होइ ॥१२१॥

(पू०) व्याख्या—'नारकतिर्यङ्गनरामरभवेष्टु' प्रतीतेष्टु 'जंतस्स' गच्छतः सतः  
'अन्तरगतौ' अपान्तरालगतौ 'आनुपूर्व्याः' नामकर्मविशेषस्य 'उदयः' विपाकः । सा  
चानुपूर्वी कियत्प्रकाराः भवति ? इत्येतदाह—'चतुर्द्धा' चतुर्भेदा शृणुत् 'आकर्णयत् 'यथा'  
येन प्रकारेण 'मघत्ति' जायते । इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरकानुपूर्व्या विषयमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्गनरामरभवेष्टु गच्छतो जीवस्य 'अन्तरगत्या' अपान्तरालगत्या  
वक्रगमनरूपयाऽऽनुपूर्व्या उदयः सा चतुर्द्धा शृणु यथा भवति । इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरयाउअस्स उदए नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।

नरयाणुपुव्वियाए, 'तहि' उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥

(पू०) व्याख्या—'नरकायुषः' नरकेऽवस्थितिकारकस्य 'उदये' प्रादुर्भावे 'नरके' प्रतीते 'वक्केण'  
कुटिलेन 'गच्छमाणस्स' इति गच्छतः सतः 'नरकानुपूर्व्याः' नरकप्रापणे रज्जुकल्पया  
वृषभस्येवाभिमतदेशनयने 'उदयः' अनुभवः 'तत्र' वक्के । 'अन्यत्र' श्रुजुगतौ 'नास्ति' न  
विद्यते । इति गाथार्थः ॥१२२॥

उक्तो नरकानुपूर्वीविषयः, अधुना तिर्यगाद्यानुपूर्वीविषयमाह—

(पारमा०) नरकायुष उदये 'वक्केण' कूर्परलाङ्गलगोमूत्रिकाकाररूपेण 'यथाक्रमं' द्वित्रि-  
चतुःसमयप्रमाणेन नरके गच्छतो नरकानुपूर्व्यास्तत्रोदयः । 'अन्यत्र' श्रुजुगतौ नास्ति ।  
इति गाथार्थः ॥१२२॥

एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।

तेसिमणुपुव्वियाणं, 'तहि' उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥

“१ ‘सुणह’ इत्यापि पाठस्तत्पाठानुगन्तारा व्याख्याकाराः । २ ति, अत आह जे० । ३-४ ‘उदओ तहि’  
इत्यपि पाठः ।

(पू०) व्याख्या—(एवं) उक्त्वनरकानुपूर्वीन्यायेन तिर्यङ्मनुजदेवान् प्रतीत्यानुपूर्व्या उदयो ज्ञातव्यः, न केवलं नरके, 'तेष्वपि' तिर्यङ्मनुजदेवेष्वपि 'वक्रेण' 'कौटिल्येन' 'गच्छमाणस्स' गच्छतः सतः 'तासामानुपूर्वीणां' तिर्यङ्मनुजदेवानुपूर्वीणां 'तत्र' तिर्यङ्मनुजदेवगतिषु वक्ररूपासु 'उदयः' विपाकः । 'अन्यत्रः' वक्रादन्यत्र 'नास्ति' न विद्यते । इति गाथार्थः ॥१२३॥

उक्तमानुपूर्वीनाम, साम्प्रतमुच्छ्वासनामाह—

(पारमा०) 'एवं तिरिमणुदेवे' इति तिर्यङ्मनुष्यदेवानामेवं नरकानुपूर्वीवदानुपूर्व्यां वाच्याः, न केवलं नरके, 'तेष्वपि' तिर्यङ्मनुष्यदेवेष्वपि वक्रेण गच्छतः, 'तेषामानुपूर्वीणा-मुदयः' तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्वीणामुदयः 'तत्र' वक्रगतौ । 'अन्यत्र' ऋजुगतौ नास्ति । इति गाथार्थः ॥१२३॥

उच्छ्वासनामाह—

जस्सुदणं जीवे, निष्पत्ती होइ आणपाणूणं ।

तं ऊसासं नामं, तस्स विवागो मरीरम्मि ॥१२४॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवे' जीवस्य 'निष्पत्तिः' निर्वृ-  
त्तिर्मवति 'भानप्राणयोः' उच्छ्वासनिःश्वासयोः, तदुच्छ्वासनाम, उच्यते इति क्रिया । 'तस्य'  
चोच्छ्वासनामः कर्मणो 'विपाकः' उदयः 'शरीरे' औदारिकादिलक्षणे । इति गाथार्थः ॥१२४॥

उक्तमुच्छ्वासनाम, अधुनाऽऽतपनामाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयेन जीवस्य 'भानपाननिष्पत्तिः' उच्छ्वासनिःश्वासलब्धि-  
रुपजायते तदुच्छ्वासनाम । तस्य विपाकः शरीर इति । अयमभिप्रायः—जीवविपाकित्वेऽप्युच्छ्-  
वासनास्यो विशिष्ट एव शरीरे उदयः, नापान्तरालगत्यादौ । इति गाथार्थः ॥१२४॥

आतपनामाह—

जस्सुदणं जीवे, होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ ।

सो आयवे विवागो, जह रविबिंबे तहा जाण ॥१२५॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवे' जीवस्य, षष्ठ्यर्थे सप्तमी  
सर्वत्र द्रष्टव्या, अकारान्तं वा पदं प्राकृतत्वादेकारान्तम्, 'भवति' जायते 'शरीरं' प्रतीतं,  
तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, 'ताविलमेव' तापयुक्तमेव 'अत्र' अस्मिन् लोके, स आपतनामः  
कर्मणः 'विपाकः' उदयः, क इव ? इत्याह—यथा रविबिम्बे आतपनामोदयस्तथा विवक्षितश-  
रीरे 'जानीहि' अवबुध्यस्व । इति गाथार्थः ॥१२५॥

ननु यथा रवेः संतापकत्वेनातपनामोदयः प्रतिपाद्यते तथा तेजःकायिकस्यापि मंतापकत्वे-  
नातपनामोदयः स्यात् ? इत्याशङ्क्य परिहारार्थमाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयाजीवस्य शरीरं तापवदुष्णप्रकाशकारि भवति स आतपस्य  
विपाकः । यथा 'रविबिम्बे' आदित्यमण्डले पृथ्वीकायिकेषु तथा जानीहि, अन्यत्र तु न भवति ।  
यदयमेवाह शतकषुहृच्छूर्णौ—“आयधनामं आइच्चमंडलपुहविकाइएसु चैव” । इति  
गाथार्थः ॥१२५॥

आतपनामोदयश्च तेजःकायिकेषु न भवति इत्याह—

न भवइ तेयसरीरे, जेण उ तेयस्स उसिणफामस्स ।

होइ हु उदओ नियमा. तह लोहियवण्णनामस्स ॥१२६॥

(पू०) व्याख्या—‘किं नधि’ इति ‘पोल्लिकया किमिति कृत्वा ‘तेजःशरीरे’ तेजस्कायिक-  
देहे आतपनामोदयो नोच्यते ? इत्याह—‘मण्यते’ उच्यते ‘तेजसः’ अग्नेः ‘उष्णस्पर्शस्यैव’  
अशीतस्पर्शस्यैव स्पर्शनाम्नः कर्मण उदयो ‘भवति’ संपद्यते, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् ‘उदयः’  
विपाकः ‘नियमात्’ अवश्यंतया न आतपनाम्नः । तथेति समुच्चयार्थः । न केवलमुष्णास्पर्शनाम्न  
उदयः ‘लोहितवर्णनाम्नश्च’ रक्तवर्णनाम्नश्चोदयः । इति गाथार्थः ॥१२६॥

उक्तमातपनाम, साम्प्रतमुद्घोतनामाह—

(पारमा०) न भवति तेजःशरीरे आतपनामकर्मोदय इति संबन्धनीयम् । कथं तर्हि तेष्-  
णात्वम् ? इति चेदत्राह—‘येन’ हेतुना तेजसो नियमादुष्णास्पर्शस्योदय इति, तर्हि प्रकाशकत्वं  
कथम् ? इत्याह—तथा लोहितवर्णनाम्नश्चोदयो भवति उष्णास्पर्शादुष्णात्वम्, उत्कटलोहितवर्णनामो-  
दयाच्च प्रकाशकत्वम् । इति गाथार्थः ॥१२६॥ उद्घोतनामाह—

जस्सुदएणं जीवो, अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं ।

तं उज्जोयं नामं, जाणसु खज्जोयमाईणं ॥१२७॥

(पू०) व्याख्या—‘यस्य’ कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘जीवः’ प्राणी ‘अनुष्णदेहेन’  
उष्णरहितशरीरेण ‘करोति’ विधत्ते ‘उद्घोतं’ प्रकाशं तत्कर्म उद्घोतनामकर्म ‘जानोहि’  
अत्रबुध्यस्व तदुद्घोतनाम । यथा खद्योतादीनां, आदिशब्दादीषध्यादीनामुद्घोतनाम । इति  
गाथार्थः ॥१२७॥

उक्तमुद्घोतनाम, साम्प्रतं शुभाशुभेदाद् विहायोगतिमभिधातुकाम आद्यभेदमाह—

१ इत्याजङ्गापरि० जे० । २ “किं न धि” इत्यपि पाठः, व्याख्याकारेण तु “किं नधि तेयसरीरे मण्य-  
तेयस्म” इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति ३ षोडशिका जे० ४ “इत्यावेदयन्नाह” इत्यपि ।

(पू०) व्याख्या—(एवं) उक्तरनरकानुपूर्वीन्यायेन तिर्यङ्मनुजदेवान् प्रतीत्यानुपूर्व्या उदयो ज्ञातव्यः, न केवलं नरके, 'तेष्वपि' तिर्यङ्मनुजदेवेष्वपि 'वक्रणे' 'कौटिल्येन' गच्छमाणस्स' गच्छतः सतः 'तासामानुपूर्वीणां' तिर्यङ्मनुजदेवानुपूर्वीणां 'तत्र' तिर्यङ्मनुजदेवगतिषु वक्र-  
रूपासु 'उदयः' विपाकः । 'अन्यत्रः' वक्रादन्यत्र 'नास्ति' न विद्यते । इति गाथार्थः ॥१२३॥

उक्तमानुपूर्वीनाम. साम्प्रतमुच्छ्वासनामाह—

(पारमा०) 'एवं तिरिमणुदेवे' इति तिर्यङ्मनुष्यदेवानामेवं नरकानुपूर्वीवदानुपूर्व्यां वाच्याः, न केवलं नरके, 'तेष्वपि' तिर्यङ्मनुष्यदेवेष्वपि वक्रणे गच्छतः, 'तेषामानुपूर्वीणा-  
मुदयः' तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्वीणासुदयः 'तत्र' वक्रगतौ । 'अन्यत्र' ऋजुगतौ नास्ति । इति  
गाथार्थः ॥१२३॥

उच्छ्वासनामाह—

जस्सुदणं जीवे, निष्फत्ती होइ आणपाणूणं ।

तं ऊसासं नामं, तस्स विवागो मरीरम्मि ॥१२४॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवे' जीवस्य 'निष्पत्तिः' निर्वृ-  
त्तिर्भवति 'आनप्राणयोः' उच्छ्वासनिःश्वासयोः, तदुच्छ्वासनाम, उच्यत इति क्रिया । 'तस्य'  
चोच्छ्वासनामः कर्मणो 'विपाकः' उदयः 'शरीरे' औदारिकादिलक्षणे । इति गाथार्थः ॥१२४॥

उक्तमुच्छ्वासनाम, अधुनाऽऽतपनामाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयेन जीवस्य 'आनपाननिष्पत्तिः' उच्छ्वासनिःश्वासलब्धि-  
रुपजायते तदुच्छ्वासनाम । तस्य विपाकः शरीर इति । अयमभिप्रायः—जीवविपाकित्वेऽप्युच्छ-  
वासनासो विशिष्ट एव शरीरे उदयः, नापान्तरालगत्यादौ । इति गाथार्थः ॥१२४॥

आतपनामाह—

जस्सुदणं जीवे, होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ ।

सो आयवे विवागो, जह रविर्विबे तहा जाण ॥१२५॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवे' जीवस्य, षष्ठ्यर्थे सप्तमी  
सर्वत्र द्रष्टव्या, अकारान्तं वा पदं प्राकृतत्वादेकारान्तम्, 'भवति' जायते 'शरीरं' प्रतीतं,  
तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, 'ताविलमेव' तापयुक्तमेव 'अत्र' अस्मिन् लोके, स आपतनामः  
कर्मणः 'विपाकः' उदयः, क इव ? इत्याह—यथा रविर्विबे आतपनामोदयस्तथा विवक्षितश-  
रीरे 'जानोहि' अवबुध्यस्व । इति गाथार्थः ॥१२५॥



ननु यथा रवेः संतापकत्वेनातपनामोदयः प्रतिपाद्यते तथा तेजःकायिकस्यापि संतापकत्वेनातपनामोदयः स्यात् ? इत्याशङ्क्य परिहारार्थमाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयाजीवस्य शरीरं तापवदुष्णप्रकाशकारि भवति न आतपस्य विपाकः । यथा 'रविचिम्बे' आदित्यमण्डले पृथ्वीकायिकेषु तथा जानीहि, अन्यत्र तु न भवति । यदयमेवाह शतकबृहच्चूर्णौ—“आयवनामं आहृन्मंडलपुढविकाङ्गसु चैव” । इति गाथार्थः ॥१२५॥

आतपनामोदयश्च तेजःकायिकेषु न भवति इत्याह—

न भवद् तेयमरीरे, जेण उ तेयस्म उमिणफामस्स ।

होइ हु उदओ नियमा. तह लोहियवण्णनामस्स ॥१२६॥

(पू०) व्याख्या—‘किं नवि’ इति ‘पोल्लिकया किमिति कृत्वा ‘तेजःशरीरे’ तेजस्कायिक-देहे आतपनामोदयो नोच्यते ? इत्याह—‘मण्यते’ उच्यते ‘तेजसः’ अग्नेः ‘उष्णस्पर्शस्यैव’ अशीतस्पर्शस्यैव स्पर्शनाम्नः कर्मण उदयो ‘भवति’ संपद्यते, हुशब्दस्यैवकार्थत्वात् ‘उदयः’ विपाकः ‘नियमात्’ अवश्यंतया न आतपनाम्नः । तथेति समुच्चयार्थः । न केवलमुष्णस्पर्शनाम्न उदयः ‘लोहितवर्णनाम्नश्च’ रक्तवर्णनाम्नश्चोदयः । इति गाथार्थः ॥१२६॥

उक्तमातपनाम, साम्प्रतमुद्द्योतनामाह—

(पारमा०) न भवति तेजःशरीरे आतपनामकर्मोदय इति संबन्धनीयम् । कथं तर्हि तेषु-ष्णत्वम् ? इति चेदत्राह—‘येन’ हेतुना तेजसो नियमादुष्णस्पर्शस्योदय इति, तर्हि प्रकाशकत्वं कथम् ? इत्याह—तथा लोहितवर्णनाम्नश्चोदयो भवति उष्णस्पर्शादुष्णत्वम्, उत्कटलोहितवर्णनामो-दयाच्च प्रकाशकत्वम् । इति गाथार्थः ॥१२६॥ उद्द्योतनामाह—

जस्सुदएणं जीवो, अणुमिणदेहेण कुणइ उज्जोयं ।

तं उज्जोयं नामं, जाणसु खज्जोयमार्हणं ॥१२७॥

(पू०) व्याख्या—‘यस्य’ कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘जीवः’ प्राणी ‘अनुष्णदेहेन’ उष्णरहितशरीरेण ‘करोति’ विधत्ते ‘उद्द्योतं’ प्रकाशं तत्कर्म उद्द्योतनामकर्म ‘जानोहि’ अवबुध्यस्व तदुद्द्योतनाम । यथा खद्योतादीनां, आदिशब्दादौपच्यादीनामुद्द्योतनाम । इति गाथार्थः ॥१२७॥

उक्तमुद्द्योतनाम, साम्प्रतं शुभाशुभेदाद् विहायोगतिमभिधातुकाम आद्यभेदमाह—

१ इत्यागङ्गापरि० जे० । २ “किन्न हु” इत्यपि पाठः, व्याख्याकारेण तु “किं नवि तेयसरीरे मण्णइ नेयम्म” इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति ३ बोलिकया जे० ४ “इत्यावेदयन्नाह” इत्यपि ।

(पारमा०) यस्योदयाञ्जीवः 'अणुसिण' इति लुप्तविभक्तित्वादनुष्णं देहेनोद्द्योतं करोति । यदाह अयमेव शतकवृहच्चूर्णौ—“अणुसिणां पगासो जस्सोदयाओ भवइ तं उज्जोयनामं” इति । तदुद्द्योतनाम जानीहि खद्योतादीनाम् . आदिशब्दाच्चन्द्रग्रहनक्षत्ररत्नादीनां परिग्रहः । इति गाथार्थः ॥१२७॥ विहायोगतिमाह—

जस्सुदएणं जीवो, वर'वमहगईएँ गच्छइ गईए ।

सा सुहिया विहगगई, हंसाईणं भवे सा उ ॥१२८॥

(पू०) व्याख्या—‘यस्याः’ शुभविहायोगतेः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘जीवः’ सामान्येन प्राणी ‘गच्छति’ याति गत्या । किंविशिष्टया ? इत्याह—‘वरवृषभगत्या’ वृषभो=बलीवर्दः, वरः= प्रधानः, वरश्चासौ वृषभश्च वरवृषभः तस्य गतिस्तया, वरवृषभस्येव गतिः पुरुषस्य यत्र इत्यभिप्रायः । सा च ‘शुभा’ प्रशस्ता शुभैव, चशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, विहायोगतिरिति वक्तव्या । ३‘विहाय(ी)गतिनामकर्म’ इति पाठः प्राकृत<sup>१</sup>त्वाद्(द्ध)कारस्याकारलोपे ओलोपे च । सा च केषां भवति ? इत्याह—हंसादीनां, आदिशब्दान्मतङ्गजादिपरिग्रहः, ‘भवेत्’ जायेत । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१२८॥

उक्ता प्रशस्ता गतिः, अग्रशस्तगतिमाह—

(पारमा०) विहायसाऽऽकाशेन गतिर्विहायोगतिः । ननु विहायसः सर्वगतत्वात्तदन्यत्र गतिसंभवाभावाद्द्विहायोविशेषणमनर्थकम्, नैवम्, विहायोग्रहणं नाम्नः प्रथमप्रकृतिगतितोऽस्या विशेषणार्थम् । ततो यस्य कर्मण उदयाञ्जीवो वरवृषभगत्या गच्छति सा शुभैव शुभिका विहायोगतिः । सा तु हंसादीनां आदिशब्दाद्गजवृषभादीनां भवेत् । इति गाथार्थः ॥१२८॥

अशुभविहायोगतिमाह—

जस्सुदएणं जीवो, अमणिट्टाएँ उ गच्छइ गईए ।

सा असुभा विहगगई, उट्टाईणं भवे सा उ ॥१२९॥

(पू०) व्याख्या—‘यस्य’ कर्मण ‘उदयेन’ विपाकेन ‘जीवः’ प्राणी ‘अमणिट्टाएँ उ’ अमनोद्भवैव ‘गच्छति’ याति ‘गत्या’ पादविहरणादिलक्षणया, सा ‘अशुभा’ अशोभना विहायोगतिर्नामकर्म, सा च केषां भवति ? इत्याह—उट्टादीनां, आदिशब्दाद्द्रासभादीनां ‘भवेत्’ जायेत । ‘सा तु’ सा पुनरुट्टादीनामेव, नान्येषाम् । इति गाथार्थः ।

१ “०षसम०” इत्यपि पाठः । २ “सा सुहया” इत्यपि पाठः । “सा य सुहा” इति व्याख्याकाराः । ३ “विहगगतिर्ना०” जे० १४ ०त्वाद् हस्याकारलोपे एलोपे च । सा जे० १५ “य” इत्यपि पाठः ।

उक्ता द्विधाऽपि विहायोगतिः माम्प्रतं त्रसादिदशकसंज्ञामाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयाज्जीवो, मनस इष्टा मनइष्टा, न मनइष्टा अमनइष्टा अशुभे-  
त्यर्थः, तथा गत्या गच्छति माऽशुभा विहायोगतिः, मा तूष्मादीनां आदिशब्दात्खगदीनां  
भवेत् । इति गाथार्थः ॥१२९॥

सम्प्रति त्रसादिदशकमाह—

तसबायरपज्जत्तं, पत्तेयथिरं सुभं च सुभगं च ।

सूसरआइज्जजसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥१३०॥

(पू०) व्याख्या—त्रमनाम, नामशब्दस्य प्रत्येकं संबन्धः, बादरं पर्याप्तं प्रत्येकं स्थिरं  
शुभं च सुभगं च सुस्वरआदेययशः । त्रसादिदशकं इदं उक्तलक्षणं 'भवति' ज्ञातव्यम् ।  
इति गाथार्थः ॥१३०॥

त्रसादिदशक एवापान्तरसंज्ञाद्वयमाह—

(पारमा०) त्रसं १ बादरं २ पर्याप्तं ३ प्रत्येकं ४ स्थिरं ५ शुभं च ६ सुभगं च ७  
सुस्वरं = आदेयं ९ 'जसं' इति यशःकीर्तिः १० । त्रसादिदशकमिदं नामग्रहोपदर्शितं भवति ।  
इति गाथार्थः ॥१३०॥

त्रसादिदशकस्यैव संज्ञाद्वयविभागमाह—

आइम्मि तसचउक्कं, थिराइज्जकं तु उवरिमं होइ ।

थावरदसगं अहुणा, थावरसुहुमं अपज्जत्तं ॥१३१॥

होइ तहा साहारं, अथिरं असुभं च दूभगं चैव ।

दूसरणाइज्जेहिं य अजसेहिं य बीयदसगं तु ॥१३२॥

(पू०) व्याख्या—'आदौ' प्रथमं त्रसचतुष्कं भवति ज्ञातव्यम् । त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकना-  
मानि । स्थिरादिपट्कं तु स्थिरशुभसुभगसुस्वरआदेययशांसि, पुनरुपरिमं पट्कं स्थिरादिपट्कसंज्ञं  
भवति विज्ञेयम् । उक्तं त्रसादिदशकं संज्ञात्रयं, स्थावरदशकसंज्ञाचतुष्कमधुनोच्यते—इति वाक्य-  
शेषः । स्थावरसूक्ष्मं च साधारणमिति स्थावरनाम सूक्ष्मनाम च साधारणनाम स्थावरदशकान्त-  
र्वृत्तिं विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥१३१॥ तथा भवत्यपर्याप्तं नाम 'अस्थिरं' अस्थिरनाम  
'अशुभं च' अशुभनाम 'दूभगं चैव' दुर्भगनामैव, दुःस्वरानादेयनामभ्यामयशःकीर्त्या च सह

१ "थावरसुहुमं च साहारं ॥१३१॥ तह होइ अपज्जत्तं" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर् व्यर्था-  
न्यायम् . परमेनं पाठं परमानन्दसूरयस्तु अपपाठतया व्याख्यान्ति ॥

(पारमा०) यस्यादयाजीवः 'अणुसिण' इति लुप्तविभक्तित्वादानुष्णं देहेनोद्घोतं करोति । यदाह अयमेव शतकवृहच्चूर्णौ—“अणुसिणां पगासो जस्सोदयाओ भवइ तं उज्जोयनाम” इति । तदुद्घोतनाम जानीहि खद्योतादीनाम् . आदिशब्दाच्चन्द्रग्रहनक्षत्रग्लादीनां परिग्रहः । इति गाथार्थः ॥१२७॥ विहायोगतिमाह—

जस्सुदएणं जीवो, वर'वसहगईए' गच्छइ गईए ।

सा सुहिया विहगगई, हंसाईणं भवे सा उ ॥१२८॥

(पू०) व्याख्या—‘घस्याः’ शुभविहायोगतेः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘जीवः’ सामान्येन प्राणी ‘गच्छति’ याति गत्या । किंविशिष्टया ? इत्याह—‘घरवृषभगत्या’ वृषभो=बलीवर्दः, वरः=प्रधानः, वरश्चासौ वृषभश्च वरवृषभः तस्य गतिस्तया, वरवृषभस्येव गतिः पुरुषस्य यत्र इत्यभिप्रायः । सा च ‘शुभा’ प्रशस्ता शुभैव, चशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, विहायोगतिरिति वक्तव्या । ३ ‘विहाय(ते)गतिनामकर्म’ इति पाठः प्राकृतत्वाद्(द्व)कारस्याकारलोपे ओलोपे च । सा च केपां भवति ? इत्याह—हंसादीनां, आदिशब्दान्मतङ्गजादिपरिग्रहः, ‘भवेत्’ जायेत । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१२८॥

उक्ता प्रशस्ता गतिः, अग्रशस्तगतिमाह—

(पारमा०) विहायसाऽऽकाशेन गतिर्विहायोगतिः । ननु विहायसः सर्वगतत्वात्तदन्यत्र गतिसंभवाभावाद्धिहायोविशेषणमनर्थकम्, नैवम्, विहायोग्रहणं नाम्नः प्रथमप्रकृतिगतितोऽस्या विशेषणार्थम् । ततो यस्य कर्मण उदयाजीवो वरवृषभगत्या गच्छति सा शुभैव शुभिका विहायोगतिः । सा तु हंसादीनां आदिशब्दाद्गजवृषभमादीनां भवेत् । इति गाथार्थः ॥१२८॥

अशुभविहायोगतिमाह—

जस्सुदएणं जीवो, अमणिट्टाए 'उ गच्छइ गईए ।

सा असुभा विहगगई, उट्टाईणं भवे सा उ ॥१२९॥

(पू०) व्याख्या—‘घस्य’ कर्मण ‘उदयेन’ विपाकेन ‘जीवः’ प्राणी ‘अमणिट्टाए उ’ अमनोज्ञैव ‘गच्छति’ याति ‘गत्या’ पादविहरणादिलक्षणया, सा ‘अशुभा’ अज्ञोभना विहायोगतिर्नामकर्म, सा च केपां भवति ? इत्याह—उट्टादीनां, आदिशब्दाद्रासमादीनां ‘भवेत्’ जायेत । ‘सा तु’ सा पुनरुट्टादीनामेव, नान्येषाम् । इति गाथार्थः ।

१ “०वसम०” इत्यपि पाठः । २ “सा सुहया” इत्यपि पाठः । “सा य सुहा” इति व्याख्याकाराः ।

३ “विहगगतिनां” जे० । ४ ०त्वात् हस्याकारलोपे लोपे च । सा जे० । ५ “य” इत्यपि पाठः ।

उक्ता द्विधाऽपि विहायोगतिः माम्प्रतं त्रसादिदशकसंज्ञामाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयाज्जीवो, मनस इष्टा-मनइष्टा, न मनइष्टा अमनइष्टा अशुभे-  
त्यर्थः, तथा गत्या गच्छति माऽशुभा विहायोगतिः, मा तृष्णादीनां आदिशब्दात्खगदीनां  
भवेत् । इति गाथार्थः ॥१२९॥

सम्प्रति त्रसादिदशकमाह—

तसबायरपज्जत्तं, पत्तोयथिरं सुभं च सुभगं च ।

सूसरआइज्जसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥१३०॥

(पू०) व्याख्या—त्रमनाम, नामशब्दस्य प्रत्येकं संबन्धः, बादरं पर्याप्तं प्रत्येकं स्थिरं  
शुभं च सुभगं च सुस्वरआदेययशः । त्रसादिदशकं इदं उक्तलक्षणं 'भवति' ज्ञातव्यम् ।  
इति गाथार्थः ॥१३०॥

त्रसादिदशक एवापान्तरसंज्ञाद्वयमाह—

(पारमा०) त्रसं १ बादरं २ पर्याप्तं ३ प्रत्येकं ४ स्थिरं ५ शुभं च ६ सुभगं च ७  
सुस्वरं ८ आदेयं ९ 'जसं' इति यशःकीर्तिः १० । त्रसादिदशकमिदं नामग्रहोपदर्शितं भवति ।  
इति गाथार्थः ॥१३०॥

त्रसादिदशकस्यैव संज्ञाद्वयविभागमाह—

आइम्मि तसचउक्कं, थिराइक्कं तु उवरिमं होइ ।

थावरदसगं अहुणा, थावरसुहुमं अपज्जत्तं ॥१३१॥

होइ तहा साहारं, अथिरं असुभं च दूभगं चैव ।

दूसरणाइज्जेहिं य अजसेहिं य बीयदसगं तु ॥१३२॥

(पू०) व्याख्या—'आदौ' प्रथमं त्रसचतुष्कं भवति ज्ञातव्यम् । त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकना-  
मानि । स्थिरादिषट्कं तु स्थिरशुभसुभगसुस्वरआदेययशांसि, पुनरुपरिमं षट्कं स्थिरादिषट्कसंज्ञं  
भवति विज्ञेयम् । उक्तं त्रसादिदशकं संज्ञात्रयं, स्थावरदशकसंज्ञाचतुष्कमधुनोच्यते—इति वाक्य-  
शेषः । स्थावरदशकं च साधारणमिति स्थावरनाम सूक्ष्मनाम च साधारणनाम स्थावरदशकान्त-  
र्वेत्ति विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥१३१॥ तथा भवत्यपर्याप्तं नाम 'अस्थिरं' अस्थिरनाम  
'अशुभं च' अशुभनाम 'दुर्भगं चैव' दुर्भगनामैव, दुःस्वरानादेयनामभ्यामयशःकीर्त्या च सह

१ "थावरसुहुमं च साहारं ॥१३१॥ तद् होइ अपज्जत्तं" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्या-  
ख्यातम् . परमेनं पाठं परमानन्दसूरयस्तु अपपाठतया व्याख्यान्ति ॥

द्वितीयदशकं तु पुनरेतैर्नामभेदैर्भवति । दुःस्वरानादेयैः, बहुवचनं प्राकृतत्वात् “बहुवच्यणेण  
द्विवचनं” इत्याद्युक्तेः । ‘अजसेहिं य’ अत्र बहुवचनमयशःकीर्त्तनेकधा ख्यापनार्थम् । इति  
गाथार्थः ॥१३२॥

अस्यैव स्थावरदशकस्यान्तर्वृत्तिमंज्ञात्रयमाह—

(पारमा०) ‘आद्ये’ प्रकृतिपिण्डे त्रमचतुष्कमिति मंज्ञा भवति ‘स्थिरादिषट्कं तु’  
स्थिरादिषट्कमंज्ञं तु ‘उपरिमं’ प्रकृतिपिण्डरूपं भवति इत्युक्तं प्रकृतिदशकस्य समस्तव्यस्तस्य  
त्रसदशकत्रमचतुष्कस्थिरादिषट्कलक्षणं संज्ञात्रयम् । द्वितीयं दशकं प्रस्तावनापूर्वमाह—स्थावरद-  
शकमधुनोच्यते इति शेषः । स्थावरं १ सूक्ष्मं २ अपर्याप्तम् ३ ॥१३१॥ ‘होइ तहा साहारं’  
इति, भवतीत्यग्रे योक्ष्यते । साधारणं साधारणनाम ४ । “थावरसुहुमं च साहारं ॥ तह  
होइ अपजन्तं” इति त्वपपाठः पर्याप्तप्रत्येकयोः सेतरत्वस्योच्चृङ्कलतापत्तेः । अस्थिरं ५ अशुभं  
६ च दुर्मगं चैव ७ ‘कूसरणाइजेहि य’ इति दुःस्वरा ८ नादेयाम्यां ९, ‘अजसेहिं’ य इति  
अयशःकीर्त्तिनाम १० च द्वितीयदशकं भवति । इति गाथाद्वयार्थः ॥१३२॥

स्थावरदशकस्यापान्तरालसंज्ञात्रयमाह—

आइम्मि थावरचऊ, सुहुमतिगं उवरिमं भवे इत्थ ।

अथिराइळकमुवरिं, विधागभेयं अओ भणिमो ॥१३३॥

(पू०) व्याख्या—‘आद्यौ’ प्रथमं ‘स्थावरचतुः’ स्थावरसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तनामानि स्थावर-  
चतुष्कसंज्ञं भवति विज्ञेयमिति शेषः । ‘सूक्ष्मत्रिकं’ सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं ‘उपरिमं’ स्थावरनाम  
ऊर्ध्वं सूक्ष्मसाधारणापर्याप्तनामानि सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं भवेत् ‘अत्र’ शासने अस्थिरादिषट्कमुपरि  
तस्यैव स्थावरदशकस्याद्यं स्थावरचतुष्कं विहाय । अस्थिर १ अशुभ २ दुर्मग ३ दुःस्वर ४  
अनादेय ५ अयशासि ६ षट् अस्थिरादिषट्कमुच्यते । ‘विधाकभेदः’ अनुभवभेदः ‘एतासां’  
नामप्रकृतीनां ‘अद्यं’ वक्ष्यमाणलक्षणो ‘भणितः’ प्रतिपादितः । ननु किमर्थमिदं संज्ञाकर-  
णम् ?, उच्यते—शास्त्रे व्यवहारार्थम् । इति गाथार्थः ॥१३३॥

त्रसनाम्न उद्यमाह—

(पारमा०) ‘आद्ये’ प्रकृतिपिण्डे ‘थावरचऊ’ इति स्थावरेणोपलक्षितं चतुष्कं स्थावर-  
सूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणलक्षणं स्थावरचतुष्कसंज्ञमिति गम्यम् । ‘सूक्ष्मत्रिकं’ सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं  
‘उपरिमं’ स्थावरस्य सूक्ष्मअपर्याप्तकसाधारणलक्षणं भवेत् ‘अत्र’ स्थावरदशके च ‘अस्थिरा-

१ “विधागभेओ इमो होइ” इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु “विधागभेओ इमो भणिओ” इति  
पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति २ ०भेदश्चानुभवभेदश्चैतासां जे० ।

विषट्कं' अस्थिरादिषट्कसंज्ञं उपरि सूक्ष्मत्रिकस्य अस्थिरअशुभदुर्भगदुःस्वरअनादेयअयशःकीर्ति-  
लक्षणं विपाकमेदम्, अतः संज्ञाचतुष्टयमणनानन्तरं मणामः इति गाथार्थः ॥१३३॥

सम्प्रति सेतरत्वक्रमेण त्रसस्थावरयोर्विपाकमाह—

तमनामुदए जीवो, बेइंदियमाइ जाइ 'जीवेषु ।

थावरनामुदए 'पुण पुढवीमाईसु सो जाइ ॥१३४॥

(पू०) व्याख्या—'त्रसनाम्नः' कर्मणः 'उदये' विपाके 'जीवः' प्राणी 'द्वीन्द्रियादिः  
आदिशब्दात्रीन्द्रियादयः पञ्चेन्द्रियावसाना गृह्यन्ते, मकारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वात्, तेषु  
'यान्ति' गच्छति, जीवेषुत्यद्यत इत्यभिप्रायः । 'स्थावरनाम्नः' कर्मणः 'उदये' विपाके पुनः  
'पृथिव्यादिषु' आदिशब्दादप्तेजोवायुवनस्पतिषु मकारोऽप्राप्यलाक्षणिकः 'सः' जीवो 'यान्ति'  
उत्पद्यते । इति गाथार्थः ॥१३४॥

उक्तस्त्रसस्थावरनामोदयः, साम्प्रतं वादरसूक्ष्मोदयस्वरूपमाह—

(पारमा०) त्रस्यन्ति उष्णाद्यमितमाश्रयाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः. तद्विपाकवेद्यं  
नाम त्रसनाम, तस्योदये जीवो 'द्वीन्द्रियादिजीवेषु' द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियेषु  
'यान्ति' गच्छति । तद्विपरीतं स्थावरनाम तस्योदये पुनरुष्णाद्यमितापेऽपि तत्स्थानपरिहारा-  
समर्थेषु 'पृथिव्यादिषु' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिषु स जीवो याति । ननु अग्नेरूर्ध्वज्वलनं  
वायोस्तिर्यक्पवनमिति कथमनयोः स्थावरत्वमिति ?, सत्यम्, ऊर्ध्वज्वलनं तिर्यक्पवनं चैतयोः  
स्वाभाविकमेव न तूष्णाद्यमितापे द्वीन्द्रियादीनामिव । तथाहि—अग्नेर्विध्यापकजलधारास्वपि न  
परिहारबुद्धिर्वायोर्वा विनाशकाभावपीति, तस्मात्स्वाभाविकगमने बुद्धिपूर्वकत्वाभावात्स्थावरत्वं न  
विरुद्धम् । इति गाथार्थः ॥१३४॥

अधुना वादरसूक्ष्मे आह—

वायरनामुदएणं. वायरकाओ 'उ होइ सो नियमा ।

सुहुमेण सुहुमकाओ. अंतमुहुत्ताउओ होइ ॥१३५॥

(पू०) व्याख्या—'वादरनाम्नः' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'वादरकाय एव' स्थूलकाय  
एव 'भवन्ति' जायते, 'सः' जीवः 'नियमात्' अवश्यंतया 'सूक्ष्मेण' सूक्ष्मनामकर्मोदयेन  
'सूक्ष्मकायः' श्लक्ष्णकायो भवति । स च भवन् कियत्कालायुर्भवति ? इत्याह—'अन्तमुहु-  
त्तायुर्भवन्ति' मूर्तमन्त्ये कालं करोतीत्यर्थः । इति गाथार्थः ॥१३५॥

? 'जाईसु' इत्यपि पाठः । २ "जे" इत्यपि पाठ । ३ "य" इत्यपि पाठः ।

द्वितीयदशकं तु पुनरेतैर्नामभेदैर्भवति । दुःस्वरानादेयैः, बहुवचनं प्राकृतत्वात् “बहुवचनेण  
द्विवचनं” इत्याद्युक्तेः । ‘अजसेहिं य’ अत्र बहुवचनमयशःकीर्त्तनेकधा ख्यापनार्थम् । इति  
गाथार्थः ॥१३२॥

अथैव स्थावरदशकस्यान्तर्वर्त्तिमञ्जात्रयमाह—

(पारमा०) ‘आद्ये’ प्रकृतिपिण्डे त्रमचतुष्कमिति संज्ञा भवति ‘स्थिरादिषट्कं तु’  
स्थिरादिषट्कसंज्ञं तु ‘उपरिमं’ प्रकृतिपिण्डरूपं भवति इत्युक्तं प्रकृतिदशकस्य समस्तव्यस्तस्य  
त्रसदशकत्रमचतुष्कस्थिरादिषट्कलक्षणं संज्ञात्रयम् । द्वितीयं दशकं प्रस्तावनापूर्वमाह—स्थावरद-  
शकमधुनोच्यते इति शेषः । स्थावरं १ सूक्ष्मं २ अपर्याप्तम् ३ ॥१३१॥ ‘होइ तहा साहारं’  
इति, भवतीत्यग्रे योक्ष्यते । माधारणं साधारणनाम ४ । “थावरसुहुमं च साहारं ॥ तह  
होइ अपजत्तं” इति त्वपपाठः पर्याप्तप्रत्येकयोः सेतरत्वस्योच्चृङ्खलतापत्तेः । अस्थिरं ५ अशुभं  
६ च दुर्मगं चैव ७ ‘सूसरणाइजेहि य’ इति दुःस्वरा ८ नादेयाम्यां ९, ‘अजसेहिं’ य इति  
अयशःकीर्त्तिनाम १० च द्वितीयदशकं भवति । इति गाथाद्वयार्थः ॥१३२॥

स्थावरदशकस्यापान्तरालसंज्ञात्रयमाह—

आइम्मि थावरचऊ, सुहुमतिगं उवरिमं भवे इत्य ।

अथिराइञ्जकमुवरिं, विवागभेयं अओ भणिमो ॥१३३॥

(पू०) व्याख्या—‘आद्यौ’ प्रथमं ‘स्थावरचतुः’ स्थावरसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तनामानि स्थावर-  
चतुष्कसंज्ञं भवति विज्ञेयमिति शेषः । ‘सूक्ष्मत्रिकं’ सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं ‘उपरिमं’ स्थावरनाम  
ऊर्ध्वं सूक्ष्मसाधारणापर्याप्तनामानि सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं भवेत् ‘अत्र’ शासने अस्थिरादिषट्कमुपरि  
तस्यैव स्थावरदशकस्याद्यं स्थावरचतुष्कं विहाय । अस्थिर १ अशुभ २ दुर्मग ३ दुःस्वर ४  
अनादेय ५ अयशासि ६ षट् अस्थिरादिषट्कमुच्यते । ‘विपाकभेदः’ अनुभवभेदः ‘एतासां’  
नामप्रकृतीनां ‘अयं’ वक्ष्यमाणलक्षणो ‘मणितः’ प्रतिपादितः । ननु किमर्थमिदं संज्ञाकर-  
णम् ?, उच्यते—शास्त्रे व्यवहारार्थम् । इति गाथार्थः ॥१३३॥

त्रसनाम्न उदयमाह—

(पारमा०) ‘आद्ये’ प्रकृतिपिण्डे ‘थावरचऊ’ इति स्थावरेणोपलक्षितं चतुष्कं स्थावर-  
सूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणलक्षणं स्थावरचतुष्कसंज्ञमिति गम्यम् । ‘सूक्ष्मत्रिकं’ सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं  
‘उपरिमं’ स्थावरस्य सूक्ष्मअपर्याप्तकसाधारणलक्षणं भवेत् ‘अत्र’ स्थावरदशके च ‘अस्थिरा-

१ “विवागभेओ इमो होइ” इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु “विवागभेओ इमो मणिओ” इति  
पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति २ ०भेदश्चानुभवभेदश्चैतासां जे० ।



दिषट्कं' अस्थिरादिषट्कसंज्ञं उपरि सूक्ष्मत्रिकस्य अस्थिरअशुभदुर्भगदुःस्वरअनादेयअयशःकीर्ति-  
लक्षणं विपाकमेदम्, अतः संज्ञाचतुष्टयमणनानन्तरं मणामः इति गाथार्थः ॥१३३॥

सम्प्रति सेतरत्वक्रमेण त्रसस्थावरयोर्विपाकमाह—

तमनामुदए जीवो, बेहंदियमाइ जाइ 'जीवेसु ।

थावरनामुदए पुण पुढवीमाईसु सो जाइ ॥१३४॥

(पू०) व्याख्या—'त्रसनाम्नः' कर्मणः 'उदये' विपाके 'जीवः' प्राणी 'द्वीन्द्रियादिः  
आदिशब्दात्रीन्द्रियादयः पञ्चेन्द्रियावसाना गृह्यन्ते, मकारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वात्, तेपु  
'याति' गच्छति, जीवेषूत्पद्यते इत्यभिप्रायः । 'स्थावरनाम्नः' कर्मणः 'उदये' विपाके पुनः  
'पृथिव्यादिषु' आदिशब्दादप्तेजोवायुवनस्पतिषु मकारोऽत्राप्यलाक्षणिकः 'सः' जीवो 'याति'  
उत्पद्यते । इति गाथार्थः ॥१३४॥

उक्तत्रसस्थावरनामोदयः, साम्प्रतं वादरसूक्ष्मोदयस्वरूपमाह—

(पारमा०) त्रस्यन्ति उष्णाद्यमितमाश्रयाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः तद्विपाकवेद्यं  
नाम त्रसनाम, तस्योदये जीवो 'द्वीन्द्रियादिजीवेषु' द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियेषु  
'याति' गच्छति । तद्विपरीतं स्थावरनाम तस्योदये पुनरुष्णाद्यमितापेऽपि तत्स्थानपरिहारा-  
समर्थेषु 'पृथिव्यादिषु' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिषु स जीवो याति । ननु अग्नेरूर्ध्वज्वलनं  
त्रायोस्तिर्यक्पवनमिति कथमनयोः स्थावरत्वमिति ? सत्यम्, ऊर्ध्वज्वलनं तिर्यक्पवनं चैतयोः  
स्वाभाविकमेव न तूष्णाद्यमितापे द्वीन्द्रियादीनामिव । तथाहि—अग्नेर्विंध्यापकजलधारास्वपि न  
परिहारबुद्धिर्वायोर्वा विनाशकाभावपीति, तस्मात्स्वाभाविकगमने बुद्धिपूर्वकत्वाभावात्स्थावरत्वं न  
विरुद्धम् । इति गाथार्थः ॥१३४॥

अधुना वादरसूक्ष्मे आह—

बायरनामुदएणं. बायरकाओ 'उ होइ सो नियमा ।

सुहुमेण सुहुमकाओ. अंतमुहुत्ताउओ होइ ॥१३५॥

(पू०) व्याख्या—'वादरनाम्नः' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'वादरकाय एष' स्थूलकाय  
एव 'भवति' जायते, 'सः' जीवः 'नियमात्' अवश्यंतया 'सूक्ष्मेण' सूक्ष्मनामकर्मोदयेन  
'सूक्ष्मकायः' श्लक्ष्णकायो भवति । स च भवन् कियत्कालायुर्भवति ? इत्याह—'अन्तमुहु-  
त्तायुर्भवति' मुहूर्तमध्ये कालं करोतीत्यर्थः । इति गाथार्थः ॥१३५॥

? 'जाईसु' इत्यपि पाठः । २ "जं" इत्यपि पाठ । ३ "च" इत्यपि पाठः ।

पर्याप्तिसंख्याद्वाङ्गण येषां प्राणिनां यत्परिमाणः पर्याप्तयो भवन्ति तद्दर्शयितुमाह—

(पारमा०) वादरन्वं यद्दशात्पृथिव्याद्येकैकम्य जन्तुशरीरस्य चक्षुर्ग्राह्यताया अभावेऽपि बहूनां ममुदायस्य चक्षुर्ग्राह्यता भवति स परिणामविशेषः, तन्निवन्धनं नाम वादरनाम, तस्यो-  
दयाद्वादरकायः स प्राणी नियमेन भवति । तद्विपरीतं सूक्ष्मनाम, यदुदयान्न कदाचिदपि  
देहिदेहस्य चक्षुर्ग्राह्यता भवति तेन सूक्ष्मकायः, स चान्तमुर्हतापुर्मवर्तानि प्रमङ्गतोऽभिहितम् ।  
इति गाथार्थः ॥

इदानीं पर्याप्तापर्याप्तयोरवमरः, तत्र पर्याप्तनाम यदुदयान्त्वयोर्यपर्याप्तिनिर्वर्तनसमर्थं  
भवति, अतः पर्याप्तिनिरूपणपूर्वकं तदाह—

आहारमरीरिन्दिय-पञ्जती आणपाणभाममणे ।

चत्वारि पञ्च छप्पिय, एगिन्दियविगलमन्नीणं ॥१३६॥

(पू०) व्याख्या—आहारशरीरइन्द्रियआनप्राणभाषामनःपर्याप्तयः षट् भवन्ति । ताश्च  
चतस्रः पञ्च पदपि 'चेकैन्द्रियविकलमंजिनां यथासंख्येन भवन्ति अपिशब्दात् भवन्ति च.  
केषांचिःपर्याप्तानामेव कालकरणान् । नन्वेकेन्द्रियादीनां पर्याप्तिसंख्योक्ता, अमंजिनां तु पञ्चे-  
न्द्रियसम्मूर्छजानां नोक्ता, तत्कथं तेषां संख्याऽवसीयते ? इत्याह—नेषामपि पञ्चैव पर्याप्तयो  
मनोरहितत्वात् । एतदपि कृतः १, संज्ञिविशेषणान्यथानुपपत्त्या, तदैव सार्धकं भवेत् संज्ञिवि-  
शेषेण यदैव संज्ञिन एव षट् पर्याप्तयो नासंज्ञिनः । अन्यथा व्यवच्छेद्याभावात्संज्ञिग्रहणं निरर्थकं  
स्यात्, तस्मात्संज्ञिग्रहणसामर्थ्यात्पारिशेष्यन्यायात्सासंज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पञ्चैव पर्याप्तयो भव-  
न्तीति कृतं प्रसङ्गेन । प्रकृतं प्रस्तुतम् । इति गाथार्थः ॥१३६॥

उक्ता पर्याप्तिसंख्या, साम्प्रतं सहेतुकं पर्याप्तिस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'आहारसरोरिन्दियपञ्जस्ति' आहारपर्याप्तिः शरीरपर्याप्तिरिन्द्रियपर्या-  
प्तिरिति पर्याप्तिशब्दः प्रत्येकं योज्यते । 'आणपाणभासमणे' इत्यत्रापि तेनानपानपर्याप्ति-  
र्भाषापर्याप्तिर्भनःपर्याप्तिरिति । तत्र यथा वाद्यमाहारमादाय खलरसरूपतया परिणमयति साहार-  
पर्याप्तिः । यथा रसीभूतसाहारं रमासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रलक्षणमस्रधातुरूपतया परिणमयति  
सा शरीरपर्याप्तिः । यथा धातुरूपतया परिणमिनमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रिय-  
पर्याप्तिः । यथा पुनरुच्छ्वासप्रायोग्यवर्गणादलिकमादायोच्छ्वासरूपतया परिणमय्यालम्ब्य च  
मुञ्चति सा उच्छ्वासपर्याप्तिः । यथा तु भाषाप्रायोग्यवर्गणादलिकं गृहित्वा भाषात्वेन परिणमय्या-  
लम्ब्य च मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः । यथा पुनर्मनोयोग्यवर्गणादलिकमादाय मनस्त्वेन परिण-  
मय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः । एताश्च यथाक्रमं चतस्रः पञ्च पदं च एकैन्द्रियविक-

लेन्द्रियसंज्ञिना भवन्ति । यत्तु तत्त्वार्थे पर्याप्तीनां पञ्चसंख्यात्वमुक्तं तदिन्द्रियपर्याप्ता मनःपर्याप्ते-  
रन्तर्मावात् । यत्पुनरागमे तदेवं, यथा भगवत्प्रथाम्—“तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया  
पञ्चविहाए पञ्चस्तीए पञ्चत्तिभावं गच्छइ, तंजहा-आहारपञ्चत्तीए १ सरीरपञ्च-  
त्तीए २ इंदियपञ्चत्तीए ३ आणपाणपञ्चत्तीए ४ भासामणपञ्चत्तीए ५ ।” इति॥१३६॥

एयासि निष्फत्ती, उदएणं जस्स होइ कम्मस्स ।

तं पञ्चत्तं नामं, इयरुदए नत्थि निष्फत्ती ॥१३७॥

(पू०) व्याख्या—‘एतासां’ पूर्वोक्तपर्याप्तीनां ‘निष्पत्तिः’ निवृत्तिः ‘उदयेन’ विपाकेन  
यस्य भवति कर्मणस्तत् ‘पर्याप्तं नाम’ पर्याप्तिसंज्ञकमुच्यते इति शेषः । ‘इतरस्य’ अपर्याप्त-  
नाम्नः ‘उदये’ विपाके ‘नास्ति’ न विद्यते ‘निष्पत्तिः’ निवृत्तिः पर्याप्तेरिति गम्यते । इति  
गाथार्थः ॥१३७॥ उक्तं पर्याप्ति(प्त)नाम, साम्प्रतं प्रत्येकनामाह—

(पारमा०) ‘एतासां’ प्ररूपितस्वरूपाणां ‘निष्पत्तिः’ परिसमाप्तिः ‘यस्य’ कर्मण उद-  
येन भवति तत्पर्याप्तकनाम । अपर्याप्तकमाह—इतरत् अपर्याप्तकनाम तस्योदये—नास्ति निष्पत्ति-  
रेतासामित्यत्रापि योज्यम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१३७॥

उक्ते पर्याप्तापर्याप्तकनाम्नी, सम्प्रति प्रत्येकनामाह—

एक्किक्कयम्मि जीवे, इक्किक्कं जस्स होइ उदएणं ।

‘ओरालाइसरीरं, तं नामं होइ पत्तेयं ॥१३८॥

(पू०) व्याख्या—एकैकस्मिन् ‘जीवे’ प्राणिनि ‘एकैकं’ शरीरं भवति, यथा वृक्षादीनां  
पत्रादिषु जायते ‘यस्य’ कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन, किम् ? इत्याह—औदारिकं शरीरं तन्नाम  
कर्म भवति प्रत्येकसंज्ञकं नाम । इति गाथार्थः ॥१३८॥

उक्तं प्रत्येकनाम, अधुना साधारणनामाह—

(पारमा०) एकैकस्य जीवस्य ‘यस्य’ कर्मण उदयादेकैकं औदारिकादि, आदिशब्दाद्-  
क्रियमाहारकं वा शरीरं भवति तत्प्रत्येकनाम भवति । इति गाथार्थः ॥१३९॥

साधारणमाह—

जीवाणमणंताणं, इक्कं ओरालियं इह सरीरं ।

हवइ हु, जस्सुदएण, तं साहारं हवइ नामं ॥१३९॥

१ व्याख्याकारेण तु “ओरालियं सरीरं” इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति । २ “यथा शालिसु-  
द्रयवादिषु” जायते जे० । ३ “य” इत्यनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातं । ४ “मवे” इत्यपि पाठः, तथैव  
व्याख्याकाराः॥

(पू०) व्याख्या—‘जीवानां’ प्राणिनां ‘अमन्तानां’ अपरिमितानां ‘एकं’ सर्वेषामेव प्राणिनां यथा स्रुणादीनामनेकप्राणिनामेकं शरीरं, किम् ? ‘औदारिकं’ प्रतीतं ‘इह’ अस्मिन् लोके शीर्यत इति शरीरं भवति च यस्योदयेन तत्साधारणं भवेन्नाम नामैव, चशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१३६॥

उक्तं साधारणनाम, अधुना स्थिरनामाह—

(पारमा०) अनन्तानां जीवानामेकमौदारिकं शरीरं ‘इह’ संसारे देशीकुट्याद्येकनिवासवर्गतानां निश्चितं यस्य कर्मण उदयाद्भवति तत् ‘साधारं’ साधारणनाम भवति । इति गाथार्थः ॥१३९॥

स्थिरनामाह—

दंतट्टाइथिराणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।

निप्फत्ती उ सरीरे, जायइ तं होइ थिरनामं ॥१४०॥

(पू०) व्याख्या—‘दन्तास्थ्यादिस्थिराणां’ दन्तास्थिनी प्रतीते, आदिशब्दाच्छिरोनासिकादिपरिग्रहः, स्थिराणामचलानां ‘अङ्गावयवानां’ शरीरावयवानां ‘यस्य’ नाम्नः कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘निष्पत्तिस्तु शरीरे’ निर्वृत्तिस्त्वङ्गे ‘जायते’ निष्पद्यते तद्भवति स्थिरनाम । इति गाथार्थः ॥१४०॥

उक्तं स्थिरनाम, साम्प्रतमस्थिरनामाह—

(पारमा०) दन्तास्थिप्रभृतिस्थिराणां अङ्गावयवानां ‘यस्य’ कर्मण उदयाभिष्पत्तिः पुनः शरीरे जायते तत् स्थिरनाम भवति । इति गाथार्थः ॥१४०॥

अस्थिरमाह—

जीहाभमुहाईणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।

निप्फत्ती उ सरीरे, जायइ तं अथिरनामं तु ॥१४१॥

(पू०) व्याख्या—जिह्वाभ्रप्रभृतीनां भ्रूजिह्वे प्रतीते, आदिशब्दान्नेत्रकर्णादिपरिग्रहः, ‘अङ्गावयवानां’ शरीरदेशानां ‘यस्य’ कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘निष्पत्तिस्तु’ निर्वृत्तिः पुनः ‘शरीरे’ देहे ‘जायते’ निष्पद्यते ‘तदस्थिरनाम तु’ तदस्थिरनामैव कर्म इति गाथार्थः ॥१४१॥

उक्तमस्थिरनाम, साम्प्रतं शुभनामाह—

(पारमा०) जिह्वाभ्रप्रभृतीनामङ्गावयवानां ‘यस्य’ कर्मण उदयाभिष्पत्तिः (पुनः) शरीरे जायते तत् ‘अस्थिरनाम तु’ तदस्थिरनामकर्मैव । इति गाथार्थः ॥१४१॥

शुभमाह—

शिरमाईण सुहाणं अंगावयवाण जस्स उदणं ।  
निष्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुभनामं ॥१४२॥

(पू०) व्याख्या—‘शिरःप्रभृतीनां’ आदिशब्दाद्वक्षःस्थलादिपरिग्रहः, ‘शुभानां’ प्रशस्तानां, अङ्गस्यावयवा अङ्गावयवाः, अङ्गशब्देन चात्र शरीरमुच्यते नोदरादि, अस्यामेव गाथायामादौ शिरसोऽङ्गावयवत्वेनाभिधानात् तेषां ‘यस्य’ नामकर्मण उदयेन ‘निष्पत्तिस्तु’ निवृत्तिरेव ‘शरीरे’ देहे ‘जायते’ निष्पद्यते तद्भवति ‘शुभनाम’ शुभनामसंज्ञकं कर्म । इति गाथार्थः ॥१४२॥

उक्तं शुभनाम, अधुनाऽशुभनामाह—

(पारमा०) शिर आदिर्येषां ते शिरआदयो नामेरुपर्यवयवास्तेषां शुभानामङ्गावयवानां ‘यस्य’ कर्मण उदयाभिप्पत्तिः पुनः (शरीरे) जायते तत् शुभनाम भवति । शिरसा हि स्पृष्टस्तुष्यति इति गाथार्थः ॥१४२॥

अशुभमाह—

पायाईअसुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदणं ।  
निष्फत्ती उ शरीरे, जायइ तं असुभनामं तु ॥१४३॥

(पू०) व्याख्या—पादावादिर्येषामवयवानां पादादिः, आदिशब्दात्पुतादिपरिग्रहः, तेषां ‘अशुभानां’ अशोभनानां ‘अङ्गावयवानां’ देहदेशानां ‘यस्य’ पुनः कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘निष्पत्तिस्तु’ निवृत्तिः तुशब्दः पुनःशब्दार्थः, ‘शरीरे’ देहे ‘जायते’ निष्पद्यते ‘तद-शुभनाम तु’ अशुभनामैव । इति गाथार्थः ॥१४३॥

उक्तमशुभनाम, साम्प्रतं सुभगदुर्भगमाह—

(पारमा०) पादावादिर्येषां ते पादादयो नामेरघोऽवयवाः, तेषामशुभानां ‘यस्य’ कर्मण उदयान्निष्पत्तिः पुनः शरीरे जायते तदशुभनामैव । पादेन हि स्पृष्टो रूष्यति । ननु प्रणयप्रकृपितप्रणयिनीपादप्रहारेऽपि प्रणयिनस्तोष एवेति कथं न व्यभिचारः ? उच्यते, तत्तोषस्य मोहनीयनिबन्धनत्वाद्दस्तुस्थितेश्चात्र विचार्यमाणत्वाददोषः । इति गाथार्थः ॥१४३॥

सम्प्रति सुभगदुर्भगनाम्नी आह—

(पू०) व्याख्या—‘जीवानां’ प्राणिनां ‘अमन्तानां’ अपरिमितानां ‘एकं’ सर्वेषामेव प्राणिनां यथा क्षुरणादीनामनेकप्राणिनामेकं शरीरं, किम् ? ‘औदारिकं’ प्रतीतं ‘इह’ अस्मिन् लोके शीर्यत इति शरीरं भवति च यस्योदयेन तत्साधारणं भवेन्नाम नामैव, चशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१३६॥

उक्तं साधारणनाम, अधुना स्थिरनामाह—

(पारमा०) अनन्तानां जीवानामेकमौदारिकं शरीरं ‘इह’ संसारे देशीकुट्याद्येकनिवासवर्गगतानां निश्चितं यस्य कर्मण उदयाद्भवति तत् ‘साहारं’ साधारणनाम भवति । इति गाथार्थः ॥१३९॥

स्थिरनामाह—

दंतट्टाहथिराणं, अंगावयवाण जस्स उदणं ।

निप्फत्ती उ सरीरे, जायइ तं होइ थिरनामं ॥१४०॥

(पू०) व्याख्या—‘दन्तास्थ्यादिस्थिराणां’ दन्तास्थिनी प्रतीते, आदिशब्दाच्छिरोनासिकादिपरिग्रहः, स्थिराणामचलानां ‘अङ्गावयवानां’ शरीरावयवानां ‘यस्य’ नाम्नः कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘निष्पत्तिस्तु शरीरे’ निवृत्तिस्त्वङ्गे ‘जायते’ निष्पद्यते तद्भवति स्थिरनाम । इति गाथार्थः ॥१४०॥

उक्तं स्थिरनाम, साम्प्रतमस्थिरनामाह—

(पारमा०) दन्तास्थिप्रभृतिस्थिराणां अङ्गावयवानां ‘यस्य’ कर्मण उदयाभिष्पत्तिः पुनः शरीरे जायते तत् स्थिरनाम भवति । इति गाथार्थः ॥१४०॥

अस्थिरमाह—

जीहाभमुहाईणं, अंगावयवाण जस्स उदणं ।

निप्फत्ती उ सरीरे, जायइ तं अथिरनामं तु ॥१४१॥

(पू०) व्याख्या—जिह्वाअप्रभृतीनां अजिह्वे प्रतीते, आदिशब्दान्नेत्रकर्णादिपरिग्रहः, ‘अङ्गावयवानां’ शरीरदेशानां ‘यस्य’ कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘निष्पत्तिस्तु’ निवृत्तिः पुनः ‘शरीरे’ देहे ‘जायते’ निष्पद्यते ‘तदस्थिरनाम तु’ तदस्थिरनामैव कर्म इति गाथार्थः ॥१४१॥

उक्तमस्थिरनाम, साम्प्रतं शुभनामाह—

(पारमा०) जिह्वाअप्रभृतीनामङ्गावयवानां ‘यस्य’ कर्मण उदयाभिष्पत्तिः (पुनः) शरीरे जायते तत् ‘अस्थिरनाम तु’ तदस्थिरनामकर्मैव । इति गाथार्थः ॥१४१॥

शुभमाह—

सिरमाईण सुहाणं अंगावयवाण जस्स उदएणं ।  
निष्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुभनामं ॥१४२॥

(पू०) व्याख्या—‘शिरःप्रभृतीनां’ आदिशब्दाद्भक्षःस्थलादिपरिग्रहः, ‘शुभानां’ प्रशस्तानां, अङ्गस्यावयवा अङ्गावयवाः, अङ्गशब्देन चात्र शरीरमुच्यते नोदरादि, अस्यामेव गाथायामादौ शिरसोऽङ्गावयवत्वेनाभिधानात् तेषां ‘यस्य’ नामकर्मण उदयेन ‘निष्पत्तिस्तु’ निर्वृत्तिरेव ‘शरीरे’ देहे ‘जायते’ निष्पद्यते तद्भवति ‘शुभनाम’ शुभनामसंज्ञकं कर्म । इति गाथार्थः ॥१४२॥

उक्तं शुभनाम, अधुनाऽशुभनामाह—

(पारमा०) शिर आदिर्येषां ते शिरआदयो नामेरुपर्यवयवास्तेषां शुभानामङ्गावयवानां ‘यस्य’ कर्मण उदयाभिप्पत्तिः पुनः (शरीरे) जायते तत् शुभनाम भवति । शिरसा हि स्पृष्टस्तुष्यति इति गाथार्थः ॥१४२॥

अशुभमाह—

पायाईअसुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।  
निष्फत्ती उ शरीरे, जायइ तं असुभनामं तु ॥१४३॥

(पू०) व्याख्या—पादावादिर्येषामवयवानां पादादिः, आदिशब्दात्पुतादिपरिग्रहः, तेषां ‘अशुभानां’ अशोभनानां ‘अङ्गवयवानां’ देहदेशानां ‘यस्य’ पुनः कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘निष्पत्तिस्तु’ निर्वृत्तिः तुशब्दः पुनःशब्दार्थः, ‘शरीरे’ देहे ‘जायते’ निष्पद्यते ‘तदशुभनाम तु’ अशुभनामैव । इति गाथार्थः ॥१४३॥

उक्तमशुभनाम, साम्प्रतं सुभगदुर्मगमाह—

(पारमा०) पादावादिर्येषां ते पादादयो नामेरघोऽवयवाः, तेषामशुभानां ‘यस्य’ कर्मण उदयान्निष्पत्तिः पुनः शरीरे जायते तदशुभनामैव । पादेन हि स्पृष्टो रुष्यति । ननु प्रणयप्रकृपितप्रणयिनीपादप्रहारेऽपि प्रणयिनस्तोष एवेति कथं न व्यभिचारः ? उच्यते, तचोषस्य मोहनीयनिबन्धनत्वाद्दस्तुस्थितेश्चात्र विचार्यमाणत्वाददोषः । इति गाथार्थः ॥१४३॥

सम्प्रति सुभगदुर्मगनाम्नी आह—

सुभगकम्मुदएणं, 'हवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो ।

'दूहगकम्मुदए पुण, दुहओ सो 'सयललोयस्म ॥१४४॥

(पू०) व्याख्या—सुभगस्य भावः सौभाग्यं तस्य कर्मण उदयेन विपाकेन 'भवत्येव' जायत एव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् 'जीवस्तु' प्राणी सर्वजन इष्ट एव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, अन्यथा सौभाग्याभावः । 'दूहगकम्मुदएणं' इति दौर्भाग्यकर्मोदयेन विपाकेन 'दुर्भगः' नयनमनसोरुद्वेगकारी 'सकललोकस्य' सर्वप्राणिसमूहस्य । 'दुर्भगो सो सयललायस्स' इति पाठान्तरं वा । तत्रापि स एवार्थः । केवलं स दौर्भाग्ययुक्तस्य परामर्शः । इति गाथार्थः ॥१४४॥

उक्तं सुभगदुर्भगनाम, अधुना सुस्वरदुःस्वरनामोच्यते—

(पारमा०) सुभगकर्मोदयाद्भवति निश्चितं जीवः, तुशब्दस्य विशेषणार्थत्वात्, अनुपकार-  
कृदपि सर्वजनस्येष्टो मनःप्रियः । दुर्भगकर्मोदये पुनःशब्दस्य विशेषणार्थत्वात्, उपकारकृदपि  
'दुःखदः' मनोनयनानामप्रियप्रतिमः स सकललोकस्य भवतीत्यत्रापि योज्यम् । यदाह—  
"अणुषकएवि षड्ढणं, होइ पिओ तस्स सुभगनामुदओ । उवगारकारगोवि हु न  
रुषई दूभगस्सुदए ॥१॥ सुभगुदएवि हु कोई कंचो आसळ्ळ दूभगो जइवि ।  
जायइ तहोसाओ, जहा अमव्वाण तिथ्यरो ॥२॥" इति गाथार्थः ॥१४४॥

सुस्वरदुःस्वरे आह—

सूसरकम्मुदएणं, सूसरसदो 'य होइ इह जीवो ।

दूसरउदए 'विसरो, जंपंतो होइ जणवेसो ॥१४५॥

(पू०) व्याख्या—सुस्वरं शोभनस्वरं तच्च तत्कर्म च सुस्वरकर्म तस्योदयेन विपाकेन 'सुस्वर-  
शब्दस्तु' शोभनध्वनिरेव 'भवति' जायते 'इह' अस्मिन् लोके 'जीवः' प्राणी । दुःस्वर-  
नाम्नः पुनरुदये विपाके 'विरसः' इतिविशेषेण गतो रसो माधुर्यलक्षणो यस्य स विरसः श्रुत्य-  
सुखदः 'जल्पन्' वदन् 'भवति' जायते 'जनद्वेष्यः' लोकाप्रीत्युत्पादकः । इति गाथार्थः  
॥१४५॥

उक्तं सुस्वरदुःस्वरनाम, साम्प्रतमादेयानादेयनामाह—

(पारमा०) सुस्वरकर्मोदयाद् द्वीन्द्रियादीनां शब्दः स्वरः शोभनः स्वरः सुस्वरः श्रोत्रप्रीति-  
हेतुः, एवंभूतश्च 'इह' संसारे जीवो भवति । दुःस्वरोदये विस्वरः खरभिन्नीनदीनस्वरो  
जल्पन् 'जनद्वेष्यः' अप्रीतिपदं भवति । इति गाथार्थः ॥१४५॥

आदेयानादेये आह—

१ "होइ" इत्यपि पाठः । २ दुर्भगकम्मुदएणं दुर्भगो सो सव्वलोगस्स इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु  
"दुर्भगकम्मुदएणं दुर्भगओ सयल०" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति । ३ "सव्वलओयस्स" इत्यपि पाठः,  
सथैव ले० । ४ 'उ' इति व्याख्याकारः । ५ "विरसो" इत्यपि पाठान्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति ।



आएज्जकम्मउदए, चिट्ठा जीवाण भासणं जं च ।

तं बहु मन्नइ लोओ, 'अवहुमयं इयरउदएणं ॥१४६॥

(पू०) व्याख्या—आदेयनाम्नः कर्मणः 'उदये' विपाके 'चेष्टा' शरीरव्यापारलक्षणा जीवानां 'भाषणं यच्च' जल्पनं यच्च 'तत्' सर्व 'बहु मन्यते' अन्तःप्रीतियुक्तस्तत्तथैव प्रतिपद्यते 'लोकः' जनः । अवहुमतं' अनभिप्रेतं चेष्टाजल्पादिकमितरस्य पुनरनादेयनाम्नः कर्मण उदयेन विपाकेन । इति गाथार्थः ॥१४६॥

उक्तमादेयानादेयनाम, साम्प्रतं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनामाह—

(पारमा०) आदेयकर्मण उदये 'चेष्टा' उच्छ्वलरूपा जीवानां या 'भाषणं' असमञ्जसप्रल्पनं यच्च तद्बहुमन्यते लोकः इतरदनादेयं, तस्योदये चेष्टा हसितललितादिका भाषणं युक्तियुक्तस्यापि अवहुमतम् । इति गाथार्थः ।

यशःकीर्त्ययशःकीर्ती आह—

जस्सुदएणं जीवो, लहइ हु कित्तिं जसं च लोगम्मि ।

तं जसनामं कम्मं, अजसुदए लहइ विवरीयं ॥१४७॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जोषः' प्राणी 'लभते तु' प्राप्नोत्येव कीर्तियशस्तु, एकदिग्गामिनी कीर्तिः, सर्वदिग्गामि यशः, अथवा—'दानपुण्यफला कीर्तिः, पराक्रम कृतं यशः' । अथवा एकमेवेदं नाम, यशसोपलक्षिता कीर्तियशःकीर्तिः, कीर्तिशब्दस्य पूर्वनिपातः प्राकृतत्वात्, 'लोके' जने तद्यशोनामकर्म यशःकीर्तिकर्मैत्यर्थः । अयशः-कीर्त्युदये पुनः प्राणी 'लभते' प्राप्नोति, 'विपरीतं' अयशःकीर्तिमासादयति । इति गाथार्थः ॥१४७॥

उक्तं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम, अधुना निर्माणनामाह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयाजीवो लभते कीर्तिं परलोकगतस्यापि श्लाघनीयतारूपां, यशश्च जीवतः श्लाघतारूपं लोके तद्यशःकीर्तिनाम । अथवा यशसा शौण्डीर्यक्रियानुष्ठानस्वाध्यायध्यानादिशोभनार्थालम्बनेन कीर्तनं संशब्दनं यशःकीर्तिः । 'अजसुदए' इति अयशः कीर्त्युदये लभते 'विपरीतं' अश्लाघनीयतारूपम् । इति गाथार्थः ॥१४७॥

निर्माणमाह—

देहंगावयवाणं, लिंगागिइ जाइ नियमणं जं च ।

तहिं सुत्तहारसरिसो, निम्माणे होइ हु विवागो ॥१४८॥

सुभगकम्मुदएणं, 'हवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो ।

'दूहगकम्मुदए पुण, दुहओ सो 'सयललोयस्म ॥१४४॥

(पू०) व्याख्या—सुभगस्य भावः सौभाग्यं तस्य कर्मण उदयेन विपाकेन 'भवत्येव' जायत एव, हुशब्दस्यैवकार्थत्वात् 'जीवस्तु' प्राणी सर्वजन इष्ट एव, तुशब्दस्यैवकार्थत्वात्, अन्यथा सौभाग्याभावः । 'दूहगकम्मुदएणं' इति दौर्भाग्यकर्मोदयेन विपाकेन 'दुभगः' नयनमनसोरुद्वेगकारी 'सकललोकस्य' सर्वप्राणिसमूहस्य । 'दुभगो सो सयललायस्स' इति पाठान्तरं वा । तत्रापि स एवार्थः । केवलं स दौर्भाग्ययुक्तस्य परामर्शः । इति गाथार्थः ॥१४४॥

उक्तं सुभगदुर्मगनाम, अधुना सुस्वरदुःस्वरनामोच्यते—

(पारमा०) सुभगकर्मोदयान्भवति निश्चितं जीवः, तुशब्दस्य विशेषणार्थत्वात्, अनुपकार-कृदपि सर्वजनस्येष्टो मनःप्रियः । दुर्मगकर्मोदये पुनःशब्दस्य विशेषणार्थत्वात्, उपकारकृदपि 'दुःखदः' मनोनयनानामप्रियप्रतिमः स सकललोकस्य भवतीत्यत्रापि योज्यम् । यदाह— "अणुवकएवि बहूणं, होइ पिओ तस्स सुभगनामुदओ । उवगारकारगोवि हु न रुवई दूभगस्सुदए ॥१॥ सुभगुदएवि हु कोई कंचो आसत्त दूभगो जइवि । जायइ तद्दोसाओ, जहा अमव्वाण तित्थयरो ॥२॥" इति गाथार्थः ॥१४४॥

सुस्वरदुस्वरे आह—

सुसरकम्मुदएणं, सुसरसदो 'य होइ इह जीवो ।

दूसरउदए 'विसरो, जंपतो होइ जणवेसो ॥१४५॥

(पू०) व्याख्या—सुस्वरं शोभनस्वरं तच्च तत्कर्म च सुस्वरकर्म तस्योदयेन विपाकेन 'सुस्वरशब्दस्तु' शोभनध्वनिरेव 'भवति' जायते 'इह' अस्मिन् लोके 'जीवः' प्राणी । दुःस्वरनाम्नः पुनरुदये विपाके 'विरसः' इतिविशेषण गतो रसो माधुर्यलक्षणो यस्य स विरसः श्रुत्य-सुखदः 'जल्पन्' वदन् 'भवति' जायते 'जनद्वेष्यः' लोकाप्रीत्युत्पादकः । इति गाथार्थः ॥१४५॥

उक्तं सुस्वरदुःस्वरनाम, साम्प्रतमादेयानादेयनामाह—

(पारमा०) सुस्वरकर्मोदयाद् द्वीन्द्रियादीनां शब्दः स्वरः शोभनः स्वरः सुस्वरः श्रोत्रप्रीति-हेतुः, एवंभूतश्च 'इह' संसारे जीवो भवति । दुःस्वरोदये विस्वरः खरभिन्नीनदीनस्वरो जल्पन् 'जनद्वेष्यः' अप्रीतिपदं भवति । इति गाथार्थः ॥१४५॥

आदेयानादेये आह—

१ "होइ" इत्यपि पाठः । २ दुमगकम्मुदएणं दुभगो सो सव्वलोगस्स इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु "दुमगकम्मुदएणं दुभगओ सयल०" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति । ३ "सव्वल्लोयस्स" इत्यपि पाठः, तथैव जे० । ४ 'उ' इति व्याख्याकार । ५ "विरसो" इत्यपि पाठान्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति ।

आएज्जकम्मउदए, चिट्ठा जीवाण भासणं जं च ।

तं बहु मन्नइ लोओ, 'अबहुमयं इयरउदएणं ॥१४६॥

(पू०) व्याख्या—आदेयनाम्नः कर्मणः 'उदये' विपाके 'चेष्टा' शरीरव्यापारलक्षणा जीवानां 'भाषणं यच्च' जल्पनं यच्च 'तत्' सर्वं 'बहु मन्यते' अन्तःप्रीतियुक्तस्तत्तथैव प्रतिपद्यते 'लोकः' जनः । अबहुमतं' अनभिप्रेतं चेष्टाजल्पादिकमितरस्य पुनरनादेयनाम्नः कर्मण उदयेन विपाकेन । इति गाथार्थः ॥१४६॥

उक्तमादेयानादेयनाम, साम्प्रतं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनामाह—

(पारमा०) आदेयकर्मण उदये 'चेष्टा' उच्छ्वलरूपा जीवानां या 'भाषणं' असमञ्जसप्रलपनं यच्च तद्बहुमन्यते लोकः इतरदनादेयं, तस्योदये चेष्टा हसितललितादिका भाषणं युक्तियुक्तस्यापि अबहुमतम् । इति गाथार्थः ।

यशःकीर्त्ययशःकीर्ती आह—

जस्सुदएणं जीवो, लहइ हु कित्तिं जसं च लोगम्मि ।

तं जसनामं कम्मं, अजस्सुदए लहइ विवरीयं ॥१४७॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवः' प्राणी 'लभते तु' प्राप्नोत्येव कीर्तियशस्तु, एकदिग्गामिनी कीर्तिः, सर्वदिग्गामि यशः, अथवा—'दानपुण्यफला कीर्तिः, पराक्रम कृतं यशः' । अथवा एकमेवेदं नाम, यशसोपलक्षिता कीर्तियशःकीर्तिः, कीर्तिशब्दस्य पूर्वनिपातः प्राकृतत्वात्, 'लोके' जने तद्यशोनामकर्म यशःकीर्तिकर्मेत्यर्थः । अयशः-कीर्त्युदये पुनः प्राणी 'लभते' प्राप्नोति, 'विपरीतं' अयशःकीर्तिमासादयति । इति गाथार्थः ॥१४७॥

उक्तं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम, अधुना निर्माणनामाह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयाजीवो लभते कीर्तिं परलोकगतस्यापि श्लाघनीयतारूपा, यशश्च जीवतः श्लाघतारूपं लोके तद्यशःकीर्तिनाम । अथवा यशसा शौण्डीर्यक्रियानुष्ठानस्वाध्यायध्यानादिशोभनार्थालम्बनेन कीर्तनं संशब्दनं यशःकीर्तिः । 'अजस्सुदए' इति अयशःकीर्त्युदये लभते 'विपरीतं' अश्लाघनीयतारूपम् । इति गाथार्थः ॥१४७॥

निर्माणमाह—

देहंगावयवाणं, लिंगागिइ जाइ नियमणं जं च ।

तहिँ सुत्तहारसरिसो, निम्माणे होइ हु विवागो ॥१४८॥

(पू०) व्याख्या-देहं शरीरं तस्याङ्गानि शिरःप्रभृतीनि देहाङ्गानि, देहाङ्गानामवयवाः कर्णा-  
सिकादयस्तेषां 'यन्नियमनं' यो नियमोऽवश्यम्भावो यस्य देहाङ्गस्य येऽवयवास्तैस्तत्र भवितव्यम् ।  
निजाङ्गादीनां नियमनं यच्चेति, निजमात्मीयं, अङ्गमुद्गप्रभृति, निजं च तदङ्गं च निजाङ्गं, निजा-  
ङ्गमादिर्येषामङ्गानां तानि निजाङ्गादीनि, यच्च तेषां नियमनम् । यस्य मनुष्यशरीरादेर्यानि शिरः  
प्रभृत्यङ्गानि तैस्तत्रैव भवितव्यम् न पुनर्मनुष्यशरीराङ्गावयवैर्देवादिशरीरादिषु भवितव्यम् । यस्य वा  
मनुष्यादेर्यच्छरीरं तस्य येऽवयवास्ते तस्मिन्नेव शरीरे भवन्त्यवयवाः । येन शरीराङ्गादिना योऽ-  
वयवो जन्यः स तदेवाङ्गं जनयति, नान्यदिति । अयमत्र भावार्थः-देहाङ्गावयवानां इत्यनेनावय-  
वनियम उक्तः, यस्य शिरःप्रभृत्यङ्गस्य योऽवयवो नासिकाकर्णादिः, तेनावयवेन तस्मिन्नेव शिरः-  
प्रभृत्यङ्गे भवितव्यम् । तस्मिन्नप्यङ्गे भवता नासिकादिना नासिकादिस्थान एव भवितव्यम् ।  
निजाङ्गादीनां इत्यनेन 'त्वङ्गनियम उक्तः, यस्य देहस्य पुरुषादेः संबन्धिनो यच्छिरःप्रभृत्यङ्गं  
तेनाङ्गेन तत्रैव देहे भवितव्यम्, नान्यस्मिन्, अथवा यस्याङ्गस्य यो निजोऽवयवः स तेनैव  
शिरःप्रभृतिनोत्पादयितव्यः, नान्येनोरःप्रभृतिना । अथवाऽन्यथा व्याख्यायते-देहाङ्गावयवानां  
निजाङ्गादिषु नियमनं यत्, चकारादिघानं च, इत्यत्र समस्यर्थे षष्ठी । तेनायमर्थः-देहाङ्गावय-  
वैर्नासिकादिभिर्निजाङ्गादिष्वेव शिरःप्रभृतिषु भवितव्यं स्वस्थान एवेति । कस्यायं विपाकः ?  
इत्याह-निर्माणनाम्न एवायं 'विपाकः' उदयः 'भवति' जायते हुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् ।  
किंभूतोऽसौ विपाकः ? इत्याह-'तद्धिं सुप्तहारसरिसो' 'तत्र' निर्माणे चो विपाकः स  
सूत्रधारसदृशः सूत्रधारो=विज्ञानिकः, तेन तुल्यः । यथा सूत्रधारो देवकुलादौ क्रियमाणे स्तम्भा-  
दावङ्गे मद्रकोणरहं प्रतिहारकादौ च यः कुम्भिकाकलशकादिरवयवो यस्मिन्नेव स्थाने बुध्यते  
(युज्यते) कर्तुं तस्मिन्नेव प्रदेशे विज्ञानिकैः कारयत्यात्मव्यापारेण । इति गाथार्थः ॥१४८॥

उक्तं निर्माणनाम, अधुना तीर्थकरनामाह—

(पारमा०) देहं शरीरं, अङ्गानि शिरःप्रभृतीनि, अवयवा अङ्गुल्यादय उपाङ्गादिरूपाः,  
तेषां नियमनम् । यथा मनुष्यस्य द्वौ हस्तौ द्वौ पादौ इत्यादिनियमः । 'लिङ्गाकृत्तिजाति-  
नियमनं' लिङ्गाकृत्योर्जातौ जन्मनि नियमनं यच्च । यथा पुरुषस्य श्मश्रुप्रभृतिलिङ्गं, अधृष्य-  
त्वादिका चाकृतिः । स्त्रियश्च स्तनादिकं चिह्नं, अमिगम्यत्वादिका चाकृतिः । तत्र सूत्रधार-  
तुल्यो निर्माणस्य भवति निश्चितं विपाकः । यथा सूत्रधारः शिलाकुडुकैः कृतानि खरशिलादीनि  
देवकुलाङ्गानि यथास्थानं निवेशयति । तथा निर्माणमपि अङ्गोपाङ्गनाम्ना निर्मितानि शरीरा-  
ङ्गादीनि । इति गाथार्थः ॥१४८॥

तीर्थकरनामाह—

उदण जस्य सुरासुर-नरवइनिवहेहिँ 'पूहओ होइ ।  
तं तित्थयरं नामं, तस्स विवागो उ केवल्लिणो ॥१४९॥

(पू०) व्याख्या—'उदये' विपाके 'यस्य' कर्मणः सुरा ज्योतिष्कवैमानिकाः, असुरा भवन-  
वासिनः, नरपतयो राजानः, सुराश्चासुराश्च नरपतयश्च सुरासुरनरपतयः तेषां निवहाः संघाताः तैः,  
'पूजितः' अर्चितः 'भवति, जायते तदेवंभूतं 'तीर्थकरं' तीर्थकरणशीलं, ताच्छीलिकटः,  
'नाम' नामकर्म, 'तस्य' तीर्थकरकर्मणो 'विपाकश्च' अनुभवश्च तात्त्विकः केवल्लिन एव  
तीर्थकरस्य; नाकेवल्लिनः तस्य समस्तैः पूजनासंभवात् । इति गाथार्थः ॥१४९॥

व्याख्यातं तीर्थकरनाम, तद्व्याख्यानात्सप्रपञ्चं नामकर्मापि व्याख्यातम् । साम्प्रतं सूत्र-  
कार एव गोत्रप्रतिपादनायाह—

(पारमा०) 'उदये' विपाकानुभवे 'यस्य' कर्मणः, सुरा वैमानिकादयः, असुरा भवन-  
यतिविशेषाः, नरा मनुष्यास्तेषां पतयः सौधमेन्द्रचमरसम्राट् राजादयः, तेषां निवहैः पूजितो भवति  
तत्तीर्थकरनाम, तस्य विपाकः पुनः केवल्लिनः । तथाहि—भगवन्तस्तीर्थकरास्तीर्थकरनामकर्मादिया-  
द्देवादिभिरष्टमहाप्रातिहार्यादिविरचनतः पूज्यन्ते, जघन्यतोऽपि कोटिसंख्यैः सेव्यन्ते च । गृह-  
स्थाद्यवस्थायामपि जन्ममहादौ पूज्यन्त एव परं तस्यासन्ततत्वात् केवलोत्पादे च निरन्तरत्वा-  
च्चस्य विपाकः केवल्लिन इत्युक्तम् । इति गाथार्थः ॥१४९॥

अधुना नाम निगमयन् गोत्रप्रस्तावनामाह—

भणियं नामं कम्मं अहुणा गोयं तु सत्तमं भणिमो ।  
तं पि कुलालसमाणं, दुविहं जह होइ 'तह भणिमो ॥१५०॥

(पू०) व्याख्या—'भणितं' प्रतिपादितं नामकर्म सविस्तरम् । 'अधुना' साम्प्रतं पुनर्गोत्रं  
तु, तुशब्दः पुनःशब्दार्थ एवशब्दार्थो वा । यदा एवकारार्थस्तदा गोत्रमेव सप्तमं संख्यया  
'भणिमो' प्रतिपादयामः । पुनःशब्दार्थ उक्त एव । तदपि कुलालसमाणं, तच्छब्दो गोत्रपरा-  
मर्शकः, अपिशब्दः संभावने । किं संभावयति ? तदेतद्रोत्रं कुम्भकारतुल्यं वर्तते । किंभूतं तत् ?  
'द्विविधं' द्विप्रकारं 'यथा' येन प्रकारेण 'भवति' जायते 'तथा' तेन प्रकारेण 'भणामः'  
प्रतिपादयामः । इति गाथार्थः ॥१५०॥

अभिहितगोत्रद्वै विष्ये आद्यमेदे दृष्टान्तमाह—

? "पूहओ लोए" इत्यपि पाठः । २ ०को-ऽच् जे० । ३ "तं" इत्यपि पाठः ।

(पारमा०)—‘भणितं’ अशेषविशेषाख्यातः प्रतिपादितं नामकर्म षष्ठम् । ‘अधुना तु’ मम्प्रति पुनः ‘गोत्रं’ सप्तमं कर्म भणामः । तदपि गोत्रं कुलालममानं सत् द्विविधं शुभाशुभ-  
करणतो यथा भवति तथा भणामः । इति गाथार्थः ॥१५०॥

मम्प्रति कुलालदृष्टान्तं स्पष्टमाचष्टे—

जइ इत्थ कुंभकारो, पुढवीए कुणइ एरिसं रुवं ।

ज लोयाओ पूयं, पावइ इह पुण्णकलसाई ॥१५१॥

(पू०) व्याख्या—‘यथा’ येन प्रकारेण ‘अत्र’ अस्मिन् लोके ‘कुम्भकारः’ घटकारः  
‘पृथिव्यां’ मृत्तिकायां ‘करोति’ विधत्ते ईदृशं रूपमतिशयवत् । ‘यद्’ रूपं ‘लोकात्’ जनात्  
पूजां पुष्पचन्दनदध्यक्षतादिभिः ‘प्राप्नोति’ आसादयति ‘इह’ ‘अस्मिँल्लोके’ किं तत् ? इत्याह—  
पूर्णकलशादि, आदिशब्दादर्धपात्रादि । इति गाथार्थः ॥१५१॥

उक्त उच्चैर्गोत्रदृष्टान्तः, अधुना नीचैर्गोत्रदृष्टान्तमाह—

(पारमा०) यथाऽत्र कुम्भकारः ‘पृथिव्याः’ मृत्तिकाया ईदृशं रूपं करोति, यत्पूर्णकलशादि  
मसृणत्वादिगुणगहितमपि लोकात् पूजां प्राप्नोति । लोको हि पूर्णकलशाद्यभिमुखमायान्तमालोक्य  
शोभनः शकुन इति स्तुवन्नक्षतादिना पूजयतीति ॥१५१॥

भुंभुलमाई अन्नं सो चिय पुढवीए कुणइ रुवं तु ।

जं लोयाओ निदं पावइ अकएवि मज्जम्मि ॥१५२॥

(पू०) व्याख्या—भुम्भुलो मद्यस्थानं, आदिशब्दात्कोशकादिपग्रहः, मकारोऽलाक्षणिकः  
प्राकृतत्वात् । भुम्भुला‘द्यन्यं रूपं स एव कुम्भकारः ‘पृथिव्यां’ मृत्तिकायां ‘करोत्येव’ विधत्त  
एव, ‘रूपं तु’ उक्तलक्षणम् । यत् ‘लोकात्’ जनात् ‘निन्द्यां’ जुगुप्सां ‘प्राप्नोति’ आसादयति  
‘अकृतेऽपि’ अस्थापितेऽपि ‘अद्ये’ आसवे, आस्तां तावत्कृते, कृते तु सुरां निन्दां प्राप्नोति ।  
इति गाथार्थः ॥१५२॥

उक्तो दृष्टान्तः, अधुना दार्ष्टान्तिकमाह—

(पारमा०) ‘भुम्भुलं’ मद्यमाजनं, ‘अन्यत्’ पूर्णकलशादिव्यतिरिक्तं स एव कुम्भकारः  
पृथिव्या रूपं करोति । यन्मसृणत्वादिगुणवदपि लोकाभिन्दां प्राप्नोति, ‘अकृतेऽपि’ अस्थापि-  
तेऽपि मद्ये । तथाहि—शिष्टजनो भुम्भुलादिकं तत्कालनिष्पन्नमपि इतरभाण्डालामेऽपि महत्यपि  
प्रयोजने निन्द्यत्वान्न गृह्णात्येव । इति गाथाद्वयार्थः ॥१५२॥

दार्ष्टान्तिकेन योजयति—

एव कुलालसमाणं गोयं कम्मं तु 'होइ जीवस्स ।  
उच्चानीयविवागो, जह होइ तहा निसामेह ॥१५३॥

(पू०) व्याख्या—'एष' उक्तनीत्या 'कुलालसमाणं' कुम्भकारतुल्यं, किम् ? 'गोत्रमेव कर्म' कुलप्रसूतिलक्षणं 'अत्र' प्रक्रमे 'जीवस्य' प्राणिनः । तस्य च गोत्रस्योच्चैर्वर्णकारणं नीचैर्निम्नता विपाकोऽनुभवो 'यथा' येन प्रकारेण 'भवति' जायते 'तथा' तेन प्रकारेण दर्शनायाह—'निशमयत' आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥१५३॥

उक्तमेवोच्चैर्गोत्रविपाकं प्रदर्शयन्नाह—

(पारमा०)—'एषं' शुभाशुभवस्तुविधानात् कुम्भकारतुल्यं गोत्रं कर्म पुनर्भवति जीवस्यो-  
च्चैर्नीचैर्विपाको यथा भवति तथा निशमयत । इति गाथार्थः ॥१५३॥

तत्रोच्चैर्गोत्रविपाकमाह—

'अधणी बुद्धिविउत्तो रूवविहूणोवि जस्स उदएणं ।

'लोयम्मि लहइ पूयं, उच्चगोयं तयं होइ ॥१५४॥

(पू०) व्याख्या—'अधनः' अविद्यमानधनो बुद्ध्या विद्युक्तो बुद्धिविद्युक्तो बुद्धिरहितो,  
रूपेण विहीनः रूपविहीनः, सोऽपि आस्तां रूपयुक्तो 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन  
'लोके' जने 'लभते' प्राप्नोति 'पूजां' अभ्यर्चनं वस्त्रालङ्कारस्रगादिभिरुच्चैर्गोत्रनामकर्म तद्भवति  
विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥१५४॥

उक्त उच्चैर्गोत्रविपाकः, अधुना नीचैर्गोत्रविपाकमाह—

(पारमा०) 'अधनी' धनहीनः 'बुद्धिविद्युक्तः' मतिनिर्मुक्तः 'रूपविहीनः' रूपरहितो-  
ऽपि 'यस्य' कर्मण उदयेन लोके जातिमात्रादेव पूजां लभते, तदुच्चैर्गोत्रं पूर्णकलशकारिकुम्भ-  
कारतुल्यम् । इति गाथार्थः ॥१५४॥

नीचैर्गोत्रविपाकमाह—

'सधणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिउणोवि जस्स उदएणं ।

'लोयम्मि लहइ निन्दं, एयं पुण होइ नीयं तु ॥१५५॥

व्याख्या—'सधनो' विद्यमानधनः 'रूपेण युक्तः' रूपसहितः, बुद्ध्या निपुणो मतिनि-

१ 'इत्थ' इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति । २ व्याख्याकारेण "अधणो" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति । ३-५ "लोयम्मि" इत्यपि पाठः ॥ ४ "सधणी" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति ।

पुणः, सोऽप्येवंविधो 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'लोके' जने 'लभते' प्राप्नोति 'निन्दां' जुगुप्सां, अकुलीनोऽयं किमस्य गुणैः ? एतत्पुनः कर्म नीचैर्गोत्रं निकृष्टगोत्रं विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥१५५॥

प्रतिपादितं गोत्रकर्म, अधुना गोत्रनिगमनपूर्वकमन्तरायमाह--

(पारमा०) सधनो रूपेण युक्तो बुद्धिनिपुणोऽपि 'यस्य' कर्मण उदयेन लोके धृतिका-पुत्रोऽयमित्यादिनिन्दां लभते । एतत्पुनर्भवति 'नीचं तु' इति नीचैर्गोत्रं शुम्भुलककारिकुम्भ-कारप्रतिमम् । इति गाथार्थः ॥१५५॥

गोत्रं निगमयन्नन्तरायकप्रस्तावनामाह--

'गोयं भणियं अहुणा, अट्टमयं अंतराययं होइ ।

तं भंडारियसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥१५६॥

(पू०) व्याख्या--'गोत्रं' सप्तमं कर्म 'भणितं' प्रतिपादितम् । 'अधुना' साम्प्रतं अष्टम-सेवाष्टमकं, अन्तराये भवमान्तरायिकं कर्म 'भणामः' प्रतिपादयामः, तत्किंभूतम् ? इत्याह-- 'भाण्डारिकसदृशं' भाण्डागारनियुक्तपुरुषतुल्यं (यथा भवति) तथैव 'निशमयत' आकर्णयत ययं कथ्यमानमिति शेषः । इति गाथार्थः ॥१५६॥

अत्रैवार्थे दृष्टान्तमाह अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्--

(पारमा०) गोत्रं भणितम्, अधुनाऽष्टमकं अन्तरायकं भवति तद्भाण्डागारिकसदृशं यथा भवति तथा 'निशमयत' शृणुत । इति गाथार्थः ॥१५६॥

प्रतिज्ञातमाह--

जह राया इह भंडारिण विणिण कुणह दाणाई ।

तेण उ पडिकूलेणं, न कुणह सो दाणमाईणि ॥१५७॥

(पू०) व्याख्या--यथेति दृष्टान्तार्थः । यथा 'राजा' नरपतिः 'इह' अस्मिँल्लोके 'भाण्डारिकेण' स्वनियोगिकेन 'धिनोतेन' स्वायत्तेन 'करोति' विधत्ते दानमादौ येषां तानि दानादीनि, आदिशब्दाद्भोगोपभोगपरिग्रहः 'तेन तु प्रतिक्कूलेन' तेन पुनर्विबन्धकेन निषेधकेन 'न करोम्येव' न वितरत्येव 'स' राजा दानादि तु, आदिशब्दाद्भोगोपभोगादिपरिग्रहः । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१५७॥

१ "गुत्तिं" इत्यपि पाठः । २ "अंतराययं भणिमो" इत्यपि पाठस्त्वदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्या-तम् । ३ "दाणाई" इत्यपि पाठः । ४ "दाणमाई उ" इति व्याख्याकारः ।



अभिहितो दृष्टान्तः, अधुना दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथा राजा 'इह' लोके भाण्डागारिकेण विनीतेन दानादीनि करोति । तेन तु प्रतिकूलेन कुनोऽपि वैगुण्यादविधेयेन न करोति स राजा दानादीनि । इति गाथार्थः ॥१५७॥

जह राया तह जीवो, भंडारी जह 'तहंतराय' च ।

तेण उ विबन्धणं. न कुणह सो 'दाणमाईणि ॥१५८॥

(पू०) व्याख्या—यथा राजा तथा जीवः तत्तुल्यो भाण्डारिको यथा तथाऽन्तरायिकं कर्म भवति भाण्डागारिकसदृशं जायते । अयमत्र भावार्थः—यदा तदन्तरायं क्षयोपशमादनुकूलं भवति जीवस्य तदाऽसौ दानादीनि करोति । 'तेन तु' पुनरन्तरायकर्मणा 'विबन्धकेन' प्रतिकूलेन न करोति स जीवो दानभोगादि आदिशब्दादुपभोगादिपरिग्रहः । इति गाथार्थः ॥१५८॥

तदेवान्तरायं संख्यामेदेन दर्शयति—

(पारमा०) यथा राजा तथा जीवः, यथा भाण्डागारिकस्तथाऽन्तरायं पुनः । 'तेन' त्वन्तरायेण 'विबन्धकेन' प्रतिकूलेन न करोति स जीवो दानादीनि । इति गाथार्थः ॥१५८॥

सम्प्रति पञ्चप्रकारत्वमाह—

तं दाणलाभभोगो—वभोगविरियंतराय 'पंचमयं' ।

एएसिं तु विवागं 'वोच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥१५९॥

(पू०) व्याख्या—तद् दानं च लाभश्च भोगश्च उपभोगश्च वीर्यं चेति द्वन्द्वः, एतेषामन्तरायं विध्नः छप्तानुस्वारमन्तरायपदं प्राकृतत्वात्, 'पञ्चमयं' पञ्चभेदः । दानं त्रिविधम्, ज्ञानदानम्, अभयदानम्, धर्मोपग्रहदानम् । लाभोऽनेकप्रकारः, दायकादादेयप्राप्तिः । भुज्यत इति भोग आहारपुष्पादिः, उप सामीप्येन पुनः पुनर्वा भुज्यते उपभोगः । वीर्यमान्तरः शक्तिविशेषः । अन्तरायशब्दो विघातकः, स च प्रत्येकं संबध्यते । एतेषां पुनः 'विपाकं' अनुभवं 'वोच्छामि' वक्ष्ये 'यथाऽऽनुपूव्वीया' यथापरिपाठ्या । इति गाथार्थः ॥१५९॥

दानान्तरायस्य विषयमाह—

(पारमा०) 'तत्तु' अन्तरायं दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायाः पञ्च प्रकृता अस्मिन् दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायपञ्चमयम् । एतेषां तु दानादीनां विपाकं मणामि 'यथानुपूव्वीया' आनुपूर्व्यनतिक्रमेण । इति गाथार्थः ॥१५९॥

१ व्याख्याकारेण तु "तहंतराईय" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ "तु" इत्यपि पाठः । ३ व्याख्याकारेण तु "दाणभोगाई" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । ४ "पंचविहं" इत्यपि पाठः । ५ "वुच्छामि" इत्यपि पाठः, "मणामि य" इति पाठानुसारेण परमानन्दसूरीभिर्व्याख्यातम् ॥

पुणः, सोऽप्येवंविधो 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'लोके' जने 'लभते' प्राप्नोति 'निन्दां' जुगुप्सां, अकुलीनोऽयं किमस्य गुणैः ? एतत्पुनः कर्म नीचैर्गोत्रं निकृष्टगोत्रं विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥१५५॥

प्रतिपादितं गोत्रकर्म, अधुना गोत्रनिगमनपूर्वकमन्तरायमाह--

(पारमा०) सधनो रूपेण युक्तो बुद्धिनिपुणोऽपि 'यस्य' कर्मण उदयेन लोके वृत्तिका-पुत्रोऽयमित्यादिनिन्दां लभते । एतत्पुनर्भवति 'नीचं तु' इति नीचैर्गोत्रं मुम्भुलककारिकुम्भ-कारप्रतिमम् । इति गाथार्थः ॥१५५॥

गोत्रं निगमयन्तरायकप्रस्तावनामाह--

'गोयं भणियं' अहुणा, अट्टमयं 'अंतराययं' होइ ।  
तं भंडारियसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥१५६॥

(पू०) व्याख्या--'गोत्रं' सप्तमं कर्म 'भणितं' प्रतिपादितम् । 'अधुना' साम्प्रतं अष्टम-सेवाष्टमकं, अन्तराये भवमान्तरायिकं कर्म 'भणामः' प्रतिपादयामः, तर्किकभूतम् ? इत्याह-- 'भाण्डारिकसदृशं' भाण्डागारनियुक्तपुरुषतुल्यं (यथा भवति) तथैव 'निशमयत्' आकर्णयत् यूयं कथ्यमानमिति शेषः । इति गाथार्थः ॥१५६॥

अत्रैवार्थे दृष्टान्तमाह अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्--

(पारमा०) गोत्रं भणितम्, अधुनाऽष्टमकं अन्तरायकं भवति तद्भाण्डागारिकसदृशं यथा भवति तथा 'निशमयत्' शृणुत । इति गाथार्थः ॥१५६॥

प्रतिज्ञातमाह--

जह राया इह भंडारिण विणिण कुणइ 'दाणाई' ।  
तेण उ पडिक्खलेणं, न कुणइ सो 'दाणमाईणि ॥१५७॥

(पू०) व्याख्या--यथेति दृष्टान्तार्थः । यथा 'राजा' नरपतिः 'इह' अस्मिँल्लोके 'भाण्डा-रिकेण' स्वनियोगिकेन 'घिनीतेन' स्वायत्तेन 'करोति' विधत्ते दानमादौ येषां तानि दाना-दीनि, आदिशब्दाद्भोगोपभोगपरिग्रहः 'तेन तु प्रतिकूलेन' तेन पुनर्विबन्धकेन निषेधकेन 'न करोम्येव' न वितरत्येव 'स' राजा दानादि तु, आदिशब्दाद्भोगोपभोगादिपरिग्रहः । तुशब्दस्यै-वकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१५७॥

१ "गुत्तिं" इत्यपि पाठः । २ "अंतराइयं भणियो" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्या-नम् । ३ "दाणाई" इत्यपि पाठः । ४ "दाणमाई उ" इति व्याख्यातारः ।

अभिहितो दृष्टान्तः, अधुना दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथा राजा 'इह' लोके भाण्डागारिकेण विनीतेन दानादीनि करोति । तेन तु प्रतिकूलेन कुतोऽपि वैगुण्यादविधेयेन न करोति स राजा दानादीनि । इति गाथार्थः ॥१५७॥

जह राया तह जीवो, भंडारी जह 'तहंतराय' च ।

तेण उ विबंधणं. न कुणह सो 'दाणमाईणि ॥१५८॥

(पू०) व्याख्या—यथा राजा तथा जीवः तत्तुल्यो भाण्डारिको यथा तथाऽन्तरायिकं कर्म भवति भाण्डागारिकसदृशं जायते । अयमत्र भावार्थः—यदा तदन्तरायं क्षयोपशमादनुकूलं भवति जीवस्य तदाऽसौ दानादीनि करोति । 'तेन तु' पुनरन्तरायकर्मणा 'विषन्धकेन' प्रतिकूलेन न करोति स जीवो दानभोगादि आदिशब्दादुपभोगादिपरिग्रहः । इति गाथार्थः ॥१५८॥

तदेवान्तरायं संख्याभेदेन दर्शयति—

(पारमा०) यथा राजा तथा जीवः, यथा भाण्डागारिकस्तथाऽन्तरायं पुनः । 'तेन' त्वन्तरायेण 'विषन्धकेन' प्रतिकूलेन न करोति स जीवो दानादीनि । इति गाथार्थः ॥१५८॥

सम्प्रति पञ्चप्रकारत्वमाह—

तं दाणलाभभोगो—वभोगविरियंतराय 'पंचमय' ।

एएसिं तु विवागं 'वोच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥१५९॥

(पू०) व्याख्या—तद् दानं च लाभश्च भोगश्च उपभोगश्च वीर्यं चेति द्वन्द्वः, एतेषामन्तरायं विभ्रः लुप्तानुस्वारमन्तरायपदं प्राकृतत्वात्, 'पञ्चमयं' पञ्चभेदः । दानं त्रिविधम्, ज्ञानदानम्, अमयदानम्, धर्मोपग्रहदानम् । लाभोऽनेकप्रकारः, दायकादादेयप्राप्तिः । भुज्यत इति भोग आहारपुष्पादिः, उप सामीप्येन पुनः पुनर्वा भुज्यते उपभोगः । वीर्यमान्तरः शक्तिविशेषः । अन्तरायशब्दो विघातकः, स च प्रत्येकं संबध्यते । एतेषां पुनः 'विपाकं' अनुभवं 'वोच्छामि' वक्ष्ये 'यथाऽऽनुपूर्व्या' यथापरिपाठ्या । इति गाथार्थः ॥१५९॥

दानान्तरायस्य विषयमाह—

(पारमा०) 'तत्' अन्तरायं दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायाः पञ्च प्रकृता अस्मिन् दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायपञ्चमयम् । एतेषां तु दानादीनां विपाकं भणामि 'यथानुपूर्व्या' आनुपूर्व्यनतिक्रमेण । इति गाथार्थः ॥१५९॥

१ व्याख्याकारेण तु "तहंतराईयं" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ "तु" इत्यपि पाठः । ३ व्याख्याकारेण तु "दाणभोगाई" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । ४ "पंचविहं" इत्यपि पाठः । ५ "वुच्छाणि" इत्यपि पाठः, "भणामि य" इति पाठानुसारेण परमानन्दसूरीभिर्व्याख्यातम् ॥

तत्र दानान्तरायमाह—

सह फासुर्यमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई विउलं ।  
बंभञ्चेराइजुयं, पत्तापि य विज्जए 'तत्थ ॥१६०॥

(पू०) व्याख्या—'सति' विद्यमाने 'प्राप्तुके' निर्जीवे 'दाने' देयवस्तुनि, तथा न केवलं देयमस्ति, दानस्य यत् फलं स्वर्गापवर्गलक्षणं, तच्च बुध्यते 'अतुलं' अनन्यसाधारणं, न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादियुक्तम्, आदिशब्दादिर्हिसादिपरिग्रहः । पात्रमपि च देययोग्यं साधुरूपमपि च 'विद्यते' अस्ति 'अत्र' लोके दानप्रस्तावे । इति गाथार्थः ॥१६०॥

उक्तं दानकारणम्, सत्यपि तस्मिन् दानान्तरायमाह—

(पारमा०) 'सति' विद्यमाने 'प्राप्तुके' यतिजनग्रहणोचिते 'दाने' देयवस्तुनि न केवलं देयमस्ति । तथा दानफलं च 'अतुल्यं' असाधारणं स्वर्गापवर्गादि 'बुध्यते' जानाति दान-सामग्रीपतितो जीव इति गम्यम् । न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादीति ब्रह्मचर्यज्ञानतपोयुक्तं पात्रमपि च विद्यते तत्रेति दानप्रस्तावे ॥१६०॥

दाउं नवरि न सक्कइ, दाणविघायस्स 'कम्मणो उदए ।  
दाणंतरायमेयं, लाभेवि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

(पू०) व्याख्या—दानसामग्र्यां सत्यामपि 'दातु' प्रयच्छयितुं (वितरीतुं) 'नघरं' केवलं 'न शक्नोति' न शक्तो भवति, क सति ? इत्याह—'दानविघातस्य कर्मण उदये' वितरण-विघ्नकरस्य कर्मणो विपाके दानान्तरायं 'एतत्' कर्म । यदस्मिन् सति दानसामग्रीसङ्गावेऽपि दानं न करोति । दानान्तरायमिदं प्रत्यक्षोक्तं । लाभेऽपि च, न केवलं दाने 'भण्यते' प्रति-पाद्यते 'विघ्न' अन्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६१॥

तदेवाह—

(पारमा०) केवलमेवंविधायामपि सामग्र्यां 'दानविघातस्य' दानविघ्नकरस्य कर्मण उदयादातुं न शक्नोति, एतदान्तरायम् । लाभान्तरायं प्रस्तौति—लाभेऽपि च भण्यते 'विघ्न' अन्तरायम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१६१॥

प्रतिज्ञातमाह—

जइवि पसिद्धो दाया, जायणनिउणोवि जायगो 'जइवि ।

'न लइइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

(पू०) व्याख्या—यद्यपि प्रसिद्धो भवति दाता, सर्वजनदायकत्वेन प्रसिद्धिं गतः, एकः कश्चि-  
त्कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न स न प्रसिद्धः । यस्तु सार्वजनिकः स प्रसिद्धो भवति दाता । यद्यपि  
दाता प्रसिद्धो भवति तथाऽपि याचको न निपुणः ततो दानं न प्रवर्तते इत्याह—याचना=मार्गणा  
तत्र निपुणो विज्ञानवान्, तथा 'याचते यथाऽदातापि ददाति, किं पुनर्दाता ? । याचको 'यद्य-  
प्येवंभूतस्तथाऽपि नापि(?) 'नैष लाभते' न प्राप्नोति दातुः सकाशात्, 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन'  
विपाकेनैतत्पुनः 'लाभविघ्नं तु' लाभान्तरायमेव । ननु तद्दानान्तरायमेव किमितिकृत्वा दातु-  
र्नोच्यते, यावद्दामान्तरायमुच्यते 'याचितुः ? उच्यते—स्यादिदं वचो दानान्तरायमेव तन्न  
लाभान्तरायम् । यदि दाता यथा तस्य विवक्षितस्य न ददाति तथाऽन्यस्यापि यदि न कस्य-  
चिद्दद्यात्तदा त्वदुक्तमेव स्यात् । यावता त्वसौ विवक्षितस्यैव न ददाति, अन्यस्य तु पुनः  
सर्वस्यापि ददाति तस्माल्लामान्तरायमेव तत्, न दानान्तरायं दायकविषयं हि तद् ग्राहकविषयं  
तु, लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

उक्तं लाभान्तरायम् । अधुना भोगोपभोगसाधनसत्तायामप्युपभोगमोगयोर्विघ्नमाह—

(पारमा०) यद्यपि प्रसिद्धो दाता सर्वजनदायकत्वेन । यः किल कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न  
तस्मान्न निश्चयेन लाभः संभवतीति प्रसिद्धोपादानम् । एवंविधेऽपि दातरि अकालमार्गणउच्छृ-  
ङ्खलमापणादियाचकवैगुण्यादपि न दानसंभव इत्याह—याचननिपुणश्च याचको यद्यपि प्रसादपरं  
ज्ञात्वा प्रहादयन् तथा याचते यथाऽदाताऽपि ददाति, किं पुनर्दाता ? । तथाऽपि न लाभते  
'यस्य' कर्मण उदयेन, एतत्पुनर्लाभविघ्नं लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

अथ भोगोपभोगयोर्विघ्नमाह—

मणुयत्तेवि 'हु पत्ते, 'लद्धेवि हु भोगसाहणे विभवे ।

भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणोवि जस्सुदए ॥१६३॥

(पू०) व्याख्या—मनुष्यत्वं पुरुषत्वं प्रधानं भोगोपभोगकरणं विफलादिमतौ तदयोग्यत्वात्  
तस्मात्तत्राप्तिरेव दुर्लभा, अतो दुर्लभे मनुजत्वे प्राप्तेऽपि तथा मनुजत्वे सत्यपि प्रधानं भोग-  
कारणं विभवः, तदभावे तेषां भोक्तुमक्षक्यत्वात्परिभोक्तुम् (?), अत आह—'लद्धेऽपि च'

१ "जयवि" (?) इत्यपि पाठः । २ "न वि लद्धेइ जस्सुदए" इत्यपि पाठः । ३ याचयति (?) जे० ।  
४ यदा-ऽपि (?) जे० । ५ याचयितुः (?) जे० । ६ "य" इत्यपि पाठः । ७ "लद्धेवि य भोगसाहणे विभवे ।  
त्रयमुज्जितं न मयः" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति । ८ त्वात्, अत जे० ।

तत्र दानान्तरायमाह—

सह फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई विउलं ।  
बंभञ्चेराइजुयं, पत्तंपि य विज्जए तत्थ ॥१६०॥

(पू०) व्याख्या—‘सति’ विद्यमाने ‘प्राप्तुके’ निर्जीवे ‘दाने’ देयवस्तुनि, तथा न केवलं देयमस्ति, दानस्य यत् फलं स्वर्गापवर्गलक्षणं, तच्च बुध्यते ‘अतुलं’ अनन्यसाधारणं, न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादियुक्तम्, आदिशब्दादहिंसादिपरिग्रहः । पात्रमपि च देययोग्यं साधुरूपमपि च ‘विद्यते’ अस्ति ‘अत्र’ लोके दानप्रस्तावे । इति गाथार्थः ॥१६०॥

उक्तं दानकारणम्, सत्यपि तस्मिन् दानान्तरायमाह—

(पारमा०) ‘सति’ विद्यमाने ‘प्राप्तुके’ यतिजनग्रहणोचिते ‘दाने’ देयवस्तुनि न केवलं देयमस्ति । तथा दानफलं च ‘अतुल्यं’ असाधारणं स्वर्गापवर्गादि ‘बुध्यते’ जानाति दानसामग्रीपतितो जीव इति गम्यम् । न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादीति ब्रह्मचर्यज्ञानतपोयुक्तं पात्रमपि च विद्यते तत्रेति दानप्रस्तावे ॥१६०॥

दाउं नवरि न सक्हइ, दाणविधायस्स कम्मणो उदए ।  
दाणंतरायमेयं, लाभेवि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

(पू०) व्याख्या—दानसामग्र्यां सत्यामपि ‘दातु’ प्रयच्छयितुं (वितरीतुं) ‘नवरं’ केवलं ‘न शक्नोति’ न शक्तो भवति, क्व सति ? इत्याह—‘दानविधातस्य कर्मण उदये’ वितरणविघ्नकरस्य कर्मणो विपाके दानान्तरायं ‘एतत्’ कर्म । यदस्मिन् सति दानसामग्रीसद्भावेऽपि दानं न करोति । दानान्तरायमिदं प्रत्यक्षोक्तं । लाभेऽपि च, न केवलं दाने ‘भण्यते’ प्रतिपाद्यते ‘विघ्न’ अन्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६१॥

तदेवाह—

(पारमा०) केवलमेवंविधायामपि सामग्र्यां ‘दानविधातस्य’ दानविघ्नकरस्य कर्मण उदयादातुं न शक्नोति, एतदानान्तरायम् । लाभान्तरायं प्रस्तौति—लाभेऽपि च भण्यते ‘विघ्न’ अन्तरायम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१६१॥

प्रतिज्ञातमाह—

जइवि प्रसिद्धो दाया, जायणनिउणोवि जायगो 'जइवि ।

'न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

(पू०) व्याख्या—यद्यपि प्रसिद्धो भवति दाता, सर्वजनदायकत्वेन प्रसिद्धिं गतः, एकः कश्चि-  
त्कस्यचिद्दाति कस्यचिन्न स न प्रसिद्धः । यस्तु सार्वजनिकः स प्रसिद्धो भवति दाता । यद्यपि  
दाता प्रसिद्धो भवति तथाऽपि याचको न निपुणः ततो दानं न प्रवर्तते इत्याह—याचना=मार्गणा  
तत्र निपुणो विज्ञानवान्, तथा 'याचते यथाऽदातापि ददाति, किं पुनर्दाता ? । याचको 'यद्य-  
प्येवंभूतस्तथाऽपि नापि(?) 'नैष लभते' न प्राप्नोति दातुः सकाशात्, 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन'  
विपाकेनैतत्पुनः 'लाभविघ्नं तु' लाभान्तरायमेव । ननु तद्दानान्तरायमेव किमितिकृत्वा दातु-  
र्नोच्यते, यावद्भ्रामान्तरायमुच्यते 'याचितुः ? उच्यते—स्यादिदं वचो दानान्तरायमेव तन्न  
लाभान्तरायम् । यदि दाता यथा तस्य विवक्षितस्य न ददाति तथाऽन्यस्यापि यदि न कस्य-  
चिद्दद्यात्तदा त्वदुक्तमेव स्यात् । यावता त्वसौ विवक्षितस्यैव न ददाति, अन्यस्य तु पुनः  
सर्वस्यापि ददाति तस्माल्लभान्तरायमेव तत्, न दानान्तरायं दायकविषयं हि तद् ग्राहकविषयं  
तु, लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

उक्तं लाभान्तरायम् । अधुना भोगोपभोगसाधनसत्तायामभ्युपभोगभोगयोर्विघ्नमाह—

(पारमा०) यद्यपि प्रसिद्धो दाता सर्वजनदायकत्वेन । यः किल कस्यचिद्दाति कस्यचिन्न  
तस्मान्न निश्चयेन लाभः संभवतीति प्रसिद्धोपादानम् । एवंविधेऽपि दातरि अकालमार्गणउच्छृ-  
ङ्खलभाषणादियाचकत्रैगुण्यादपि न दानसंभव इत्याह—याचननिपुणश्च याचको यद्यपि प्रसादपरं  
ज्ञात्वा प्रह्लादयन् तथा याचते यथाऽदाताऽपि ददाति, किं पुनर्दाता ? । तथाऽपि न लभते  
'यस्य' कर्मण उदयेन, एतत्पुनर्लाभविघ्नं लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

अथ भोगोपभोगयोर्विघ्नमाह—

मणुयत्तोवि 'हु पत्ते, 'लद्धे'वि हु भोगसाहणे विभवे ।

भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणोवि जस्सुदए ॥१६३॥

(पू०) व्याख्या—मनुष्यत्वं पुरुषत्वं प्रधानं भोगोपभोगकरणं विकलादिगतौ तदयोग्यत्वाद्  
तस्मात्तत्राप्तिरेव दुर्लभा, अतो दुर्लभे मनुजत्वे प्राप्तेऽपि तथा मनुजत्वे सत्यपि प्रधानं भोग-  
कारणं विभवः, तदभावे तेषां भोक्तुमशक्यत्वात्परिभोक्तुम् (?), अत आह—'लद्धेऽपि च'

१ "जयवि" (?) इत्यपि पाठः । २ "न वि लम्मइ जस्सुदए" इत्यपि पाठः । ३ याचयति (?) जे० ।  
४ यदाऽपि (?) जे० । ५ याचयितुः (?) जे० । ६ "य" इत्यपि पाठः । ७ "लद्धेवि य भोगसाहणे विभवे ।  
उयमुजिडं न मफड" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति । न त्वात्, अत जे० ।

तत्र दानान्तरायमाह—

सह फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई विउलं ।

बंभञ्चेराइजुयं, पत्तंपि य विज्जए 'तत्थ ॥१६०॥

(पू०) व्याख्या—'सति' विद्यमाने 'प्राप्तुके' निर्जीवे 'दाने' देयवस्तुनि, तथा न केवलं देयमस्ति, दानस्य यत् फलं स्वर्गापवर्गलक्षणं, तच्च बुध्यते 'अतुलं' अनन्यसाधारणं, न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादियुक्तम्, आदिशब्दादहिंसादिपरिग्रहः । पात्रमपि च देययोग्यं साधुरूपमपि च 'विद्यते' अस्ति 'अत्र' लोके दानप्रस्तावे । इति गाथार्थः ॥१६०॥

उक्तं दानकारणम्, सत्यपि तस्मिन् दानान्तरायमाह—

(पारमा०) 'सति' विद्यमाने 'प्राप्तुके' यतिजनग्रहणोचिते 'दाने' देयवस्तुनि न केवलं देयमस्ति । तथा दानफलं च 'अतुल्यं' असाधारणं स्वर्गापवर्गादि 'बुध्यते' जानाति दानसामग्रीपतितो जीव इति गम्यम् । न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादीति ब्रह्मचर्यज्ञानतपोयुक्तं पात्रमपि च विद्यते तत्रेति दानप्रस्तावे ॥१६०॥

दाउं नवरि न सक्कइ, दाणविघायस्स 'कम्मणो उदए ।

दाणंतरायमेयं, लाभेवि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

(पू०) व्याख्या—दानसामग्र्यां सत्यामपि 'दातु' प्रयच्छयितुं (वितरीतुं) 'नवरं' केवलं 'न शक्नोति' न शक्तो भवति, क्व सति ? इत्याह—'दानविघातस्य कर्मण उदये' वितरणविघ्नकरस्य कर्मणो विपाके दानान्तरायं 'एतत्' कर्म । यदस्मिन् सति दानसामग्रीसङ्गावेऽपि दानं न करोति । दानान्तरायमिदं प्रत्यक्षोक्तं । लाभेऽपि च, न केवलं दाने 'भण्यते' प्रतिपाद्यते 'विघ्न' अन्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६१॥

तदेवाह—

(पारमा०) केवलमेवंविधायामपि सामग्र्यां 'दानविघातस्य' दानविघ्नकरस्य कर्मण उदयादातुं न शक्नोति, एतदानान्तरायम् । लाभान्तरायं प्रस्तौति—लाभेऽपि च भण्यते 'विघ्न' अन्तरायम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१६१॥

प्रतिज्ञातमाह—



जइवि पसिद्धो दाया, जायणनिउणोवि जायगो 'जइवि ।

'न लइइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

(पू०) व्याख्या—यद्यपि प्रसिद्धो भवति दाता, सर्वजनदायकत्वेन प्रसिद्धिं गतः, एकः कस्य-  
त्कस्यचिद्दाति कस्यचिन्न स न प्रसिद्धः । यस्तु सार्वजनिकः स प्रसिद्धो भवति दाता । यद्यपि  
दाता प्रसिद्धो भवति तथाऽपि याचको न निपुणः ततो दानं न प्रवर्तते इत्याह—याचना=मार्गणा  
तत्र निपुणो विज्ञानवान्, तथा 'याचते यथाऽदातापि ददाति, किं पुनर्दाता ? । याचको 'यद्य-  
प्येवंभूतस्तथाऽपि नापि(?) 'नैष लाभते' न प्राप्नोति दातुः सकाशात्, 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन'  
विपाकेनैतत्पुनः 'लाभविघ्नं तु' लाभान्तरायमेव । ननु तद्दानान्तरायमेव किमितिकृत्वा दातु-  
र्नोच्यते, यावद्दानान्तरायमुच्यते 'याचितुः ? उच्यते—स्यादिदं वचो दानान्तरायमेव तन्न  
लाभान्तरायम् । यदि दाता यथा तस्य विवक्षितस्य न ददाति तथाऽन्यस्यापि यदि न कस्य-  
चिद्दत्तदा त्वदुक्तमेव स्यात् । यावता त्वसौ विवक्षितस्यैव न ददाति, अन्यस्य तु पुनः  
सर्वस्यापि ददाति तस्मान्नाभान्तरायमेव तत्, न दानान्तरायं दायकविषयं हि तद् ग्राहकविषयं  
तु, लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

उक्तं लाभान्तरायम् । अधुना भोगोपभोगसाधनसत्तायामप्युपभोगभोगयोर्विघ्नमाह—

(पारमा०) यद्यपि प्रसिद्धो दाता सर्वजनदायकत्वेन । यः किल कस्यचिद्दाति कस्यचिन्न  
तस्मान्न निश्चयेन लाभः संभवतीति प्रसिद्धोपादानम् । एवंविधेऽपि दातरि अकालमार्गणउच्छृ-  
ङ्खलमापणादियाचकवैगुण्यादपि न दानसंभव इत्याह—याचननिपुणश्च याचको यद्यपि प्रसादपरं  
ज्ञात्वा प्रह्लादयन् तथा याचते यथाऽदाताऽपि ददाति, किं पुनर्दाता ? । तथाऽपि न लभते  
'यस्य' कर्मण उदयेन, एतत्पुनर्लाभविघ्नं लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

अथ भोगोपभोगयोर्विघ्नमाह—

मणुयत्तोवि 'हु पत्तो, 'लइइ' वि हु भोगसाहणे विभवे ।

भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणोवि जस्सुदए ॥१६३॥

(पू०) व्याख्या—मनुष्यत्वं पुरुषत्वं प्रधानं भोगोपभोगकर्तृत्वं विकलादिगतौ तदयोग्यत्वात्  
तस्मात्तत्राप्तिरेव दुर्लभा, अतो दुर्लभे मनुजत्वे प्राप्तेऽपि तथा मनुजत्वे सत्यपि प्रधानं भोग-  
कारणं विभवः, तदभावे तेषां भोक्तुमशक्यत्वात्परिभोक्तुम् (?), अत आह—'लइइ' वि 'व'

१ "जयवि" (?) इत्यपि पाठः । २ "न वि लभइ जस्सुदए" इत्यपि पाठः । ३ याचयति (?) जे० ।  
४ यथाऽपि (?) जे० । ५ याचितुः (?) जे० । ६ "य" इत्यपि पाठः । ७ "लइइ' वि य भोगसाहणे विभवे ।  
उयमुजिं न सफइ" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति । ८ त्वात्, अत जे० ।

तत्र दानान्तरायमाह—

सह फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई विउलं ।  
बंभञ्चेराइजुयं, पत्तंपि य विज्जए 'तत्थ ॥१६०॥

(पू०) व्याख्या—'सति' विद्यमाने 'प्राप्तुकै' निर्जीवे 'दाने' देयवस्तुनि, तथा न केवलं देयमस्ति, दानस्य यत् फलं स्वर्गापवर्गलक्षणं, तच्च बुध्यते 'अतुलं' अनन्यसाधारणं, न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादियुक्तम्, आदिशब्दादहिंसादिपरिग्रहः । पात्रमपि च देययोग्यं साधुरूपमपि च 'विद्यते' अस्ति 'अत्र' लोके दानप्रस्तावे । इति गाथार्थः ॥१६०॥

उक्तं दानकारणम्, सत्यपि तस्मिन् दानान्तरायमाह—

(पारमा०) 'सति' विद्यमाने 'प्राप्तुकै' यतिजनग्रहणोचिते 'दाने' देयवस्तुनि न केवलं देयमस्ति । तथा दानफलं च 'अतुल्यं' असाधारणं स्वर्गापवर्गादि 'बुध्यते' जानाति दान-सामग्रीपतितो जीव इति गम्यम् । न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादीति ब्रह्मचर्यज्ञानतपोयुक्तं पात्रमपि च विद्यते तत्रेति दानप्रस्तावे ॥१६०॥

दाउं नवरि न सकइ, दाणविघायस्स 'कम्मणो उदए ।  
दाणंतरायमेयं, लाभेवि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

(पू०) व्याख्या—दानसामग्र्यां सत्यामपि 'दातु' प्रयच्छयितुं (वितरीतुं) 'नवरं' केवलं 'न शक्नोति' न शक्तो भवति, क्व सति ? इत्याह—'दानविघातस्य कर्मण उदये' वितरण-विघ्नकरस्य कर्मणो विपाके दानान्तरायं 'एतत्' कर्म । यदस्मिन् सति दानसामग्रीसद्भावेऽपि दानं न करोति । दानान्तरायमिदं प्रत्यक्षोक्तं । लाभेऽपि च, न केवलं दाने 'भण्यते' प्रति-पाद्यते 'विघ्न' अन्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६१॥

तदेवाह—

(पारमा०) केवलमेवंविधायामपि सामग्र्यां 'दानविघातस्य' दानविघ्नकरस्य कर्मण उदयादातुं न शक्नोति, एतदानान्तरायम् । लाभान्तरायं प्रस्तौति—लाभेऽपि च भण्यते 'विघ्न' अन्तरायम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१६१॥

प्रतिज्ञातमाह—

जइवि प्रसिद्धो दाया, जायणनिउणोवि जायगो 'जइवि ।

'न लइइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

(पू०) व्याख्या—यद्यपि प्रसिद्धो भवति दाता, सर्वजनदायकत्वेन प्रसिद्धिं गतः, एकः कश्चि-  
त्कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न स न प्रसिद्धः । यस्तु सार्वजनिकः स प्रसिद्धो भवति दाता । यद्यपि  
दाता प्रसिद्धो भवति तथाऽपि याचको न निपुणः ततो दानं न प्रवर्तते इत्याह—याचना=मार्गणा  
त्त्र निपुणो विज्ञानवान्, तथा 'याचते यथाऽदातापि ददाति, किं पुनर्दाता ? । याचको 'यद्य-  
प्येवंभूतस्तथाऽपि नापि(१)'नैष लभते' न प्राप्नोति दातुः सकाशात्, 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन'  
विपाकेनैतत्पुनः 'लाभविघ्नं तु' लाभान्तरायमेव । ननु तद्दानान्तरायमेव किमितिकृत्वा दातु-  
र्नोच्यते, यावद्दानान्तरायमुच्यते 'याचितुः ? उच्यते—स्यादिदं वचो दानान्तरायमेव तन्न  
लाभान्तरायम् । यदि दाता यथा तस्य विवक्षितस्य न ददाति तथाऽन्यस्यापि यदि न कस्य-  
चिद्दद्यात्तदा त्वदुक्तमेव स्यात् । यावता त्वसौ विवक्षितस्यैव न ददाति, अन्यस्य तु पुनः  
सर्वस्यापि ददाति तस्मान्नाभान्तरायमेव तत्, न दानान्तरायं दायकविषयं हि तद् ग्राहकविषयं  
तु, लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

उक्तं लाभान्तरायम् । अत्राना भोगोपभोगसाधनसत्तायामध्युपभोगभोगयोर्विघ्नमाह—

(पारमा०) यद्यपि प्रसिद्धो दाता सर्वजनदायकत्वेन । यः किल कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न  
तस्मान्न निश्चयेन लाभः संभवतीति प्रसिद्धोपादानम् । एवंविधेऽपि दातरि अकालमार्गणउच्छृ-  
ङ्खलभाषणादियाचकवैगुण्यादपि न दानसंभव इत्याह—याचननिपुणश्च याचको यद्यपि प्रसादपरं  
ज्ञात्वा प्रह्लादयन् तथा याचते यथाऽदाताऽपि ददाति, किं पुनर्दाता ? । तथाऽपि न लभते  
'यस्य' कर्मण उदयेन, एतत्पुनर्लाभविघ्नं लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

अथ भोगोपभोगयोर्विघ्नमाह—

मणुयत्तेवि 'हु पत्ते, 'लइइवि हु भोगसाहणे विभवे ।

भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणोवि जस्सुदए ॥१६३॥

(पू०) व्याख्या—मनुष्यत्वं पुरुषत्वं प्रधानं भोगोपभोगकरणं विकलादिगतौ तदयोग्यत्वात्  
तस्मात्तत्राप्तिरेव दुर्लभा, अतो दुर्लभे मनुजत्वे प्राप्तेऽपि तथा मनुजत्वे सत्यपि प्रधानं भोग-  
कारणं विभवः, तदभावे तेषां भोक्तुमशक्यत्वात्परिभोक्तुम् (१), अत आह—'लइइविहूणो'  
विभवे ।

१ "जयवि" (१) इत्यपि पाठः । २ "न वि लभइ जस्सुदए" इत्यपि पाठः । ३ याचयति (?) जे० ।  
४ यदा-ऽपि (?) जे० । ५ याचयितुः (?) जे० । ६ "य" इत्यपि पाठः । ७ "लइइवि य भोगसाहणे विभवे ।  
उयमुजिउं न सक्कइ" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति । ८ त्वात्, अत जे० ।

प्राप्तेऽपि च 'भोगसाधने' भोगशब्दस्योपलक्षणत्वाद्भोगोपभोगकारणे 'विभवे' धनादौ,  
किम् ? इत्याह—'उपभोक्तु' परिभोक्तु' 'न शक्नोति' न शक्तः, कथंभूतः सन् ? इत्याह—  
'विरतिविहीनोऽपि' विरतिरहितोऽपि 'यस्य' कर्मणः 'उदये' विपाके । इति गाथार्थः ॥१६३॥  
तदेतत् किम् ? इत्याह—

(पारमा०) 'मनुष्यत्वेऽपि' विशिष्टभोगयोग्यताऽसाधारणकारणे प्राप्ते तत्रापि प्रधानं  
भोगसाधनं विभवं इत्युक्तम् 'लब्धेऽपि' प्राप्तंऽपि 'भोगसाधने विभवे' भोजनताम्बूलवि-  
लेपनादिविधिप्रसाधने धने भोक्तु' 'नवरं' केवलं 'यस्य' कर्मणः 'उदये' विपाके 'विरति-  
विहीनोऽपि' भावनावशममुत्थपरिहागमिमन्धिशून्योऽपि कार्पण्याशक्यादिकारणवशात्  
शक्नोति ॥१६३॥

'भोगस्स विग्धमेयं, उवभोगे आवि विग्धमेवेव ।

भोगुवभोगाणेमिं, नवरि विसेसो इमो होइ ॥१६४॥

(पू०) व्याख्या—उप मामीप्येन भुज्यते परिसमन्तात् पुनः पुनर्वा भुज्यत इत्युपभोगस्तस्य  
विभवं एतदुपभोगान्तरायम् । 'भोगोऽप्येवमेव उपभोगोक्तनीत्या, यथोपभोगेऽन्तरायमभिहितं  
तथाऽत्रापि विभवं द्रष्टव्यम् । दृशब्दः पाठपूरणः । ननु सूत्रोक्तं क्रमसुल्लङ्घ्य किमर्थमुपभोगान्तराय-  
व्याख्यातम् ? सूत्रक्रमात्प्रथमं भोगान्तरायं व्याख्यातुं बुध्यते, अत्रोच्यते—उपभोगस्य प्राधान्य-  
ख्यापनार्थं व्यतिक्रमव्याख्यानम् । भोगोपभोगयोः कः प्रतिविशेषः ? इत्युच्यते, 'नवरं' केवलं  
विशेषः 'एषः' वक्ष्यमाणलक्षणः ('भवति' जायते) । इति गाथार्थः ॥१६४॥

भोगोपभोगयोर्विषयव्यवस्था माह—

(पारमा०) भोगविघ्नमेतदिति भोगान्तरायमिदमिति भावः । उपभोगे चापि विघ्नमेवमेवेति  
पूर्ववत् । यदुदयेन मनुष्यत्वेऽपि प्राप्ते ललितललानाद्युपभोग्यतासंबन्धनिबन्धने लब्धेऽप्युभोग-  
साधने अमररमणीरामणीयकहठहरणप्रवीणपण्यतरुणीवशीकरणकार्मणसन्निभे विभवे ब्रह्मचर्या-  
दिविशिष्टपरिणामापरिगतोऽपि कदर्यत्वासामर्थ्यादिकारणवशादुपभोक्तुं न शक्नोति तदुपभोगा-  
न्तरायमिति भावः । भोगोपभोगयोरेतयोः केवलं विशेषः 'एषः' वक्ष्यमाणलक्षणो भवति ।  
इति गाथाद्वयार्थः ॥१६४॥ प्रतिज्ञातमाह—

सइ भुज्जइति भोगो, सो 'पुण आहारपुप्फमा'ईओ ।

उवभोगो 'य पुणो पुण, उवभुज्जइ भवणविलयाई ॥१६५॥

१ "उवभोगविग्धमेयं. भोगेधि हृ एवमेध विग्धं तु" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम-  
स्ति ॥ २ भोगे जे० । ३ "पुणु आहारपुप्फमाईणं" इत्यपि पाठः । ४ "उ" इत्यपि पाठः ।

(पू०) व्याख्या—‘सकृद्’ एकयैव वारया विचक्षितं वस्तु भुज्यते, एकां वा वारां भुज्यत इति भोगः । स पुनः कः ? इत्याह—आहारश्चतुर्विधोऽश्नपानखादिमस्त्रादिमरूपः, पुष्पाण्यादौ यस्याहारादेः स आहारपुष्पादिभोग्यं वस्तुच्यते आदिशब्दाद्विलेपनादिपरिग्रहः । उपभोगस्तु पुनः पुनर्भुज्यते, उप सामीप्येन वा भुज्यते उपभोगः । स च कः ? इत्याह—‘भवनविलाद्यादिः’ भवनं धवलगृहादि, विलयादि कलत्रादि आदिशब्दादाभरणादिपरिग्रहः । इति गाथार्थः ॥१६५॥

अभिहितं भोगोपभोगान्तरायम् । साम्प्रतं वीर्यान्तरायमाह—

(पारमा०) ‘सकृद्’ एकवारं भुज्यत इति भोगः, स पुनराहारपुष्पादिकः । उपभोगश्च पुनः पुनरुपभुज्यते ‘भवनवनितादिकः’ गृहगृहिणीप्रभृतिकः । इति गाथार्थः ॥१६५॥

उक्तं भोगोपभोगयोरन्तरायं सकृत्पौनःपुन्यासेवनलक्षणो विशेषश्च । अधुना वीर्यान्तरायमाह—  
बलवं रोगविउत्तो, वयसंपण्णोवि जस्स उदण्णं ।

विरिण्ण होइ हीणो, वीरियविग्घं तु पञ्चमयं ॥१६६॥

(पू०) व्याख्या—‘बलवान्’ बलसंपन्नः ‘रोगवियुक्तः’ रोगरहितः ‘वयःसंपन्नः’ शरीरावस्थया विशिष्टवयोऽवस्थासंपन्नः, सोऽप्येवंभूतोऽपि ‘यस्य’ कर्मणः ‘उदयेन’ विपाकेन ‘वीर्येण भवति हीनः’ अन्तःप्राणेन जायते रहितः । ‘वीरियविग्घं तु पञ्चमयं’ वीर्यान्तरायमेव पञ्चमकं संख्यया । इति गाथार्थः ॥१६६॥

अन्तरायनिगमनद्वारेण प्रकरणपरिसमाप्तिं प्रदर्शयन् प्रकरणकारः स्वनामाह—

(पारमा०) ‘बलवं’ इति बलवान् उपचितदेह इत्यर्थः । ‘रोगवियुक्तः’ कासश्वासादिरहितः ‘वयःसंपन्नः’ तारुण्यभरपरिगतः । एवंविधोऽपि ‘यस्य’ कर्मण उदयेन ‘वीर्येण’ शक्त्या हीनो भवति । केशोद्धरणकुसुमोष्वादावप्यसमर्थः संपद्यते । तदित्यध्याहारात् तद्वीर्यान्तरायं पञ्चमकं भवति इति गाथार्थः ॥१६६॥

साम्प्रत्यन्तरायनिगमनपूर्वकं प्रकरणकारः प्रकरणपरिसमाप्तिं स्वनाग चाह—

एवं पंच वियप्पं, अट्टमयं अंतराइयं होइ ।

भणिओ कम्मविवागो, समासओ गग्गरिसिणा उ ॥१६७॥

व्याख्या—‘एवं’ उक्तन्यायेन ‘पञ्चविकल्पं’ पञ्चप्रकारं ‘अष्टमकं’ संख्ययान्तरायिकं कर्म ‘भवति’ जायते । तदुक्ते ‘भणितः’ प्रतिपादितः ‘कर्मविपाकः’ कर्मविपाकार्थ्यं प्रकरणं ‘समासतः’ संचेपतः । केन ? इत्याह—‘गर्गसिणा तु’ उत्तमसाधुनैव । इति गाथार्थः ॥१६७॥ ग्रं ॥१६०॥ साम्प्रतं प्रकरणसंख्यामाह—



॥ ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ न्यायाम्भोनिधिः श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिः श्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ कर्मसाहित्यनिष्णातः श्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्वेतपटाचार्यश्रीमद्गोविन्दगणिगुम्फितटीकया समलङ्कृतः

**कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः ।**

~\*~\*~\*~

कर्मबन्धोदयोदीर्या—सत्तावैचित्र्यवेदिनम् ।

कर्मस्तवस्य टीकेयं, नत्वा वीरं विरच्यते ॥१॥

नमिऊण जिणवरिंदे, तिहुयणवरनाणदंसणपईवे ।

बंधुदयसंतजुत्तं, वोच्छामि थयं निसामेह ॥ १ ॥

पूर्वाधेन मङ्गलार्थमिष्टदेवतानमस्कारमाह—मङ्गलं चाविघ्नेन प्रकरणसमाप्त्यर्थम् । पश्चाद्धेन तु प्रयोजनादित्रयमिति गाथासमृदायार्थः, अवयवार्थस्तु नत्वा' प्रणम्य 'जिनवरेन्द्रान्' 'रागादिजयाजिनाः, ते च च्छशस्त्रवीतरागा अपि भवन्ति, अतः केवलप्रतिपत्त्यर्थं वरग्रहणम् । जिनाणां वरा जिनवराः, । ते च सामान्यकेवलिनोऽपि भवन्ति, अतोऽर्हत्प्रतिपत्त्यर्थमिन्द्रग्रहणम् । जिनवराणामिन्द्रा जिनवरेन्द्राः । जिनत्वे केवलित्वे च सति चतुस्त्रिंशद्बुद्ध्यातिशेपरूपपरमैश्वर्यवन्त इत्यर्थः, तान् । तेषां वरशब्दलब्धं केवलित्वं विशेषणान्तरेण विवृणोति—'त्रिभुवनवरज्ञानदर्शनप्रदीपान्' त्रीणि भुवनानि ऊर्द्धवाधस्तिर्यग्लोकरूपाणि, तेषां वराभ्यां केवलरूपतया ज्ञानदर्शनाभ्यां प्रदीपाः प्रकाशकास्तान्, एवंविधान् जिनवरेन्द्राञ्चत्वा ततः स्तवं वक्ष्यामीति संबन्धः । किंविशिष्टं स्तवम् ?, 'बन्धोदयसद्युक्तं' तत्र मिथ्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिरञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्रकवत् निरन्तरं पुद्गलनिचिते लोके कर्मयोग्यवर्गणापुद्गलैरात्मनो बह्वथयःपिण्डवदन्योऽन्यानुगमाभेदात्मकः संबन्धो बन्धः । तेषां च यथा स्वस्थितिबद्धानां कर्मपुद्गलानां करणविशेषकृते स्वाभाविके वा स्थित्यपचये सत्युदयसमयप्राप्तानां विपाकवेदनमुदयः । उदयग्रहणेनोदीरणाऽपि तस्मात्तीया गृह्यते । सा पुनः कर्मपुद्गलानां करणविशेषजनिते स्थित्यपचये सत्युदयावलिंकार्यां प्रवेशनमुदी-

१ "रागारिजया" रागादिधिजया" इति वा पाठः । २ "द्धानिशय" इति वा ।

गता । बन्धसङ्क्रान्त्यां लब्धात्मलाभानां कर्मणां निर्जरणसङ्क्रमणकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सङ्भावः सत्ता । बन्धश्च उदयश्च सत् चेति बन्धोदयसन्ति, सदिति भावप्रधानेन निर्देशेन सत्तोच्यते, तैर्बन्धोदयसद्भिर्युक्तः, तेषां व्यवच्छेदस्येह वर्णनात्, तं स्तवं वक्ष्यामि । स्तवस्त्वयमसाधारण-सद्भूतगुणोत्कीर्त्तरूपत्वात् । स त्विह गुणो बन्धोदयोदीरणासत्क्षयो जिनस्य वेदितव्यः । तथा च नदुद्देशाधिकारे वक्ष्यति “अञ्जयालं पद्यञ्जिसयं, खविय जिणं निव्वुयं वंदे” इति । सत्ताप्रक्षये च बन्धोदयोदीरणा अपि क्षीणा एव भवन्तिः इति पृथक् तत्क्षयो नोक्तः । तत्क्षयोऽपि वा प्रतिगुणस्थानं तद्व्यवच्छेदवचनेन पृथगुक्त एव । निश्मयतेति शिष्यान् बोधयति । यमहं जिनस्य स्तवं वक्ष्ये तं ‘निश्मयत’भृणुत यूयं, तच्छ्रवणस्य तदुक्तभगवद्गुणबहुमान-द्वारेणाशयशुद्ध्या कर्मक्षयहेतुत्वाद्बस्तुस्वरूपावगतिहेतुत्वाच्च । तदवगतिहेतुत्वं च स्तावकवचना-नामपि वस्तुस्वरूपवाचित्वेन प्रामाण्याभ्युपगमात्, तदेवमिह वक्तुरात्माशयविशुद्धिरनन्तरं स्तव-वचनस्य प्रयोजनं शिष्यात्तुग्रहश्च । श्रोतणामपि स्वाशयविशुद्धिरेर्थावगतिश्च । पारम्पर्येण तु स्वाशयविशुद्धेरुचरोचरविशुद्धिफलत्वादुभयैषां परमविशुद्ध्यात्मको निःश्रेयस इति प्रयोजनम् । अभिव्येयं च बन्धादिव्यवच्छेदरूपमहद्गुणनिष्कुरुत्वम् । संबन्धश्च स्तवप्रयोजनयोरुपायोपेयमात्रः । स्तवामिधेययोस्तु वाच्यवाचकभाव इति दर्शितं वेदितव्यम् ॥१॥

कर्मणां च भगवतो न सर्वेषां युगपदेव बन्धादिव्यवच्छेदः, किं तर्हि ?, मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानानि परनपदप्रसादशिवरारोहणसोपानकल्पानि क्रमेणाधिरोहतः क्वचिदेव गुणस्थाने कियत्योऽप्येव कर्मप्रकृतयो बन्धमुदयमुदीरणां सत्तां वा प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ?, तत्र तावद्वन्धं प्रतीत्य क्व कियत्यो व्यवच्छिन्नाः ? इत्येतदाह—

‘मिच्छे सोलस पणुवी—स सासणे अविरए य दस पयडी ।

चउच्छकमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना ॥२॥

अबुना सुखप्रतिपत्त्यर्थं तावद्गुणस्थानानि लेशतो व्याख्याय पञ्चादिमां गार्थां व्याख्या-स्यामः । तानि च गुणस्थानानि चतुर्दशधा, तद्यथा—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १, सासादनसम्य-दृष्टिगुणस्थानम् २, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४, देश-विरतगुणस्थानम् ५, प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७, अपूर्वकरणगुण-स्थानम् ८, अनिष्टचित्तादरसम्परायगुणस्थानम् ९, द्दुस्समम्परायगुणस्थानम् १०, उपशान्त-कपायवीतरागच्छन्नस्यगुणस्थानम् ११, क्षीणकपायवीतरागच्छन्नस्यगुणस्थानम् १२, सयोगि-

१—“र्यापत्तिञ्च ।” इति वा पाठः ॥ २ कर्मस्तवमूलपुस्तकेऽप्येतद्वायाद्वन्धं दृश्यते—‘मिच्छद्विद्दी १ चासायणे २ च तह रान्निच्छद्विद्दी ३ च । अविरयसन्निद्विद्दी ४, विरयाविरय ५ पमत्ते ६ य . १ । तत्तो च अन्नत्ते ७, नियद्वि = अनियद्विवाचरे ८ सुदुमे १० । उवत्तं ११ क्षीणमोहे १२ होइ सनोगी १३ अजोगी १४ य ॥२॥” परं टीकाया अभावेन नादत्तं भूलं ॥



केवलिगुणस्थानम् १३, अयोगिकेवलिगुणस्थानं १४ चेति ।

तत्र गुणाः ज्ञानदर्शनचारित्ररूपा जीवस्वभावविशेषाः, स्थानं पुनरत्र तेषां शुद्धशुद्धि-  
प्रकर्षापकर्षकृतः स्वरूपभेदः, तिष्ठन्त्यस्मिन् गुणा इतिकृत्वा यथाऽध्यवसायस्थानमिति, गुणानां  
स्थानं गुणस्थानम् ॥

मिथ्या विपर्यस्ता दृष्टिरहृत्प्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य भक्षितहृत्पूरपुरूपस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत्  
मिथ्यादृष्टिस्तस्य गुणस्थानं ज्ञानादिगुणानामविशुद्धिप्रकर्षविशुद्धयपकर्षकृतः स्वरूपविशेषो मिथ्या-  
दृष्टिर्गुणस्थानम् १, ननु च दृष्टौ विपर्यस्तार्यां तदाधारत्वाद् गुणानामभाव एव स्यात् तदभावे च  
क्वन्तस्तत्स्वरूपविशेषात्मकं मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानम् इत्यत्रोच्यते—यद्यपि मिथ्यात्वमोहनीयोदयाद्  
दृष्टिविपर्यासस्तथाऽपि नैकान्तेनास्य निर्गुणत्वं, अजीवत्वप्रसङ्गात् । तथा चर्षम्—“सच्चजोघाणं  
पि य णं अक्खरस्स अणंत्त भागो निच्चुग्घाडिओ । जइ पुण सोधि आधरेज्जेज्जा तेणं  
जीवो अजोवत्तं पावेज्जा । सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पहा चंदसूराणं” इत्यस्ति, तस्यापि  
या च यावती च गुणमात्रा दृष्टिविपर्यासेन तु साऽपि विपर्यस्तस्वरूपेवेति । जिनप्रणीतं चैकम-  
प्यक्षरमश्रद्धानो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति । उक्तं च—“सूत्रोक्तस्यैकस्या—प्यरोचनादक्षरस्य  
भवति नरः । मिथ्यादृष्टिः सूत्रं, हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम् ॥१॥” इति १॥

आयं सादयतीति आसादनं, अनन्तानुबन्धिकषायवेदनम्, नैरुक्तो यज्ञबद्दलोपः । सति  
हि तस्मिन्नन्तसुखफलदनिःश्रेयसतरुबीजभूत औपशमिकसम्यक्त्वलाभो जघन्यतः समयेन  
उत्कृष्टतः पद्मिभ्रावलिकाभिः सीदत्यपगच्छति । सहासादनेन वर्तत इति सासादनः । सम्यग-  
विपर्यस्ता दृष्टिर्जिनप्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य स सम्यग्दृष्टिः । सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति  
सासादनसम्यग्दृष्टिः, तस्य गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमिति । एतच्चैवं भवति—  
गम्भीरभवोदधिमध्यविपरिवर्त्ती जन्तुरनाभोगानिर्वर्त्तितेन गिरिसरिदुपलघोलनाकल्पेन यथा-  
प्रवृत्तिकरणेन संपादितान्तः सागरोपमकोटाकोटीस्थितिकस्य मिथ्यात्ववेदनीयस्य कर्मणः स्थिते-  
रन्तर्मुहूर्तमुदयक्षणादुपर्यतिक्रम्यापूर्वकरणानिश्रुत्तिकरणसंज्ञिताभ्यां विशुद्धिविशेषाभ्यामन्तर्मुहूर्त-  
कालप्रमाणमन्तरकरणं करोति । तस्मिन् कृते तस्य कर्मणः स्थितिद्वयं भवति, अन्तरकरणादध-  
स्तनी प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रा, तस्मादेवोपरितनी शेषा द्वितीयस्थितिरिति । स्थापनेयम्—  
त्र प्रथमस्थितौ मिथ्यात्वदलिकवेदनादसौ मिथ्यादृष्टिः । अन्तर्मुहूर्तेन तु तस्याम-  
पगतायामन्तरकरणप्रथमसमय एवौपशमिकं सम्यक्त्वमाप्नोति मिथ्यात्वदलिकवेदनाभावात्,  
यथा हि वनदवानलः पूर्वदग्धेन्धनमूपरं वा देशमवाप्य विध्यायति, तथा मिथ्यात्ववेदनाभिर-  
न्तरकरणमवाप्य विध्यायति । तस्यामान्तर्मुहूर्तिक्रम्यामुपशान्ताद्भार्या परमनिधिलामकल्पायां  
जघन्येन समयशेषायामुत्कर्षेण पडावलिकाशेषार्या कस्यचिदनन्तानुबन्धुदयो भवति । तदुदये

रणा । बन्धसङ्क्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां कर्मणां निर्जरणसङ्क्रमणकृतरवरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता । बन्धश्च उदयश्च सत् चेति बन्धोदयसन्ति, सदिति भावप्रधानेन निर्देशेन सत्तोच्यते, तैर्बन्धोदयसद्भिर्युक्तः, तेषां व्यवच्छेदस्येह वर्णनात्, तं स्तवं वक्ष्यामि । स्तवस्त्वयमसाधारण-सङ्क्रतगुणोत्कीर्त्नरूपत्वात् । स त्विह गुणो बन्धोदयोदीरणासत्क्षयो जिनस्य वेदितव्यः । तथा च सदुद्देशाधिकारे वक्ष्यति “अद्यत्वालं पयस्त्रिसयं, खविय जिणं निच्चुयं वंदे” इति । सत्ताप्रक्षये च बन्धोदयोदीरणा अपि क्षीणा एव भवन्ति; इति पृथक् तत्क्षयो नोक्तः । तत्क्षयोऽपि वा प्रतिगुणस्थानं तद्व्यवच्छेदवचनेन पृथगुक्त एव । निश्चयमतेति शिष्यान् बोधयति । यमहं जिनस्य स्तवं वक्ष्ये तं ‘निश्चयत’ श्रुणुत यूयं, तच्छ्रवणस्य तदुक्तभगवद्गुणबहुमान-द्वारेणाश्रयशुद्ध्या कर्मक्षयहेतुत्वाद्बस्तुस्वरूपावगतिहेतुत्वाच्च । तदवगतिहेतुत्वं च स्तावकवचना-नामपि वस्तुस्वरूपवाचित्वेन प्रामाण्याभ्युपगमात्, तदेवमिह वक्तुरात्माश्रयविशुद्धिरनन्तरं स्तव-वचनस्य प्रयोजनं शिष्यानुग्रहश्च । श्रोतॄणामपि स्वाश्रयविशुद्धिरेर्थावगतिश्च । पारम्पर्येण तु स्वाश्रयविशुद्धेरुत्तरोत्तरविशुद्धिफलत्वाद्बुभयेषां परमविशुद्ध्यात्मको निःश्रेयस इति प्रयोजनम् । अभिधेयं च बन्धादिव्यवच्छेदरूपमर्हद्गुणनिकुरुम्बम् । संबन्धश्च स्तवप्रयोजनयोरुपायोपेयभावः । स्तवामिधेययोस्तु वाच्यवाचकभाव इति दर्शितं वेदितव्यम् ॥१॥

कर्मणां च भगवतो न सर्वेषां युगपदेव बन्धादिव्यवच्छेदः, किं तर्हि ? मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानानि परमपदप्रसादशिखरारोहणसोपानकल्पानि क्रमेणाधिरोहतः क्वचिदेव गुणस्थाने कियत्योऽप्येव कर्मप्रकृतयो बन्धमुदयमुदीरणां सत्तां वा प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ? तत्र तावद्बन्धं प्रतीत्य क्व कियत्यो व्यवच्छिन्नाः ? इत्येतदाह—

‘मिच्छे सोलस पणुवी—स सासणे अविरए य दस पयडी ।  
चउल्लकमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना ॥२॥

अधुना सुखप्रतिपत्त्यर्थं तावद्गुणस्थानानि लेशतो व्याख्याय पञ्चादिमां गार्थां व्याख्या-स्यामः । तानि च गुणस्थानानि चतुर्दशधा, तद्यथा—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १, सासादनसम्य-ग्दृष्टिगुणस्थानम् २, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४, देह-विरतगुणस्थानम् ५, प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७, अपूर्वकरणगुण-स्थानम् ८, अनिष्टचित्वादरसम्परायगुणस्थानम् ९, सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानम् १०, उपशान्त-कपायवीतरागच्छन्नस्थगुणस्थानम् ११, क्षीणकषायवीतरागच्छन्नस्थगुणस्थानम् १२, सयोगि-

१ “—रथापत्तिश्च ।” इति वा पाठः ॥ २ कर्मस्तवमूलपुस्तकेष्वेतद्वाधाद्बन्धं दृश्यते—‘मिच्छद्विद्वी १ सासायणे २ य तह दम्ममिच्छद्विद्वी ३ य । अविरयसम्मद्विद्वी ४, विरयाविरए ५ पमत्ते ६ य । १। तत्तो य अप्पमत्ते ७, नियट्टि ८ अनियट्टिवायरे ९ सुद्धमे १०। उवसंत ११ खीणम्मोहे १२ होइ सजोगी १३ अजोगी १४ य ॥२॥” परं टीकाया अभावेन नाहृतं मूलं ॥

केवलिगुणस्थानम् १३, अयोगिकेवलिगुणस्थानं १४ चेति ।

तत्र गुणाः ज्ञानदर्शनचारित्ररूपा जीवस्वभावविशेषाः, स्थानं पुनरत्र तेषां शुद्धशुद्धि-  
प्रकर्षाधिक्यकृतः स्वरूपभेदः, तिष्ठन्त्यस्मिन् गुणा इतिकृत्वा यथाऽध्यवसायस्थानमिति, गुणानां  
स्थानं गुणस्थानम् ॥

मिथ्या विपर्यस्ता दृष्टिर्हृत्प्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य भक्षितहृत्पूरपुरुषस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत्  
मिथ्यादृष्टिस्तस्य गुणस्थानं ज्ञानादिगुणानामविशुद्धिप्रकर्षविशुद्धयप्रकर्षकृतः स्वरूपविशेषो मिथ्या-  
दृष्टिगुणस्थानम् १, ननु च दृष्टौ विपर्यस्तायां तदाधारत्वाद् गुणानामभाव एव स्यात् तदभावे च  
कुतस्तत्स्वरूपविशेषात्मकं मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानम् इत्यत्रोच्यते—यद्यपि मिथ्यात्वमोहनीयोदयाद्  
दृष्टिविपर्यासस्तथाऽपि नैकान्तेनास्य निर्गुणत्वं, अजीवत्वप्रसङ्गात् । तथा चार्षम्—“सर्वजोषाणं  
पि यं भक्षरस्स भणंतभागो निच्छुग्घाञ्चिओ । जह पुण सोवि भाधरेज्जेज्जा तेणं  
जीषो भजोषत्तां पावेज्जा । सुट्ठुवि मेहससुवए होइ पहा चंदसूराणं” इत्यस्ति, तस्यापि  
या च यावती च गुणमात्रा दृष्टिविपर्यासेन तु साऽपि विपर्यस्तस्वरूपेवेति । जिनप्रणीतं चैकम-  
प्यक्षरमश्रद्धानो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति । उक्तं च—“सूत्रोक्तस्यैकस्याप्यरोचनादक्षरस्य  
भवति नरः । मिथ्यादृष्टिः सूत्रं, हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम् ॥१॥” इति १॥

आयं सादयतीति आसादनं, अनन्तानुबन्धिकषायवेदनम्, नैरुक्तो यश्चन्दलोपः । सति  
हि तस्मिन्नन्तमुत्पलदनिःश्रेयसतरुबीजभूत औपशमिकसम्यक्त्वलामो जघन्यतः समयेन  
उत्कृष्टतः पद्मिरावलिकामिः सीदत्यपगच्छति । सहासादनेन वर्तत इति सासादनः । सम्यग्-  
विपर्यस्ता दृष्टिर्जिनप्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य स सम्यग्दृष्टिः । सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति  
सासादनसम्यग्दृष्टिः, तस्य गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमिति । एतच्चैवं भवति—  
गम्भीरमवोदधिमध्यविपरिवर्त्ती जन्तुरनामोगनिर्वाचितेन गिरिसरिदुपलघोलनाकल्पेन यथा-  
प्रवृत्तिकरणेन संपादितान्तः सागरोपमकोटाकोटीस्थितिकस्य मिथ्यात्ववेदनीयस्य कर्मणः स्थिते-  
रन्तर्मुहूर्तमुदयक्षणादुपर्यतिक्रम्यापूर्वकरणानिष्टचिकरणसंज्ञिताभ्यां विशुद्धिविशेषाभ्यामन्तर्मुहूर्त-  
कालप्रमाणमन्तरकरणं करोति । तस्मिन् कृते तस्य कर्मणः स्थितिद्वयं भवति, अन्तरकरणादध-  
स्तनी प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रा, तस्मादेवोपरितनी शेषा द्वितीयस्थितिरिति । स्थापनेयम्—  
तत्र प्रथमस्थितौ मिथ्यात्वदलिकवेदनादसौ मिथ्यादृष्टिः । अन्तर्मुहूर्तेन तु तस्याम-  
पगतायामन्तरकरणप्रथमसमये एवौपशमिकं सम्यक्त्वमाप्नोति मिथ्यात्वदलिकवेदनाभावात्,  
यथा हि वनदवानलः पूर्वदग्धेन्धनमूपरं वा देशमवाप्य विध्यायति, तथा मिथ्यात्ववेदनाभिर-  
न्तरकरणमवाप्य विध्यायति । तस्यामान्तर्मुहूर्तिक्याप्त्युपशान्ताद्वायां परमनिधिलामकल्पायां  
जघन्येन समयशेषायामुत्कर्षेण पडावलिकाशेषायां कस्यचिदनन्तानुबन्ध्युदयो भवति । तदुदये

चासौ सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने वर्तते, उपशमश्रेणिप्रतिपतितो वा कश्चित्सासादनत्वं याति । तदुत्तरकालमवश्यं मिथ्यात्वोदयादसौ मिथ्यादृष्टिर्भवतीति २ ॥

सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिर्यस्य स सम्यग्मिथ्यादृष्टिः, तस्य गुणस्थानं सम्यग्मिथ्यादृष्टि-  
गुणस्थानम् । वर्णितविधिना लब्धं सम्यक्त्वमौषधविशेषकल्पमासाद्य मदनकोद्रवस्थानीयं दर्शन-  
मोहनीयं अशुद्धं कर्म त्रिधा करोति, अशुद्धं १ अर्द्धविशुद्धं २ विशुद्धं ३ चेति । स्थापना-

अ	अ र्द्ध	वि	त्रयाणां चैतेषां पुञ्जानां मध्ये यदाऽर्द्धविशुद्धः पुञ्ज उदेति तदा तदुदयवशादर्द्धविशुद्धमर्द्धदृष्टतत्त्वश्रद्धानं भवति जीवस्य, तेन तदाऽसौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमन्तर्गृह्यते कालं स्पृशति, तत ऊर्ध्वमवश्यं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा गच्छतीति ३ ॥ तथा विरतिर्विरतं, 'नपुंसके भावे क्तः' तत्पुनः सावद्ययोग- प्रत्याख्यानं, तन्न जानाति नाभ्युपगच्छति न तत्पालनाय यतत इति त्रयाणां पदानामष्टौ भङ्गाः । तज्ज्ञापनाय स्थापना-
	न ना न		तत्र प्रथमेषु चतुर्षु भङ्गेषु मिथ्यादृष्टिरज्ञानित्वाल्लभ्यते ।
	न ना पा		तस्य हि ज्ञानमेव भवतीति सप्तसु भङ्गेषु नास्य विरतमस्ती-
	न ऽ न		चरमभङ्गे तु विरतिरस्तीति ।
	न ऽ पा		
	जा ना न		सम्यग्दृष्टिश्चेत्यविरतसम्यग्दृष्टिः तस्य गुणस्थानमविरत-
	जा ना पा		सम्यग्दृष्टित्वं पुनरौपशमिकसम्यक्त्वे वर्णितान्तरकरणकाल-
	जा ऽ न		मोहपुञ्जकोदयकालसंभवे वा क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे सर्व-
	जा ऽ पा		दर्शनमोहक्षयसंभवे वा क्षायिकसम्यक्त्वे सति भवति, विरतः पुनरप्रत्याख्यानावरणकषायोदय- वशात् भवति । ते ह्यप्यपि प्रत्याख्यानमावृण्वन्तीति नमोऽल्पार्थत्वादप्रत्याख्यानावरणा उच्यन्ते इति ४ ॥

एकव्रतविषयस्थूलसावद्ययोगादौ सर्वव्रतविषयानुमतिवर्जसावद्ययोगान्ते करणत्रययोगत्रय-  
विषयसर्वसावद्ययोगस्य देशे विरतमस्यास्तीति देशविरतः । सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानरूपं तु  
विरतमस्य नास्ति, प्रत्याख्यानावरणकषायोदयात् । सर्वविरतिरूपं हि प्रत्याख्यानमावृण्वन्तीति  
प्रत्याख्यानावरणा उच्यन्ते इति ५ ॥ संयच्छति स्म सम्यगुपरमति स्म यावज्जीवं सर्वसावद्ययो-  
गादिति संयतः । 'कर्त्तरि निष्ठा गत्यर्थाकर्मका' इत्यादिसूत्रेण, प्रमदनं प्रमत्तं प्रमादः,  
स च विकथाकषायमद्यविकटेन्द्रियनिद्रारूपाणां पञ्चानामन्यतमः प्रमत्तमस्यास्तीति अर्शआदि-  
त्वाद् अचः मत्वर्थीयस्योपादानात् प्रमत्तः प्रमादवानित्यर्थः, स चासौ संयतश्चेति प्रमत्तसंयत-  
स्तस्य संबन्धिनां गुणानां स्थानं विशुद्धयविशुद्धिप्रकर्षापकर्षकृतः स्वरूपविशेषः । तथाहि-  
देशविरतगुणादेतद्गुणानां विशुद्धिप्रकर्षोऽशुद्धयपकर्षश्च, अप्रमत्तसंयतगुणापेक्षया तु विपर्यय इति

एवमन्यगुणस्थानेष्वपि गुणस्थानयोजना द्रष्टव्या पूर्वोत्तरापेक्षया विशुद्धयविशुद्धिप्रकर्षार्पकर्म-  
कृतेति ६ ॥

नास्ति प्रमत्तमस्येति अप्रमतो विकथादिप्रमादरहितः । अप्रमत्तश्चामौ संयतश्चेत्यप्रमत्त-  
मंयतस्तस्य गुणस्थानम् ७ ॥

अपूर्वं करणं स्थितिघातरसघातगुणश्रेणिगुणसङ्क्रमस्थितिबन्धानां पञ्चानामर्थानां निर्वर्त-  
नमस्यासावपूर्वकरणः, तथाहि—यावत्प्रमाणमसौ पूर्वगुणस्थानविशुद्धया स्थितिखण्डकं रसखण्डकं  
वा हतवान्, ततो बृहत्तरप्रमाणमपूर्वमस्मिन् गुणस्थाने हन्ति । उपरितनस्थितेर्विशुद्धिवशाद्-  
पवर्तनाकरणेनावतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणमुदयक्षणाद्गुपरि क्षिप्रतरक्षपणाय प्रतिक्षणम-  
संख्येयगुणबृद्धया विरचनं गुणश्रेणिरित्युच्यते । स्थापना । एतां च पूर्वगुणस्थानेष्वविशुद्धतर-  
त्वात् कालतो द्राघीयमीमप्रथीयसीं च दलिकस्याल्पतरस्यापवर्तनाद्विरचितवान् । इह तु विशुद्ध-  
तरत्वादपूर्वा कालतो द्रस्वतरां पृथुतरां च बहुतरदलिकापवर्तनाद्विरचयति । स्थापना । शुभ-  
प्रकृतिष्वशुभप्रकृतिदलिकस्य प्रतिक्षणमसंख्येयगुणबृद्धया विशुद्धिवशाद्भयनं गुणसङ्क्रमः,  
तमिहासावपूर्वं करोति । स्थितिं च कर्मणां द्राघीयसीं प्राग्बद्धवान्, इह तु तामपूर्वां ह्रसीयसीं  
बध्नाति विशुद्धतरत्वादिति । पञ्चाप्यपूर्वाणि करणान्यस्य । स च द्विधा, क्षपक उपक्षमको वा ।  
क्षपणोपक्षमनार्हत्वात्, राज्यार्हकुमारराजवत्, न पुनरसौ क्षपयत्युपक्षमयति वा, तस्य गुण-  
स्थानं अपूर्वकरणगुणस्थानम् । अपूर्वकरणाद्धायाश्चान्तर्मुहूर्तिक्याः प्रथमसमये जघन्यादीन्युत्प-  
ष्टान्तान्यध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राणि । द्वितीयसमये तदन्यान्यधिकत-  
राणि । तृतीयसमये तदन्यान्यधिकतराणि चतुर्थसमये । तदन्यान्यधिकतराणीत्येवं यावद्धरमसमय  
इति । तानि च स्थापनायां विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्तृणन्ति । स्थापना—

७०००००००००
६००००००००
५०००००००
४०००००००
३०००००००
२०००००००
१०००००००
ज० म० उ०

प्रथमसमयजघन्यात्प्रथमसमयोत्कृष्टमनन्तगुणविशुद्धम्, तस्माद् द्वितीयसमय-  
जघन्यमनन्तगुणविशुद्धम्, तस्मात्तदुत्कृष्टमनन्तगुणेन विशुद्धमिति । एवं याव-  
द्द्विचरमसमयोत्कृष्टाधरमसमयजघन्यमनन्तगुणविशुद्धम्, तस्मात्तदुत्कृष्टम-  
नन्तगुणविशुद्धमिति । एकसमयगतानि तु परस्परं षट्स्थानपतितानीति । युग-  
पदेतद्गुणस्थानप्रविष्टानां बहूनां जीवानामन्योऽन्यस्य संबन्धिनोऽध्यवसायस्थानस्यास्ति निवृत्ति-  
रपीति निवृत्तिगुणस्थानमपीदमुच्यते ८ ॥

युगपदेकगुणस्थानं प्रतिपन्नानां बहूनां जीवानामन्योऽन्यस्य संबन्धिनोऽध्यवसायस्थानस्य ध्या-  
वृत्तिरिह निवृत्तिरभिप्रेता, नास्ति तथाविधा निवृत्तिरस्येत्यनिवृत्तिः, अन्येषां यदध्यवसायस्थानमसा-  
वपि तद्वर्तीत्यर्थः, सम्परायः कपायोदयः, समन्तात्परैति पर्यटति संसारमनेनेतिकृत्वा । वादरः स्थूलः  
सम्परायो यस्य स वादरसम्परायः, सूक्ष्मकिङ्कीकृतसम्परायापेक्षया वादरत्वम् । अनिवृत्तिश्चासौ वाद-

रसम्परायश्चेत्यनिवृत्तिवादरसम्परायः । स च द्विविधः, क्षपक उपशमको वा, क्षपयति उपशमयति वा मोहनीयादिकर्मोक्ते कृत्वा । तस्य गुणस्थानं अनिवृत्तिवादरसम्परायगुणस्थानम् । अनिवृत्तिवाद-  
रसम्परायाद्वायामान्तमौहूर्तिक्रियां प्रथमममयादारम्य प्रनिसमयमेकैकमनन्तगुणविशुद्धं यथोत्तरमध्य-  
वमायस्थानम् तेन तत्रैकमयप्रविष्टानामेकमध्यवमायस्थानमनुवर्तते परस्परं न तु निवर्तत इत्य-  
निवृत्तित्वम् १ ॥

सूक्ष्मः सम्परायः किङ्कीकृतलोभकपायोदयरूपो यस्य सोऽयं सूक्ष्मसम्परायः । सोऽपि द्विविधः,  
क्षपकः उपशमको वा । क्षपयत्युपशमयति वा लोभमेकमिति कृत्वा, तस्य गुणस्थानम् १० ॥

छाद्यते केवलज्ञानदर्शनमात्मनोऽनेनेऽति च्छन्नं ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायमोहनीयकर्मो-  
दयः, सति तस्मिन् केवलस्यानुत्पादात्तदपगमानन्तरं चोत्पादाच्छन्नानि तिष्ठतीति च्छन्नस्थः,  
स च सरागोऽपि भवतीत्यतन्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतो विगतो रागो मायालोभ-  
कपायोदयरूपो यस्य स वीतरागः. स चामौ च्छन्नस्थश्च वीतरागच्छन्नस्थः । स च क्षीणकषायो-  
ऽपि भवति, तस्यापि यथोक्तरागापगमादतस्तद्व्यवच्छेदार्थमुपशान्तकषायग्रहणम् । कषच्छेष-  
शिषेत्यादिदण्डकधातुर्हिसार्थः । कषन्ति कष्यन्ते च परस्परमस्मिन् प्राणिन इति कषः  
संसारः । 'पुंसि सज्ञायाम् घः प्रायेण' (पा० ३-३-१८) इति घः प्रायग्रहणात्, अन्यथा  
हि हलन्तत्वात् 'हलश्च' (पा० ३-३-१२१) इति घञ् स्यात् । कषमयन्ते गच्छन्ति एभिर्जन्तव  
इति कषायाः क्रोधादयः । उपशान्ता उपशमिता विद्यमाना एव सङ्क्रमणोद्वर्तनापवर्तनादि-  
करणोदयायोग्यत्वेन व्यवस्थापिताः कषाया येन स उपशान्तकषायः. स चासौ वीतरागच्छन्न-  
स्थश्चेत्युपशान्तकषायवीतरागच्छन्नस्थः तस्य गुणस्थानमिति प्राग्वत् । तत्राविरतसम्यग्दृष्टेः  
प्रमृत्त्यनन्तानुबन्धिनः कषाया उपशान्ताः संभवन्ति । उपशमश्रेण्यारम्भे ह्यनन्तानुबन्धकषाया-  
नविरजो देशविरतः प्रमत्तोऽप्रमत्तो वा सन् उपशमय्य दर्शनमोहत्रितयमुपशमयति । तदुपशमा-  
नन्तरं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानपरिवृत्तिशतानि कृत्वा ततोऽपूर्वकरणगुणस्थानोत्तरकालमनिवृत्ति-  
च.दरसम्परायगुणस्थाने चारित्रमोहनीयस्य प्रथमं नपुंसकवेदमुपशमयति, ततः स्त्रीवेदम्, ततो  
द्वांस्यरत्यरतिशोकमयजुगुप्सारूपं युगपत् षट्कम् ६, ततः पुरुषवेदम्, ततो युगपदप्रत्याख्या-  
नावरणप्रत्याख्या नवरणो क्रोधौ, ततः संज्वलनक्रोधम्, ततो युगपद्वितीयतृतीयौ मानौ ततः  
संज्वलनमानम्, ततो युगपद्वितीयतृतीये माये, ततः संज्वलनमायाम्, ततो युगपद्वितीयतृतीयौ  
लोभौ, ततः सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने संज्वलनलोभमुपशमयतीति । तदेवमन्येष्वपि गुणस्थानेषु  
कापि कियतामपि कषायाणामुपशान्तत्वसंभवात् उपशान्तकषायव्यपदेशः संभवतीत्यतस्तद्व्यव-  
च्छेदार्थमुपशान्तकषायग्रहणे सत्यपि वीतरागग्रहणं कर्तव्यम् । उपशान्तकषायवीतराग इति  
चैतावर्तवेषेतिद्वौ च्छन्नस्थग्रहणं स्वरूपकथनार्थम्, व्यवच्छेद्याभावात् । न च्छन्नस्थ उपशान्त-  
कषायवीतरागः संभवति, यस्य च्छन्नस्थग्रहणेन व्यवच्छेदः स्यात् ११ ॥

क्षीणा अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः । तत्रानन्तानुबन्धिकषायानु प्रथम-  
मविरतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु क्षपयति । दर्शनत्रितयं चैतेषु पूर्वोक्तगुणस्थानेषु क्षप-  
यति । ततः शेषान् संज्वलनलोभवर्जाननिवृत्तिवादरसम्परायगुणस्थाने वक्ष्यमाणेन क्रमेण क्षप-  
यति । संज्वलनलोभं सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान इति । तदेवमन्येष्वपि सरागेषु क्षीणकषायव्यपदेशः  
संभवति कापि कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम् ।  
क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्मस्थग्रहणम् । छद्मस्थग्रहणेऽपि  
च कृते सरागव्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतरागश्चासौ छद्मस्थश्चेति वीतरागच्छद्मस्थः । स  
चोपशान्तकषायोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छ-  
द्मस्थश्च क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थः तस्य गुणस्थानमिति प्राग्वत् १२ ॥

वीर्यान्तरायक्षयक्षयोपशमसमुत्थलन्धिविशेषप्रत्ययमभिसन्ध्यनभिसन्धिपूर्वमात्मनो वीर्यं  
योगः । स द्विधा, सकरणोऽकरणश्च । तत्रालेश्यस्य केवलिनः कृत्स्नयोर्ज्ञेयदृश्ययोरर्थयोः केवलं ज्ञानं  
दर्शनं चोपयुञ्जानस्य योऽसावपरिस्पन्दोऽप्रतिषो वीर्यविशेषः सोऽकरणः, स च नेहाधिक्रियते ।  
यस्तु मनोवाक्कायकरणसाधनसलेश्यजीवकर्तृको जीवप्रदेशपरिस्पन्दात्मको व्यापारः स सकरणस्ते-  
केवलिनो नेहाधिकारः । स च करणमेदात्तिस्रः संज्ञा लभते, तद्यथा-कायिको वाचिको मानसश्चेति ।  
तत्र भगवतोऽभिसन्धिपूर्वस्त्रिविधोऽपि भवति । कायिकश्चक्रमणनिमेषोन्मेषादौ । वाचिको देश-  
नादौ । मानसो मनःपर्यायज्ञानिभिरनुत्तरसुरादिभिर्वा मनसा पृष्टस्य सतो मनसैव देशनायाम्, ते हि  
भगवत्प्रयुक्तानि मनोद्रष्टव्याणि मनःपर्यायज्ञानेनावधिज्ञानेन च पश्यन्ति, ततस्तद्द्वारेण  
पृष्टमर्थमवगच्छन्ति । सह योगेन वर्तत इति सयोगः सयोगीति वा, बहुव्रीहेर्मत्वर्थीय इति यथा  
सर्वधनीत्यादी सर्वधनादेराकृतिगणत्वात्, केवलमेकमसहायमसाधारणमनन्तमपरिशेषं च ।  
तत्रैकं तद्भावे छाद्मस्थिकशेषज्ञानदर्शनाभावात् । 'उक्तं च—'“लप्पन्नंमि अणान्ते, नट्ठमि य  
छाउमत्थिए नाणे” इति । असहायं न तु मतिज्ञानवदिन्द्रियमनःकृतसहायकापेक्षमर्थग्रहणे प्रव-  
र्तते, परनिरपेक्षनिरावरणात्मस्वभावत्वात् । असाधारणमनन्यसदृशं, तदन्यस्यैवंविधज्ञानदर्शना-  
भावात् । अनन्तमपर्यवसानं, पुनस्तत्स्वरूपतिरस्करणकारणघातिकर्माऽत्यन्तक्षयोद्भूतत्वात् द्रव्या-  
द्यनन्तज्ञेयग्रहणात्मकत्वाद्वा अनन्तम् । अपरिशेषं संपूर्णं, संभिन्नापरिशेषद्रव्यक्षेत्रकालमाव-  
लक्षणवस्तुग्रहणस्वरूपत्वात् । तच्च द्विविधं, ज्ञानं दर्शनं चेति । तत्केवलं यस्यास्तीति स केवली,  
सयोगी चासौ केवली चेति सयोगिकेवली तस्य गुणस्थानं तथैव १३ ॥

नास्ति यथोक्तो योगो निरुद्धत्वादस्येत्ययोगः अयोगीति वा पूर्ववदिति । स त्रिविधोऽपि  
योगः प्रत्येकं द्विविधः, सूक्ष्मो वादरश्च । तत्र केवलोत्पत्तेरुत्तरकालं जघन्येनान्तर्भूतं हूर्तमुत्कर्षेण देशो-

नपूर्वकोटीं विहृत्यान्तर्मुहूर्तविशेषायुष्कः सयोगिकेवली प्रथमं वादरकाययोगेन वादरवाङ्मनोयोगौ निरुणद्धि । ततः सूक्ष्मकाययोगेन वादरं काययोगं निरुणद्धि, मति तस्मिन् सूक्ष्मयोगस्य निरोद्धुम-  
शक्यत्वात् । ततश्च सर्ववादरयोगनिरोधानन्तरं सूक्ष्मक्रियमनिवृत्तिशुक्लध्यानं ध्यायन् सूक्ष्मकाययोगे-  
नसूक्ष्मवाङ्मनोयोगौ निरुणद्धि । ततस्तमेव सूक्ष्मकाययोगं स्वात्मनैव निरुणद्धि । तन्निरोधानन्तरं  
समुच्छिन्नक्रियमप्रतिपातिशुक्लध्यानं ध्यायन् ह्रस्वपञ्चाक्षरोच्चारणमात्रं कालं शैलेशीकरणं प्रविष्टो  
भवति शीलस्य योगलेश्याकलङ्कविप्रमुक्तयथाख्यातचारित्रलक्षणस्य य ईशः स शीलेशः, तस्येयं  
शैलेशी । त्रिभागोनस्वदेहावगाहनायामुदरादिरन्ध्रपूरणवशात्सङ्कोचिनस्वप्रदेशस्य शीलेशस्यात्म-  
नोऽत्यन्तं स्थिरावस्थितिरित्यर्थः । तस्यां करणं पूर्वगचितशैलेशीसमयसमानगुणश्रेणीकस्य वेदनीय-  
नामगोत्राख्यस्याघातिकर्मत्रितयस्यासंख्येयगुणया श्रेण्या, आयुःशेषस्य तु यथास्वरूपस्थितया  
श्रेण्या निर्जरणं शैलेशीकरणम्, तच्चासौ प्रविष्टः मन् अयोगी चामौ केवली चैत्ययोगिकेवली  
भवस्थः । स च शैलेशीकरणचरमसमयान्तरसमये छिन्नचतुर्विधकर्मबन्धनत्वाच्छिन्नफलबन्धनै-  
रुद्धबीजवद्गतप्रवृत्तेः, व्यवगतकर्मलेपसङ्कत्वात् । विगतमृल्लेपसङ्गमभीरजलतलत्रच्युं परितलगा-  
म्यलाशुवत् सर्वथा विप्रहाय शरीरत्रयमूर्ध्वमृजुश्रेण्या समयेन गच्छत्यालोकांन्तरम् . न पर-  
तोऽपि, मत्स्यवज्जलकल्पगत्युषष्टम्भकधर्मास्तिकायाभावात् । तत्रासौ सिद्धोऽयोगिकेवली शाश्वतं  
कालमास्ते १४॥ इति व्याख्यातानि लेशतो गुणस्थानकानि ।

गाथाऽधुना विव्रियते—'मिच्छे' इति, भीमसेनो भीम इत्यादिवत्पदवाच्यस्यार्थस्य पदै-  
कदेशेनाप्यभिधानदर्शनान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमित्यर्थः । एवमुत्तरेष्वपि पदवाच्यस्यार्थस्य पदैक-  
देशप्रयोगो द्रष्टव्यः । तत्र षोडशेति बन्धमाश्रित्य कर्मप्रकृतय इति प्रक्रमाद्गम्यते । व्यवच्छिन्ना  
इति वक्ष्यमाणेन संबन्धः । तत्र भावस्तदुत्तरेषु चाभावो व्यवच्छेदार्थः । केवलज्ञानं जम्बूस्वा-  
मिनि यथा, विंशत्युत्तरं च कर्मप्रकृतिशतं बन्धेऽधिक्रियते तच्च दर्शयिष्यामः । तत्र तीर्थकरनाम्न  
आहारकद्वयस्य च मिथ्यादृष्टेर्वन्धो नास्ति, तद्वन्धस्य यथामङ्गलं सम्यक्त्वसंयमप्रत्ययत्वात् ।  
उक्तं च—“सम्मतगुणनिमित्तं, तित्थयरं संजमेण आहारं” इति । शेषस्य सप्तदशोत्त-  
रस्य कर्मप्रकृतिशतस्य मिथ्यादृष्टेर्वन्ध इति । 'पणुघोस सासणे' इति, पञ्चविंशतिः कर्मप्रकृ-  
तयः सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः । इह तु मिथ्यादृष्टिषोडशके सप्त-  
दशोत्तरशतादपनीते शेषस्यैकोत्तरशतस्य बन्धः । तीर्थकरनाम्नस्तु सत्यपि तत्प्रत्यये सम्यक्त्वे  
नास्तीह बन्धः, तस्य हि बन्धारम्भः शुद्धसम्यग्दृष्टेरेव भवति । तत्सत्कर्मा च सासादनत्वं न  
प्राप्नोति । सम्यग्निथ्यादृष्टिगुणस्थाने तु देवमनुष्यायुषोरपि बन्धो नास्ति, आयुर्वन्धाध्यवसा-  
यस्थानविरहात् । अतस्तत्सहितायां सासादनव्यवच्छिन्नपञ्चविंशतावेकोत्तरशतादपनीतायां शेष-



चतुःसप्ततेर्बन्धः 'अविरए य दस पयडो' इति, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने दश प्रकृतयो बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः । पूर्वोक्तायां चतुःसप्ततौ देवमनुष्यायुष्कतीर्थकरनामसु प्रक्षिप्तपु सप्तसप्ततेर्बन्धः । 'षड हृक्कमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना' इति, चतस्रः पट्कं एकं देशे इति देशविरतगुणस्थाने, विरते चेति विरतो द्विविधः, प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च तस्मिन्निति । किमुक्तं भवति ?-देशविरतगुणस्थाने चतस्रः प्रमत्तसंयतगुणस्थाने, पट्कं अप्रमत्तसंयतगुणस्थाने त्वेका कर्मप्रकृतिः क्रमेण यथासंख्यं व्यवच्छिन्नाः । तत्र देशविरतगुणस्थाने दशसु प्रकृतिषु अविरतसम्यग्दृष्टिव्यवच्छिन्नासु सप्तसप्ततेरपनीतासु शेषायाः सप्तषष्टेर्बन्धः । प्रमत्तसंयतगुणस्थाने तु देशविरतव्यवच्छिन्नासु चतसृषु प्रकृतिषु सप्तषष्टेरपनीतासु शेषायास्त्रिषष्टेर्बन्धः । अप्रमत्तसंयतगुणस्थाने तु प्रमत्तसंयतव्यवच्छिन्नासु पट्सु प्रकृतिषु त्रिषष्टेरपनीतासु शेषायां सप्तपञ्चाशति द्वयोरगहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गयोः प्रक्षिप्तयोरेकोनषष्टेर्बन्धः । प्रमत्तसंयतगुणस्थाने तु तत्रान्यथे संयमे सत्यपि नास्त्याहारकद्वयबन्धः, तस्य प्रमादरहितविशिष्टसंयमप्रत्ययत्वात् देवायुपस्तु बन्धे व्यवच्छिन्ने सत्यप्रमत्तसंयतस्याप्यष्टपञ्चाशतो बन्धः ॥२॥

दुगतीसचउरपुव्वे, पंच नियट्टिमि बंधवोच्छेओ ।  
मोलस सुहुमसरागे, साय मजोगी जिणवरिंदे

(टीका) 'दुगतीसचउरपुव्वे' इति, अपूर्वकरणगुणस्थाने त्वन्तसु हूर्तमात्रायास्तदद्वाया

भागसप्तकम् । तत्र प्रथमे सप्तभागे द्विकस्य बन्धव्यवच्छेद इति वक्ष्यमाणेन संबन्धः । षष्ठे सप्तभागे त्रिंशतः, चरमे सप्तभागे चतसृणां प्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदः । तत्र प्रथमे सप्तभागे प्रागुक्ताया अष्टपञ्चाशतो बन्धः । द्वितीयादिभागेषु तु प्रथमभागव्यवच्छिन्नं प्रकृतिद्वयमष्टपञ्चाशतः शोध्यते, शेषायाः षट्पञ्चाशतो बन्धः । सप्तमभागे षष्ठभागव्यवच्छिन्नायां त्रिंशति षट्पञ्चाशतः शोधितायां शेषायाः षड्विंशतेर्बन्धः । 'पंच नियट्टिमि बंधवोच्छेओ' इति, अनिष्टचिवाद्दरमपरायगुणस्थाने पञ्चानां कर्मप्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदः । 'पञ्च' इति, छन्दोवशादार्षत्वाच्च षष्ठ्यर्थे प्रथमा, दृश्यते ह्यपि विभक्तिव्यत्ययः । तद्यथा—'अस्मत्पुंससिपण' इति । अन्यत्रोच्छ्वसितादिति पञ्चम्यर्थे तृतीया । एवं द्विकत्रिंशच्चतुरित्यत्रापि समाहारद्वन्द्वत्वषष्ठ्यर्थे प्रथमा द्रष्टव्या । तामां च पञ्चानां न युगपद्बन्धव्यवच्छेदः, किन्तु क्रमेणानिष्टस्यद्वायाः पञ्चसु भागेषु एकस्याः कर्मप्रकृतेः प्रथमभागे, द्वितीयस्या द्वितीये, तृतीयस्यास्तृतीये, चतुर्थ्याश्चतुर्थे, पञ्चम्याः पञ्चमे भागे बन्धव्यवच्छेद इति । तत्र प्रथमे भागे चतसृषु प्रकृतिष्वपूर्वकरणगुणस्थानसप्तमभागव्यवच्छिन्नासु षड्विंशतेरपनीतासु शेषाया द्वाविंशतेर्बन्धः । द्वितीयभागे प्रथमभागव्यवच्छिन्नामेकामपनीय शेषैकविंशतेर्बन्धः । तृतीये भागे द्वितीयभागव्यवच्छिन्नामेकामपनीय शेषाया विंशते-

बन्धः । चतुर्थभागे तु तृतीयभागव्यवच्छिन्नामेकां मुक्त्वा शेषाया एकात्रविंशतेर्बन्धः । पञ्चम-  
भागे तु चतुर्थभागे व्यवच्छिन्नामेकां मुक्त्वा शेषाणामष्टादशानां बन्धो बोद्धव्यः । 'सोलस  
सुद्धमसरारगे' इति, सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने षोडशेति विभक्तिव्यत्ययात्षोडशानां कर्मप्रकृ-  
तीनां बन्धव्यवच्छेदः । इह चानिष्टिवादरसम्परायपञ्चमभागव्यवच्छिन्नायामेकस्यां कर्मप्रकृता-  
वष्टादशम्योऽपनीतायां शेषाणां सप्तदशानां बन्धः । 'साय सजोगी जिणवरिंदे' इति, सयो-  
गिकेवल्लिगुणस्थाने सातस्यैकस्य बन्धव्यवच्छेदः । जिनवरेन्द्र इति पूर्ववत् । सूक्ष्मसम्पराय-  
व्यवच्छिन्नासु षोडशसु प्रकृतिषु सप्तदशम्योऽपनीतासुपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवल्लिगुण-  
स्थानेषु शेषाया एकस्याः सातवेदनीयकर्मप्रकृतेर्बन्धः । अयोगिकेवली त्वबन्धकः, पुद्गलप्रहणहे-  
तोर्योगस्याभावात् । उक्तं हि—'जोगा पगइपएसं' इति ॥३॥

उक्तो गुणस्थानेषु प्रकृतिबन्धव्यवच्छेदोद्देशः । इदानीं तेष्वेव क्व कियतीनां कर्मप्रकृती-  
नामुदयव्यवच्छेदः ? इत्याह—

पण नव 'इग सत्तरसं, अड पंच य चउर छक छ च्चेव ।

'इग दुग सोलस तीसं, बारस उदए 'अजोगंता ॥४॥

पञ्च १ नव २ एका ३ सप्तदश ४ अष्टौ ५ पञ्च ६ च चतस्रः ७ षट्कं ८ षट् ९ चैव  
एका १० द्विकं ११ षोडश १२ त्रिंशत् १३ द्वादश १४ कर्मप्रकृतयो यथासङ्गं मिथ्या-  
दृष्टिगुणस्थानप्रभृत्ययोग्यन्ता योज्याः । कर्मप्रकृतीनां च द्वाविंशं शतमुदयोदीरणयोरधिक्रियते,  
तच्च दर्शयिष्यामः । तत्र—मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने पञ्चानामुदयव्यवच्छेदः पूर्वोक्त एव व्यवच्छे-  
दार्थः सर्वत्रानुसरणीयः इह सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाहारकक्षरीरतदङ्गोपाङ्गनामतीर्थकरनाम्नां  
पञ्चानां प्रकृतीनामुदयो मिथ्यादृष्टेर्नास्ति । शेषस्य सप्तदशोत्तरस्य शतस्योदयः । सासादन-  
सम्यग्दृष्टिगुणस्थाने नवानामुदयव्यवच्छेदः । सासादनभावस्थस्य नरकेषूत्पादो न संभवतीति  
तदपान्तरालगतिभावी नरकानुपूर्व्या नास्त्युदय इति तत्तहिते मिथ्यादृष्टिव्यवच्छिन्ने पञ्चके  
सप्तदशोत्तरशतादपनीते शेषस्यैकादशोत्तरशतस्योदयः । सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने त्वेकस्याः  
कर्मप्रकृतेरुदयव्यवच्छेदः । सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्विग्रहगतिर्न संभवति, 'न सम्ममिच्छो कुणइ  
कालं' इति वचनात् । अतो विग्रहगतिभावी नास्त्यानुपूर्वीचतुष्कस्योदयः । तत्र नरकानुपूर्वी  
पूर्वा(र्वम)पनीतैव, शेषत्रयसहितं सासादनव्यवच्छिन्नं नवकं द्वादश भवन्ति । तेष्वेकादशोत्तर-  
शतादपनीतेषु शेषा नवनवतिः, तस्यां सम्यग्मिथ्यात्वे प्रक्षिप्ते शतस्योदयः । अविरतसम्यग्दृष्टि-  
गुणस्थाने सप्तदशानां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । सम्यग्मिथ्यादृष्टिव्यवच्छिन्नामेकां प्रकृतिं

१-२ "इति" इत्यपि पाठः ३ "य" इत्यपि पाठः । ४ "शेषायां नवनवती सम्यग्मिथ्यात्वं प्रक्षिप्यते  
ततश्च शतस्योदयः" इत्यपि पाठः ।

शतादपनीय शेषायां नवनवतौ सम्यक्त्वमानुपूर्वीचतुष्कं च प्रक्षिप्यते ततश्चतुरशरशतस्योदयः ।  
 देशविरतगुणस्थाने प्रकृत्यष्टकस्योदयव्यवच्छेदः । अविरतसम्यग्दृष्टिव्यवच्छिन्ने सप्तदशके  
 चतुरशरशतादपनीते शेषायाः सप्ताशीतेरुदयः । प्रमत्तसंयतगुणस्थाने पञ्चानामुदयव्यवच्छेदः ।  
 देशविरतव्यवच्छिन्नमष्टकं सप्ताशीतेरपनीय 'शेषायामेकोनाशीतावाहारकशरीरतदङ्गोपाङ्गनाम्नोः  
 प्रक्षिप्तयोरेकाशीतेरुदयः । अप्रमत्तसंयतगुणस्थाने चतसृणां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । प्रमत्त-  
 संयतव्यवच्छिन्नं पञ्चकमेकाशीतेरपनीयते शेषायाः षट्सप्ततेरुदयः । अपूर्वकरणगुणस्थाने षण्णां  
 प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । अप्रमत्तव्यवच्छिन्ने चतुष्के षट्सप्ततेरपनीते शेषाया द्वासप्ततेरुदयः ।  
 अनिष्टृत्तिबादरसम्परायगुणस्थाने षण्णां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । अपूर्वकरणव्यवच्छिन्ने षट्के  
 द्वासप्ततेरपनीते शेषायाः षट्षष्टेरुदयः । सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने त्वेकस्याः प्रकृतेरुदयव्यवच्छेदः  
 अनिष्टृत्तिबादरसम्परायव्यवच्छिन्ने षट्के षट्षष्टेरपनीते शेषायाः षष्टेरुदयः । उपशान्तमोह-  
 गुणस्थाने द्वयोः प्रकृत्योरुदयव्यवच्छेदः । सूक्ष्मसम्परायव्यवच्छिन्नायामेकस्यां प्रकृतौ षष्टे-  
 रपनीतायामेकोनषष्टेरुदयः । क्षीणमोहगुणस्थाने षोडशानां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । द्वयो-  
 र्द्विचरमसमये चतुर्दशानां तु चरमसमये उपशान्तमोहव्यवच्छिन्नं द्वयमेकोनषष्टेरपनीयते,  
 शेषायाः सप्तपञ्चाशत् उदयः । सयोगिकेवलिगुणस्थाने त्रिंशतः प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । क्षीण-  
 मोहव्यवच्छिन्ने षोडशके सप्तपञ्चाशतोऽपनीते शेषायामेकचत्वारिंशति तीर्थकरनाम्नि प्रक्षिप्ते  
 द्वाचत्वारिंशत् उदयः । भवस्थायोगिकेवलिगुणस्थाने द्वादशानामुदयव्यवच्छेदः । सयोगिकेवलि-  
 व्यवच्छिन्नायां त्रिंशति द्वाचत्वारिंशतः शोधितायां द्वादशानामुदयः । सिद्धकेवली त्ववेदकः ॥४॥

इति प्रकृत्युदयव्यवच्छेदोद्देशः । इदानीमुदीरणव्यवच्छेदोद्देशमाह—

पण नव 'इग सत्तरसं, अट्टट्ट य चउर छक छ च्चेव ।

'इग दुग सोलगुयालं, उदीरणा होइ जोगंता ॥५॥

इहोदयाधिकारमनुसृत्य भावनीयमुदीरणामिलापेन । नवरं विशेष उच्यते—प्रमत्तसंयत-  
 गुणस्थाने प्रकृत्यष्टकस्योदीरणव्यवच्छेदः । उदीरणा त्वेकाशीतेरुदयवत् । अप्रमत्ते चतसृणां  
 प्रकृतीनामुदीरणव्यवच्छेदः । प्रमत्तव्यवच्छिन्नमष्टकमेकाशीतेरपनीयते, शेषायाम्त्रिसप्ततेरुदीरणा ।  
 अपूर्वकरणे षण्णां व्यवच्छेदः । अप्रमत्तव्यवच्छिन्ने चतुष्के त्रिसप्ततेरपनीते शेषाया एकोनसप्तते-

१ "शेषायामेकान्नाशी" इति वा पाठः । एवमत्रेऽपि 'एकोनचत्वारिंशत् एकोनषष्टिः' इत्यादावपि  
 'एकान्नचत्वारिंशत् एकान्नषष्टिः,' इत्यादि "नविंशत्यादिनैकोऽन्वान्त" (सिद्ध० ३-१-६६) इति सूत्रेण  
 तत्पुरुषसमासे एकशब्दस्य 'अद्' इत्यन्तागमे च झेयम् ॥ २ "सूक्ष्मरागव्यव" इति वा पाठः ॥ ३-४ "इगि"  
 इत्यपि पाठः ।

रुदीरणा । अनिवृत्तिवादरसम्पराये षण्णां व्यवच्छेदः । अपूर्वकृष्णव्यवच्छिन्नं षट्कमेकोनसप्त-  
 तेरपनीयते, शेषायास्त्रिषष्टेरुदीरणा । सूक्ष्मसम्पराये त्वेकस्याः प्रकृतेरुदीरणव्यवच्छेदः । अनि-  
 वृत्तिवादरसम्परायव्यवच्छिन्ने षट्के त्रिषष्टेरपनीते शेषायाः सप्तपञ्चाशत् उदीरणा । उपशान्त-  
 मोहे द्वयोरुदीरणव्यवच्छेदः । 'सूक्ष्मरागव्यवच्छिन्नायामेकस्यां सप्तपञ्चाशत् शोधितायां शेषायाः  
 षट्पञ्चाशत् उदीरणा । क्षीणमोहे षोडशानामुदीरणव्यवच्छेदः । उपशान्तमोहव्यवच्छिन्ने द्वये  
 षट्पञ्चाशत् शोधिते शेषायाश्चतुष्पञ्चाशत् उदीरणा । सयोगिकेवलिन्येकोनचत्वारिंशत् उदीरणा-  
 व्यवच्छेदः । क्षीणकृपायव्यवच्छिन्ने षोडशके चतुष्पञ्चाशत् शोधिते शेषायामष्टात्रिंशत् तीर्थ-  
 करनाम्नि प्रक्षिप्तं सत्येकोनचत्वारिंशत् उदीरणा । अयोगिकेवली त्वनुदीरक एव ॥५॥

इति प्रकृत्युदीरणव्यवच्छेदोद्देशः । प्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदोद्देशमाह—

अणमिच्छमीससम्मं, अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।

सुरनरयतिरियआउं, निययभवे मव्वजीवाणं ॥६॥

अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः, मिथ्यात्वं, 'मिथ्र' सम्यग्मिथ्यात्व-  
 मित्यर्थः सम्यक्त्वं इत्येताः सप्त कर्मप्रकृतयोऽविरतसम्यग्दृष्टयाद्यप्रमत्तान्ताः । किमुक्तं भवति १,  
 एताः प्रकृतयोऽविरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतगुणस्थाना<sup>१</sup> नामन्यतमस्मिन् व्यवच्छिन्नसत्ताका  
 भवन्ति । एतां हि सप्त प्रकृतीरेतेषामन्यतमो विशुद्धिवशात् क्षपयतीति । तथा सुरनारकतिर्य-  
 गायूंषि निजकभवे सत्तामधिकृत्य व्यवच्छिन्नानीत्यधिकारान्भव्यते । केषाम् १, इत्याह—सर्व-  
 जीवानां क्षपकजिनत्वं प्राप्स्यतामेव । न त्वन्येषामित्यर्थाद्भव्यते । तथाहि—ये जीवाः सुरनारक-  
 तिर्यञ्चु चरमं तद्भवमनुभूय मनुष्यतयोत्पन्नास्तेषां सुरनारकतिर्यगायूंषि स्वस्वभवे व्यवच्छिन्न-  
 सत्ताकानि जातानि, पुनस्तदनवाप्तेः, नान्येषां पुनस्तत्राप्तेरिति । अष्टचत्वारिंशं च शतं कर्म-  
 प्रकृतीनां सत्तायामधिक्रियते, तच्च दर्शयिष्यामः । तत्र मिथ्यादृष्टेरष्टचत्वारिंशस्यापि शतस्य  
 सत्ता । यदा प्राग्बद्धनारकायुष्कः क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमवाप्य तीर्थकरनाम्नो बन्धमारमते,  
 तदाऽसौ नरकेषुत्पद्यमानः सम्यक्त्वमवश्यं वसतीति मिथ्यादृष्टेस्तीर्थकरनाम्नोऽपि सत्ता  
 संभवति । सासादनसम्यग्मिथ्यादृष्टयोस्तस्मिन्नेव तीर्थकरनामरहिते सप्तचत्वारिंशस्य शतस्य  
 सत्ता । तीर्थकरनामसत्कर्मणो जीवस्य तद्भावानवाप्तेः । तद्बन्धारम्मस्य च शुद्धसम्यक्त्वप्रत्य-  
 यत्वादित्युक्तं प्राक् । अविरतदेशविरत<sup>२</sup> प्रमत्तसंयताप्रमत्तसंयतानामक्षपितदर्शनसप्तकानामष्टचत्वा-  
 रिंशस्य शतस्य सत्ता संभवति । तदितरेषां त्वेकचत्वारिंशस्य शतस्येति । इयं चैतेषु गुणस्थानेषु  
 सामान्यजीवानां संभवमधिकृत्य सत्ता वर्णिता, न त्वधिकृतस्तवस्तुत्यस्य जिनस्यैषा सत्ता

१ "सूक्ष्मसम्परायव्यव०" इति वा पाठः २ "मन्यतरस्मिन्" इत्यपि पाठः । ३ "प्रमत्ताप्रमत्तसंयता-  
 नाम" इति वा पाठः ।

मंभवति, अस्याः सुरनाकतिर्यगायुष्कसंभवापेक्षणीयत्वात्, जिनस्य च तदसंभवात्तरयापि वा प्राग्भवापेक्षया संभवो भाव्यः । इदानीं जिनस्य क्षपकश्रेण्यामपूर्वकरणादिषु प्रकृतिसत्ताऽनुवर्ण्यते । उपशमश्रेणी सत्तायास्त्विवह नाधिकारः । तत्रापूर्वकरणगुणस्थाने स्वस्वभवव्यवच्छिन्नानि देवनारकतिर्यगायुषि त्रीण्यविरताद्यप्रमत्तसंयतावसानगुणस्थानव्यवच्छिन्नं च दर्शनसप्तकमष्टात्रत्वारिंशतादपनीयते, शेषस्याष्टात्रिंशस्य प्रकृतिशतस्य सत्ता ॥६॥

अधुना त्वनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थाने प्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदमाह—

सोलस अट्टेक्केक्कं छक्केक्केक्केक्कं स्त्रीणमनियट्टी ।  
एगं सुहुमसरागे, स्त्रीणकसाए य सोलसगं ॥७॥

षोडश १ अष्टौ २ एकं ३ एकं ४ 'छक्केक्केक्केक्कं स्त्रीणमनियट्टी' इति, षट् ५ एकं ६ एकं ७ एकं ८ एकं ९ । क्रमेण कर्म क्षीणं 'अनिवृत्तौ' अनिवृत्त्यद्वायां प्रथमं षोडश कर्माणि क्षीणानि । ततोऽष्टौ तत एकमित्यादिक्रमः । यावदक्षीणं षोडशकं तावत्पूर्वोक्तस्याष्टात्रिंशस्य शतस्य सत्ता । तस्मिन् क्षीणे सत्यष्टात्रिंशशतादपनीते शेषस्य द्वाविंशस्य शतस्य सत्ता । ततोऽप्यष्टके क्षीणे द्वाविंशशतादपनीते शेषस्य चतुर्दशोत्तरस्य शतस्य सत्ता । ततोऽप्येकस्मिन् क्षीणे त्रयोदशस्य शतरय सत्ता । ततः पुनरेकस्मिन् क्षीणे द्वादशस्य शतस्य सत्ता । ततोऽपि षट्के क्षीणे द्वादशशतादपनीते षडुत्तरशतस्य सत्ता । तस्मादेकस्मिन् क्षीणे पञ्चोत्तरशतस्य सत्ता । ततोऽपि द्वितीये पुनरेकस्मिन् क्षीणे चतुरुत्तरशतस्य सत्ता । ततोऽपि तृतीये पुनरेकस्मिन् क्षीणे त्र्युत्तरशतस्य सत्ता । ततश्चतुर्थे पुनरेकस्मिन् क्षीणे द्व्युत्तरशतस्य सत्ता । 'एगं सुहुमसरागे' इति, सूक्ष्मसरागगुणस्थाने त्वेकं कर्म क्षीणं व्यवच्छिन्नमित्यर्थः । पूर्वोक्तस्य द्व्युत्तरशतस्य सत्ता । 'स्त्रीणकसाए य सोलसगं' इति, क्षीणकषायगुणस्थाने षोडशकं कर्मणां क्षीणम् । द्वे कर्मणी द्विचरमसमये, चतुर्दश चरमसमय इति । तत्र यावद्विचरमसमयस्तावत्सूक्ष्मसम्परायक्षीणायामेकस्यां कर्मप्रकृतौ द्व्युत्तरशतादपनीतायां शेषस्यैकोत्तरशतस्य सत्ता । चरमसमये तु द्विचरमसमयक्षीणं द्विकमेकोत्तरशतादपनीयते, शेषाया नवनवतेः सत्ता । सयोगिकेवलिनस्तु क्षीणकषायचरमसमयक्षीणे चतुर्दशके नवनवतेरपनीते शेषायाः पञ्चाशीतेः सत्ता ॥७॥

वावत्तरिं दुत्तरिमे, तेरस चरिमे अजोगिणो स्त्रीगे ।

अडयालं पयडिसयं, खविय जिणं निव्वुयं वंदे ॥८॥

१ "मत्तया त्विवह" इत्यपि पाठः ॥ २ "अट्टिकिक्कं" इत्यपि पाठः । ३-४ "छक्किक्किक्किक्कं स्त्रीणमनि-  
यट्टी ।" इति वा पाठः ॥

अयोगिकेत्रलिनो द्वासप्तनिर्दिचरमे समये क्षीणा । द्वौ चग्मावस्मादिति द्विचरमः, तद्गुणसंविज्ञानेन बहुव्रीहिणा चरमात्पूर्वोऽनन्तरसमय उच्यते । 'नेरस चरमे अजोगिणो ष्ठीणे' इति त्रयोदश चरमे समये कर्माण्ययोगिकेत्रलिनः क्षीणानि । यावद्द्विचरमसमयस्तावत्पूर्वोक्तायाः पञ्चाशीतेः सत्ता । चरमसमये तु द्विचरमसमयक्षीणायां द्वासप्ततौ पञ्चाशीतेरपनीतायां शेषाणां त्रयोदशानां सत्ता । तदेवं च 'अष्टयालं पयद्विसयं, चविय जिणं निव्वुयं षंदे' इति, पूर्वभवक्षीणमायुस्त्रयमविरताद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानक्षीणे दर्शनसप्तके क्षिप्तं जाता दश । तेऽप्यनिष्टुचिवादरसम्परायक्षीणे षोडशके क्षिप्ता जाता षट्त्रिंशतिः । तस्यां तत्रैव क्षीणमष्टकं क्षिप्तं जाता चतुस्त्रिंशत् । तस्यां तत्रैव क्रमेण क्षीणौ द्वावेककौ क्षिप्तौ जाता षट्त्रिंशत् । तस्यां तत्रैव क्षीणं षट्कं क्षिप्तं जाता द्विचत्वारिंशत् । तस्यां तत्रैव क्रमेण क्षीणाश्चत्वार एककाः क्षिप्ता जाता षट्चत्वारिंशत् । तस्यां सूक्ष्मसम्परायक्षपित एकः क्षिप्तो जाता मत्तचत्वारिंशत् । तस्यां क्षीणमोहक्षपितं द्वयं क्षिप्तं जातैकोनपञ्चाशत् । तस्यां तत्क्षपितमेव चतुर्दशकं क्षिप्तं जाता त्रिषष्टिः । साऽप्ययोगिकेत्रलिञ्जपितायां द्विसप्ततौ क्षिप्ता जातं पञ्चत्रिंशं क्षतम् । तत्र तत्क्षपितमेव त्रयोदशकं क्षिप्तं जातमष्टचत्वारिंशं शतमिति । तदेवमष्टचत्वारिंशं प्रकृतिशतं क्षपयित्वा जिनो निवृत्तः, तमेवंविधं जिनमहं वन्दे ॥८॥

इत्युक्तः सत्ताव्यवच्छेदोद्देशः । इदानीं बन्धादिव्यवच्छेदोद्देशेषुद्दिष्टानां षोडशादीनां प्रकृतिसंख्यानां प्रतिनिर्देशाय मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतीर्दर्शयितुमाह—

नाणस्स दंमणस्स य. आवरणं वेयणीयमोहणियं ।

आउयनामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥९॥

पंच नव 'दोन्नि अट्टा-वीसा चउरो तहेव बायाला' ।

'दोण्णि य पंच य भणिया, पयडीओ उत्तरा चेव ॥१०॥

गाथे युगपद्द्वयाख्यायेते—ज्ञानस्यावरणं पञ्चविधं भवति । तद्यथा—आमिनिवोधिकज्ञानावरणं १ श्रुतज्ञानावरणं २ अवधिज्ञानावरणं ३ मनःपर्यायज्ञानावरणं ४ केवलज्ञानावरणं ५ मिति १॥ दर्शनस्यावरणं नवविधम् । तद्यथा—निद्रा १ निद्रानिद्रा २ प्रचला ३ प्रचलाप्रचला ४ स्त्यानद्धिः ५ चक्षुर्दर्शनावरणं ६ अचक्षुर्दर्शनावरणं ७ अवधिदर्शनावरणं ८ केवलदर्शनावरणं ९ चेति २॥ वेदनीयं द्विविधम्—सातवेदनीयं १ असातवेदनीयं २ चेति ३॥ मोहनीयमष्टाविंशतिविधम् । तिस्रो दर्शनमोहनीयप्रकृतयः—मिथ्यात्वं १ सम्यग्मिथ्यात्वं २ सम्यक्त्वं ३ चेति । पञ्चविंशतिश्चारित्रमोहनीयप्रकृतयः । तद्यथा—षोडश कपायाः १६ नव नोकपायाः २५ । तत्र कपायाः—अनन्तानुबन्धी क्रोधो मानो माया लोभश्च ४, अप्रत्याख्यानावरणः क्रोधो मानो

माया लोभश्च ८, प्रत्याख्यानावरणः क्रोधो मानो माया लोभश्च १२, संज्वलनः क्रोधो मानो माया लोभश्च १६ इति षोडश कपायाः । नव नोकषायास्तु—वेदत्रयं हास्यादिषट्कं च । वेदत्रयम्—स्रीवेदः १ पुंवेदः २ नपुंसकवेदः ३ इति । हास्यादिषट्कं च—हास्यं १ रतिः २ अरतिः ३ शोकः ४ भयं ५ जुगुप्सा ६ इत्यष्टाविंशतिधा मोहनीयमुक्तम् ४ ॥ आयुष्कं चतुर्धा—नारकायुष्कम् १ तिर्यगायुष्कम् २ मनुष्यायुष्कम् ३ देवायुष्कम् ४ मिति ५ ॥ 'नाम द्विचत्वारिंशद्भेदम् । तद्यथा चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः १४, अष्टाविंशतिः प्रत्येकप्रकृतयः २८ इति द्विचत्वारिंशत् । पिण्डप्रकृतयस्तावत्—गतिनाम १ जातिनाम २ शरीरनाम ३ शरीराङ्गोपाङ्गनाम ४ शरीरबन्धननाम ५ शरीरमङ्गातननाम ६ संहनननाम ७ संस्थाननाम ८ वर्णनाम ९ गन्धनाम १० रसनाम ११ स्पर्शनाम १२ आनुपूर्वीनाम १३ विहायोगतिनाम १४ इति चतुर्दश । एतासां तावद्भेदा दशर्यन्ते । गतिनाम चतुर्विधम्—नारकगतिनाम १ तिर्यग्गतिनाम २ मनुष्यगतिनाम ३ देवगतिनाम ४ इति । जातिनाम पञ्चविधम्—एकेन्द्रियजातिनाम १ द्वीन्द्रियजातिनाम २ त्रीन्द्रियजातिनाम ३ चतुरिन्द्रियजातिनाम ४ पञ्चेन्द्रियजातिनाम ५ इति । शरीरनाम पञ्चविधम्—औदारिकशरीरनाम १ वैक्रियशरीरनाम २ आहारकशरीरनाम ३ तैजसशरीरनाम ४ कार्मणशरीरनाम ५ इति । अङ्गोपाङ्गं त्रिविधम्—औदारिकाङ्गोपाङ्गम् १ वैक्रियाङ्गोपाङ्गम् २ आहारकाङ्गोपाङ्गं ३ चेति । बन्धनं पञ्चविधम्—औदारिकबन्धनादि शरीरवत् ५ । सङ्घातनामापि तथैव ५ । संहनननाम षड्विधम्—वज्रर्षभनाराचम् १ ऋषभनाराचम् २ नाराचम् ३ अर्द्धनाराचम् ४ कीलिका ५ सेवार्त्तं ६ चेति । संस्थाननाम षड्विधम्—समचतुरस्रम् १ न्यग्रोधपरिमण्डलम् २ 'सादि ३ वामनम् ४ कुब्जं ५ हुण्डं ६ चेति । वर्णनाम पञ्चविधम्—कृष्णम् १ नीलम् २ लोहितम् ३ हारिद्रम् ४ शुक्लं ५ चेति । गन्धनाम द्विविधम्—सुरभिनाम १ दुरभिनाम २ चेति । रसनाम पञ्चविधम्—तिक्तम् १ कटुकम् २ कपायम् ३ अम्लम् ४ मधुरं ५ चेति । स्पर्शनामष्टविधम्—कर्द्वशम् १ मृदु २ गुरु ३ लघु ४ शीतम् ५ उष्णम् ६ स्निग्धम् ७ रूक्षं चेति । आनुपूर्वी चतुर्विधा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगानुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ चेति । विहायोगतिर्द्विविधा—प्रशस्तविहायोगतिः १ अप्रशस्तविहायोगति २ श्चेति । इत्येताश्चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः । प्रमेदाग्रमेतासां पञ्चषष्टिरिति ६५ । प्रत्येकप्रकृतयस्त्विमाः—त्रसनाम १ स्थावरनाम २ घादरनाम ३ सूक्ष्मनाम ४ पर्याप्तकनाम ५ अपर्याप्तकनाम ६ प्रत्येकनाम ७ साधारणनाम ८ स्थिरनाम ९ अस्थिरनाम १० शुभनाम ११ अशुभनाम १२ सुस्वरनाम १३ दुःस्वरनाम १४ सुभगनाम १५ दुर्मगनाम १६ आदेयनाम १७ अनादेयनाम १८ यशःकीर्तिनाम १९ अयशःकीर्तिनाम २० अगुरुलघुनाम

१ "तद्दिदानीं नाम मण्यते, तद्द्विचत्वारिंशद्विधम् ।" इति वा पाठः । २ "सादि ३" इत्यपि । ३ "द्विधा" इति वा । ४ "माष्टया" इति वा पाठः ॥

अयोगिकेवलिनो द्वासप्ततिद्विचरमे ममये क्षीणा । द्वौ चग्मात्रस्मादिति द्विचरम', तद्गु-  
णसंविज्ञानेन बहुव्रीहिणा चरमात्पूर्वोऽनन्तरममय उच्यते । 'नेरस चरिमे क्षजोगिणो  
खीणो' इति त्रयोदश चरमे ममये कर्माण्ययोगिकेवलिनः क्षीणानि । यावद्द्विचरममयस्ताव-  
त्पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतेः मना । चग्मममये तु द्विचरमसमयक्षीणायां द्वाप्तमनौ पञ्चाशीतेरपनीतायां  
शेषाणां त्रयोदशानां मना । तदेवं च 'अद्वय्यालं पयद्विसयं, स्वविद्य जिणं निवृत्तयं वन्दे'  
इति, पूर्वमवक्षीणमायुस्त्रयमविरनाद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानक्षीणे दर्शनममके क्षिप्तं जाता दश । तेऽप्यनि-  
ष्टसिवादरसम्परायक्षीणे षोडशके क्षिप्ता जाता पट्विंशतिः । तस्यां तत्रैव क्षीणमष्टकं क्षिप्तं जाता  
चतुर्विंशत् । तस्यां तत्रैव क्रमेण क्षीणौ द्वात्रैकौ क्षिप्तौ जाता पट्विंशत् । तस्यां तत्रैव  
क्षीणं पट्वकं क्षिप्तं जाता द्विचत्वारिंशत् । तस्यां तत्रैव क्रमेण क्षीणाश्चत्वार एककाः क्षिप्ता जाता  
पट्वत्वारिंशत् । तस्यां सूक्ष्मसम्परायक्षपित एकः क्षिप्तो जाता मप्तचत्वारिंशत् । तस्यां क्षीणमो-  
हक्षपितं द्वयं क्षिप्तं जातैकोनपञ्चाशत् । तस्यां तत्क्षपितमेव चतुर्दशकं क्षिप्तं जाता त्रिषष्टिः ।  
साऽप्ययोगिकेवलिनक्षपितायां द्वासप्ततौ क्षिप्ता जातं पञ्चत्रिंशं शतम् । तत्र तत्क्षपितमेव त्रयोदशकं  
क्षिप्तं जातमष्टचत्वारिंशं शतमिति । तदेवमष्टचत्वारिंशं प्रकृतिशतं अपयित्वा जिनो निवृत्तः,  
तमेवंविधं जिनमहं वन्दे ॥८॥

इत्युक्तः सत्ताव्यवच्छेदोद्देशः । इदानीं बन्धादिव्यवच्छेदोद्देशेषुष्टिष्टानां षोडशादीनां  
प्रकृतिसंख्यानां प्रतिनिर्देशाय मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतीर्दर्शयितुमाह—

नाणस्स दंसणस्स य. आवरणं वेयणीयमोहणियं ।

आउयनामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥९॥

पंच नव 'दोन्नि अट्टा-वीमा चउरो तहेव वायाला ।

'दोणिय य पंच य भणिया, पयडीओ उत्तरा चेव ॥१०॥

गाथे युगपद्दद्याख्यायेते—ज्ञानस्यावरणं पञ्चविधं भवति । तद्यथा—आमिनित्रोधिकज्ञानावरणं  
१ श्रुतज्ञानावरणं २ अवधिज्ञानावरणं ३ मनःपर्यायज्ञानावरणं ४ केवलज्ञानावरणं ५ मिति १॥  
दर्शनस्यावरणं नवविधम् । तद्यथा—निद्रा १ चिद्रानिद्रा २ प्रचला ३ प्रचलाप्रचला ४ स्त्या-  
नद्धिः ५ चक्षुर्दर्शनावरणं ६ अचक्षुर्दर्शनावरणं ७ अवधिदर्शनावरणं ८ केवलदर्शनावरणं ९  
चेति २॥ वेदनीयं द्विविधम्—सातवेदनीयं १ असातवेदनीयं २ चेति ३॥ मोहनीयमष्टाविंशति-  
विधम् । निद्रो दर्शनमोहनीयप्रकृतयः—मिथ्यात्वं १ सम्यग्मिथ्यात्वं २ सम्यक्त्वं ३ चेति ।  
पञ्चविंशतिवारिभ्रमोहनीयप्रकृतयः । तद्यथा—षोडश कषायाः १६ नव नोकषायाः २५ । तत्र  
कषायाः—अनन्तानुपन्वी क्रोधो मानो माया लोमथ ४, अप्रत्याख्यानावरणः क्रोधो मानो



माया लोभश्च ८, प्रत्याख्यानावरणः क्रोधो मानो माया लोभश्च १२, संज्वलनः क्रोधो मानो माया लोभश्च १६ इति षोडश कपायाः । नव नोकषायास्तु—वेदत्रयं हास्यादिपटूकं च । वेदत्रयम्—स्त्रीवेदः १ पुंवेदः २ नपुंसकवेदः ३ इति । हास्यादिपटूकं च—हास्यं १ रतिः २ अरतिः ३ शोकः ४ भयं ५ जुगुप्सा ६ इत्यष्टाविंशतिश्चा मोहनीयमुक्तम् ४ ॥ आयुष्कं चतुर्धा—नारकायुष्कम् १ तिर्यगायुष्कम् २ मनुष्यायुष्कम् ३ देवायुष्कम् ४ मिति ५ ॥ 'नाम द्विचत्वारिंशद्भेदम् । तथा चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः १४, अष्टाविंशतिः प्रत्येकप्रकृतयः २८ इति द्विचत्वारिंशत् । पिण्डप्रकृतयस्तावत्-गतिनाम १ जातिनाम २ शरीरनाम ३ शरीराङ्गोपाङ्गनाम ४ शरीरबन्धननाम ५ शरीरगङ्गातननाम ६ संहनननाम ७ संस्थाननाम ८ वर्णनाम ९ गन्धनाम १० रसनाम ११ स्पर्शनाम १२ आनुपूर्वीनाम १३ विहायोगतिनाम १४ इति चतुर्दश । एतासां तावद्भेदा दशर्यन्ते । गतिनाम चतुर्विधम्—नारकगतिनाम १ तिर्यगगतिनाम २ मनुष्यगतिनाम ३ देवगतिनाम ४ इति । जातिनाम पञ्चविधम्—एकेन्द्रियजातिनाम १ द्वीन्द्रियजातिनाम २ त्रीन्द्रियजातिनाम ३ चतुरिन्द्रियजातिनाम ४ पञ्चेन्द्रियजातिनाम ५ इति । शरीरनाम पञ्चविधम्—औदारिकशरीरनाम १ वैक्रियशरीरनाम २ आहारकशरीरनाम ३ तैजसशरीरनाम ४ कर्मणशरीरनाम ५ इति । अङ्गोपाङ्गं त्रिविधम्—औदारिकाङ्गोपाङ्गम् १ वैक्रियाङ्गोपाङ्गम् २ आहारकाङ्गोपाङ्गं ३ चेति । बन्धनं पञ्चविधम्—औदारिकबन्धनादि शरीरवत् ५ । सङ्गातनामापि तथैव ५ । संहनननाम षड्विधम्—वज्रर्षभनाराचम् १ श्रृषभनाराचम् २ नाराचम् ३ अर्द्धनाराचम् ४ कीलिका ५ सेवार्त्तं ६ चेति । संस्थाननाम षड्विधम्—समचतुरस्रम् १ न्यग्रोधपरिमण्डलम् २ 'सादि ३ वामनम् ४ कुब्जं ५ हुण्डं ६ चेति । वर्णनाम पञ्चविधम्—कृष्णम् १ नीलम् २ लोहितम् ३ हारिद्रम् ४ शुक्लं ५ चेति । गन्धनाम द्विविधम्—सुरभिनाम १ दुरभिनाम २ चेति । रसनाम पञ्चविधम्—तिक्तम् १ कटुकम् २ कषायम् ३ अम्लम् ४ मधुरं ५ चेति । स्पर्शनामष्टविधम्—कर्शुशम् १ मृदु २ गुरु ३ लघु ४ शीतम् ५ उष्णम् ६ स्निग्धम् ७ रूक्षं चेति । आनुपूर्वी चतुर्विधा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगानुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ चेति । विहायोगतिद्विविधा—प्रशस्तविहायोगतिः १ अप्रशस्तविहायोगति २ इत्येति । इत्येताश्चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः । प्रमेदाग्रमेतासां पञ्चषष्टिरिति ६५ । प्रत्येकप्रकृतयस्त्रिंशत्—प्रसनाम १ स्थावरनाम २ वादरनाम ३ सूक्ष्मनाम ४ पर्याप्तकनाम ५ अपर्याप्तकनाम ६ प्रत्येकनाम ७ साधारणनाम ८ स्थिरनाम ९ अस्थिरनाम १० शुभनाम ११ अशुभनाम १२ सुस्वरनाम १३ दुःस्वरनाम १४ सुभगनाम १५ दुर्मगनाम १६ आदेयनाम १७ अनादेयनाम १८ यशःकीर्तिनाम १९ अयशःकीर्तिनाम २० अगुरुलघुनाम

१ "तद्विदानी नाम मण्यते, तद्द्विचत्वारिंशद्विधम् ।" इति वा पाठः । २ "साति ३" इत्यपि । ३ "द्विधा" इति वा । ४ "माष्टधा" इति वा पाठः ॥

२१ उपघातनाम २२ पराघातनाम २३ उच्छ्वासानाम २४ आतपनाम २५ उद्योतनाम २६ निर्माणनाम २७ तीर्थकरणाम २८ इत्यष्टाविंशतिः प्रत्येकप्रकृतयः । पूर्वोक्तपिण्डप्रकृतिचतुर्दशकेन सहिता द्विचत्वारिंशद्भवन्ति । पिण्डप्रकृतेप्रभेदपञ्चयष्टया तु सहिता त्रिनवनिर्भवति ६ ॥ गोत्रं द्विभेदम्-उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ चेति ७ ॥ अन्तरायं पञ्चवा-दानान्तरायम् १ लामान्तरायम् २ भोगान्तरायम् ३ उपभोगान्तरायम् ४ वीर्यान्नगयं ५ चेति ८ ॥ एवं च कृत्वा ज्ञानावरणे पञ्च प्रकृतयः । दर्शनावरणे नव । वेदनीये द्वे । मोहनीयेऽष्टाविंशतिः । आयुषि चतस्रः । नास्मि त्रिनवतिः । गोत्रे द्वे । अन्तराये पञ्च । सर्वपिण्डोऽष्टचत्वारिंशं शतमित्येतेन सर्वेण सत्तायामधिकारः । उद्गोशीरणयोस्त्वौदारिकादिवन्धनानां पञ्चानामौदारिकादिसङ्घातानां च पञ्चानां यथास्वमौदारिकादिषु पञ्चसु शरीरेष्वन्तर्भावः । वर्गगन्धर्गसस्पर्शानां यथासंख्यं पञ्चद्विपञ्चाष्टप्रमेदानां तत्प्रभेद 'कृतां विंशतिमपनीय तेषामेव चतुर्णामभिज्ञानां ग्रहणे षोडशकमिदं, बन्धनसङ्घातदशकमहितमष्टचत्वारिंशत्तादपनीयते, शेषेण द्वाविंशेन शतेनाधिकारः । बन्धे तु सम्यक्त्वमम्यग्मिथ्यात्वयोः मङ्ग्लेणैव निष्पाद्यत्वाद्बन्धो न संभवतीति तयोर्द्वाविंशत्तादपनी-तयोः शेषेण विंशेन शतेनाधिकारः । इति प्रकृतिसमुत्कीर्तना कृता । अधुना प्रकृतिवर्णना क्रियते । तत्र ज्ञानावरणं तावत्-सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधो ज्ञानं तस्यावरणं ज्ञानावरणम् । तस्य प्रथमो भेद आभिनिबोधिकज्ञानावरणम् । अभिमुखो योग्यदेश-वस्थितार्थापेक्षी नियतः स्वस्वविषयापेक्षी बोधोऽभिनिबोधः स एवाभिनिबोधिकं, तच्च तद् ज्ञानं चेति आभिनिबोधिकज्ञानम् । तच्चतुर्विधम्-अवग्रहः १ ईहा २ अपायः ३ धारणा ४ चेति । अवग्रहो द्विविधः-व्यञ्जनावग्रहः १ अर्थावग्रहश्च २ । तत्र व्यञ्जनावग्रहश्चक्षुर्मनोवर्जानामिन्द्रि-याणां स्वस्वविषयद्रव्यैः सह संबन्धः, तेनासौ चतुर्विध एव । अर्थावग्रहस्तु किमपीदमित्येता-वन्मात्रो मनःषष्ठैः पञ्चभिरिन्द्रियैर्वस्त्वबोधः, ततश्चैवमसौ षोढा । ईहादयोऽपि मनःषष्ठेन्द्रिय-पञ्चकमभवत्वात्षोढैव । अपि किं न्वयं भवेत् पुरुष एव उत स्थाणुः ? इत्यादिवस्तुधर्मान्वेषणा-त्मकं ज्ञानचेष्टनमीहा । पुरुष एवायमिति 'वस्त्वध्यवसायात्मको निश्चयोऽपायः । निश्चितस्या-विच्छ्रुतिस्मृतिवासनात्मकं धरणं धारणा । तदेतदष्टाविंशतिविधं श्रुतनिश्चितमाभिनिबोधिक-ज्ञानम्, श्रुतेन संस्क्रियमाणत्वात् । अश्रुतनिश्चितेनौत्पत्तिक्यादिबुद्धिचतुष्टयेन सह द्वाविंश-द्विधम् । अथवा बहुबहुविधप्रक्रान्तिप्रान्तितामंदिग्धध्रुवाणां सेतराणामर्थानां ग्रहणेन मिद्यमानत्वा-द्द्वादशभिरष्टाविंशतिगुणिता त्रीणि शतानि पदत्रिंशानि, तानि बुद्धिचतुष्टयसहितानि चत्वारि-शानि त्रीणि शतानि मेदानामाभिनिबोधिकज्ञानस्येति तस्यैतावद्भेदमेव यदावरणस्वभावं कर्म

१ 'कृता विंशतिरपनीयते, ते-८" इति वा पाठः ।

२ 'वस्तुन्यध्यवसायात्मको' इत्यपि पाठः ॥

तदाभिनिबोधिकज्ञानावरणमेकग्रहणेन गृह्यते १ । तथा श्रवणं श्रुतं अभिलापसावितार्थग्रहणप्रत्य-  
योपलब्धिविशेषः, ततस्तेन तदेव वा ज्ञानं श्रुतज्ञानम् । तच्च मञ्चेपतश्चतुर्दशविधमक्षरश्रुतादि ।  
तत्राक्षरश्रुतं त्रिविधम्—संज्ञा १ व्यञ्जन २ लब्धि ३ भेदात् । तत्र संज्ञाक्षरं लेख्यलिपिरूपम्,  
यथा—ठकारो घटाकृतिः, घटीरूपो घकार इत्यादि । व्यञ्जनाक्षरं भाषाशब्दस्तदेतद् द्वितयमज्ञा-  
नात्मकमपि श्रुतकारणत्वादुपचारेण श्रुतम् । लब्ध्यक्षरं तु शब्दश्रवणरूपदर्शनादेरर्थप्रत्यायनग-  
र्माक्षरोपलब्धिः १ अनक्षरश्रुतं क्ष्वेदितशिरःकम्पादिनिमित्तं मामाह्वयति वासयति वेत्यादिरूपम-  
भिप्रायादिपरिज्ञानम् २ । समनस्कस्य मनःसहायैरिन्द्रियैर्जनितमुक्तलक्षणं श्रुतं संज्ञिश्रुतम् ३ ।  
तदेव मनोरहितेन्द्रियजमसंज्ञिश्रुतमनस्कस्य ४ । सम्यग्दृष्टेरर्हत्प्रणीतमितरद्वा श्रुतं यथास्वरूपा-  
वगमात् सम्यक्श्रुतम् ५ । तदेव मिथ्यादृष्टेमिथ्याश्रुतम्, अन्यथाऽवगमात् ६ । सादिश्रुतं  
ज्ञानात्मकं सम्यग्दृष्टेरज्ञानात्मकं वा सम्यक्त्वच्युतस्य ७ । मिथ्यादृष्टेरलब्धपूर्वसम्यक्त्वस्य तु  
तदेवानादिश्रुतम् ८ । सपर्यवसितं भव्यानां केवलोत्पत्तौ ध्रुवं पर्यवसानात् ९ । अपर्यवसितम-  
भव्यानां केवलोत्पादानर्हत्वात् १० । मिन्ने यदर्थजाते सदृशाक्षरालापकं तद्रमिकम् ११ ।  
असदृशं त्वगमिकम् १२ । अङ्गप्रविष्टमाचारादीन्यङ्गानि १३ शेषं प्रकीर्णकां नङ्गप्रविष्टम् १४ ।  
इति चतुर्दशधा श्रुतज्ञानं तस्यावरणस्वभावं कर्म श्रुतज्ञानावरणम् २ । तथाऽवधानमवधिरिन्द्रि-  
याद्यनपेक्षात्मनः साक्षाद्ग्रहणम्, अवधिरेव ज्ञानमवधिज्ञानम् । अथवाऽवधिर्मर्यादा तेनाव-  
धिना रूपिद्रव्यमर्यादात्मकेन ज्ञानमवधिज्ञानम् । इत्येक एव समासशब्दो विग्रहद्वयनिष्पन्नः  
स्वमर्थमन्यव्यतिरिक्तमाह, मतिश्रुते तावदिन्द्रियमनोजनिते, तयोः प्रथमेन विग्रहेण व्यतिरेकः,  
द्वितीयेन तु मनःपर्यायकेवलयोः एकस्य सर्वरूपिमर्यादया ज्ञानत्वासंभवात्, द्वितीयस्य तु  
रूप्यरूपिविषयत्वात् । यच्चवधिज्ञानं तस्य सर्वरूपिमर्यादयापि विषयः संभवतीति मनःपर्याय-  
केवलयोस्ततो व्यतिरेकः । तद्भवप्रत्ययं नारकदेवानां गुणप्रत्ययं मनुष्यतिरश्चाम् । एतच्च षोढा,  
अनुगाम्यादि । तत्र अनुगामि यद्देशान्तरगतमपि ज्ञानिनमनुगच्छति लोचनवत् १ यत्तु तद्देश-  
स्थस्यैव भवति स्थानस्थदीपवत्, तद्देशनिबन्धनक्षयोपशमजन्यत्वात्, देशान्तरगतस्य त्वरति  
तदननुगामीति २ । अवस्थितं यन्न प्रतिपतति, आदित्यमण्डलवत् ३ । अनवस्थितं यत्प्रतिपतति,  
लग्नसमुद्रवेलावत् ४ । हीयमानकं यज्जघन्येनाङ्गुलासङ्ख्येयभागाविषयमुत्कर्षेण सर्वलोकविष-  
यमुत्पद्य पुनः स ऋशेशवात्क्रमेण हानिं विषयसंकोचात्मिकां याति, यावदङ्गुलासङ्ख्येयभागा-  
स्ततोऽपि प्रतिपतति, येन त्वलोकस्य प्रदेशोऽपि दृष्टस्तस्य न हीयते ५ । वर्धमानकं यदङ्गुला-  
मङ्ख्येयभागादिविषयमुत्पद्य पुनर्द्विं विषयविस्तरणात्मिकां याति, यावदलोके लोकप्रमाणान्य-  
सङ्ख्येयानि खण्डानि ६ । इति षड्विधमवधिज्ञानम् । तस्य च जघन्योत्कृष्टमध्यमक्षेत्रविषयास-  
ङ्ख्येयत्त्ववशादसङ्ख्येयया भेदाः, तेषामावरणस्वभावानि एतावन्त्येव कर्माणि, तानि चैकग्रहणेन

गृह्यन्तेऽवधिज्ञानावरणमिति ३ । तथा संज्ञिभिर्जीवैः काययोगेन गृहीतानि मनःप्रायोग्यवर्गणा-  
 पुद्गलद्रव्याणि चिन्तनीयवस्तुचिन्तनव्यापृतेन मनोयोगेन मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्यमानानि  
 मर्नासीत्युच्यन्ते, तेषां मनसां पर्यायाश्चिन्तनानुगुणाः परिणामाः तेषु ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम् ।  
 अथवाऽऽत्मभिर्वस्तुचिन्तने व्यापारितानि मर्नासि पर्येति परिगच्छत्यदैतीति मनःपर्यायं,  
 'कर्मण्यण्' (पाणि० ३-२-१) तस्य कथंचित्कर्तुरन्यत्वात्कर्तृत्वम् । कर्ता वाऽऽत्मा यथो-  
 क्तानि मर्नासि पर्येति अनेनेति मनःपर्यायम् । 'अकर्तरि च' इत्यादिना धञ् । तत्पुनस्तदा-  
 वरणक्षयोपशमजो लब्धिविशेषः, तदुपयोगो वा विषयग्रहणात्मक इति । तच्च तद् ज्ञानं च मनः-  
 पर्यायज्ञानम् । तच्च द्विविधम्—ऋजुमति विपुलमति चेति । ऋज्वी साक्षात्कृतेष्वनुमितेषु वाऽ-  
 र्थेष्वल्पतरविशेषविषयतया मुग्धा मतिविषयपरिच्छिर्त्तियस्य तदृजुमति । तदितरा विपुला मति-  
 र्यस्य तद्विपुलमति । तत्रर्जुमतेरर्द्धतृतीयाद्गुलहीनो मनुष्यलोकः क्षेत्रतो विषयः, स एव विपुल-  
 मतेः संपूर्णो निर्मलतरः । कालतस्त्वेतावति क्षेत्रे भूतभाविनोः पत्न्योपमासहृदयेयमागयोरतीता-  
 नागतानि, संज्ञिमनोरूपाणि मूर्च्छद्रव्याणि, तान्येव च द्रव्यतोऽपि । भावतस्तु तत्पर्यायाश्चि-  
 न्तनानुगुणाः परिणतिरूपा ऋजुमतेर्विषय इति । चिन्तनीयं तु मूर्च्छममूर्च्छं वा त्रिकालगोचरमपि  
 बाह्यमर्थमनुमानादवैति, न साक्षात् । यत एतत्परिणतान्देतानि मनोद्रव्याणीत्येतदन्यथानुप-  
 पत्तेरमुकोऽनेनार्थश्चिन्तित इति लेखाक्षरदर्शनात्तदुक्तार्थमिवाप्रत्यक्षं मनोद्रव्यदर्शनाच्चिन्त्यमर्थ-  
 मनुमिमीते । स चैष बाह्याभ्यन्तररूपो द्विविधोऽपि विषयः स्फुटतरवहुतरविशेषाध्यासितत्वेन  
 विपुलमतेर्विमलतरोऽवसेयः । तदेवमेतयोर्द्वयोरपि मनःपर्यायमेदयोरावरणस्वभावं कर्मापि  
 द्विविधमेव, तदेकग्रहणेन गृह्यते मनःपर्यायज्ञानावरणमिति ४ । केवलज्ञानं प्रागुक्तस्वरूपं तस्या-  
 वरणं केवलज्ञानावरणम् ५ । इत्युक्तं पञ्चविधं ज्ञानावरणम् १ ॥ सामान्यविशेषात्माके वस्तुनि  
 सामान्यग्रहणात्मको बोधो दर्शनं तस्यावरणस्वभावं कर्म दर्शनावरणम् । तन्नवविधम् ।  
 तत्र निद्रापञ्चकं तावत् 'द्रा' कृत्सायां गतौ । नियतं द्राति कृत्सितत्वमविस्पष्टत्वं  
 गच्छति चैतन्यमनयेति निद्रा सुखप्रबोधा स्वापावस्था, नखच्छोटिकामात्रेणापि यत्र प्रबोधो  
 भवति तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि निद्रेति कार्येण व्यपदिश्यते १ । तथा निद्रातिशायिनी निद्रा  
 निद्रानिद्रा, शाकपार्थिवादित्वान्मध्यपदलोपी समासः । सा पुनर्दुःखप्रबोधा स्वापावस्था तस्यां  
 ह्यत्यर्थमस्फुटतरीभूतचैतन्यत्वाद्दुःखेन बहुभिर्घोलनादिभिः प्रबोधो भवति, अतः सुखप्रबोधनिद्रापे-  
 क्षयाऽस्या अतिशायिनीत्वम्, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिः कार्यद्वारेण निद्रानिद्रेत्युच्यते २ । उप-  
 विष्ट ऊर्ध्वस्थितो वा प्रचलत्यरयां स्वप्ता स्वापावस्थायामिति प्रचला, सा ह्युपविष्टस्योर्ध्वस्थि-

तस्य वा घूर्णमानस्य स्वप्नुर्मवति, तथाविधविपाकवेद्या कर्मप्रकृतिः प्रचलेति ३ । तथैव प्रचला-  
ऽतिशायिनी प्रचला प्रचलाप्रचला, सा हि चह्क्रमणादि कुर्वतः स्वप्नुर्मवति, अतः स्थानस्थित-  
स्वप्नुर्मवा प्रचलामपेक्ष्यातिशायिनी, तद्विपाका कर्मप्रकृतिरपि प्रचलाप्रचला ४ । स्त्याना बहुत्वेन  
सङ्घातमापन्ना गृद्धिरभिकाङ्क्षा जाग्रदवस्थाऽध्यवसितार्थसाधनविषया यस्यां स्वापावस्थार्या सा  
स्त्यानगृद्धिः । तस्यां हि मत्यां जाग्रदवस्थाध्यवसितमर्थमुत्थाय साधयति । स्त्याना वा पिण्डीभूता  
ऋद्धिरात्मशक्तिरूपा 'अस्यामिति स्त्यानर्द्धिरित्यप्युच्यते, तद्भावे हि स्वप्नुः प्रथमसंहननस्य केश-  
ः : बलसदृशी शक्तिर्मवति । प्रसिद्धं चैतदागमे—मिक्षार्थमन्यग्रामं गतस्य जुल्लकस्यागच्छतो  
न्यग्रोधे शाखायां शिरः स्खलितम् । ततस्तेन 'रुषितेन रात्रावेतन्निद्रोदये सा वटशाखा भङ्गत्वा  
प्रतिश्रयद्वारे प्रक्षिप्तेत्यादि ॥ अथवा स्त्याना जर्दाभूता चैतन्यर्द्धिरस्यामिति स्त्यानर्द्धिरिति,  
तादृशविपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि स्त्यानर्द्धिः स्त्यानगृद्धिरिति वा ५ तदेतन्निद्रापञ्चकं दर्शनावर-  
णक्षयोपशमलब्धात्मलाभानां दर्शनलब्धीनां भावारकमुक्तम् । अधुना यद्दर्शनलब्धीनां मूलत एव  
लाममावृणोति तदेदं दर्शनावरणचतुष्कमुच्यते—चक्षुषा सामान्यग्राही बोधश्चक्षुर्दर्शनं तस्यावरणं  
चक्षुर्दर्शनावरणम् ६ अचक्षुषा चक्षुर्वर्जेन्द्रियचतुष्टयेन मनसा वा यद्दर्शनं तदचक्षुर्दर्शनं तस्यावरणम्  
७ । अवधिना=इपि 'द्रव्यमर्यादया अवधिरेव वा करणनिरपेक्षबोधरूपो दर्शनं सामान्यार्थग्रह-  
णमवधिदर्शनं तस्यावरणम् ८ तथा केवलमुक्तस्वरूपं तच्च तद्दर्शनं च तस्यावरणं केवलदर्शनाव-  
रणम् ९ । इत्युक्तं नवविधं दर्शनावरणम् २ ॥ आरोग्यविषयोपभोगादिजनितमाह्लादरूपं सुखं  
सातं, तद्रूपेण विपाकेन वेद्यत इति सातवेदनीयम् १ । तद्विपरीतं दुःखमसातं, तद्रूपेण विपाकेन  
वेद्यत इत्यसातवेदनीयम् २ । इत्युक्तं द्विविधं वेदनीयम् ३ ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनं, तन्मोहयति  
विपर्यासं गमयतीति दर्शनमोहनीयम् । तत्रिविधं, मिथ्यात्वादि । तत्र मिथ्यात्वं त्रिविधम्—  
सांशयिकम् १ आभिग्रहिकम् २ अनाभिग्रहिकं ३ चेति । तत्र सांशयिकं यदिदमुक्तमर्हता तत्त्वं  
जीवादि, तन्न जाने—तथा स्यात् उतान्यथा ? इत्येवंरूपम् । उक्तं च—'एकस्मिन्नपि तत्त्वे,  
सदिग्धे प्रत्ययोऽर्हति हि नष्टः । मिथ्या च दर्शनं तत्, स चादिहेतुर्मघगतो-  
नाम् ॥१॥' इति १ । आभिग्रहिकं येन वोटिकादिकुदर्शनानामन्यतमदमिगृह्णाति २ । अना-  
भिग्रहिकं अज्ञानां गोपादीनामीषन्माध्यस्थ्याद्वाऽनमिगृहीतदर्शनविशेषा सर्वदर्शनानि शोभना-  
नीत्येवंरूपा या प्रतिपत्तिः ३ । इत्येतेन त्रिविधेन प्रकारेण विपच्यते यत्कर्म तदपि मिथ्यात्वम्  
१ । सम्यग्मिथ्यात्वमर्द्धविपर्यस्तत्वं दर्शनस्य नैकान्तशुद्धमशुद्धमेव वा 'तच्चश्रद्धानत्वं तादृशविपा-

१ "यत्या " इत्यपि । २ "शाखाया" इति वा । ३ "रुषितेन गत्वा स्त्यानर्द्धिनिद्रोदये सा" । ४ "भावरण-  
कुतु" इति श्रयचित् ॥ ५ "रूपिमर्यादया" इत्यपि । ६ "तत्त्वार्थश्रद्धानत्वं तादृशविपाकवेद्य" इत्यपि पाठः ।

कवेद्यं कर्म सम्यग्मिथ्यात्वम् २ । तथा सम्यक्त्रमविपर्यस्तत्वं तत्त्वदर्शनस्य यथा यदहं प्राह तथैव तत् , इत्यंत्ररूपं, तच्च श्रद्धाघोनत्वम् , एतत्परिणामपरिणतेनात्मना यद्वेद्यते तद्दर्शनमोहनीयं कर्म, तदपि सम्यक्त्वमिति ३ । १ । तथा चारित्रं सावध्ययोगविरतिलक्षणो जीवपरिणामः तन्मोहयतीति चारित्रमोहनीयम् । तत्र षोडश कषायाः । कषायशब्दः प्रागुक्तार्थ एव । तत्रानन्तं संसारमनुबन्धन्ति अनुसंदधति तच्छीलाश्चेत्यनन्तानुबन्धिनः । यद्यपि चैतेषां शेषकषायरहितानामुदयो नास्ति, तथाऽप्यवश्यमनन्तसंसारमौलकारणमिथ्यात्वोदयाक्षेपित्वादेतषामेवैष व्यपदेशः । शेषकषाया हि नावश्यं मिथ्यात्वोदयमाक्षिपन्ति, अतस्तेषामुदययोगपद्ये सत्यपि नायं व्यपदेशः, इत्यसाधारणमेतेषामेवैतन्नामधेयम् । ते च चत्वारः । क्रोधोऽक्षान्तिपरिणतिलक्षणः । मानो गर्वो जात्याद्युद्भवममार्दवम् । माया वञ्चनप्रतिकुञ्चनाद्यात्मिका परिणतिः । लोमोऽसंतोषात्मको गाढ्वर्यपरिणामः । तद्विपाकवेद्याः कर्मप्रकृतयोऽपि तन्नामधेयाः । इत्येते क्रोधादयो यथासङ्घर्षं पर्वतरेखाशैलस्तम्भवंशीमूलकृमिरागसमाना यावज्जीवानुबन्धिनो जीवपरिणामविशेषा अनन्तानुबन्धिन इत्यवसेया इति ४ ॥ त एव च क्रोधादयो यथाक्रमं पृथिवीरेखाऽस्थिमेषशृङ्गकर्दमरागसमानाः संवत्सरानुबन्धिनोऽप्रत्याख्यानावरणाः, नजोऽन्पार्थत्वादल्पं प्रत्याख्यानं अप्रत्याख्यानं देशविरत्याख्यं तदाहृण्वन्ति ये ते तथोक्ताः ४ । त एव क्रमेण रेणुरेखाकाष्ठगोमूत्रिकास्वञ्जनरागसमानाश्चतुर्मासानुबन्धिनः प्रत्याख्यानावरणाः, प्रत्याख्यानं सर्वविरत्याख्यमाहृण्वन्तीतिकृत्वा ४ । त एव क्रमशो जलरेखातिनिसलताअवलेखहरिद्रारागसमानाः पञ्चानुबन्धिनः संज्वलनाः, संज्वलयन्त्युदयेन चारित्रिणमपीति संज्वलनाः ४ । इत्युक्ताः षोडश कषायाः । नव नोकषाया इति, नोशब्दः साहचर्यार्थः । कषायैः सहचरा नोकषायाः । केवलानां नैषां प्रधान्यं, किन्तु कषायैरनन्तानुबन्ध्यादिभिः सहोदयं यान्ति तद्विपाकसदृशमेव विपाकमादर्शयन्तीति बुधग्रहवदन्यसंसर्गमनुवर्तन्ते । तत्र वेदत्रये—यदुदयेन स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः पित्तोदयेन मधुरामभिलाषवत् , स कुम्फुमाभिसमानः स्त्रीवेदः १ । यदुदयेन पुंसः स्त्रियामभिलाषः श्लेष्मोदयादम्लाभिलाषवत् , स तृणामिज्वालासमानः पुंसवेदः २ । यदुदयेन पण्डकस्य स्त्रीपुंसयोरुभयोरभिलाषः पित्तश्लेष्मणोरुदयेन मज्जि(स्त्रि)कामिलाषवत् , स महानगरदाहाभिसमानो नपुंसकवेदः ३ । यदुदयेन सनिमित्तमनिमित्तं वा हसति तत्कर्म हास्यवेदनीयम् ४ । यदुदयेन रमणीयेषु वस्तुषु रमते प्रमोदते तद्रतिवेदनीयमिति ५ । ततो विपरीतमरतिवेद-

१ “श्रद्धानत्व—” इति वा पाठः ॥ २ “यापेक्षित्वा” इत्यपि ॥ ३ “कुम्फुकाभि” इति वा पाठः । ४ “यदुदयेन सच्चित्ताचित्तेषु बाह्यद्रयेषु जीवस्य रतिरुत्पद्यते तद्रतिवेदनीयं कर्म ५ । यदुदयेन तेष्वावतिरुत्पद्यते तदरतिवेदनीयं कर्म ६ । यदुदयेन शोकरहितस्यापि जीवस्याक्रन्दनादिशोको जायते तच्छोकवेदनीयं कर्म ७ । यदुदयेन भयवर्जितस्यापि जीवस्येहलोकादि सप्तप्रकारं भयमुत्पद्यते तद्रयवेदनीयं कर्म ८ ॥” इति वा पाठः ॥

नीयम् ६ । यदुदयेन प्रियविप्रयोगादिपीडितचित्तः शोचनः।ऽऽक्रन्दपरिदेवनादि क्रोति तच्छ्रो-  
 कवेदनीयम् ७ । यदुदयेन सन्निमित्तमनिमित्तं वा बिभेति तद्भयवेदनीयम् ८ । यदुदयेन शकृदा-  
 दिबीभत्सपदाथेभ्यो जुगुप्सते उद्विजते तज्जुगुप्सावेदनीयम् ९ । इत्युदता नोकषायाः, तदभि-  
 धानाच्चारित्रमोहनीयं च २ मोहनीयं चाष्टाविंशतिविधमिति ४ ॥ एति याति चेत्यायुः, नैरुक्ती-  
 शब्दव्युत्पत्तिः । यद्यपि च सर्वं कर्म स्वहेतुभिर्नियमादपूर्वमेत्यात्मानं, पूर्वबद्धं च यात्यर्पत्यात्म-  
 नस्तथाप्ययमस्त्यायुषो विशेषः । प्राग्भवबद्धमात्मनो यदा यात्यर्पति तदा तदपगमानन्तरं वर्त-  
 मानभवबद्धमुदयमेति एति याति चेत्यनया व्युत्पत्त्या, तदेवेदंशं गमनागमनं त्रिवक्षितमित्यसाधार-  
 णमायुषो नाम, तच्चतुर्धा । नारकस्य सतो वेधमायुष्कम् नारकायुष्कम् १ । तिरश्चां तिर्यगायुष्कम्  
 २ । मनुष्याणां मनुष्यायुष्कम् ३ । देवानां देवायुष्कम् ४ इत्युक्तं चतुर्विधमायुष्कम् ५ ॥  
 तथा नामयति परिणमयत्यात्मानं तैस्तैर्गत्यादिभिः पर्यायैरिति नाम । गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति  
 तथाविधकर्मोदयमन्वा जीवास्तामिति गतिः । नारकादिपर्यायपरिणतिस्तद्विपाकवेधा कर्मप्रकृति-  
 रपि गतिः, सैव नाम गतिनाम । नारकशब्दव्यपदेश्यपर्यायनिबन्धनं नारकगतिनाम एवं तिर्य-  
 इमनुष्यदेवगतिनामापि वाच्यम् १ । जननं जातिरेकेन्द्रियादिशब्दव्यपदेश्येन पर्यायेण जीवा-  
 नाद्युत्पत्तिः, तद्भावनिबन्धनभूतं नाम जातिनाम, तत्पञ्चधा, एकेन्द्रियजातिनामादि । तत्रैकस्य  
 स्पर्शनेन्द्रियज्ञानस्यावरणक्षयोपशमात्तदेकविज्ञानमात्र एकेन्द्रियाः अनैवामिलापेन द्वयोः स्पर्श-  
 नरसनज्ञानयोर्द्वीन्द्रियाः । त्रयाणां स्पर्शनरसनघ्राणज्ञानानां त्रीन्द्रियाः । चतुर्णां स्पर्शनरसनघ्राण-  
 चक्षुर्ज्ञानानां चतुरिन्द्रियाः । पञ्चानां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रज्ञानानामावरणक्षयोपशमात्पञ्च-  
 विज्ञानमात्रः पञ्चेन्द्रियाश्च वाच्याः । एकेन्द्रियाणां जातिनामैकेन्द्रियजातिनाम, एवं यावत्प-  
 ञ्चेन्द्रियजातिनाम । ननु चैकादीन्द्रियज्ञानावरणक्षयोपशमादेवैकेन्द्रियादिव्यपदेशः सिद्धत्येव  
 तत्किमपरं जातिनाम्ना कार्यम् १, नैतदस्ति, क्षयोपशमस्य ज्ञानोत्पादनमात्रनिबन्धनत्वेनैकेन्द्रिया-  
 दिव्यपदेशहेतुत्वायोगात् । किञ्चैकेन्द्रियजात्यादिनामोदयजनितस्यैकेन्द्रियादिशब्दव्यपदेशहेतोः  
 पर्यायविशेषस्याभावे क्षयोपशमं प्रति नियमो न स्यात्, ततश्च पृथिव्यादीनां शङ्खादीनां (पिपी-  
 लिकादीनां) चैकद्विऽयादीन्द्रियज्ञानावरणक्षयोपशमोऽप्यनियमेन स्याच्चस्माज्जातिनामोदयकृता  
 पर्यायविशेषस्तथातथाक्षयोपशमस्य नियामक एकेन्द्रियादिव्यपदेशहेतुश्चेति स्थितम् २ । शीर्यते  
 नदिति शरीरं, प्रतिक्षणं प्रागवस्थातश्चापचयाभ्यां विनश्यतीत्यर्थः । तच्च पञ्चविधैरोदाकादि-  
 वर्गणापुद्गलैः क्रियत इति तद्भेदात्पञ्चधा, औदारिकशरीरादि, तद्विपाकवेधं कर्मापि तन्नामकं  
 पञ्चधैव । तत्र यस्य कर्मण उदयादौदारिकवर्गणपुद्गलान् गृहीत्वौदारिकशरीरत्वेन परिणमयति  
 नदादारिकशरीरनाम । एवं चैक्रियाहारकतैजसकार्मणशरीरनामकर्मस्वपि स्वस्ववर्गणापुद्गलग्रहण-

परिणमनकारणत्वं वाच्यम् । यावद्यस्य कर्मण उदयात्कार्मणवर्गणापुद्गलान् गृहीत्वा कार्मणशरीर-  
त्वेन परिणमयति तत्कार्मणशरीरनामकर्म । तच्च कार्मणशरीरादन्यत् । मत्यपि समानवर्गणापुद्गलात्म-  
कत्वेतद्धि नाम्नः कर्मण उत्तरप्रकृतिः । कार्मणशरीरं पृनस्तदुदयनिर्वन्त्यमशेषकर्मणां प्ररोहभूमिराधार-  
भूतम् । तथा संमार्यात्मनां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकत्वमं कर्णमित्यन्यत् . ततस्तत्कारणभूतं कार्मण-  
शरीरनामकमेति स्थितम् ३ । अङ्गानि शिरउरउदरपृष्ठवाहूरुसंज्ञकान्यष्टौ । तदपयवभूतानि त्वङ्गु-  
ल्यादीन्युपाङ्गानि । शेषाणि तु तत्प्रत्ययवभूतान्यङ्गुलिपर्वरेखादीन्यङ्गोपाङ्गानि । अङ्गानि चोपा-  
ङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि चेति द्वन्द्वगर्भादेकशेषादङ्गोपाङ्गानि । तानि च यस्य कर्मण उदयात्त्रिषु  
शरीरेषु भवन्ति, तत्त्रिविधमङ्गोपाङ्गनाम । तत्र यदुदयादौदारिकशरीरत्वेन परिणतानां पुद्गलानाम-  
ङ्गोपाङ्गविभक्त्या परिणतिः तदौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम । एवं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गानामनोरपि  
वाच्यम् । तैजसकार्मणयोस्तु, जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वाभ्यास्यङ्गोपाङ्गसंभवः ४ : पूर्वगृहीतै-  
रौदारिकपुद्गलैः सह परस्परं च गृह्यमाणानौदारिकपुद्गलानुदितेन येन कर्मणा बध्नात्यात्माऽन्यो-  
ऽन्यसंस्कृतान् करोति तदौदारिकशरीरबन्धननाम, दारुपाषाणादीनां जतुरालाप्रभृतिश्ले“ष”द्रव्य”  
वत् । एवं वैक्रियादि चतुष्केऽपि वाच्यम् । यदि त्विदं शरीरपञ्चकपुद्गलानामन्योऽन्यसंबन्धकारि  
बन्धनपञ्चकं न स्यात्तस्तेषां शरीरपरिणतौ सत्यामप्यसंबद्धत्वात्पवनाहतकुण्डस्थितास्तीमितस-  
क्तूनामिद्वैकत्रस्यै न स्यात् ५ । तच्च बन्धनमसंहतानां न संभवति, अतस्तत्पिण्डनकारणं  
पञ्चविधं गृह्यातनाम । तथैवौदारिकसङ्घातनामादि । तत्र यस्योदयादौदारिकशरीरत्वपरिणतान्  
पुद्गलानात्मा सङ्घातयति=पिण्डयति तदौदारिकसङ्घातनाम । वैक्रियादिचतुष्केऽप्येवमेव वाच्यम्  
६ । संहननमस्थिसंचयः, तच्चौदारिकशरीर एव, नान्येषु, तेषामस्थ्याद्यभावात् । तच्च षोढा,  
वज्रर्षमनाराचादि । तत्र वज्रं कीलिका. ऋषभः परिवेष्टनपट्टः, नाराच उभयतो मर्कट-  
बन्धः । यत्र द्वयोरग्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थ्या परिषेष्टितयो-  
रुपरि तदस्थित्रयमेदि कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थि भवति तद्वज्रर्षमनाराचं प्रथमम् । यत्र तु  
कीलिका नास्ति तद्वज्रमनाराचं द्वितीयम्, ऋषभवर्जं वज्रनाराचं द्वितीयमित्येके । वज्रर्षभवर्जं  
नाराचं तृतीयम् । एकतो मर्कटबन्धं द्वितीयपार्श्वे कीलिकाविद्धमर्द्धनाराचं चतुर्थम् । ऋषभ-  
नाराचवर्जं कीलिकाविद्धात्त्रिद्वयमंचित कीलिकाख्यं पञ्चमम् । अस्थिद्वयपर्यन्तसंरपर्शलक्षणां  
सेवामृतमागनं सेव.तं पष्टम् । इतीदं षड्विधमस्थिसंचयसंनिचयात्मकं संहननं यदुदयाद्भवति शरीरे  
तदपि तत्संज्ञकं षड्विधं संहनननामकर्म ७ । संस्थानं शरीराकृतिरवयवरचनात्मिका तदपि षोढा,  
समचतुरस्रादि । तत्र समाः शरीरलक्षणशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्यो यस्य तत्सम-  
चतुरस्रम् । ‘सुप्रानसुश्वसुदिशारिकुक्षश्चतुरभ्रंणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः’ (पाणि०



५-४-१२०) इत्यकारः समासान्तः । अन्नयस्त्वह चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवाः । ततश्च सर्वेऽप्यवयवाः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाऽव्यभिचारिणो यस्य, न तु न्यूनाधिकप्रमाणाः, तत्तुल्यं समचतुरस्रम् । न्यग्रोधवत्परिमण्डलं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवः, अधस्तनभागे तु न तथा, तथेदमपि नामेरुपरि विस्तरबहुलं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाग्, अधस्तु हीनाधिकप्रमाणमिति । सादीति, आदिरिहोत्सेधाख्यो नामेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, तेनादिना शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाजा सह वर्तते यत्तत्सादि । सर्वमेव हि शरीरमविशिष्टेनादिना मह वर्तते इति विरोषणान्यथानुपपत्तेरादेरिह विशिष्टता लभ्यते । सादि उत्सेधबहुलं परिपूर्णोत्सेधमित्यर्थः । वामनं मङ्गकोष्ठं, यत्र पाणिपादशिरोग्रीवं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणयुक्तम्, यत्पुनः शेषं कोष्ठमुरउदरपृष्ठादिरूपं तन्मङ्गलं न्यूनाधिकप्रमाणं तद्वामनम् । कुब्जमधस्तनकायमङ्गलं वामनत्रिपर्यायाद्भावनीयम् । नवरमधस्तनकायशब्देन पाणिपादशिरोग्रीवमिहोच्यते । सर्वत्रामंस्थितं हुण्डं, यस्य हि प्रायेणैकोऽप्यवयवः शरीरलक्षणोक्तं प्रमाणं न संवदति तत्सर्वत्रामंस्थितं हुण्डमिति । उक्तं च—“तुल्यं विस्तरबहुलं, उत्सेधबहुलं च मङ्गकोष्ठं च । हेष्टिष्ठाकायमङ्गलं, सन्वत्थासंठियं हुण्डं ॥१॥” इत्येतद्यथाक्रमं षण्णामपि लक्षणमितीदं षड्विधं संस्थानं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि कर्म तदभिधानं षड्विधं संस्थाननाम ८ । वर्णः पञ्चविधः प्रसिद्धस्वरूपः, स यदुदयाच्छरीरपुद्गलेषु भवति तत्पञ्चविधं कृष्णनामादि वर्णनाम ९ । एवं गन्धो द्विविधः, रसः पञ्चविधः, स्पर्शश्चाष्टविधः, प्रसिद्धस्वरूप एव । तस्मान्यपि कर्माणि तथैव वाच्यानि १० । ११ । १२ । द्विसमयादिना विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिनियता गमनपरिपाटीहानुपूर्वीत्युच्यते, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरप्यानुपूर्वी । सा चतुर्विधा । नरकगतिनामकर्मप्रकृतेः सहचरितानुपूर्वी नरकगत्यानुपूर्वी, तथा सहवेद्यमानत्वात्सहचरितत्वम् तथा तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्व्योऽपि वाच्याः १३ । गमनं गतिः, सा चेह पादविहरणाद्यात्मिका देशान्तरप्राप्तिहेतुर्द्वीन्द्रियादीनां प्रवृत्तिरभिधीयते, नैकेन्द्रियाणां, पादाद्यभावात् । विहायसा गतिर्विहायोगतिः । ननु च विहायसः सर्वगतत्वात्ततोऽन्यत्र गतिर्न संभवति, ततश्च व्यवच्छेद्याभावाद्विहायसा विशेषणमनर्थकम्, सत्यमेतद्, नमसोऽन्यत्र गतिर्नास्ति तथाऽपि यदि गतिरित्येवोच्येत, ततो नाम्नः प्रथमप्रकृतिरपि गतिरस्तीति पौनरुक्त्या शङ्कास्यात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं “विहायोग्रहणं कार्यम् । विहायसा गतिः प्रवृत्तिर्न तु भवगतिर्नरकगत्यादिकेति । सा च द्विविधा, प्रशस्ताऽप्रशस्ता च । प्रशस्ता गजहंसवृषभादीनाम्, अप्रशस्ता तूखरटोलादीनामिति, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि तस्मामिदं द्विविधा १४ । इत्युक्ताः पिण्डप्रकृतयः ॥ त्रसन्त्युष्णाद्यमितताः छायाद्यमिसर्पणेनोद्विजन्ते तस्मादिति त्रसा द्वीन्द्रियादयः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि त्रसनाम १५ । उष्णाद्यमितापेऽपि स्थानशीला न तत्परिहारसमर्थाः

परिणमनकारणत्वं वाच्यम् । यावद्यस्य कर्मण उदयात्कार्मणवर्गणापुद्गलान् गृहीत्या कार्मणशरीर-  
त्वेन परिणमयति तत्कार्मणशरीरनामकर्म, तच्च कार्मणशरीरादन्यत् । मत्यपि समानवर्गणापुद्गलात्म-  
कत्वे तद्धि नाम्नः कर्मण उत्तरप्रकृतिः । कार्मणशरीरं पुनस्तदुदयनिर्वन्ध्यमशेषकर्मणां प्ररोहभूमिराधार-  
भूतम् । तथा संमार्यात्मना गत्यन्तरसंक्रमणे साधकत्वमं करणमित्यन्यत् . ततस्तत्कारणभूतं कार्मण-  
शरीरनामकमेति स्थितम् ३ । अङ्गानि शिरउरउदरपृष्ठबाहूरुसंज्ञकान्यष्टौ । तदयवभूतानि त्वङ्गु-  
न्यादीन्युपाङ्गानि । शेषाणि तु तत्प्रत्ययवभूतान्यङ्गुलिपर्वरेखादीन्यङ्गोपाङ्गानि । अङ्गानि चोपा-  
ङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि चेति द्वन्द्वगर्भादेकशेषादङ्गोपाङ्गानि. तानि च यस्य कर्मण उदयात्त्रिषु  
शरीरेषु भवन्ति, तत्रिविधमङ्गोपाङ्गनाम । तत्र यदुदयादौरिकशरीरत्वेन परिणतानां पुद्गलानाम-  
ङ्गोपाङ्गविभक्त्या परिणतिः तदौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम । एवं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नोरपि  
वाच्यम् । तैजसकार्मणयोस्तु, जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वाभारस्यङ्गोपाङ्गसंभवः ४ ; पूर्वगृहीतै-  
रौदारिकपुद्गलैः सह परस्परं च गृह्यमाणानौदारिकपुद्गलानुदितेन येन कर्मणा बध्नात्यात्माऽन्यो-  
ऽन्यसंस्क्तान् करोति तदौदारिकशरीरबन्धननाम, दारुपाषाणादीनां जतुरालाप्रभृतिश्ले “ष”द्रव्य”  
वत् । एवं वैक्रियादि चतुष्केऽपि वाच्यम् । यदि त्विदं शरीरपञ्चकपुद्गलानामन्योऽन्यसंबन्धकारि  
बन्धनपञ्चकं न स्यात्ततस्तेषां शरीरपरिणतौ सत्यामप्यसंबद्धत्वात्पवनाहतकुण्डस्थितास्तीमितस-  
क्तूनामित्रैकत्रस्यैर्यं न स्यात् ५ । तच्च बन्धनमसंहतानां न संभवति, अतस्तत्पिण्डनकारणं  
पञ्चविधं गृह्यातनाम । तथैवौदारिकसङ्घातनामादि । तत्र यस्योदयादौदारिकशरीरत्वपरिणतान्  
पुद्गलानात्मा सङ्घातयति=पिण्डयति तदौदारिकसङ्घातनाम । वैक्रियादिचतुष्केऽप्येवमेव वाच्यम्  
६ । संहननमस्थिसंचयः, तच्चौदारिकशरीर एव, नान्येषु, तेषामस्थ्याद्यभावात् । तच्च षोढा,  
वज्रर्षभनाराचादि । तत्र वज्रं कीलिका, ऋषभः परिवेष्टनपट्टः, नाराच उभयतो मर्कट-  
बन्धः । यत्र द्वयोर्यनोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थना परिवेष्टितयो-  
रुपरि तदस्थित्रयमेदि कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थि भवति तद्वज्रर्षभनाराचं प्रथमम् । यत्र तु  
कीलिका नास्ति तदृषभनाराचं द्वितीयम्, ऋषभवर्जं वज्रनाराचं द्वितीयमित्येके । वज्रर्षभवर्जं  
नाराचं तृतीयम् । एकतो मर्कटबन्धं द्वितीयपार्श्वे कीलिकाविद्धमर्द्धनाराचं चतुर्थम् । ऋषभ-  
नाराचवर्जं कीलिकाविद्धाग्निद्वयसंचित कीलिकारुख्यं पञ्चमम् । अस्थिद्वयपर्यन्तसंपर्शलक्षणां  
सेवामृतनागनं सेव.तं पट्टम् । इतीदं षड्विधमस्थिसंचिचयात्मकं संहननं यदुदयाद्भवति शरीरे  
तदपि तत्संज्ञकं षड्विधं संहनननामकर्म ७ । संस्थानं शरीराकृतिरवयवरचनात्मिका तदपि षोढा,  
समचतुरस्रादि । तत्र समाः शरीरलक्षणशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयो यस्य तत्सम-  
चतुरस्रम् । ‘सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकृक्षश्चतुरश्रंणोपदाजपदमोष्ठपदाः’ (पाणि०

५-४-१२०) इत्यकारः समासान्तः । अस्त्रयस्त्वह चतुर्द्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवाः । ततश्च सर्वेऽप्यवयवाः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाऽव्यभिचारिणो यस्य, न तु न्यूनाधिकप्रमाणाः, तत्तुल्यं समचतुरस्रम् । न्यग्रोधत्रपरिमण्डलं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवः, अधस्तनभागे तु न तथा, तथेदमपि नामेरुपरि विस्तरबहुलं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाग्, अधस्तु हीनाधिकप्रमाणमिति । सादीति, आदिरिहोत्सेधाख्यो नामेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, तेनादिना शरीरलक्षणोक्तप्रमाणमाजा सह वर्तते यत्तत्सादि । सर्वमेव हि शरीरमविशिष्टेनादिना मह वर्तते इति विशेषणान्यथानुपपत्तेरादेरिह विशिष्टता लभ्यते । सादि उत्सेधबहुलं परिपूर्णोत्सेधमित्यर्थः । वामनं मङ्गकोष्ठं, यत्र पाणिपादशिरोग्रीवं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणयुक्तम्, यत्पुनः शेषं कोष्ठपुरउदरपृष्ठादिरूपं तन्मङ्गं न्यूनाधिकप्रमाणं तद्वामनम् । कुब्जमधस्तनकायमङ्गं वामनविपर्ययाद्भावनीयम् । नवरमधस्तनकायशब्देन पाणिपादशिरोग्रीवमिहोच्यते । सर्वत्रामंस्थितं हुण्डं, यस्य हि प्रायेणैकोऽप्यवयवः शरीरलक्षणोक्तं प्रमाणं न संवदति तत्सर्वत्रामंस्थितं हुण्डमिति । उक्तं च—“तुल्यं विर्यवबहुलं, वस्सेहृषहुं च मङ्गकोष्ठं च । हेडिक्कायमङ्गं, सञ्चत्थासंठियं हुण्डं ॥१॥” इत्येतद्यथाक्रमं षण्णामपि लक्षणमितीदं षड्विधं संस्थानं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि कर्म तदभिधानं षड्विधं संस्थाननाम ८ । वर्णः पञ्चविधः प्रसिद्धस्वरूपः, स यदुदयाच्छरीरपुद्गलेषु भवति तत्पञ्चविधं कृष्णनामादि वर्णनाम ९ । एवं गन्धो द्विविधः, रसः पञ्चविधः, स्पर्शश्चाष्टविधः, प्रसिद्धस्वरूप एव । तन्नामान्यपि कर्माणि तथैव वाच्यानि १० । ११ । १२ । द्विसमयादिना विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिनियता गमनपरिपाटीहानुपूर्वीत्युच्यते, तद्विपाकवेधा कर्मप्रकृतिरप्यानुपूर्वी । सा चतुर्विधा । नरकगतिनामकर्मप्रकृतेः सहचरितानुपूर्वी नरकगत्यानुपूर्वी, तथा सह वेद्यमानत्वात्सहचरितत्वम् तथा तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्व्योऽपि वाच्याः १३ । गमनं गतिः, सा चेह पादविहरणाद्यात्मिका देशान्तरप्राप्तिहेतुर्द्वीन्द्रियादीनां प्रवृत्तिरभिधीयते, नैकेन्द्रियाणां, पादाद्यभावात् । विहायसा गतिर्विहायो गतिः । ननु च विहायसः सर्वगतत्वात्ततोऽन्यत्र गतिर्न संभवति, ततश्च व्यवच्छेद्याभावाद्दिहायसा विशेषणमनर्थकम्, सत्यमेतन्, नभसोऽन्यत्र गतिर्नास्ति तथाऽपि यदि गतिरित्येवोच्येत, ततो नाम्नः प्रथमप्रकृतिरपि गतिरस्तीति पौनरुक्त्या शङ्कास्यात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं ‘विहायोग्रहणं कार्यम् । विहायसा गतिः प्रवृत्तिर्न तु भवगतिर्नरकगत्यादिकेति । सा च द्विविधा, प्रशस्ताऽप्रशस्ता च । प्रशस्ता गजहंसवृषभादीनाम्, अप्रशस्ता तून्मुखरटोलादीनामिति, तद्विपाकवेधा कर्मप्रकृतिरपि तन्नामिकैव द्विविधा १४ । इत्युक्ताः पिण्डप्रकृतयः ॥ त्रसन्त्युष्णाद्यभितप्ताः छायाद्यभिसर्पणेनोद्विजन्ते तस्मादिति त्रसा द्वीन्द्रियादयः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि त्रसनाम १५ । कृष्णाद्यभितापेऽपि स्थानशीला न तत्परिहारसमर्थाः

परिणमनकारणत्वं वाच्यम् । यावद्यस्य कर्मण उदयात्कार्मणवर्गणापुद्गलान् गृहीत्वा कार्मणशरीर-  
त्वेन परिणमयति तत्कार्मणशरीरनामकर्म । तच्च कार्मणशरीरादन्यत् । नत्यपि ममानवर्गणापुद्गलात्म-  
कत्वेतद्वि नाम्नः कर्मण उत्तरप्रकृतिः । कार्मणशरीरं पृनस्तदुदयनिर्वर्त्यमशेषकर्मणां प्ररोहभूमिराधार-  
भूतम् । तथा नमायात्मनां गत्यन्तरसंक्रमणे माधकृतं कर्मणमित्यन्यत् . ततस्तत्कारणभूतं कार्मण-  
शरीरनामकर्मैति स्थितम् ३ । अङ्गानि शिरउरउदरपृष्ठवाहूरुसंज्ञकान्यष्टौ । तदवयवभूतानि त्वङ्गु-  
न्यादीन्युपाङ्गानि । शेषाणि तु तत्प्रत्यवयवभूतान्यङ्गुलिपर्वरेखादीन्यङ्गोपाङ्गानि । अङ्गानि चोपा-  
ङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि चेति द्वन्द्वगर्भादेकशेषादङ्गोपाङ्गानि . तानि च यस्य कर्मण उदयात्त्रिषु  
शरीरेषु भवन्ति, तत्रिविधमङ्गोपाङ्गनाम । तत्र यदुदयादौदारिकशरीरत्वेन परिणतानां पुद्गलानाम-  
ङ्गोपाङ्गविभक्त्या परिणतिः तदौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम । एवं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नोरपि  
वाच्यम् । तैजसकार्मणयोस्तु, जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वाकार्मण्यङ्गोपाङ्गसंभवः ४ ; पूर्वगृहीतै-  
रौदारिकपुद्गलैः सह परस्परं च गृह्यमाणानौदारिकपुद्गलानुदितेन येन कर्मणा बध्नात्यात्मान्यो-  
ऽन्यसंसक्तान् करोति तदौदारिकशरीरबन्धननाम, दारुपाषाणादीनां जतुरालाप्रभृतिश्लै“ष'द्रव्य”  
वत् । एवं वैक्रियादि चतुष्केऽपि वाच्यम् । यदि त्विदं शरीरपञ्चकपुद्गलानामन्योऽन्यसंबन्धकारि  
बन्धनपञ्चकं न स्यात्तस्तेषां शरीरपरिणतौ सत्यामप्यसंबन्धत्वात्पवनाहतकुण्डस्थितास्तीमितस-  
क्तनामिवैकत्रयैर्यं न स्यात् ५ । तच्च बन्धनमसंहतानां न संभवति, अतस्तत्पिण्डनकारणं  
पञ्चविधं गृह्यातनाम । तथैवौदारिकसङ्घातनामादि । तत्र यस्योदयादौदारिकशरीरत्वपरिणतान्  
पुद्गलानात्मा मङ्घातयति=पिण्डयति तदौदारिकसङ्घातनाम । वैक्रियादिचतुष्केऽप्येवमेव वाच्यम्  
६ । संहननमस्थिमंचयः, तच्चौदारिकशरीर एव, नान्येषु, तेषामन्यथाद्यभावात् । तच्च षोढा,  
वज्रर्षमनाराचादि । तत्र वज्रं कीलिका, ऋपमः परिवेष्टनपट्टः, नाराच उभयतो मर्कट-  
बन्धः । यत्र द्वयोरप्यनोरुमयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थना परिवेष्टितयो-  
रुपरि तदस्थित्रयमेदि कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थि भवति तद्वज्रर्षमनाराचं प्रथमम् । यत्र तु  
कीलिका नास्ति तदृपमनाराचं द्वितीयम्, ऋपमवर्जं वज्रनाराचं द्वितीयमित्येके । वज्रर्षभवर्जं  
नाराचं तृतीयम् । एकतो मर्कटबन्धं द्वितीयपार्श्वे कीलिकाविद्धमर्द्धनाराचं चतुर्थम् । ऋपम-  
नाराचवर्जं कीलिकाविद्धास्थिद्वयमंचितं कीलिकाख्यं पञ्चमम् । अस्थिद्वयपर्यन्तसंस्पर्शलक्षणां  
सेवामृतनापनं सेवतं पृष्ठम् । इतीदं षड्विधमस्थिसंनिचयात्मकं संहननं यदुदयाद्भवति शरीरे  
तदपि तत्संज्ञकं षड्विधं संहनननामकर्म ७ । संस्थानं शरीराकृतिरवयवरचनात्मिका तदपि षोढा,  
समचतुरस्रादि । तत्र समाः शरीरलक्षणशास्त्रोक्तप्रमाणाविस्वादिन्यश्चतस्रोऽस्यो यस्य तत्सम-  
चतुरस्रम् । ‘सुप्रानसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रं गोपदाजपदप्रोष्ठपदाः’ (पाणि०

५-४-१२०) इत्युक्ताः ममासान्तः । अस्यस्त्वह चतुर्दिग्निभागोपलक्षिताः शरीरगवयवाः । ततश्च सर्वेऽप्यवयवाः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाऽव्यभिचारिणो यस्य, न तु न्यूनाधिकप्रमाणाः । तन्मुल्यं समचतुरस्रम् । न्यग्रोधवत्परिमण्डलं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवः, अधस्तनमागे तु न तथा. तथेदमपि नाभेरुपरि विन्तरवहुलं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाग्, अधस्तु हीनाधिकप्रमाणमिति । मादीति. आदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, तेनादिना शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाजा सह वर्तते यत्तत्सादि । सर्वमेव हि शरीरमविशिष्टेनादिना सह वर्तने इति विशेषणान्यथानुपपत्तेरादेरिह विशिष्टता लभ्यते । सादि उत्सेधवहुलं परिपूर्णात्सेधमित्यर्थः । वामनं मडमकोष्ठं, यत्र पाणिपादशिरोग्रीवं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणयुक्तम् . यत्पुनः शेषं कोष्ठमृत्तरुदरपृष्ठादिरूपं तन्मडमं न्यूनाधिकप्रमाणं तद्वामनम् । कुब्जमधस्तनकायमडमं वामनविपर्ययाद्भावनीयम् । नवरमधस्तनकायशब्देन पाणिपादशिरोग्रीवमिहोच्यते । सर्वत्रान्स्थितं हुण्डं, यस्य हि प्रायेणैकोऽप्यवयवः शरीरलक्षणोक्तं प्रमाणं न संवदति तत्सर्वत्रान्स्थितं हुण्डमिति । उक्तं च—“तुल्यं विन्तवहुलं, उस्सेहवहुं च मडहकोष्ठं च । हेडिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंढं ॥१॥” इत्येतद्यथाक्रमं षण्णामपि लक्षणमितीदं षड्विधं संस्थानं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि कर्म तदभिधानं षड्विधं संस्थाननाम ८ । वर्णः पञ्चविधः प्रसिद्धस्वरूपः, स यदुदयाच्छरीरपुद्गलेषु भवति तत्पञ्चविधं कृष्णनामादि वर्णनाम ९ । एवं गन्धो द्विविधः, रसः पञ्चविधः. स्पर्शश्चाष्टविधः, प्रसिद्धस्वरूप एव । तन्नामान्यपि कर्माणि तथैव वाच्यानि १० । ११ । १२ । द्विसमयादिना विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिनियता गमनपरिपाटीहानुपूर्वीत्युच्यते. तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरप्यानुपूर्वी । सा चतुर्विधा । नरकगतिनामकर्मप्रकृतेः सहचरितानुपूर्वी नरकगत्यानुपूर्वी, तथा सहवेद्यमानत्वात्सहचरितत्वम् तथा तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्व्योऽपि वाच्याः १३ । गमनं गतिः, सा चेह पादविहरणाद्यात्मिका देशान्तरप्राप्तिहेतुर्द्वीन्द्रियादीनां प्रवृत्तिरभिधीयते, नैकेन्द्रियाणां, पादाद्यभावात् । विहायसा गतिर्विहायो गतिः । ननु च विहायसाः सर्वगतत्वात्ततोऽन्यत्र गतिर्न संभवति, ततश्च व्यवच्छेद्याभावाद्द्विहायसा विशेषणमनर्थकम्, सत्यमेतत्, नमसोऽन्यत्र गतिर्नास्ति तथाऽपि यदि गतिरित्येवोच्येत, ततो नाम्नः प्रथमप्रकृतिरपि गतिरस्तीति पौनरुक्त्या शङ्कास्यात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं विहायोग्रहणं कार्यम् । विहायसा गतिः प्रवृत्तिर्न तु भवगतिनरकगत्यादिकेति । सा च द्विविधा, प्रशस्ताऽप्रशस्ता च । प्रशस्ता गजहंसवृषभादीनाम्, अप्रशस्ता तून्मृत्तलादीनामिति, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि तन्नामिकैव द्विविधा १४ । इत्युक्ताः पिण्डप्रकृतयः ॥ त्रयन्तुष्णायमितत्ताः छायाद्यभिसर्पणेनोद्विजन्ते तस्मादिति त्रसा द्वीन्द्रियादयः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि त्रसनाम १५ । ऋणायमितापेऽपि स्थानशीला न तत्परिहारसमर्थाः

१ “विहायसो” इति वा पाठः ।

स्थावराः पृथिव्यादय एकेन्द्रियाः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि रथावरनाम । तेजोवायुर्नां तु स्थावरनामोदयेऽपि स्वामाविकं चलनम् १६ । यस्योदयाज्जीवा वादराः म्भूरा भवन्ति तद्वादन-  
नाम । न चेह चाक्षुषत्वं वादरत्वमिष्टं, वादरम्याप्येकैकस्य पृथिव्यादिशरीरस्य च क्षुपत्वाभा-  
वात् । यद्यपि चैतजीवविपाकि वादरनाम तथापि शरीरेऽभिव्यञ्चिन क्रियतीमपि दर्शयति । यथा  
क्रोध उदितो रक्तनेत्रभ्रुकुटीभङ्गश्चक्षुषदन्त्वादिकमिति । तेन पृथिव्यादीनां वादराणां बहूनां  
समेतानां चाक्षुषत्वं भवति, न तु सूक्ष्माणामिति १७ । यस्योदयात्सूक्ष्माः पृथिव्यादयः पञ्च  
भवन्ति तत्सूक्ष्मनाम १८ । पर्याप्तिगहारादिपुद्गलदलिकग्रहणपरिणमनहेतुः पुद्गलोपचयजः  
शक्तिविशेषः । सा च साध्यमेदेन पोढा । यया ह्याहारमात्मा गृहीत्वा खलरसतया परिणमयति  
सा शक्तिराहारपर्याप्तिः । यया रमीभूतमाहारं सप्तधातुतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः ।  
यया तु धातुभूतमिन्द्रियतया परिणमयति सेन्द्रियपर्याप्तिः । यया तूच्छवासप्रायोग्यं वर्गणाद्र-  
व्यमादायोच्छ्वासतयाऽऽलम्ब्य मुञ्चति सोच्छ्वासपर्याप्तिः । यया तु भाषाप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्य-  
मादाय भाषात्वेनावलम्ब्य मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः । यया तु मनःप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादाय  
मनस्तयाऽऽलम्ब्य मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः । इत्येताः यथासंख्यमेकेन्द्रियविकलेन्द्रियसंज्ञिपञ्चे-  
न्द्रियाणां चतुष्पञ्चपदसङ्ख्याः पर्याप्तयो यस्योदयाद्भवन्ति तत्पर्याप्तकनाम । येषां हि पर्याप्तयः  
सन्ति ते पर्याप्ताः, मत्वर्थीयोऽचप्रत्ययः, पर्याप्ता एव पर्याप्तकाः । तद्भाविविपाकवेद्यं कर्मापि  
पर्याप्तकनाम । ननु च शरीरपर्याप्त्यैव शरीरं भविष्यति तत्किं शरीरनाम्ना १, नैतदस्ति, साध्य-  
मेदात्, शरीरनाम्नो हि जीवेन गृहीतानां पुद्गलानामौदारिकादित्वेन परिणतिः माध्या, शरीर-  
पर्याप्तेस्तु प्रागात्मनाऽऽरब्धस्य शरीरस्य परिसमाप्तिरिति १९ । ता एव षड् यथास्वं शक्तयो  
विकला अपर्याप्तयस्ता यस्योदयाद्भवन्ति तदपर्याप्तकनाम, शब्दव्युत्पत्तिः पूर्ववत् २० यस्योदया-  
त्प्रत्येकं शरीरं भवति, एकैकस्य जीवस्यैकैकं शरीरमित्यर्थः, तत्प्रत्येकनाम २१ । यस्योदयाद-  
नन्तानां जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति तत्साधारणनाम २२ । यदुदयादस्थ्यादयः शरी-  
रावयवाः स्थिरा विश्वला भवन्ति तत्स्थिरनाम २३ । यदुदयाज्जिह्वादिबदस्थिरा भवन्ति तदस्थि-  
रनाम २४ । यदुदयाच्चाभेरुपरि शुभाः शरीरावयवा भवन्ति तच्छुभनाम, शिरःप्रभृतिना हि  
स्पृष्टस्तुच्यति पादादिभिस्तु रुच्यति २५ । यदुदयाच्चाभेरघोऽशुभाः शरीरावयवा भवन्ति तदशु-  
भनाम २६ । यदुदयान्मधुरगम्भीरोदारः स्वरो भवति तत्सुस्वरनाम २७ । यदुदयात्स्वरमिन्न-  
हीनदीनः स्वरो भवति तद्दुस्वरनाम २८ । यदुदयात्सर्वस्य प्रियः प्रह्लादकारी भवति तत्सुभग-  
नाम २९ । तद्विपरीतं दुःखनाम ३० । यदुदयेन यत्किञ्चिदपि ब्रुवाण उपादेयवचनो भवति  
सर्वस्य तदादेयनाम ३१ । यदुदयेन तु युक्तमपि ब्रुवाणः परिहार्यवचनो भवति तदनादेयनाम

३२ । सर्वदिग्गामिनी पराक्रमकृता वा सर्वजनोत्कीर्त्तनीयगुणता यश्च उच्यते, एकदिग्गामिनी तु दानपुण्यकृता वा कीर्त्तिः, यश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, ते यदुदयाद्भवतस्तद्यशःकीर्त्तिनाम ३३ । तद्विपर्ययादयशःकीर्त्तिनाम ३४ । सर्वप्राणिनां शरीराणि यदुदयान्नैकान्तगुरूणि नैकान्तलघूनि भवन्ति तद्गुरुलघुनाम । एकान्तगुरुत्वे हि वोढुमशक्यानि स्युः, एकान्तलघुत्वे तु वायुनाऽपि ह्यिमाणानि धारयितुं न पायैरन् ३५ । स्वशरीरावयवैरेव नखादिभिः शरीरान्तर्वर्द्धमानैर्यदुदयादुपहन्यते पीडयते तदुपघातनाम ३६ । यदुदयात् परानाहन्ति दुष्प्रभृष्यतया शरीराकृतेरभिभवति तत्पराघातनाम ३७ । यदुदयादुच्छ्वासलब्धिरात्मनो भवति तदुच्छ्वासनाम । सर्वलब्धीनां क्षायोपशमिकत्वादौदयिकी लब्धिर्न संभवति १, इति चेत् नैतदस्ति, वैक्रियाहारकलब्धीनामौदायिकीनामपि संभवात् । वीर्यान्तरायक्षयोपशमोऽपि च तत्र निमिचीभवतीति सत्यप्यौदयिकत्वे क्षायोपशमिकव्यपदेशोऽपि न विरुष्यत एव । सतीमपि चोच्छ्वासनामोदयजनितामुच्छ्वसनलब्धिरात्मा व्यापारयितुं न शक्नुयात् शक्तिविशेषरूपामुच्छ्वासपर्याप्तिमन्तरेण, यथा हि वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितां सतीमपि वाग्व्यापारात्मिकां वाग्वीर्यलब्धिं व्यापारयितुं न शक्नोति 'भाषापर्याप्तिमन्तरेण, इत्यसावपि वाग्वीर्यलब्धेः पृथगिष्यते । यथा वा ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयोपशमजनितां सतीमपि मनोव्यापारात्मिकां पर्यालोचनवीर्यलब्धिं व्यापारयितुं न शक्नोति मनःपर्याप्तिमन्तरेण इत्यसावपि मनोवीर्यलब्धेः पृथगिष्यत एव । तथोच्छ्वासनामोदयजनितायामुच्छ्वासलब्धौ सत्यामप्युच्छ्वासपर्याप्तिरेपितव्या ३८ । यदुदयाज्जन्तुशरीराण्यत्युष्णप्रकाशलक्षणमातपं प्रकुर्वन्ति तदातपनाम । तदुदयश्च रविविम्बादौ पार्थिवशरीष्वेव न शेषेषु, वह्निज्वालाप्रभादिषुष्णप्रकाशरूपत्वे सत्यप्यातपो न भवति, किं तर्हि ? तेजोजन्तुशरीराण्येव, तत्र तूष्णत्वमुष्णस्पर्शनामोदयात्, प्रकाशरूपत्वं तु लोहितवर्णनामोदयादवसेयमिति ३९ । यदुदयाज्जन्तुशरीरमनुष्णप्रकाशात्मकमुद्धोतं प्रकरोति । यथा यतिदेवोत्तरवैक्रियचन्द्रर्क्षग्रहतारारत्नौषधिमणिप्रभृतयस्तदुद्धोतनाम ४० । यदुदयाच्छरीरेष्वङ्गप्रत्यङ्गानां प्रतिनियतस्थानवृत्तिता भवति तत्क्षत्रधारकल्पं निर्माणनाम । तदभावे हि तद्भृतककल्पैरङ्गोपाङ्गनामादिभिर्निवृत्तानामपि शिरउरउदरादीनां स्थानवृत्तेरनियमः स्यात् ४१ यदुदयाज्जीवः सदेवमनुजासुरलोकपूज्यमुत्तमोत्तमं पदं धर्मतीर्थस्य प्रवर्त्तयितृत्वमवाप्नोति तत्तीर्थकरनाम ४२ । इत्युक्तं नाम ६ ॥ गां वाचं त्रायत इति गोत्रम् । तत्पुनः प्राणिनामुच्चैर्नीचैर्भावलक्षणः कर्मविशेषोदयजनितः पर्यायविशेषः । स ह्युत्तमाधमादिशब्दरूपां स्वार्थप्रतिपादनप्रवृत्तां प्रवृत्तिनिमिचीभवन्वाचं रक्षति तदर्थाभिधायित्वेन पालयति । अथवा 'गुड् शब्दे' इत्यस्माद्धातोः ष्टन् । गूयते संशब्दयते प्रधानाधमादिरूपतयाऽनेनेति गोत्रम् । तथाविधविपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रम्, तच्च

स्थावराः पृथिव्यादय एकेन्द्रियाः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि स्थावरनाम । तेजोवायुनां तु स्थावरनामोदयेऽपि स्वाभाविकं चलनम् १६ । यस्योदयाजीवा वादराः स्थूरा भवन्ति तद्वादरनाम । न चेह चाक्षुषत्वं वादरत्वमिष्टं, वादरभ्यान्देकैकस्य पृथिव्यादिशरीरस्य च जुषन्वाभावात् । यद्यपि चैतजीवविपाकि वादरनाम तथापि शरीरेऽभिव्यक्ति क्रियतीमपि दर्शयति । 'यथा क्रोघ उदितो रक्तनेत्रभ्रुकुटीभङ्गश्चवदनत्वादिकमिति । तेन पृथिव्यादीनां वादराणां बहूनां समेतानां चाक्षुषत्वं भवति. न तु सूक्ष्माणामिति १७ । यस्योदयान्मूक्ष्माः पृथिव्यादयः पञ्च भवन्ति तत्सूक्ष्मनाम १८ । पर्याप्तिगाहारादिपुद्गलउल्लिखग्रहणपरिणमनहेतुः पुद्गलोपचयजः शक्तिविशेषः । सा च साध्यभेदेन षोडा । यया ह्याहारमात्मा गृहीत्वा खलमसतया परिणमयति सा शक्तिरहारपर्याप्तिः । यया रमीभूतमाहारं सप्तधातुतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः । यया तु धातुभूतमिन्द्रियतया परिणमयति सेन्द्रियपर्याप्तिः । यया तूच्छ्वामप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादायोच्छ्वासतयाऽऽलम्ब्य मुञ्चति सोच्छ्वामपर्याप्तिः । यया तु भाषाप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादाय भाषात्वेनावलम्ब्य मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः । यया तु मनःप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादाय मनस्तयाऽऽलम्ब्य मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः । इत्येताः यथासंख्यमेकेन्द्रियविकलेन्द्रियमंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चतुष्पञ्चपर्यसङ्ख्याः पर्याप्तयो यस्योदयाद्भवन्ति तत्पर्याप्तकनाम । येषां हि पर्याप्तयः सन्ति ते पर्याप्ताः, मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः, पर्याप्ता एव पर्याप्तकाः । तद्भाविपाकवेद्यं कर्मापि पर्याप्तकनाम । ननु च शरीरपर्याप्त्यैव शरीरं भविष्यति तत्किं शरीरनाम्ना १. नैतदस्ति, साध्यभेदात्, शरीरनाम्नो हि जीवेन गृहीतानां पुद्गलानामौदारिकादित्वेन परिणतिः माध्या, शरीरपर्याप्तेस्तु प्रागात्मनाऽऽरब्धस्य शरीरस्य परिसमाप्तिरिति १९ । ता एव षड् यथास्वं शक्तयो विकला अपर्याप्तयस्ता यस्योदयाद्भवन्ति तदपर्याप्तकनाम, शब्दव्युत्पत्तिः पूर्ववत् २० यस्योदयात्प्रत्येकं शरीरं भवति, एकैकस्य जीवस्यैकैकं शरीरमित्यर्थः, तत्प्रत्येकनाम २१ । यस्योदयादनन्तानां जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति तत्साधारणनाम २२ । यदुदयादस्थ्यादयः शरीरावयवाः स्थिरा निश्चला भवन्ति तत्स्थिरनाम २३ । यदुदयाजिह्वादिबद्धस्थिरा भवन्ति तदस्थिरनाम २४ । यदुदयान्नामेरुपरि शुभाः शरीरावयवा भवन्ति तच्छुभनाम, शिरःप्रभृतिना हि स्पृष्टस्तुच्यति पादादिभिस्तु रूप्यति २५ । यदुदयान्नामेरुधोऽशुभाः शरीरावयवा भवन्ति तदशुभनाम २६ । यदुदयान्मधुरगर्भारोदारः स्वरो भवति तत्सुस्वरनाम २७ । यदुदयात्खरमिह्रहीनदीनः स्वरो भवति तदुच्चरनाम २८ । यदुदयात्सर्वस्य प्रियः प्रह्लादकारी भवति तत्सुभगनाम २९ । तद्विपरीतं दुःखगनाम ३० । यदुदयेन यत्किञ्चिदपि ब्रुवाण उपादेयवचनो भवति सर्वस्व तदादेयनाम ३१ । यदुदयेन तु युक्तमपि ब्रुवाणः परिहार्यवचनो भवति तदनादेयनाम



३९ । सर्वदिग्गामिनी पराक्रमकृता वा सर्वजनोत्कीर्त्तनीयगुणता यश उच्यते, एकदिग्गामिनी तु दानपुण्यकृता वा कीर्त्तिः, यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, ते यदुदयाद्भवतस्तद्यशःकीर्त्तिनाम ३३ । तद्विपर्ययादयशःकीर्त्तिनाम ३४ । सर्वप्राणिनां शरीराणि यदुदयान्नैकान्तगुरुणि नैकान्तलघूनि भवन्ति तदगुरुलघुनाम । एकान्तगुरुत्वे हि वोढुमशक्यानि स्युः, एकान्तलघुत्वे तु वायुनाऽपि द्वियमाणानि धारयितुं न पायैरन् ३५ । स्वशरीरावयवैरेव नखादिभिः शरीरान्तर्वर्द्धमानैर्यदुदयादुपहन्यते पीड्यते तदुपघातनाम ३६ । यदुदयात् परानाहन्ति दुष्प्रधृष्यतया शरीराकृतेरभिभवति तत्पराघातनाम ३७ । यदुदयादुच्छ्वासलब्धिरात्मनो भवति तदुच्छ्वासनाम । सर्वलब्धीनां क्षायोपशमिकत्वादौदयिकी लब्धिर्न संभवति १, इति चेत् नैतदस्ति, वैक्रियाहारकलब्धीनामौदायिकीनामपि संभवात् । वीर्यान्तरायक्षयोपशमोऽपि च तत्र निमित्तीभवतीति सत्यप्यौदयिकत्वे क्षायोपशमिकव्यपदेशोऽपि न विरुध्यत एव । सतीमपि चोच्छ्वासनामोदयजनितामुच्छ्वासनलब्धिमात्मा व्यापारयितुं न शक्नुयात् शक्तिविशेषरूपामुच्छ्वासपर्याप्तिमन्तरेण, यथा हि वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितां सतीमपि वाग्च्यापारात्मिकां वाग्वीर्यलब्धिं व्यापारयितुं न शक्नोति 'भाषापर्याप्तिमन्तरेण, इत्यसावपि वाग्वीर्यलब्धेः पृथगिष्यते । यथा वा ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयोपशमजनितां सतीमपि मनोव्यापारात्मिकां पर्यालोचनवीर्यलब्धिं व्यापारयितुं न शक्नोति मनःपर्याप्तिमन्तरेण इत्यसावपि मनोवीर्यलब्धेः पृथगिष्यते एव । तथोच्छ्वासनामोदयजनितायामुच्छ्वासलब्धौ सत्यामप्युच्छ्वासपर्याप्तिरेपितव्या ३८ । यदुदयाञ्जन्तुशरीराण्यत्युष्णप्रकाशरक्षणमातपं प्रकुर्वन्ति तदातपनाम । तदुदयश्च रविबिम्बादौ पार्थिवशरीष्वेव न शेषेषु, वह्निज्वालाप्रभादिषूष्णप्रकाशरूपत्वे सत्यप्यातपो न भवति, किं नहि ? तेजोञ्जन्तुशरीराण्येव, तत्र तूष्णत्वमुष्णस्पर्शनामोदयात्, प्रकाशरूपत्वं तु लोहितवर्णनामोदयादवसेयमिति ३९ । यदुदयाञ्जन्तुशरीरमनुष्णप्रकाशात्मकमुद्धोतं प्रकरोति । यथा यतिदेवोत्तरवैक्रियचन्द्रर्क्षग्रहतारारत्नौषधिमणिप्रभृतयस्तदुद्धोतनाम ४० । यदुदयाच्छरीरेष्वङ्गप्रत्यङ्गानां प्रतिनियतस्थानवृत्तिता भवति तत्सूत्रधारकल्पं निर्माणनाम । तदभावे हि तद्भृतककल्पैरङ्गोपाङ्गनामादिभिर्निर्भृत्तानामपि शिरउरउद्रादीनां स्थानवृत्तेरनियमः स्यात् ४१ यदुदयाञ्जीवः सदेवमनुजासुरलोकपूज्यमुत्तमोत्तमं पदं धर्मतीर्थस्य प्रवर्त्तयितृत्वमवाप्नोति तत्तीर्थकरनाम ४२ । इत्युक्तं नाम ६ ॥ गां वाचं त्रायत इति गोत्रम् । तत्पुनः प्राणिनामुच्चैर्नीचैर्भवलक्षणः कर्मविशेषोदयजनितः पर्यायविशेषः । स ह्युत्तमाधमादिशब्दरूपां स्वार्थप्रतिपादनप्रवृत्तां प्रवृत्तिनिमित्तीभवन् वाचं रक्षति तदर्थाभिधायित्वेन पालयति । अथवा 'गुञ् शब्दे' इत्यस्माद्धातोः ष्टन् । गूयते संशब्दयते प्रधानाधमादिरूपतयाऽनेनेति गोत्रम् । तथाविधविपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रम्, तच्च

द्विधा—उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ च । तत्रोच्चैर्गोत्रमष्टधा वेद्यते, जातिकुलवलरूपतपैश्वर्यश्रु-  
तलामैः १ । तद्विपर्ययात्तु नीचैर्गोत्रम् २ । निर्गुणोऽपि हि जातिवशादुत्तम इति जनैः पूज्यते ।  
जातिहीनस्तु गुणवानपि निन्द्यते तथा कुलादिष्वपि वाच्यम् उक्तं द्विविधं गोत्रम् ७ ॥ जीवं  
चार्थसाधनं चान्तरा एति पततीत्यन्तरायम् । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विन्नीभूय  
त्रिचाले पततीत्यर्थः । तत्पञ्चधा—दानस्यान्तरायं दानान्तरायमित्यादि । सति दातव्ये वस्तुनि  
समागते च गुणवति पात्रे दानस्य च कल्याणकं फलविशेषं विद्वानपि यदुदयाद्दातुं नोत्सहते  
तदानान्तरायम् १ प्रसिद्धादपि सर्वप्रदादातुः गृहे च विद्यमानं देयमर्थजातं याश्चाङ्कुशलो याच-  
मानो गुणवानपि यदुदयात्न लभते तल्लभान्तरायम् २ । सकृद्भुज्यत इति भोगः, आहारमान्य-  
विलेपनादिः । पुनः पुनर्भुज्यत इत्युपभोगः शयनवसनवनिर्ताभूषणादिस्तस्यान्तरायम्, भोग्य-  
शुपभोग्यं वा विद्यमानमनुपहृताङ्कोऽपि यदुदयात्न शक्नोति भोक्तुम्युपभोक्तुं वा तद्भोगान्तराय-  
शुपभोगान्तरायं च वेदितव्यम् ३ । ४ । वीर्यं शक्तिरुत्साहः सामर्थ्यमिति चोच्यते, तस्यान्त-  
रायं विघातकं वीर्यान्तरायम् । यदुदयादनुपहतपीनाङ्कोऽपि शक्तिविकलो भवति तद्वीर्यान्तरायम्  
५ । इत्युक्तं पञ्चविधमन्तरायम् ८ ॥ कृता च प्रकृतिवर्णना । व्याख्यातं च मूलोत्तरप्रकृति-  
संख्याप्रतिपादकं गाथाद्वयम् ॥ ९ ॥ १० ॥

इदानीं कास्ता मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु षोडशाधाः कर्मप्रकृतयो बन्धादीन् प्रतीत्य  
व्यवच्छिन्नाः १ इति प्रदर्शयन्नाह—

मिच्छ नपुंसगवेयं, नरयाउं तह य चेव नरयदुगं ।

इगविगलिदिय'जाई, हुंडमसंपत्तमायावं ॥११॥

थावर सुहुमं च तहा, साहारणयं तहा अपज्जत्तं ।

एया सोलस पयडी, मिच्छंमि य बंधवोच्छेओ ॥१२॥

मिथ्यात्वं नपुंसकवेदः नरकायुष्कं 'तह य नरयदुगं' इति, नरकगतिनाम 'नरकगत्या-  
नुपूर्वीनाम 'इगविगलिदियजाई' इति, एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः त्रीन्द्रियजातिः चतुरि-  
न्द्रियजातिः हुण्डं संस्थानं 'असंप्राप्तं' सेवार्चसंहननं आतपनाम स्थावरनाम छक्ष्मनाम साधा-  
रणनाम अपर्याप्तनाम, 'एया सोलस पयडी' इति, विभक्तिव्यत्ययादेतासां षोडशानां प्रकृ-  
तीनां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्यवच्छेदो भवति, एतत्प्रकृतिबन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययत्वात्,  
तस्य चोत्तरत्रामावात् ॥११॥ १२॥

थीणतिगं इत्थी वि य, अण तिरियाउं तहेव तिरियदुगं ।  
मज्झिम चउ संठाणं, मज्झिम चउ चेव संघयणं ॥१३॥  
उज्जोयमप्पसत्था, 'विहायगइ दूभगं अणाएज्जं ।  
दूसर नीयागोयं, सासणसम्मम्मि वोच्छिन्ना ॥१४॥

'थीणतिगं' इति, निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला २ स्त्यानगृद्धिः ३ स्त्रीवेदः ४ 'अण' इति, अनन्तानुबन्धनश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः ८ तिर्यगायुष्कं ९ 'तहेव तिरियदुगं' इति, तिर्यग्गतिनाम १० तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम ११ 'मज्झिम चउ संठाणं मज्झिम चउ चेव संघयणं' इति, प्रथमचरमवर्जानि मध्यमानि चत्वारि चत्वारि संस्थानसंहननानि । तानि चामूनिन्यग्रो-  
घपरिमण्डलप्रस्थानं सादिसंस्थानं वामनसंस्थानं कुब्जसंस्थानं ऋपभनाराचसंहननं नाराचसंह-  
ननं अर्द्धनाराचसंहननं कीलिकासंहननं चेति, उद्घोतनाम अप्रशस्तविहायोगतिः दुर्भगं अनादेयं  
दुस्वरं नीचैर्गोत्रम्, इत्येताः पञ्चविंशतिः कर्मप्रकृतयो बन्धं प्रतीत्य सासादनसम्यग्दृष्टौ व्यव-  
च्छिन्नाः । अनन्तानुबन्धयुदयप्रत्ययत्वादेतद्बन्धस्य तदभावादुत्तरेष्विति ॥१३॥१४॥

बीयकसायचउक्कं, मणुयाउं मणुयदुग य ओरालं ।

तस्स य अंगोवंगं, संघयणाई अविरयंमि ॥१५॥

'बीयकसायचउक्कं' इत्यप्रत्याख्यानावरणाश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः मनुष्यायुष्कं  
'मणुयदुग य' इति, मनुष्यगतिर्मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीरं 'तस्स य अंगोवंगं' इति,  
औदारिकाङ्गोपाङ्गं 'संघयणाई' इति, संहननानामादिप्रकृतिर्वर्षभनाराचसंहननम्, इत्येता  
दश प्रकृतयोऽविरतसम्यग्दृष्टौ व्यवच्छिन्ना इति वर्तते । बन्धं प्रतीत्येति च प्रकरणाद्भ्रम्यते ।  
तत्र द्वितीयकषायचतुष्कं तदुदयाभावात् बध्नाति देशविरतादिः । कषाया क्षनन्तानुबन्धिवर्जा  
वेद्यमाना एव बध्यन्ते, "जे वेयइ ते बंधति" इतिवचनात् । अनन्तानुबन्धनस्तु चतुर्विंशति-  
मोहसत्कर्माऽनन्तवियोजको मिथ्यात्वं गतो बन्धावलिकामात्रं कालमनुदितान् बध्नाति । मनु-  
ष्यायुरादित्रयं त्वेकान्तेन मनुष्यवेद्यमेव । औदारिकादित्रयं तु मनुष्यतिर्यगेकान्तवेद्यमेव । देश-  
विरतादिस्तु देवगतिवेद्यमेव बध्नाति, नान्यत् । तेनैतद्दृशकमविरत एव व्यवच्छिन्नम् । सम्य-  
ग्मिथ्यादृष्टौ न कस्यचिद्बन्धव्यवच्छेदः, तस्याविरतसम्यग्दृष्टिना सह बन्धहेत्वविशेषात् ॥१५॥

तइयकसायचउक्कं, विरयाविरयंमि बंधवोच्छेओ ।

'अस्मायमरइसोयं, तह चेव य अथिरमसुभं च ॥१६॥

१ "विहाइगइदूमयं" इत्यपि पाठः । २ "दुवय" इत्यपि पाठः । ३ "अस्साइअरइसोगं" इत्यपि पाठः ।

द्विधा—उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ च । तत्रोच्चैर्गोत्रमष्टधा वेद्यते, जातिकुलवलरूपतपैश्वर्यश्रु-  
 तलामैः १ । तद्विपर्ययात्तु नीचैर्गोत्रम् २ । निर्गुणोऽपि हि जातिवशादुत्तम इति जनैः पूज्यते ।  
 जातिहीनस्तु गुणवानपि निन्द्यते तथा कुलादिष्वपि वाच्यम् उक्तं द्विविधं गोत्रम् ७ ॥ जीवं  
 चार्थसाधनं चान्तरा एति पततीत्यन्तरायम् । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विभीभूय  
 विचाले पततीत्यर्थः । तत्पञ्चधा—दानस्यान्तरायं दानान्तरायमित्यादि । सति दातव्ये वस्तुनि  
 समागते च गुणवति पात्रे दानस्य च कल्याणकं फलविशेषं विद्वानपि यदुदयाद्वातुं नोत्सहते  
 तद्दानान्तरायम् १ प्रसिद्धादपि सर्वप्रदाद्वातुः गृहे च विद्यमानं देयमर्थजातं याश्चाकुशलो याच-  
 मानो गुणवानपि यदुदयात् लभते तल्लामान्तरायम् २ । सकृद्भुज्यत इति भोगः, आहारमाख्य-  
 विलेपनादिः । पुनः पुनर्भुज्यत इत्युपभोगः शयनवसनवनिर्ताभूषणादिस्तस्यान्तरायम्, भोग्य-  
 मुपभोग्यं वा विद्यमानमनुपहताङ्गोऽपि यदुदयात् शक्नोति भोक्तुमुपभोक्तुं वा तद्भोगान्तराय-  
 मुपभोगान्तरायं च वेदितव्यम् ३ । ४ । वीर्यं शक्तिरुत्साहः सामर्थ्यमिति चोच्यते, तस्यान्त-  
 रायं विघातकं वीर्यान्तरायम् । यदुदयादनुपहतापीनाङ्गोऽपि शक्तिविकलो भवति तद्वीर्यान्तरायम्  
 ५ । इत्युक्तं पञ्चविधमन्तरायम् ८ ॥ कृता च प्रकृतिवर्णना । व्याख्यातं च मूलोत्तरप्रकृति-  
 संख्याप्रतिपादकं गाथाद्वयम् ॥ ९ ॥ १० ॥

इदानीं कास्ता मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु षोडशाद्याः कर्मप्रकृतयो बन्धादीन् प्रतीत्य  
 व्यवच्छिन्नाः १ इति प्रदर्शयन्नाह—

मिच्छ नपुंसगवेयं, नरयातं तह य चेव नरयदुगं ।  
 इगविगलिदिय जाई, हुंडमसंपत्तमायावं ॥११॥  
 थावर सुहुमं च तहा, साहारणयं तहा अपज्जत्तं ।  
 एया सोलस पयडी, मिच्छंमि य बंधवोच्छेओ ॥१२॥

मिथ्यात्वं नपुंसकवेदः नरकाद्युक्तं 'तह य नरयदुगं' इति, नरकगतिनाम 'नरकगत्या-  
 नुपूर्वीनाम 'इगविगलिदिय जाई' इति, एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः त्रीन्द्रियजातिः चतुरि-  
 न्द्रियजातिः हुण्डं संस्थानं 'असंप्राप्तं' सेवार्चसंहननं आतपनाम स्थावराणां स्रक्ष्मनां साधा-  
 रणाणां अपर्याप्तनाम, 'एया सोलस पयडी' इति, विभक्तिव्यत्ययादेतासां षोडशानां प्रकृ-  
 तीनां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्यवच्छेदो भवति, एतत्प्रकृतिबन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययत्वात्,  
 तस्य चोत्तरप्राभावात् ॥११ ॥ १२॥

द्विधा—उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ च । तत्रोच्चैर्गोत्रमष्टधा वेद्यते, जातिकुलबलरूपतपसैश्वर्यश्रु-  
 तलामैः १ । तद्विपर्ययात्तु नीचैर्गोत्रम् २ । निर्गुणोऽपि हि जातिवशादुत्तम इति जनैः पूज्यते ।  
 जातिहीनस्तु गुणवानपि निन्द्यते तथा कुलादिष्वपि वाच्यम् उक्तं द्विविधं गोत्रम् ७ ॥ जीवं  
 चार्थसाधनं चान्तरा एति पततीत्यन्तरायम् । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विघ्नीभूय  
 विचाले पततीत्यर्थः । तत्पञ्चधा—दानस्यान्तरायं दानान्तरायमित्यादि । सति दातव्ये वस्तुनि  
 समागते च गुणवति पात्रे दानस्य च कल्याणकं फलविशेषं विद्वानपि यदुदयादातुं नोत्सहते  
 तद्दानान्तरायम् १ प्रसिद्धादपि सर्वप्रदादातुः गृहे च विद्यमानं देयमर्थजातं याञ्चाक्लृश्लो याच-  
 मानो गुणवानपि यदुदयात् लभते तल्लामान्तरायम् २ । सकृद्भूज्यत इति भोगः, आहारमाख्य-  
 विलेपनादिः । पुनः पुनर्भूज्यत इत्युपभोगः शयनवसनवनिर्ताभूषणादिस्तस्यान्तरायम्, भोग्य-  
 मुपभोग्यं वा विद्यमानमनुपहताङ्गोऽपि यदुदयात् शक्नोति भोक्तुमुपभोक्तुं वा तद्भोगान्तराय-  
 मुपभोगान्तरायं च वेदितव्यम् ३ । ४ । वीर्यं शक्तिरुत्साहः सामर्थ्यमिति चोच्यते, तस्यान्त-  
 रायं विघातकं वीर्यान्तरायम् । यदुदयादनुपहतपीनाङ्गोऽपि शक्तिविकलो भवति तद्वीर्यान्तरायम्  
 ५ । इत्युक्तं पञ्चविधमन्तरायम् ८ ॥ कृता च प्रकृतिवर्णना । व्याख्यातं च मूलोत्तरप्रकृति-  
 संख्याप्रतिपादकं गाथाद्वयम् ॥ ९ ॥ १० ॥

इदानीं कास्ता मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु षोडशाद्याः कर्मप्रकृतयो बन्धादीन् प्रतीत्य  
 ध्यवच्छिन्नाः १ इति प्रदर्शयन्नाह—

मिच्छ नपुंसगवेयं, नरयातं तह य चेव नरयदुगं ।

इगविगलिदिय'जाई, हुंडमसंपत्तमायावं ॥११॥

थावर सुहुमं च तहा, साहारणयं तहा अपज्जत्तं ।

एया सोलस पयडी, मिच्छंमि य बंधवोच्छेओ ॥१२॥

मिथ्यात्वं नपुंसकवेदः नरकायुष्कं 'तह य नरयदुगं' इति, नरकगतिनाम 'नरकगत्या-  
 नुपूर्वीनाम 'इगविगलिदियजाई' इति, एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः त्रीन्द्रियजातिः चतुरि-  
 न्द्रियजातिः हुण्डं संस्थानं 'असंप्राप्तं' सेवार्चसंहननं आतपनाम स्थावरनाम सूक्ष्मनाम साधा-  
 रणनाम अपर्याप्तनाम, 'एया सोलस पयडी' इति, विभक्तिव्यत्ययादेतासां षोडशानां प्रकृ-  
 तीनां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्यवच्छेदो भवति, एतत्प्रकृतिबन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययत्वात्,  
 तस्य चोत्तरत्राभावात् ॥११॥ १२॥

थीणतिगं इत्थी वि य, अण तिरियाउं तहेव तिरियदुगं ।  
मज्झिम चउ संठाणं, मज्झिम चउ चेव संघयणं ॥१३॥  
उज्जोयमप्पसत्था, विहायगइ दूभगं अणाएज्जं ।  
दूसर नीयागोयं, सासणसम्मम्मि वोच्छिन्ना ॥१४॥

‘थीण तिगं’ इति, निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला २ स्त्यानगृद्धिः ३ स्त्रीवेदः ४ ‘अण’ इति, अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः ८ तिर्यगायुष्कं ९ ‘तहेव तिरियदुगं’ इति, तिर्य-  
गतिनाम १० तिर्यगत्यानुपूर्वीनाम ११ ‘मज्झिम चउ संठाणं मज्झिम चउ चेव संघयणं’  
इति, प्रथमचरमवर्जानि मध्यमानि चत्वारि चत्वारि संस्थानसंहननानि । तानि चामूनिन्यग्रो-  
घपरिमण्डलसंस्थानं सादिसंस्थानं वामनसंस्थानं कुब्जसंस्थानं ऋपभनाराचसंहननं नाराचसंह-  
ननं अर्द्धनाराचसंहननं कीलिकासंहननं चेति, उद्द्योतनाम अप्रशस्तविहायोगतिः दुर्भगं अनादेयं  
दुस्वरं नीचैर्गोत्रम्, इत्येताः पञ्चविंशतिः कर्मप्रकृतयो बन्धं प्रतीत्य सासादनसम्यग्दृष्टौ व्यव-  
च्छिन्नाः । अनन्तानुबन्धुदयप्रत्ययत्वादेतद्बन्धस्य तदभावादुत्तरेष्विति ॥१३॥१४॥

वीयकसायचउक्कं, मणुयाउं मणुय<sup>३</sup>दुग य ओरालं ।  
तस्स य अंगोवंगं, संघयणाई अविरयंमि ॥१५॥

‘वीयकसायचउक्कं’ इत्यप्रत्याख्यानावरणाश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः मनुष्यायुष्कं  
‘मणुयदुग य’ इति, मनुष्यगतिर्भुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीरं ‘तस्स य अंगोवंगं’ इति,  
औदारिकाङ्गोपाङ्गं ‘संघयणाई’ इति, संहननानामादिप्रकृतिर्वर्जभनाराचसंहननम्, इत्येता  
दश प्रकृतयोऽविरतसम्यग्दृष्टौ व्यवच्छिन्ना इति वर्तते । बन्धं प्रतीत्येति च प्रकरणाद्गम्यते ।  
तत्र द्वितीयकषायचतुष्कं तदुदयाभावात् बध्नाति देशविरतादिः । कषाया ह्यनन्तानुबन्धिवर्जा  
वेद्यमाना एव बध्यन्ते, “जे वेद्यइ ते बंधन्ति” इतिवचनात् । अनन्तानुबन्धिनस्तु चतुर्विंशति-  
मोहसत्कर्माऽनन्तवियोजको मिथ्यात्वं गतो बन्धावलिकामात्रं कालमनुदितान् बध्नाति । मनु-  
ष्याथुरादित्रयं त्वेकान्तेन मनुष्यवेद्यमेव । औदारिकादित्रयं तु मनुष्यतिर्यगेकान्तवेद्यमेव । देश-  
विरतादिस्तु देवगतिवेद्यमेव बध्नाति, नान्यत् । तेनैतद्दशकमविरत एव व्यवच्छिन्नम् । सम्य-  
ग्मिथ्यादृष्टौ न कस्यचिद्बन्धव्यवच्छेदः, तस्याविरतसम्यग्दृष्टिना सह बन्धहेत्वविशेषात् ॥१५॥

तइयकसायचउक्कं, विरयाविरयंमि बंधवांच्छेओ ।  
अस्मायमरइसोयं, तह चेव य अथिरमसुभं च ॥१६॥

अज्जसकित्ती य तहा, पमत्तविरयंमि बंधवोच्छेओ ।

'देवाउयं च एगं, नायव्वं अप्पमत्तांमि ॥ १७ ॥

तद्येत्यादि गाथापूर्वाद्विम् । 'तद्दयकसायच्चउक्कं' इति, प्रत्याख्यानावरणानां क्रोधमान-  
मायालोभानां देशविरतेर्वन्धव्यवच्छेदः, तदुत्तरेषु तेषामुदयाभावादनुदितानां चावन्धात्प्राग्वत् ॥

'अस्साय' इत्यादि पश्चाद्विम् । 'अज्जसकित्ती' इत्यादि पूर्वाद्विम् । असातवेदनीयं अरतिः  
शोकः अस्थिरनाम अशुभनाम ॥१६॥ अयशःकीर्तिनाम, इत्येतासां पण्णां प्रकृतीनां प्रमत्तविर-  
तेर्वन्धव्यवच्छेदः, तद्वन्धस्य प्रसादप्रत्ययत्वात्, प्रसादस्य चोत्तरत्रामात्रात् ॥

'देवाउयं' इत्यादि पश्चाद्विम्, देवायुष्कमेकं ज्ञातव्यं, अप्रमत्ते बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छि-  
न्नम् । १ देवायुष्कबन्धं हि प्रमत्तः २ सन्नारमते, तद्वन्धाद्वायामेव कश्चिदप्रमत्तो भूत्वा समाप-  
यति, न त्वप्रमत्त एवारमते । तदुत्तरेषु तद्वन्धासंभव एव, तेषामत्यन्तविशुद्धत्वात्, आयुषश्च  
घोलनापरिणामेनैव बन्धात् ॥१७॥

निहापयला य तहा, अपुव्वपढमंमि बंधवोच्छेओ ।

देवदुगं पंचिदिय-उरालवज्जं चउसरीरं ॥ १८ ॥

समचउरं वेउव्विय-आहारय अंगुवंगनामं च ।

वण्णचउक्कं च तहा, अगुरुयलहुयं च चत्तारि ॥१९॥

तसचउपसत्थमेव य, विहायगइ थिरसुभं च नायव्वं ।

सुहयं सुस्सरमेव य, आप्पज्जं चैव निमिणं च ॥२०॥

तित्थयरमेव तीसं, अपुव्वल्लभागबंधवोच्छेओ ।

हासरइभयदुगुंछा, अपुव्वचरमंमि वोच्छिन्ना ॥२१॥

निहेति गाथाचतुष्कं । अपूर्वकरणाद्वायाः सप्त भागाः क्रियन्ते । तत्र प्रथमे भागे निद्रा-  
प्रचलयोर्वन्धव्यवच्छेदः । तदुत्तरत्र तद्वन्धाध्यवसायस्थानामावाद्, उत्तरेष्वपि चायमेव हेतुर-  
नुसरणीयः । 'देवदुगं' इति, देवगतिर्देवानुपूर्वी पञ्चेन्द्रियजातिः 'उरालवज्जं चउसरीरं'  
इति, वैक्रियं आहारकं तैजसं कार्मणं, समचतुरस्रसंस्थानं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं आहारकाङ्गोपाङ्गम्  
'वण्णचउक्कं च तहा' इति, वर्णो गन्धो रसः स्पर्शः, 'अगुरुयलहुयं च चत्तारि' इति,  
अगुरुलघु उपघातं पराघातं उच्छ्वासनाम चेति, 'तस चउ' इति, व्रतं वादरं पर्याप्तकं, प्रत्येकं,  
'पसत्थमेव य विहायगइ' इति, प्रशस्ता विहायोगतिः, स्थिरं शुभं च ज्ञातव्यम्, सुमगं  
सुस्वरं आदेयं निर्माणं तीर्थकरनाम, च. इत्येतासां त्रिंशतः कर्मप्रकृतीनामपूर्वकरणस्य

१ "देवाउगं च एककं तहापमत्तम्मि नायव्वं" । इत्यपि पाठः । २ "तदायु०" इत्यपि पाठः । ३ "सन्ना-  
रभ्य त०" इति वा पाठः । ४ "चैव" (?) इत्यपि पाठः । ५ "चरिमम्मि" इत्यपि पाठः ।

'छन्भाग' इति, षष्ठे सप्तभागे बन्धव्यवच्छेदः । हास्यरतिभयजुगुप्साश्चतस्रः प्रकृतयोऽपूर्वकरण-  
चरमे सप्तभागे बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ॥१८॥१९॥२०॥२१॥

पुरिसं चउसंजलणं, पंच य पयडीओ पंच 'भागमि ।

अनियट्टीअद्धाए, जहकमं बंधवोच्छेओ ॥२२॥

पुरुषं कर्म पुरुषवेदः, 'चउ संजलणं' इति, चत्वारः संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः,  
इत्येतासां पञ्चानां प्रकृतीनां 'पञ्च भागमि' इति, पञ्चसु भागेष्वनिवृत्त्यद्वायाः 'यथाक्रमं'  
यथासंख्यमेकैकस्मिन् भागे एकैकस्याः प्रकृतेर्वन्धव्यवच्छेदः । पुरुषवेदादीनां मायासंज्वलना-  
न्तानामुत्तरत्र तद्वन्धाध्यवसायस्थानाभावः, व्यवच्छेदहेतुलोभसंज्वलनस्य (संज्वलनलोभस्य)  
तु बादरसम्परायप्रत्ययो बन्धः, स चोत्तरत्र नास्तीत्यतो व्यवच्छेदः ॥२२॥

नाणंतरायदसगं दंसण चत्तारि उच्चजसकित्ती ।

एया सोलस पयडी, सुहुमकसारंमि वोच्छिन्ना ॥२३॥

'नाणंतरायदसगं' इति, ज्ञानावरणं पञ्चविधमन्तरायं पञ्चविधं, 'दंसण चत्तारि'  
इति, दर्शनावरणानि चत्वारि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणाख्यानि, उच्चैर्गोत्रं, यशःकीर्तिः,  
इत्येताः षोडश प्रकृतयः स्रक्षमकषाये बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः । एतद्वन्धस्य साम्परायिकत्वा-  
दुत्तरेषु च सम्परायस्य कषायोदयलक्षणस्याभावात् ॥२३॥

उवसंतखीणमोहे, 'जोगिमि उ साय बंधवोच्छेओ ।

नायव्वो पयडीणं, बंधस्संतो अणंतो 'य ॥२४॥

॥ बंधो सम्मत्तो ॥

उवसंतेत्यादि । उपशान्तमोहे क्षीणमोहे सयोगिकेवलनि च सातवेदनीयस्य बन्धव्यव-  
च्छेदः । तदुत्तरस्मिन्नयोगिकेवलनि तद्वन्धप्रत्ययस्य योगस्याभावात्, इत्येवं ज्ञातव्यः प्रकृतीनां  
बन्धस्यान्तोऽनन्तश्च । यत्र हि गुणस्थाने यासां प्रकृतीनां बन्धहेतुव्यवच्छेदस्तत्र तासां बन्ध-  
स्यान्तः, यथा मिथ्यादृष्टिव्यवच्छिन्नबन्धानां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषा-  
ययोगाः समुदिता बन्धहेतवः, तेषु मध्ये मिथ्यात्वं तत्रैव व्यवच्छिन्नम् । ततश्च मिथ्यादृष्टिगुण-  
स्थाने तासां बन्धस्यान्तः तत उत्तरेषु कारणवैकल्येन बन्धाभावादितरासां बन्धस्यानन्तः । तत  
उत्तरेष्वपि तद्वन्धकारणसाकल्येन बन्धभावात् इत्येवमन्येष्वपि गुणस्थानेषु प्रकृतीनां स्वस्व-  
बन्धहेतूनां व्यवच्छेदाव्यवच्छेदाभ्यां साकल्यवैकल्यवशाद्वन्धस्यान्तोऽनन्तश्च भावनीयः ॥२४॥

॥ इति बन्धाधिकारः समाप्तः ॥

१ "मायम्मि" इत्यपि पाठः । २ "सुहुमसारागम्मि" इत्यपि पाठः । ३ "सजोइन्मी साय" इत्यपि  
पाठः । ४ "वा" इत्यपि पाठः ।



अथेदानीं कास्ताः पञ्चाधाः कर्मप्रकृतयो यासां मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु दयव्यवच्छेदः ?

इत्याह—

मिच्छतं आयावं सुहुम अपज्जतया य तह चेव ।

साहारणं च पंच य, मिच्छंमि य उदयवोच्छेओ ॥२५॥

मिथ्यात्वं आतपनाम सूक्ष्मनाम अपर्याप्तकनाम साधारणं च, इत्यासां पञ्चानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्ट्यादुदयव्यवच्छेदः । मिथ्यात्वोदयस्तावन्मिथ्यादृष्टेरेव भवति, तेनोत्तरेषु तदुदयाभावः । आतपनामोदयस्तु बादरपृथिवीकायिकेष्वेव । अपर्याप्तनाम्नस्तु सर्वेष्वपर्याप्तकेषु । सूक्ष्मनाम्नः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु । साधारणनाम्नोऽनन्तकायिकवनस्पतिषु । न चैतेषु स्थितो जीवः सासादनादित्वं लभते, नापि पूर्वप्रतिपन्नस्तेषुत्पद्यते । सासादनरतु यद्यपि बादरपर्याप्तकैकेन्द्रियेषुत्पद्यते तथाऽपि न तस्यातपनामोदयसंभवः, तत्रोत्पन्नमात्रस्यासमाप्तशरीरस्यैव सासादनत्ववमनात् । समाप्ते च शरीरे तत्रातपनामोदयो भवति, तेनैतासां मिथ्यादृष्टौ व्यवच्छेद उदयस्य ॥२५॥

अण एगिंदियजाई, विगलिंदियजाइमेव थावरयं ।

एया नव पयडीओ, सासणसम्मंमि वोच्छिन्ना ॥२६॥

‘अण’ इति अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः, एकेन्द्रियजातिः, ‘विगलिंदियजाइमेव’ इति विकलानि पञ्चम्य ऊनानि इन्द्रियाणि येषां ते विकलेन्द्रिया द्वीन्द्रियादयस्तेषां जातयस्तिष्ठः, तद्यथा—द्वीन्द्रियजातिः, त्रीन्द्रियजातिः, चतुरिन्द्रियजातिः, स्थावरनाम, इत्येता नव प्रकृतयः सासादनसम्यग्दृष्ट्यादुदयं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः । अनन्तानुबन्धिनामुदये सम्यक्त्वलाभो न भवति, “पहमिल्लुयाण उदए, नियमा संजोयणा कसायाणं । सम्महसणलम, भवसिदुर्घायावि न लभंति ॥१॥” इतिवचनात् । नापि सम्यह्मिथ्यात्वं कोऽप्यनन्तानुबन्ध्युदये गच्छति । योऽपि पूर्वप्रतिपन्नसम्यक्त्वोऽनन्तानुबन्धिनामुदयं करोति सोऽपि सासादन एव भवतीत्युत्तरेष्वासासमुदयाभावः । शेषास्त्वेकेन्द्रियजात्यादयो यथास्वमेकेन्द्रियविकलेन्द्रियवेद्या एव । उत्तरगुणस्थानानि तु संक्षिपञ्चेन्द्रिया एव प्रतिपद्यन्ते । पूर्वप्रतिपन्नोऽपि पञ्चेन्द्रियेष्वेव गच्छति अन उत्तरेष्वासासमुदयाभावः । । ततश्च सासादन एवोदयव्यवच्छेदः ॥२६॥

सम्मा मिच्छत्तेगं, सम्मामिच्छमि उदयवोच्छेओ ।

बीयकमायचउक्कं. तह चेव य नरयदेवाऊ ॥२७॥

मणुयतिरियाणुपुव्वी. वेउव्वियछक्क 'दूहयं' चेव ।

अणएज्जं चेव तहा, अज्जसकित्ती अविरयंमि ॥२८॥

पूर्वाद्धम् । सम्यङ्मिथ्यात्वस्यैकस्य सम्यङ्मिथ्यादृष्टावुदयच्यवच्छेदः । तद्दये हि मम्य-  
ङ्मिथ्यादृष्टिरेव भवति नान्य इति ॥

'बोधकसायचउक्कं' इति, अप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः । देवायुः नर-  
कायुः मनुजानुपूर्वी, तिर्यगानुपूर्वी 'वेउच्चियच्छक' इति वैक्रियेण युक्तं पृक्तं वैक्रियपृक्तम्-  
वैक्रियशरीरं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं नरकगतिः नरकानुपूर्वी देवगतिः देवानुपूर्वीति । दुर्मगं, अनादेयं,  
अयज्ञःकीर्त्तिः, इत्येताः सप्तदश प्रकृतय उदयं प्रतीत्याविरतसम्यग्दृष्टौ व्यवच्छिन्नाः । द्वितीय-  
कषायोदये देशविरतेरपि लाभः श्रुते प्रतिपिद्धः, 'बोधकसायाणुदये' इत्यादिना । नापि पूर्व-  
प्रतिपन्नदेशविरत्यादेर्जीवस्य तदुदयसंभवः, तेनोत्तरेषु तदुदयाभावः । देवनरकायुषी देवगतिद्वयं  
नरकगतिद्वयं च यथास्वं देवनारकवेद्यमेव, न च तेषु देशविरत्यादेः संभवः । वैक्रियशरीरवैक्रि-  
याङ्गोपाङ्गनाम्नोस्तु देवनारकेषुदयः । तिर्यङ्मनुष्येषु त्वप्राचुर्येणाविरतसम्यग्दृष्टयन्तेषु । यस्तू-  
त्तरगुणस्थानेष्वपि केषाञ्चिदागमे विष्णुकुमारस्थूलभद्रादीनां वैक्रियद्वितियस्योदयः श्रूयते, स  
इहाचार्येण न विवक्षितः, किं प्रविरलतरत्वात्, आहोस्विदन्यः कोऽप्यभिप्रायः १, इति न विद्मः  
तिर्यङ्मनुजानुपूर्व्योस्तु परमवादिसमयेषु त्रिष्वपान्तरालगतावुदयसंभवः, स च यथायोगं तिर्य-  
ङ्मनुष्याणां वर्षाष्टकादुपरिष्ठात्संभविषु देशविरत्यादिगुणस्थानेषु न संभवति । दुर्मगमनादेयम-  
यज्ञःकीर्त्तिरित्येतास्तु तिस्रः प्रकृतयो देशविरतादीनां गुणप्रत्ययाभोद्धन्तीत्यत एता अविरते व्य-  
वच्छिन्नाः ॥२७॥२८॥

तद्वयकसायचउक्कं, 'तिरियाऊ तह य चव तिरियगई ।

उज्जोय 'नीयगोयं, विरयाविरयंमि वोच्छिन्ना ॥२९॥

'तृतीयकषायचतुष्कं' इति, प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधादयः, तिर्यगायुः, तिर्यगतिः,  
उद्योतं, नीचचैर्गोत्रम्, इत्येता अष्टौ प्रकृतय उदयं प्रतीत्य विरताविरते व्यवच्छिन्नाः । विरत-  
श्चासौ स्थूलप्राणातिपातादेरविरतश्च सूक्ष्मप्राणातिपातादेर्विरताविरतो=निवृत्तानिवृत्तो देशविरत  
इत्यर्थः । तृतीयकषायोदये हि चारित्रलामो न भवति, "तद्वयकसायाणुदय" इत्यादिवच-  
नात् । न च पूर्वप्रतिपन्नचारित्रस्य तदुदयसंभव इत्युत्तरेषु तदुदयाभावः । तिर्यगायुस्तिर्यगतिरु-  
द्योतनाम इत्येताः स्वभावतस्तिर्यग्भेदा एव । तेषु च देशविरतान्तान्येव गुणस्थानानि संभवन्ति  
नोत्तराणि इत्युत्तरेषु तदुदयाभावः । उद्योतनाम्नस्तु यतिवैक्रियेऽप्युदयसंभवः । तथा चोक्तम्-  
"उत्तरवेउध्व देषजति" इति, स त्विहाचार्येण वैक्रियोदयवन्न विवक्षितः । नीचैर्गोत्रं तु  
तिर्यक्षु गतिस्वामाव्याद्भ्रुवौदयिकं न परावर्तते । ततश्च देशविरतस्यापि तिरयो नीचैर्गोत्रोदयो-  
ऽस्त्येव । मनुजेषु तु सर्वस्य देशविरतादेर्गुणिनो गुणप्रत्ययादुच्चैर्गोत्रमेवोदेतीति उत्तरत्र नीचै-  
र्गोत्रोदयाभावः । ततश्चैता अष्टावपि देशविरत एवोदयं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ॥२९॥

१ "तिरियाऊं तद्वय चव तिरियगई" इत्यपि पाठः । २ "निवृत्त" इत्यपि पाठः ।

थीणतिगं चैव तहा, आहारदुगं पमत्तविरयंमि ।

सम्मत्तं संघयणं, अंतिमतिगमप्पमत्तंमि ॥३०॥

पूर्वाद्धम् । स्त्यानधित्रयं पूर्वोक्तम्, तथा 'आहारकद्वयं' आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गाख्यम्, इत्येतद् प्रकृतिपञ्चकं प्रमत्तविरते व्यवच्छिन्नमुदयं प्रतीत्य । तत्र स्त्यानद्धित्रयोदयः प्रमादरूपत्वादप्रमत्ते न संभवति । आहारकं च शरीरं विकुर्वाणो यतिरवश्यं प्रमादवशगो भवति । यत्त्विदमन्यत्र श्रूयते—प्रमत्तयतिराहारकं विकृत्य पश्चाद्विशुद्धिवशात्तत्रस्थ एवाप्रमत्तता यातीति तदाचार्येण वैक्रियोदयन्यायेन न विवक्षितम् ॥

'सम्मत्तं' इत्यादि पश्चाद्धम् । सम्यक्त्वं, तथा 'संहननानामन्त्यत्रयं' इति, अर्द्धनाराचकीलिकासेवार्त्ताख्यं, इत्येताश्चतस्रः प्रकृतय उदयं प्रतीत्याप्रमत्ते व्यवच्छिन्नाः । तत्र सम्यक्त्वे क्षपिते उपशमिते वा श्रेणिद्वयमारुह्यत इत्यपूर्वकरणादौ तदुदयाभावः । चरमसंहननत्रयोदये तु श्रेणिरारोहं न शक्यते, तथाविधविशुद्धेरभावादित्युत्तरेषु तदुदयाभावः ॥३०॥

तह नोकसायल्लकं, अपुव्वकरणंमि उदयवोच्छेओ ।

वेयतिग कोह'माणामायासंजलणमनियट्टी ॥३१॥

पूर्वाद्धम् । नोकषायपट्टकस्य हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साख्यस्यापूर्वकरणे उदयव्यवच्छेदः । संक्लिष्टतरपरिणामवेद्यत्वादुत्तरेषां च विशुद्धतरपरिणामत्वात्तेषु तदुदयाभाव इति, उत्तरेष्वप्ययमुदयव्यवच्छेदो हेतुरनुसरणीयः ॥

'वेयतिग' इत्यादिपश्चाद्धम् । वेदत्रिकं स्त्रीवेदपुंवेदनपुंसकवेदाख्यम्, क्रोधमानमायाः संज्वलनाख्यः, इत्यस्य प्रकृतिषट्कस्यानिवृत्तिवादरसम्पराये उदयव्यवच्छेदः । तत्र स्त्रियाः श्रेणिमारोहन्त्याः स्त्रीवेदस्य प्रथममुदयव्यवच्छेदः, ततः क्रमेण संज्वलनत्रयस्य, पुंसोऽप्येवम्, नवरं प्रथमं पुंवेदस्य, नपुंसकस्य तु प्रथमं नपुंसकवेदस्य ॥३१॥

संजलणलोभमेगं, सुहुमकसायंमि उदयवोच्छेओ ।

तह रिसहं नारायं, नारायं चैव उवसंते ॥३२॥

पूर्वाद्धम् । संज्वलनलोभस्यैकस्य सूक्ष्मकषाये उदयव्यवच्छेदः । तदुत्तरेष्वस्योदयाभावः, उपशान्तत्वात्क्षीणत्वाद्वा ॥

'तह रिसहं' इति पश्चाद्धम् । ऋषभनाराचं द्वितीयं संहननं नाराचं तृतीयमित्यनयोरुपशान्तमोहे उदयव्यवच्छेदः । प्रथमसंहननेनैव क्षपकश्रेण्यारोहणात्क्षीणमोहादौ तदुदयाभावः । उपशमश्रेणिस्तु प्रथमसंहननत्रयेणारुह्यते ॥३२॥

निद्रा पयला य तथा, खीणदुचरिममि उदयवोच्छेदो ।  
नाणंतरायदमगं, दंमण चत्तारि चरिममि ॥३३॥

निद्राप्रचलयोः क्षीणकपायस्य द्विचरमसमये उदयव्यवच्छेदः । चरमसमये तु क्षीणत्वा-  
त्तदुदयाभावः । अपरे पुनराहुः—उपशान्तमोहे निद्राप्रचलयोरुदयव्यवच्छेदः । पञ्चानामपि हि  
निद्राणां घोलनपरिणामे भवत्युदयः । क्षपकाणां त्वतिविशुद्धत्वात् न निद्रोदयसंभवः । उपशम-  
कानां पुनरनतिविशुद्धत्वात्स्यादपीति । 'नाणंतरायदमगं' इति, ज्ञानावरणे पञ्च, अन्तराये  
पञ्च, दर्शनावरणानि चत्वारि चक्षुर्दर्शनावरणादीनि, इत्येतासां चतुर्दशानां प्रकृतीनां क्षीण-  
कपायचरमसमये उदयव्यवच्छेदः, तदनन्तरं क्षयादिति ॥३३॥

'अन्नयरवेयणीयं', ओरालियतेयकम्मनामं च ।

छच्चेव य संठाणा, ओरालियअंगुवंगं च ॥३४॥

'आइमसंघयणं खलु, वण्णचउक्कं च दो विहायगती ।

अगुरुयलहुयचउक्कं. पत्तेयथिराथिरं चव ॥३५॥

सुभसुस्सरजुयलावि य, निमिणं च तथा हवंति नायव्वा ।

एया तीसं पयडी, सजोगिचरिममि वोच्छिन्ना ॥३६॥

गाथात्रयम् । 'अन्यतरवेदनीयं' सातमसातं वा यदयोगिगुणस्थाने न वेदयिष्यते ।  
औदारिकशरीरं तैजसशरीरं कार्मणशरीरम्, 'छच्चेव य संठाणा' पद संस्थानानि समचतुरस्रा-  
दीनि, 'ओरालियअंगुवंगं च' इति, औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम, 'आइमसंघननं' वर्ज्यमनारा-  
चम् 'घर्णचतुष्कं' वर्णगन्धरसस्पर्शाख्यम्, 'दो विहायगती' इति, प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती  
इति, 'अगुरुलहुयचउक्कं' अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासाख्यम्, प्रत्येकं स्थिरं अस्थिरं,  
'सुभसुस्सरजुयलावि य' इति, शुभं अशुभं सुस्वरं दुःस्वरं निर्माणम्, इत्येतास्त्रिंशत्  
प्रकृतय उदयं प्रतीत्य सयोगिचरमसमये व्यवच्छिन्नाः । तत्रान्यतरवेदनीयं यदयोगिगुणस्थाने न  
वेदयितव्यं तत्सयोगिचरमसमये व्यवच्छिन्नोदयं भवति, पुनरुत्तरत्रोदयाभावात् । सुस्वरदुःस्वर-  
नाम्नोस्तु भाषापुद्गलविपाकित्वाद्वाग्योगिनामेवोदयः, शेषाणां शरीरपुद्गलविपाकित्वात्काययो-  
गिनामेव । तेन हि योगेन तत्पुद्गलग्रहणपरिणामालम्बनानि, ततस्तेषु गृहीतेषु पुद्गलेष्वेतेषां  
कर्मणां स्वस्वविपाकेनोदयो भवति, तेनायोगिनि योगाभावात्तदुदयाभावः ॥३४॥३५॥३६॥

'अन्नयरवेयणीय' मणुयाऊ मणुयगइ य बोद्धव्वा ।  
 पंचिदियजाई वि य, तस सुभगा<sup>१</sup>एज्जपज्जत्तं ॥३७॥  
 बायरजसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोययं<sup>२</sup> चैव ।  
 एया बारस पयडी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥३८॥

॥ उदओ सम्मत्तो ॥

गाथाद्वयम् ॥ 'अन्यतरवेदनीयं' सातमसातं वा, यदुदयावस्थं मनुष्यायुः मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिः त्रसं सुभगं आदेयं पर्याप्तं बादरं यशःकीर्तिः तीर्थकरं उच्चैर्गोत्रम्, इत्येता द्वादश प्रकृतयो भवस्थायोगिचरमसमये व्यवच्छिन्ना उदयमाश्रित्य क्षयादुत्तरत्रोदयाभावः ॥३७॥३८॥

॥ इत्युदयाधिकारः ॥

इदानीं कास्ताः पञ्चनवाधाः कर्मप्रकृतयो यासां गुणस्थानेषु दीरणव्यवच्छेदः ? इत्येतदतिदेशद्वारेणाह—

उदयस्सुदीरणाए, सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।

मोत्तूण तिन्नि ठाणे, पमत्तजोगी अजोगी य ॥३९॥

उदयस्योदीरणस्य च इत्यनयोरभिहितलक्षणयोः 'स्वामित्वात्' स्वामित्वमाश्रित्य, कर्मप्रकृतीनामिति गम्यते । न विद्यते विशेषः संख्यान्वूनाधिकत्वकृतो भेदः । किमुक्तं भवति— यावतीनां प्रकृतीनां यो मिथ्यादृष्ट्यादिवेदयिता स तावतीनामुदीरयिता-ऽपीति, अतिप्रसङ्गनिवृत्त्यर्थमपवादमाह—मुक्त्वा त्रीणि स्थानानि प्रमत्तयतिसयोग्ययोगिगुणस्थानकारख्यानीति ॥३९॥

तेषु तु यो विशेषस्तमाह—

तीसं बारस उदए, केवल्लिणो मेलणं च काऊण ।

सायासायं च तहा 'मणुयाउं अवणियं' किच्चा ॥४०॥

त्रिंशत् द्वादश च यथासंख्यं प्रकृतय उदयव्यवच्छेदमाश्रित्य, केषाम् ? इत्याह—केवल्लिनां सयोगिनामयोगिनां च । ततश्च तासां त्रिंशतो द्वादशानां च प्रकृतीनां मीलनं कृत्वा द्विचत्वारिंशति जातायां सातमसातं च तथा मनुष्यायुरित्येतत् प्रकृतित्रयमपनीतं कृत्वा ॥४०॥

ततः—

सेसं इगुयालीसं, 'जोगिमि उदीरणा य बोद्धव्वा ।

अवणीय तिन्नि पयडी, 'पमत्त उदयंमि पक्खित्ता ॥४१॥

१ "अन्नयरं वेअणीयं मणुयाउं मणुयगती य" इत्यपि पाठः । २ "उच्च" इत्यपि पाठः । ३ "मणुयाऊमवणियं" (?) इत्यपि पाठः । ४ "सजोगम्मि" इत्यपि । ५ "पमत्तधिरियम्मि" इत्यपि पाठः ।

शेषमपनीतस्य किं भवति ? एकोनचत्वारिंशत् प्रकृतयः, तासां सयोगिगुणस्थाने उदी-  
रणा बोद्धव्या । अपनीय तिस्रः प्रकृतीः प्रमत्तयतेरुदये व्यवच्छिन्नस्य प्रकृतिपञ्चकस्य संवन्धिनि  
प्रक्षिप्ताः । सातासातमनुजायुषां हि प्रमादसहितेनैव योगेनोदीरणा भवति, नान्येन । इत्युत्तरेषु  
तदुदीरणाया अभावः ॥४१॥

ततश्च किं भवति—

तह चैव अट्ट पयडी, पमत्तविरए उदीरणा होइ ।

नत्थित्ति अजोगिजिणे, उदीरणा होइ नायव्वा ॥४२॥

॥ उदीरणा सम्मत्ता ॥

तथा चैवं सत्यष्टानां प्रकृतीनां प्रमत्तविरते व्यवच्छेदमधिकृत्योदीरणा भवति, अष्टानामुदी-  
रणव्यवच्छेदो भवतीत्यर्थः । नास्तीत्ययोगिजिणे उदीरणा ज्ञातव्या भवति, योगाभावात् । उदी-  
रणा हि योगविशेषरूपः करणविशेषः ॥४२॥

॥ इत्युदीरणाधिकारः ॥

इदानीं प्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदाधिकारोद्दिष्टाः प्रकृतीरानुपूर्व्या प्रतिनिर्दिशति—

अणमिच्छमीससम्मं, 'अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।

सुरनरयतिरियआउं, निययभवे सव्वजीवाणं ॥४३॥

पूर्वव्याख्यातैव गाथा । पूर्वमुद्देशाधिकारोक्ताऽपि पुनरिह प्रकृतिनिर्देशप्रसङ्गेन पठिता  
स्युत्यर्थं विस्मरणशीलानामिति ॥४३॥

यीणतिगं चैव तहा, नरयदुगं चैव तह य तिरियदुगं ।

इगिगिगलिंदियजाई, आयावुज्जोयथावरयं ॥४४॥

प्राग्भवव्यवच्छिन्नायुक्षयसत्ताकः सभिविरताद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु क्षपितदर्शनसप्तको  
यतिरप्रमत्तः प्रतिसमयानन्तगुणविशुद्धिविषुद्ध्यात्मकयथाप्रवृत्तकरणबलेनापूर्वकरणं प्रविश्य तत्र  
चातिशयवद्विशुद्धिवशात्कर्माणि क्षपणयोग्यतामापाद्यानिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानं प्रविशति ।  
तत्र च प्रथममेव द्वितीयतृतीयान्तौ कषायान् क्षपयितुमारमते, तेषु चार्द्धक्षपितेष्वेताः षोडश  
प्रकृतीकृत्सादयति । तद्यथा—'सयानच्छिअयं' प्रागुक्तम्, 'नरयदुगं चैव तह य तिरिय-  
दुगं' इति, नरकगतिर्नरकानुपूर्वी, तिर्यग्गतिरितर्यगानुपूर्वी, 'इगिगिगलिंदियजाई' इति, एके-  
न्द्रियजातिस्तथा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातयस्तिः, आतपमुद्योतं स्थावरम् ॥४४॥

साहारण सुहुमं चिय, सोलस पयडीओ<sup>१</sup> ह्योति नायव्वा ।  
बीयकसायचउक्कं, तइयकमायं च<sup>२</sup> अट्टेव ॥४५॥

साधारणं सूक्ष्मं, इत्येताः षोडश प्रकृतयः प्रागुद्दिष्टाः सत्ताव्यवच्छेदमधिकृत्य भवन्ति ज्ञातव्याः । तासां च क्षयानन्तरं शेषमष्टकं क्षपयति, तच्चेदं—द्वितीयकषायचतुष्कम्, तृतीय-कषायाश्च चत्वार इति ॥४५॥

एगनपुंसगवेयं, इत्थीवेयं तहेव एगं च ।

तह नोकसायळक्कं, पुरिसं कोहं च माणं च ॥४६॥

ततश्चैको नपुंसकवेदः सत्तां प्रतीत्य व्यवच्छिन्नो ज्ञातव्यः । ततः स्त्रीवेद एकः, ततः 'नोकषायषट्कं' हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साख्यम्, ततः पुरुषवेदः, ततः संज्वलनः क्रोधः, ततः संज्वलनो मानः, सत्ताव्यवच्छेदमधिकृत्य ज्ञातव्यः ॥४६॥

मायं चिय अनियट्टी, भागं गंतूण संतवोच्छेओ ।

लोहं चिय संजलणं, सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥४७॥

पूर्वार्द्धम् ॥ मायायाश्च संज्वलनाया अनिशुच्यद्वाया भागं गत्वा सत्ताव्यवच्छेदः । अनि-वृत्त्यद्वाभागं गत्वेत्येतद् पूर्वेष्वपि षोडशाष्टकैकादिष्वपेक्षणीयम् ।

'लोभं चिय' इत्यादिपश्चार्द्धम् । लोभस्य संज्वलनस्य सूक्ष्मकषाये सत्तामधिकृत्य व्यव-च्छेदः ॥४७॥

खीणकसायदुचरिमे, निहं पयलं च हणइ छउमत्थो ।

नाणंतरायदसगं दंसणचत्तारि चरिमंमि ॥४८॥

क्षीणकषायो द्विचरमे समये निर्दां प्रचलां च हन्ति, छन्नस्थः सन्नित्यतो द्विचरमसमये तयोः सत्ताव्यवच्छेदः । तथा ज्ञानावरणं पञ्चविधम्, अन्तरायं पञ्चविधम्, इत्येतद्दशकम्, दर्शनावरणानि चत्वारि, इत्येताश्चतुर्दश प्रकृतीः क्षीणकषायच्छन्नस्थश्चरमसमये हन्तीत्यतस्तत्र तासां व्यवच्छेदः ॥४८॥

देवदुग पणसरीरं, पंचसरीरस्स बंधणं चेव ।

पंचेव य संघाया, संठाणा तह यळक्कं च ॥४९॥

तिन्नि य अंगोवंगा, संघयणं तह य होइळक्कं च ।

पंचेव य वण्णरसा, दो गंधा अट्ट फासा य ॥५०॥

१ "चिय" इत्यपि । २ "हुंति" इत्यपि । ३ "अट्टं च" इत्यपि पाठः । ४ "कोहा य माणा य" इत्यपि पाठः । ५ "सुहुमसरागस्मि" इत्यपि पाठः । ६ "निहा पयळा हणइ" इत्यपि पाठः । ७ "वण्णरसा" इत्यपि पाठः ।

अगुरुयलहुयचउक्कं, विहायगइदुग थिराथिरं चैव ।

‘सुहसुस्सरजुयलावि य, पत्तेयं दूमगं अजसं ॥५१॥

अणएज्जं निर्माणं चिय, अपजत्तं तह य ‘नीयगोयं’ च ।

‘अन्नयरवेयणियं’ अजोगिदुचरमंमि वोच्छिण्णा ॥५२॥

गाथाचतुष्टयम् ॥ देवगतिदेवानुपूर्वी । पञ्च शरीराण्यौदारिकादीनि । पञ्चशरीरस्यादारिकादेर्वन्धनान्यौदारिकबन्धनादीनि । पञ्च संघातनामान्यौदारिकसङ्घातादीनि । संस्थानपट्टकं षट्प्रकारं समचतुरस्रादि । त्रीण्यङ्गोपाङ्गनामान्यौदारिकाङ्गोपाङ्गादीनि । संहननपट्टकं षट्प्रकारं वज्रर्षमनाराचादि । ‘पंचैव य षण्णरसा’ इति, पञ्च वर्णनामानि कृष्णादीनि, पञ्चरसनामानि तिक्तादीनि । द्वे गन्धनामनी सुरभि असुरभि च । अष्टौ स्पर्शनामानि कर्कशादीनि । ‘अगुरुयलहुयचउक्कं’ इति, अगुरुलघुपघातपराघातोच्छ्रयासाख्यं चतुष्कम् । ‘विहायगइदुग’ इति, प्रशस्तविहायोगतिरप्रशस्तविहायोगतिः, इत्येतद्विक्रमं स्थिरमस्थिरं ‘सुहसुस्सरजुयलावि य’ इति, शुभमशुभं सुस्वरं दुःस्वरमिति । प्रत्येकं दुर्भगमयज्ञःकीर्तिरनादेयं निर्माणमपर्याप्तकं नीचैर्गोत्रमन्यतरवेदनीयमनुदयावस्थं सातमसातं वा । इत्येता द्वासप्ततिः प्रकृतयः सत्तामधिकृत्यायोगिद्विचरमसमये व्यवच्छिन्नाः । सर्वा अपि ह्येता अनुदयावस्थाः । ततश्च यद्यपि मयोगिना योगनिरोधं कुर्वता सर्वासामघातिप्रकृतीनां कालतः समैव गुणश्रेणिरुपरचिता तथाऽप्यनुदयावस्थप्रकृतीनां चरमसमये दलिकमुदयवतीषु स्तिष्ठकसंक्रमेण संक्रान्तत्वात् आत्मानुभावतो नास्ति । तेन द्विचरमसमये तत्सत्ताव्यवच्छेदः ॥४९॥५०॥५१॥५२॥

‘अन्नयरवेयणीयं’, मणुयाऊ मणुयदुवय बोद्धव्वा ।

पंचिदियजाईवि य, तससुभगाएज्जपजत्तं ॥५३॥

बायरजसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चैव ।

एया तेरस पयडी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥५४॥

॥ सत्ता सम्मत्ता ॥

गाथाद्वयम् ॥ अन्यतरवेदनीयं सातमसातं वा, यदुदयावस्थं मनुष्यायुः, ‘मणुयदुवय बोद्धव्वा’ मनुजद्वितयं मनुजगतिः मनुष्यानुपूर्वी पञ्चेन्द्रियजातिः असं सुभगं आदेयं पर्याप्तं वादरं यज्ञःकीर्तिस्तीर्थकरं उच्चैर्गोत्रम्, इत्येतास्त्रयोदश प्रकृतयोऽयोगिचरमसमये व्यवच्छिन्नाः सत्तामधिकृत्य । अपरेषां पुनराचार्याणां मतेन—मनुजानुपूर्व्या द्विचरमसमये सत्ताव्यवच्छेदः उदयाभावात् । उदयवतीनां हि द्वादशानां स्तिष्ठकसङ्क्रामाभावात्त्वानुमवे दलिकं चरमसमयेऽपि दृश्यत

१ “सुमसुस्सरजुगलदुगं पत्तेयं दूमगं” इत्यपि पाठः । २ “नीयगुत्तं च” इत्यपि पाठः । ३ “अन्नयरं चैवणीयं अजोगिदुचरिमंमि वोच्छिन्ना” इत्यपि पाठः । ४ “अन्नयरं” इत्यपि पाठः ।



एवेति युक्तस्तासां चरमसमये व्यवच्छेदः । आनुपूर्वीनाम्नां चतुर्णामपि क्षेत्रविपाकित्वाद्भवान्तरापा-  
न्तरालगतावेवोदयस्तेन भवस्थस्य नास्ति तदुदयः । तदभावाच्चायोगिद्विचरमसमये मनुजानुपू-  
र्व्या अपि सत्ताव्यवच्छेदः । ततश्च तन्मतेनोल्लिङ्गनगाथादावेवं पाठो द्रष्टव्यः—‘तेवत्तरिं कुच-  
रिमे षारसचरमे अजोगिणो खीणे’ इति । तथा—“अणएज्जनिमिणमणुयाणुपुण्डिपञ्च-  
सय च नोयं च” । तथा—“मणुयाऊ मणुयगइ य षोख्खवा” । तथा—“एया षारस  
पयड्ढी अजोगिचरिमंमि वोच्छिञ्जा” इति । तथा चेहाप्युदयाधिकारे द्वादशानामयोगिन्यु-  
दय उक्तः ‘षारस उदये अजोगंता’ ॥५३॥५४॥

॥ इति सत्ताधिकारः ॥

तदेवं भगवता क्रमेण गुणस्थानान्यारोहता संपादितं कर्मप्रकृतिबन्धोदयोदीरणासत्ताव्य-  
वच्छेदाख्यं गुणमभिष्टुत्य स्तवकारः सर्वकर्मबन्धादिव्यवच्छेदोद्भवं भगवतो निरतिशयं गुणं  
दर्शयन्नात्मनः प्रशस्ताध्यवसायप्रवृत्तिहेतुं प्रार्थनाविशेषमाह—

सो मे तिहुयणमहिओ, सिद्धो बुद्धो निरंजणो निच्चो ।

दिसउ वरनाण'लंभं, दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५५॥

॥ कर्मस्तवः समाप्तः ॥

‘सः’ भगवानेवमात्मनः संपादितशुणातिशयः ‘मे’ मद्भ्यं दिशतु ज्ञानलाभादिकमिति  
संबन्धः । त्रिभुवनेन देवमनुजासुरलोकत्रयलक्षणेन महितः पूजितः, ‘सिद्धः’ निष्ठिताशेषप्रयो-  
जनः, ‘बुद्धः’ समस्तवस्तुविषयकेवलबोधमाह, ‘निरञ्जनः’ निर्गताशेषक्लिष्टकर्मप्रक्षणः,  
‘नित्यः’ ध्रुवः साद्यनिघनं कालं तत्पर्यायापरित्यागी ‘दिशतु’ ददातु वरश्रुतमं ज्ञानं सम्यग्-  
ज्ञानरूपं मतिज्ञानादिकेवलज्ञानान्तं तस्य लाभमप्राप्तप्राप्तिलक्षणम्, तथा दर्शनं सम्यक्त्वं तस्य  
शुद्धिं दर्शनमोहनीयकर्मापगमकृतं वैमल्यम्, तथा ‘समाधिं’ चारित्रविशुद्धात्मकमिति ॥५५॥  
स्मृत्यनुसारेण मया, यद्गदितमिहोनमधिकमागतः । तत्क्षन्तव्यं श्रुतशु-द्धबुद्धिमिः शोधनीयं च ॥१॥  
इति श्वेतपटाचार्य-गोविन्दगणिना कृता । कर्मस्तवस्य टीकेयं, देवनागगुरोर्गिरा ॥२॥  
अनुष्टुप्छन्दसा प्रायः, संकलय्यानुवर्णितम् । सहस्रमेकं श्लोकानां, नवत्युत्तरमेव च ॥३॥

॥ इति श्वेतपटाचार्यश्रीमद्गोविन्दगणिना कर्मस्तवटीका समाप्ता ॥

१ “लाभं” इत्यपि पाठः । २ ‘सर्वं, सुबु-” इत्यपि । ३ “यं श्रीगोविन्देन निनिता” इत्यपि पाठः ॥

समाप्तोऽयं सटीकः कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः

॥ ॐ ह्रीं अहं श्रीं शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

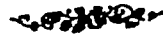
॥ न्यायाम्भोनिधि-प्रतिभाप्रतिकृति-श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

## बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः ।

श्रीमद्भरिभद्रसूरिविरचितव्याख्ययोपेतः ।



गत्यादिमार्गणास्थान-बन्धस्वामित्वदेशकम् ।

नत्वा वीरं जिनं वक्ष्ये, बन्धस्वामित्ववृत्तिकाम् ॥१॥

इह स्वपरोपकाराय यथार्थाभिधानं बन्धस्वामित्वप्रकरणमारिप्सुराचार्यो मङ्गलादिप्रति-  
पादकं गाथासूत्रमिदमाह—

नमिऊण वद्धमाणं, 'गइयाईठाणदेसयं सिद्धं' ।

गइयाइएसु 'वोच्छं, बंधस्सामित्तमोघेणं ॥१॥

(हारि०) व्याख्या-इह प्रथमाद्धेन मङ्गलं द्वितीयाद्धेनाभिधेयं साक्षादुक्तम् । प्रयोजनसंबन्धो तु सामर्थ्यगम्यौ, इति गाथासमुदायार्थः । अवयवार्थस्त्वयम्- 'वक्ष्ये' अभिधास्ये, किं तद् ? 'बन्ध-स्वामित्वं' मिथ्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिः कर्मपरमाणूनां जीवप्रदेशैः सह संबन्धो बन्धस्तस्य स्वामित्वमाधिपत्यं बन्धस्वामित्वं, जीवानामिति गम्यते । केषु ? 'गइयाइएसु' इति गत्यादिमार्गणास्थानेषु, केन ? 'धोघेन' सामान्येन, किं कृत्वा ? 'नत्वा' प्रणम्य, कम् ? 'वर्द्धमानं' स्व-कुलसमृद्धिद्विकारकत्वेन पितृभ्यां व्यवस्थापितैर्विधनामकं चरमतीर्थाधिपतिं, शेषजिनत्यागेन च वर्द्धमानग्रहणं वर्द्धमानतीर्थाधिपतित्वेन परमोपकारित्वात् । कीदृशम् ? गतिरादिर्येषां तानि गत्यादीनि तानि च तानि स्थानानि च गत्यादिस्थानानि तेषां देशकः प्रतिपादको गत्यादिस्थानदेशकस्तम् तथा सितं वद्धं ध्मातं भस्मसात्कृतमष्टप्रकारं कर्म येन स सिद्धस्तम् । इति गाथार्थः ॥१॥

गत्यादीन्येवाह—

गइ इंदिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य ।

संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सण्णि आहारे ॥२॥

१ "गइयाइष्टा०" इत्यपि पाठः । २ "वुच्छं" इत्यपि ।



॥ ॐ ह्रीं अहं श्रीं शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ न्यायाम्भोनिधि-प्रतिभाप्रतिकृति-श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

## बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः ।

श्रीमद्भरिभद्रसूरिविरचितव्याख्ययोपेतः ।



गत्यादिमार्गणास्थान-बन्धस्वामित्वदेशकम् ।

नत्वा वीरं जिनं वक्ष्ये, बन्धस्वामित्ववृत्तिकाम् ॥१॥

इह स्वपरोपकाराय यथार्थाभिधानं बन्धस्वामित्वप्रकरणमारिपुराचार्यो मङ्गलादिप्रतिपादकं गाथासूत्रमिदमाह—

नमिऊण वद्धमाणं, 'गइयाईठणदेसयं' सिद्धं ।

गइयाइएसु 'वोच्छं, बंधस्सामित्तमोघेणं ॥१॥

(हारि०) व्याख्या-इह प्रथमाद्धेन मङ्गलं द्वितीयाद्धेनाभिधेयं साक्षादुक्तम् । प्रयोजनसंबन्धी तु सामर्थ्यगम्यौ, इति गाथासमुदायार्थः । अवयवार्थस्त्वयम्-‘वक्ष्ये’अभिधास्ये, किं तद् ? ‘बन्ध-स्वामित्वं’मिध्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिः कर्मपरमाणूनां जीवप्रदेशैः सह संबन्धो बन्धस्तस्य स्वामित्वमाधिपत्यं बन्धस्वामित्वं, जीवानामिति गम्यते । केषु ? ‘गइयाइएसु’ इति गत्यादिमार्गणास्थानेषु, केन ? ‘ओघेन’ सामान्येन, किं कृत्वा ? ‘नत्वा’ प्रणम्य, कम् ? ‘वर्द्धमानं’ स्वकुलसमृद्धिद्विकारकत्वेन पितृभ्यां व्यवस्थापितैवंविधनामकं चरमतीर्थाधिपतिं, शेषजिनत्यागेन च वर्द्धमानग्रहणं वर्द्धमानतीर्थाधिपतित्वेन परमोपकारित्वात् । कीदृशम् ? गतिरादिर्येषां तानि गत्यादीनि तानि च तानि स्थानानि च गत्यादिस्थानानि तेषां देशकः प्रतिपादको गत्यादिस्थानदेशकस्तम् तथा सितं बद्धं आतं मस्मसात्कृतमष्टप्रकारं कर्म येन स सिद्धस्तम् । इति गाथार्थः ॥१॥

गत्यादीन्येवाह—

गइ इंदिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य ।

संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सण्णि आहारे ॥२॥

१ “गइयाइइहा०” इत्यपि पाठः । २ “वुच्छं” इत्यपि ।

(हारि०) व्याख्या—तत्र 'गतयो' नरकगत्याद्याश्चतस्रः । 'इन्द्रियाणि' स्पर्शनादीनि पञ्च । 'कायाः' पृथिव्यादयः षट् । 'योगाः' सत्यमनःप्रभृतयः पञ्चदश । 'वेदाः' स्त्रीवेदादयस्त्रयः । 'कषायाः' क्रोधादयश्चत्वारः 'ज्ञानानि' मतिज्ञानादीनि पञ्च । इहोपलक्षणत्वेन विपक्षस्यापि संग्रहादज्ञानान्यपि मत्यज्ञानादीनि त्रीणि ग्राह्याणि । एवमुत्तरत्रापि क्वाप्युपलक्षणव्याख्यानं द्रष्टव्यम् । ननु ज्ञाने प्रस्तुते उपलक्षणत्वेन किमर्थमज्ञानत्रयग्रहणं कृतम् ? सत्यं, सौम्य ! चतुर्दशमार्गणास्थानेषु प्रत्येकं सर्वसां सारिकसत्त्वसंग्रहार्थम् । तथा 'संयमः' सामायिकः दिः पञ्चप्रकारः । उपलक्षणत्वाद्देशमयमासंयमौ च, इत्येते सप्तात्रापि ग्राह्याः । 'दर्शनानि' चक्षुर्दर्शनादीनि चत्वारि । 'लक्ष्याः' कृष्णालेरयाद्याः षट् । भवपदेन भव्याभव्यौ द्वौ ग्राह्यौ । 'सम्यक्त्वानि' वेदकादीनि त्रीणि । संज्ञिपदेन संज्ञ्यसंज्ञिनौ द्वौ । आहारकपदेन आहारकानाहारकौ द्वौ गृहीतौ । इति द्वारगाथासमासार्थः ॥२॥

इह यद्यपि गत्यादिषु बन्धस्वामित्वं वक्ष्यामीति प्रागुक्तं तथाऽपि न तद्गुणस्थानकनिरपेक्षं वक्ष्यते । गुणस्थानकानामपि बन्धस्वामित्ववद्गत्याद्याश्रितत्वादिति गुणस्थानकानि । तथा गत्याद्याश्रितत्वेनैव सुरनिरयनरतिरश्चां पर्याप्तापर्याप्तकजीवस्थानयोरपि बन्धस्वामित्वस्य वक्ष्यमाणत्वादिति जीवस्थानानि च गतिषु दर्शयन्नाह—

गुणठाणा सुरनिरए, चउ पण 'तिरिएसु चउदस नरेसु ।

जीवट्टाणा तिरिए, चउदस सेसेसु 'दुग दुगं जाण ॥३॥ नीतिरियम

(हारि०) व्याख्या—इह यथासंभवं सर्वत्र लिङ्गव्यत्ययविभक्तिलोपादिकं प्राकृतत्वाद्द्रष्टव्यम् । ततश्च गुणस्थानकानि—“मिच्छे द्विष्टो सासा-यणे य तह सम्ममिच्छिद्विष्टो य । अविश्यसम्मद्विष्टो, विरयाविरए पमस्ते य ॥१॥ तत्तो य अप्पमस्ते, नियद्वि अनियद्विषायरे सुहुमे । उषसंतखीणभीहे, होइ सजोगो अजोगो य ॥२॥” इति नामकानि । एतानि च क्व कियन्ति भवन्ति ? इत्याह—सुरनारकयोश्चत्वारि प्रत्येकमाद्यानि जानीहि, इति संबन्धः । तथा पञ्च तिर्यक्षु आद्यान्येव । तथा चतुर्दश नरेषु । इति योजितानि चतसृष्वपि गतिषु गुणस्थानकानि, सम्प्रति तास्वेव जीवस्थानानि योजयन्नाह—जीवस्थानानि—“सुहुमा भायरं बेहं-दिया य तेइदिया य अउरिंयो । अस्सण्णी सण्णी खल्लु, अउदस पज्जत्त अपजत्ता ॥१॥” इत्येवंरूपाणि । एतानि च केषु कियन्ति भवन्ति ? इत्याह तिर्यक्षु चतुर्दश । 'शेषेष्ठ' सुरनरनारकेषु द्विकं द्विकं जीवस्थानयोरिति शेषः । पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं 'जानोहि' अवबुध्यस्वेति । ननु संमूर्च्छनजापर्याप्तलक्षणं नरेषु तृतीयमपि जीवस्थानकमस्ति तत्कथमत्र न गृहीतम् ? इत्यत्रोच्यते—तिर्यगग्रहणेन तेषां ग्रहणादिति न दोषः । इति गाथार्थः ॥३॥

इह बन्धस्वामित्वं वक्ष्य इत्युक्तम् । बन्धश्च कर्मप्रकृतीनां भवति, अतः शिष्यहितार्थं त्रेऽनुक्ता अपि प्रथमं प्रकृतयः सर्वाः प्ररूप्यन्ते, 'ताश्चैताः—“दसण १ नाणावरण २ न्तराय ३ मोहा ४ ऽऽउ ५ गोय ६ वेद्यणियं ७ । नामं ८ च नव १ पण २ पण . ऽऽवीस ४ षड ५ दु ६ दु ७ बियाल ८ विहं ॥१॥ नयणेयरोहिकेवल दंसणआरणयं भवे चउहा । निहापयलाहिं छहा, निहाइदुरुक्तथोणद्धी ॥२॥ नाणावरणं इहसुयआहिमणोनाणकेवलावरणं । विग्रं दाणे लाभे, भोगुवभोगेसु विरिए य ३॥ सोलस कसाय नव नोकसाय दंसणतिगं च मोहणियं । नरयतिरिनरसुराऊ, नोउच्चं सायमस्सायं ॥४॥ गइ १ जाइ २ तणु ३ उवंगा ४, बंधण ५ संघायणाणि ६ संघयणा ७ । संठाण ८ वण्ण ९ गंध १० रस ११ फास १३ अणुपुव्वि १४ विहगगई १४ ॥५॥ पिंढपयद्धि चउदस, परघाउज्जोयआयवुस्सासं । अगु-कल्लुत्थित्थनिमिणोवघायमिइ अट्ट पत्तेया ॥६॥ तसबायरपज्जत्तं, पत्तेय धिरं सुभं ष सुभगं ष । सुसराऽऽएज्जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥७॥ थावरसुहुम अपज्ज, साहारणअथिरअसुभहुभगाणि । दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥८॥ तसचउ धिरळ्ळं अथिरळ्ळं सुहुमतिग थावरचउळ्ळं । सुभगतिगाइविभासा, पयडोण तथाइ संखार्हिं ॥९॥ गइयाईण य कमसो, चउ १ पण २ पण ३ ति ४ पण ५ पंच ६ छ ७ छळ्ळं ८ । पण ९ दुग १० पण ११ ऽऽ १२ चउ १३ दुग १४—मिय उत्तरभेय पणसट्ठी ॥१०॥ निरयतिरिनरसुरगई, इगवियतियचउपणिदि जाईओ । ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइया ॥११॥ पहमत्तिणुणुव्वंगा, बंधण संघायणा य तणुनामा । सुतो सत्तिविसेसो संघयणमिहद्धिनिचउत्ति ॥१२॥ छळा संघयणं षज्जरिसभनाराय १ षज्जनारायं २ । नाराय ३ मद्धनाराय ४ कीलिया ५ तह य छेवट्टं ६ ॥१३॥ समचउरंसं १ नग्गोह २ साइ ३ खुज्जाणि ४ वामणं ५ हुंउं ६ । संठाणा वण्णा किण्हनोल्लो.इयहल्लिइसिया ॥१४॥ सुरमि १ दुरभी २ रसा पण,तिस्त १ कउ २ कसाय ३ अंबिला ४ महुरा ५ । फासा गुरु १ लहु २ मिउ ३ खर ४ सी ५ उण्ह ६ सिणिद्ध ७ क्ख ८ ऽऽ ॥१५॥ चउह गइव्वणु-पुव्वी, दुविहा य सुहासुहा विहायगई । गइअणुपुव्वी उ दुगं, तिगं तु तं षिय निघाउज्जुयं ॥१६॥ इय तेणउई संते बंधणपण्णरसणेण तिसयं वा । वण्णाइमेय १६ बंधण १५ संघाय ५ विणा उ सत्तट्ठी ॥१७॥ सा बंधुदए बंधणसंघाया निय-तणुग्गहणगहिया । वण्णाइविगप्पा वि हु, न य बंधे सम्ममीसाइ ॥१८॥ वेउ-

१ “ताश्चैताः” इत्यपि पाठः । २ “इषइ” इत्यपि पाठः । ३ “ति” इत्यपि । ४ “सूसरआएज्जसं” इत्यपि सुद्विप्रती ।

(हारि०) व्याख्या—तत्र 'गतयो' नरकगत्याद्याश्चतस्रः । 'इन्द्रियाणि' स्पर्शनादीनि पञ्च । 'कायाः' पृथिव्यादयः षट् । 'योगाः' सत्यमनःप्रमृतयः पञ्चदश । 'वेदाः' स्त्रीवेदादयस्त्रयः । 'कषायाः' क्रोधादयश्चत्वारः 'ज्ञानानि' मतिज्ञानादीनि पञ्च । इहोपलक्षणत्वेन विपक्षस्यापि संग्रहादज्ञानान्यपि मत्यज्ञानादीनि त्रीणि ग्राह्याणि । एवमुत्तरत्रापि क्वाप्युपलक्षणव्याख्यानं द्रष्टव्यम् । ननु ज्ञाने प्रस्तुते उपलक्षणत्वेन किमर्थमज्ञानत्रयग्रहणं कृतम् ? सत्यं, सौम्यं । चतुर्दशभार्गणारथानेषु प्रत्येकं सर्वसां सारिकसत्त्वसंग्रहार्थम् । तथा 'संयमः' सामायिकः दिः पञ्चप्रकारः । उपलक्षणत्वाद्देशमयमासंयमौ च, इत्येते सप्तात्रापि ग्राह्याः । 'दर्शनानि' चतुर्दर्शनादीनि चत्वारि । 'लक्ष्याः' कृष्णालेश्याद्याः षट् । भवपदेन भव्याभव्यौ द्वौ ग्राह्यौ । 'सम्यक्त्वानि' वेदकादीनि त्रीणि । संज्ञिपदेन संज्ञ्यसंज्ञिनौ द्वौ । आहारकपदेन आहारकानाहारकौ द्वौ गृहीतौ । इति द्वारगाथासमासार्थः ॥२॥

इह यद्यपि गत्यादिषु बन्धस्वामित्वं वक्ष्यामीति प्रागुक्तं तथाऽपि न तद्गुणस्थानकनिरपेक्षं वक्ष्यते । गुणस्थानकानामपि बन्धस्वामित्ववद्गत्याद्याश्रितत्वादिति गुणस्थानकानि । तथा गत्याद्याश्रितत्वेनैव सुरनिरयनरतिरक्षां पर्याप्तापर्याप्तकजीवस्थानयोरपि बन्धस्वामित्वस्य वक्ष्यमाणत्वादिति जीवस्थानानि च गतिषु दर्शयन्नाह—

गुणठाणा सुरनिरए, चउ पण 'तिरिएसु चउदस नरेसु ।

जीवठाणा तिरिए, चउदस सेसेसु 'दुग दुगं जाण ॥३॥ नीतिरियम

(हारि०) व्याख्या—इह यथासंभवं सर्वत्र लिङ्गव्यत्ययविभक्तिलोपादिकं प्राकृतत्वादष्टव्यम् । ततश्च गुणस्थानकानि—'मिच्छद्दिट्ठी सासा-यणे य तह सम्ममिच्छिदिट्ठी य । अघिरयसम्मदिट्ठी, विरयाघिरए पमत्ते य ॥१॥ तत्तो य अण्पमत्ते, नियट्ठि धनि-यट्ठिवायरे सुहुमे । उवसंतण्णीगमीहे, होइ सजोगो अजोगो य ॥२॥" इति नामकानि । एतानि च क्व कियन्ति भवन्ति ? इत्याह—सुरनारकयोश्चत्वारि प्रत्येकमाद्यानि जानीहि, इति संबन्धः । तथा पञ्च तिर्यक्षु आद्यान्येव । तथा चतुर्दश नरेषु । इति योजितानि चतसृष्वपि गतिषु गुणस्थानकानि, सम्प्रति तास्वेव जीवस्थानानि योजयन्नाह—जीवस्थानानि—“सुहुमा वायरं बेइं-दिया य तेइंदिया य अउरिंयो । अस्सण्णी सण्णी खलु, अउदस पज्जत्त अपज्जत्ता ॥१॥" इत्येवंरूपाणि । एतानि च केषु कियन्ति भवन्ति ? इत्याह तिर्यक्षु चतुर्दश । 'शेषेष्ट' सुरनरनारकेषु द्विकं द्विकं जीवस्थानयोरिति शेषः । पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं 'जानीहि' अवबुध्यस्वेति । ननु समूच्छेनजापर्याप्तलक्षणं नरेषु तृतीयमपि जीवस्थानकमस्ति तत्कथमत्र न गृहीतम् ? इत्यत्रोच्यते—तिर्यग्रहणेन तेषां ग्रहणादिति न दोषः । इति गार्थार्थः ॥३॥

इह बन्धस्वामित्वं वक्ष्य इत्युक्तम् । बन्धश्च कर्मप्रकृतीनां भवति, अतः शिष्यहितार्थं सूत्रेऽनुक्ता अपि प्रथमं प्रकृतयः सर्वाः प्ररूप्यन्ते, 'ताश्चेताः—'दसण १ नाणावरण २ ऽन्तराय ३ मोहा ४ ऽऽउ ५ गोय ६ वेयणियं ७ । नामं ८ च नव १ पण २ पण ३ ऽद्वीस ४ चउ ५ हु ६ हु ७ बियाल ८ विहं ॥१॥ नयणेयरोहिकेवल दंसणआ-  
वरणयं भवे चउहा । निहापयलाहिं छहा, निहाइदुरुक्तधोणद्धी ॥२॥ नाणावरणं महसुयभांहिमणोनाणकेवलावरणं । विग्घं दाणे लाभे, भोगुवभोगेसु विरिए य ॥३॥ सोलस कसाय नव नोकसाय दंसणतिगं च मोहणियं । नरयतिरिनरसुराऊ, नोउच्चं सायमस्सायं ॥४॥ गइ १ जाइ २ तणु ३ उवंगा ४, बंधण ५ संघाय-  
णाणि ६ संघयणा ७ । संठाण ८ वण्ण ९ गंध १० रस ११ फास १२ अणुपुब्बि १३ विहगगई १४ ॥५॥ पिंइपयडिन्ति चउदस, परघाउज्जोयआयबुस्सासं । अगु-  
दलहुत्तिस्थनिमिणोवघायमिह अट्ट पत्तेया ॥६॥ तसबायरपज्जत्तं, पत्तेय थिरं सुभं च सुभगं च । सुसराऽऽपज्जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥७॥ थावरसुहुम अपज्ज, साहारणअधिरअसुभहुभगाणि । दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेघरा वीसं ॥८॥ तसचउ थिरळ्ळं अधिरळ्ळ सुहुमतिग थावरचउळ्ळं । सूभगतिगाइविभासा,  
पयडोण तथाइ सखाहिं ॥९॥ गइयार्हण य कमसो, चउ १ पण २ पण ३ ति ४ पण ५ पंच ६ छ ७ छळ्ळं ८ । पण ९ दुग १० पण ११ ऽद्व १२ चउ १३ दुग १४-  
मिय उत्तरभेय पणसट्ठो ॥१०॥ निरयतिरिनरसुरगई, इगबियतियचउपणिदि जाईओ । ओरालियवेउच्चियआहारगतेयकम्मइया ॥११॥ पढमत्तिणुणुवंगा,  
बंधण संघायणा य तणुनामा । सुतो सत्तिविसेसो संघयणमिहट्ठिनिचउत्ति ॥१२॥ छद्धा संघयणं वज्जरिसभनाराय १ वज्जनारायं २ । नाराय ३ मद्धनाराय ४ कीलिया ५ तह य छेवट्ठं ६ ॥१३॥ समचउरंसं १ नग्गोह २ साइ ३ खुज्जाणि ४ वामणं ५ हुंडं ६ । संठाणा वण्णा किणहनोललोहयहलिइसिया ॥१४॥ सुरभि १ दुरभी २ रसा पण,तिस्त १ कडु २ कसाय ३ अंबिला ४ महुुरा ५ । फासा गुरु १ लहु २ मिउ ३ खर ४ सी ५ उण्ह ६ सिणिद्ध ७ रुक्ख ८ ऽद्व ॥१५॥ चउह गइच्चणु-  
पुन्वी, दुविहा य सुहासुहा विहायगई । गइअणुपुब्बो उ दुगं, तिगं तु तं चिय निघाउजुयं ॥१६॥ इय तेणउई संते बंधणपण्णरसणेण तिसयं वा । वण्णाइभेय १६ बंधण १५ संघाय ६ विणा उ सत्तट्ठो ॥१७॥ सा बंधुदए बंधणसंघाया निय-  
तणुग्गहणगइया । वण्णाइविगप्पा वि हु, न य बंधे सम्ममीसाइ ॥१८॥ वेउ-

१ "ताश्चेताः" इत्यपि पाठः । २ "द्वइ" इत्यपि पाठः । ३ "वि" इत्यपि । ४ "सूसराएज्जसं" इत्यपि सुप्रितप्रती ।



(हारि०) व्याख्या—तत्र 'गमयो' नरकगत्याद्याश्चतस्रः । 'इन्द्रियाणि' स्पर्शनादीनि पञ्च । 'कायाः' पृथिव्यादयः षट् । 'योगाः' सत्यमनःप्रभृतयः पञ्चदश । 'वेदाः' स्त्रीवेदादयस्त्रयः । 'कषायाः' क्रोधादयश्चत्वारः 'ज्ञानानि' मतिज्ञानादीनि पञ्च । इहोपलक्षणत्वेन विपक्षस्यापि संग्रहाद्ज्ञानान्यपि मत्यज्ञानादीनि त्रीणि ग्राह्याणि । एवमुत्तरत्रापि क्वाप्युपलक्षणव्याख्यानं द्रष्टव्यम् । ननु ज्ञाने प्रस्तुते उपलक्षणत्वेन किमर्थमज्ञानत्रयग्रहणं कृतम् ? सत्यं, सौम्य ! चतुर्दशमार्गणास्थानेषु प्रत्येकं सर्वसांसारिकसत्त्वसंग्रहार्थम् । तथा 'संयमः' सामायिकःदिः पञ्चप्रकारः । उपलक्षणत्वाद्देशमयमासंयमौ च, इत्येते सप्तात्रापि ग्राह्याः । 'दर्शनानि' चक्षुर्दर्शनादीनि चत्वारि । 'लैङ्ग्याः' कृष्णलेशयाद्याः षट् । भवपदेन भव्यामव्यौ द्वौ ग्राह्यौ । 'सम्यक्त्वानि' वेदकादीनि त्रीणि । संज्ञिपदेन संज्ञिसंज्ञिनौ द्वौ । आहारकपदेन आहारकानाहारकौ द्वौ गृहीतौ । इति द्वावगाथासमासार्थः ॥२॥

इह यद्यपि गत्यादिषु बन्धस्वामित्वं वक्ष्यामीति प्रागुक्तं तथाऽपि न तद्गुणस्थानकनिरपेक्षं वक्ष्यते । गुणस्थानकानामपि बन्धस्वामित्ववद्गत्याद्याश्रितत्वादिति गुणस्थानकानि । तथा गत्याद्याश्रितत्वेनैव सुरनिरयनरतिरश्वां पर्याप्तापर्याप्तकजीवस्थानयोरपि बन्धस्वामित्वस्य वक्ष्यमाणत्वादिति जीवस्थानानि च गतिषु दर्शयन्नाह—

गुणठाणा सुरनिरए, चउ पण 'तिरिएसु चउदस नरेसु ।

जीवठाणा तिरिए, चउदस सेसेसु 'दुग दुगं जाण ॥३॥ नीतिरियम

(हारि०) व्याख्या—इह यथासंभवं सर्वत्र लिङ्गव्यत्ययविभक्तिलोपादिकं प्राकृतत्वाद्दृष्टव्यम् । ततश्च गुणस्थानकानि—“मिच्छद्दिष्टी सासा-यणे य तह सम्ममिच्छिद्दिष्टी य । अविरयसम्महिष्टो, विरयाविरए पमत्ते य ॥१॥ तसो य अण्पमत्ते, नियट्टि अनियट्टिवायरे सुहुमं । उवसंतग्धीणमीहे, होइ सजोगो अजोगो य ॥२॥” इति नामकानि । एतानि च क्व कियन्ति भवन्ति ? इत्याह—सुरनारकयोश्चत्वारि प्रत्येकमाद्यानि जानीहि, इति संबन्धः । तथा पञ्च तिर्यक्षु आद्यान्येव । तथा चतुर्दश नरेषु । इति योजितानि चतसृष्वपि गतिषु गुणस्थानकानि, सम्प्रति तास्वेव जीवस्थानानि योजयन्नाह—जीवस्थानानि—“सुहुमा वायरं वेइ-दिया य तेइदिया य अउरिंवी । अस्सण्णी सण्णी खलु, अउदस पज्जत्त अपज्जत्ता ॥१॥” इत्येवंरूपाणि । एतानि च केषु कियन्ति भवन्ति ? इत्याह तिर्यक्षु चतुर्दश । 'शेषेष्ठ' सुरनरनारकेषु द्विकं द्विकं जीवस्थानयोरिति शेषः । पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं 'जानीहि' अवबुध्यस्वेति । ननु संमूर्च्छनजापर्याप्तलक्षणं नरेषु तृतीयमपि जीवस्थानकमरित तत्कथमत्र न गृहीतम् ? इत्यत्रोच्यते—तिर्यग्रहणेन तेषां ग्रहणादिति न दोषः । इति गाथार्थः ॥३॥

इह बन्धस्वामित्वं वक्ष्य इत्युक्तम् । बन्धश्च कर्मप्रकृतीनां भवति, अतः शिष्यहितार्थं सूत्रेऽनुक्ता अपि प्रथमं प्रकृतयः सर्वाः प्ररूप्यन्ते, 'ताश्चैताः—'दंसण १ नाणावरण २ ऽन्तराय ३ मोहा ४ ऽऽउ ५ गोय ६ वेयणियं ७ । नामं ८ च नव १ पण २ पण ३ ऽऽवीस ४ षउ ५ दु ६ दु ७ विद्याल ८ विहं ॥१॥ नयणेयरोहिकेवल दंसणआ-  
वरणयं भवे षउहा । निद्दापयलाहिं छहा, निद्दाहदुरुत्तथोणद्धी ॥२॥ नाणावरणं महसुयभाहिमणोनाणकेवलावरणं । विग्घं दाणे लाभे, भोगुवभोगेसु विरिए य ॥३॥ सोलस कसाय नव नोकसाय दंसणतिगं च मोहणियं । नरयतिरिनरसुराऊ, नीउच्चं सायमस्सायं ॥४॥ गह १ जाह २ तणु ३ उवंगा ४, बंधण ५ सघाय-  
णाणि ६ संघयणा ७ । संठाण ८ वणण ९ गंध १० रस ११ फास १३ अणुपुव्वि १४ विहगगई १४ ॥५॥ विंढपयडिन्ति चउदस, परघाउज्जोयआयवुस्सासं । अगु-  
रुलहुत्तिथनिमिणोवघायमिह अह पत्तेया ॥६॥ तसबायरपज्जत्तं, पत्तेय थिरं सुभं ष सुभगं ष । सुसरऽऽएज्जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥७॥ थावरसुहुम  
अपज्ज, साहारणअथिरअसुभदुभगाणि । दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा धीसं ॥८॥ तसषउ थिरल्लकं अथिरल्लक सुहुमतिग थावरचउकं । सूभगतिगाइविभासा,  
पयडोण तयाह सखाहिं ॥९॥ गइयाईण य कमसो, चउ १ पण २ पण ३ ति ४ पण ५ पंच ६ छ ७ ल्लकं ८ । पण ९ दुग १० पण ११ ऽऽ १२ चउ १३ दुग १४-  
मिय उत्तरमेय पणसट्ठी ॥१०॥ निरयतिरिनरसुरगई, इगवियतियचउपणिदि जाईओ । ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइया ॥११॥ पहमत्तिणुणुवंगा,  
बंधण संघायणा य तणुनामा । सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहडिनिचउत्ति ॥१२॥ ल्लहा संघयणं षज्जरिसमनाराय १ षज्जनारायं २ । नाराय ३ मद्धनाराय ४ कीलिया ५ तह य ल्लेवट्टं ६ ॥१३॥ समषउरंसं १ नग्गोह २ साइ ३ खुज्जाणि ४ वामणं ५ हुंढे ६ । संठाणा वणणा किण्हनीललोहियहलिइसिया ॥१४॥ सुरमि १ दुरभी २ रसा पण, तिस्त १ कडु २ कसाय ३ अंबिला ४ महुरा ५ । फासा गुरु १ लहु २ मिउ ३ खर ४ सो ५ उणह ६ सिणिख ७ रुक्ख ८ ऽऽ ॥१५॥ चउह गहव्वणु-  
पुव्वो, दुविहा य सुहासुहा विहायगई । गइअणुपुव्वो उ दुगं, तिगं तु तं विय निघाउज्जुयं ॥१६॥ इय तेणउई संते बंधणपण्णरसणेण तिसयं वा । वण्णाइमेय १६ बंधण १५ संघाय ६ विणा उ ससट्ठी ॥१७॥ सा बंधुदए बंधणसंघाया निय-  
तणुगहणगहिया । वण्णाइविगप्पा वि हु, न य बंधे सम्ममीसाइ ॥१८॥ वेउ-

१ "ताश्चैताः" इत्यपि पाठः । २ "इवइ" इत्यपि पाठः । ३ "ति" इत्यपि । ४ "सूसरआएज्जसं" इत्यपि सुत्रितप्रती ।

व्वाहारोरात्रिणां सण ३ तेय ३ कम्म ३ जुत्ताणं । नव बंधणाणि इयरदुसहियाणं  
 तिणिण ३ तेसिं च ३ ॥१९॥’ अस्या अयमर्थः—पूर्वगृहीतवैक्रियपुद्गलैः सह परस्परं गृह्य-  
 मानान् वैक्रियपुद्गलानुदितेन येन कर्मणा बध्नात्यात्मा तद्वैक्रियवैक्रियबन्धनम् १ । एवं वैक्रियतै-  
 जसं २ वैक्रियकार्मणं ३ । आहारकाहारक ४ आहारकतैजस ५ आहारककार्मण ६ औदारिकौ-  
 दारिक ७ औदारिकतैजस ८ औदारिककार्मण ९ वैक्रियतैजसकार्मण १० आहारकतैजसकार्मण  
 ११ औदारिकतैजसकार्मण १२ ‘तेसिं च’ इति, तयोस्तैजसकार्मणयोः तैजसतैजस १३ तैजस-  
 कार्मण १४ कार्मणकार्मण १५ बन्धनानि । इति पञ्चदश बन्धनानि । वर्णादिविंशतेः शुभाशु-  
 भविभागोऽयम्—“नोलकसिणं दुगंधं, तित्तं कडुयं गुरुं खरं रुक्खं । सायं च असुभ-  
 नवगं, इक्कारसगं सुहं सेसं” इति प्ररूपिताः प्रकृतयः । आसां व्याख्यानं ग्रन्थान्तरादव-  
 सेयम्, गमनिकामात्रत्वात् प्रस्तुतप्रयासस्येति ॥

अथ वक्ष्यमाणार्थोपयोगि मिथ्यादृष्टिं सास्वादनगुणस्थानकव्यवच्छिन्नप्रकृतिसंख्यासूचकं  
 गाथाद्वयमाह—

निरयतिगं मिच्छत्तं, नपुंसं इगविगलजाइआयावं ।

‘छेवट्ट थावरचऊ, हुंडं चिय मिच्छादिट्टिमि ॥४॥

थीणतिगित्थी अण तिरितिगं कुविहगई य नीयमुज्जोयं ।

‘दूभगतिगं पणुवीसा, मज्झिमसंठाणसंघयणा ॥५॥

(हारि०) व्याख्या—‘निरयतिगं’ इति, नरकत्रिकं नरकगति १ नरकानुपूर्वी २ नरकायु ३  
 लक्षणम्, मिथ्यात्वं ४ नपुंसकवेदः ५, ‘इगविगलजाइ’ इति, एकेन्द्रियजातिः ६, द्वि ७ त्रि  
 ८ चतुरिन्द्रिय ९ जातयश्च, आतपनाम १० सेवार्तसंहननम् ११, ‘थावरचऊ’ इति, स्थावरनाम  
 १२ सूक्ष्मनाम १३ साधारणनाम १४ अपर्याप्तनाम १५ लक्षणं १६ थावरचतुष्कम्, हुण्डसंस्थानं १६  
 चेति प्रकृतिषोडशकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके बन्धं १७ प्रतीत्य व्यवच्छिन्नमिति ॥४॥ साम्प्रतं द्विती-  
 यगाथा व्याख्यायते—‘थीणतिगित्थी’ इति, स्त्यानद्वित्रिकं स्त्यानद्वि १ निद्रानिद्रा २ प्रच-  
 लाप्रचला ३ लक्षणम्, स्त्रीवेदः ४ ‘अण’ इति, अनन्तानुबन्धि-क्रोध ५ मान ६ माया ७  
 लोभाः ८, ‘तिरितिगं’ इति, तिर्यक्त्रिकं तिर्यग्गति ९ तिर्यगानुपूर्वी १० तिर्यगायु ११ लक्ष-  
 णम्, ‘कुविहगई य’ इति, अशुभविहायोगतिश्च १२, नीचैर्गोत्रं १३ उद्घोतनाम १४,  
 ‘दूभगतिगं’ इति, दुर्मगत्रिकं दुर्मगनाम १५ अनादेयनाम १६ दुःस्वरनाम १७ रूपम्,

१ “तेसिं च” इति, तयोस्तैजसकार्मणयोः” इति पाठो न दृश्यते जे० प्रती । २ केपुचित्पुस्तकेपु-  
 “सासादनं” इत्यपि पाठः । ३ “इगि०” इत्यपि पाठः ४ “सेवट्ट०” इति जे० प्रती । ५ “कुविहगार्म”  
 पाठः । ६ “दुभगतिगं” इत्यपि पाठः । ७ “प्रति व्यवच्छिन्नमिति” इत्यपि पाठः ॥

'मञ्जिमसंठाणसंघयणा' इति, मध्यमसंस्थानानि चत्वारि न्यग्रोधपरिमण्डलं १८ मादि १६ वामनं १० कुब्जं २१ चेति, संहननानि चत्वारि ऋषभनाराचं २२ नाराचं २३ अर्द्धनाराचं २४ कीलिका २५ चेति पञ्चविंशतिप्रकृतयः । आसां सासादनगुणस्थाने बन्धमाश्रित्य व्यवच्छेद इति शेषः । सासादनगुणस्थानकस्वरूपं त्विदम् "उवसमसम्मत्ताओ, चयओ मिच्छं अपाच-माणस्स सासायणसम् तं तयंतरालम्मि छावल्लियं ॥१॥" इति गाथाद्वयार्थः ॥५॥

व्याख्यातं वक्ष्यमाणार्थोपयोगि गाथाद्वयम् । अथ प्रस्तुतमभिधीयते, तत्र मार्गणास्थानानां प्रथमं गतिद्वारमाश्रित्य नरकगताबोधबन्धः प्रतिपाद्यते—

थावरचउजाई चउ, विउवाहारदुग सुरनिरतिगाणि ।

आयवजुयाऽऽहिं ऊणं, एगहियसयं नरयवंधे ॥६॥

(हारि०) व्याख्या—'थावरचउ' इति, स्थावरनाम १ सूक्ष्मनाम २ साधारणनाम ३ अपर्याप्तनामेति ४ चत्वारि 'जाई चउ' इति, एक ५ द्वि ६ त्रि ७ चतुरिन्द्रिय ८ जातयश्चतस्रः, 'विउवाहारदुग' इति, द्विकशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धाद्वैक्रियशरीर ९ तदङ्गोपाङ्गद्विकम् १०, आहारकशरीर ११ तदङ्गोपाङ्गद्विकम् १२, 'सुरनिरतिगाणि' इति, त्रिकशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात् सुरगति ११ सुरानुपूर्वी १४ सुरायुष्कत्रिकम्, १५, नरकगति ६ नरकानुपूर्वी १७ नरकायुष्कत्रिकम् १८ एषां तत्पुरुषगमो द्वन्द्वः । तानि किंविशिष्टानि ? इत्याह—'आयवजुय' इति, विभक्तिलोपादातपनाम १९ युतानि कर्माणीति शेषः । 'आहिं ऊणं' इति लिङ्गव्यत्ययेनैमिरूनमेकाधिकशतं नरकबन्धे । अयमत्रामिप्रायः—एकोनविंशतिं कर्मप्रकृतीर्वन्धाधिकृतकर्मप्रकृतिविंशत्युत्तरशतमव्यान्मुक्त्वा ततः शेषस्यैकोत्तरशतस्य १०१ नरकगताबोधबन्धः । 'आयवजुयाणि मोसु' इति पाठेऽयमर्थः—प्राक्तनकर्माणि आतपयुतानि मुक्त्वा, शेषं तथैव । इति गाथार्थः ॥६॥

इति सामान्येन नरकगतौ बन्धमभिधाय साम्प्रतं तस्यामेव मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानकचतुष्टयविशिष्टं तं प्रतिपिपादयिषुराह—

तित्थोणं सय मिच्छा, साणा नपुहुं ड'छेयमिच्छोणं ।

मीसा नराउपणुवीसोणं सम्मा नराउतित्थजुयं ॥७॥ नं तिरियम्

(हारि०) व्याख्या—अत्र साध्याहारा योजना । ततः प्रागुक्तमेकोत्तरशतं, 'तित्थोणं' इति, तीर्थकरनामोऽनं शतं भवति तन्मिथ्यादृष्टो बध्नन्ति १०० । एतच्च शतं नपुंसकवेद १ हुण्डसंस्थान २ छेदस्पृष्टसंहनन ३ मिथ्यात्वो ४ नं सत् षण्णवतिर्भवति, एतां सासादना बध्नन्ति ९६ । एषा च षण्णवतिः, नरायुश्च प्रागुक्तपञ्चविंशतीश्च, नरायुःपञ्चविंशती, ताम्याभूना

नरायुःपञ्चविंशत्युना सती सप्ततिर्भवति, तां मिश्रा बध्नन्ति ७० इति । एतां च सप्ततिं नरायुस्तीर्थकरनामयुतां सम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ७२ इति । अयं च बन्धो रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभामिधानप्रथमनरकपृथिवीत्रये द्रष्टव्यः, पङ्कप्रभादिषु विशेषबन्धामिधानात् । इति गाथार्थः ॥७॥

अथ तमेव पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये गाथाप्रथमपादेन तथा सप्तमनरकपृथिव्यां पादोनगाथाद्वयेनाह—

पंकाइसु तित्थोणं, नराउहीणं सयं तु सत्तमिए ।

मणुदुगउच्चेहि विणा, मिच्छा बंधंति छण्णउइं ॥८॥

हुंडाईचउरहियं, साणा तिरियाउणा य इगनउइं ।

इगुणपणुवीसरहिया, सनरदुगुच्चा सयरि मीसे ॥९॥

(हारि०) व्याख्या—सामान्यं गुणस्थानचतुष्टयवर्ति च प्राक्तनप्रथमनरकपृथिवीत्रयोक्तं बन्धकदम्बकं यथासंभवं तीर्थकरनामोनं 'पंकाइसु' इति, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभासु मन्तव्यमिति शेषः । अत्र पृथिवीत्रये तीर्थकरनामनिमित्तसम्यक्त्वसद्भावेऽपि क्षेत्रमाहान्येन तथाविधाध्यवसायाभावाचीर्थकरनामकर्मबन्धो नास्तीति । ततः सामान्येन शतं १००, मिथ्यादृशा च शतं १००, सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतसम्यग्दृष्टीनामेकसप्ततिः ७१, इति । इह तु सामान्यपदेऽविरतगुणस्थानके च तीर्थकरनामहीनतोक्ता, मिथ्यादृष्ट्यादिषु त्रिषु पुनस्तस्य प्रागेवापनीतत्वादिति भावः । 'नराउहीणं सयं तु सत्तमिए' इत्यादि पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये सामान्येन यच्छतस्रकृतं तदेव नरायुष्कहीनं पुनः सप्तम्यामोघबन्धः ९९ । तुशब्दः पुनः योजित एवेति । अथ तस्यामेव गुणस्थानकेषु तस्मिन्पयन्नाह— मणुदुग' इत्यादि मनुष्यगतमनुष्यानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैर्विना षण्णवतिर्भवति, तां मिथ्यादृशो बध्नन्ति ९६ । इति ॥८॥ अथ द्वितीयगाथा व्याख्यायते—'हुंडाईचउरहियं' इति, हुण्डसंस्थानच्छेदस्पृष्टसंहनननपुंसकवेदमिथ्यात्वचतुष्करहितम् तथा 'तिरियाउणा य' इति, तिर्यगायुषा च रहितां तां षण्णवतिं कृत्वेति शेषः, चशब्दाद्द्रहितशब्दः प्राक् समस्तोऽप्यत्र योज्यते । तत एकनवतिं ९१ सासादना बध्नन्तीति प्राक्तनेन संबन्धः । तथा 'इगुणपणुवीसरहिया' इति, एकेन तिर्यगायुषाऽनन्तरापनीतेनोना रहितैकोना सा चासौ पञ्चविंशतिश्च पूर्वोक्ता तथा रहिता न्यूना एकोनपञ्चविंशतिरहिता । तथा 'सनरदुगुच्चा' इति, सह नरद्विकोच्चैर्वर्तते सनरद्विकोच्चा, नरगतिनरानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैः सहितेत्यर्थः । - यका एकनवतिः । सा सप्ततिर्भवति, सा च मिश्रे ७० । इह सप्तम्यां नरायुस्तावन्न बध्यत एव । तद्वन्धाभावेऽपि मिश्रगुणस्थानकेऽविर-

१ "छन्नउई" इत्यपि पाठः । २ "इगनउई" इत्यपि पाठः । ३ "पुनरर्थे" इत्यपि, "पुनरर्थो" इत्यपि । ४ "यका" इति स्वार्थिकप्रत्ययान्तं रूपम्, "या" इत्यर्थः ।

तगुणस्थानके च नरगतिनरानुपूर्वीद्वयं बध्यते, तस्यान्यदाऽपि बन्धात् । अयमर्थः—नरगति-  
नरानुपूर्व्योर्नरायुषा सह नावश्यं प्रतिबन्धः, यदुत यत्रायुर्वध्यते तत्रैव गत्यानुपूर्वीद्वयमपि, किन्तु  
आयुरेकदैव बध्यते, गत्यानुपूर्वीद्वयमन्यदाऽपि बध्यत इति । तथा मिथ्यात्व 'सासादनाभ्यां द्वयं  
न बध्यते, क्लृषाध्यवसायत्वादिति । अथ क्रथमत्राविरतगुणस्थानके बन्धस्वामित्वं पृथग्  
नोक्तम् १, सत्यं, मिश्रस्येवाविरतम्यापि सप्ततिर्दृश्या, न्युनाधिकप्रकृतेरभावात् । इति गाथाद्व-  
यार्थः ॥१॥

एवं नरकगतौ बन्धस्वामित्वमभिधायाथ तिर्यग्गतौ सामान्येन गुणस्थानकविशिष्टं च  
तदाह—

तित्थाहारदुगूणा, तिरिया बंधंति मव्वपयडीओ ।

पज्जत्ता तह मिच्छा, साणा उण सोलसविहीणा ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या—तीर्थकराहारकद्विकोनाः सर्वप्रकृतीः पर्याप्तास्तिर्यञ्चः प्रक्रमात्सामान्येन  
बध्नन्तीति ११७ । अत्र च तिरश्चां सत्यपि सम्यक्त्वे भवप्रत्ययादेव तथाविधाध्यवसायाभावाच्ची-  
र्थकरनाम्नः संपूर्णसंयमाभावादाहारकद्विकस्य च बन्धो नास्तीति हृदयम् । 'तह मिच्छा' इति तथा  
मिथ्यादृशोऽपि पर्याप्ता इति योगः । सप्तदशोत्तरशतसंख्याः ११७ प्रकृतीर्बध्नन्ति । 'साणा उण'  
इति सासादनाः पुनः षोडशेन पूर्वोक्तेन विहीनाः षोडशविहीनाः १०१ ता बध्नन्ति । इति  
गाथार्थः ॥१०॥

तथा—

नरतिगसुराउउसभं, उरलदुगं मोत्तु पण्णवीसं च ।

अणुहत्तरिं तु मीसा, सुराउणा सत्तरी सम्मा ॥११॥

(हारि०) व्याख्या—'नरतिग' इति, नरगतिनरानुपूर्वीनरायुस्त्रिकं सुरायुः 'उसभं' इति,  
ब्रजर्षमनाराचं, एषां समाहारद्वन्द्वस्तत् । 'उरलदुगं' इति औदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गद्विकमिति  
सप्तप्रकृतीः पञ्चविंशतिं च प्रागुक्तां मुक्त्वा एकोत्तरशतमध्यादिति शेषः । शेषामेकोनसप्ततिं मिश्रा  
बध्नन्ति ६९ । एवैव सुरायुषा सहिता सप्ततिर्भवति ७०, तां 'सम्मा' इति, अविरतसम्यग्दृष्टयो  
बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥११॥

तथा—

बीयकसायूणा देस अपज्जत्ता सयं नवगं तु ।

मोत्तूणमोघबन्धा, निरसुरआउं विउव्विछक्कं च ॥१२॥ गीतिरियम्

१ "सासादनयोः तद्द्वयं" इत्यपि । २ "सासा उण सोलसविहीणा" इत्यपि । ३ "मुत्तू" इत्यपि पाठः ।  
४ "बीयकसायविहूणा देसअपज्जत्तसयनवगं तु मुत्तूण" । इत्यपि पाठः ।

नरायुःपञ्चविंशत्युना सती सप्ततिर्भवति, तां मिश्रा वदन्ति १० इति । एतां च सप्ततिं नरायुस्तीर्थकरनामयुतां सम्यग्दृष्टयो वदन्ति ७२ इति । अयं च बन्धो रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभाभिधानप्रथमनरकपृथिवीत्रये द्रष्टव्यः, पङ्कप्रभादिषु विशेषबन्धाभिधानात् । इति गाथार्थः ॥७॥

अथ तमेव पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये गाथाप्रथमपादेन तथा सप्तमनरकपृथिव्यां पादोनगाथाद्वयेनाह—

पंकाइसु तित्थोणं, नराउहीणं सयं तु सत्तमिए ।

मणुदुगउच्चोहिं विणा, मिच्छा बंधंति छण्णउइं ॥८॥

हुंडाईचउरहियं, साणा तिरियाउणा य इगनउइं ।

इगुणपणुवीसरहिया, सनरदुगुच्चा सयरि मीसे ॥९॥

(हारि०) व्याख्या—सामान्यं गुणस्थानचतुष्टयवर्ति च प्राक्तनप्रथमनरकपृथिवीत्रयोवतं बन्धकदम्बकं यथासंभवं तीर्थकरनामो नं 'पंकाइसु' इति, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभासु मन्तव्यमिति शेषः । अत्र पृथिवीत्रये तीर्थकरनामनिमित्तसम्यक्त्वसद्भावेऽपि क्षेत्रमाहान्म्येन तथाविधाष्यवसायाभावात्तीर्थकरनामकर्मबन्धो नास्तीति । ततः सामान्येन शतं १००, मिथ्यादृशां च शतं १००, सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतसम्यग्दृष्टीनामेकसप्ततिः ७१, इति । इह तु सामान्यपदेऽविरतगुणस्थानके च तीर्थकरनामहीनतोक्ता, मिथ्यादृष्ट्यादिषु त्रिषु पुनस्तस्य प्रागेवापनीतत्वादिति भावः । 'नराउहीणं सयं तु सत्तमिए' इत्यादि पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये सामान्येन यच्छतसृक्तं तदेव नरायुष्कहीनं पुनः सप्तम्यामोघबन्धः ९९ । तुशब्दः 'पुनः योजित एवेति । अथ तस्यामेव गुणस्थानकेषु तन्निरूपयन्नाह— मणुदुग' इत्यादि मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैर्विना षण्णवतिर्भवति, तां मिथ्यादृशो वदन्ति ९६ । इति ॥८॥ अथ द्वितीयगाथा व्याख्यायते—'हुंडाईचउरहियं' इति, हुण्डसंस्थानच्छेदस्पृष्टसंहनननपुंसकवेदमिथ्यात्वचतुष्करहितम् तथा 'तिरियाउणा य' इति, तिर्यगायुषा च रहितां तां षण्णवतिं कृत्वेति शेषः, चशब्दाद्रहितशब्दः प्राक् समस्तोऽप्यत्र योज्यते । तत एकनवतिं ९१ सासादना वदन्तीति प्राक्तनेन संबन्धः । तथा 'इगुणपणुवीसरहिया' इति, एकेन तिर्यगायुषाऽनन्तरापनीतेनोना रहितैकोना सा चासौ पञ्चविंशतिश्च पूर्वोक्ता तथा रहिता न्यूना एकोनपञ्चविंशतिरहिता । तथा 'सनरदुगुच्चा' इति, सह नरद्विकोच्चैर्वर्तते सनरद्विकोष्ठा, नरगतिनरानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैः सहितेत्यर्थः । - 'यका एकनवतिः । सा सप्ततिर्भवति, सा च मिश्रे ७० । इह सप्तम्यां नरायुस्तावन्न वच्यत एव । तद्वन्धाभावेऽपि मिश्रगुणस्थानकेऽविर-

१ "छन्नउई" इत्यपि पाठः । २ "इगनउई" इत्यपि पाठः । ३ "पुनरर्थे" इत्यपि, "पुनरर्थो" इत्यपि । ४ "यका" इति स्वार्थिकप्रत्ययान्तं रूपम्, "या" इत्यर्थः ।

तगुणस्थानके च नरगतिनरानुपूर्वीद्वयं बध्यते, तस्यान्यदाऽपि बन्धात् । अयमर्थः—नरगति-  
नरानुपूर्वोर्नरायुषा सह नावश्यं प्रतिबन्धः, यदुत यत्रायुर्वध्यते तत्रैव गत्यानुपूर्वीद्वयमपि, किन्तु  
आयुरेकदैव बध्यते, गत्यानुपूर्वीद्वयमन्यदाऽपि बध्यत इति । तथा मिथ्यात्व 'सासादनाभ्यां द्वयं  
न बध्यते, कलुषाध्यवसायत्वादिति । अथ कथमत्राविरतगुणस्थानके बन्धस्वामित्वं पृथग्  
नोक्तम् १, सत्यं, मिश्रस्येवाविरतम्यापि मत्ततिर्द्दृश्या, न्यूनाधिकप्रकृतेरभावात् । इति गाथाद्व-  
यार्थः ॥१॥

एवं नरकगतौ बन्धस्वामित्वमभिधायाथ तिर्यग्गतौ सामान्येन गुणस्थानकविशिष्टं च  
तदाह—

तित्थाहारदुगूणा, तिरिया बंधंति मव्वपयडीओ ।

पज्जत्ता तह मिच्छा, साणा उण सोलसविहीणा ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या—तीर्थकराहारकद्विकोनाः सर्वप्रकृतीः पर्याप्तास्तिर्यग्ध्वः प्रक्रमात्सामान्येन  
बध्नन्तीति ११७ । अत्र च तिरश्चां सत्यपि सम्यक्त्वे भवप्रत्ययादेव तथाविधाध्यवसायाभावाची-  
र्ध्वकननाम्नः संपूर्णसंयमाभावादाहारकद्विकस्य च बन्धो नास्तीति हृदयम् । 'तह मिच्छा' इति तथा  
मिथ्यादृशोऽपि पर्याप्ता इति योगः । सप्तदशोत्तरशतसंख्याः ११७ प्रकृतीर्वध्नन्ति । 'साणा उण'  
इति सासादनाः पुनः षोडशेन पूर्वोक्तेन विहीनाः षोडशविहीनाः १०१ ता बध्नन्ति । इति  
गाथार्थः ॥१०॥

तथा—

नरतिगसुराउउसभं, उरलदुगं मोत्तु पण्णवीसं च ।

अणुहत्तरिं तु मीसा, सुराउणा सत्तरी सम्मा ॥११॥

(हारि०) व्याख्या—'नरतिग' इति, नरगतिनरानुपूर्वीनरायुञ्जिकं सुरायुः 'उसभं' इति,  
वज्रर्षभनाराचं, एषां समाहारद्वन्द्वस्तत् । 'उरलदुगं' इति औदारिकघरीरतदङ्गोपाङ्गद्विकमिति  
सप्तप्रकृतीः पञ्चविंशतिं च प्रागुक्तां मुक्त्वा एकोत्तरशतमध्यादिति शेषः । शेषामेकोनसप्ततिं मिश्रा  
बध्नन्ति ६१ । एषैव सुरायुषा सहिता सप्ततिर्भवति ७०, तां 'सम्मा' इति, अविरतसम्यग्दृष्टयो  
बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥११॥

तथा—

'बीयकसायूणा देस अपज्जत्ता सयं नवग्गं तु ।

मोत्तू णमोघबन्धा, निरसुरआउं विउव्विलक्कं च ॥१२॥ गीकिरियम्

१ "सासादनयोः तद्द्वयं" इत्यपि । २ "सासा उण सोलसविहूणा" इत्यपि । ३ "मुत्तू" इत्यपि पाठः ।

४ "बीयकसायविहूणा देसअपज्जत्तसयनवग्गं तु मुत्तूण" । इत्यपि पाठः ।



नरायुःपञ्चविंशत्युना सती सप्ततिर्भवति, तां मिश्रा बध्नन्ति १० इति । एतां च सप्ततिं नरायुस्तीर्थकरनामयुतां सम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ७२ इति । अयं च बन्धो रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभाभिधान-प्रथमनरकपृथिवीत्रये द्रष्टव्यः, पङ्कप्रभादिषु विशेषबन्धाभिधानात् । इति गाथार्थः ॥७॥

अथ तमेव पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये गाथाप्रथमपादेन तथा सप्तमनरकपृथिव्यां पादोन-गाथाद्वयेनाह—

पंकाइसु तित्थोणं. नराउहीणं सयं तु सत्तमिण् ।

मणुदुगउच्चोहिं विणा, मिच्छा बंधंति छण्णउई ॥८॥

हुंडाईचउरहियं, साणा तिरियाउणा य इगनउई ।

इगुणपणुवीसरहिया. सनरदुगुच्चा सयरि मीसे ॥९॥

(हारि०) व्याख्या—सामान्यं गुणस्थानचतुष्टयवर्ति च प्राक्तनप्रथमनरकपृथिवीत्रयोवतं बन्ध-कदम्बकं यथासंभवं तीर्थकरनामोनं 'पंकाइसु' इति, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभासु मन्तव्यमिति शेषः । अत्र पृथिवीत्रये तीर्थकरनामनिमित्तसम्यक्त्वसद्भावेऽपि क्षेत्रमाहान्म्येन तथाविधाध्यवसा-याभावात्तीर्थकरनामकर्मबन्धो नास्तीति । ततः सामान्येन शतं १००, मिथ्यादृशां च शतं १००, सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतसम्यग्दृष्टीनामेकसप्ततिः ७१, इति । इह तु सामान्यपदेऽविरतगुणस्थानके च तीर्थकरनामहीनतोक्ता, मिथ्यादृष्ट्यादिषु त्रिषु पुनस्तस्य प्रागेवापनीतत्वादिति भावः । 'नराउहीणं सयं तु सत्तमिण्' इत्यादि पङ्कप्रभा-दिनरकपृथिवीत्रये सामान्येन यच्छतमुक्तं तदेव नरायुष्कहीनं पुनः सप्तम्यामोघबन्धः ९९ । तुशब्दः 'पुनः योजित एवेति । अथ तस्यामेव गुणस्थानकेषु तभिरूपयन्नाह— मणुदुग' इत्यादि मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैर्विना षण्णवतिर्भवति, तां मिथ्यादृशो बध्नन्ति ९६ । इति ॥८॥ अथ द्वितीयगाथा व्याख्यायते—'हुंडाईचउरहियं' इति, हुण्डसंस्थानच्छेदस्पृष्टसंहनन-नपुंसकवेदमिथ्यात्वचतुष्करहितम् तथा 'तिरियाउणा य' इति, तिर्यगायुषा च रहितां तां षण्णवतिं कृत्वेति शेषः, चशब्दाद्रहितशब्दः प्राक् समस्तोऽप्यत्र योज्यते । तत एकनवतिं ९१ सासादना बध्नन्तीति प्राक्तनेन संबन्धः । तथा 'इगुणपणुवीसरहिया' इति, एकेन तिर्यगायु-षाऽनन्तरापनीतेनोना रहितैकोना सा चासौ पञ्चविंशतिश्च पूर्वोक्ता तथा रहिता न्यूना एकोन-पञ्चविंशतिरहिता । तथा 'सनरदुगुच्चा' इति, सह नरद्विकोच्चैर्वर्तते सनरद्विकोच्चा, नरगति-नरानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैः सहितेत्यर्थः । 'यका एकनवतिः । सा सप्ततिर्भवति, सा च मिश्रे ७० । इह सप्तम्यां नरायुस्तावन्न बध्यत एव । तद्वन्धाभावेऽपि मिश्रगुणस्थानकेऽविर-

१ "छन्नउई" इत्यपि पाठः । २ "इगनउई" इत्यपि पाठः । ३ "पुनरय्ये" इत्यपि, "पुनरयो" इत्यपि । ४ "यका" इति स्वार्थिकप्रत्ययान्तं रूपम्, "या" इत्यर्थः ।

तगुणस्थानके च नरगतिनरानुपूर्वीद्वयं बध्यते, तस्यान्यदाऽपि बन्धात् । अयमर्थः—नरगति-  
नरानुपूर्व्योर्नरायुषा सह नावश्यं प्रतिबन्धः, यदुत यत्रायुर्वध्यते तत्रैव गत्यानुपूर्वीद्वयमपि, किन्तु  
आयुरेकदैव बध्यते, गत्यानुपूर्वीद्वयमन्यदाऽपि बध्यत इति । तथा मिथ्यात्व 'सामादनाभ्यां द्वयं  
न बध्यते, कलुषाध्यवसायत्वादिति । अथ कथमत्राविरतगुणस्थानके बन्धस्वामित्वं पृथग्  
नोक्तम् १, सत्यं, मिश्रस्येवाविरतम्यापि सप्ततिर्दृश्या, न्यूनाधिकप्रकृतेरभावात् । इति गाथाद्व-  
यार्थः ॥१॥

एवं नरकगतौ बन्धस्वामित्वमभिधायाथ तिर्यग्गतौ सामान्येन गुणस्थानकविशिष्टं च  
तदाह—

तित्थाहारदुग्णा, तिरिया बंधंति मव्वपयडीओ ।

पज्जत्ता तह मिच्छा, साणा उण सोलसविहीणा ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या—तीर्थकराहारकद्विकोनाः सर्वप्रकृतीः पर्याप्तास्तिर्यञ्चः प्रक्रमात्सामान्येन  
वञ्चन्तीति ११७ । अत्र च तिरश्चां सत्यपि सम्यक्त्वे भवप्रत्ययादेव तथाविधाध्यवसायाभावात्ती-  
र्थकरनाम्नः संपूर्णसंयमाभावादाहारकद्विकस्य च बन्धो नास्तीति हृदयम् । 'तह मिच्छा' इति तथा  
मिथ्यादृशोऽपि पर्याप्ता इति योगः । सप्तदशोत्तरशतसंख्याः ११७ प्रकृतीर्वञ्चन्ति । 'साणा उण'  
इति सासादनाः पुनः षोडशेन पूर्वोक्तेन विहीनाः षोडशविहीनाः १०१ ता वञ्चन्ति । इति  
गाथार्थः ॥१०॥

तथा—

नरतिगसुराउउसमं, उरलदुगं मोत्तु पण्णवीसं च ।

अणुहत्तरिं तु मीसा, सुराउणा सत्तरी सम्मा ॥११॥

(हारि०) व्याख्या—'नरतिग' इति, नरगतिनरानुपूर्वीनरायुत्तिकं सुरायुः 'उसमं' इति,  
वज्रर्षमनाराचं, एषां समाहारद्वन्द्वस्तत् । 'उरलदुगं' इति औदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गद्विकमिति  
सप्तप्रकृतीः पञ्चविंशतिं च प्रागुक्तां मुक्त्वा एकोत्तरशतमध्यादिति शेषः । शेषामेकोनसप्ततिं मिश्रा  
वञ्चन्ति ६९ । एषैव सुरायुषा सहिता सप्ततिर्भवति ७०, तां 'सम्मा' इति, अविरतसम्यग्दृष्टयो  
वञ्चन्ति । इति गाथार्थः ॥११॥

तथा—

बीयकसायूणा देस अपज्जत्ता सयं नवगं तु ।

मोत्तूणमोघबन्धा, निरसुरआउं विउव्विळक्कं च ॥१२॥ गीतिरियम्

१ "सासादनयोः तद्वद्वयं" इत्यपि । २ "सासा उण सोलसविहीणा" इत्यपि । ३ "मुत्तू" इत्यपि पाठः ।  
४ "बीयकसायविहूणा देसअपज्जत्तसयनवगं तु मुत्तूण" । इत्यपि पाठः ।

(हारि०) व्याख्या—‘षोडशस्यूणा देरू’ इति द्वितीयकषायैरप्रत्याख्यानावरणैः क्रोधाद्यैश्चतुर्भिरूना=हीना द्वितीयकषायोनाः सप्ततिः प्रकृतयः षट्षष्टिर्भवति ६६, ताः प्रकृतीर्दे-  
शविरता बध्नन्तीति । पर्याप्तकषयञ्चेन्द्रियाणां तिर्यग्जातीनां बन्धोऽभिहितः । अथापर्याप्तानां  
तेषां तमाह—‘अपञ्जत्ता’ इत्यादिगाथापादत्रयम्, एतस्य भावार्थः—तिर्यग्गतिसत्कात्सप्तदशोत्तर-  
शतलक्षणादोषबन्धान्नाकरकुरायुपी ‘वैक्रियषट्कं च’ वैक्रियशरीर १ तदङ्गोपाङ्ग २ नरकगति  
३ नरकानुपूर्वी ४ देवगति ५ देवानुपूर्वी ६ लक्षणं भुक्त्वा शेषं शतं नवाग्रम् १०९, तुशब्दस्य  
पुनरर्थस्येह संबन्धादपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाः पुनस्तिर्यग्जातयो बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥१२॥

एवं तिर्यगतौ बन्धस्वामित्वमुक्तम् । साम्प्रतं नरगतावाद्यगुणस्थानकपञ्चके तदतिदिशन्  
दोषगुणस्थानकेषु तदेवाह—

तिरिया व नरा पयडी. बंधंती मिच्छमाइया पंच ।

अजयाइ पंच तित्थं, अपमत्तनियट्टि आहारं॥१३॥

कम्मत्थयबंधसमो, पमत्तमाईण होइ बन्धो उ ।

अप्पज्जत्ता मणुया, तिरिया व सयं 'नवग्गं तु ॥१४॥

(हारि०) व्याख्या—सामान्येन नरा विंशत्युत्तरशतं बध्नन्तीति प्रक्रमः । मिथ्यादृशाः पञ्च  
तिर्यञ्च इव प्रकृतीर्बध्नन्तीति । अत्रैव विशेषमाह—‘अजयाइ पंच तित्थं’ इति, अविरतसम्य-  
ग्दृष्ट्याद्या निवृत्तिवादरान्ताः पञ्च तीर्थकरनाम बध्नन्ति । तथा ‘अपमत्तनियट्टि आहारं’  
इति, अप्रमत्तनिवृत्तिवादराः सप्तमाष्टमगुणस्थानवर्तिनो यतयो द्विकशब्दाध्याहारादाहारकद्विकं  
बध्नन्तीति ॥१३॥ तथा—कर्मस्तवबन्धसमः, मकारस्यालाक्षणिकत्वात् प्रमत्तादीनां पुनर्मनुष्याणां  
भवति बन्धः । तुशब्दः पुनरर्थः प्रागेव योजित इति, अस्याः सार्द्धगाथायाः सामान्येन चतुर्दश-  
गुणस्थानकेषु च नरबन्धमधिकृत्यैवं सशब्दसंस्काराङ्गतः स्थापना—तत्र सामान्येन विंशत्य-  
धिकशतं १२०, मिथ्यादृशां सप्तदशोत्तरशतं ११७, सासादनानामेकोत्तरशतं १०९, मिश्राणा-  
मेकोनसप्ततिः ६९, अविरतसम्यग्दृष्टीनामेकसप्ततिः ७१, देशविरतानां सप्तपष्टिः ६७, प्रमत्तानां  
त्रिपष्टिः ६३, अप्रमत्तानामेकोनषष्टिः ५९, निवृत्तिवादराणामष्टपञ्चाशत् ५८ षट्षष्ट्याशत् ५६  
पट्षष्ट्याशत् ५६ विभागत्रयम्, अनिवृत्तिवादराणां द्वाविंशतिः २२ एकविंशतिः २१  
विंशतिः २० एकोनविंशतिः १९ अष्टादश १८ चेति पञ्च विभागाः, सूक्ष्मसम्परायाणां सप्त-  
दश १७, उपज्ञान्तमोह १ क्षीणमोह १ सयोगिनां १ प्रत्येकमेकैव अयोगिनां बन्धो नास्ति ।  
इति “कम्मत्थयबंधसमो, पमत्तमाईण होइ बंधो उ” इत्युक्तम् । तत्र कर्मस्तवग्रन्थे

सामान्यतो बन्धं प्रत्युक्तम्, न पुनः काश्चन गतिमाश्रित्य । यथा—‘ सत्तरससयमेगुत्तर चउ-  
सयरो तह य स तसयरा य । सगसहो तेवहो, उणसहो अहवण्णा य ॥१॥ ळप्प-  
ण्णा ळब्धोसा, भावोसा सत्तरेगमेगं च । एगां य बधसेसो मिच्छाइसु होंनि नायव्वा ।  
॥२॥’ अङ्कतस्तु सामान्येन १२० । म० ११७ । सा० १०१ । मि० ७४ । अ० ७७ ।  
दे० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२ २१, २० १९, १८ । सू०  
२७ । उ० १ । क्षी० १ । स० १ अ० ० । एतानि चाङ्कस्थानानि प्रतिगुणस्थानमनेन प्रकृतिव्यवच्छेद-  
क्रमेण जायन्ते । यथा—‘ मिच्छे सोलस पणुवीस सासणे अविरए य दसपयहो । चउळ-  
कमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्नाः ॥२॥ दुगतोस चउरपुव्वे, पंच नियड्ढिमि बंध-  
वोच्छेओ । सोलस सुहुमसरागे, सायसजोगो जिणवरिंदे ॥२॥’ इह मिथ्यादृष्टिसामाद-  
नगुणस्थानकद्वये बन्धं प्रति व्यवच्छिन्नाः प्रकृतयोऽत्रैव प्राक् प्रतिपादिताः । मिथ्रे तु न काश्चन  
प्रकृतयो व्यवच्छिन्नाः, अतोऽविरतगुणस्थानकादौ बन्धं प्रति व्यवच्छिन्नाः प्रकृतयः प्रतिपाद्यन्ते ।  
तद्यथा—‘ बीयकसायचउक्कं ४, मणुयाउं ५ मणुयदुवय ७ ओरालं ८ । तस्स य अंगो-  
वंगं ९, संघयणार्हं १० अविरयम्मि । १॥ तइयकसायचउक्कं ४, विरयाविरयम्मि  
बंधवोच्छेओ । अस्साय १ मरइ २ सोगं ३, तह चैव य अथिर ४ असुहं ५ च  
॥२॥ अज्जसकिसी ६ य तहा, पमत्तविरयम्मि बंधवोच्छेओ । देवाउयं च  
एगं, नायव्वं अप्पमत्तंमि ॥३॥ निहा १ पयला २ य तहा, अपुव्वपढमंमि  
बंधवुच्छेओ । देवदुगं २ पच्चिदिय ३, उरालवज्जं चउसरीरं ७ ॥४॥ समचउरं ८  
वेउव्विय ९, आहारगअंगुवंगनामं १० च । वण्णचउक्कं १४ च तहा, अगुरुयलहुयं  
च चत्तारि १८ ॥५॥ तसचउ २२ पसत्थमेव य, विहायगइ २३ थिर २४ सुहं  
च २५ नायव्वं । सुहयं २६ सूसरमेव य २७, आपज्जं २८ चैव निमिणं च २९  
॥६॥ तिथयरमेव तीसं, ३०, अपुव्वलब्भाय बंधवोच्छेओ । हास १ रह २ भय  
३ दुगुंला ४, अपुव्वचरिमम्मि वोच्छिन्ना ॥७॥ पुरिसं १ चउसंजलणं ५, पंच य  
पयडीओ पंचभागम्मि । अनियट्टोअच्चाए, जहक्कमं बंधवोच्छेओ ॥८॥ नाणंतराय-  
दसगं १०, वंसणचत्तारि १४ उच्च १५ जसकिसी १६ । एया सोलस पयडी सुहु-  
मसरागंमि वोच्छिन्ना ॥९॥ उधसंतखीणमोहे, जोगिमि उ साय १ बंधवोच्छेओ ।  
नायव्वो पयडीर्ण, बंधस्संतो अणंतो य ॥१०॥’ बन्धस्यान्तोऽनन्तश्चेत्यस्यायमर्थः—  
याः प्रकृतयो यत्र गुणस्थाने व्यवच्छिन्नास्तत्र तासामन्तोऽप्रेतनगुणस्थाने न गच्छन्तीति,  
अन्यासां त्वनन्त उत्तरत्रापि गच्छन्तीति तात्पर्यमिति । आसां दशानामपि गाथानां पुनर्व्या-  
ख्यानां कर्मस्तवटीकातो बोद्धव्यमिति । तथाऽत्रैव प्रकृत्यपकर्षप्रक्षेपकथनगाथाः । यथा—

१ कर्मस्त्ववे तु “तहप्पमत्तम्मि नायव्वं” इत्येवंरूपः पाठोऽपि दृश्यते ।

“वीससयं सामन्ने, सत्तरससयं तु बंधए मिच्छो । तिथ्यराहारदुगं, न बंधए फिट्टए तेण ॥१॥ सम्मा मिच्छद्धिडो, आऊणि न बंधए 'जओ ताणि । फिट्ट'ति 'तेण तस्स उ अऊमवसाओ 'जओ नत्थि ॥२॥ तिथ्यरं पक्खिप्पइ, सम्मद्धिडिम्मि बंधए जेण । सम्मत्तस्स गुणंणं, आऊणि य तत्थ खिप्पति ॥३॥ आहारमप्पमत्ते, पक्खिप्पइ जेण संजमो तस्स । इय वुसु गुणठाणेसुं, अषगरिसो दोसु पक्खेवो ॥४॥” इह कर्मस्त्वोक्तगुणस्थानकबन्धात् नरतिरश्चां मिश्राविरतगुणस्थानकयोर्विशेषोऽयं द्रष्टव्यः । तद्यथा—कर्मस्त्वोक्ते मिश्रगुणस्थानके चतुःसप्ततिः ७४, अविरतगुणस्थानके सप्तसप्ततिः ७७ इति । नरतिरश्चां पुनर्मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीवज्जर्षभनाराचसंहननौदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्ग-लक्षणप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धाभावान्मिश्रगुणस्थानके एकोनसप्ततिः ६९, अविरते सप्ततिः ७०, केवलं नराणां तीर्थकरक्षेपे एकसप्ततिः ७१ इति । इहैकसप्ततिप्रमाणनरबन्धमध्येऽनन्तरोक्तप्रकृ-तिपञ्चके नरायुष्के च क्षिप्ते कर्मस्त्वोक्ता सप्तसप्ततिर्मवति अविरतगुणस्थानके ७७ इति । एवं सामान्यकर्मस्त्वोक्ताङ्गावली नरतिर्यङ्गावली च किञ्चित्पृथग्जातेति केवलं तिरश्चां पञ्चैव गुण-स्थानानि, नराणां तु सर्वाण्येव । विशेषस्तु मिश्राविरतगुणस्थानयोरिति तात्पर्यार्थः । विस्तरतस्तु कर्मप्रकृतिवर्णनादिकर्मस्त्वोक्तातो विज्ञेयमिति । तथा—‘अप्पञ्जसो’ इत्यादि, अपर्याप्तमनुजाः पुनस्तिर्यञ्च इव शतं नवाग्रं १०९ बध्नन्ति । तुशब्दो योजित एव । इति गाथाद्वयार्थः ॥१४॥

एवं मनुष्यगतौ बन्धस्वामित्वमुक्तम् । साम्प्रतं देवगतिमधिकृत्य तत्र प्रतिपादयन्नाह—

वेउव्वाहारदुगं, नारयसुरसुहुमविगलजाइतिगं ।

‘मोत्तु’ चउरग्गसयं, देवा बंधंति ओहेणं ॥१५॥

(हारि०) व्याख्या—‘वेउव्वाहारदुगं’ इति, द्विकशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धाद्वैक्रियशरीरतदङ्गो-पाङ्गद्विकं, आहारकशरीरतदङ्गोपाङ्गद्विकम् । ‘नारयसुरसुहुमविगलजाइतिगं’ इति, त्रिकश-ब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्कारकत्रिकं सुरत्रिकं च प्राग्वत् । सूक्ष्मत्रिकं तु सूक्ष्मनामसाधारणना-मापर्याप्तनामलक्षणम् । विकलजातित्रिकं च प्राग्वत् । एवमेताः षोडश ‘प्रकृतीर्द्वन्द्वगर्भास्तत्पुरु-पकृतसमासाः विशत्यधिकशतमध्यानुक्त्वा चतुरग्रशतं १०४ ओषेन देवा बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥१५॥

एवमोषबन्धं प्रतिपाद्य साम्प्रतं गुणस्थानकेषु तन्निरूपयन्नाह—

तित्थोणं तं मिच्छा, साणा छेवड्डहुं डनपुमिच्छं ।

एगिंदिथावरायवपयडी ‘मोत्तूण छन्नउइं ॥१६॥

(हारि०) व्याख्या—तच्च चतुरग्रशतं तीर्थकरनामोनं १०३ मिथ्यादृशो देवा बध्नन्ति इति प्राक्तनेन संबन्धः । एवमुत्तरत्रापि । छेदस्पृष्टसंहननहुण्डसंस्थाननपुंसकवेदमिथ्यात्वमिति द्वन्द्वै-  
कवद्भावः । तथैकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामप्रकृतीर्विहितद्वन्द्वसमासाः । एवमेताः सप्तापि त्र्यधि-  
कशतमध्यान्मुक्त्वा शेषां षण्णवति सासादनसम्यग्दृष्टिदेवा ९६ बध्नन्ति इति गाथार्थः ॥१६॥

तथा—

ओद्युतं पणुवीसं, नराउजुतं विवर्जितं मीसा ।

बंधंति सयरिमजया, तित्थनराऊहि विगसयरी ॥१७॥

(हारि०) व्याख्या—ओद्योक्तां पञ्चविंशतिं नरायुयुक्तां षण्णवतेर्मध्याद्विवर्ज्य शेषां सप्ततिं  
'मिश्राः' सम्यग्मिथ्यादृष्टयो देवा बध्नन्ति ७० । एषा च सप्ततिस्तीर्थकरनामनरायुभ्यां सह  
द्विसप्ततिर्भवति, तां ७२ अयता बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥२७॥

इति सामान्येन देवगतिबन्धः प्रतिपादितः, साम्प्रतं विशेषतो देवविशेषनामोच्चारणपूर्वकं  
तमाह—

मिच्छाइअविरयंता, देवोघं तित्थहीण बंधंति ।

भवणवणजोहदेवा, देवीओ चैव सव्वाओ ॥१८॥

(हारि०) व्याख्या—अत्र पदघटनैवं कार्या—भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कदेवाः सर्वे तद्देव्यश्चैव सर्वा  
मिथ्यादृगाद्या अविरतसम्यग्दृष्टिपर्यन्ता विभक्तिलोपात्तीर्थकरनामहीनं देवोघं चतुरग्रशतादिल-  
क्षणं यथासंभवं बध्नन्तीति । तद्यथा—सामान्यतस्त्र्यधिकशतं १०३, मिथ्यादृशोऽपि त्र्यधिक-  
शतं १०३, सासादनाः षण्णवति ६६, मिश्राः सप्तति ७०, अविरता एकाधिकसप्तति ७१  
बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥१८॥

तथा—

सामन्नदेवभंगो, सोहम्मीसाण मिच्छमार्ईणं ।

सहसारंता इगिथावरायवोणं सणंकुमारार्ई ॥१९॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या—'सामान्यदेवभङ्गकः' पूर्वोक्तचतुरग्रशतादिलक्षणः १०४, कयोः ?  
विभक्तिलोपात्सौधर्मेष्टानयोः, केषाम् ? मकारोऽलाक्षणिकः, मिथ्यादृगादीनां भवतीति शेषः ।  
इह यद्यपि 'मिच्छमार्ईणं' इत्युक्तं तथाऽपि सामान्यमपि द्रष्टव्यम् । ततः सामान्येन  
चतुरग्रशतं १०४, मिथ्यादृशां त्र्यग्रशतं १०३, सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः  
७०, अविरतानां द्विसप्तति ७२ रिति । 'सहसारंता' इत्यादियोजना त्वेवं कार्या—सनत्कुमा-

राधाः सहस्रारान्ता देवा एकेन्द्रियजातिस्थावरातपोनमोघं चतुरग्रशतादिलक्षणं बध्नन्ति । तद्यथा- सामान्येकैकाग्रशतं १०१, मिथ्यादृशः शतं १००, सासादनाः षण्णवतिं ९६, मिश्राः सप्ततिं ७०, अयता द्विसप्तति ७२ मित्यत्र सासादनादिगुणस्थानकत्रये एकेन्द्रियादिप्रकृतित्रयस्य, “तित्थोणं तं मिच्छा, साणा छेवद्दुब्बनपुमिच्छं । एगिंदिधावरायव-” इति गाथया प्रागेवापनीतत्वात् कश्चित्सङ्ख्याविशेष इह । इति गाथार्थः ॥१९॥

अथ सनत्कुमारादिसहस्रारान्तदेवा रत्नप्रभादिपृथिवीत्रयनारकाश्च बन्धमाश्रित्य समा इति गाथायाः प्रथमाद्धेन, तथा पश्चिमाद्धेनानतादित्रैवेयकान्तदेवानां सामान्यबन्धं दर्शयन्नाह—

रयणा नारयसरिसा, सहसरंता सणकुमाराई ।

इगिथावरायवतिरितिगुज्जोऊणं तु आणयाईया ॥२०॥ नीतिरियम् ।

(हारि०) व्याख्या—‘रयणा’ इति सूचकत्वात्सूत्रमिति न्यायात्पदावयवे पदसमुदायो-पचाराद्वा रत्नप्रभोच्यते । उपलक्षणं चैतत् प्रथमपृथिवीत्रयस्य । ततश्च रत्नप्रभाया नारका रत्न-प्रमानारकास्तैः सदृशाः=समाः रत्नप्रभानारकसदृशाः । क एते ? सनत्कुमाराद्याः सहस्रा-रान्ता देवा इति गम्यते । तद्यथा—सामान्येनैकाग्रशतं १०१, मिथ्यादृशां शतं १००, सासा-दनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अयतानां द्विसप्तति ७२ रिति । ‘इगि’ इत्यादि, एकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामतिर्यक्त्रिकोद्द्योतोनं तु चतुरग्रशतं सप्तनवतिर्मवति, तामान-ताद्या त्रैवेयकनवकान्ता देवा इति गम्यते, सामान्येन ९७ बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥२०॥

एवमानतादिसामान्यबन्धं प्रतिपाद्य साम्प्रतं तमेव गुणस्थानकविशिष्टं निरूपयन्नाह—

तित्थं नपुचउतिरितियउज्जोऊण पणवीस सनराउं ।

मोत्तूण मिच्छमाई, नराउतित्थेहि अजया उ ॥२१॥

(हारि०) व्याख्या—अस्या भावार्थोऽयम्—पूर्वोक्तसप्तनवतेर्मध्याचीर्थकरं मुक्त्वेति संबन्धः । एवमुत्तरत्रापि शेषां षण्णवतिं ९६ मिथ्यादृशो बध्नन्ति । तथा षण्णवतेर्मध्यात् ‘नपुंसकष्वत्पुष्कं’ सेवार्तसंहननहुण्डसंस्थाननपुंसकवेदमिथ्यात्वलक्षणं मुक्त्वा शेषां द्विनवतिं ९२ सासादना बध्नन्ति, तथा द्विनवतेर्मध्यात्तिर्यक्त्रिकोद्द्योतोनं ‘पञ्चविंशतिं’ एकविंशतिमित्यर्थः, किंवि-शिष्टाम् ? ‘सनरायुषं’ नरायुषुक्तां द्वाविंशतिमित्यर्थः, ‘मुक्त्वा’ त्यक्त्वा शेषां मिश्राः सप्ततिं ७० बध्नन्ति । तथा सप्ततिं च नरायुस्तीर्थकराभ्यां सहाविरता बध्नन्ति ७२ । तुशब्दाद्विशेषा-

नमिधानेऽपि मिथ्यात्वादिगुणस्थानकत्रयाभावात्पञ्चोत्तरविमानदेवा एतामेवाविरतगुणस्थान-  
कसत्कां द्विसप्ततिं ७२ बध्नन्ति इति गाथार्थः ॥२१॥

इति देवगतौ बन्धस्वामित्वमुक्तम्, तद्भ्रणनाच्च गतिबन्धमार्गणा समाप्ता १ ॥ गाम्प्रत-  
मिन्द्रियेषु तदारम्यते—

तित्थाहारं निरयसुराउं 'मोत्तुं' विउव्विच्छक्कं च ।

'इगविगलिदी बंधहि', नवुत्तरं ओघमिच्छा य ॥२२॥

(हारि०) व्याख्या—'तित्थाहारं' इति, द्विकशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः । ततस्तीर्थकग १ ऽऽहार-  
कद्विकं ३, नरकायुः ४, सुरायुः ५, 'वैक्रियषट्कं च' वैक्रियशरीर ६ तदङ्गोपाङ्ग ७ सुरगति ८  
सुरानुपूर्वी ९ नरकगति १० नरकानुपूर्वीलक्षणं ११ विंशत्युत्तरशतमध्यादिति शेषः, मुक्त्वा  
शेषं नवोत्तरं शतमिति गम्यते १०९, 'ओघ' इति प्राकृतत्वात् सामान्यपदिनो मिथ्यादृशश्च  
१०९ एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥२२॥

अथ गाथायाः प्रथमाद्धेन तेषां सासादने बन्धं समर्थयन्नपराद्धेन पञ्चेन्द्रियेषु तमाह—

साणा बंधहिँ सोलस, 'निरतिगहीणा य 'मोत्तुं' छन्नउइं ।

ओघेणं वीसुत्तर—सयं च पंचिदिया बंधे ॥२३॥

(हारि०) व्याख्या—अत्रापि पदघटनैवं कार्या—नरकत्रिकहीनाश्च षोडश प्रकृतीर्नवोत्तरशतमध्या-  
न्मुक्त्वा शेषां षण्णवति ९६ मेकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सासादना बध्नन्ति । पञ्चेन्द्रियाः पुनः चश-  
ब्दस्य पुनरर्थस्यात्र योजनात् 'ओघेन' सामान्येन विंशत्युत्तरशतं १२० 'बन्धे' इति प्राकृतत्वा-  
द्बध्नन्तीति, अत्रोपलक्षणत्वान्मिथ्यात्वादिषु च कर्मस्तवोक्तबन्धो द्रष्टव्यः । इति गाथार्थः ॥२३॥

अत्रैवैकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु सासादनमाश्रित्य मतान्तरमाह—

'इगिविगलिंदी साणा, तणुपज्जत्तिं न जंति जं तेण ।

नरतिरियाउअबंधा, मयतरेणं तु 'चउणउइं' ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या—एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सासादनाः सन्तः 'तनुपर्याप्तिं' शरीरपर्याप्तिं  
'न यान्ति' न गच्छन्ति, 'यद्' यस्माद्धेतोस्तेन ते नरतिर्यगायुरबन्धा इति मनान्तरेण पुनश्चतु-  
र्नवतिं ६४ बध्नन्तीति । अत्र भावार्थः—पूर्वमतेन शरीरपर्याप्त्युत्तरकालमपि सासादनभावस्ये-  
ष्टत्वादायुर्बन्धोऽभिप्रेतः । इह तु प्रथममेव तन्निवृत्तेर्नष्टः । इति गाथार्थः ॥२४॥

१ "मुत्तुं" इत्यपि पाठः । २ "इगि" इत्यपि पाठः । ३ "निरि" इत्यपि पाठः । ४ "मुत्तुं छन्नउइं"  
इत्यपि पाठः । ५ "इग०" इत्यपि पाठः । ६ "चउणउइं" इत्यपि पाठः । ७ "ऽभिहितः" इत्यपि पाठः ।



नमिधानेऽपि मिथ्यात्वादिगुणस्थानकत्रयाभावात्पञ्चोत्तरविमानदेवा एतामेवाविरतगुणस्थान-  
कसत्का द्विसप्ततिं ७२ बध्नन्ति इति गाथार्थः ॥२१॥

इति देवगतौ बन्धस्वामित्वमुक्तम्, तद्गणनाच्च गतिबन्धमार्गणा समाप्ता १ ॥ साम्प्रत-  
मिन्द्रियेषु तदारभ्यते—

तित्थाहारं निरयसुराउं 'मोत्तु' विउव्विच्छक्कं च ।

'इगविगलिदी बंधहि', नवुत्तरं ओघमिच्छा य ॥२२॥

(हारि०) व्याख्या—'तित्थाहारं' इति, द्विकशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः । ततस्तीर्थकरा १ ऽऽहार-  
कद्विकं ३, नरकायुः ४, सुरायुः ५, 'वैक्रियषट्कं च' वैक्रियशरीर ६ तदङ्गोपाङ्ग ७ सुरगति ८  
सुरानुपूर्वी ९ नरकगति १० नरकानुपूर्वीलक्षणं ११ विंशत्युत्तरशतमध्यादिति शेषः, मुक्त्वा  
शेषं नवोत्तरं शतमिति गम्यते १०९, 'ओघ' इति प्राकृतत्वात् सामान्यपदिनो मिथ्यादृशश्च  
१०९ एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥२२॥

अथ गाथायाः प्रथमाद्धेन तेषां सासादने बन्धं समर्थयन्नपराद्धेन पञ्चेन्द्रियेषु तमाह—

साणा बंधहिँ सोलस, 'निरतिगहीणा य 'मोत्तु' छन्नउइं ।

ओघेणं वीसुत्तर—सयं च पंचिंदिया बंधे ॥२३॥

(हारि०) व्याख्या—अत्रापि पदघटनैवं कार्या—नरकत्रिकहीनाश्च षोडश प्रकृतीर्नवोत्तरशतमध्या-  
न्मुक्त्वा शेषां षण्णवति ९६ मेकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सासादना बध्नन्ति । पञ्चेन्द्रियाः पुनः चश-  
ब्दस्य पुनरर्थस्यात्र योजनात् 'ओघेन' सामान्येन विंशत्युत्तरशतं १२० 'बन्धे' इति प्राकृतत्वा-  
द्बध्नन्तीति, अत्रोपलक्षणत्वान्मिथ्यात्वादिषु च कर्मस्तबोक्तबन्धो द्रष्टव्यः । इति गाथार्थः ॥२३॥

अत्रैवैकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु सासादनमाश्रित्य मतान्तरमाह—

'इगविगलिंदी साणा, तणुपज्जतिं न जंति जं तेण ।

नरतिरियाउअबंधा, मयतरेंणं तु 'चउणउइं' ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या—एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सासादनाः सन्तः 'तनुपर्याप्तिं' शरीरपर्याप्तिं  
'न यान्ति' न गच्छन्ति, 'यद्' यस्माद्धेतोस्तेन ते नरतिर्यगायुरबन्धा इति मनान्तरेण पुनश्चतु-  
र्नवतिं ६४ बध्नन्तीति । अत्र भावार्थः—पूर्वमतेन शरीरपर्याप्त्युत्तरकालमपि सासादनभावस्थे-  
ष्टत्वादायुर्वन्धोऽभिप्रेतः । इह तु प्रथममेव तन्निवृत्तेर्नेष्टः । इति गाथार्थः ॥२४॥

१ "मुत्तु" इत्यपि पाठः । २ "इगि" इत्यपि पाठः । ३ "निरि" इत्यपि पाठः । ४ "मुत्तु छन्नउइं"  
' इत्यपि पाठः । ५ "इगो" इत्यपि पाठः । ६ "चउणउइं" इत्यपि पाठः । ७ "ऽभिहित." इत्यपि पाठः ।

उक्तमिन्द्रियेषु बन्धस्वामित्वम् २ ॥ साम्प्रतं कायेषु तदुच्यते—

भूदगवणकाया एगिंदिममा मिच्छसाणदिट्टीओ ।

मणुयतिगुच्चं 'मोत्तु', सुहुमतसा ओघ थूलतसा ॥२५॥

(हारि०) व्याख्या-अत्रैवं योजना कार्या मिथ्यादृशः सासादनसम्यग्दृशश्च भूदगवनस्पतिकाया एकेन्द्रियसमाः । एकेन्द्रियाणां तु पूर्वमिदमुक्तम्, तद्यथा-ओघतः १०९, मि० १०९, सा० १६ । प्रागुक्तमतान्तरेण तु चतुर्नवतिरपि ९४ द्रष्टव्या । तथा 'मणुय' इत्यादि, अस्यायमर्थः पूर्वोक्तैकेन्द्रियविकलेन्द्रियसत्कान्नवाग्रशतान्मनुजत्रिकोच्चैर्गोत्रं मुक्त्वा 'सूक्ष्मत्रसाः' तेजो-त्रायुकायजीवः पञ्चोत्तरशतं १०५ बध्नन्ति । तथा 'ओघ' इति, अनुस्वारलोपादोषं विशत्यु-त्तरशतादिलक्षणं कर्मस्तवोक्तं 'स्थूलत्रसाः' त्रयकायिका बध्नन्तीति शेषः । अङ्गतः स प्रागेव दर्शितः । इति गाथार्थः ॥२५॥

एवं कायेषु बन्धोऽभिहितः ३ ॥ साम्प्रतं योगेषु तं प्रतिपादयन्नाह—

'मणवइजोगचउक्के, ओघो ढरलेवि ओघनरभंगो ।

निरतिगसुराउआहारगं 'च हिच्चा उ 'तंमीसे ॥२६॥

(हारि०) व्याख्या-' 'मनोवाग्योगचतुष्के' इति चतुष्कशब्दस्य प्रत्येकमिसंबन्धान्म-नोयोगचतुष्के वाग्योगचतुष्के चेत्यर्थः, सत्य १ मृषा २ मिश्रा ३ ऽसत्यामृषाख्ये ४ । एतत्स्वरूपं संक्षेपत इदम्-'अस्ति ओषः' इत्यादिचिन्तनपरं सत्यम् । एतद्विपरीतं मृषा । तथा घवखदि-रादिषु बृक्षेषु सत्सु खदिरवनमिदमिति मिश्रम् । सत्यमृषाविकलमसत्यामृषं आज्ञापनादि, यथा-हे देवदत्त ! घटमानय, धर्मं कुरु, मिश्रां देहीति । विस्तरव्याख्यानं तु ग्रन्थान्तरादवसेयं, गमनि-कामात्र 'त्वात्प्रस्तुतप्रयासस्येति ओघबन्धो विशत्युत्तरशतादिलक्षणः १२० कर्मस्तवाभिहितो विज्ञेय इति शेषः । तथौदारिकेऽपि 'ओघनरभङ्ग' सामान्यमनुष्यमङ्गको द्रष्टव्य इति शेषः, अङ्गत उभयेऽपि मङ्गकाः प्राक् प्रदर्शिता एव । तथा नरकत्रिकसुरायुराहारकद्विकं विहितसमाहा-हारद्वन्द्वसमासं प्रकृतिषट्कं विशत्युत्तरशतमध्यादिति शेषः, हित्वा शेषस्य चतुर्दशाधिकशतस्य ११४ 'तन्मिश्रे' त्वौदारिकमिश्रे सामान्येन बन्ध इत शेषः । सुरद्विकभावना 'सप्तमनरकपृ-थिव्या नरद्विकभावनावद्द्रष्टव्या । इति गाथार्थः ॥२६॥

अथौदारिकमिश्रेऽपि गुणस्थानकविशिष्टं तसाह—

१ "मुत्तु" इत्यपि पाठः । २ "मणवय०" इत्यपि पाठः । ३ "तु" इति मुद्रितप्रती । ४ "वन्मिरसे" इत्यपि पाठः । ५ "मनोयोगवा०" इत्यपि । ६ "त्वादेतत्त्व०" इति जे० । ७ "सप्तमनरकपृथि

सुरदुगं विउव्वियदुगं, तित्थं हिच्चा सयं नवगं तु ।  
बंधंति उरलमिस्से, मिच्छा उ सजोगिणो सायं ॥२७॥

(हारि०) व्याख्या—सुरद्विकवैक्रियद्विकं पूर्वोक्तम्, अत्र तन्पुरुपगर्भः समाहारद्वन्द्वः, तीर्थ-  
करनाम चेति प्रकृतिपञ्चकमनन्तरोक्तसामान्यबन्धाच्चतुर्दशोत्तरशतादिति गम्यते, 'हित्वा' परि-  
त्यज्य शेषं नवाग्रशतमौदारिकमिश्रयोगे मिथ्यादृशस्तु बध्नन्ति १०९ । तथा सयोगिन औदारिक-  
मिश्रयोग इति पूर्वेण योगः, केवलिसमुद्धाते सप्तमपष्टद्वितीयसमयेषु सातमेवैकं १ बध्नन्तीति  
पूर्वेण संबन्धः । अत्र यदुत्क्रमतः सयोगिग्रहणं तल्लाघवार्थम् । यच्च प्राक्तनगाथायाः 'औदारि-  
कमिश्रे' इति पदेऽनुवर्तमाने पुनस्तत्पदोपादानं तद्भिन्नगाथायां सुखार्थम् । इति  
गाथार्थः ॥२७॥

अथ सार्द्धगाथयौदारिकमिश्रयोगे बन्धं समर्थयन् गाथाद्धेन वैक्रिययोगे देवनारकबन्ध-  
समतां दर्शयन्ना(यँथा)ह—

निरतिगहीणा सोलस, तिरिनरआउं पि मोत्तु साणा वि ।  
तिरियाउविहीणं पण्णवीसमुज्झत्तु अविरए बंधो ॥२८॥  
तित्थं वेउव्वियदुगं, सुरदुगसहियं उरलमिस्से ।  
सामंनदेवनारयबंधो नेओ विउव्विजोगे वि ॥२९॥ गीत्युद्धृती एते गाथे

(हारि०) व्याख्या—नरकत्रिकहीनाः षोडश प्रकृतीः तथा तिर्यङ्नरायुषी अपि नवो-  
त्तरशतमभ्यादनन्तरोक्तान्मुक्त्वा शेषां चतुर्नवति ६४ मौदारिकमिश्रयोग इति पूर्वेणयोगः ।  
'साणा वि' इति, सासादनसम्यग्दृशोऽपि । अपिशब्दः समुच्चयार्थः । बध्नन्तीति प्राक्त-  
नेन संबन्धः । तथा चतुर्नवतेर्मध्यात्तिर्यगायुर्विहीनां पञ्चविंशतिं 'उज्झत्त्वा' परित्यज्य  
शेषायाः सप्ततेः 'तित्थं वेउव्वियदुगं सुरदुगसहियं' इति, प्राकृतवस्त्राचीर्थकरनाम वैक्रिय-  
द्विकं सुरद्विकसहितमिति पञ्चप्रकृतिसहिताया ७५ औदारिकमिश्रयोगे 'अविरए' इति,  
अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके बन्धः । एवं गुणस्थानकचतुष्क एवौदारिकमिश्रयोगोऽपि लभ्यते  
नान्यत्रेति । मिश्रता चात्र कर्मणेनैव 'सह मन्तव्येति । 'सामंनदेवनारयबंधो नेओ विउ-  
व्विजोगे वि' इति, वैक्रिययोगेऽपि सामान्यदेवनारकबन्धो ज्ञेयः । स च प्रागेव प्रतिपादितः,  
तद्यथा—देवानां सामान्येन 'चतुरप्रशतं १०४, मिथ्यादृशां त्र्युत्तरशतं १०३, सासादनसम्यग्दृशां

१ "वेउव्वियदुगं" इत्यपि पाठः । २ "मुत्तु" इत्यपि पाठः । ३ "बंधो" इति मुद्रितप्रती । ४ "ण्णो" इत्यपि । ५ "सहेति मन्तव्यमिति" इति जे० । ६ "चतुरस्तरशतम्" इति जे० ।

षण्णवतिः ६६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, 'अविरतसम्यग्दृशां द्विसप्तति ७२ रिति । नारकाणां तु सामान्येनैकाधिकं शतं १०१, मिथ्यादृशां शतं १००, सामादनानां षण्णवतिः ६६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतानां द्विसप्तति ७२ रिति । स्वभावस्थदेवनारकवैक्रिययोगोऽत्र गृहीतः । इति गाथाद्वयार्थः ॥२८-२९॥

साम्प्रतं वैक्रियमिश्रयोगेऽपि देवनारकबन्धातिदेशगमं सामान्यपदे मिथ्यात्वसासादना-  
विरतगुणस्थानकत्रये च तन्निरूपयन्नाह—

वेउव्वयमीमम्मि वि, तिरियनराऊहिँ वज्जिया सेसा ।

तित्थोणा ता मिच्छा, बंधाहिँ माणा उ चउणउहँ ॥३०॥

एगिँदिथावरायवसंढाहचउक्कवज्जिया सेसा ।

तिरियाऊणं पणुवीम मोत्तु अजया मतित्था उ ॥३१॥

(हारि०) व्याख्या-वैक्रियमिश्रयोगेऽपि न केवलं वैक्रिययोग इत्यपिशब्दार्थः । अनन्तरं देवना-  
रकवैक्रिययोगोक्ताः प्रकृतीस्तिर्यगरायुर्म्यां वर्जिताः शेषा द्व्युत्तरशतसङ्ख्याः सामान्येन देवाः  
१०२, नारकास्तु नवस्वतिप्रमाणा ९९ बध्नन्ति । 'इह देवनारका निजायुषः षण्मासावशेषा  
एवायुर्वध्नन्ति, अतो मिश्रयोगे उत्पत्तिकाले आयुर्द्वयबन्धाभावे ता एव सामान्योक्ताः प्रकृती-  
स्तीर्थकरोना मिथ्यादृशो देवाः १०१ नारकाश्च ९८ बध्नन्तीति ॥३०॥ अथ 'एगिँदि' इत्या-  
दिगाथा विव्रियते—ता एव पुनरेकेन्द्रियजातिस्थावरातपनामनपुंसकवेदहुण्डसंस्थानसेवात्त-  
संहननमिथ्यात्वरूपनपुंसकचतुष्कवर्जिताः शेषाः सासादनवर्तिनो देवाः ९४, 'नारका नपुं-  
सकचतुष्केण वर्जिताः शेषाः न त्वेकेन्द्रियादित्रयेण तस्य प्रागेव 'थावरखड जाईखड'  
इत्यादिगाथयाऽपनीतत्वादित्यतश्चतुर्नवति ९४ सङ्ख्या एव बध्नन्ति । तथा तिर्यगायुरूनां  
'पणषोस' इति विभक्तिलोपात् पञ्चविंशतिं मुक्त्वा सतीर्थकराः कर्मप्रकृतीरयता अविरतसम्य-  
ग्दृष्टिदेवाः ७१, तुषण्डः समुच्चयार्थः । नारकाश्च ७१ बध्नन्ति वैक्रियमिश्रयोग इति पूर्वेण  
योगः । मिश्रता चात्र प्रथमोत्पत्तौ कार्मणकायेनव सह मन्तव्येति । अयं च मिथ्यात्वसासादना-  
विरति गुणस्थानकत्रय एव लभ्यते नान्यत्र । यत एतेष्वेव गृहीतेषु जीवा म्रियन्ते नान्येषु ।  
तथाहि—“मिच्छे सासाणे वा, अविरयसम्मम्मि अह्वष गहिम्मि ! जंनि जिया  
परलोए, सेसेकारसगुणे मोत्तु ॥१॥” इति गाथाद्वयार्थः ॥३०-३१॥

१ “अविरतानां द्विसप्तति ७२ रिति” इत्यपि ॥ २ “मुत्तु” इत्यपि पाठः । ३ “इह देवनारका निजा-  
युषः षण्मासावशेषा एवायुर्वध्नन्ति, अतो मिश्रयोगे उत्पत्तिकाले आयुर्द्वयबन्धामावे” इति पाठो जे०  
प्रतौ न दृश्यते । ४ “नारकाश्च नपुंसकादि चतु० इत्यपि । ५ “विरत०” इत्यपि ।

अथ गुणस्थानकदृष्टान्तपूर्वकं किञ्चिदधिकपादेनाहारकयोगद्वये, तथा सामान्यपदे गुण-  
स्थानचतुष्टये च तद्नगाथात्रयेण कार्मणकाययोगे बन्धमाह—

तेवट्टाहारदुगे, जहा प्रमत्तस्स कम्मणे बंधो ।  
आउत्तिगं निरयतिगं, आहारय वज्जितं ओघो ॥३२॥  
'सुरदुगतित्थविउव्वियदुगाण मोत्तूण बंधहिं मिच्छा ।  
निरतिगहीणा सोलस, वज्जित्ता सासणा कम्मं ॥३३॥  
तिरियाऊणं पणुवीस 'मोत्तु सुरदुगविउव्विदुगजुत्तं ।  
अजया तित्थेण समं, सजोगि सायं समुग्घाए ॥३४॥

(हारि०) व्याख्या—'तेवट्टा' इति प्राकृतत्वाद्विभक्तिलोपे त्रिपष्टेः ६३ कर्मप्रकृतीनामिति गम्यते आहारकद्विके आहारकशरीर 'तन्मिश्रलक्षणयोगद्वये बन्धो यथा प्रमत्तस्येति पृष्टीसप्तम्योरर्थं प्रत्यमेदाद्यथा प्रमत्ते प्रमत्तगुणस्थानके बन्धशब्दस्य वक्ष्यमाणस्यात्रापि योजनादेवं संबन्धः । साम्प्रतं कार्मणकाययोगे बन्धमाह—'कम्मणे बंधो आउत्तिगं' इत्यादि, आयुस्त्रिकं तिर्यहन-  
रामरायुष्कलक्षणम् । नरकत्रिकं प्रागुक्तम् । 'आहारय' इति सूचकत्वात्सत्रस्याहारकशरीरत-  
दङ्गोपाङ्गलक्षणं द्वयं ग्राह्यं, इत्यष्टावोषबन्धाद्विशत्युत्तरशतलक्षणाद्वर्जयित्वा शेषस्य द्वादशोत्तरश-  
तस्य ११२ सामान्येन कार्मणकाययोगे बन्धः । इति गाथार्थः ॥३२॥ तथा—सुरद्विक २ तीर्थ-  
कर १ वैक्रियद्विकानि २ पूर्वोक्तानि, तत्पुरुषगर्मकृतद्वन्द्वसमासानि कर्माणीति शेषः, अनन्त-  
रोक्तसामान्यबन्धद्वादशोत्तरशतमभ्यान्मुक्त्वा शेषं सप्तोत्तरशतं १०७ कार्मणकाययोगे मिथ्या-  
दशो बध्नन्ति । तथा नरकत्रिकहीनाः षोडश प्रकृतीरिति शेषः, अनन्तरोक्तसप्तोत्तरशतमध्याद्व-  
र्जयित्वा शेषां चतुर्नवतिं ६४ सासादनसम्यग्दृष्टयः 'कम्मं' इति कार्मणकाययोगे बध्नन्तीति प्राक्तनेन संबन्ध इति । 'कम्मणे बंधो' इति प्राक्तनगाथाया अनुवर्तमाने कार्मणकाययोगे यत् पुनरिहोक्तम् 'कम्मं' इति तद्गुणस्थानकयोजनार्थमिति न दोषः । इति गाथार्थः ॥३३॥  
तथा—तिर्यगायुरूनां 'पणुवीस' इति विभक्तिलोपात्पञ्चविंशतिमनन्तरोक्तचतुर्नवतेर्मध्यान्मु-  
क्त्वा शेषां सप्ततिं सुरद्विकवैक्रियद्विकयुक्तां तीर्थकरेण च 'समं' सार्द्धं पञ्चसप्ततिमित्यर्थः, अयता अविरतसम्यग्दृष्टयः कार्मणकाययोगे बध्नन्तीति ७५ पूर्वेण संबन्धः । अयं च कार्मणकाययोगो विग्रहगतौ गच्छतो जीवस्यानाहारकस्यैतद्गुणस्थानत्रयोपेतस्य लभ्यते । तथाहि—'मिच्छे सासाणे वा, अविरयसम्मम्मि अह्व गहियम्मि । जंति जिधा परलोए, सेसेक्का-

१ सुषुण इत्यपि पाठः । २ सुत्तु इत्यपि पाठः । ३—'तन्मिश्रलक्षणे योगद्वये' इति न्यस्तं कश्चित् ॥

रसगुणे मोक्तुं ॥१॥” तथा ‘सजोगि सायं समुग्घाए’ इति विभक्तिलोपात्सयोगिनस्त्र-  
योदशगुणस्थानवर्तिनः समुद्धाते केवलिसमुद्धाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु कार्मणकाययोगे  
सातमेवैकं १ बध्नन्तीत्यत्रापि प्राक्तनेन संबन्धः । एवं च कार्मणकाययोगो मिथ्यात्वसासाद-  
नाविरतसयोगिगुणस्थानकचतुष्टय एव लभ्यते, नान्यत्र । इति गाथार्थः ॥३२-३३-३४॥

एवं योगेषु बन्धस्वामित्वमुक्तम् ४ ॥ साम्प्रतं वेदद्वारे कपायद्वारे च तत्प्रतिपादयन्नाह-  
वेयति एवोघेणं, बंधो जा बायरो ह्वइ ताव ।  
कोहाइसु चउमोघो, मिच्छाओ जाव ‘अनियट्टिं ॥३५॥

(हारि०) व्याख्या-‘वेदत्रिकेऽपि’ स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदरूपे ‘ओघेन’ सामान्येन बन्धः  
कर्मस्तवोक्तो यावदनिवृत्तिबादरगुणस्थानकं तावद्भवति, ततः परं वेदानामभावादिति । तद्यथा-  
सामान्येन १२० । मि० ११७ । सामादन १०१ । मिश्र ७४ । अविरत ७७ । दे० ६७ ।  
प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । नि० ५८, ५६ २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८, । इति वेदेषु  
बन्धस्वामित्वमुक्तम् ५ ॥ तथा क्रोधादिषु चतुर्ष्वोघबन्धो मिथ्यादृष्टेरारम्य यावदनिवृत्तिबादर-  
गुणस्थानकम् । तद्यथा-सामान्येन १२०, मि० ११७, सा० १०१, इत्यादिकोऽनन्तरोक्तो  
वेदद्वारवत् । इति गाथार्थः ॥३५॥

इति कषायद्वारे बन्धस्वामित्वमुक्तम् ६॥ साम्प्रतं ज्ञानद्वारे गुणस्थानकगर्भं यथायोगं  
तदारम्यते ।

अण्णाणति एवोघो, मिच्छासाणेसु नवसु नाणति ए ।  
मणपज्जवेवि सत्तसु, ओघं दुसु ‘केवलिस्सावि ॥३६॥

(हारि०) व्याख्या-‘अज्ञानत्रिकेऽपि’ मत्याज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपे मिथ्यादृष्टिसासादन-  
गुण-स्थानकरूपलक्षणत्वान्मिश्रे चौघबन्धः । तथा ‘ज्ञानत्रिके’ मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानलक्षणे  
‘नवसु’ गुणस्थानकेष्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादिक्षीणमोहान्तेष्वोघबन्ध इति संबन्धः । तथा मनः-  
पर्यायज्ञानेऽपि सप्तसु गुणस्थानकेषु प्रमत्तसंयतगुणस्थानादिक्षीणमोहान्तेषु ‘ओघं’ इति प्राकृ-  
तत्वादोघबन्ध इति । तथा केवलिनोऽपि ‘द्वयोः’ सयोग्ययोगिगुणस्थानकयोरोघबन्ध इति पूर्वेण  
योगः । सर्वत्र कर्मस्तवोक्तोऽयमोघबन्धो द्रष्टव्यः । यत्पुनरप्योघशब्दोपादानमेकगाथायां  
तत्सुखार्थम् । तथा त्रयोऽप्यपिशब्दाः समुच्चयार्थाः । स चाङ्गत एवम् । अज्ञानत्रिके-सामान्येन

११७ । मि० ११७ । सा० १०१ । मिश्रे ७४ । ज्ञानत्रये-अविरते ७७ । दे० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । नि० ५८, ५६, २६ । अनि० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ । क्षी० १ । मनःपर्यवे-प्र० ६३ । अ० ५९ ५८ । नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ । क्षी० १ । केवलिनः स० १ अ०-० ।

‘इह ज्ञानद्वारे मिश्रगुणस्थानकेऽप्युपलक्षणत्वादोषबन्धो द्रष्टव्यः ७४ । इति गाथार्थः ॥३६॥

एवं ज्ञानद्वारे सप्रतिपत्ते बन्धस्वामित्वमुक्तम् ७॥ अथ संयमद्वारे यथायोगं गुणस्थान-कसन्मिश्रं तत्प्रतिपादयन्नाह—

सामाहयछेषुं, पमत्तमाईसु चउसु ओघोत्ति ।

परिहारस्स पमत्ते, अपमत्ते सुहुम सट्टाणे ॥३७॥

उवसंताइसु अहस्त्राय देसविरयस्स होइ सट्टाणे ।

‘मिच्छाईसु चउसुं, ओघो अस्संजयस्सावि ॥३८॥

(हारि०) व्याख्या—सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोः प्रमत्तादिषु चतुर्ष्वोषबन्धः । ‘इतिः वाक्यसमाप्तौ । तथा ‘परिहारस्य’ परिहारविशुद्धिकस्य प्रमत्तेऽप्रमत्ते च गुणस्थानकद्वये ओषबन्ध इति योगः, एवमुत्तरत्रापि । ‘सुहुम’ इति विभक्तिलोपात्सूक्ष्मसम्परायस्य ‘सट्टाणे’ इति स्वस्थाने सूक्ष्मसम्पराये गुणस्थानक इति ॥३७॥ तथोपशान्तादिषु चतुर्षु गुणस्थानकेषु ‘अहस्त्राय’ इति विभक्तिलोपाद्यथाख्यातस्य, तथा देशविरतस्य स्वस्थाने भवति बन्धः । तथा मिथ्यात्वादिषु चतुर्ष्वसंयतस्यापि, न केवलं प्राक्तनेषु इत्यपिशब्दार्थः, ओषबन्धः । तद्यथा प्रथमसंयमयोः—प्र० ६३ । अ० ५९ ५८ । नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । परिहारविशुद्धिकस्य—प्र० ६३ । अप्र० ५९ । सूक्ष्मस्य—सू० १७ । यथाख्यातस्य—उ० १ । क्षी० १ । स० १ । अ०-० । देशविरतस्य—दे० ६७ । असंयतस्य—मिथ्या० ११७ । सा०-१०१ । मि० ७४ । अ० ७७ । इति गाथाद्वयार्थः ॥३७-३८॥

इति संयमद्वारे देशसंयमासंयमाभ्यां युक्ते बन्धस्वामित्वमुक्तम् ८ ॥ साम्प्रतं दर्शनद्वारे ‘सगुणस्थानके तन्निरूपयन्नाह—

चक्खुअत्रक्खु ओघो, मिच्छाई खीणमोह ओहिस्स ।

अजयाइनवसु केवलदंसण केवलिटुगे चव ॥३९॥

१ “इह ज्ञानद्वारे मिश्रगुणस्थानके बन्धो न चिन्तितः तस्य मिश्ररूपत्वादिषु सम्भाव्यत इति गाथार्थः ॥ ३६ ॥” इति जे० । २ “पादनायाह” इत्यपि ॥ ३ “मिच्छाईसुं चउसुं” इत्यपि पाठः । ४ “गुणस्थानकेषु” इत्यपि पाठः ।

(हारि०) व्याख्या-चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यादृग्गादि 'खोणमोह' इति प्राकृतवशात्पदैकदेशेऽपि पदावगमात्क्षीणमोहान्तेष्वोघबन्धः । तद्यथा-सामान्यतः १२० । मि० ११७ । सा० १०१ । मि० ७४ । अ० ७७ । दे० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । नि० ५८, ५६, २६, । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ । क्षी० १ । तथा 'ओह्रिस्स' इति विभक्तिव्यत्ययादवधिदर्शने अयतादिष्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादिषु नवरिवतिभणनात्क्षीणमोहान्तेष्विति लभ्यते ओघबन्धः । तद्यथा-अविरतस्य सप्तसप्तति ७७ रित्यादिरनन्तरं दर्शित एवेति । 'केवल-दंसण' इति विभक्तिलोपात्केवलदर्शने 'केवल्लिडुगे चैव' इति केवलिसत्कसयोग्ययोगिगुण-स्थानकद्विके चौघबन्ध इति पूर्वोण संबन्धः । तद्यथा-स० १ । अ०-० । इति गाथार्थः ३९॥

इति दर्शनद्वारे बन्धस्वामित्वं निरूपितम् ९ ॥ साम्प्रतं लेश्याद्वारमभिधीयते, तत्रादौ गुणस्थानकेषु ताः प्रतिपाद्य ततस्तद्गतं बन्धस्वामित्वं भणिव्यते—

छत्रउसु तिणिण तीसुं, छण्हं सुक्का अजोगि अल्लेसा ।

आहारुणा आइतिलेसी बंधंति सव्वपयडीओ ॥४०॥ जीतिरियम् ॥

(हारि०) व्याख्या-पद् लेश्याश्चतुषु<sup>१</sup> आद्यगुणस्थानकेषु ततस्तिष्ठो लेश्यास्तेजो-लेश्याद्यास्त्रिषु देशविरतप्रमत्ता<sup>२</sup> प्रमत्तेषु ततः 'छण्हं' इति विभक्तिव्यत्ययात् पदसु निवृत्तिवादर-गुणस्थानकादिषु सयोग्यन्तेषु । शुक्लैवैका लेश्या, अयोगिनस्त्वलेश्या एवेति । अङ्कतः-मि० ६ । सा० ६ । मि० ६ । अ० ६ । दे० ३ । प्र० ३ । अ० ३ । नि० १ । अ० । १ सू० १ । उ० १ क्षी० १ । स० १ । अ०-० । इति योजिता लेश्या गुणस्थानकेषु । साम्प्रतमुक्त-लेश्यावत्सु गुणस्थानकेषु बंधस्वामित्वं योज्यते-आहारकद्विकोनाः सर्वाः प्रकृतीः 'आइति-लेसी' इति प्राकृतशैलीवशादाद्यत्रिलेश्यावन्तः, इत्याद्यगुणस्थानकचतुष्केऽपि योज्यम् । सामा-न्येन बध्नन्ति ११८ । इति गाथार्थः ॥४०॥

तथा—

मिच्छा तित्थोणा ता, साणा उण सोलसविडूणा ।

सुरनरआऊ पणवीस मोत्तु बंधंति मीसा उ ॥४१॥ ब्हीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या-मिथ्यादृग्गादीन्तीर्थकरोनास्ता अनन्तरोक्ता अष्टादशाधिकशतसंख्याः प्रकृती-र्वध्नन्तीति योगः । तद्यथा-मि० ११७ । सासादनाः पुनः षोडशविहीनास्ताः पूर्वोक्तसप्तदशा-

१ "प्ररूपितम्" इत्यपि । २ "स्तद्वारबन्ध०" इत्यपि । ३ "तिभि" इत्यपि । ४ "०प्रमत्तान्तेषु इत्यपि ।

५ 'पणुवीस मुसु' इत्यपि ।



धिकशतप्रमाणा बध्नन्तीत्यत्रापि योज्यम् तद्यथा—सा० १०१ । तथा सुरनरायुपी पञ्चविंशतिं च पूर्वोक्तामेकाग्रशतान्मुक्त्वा शेषां चतुःसप्ततिं ७४ मिश्रा बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥४१॥

तथा—

सुरनरआउयसहिया, अविरयसम्मा उ 'होंति नायव्वा ।

तित्थयरेण जुया तह, तेऊलेसे परं वोच्छं ॥४२॥

(हारि०) व्याख्या—सुरनरायुष्कसहितास्तीर्थकरेण युताश्चतुःसप्ततिसंख्याः प्रकृतय इति शेषः । 'अविरयसम्मा उ' इति विभक्तिव्यत्ययात्तथाऽविरतसम्यग्दृष्टिपु 'भवन्ति' ज्ञातव्याः । तुशब्दः समुच्चयार्थः, स च प्राग् योजित एव । तथाशब्दोऽपीत्ययमर्थः—पूर्वोक्तां चतुःसप्ततिमेतत्प्रकृतित्रयसहितामतिरतसम्यग्दृशो बध्नन्ति ७७ इति । अथ गाथाचतुर्थपादेनाग्नेतनग्रन्थसंबन्धमाह 'तेऊलेसे' इति प्राकृतत्वात्तेजोलेश्यायामतः परं 'वक्ष्ये' अमिघास्ये । इति गाथार्थः ॥४२॥

यथाप्रतिज्ञातमेवाह—

विगलतिगं निरयतिगं सुहुमतिगूणं सयं तु 'एकारं ।

तित्थाहारूणा मिच्छ साण इगितिनपुचउरूणा ॥४३॥

(हारि०) व्याख्या—अनुस्वारयोरलाक्षणिकत्वाद्विकलत्रिकनरकत्रिकसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तलक्षणसूक्ष्मत्रिकोणं पुनर्विशत्युत्तरशतमेकादशाधिकशतं भवति तच्छतमेकादशाग्रं १११ । तुशब्दो योजित एव, सामान्येन तेजोलेश्याका जीवा बध्नन्तीति वक्ष्यमाणेन संबन्धः । 'तित्थाहारूणा' इति प्राकृतत्वेन द्विकशब्दलोपाचीर्थकराहारकद्विकोना एकादशोत्तरशतसंख्यप्रकृतीर्मिथ्यादृशस्तेजोलेश्यावन्तो बध्नन्तीति १०८ । 'इगिति' इति सूचकत्वात्सूत्रस्यैकेन्द्रियजातिस्थावरातपनामेति त्रिकं, 'नपुचउरूणा' इति प्राकृतत्वादेव नपुंसकवेदहुण्डसंस्थानसेवार्तसंहननमिथ्यात्वलक्षणनपुंसकचतुष्कं, अनयोर्द्वन्द्वः ताम्यामूना हीना एकेन्द्रियत्रिकनपुंसकचतुष्कोना अनन्तरोक्ता अष्टाधिकशतसङ्ख्याः प्रकृतय एकोत्तरशतसङ्ख्या भवन्ति १०१ । तास्तेजोलेश्याकाः सासादना बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥४३॥

मीसाईपंचगुणा, ओघं बंधंति पम्हलेसा वि ।

विगलतिगं निरयतिगं, सुहुमतिगेर्गिदिथावरायावं ॥४४॥

हिच्चा सयमट्टहियं, तित्थाहारदुगहीण मिच्छाओ ।

संढाइचउकोणं, साणा मीसाइ पणगओघं तु ॥४५॥ गीतिद्वयम् ॥

१ 'हु'ति" इत्यपि पाठः २ 'परे वुच्छ" इत्यपि । ३ "इकारं" इत्यपि पाठः ।

(हारि०) व्याख्या-तास्स्थ्यात्तद्व्यपदेशः' इतिन्यायान्मिश्रादिपञ्चगुणस्था जीवाः कर्मस्तवो-  
क्तमोघं बध्नन्ति । तद्यथा-मिश्र ७४ । अ० ७७ । दे० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९,  
इति तेजोलेश्याकाः । तथा पद्मलेश्याका अपि विकलत्रिकं नरकत्रिकं पूर्वोक्तस्वरूपम् ।  
'सुहृमतिग' इति सूक्ष्मनामसाधारणनामापर्याप्तकनामलक्षणसूक्ष्मत्रिकमेकेन्द्रियजातिस्थावर-  
नामातपनाम चेति पदद्वयस्य समाहारद्वन्द्वस्तदिति द्वादशप्रकृतीरित्यर्थः, 'हित्वा' त्यक्त्वा  
विंशत्यधिकशतमध्यादिति शेषः । शेषं शतमष्टाधिकं सामान्येन १०८ बध्नन्तीति प्राक्तन-  
क्रियायोग इति । तथा तीर्थकराहारकद्विकहीनाः पूर्वोक्ताष्टाधिकशतसङ्ख्याः प्रकृतीर्मिथ्यादृशस्तु  
पद्मलेश्याका बध्नन्तीति योगः १०५ । तथा पञ्चोत्तरशतं 'सढाहचउक्कोणं' इति नपुंसकादि-  
चतुष्केण पूर्वोक्तेनोनं हीनं नपुंसकादिचतुष्कोनं पद्मलेश्याकाः सासादना बध्नन्तीति १०१ ।  
तथा मिश्रादयः 'पणग' इति पञ्चौघं पद्मलेश्याका बध्नन्तीति योगः । तद्यथा-मिश्र० ७४ ।  
अ० ७७ । देश० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । तुः' पूरणे समुच्चये वा । इति गाथद्वयार्थः ।  
॥ ४४-४५ ॥

उक्तः पद्मलेश्यावत्सु गुणस्थानकेषु बन्धः । साम्प्रतं शुक्ललेश्यावत्सु जीवेषु सामान्येन  
स उच्यते—

बंधंति सुकलेसा, नारयतिरिसुहृमविगलजाइतिगं ।

इगिथावरायवुज्जोय वज्जिय सयं तु चउरहियं ॥४६॥

(हारि०) व्याख्या-बध्नन्ति शुक्ललेश्याकास्तु सामान्येनेति शेषः । किं तत् ? शतं चतुर-  
धिकमिति संबन्धः । तुशब्दो योजित एव । किं कृत्वा ? 'वज्जिय' इति वर्जयित्वेति योगः । किं  
तत् ? नारकतिर्यक्त्रिकसूक्ष्मत्रिकविकलजातित्रिकम् । अत्र तत्पुरुषगर्भः समाहारद्वन्द्वः । त्रिक-  
शब्दस्य च प्रत्येकममिसंबन्धः कार्यः । तथा 'इगिथावरायवुज्जोय' इति विभक्तिलोपा-  
देकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामोद्धोतनाम चेति प्रकृतिषोडशकमित्यर्थः, 'वर्जयित्वा' त्य-  
क्त्वा विंशत्यधिकशतमध्यादिति शेष इति । तद्यथा-सामान्येन १०४ । इति गाथार्थः ॥४६॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यावतामेव त्रयोदशगुणस्थानकेषु बन्धमाह—

तित्थाहारदुगूणं, एगहियसयं तु बंधही मिच्छा ।

संढाहचउक्कोणं, साणा बंधंति सगनउई ॥४७॥

(हारि०) व्याख्या—किञ्चिदत्र साध्याहारा योजना ततस्तदनन्तरोक्तं चतुरग्रशतं तीर्थकगहार-  
कद्विकोनमेकाग्रशतं भवति, तच्छुक्ललेश्याका मिथ्यादृशो वध्नन्ति १०१ । पुनरेतदेवैकाग्रशतं  
'संदाहचक्रोणं' इति नपुंसकादिचतुष्केण पूर्वोक्तनोनं हीनं नपुंसकादिचतुष्कोनं १ 'सत्  
सप्तनवतिर्भवति, तां शुक्ललेश्याकाः सासादना वध्नन्ति । यदिह वध्नन्तीति द्विरूपादानं तद्गुण-  
स्थानकद्वययोजनेन सुखार्थम् । इति गाथार्थः ॥४७॥

तथा—

तिरितियउज्जोऊणं पणुवीसं मोत्तु सुरनराउजुयं ।

चउहत्तरिं तु मीसा. बंधहिं कम्माण पयडीओ ॥४८॥

(हारि०) व्याख्या—तियेकत्रिकोद्द्योतोनां पञ्चविंशतिं सुरनरायुयुं तां सप्तनवतेर्मध्यान्मुक्त्वा  
चतुःसप्ततिं शुक्ललेश्याका मिश्रा वध्नन्ति ७४ कर्मणां प्रकृतीः । इति गाथार्थः ॥४८॥

साम्प्रतं बन्धमाश्रित्य लेश्याद्वारं गाथायाः पादत्रयेण समर्थयन्धतुर्थपादेन तु भव्यद्वारे  
बन्धस्वामित्वमुपदर्शयन्नाह—

तिथयरसुरनराउयसहिया अजयम्मि होइ सगसयरी ।

देसाइनवसु ओघो, भव्वेसु वि सो अभव्व मिच्छसमा ॥४९॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या—तीर्थकरसुरनरायुष्कसहिता 'अयत्ते' अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्था-  
नके सप्तसप्ततिर्भवति ७७ शुक्ललेश्याकानां बन्धमाश्रित्येति शेषः । तथा 'देसाह' इति देश-  
विरतादिनवसु गुणस्थानकेष्विति शेषः, ओघबन्धः । तद्यथा—देश० ६७ । प्र० ६३ । अ०  
५९, ५८ । नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ ।  
ची० १ । स० १ इति लेश्यासु बन्धस्वामित्वमुक्तम् १० ॥ साम्प्रतं भव्यद्वारे तदभिधीयते-  
'भव्वेसु वि' इति भव्येष्वपि न केवलं प्राक्तनपदेष्वित्यपिशब्दार्थः । 'सो' इति यः पूर्वं कर्म-  
स्तवोक्तो बन्धो दृष्टान्तीकृतः स बन्धो भवतीति योगः । तद्यथा—सामान्येन १२० । मि०  
११७ । इत्यादिकः । तथा 'अभव्व मिच्छसमा' इति प्राकृतत्वादभव्या मिथ्यादृष्टिसमाः ।  
तद्यथा—मि० ११७ । इति गाथार्थः ॥४९॥

एवं भव्याभ्येषु बन्ध उक्तः ११ ॥ साम्प्रतं 'सम्यक्त्वद्वारे यथासंभवं गुणस्थानक-  
सम्मिश्रः सम्यक्त्वे उच्यते—

१ "तत्सप्त—" इत्यपि पाठः ॥ २ "मुत्त" इत्यपि पाठः । ३ "सम्यक्त्वद्वारे" इति पाठो नास्ति  
जे० प्रती ।

(हारि०) व्याख्या-तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेशः' इतिन्यायान्मिश्रादिपञ्चगुणस्था जीवाः कर्मस्तवो-  
क्तमोघं बध्नन्ति । तद्यथा-मिश्र ७४ । अ० ७७ । दे० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९,  
इति तेजोलेश्याकाः । तथा पद्मलेश्याका अपि विकलत्रिकं नरकत्रिकं पूर्वोक्तस्वरूपम् ।  
'सुहृमतिग' इति सूक्ष्मनामसाधारणनामापर्याप्तकनामलक्षणसूक्ष्मत्रिकमेकेन्द्रियजातिस्थावर-  
नामातपनाम चेति पदद्वयस्य समाहारद्वन्द्वस्तदिति द्वादशप्रकृतीरित्यर्थः, 'हित्वा' त्यक्त्वा  
विंशत्यधिकशतमध्यादिति शेषः । शेषं शतमष्टाधिकं सामान्येन १०८ बध्नन्तीति प्राक्तन-  
क्रियायोग इति । तथा तीर्थकराहारकद्विकहीनाः पूर्वोक्ताष्टाधिकशतसङ्ख्याः प्रकृतीर्मिथ्यादृशस्तु  
पद्मलेश्याका बध्नन्तीति योगः १०५ । तथा पञ्चोत्तरशतं 'संढाहचउक्कोणं' इति नपुंसकादि-  
चतुष्केण पूर्वोक्तेनोनं हीनं नपुंसकादिचतुष्कोणं पद्मलेश्याकाः सासादना बध्नन्तीति १०१ ।  
तथा मिश्रादयः 'पणग' इति पञ्चोघं पद्मलेश्याका बध्नन्तीति योगः । तद्यथा-मिश्र० ७४ ।  
अ० ७७ । देश० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । तुः' पूरणे समुच्चये वा । इति गाथद्वयार्थः ।  
॥ ४४-४५ ॥

उक्तः पद्मलेश्यावत्सु गुणस्थानकेषु बन्धः । साम्प्रतं शुक्ललेश्यावत्सु जीवेषु सामान्येन  
स उच्यते—

बंधंति सुक्लेसा, नारयतिरिसुहृमविगलजाइतिगं ।

इगिथावरायबुज्जोय वज्जिय सयं तु चउरहियं ॥४६॥

(हारि०) व्याख्या-बध्नन्ति शुक्ललेश्याकास्तु सामान्येनेति शेषः । किं तत् ? शतं चतुर-  
धिकमिति संबन्धः । तुशब्दो योजित एव । किं कृत्वा ? 'वज्जिय' इति वर्जयित्वेति योगः । किं  
तत् ? नारकतिर्यक्त्रिकसूक्ष्मत्रिकविकलजातित्रिकम् । अत्र तत्पुरुषगर्भः समाहारद्वन्द्वः । त्रिक-  
शब्दस्य च प्रत्येकमसंबन्धः कार्यः । तथा 'इगिथावरायबुज्जोय' इति विभक्तिलोपा-  
देकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामोद्धोतनाम चेति प्रकृतिषोडशकमित्यर्थः, 'वर्जयित्वा' त्य-  
क्त्वा विंशत्यधिकशतमध्यादिति शेष इति । तद्यथा-सामान्येन १०४ । इति गाथार्थः ॥४६॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यावतामेव त्रयोदशगुणस्थानकेषु बन्धमाह—

तित्थाहारदुगूणं, एगहियसयं तु बंधही मिच्छा ।

संढाहचउक्कोणं, साणा बंधंति सगनउइं ॥४७॥

(हारि०) व्याख्या-किञ्चिदत्र साध्याहारा योजना ततस्तदनन्तरोक्तं चतुरग्रशतं तीर्थकराहाग-  
क्रद्विकोनमेकाग्रशतं भवति, तच्छुक्ललेश्याका मिथ्यादृशो वध्नन्ति १०१ । पुनरेतदेवैकाग्रशतं  
'संढाइचउक्तोणं' इति नपुंसकादिचतुष्केण पूर्वोक्तेनोनं हीनं नपुंसकादिचतुष्कोनं ? 'मत्  
सप्तनवतिर्भवति, तां शुक्ललेश्याकाः सासादना वध्नन्ति । यदिह वध्नन्तीति द्विरुपादानं तद्गुण-  
स्थानकद्वययोजनेन सुखार्थम् । इति गाथार्थः ॥४७॥

तथा—

तिरितियउज्जाऊणं पणुवीसं भोत्तु सुरनराउजुयं ।

चउहत्तरिं तु मीसा बंधहिं कम्माण पयडीओ ॥४८॥

(हारि०) व्याख्या-तियेवत्रिकोद्द्योतानां पञ्चविंशतिं सुरनरायुर्धुतां सप्तनवतेर्भग्यान्मुक्त्वा  
चतुःसप्ततिं शुक्ललेश्याका मिथ्या वध्नन्ति ७४ कर्मणां प्रकृतीः । इति गाथार्थः ॥४८॥

साम्प्रतं बन्धमाश्रित्य लेश्याद्वारं गाथायाः पादत्रयेण समर्थयन्धतुर्थपादेन तु भव्यद्वारे  
बन्धस्वामित्वमुपदर्शयन्नाह—

तित्थयरसुरनराउयसहिया अजयम्मि होइ सगसयरी ।

देसाइनवसु ओधो, भव्वेसु वि सो अभव्व मिच्छसमा ॥४९॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या-तीर्थकरसुरनरायुष्कसहिता 'अयत्ते' अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्था-  
नके सप्तसप्ततिर्भवति ७७ शुक्ललेश्याकानां बन्धमाश्रित्येति शेषः । तथा 'देसाइ' इति देश-  
विरतादिनवसु गुणस्थानकेष्विति शेषः, ओषबन्धः । तद्यथा-देश० ६७ । प्र० ६३ । अ०  
५९, ५८ । नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ ।  
झी० १ । स० १ इति लेश्यासु बन्धस्वामित्वमुक्तम् १० ॥ साम्प्रतं भव्यद्वारे तदभिधीयते-  
'भव्वेसु वि' इति भव्येष्वपि न केवलं प्राक्तनपदेष्वित्यपिशब्दार्थः । 'सो' इति यः पूर्वं कर्म-  
स्त्वोक्तो बन्धो दृष्टान्तीकृतः स बन्धो भवतीति योगः । तद्यथा-सामान्येन १२० । मि०  
११७ । इत्यादिकः । तथा 'अभव्व मिच्छसमा' इति प्राकृतत्वादभव्या मिथ्यादृष्टिसमाः ।  
तद्यथा-मि० ११७ । इति गाथार्थः ॥४९॥

एवं मन्व्यामन्वेषु बन्ध उक्तः ११ ॥ साम्प्रतं 'सम्यक्त्वद्वारे यथासंभवं गुणस्थानक-  
सम्मिश्रः सम्यक्त्वे उच्यते—

१ "तत्सप्त—" इत्यपि पाठः ॥ २ "मुक्त" इत्यपि पाठः । ३ "सम्यक्त्वद्वारे" इति पाठो नास्ति  
ज्ञे० प्रती ।

ओघो वेयगसम्मे, अजयाइचउक् खाइगेवोघो ।

अजयादजोगि जाव उ, ओघो उवसामिण होइ ॥५०॥

'उवसम्मे वट्टंता चउण्हमिक्कांपि आउयं नेय ।

बंधंति तेण अजया, सुरनरआऊहिं ऊणं तु ॥५१॥

(हारि०) व्याख्या-ओघबन्धः कर्मस्तवोक्तः, 'वेयगसम्मे' इति क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे गुणस्थानकमाश्रित्य, कस्मिन् ? अत आह-'अजयाइचउक्' इति विभक्तिलोपादविरतसम्यग्दृष्टि-देशयतप्रमत्ताप्रमत्तसयंतलक्षणगुणस्थानकचतुष्टये भवतीति योगः । तद्यथा-अविरत० ७७ । देश० ६७ । प्रमत्त० ६३ । अप्र० ५९, ५८ । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वस्वरूपं तूदीर्णमिध्यात्वक्षयेऽनुदीर्णोपशमे भवतीति । उक्तं च-"मिच्छरां जमुह्मं, तं खीणं अणुइयं तु उवसंतं । मीसोभावपरिणयं, वेइज्वंतं खओघसमं ॥९॥" तथा 'खाइगेवोघो' इति क्षायिकेऽप्योघबन्धो भवतीति सण्टक्कः । कस्मिन् ? अत आह-अजयादजोगिजाव' इति अयताश्चतुर्थगुणस्थानकादयोगिगुणस्थानकं चतुर्दशं यावत् । तद्यथा-अवि० ७७ । दे० ६७ । इत्यादिकः पूर्ववदिति । क्षायिकसम्यक्त्वस्वरूपं त्विदम्-"खीणे दंसणमोहे, तिविहम्मि वि भवनि-याणभूयम्मि । निप्पखवायमउलं, सम्मत्तं खाइयं होइ ॥९॥" तथोघबन्ध औपशमिके भवतीति ॥५०॥ अत्र किंचिद्विशेषमाह-"उवसम्मे" इत्यादिद्वितीयगाथा व्याख्यायते-औपशमिके सम्यक्त्वे वर्तमाना जीवाश्चतुर्णां मध्यादेकमप्यायुष्कं नैव बध्नन्ति, तेन 'अथयताः' अविरतसम्यग्दृष्टयः सुरनरायुर्म्या. तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, ऊनामेव नवरमोघं बध्नन्तीति । तदन्यायुष्कद्वयं प्रागेव मिध्यात्वसासादनगुणस्थानकद्वयेऽपनीतम्, ततोऽयतानामौपशमिकसम्यक्त्वे पञ्चसप्ततिरेव भवतीति ७५ । अयमाशयः-कर्मस्तवोक्तौघबन्धोऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके सुरनरायुषोर्वन्धोऽस्ति, औपशमिके नास्ति । इति गाथाद्वयार्थः ॥५०-५१॥

साम्प्रतं गाथायाः पूर्वाद्द्विनौपशमिकसम्यक्त्वेऽपि देशविरताद्युपशान्तमोहान्तगुणस्थान-केषु बन्धं दर्शयन्नपराद्देन तु संज्ञिद्वारे तमेव प्रतिपादयन्माह—

ओघो देसजयाइसु, सुराउहीणो उ जाव उवसंतो ।

ओघो मणिसु नेआं. मिच्छाभंगो असणीसु ॥५२॥

(हारि०) व्याख्या-ओघबन्धो देशयतादिषु, किं निःशेष एव ? न इत्याह-सुरायुषा हीनः सुरायुर्हीनः, तुशब्दः पुनरर्थे । ओघबन्धे हि देशविरत्याद्यप्रमत्तान्तेषु सुरायुषो बन्धोऽस्ति,

१ "उवसंतं" इत्यपि पाठः । २ "नेव" इत्यपि पाठः । ३ "गदृष्टिप्रभृतिगुणस्थानकचतुष्के भवतीति योगः" इति जे० प्रती ॥ ४ "सन्निषु" इत्यपि पाठः ।

औपशमिके सोऽपि नास्तीति भावः । अयं चौघबन्धः क्रियदूरं यावत् ज्ञेयः ? इत्याह—यावत्  
 'उपशान्तं' उपशान्तमोहवीतरागगुणस्थानकं प्राकृतत्वात्पुं लिङ्गनिर्देश इति । अङ्गतः पुनरीदृशः  
 दे० ६६ । प्र० २६ । अ० ५८ । नि० ५८, ५६, २६, । अ० २२, २१, २०, १९, १८ ।  
 सू० १७ । उ० १ । अत्र देवायुर्वन्धाभावाद्देशविरतिप्रभृतिगुणस्थानकत्रय एव कर्मस्तवोक्त-  
 बन्धाद्विशेषः. नान्यत्रेति । यदा पुनरुपशमश्रेणिस्य आयुष्कक्षये देवेषूपत्यतेऽसौ तदा त्वग्रति-  
 पचौपशमिकसम्यक्त्व एवायुर्वन्धं विधत्त इति । इह सूत्रेऽनुक्तोऽपि सम्यक्त्वविपक्षभूतेषु  
 मिथ्यात्वसासादनमिश्रेषु कर्मस्तवोक्त औघबन्धो द्रष्टव्यः । स पुनः—मि० ११७ । सा० १०१ ।  
 मि० ७४ । इति । अत्राह परः—ननु "उघसामगसेहोए, पडवओ अप्पमत्तविरओ उ ।  
 पज्जवसाणे सो वा, होइ पमत्तो अविरओ वा ॥९॥" अयमर्थः—उपशमश्रेण्याः  
 'प्रस्थापकः' आरोहकः 'अप्रमत्तविरतः' सप्तमगुणस्थानकस्थः साधुर्भवति । स एवौपश-  
 मिकः 'पर्यवसाने' उपशमश्रेण्या अद्वाक्षये भवति प्रमत्तोऽविरतो वा । तथा 'सो वा' इत्यत्र  
 वाशब्दादुपशमश्रेणिस्थो मृतो वा देवेषूपत्यतोऽविरतो वा भवतीति, सत्यम्, अपराचार्यमतेना-  
 विरतादयोऽपि प्रारम्भका इति । "यत उक्तम्—"अन्ने भणंति अविरयदेसपमत्तविरयाणं ।  
 अन्नयरो पड्विज्जइ, वंसणसमणम्मि उ नियट्ठो ॥१॥" चतुर्थपादस्यायमर्थः—दर्शन-  
 त्रिकोपशमे सति निष्पत्तिबादरो भवतीति । औपशमिकसम्यक्त्वं तूपशमश्रेण्यां प्रथमसम्यक्त्वलाभे  
 वा भवति जीवस्य । उक्तं च—"उघसामगसेहियस्स होइ उघसामियं तु सम्मत्तां । जो  
 वा अकयतिपुंजो, अस्ववियमिच्छो लइइ सम्मं ॥१॥" अत्राह परः—ननु क्षायोपशमिकौ  
 पशमिकसम्यक्त्वयोः कः प्रतिविशेषः, उच्यते—क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमिथ्यात्वदलिकवेदनं विपा-  
 कतो नास्ति, प्रदेशतः पुनर्विधते । औपशमिके तु प्रदेशतोऽपि नास्तीति विशेषः । एवं सप्रपञ्चं  
 सम्यक्त्वद्वारे बन्धस्वामित्वमभिहितमिति १२ ॥ 'ओघो सण्णि०' इत्यादि ओघबन्धः कर्म-  
 स्तवोक्तः 'संज्ञिषु' मनोविज्ञानवत्सु ज्ञेयः । तद्यथा—सामान्येन १२० । मि० ११७ । इत्या-  
 दिकः पूर्ववदिति । तथा मिथ्यादृष्टिभङ्गकः 'असंज्ञिषु' मनोविज्ञानविकल्पो ज्ञेय इति पूर्वेण  
 योगः । तद्यथा—मि० ११७ । इति गाथार्थः ॥५२॥

अथ गाथायाः पूर्वाद्धेन सासादनेऽसंज्ञिवन्धं समर्थयन्नपराद्धेनाहारकद्वारे सप्रतिपद्ये  
 तमेवाह—

साणेवि असण्णिस्सा, भंगा सण्णुभवा मुणेयव्वा ।

आहारगेषु ओघो, ह्यरेसु य कम्मणो भंगो ॥५३॥

१ "० क्षये सवार्थसिद्धावुत्पद्यतेऽसौ तदा" इति जे० । २ "यदुक्तम्" इत्यपि । ३ "सभिन्मवा"  
 इत्यपि । ४ "कम्मणो" इत्यपि पाठः ।

(हारि०) व्याख्या--सासादनेऽप्यसंज्ञिनो भङ्गः संश्रुद्भवो मुणितव्यः । तद्यथा-सा० १०१ । इह सूत्रे बहुवचनं प्राकृतशैलीवशाद् । इति संज्ञिद्वारे बन्धोऽभिहित इति १३ ॥ 'आहारगोसु ओघो' इति आहारकेष्वोघबन्धः कर्मस्तवोक्तः । तद्यथा-सामान्येन १२० । मि० ११७ । इत्यादिकः । तथेतरेषु पुनरनाहारकेषु 'कम्मणो' इति कर्मशरीरस्य संबन्धी 'भंगो' 'भङ्ग-विकल्पो मुणितव्य इति पूर्वोण योगः । तद्यथा-आयुत्त्रिकं नरकत्रिकं, आहारकद्विकम्, इत्यष्टौ प्रकृतीरोघबन्धाद्विंशत्यधिकशतलक्षणान्मुक्त्वा शेषस्य द्वादशोत्तरशतस्यानाहारके सामान्येन बन्धः ११२ । तथा सुरद्विकं २ तीर्थकरं १ वैक्रियद्विकं २ च पूर्वोक्तद्वादशोत्तरशतमध्यान्मुक्त्वा शेषस्य समोत्तरशतस्यानाहारके मिथ्यादृष्टेर्बन्धः १०७ । तथा नरकत्रिकहीनाः षोडश प्रकृतीः पूर्वोक्ताः समोत्तरशतमध्याद्दर्जयित्वा शेषायाश्चतुर्नवतेः सासादनगुणस्थानकेऽनाहारकजीवे बन्धः १४ । तिर्यगायुरूनां पञ्चविंशतिं पूर्वोक्तां चतुर्नवतेर्मध्यान्मुक्त्वा शेषायाः समतेः सुरद्विकवैक्रियद्विकतीर्थकरयुक्ताया अविरतगुणस्थानकेऽनाहारकजीवे बन्धः ७५ । तथा सयोगिनि त्रयोदशगुणस्थानके एकस्याः सातप्रकृतेः समुद्भाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्वनाहारकजीवे बन्धः । अयं चानाहारकजीवो मिथ्यात्वसासादनाविरतसयोगिगुणस्थानकचतुष्टय एव लभ्यते, नान्यत्रेति । यदिदं बन्धस्वामित्वं कर्मणकाययोगे प्राक् चतुर्थयोगद्वारे प्रतिपादितं तदिहाप्यर्थतः स्मारितं विस्मरणशीलानाम् । नवरं तत्र कर्मणकाययोगामिलापेनोक्तमिह त्वनाहारकामिलापेन । इति गाथार्थः ॥५३॥

इत्याहारके बन्धस्वामित्वं प्रतिपादितम् १४ ॥ तत्प्रतिपादनाच्च प्रतिपादितं प्रकरणादौ प्रतिज्ञातं चतुर्दशमार्गणास्थानबन्धस्वामित्वं गुणस्थानकयोजनागर्भं यथासंभवं पर्याप्तकापर्याप्तकजीवस्थानकसन्मिश्रं च । साम्प्रतमौद्धत्यपरिहारपूर्वकं प्रकरणसमर्थनां प्रयरणपरिज्ञानोपायं च प्रचिकटयिषुर्गाथामाह—

इय पुंस्सूरिकयपगरणसु जडबुद्धिणा 'मए रइय' ।  
बन्धस्सामित्तमिणं, नेयं कम्मत्थयं सोउं ॥५४॥

॥ बन्धसामिच्च सम्मत्तं ॥

(हारि०) व्याख्या-इतिशब्दः परिसमाप्तौ । 'पूर्वसूरिकृतप्रकरणेषु' कर्मप्रकृत्यादिषु विषये 'जडबुद्धिना' बालमतिना 'मए' इति ग्रन्थकार आत्मानं निर्दिशति, 'रचित्तं' निबद्धम् ।



यद्वा विभक्तिव्यत्यात्पूर्वस्वरिकृतप्रकरणेभ्यः सकाशाद्रचितं स्वभावतः पुनर्जडमतिनंति शेषः ।  
तथैवेति, 'बन्धस्वामित्वमिदं' प्रस्तुतप्रकरणमेतच्च 'ज्ञेयं' बोद्धव्यम् । किं कृत्वा ? 'श्रुत्वा'  
आकर्ण्य, कम् ? 'कर्मस्तत्र' कर्मस्तत्रप्रकरणम्, इह बहुषु स्थानेषु तदुक्तं बन्धनिर्देशद्वारेण  
बन्धाभिधानात् । इति गाथार्थः ॥५४॥

॥ अथ टीकाकृतप्रशस्तिः ॥

यत्यालये मन्दगुरुपशोभे, सन्मङ्गले सद्बुधराजहंसे ।  
तारापथे वा सुकविप्रचारे श्रीमानदेवामिधस्वरिगच्छे ॥१॥  
भव्या बभूवुः शुभशस्यशिष्याः, अध्यापकाः श्रीजिनदेवसंज्ञाः ।  
तेषां विनेयो गुरुभक्तियुक्तः समस्ति नाम्ना हरिभद्रस्वरिः ॥२॥  
अणहिल्लपाटकपुरे, श्रीमञ्जयसिंहदेवनृपराज्ये ।  
आशावरसौवर्णिकवसतौ विहिताधिवासेन ॥३॥  
बन्धस्वामित्वाख्यप्रकरणवृत्तिः समासतो रचिता ।  
तेनेयं तनुमतिना, प्राक्तनटिप्पनकमवलोक्य ॥४॥  
अत्र च यन्मतिमान्धादुत्स्रं विरचितं कथञ्चिदपि ।  
तच्छोध्यं धीमङ्गिः, परोपकारैककृतचित्तैः ॥५॥  
षर्षशतैकादशकै द्वासप्तत्याऽधिके नभोमासे ।  
सितर्षचर्म्या सूर्ये समर्थिता वृत्तिकेयमिति ॥६॥  
अस्यामक्षरगणनाज्जातं शतपंचरुं युतं षष्ट्या ।  
द्वात्रिंशदक्षरात्मक—सदनुष्ठुप्छन्दसां प्रायः ॥७॥

॥ इति श्रीमद्भरिभद्रस्वरिविहिता बन्धस्वामित्वप्रकरणवृत्तिः समाप्ता ॥

॥ ग्रन्थाग्रम् ५६० ॥

ममाप्तोऽयं सटीको बन्धस्वामित्वाख्यस्त्वृतीयः कर्मग्रन्थः

(हारि०) व्याख्या--सासादनेऽप्यसंज्ञिनो भङ्गः संश्रुद्भवो मुणितव्यः । तद्यथा-सा० १०१ । इह खत्रे बहुवचनं प्राकृतशैलीवशाद् । इति संज्ञिद्वारे बन्धोऽभिहित इति १३ ॥ 'आहारगोसु ओघो' इति आहारकेऽधोबन्धः कर्मस्तवोक्तः । तद्यथा-सामान्येन १२० । मि० ११७ । इत्यादिकः । तथेतरेषु पुनरनाहारकेषु 'कम्मणो' इति कर्मशरीरस्य संबन्धी 'संगो' 'भङ्गविकल्पो मुणितव्य इति पूर्वेण योगः । तद्यथा-आयुस्त्रिकं नरकत्रिकं, आहारकद्विकम्, इत्यष्टौ प्रकृतीरोधबन्धाद्विंशत्यधिकशतलक्षणान्मुक्त्वा शेषस्य द्वादशोत्तरशतस्यानाहारके सामान्येन बन्धः ११२ । तथा सुरद्विकं २ तीर्थकरं १ वैक्रियद्विकं २ च पूर्वोक्तद्वादशोत्तरशतमध्यान्मुक्त्वा शेषस्य सप्तोत्तरशतस्यानाहारके मिथ्यादृष्टेर्बन्धः १०७ । तथा नरकत्रिकहीनाः षोडश प्रकृतीः पूर्वोक्ताः सप्तोत्तरशतमध्याद्वर्जयित्वा शेषायाश्चतुर्नवतेः सासादनगुणस्थानकेऽनाहारकजीवे बन्धः ९४ । तिर्यगायुरूनां पञ्चविंशतिं पूर्वोक्तां चतुर्नवतेर्मध्यान्मुक्त्वा शेषायाः सप्ततेः सुरद्विकवैक्रियद्विकतीर्थकरयुक्ताया अविरतगुणस्थानकेऽनाहारकजीवे बन्धः ७५ । तथा सयोगिनि त्रयोदशगुणस्थानके एकस्याः सातप्रकृतेः समुद्भाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्वनाहारकजीवे बन्धः । अयं चानाहारकजीवो मिथ्यात्त्रसासादनाविरतसयोगिगुणस्थानकचतुष्टय एव लभ्यते, नान्यत्रेति । यदिदं बन्धस्वामित्वं कर्मणकाययोगे प्राक् चतुर्थयोगद्वारे प्रतिपादितं तदिहाप्यर्थतः स्मारितं विस्मरणशीलानाम् । नवरं तत्र कर्मणकाययोगामिलापेनोक्तमिह त्वनाहारकामिलापेन । इति गाथार्थः ॥५३॥

इत्याहारके बन्धस्वामित्वं प्रतिपादितम् ९४ ॥ तत्रप्रतिपादनाच्च प्रतिपादितं प्रकरणादौ प्रतिज्ञातं चतुर्दशमार्गणास्थानबन्धस्वामित्वं गुणस्थानकयोजनागर्म यथासंभवं पर्याप्तकापर्याप्तकजीवस्थानक<sup>३</sup>सन्मिश्रं च । साम्प्रतमौद्धत्यपरिहारपूर्वकं प्रकरणसमर्थनां प्रयरणपरिज्ञानोपायं च प्रचिकटयिषुर्गाथामाह—

इय पुञ्चसूरिकय<sup>१</sup>पगरणसु जडबुद्धिणा 'मए रइय' ।  
बंधस्सामित्तमिणं, नेयं कम्मत्थयं सोउं ॥५४॥

॥ बंधसामित्त सम्मत्तं ॥

(हारि०) व्याख्या-इतिशब्दः परिसमाप्तौ । 'पूर्वसूरिकृतप्रकरणेषु' कर्मप्रकृत्यादिषु विषये 'जडबुद्धिना' बालमतिना 'मए' इति ग्रन्थकार आत्मानं निर्दिशति, 'रचित्तं' निबद्धम् ।

१ 'कम्मणो' इत्यपि पाठः ॥ २ 'बन्धविकल्पो' इत्यपि । ३ 'समन्वितं च' इत्यपि । ४ "पगरणात्" इत्यपि पाठः । ५ "मया" इत्यपि ।

यद्वा विभक्तिव्यत्ययात्पूर्वस्वरिकृतप्रकरणेभ्यः सक्काशाद्रचितं स्वभावतः पुनर्जडमतिनेति शेषः ।  
तथैवेति, 'बन्धस्वामित्वमिवं' प्रस्तुतप्रकरणमेतच्च 'ज्ञेयं' बोद्धव्यम् । किं कृत्वा ? 'श्रुत्वा'  
आकर्ण्य, कम् ? 'कर्मस्त्वचं' कर्मस्तवप्रकरणम्, इह बहुषु स्थानेषु तदुक्तबन्धनिर्देशद्वारेण  
बन्धामिधानात् । इति गाथार्थः ॥५४॥

॥ अथ टीकाकृतप्रशस्तिः ॥

यत्यालये मन्दगुरुपशोमे, सन्मङ्गले सद्बुधराजहंसे ।  
तारापथे वा सुकविप्रचारे श्रीमानदेवामिधसूरिगच्छे ॥१॥  
मन्या बभूवुः शुभशस्यशिष्याः, अध्यापकाः श्रीजिनदेवसंज्ञाः ।  
तेषां विनेयो गुरुभक्तियुक्तः समस्ति नाम्ना हरिभद्रसूरिः ॥२॥  
अणहिल्लपाटकपुरे, श्रीमञ्जयसिंहदेवनृपराज्ये ।  
आशावरसौवर्णिकवसतौ विहिताधिवासेन ॥३॥  
बन्धस्वामित्वाख्यप्रकरणवृत्तिः समासतो रचिता ।  
तेनेयं तनुमतिना, प्राक्तनटिप्पनकमवलोक्य ॥४॥  
अत्र च यन्मतिमान्धादुत्सृजं विरचितं कथञ्चिदपि ।  
तच्छोष्यं धीमद्भिः, परोपकारैककृतचित्तैः ॥५॥  
वर्षशतैकादशके द्वासप्तत्याऽधिके नभोमासे ।  
सितपंचम्यां सूर्ये समर्थिता वृत्तिकेयमिति ॥६॥  
अस्यामक्षरगणनाञ्जातं शतपंचकं युतं षष्ट्या ।  
द्वात्रिंशदक्षरात्मक—सदनुष्टुप्छन्दसां प्रायः ॥७॥

॥ इति श्रीमद्हरिभद्रसूरिविहिता बन्धस्वामित्वप्रकरणवृत्तिः समाप्ता ॥

॥ ग्रन्थाम् ५६० ॥

ममाप्तोऽयं सटीको बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः

- ॥ ॐ ह्रीं श्रीं अहं श्रीशंखेश्वरपार्वनाथाय नमः ।  
 ॥ न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥  
 ॥ सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥  
 ॥ कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवप्रणीतः

## षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ।

(अपरनाम-आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरणम्)

श्रीहरिभद्रसूरिविरचितविवृत्या श्रीमन्मलयगिरिसूरिविरचितवृत्या च समलङ्कृतः

~~ॐ श्रीगणेशाय नमः~~

(हारिमद्री वृत्तिः)

नत्वा जिनं विधास्ये, विष्टिं जिनवल्लभप्रणीतस्य ।

आगमिकवस्तुविस्तर-विचारसारप्रकरणस्य ॥१॥

इह जिनवल्लभगणनामा सूत्रकारो गणधरदेवादिनिबद्धातिगम्भीरशास्त्रार्थविगाहनाऽसमर्थानां विशिष्टसंहननायुर्मेधादिविकलानां कलिकालोत्पन्नमानवानामनुग्रहाय सूक्ष्मार्थसार्थप्रकाशनार्थं प्रस्तुतप्रकरणं चिकीर्षुर्मङ्गलादिप्रतिपादकमिदमादौ गाथाद्वितयमाह—

(मलयगिरीया वृत्तिः)

प्रणम्य सिद्धिशास्तरं, कर्मवैचित्र्यवेदिनम् ।

जिनेशं विदधे वृत्तिं, षडशीतिर्यथाऽऽगमम् ॥१॥

इह हि शिष्टाः क्वचिदिष्टे वस्तुनि प्रवर्तमानाः सन्त इष्टदेवतास्तवामिधानपुरस्सरमेव प्रवर्तन्ते, न चायमाचार्यो न शिष्ट इति तत्समयपरिपालनार्थं तथा श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति, उक्तं च—“श्रेयांसि बहुविघ्नानि, भवन्ति महतामपि । अत्रयसि प्रवृत्तानां, कापि यान्ति विनायकाः ॥१॥” इति । इदं च प्रकरणं सम्यग्ज्ञानहेतुत्वाच्छ्रेयोभूतमतो मा भूदत्र-विघ्न इति विघ्नविनायकोपशान्तये श्रेष्ठदेवतास्तवम् । तथा न प्रेक्षापूर्वकारिणः क्वचिदपि

प्रयोजना'दिविरहे प्रवर्तन्ते । ततः प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं प्रयोजनादिकं च प्रतिपिपादयिपुरादाविदं  
गाथाद्वयमाह—

निच्छिन्नमोहपासं, पसरियविमलोरुकेवलपयासं ।  
पणयजणपूरियासं, पयओ पणमित्तु जिणपासं ॥१॥  
वोच्छामि जीवमग्गण-गुणठाणुवओगजोगलेसाई ।  
किचि सुगुरुवएसा, सन्नाणसुझाणहेउत्ति ॥२॥

(हारि०) व्याख्या—तत्र विघ्नविनायकोपशान्तये शिष्यजनप्रवर्तनाय वा शिष्टसमय-  
परिपालनार्थं चेष्टदेवतानमस्काररूपं भावमङ्गलमुपादेयम् । तथा श्रोतृजनप्रवृत्त्यर्थं शिष्टसमय-  
परिपालनार्थं च संबन्धादित्रयं वाच्यम् । तथाहि—इह श्रेयोभूते वस्तुनि प्रवर्तमानानां प्रायो  
विघ्नः संभवति, श्रेयोभूतत्वादेव, श्रेयोभूतं चेदं स्वर्गापवर्गसंसर्गहेतुत्वाद्, विघ्नोपहतशक्तेश्च  
शास्त्रकर्तृश्रिकीर्षितप्रकरणस्यानिष्पत्तिर्मा भूदिति विघ्नविनायकोपशमनाय मङ्गलमुपादेयम् । आह  
च—“बहुविग्वाहं सेयाहं तेण कयमङ्गलोवयारेहिं । सत्थे पयट्टियव्वं, विज्जाएँ म्हा-  
निहोए व्व ॥१॥” ननु मानसादिनमस्कारतपश्चरणादिना मङ्गलान्तरेणैव विघ्नोपशमसद्भावा-  
दिष्टसिद्धिर्भविष्यतीति किमनेन ग्रन्थगौरवकारिणा वाचनिकनमस्कारेण ? इति, सत्यम्,  
किन्तु श्रोतृजनप्रवृत्त्यर्थमिदं भविष्यति । तथाहि—यद्यप्युक्तन्यायेन कर्तृरविघ्नेष्टसिद्धिः स्या-  
त्तथाऽपि प्रमादवतः शिष्यस्येष्टदेवतानमस्काररूपमङ्गलं विना प्रक्रन्तप्रकरणाध्ययनश्रवणादिषु  
प्रवर्तमानस्य विघ्नसंभवादप्रवृत्तिः स्यात् । मङ्गलवाक्योपन्यासे तु मङ्गलवचनाभिधानपूर्वकं  
प्रवर्तमानस्य मङ्गलवचनापादितदेवताविषयशुभभावव्यपोहितविघ्नत्वेन शास्त्रे प्रवृत्तिरप्रतिहत-  
प्रसरा स्यात् । तथा देवताविशेषनमस्कारोपादाने सति देवताविशेषगदितागमानुसारीदं प्रकरण-  
मत उपादेयमित्येवंविधबुद्धिनिबन्धनत्वेन शिष्यप्रवृत्त्यर्थमिदं भविष्यतीति । आह च—“मंगल-  
पुव्वपवत्तो, पमत्तसोसो वि पारमिह जाइ । सत्थिविसेसन्नाणाउ गोरवाविह  
पयट्टेज्जा ॥१॥” शास्त्रविशेषपरिज्ञानात् इत्युक्तगाथायास्तृतीयपादस्यार्थः । ननु मङ्गल-  
विकलानामपि बहुतमशास्त्राणां दृश्यते संसिद्धिः श्रोतृजनप्रवृत्तिरथेति, ततः किमनेनानैकान्तिकेन  
शास्त्रगौरवकारिणा मङ्गलेन ? इति सत्यम् शिष्टसमयपरिपालनार्थमिदं भविष्यति । तथाहि—  
शिष्टाः क्वचिदभीष्टे वस्तुनि प्रवर्तमाना इष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं प्रायः प्रवर्तन्ते । शिष्टश्चायमप्या-

१ आदिशब्दात् संबन्धाभिधेयग्रहणम् ॥ २ “विशेषनमस्कारोपलब्धशुभम्—” इत्यपि पाठः ।

चार्य इति शिष्टसमाचारः परिपालितो भवतु, इति मङ्गलमभिधेयम् । आह च—“शिष्टाः शिष्ट-  
त्वभायान्ति, शिष्टमार्गानुपालनात् । तस्मिन्नावशिष्टत्वं, तेषां सन्ननुषज्यते ॥१॥”  
तथा संबन्धादीनि श्रोतृजनप्रवृत्त्यर्थमभिधेयानि । तथाहि—‘यदसंबन्धं तत्र न प्रवर्तन्ते प्रेक्षावन्तो  
दशदाडिमादिवाक्य इव । एवं निरभिधेयेऽपि काकदन्तपरीक्षायामिव । एवं निष्प्रयोजनेऽपि  
रूपटकशाखासमर्दन इवेति । अतः संबन्धादिप्रतिपादनं श्रोतृणां शास्त्रे प्रवृत्त्यङ्गम् । अथासर्वज्ञा-  
दीतरागवचनानां व्यभिचारित्वसंभवेन संबन्धादिसद्भावे निश्चयाभावान्नेतः प्रेक्षावर्तां प्रवृत्तिरत्र  
धविष्यति । या पुनः संशयात्प्रवृत्तिस्तां संबन्धादिवचनं विनैव भवन्तीं को निवारयितुं पारयतीति  
न श्रोतृप्रवृत्त्यङ्गं संबन्धादिवचनम्, सत्यम्, किन्तु शिष्टसमयपरिपालनार्थं भविष्यति ।  
शास्त्रकारा ह्येवं प्रवर्तमानाः प्रायः प्रेक्ष्यन्ते । येऽपि क्लिबौद्धाः सर्वथा वचनस्य प्रामाण्यं  
नाभ्युपगतास्तेऽपि संबन्धाद्यभिधानपूर्वकमेव प्रवृत्तास्ततः शिष्टसमयानुपालनार्थमिदमिति । इह—  
“संहिता च पदं चं व, पदार्थः पदविग्रहः । चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या तन्त्रस्य  
षड्विधा ॥१॥” इति व्याख्यालक्षणप्रपञ्चोऽन्यतोऽवधारणीयः । तत्र निच्छिन्नो नितरां  
श्रोतितो मोह एव पाशो मोहनीयकर्मबन्धनं येन स निच्छिन्नमोहपाशस्तम् । प्रसृतो=विस्तृतो  
विमलो=निर्मल उरु=वृहत्प्रमाणः केवलप्रकाशः=केवलज्ञानोद्योतो यस्य स प्रसृतविमलोरुकेवल-  
प्रकाशस्तम् । प्रणतजनानां=प्रणिपतितलोकानां पूरिताः=परिपूर्णतां नीता आशा=मनोरथा येन स  
प्रणतजनपूरिताशस्तम् ‘प्रयत्नः’ आदरपरः ‘प्रणम्य’ प्रणिपत्य ‘जिनपाद्वर्ष’ पार्श्वतीर्थकरमिति  
॥१॥ ततो ‘वक्ष्यामि’ अभिधास्ये, स्थानशब्दस्य प्रत्येकमसंबन्धाज्जीवस्थानानि च सूक्ष्मा-  
पर्याप्तकैकेन्द्रियादीनि, मार्गणास्थानानि च गत्यादीनि, गुणस्थानकानि च मिथ्यादृष्ट्यादीनि,  
उपयोगाश्च मतिज्ञानादयः, योगाश्च मनःप्रमृतयः लेश्याश्च कृष्णलेश्याद्याः, ता आदिः=प्रभृति-  
र्यस्य तत्तथा । आदिशब्दात् कर्मबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानान्पवहुत्वबन्धहेतुपरिग्रहः । किंचि-  
दित्यल्पं न विस्तरतः क्रियाविशेषणमिदम् । ‘सुगुरुपदेशात्’ सदाचार्यहेयोपादेयार्थप्रतिपादन-  
लक्षणात्, संज्ञानं च विशिष्टावबोधः सुध्यानं च धर्मध्यानादि संज्ञानसुध्याने तयोर्हेतुः=कारण-  
मितिकृत्वा । तत्र प्रथमगाथया मङ्गलम्, द्वितीयया तु जीवस्थानाद्यभिधेयम् । सुगुरुपदेशा-  
दिति पदसूचितो गुरुपर्वक्रमलक्षणः संबन्धः । संज्ञानसुध्यानहेतुरितिवचनाभ्युहितं प्रयोजनमिति  
भावनीयम् । इह च जीवस्थानाद्यभिधेयजातं यद्यपि सामान्यतः प्रोक्तं तथाऽपि जीवस्थानेषु  
गुणस्थान १ योगो २ पयोग ३ लेश्या ४ बन्धो ५ दयो ६ दीरणा ७ सत्तास्थाना ८ ख्या-  
न्यष्टौ । तथा मार्गणास्थानेषु जीवस्थानक १ गुणस्थानक २ योगो ३ पयोग ४ लेश्याऽ ५  
ल्पबहुत्व ६ रूपाणि षट् । तथा गुणस्थानकेषु जीवस्थान १ योगो २ पयोग ३ लेश्या ४

बन्धहेतु ५ बन्धोदयो ७ दीरणा ८ सत्तास्थाना ९ ऽल्पवहुत्व १० लक्षणानि दश यदान्य-  
भिरेयतया मन्तव्यानि । व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेरिति । इहाष्टपदादियंग्रहार्थमिदं गाथात्रयं  
श्रोतृजनसुखार्थं कथ्यते । तद्यथा—“चउदसजियठाणेसु”, गुणजांगुवओगलेसबंधुदया ।  
‘वदीरणा य सत्ता, वत्तव्वा अट्टपयक्रमसो ॥१॥ चउदसमग्गणठाणेसु मूलएसु’  
बिसिइहयरेसु । जियगुणजोगुवओगा, लेसप्पवहुं च छट्ठाणा ॥२॥ चउदसगुणठाणेसु’  
जियजोगुवओगलेसबंधा य । बंधुदउदीरणाओ, संतप्पवहुं च दस ठाणा, ॥३॥”  
इति गाथाद्वयार्थः ॥२॥

अथ जीवस्थानानि प्रदर्शयन्नाह—

(मल०) इहाद्यगाथयाऽभीष्टदेवतास्तवस्यामिधानम् । इतरया च प्रयोजनादीनाम् स  
चामीष्टदेवतास्तवो द्विधा, प्रणामतः स्तोत्रतश्च । तत्र प्रयतः प्रणम्येति प्रणामतः, परिशिष्टपदैः  
स्तोत्रतः । स्तोत्रमपि स्वपरार्थसंपदतिशयाभिधानेन द्विधा । स्वार्थसंपन्नश्च परार्थं प्रति समर्थो  
भवतीति प्रथमतः पूर्वाद्धेन स्वार्थसंपदमाह—नितरोमपुनर्भावेन छिन्नो द्विधाकृत आत्मना सह  
एकीभूतः सन् ततः पृथग्भूतीकृतः, मोहयत्यात्मानमिति मोहो मोहनीयं कर्म, स एव भवचार-  
कविनिर्गमप्रतिबन्धकारितया पाश इव पाशो येन स निच्छिन्नमोहपाशस्तं प्रणम्य । मोहग्रहणं  
चेह शेषज्ञानावरणीयादिघातिकर्मत्रयोपलक्षणम् । यत आह—‘पसरियविमलोरुकेवलपयासं’  
न ह्यपरिक्षणमोह इवाक्षीणज्ञानावरणीयादिघातिकर्मा प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशो भवतीति । तत्र  
प्रसृतो=विस्तृतो विमलो=निर्मलस्तदावरणमलस्य निःशेषतोऽपगमात्, उरु=विशालः सकललो-  
कालोकविषयत्वात्केवलस्य=केवलज्ञानस्य प्रकाशः=प्रकाशकत्वशक्तिर्यस्य स प्रसृतविमलोरुकेवल-  
प्रकाशः । शक्तेश्च प्रसरः प्रचुरीभावो न पुनर्वहिर्गमनसंभवात् । इह प्रकाशशब्दस्य केवलमेव  
प्रकाशः केवलप्रकाश इत्येवं केवलशब्देन सह साानानाधिकरण्यमव्याख्याय यत्प्रकाशकत्वरूप-  
शक्तित्राचकत्वव्याख्यानं तेनेदमावेद्यते यदुत न ज्ञानं क्वापि गच्छति, किंत्वात्मस्थमेव सत्सक-  
लमपि ज्ञेयं भिन्नदेशस्थमपि अचिन्त्यशक्तियुक्ततया प्रकाशयतीति । तेन यत्कैश्चिदुच्यते, इह  
सकललोकपर्यन्तेऽपि ज्ञानमुदयते तच्च ज्ञानमात्मनो गुणः, गुणाश्च न द्रव्यमन्तरेण क्वापि गच्छन्ति  
तस्मादाकाशवदात्माऽपि सर्वव्यापी प्रतिपत्तव्य इति तदपास्तं द्रष्टव्यम् । ज्ञानस्याचिन्त्यशक्त्युपेत-  
तयास्वभिन्नदेशस्थेऽपि विषये परिच्छेदाय प्रवृत्त्युपपत्तेः, यथा लोहोपलस्य भिन्नदेशस्थरयापि लोह-

१ “चदीरणया” इत्यपि पाठः । २ “अप्पवहुं चेष दसठाणा ॥१॥” इति जे० । ३ स्वश्च परश्च तयोरर्थसंपन्न-  
तस्या अतिशयः तस्यामिधनं तेनेति समासः । ४ “इति सामानाधिकरण्यम्—” इत्येवंरूपः क्वचित् पाठः ॥

स्याकर्षणे । तदुक्तम्—“गन्तॄण न परिच्छिदद्, नाणं नेयं तयंमि देसंमि । आयत्थं धिय नवरं, अञ्चिनसत्तीओ षिन्नेयं ॥१॥ लोहोवलस्स सत्ती, आयत्था चेष भिन्नदेसंमि । लोहं भागरिसत्ती, धोसद् इह कज्जपच्चक्खा ॥२॥ एवमिह नाणसत्ती, आयत्था चेष हंमि लोगतं । जद् परिच्छिदद् संमं, को णु धिरोहो भवे तस्स ? ॥३॥” इति । एतेन “अज्जवि धावद् नाणं अज्जविऽलोओ अर्णतओ अत्थि” इत्याद्यपि कुचोद्यमपाकृतमवसेयम् । यतो न केवलज्ञानमलोके गच्छति, द्रव्यमन्तरेण गुणानां प्रवृत्त्यसंभवात् तत्र गत्युपष्टम्भकधर्मास्तिकायाभावाच्च, किन्तूपत्तिसमय एवात्मप्रदेशस्थं सदचिन्त्यशक्तियुक्ततया सकलमपि लोकालोकात्मकं ज्ञेयं परिच्छिनत्ति । तदुक्तम्—“तम्हा सव्वपरिच्छेयसत्तिमंतं तु नायजुत्तमिणं एत्तो धिय नीसेसं, जाणद् उप्पत्ति समयंमि ॥१॥” ततः कथम्? “अज्जवि धावद् नाणं” इत्यादि दोषप्रसङ्गः । ननु यो निच्छिन्नमोहपाशः स प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाश एव भवति, ततोऽपार्थकत्वान्नेदं विशेषणमुपादेयमिति न, छन्नस्थावस्थाभाविनिच्छिन्नमोहपाशव्यवच्छेदफलतया ऽस्य सार्थकत्वात् । यद्येवं ततः प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशमित्येतावदेवास्तामलं निच्छिन्नमोहपाशग्रहणेन न, अस्यापि कुवादिमतव्यवच्छेदफलतया सार्थकत्वात् । तथाहि—इह आजीविकनयमतानुसारिणो गोशालकशिव्याः प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशमपि न तत्त्वतो निच्छिन्नमोहपाशमिमिन्यन्ते, अवाप्त्युक्तिपदा अपि तीर्थनिकारदर्शनादिहागच्छन्तीतिवचनात् । तत्त्वतो निच्छिन्नमोहपाशस्य चेहागमनासंभवात् ततरतद्व्यवच्छेदार्थं निच्छिन्नमोहपाशग्रहणम् । एनमेव परार्थसंपदा विशेषयति—‘पणयजणपुरिथासं’ प्रणता ये जनाः तेषां पूरिता आशा=मनोरथा येन स प्रणतजनपूरिताशस्तम् । प्रणतजनानां चाशाः पूर्यन्ते भगवता सकलदेवासुरमनुजतिर्यगणसाधारण्या वाण्या निःश्रेयसाम्युदयसाधनोपायप्रदर्शनेन, नान्यथा । यदुक्तम्—“अरिहंता भगवंतो, अहियं च हियं च नवि इहं किञ्चि<sup>३</sup> । धारंति कारवेंति य, घेसूण जणं बल्ला हत्थे ॥१॥ उषएसं पुण तं दिंति जेण अरिण कित्तिनिलयाणं । देवाणवि हींति पद्द, वि मंग पुण मणुयमेत्ताणं ? ॥२॥” इत्यादि ननु यो निच्छिन्नमोहपाशाः प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशश्च स प्रणतजनपूरिताश एव भवति, ततः किमनेन विशेषणेन दानादिप्रकारेण ? सामान्यकेवलव्यवच्छेदार्थत्वात्, ते हि यथोक्तविशेषणद्वयविशिष्टा अपि सन्तो न भगवानिव सकलजगदुपकारकरणैकतानाः, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं प्रणतजनपूरिताशग्रहणम् । यद्येवं तर्हि प्रणतजनपूरिताशमित्येतदेवास्तां अलं निच्छिन्नमोहपाशादिग्रहणेन, तदयुक्तं, माण्डलिकादयोऽपि हि तथाविधतुच्छद्रव्यादिमात्रवितरणैकरसिका लोके प्रणतजनपूरिताशा इति प्रतीताः, ततस्तत्कल्पं भगवन्तं प्रणामार्हं मा ज्ञासिषुरिति तद्व्यवच्छेदार्थं निच्छिन्नमोह-



पाशादिग्रहणम् । कमेवंभूतम् ? पुनः प्रयतः प्रणम्येत्यतो विशेष्यमाह--'जिनपार्श्व'  
 पश्यति यथावस्थितं सकलमपि जगदिति पार्श्वः रागद्वेषादिशत्रुजेवृत्ताजिनः स चासौ पार्श्वश्च  
 जिनपार्श्वस्तम् । ननु यो जिनपार्श्वः स निच्छिन्नमोहपाशादिविशेषणकलापोपेत एव भवतीति  
 किमेतेषां विशेषणानामुपादानेन ? निरर्थकत्वात्, न, नामादिरूपजिनपार्श्वदिव्यवच्छेदकारि-  
 तया तेषामपि सफलत्वात् । एवं द्वयादिसंयोगापेक्षयाऽपि विचित्रनयमताभिज्ञेन यथाशक्ति  
 विशेषणसाफन्यं वाच्यम् । तमेवंभूतं जिनपार्श्वं प्रयतः प्रणम्य ॥ १ ॥ किम् ? इत्याह--इह स्थान-  
 शब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । जीवस्थानानि मार्गणास्थानानि गुणस्थानानि । तत्र जीवति  
 प्राणान् धारयतीति जीवः । क इत्थंभूतः ? इति चेत्, उच्यते, यो मिथ्यात्वादिकलुपितरूप-  
 तया सातादिवेदनीयादिकर्मणाम'भिनिर्वर्तकः, तत्फलस्य च विशिष्टसातादेरुपभोक्ता, नारकादि-  
 भवेषु च यथाकर्मविपाकोदयं संसर्ता, सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयाभ्यासप्रकर्षवशाच्चाशेषकर्मांशाऽ'प-  
 गमतः 'परिनिर्वाता स जीव आत्मा । 'यदुक्तम्--' यः कर्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफल-  
 स्य च । संसर्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥१॥' इति । 'कथं तत्सिद्धिः ?  
 इति चेत्'प्रतिप्राणिश्वसंवेदनप्रमाणसिद्धचैतन्याऽन्यथानुपपत्तेः । तथाहि-नेदं चैतन्यं नाम भूत-  
 धर्मः, तद्धर्मश्चे सति पृथिव्याः काठिन्यस्येव तस्य सर्वदोषलम्भप्रसङ्गात् । कदाचिद् 'नभिव्यक्ति-  
 भावात् सर्वदोषलम्भ इति चेत्, न, आवरणाभावेनानभिव्यक्तेरेवानुपपद्यमानत्वात् । कथमा-  
 वरणाभावः ? इति चेत्, एते 'ब्रूमः, विकल्पाभ्यामयोगात् । तथाहि-किं तान्येव भूतान्या-  
 वरणं भवेयुः, अन्यद्वा ? इति विकल्पद्वयी गत्यन्तराभावात्, तत्र न तावत्तान्येव भूतान्यावरणी-  
 भवितुमर्हेयुः, तेषां भूतानां व्यञ्जकत्वप्रतिज्ञानात् । नाप्यन्यद्वाऽऽवरणं विचारपथमवतार्यमाणं  
 षटामटाङ्कि, वस्त्वन्तराम्पुपगमप्रसङ्गेन चत्वार्येव पृथिव्यादीनि भूतानीति तत्त्वसंख्याव्याघात-  
 प्रसङ्गात् । न वै पृथिव्यादिभ्योऽन्यद्वस्त्वन्तरमावरणमिति ब्रूमः, किन्तु तेषामेव पृथिव्या-  
 दिभूतानां तथाविधविशिष्टपरिणामाभावः, ततो न कश्चिद्दोषः ? इति चेत्, न, तथाविध  
 विशिष्टपरिणामाभावस्यैकान्ततुच्छरूपत्वेनाऽऽवारकत्वायोगात् । अन्यथा तस्याप्यतुच्छरूपतया  
 भावरूपत्वे सति पृथिव्यादिभूतचतुष्टयान्यतमभूतरूपतापचेर्व्यञ्जकत्वाप्रसङ्गः । अथोच्यते-  
 नासौ तथाविधविशिष्टपरिणामाभावस्तुच्छरूपः, किन्तु परिणामान्तरम्, ततः कथमावारकत्व-  
 योगः ? इति, न, तस्यापि भूतपरिणामतया भूतस्वभावत्वाद् भूतवद्व्यञ्जकत्वेऽस्यै (त्वस्यै-  
 वोपपत्तेर्नावारकत्वस्येति यत्किञ्चिदेतत् । नापि भूतकार्यमिदं चैतन्यम्, अत्यन्तवैलक्षण्येन  
 भूतचैतन्ययोः कारणकार्यभावस्यानुपपत्तेः । तथाहि-प्रत्यक्षत एव काठिन्यान्नोषस्वरूपाणि

१ उपार्जकः । २ विनाशतः । ३ मोक्षं गन्ता । ४ 'यदुक्तम्' इत्यपि । ५ चार्वाको षडिति । ६  
 अस्ति जीव इति पक्षः । ७ अप्रकट- । ८ धयं जैनाः ॥

भूत नि प्रतीयन्ते, चैतन्यं च तद्विलक्षणम्, ततः कथमनयोः कार्यकारणभावः १, यदाह—  
 “काठिन्याबोधरूपाणि, मृतान्यध्यक्षसिद्धितः । चेतना चा न तद्रूपा, सा कथं  
 तत्फलं भवेत् ? ॥१॥” तदेवं न भूतधर्मो भूतकार्यं वा चैतन्यम्, अस्ति चैतत्प्रतिप्राणिस्व-  
 संवेदनप्रमाणसिद्धम् । तत एतदन्यथानुपपत्त्या स यथोक्तलक्षणो जीवः प्रतीयते । तस्यैव  
 चिद्रूपाऽमूर्ततया चैतन्यं प्रत्यनुरूपत्वेन तद्वर्तित्वोपपत्तेः, इति कृतं प्रसंगेन, विस्तरार्थिना तु  
 धर्मसंग्रहणिकाऽनुसर्तव्या । तेषां जीवानां स्थानानि, सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रियत्वादयोऽवान्तरविशेषाः,  
 तिष्ठन्त्येषु जीवा इतिकृत्वा गुणानां स्थानानि । मार्गणं जीवादीनां पदार्थानामन्वेषणं  
 मार्गणा तस्याः स्थानानि आश्रया मार्गणास्थानानि वक्ष्यमाणानि गत्यादीनि । गुणा ज्ञान-  
 दर्शनचारित्ररूपा जीवस्वभावविशेषाः, स्थानं पुनरेतेषां शुद्धशुद्धिप्रकर्षापर्यकृतः स्वरूपभेदः,  
 तिष्ठन्त्यस्मिन् गुणा इतिकृत्वा गुणस्थानानि गुणस्थानानि वक्ष्यमाणानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि ।  
 ‘उचञ्चंग’ इति उपयोजनम्युपयोगः, बोधरूपो जीवव्यापारः । कर्मणि वा घञ् । उपयुज्यते  
 वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यत इत्युपयोगः । करणे वा घः । उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदे प्रति जीवोऽ-  
 नेनेत्युपयोगः । सर्वत्र जीवस्वतत्त्वभूतोऽवबोध एवोपयोगो मन्तव्यः । ‘जोग’ इति योजनं योगः,  
 जीवस्य वीर्यं परिस्पन्द इतियावत् । कर्मणि वा घञ् । युज्यते धावनवल्गनादिक्रियासु व्यापार्यत  
 इति योगः । यद्वा युज्यते संबध्यते धावनवल्गनादिक्रियासु जीवोऽनेनेति योगः । पुं नाम्नीति  
 करणे घः प्रत्ययः स च मनोवाक्यायलक्षणसहकारिकारणभेदात्त्रिधा वक्ष्यमाणस्वरूपः । लिशयते  
 श्लिष्यते कर्मणा सहात्माऽनयेति लेश्या, कृष्णादिद्रव्यसाच्चिव्यादात्मनः शुभाशुभरूपः परिणाम-  
 विशेषः । यदुक्तम्—“कृष्णादिद्रव्यसाच्चिव्यात्, परिणामो य भात्मनः । स्फटिकस्येष  
 तत्रायं लेश्याशब्दः प्रवर्तते ॥१॥” इति । सा च षोढा, कृष्णलेश्या नीललेश्या, २ कापो-  
 तलेश्या ३ तेजोलेश्या ४ पद्मलेश्या ५ शुक्ललेश्या ६ । आसां च स्वरूपं जम्बूफलखादकषट्-  
 पुरुषीदृष्टान्तेनैवमवसेयम्—“जह् जंघुपायवेगो, सुपक्षफलभरिण नमियसाहृगो ।  
 विहो छिहं पुरिसेहिं, ते बेंतो जघु भक्खेमो ॥१॥ किह पुण ते विंतेगो, आरुहणे  
 होञ्ज जीवसंदेहो । तो छिदिऊण मूलाउ भक्खिमो 'ताहं पाछेउं ॥२॥ षोव्हाह  
 किमन्हाणं, तरुणा छिन्नेण एम(म्म)हंतेण । छिदह मह्छ' साहा, बेहं तहओ पसा-  
 हाओ ॥३॥ गोच्छे चउत्थओ पुण, पंचमणो बेहं गिणहह फलाहं । घिसूण  
 खायह त्ति य, पडिय त्ति य छहओ बेहं ॥४॥ विहणस्सोवणओ, छिदह  
 मूलाउ बेहं जो एधं । घट्टह सो किणहाए, नीलाए मह्छसाहाए ॥५॥ काऊ होह  
 पसाहा, तेऊ गुच्छा फला य पम्हाए । पडिय त्ति सुक्खेसाए” इति ॥ आदिशब्दा-

त्कर्मबन्धहेतुबन्धोदयोदीरणासत्ताल्पबहुत्वपरिग्रहः तत्र क्रियते मिथ्यात्वादिभिर्हेतुभिर्निर्वर्त्यत इति कर्म ज्ञानावरणीयादि वक्ष्यमाणसष्टप्रकारम् । कथमेतत्सिद्धिः ? इति चेत् , उच्यते, इह आत्मत्वेनाविशिष्टानामात्मना यदिदं देवासुरमनुजतिर्यगादिरूपं वैचित्र्यं तत्तावन्न निर्हेतुवमेष्टव्यम् । सा प्रापत्सदा भावादिदोषप्रसङ्गः । “नित्यं सन्वमसन्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्” इतिवचनात् । सहेतुकत्वाभ्युपगमे च यदेवास्य हेतुस्तदेवास्माकं कर्मेति मतमिति तत्सिद्धिः । तदुक्तम्—‘आत्मत्वेनाविशिष्टस्य, वैचित्र्य तस्य यद्वशात् । नरादिरूपं तच्चित्रम-  
दृष्टं कर्मसंज्ञितम् ॥१॥’ इति । तदपि च कर्म पुद्गलस्वरूपं प्रतिपत्तव्यं, नामूर्त्तम् । तथा सति ततः सकाशादात्मनामनुग्रहोपघातासंभवादाकाशादिव । यदाह—‘अन्ने उ अमुत्तं चिय, कम्मं मन्नंति वासणारूवं । तं च न जुज्जह तत्तो, उवघायाणुग्गहाभावा ॥ ॥ नागासं उवघायं अणुग्गहं वावि कुणह सत्ताणं’ इत्यादि । इति कृतं प्रसंगेन, गमनिकामात्रफलत्वात्प्रयासस्य । ततस्तैः कर्मपुद्गलैः सहात्मनो बह्वयःपिण्डवदन्योऽन्यानुगमलक्षणः संबन्धो बन्धः, तस्य हेतवः सामान्यविशेषरूपा वक्ष्यमाणा मिथ्यात्वतद्भेदादिलक्षणाः । बन्ध उक्तस्वरूप एव । तथा तेषामेव कर्मपुद्गलानां यथास्वस्थितिवद्धानामपवर्तनादिकरणविशेषतः स्वभावतो वा उदयसमयप्राप्तानां विपाकवेदनमुदयः । तेषामेव च कर्मपुद्गलानामकालप्राप्तानां जीवसामर्थ्यविशेषादुदयावलिङ्गायां प्रवेशनमुदीरणा । तथा तेषामेव कर्मपुद्गलानां बन्धसंक्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां निर्जरणसङ्क्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सति सञ्जावः सत्ता । अल्पबहुत्वं गत्यादिरूपमार्गणास्थानादिषु जीवानां परस्परं स्तोकभूयस्त्वम्, एतत् ‘वक्ष्ये’ अभिधास्ये । कथम् ? इत्याह—‘किञ्चित्’ स्वरूपं न विस्तरवत् । दुःपमानुभावेनापचीयमानमेघायुरादिगुणानामिदानीं तनूजानानां तथाऽभिधाने सति उपकारासंभवात् , तदुपकारार्थं च एष प्रकरणारम्भप्रयासः । उपकारमेव दर्शयति—‘सन्नाणसुन्नाणहेउ’ इति संज्ञानं=यथाऽवस्थितवस्तुतत्त्वावबोधे आत्मकमागमानुंसारिविज्ञानं, सुध्यानं=धर्मध्यानं, तयोर्हेतुः=कारणम् । इदं जीवस्थानाद्यभिधानमितिकृत्वा जीवस्थानादिकं किञ्चिदभिधास्ये । किं स्वमनीषिकया ?, न इत्याह—‘सुगुरूपवेशासु’ गृणाति शास्त्रार्थमिति गुरुः, स चानागमिकोऽपि स्यात् , अतस्तद्वयवच्छेदार्थं सुग्रहणम् । शोमनः सर्वदैव सदागमनिष्णातो गुरुः सुगुरुः, तस्योपदेशो यथाऽवस्थितजीवाजीवादिवस्तुतत्त्वयाथात्म्यनिर्देशस्तस्मात् इह वक्ष्यमाणसकलवक्तव्यतानिवन्धनं जीवा इति प्रथमतस्तेषामुपादानम् ते च प्रपञ्चतो निरूप्यमाणा गत्यादिमार्गणास्थानैरेव निरूपयितुं शक्यन्त इति । तदनन्तरं मार्गणास्थानग्रहणम् । तेषु च मार्गणास्थानेषु वर्तमाना जीवा न कदाचिदपि मिथ्यादृष्ट्याधन्यतमगुणस्थानकविकला भवन्तीति प्रतिपत्त्यर्थं मार्गणास्थानकानन्तरं गुणस्थानकग्रहणम् । अमूनि च गुणस्थानकानि ज्ञानादिरूपशुभपरिणामशुद्धयशुद्धिप्रकर्षापकर्षरूपाण्युपयोगवतामेवोपपद्यन्ते, नान्येषामाकाशा-

दीनाम्, तेषां ज्ञानादिरूपपरिणामरहितत्वात्, इति ज्ञापनार्थं गुणस्थानकानन्तरमुपयोगग्रहणम् । उपयोगवन्तश्च मनोवाक्कायचेष्टासु वर्तमाना नियमतः कर्मसंबन्धभाजो भवन्तीति ज्ञापनायोप-  
योगग्रहणानन्तरं योगग्रहणम् । योगवशाच्चोपात्तस्यापि कर्मणो यावन्न कृष्णाद्यन्यतमलेश्या-  
परिणामो जायते तावन्न तस्य स्थितिपाकविशेषो भवति । “स्थितिपाकविशेषस्तस्य भवन्ति  
लेह्याविशेषेण” इतिवचनप्रामाण्यात् ततो योगवशादुपात्तस्य कर्मणो लेश्याविशेषतः स्थिति-  
विपाकविशेषो भवतीति प्रतिपत्तये योगानन्तरं लेश्योपादानमिति । यद्यपि चेह सामान्येनोदत्तं  
जीवस्थानाद्यभिधास्ये इति, तथाऽप्येवं विशेषतो द्रष्टव्यम् । जीवस्थानकेषु—गुणस्थानक १ योगो  
२ पयोग ३ लेश्या ४ कर्मबन्धो ५ दयो ६ दीरणा ७ सत्ता ८ वक्ष्ये । मार्गणास्थानकेषु  
पुनः—जीवस्थानक १ गुणस्थानक २ योगो ३ पयोग ४ लेश्या ५ न्यवहुत्वानि ६ । गुण-  
स्थानकेषु च—जीवस्थानक १ योगो २ पयोग ३ लेश्या ४ बन्धहेतु ५ बन्धो ६ दयो ७  
दीरणा ८ सत्ता ९ ऽन्पवहुत्वानि १० । इति तथैव सूत्रकृता वक्ष्यमाणत्वात् ॥२॥

तत्र ‘यथोद्देशं निर्देशः’ इति न्यायात्प्रथमतस्तावज्जीवस्थानानि निरूपयन्नाह—

इह सुहुमवायरेर्गिदिबितिचउअसन्निसान्नपंचिंदी ।

अपजत्ता पजत्ता, कमेण चउदस जियट्टाणा ॥३॥

(हारि०) व्याख्या—इह सर्वत्र यथासंभवं लिङ्गव्यत्ययविभक्तिलोपादिकं प्राकृतत्वाद्-  
द्रष्टव्यम् । ‘इह’ जीवस्थानादिषु मध्ये सूक्ष्मवादारमेदादेकेन्द्रिया द्विधा, द्वित्रिचतुरिन्द्रियास्त्रयः,  
असंज्ञिसंज्ञिमेदात्पञ्चेन्द्रिया द्विमेदाः, एवमेते सप्त सप्ताप्यपर्याप्ताः पर्याप्ताश्चैवं क्रमेण तावच्चतु-  
र्दश जीवस्थानानि भवन्तीति शेषः । इतिगाथार्थः ॥३॥

साम्प्रतमेतेषु गुणस्थानकानि संबन्धपूर्वकं गाथाद्वयेनाह—

(मल०) ‘इह’ अस्मिन् जगति अनेन क्रमेण चतुर्दश जीवस्थानानि प्राप्तिरूपितशब्दा-  
र्थानि भवन्ति, केन क्रमेण ? इति चेत्, आह—सूक्ष्मवादारैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपञ्चे-  
न्द्रियाः, एते च सर्वेऽपि प्रत्येकं पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्चेति । तत्र एकं स्पर्शनलक्षणमिन्द्रियं  
येषां ते एकेन्द्रियाः, पृथिव्यन्तेजोवायुवनस्पतयः । ते च प्रत्येकं द्विविधाः, सूक्ष्मा बादराश्च ।  
सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, सकललोकव्यापिनः । बादरनामकर्मोदयाद्बादराः. ते च लोकप्रति-  
नियतदेशवर्तिनः । द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रिया इति । इन्द्रियशब्दः प्रत्येकमभिसंबन्ध्यते ।  
द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, असंज्ञिसंज्ञिमेदमिभाश्च पञ्चेन्द्रियाः । तत्र द्वे स्पर्शनर-  
सनलक्षणे इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः, शङ्खचन्दनककपर्दजल्लुकाकृमिगण्डोलपूतरकादयः । त्रीणि  
स्पर्शनरसनघ्राणलक्षणाणीन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः, युक्तामत्कुणगर्दमेन्द्रगोपकङ्कन्धुमत्कोटा-

१ “चउदसजियठापोसु” गुणजोगुओगलेसबंघुवया । उदीरणया सत्ता वत्तन्वा अट्टपयकमसो ॥३॥”  
इत्यपि गाथाऽधिकतया दृश्यते हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ ।

दयः । चत्वारि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्लक्षणानीन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः, भ्रमरमक्षिकाम-  
शकवृश्चिकादयः । पञ्च स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रलक्षणानीन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रियाः,  
मत्स्यमकरमनुजादयः । ते च द्विभेदाः, संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च । तत्र संज्ञानं संज्ञा, भूतभवद्भावि-  
भावस्वभावपर्यालोचनं 'उपसर्गादात्' इत्यहूप्रत्ययः, सा विद्यते येषां ते संज्ञिनः, विशिष्ट-  
स्मरणादिरूपमनोविज्ञानभाज इतियावत् । तद्विपरीता असंज्ञिनः, यथोक्तमनोविज्ञानविकला  
इत्यर्थः । एते च सूक्ष्मैकेन्द्रियादयः प्रत्येकं द्विधा, पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च । पर्याप्तिर्नाम पुद्गलो-  
पचयजः पुद्गलग्रहणपरिणमनहेतुः शक्तिविशेषः सा च विषयभेदात्पोढा । तद्यथा—आहार-  
पर्याप्तिः १, शरीरपर्याप्तिः २, इन्द्रियपर्याप्तिः ३, उच्छ्वासपर्याप्तिः ४, भाषापर्याप्तिः ५, मनः-  
पर्याप्ति ६ श्चेति । तत्र यया बाह्यमाहारमादाय खलरसरूपतया परिणमयति साऽऽहारपर्याप्तिः ।  
यया रसीभूतमाहारं रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रलक्षणसप्तधातुरूपतया परिणमयति सा शरीर-  
पर्याप्तिः । यया तु धातुरूपतया परिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियप-  
र्याप्तिः । यया पुनरुच्छ्वासप्रायोग्यवर्गणादलिकमादायोच्छ्वासरूपतया परिणमय्यालम्ब्य च  
मुञ्चति सा उच्छ्वासपर्याप्तिः । यया तु भाषाप्रायोग्यवर्गणाद्रव्यं गृहीत्वा भाषात्वेन परिणम-  
य्यालम्ब्य च मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः । यया पुनर्मनोयोग्यवर्गणादलिकं गृहीत्वा मनस्त्वेन  
परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः । एताश्च यथाक्रममेकेन्द्रियाणां संज्ञिवर्जानां  
द्वीन्द्रियादीनां संज्ञिनां च चतुः—पञ्च-षट्—संख्या भवन्ति । पर्याप्तयो विद्यन्ते येषां ते पर्याप्ताः ।  
'अन्नादिभ्यः' इति मत्वर्थीयो'ऽप्रत्ययः । ये पुनः स्वयोग्यपर्याप्तिपरिसमाप्तिविकलास्तेऽपर्या-  
प्तकाः । ते च द्विधा, लब्ध्या करणेन च । तत्र येऽपर्याप्तका एव सन्तो म्रियते न पुनः स्वयो-  
ग्यपर्याप्तीः सर्वा अपि समर्थयन्ते ते लब्ध्यपर्याप्तकाः । ये पुनः करणानि शरीरेन्द्रियादीनि न  
तावन्निर्वर्तयन्ति, अथ चावश्यं पुरस्तान्निर्वर्तयिष्यन्ति ते करणापर्याप्तकाः । इह चैवमागमः—लब्ध्य-  
पर्याप्तका अपि नियमादाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपरिसमाप्तावेव म्रियन्ते नार्वाग् । यस्मादागामि-  
भवायुर्वद्भवा म्रियन्ते सर्व एव देहिनः । तच्चाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तानामेव बध्यत इति ॥३॥

तदेवं निरूपितानि जीवस्थानानि, सांप्रतं यथोद्देशं निर्देष्ट इति न्यायात्क्रमप्राप्तान्यपि  
मार्गणास्थानानि अनिरूप्य एतेष्वेव जीवस्थानकेषु गुणस्थानकाद्यभिधित्सुर्युक्तिमुपन्यस्यन्नाह-  
सव्वभणियव्वमूलेसु तेषु गुणठाणगाह ता भणिभो ।

पढमगुणा दो बायरबित्तिचउरअसन्नि अपजत्ते ॥४॥

१ "अन्नादिभ्यः" (०;२।४६)इति हैमसूत्रे तथा श्री मलयगिरिसूरिभिरपि स्वकृतव्याकरणे—  
'अप्रत्ययः,' अङ्गीकृतोऽस्ति ॥

पर्यथेसु । नं पंचविहं मिच्छं, तद्विद्वो मिच्छद्विद्वोओ ॥२॥ उवसमअडाएँ ठिओ,  
मिच्छमपत्तो तमेव गतुमणो । सम्मं आसायंतो, सासायणगो मुणेयव्वो ॥३॥  
जह गुब्बदहोणि विसमाइभावसहियाणि होंति मीसाणि । भुंजंनस्स तहोभय-  
द्विद्वीए मीसद्विद्वीओ ॥४॥ तिविहे वि हू सम्मत्ते, थेवानि न विग्गह जस्स  
कम्मवसा । सो अविरड त्ति भण्णह, देसे पुण देसविरईओ ॥५॥ विकहाकसाय-  
निहासहाहरओ भवे पमत्तो त्ति । पंचसमिओ तिगुत्तां, अपमत्तजई मुणेयव्वो  
॥६॥ अप्पुव्वं अप्पुव्वं, जहुत्तरं जो करेइ ठिइकंडं । रसकंडं तग्घायं, सो होइ  
अप्पुव्वकरणो त्ति ॥७॥ निनिवटंति विसुद्धिं, समगपहड्डा वि जमि अन्नोऽन्नं ।  
तसो नियट्ठिठाणं, विवरोयमओ य अनियट्ठी ॥८॥ थूलाण लोमखट्ठाण वेयगो  
वायरो मुणेयव्वो । सुद्धुमाण होइ सुद्धुमो, उवसंतेहि तु उवसंतो ॥९॥ खोणंमि  
मोहणिज्जे, खोणकसाओ सजोगजोगि त्ति । होइ पउत्ता य तओ, अपउत्ता  
होइ हु अजोगी ॥१०॥” एतानि जीवस्थानकेषूपदर्शयन्नाह—पढमेत्यादि । इह पदैकदेशे-  
ऽपि पदसमुदायोपचारात् ‘गुणाः’ इत्युक्ते गुणस्थानकग्रहणम् । प्राकृतत्वाच्च द्वित्वेऽपि बहु-  
वचनम् । यथा ‘हृत्था पाया’ इत्यादौ । तत्र द्वे प्रथमगुणस्थानके मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे  
भवत इति गम्यते । केषु ? इत्याह—‘बादरक्षिभ्रिषतुरिन्द्रियाऽसंज्ञिनि अपर्याप्ति’ बादरे-  
त्यादिपदानां समाहारो द्वन्द्वः प्राकृतत्वाच्च ततः परस्य सप्तम्येकवचनस्य लुक् अपर्याप्त इति च  
तस्य विशेषणम् । एवमन्यत्राप्यक्षरगमनिका कार्या । एतदुक्तं भवति—अपर्याप्तवादरैकेन्द्रियं  
पृथिव्यम्बुवनस्पतिलक्षणे न तेजोवायुरूपे, तन्मध्ये सम्यक्त्वलेशवतामप्युत्पादाभावात् ।  
सम्यक्त्वं चासादयतां सासादनभावाभ्युपगमात् । तथा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु  
चापर्याप्तकेषु प्रथमे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । नन्वेकेन्द्रियाणामागमे  
सासादनभावो नेष्यते, यतस्तत्र नियमादेकेन्द्रिया अज्ञानिन एवोक्ताः । द्वीन्द्रियाश्च केचिद-  
पर्याप्तावस्थार्यां सासादनभावोपगमाज्ज्ञानिनः, केचिच्च तदभावादज्ञानिनः । यदि पुनरे-  
केन्द्रियाणामपि सासादनभावः स्यात्तर्हि तेऽपि द्वीन्द्रियादिवदुभयथाऽप्युच्येरन्, न चोच्यन्ते,  
तथाहि—“एगिदियाणं भंते ! किं णाणी अज्ञाणी ?, गोयमा ! नो नाणी नियमा  
अण्णाणी । तथा वेदियाणं भंते ! किं नाणी अण्णाणी ?, गोयमा ! नाणी वि  
अज्ञाणी वि ॥” इत्यादि । तत्कथमिहापर्याप्तवादरैकेन्द्रियेषु पृथिव्यम्बुवनस्पतिलक्षणेषु सासा-

१ तालपत्रपुस्तके तु “अन्यथा तेऽपि द्वीन्द्रियादिवदुभयथाऽप्युच्येरन्, चोच्यन्ते” इत्येतावानेह पाठो दृश्यते ।

सन्नि अपञ्जत्ते मिच्छदिद्विसामाणअविरया तिन्नि ।

सञ्चं सन्नि पजत्ते, मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि ॥५॥

(हारि०) व्याख्या—‘सर्वभणितव्यमूलेषु’ समस्तवक्तव्यताद्येषु ‘तेसु’ इति, यानि पूर्वं प्रतिपादितानि जीवस्थानानि तेषु विषयेषु, गुणस्थानकानि वक्ष्यमाणलक्षणान्यादिः प्रथमं यस्य तत्तथा । आदिशब्दाद्योगोपयो गादिसप्तस्थानानि ग्राह्याणि । तावच्छब्दः क्रमोपन्यासे । ‘भणामः’ प्रतिपादयामः । तत्र गुणस्थानकानि तावदाह—प्रथमगुणस्थानके द्वे मिथ्यादृष्टि-सासादनरूपे भवत इति शेषः । केषु ? इत्याह—“थायरचितचउरअसन्नि” इति विभक्ति-लोपात् बादरद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु, इति द्वन्द्वः । कीदृशेषु ? ‘अपञ्जत्ते’ इति वचनव्यत्ययादपर्याप्तकेषु । कर्मग्रन्थामिप्रायेण बादरैकेन्द्रियेष्वपि सासादनस्यापि सद्भावादिति ॥४॥ सञ्चीत्यादिद्वितीयगाथा व्याख्यायते—

संज्ञिपञ्चेन्द्रिये अपर्याप्ते मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकानि त्रीणि भवन्तीति शेषः । एवं सर्वत्र यत्र क्रिया नास्ति तत्र स्वयं योज्या । तथा ‘सर्वाणि’ गुणस्थानकानि संज्ञिपञ्चेन्द्रिये पर्याप्ते । तथा मिथ्यात्वगुणस्थानकं शेषेषु ‘सप्तश्वपि’ पर्याप्ता-पर्याप्तक सूक्ष्म १-२ पर्याप्तकवादर ३ द्वि ४ त्रि ५ चतुरिन्द्रिया ६ ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु ७ । इति गाथाद्वयार्थः ॥५॥

इति जीवस्थानेषुक्तानि गुणस्थानानि । अथैतेष्वेव योगान् योजयन्नाह—

(मल०) यद्यपि वक्तुमवसरप्राप्तानि मार्गणास्थानानि तथाऽपि प्रथमतस्तावत् ‘तेषु’ एवानन्तरोदिष्टेषु जीवस्थानकेषु वयं गुणस्थानकादि ‘भणामः’ मणिष्यामः=प्रतिपादयिष्यामः “वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा” इति भविष्यति “वर्तमाना । किं कारणम् ? इत्यत आह—‘सर्वभणितव्यमूलेषु’ इति “निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो वर्श-नम्” इति न्यायाद्वेतावियं सप्तमी । ततोऽयमर्थः—यतः सकलवक्ष्यमाणमार्गणास्थानकादिवक्तव्य-तानिवन्धनमेते जीवास्तत एतेष्वेव तावद्गुणस्थानकादि वक्ष्यामः न हि गुणस्थानकादिप्रपञ्चे-नानिर्जातस्वरूपा जीवा मार्गणास्थानादिषु निरूप्यमाणा अपि यथावत्प्रत्येतुं शक्यन्ते इति । तत्र गुणस्थानकानि यद्यप्याचार्येण स्वयमेवाग्रे वक्ष्यन्ते, तथाऽपीह ना विज्ञातस्वरूपाणि सन्ति तानि जीवस्थानकेषु चिन्त्यमानानि सम्यगवगन्तुं शक्यन्ते । ततो विनेयजनानुग्रहाय तानि संक्षे-पतः प्रदर्श्यन्ते—‘जीवाइपयत्येसु’, जिणोषइट्ठेसु जा असइहणा । सहइहणावि य मिच्छा, विधरीयपरुवणा जा य ॥१॥ संसयकरणं अपि य, जो तेसु अणायरी

पर्यत्प्रेसु । नं पंचविहं मिच्छं, तद्विद्वो मिच्छद्विद्वीओ ॥२॥ उवसमअद्दाएँ ठिओ,  
मिच्छमपत्तो तमेव गंतुमणो । सम्मं आसायंतो, सासायणगां सुणेयव्वो ॥३॥  
जह् गुडदहोणि विसमाइभावसहियाणि होंति मीसाणि । भुंजंस्स तहोभय-  
द्विद्वीए मीसद्विद्वीओ ॥४॥ तिविहे वि ह्नु सम्मत्ते, थेवावि न त्रिग्ह् जस्स  
कम्मवसा । सो अविरउ त्ति भण्णइ, वेसे पुण देसविरईओ ॥५॥ विकहाकसाय-  
निहासहाइरओ भवे पमत्तो त्ति । पंचसमिओ तिगुत्तां, अपमत्तजई सुणेयव्वो  
॥६॥ अप्पुव्वं अप्पुव्वं, जह्नुत्तरं जो करेइ ठिह्कंडं । रसकंडं तग्घायं, सो होइ  
अप्पुव्वकरणो त्ति ॥७॥ निनिवटंति विसुद्धिं, समगपइहा वि जमि अन्नोऽन्नं ।  
तसो नियद्विठाणं, विवरोयमओ य अनियद्वो ॥८॥ थूलाण लोमखंडाण वेयगो  
थायरो सुणेयव्वो । सुद्धुमाण होइ सुद्धुमो, उवसंतेहि तु उवसंतो ॥९॥ खोणंमि  
मोह्णिज्जे, खोणकसाओ सजोगजोगि त्ति । होइ पउत्ता य तओ, अपउत्ता  
होइ ह्नु अजोगी ॥१०॥” एतानि जीवस्थानकेषूपदर्शयन्नाह—पढमेत्यादि । इह पदैकदेशे-  
ऽपि पदसमूहायोपचारात् ‘गुणाः’ इत्युक्ते गुणस्थानकग्रहणम् । प्राकृतत्वाच्च द्वित्वेऽपि बहु-  
वचनम् । यथा ‘हरथा पाया’ इत्यादौ । तत्र द्वे प्रथमगुणरथानके मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे  
भवत इति गम्यते । केषु ? इत्याह—‘बादरक्षिन्निचतुरिन्द्रियाऽसंज्ञिनि अपर्याप्ते’ वादरे-  
त्यादिपदानां समाहारो द्वन्द्वः प्राकृतत्वाच्च ततः परस्य सप्तम्येकवचनस्य लुक् अपर्याप्त इति च  
तस्य विशेषणम् । एवमन्यत्राप्यक्षरगमनिका कार्या । एतदुक्तं भवति—अपर्याप्तवादरैकेन्द्रिये  
पृथिव्यम्बुवनस्पतिलक्षणे न तेजोवायुरूपे, तन्मध्ये सम्यक्त्वलेशवतामप्युत्पादाभावात् ।  
सम्यक्त्वं चासादयतां सासादनभावाभ्युपगमात् । तथा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु  
चापर्याप्तकेषु प्रथमे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । नन्वेकेन्द्रियाणामागमे  
सासादनभावो नेष्यते, यतस्तत्र नियमादेकेन्द्रिया अज्ञानिन एवोक्ताः । द्वीन्द्रियाश्च केचिद-  
पर्याप्तावस्थार्या सासादनभावोपगमाज्ज्ञानिनः, केचिच्च तदभावादज्ञानिनः । यदि पुनरे-  
केन्द्रियाणामपि सासादनभावः स्यात्तर्हि तेऽपि द्वीन्द्रियादिवदुभयथाऽप्युच्येरन्, न चोच्यन्ते,  
तथाहि—“एगिंदियाणं भंते ! किं णाणी अज्ञाणी ?, गोयमा ! नो नाणी नियमा  
अण्णाणी । तथा वेदियाणं भंते ! किं नाणी अण्णाणी ?, गोयमा ! नाणी वि  
अज्ञाणी वि ॥” इत्यादि । तत्कथमिहापर्याप्तवादरैकेन्द्रियेषु पृथिव्यम्बुवनस्पतिलक्षणेषु सासा-

१ तालपत्रपुस्तके तु “अन्वथा तेऽपि द्वीन्द्रियादिवदुभयथाऽप्युच्येरन्, चोच्यन्ते” इत्येतावानेव  
पाठो दृश्यते ।



दनगुणस्थानकभाव उक्तः १, सत्यमेतत् . किन्तु मा त्वरिष्ठाः, स्वयमेतदाचार्य एवाग्रे प्रति-  
 विधास्यतीति ॥४॥ संज्ञिनि अपर्याप्तके 'ओणि' गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि ? इत्यत  
 आह—'मिच्छद्विद्विस्सासाणअधिरया' इति, मिथ्यादृष्टिभामादनाविरतसम्यग्दृष्टिलक्षणानि,  
 न ज्ञेयाणि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादीनि, तेषां पर्याप्तवस्थायामेव भावात् । 'सब्बे सन्निपजत्ते'  
 इति, 'मर्वाण्यपि मिथ्यादृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तानि गुणस्थानकानि संज्ञिनि पर्याप्ते भवन्ति,  
 संज्ञिनः सर्वपरिणामसंभवात् । अथ कथं संज्ञिनः मयोग्ययोगिरूपगुणस्थानकद्वयसंभवः ?  
 तद्भावे तस्यामनस्कतया संज्ञिन्वायोगात्, न, तदानीमपि हि तस्य द्रव्यमनःसंबन्धोऽस्ति,  
 समनस्काश्चाविशेषेण संज्ञिनो व्यवह्रियन्ते, ततो न तरय संज्ञित्वव्याघातः । उक्तं च—'मण-  
 करणं केवलिणी वि अत्थि, तेण सण्णिणो भन्नन्ति । मणोविघ्नाणं पडुच्च ते  
 सन्निणो न भवंति" इति ॥ 'मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि' इति शेषेषु पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्म-  
 पर्याप्तवादरद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणेषु सप्तस्वपि जीवस्थानकेषु मिथ्या-  
 दृष्टिलक्षणमेकं गुणस्थानकं भवति, न सासादनलक्षणमपि कथम् ? इति चेत्, उच्यते—इह संज्ञि-  
 शेषेषु जीवस्थानकेषु परमवादागच्छतामेव घण्टालालान्यायेन सम्यक्त्वलेशमास्वादयतामुत्पत्ति-  
 काल एव सासादनभावो लभ्यते, तदानीं चैतेषामपर्याप्तावस्था । तत्रापि चापर्याप्ते सूक्ष्मै-  
 केन्द्रिये न सासादनभावसंभवः, तस्य मनाक् शुभपरिणामरूपत्वात्, महासंक्लिष्टपरिणामस्य  
 च सूक्ष्मैकेन्द्रियमध्ये उत्पादाभिधानादिति । तदेवं निरूपितानि जीवस्थानकेषु गुणस्थानकानि,  
 'सांप्रतं यद्यप्युपयोगा वक्तुमवसरप्राप्तास्तथाऽपि बहुवक्तव्यत्वाद्योगा एव तावद्ब्रक्ष्यन्ते ।  
 'ते च' इत्यादि । ते च पञ्चदश । तद्यथा—सत्यवाग्योगः १, असत्यवाग्योगः २, सत्य-  
 मृषावाग्योगः २, असत्यमृषावाग्योगः ४, । तत्स्वरूपं चेदम्—'सखा हिया सतामिह,  
 संतो सुणधो गुणा पयथा वा । तव्विषरीया मोसा, मीसा जा तहुमय-  
 सहावा ॥१॥ अणह्मिगया जा तीसु वि, सहो धिय केवलो असधसुसा ।"  
 एवं मनोयोगोऽपि चतुर्धा द्रष्टव्यः । काययोगः सप्तधा । औदारिकं १, औदारिकमिश्रं २,  
 वैक्रियं ३, वैक्रियमिश्रं ४, आहारकं ५, आहारकमिश्रं ६, कर्मणं ७, च । तत्रौदारिककाय-  
 योगस्तिर्यङ्मनुष्ययोस्तयोरेवापर्याप्तयोरौदारिकमिश्रकाययोगः । वैक्रियकाययोगो देवनारकयो-  
 स्तिर्यङ्मनुष्ययोर्वा वैक्रियलब्धिमतोः । वैक्रियमिश्रकाययोगोऽपर्याप्तयोर्देवनारकयोस्तिर्यङ्-  
 मनुष्ययोर्वा वैक्रियारम्भकाले परित्यागकाले च । आहारककाययोगश्चतुर्दशपूर्वविदः । आहारक-

१ तालपत्रपुस्तके त्वितः परम्—'इह प्राकृतत्वाङ्गिन्नव्यत्वयः । यदाह पाणिनिः प्राकृतलक्षणे-  
 'लङ्' व्यभिचारी' इति । ततश्च 'मर्बे' इति ।" इत्येतत्पाठोऽधिक उपलभ्यते । २ इतः परं तालपत्रपुस्तके  
 तु "सांप्रतं योगाः प्राप्तावसराः । ते च पञ्चदश । तद्यथा" इत्येतावानेव पाठो दृश्यते ।

मिश्रकाययोगः आहारकस्य प्रारम्भसमये परित्यागकाले च । कर्मणकाययोगः अष्टप्रकारकर्म-  
विकाररूपशरीरचेष्टास्वरूपोऽपान्तरालगतावुत्पत्तिप्रथमसमये केवलिसमुद्घातवस्थायां च ॥५॥

तानेतान् योगान् जीवस्थानकेषु चिन्तयन्नाह—

जोगा छसु अप्पजत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।  
वेउव्वियमीसजुया सन्नि अप्पजत्तए तिन्नि ॥६॥

(हारि०) व्याख्या—‘योगौ’ वक्ष्यमाणलक्षणौ कर्मणौदारिकमिश्रकाययोगौ द्वौ । केषु ?  
इत्याह—‘षट्स्वपर्याप्तकेषु’ संज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जितेषु । तत्र विग्रहगतावनाहारकस्य यथासंभव-  
मेकद्वित्रिसमयान् यावत्कर्मणकाययोगः, तदन्यत्रौदारिकमिश्रयोग इति । मिश्रता च कर्मणेनैव  
सह मन्तव्येति । तथा वैक्रियमिश्रयुतौ तावेव पूर्वोक्तौ द्वौ । क ? इत्याह—संज्ञिन्यपर्याप्तके त्रय  
एवंरूपा भवन्ति । अत्र तु देवनारकेषूपद्यमानस्य वैक्रियमिश्रकाययोगो द्रष्टव्यः । अत्रापि  
मिश्रता कर्मणेनैव सह मन्तव्या । इति गाथार्थः ॥६॥

अथात्रैव गाथाद्धेन मतान्तरं दर्शयन् पर्याप्तेषु तानेवाह—

(मल०) संज्ञिपञ्चेन्द्रियापर्याप्तकवर्जितेषु षट्स्वपर्याप्तकेषु द्वौ कर्मणौदारिकमिश्रलक्षणौ  
योगौ भवतः । तत्र कर्मणकाययोगोऽपान्तरालगतावुत्पत्तिप्रथमसमये च । शेषकालं त्वौदारिक-  
मिश्रकाययोगः । ‘सन्निअप्पजत्तए तिन्नि’ इति संज्ञिन्यपर्याप्तके त्रयो योगा भवन्ति । के  
ते ? इत्याह—‘वेउव्वियमीसजुया’ तावेवानन्तरोक्तावौदारिकमिश्रकर्मणयोगौ वैक्रियमिश्र-  
युतौ, तथा च त्रयो योगा भवन्ति । वैक्रियमिश्रकाययोगश्च संज्ञिनोऽपर्याप्तस्य देवनारकेषूपद्य-  
मानस्य द्रष्टव्यौ न शेषस्य, असंभवात् । मिश्रता च कर्मणेन सह द्रष्टव्या ॥६॥

अत्रैव मतान्तरमपदर्शयन्नाह—

विंति अप्पजत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केह ओरालं ।

बायरपज्जत्ते तिन्नि उरल वेउव्वियदुगं च ॥७॥

(हारि०) व्याख्या—अत्रैवं योजना कार्या । केचनाचार्याः शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्ताना-  
नामपि ‘तणुपज्जत्ताण’ इति तनुपर्याप्तानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकशरीरं ‘ब्रुवते’  
प्रतिपादयन्तीति । नन्वेवं सति वैक्रियमपि प्राप्नोति, न्यायस्य समानत्वादिति, सत्यम्, लब्ध्य-  
पर्याप्तानां शरीरपर्याप्तौ सत्यां यावदद्यापीन्द्रियपर्याप्तिं न समापयन्ति तावत्तिर्यग्मनुष्याणा-  
मौदारिकयोगोऽभिप्रेतः । सुरनारकाणां तु लब्ध्यपर्याप्तत्वं नास्त्येवेति न तेषां वैक्रिययोगः  
प्रतिपादित इति । करणापर्याप्तानां त्वौदारिकयोगो वैक्रिययोगश्च न विवक्षितः, अन्यथाऽपर्या-

दनगुणस्थानकभाव उक्तः १, सत्यमेतत् . किन्तु मा त्वरिष्ठाः, स्वयमेतदाचार्य एवाग्रे प्रति-  
विधास्यतीति ॥४॥ संज्ञिनि अपर्याप्तके 'त्रोणि' गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि ? इत्यत  
आह—'मिच्छद्विद्विसासाणअविरया' इति, मिथ्यादृष्टिमासादनाविरतसम्यग्दृष्टिलक्षणानि,  
न शेषाणि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादीनि, तेषां पर्याप्तवस्थायामेव भावात् । 'सब्बे सन्निपजत्ते'  
इति, 'सर्वाण्यपि मिथ्यादृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तानि गुणस्थानकानि संज्ञिनि पर्याप्ते भवन्ति,  
संज्ञिनः सर्वपरिणामसंभवात् । अथ कथं संज्ञिनः सयोग्ययोगिरूपगुणस्थानकद्वयसंभवः ?  
तद्भावे तस्यामनस्कतया संज्ञित्वायोगात्, न, तदानीमपि हि तस्य द्रव्यमनःसंबन्धोऽस्ति,  
समनस्काश्चाविशेषेण संज्ञिनो व्यवहियन्ते, ततो न तस्य संज्ञित्वव्याघातः । उक्तं च—'मण-  
करणं केवल्लिणी वि अत्थि, तेण सण्णिणो भन्नन्ति । मणोविज्ञाणं पडुच्च ते  
सन्निणो न भवन्ति" इति ॥ 'मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि' इति शेषेषु पर्याप्तापर्याप्तद्वय-  
पर्याप्तादरद्धीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणेषु मत्तस्वपि जीवस्थानकेषु मिथ्या-  
दृष्टिलक्षणमेकं गुणस्थानकं भवति, न सासादनलक्षणमपि कथम् ? इति चेत्, उच्यते—इह संज्ञि-  
शेषेषु जीवस्थानकेषु परमवादागच्छतामेव घण्टालालान्यायेन सम्यक्त्वलेशमास्वादयताम्लुत्पत्ति-  
काल एव सासादनभावो लभ्यते, तदानीं चैतेषामपर्याप्तावस्था । तत्रापि चापर्याप्ते सूक्ष्मै-  
केन्द्रिये न सासादनभावसंभवः, तस्य मनाक् शुभपरिणामरूपत्वात्, महासंक्लिष्टपरिणामस्य  
च सूक्ष्मैकेन्द्रियमध्ये उत्पादाभिधानादिति । तदेवं निरूपितानि जीवस्थानकेषु गुणस्थानकानि,  
'सांप्रतं यद्यप्युपयोगा वक्तुमवसरप्राप्तास्तथाऽपि बहुवक्तव्यत्वाद्योगा एव तावद्दृश्यन्ते ।  
'ते च' इत्यादि । ते च पञ्चदश । तद्यथा—सत्यवाग्योगः १, असत्यवाग्योगः २, सत्य-  
मृषावाग्योगः ३, असत्यमृषावाग्योगः ४, । तत्स्वरूपं चेदम्—“सखा हिया सतामिह,  
संतो सुणओ गुणा पयथा वा । तठिवरीया मोसा, मोसा जा तदुभय-  
सहावा ॥१॥ अणहिगया जा तीसु वि, सद्धो छिय केवलो असच्चसुसा ।”  
एवं मनोयोगोऽपि चतुर्धा द्रष्टव्यः । काययोगः सप्तधा । औदारिकं १, औदारिकमिश्रं २,  
वैक्रियं ३, वैक्रियमिश्रं ४, आहारकं ५, आहारकमिश्रं ६, कार्मणं ७, च । तत्रौदारिककाय-  
योगस्तिर्यङ्मनुष्ययोस्तयोरेवापर्याप्तयोरौदारिकमिश्रकाययोगः । वैक्रियकाययोगो देवनारकयो-  
स्तिर्यङ्मनुष्ययोर्वा वैक्रियलब्धमतोः । वैक्रियमिश्रकाययोगोऽपर्याप्तयोर्देवनारकयोस्तिर्यङ्-  
मनुष्ययोर्वा वैक्रियारम्भकाले परित्यागकाले च । आहारककाययोगश्चतुर्दशपूर्वविदः । आहारक-

१ सालपत्रपुस्तके त्वितः परम्—“इह प्राकृतत्वाङ्गिन्नव्यत्ययः । यदाह पाणिनिः प्राकृतलक्षणे-  
'लिङ्गं व्यभिचारी' इति । ततश्च 'सर्वे' इति ।" इत्येवत्पाठोऽधिक उपलभ्यते । २ इतः परं सालपत्रपुस्तके  
तु "सांप्रतं योगाः प्राप्तावसराः । ते च पञ्चदश । तद्यथा" इत्येतावानेव पाठो दृश्यते ।

मिश्रकाययोगः आहारकस्य प्रारम्भसमये परित्यागकाले च । कर्मणकाययोगः अष्टप्रकारकर्म-  
विकाररूपशरीरचेष्टास्वरूपोऽपान्तरालगतावुत्पत्तिप्रथमसमये केवलममुद्घातवस्थायां च ॥५॥

तानेतान् योगान् जीवस्थानकेषु चिन्तयन्नाह—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।  
वेउव्वियमीसजुया मन्नि अप्पज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(हारि०) व्याख्या—‘योगौ’ वक्ष्यमाणलक्षणौ कर्मणौदारिकमिश्रकाययोगौ द्वौ । केषु ?  
इत्याह—‘षट्स्वपर्याप्तकेषु’ संज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जितेषु । तत्र विग्रहगतावनाहारकस्य यथासंभव-  
मेकद्वित्रिसमयान् यावत्कर्मणकाययोगः, तदन्यत्रौदारिकमिश्रयोग इति । मिश्रता च कर्मणेनैव  
सह मन्तव्येति । तथा वैक्रियमिश्रयुतौ तावेव पूर्वोक्तौ द्वौ । क ? इत्याह—संज्ञिन्यपर्याप्तके त्रय  
एवंरूपा भवन्ति । अत्र तु देवनारकेषूत्पद्यमानस्य वैक्रियमिश्रकाययोगो द्रष्टव्यः । अत्रापि  
मिश्रता कर्मणेनैव सह मन्तव्या । इति गाथार्थः ॥६॥

अथात्रैव गाथाद्धेन मतान्तरं दर्शयन् पर्याप्तेषु तानेवाह—

(मल०) संज्ञिपञ्चेन्द्रियापर्याप्तकवर्जितेषु षट्स्वपर्याप्तकेषु द्वौ कर्मणौदारिकमिश्रलक्षणौ  
योगौ भवतः । तत्र कर्मणकाययोगोऽपान्तरालगतावुत्पत्तिप्रथमसमये च । शेषकालं त्वौदारिक-  
मिश्रकाययोगः । ‘सन्निधपज्जत्तए तिन्नि’ इति संज्ञिन्यपर्याप्तके त्रयो योगा भवन्ति । के  
ते ? इत्याह—‘वेउव्वियमीसजुया’ तावेवानन्तरोक्तावौदारिकमिश्रकर्मणयोगौ वैक्रियमिश्र-  
युतौ, तथा च त्रयो योगा भवन्ति । वैक्रियमिश्रकाययोगश्च संज्ञिनोऽपर्याप्तस्य देवनारकेषूत्पद्य-  
मानस्य द्रष्टव्यौ न शेषस्य, असंभवात् । मिश्रता च कर्मणेन सह द्रष्टव्या ॥६॥

अत्रैव मतान्तरमपदर्शयन्नाह—

विंति अप्पज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।  
बायरपज्जत्ते तिन्नि उरल वेउव्वियदुगं च ॥७॥

(हारि०) व्याख्या—अत्रैवं योजना कार्या । केचनाचार्याः शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्ताना-  
नामपि ‘तणुपज्जत्ताण’ इति तनुपर्याप्तानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकशरीरं ‘ब्रुवत्ते’  
प्रतिपादयन्तीति । नन्वेवं सति वैक्रियमपि प्राप्नोति, न्यायस्य समानत्वादिति, सत्यम्, लब्ध-  
पर्याप्तानां शरीरपर्याप्तौ सत्यां यावदद्यापीन्द्रियपर्याप्तिं न समापयन्ति तावत्तिर्यग्मनुष्याणा-  
मौदारिकयोगोऽभिप्रेतः । सुरनारकाणां तु लब्धपर्याप्तत्वं नास्त्येवेति न तेषां वैक्रिययोगः  
प्रतिपादित इति । करणपर्याप्तानां त्वौदारिकयोगो वैक्रिययोगश्च न विवक्षितः, अन्यथाऽपर्या-

ज्ञानामौदारिकयोगवद् द्वै क्रिययोगोऽप्यभिहितः स्यादिति । लब्धिकरणापर्याप्तकपर्याप्तिमता पुनरयं विशेषः-लब्ध्यपर्याप्तास्त उच्यन्ते ये निजपर्याप्तीरममाप्य भ्रियन्ते, लब्धिपर्याप्ताः पुनः समाप्य भ्रियन्ते इति । करणापर्याप्तास्ते भण्यन्ते ये निजपर्याप्तीर्नाद्यापि प्रत्यन्ति परं पूरयिष्यन्ति । करणपर्याप्ताः पुनस्ते भण्यन्ते यैर्निजपर्याप्तयः पूरिता भवन्ति । अतो देवनारका असंख्यातवर्षायुषस्तिर्यङ्मनरा जिनादयश्च लब्धिपर्याप्ता एव भवन्ति न तु लब्ध्यपर्याप्ताः तेषां निरुपक्रमायुष्कत्वेनापर्याप्तकावस्थायां मरणाभावात् । तथा चोक्तम्- 'देवा नेरह्या वा, असंख-  
वासाडया य तिरिमणुषा । उक्तमपुरिसा य तहा. चरमसरोरा य निरुवक्रमा । १॥'' इति । करणत उभयथाऽपि भवन्ति । संख्यातवर्षायुषो नरतिर्यञ्चो लब्धितः करणतश्चापर्याप्ताः पर्याप्त काश्च भवन्ति । संख्यातवर्षायुषस्तिर्यङ्मनरा 'स्तु ते गीयन्ते येषां पूर्वकोट्यायुः, येषां पुनस्तदधिकं तेऽसंख्यातवर्षायुषो' ऽभिधीयन्ते आगमपरिभाषया । इत्युक्तं प्रासङ्गिकं साम्प्रतं प्रस्तुतमभिधीयत इति 'बायरपञ्जत्ते' इत्यादि वादरपर्याप्ते किम् ? इत्याह-औदारिकं वैक्रियद्विकं च वैक्रिय-  
शरीरतन्मिश्रलक्षणमिति त्रयो भवन्तीति शेषः । वैक्रियद्विकस्य हि वादरपर्याप्तकायुकायिकेषु सङ्गावात् । इति गाथार्थः ॥७॥

अथ गाथाद्धेन योगान् समर्थयन् जीवेष्वेवोपयोगानाह—

(मल०) केचिदाचार्याः शीलाङ्गादयः शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानां 'तणुपञ्जसाणं' इति तनुपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकं शरीरं 'ब्रुवते' प्रतिपादयन्ति । शरीरपर्याप्त्या हि परि-  
समाप्तवत्या किल तेषां शरीरं परिपूर्णं निष्पन्नमतिकृत्वा । तथा च तद्ग्रन्थः- "औदारिकं काययोगस्तिर्यङ्मनुजयोः शरीरपर्याप्तेरुर्ध्वं, तदारतस्तु मिश्रः" इति । नन्वनया युक्त्या संज्ञिनोऽपर्याप्तस्य देवनारकेषूत्पद्यमानस्य तनुपर्याप्त्या पर्याप्तस्य वैक्रियमपि शरीर-  
मुपपद्यत एव तत्किमिह तन्नोक्तम् ? इत्युच्यते, उपलक्षणत्वादेतदपि द्रष्टव्यमित्यदोषः । यद्वा इहापर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्तका एवान्तर्मुहूर्तायुषो विविक्षितास्ते च तिर्यङ्मनुष्या एव घटन्ते तेषामेवान्तर्मुहूर्तायुष्कत्वसंभवात्, न देवनारकाः, तेषां जघन्यतोऽपि दशवर्षसह-  
स्रप्रमाणायुष्कत्वात् । लब्ध्यपर्याप्तकाश्च जघन्यतोऽपीन्द्रियपर्याप्तौ परिसमाप्तायामेव भ्रियन्ते नार्वाग्, इत्युक्तागमामिप्रायेण । ततस्तेषां लब्ध्यपर्याप्तकानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौ-  
दारिकमेव शरीरमुपपद्यते, न वैक्रियमित्यदोषः । केचिदिति ब्रुवाणस्य चाचार्यस्यायमभिप्रायो लक्ष्यते-यद्यपि तेषां शरीरपर्याप्तिरभूत्तथाऽपि इन्द्रियोच्छ्वासादीनामप्यद्याप्यनिष्पन्नत्वेन शरीरस्यासंपूर्णत्वात्, अत एव कार्मणस्याप्यद्यापि व्याप्रियमाणत्वादौदारिकमिश्रमेव तेषां युक्त्यु-  
पपन्नमिति । 'बायर' इत्यादि वादर एकेन्द्रियपर्याप्तके त्रयो योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह-

औदारिकं वैक्रियद्विकं च । तत्रौदारिकं पृथिव्यादीनाम् । वैक्रियद्विकं तु वैक्रियतन्मिश्रलक्षणं वायुकायिकस्य ॥७॥

उरलं सुहुमे चउसु य, भासजुयं पनरसावि सन्निम्नि ।

उवओगा दससु तओ, अचक्खुदंमणमनाणदुगं ॥८॥

(हारि०) व्याख्या—औदारिकशरीरं, क्व ? इत्याह—सूक्ष्मे पर्याप्त इति पूर्वेण संबन्धः । तथा 'चतुष्टु' द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु, पर्याप्तेषु अत्रापि पूर्वेण योगः । किम् ? इत्यत आह—तदौदारिकं पूर्वोक्तं भाषयाऽसत्यामृषारूपया युतं समन्वितं भाषायुतं योगद्वयमित्यर्थः । तथा 'पञ्चदशापि' योगा वक्ष्यमाणस्वरूपाः संज्ञिनि पर्याप्ते इति प्राक्तनेन संटङ्कः । इति योजिता जीवस्थानेषु योगाः पञ्चदशापि, साम्प्रतं तेष्वेवोपयोगान् प्रतिपिपादयिषुराह—'उषओगा दससु तओ' इत्यादि । उपयोगा वक्ष्यमाणलक्षणास्त्रयः, किरूपाः ? इत्याह—'अचक्षुर्दर्शनम्' चतुरहितशेषेन्द्रियोपयोगलक्षणम् । तथा 'अज्ञानद्विकं च' मत्यज्ञानभ्रुताज्ञानस्वरूपमिति । केपु ? इत्याह—दशसु जीवस्थानेषु पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्म २ वादर २ द्वि २ त्रीन्द्रियाऽऽपर्याप्तकचतुरिन्द्रियाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपेषु । इति गाथार्थः ॥८॥

तथा—

(मल०) पर्याप्त इत्यनुवर्तते । 'औदारिकं' औदारिककाययोगः सूक्ष्मैकेन्द्रिये पर्याप्ते भवति । तथा 'चउसु य भासजुयं' इति चतुष्टु द्वि १ त्रि २ चतुरिन्द्रिया ३ ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु ४ पर्याप्तेषु तदेवौदारिकं 'भाषायुतं' वाग्योगसहितं द्रष्टव्यम् । भाषा चेह असत्यामृषारूपाऽवगन्तव्या । तदुक्तम्—'विगलेसु असच्चमोसेव' इति । 'पनरसावि 'सन्निम्नि' इति संज्ञिनि पर्याप्तके पञ्चदशापि योगाः संभवन्ति । चतुर्धा मनोयोगः चतुर्धा वाग्योगः, सप्तधा च काययोग इति । नन्वौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगाः कथमस्योपपद्यन्ते ? तेषामपर्याप्तावस्थामावित्वात्, उच्यते, वैक्रियमिश्रं संयतादेवैक्रियं प्रारभमाणस्य प्राप्यते । औदारिकमिश्रकाययोगौ तु केवलिनः समुद्घातगतस्य । उक्तं च "औदारिकप्रयोक्ता, प्रथमाष्टमसमययोरसाविष्टः । मिश्रौदारिकयोक्ता, सप्तमषष्ठद्विर्तायेषु ॥१॥ कार्मणशरीरयोगो, चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च ॥" तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषु योगाः, संप्रतमुपयोगा निरूपणावसरप्राप्तास्ते च द्वादश । तद्यथा—मतिज्ञानादीनि पञ्च ज्ञानानि, मत्यज्ञानादीनि त्रीण्यज्ञानानि, चक्षुर्दर्शनादीनि च चत्वारि दर्शनानि । एतान् जीवस्थानेषु चिन्तयन्नाह—'उषओगा' इत्यादि । 'दशसु' जीवस्थानकेषु पर्याप्ता—ऽपर्याप्त—सूक्ष्म—वादर—एकेन्द्रिय ४ द्वीन्द्रिय ६ त्रीन्द्रिया ८ ऽपर्याप्त चतुरिन्द्रिया ९ ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय १० लक्षणेषु त्रय उपयोगा भवन्ति ।

ज्ञानामौदारिकयोगवद् द्वै क्रिययोगोऽप्यभिहितः स्यादिति । लब्धिकरणापर्याप्तकपर्याप्तिमतां पुनरर्थं विशेषः-लब्ध्यपर्याप्तास्त उच्यन्ते ये निजपर्याप्तिरममाप्य ग्रियन्ते, लब्धिपर्याप्ताः पुनः समाप्य ग्रियन्त इति । करणापर्याप्तास्ते मण्यन्ते ये निजपर्याप्तीर्नाद्यापि पूरयन्ति परं पूरयिष्यन्ति । करणपर्याप्ताः पुनस्ते मण्यन्ते यैर्निजपर्याप्तयः पूरिता भवन्ति । अतो देवनारका असंख्यातवर्षायुषस्तिर्यङ्मनरा जिनादयश्च लब्धिपर्याप्ता एव भवन्ति न तु लब्ध्यपर्याप्ताः तेषां निरुपक्रमायुष्कत्वेनापर्याप्तकावस्थायां मरणाभावात् । तथा चोक्तम्-‘ देवा नेरहृया वा, असंख-  
वासाउया य निरिमणुया । उत्तमगुरिसा य तहा. चरमसरीरा य निरुवकमा । १॥’ इति । करणत उभयथाऽपि भवन्ति । संख्यातवर्षायुषो नरतिर्यञ्चो लब्धितः करणतश्चापर्याप्ताः पर्याप्त काश्च भवन्ति । संख्यातवर्षायुषस्तिर्यङ्मनरा’स्तु ते गीयन्ते येषां पूर्वकोट्यायुः, येषां पुनस्तदधिकं तेऽसंख्यातवर्षायुषो’ऽभिधीयन्ते आगमपरिभाषया । इत्युक्तं प्रासङ्गिकं साम्प्रतं प्रस्तुतमभिधीयत इति ‘बायरपञ्जत्ते’ इत्यादि वादरपर्याप्ते किम् ? इत्याह-औदारिकं वैक्रियद्विकं च वैक्रिय-  
शरीरतन्मिश्रलक्षणमिति त्रयो भवन्तीति शेषः । वैक्रियद्विकस्य हि वादरपर्याप्तकवायुकायिकेषु सङ्गावात् । इति गाथार्थः ॥७॥

अथ गाथाद्धेन योगान् समर्थयन् जीवेष्वेवोपयोगानाह—

(मल०) केचिदाचार्याः शीलाङ्गादयः शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानां ‘तणुपञ्जस्ताणं’ इति तनुपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकं शरीरं ‘ब्रुवते’ प्रतिपादयन्ति । ‘शरीरपर्याप्त्या हि परि-  
समाप्तवत्या किल तेषां शरीरं परिपूर्णं निष्पन्नमिति कृत्वा । तथा च तद्ग्रन्थः-“औदारिक काययोगस्तिर्यङ्मनुजयोः शरीरपर्याप्तेरुर्ध्वं, तदारसस्तु मिश्रः” इति । नन्वनया युक्त्या संज्ञिनोऽपर्याप्तस्य देवनारकेषूपद्यमानस्य तनुपर्याप्त्या पर्याप्तस्य वैक्रियमपि शरीर-  
मुपपद्यत एव तत्किमिह तन्नोक्तम् ?, इत्युच्यते, उपलक्षणत्वादेतदपि द्रष्टव्यमित्यदोषः’ । यद्वा इहापर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्तका एवान्तर्द्वृत्तायुषो विविक्षितास्ते च तिर्यङ्मनुष्या एव घटन्ते तेषामेवान्तर्द्वृत्तायुष्कत्वसंभवात्, न देवनारकाः, तेषां जघन्यतोऽपि दशवर्षसह-  
स्रप्रमाणायुष्कत्वात्’ । लब्ध्यपर्याप्तकाश्च जघन्यतोऽपीन्द्रियपर्याप्तौ परिसमाप्तायामेव ग्रियन्ते नावीगं, इत्युक्तागमाभिप्रायेण । ततस्तेषां लब्ध्यपर्याप्तकानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौ-  
दारिकमेव शरीरमुपपद्यते, न वैक्रियमित्यदोषः । केचिदिति ब्रुवाणस्य चाचार्यस्यायमभिप्रायो लक्ष्यते-यद्यपि तेषां शरीरपर्याप्तिरभूत्तथाऽपि इन्द्रियोच्छ्वासादीनामप्यद्याप्यनिष्पन्नत्वेन शरीरस्यासंपूर्णत्वात्, अत एव कार्मणस्याप्यद्यापि व्याग्रियमाणत्वादौदारिकमिश्रमेव तेषां युक्त्यु-  
पपन्नमिति । ‘बायर’ इत्यादि वादर एकेन्द्रियपर्याप्तके त्रयो योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह-

पर्याप्तकेषु । 'मगनाण' इत्यादि संज्ञिनि अपर्याप्ते मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनमेवलज्ञानकेवलदर्शन-  
रूपकेवलद्विकरहिताः शेषा अष्टावपि ज्ञानात्रिकाज्ञानत्रिकाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनरूपा उपयोगा  
भवन्ति ॥९॥

मन्वे सन्निसु एतो, लेसाओ छावि दुविह सन्निमि ।

चउरो पढमा बायर अपजत्ते तिन्नि सेसेपु ॥१०॥

(हारि०) व्याख्य.— सर्वे उपयोगाः 'संज्ञिषु' पर्याप्तप्विति शेषः । एवं प्रतिपादिता  
जीवस्थानेषूपयोगाः, इतो लेश्यास्तेष्वेव प्रतिपाद्यन्त इति शेषः । 'छावि दुविह सन्निमि' इति  
पडपि कृष्णलेश्याद्याः । क ? द्विविधे संज्ञिनि' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे । तथा 'चतस्रः प्रथमाः'  
कृष्णनीलकापोततैजसीरूपाः । क ? बादर' इति वादरेऽपर्याप्ते देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरूपत्प-  
न्नस्य तेजोलेश्यायाः सद्भावात् । तथा 'निस्त्रः' प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्या', केषु ? शेषेषु  
प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तवादरवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानेषु । इति गाथार्थः ॥१०॥

इति प्रतिपादिता लेश्या जीवस्थानेषु, सांप्रतं तेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्ट-  
यमेकगाथया प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) सर्वेऽपि द्वादशाप्युपयोगाः संज्ञिषु पर्याप्तेषु द्रष्टव्याः ते च क्रमेणैव न तु  
युगपत्, उपयोगानां तथाजीवस्वभावत्वतो यौगपथासंभवात् । तदुक्तम्—“समए दो णुव-  
आगा” इति । तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषूपयोगाः । 'एतो' इति इत ऊर्ध्वमेतेष्वेव लेश्या  
अपि निरूप्यन्ते 'छावि दुविह सन्निमि' इति द्विविधेऽपि संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तलक्षणे पडपि  
कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लरूपा लेश्या भवन्ति । 'चउरो पढमा बायर अपजत्ते' इति  
वादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तके प्रथमाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा भवन्ति । तेजोलेश्या कथमवा-  
प्यते ? इति चेदुच्यते, यदा देवमवाञ्च्युतः सन् कश्चनापि वादरैकेन्द्रियतया भूदकतरुषु मध्ये  
समृत्पद्यते तदा तस्य घण्टालालान्यायेन साऽवाप्यते इत्यदोमः 'निस्त्रि सेसेसु' इति ।  
अत्र प्रथमा इत्यनुवर्तते । प्रथमास्तिस्त्रः कृष्णनीलकापोताख्याः शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्त-  
वादरैकेन्द्रियवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानकेषु लभ्यन्ते नान्याः. तेषां सदैवाशुभपरिणामभावात् ।  
शुभपरिणामरूपाश्च तेजोलेश्यादयः । इति ॥१०॥

तदेवं जीवस्थानकेषु लेश्या अमिधाय, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थान-  
चतुष्टयमभिधित्सुराह—

सत्तदु १ अदु २ सत्तदु ३ अदु ४ वंधु १दयु २दीरणा ३संता' ४ ।

तेरससु जीवठाणसु सन्निपज्जत्ताए ओघो ॥११॥

१ "सत्ता" इत्यपि पाठः ।



पर्याप्तकेषु । 'मणनाण' इत्यादि संज्ञिनि अपर्याप्ते मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलज्ञानकेवलदर्शन-  
रूपकेवलद्विकरहिताः शेषा अष्टावपि ज्ञानात्रिकाज्ञानत्रिकाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनरूपा उपयोगा  
भवन्ति ॥९॥

मन्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविह सन्निमि ।

चउरो पढमा बायर अपजत्ते तिन्नि सेसेपु ॥१०॥

(हारि०) व्याख्य.— सर्वे उपयोगाः 'संज्ञिष्ठु' पर्याप्तञ्चिति शेषः । एवं प्रतिपादिता  
जीवस्थानेषूपयोगाः, इतो लेश्यास्तेष्वेव प्रतिपाद्यन्त इति शेषः । 'छावि दुविह सन्निमि' इति  
षडपि कृष्णलेश्याद्याः । क ? द्विविधे संज्ञिनि' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे । तथा 'चत्तस्रः प्रथमाः'  
कृष्णनीलकापोततैजसीरूपाः । क ? बादर' इति वादरेऽपर्याप्ते देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुपृत्प-  
न्नस्य तेजोलेश्यायाः सद्भावात् । तथा 'निन्नः' प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्याः, केषु ? शेषेषु  
प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तवादरवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानेषु । इति गाथार्थः ॥१०॥

इति प्रतिपादिता लेश्या जीवस्थानेषु, सांप्रतं तेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्ट-  
यमेकगाथया प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) सर्वेऽपि द्वादशाप्युपयोगाः संज्ञिष्ठु पर्याप्तेषु द्रष्टव्याः ते च क्रमेणैव न तु  
युगपत्, उपयोगानां तथाजीवस्वभावत्वतो यौगपद्यासंभवात् । तदुक्तम्—'समए दो णुव-  
आगा' इति । तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषूपयोगाः । 'एत्तो' इति इत ऊर्ध्वमेतेष्वेव लेश्या  
अपि निरूप्यन्ते 'छावि दुविह सन्निमि' इति द्विविधेऽपि संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे षडपि  
कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लरूपा लेश्या भवन्ति । 'चउरो पढमा बायर अपजत्ते' इति  
वादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तके प्रथमाश्चत्तस्रः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा भवन्ति । तेजोलेश्या कथमवा-  
प्यते ? इति चेदुच्यते, यदा देवभवाच्च्युतः सन् कश्चनापि वादरैकेन्द्रियतया भूदकतरुषु मध्ये  
समुत्पद्यते तदा तस्य घण्टालालान्यायेन साऽवाप्यते इत्यदोषः 'निन्नि सेसेपु' इति ।  
अत्र प्रथमा इत्यनुवर्तते । प्रथमास्तिस्रः कृष्णनीलकापोताख्याः शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्त-  
वादरैकेन्द्रियवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानकेषु लभ्यन्ते नान्याः. तेषां सदैवाशुभपरिणामभावात् ।  
शुभपरिणामरूपाश्च तेजोलेश्यादयः । इति ॥१०॥

तदेवं जीवस्थानकेषु लेश्या अभिधाय, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थान-  
चतुष्टयमभिधित्सुराह—

सत्तट्ट १ अट्ट २ सत्तट्ट ३ अट्ट ४ बंधु १दयु २दीरणा ३संता'४ ।

तेरससु जीवठाणसु सन्नियज्जत्तए ओधो ॥११॥

के ते ? इत्याह—अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणम् । ननु स्पर्शनेन्द्रियावर्ण-  
क्षयोपशमसंभवाद्भवतु मतिरेकेन्द्रियाणां, यत्तु श्रुतं तत्कथमुपपद्यते ? भाषालब्धिभ्रोत्रेन्द्रियलब्धि-  
विकलत्वात्, भाषाभ्रोत्रेन्द्रियलब्धिमतो हि तदुपपद्यते नाऽयस्य । तदुक्तम्—“भाषस्युयं  
भासासोयलब्धिणो जुञ्जए न इयरस्स । भासाभिमुहरस्स सुयं, सोऊण व जं  
इविञ्जाहि ॥१॥” उच्यते, इह तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसंज्ञा विद्यते, तथा सूत्रेऽभिधानात् ।  
संज्ञा चामिलाष उच्यते । यदुक्तमावश्यकटीकायाम्—“आहारसंज्ञा आहारागमिलाषः  
क्षुद्धेदनीयप्रभषः खलवात्मपरिणामविशेषः” इति । अमिलापश्च मर्मैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि  
तद्यदीदमवाप्यते ततः समीचीनं भवति इत्येवंशब्दार्थोन्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूतप्रतिनिय-  
तवस्तुप्राप्त्यव्यवसायरूपः, स च श्रुतमेव शब्दार्थालोचनानुसारित्वात् श्रुतस्य चैतल्लक्षणत्वात्, उक्तं  
च—इन्द्रियमणोनिमित्तं, जं विज्ञाणं सुयाणुसारेण । निययत्थोत्तिसमत्थं तं भाष-  
सुयं मई सेसं ॥१॥” इति ‘सुयाणुसारेण’ इति शब्दार्थालोचनानुसारेण केवलमेकेन्द्रिया-  
णामव्यक्त एव कश्चनापि अनिर्वचनीयः शब्दार्थोन्लेखो द्रष्टव्यः, अन्यथाऽऽहारादिसंज्ञानुपपत्तेः ।  
यदुक्तं भाषालब्धिभ्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वादेकेन्द्रियाणां श्रुतमनुपपन्नमिति, तदप्यसमीक्षि-  
तामिधानम्, तथाहि—वकुलदेः स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियविकलत्वेऽपि किमपि सूक्ष्मं  
भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमभ्युपगम्यते, “पच्चैदिउ च्व (ओ उ) षउलो” इत्यादिजिनवचन-  
प्रामाण्यात्, तथा भाषाभ्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतमपि भविष्यति,  
अन्यथा आहारादिसंज्ञानुपपत्तेः, तदुक्तम्—“जह सुहुमं भाविंदियणाणं दड्विंदियाण  
धिरहे वि । दड्वसुयाभाषंमि वि, भाषसुयं पत्थिषाईणं ॥१॥” इति कृतं प्रसंगेन  
गमनिकामात्रफलत्वात्प्रयासस्य ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।

मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्नि अपजत्ते ॥९॥

(हारि०) व्याख्या—ते पूर्वगाथोक्तास्त्रय उपयोगाः ‘चक्षुर्युताः’ चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्वि-  
ताश्चत्वारो भवन्तीत्यर्थः। केषु ? ‘चउरिंदियअसन्नि’ इति विभितलोपाच्चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चे-  
न्द्रियेषु, कीदृशेषु ? पर्याप्तकेषु । तथा मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलद्विकरहिताः । केवलद्विकं तु  
केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपम् । शेषा अष्टाधुपयोगाः मंझिन्यपर्याप्तके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥९॥

अथ किंचिद्नपादेनोपयोगान् समर्थयन् संबन्धपूर्वकं लेश्यास्तेष्वेव दर्शयन्नाह—

(मल०) त एव पूर्वोक्तास्त्रय उपयोगाः ‘चक्षुर्युताः’ चक्षुर्दर्शनोपयोगसहिताः सन्तश्चत्वार  
उपयोगा भवन्ति, केषु ? इत्याह—‘चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु’ चतुरिन्द्रियेषु असंज्ञिषु च

पर्याप्तकेषु । 'मणनाण' इत्यादि संज्ञिनि अपर्याप्ते मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनमेव लज्ञानकंवलदर्शन-  
रूपकेवलद्विकरहिताः शेषा अष्टावपि ज्ञानात्रिकाज्ञानत्रिकाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनरूपा उपयोगा  
भवन्ति ॥९॥

मव्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविह सन्निमि ।

चउरो पढमा बायर अपजत्ते तिन्नि सेसेपु ॥१०॥

(द्वारि०) व्याख्य.- सर्वे उपयोगाः 'संज्ञिषु' पर्याप्तत्विति शेषः । एवं प्रतिपादिता  
जीवस्थानेषूपयोगाः, इतो लेश्यास्तेष्वेव प्रतिपाद्यन्त इति शेषः । 'छावि दुविह सन्निमि' इति  
षडपि कृष्णलेश्याद्याः । क ? द्विविधे संज्ञिनि' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे । तथा 'चत्तस्रः प्रथमाः'  
कृष्णनीलकापोततैजसीरूपाः । क ? बादर' इति बादरेऽपर्याप्ते देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुपृत्प-  
न्नस्य तेजोलेश्यायाः सद्भावात् । तथा 'त्तिस्रः' प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्याः, केषु ? शेषेषु  
प्राक्तनद्विविधसंशयपर्याप्तबादरवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानेषु । इति गाथार्थः ॥१०॥

इति प्रतिपादिता लेश्या जीवस्थानेषु, सांप्रतं तेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्ट-  
यमेकगाथया प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) सर्वेऽपि द्वादशाप्युपयोगाः संज्ञिषु पर्याप्तेषु द्रष्टव्याः ते च क्रमेणैव न तु  
युगपत्, उपयोगानां तथाजीवस्वभावत्वतो यौगपद्यासंभवात् । तदुक्तम्—“समए द्वा णुव-  
आगा” इति । तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषूपयोगाः । 'एत्तो' इति इत ऊर्ध्वमेतेष्वेव लेश्या  
अपि निरूप्यन्ते 'छावि दुविह सन्निमि' इति द्विविधेऽपि संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे षडपि  
कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लरूपा लेश्या भवन्ति । 'चउरो पढमा बायर अपजत्ते' इति  
बादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तके प्रथमाश्चत्तस्रः कृष्णनीलकापोततैजोरूपा भवन्ति । तेजोलेश्या कथमवा-  
प्यते ? इति चेदुच्यते, यदा देवमवाच्युतः सन् कश्चनापि बादरैकेन्द्रियतया भूदकतरुषु मध्ये  
समृत्पद्यते तदा तस्य घण्टालालान्यायेन साऽवाप्यते इत्यदोषः 'त्तिस्रः सेसेपु' इति ।  
अत्र प्रथमा इत्यनुवर्तते । प्रथमास्तिस्रः कृष्णनीलकापोताख्याः शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंशयपर्याप्त-  
बादरैकेन्द्रियवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानकेषु लभ्यन्ते नान्याः. तेषां सदैवाशुभपरिणामभावात् ।  
शुभपरिणामरूपाश्च तेजोलेश्यादयः । इति ॥१०॥

तदेवं जीवस्थानकेषु लेश्या अभिधाय, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थान-  
चतुष्टयमभिधित्सुराह—

सत्तट्ट १ अट्ट २ सत्तट्ट ३ अट्ट ४ बंधु १दयु २दीरणा ३संता'४ ।

तेरससु जीवठाणंसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

१ "सत्ता" इत्यपि पाठः ।

के ते ? इत्याह—अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणम् । ननु स्पर्शनेन्द्रियावरण-  
क्षयोपशमसंभवाद्भवतु मतिरेकेन्द्रियाणां, यनु श्रुतं तत्कथमप्यपद्यते ? भापालब्धिभ्रोत्रेन्द्रियलब्धि-  
विकलत्वात्, भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिमतो हि तदुपपद्यते नाऽयस्य । तदुक्तम्—“भाषस्युयं  
भासासोयलद्धिणो जुञ्जए न इयरस्स । भासाभिमुहस्स सुयं, सोऊण व जं  
ह्विज्जाहि ॥१॥” उच्यते, इह तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसंज्ञा विद्यते, तथा सूत्रेऽभिधानात् ।  
संज्ञा चाभिलाष उच्यते । यदुक्तमावश्यकटीकायाम्—“आहारसंज्ञा आहाराभिलाषः  
क्षुद्धेवनीयप्रभवः स्वल्वात्मपरिणामविशेषः” इति । अभिलाषश्च मर्मैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि  
तद्यदीदमवाप्यते ततः समीचीनं भवति इत्येवंशब्दार्थोन्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूतप्रतिनिय-  
तवस्तुप्राप्त्यध्यवसायरूपः, स च श्रुतमेव शब्दार्थालोचनानुसारित्वात् श्रुतस्य चैतल्लक्षणत्वात्, उक्तं  
च—इंद्रियमणोनिमित्तं, जं विज्ञाणं सुयाणुसारेण । निययत्थोत्तिसमत्थं तं भाष-  
सुयं मई सेसं ॥१॥” इति ‘सुयाणुसारेण’ इति शब्दार्थालोचनानुसारेण केवलमेकेन्द्रिया-  
णामव्यक्त एव कश्चनापि अनिर्वचनीयः शब्दार्थोन्लेखो द्रष्टव्यः, अन्यथाऽऽहार.दिसंज्ञानुपपत्तेः ।  
यद्रुक्तं भापालब्धिभ्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वादेकेन्द्रियाणां श्रुतमनुपपन्नमिति, तदप्यसमीक्षि-  
ताभिधानम्, तथाहि—बकुल.देः स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियविकलत्वेऽपि किमपि सूक्ष्मं  
भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमस्युपगम्यते, “पच्चैदिउ एव (ओ उ) षउलो” इत्यादिजिनवचन-  
प्रामाण्यात्, तथा भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतमपि भविष्यति,  
अन्यथा आहारादिसंज्ञानुपपत्तेः, तदुक्तम्—“जह सुद्धुमं भाविंदियणाणं वद्विंदियाण  
घिरहे षि । वच्चसुयाभाषंमि षि, भाषसुयं पत्थिषाईणं ॥१॥” इति कृतं प्रसंगेन  
गमनिकामात्रफलत्वात्प्रयासस्य ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।

मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्नि अपजत्ते ॥९॥

(हारि०) व्याख्या—ते पूर्वगाथोक्तास्त्रय उपयोगाः ‘चक्षुर्युताः’ चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्वि-  
ताश्चत्वारो भवन्तीत्यर्थः । केषु ? ‘चउरिंदियअसन्नि’ इति त्रिभवितलोपाच्चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चे-  
न्द्रियेषु, कीदृशेषु ? पर्याप्तकेषु । तथा मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलद्विकरहिताः । केवलद्विकं तु  
केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपम् । शेषा अष्टावुपयोगाः मंझिन्यपर्याप्तके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥९॥

अथ किंचिदूनपादेनोपयोगान् समर्थयन् संबन्धपूर्वकं लेश्यारतेष्वेव दर्शयन्माह—

(मल०) त एव पूर्वोक्तास्त्रय उपयोगाः ‘चक्षुर्युताः’ चक्षुर्दर्शनोपयोगसहिताः सन्तश्चत्वार  
उपयोगा भवन्ति, केषु ? इत्याह—‘चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु’ चतुरिन्द्रियेषु असंज्ञिषु च

पर्याप्तकेषु । 'मगनाण' इत्यादि संज्ञिनि अपर्याप्ते मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनमेवलज्ञानकंवलदर्शन-  
रूपकेवलद्विकरहिताः शेषा अष्टावपि ज्ञानात्रिकाज्ञानत्रिकाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनरूपा उपयोगा  
भवन्ति ॥९॥

मब्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविह सन्निमि ।

चउरो पढमा बायर अपजत्ते तिन्नि सेसेम् ॥१०॥

(हारि०) व्याख्य.- सर्वे उपयोगाः 'संज्ञिष्ठ' पर्याप्तध्विति शेषः । एवं प्रतिपादिता  
जीवस्थानेषूपयोगाः, इतो लेश्यास्तेष्वेव प्रतिपाद्यन्त इति शेषः । 'छावि दुविह सन्निमि' इति  
षडपि कृष्णलेश्याद्याः । क १ द्विविधे संज्ञिनि' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे । तथा 'चतस्रः प्रथमाः'  
कृष्णनीलकापोततैजसीरूपाः । क १ बादर' इति बादरेऽपर्याप्ते देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुपृत्प-  
न्नस्य तेजोलेश्यायाः सद्भावात् । तथा निम्नः' प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्याः, केषु १ शेषेषु  
प्राक्तनद्विविधसंशयपर्याप्तबादरवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानेषु । इति गाथार्थः ॥१०॥

इति प्रतिपादिता लेश्या जीवस्थानेषु, संप्रतं तेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्ट-  
यमेकगाथया प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) सर्वेऽपि द्वादशाप्युपयोगाः संज्ञिषु पर्याप्तेषु द्रष्टव्याः ते च क्रमेणैव न तु  
युगपत्, उपयोगानां तथाजीवस्वभावत्वतो यौगपद्यासंभवात् । तदुक्तम्—“सम्प दो णुव-  
धागा” इति । तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषूपयोगाः । 'एत्तो' इति इत ऊर्ध्वमेतेष्वेव लेश्या  
अपि निरूप्यन्ते 'छावि दुविह सन्निमि' इति द्विविधेऽपि संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तलक्षणे षडपि  
कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लरूपा लेश्या भवन्ति । 'चउरो पढमा बायर अपजत्ते' इति  
बादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तके प्रथमाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा भवन्ति । तेजोलेश्या कथमवा-  
प्यते १, इति चेदुच्यते, यदा देवमवाच्युतः सन् कश्चनापि बादरैकेन्द्रियतया भूदकतरुषु मध्ये  
समुत्पद्यते तदा तस्य षण्डालालान्यायेन साऽवाप्यते इत्यदोमः 'तिन्नि सेसेम्' इति ।  
अत्र प्रथमा इत्यनुवर्तते । प्रथमास्तिस्रः कृष्णनीलकापोताख्याः शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंशयपर्याप्त-  
बादरैकेन्द्रियवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानकेषु लभ्यन्ते नान्याः. तेषा सदैवाशुभपरिणामभावात् ।  
शुभपरिणामरूपाश्च तेजोलेश्यादयः । इति ॥१०॥

तदेवं जीवस्थानकेषु लेश्या अभिधाय, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थान-  
चतुष्टयमभिधित्सुराह—

सत्तट्ट १ अट्ट २ सत्तट्ट ३ अट्ट ४ बंधु १ दयु २ दीरणा ३ संता ४ ।

तेरससु जीवठाणेषु सन्नपजत्ताए ओधो ॥११॥

के ते ? इत्याह—अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणम् । ननु स्पर्शनेन्द्रियावर्ण-  
क्षयोपशमसंभवाद्भवतु मतिरेकेन्द्रियाणां, यत्तु श्रुतं तत्कथमुपपद्यते ? भाषालब्धिश्रोत्रेन्द्रियलब्धि-  
विकलत्वात्, भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिमतो हि तदुपपद्यते नाप्यस्य । तदुक्तम्—“भाषस्युं  
भासासोयलद्धिणो जुञ्जए न इयरस्स । भासाभिमुहस्स सुयं, सोऊण व जं  
इविज्जाहि ॥१॥” उच्यते, इह तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसंज्ञा विद्यते, तथा सूत्रेऽभिधानात् ।  
संज्ञा चाभिलाष उच्यते । यदुवतमावश्यकटीकायाम्—“आहारसंज्ञा आहाराभिलाषः  
क्षुध्रेदनीयप्रभयः खल्वात्मपरिणामविशेषः” इति । अभिलाषश्च ममैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि  
तद्यदीदमवाप्यते ततः समीचीनं भवति इत्येवंशब्दार्थोल्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूतप्रतिनिय-  
तवस्तुप्राप्त्यध्यवसायरूपः, स च श्रुतमेव शब्दार्थालोचनानुसारित्वान् श्रुतस्य चैतल्लक्षणत्वात्, उक्तं  
च—इन्द्रियमणोनिमित्तं, जं विज्जाणं सुयाणुसारेण । निययत्थोत्तिसमत्थं तं भाष-  
सुयं मई सेसं ॥१॥” इति ‘सुयाणुसारेण’ इति शब्दार्थालोचनानुसारेण केवलमेकेन्द्रिया-  
णामव्यक्त एव कश्चनापि अनिर्वचनीयः शब्दार्थोल्लेखो द्रष्टव्यः, अन्यथाऽऽहारदिसंज्ञानुपपत्तेः ।  
यद्गुक्तं भाषालब्धिश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वादेकेन्द्रियाणां श्रुतमनुपपन्नमिति, तदप्यसमीक्षि-  
ताभिधानम्, तथाहि—ब्रह्मलदेः स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियविकलत्वेऽपि किमपि सूक्ष्मं  
भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमभ्युपगम्यते, “पच्चैदिउ ध्व (ओ उ) षउलो” इत्यादिजिनवचन-  
प्रामाण्यात्, तथा भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतमपि भविष्यति,  
अन्यथा आहारादिसंज्ञानुपपत्तेः, तदुक्तम्—“जह सुहुमं भाविंदियणाणं दव्विदियाण  
विरहे वि । दव्वसुयाभाषंमि वि, भावसुयं पत्थिवाईणं ॥१॥” इति कृतं प्रसंगेन  
गमनिकामात्रफलत्वात्प्रयासस्य ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।

मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्नि अपजत्तो ॥९॥

(हारि०) व्याख्या—ते पूर्वगाथोक्तास्त्रय उपयोगाः ‘चक्षुर्युताः’ चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्वि-  
ताश्चत्वारो भवन्तीत्यर्थः । केषु ? ‘चउरिंदियअसन्नि’ इति त्रिभक्तिलोपाश्चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चे-  
न्द्रियेषु, कीदृशेषु ? पर्याप्तकेषु । तथा मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलद्विकरहिताः । केवलद्विकं तु  
केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपम् । शेषा अष्टानुपयोगाः मंझिन्यपर्याप्तके भवन्ति । इति गार्थः ॥९॥

अथ किंचिद्नपादेनोपयोगान् समर्थयन् संवन्धपूर्वकं लेश्यास्तेष्वेव दर्शयन्नाह—

(मल०) त एव पूर्वोक्तास्त्रय उपयोगाः ‘चक्षुर्युताः’ चक्षुर्दर्शनोपयोगसहिताः सन्तश्चत्वार  
उपयोगा भवन्ति, केषु ? इत्याह—‘चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु’ चतुरिन्द्रियेषु असंज्ञिषु च

पट्ट ६, वेदनीयायुर्मोहवर्जाः पञ्च ५, नामगोत्रे एव द्वे २, इति पञ्चप्रकारोदीरणा ५ । यत्ता पुनरुदयवत् । इति गाथार्थः ॥११॥

इत्युक्तानि जीवस्थानेषु गुणस्थानकादीन्यष्टौ पदानि, सांप्रतं मार्गणास्थानानि प्ररूपय-  
न्नाह—

(मल०) सप्त वाऽष्टौ वा सप्ताष्टाः, सप्ताष्टाश्चाष्टौ चेत्यादिवृन्दः । बन्धोदयादिपदानामपि  
द्वन्द्वः । ततः षष्ठीनत्पुरुषसमासः । समाननिर्देशत्वाच्चात्र यथासंख्यम्, एतदुक्तं भवति—संज्ञि-  
पर्याप्तवर्जितेषु शेषेषु त्रयोदशसु जीवस्थानकेषु बन्धः सप्तानामष्टानां वा कर्मणां ज्ञातव्यः ।  
तथाहि—यदाऽनुभूयमानमवायुषस्त्रिभागनवभागादिरूपे शेषे सति परमवायुर्वर्धयते, तदाऽष्टाना-  
मपि कर्मणां बन्धः । शेषकालं त्वायुषो बन्धाभावात्सप्तानामेव उदयः पुनरेतेषु त्रयोदशसु जीव-  
स्थानकेषु सर्वकालमष्टानामेव कर्मणाम् । यतः सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणामु-  
दयोऽवाप्यते, एतेषु च जीवस्थानकेषु उत्कर्षतोऽपि यथासंभवमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकसंभव  
इति । उदीरणा सप्तानामष्टानां वा । तत्र यदाऽनुभूयमानमवायुरुदयावलिकान्तः प्रविष्टं भवति  
तदा सप्तानाम्, अनुभूयमानमवायुषोऽनुदीरणात्, आवलिकावशेषस्योदीरणानर्हत्वात् । उदीरणा  
हि उदयावलिकावहिवर्तिनीभ्यः स्थितिभ्यः सकाशात्कपायसहितेनासहितेन वा योगकरणेन  
दलिकमाकृष्योदयसमयप्राप्तेन दलिकेन सहानुभवनम् । तथा चोक्तम्—“उदयावलि-  
याहिरिच्छिठिर्हिनो कसायसहियासहिएणं जोगकरणेणं दलियमाकृष्टिहय पत्त-  
दलिएण समं भणु भवणमुदीरणा” इति । ततः कथमावलिकागतस्योदीरणा भवति ?  
इति, न च परमवायुषस्तदानीमुदीरणासंभवस्तस्योदयाभावात्, अनुदितस्य चोदीरणानर्ह-  
त्वात् । शेषकालं त्वष्टानामुदीरणेति । सत्ताऽप्येतेषु जीवस्थानकेष्वष्टानामपि कर्मणां द्रष्ट-  
व्या । तथाहि—अष्टानामपि कर्मणां सत्ता उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावदनुवर्तते । एते च  
जीवा उत्कर्षतोऽपि यथासंभवमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकवर्तिन एवेति । ‘सन्निपञ्चसए  
ओघो’ इति संज्ञिनि पर्याप्ते ओघः, सामान्यं द्रष्टव्यम् । तच्च यद्यप्यग्रे स्वयमेवाचार्यो गुण-  
स्थानकेषु बन्धादिमार्गणायामभिधास्यति तथाऽपीह स्थानाऽशून्यार्थे संक्षेपतः किंचिदुच्यते—  
तत्र सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकादवर्गवर्तिनो यथासंभवं यदायुर्वर्धन्ति तदाऽष्टानामपि कर्मणां  
बन्धकाः शेषकालं तु सप्तानाम् । सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकवर्तिनस्तु मोहायुर्वर्जानां षण्णां कर्म-  
णाम् । उपशान्तमोहादयः पुनः सयोगिकेवल्लिपर्यन्ताः सातवेदनीयस्यैवेकस्येति । तथा सूक्ष्म-  
संपरायगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणामुदयः । उपशान्तमोहगुणस्थानके क्षीणमोहगुणस्था-  
नके च मोहनीयवर्जानां सप्तकर्मप्रकृतीनाम् । सयोगिकेवल्लिगुणस्थानकेऽयोगिकेवल्लिगुणस्थानके

(हारि०) व्याख्या-सप्ताष्टौ चाष्टौ च सप्ताष्टौ चाष्टौ च सप्ताष्टाष्टसप्ताष्टाष्टौ । एत-  
त्संख्यानि कानि भवन्ति ? इत्याह-‘बंधुधयुदीरणा 'संता' इति बन्धश्च उदयश्च उदीरणा च  
संज्ञ बन्धोदयोदीरणा संति भवन्तीति शेषः । क ? इत्याह-‘अघोदशसु जीवस्थानेषु’  
सूक्ष्मापर्याप्तादिषु । तथा ‘सन्निपञ्जत्तए ओघो’ इति संज्ञिपर्याप्ते पर्यन्तवर्तिनि चतुर्दशजीव-  
स्थानके ओघः सामान्यं भवति । इति गाथाऽक्षरघटना । भावना त्वेवम्-सप्ताष्टुर्वर्जाः प्रकृतयो-  
ऽष्टौ तद्युवता बन्धे । तथाऽष्टाबुदये । तथा सप्ताष्टौ कथितस्वरूपा उदीरणायाम् ।  
तथाऽष्टौ सत्तायाम् । इति यथासंख्येन योजना कार्या । बन्धादीनां स्वरूपं त्विदम्-मिध्यात्वा-  
दिभिर्वन्धहेतुभिरञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्रकवन्निरन्तरं पुद्गलनिचिते लोके कर्मयोग्यवर्णाणापुद्गलैरात्म-  
नो बह्वययःपिण्डवदन्योऽन्यानुगमामेदात्मकः संबन्धो बन्धः । तेषां च यथास्वस्थितिवद्धानां  
कर्मपुद्गलानां करणविशेषकृते स्वाभाविके वा स्थित्यपचये सत्युदयसमयप्राप्तानां विपाकवेद-  
नमुदयः । करणानि पुनरिमान्युक्तानि । तथाहि-‘बंधण १ संक्रमण २ ध्वष्टणा ३ य  
धोवद्वृणा ४ उर्ध्वरण्या ५ । उवसामणा ६ निहृत्तो, ७ निकायणा ८ च स्ति  
करणाहं ॥१॥’ अस्याः सुखार्थं लेशतो व्याख्यानमिदम्-बन्धनं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरू-  
पम् १ । संक्रमणं प्रकृतेः प्रकृत्यन्तरनयनम् २ । उर्वर्तनं स्थितिरसद्वृद्धयपादनम् ३ । अपवर्तनं  
स्थितिरसहापनम् ४ । उदीरणाऽप्राप्तकालस्य कर्मदलिकस्योदये प्रवेशनम् ५ । उपशमना सर्व-  
करणायोग्यत्वसंपादनं, दर्शनत्रिके तु संक्रमणमेकं प्रवर्तते ६ । निधत्तिरुदयोदीरणासंक्रमरूपै-  
स्त्रिभिः करणैर्यदन्यथा कर्तुं न शक्यते ७ । निकाचना पुनः सर्वकरणायोग्यत्वमिति ८ । तथा  
कर्मपुद्गलानामेव करणविशेषजनितं स्थित्यपचये सत्युदयावलिकार्यां प्रवेशनमुदीरणा । बन्धसंक्र-  
माभ्यां लब्धात्मलाभानां कर्मणां निर्जरणसंक्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता ‘सन्निपञ्ज-  
त्तए ओघो’ इति । अस्य पदस्यार्थं स्वयमेव ग्रन्थकारो गुणस्थानकेषु बन्धादिमार्गणायामग्रे  
वक्ष्यति । स्थानाऽशून्यार्थं सामान्यतो, न गुणस्थानकयोजनया बन्धादिस्थानसंख्या गाथा-  
इयेनोच्यते-‘बन्धेऽष्ट सप्त णाडग ७ छविहममोहाड ६ इगविहं सायं १ । सतो-  
वयेसु अष्ट उ ८, सप्त अमोहा ७ चउ अधाई ॥१॥ अष्ट उदीरइ ८ सप्त उ, अणाड  
७ छविहमवेयणियआऊ ६ । णण अविणयमोहाडग ५ अफसाई नामगोत्तडुगं २  
॥२॥’ अयमर्थः-अष्टौ सर्वा अपि मूलप्रकृतयः ८, आयुर्वर्जाः सप्त ७, मोहायुर्वर्जाः षट् ६,  
एकमेव वेदनीयम्, इत्येवं चतुर्धा बन्धः । तथाऽष्टौ ‘तथैव ८, मोहवर्जाः सप्त ७, घातिकर्म  
वर्जाश्चतस्रः ४, इत्युदयस्त्रिधा । तथाऽष्टौ पूर्ववत् ८, आयुर्वर्जाः सप्त ७, आयुर्वेदनीयवर्जाः



षट् ६, वेदनीयायुर्मोहवर्जाः पञ्च ५, नामगोत्रे एव द्वे २, इति पञ्चप्रकारोदीरणा ५ । यत्ता पुनरुदयवत् । इति गाथार्थः ॥११॥

इत्युक्तानि जीवस्थानेषु गुणस्थानकादीन्यष्टौ पदानि, सांप्रतं मार्गणास्थानानि प्ररूपय-  
आह—

(मल०) सप्त वाऽष्टौ वा सप्ताष्टाः, सप्ताष्टाश्चाष्टौ चेत्यादिद्वन्द्वः । बन्धोदयादिपदानामपि द्वन्द्वः । ततः षष्ठीन्तपुरुषसमासः । समाननिर्देशत्वाच्चात्र यथासंख्यम्, एतदुक्तं भवति—संज्ञि-  
पर्याप्तवर्जितेषु शेषेषु त्रयोदशसु जीवस्थानकेषु बन्धः सप्तानामष्टानां वा कर्मणां ज्ञातव्यः ।  
तथाहि—यदाऽनुभूयमानभवायुषस्त्रिभागनवभागादिरूपे शेषे सति परमवायुर्वध्यते, तदाऽष्टाना-  
मपि कर्मणां बन्धः । शेषकालं त्वायुषो बन्धाभावात्सप्तानामेव उदयः पुनरेतेषु त्रयोदशसु जीव-  
स्थानकेषु सर्वकालमष्टानामेव कर्मणाम् । यतः सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणां-  
दयोऽवाप्यते, एतेषु च जीवस्थानकेषु उत्कर्षतोऽपि यथासंभवमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकसंभव  
इति । उदीरणा सप्तानामष्टानां वा । तत्र यदाऽनुभूयमानभवायुरुदयावलिकान्तः प्रविष्टं भवति  
तदा सप्तानाम्, अनुभूयमानभवायुषोऽनुदीरणात्, आवलिकावशेषस्योदीरणानर्हत्वात् । उदीरणा  
हि उदयावलिकाबहिर्वर्तिनीभ्यः स्थितिभ्यः सकाशात्कपायसहितेनासहितेन वा योगकरणेन  
दलिकमाकृष्योदयसमयप्राप्तेन दलिकेन सहानुभवनम् । तथा चोक्तम्—“उदयावलिय-  
बाहिरिष्टिर्द्विर्द्विनो कसायसहियासहिएणं जोगकरणेणं दलियमाकृष्य पस्त-  
वलिणण समं अणुभषणमुदीरणा” इति । ततः कथमावलिकागतस्योदीरणा भवति ?  
इति, न च परमवायुषस्तदानीमुदीरणासंभवस्तस्योदयाभावात्, अनुदितस्य चोदीरणानर्ह-  
त्वात् । शेषकालं त्वष्टानामुदीरणेति । सप्ताऽप्येतेषु जीवस्थानकेष्वष्टानामपि कर्मणां द्रष्ट-  
व्या । तथाहि—अष्टानामपि कर्मणां सप्ता उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावदनुवर्तते । एते च  
जीवा उत्कर्षतोऽपि यथासंभवमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकवर्तिन एवेति । ‘सन्निपञ्जस्तए  
धोघो’ इति संज्ञिनि पर्याप्ते ओषः, सामान्यं द्रष्टव्यम् । तच्च यद्यप्यग्रे स्वयमेवाचार्यो गुण-  
स्थानकेषु बन्धादिमार्गणायामभिधास्यति तथाऽपीह स्थानाऽशून्यार्थे संक्षेपतः किञ्चिदुच्यते—  
तत्र सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकादवर्गवर्तिनो यथासंभवं यदायुर्वध्नन्ति तदाऽष्टानामपि कर्मणां  
बन्धकाः शेषकालं तु सप्तानाम् । सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकवर्तिनस्तु मोहायुर्वर्जानां षण्णां कर्म-  
णाम् । उपशान्तमोहादयः पुनः सयोगिकेवलपर्यन्ताः सातवेदनीयस्यैवेकस्येति । तथा सूक्ष्म-  
संपरायगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणांमुदयः । उपशान्तमोहगुणस्थानके क्षीणमोहगुणस्था-  
नके च मोहनीयवर्जानां सप्तकर्मप्रकृतीनाम् । सयोगिकेवलगुणस्थानकेऽयोगिकेवलगुणस्थानके

च घातिकर्मचतुष्टयरहितशेषकर्मचतुष्टयेति । तथा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्प्रभृति यावत्प्रमत्त-  
संयतगुणस्थानकं तावद्यदि अनुभूयमानमवायुरावलिकावशेषं न भवति तदाऽष्टानामपि कर्मणा-  
मुदीरणा यदा त्वनुभूयमानमवायुरावलिकावशेषं तदा तथास्वभावत्वेन तरयानुदीर्यमाणत्वात्स-  
प्तानामुदीरणा । सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके तु सदैवाष्टानामेव कर्मणामुदीरणा, आयुष आव-  
लिकावशेषे सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकस्यैवाभावात् । तथाऽप्रमत्तगुणस्थानकात्प्रभृति यावत्स्व-  
श्ममंपरायगुणस्थानकस्यावलिकावशेषो न भवति तावद्देवदनीयायुर्वर्जानां पण्णां कर्मणामुदीरणा  
तदानीमतिविशुद्धत्वेन वेदनीयायुरुदीरणायोग्याध्यवसायाभावात् । आवलिकावशेषे तु मोहनी-  
यस्याप्यावलिकाप्रविष्टत्वेनोदीरणाया असंभवाज्ज्ञान १ दर्शनावरण २ नाम ३ गोत्रा ४ऽन्त-  
राया ५ णामेवोदीरणा । एतेषामेव चोपशान्तमोहगुणस्थानकेऽपि उदीरणा । क्षीणमोहगुण-  
स्थानकेऽप्येतेषामेव यावदावलिकामात्रावशेषो न भवति । आवलिकावशेषे तु ज्ञानावरणदर्शना-  
वरणान्तरायाणामप्यावलिका प्रविष्टत्वान्नोदीरणेति द्वयोरेव नामगोत्रयोरुदीरणा । 'एवं सयो-  
गिकेवल्लिगुणस्थानकेऽपि । अयोगिकेवल्लिगुणस्थानके तु वर्तमानो जीवः सर्वथाऽनुदीरक एव ।  
ननु तदानीमप्येव सयोगिकेवल्लिगुणस्थानक इव भवोपग्राहिकर्मचतुष्टयोदये वर्तते ततः कथं तदापि  
तयोर्नामगोत्रयोरुदीरको न भवति ? इति, नैष दोषः, उदये सत्यपि योगसव्यपेक्षत्वाद्दुदीरणाया  
स्तदानीं च तस्य योगासंभवादिति । तथा उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणां  
सत्ता । क्षीणमोहावस्थायां तु मोहरहितानां सप्तानां कर्मणाम् । सयोगिकेवल्ल्याद्यवस्थायां चाघा-  
तिकर्मणां चतुर्णाम् । इति ॥११॥

तदेवं जीवस्थानकेषु गुणस्थानकाद्यभिधाय साम्प्रतं मार्गणास्थानेषु जीवस्थानकादि  
विवक्षुस्तान्येव तावन्निर्दिष्टमाह—

एत्तो गह १ इंदिय २ काय ३ जोय ४ वेण ५ कसाय णाणेषु ।

संजम ८ दंसण ९ लेसा १० भव ११ सम्मे १२ सन्नि १२ आहारे १४॥१२॥

(हारि०) व्याख्या—'इतः' जीवस्थानविचारानन्तरं मार्गणास्थानान्युच्यन्त इति शेषः ।  
तान्येवाह—'गान्निद्रयकाययोगवेदे' इति समाहारद्वन्द्वः । 'कषायज्ञानेषु' अत्रेतरेतरद्वन्द्वः  
'सयमदर्शनलेख्याभव्यसम्यक्त्वे' इत्यत्रापि समाहारद्वन्द्वः । 'सज्ञा.इया) हारे' इत्य-  
त्रापि स एव । इति गाथार्थः ॥१२॥

इति मूलमेदापेक्षया मार्गणास्थानानि चतुर्दश १४, उत्तरमेदापेक्षया तु द्विषष्टिः, तत्र-  
त्तिपादनाय गाथापञ्चकमाह—

(मल०) 'इतः' जीवस्थानेषु गुणस्थानकाद्यभिधानादनन्तरं मार्गणास्थानकेषु जीवस्थानाद्युच्यत इति शेषः । तानि च मार्गणास्थानान्यमूनि- 'गइ' इत्यादि । तत्र गम्यते तथाविध-  
 कर्मसचिवैर्जीवैः प्राप्यते गतिर्नारक्तत्वादिपर्यायपरिणतिः, सा च चतुर्धा-नरकगतिः १ निर्यग्गतिः  
 २ मनुष्यगतिः ३ देवगतिश्च ४ इदिय.' इति इन्द्रनादिन्द्र आत्मा ज्ञानैश्वर्ययोगात्तस्येदमिन्द्रि-  
 यम्, तच्च स्पर्शन १ रसन २ घ्राण ३ चक्षुः ४ श्रोत्र ५ भेदात्पञ्चधा । इन्द्रियग्रहणेन च  
 तदुपलक्षिता एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादयो गृह्यन्ते तेष्वेवाग्रे जीवस्थानकादीनां चिन्तयिष्यमाणत्वात् ।  
 'काय' इति चीयत इति कायः, 'चित्युपसमाधानावासदेहे कश्चादेः' इति घञ्प्रत्ययः.  
 चकारस्य च ककारः, स च षोढा-पृथिवी १ अप् २ तेजो ३ वायु ४ वनस्पति ५ त्रस ६  
 काययोगात् । 'जोग' इति योगशब्दः प्राप्तिरूपितशब्दार्थः, स च मनो १ वाक् २ काय ३  
 सहकारिभेदात्संक्षेपतस्त्रिधा । 'वेद' इति वेद्यत इति वेदः, स च त्रिधा-स्त्रीवेदः १ पुरुषवेदः २  
 नपुंसकवेदश्च ३ । तत्र स्त्रियाः पुंस्यमिलाषः स्त्रीवेदः १ । पुंसः स्त्रियाममिलाषः पुंवेदः २ ।  
 नपुंसकस्योभयं प्रत्यमिलाषो नपुंसकवेदः ३ । 'कसाय' इति कष्यन्ते हिंस्यन्ते परस्परम-  
 स्मिन् प्राणिन इति कषः-संसारः तमयन्ते गच्छन्त्येभिर्जन्तव इति कपायाः क्रोध १ मान २  
 माया ३ लोभाः ४ 'णाण' इति ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम्-सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेष-  
 ग्रहणात्मकोऽवबोधः । तच्च पञ्चधा, तद्यथा-मतिज्ञानं १ श्रुतज्ञानं १ अवधिज्ञानं ३ मनःपर्या-  
 यज्ञानं ४ केवलज्ञानं ५ च । ज्ञानग्रहणेन चाज्ञानमपि तत्प्रतिपक्षभूतमपलक्ष्यते । तच्च त्रिविधम्-  
 मत्यज्ञानं १ श्रुताज्ञानं २ विभङ्गज्ञानम् ३ च । वक्ष्यति च ज्ञानभेदाभिधानावसरे- 'मइसुय-  
 ओहोणकेवलाणि मइसुयअनाणविष्मंगा' इति । 'संजम' इति संयमनं संयमः सम्यगु-  
 परमः, 'यमः संन्युपवेः' इति भावेऽच्प्रत्ययः, चारित्रमित्यर्थः । तच्च पञ्चधा सामायिकं १  
 छेदोपस्थापनं २ परिहारविशुद्धिकं ३ सूक्ष्मसंपरायं ४ यथाख्यातं ५ च । संयमग्रहणेन च तत्प्र-  
 तिपक्षभूतो देशसंयमोऽसंयमश्च सूच्यते । वक्ष्यति च 'सामइयहेचपरिहारसुक्षुमअहस्वाय-  
 वेसजयअजय।' इति । 'दंसण' इति दृष्टिर्दर्शनं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यावबोधः ।  
 तच्चतुर्विधम्, तद्यथा-चक्षुर्दर्शनं १ अचक्षुर्दर्शनं २ अवधिदर्शनं ३ केवलदर्शनं च ४ । 'लेसा'  
 इति लेश्या प्राङ्गिरूपितशब्दार्था, सा षोढा-कृष्णलेश्या १ नीललेश्या २ कापोतलेश्या ३ तेजो-  
 लेश्या ४ पद्मलेश्या ५ शुक्ललेश्या ६ (च) । 'भव' इति भव्यः-तथारूपानादिपारिणामिक-  
 भावात्सिद्धिगमनयोग्यः । भव्यग्रहणेन च तत्प्रतिपक्षभूतोऽभव्योऽपि गृह्यते । यद्वक्ष्यति भव्य-  
 द्वारभेदव्याख्यायाम्- 'भव्वाभव्व' इति । 'सम्मै' इति सम्यक्त्वम् । सम्यक्शब्दः प्रशंसा-  
 र्थोऽविरुद्धार्थो वा । सम्यग् जीवस्तद्भावः सम्यक्त्वम्, प्रशस्तो भोक्ताविरोधी वा आत्मधर्म इति  
 यावत् । तच्च त्रिधा-क्षयोपशमिकं १ औपशमिकं २ क्षायिकं ३ च । उक्तं च "सम्मत्तपि य

तिविहं खओवसमियं तहोवसमियं च । खइयं च" इति । सम्यक्त्वग्रहणेन च तत्प्रति-  
पक्षभूतं मिश्रं १ सास्वादनं २ मिथ्यात्वं ३ च परिगृह्यते । तथा चैतद् द्वारं व्याख्यानयन् वक्ष्यति-  
"खओवसमखइपउषसमियमोससासाणं मिच्छो य" इति । 'सन्नि' इति संज्ञी प्राङ्नि-  
दिष्टस्वरूपः, तत्प्रतिपक्षभूतः सर्वोऽप्येकेन्द्रियादिरमंज्ञी, सोऽपि संज्ञिग्रहणेन सूचितो द्रष्टव्यः, ।  
'भाहार' इति आहारयते आंजोले,मप्रक्षेपाहाराणामन्यतममाहाराणामित्याहारकः, तत्प्रतिपक्ष-  
भूतोऽनाहारकः ॥१२॥

तदेवमुक्तानि मार्गणास्थानानि, साम्प्रतमेतेषामेव विनेयजानानुग्रहायोक्तस्वरूपानेव मेदान्  
दर्शयन्नाह—

सुरनरतिरिनरयगई ४, 'इगवितिचउरिंदिया य पंचिंदी ५ ।

पुढवीआऊतेऊवाऊवणसइतसा काया ६ ॥ १३ ॥

(हारि०) व्याख्या—सुराश्च भवनपत्याद्याः, नराश्च कर्मभूमिजादयः, तिर्यञ्चश्च जलचरा-  
दयः, नारकाश्च रत्नप्रभाद्याः, अत्र समासस्तेषां गतयः सुरनरतिर्यग्नारकगतयश्चतस्रः ४ । तथैक-  
द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियश्चेति पञ्च । पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिव्रसाः कायाः षट् । इति  
प्राग्वत्सर्वपदेषु समासः कार्यः । इति गार्थार्थः ॥१३॥

मणव'इकायाजोगा ३. इत्थी पुरिसो 'नपुंसगो वेया ४ ।

कौहो माणो माया, लोभो चउरो कसायत्ति ४ ॥१४॥

(हारि०) व्याख्या—मनोवाकाययोगस्त्रयः । स्त्री पुरुषो नपुंसकमिति वेदास्त्रयः । क्रोधो  
मानो माया लोभ इति चत्वारः कषायाः । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । इति गार्थार्थः ॥१४॥

(मल०) 'सुरगाहा' 'मणगाहा' एते निगदसिद्धे ॥१३॥१४॥

मइसुयओहीमणके—बलाणि मइसुयअनाणविउभंगा ८ ।

सामइयछेयपरिहा—रसुहुमअइखायदेमजयअजया ७ ॥१५॥

(हारि०) व्याख्या—मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकत्वलानीति पञ्च ज्ञानानि । मतिश्रुताज्ञान-  
विभङ्गनामानि त्रीण्यज्ञानानि न्युपलक्षणत्वाद्गुह्यन्ते । एवमन्यत्रापि यत्र विपक्षभूतं पदं दृश्यते तत्रा-  
यमेव हेतुर्वक्तव्य इति । अत एवोत्तरमेदापेक्षया द्विपष्टिरित्युक्तं प्रागिति । सामायिकच्छेदोप-  
स्थापनीयपरिहारविशुद्धिकृद्भ्रमसंपराययथाख्यातदेशसंयतासंयताख्यानि सप्त पदानि । इति  
गार्थार्थः ॥१५॥

१ "इगि" इति जे० । २ "पंचिंदी" इति जे० । ३ "वयः" इत्यपि पाठः । ४ "नपुंसगो" इत्यपि  
पाठः । ५ "न्यप्यु०" इति जे० ।

(मल०) मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलक्षणानि पञ्च ज्ञानानि । मतिश्रुताज्ञानविभङ्गलक्षणानि च त्रीणि अज्ञानानि । तत्र “मनज्ञाने” मननं मतिः । यद्वा मन्यते इन्द्रियमनोद्वारेण नियतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनयेति मतिः, योग्यदेशावस्थितवस्तुविषय इन्द्रियमनोनिमित्तकोऽवगमविशेषः । तथा श्रवणं श्रुतम्, अभिलाषावितार्थग्रहणप्रत्यय उपलब्धिविशेषः । एवमाकारं वस्तु जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थं घटशब्दामिलाप्यम्, इत्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारणसमानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनासुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तो ज्ञानविशेष इति यावत् । तदुक्तम्—“ज पुण तिकालविसयं, भागमगथाणुसारि विव्वाणं । इन्द्रियमणोनिमित्तं, तं सुयनाणं जिणा षिति ॥१॥” तथाऽवशब्दोऽधःशब्दार्थः । ततश्च अव=अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः । यद्वाऽवधि=र्मर्यादा रूपिण्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः । तथा परि=सर्वतो भावे अवनं अवः । “तुदादिभ्योऽनकौ” इत्यधिकारे, “अकितो वा” इत्यनेनाकारः प्रत्ययः । यथा भवनं भव इत्यादिषु अवनं गमनं वेदनमिति पर्यायाः । परि=अवः पर्यवः, मनसि मनसो वा पर्यवः मनःपर्यवः, सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः । इदं च मनःपर्यवज्ञानमर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्तिसंज्ञिमनोगतद्रव्यालम्बनं मनःपर्यायज्ञानमित्येवमप्येतदभिधीयते । तत्र मनसः पर्याया बाह्यवस्त्वालोचनप्रकारा घर्मा मनःपर्यायाः तेषु तेषां वा संबन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानमिति पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराच्च मन इत्युक्तेऽपि मनःपर्यव इति मनःपर्यायज्ञानमिति व्याख्यातम् । तथा केवलमेकं, मत्यादिज्ञानरहितत्वात् । “उप्पणंमि अणंते, नडुंमि उ छाउमस्थिए नाणे ।” इतिवचनात् । शुद्धं वा केवलं, तदावरणमलकलङ्कापगमात् । सकलं वा केवलं, तत्प्रथमतयैवाशेषतदावरणविगमतः संपूर्णोत्पत्तेः । असाधारणं वा केवलं, अनन्यसदृशत्वात् । अनन्तं वा केवलं ज्ञेयानन्तत्वात् । यथावस्थिताशेषभूतमवज्ञाविभावस्वभावावभासि ज्ञानमितिभावना । तथा मतिश्रुतावधिज्ञानान्येव मिथ्यात्वकल्पिततया यथाक्रमं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानव्यपदेशभास्त्रि भवन्ति । तदुक्तमाद्यत्रयं ज्ञानमज्ञानमपि भवति मिथ्यात्वसंयुक्तमिति । ‘विभंगे’ इति विपरीतो मङ्गः परिच्छिन्निप्रकारी यस्मिंस्तद्विमङ्गम्, विपर्यस्तमवधिज्ञानम् ‘सामङ्ग्य’ इत्यादि । समानां ज्ञानदर्शनचरित्राणामायः समायः, समाय एव सामायिकम् । विनयादेराकृतिगणतया “विनयादिभ्यः” इति स्वार्थे इकण् । तच्च सर्वसावद्यत्रितिरूपं चारित्रम् । यद्यपि च सर्वमपि चारित्रमविशेषतः सामायिकं तथाऽपि च्छेदादिविशेषैर्विशेष्यमाणमर्थतः शब्दान्तरतश्च नानात्वं भजते । प्रथमं पुनरविशेषणात्सामान्यशब्द एवावतिष्ठते । तच्च द्विधा—इत्वरं यावत्कथिकं च । तत्रेत्वरं भरतैरावतेषु प्रथमपश्चिमतीर्थकरतीर्थेऽनारोपितव्रतस्य शौचकस्य विज्ञेयम् । यावत्कथिकमामवचति । तच्च भरतैरावतभाविमप्यमद्राविंशतितीर्थकरविदेहतीर्थकरतीर्थान्तर्गतसाधूनामवसेयम्,

तेषामुत्थापनाया अभावात् । 'छेद' इति च्छेदोपस्थापनम् । तत्र च्छेदः पूर्वपर्यायस्य, उपरधा-  
पना च महाव्रतेषु यस्मिन् चारित्रे तच्छेदोपस्थापनम् । तच्च द्विधा—सातिचारं निरतिचारं च ।  
तत्र निरतिचारं यदित्तरसामायिकवतः शैक्षकस्यारोप्यते तीर्थान्तरसंक्रान्तौ वा, यथा पार्श्वना-  
थतीर्थाद्विर्धमानस्वामितीर्थं संक्रामतः पञ्चयामधर्मप्रतिपत्तौ । सातिचारं यन्मूलगुणघातिनः पुन-  
र्ब्रतोच्चारणम् । 'परिहार' इति परिहारविशुद्धिकम् । परिहरणं परिहारस्तपोविशेषः तेन विशुद्धिर्य-  
स्मिन् चारित्रे तत्परिहारविशुद्धिकम् । तच्च द्विधा—निर्विशमानकं निर्विष्टकायिकं च । तत्र निर्विश-  
मानका विवक्षितचारित्रसेवकाः । निर्विष्टकायिका आसेवितविवक्षितचारित्रकाः । तदव्यतिरेकाच्चा-  
रित्रमप्येवमुच्यते । इह नवको गणः, तत्रैको वाचनाचार्यः चत्वारो निर्विशमानकाः, चत्वारश्चानु-  
चारिणः । निर्विशमानकानां चायं परिहारः—“परिहारियाण उ तवो, जहन्न मज्झो तहेव  
उक्कोसो । सीउण्हवासकालो, भणिओ । धारेहि पत्तेयं ॥१॥ तत्थ जहन्नो गिम्हे,  
चउत्थ १ छट्ठो २ उ होइ मज्झिमओ । अइम ३ मिह उक्कोसो, एत्तो सिसिरे पव-  
कखामि ॥२॥ सिसिरे उ जहन्नाई, छट्ठाई दसम ४ चरिमगो होइ । वासासु  
अइमार्ह, धारस ५ पञ्जंतगो नेओ ॥३॥ पारणगे आयामं, पंचसु गहो दोसु (स)  
मिग्गहो मिकखे । कप्पट्टिया वि पइदिण, करेति एमेव आयामं ॥४॥ एवं छम्मा-  
सतव, चरिउं परिहारिणा अणुचरति । अणुचरिगे परिहारिय—पइट्टिए जाव छम्मासा  
॥५॥ कप्पट्टिओ वि एवं, छम्मासतव करेइ सेसाओ । अणुपरिहारिणभावं, वयंति  
कप्पट्टिगतं च ॥६॥ एवं सो अट्टारसमासपमाणो उ चण्णिओ कप्पो । संखेवओ  
विसेसो, सुसावेसाओ (विसेससुत्ताउ) नायव्वो ॥७॥ कप्परु र साए, तयं जिण-  
कप्पं वा उव्वेति गच्छं वा । पइवज्जमाणगा पुण, जिणरसगासे पवज्जंति ॥८॥  
मिथयरसमीवासे—धगस्स पासे व नो उ (न उण) अन्नस्स । एएसिं जं चरणां,  
परिहारविसुद्धिगं तं तु ॥९॥ तथा 'सुद्धम' इति ब्रह्मसंपरायम् । ब्रह्मो लोभाशावशेष-  
त्वात् संपरायः कषायोदयो यत्र तत्त्वब्रह्मसंपरायम् । तच्च द्विधा—विशुद्धयमानकं संक्लिश्यमानकं  
च । तत्र विशुद्धयमानकं क्षपकश्रेणिमुपशमश्रेणि वा समारोहतः । संक्लिश्यमानकं तूपशमश्रेणितः  
प्रच्यवमानस्य । 'अहखाय' इति यथाख्यातं यथा सर्वस्मिन् जीवलोके ख्यातं प्रसिद्धं अकषायं  
भवति चारित्रमिति तथैव यत्तद्यथाख्यातम् । 'देस' इति देशयतो देशविरतः । 'अजय' इति  
अयतोऽविरतो विरतिहीन इति ॥१५॥

अञ्जकखुचखुओही केवलदंसण ४ मओ य छल्लेसा ६ ।

किण्हा नीला काऊ, तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥१६॥

(हारि०) व्याख्या—अचक्षुश्चक्षुरवधिकेवलदर्शनानि चत्वारि । अतश्च पङ्क्तेश्च उच्यन्ते ति शेषः । कास्ताः ? इत्याह—कृष्णा नीला कापोता तैजसी पद्मा शुक्ला चेति पङ्क्तेश्च उच्यन्ते इति गाथार्थः ॥१६॥

(मल०) दर्शनशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । अचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनं च । तत्र सामान्यविशेषात्मके अचक्षुषा चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियमनोभिर्दर्शनं स्वस्वविषयसामान्यग्रहणमचक्षुर्दर्शनम् । चक्षुषा दर्शनं रूपसामान्यग्रहणं चक्षुर्दर्शनम् । अवधिरेव दर्शनं रूपिद्रव्यसामान्यग्रहणमवधिदर्शनम् । केवलमेव दर्शनं सकलजगद्भावविवस्तुसामान्यपरिच्छेदरूपं केवलदर्शनम् । 'अधो य छच्छेसा' इत्यादि निगदसिद्धम् ॥१६॥

भव १ अभवा २ 'खउवसम १ खइय २ उवममिय ३ मीम ४ 'सासाणं ५ । मिच्छो य ६ 'सन्न १ सन्नी २, आहार १ णहार २ इय भैया ॥१७॥

(हारि०) व्याख्या—भव्याभव्यौ द्वौ । क्षायोपशमिकक्षायिकौपशमिकमिश्रसासादनानि 'मिच्छो य' इति मिथ्यात्वं चेति षट् । तथा संश्यसंज्ञिनौ द्वौ । तथाऽऽहारकानाहारकौ द्वौ । 'इति' अमुना प्रकारेण 'भेदाः' द्विपष्टिप्रमाणा उत्तरभेदा मूलभेदानां भवन्तीति शेषः । एतेषां व्याख्यानमावश्यकदिग्रन्थेभ्योऽवसेयम्, गमनिकामात्रत्वात्प्रस्तुतप्रयासस्य । इति गाथार्थः ॥१७॥ साम्प्रतमेतेष्वेव जीवस्थानान्याह—

(मल०) भव्याभव्यौ प्रागुक्तस्वरूपौ 'खउवसम' इत्यादि । क्षायोपशमिकं क्षायिकं औपशमिकं च । तत्र उदीर्णस्य मिथ्यात्वस्य क्षयेणानुदीर्णस्य चोपशमेन सम्यक्त्वरूपतापत्तिलक्षणेन विष्कम्भितोदयत्वरूपेण च यन्निर्बृत्तं तत्क्षायोपशमिकम् । तथा त्रिविधस्यापि दर्शनमोहनीयस्य क्षयेणान्त्यन्तोच्छेदेन निर्बृत्तं क्षायिकम् । तथोदीर्णस्य मिथ्यात्वस्य क्षये सत्यनुदीर्णस्य य उपशमो विपाकप्रदेशवेदनरूपस्य द्विविधस्याप्युदयस्य विष्कम्भणं तेन निर्बृत्तमौपशमिकम् । 'मोससासाणं मिच्छो य' इति मिश्रं सासादनं मिथ्यात्वं च, एतानि गुणस्थानकव्याख्यायां यथास्थानं वक्ष्यन्ते । शेषं सुगमम् ॥१७॥

तदेवमुक्त्वा अवान्तरगत्यादिमार्गणास्थानभेदाः, साम्प्रतमेतेष्वेव जीवस्थानानि चिन्तयन्नाह—

सुरनिरए सन्निदुगं, नरेसु तइओ असन्निअपजत्तो ।

तिरियगईए चउदस, एगिंदिसु आइमा चउरो ॥१८॥

(हारि०) व्याख्या—सुरनारकयोः 'सन्निदुगं' इति पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणं संज्ञिपञ्चेन्द्रियद्विकम् । तथा 'नरेसु तइओ' इति नरेषु पुरुषेषु पूर्वोक्तं द्वयं तृतीयोऽसंश्यपर्याप्त इति । आह अन्यत्र बन्धस्वामित्वशतकादिग्रन्थेषु नरेषु जीवस्थानकद्वयमेवोक्तं तत्कथमत्र तृतीयमप्य-

१ "सासाणा" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण श्रीहरिमद्रसूरिणा व्याख्यातम् । २ "सन्नि" इत्यपि पाठ ॥

पर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं जीवस्थानकमुक्तम् ? , सत्यम्, तेषु तस्य तिर्यग्रहणेन गृहीतत्वादिति । तथा तिर्यग्गतौ चतुर्दशापि जीवस्थानानि भवन्तीति शेषः । इति गतिषु मार्गितानि जीवस्थानानि, साम्प्रतमिन्द्रियेषु तान्येवाह—एकेन्द्रियेषु 'आइमा' इति आदिमानि प्रथमानि पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मवादरक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति । इति गाथार्थः ॥१८॥

तथा—

(मल०) सुरगतौ नरकगतौ च 'संज्ञिद्विक' पर्याप्तापर्याप्तलक्षणम् । अपर्याप्तकश्चेह करणापर्याप्तको गृह्यते, न लब्ध्यपर्याप्तकः, तस्य देवनारकगत्योरुत्पादामावात् । 'नरेस्तु' इत्यादि । 'नरेस्तु' मनुष्येषु पूर्वोक्तं संज्ञिद्विकं तावल्लभ्यत एव, किन्तु तृतीयोऽपि जीवजातिभेदोऽसंशय-पर्याप्तको लभ्यते । कथम् ? इति चेद् उच्यते, इह द्वये मनुष्या गर्भव्युत्क्रान्ताः संसृष्टिमाश्च । तत्र ये गर्भव्युत्क्रान्तास्तेषु यथोक्तं संज्ञिद्विकं लभ्यते, ये तु वान्तपित्तादिषु संसृष्टन्ति तेऽन्त-सृष्ट्यायुषोऽसंज्ञिनो लब्ध्यपर्याप्तकाश्चेति तेषु तृतीयः प्रकारो लभ्यत इति । 'तिरियगईए चउदस' इति तिर्यग्गतौ चतुर्दशापि जीवस्थानानि भवन्ति । यतस्तस्यामेकेन्द्रिया विकलेन्द्रियाः मंश्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च प्राप्यन्ते । उक्तानि गतिषु जीवस्थानानि, साम्प्रतमिन्द्रियेषु तान्येवाह—'एगिदिएसु आइमा चउरा' एकेन्द्रियेष्वदिमानि पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मवादरक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति, शेषस्यासंभवात् ॥१८॥

बिनिचउरिदिदसु दो दो, अंतिम चउरो पणिदिसु 'भवन्ति ।

थावरपणगे पढमा, चउरो चरमा दस तसेसु ॥१९॥

(हारि०) व्याख्या—द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु प्रत्येकं 'द्वे द्वे' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे जीवस्थानके । तथा 'अन्तिमानि' पर्यन्तवर्तीनि 'चत्वारि' पर्याप्तापर्याप्तकासंज्ञिसंज्ञिरूपाणि जीवस्थानानि भवन्तीति संवन्धः । केषु ? इत्याह—पञ्चेन्द्रियेषु । इत्येवमिन्द्रियेषु मार्गितानि जीवस्थानानि, साम्प्रति कायेषु तान्येवाह— 'थावरपणके' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिलक्षणे प्रथमानि' पूर्वाण्येकेन्द्रियरुक्तानि पूर्वोक्तानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति । तथा 'चरमाणि' अन्त्यवर्तीनि दश जीवस्थानानि पूर्वोक्तैकेन्द्रियसत्कवर्जितानि, केषु ? 'असेसु' द्वीन्द्रियादिषु भवन्ति । इति गाथार्थः ॥१९॥

इति कायेषु जीवस्थानान्युक्त नि, साम्प्रतं योगेषु तान्येवाह—

(मल०) द्वीन्द्रियेषु त्रीन्द्रियेषु चतुरिन्द्रियेषु च प्रत्येकं 'द्वे द्वे' पर्याप्तापर्याप्तलक्षणे जीवस्थानके भवतः । तथा पञ्चेन्द्रियेषु 'अन्तिमानि' पर्यन्तवर्तीनि पर्याप्तापर्याप्तसंशयमंज्ञिलक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि न शेषाणि, असंभवात् । कायेष्वेतानि चिन्त्यन्नाह—'थावर' इत्यादि ।



'स्थावरपञ्चके' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिलक्षणे प्रत्येकं 'प्रथमानि' पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मवाटर-  
केन्द्रियलक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति. स्थावरपञ्चकस्यैकेन्द्रियत्वेन तत्संघन्धिनामेव  
जीवस्थानानां तत्र संभवात् । तथा 'चरमाणि' एकेन्द्रियसंबन्धीनि चत्वारि जीवस्थानानि वर्ज-  
यित्वा शेषाणि द्वीन्द्रियादिसंबन्धीनि दश जीवस्थानानि त्रसेषु लभ्यन्ते, द्वीन्द्रियादीनामेव त्रस-  
त्वात् ॥१९॥

इदानीं योगादिष्वेतानि जीवस्थानानि यथालाघवमृपदिदर्शयिषुराह—

विगलतिअसन्निसत्री, पञ्जता पंच ह्येति वइजोगे ।

मणजोगे सन्निको, पुमिथिवेए चरम चउरां ॥२०॥

(हारि०) व्याख्या—इह प्राकृतशैलीवशात्पुंल्लिङ्गनिर्देशः । ततश्च विकलत्रिकासंज्ञिसंज्ञिलक्षणानि  
पर्याप्तकजीवस्थानानि पञ्च भवन्ति, क ? इत्याह—वाग्योगे । तथा मनोयोगे पर्याप्तसंज्ञेकं  
जीवस्थानकम् । काययोगे पुनरग्रे वक्ष्यतीति । साम्प्रतं वेदेषु तान्याह—वेदशब्दस्य प्रत्येकमभि-  
संबन्धात् पुरुषवेदस्त्रीवेदयोः 'चरमाणि' पर्यन्तवर्तीनि जीवस्थानानि पञ्चेन्द्रियसत्त्वानि चत्वारि  
भवन्तीति प्राक्तनेन योगः । इह अपर्याप्तश्च करणेन गृह्यते, न लब्ध्या, लब्ध्यपर्याप्तकस्य सर्वस्यैव  
नपुंसकत्वात् । अन्यच्च यदत्रासंज्ञिनि स्त्रीपुंसाभिधानं तत्कार्मभ्रन्थिकमतेनैव द्रष्टव्यम् । सैद्धान्ति-  
कानां त्वसंज्ञी पर्याप्तोऽपर्याप्तो वा नपुंसक एव । तथा च ब्रह्मसिः—“असन्नियुच्छा गोयमा !  
नपुंसगवेयगा” मनुष्यासंज्ञिनस्तु लब्ध्यपर्याप्ता एव भवन्तीत्यतस्ते निर्विवादं नपुंसका एव ।  
इति गाथार्थः ॥२०॥

उक्तानि वेदेषु जीवस्थानानि । अथ पूर्वयोजितकाययोगनपुंसकवेदयोरग्रेतनपदपञ्चदशके  
च सर्वजीवस्थानानि । लाघवार्थं संगृह्य तत्प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) विकलत्रिकं द्वीन्द्रिय १ त्रीन्द्रिय २ चतुरिन्द्रिय ३ लक्षणं, असंज्ञी ४ संज्ञी ५ च  
पर्याप्तः, इत्येतानि पञ्च जीवस्थानानि वाग्योगे भवन्ति न शेषाणि, तेषु वाग्योगासंभवात् ।  
'मणजोगे सन्निको' इति पर्याप्त इत्यनुवर्तते, मनोयोगे पर्याप्तः संज्ञेको लभ्यते नान्यः, तत्र  
मनःसंज्ञावायोगात् । तथा पुंवेदे स्त्रीवेदे च चरमाणि पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिसंज्ञिलक्षणानि चत्वारि  
जीवस्थानानि भवन्ति । यद्यपि च सिद्धान्तेऽसंज्ञी पर्याप्तोऽपर्याप्तो वा सर्वथा नपुंसक एवोक्तः ।  
तथा चोक्तं ब्रह्मसिः—“तेषां भन्ते ? असन्नियुच्छा निरिक्खजोणिया किं इत्थिवेयगा पुरि-  
सवेयगा नपुंसगवेयगा ? गोयमा ? नो इत्थिवेयगा नो-पुरिसवेयगा नपुंसकवे-  
यगा” इति । तथाऽपीह स्त्रीपुंसलिङ्गाकारमात्रमङ्गीकृत्य स्त्रीवेदे पुंवेदे वाऽसंज्ञीनिर्दिष्ट इत्य-  
दोषः । तदुक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्—“यद्यपि चासन्नियुच्छापर्याप्तापर्याप्तौ नपुंसको तथा-

१ “वय०” इत्यपि पाठः । २ “सन्नेक्को” इति जे० ।

ऽपि स्त्रीपुंसलिङ्गाकारमात्रमङ्गोक्त्य स्त्रीपुंसावुक्ताविति ।” अपर्याप्तकश्चेह करणा-  
पर्याप्तको गृह्यते न लब्ध्यपर्याप्तकः, लब्ध्यपर्याप्तकस्य सर्वस्यैव नपुंसकत्वात् ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअधिरयअचक्खू ।

आइतिलेसा भव्वियरमिच्छ आहारगे सव्वे ॥२१॥

(हारि०) व्याख्या—काययोगे १ नपुंसकवेदे २ कपायचतुष्के ६ अज्ञानशब्दस्य प्रत्येक  
मभिसंबन्धात् मत्यज्ञाने ७ श्रुताज्ञाने ८ अविरते ९ अचक्षुर्दर्शने १० 'आइतिलेसा' इति कृष्ण-  
लेस्यायां ११ नीललेस्यायां १२ कापोतलेस्यायां १३ 'भव्वियर' इति भव्वेषु १४ अभव्वेषु  
१५ मिथ्यादृष्टिषु १६ आहारके १७ चेति सप्तदशस्थानेषु सर्वाणि जीवस्थानानि भवन्तीति  
शेषः । इति गार्थः ॥२१॥

इत एकादशस्थानेषु लाघवार्थमेव संगृह्य पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपं जीवस्थानकद्वयं  
निरूपयन्नाह—

(मल०) काययोगे नपुंसकवेदे 'कषाये' क्रोधादिचतुष्टयरूपे अज्ञानशब्दस्य प्रत्येकम-  
भिसंबन्धान्मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने 'अधिरन' इति विरतिहीने अचक्षुर्दर्शने 'आदित्रिलेस्यासु'  
कृष्णीलकापोतरूपासु 'भव्वेतरेषु' इति भव्वेष्वभव्वेषु च तथा मिथ्यात्वे आहारके च सर्वा-  
ण्यपि जीवस्थाना न भवन्ति, जीवस्थानव्यापकत्वात्काययोगादीनाम् ॥२१॥

मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु य सम्मेसु ।

सन्निम्मि य दो ठाणा, सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥२२॥

(हारि०) व्याख्या—मतिज्ञाने १ श्रुतज्ञाने २ 'ओहिदुग' इति अवधिज्ञाने ३ अवधि-  
दर्शने ४ च विभङ्गज्ञाने ५ पद्मलेस्यायां ६ शुक्ललेस्यायां ७ चेति, तथा 'तिसु य सम्मेसु'  
इति त्रिषु च सम्यक्त्वेषु, तद्यथा—क्षायिके ८ क्षायोपशमिके ९ औपशमिके १० च, संज्ञिनि ११  
च, 'दो ठाणा' इति द्वे जीवस्थानके पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणे इत्येकादशस्थानेषु  
जीवस्थानकद्वयमित्याह । इह भावना चैवम्—मतिश्रुतावधिद्विकविभङ्गपद्मशुक्ललेस्यावर्ता देवादि-  
भ्यश्च्युतानां संज्ञिपञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नानां प्रथमपर्याप्तसंज्ञिलक्षणं जीवस्थानकं प्राप्यते । पर्याप्तं  
च जीवस्थानकमेतेषु सुज्ञानमेव । तथा 'तिसु य सम्मेसु' इति त्रिषु च सम्यक्त्वेषु क्षायिक-  
क्षायोपशमिकौपशमिकलक्षणेपु पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं जीवस्थानकद्वयं भवतीत्यु-  
क्तम् । तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टिः संज्ञिपञ्चेन्द्रियः पर्याप्तकः करणापर्याप्तकश्च सर्वगतिषु तावन्न-  
भ्यते । कथमत्रापर्याप्तको लभ्यते ? इति चेत्, उच्यते, इहकश्चित्पूर्वं बद्धायुष्कः क्षायिकसम्य-

क्त्वमुत्पाद्य गतिचतुष्टयस्यान्यतरस्यां गतावुत्पद्यमानः प्रथममपर्याप्तकः क्षायिकसम्यग्दृष्टि-  
 लभ्यते पर्याप्तः सुप्रतीत एव । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिस्तु देवादिभ्योऽनन्तरमिहोत्पद्यमा-  
 नस्तीर्थकरादिरपर्याप्तकः प्राप्यते । पर्याप्तकः पुनरत्रापि तुज्ञान एव । औपशमिकसम्यक्त्वे  
 पर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय एव लभ्यते, अपर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पुनरौपशमिकसम्यक्त्वा-  
 भावात् । अन्ये तु संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्यापर्याप्तस्यापि व्यवहारनयनताभिप्रायेणोपशमिक-  
 सम्यक्त्वं वर्णयन्ति, तच्च नावगच्छामः । तथाहि-अपर्याप्तावस्थायां तावदेतत्सम्यक्त्वं  
 नोत्पादयति, तथाविधशुद्धभावात् । पारभविकं तर्हि भविष्यति ? इति चेत्, तदपि न युक्ति-  
 क्षमम्, तथाहि-यो मिथ्यादृष्टिः संस्तत्रथमतयौपशमिकसम्यक्त्वमवाप्नोति स तद्भावमापन्नः  
 कालं न करोत्येव । यत् उक्तम्-“अणवंधो ? द्य २ माडगबंधं ३ कालंपि ४ सासणे  
 कुणइ । उवसमसम्महिद्धो, चउणहमेगंपि नो कुणइ ॥१॥” उपशमश्रेणमृत्वाऽनुत्तर-  
 सुरेषुत्पन्नस्यापर्याप्तकस्यैतन्नभ्यते इति चेत्, एतदपि न मन्यामहे, तस्य प्रथमसमय एव सम्य-  
 क्त्वपुद्गलोदयात् । उक्तं च शतकचूर्णपर्याप्तस्मिन्नेव विचारं-“जो उवसमसम्महिद्धो उव-  
 समसेहीए कालं करेइ, सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उवघावलियाए ढोडूण  
 सम्मत्तपोरगले वेएइ, तौण न उवसमसम्महिद्धो अपज्जत्तगो लब्भइ ॥” इत्यादि ।  
 तस्मात्पर्याप्तकसंज्ञिलक्षणमेकमेव जीवस्थानकमत्र प्राप्यते इति स्थितम् । इह तु ग्रन्थे ‘मत्तान्तर-  
 माश्रित्यौपशमिकसम्यक्त्वे जीवस्थानकद्वयमुक्तम् । इति गार्थः ॥२२॥

साम्प्रतं दशसु स्थानेषु लाववार्थमेव पर्याप्तसंज्ञिरूपमेकजीवस्थानकं चक्षुर्दर्शने च सचि-  
 कल्पजीवस्थानकानि निरूपयन्नाह—

(मल०) मतौ श्रुते अवधिद्विके इति-अवधिज्ञाने अवधिदर्शने च तथा विभङ्गज्ञाने पद्म-  
 रंश्यायां शुक्ललेश्यायां ‘त्रिषु च सम्यक्त्वेषु’ क्षायोपशमिकक्षायिकौपशमिकेषु संज्ञिनि च  
 प्रत्येकं द्वं द्वे जीवस्थानके पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिलक्षणे भवतः न शेषाणि, तेषु मिथ्यात्वादिकार-  
 णतो मतिज्ञानादीनामसंभवात् । अत एव च हेतोरिहापर्याप्तकः करणापर्याप्तको गृह्यते न लब्ध-  
 पर्याप्तकः, तस्य मिथ्यादृष्टित्वादिति । आह क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकेषु कथं संज्ञी अपर्याप्त-  
 को लभ्यते ? उच्यते, इह कश्चित् पूर्ववद्वायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभ्यानन्तानुबन्ध्यादिसप्तकक्षयं  
 कृत्वा क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पाद्य यदा गतिचतुष्टयस्यान्यतरस्यां गतावुत्पद्यते तदाऽसौ अपर्याप्तकः  
 क्षायिकसम्यक्त्वे प्राप्यते । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वयुक्तश्च देवादिभ्योऽनन्तरमिहोत्पद्यमानस्ती-

१ इतोऽप्रे-‘व्यवहारनय-’ इत्यधिकः पाठः । २ इतः परम्-‘वशुमलेश्याकत्वात्संज्ञित्वाच्चेति’  
 इत्येतत्पाठः क्वचित्पुस्तकेऽधिको लभ्यते ॥

ऽपि स्त्रीपुंसलिङ्गकारमात्रमङ्गोक्त्य स्त्रीपुंसावुक्ताविति ।” अपर्याप्तकश्चेह करणा-  
पर्याप्तको गृह्यते न लब्ध्यपर्याप्तकः, लब्ध्यपर्याप्तकस्य सर्वस्यैव नपुंसकत्वात् ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमहसुयअनाणअविरयअचक्खू ।

आइतिलेसा भव्वयरमिच्छ आहारगे सव्वे ॥२१॥

(हारि०) व्याख्या—काययोगे १ नपुंसकवेदे २ कपायचतुष्के ६ अज्ञानशब्दस्य प्रत्येक  
मभिसंबन्धात् मत्यज्ञाने ७ श्रुताज्ञाने ८ अविरते ९ अचक्षुर्दर्शने १० 'आइतिलेसा' इति कृष्ण-  
लेश्यायां ११ नील्लेश्यायां १२ कापोतलेश्यायां १३ 'भव्वयर' इति भव्येषु १४ अमव्येषु  
१५ मिथ्यादृष्टिषु १६ आहारके १७ चेति सप्तदशस्थानेषु सर्वाणि जीवस्थानानि भवन्तीति  
शेषः । इति गाथार्थः ॥२१॥

इत एकादशस्थानेषु लाघवार्थमेव संगृह्य पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपं जीवस्थानकद्वयं  
निरूपयन्नाह—

(मल०) काययोगे नपुंसकवेदे 'व.षाये' क्रोधादिचतुष्टयरूपे अज्ञानशब्दस्य प्रत्येकम-  
भिसंबन्धान्मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने 'अविरत' इति विरतिहीने अचक्षुर्दर्शने 'आदित्रिलेश्यासु'  
कृष्णनीलकापोतरूपासु 'भव्येतरेषु' इति भव्येष्वमव्येषु च तथा मिथ्यात्वे आहारके च सर्वा-  
ण्यपि जीवस्थाना न भवन्ति, जीवस्थानव्यापकत्वात्काययोगादीनाम् ॥२१॥

महसुयओहिदुगविभंगमहसुक्कासु तिसु य सम्मेसु ।

सन्निम्मि य दो ठाणा. सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥२२॥

(हारि०) व्याख्या—मतिज्ञाने १ श्रुतज्ञाने २ 'ओहिदुग' इति अवधिज्ञाने ३ अवधि-  
दर्शने ४ च विभङ्गज्ञाने ५ पद्मलेश्यायां ६ शुक्ल्लेश्यायां ७ चेति, तथा 'तिसु य सम्मेसु'  
इति त्रिषु च सम्यक्त्वेषु, तद्यथा—क्षायिके ८ क्षायोपशमिके ९ औपशमिके १० च. संज्ञिनि ११  
च, 'दो ठाणा' इति द्वे जीवस्थानके पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणे इत्येकादशस्थानेषु  
जीवस्थानकद्वयमित्याह । इह भावना चैवम्—मतिश्रुतावधिद्विकविभङ्गपद्मशुक्ल्लेश्यावर्ता देवादि-  
भ्यश्च्युतानां संज्ञिपञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नानां प्रथममपर्याप्तसंज्ञिलक्षणं जीवस्थानकं प्राप्यते । पर्याप्तं  
च जीवस्थानकमेतेषु सुज्ञानमेव । तथा 'तिसु य सम्मेसु' इति त्रिषु च सम्यक्त्वेषु क्षायिक-  
क्षायोपशमिकौपशमिकलक्षणेषु पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं जीवस्थानकद्वयं भवतीत्यु-  
क्तम् । तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टिः संज्ञिपञ्चेन्द्रियः पर्याप्तकः करणापर्याप्तकश्च सर्वगतिषु तावल्ल-  
भ्यते । कथमत्रापर्याप्तको लभ्यते ? इति चेत्, उच्यते, इहकश्चित्पूर्वं वद्वायुष्कः क्षायिकसम्य-

चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानानि पर्याप्तचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि भवन्तीति । अत्रैवं विकल्पमाह—“छ घ पञ्चियर चरमा” इति पद् वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानानि चतुरिन्द्रियप्रभृतीनां भवन्तीति शेषः । इह कैश्चिदिन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात् । इति गार्थार्थः ॥२३॥

तथा—

(मल०) मनःपर्यायज्ञाने ‘केवलद्विके’ केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे ‘संयतेषु’ सामायिकादिपञ्चप्रकारसंयमवत्सु देशयते मिश्रदृष्टौ च संज्ञिपर्याप्तलक्षणमेकं जीवस्थानं प्राप्यते नान्यत् । तथाहि—न तावन्मनःपर्यायज्ञाने केवलद्विके पञ्चप्रकारे च सामायिकादौ संयमे देशसंयमे चान्यज्जीवस्थानकं संभवति, तत्र सर्वदेशविरत्योरभावात् । सम्यग्मिथ्याद्रष्टिता च पर्याप्तसंज्ञिच्यतिरेकेण शेषेषु जीवस्थानकेषु तथाविधपरिणामाभावात् संभवतीति । ‘अक्षुर्वुमि तिन्नि’ इति चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानकानि पर्याप्तचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि भवन्ति नान्यानि, तेषु तदसंभवात् । अत्रैव मतान्तरेण विकल्पमाह—“छ घ पञ्चियर चरमा” इति पद्वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानकानि चक्षुर्दर्शने भवन्ति, चतुरिन्द्रियादीनामिन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्तानां शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानामपि आचार्यान्तरैश्चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात् । तदुक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्—‘करणापर्याप्तकेषु चतुरिन्द्रियादिष्विन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां चक्षुर्दर्शनं भवति” । इति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे वायराइ छ अपज्ज सन्निपज्जो य ।

तेउल्लेसे वायरअपजत्तो दुविह सन्नी य ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या—सप्तैव तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् जीवस्थानानि, क १ इत्याह—‘सासादने’ कानि तानि १ इत्याह—वादरादीनि षडपर्याप्तानि । अयमर्थः—सासादनभावे मृतस्य वादरादिषूपक्षस्य तेषु तत्राप्यते, अतः सासादने तानि पद् प्राप्यन्त इति । तथा संज्ञि पर्याप्तश्च सासादने सप्तम इति । तथा ‘तेउल्लेसे’ इति तेजोल्लेश्यायामपर्याप्तवादरजीवस्थानकमेकम्, देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुषूपक्षस्यापर्याप्तावस्थायाम् प्राक्तनी तेजोल्लेश्या प्राप्यते इत्याद्ययः । तथा द्विविधः संज्ञी पर्याप्तपर्याप्तरूप इति द्वयमिति तेजोल्लेश्यायां त्रीणि जीवस्थानानि । इति गार्थार्थः ॥२४॥

तथा—

(मल०) ‘सासादने’ सासादनसम्यक्त्वे सप्त जीवस्थानकानि भवन्ति, कानि १ इत्यत आह—‘वादरादयः’ वादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः पद् अपर्याप्तकाः

र्षङ्करादिरपर्याप्तकः सुप्रतीत एव । औपशमिकसम्यक्त्वं पुनरपर्याप्तावस्थायामनुत्तरसुरस्य द्रष्टव्यम् । इह केचिदपर्याप्तावस्थायामौपशमिकं सम्यक्त्वं नेच्छन्ति । तथा च ते आहुः—न तावदस्यामेवापर्याप्तावस्थायामिदं सम्यक्त्वमुपजायते, तदानीं तस्य तथाविधविशुद्धयभावात् । अथैतत्तदानीं मोत्पादि यत्तु पारमविकं तद्भवत्केन विनिवार्यत इति मन्येथाः, तदपि न युक्तम्, यतो यो मिथ्यादृष्टिस्तत्रप्रथमतया सम्यक्त्वमौपशमिकमवाप्नोति स तावत्तद्भावमापन्नः सन् कालं न करोत्येव । यदुक्तमागमे—“अणधंधो १ दय २ माउगधंधं ३ कालं ४ च सासणो कुणइ उवसमसम्महिट्ठो, चउण्हमेकंपि नो कुणइ । १॥” यस्तूपशमश्रेणिमारूढः सन् मृत्वाऽनुत्तरसुरेषूत्पद्यते तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं भवति न त्वौपशमिकम् । उक्तं च शतकवृहच्चूर्णौ—“जां उवसमसम्महिट्ठो उवसमसेट्ठोए कालं करेइ सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोट्ठुण सम्मत्तपोग्गले वेयइ, तेण न उवसमसम्महिट्ठो अपज्जत्तगो लब्भइ” इत्यादि । अपरे पुनराहुः—भवत्येवापर्याप्तावस्थायामप्यौपशमिकं सम्यक्त्वम्, सप्ततिचूर्ण्यादिषु तथाऽभिधानात् । सप्ततिचूर्णौ हि गुणस्थानकेषु नामकर्मणो बन्धोदयादिमार्गणावसरेऽविरतसम्यग्दृष्टेरुदयस्थानचिन्तायां पञ्चविंशत्युदयः सप्तविंशत्युदयश्च देवनारकानधिकृत्योक्तः । तत्र नारकाः क्षायिकवेदकसम्यग्दृष्टयः, देवाश्च त्रिविधसम्यग्दृष्टयोऽपि । तथा च तद्ग्रन्थः—“पणुधोस सत्तावीसोदया देवनेरइए पडुच्च नेरइगो खइगवेयगसम्महिट्ठो देवो ति विहसम्महिट्ठो वि” इति । पञ्चविंशत्युदयश्च शरीरपर्याप्तिं निर्वर्तयतः । सप्तविंशत्युदयश्च शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य शेषपर्याप्तिभिः पुनरपर्याप्तस्य । ततोऽपर्याप्तावस्थायामपीहौपशमिकं सम्यक्त्वमुक्तम् । तथा पञ्चसंग्रहेऽपि मार्गणास्थानकेषु जीवस्थानकचिन्तायामौपशमिकसम्यक्त्वे—“उवसमसम्मंमि दो सण्णी” इत्यनेन ग्रन्थेन संज्ञिद्विकमुक्तम् । ततश्चाचार्येणापीहोक्तम्—“तिसु य सम्मेसु” इति । तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्तीति ॥२२॥

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।

सन्नीपज्जो चक्खुम्मि तिन्नि छ व पज्जियर चरमा ॥२३॥

(हारि०) व्याख्या—मनःपर्यायज्ञाने १ ‘केवलदुग’ इति केवलज्ञाने २ केवलदर्शने च ३ ‘संजय’ इति गुणगुणिनोरभेदोपचारेण संयमो गृहीतस्ततः सामायिके ४ छेदोपस्थापनीये ५ परिहारविशुद्धिके ६ सूक्ष्मसंपराये ७ यथाख्याते ८ ‘देशविरतौ ९ मिश्रदृष्टौ १० च संज्ञिपर्याप्तकपञ्चेन्द्रियरूपमेकं जीवस्थानकं दशसु स्थानेषु भवतीति शेषः । तथा

१ सप्ततिका चूर्णिः । २ “सन्नी सम्मंमि दोष्णि” इत्यपि पाठः । ३ “अर” इत्यपि पाठः । ४-५ “सि” इति जे० । “देशयतौ” इति जे० ।

चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानानि पर्याप्तकचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि भवन्तीति । अत्रैवं विकल्पमाह—“छ ष पञ्चियर चरमा” इति षड् वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानानि चतुरिन्द्रियप्रमृतीनां भवन्तीति शेषः । इह कैश्चिदिन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात् । इति गाथार्थः ॥२३॥

तथा—

(मल०) मनःपर्यायज्ञाने ‘केवलद्विके’ केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे ‘संयनेषु’ सामायिकादिपञ्चप्रकारसंयमवत्सु देशयते मिश्रदृष्टौ च संज्ञिपर्याप्तलक्षणमेकं जीवस्थानं प्राप्यते नान्यत् । तथाहि—न तावन्मनःपर्यायज्ञाने केवलद्विके पञ्चप्रकारे च सामायिकादौ संयमे देशसंयमे चान्त्यजीवस्थानकं संभवति, तत्र सर्वदेशविरत्योरभावात् । सम्यग्मिध्याद्रष्टिता च पर्याप्तसंज्ञिव्यतिरेकेण शेषेषु जीवस्थानकेषु तथाविधपरिणामाभावाच्च संभवतीति । ‘अक्षुम्भि लिम्भि’ इति चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानकानि पर्याप्तचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि भवन्ति नान्यानि, तेषु तदसंभवात् । अत्रैव मतान्तरेण विकल्पमाह—“छ ष पञ्चियर चरमा” इति षड्वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानकानि चक्षुर्दर्शने भवन्ति, चतुरिन्द्रियादीनामिन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्तानां शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानामपि आचार्यान्तरैश्चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात् । तदुक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्—‘करणापर्याप्तकेषु चतुरिन्द्रियादिविन्द्रियपर्याप्तौ सस्यां चक्षुर्दर्शनं भवति” । इति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्ज सन्निपज्जो य ।

तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविह सन्नी य ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या—सप्तैव तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् जीवस्थानानि, क ? इत्याह—‘सासाधने’ कानि तानि ? इत्याह—बादरादीनि षड्पर्याप्तानि । अयमर्थः—सासादनभावे मृतस्य बादरादिषूत्पन्नस्य तेषु तत्प्राप्यते, अतः सासादने तानि षट् प्राप्यन्त इति । तथा संज्ञि पर्याप्तश्च सासादने सप्तम इति । तथा ‘तेउल्लेसे’ इति तेजोलेश्यायामपर्याप्तबादरजीवस्थानकमेकम्, देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुषूत्पन्नस्यापर्याप्तावस्थायां प्राक्तनी तेजोलेश्या प्राप्यते इत्याह्वयः । तथा द्विविधः संज्ञी पर्याप्तपर्याप्तरूप इति द्वयमिति तेजोलेश्यायां त्रीणि जीवस्थानानि । इति गाथार्थः ॥२४॥

तथा—

(मल०) ‘सासादने’ सासादनसम्यक्त्वे सप्त जीवस्थानकानि भवन्ति, कानि ? इत्यत आह—‘बादरादयः’ बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः षट् अपर्याप्तकाः

१ “सत्ति” इति जे० । २ “त्ति” जे० ।

र्षङ्करादिरपर्याप्तकः सुप्रतीत एव । औपशमिकसम्यक्त्वं पुनरपर्याप्तावस्थायामनुत्तरसुरस्य द्रष्टव्यम् । इह केचिदपर्याप्तावस्थायामौपशमिकं सम्यक्त्वं नेच्छन्ति । तथा च ते आहुः—न तावदस्यामेवापर्याप्तावस्थायामिदं सम्यक्त्वमुपजायते, तदानीं तस्य तथाविधविशुद्धयभावात् । अथै तत्तदानीं मोत्पादि यत्तु पारभविकं तद्भवत्केन विनिवार्यत इति मन्येथाः, तदपि न युक्तम्, यतो यो मिथ्यादृष्टिस्तत्रथमतया सम्यक्त्वमौपशमिकमवाप्नोति स तावत्तद्भावमापन्नः सन् कालं न करोत्येव । यदुक्तमागमे—“अणवधो १ दय २ माउगधंधं ३ कालं ४ च सासणो कुणह उवसमसम्महिट्ठी, चउणहमेकंपि नो कुणह ।।१॥” यस्तूपशमश्रेणिमारूढः सन् मृत्वाऽनुत्तरसुरेषूपपद्यते तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं भवति न त्वौपशमिकम् । उक्तं च शतकवृहच्चूर्णौ—“जो उवसमसम्महिट्ठी उवसमसेहोए कालं करेह सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोहूण सम्मत्तपोग्गले वेयह, तेण न उवसमसम्महिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ” इत्यादि । अपरे पुनराहुः—भवत्येवापर्याप्तावस्थायामप्यौपशमिकं सम्यक्त्वम्, सप्ततिचूर्ण्यादिषु तथाऽभिधानात् । सप्ततिचूर्णौ हि गुणस्थानकेषु नामकर्मणो बन्धोदयादिमार्गणावसरेऽविरतसम्यग्दृष्टेरुदयस्थानचिन्तायां पञ्चविंशत्युदयः सप्तविंशत्युदयश्च देवनारकानधिकृत्योक्तः । तत्र नारकाः क्षायिकवेदकसम्यग्दृष्टयः, देवाश्च त्रिविधसम्यग्दृष्टयोऽपि । तथा च तद्ग्रन्थः—“पणुधीस सत्तावीसोदया देवनेरइए पणुध नेरइगो खइगवेयगसम्महिट्ठी देवो तिविहसम्महिट्ठी वि” इति । पञ्चविंशत्युदयश्च शरीरपर्याप्तिं निर्वर्तयतः । सप्तविंशत्युदयश्च शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य शेषपर्याप्तिभिः पुनरपर्याप्तस्य । ततोऽपर्याप्तावस्थायामपीहौपशमिकं सम्यक्त्वमुक्तम् । तथा पञ्चसंग्रहेऽपि मार्गणास्थानकेषु जीवस्थानकचिन्तायामौपशमिकसम्यक्त्वे—“उवसमसम्मंमि दो सण्णी” इत्यनेन ग्रन्थेन संज्ञिद्विकमुक्तम् । ततश्चाचार्येणापीहोक्तम्—“तिसु य सम्मेसु” इति । तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्तीति ॥२२॥

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।

सन्नीपज्जो चक्खुम्मि तिन्नि छ व पज्जि'यर चरमा ॥२३॥

(हारि०) व्याख्या—मनःपर्यायज्ञाने १ 'केवलदुग' इति केवलज्ञाने २ केवलदर्शने च ३ 'संजय' इति गुणगुणिनोरभेदोपचारेण संयमो गृहीतस्ततः सामायिके ४ छेदोपस्थापनीये ५ परिहारविशुद्धिके ६ सूक्ष्मसंपराये ७ यथाख्याते ८ 'देशविरतौ ९ मिश्रदृष्टौ १० च संक्षिपर्याप्तकपञ्चेन्द्रियरूपमेकं जीवस्थानकं दशसु स्थानेषु भवतीति शेषः । तथा



चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानानि पर्याप्तकचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि भवन्तीति । अत्रैवं विकल्पमाह—“छ ष पञ्चियर चरमा” इति षड् वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानानि चतुरिन्द्रियप्रभृतीनां भवन्तीति शेषः । इह कैश्चिदिन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात् । इति गाथार्थः ॥२३॥

तथा—

(मल्ल०) मनःपर्यायज्ञाने ‘केवलद्विके’ केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे ‘संयतेषु’ सामायिकादिपञ्चप्रकारसंयमवत्सु देशयते मिश्रदृष्टौ च संज्ञिपर्याप्तलक्षणमेकं जीवस्थानं प्राप्यते नान्यत् । तथाहि—न तावन्मनःपर्यायज्ञाने केवलद्विके पञ्चप्रकारे च सामायिकादौ संयमे देशसंयमे चान्यजीवस्थानकं संभवति, तत्र सर्वदेशविरत्योरभावात् । सम्यग्मिध्याद्रष्टिता च पर्याप्तसंज्ञिव्यतिरेकेण शेषेषु जीवस्थानकेषु तथाविधपरिणामाभावात् संभवतीति । ‘अक्षुम्भि तिल्लि’ इति चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानकानि पर्याप्तचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि भवन्ति नान्यानि, तेषु तदसंभवात् । अत्रैव मतान्तरेण विकल्पमाह—“छ ष पञ्चियर चरमा” इति षड्वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानकानि चक्षुर्दर्शने भवन्ति, चतुरिन्द्रियादीनामिन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्तानां शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानामपि आचार्यान्तरैश्चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात् । तदुक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्—‘करणपर्याप्तकेषु चतुरिन्द्रियादिविचित्रिन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां अक्षुर्दर्शनं भवति” । इति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्ज सन्निपज्जो य ।

तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविह सन्नी य ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या—सन्तैव तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् जीवस्थानानि, क ? इत्याह—‘सासादने’ कानि तानि ? इत्याह—बादरादीनि षड्पर्याप्तानि । अयमर्थः—सासादनभावे मृतस्य बादरादिषूत्पन्नस्य तेषु तत्प्राप्यते, अतः सासादने तानि षट् प्राप्यन्त इति । तथा संज्ञि पर्याप्तश्च सासादने सप्तम इति । तथा ‘तेउल्लेसे’ इति तेजोलेश्यायामपर्याप्तबादरजीवस्थानकमेकम्, देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुषूत्पन्नस्यापर्याप्तावस्थार्या प्राक्तनी तेजोलेश्या प्राप्यते इत्याद्ययः । तथा द्विविधः संज्ञी पर्याप्तपर्याप्तरूप इति द्वयमिति तेजोलेश्यार्या त्रीणि जीवस्थानानि । इति गाथार्थः ॥२४॥

तथा—

(मल्ल०) ‘सासादने’ सासादनसम्यक्त्वे सप्त जीवस्थानकानि भवन्ति, कानि ? इत्यत आह—‘बादरादयः’ बादरैकेन्द्रियदीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः षट् अपर्याप्तकाः

१ “मत्ति” इति जे० । २ “त्ति” जे० ।

संज्ञी पर्याप्तकश्च । नन्वेकेन्द्रियाणामागमे सासादनभावो नेष्यते तत्कथमिहापर्याप्तवादरैकेन्द्रिय-  
लक्षणं जीवरथान्फं सासादनेऽभिहितम् ? इति, सत्यमेतत्, किन्तु मा त्वरिष्ठाः, सर्वमेतदा-  
चार्य एवात्रे निर्णेप्यतीति । तेजोलेश्यायां त्रीणि जीवस्थानकानि भवन्ति, किम् ? इत्याह-  
बादरोऽपर्याप्तो, द्विविधश्च पर्याप्तापर्याप्तमेदेन संज्ञीति । बादरोऽपर्याप्तकः कथमवाप्यते ? इति  
चेद्, इह भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेदानदेवाः पृथिवीजलवनस्पतिषु मध्ये उत्पद्यन्ते ते  
च तेजोलेश्यावन्तः । यल्लेश्यश्च म्रियते अग्रेऽपि तल्लेश्य एवोत्पद्यते—“जल्लेसे मरइ तल्लेसे  
वषषज्जइ” इतिवचनात् । अतो बादरापर्याप्तावस्थायां कियत्कालं तेजोलेश्याऽवाप्यते ? इति न-  
कश्चिदोषः ॥२४॥

अस्सन्नि आइ बारस, अणहारे अट्ट सत्तअपजत्ता ।

सन्नी पज्जत्तो तह, इय गइ'याइसु जियट्टाणा ॥२५॥

(हारि०) व्याख्या-असंज्ञिनि मनोविज्ञानविकले, किम् ? इत्याह- 'आइ' इति विभक्ति-  
लोपादाद्यानि द्वादश जीवस्थानानि संज्ञिपञ्चेन्द्रियसत्कजीवस्थानकद्वयवर्जितानि । तथाऽना-  
हारकेऽष्टौ जीवस्थानानि, कथम् ? सप्तापर्याप्तजीवस्थानानि संज्ञिपर्याप्तकं च जीवस्थानकमष्ट-  
ममिति । तच्च केवलिसद्गुद्वाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु कार्मणकाययोगे प्राप्यते । तथा चोक्तम्  
“कार्मणशरीरयोगी, चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च । समयत्रयेऽपि तस्मिन्, भवत्य-  
नाहारको नियमात् ॥१॥” इह यद्यपि केवली मनोविज्ञानविकल्परहितस्तथाऽपि द्रव्यमनः  
समाश्रित्य संज्ञिग्रहणेन गृहीतः । इति गत्यादिषु जीवस्थानान्युक्तानीति शेषः । इति  
गाथार्थः ॥२५॥

इति मार्गितानि मार्गणास्थानेषु चतुर्दशापि जीवस्थानानि, साम्प्रतमेतेष्वेव गुणस्थान-  
कान्यभिधित्सुस्तन्नामसूचामाह—

(मल०) 'असंज्ञिनि' संज्ञिव्यतिरिक्ते 'आइ बारस' इति आदिमानि द्वादश जीव-  
स्थानकानि भवन्ति, सर्वेषामपि विशिष्टमनोविकलतया संज्ञिप्रतिपक्षत्वाविशेषात्, संज्ञिप्रतिप-  
क्षस्य चाऽसंज्ञित्वेन व्यवहारात् । तथाऽनाहारकेऽष्टौ जीवस्थानकानि भवन्ति, कानि ? इत्यत  
आह-सप्तापर्याप्तकाः सृक्ष्मैकेन्द्रियादयः विग्रहगतावेकं द्वौ त्रीन् वा समयान् यावत्तेषामाहारा-  
संभवात्, संज्ञी च पर्याप्तकः, स च केवलिसद्गुद्वातावस्थायां तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु । तदुक्तम्-  
“चतुर्थपञ्चमतृतीयेष्वनाहारकः” इति । उपसंहारमाह-‘इय’ इत्यादि । इतिरेवमुक्तेन  
प्रकारेण 'गत्यादिषु' मार्गणास्थानकेषु जीवस्थानकानि भवन्तीति ॥२५॥

तदेवमुक्तानि मार्गणास्थानेषु जीवस्थानकानि, साम्प्रतमेतेष्वेव गुणस्थानकान्यभिधि-  
त्सुस्तान्येव तावत्स्वरूपतो निर्दिशति—

मिच्छे १ सामण २ 'मिस्से ३ अविरय ४ देसे ५ पम-त्त ६ अपमत्तो ७ ।  
नियट्टि ८ अनियट्टि ९ सुहुमु १० वसम ११ खीण  
१२ सजोगि १३ अजोगि १४ गुणा ॥२६॥

(होरि०) व्याख्या-सूचकत्वात्सूत्रमितिन्यायात्पदावयवेषु पदमुदायोपचाराद्वा । तथा एका-  
रान्ताः शब्दाः प्रथमान्ता ज्ञेयाः प्राकृतशैलीवशात् । “कयरे आगच्छइ दित्त्तुवे” इत्यादिव-  
दिति यथायोगं शब्दसंस्कारादि कार्यम् । तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १, सासादनसम्यग्दृष्टि-  
गुणस्थानम् २, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४, देशविरतिगुण-  
स्थानम् ५, प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७, अपूर्वकरणगुणस्थानम् ८,  
अनिवृत्तिवाद्दरसंपरायगुणस्थानम् ९, सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानम् १०, उपशान्तकषायवीतरागच्छन्न-  
स्थगुणस्थानम् ११, क्षीणकषायवीतरागच्छन्नस्थगुणस्थानम् १२, सयोगिकेवलिगुणस्थानम् १३,  
अयोगिकेवलिगुणस्थानम् १४ ‘गुणाः’ इति गुणस्थानकानि । एवं गुणस्थानकपदसंस्कारः । पदा-  
र्थस्तु कर्मस्तवटीकातोऽवधारणीयः । स्थानाशून्यार्थं कश्चिद्वाच्यमिः कथ्यते । ताश्चेमाः-“जोषा-  
इपयथेसु”, जिणोषइहेसु जा असइहणा । सहहणावि य मिच्छा, विवरोयपह्वणा  
जा य ॥१॥ संसयकरणं जंपि य, जो तेसु अणायरा पयथेसु । तं पञ्चविहं मिच्छं,  
तद्विद्धी मिच्छइदिहा य ॥२॥ उवसमअच्चाएँ ठिओ, मिच्छमपत्तो तमेव गंतुमणो ।  
सम्मं आसायणो, सासायणमो सुणेयव्वो ॥३॥ जह गुहइहीणि विसमाहभाव-  
सहियाणि हूनि मिस्साणि । सुंजंतस्स तहोभय, तद्विद्धी मोसद्विद्धी य ॥४॥  
तिविहे वि ह्नु सम्मत्ते, धेवा वि न विरइ जस्स कम्मवसा । सो अविरओ स्ति  
भण्णइ, वेसो पुण वेसविरइएँ ॥५॥ विकहाकसायनिहासइइओ भवे पमत्तो स्ति ।  
पंचसमिओ निगुत्तो, अपमत्तअई सुणेयव्वो ॥६॥ अप्पुव्वं अप्पुव्वं जहत्तरं जो  
करइ ठिइखंडं । रसखंडं तरघोय सां होइ अपुव्वकरणा स्ति ॥७॥ विणिवट्टंति  
विसुद्धिं, समयपइहा वि जग्ग अत्ताणं । तत्तो नियट्टिठाणं, विवरोयमओ य  
अनियट्टी ॥८॥ थूलाण लोभखंडाण वेयगो वायरो सुणेयव्वो । सुहुमाण होइ  
सुहुमो, उवसंनेहिं तु उवसंनो ॥९॥ खीणंमि मोहणोएँ, खीणकसाओ सजोग-  
जोगि स्ति । हाइ पउत्ता य तओ, अपउत्ता होइ ह्नु अजोगी ॥१०॥ इति संक्षेपतो

१ “भीसे” इत्यपि पाठः । २ “०दिति कार्यम्” इत्यपि पाठः ।

गुणस्थानकीर्तनम् । अथैतेषामेव शिष्यजनहितार्थं कालप्रमाणं गाथाभिरेव कथ्यते—“मिच्छ-  
त्तमभव्वार्ण, अणाइयमर्णतयं मुणेयव्वं । भव्वार्णं तु अणाइयसपज्जवसियं च  
सम्मत्ते ॥१॥ छावलियं सासाणं, समहियतेत्तोससागर चउत्थं । देसूणपुव्वकोडो  
पच्चमगं तेरसं च पुटो ॥ लहुपंचवस्वरचरमं, तइयं छट्ठाइधारस जाव । इय अट्टगुण-  
ट्टाणा, अनमुट्टत्ता य पत्तेयं ॥३॥” अथैतेषु गुणस्थानकेषु गृहीतेषु जीवो भवान्तरं याति  
उत न ? इत्याह—“मिच्छे सासाणे वा अविरयसम्ममि अह्व गहियमि । जति जिजा  
परलोए, सेसेक्कारसगुणे मोत्तुं ॥१॥” अथ केषु त्रियन्ते केषु च न ? इति कथ्यते—“भीसे  
१ खीणि २ सजोगा ३ न मरंतेक्कारसेसु च मरंति । तेसु वि तिसु गहिएसु, पर-  
लोगगमो न अट्टेसु ॥१॥” इति गाथार्थः ॥२६॥

साम्प्रतमेतानि मार्गणास्थानेष्वभिधित्सुः पूर्वं तावद्गतीन्द्रियेषु मार्गयन्नाह—

(मल०) सूचनात्सूत्रमितिन्यायात्पदैकदेशेऽपि पदसमुदायोपचाराद्वा । इहैवं गुणस्थान-  
कनिर्देशो द्रष्टव्यः । तद्यथा—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १; सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् २,  
सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४, देशविरतगुणस्थानम् ५,  
प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७, अपूर्वकरणगुणस्थानम् ८, अनिश्चि-  
त्वादरसंपरायगुणस्थानम् ९, सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानम् १०, उपज्ञान्तकपायवीतरागच्छद्बन्धस्थगुण-  
स्थानम् ११, क्षीणकपायवीतरागच्छद्बन्धस्थगुणस्थानम् १२, सयोगिकेवल्लिगुणस्थानम् १३,  
अयोगिकेवल्लिगुणस्थानम् १४ इति । तत्र मिथ्या विपर्यस्ता दृष्टिर्जीवाजीवादिबन्धुप्रतिपत्तिर्यस्य  
भक्षितहृत्पूरपुरुषस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत्स मिथ्यादृष्टिः, गुणस्थानशब्दः प्राग्निरूपितशब्दार्थः,  
मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । ननु यदि मिथ्यादृष्टिस्ततः कथं तस्य गुण-  
स्थानसंभवः ? गुणा हि ज्ञानदर्शनचारित्ररूपाः, तत्कथं ते दृष्टौ विपर्यस्तार्या भवेयुः ? इति,  
उच्यते, इह यद्यपि तत्त्वार्थभ्रदानलक्षणान्मगुणसर्वघातिप्रबलमिथ्यात्वमोहनीयविपाकोदयाद्ब-  
न्धुप्रतिपत्तिरूपा दृष्टिरसुमतो विपर्यस्ता भवति, तथापि काचिन्मनुष्यपश्चादिप्रतिपत्तिरन्ततो  
निगोदावस्थायामपि तथाभूताव्यक्तस्पर्शमात्रप्रतिपत्तिरविपर्यस्ताऽपि भवति । यथाऽतिबहलघन-  
पटलसमाच्छादितायामपि चन्द्रार्कप्रमायां काचित्प्रमा, तथाहि—समुभ्रतानिबहलजीमूतपटलेन  
दिवाकररजनिकरकरनिकरतिरस्कारेऽपि नैकान्तेन तत्रमानाशः संपद्यते, प्रतिप्राणिप्रसिद्धदिनर-  
जनीविभागाभावप्रसङ्गात् । उक्तं च—“सुट्ठु वि मेहसमुवए, होइ पहा चंदसुराणं ।”  
इति । एवमिहापि प्रबलमिथ्यात्वोदयेऽपि काचिदविपर्यस्तापि दृष्टिर्भवतीति तदपेक्षया मिथ्या-  
दृष्टेरपि गुणस्थानकसंभवः । यद्येवं ततः कथमसौ मिथ्यादृष्टिरेव ? मनुष्यपश्चादिप्रतिपत्त्य-  
पेक्षया अन्ततो निगोदावस्थायामपि तथाभूताव्यक्तस्पर्शमात्रप्रतिपत्त्यपेक्षया वा सम्यग्दृष्टित्वात् ,

नैष दोषः, यतो भगवदर्हप्रणीतं सकलमपि द्वादशाङ्गार्थमभिरोचयमानोऽपि यदि तद्गतमेकम-  
 प्यञ्जरं न रोचयति तदानीमप्येष मिथ्यादृष्टिरेवोच्यते, तस्य भगवति सर्वज्ञे प्रत्ययनाशात् ।  
 तदुक्तम्— 'सूत्रोक्तस्यैकस्याऽप्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः । मिथ्यादृष्टिः सूत्रं, हि  
 न प्रमाणं जिनाभिहितम् ॥१॥' इति । किं पुनः शेषो भगवदर्हदभिहितयथावज्जीवा-  
 बीवादिवस्तुतत्त्वप्रतिपत्तिविकल इति यत्किंचिदेवैतत् । मिथ्यात्वं च पञ्चधा तच्चोपरिष्ठा-  
 द्वक्ष्यामः । आयमौपशमिकसम्यक्त्वलाभलक्षणं सादयति अपनयतीति आसादनं अनन्तानु-  
 बन्धिक्रषायवेदनम् । अत्र पृषोदरादित्वाद्यशब्दलोपः । "कृद्बहुलं" इतिवचनाच्च कर्तरि  
 अनट् । सति हि अस्मिन् परमानन्दरूपानन्तसुखफलदो निःश्रेयसतरुबीजभूत औपशमिकसम्य-  
 क्त्वलाभो जघन्यतः समबमात्रेण उत्कर्तः पद्भिर्भरावलिकाभिरपगच्छतीति । ततः यह  
 आसादनेन वर्तत इति सासादनः । सम्यग् अविपर्यस्ता दृष्टिर्जिनप्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य स  
 सम्यग्दृष्टिः, सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिः तस्य गुणस्थानं सासादनसम्य-  
 ग्दृष्टिगुणस्थानम् । सास्वादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमिति वा पाठः । तत्र सह सम्यक्त्वलक्षणर-  
 सास्वादनेन वर्तत इति सास्वादनः । यथा हि भुक्तक्षीराभविषयव्यलीकचित्तः पुरुषस्तद्गमनकाले  
 क्षीराभरसमास्वादयति तथैषोऽपि मिथ्यात्वाभिमुखतया सम्यक्त्वस्योपरि व्यलीकचित्तः  
 सम्यक्त्वमुद्गमन् तद्रसमास्वादयति । ततः स चासौ सम्यग्दृष्टिश्च तस्य गुणस्थानं सास्वादन-  
 सम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् । एतच्चैवं भवति, इह गम्भीरापारसंसारपारावारमध्यमध्यासीनो जन्तु-  
 मिथ्यादर्शनमोहनीयादिप्रत्ययमनन्तपुद्गलपरावर्तान् यावदनेकशारीरिकमानसिकदुःखलक्षण्य-  
 नुभूय कथमपि तथामव्यत्वपरिपाकवशतो गिरिसरिद्रुपलघोलनाकल्पेनानाभोगनिर्वर्तितेन  
 यथाप्रवृत्तकरणेन करणं परिणामोऽत्रेतिवचनादध्यवसायविशेषरूपेण ज्ञानावरणीयादिकर्मण्या-  
 युर्वर्जानि सर्वाण्यपि पन्न्योपमासंख्येयमागन्त्यूनैकसागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानि करोति ।  
 अत्र चान्तरे जीवस्य कर्मपरिणामजनितो घनरागद्वेषपरिणामरूपः कर्कशनिविडचिरप्ररूढगुपिल-  
 वल्कप्रन्थिवद्भ्रमेदोऽभिन्नपूर्वो ग्रन्थिर्मवति । तदुक्तम्— 'तद्दि अंतरंमि जीवस्स । ह्वइह्हु  
 धमिन्नपुब्बो, गंठो एध जिणा षेत्ति ॥ गंठित्ति सुदुब्बेओ, कक्खइधणरूढगूहगंठि  
 व्व । जीवस्स कम्मजणिओ, घनरागदोसपरिणामो ॥१॥' इति । इमं च ग्रन्थि  
 यावदभव्या अपि यथाप्रवृत्तकरणेन कर्म क्षपयित्वाऽनन्तशः समागच्छन्ति । यदुक्तमावश्यक-  
 टीकायाम्— 'अभव्यस्यापि कस्यचिद्यथाप्रवृत्तकरणतो ग्रन्थिमासाद्यार्हदादिविभूति-  
 दर्शनतः प्रयोजनान्तरमो वा प्रवर्तमानस्य श्रुतसामायिकलाभो भवति न  
 शेषलाभ इति ।' एतदनन्तरं पुनः कश्चिदेव महात्मा समासन्नपरमनिवृत्तिसुखः समुल्लसित-  
 प्रचुरदुर्निवारवीर्यप्रसरो निशितकुठारधारयेव परमविशुद्धया यथोक्तस्वरूपस्य ग्रन्थेभिर्दा विषाय

मिथ्यात्वमोहनीयकर्मस्थितेरन्तर्मुहूर्तमुदयक्षणादुपरि अतिक्रम्यानिवृत्तिकरणसंज्ञितेन विशुद्धि-  
विशेषेणान्तर्मुहूर्तकालप्रमाणमन्तरकरणं करोति । अत्र यथाप्रवृत्तकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणा-  
नामयं क्रमः—“जा गंठो ता पढमं, गठि समइच्छता ह्वइ षोय । अनियद्वीकरणं  
पुण, सम्मत्तपुरक्खहे जीवे ॥१॥” ‘गठि समइच्छओ’ इति ग्रन्थि समतिक्रामतो  
मिन्दानस्येति यावत्, ‘सम्मत्त पुरक्खहे’ इति सम्यक्त्वं पुरस्कृतं येन तस्मिन् आसन्नसम्य-  
क्त्वे जीवेऽनिवृत्तिकरणं भवतीत्यर्थः । तस्मिन्श्चान्तरकरणे कृते सति कर्मणः स्थितिद्वयं भवति ।  
अन्तरकरणादधस्तनी प्रथमा स्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा । तस्मादेव चान्तरकरणादुपरितनी द्वितीया ।  
स्थापना चैयम्—△ । तत्र प्रथमस्थितौ मिथ्यात्वदलिकवेदनादसौ मिथ्यादृष्टिरेव । अन्तर्मुहूर्तेन  
पुनस्तस्यामपगतायामन्तरकरणप्रथमसमय एवौपशमिकं सम्यक्त्वमवामोति मिथ्यात्वदलिकवेद-  
नाभावात् । यथा हि वनदावानलः पूर्वदग्धेन्धनं वनमूपरं वा देशमवाप्य विध्यायति तथा  
मिथ्यात्ववेदनवनदवोऽपि अन्तरकरणमदाप्य विध्यायति, तथा च सति तस्यौपशमिकसम्यक्त्व-  
लाभः । उक्तं च—“ऊसरदेसं दद्धिइ ङ्गय च विज्झाइ वणदवो पप्प । इय मिच्छस्स  
अणुदए, उवसमसम्मं ल ३३ जीवो ॥१॥” इति । तस्यां चान्तर्मुहूर्तिक्रियासुपशान्ताद्वार्या  
परमनिधिलाभकल्पार्या जघन्येन समयमात्रशेषायामुत्कर्षतः पडावलिकाशेषार्या सत्यां कस्य-  
चिन्महाविभीषिकोत्थानकल्पोऽनन्तानुबन्धकपायोदयो भवति, तदुदये च सासादनसम्यग्दृष्टि-  
गुणस्थानके वर्तते, उपशमश्रेणिप्रतिपतितो वा कश्चित्सासादनत्वं याति । तदुत्तरकालं चावश्यं  
मिथ्यात्वोदयादसौ मिथ्यादृष्टिर्भवतीति ॥ तथा सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिर्यस्यासौ सम्यग्मि-  
थ्यादृष्टिः तस्य गुणस्थानं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । इहानन्तरामिहितविधिना लब्धे-  
नौपशमिकसम्यक्त्वेनौषधविशेषकल्पेन मदनकोद्रवस्थानीयमिथ्यात्वमोहनीयं कर्म शोधयित्वा  
त्रिधा करोति । तद्यथा—शुद्धम् १, अर्द्धविशुद्धम् २, अविशुद्धं ३ चेति । स्थापना—△△△ ॥  
तत्र त्रयाणां पुञ्जानां मध्ये यदाऽर्द्धविशुद्धः पुञ्ज उदेति तदा तदुदयवशाज्जीवस्यार्द्धविशुद्धमर्ह-  
दमिहिततत्त्वश्रद्धानं भवति, तेन तदाऽसौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमन्तर्मुहूर्तकालं स्पृशति ।  
तत ऊर्ध्वमवश्यं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा गच्छतीति ॥ तथा विरमति स्म सावद्ययोगेभ्यो  
निवर्तते स्मेति विरतः । “गत्यकर्मण्याधारे च” इति कर्तरि क्तप्रत्ययः । यथा श्यितो  
देवदत्त इति । अत्र न विरतोऽविरतः । यद्वा ‘तद्भावात् क्तः’ इति नपुंसके भावे क्तप्रत्यये  
विरमणं विरतं सावद्ययोगप्रत्याख्यानम्, नात्य विरतमस्तीत्यविरतः स चासौ सम्यग्दृष्टि-  
श्चेत्यविरतसम्यग्दृष्टिः । एष हि अविहितप्रत्ययं दुरन्तनरकादिदुःखफलं कर्मबन्धम् । सावद्य-  
योगविरतिं च परममुनिप्रणीता सिद्धिसौधाध्यारोहणनिःश्रेणिकल्प्या जानन्नपि न विरतिमभ्यु-  
पगच्छति, न च तत्पालनाय यतते अप्रत्याख्यानावरणकपायोदयविघ्नितत्वात् । उक्तं च—

“बंधं धविरइहेउं, जाणंतो रागदोसदुक्खं च । विरइसुह इच्छंतो, विरइं काउं  
 च असमग्घो ॥१॥ एस असजयसम्मो, निंदंतो पावकम्मकरणं च । अहिगय-  
 जीवाजीवां, अचलियदिट्ठी बलियमांहो ॥२॥” सम्यग्दृष्टित्वं चास्य पूर्वव्यावर्णितान्तर-  
 न्तरकरणकलसंभविनि औपशमिकमभ्यवत्त्वे विशुद्धदर्शनमोहपुञ्जोदयसंभविनि क्षायोपशमिक-  
 सम्यवत्त्वे वा सर्वदर्शनमोहनीयक्षयसमुत्थक्षायिकसम्यवत्त्वे वा सति द्रष्टव्यम्, तस्य गुणस्थान-  
 मविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ॥ तथा सर्वसावध्ययोगस्य देशे एकव्रतविषयस्थूलसावध्ययोगादौ  
 सर्वव्रतविषयानुमतिवर्जसावध्ययोगान्ते विरतं विरतिर्यस्यासौ देशविरतः । सर्वसावध्ययोगविरति-  
 स्त्वस्य नास्ति प्रत्याख्यानावरणकपायोदयात् । सर्वविरतिरूपं हि प्रत्याख्यानमावृण्वन्तीति  
 प्रत्याख्यानावरणाः । उक्तं च—“सम्महंसणसहिओ, गिण्हंतो विरइमप्पसत्तोए ।  
 एगळ्वयाइच्चरिमो, अणुमहमंतो त्ति देसजई ॥१॥ परिमियमुवसेवंतो, अपरिमि-  
 यमणंतयं परिहरंतो । पावइ परम्मि लोए, अपरिमियमणंतयं सोक्खं ॥२॥  
 देशविरतस्य गुणस्थानं देशविरतगुणस्थानम् ॥ तथा संयच्छति स्म सम्यगुपरमति स्मेति  
 संयतः । “गम्यकर्मणयाधारे च” इति कर्त्तरि क्तप्रत्ययः । प्रमाद्यति स्म संयमयोगेषु सीदति  
 स्मेति प्रमत्तः, प्रववत्कर्त्तरि क्तप्रत्ययः । यद्वा प्रमदनं प्रमत्तं प्रमादः, मदिराकपायविषयादि-  
 मेदात्पञ्चप्रकारः, प्रमत्तमस्यास्तीति प्रमत्तः प्रमादवान्, “अध्माविभ्यः” इति मत्वर्थीयोऽ-  
 प्रत्ययः । प्रमत्तश्चासौ संयतश्च प्रमत्तसंयतः तस्य गुणस्थानं प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । विशुद्ध-  
 विशुद्धिप्रकर्षापकर्षकृतः स्वरूपमेदः । तथाहि—देशविरतगुणापेक्षयैतद्गुणानां विशुद्धिप्रकर्षोऽ-  
 विशुद्धयपकर्षश्च । अप्रमत्त संयतगुणस्थानापेक्षया तु विपर्ययः । एवमन्येष्वपि गुणस्थानकेषु  
 पूर्वोत्तरापेक्षया विशुद्धयविशुद्धिप्रकर्षापकर्षयोजना द्रष्टव्या ॥ तथा न प्रमत्तोऽप्रमत्तः, यद्वा  
 नास्ति प्रमत्तमस्येत्यप्रमत्तः स चासौ संयतश्च तस्य गुणस्थानमप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ॥

तथा अपूर्वमभिनवं प्रथममिति यावत्करणं स्थितिघात १ रसघात २ गुणश्रेणि ३ गुणसं-  
 क्रम ४ स्थितिवन्धानां ५ पञ्चानामर्थानां निर्वर्तनं यस्यासावपूर्वकरणः । तथाहि—बृहत्प्रमाणाया  
 ज्ञानावरणीयादिकर्मस्थितेरपवर्तनाकरणेन खण्डनमल्पीकरणं स्थितिघात उच्यते । रसस्यापि च  
 प्रचुरीभूतस्य सतोऽपवर्तनाकरणेन खण्डनमल्पीकरणं रसघातः । एतौ च द्वावपि पूर्वगुणस्थानकेषु  
 विशुद्धेरल्पत्वादल्पावेव कृतवान् । अत्र पुनर्विशुद्धेरतीव्रप्रकृष्टत्वात् बृहत्प्रमाणतयाऽपूर्वाविमौ  
 करोति । तथोपरितनस्थितेर्विशुद्धिवशादपवर्तनाकरणेनावतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणमुद-  
 यक्षणादुपरि क्षिप्रतरक्षपणाय प्रतिक्षणमसंख्येयगुणबृद्ध्या यद्विरचनं सा गुणश्रेणिः । स्थापना  
 चैयम्—★ ॥ इमां च पूर्वगुणस्थानकेष्वविशुद्धत्वात्कालतो द्राघीयसीमप्रथीयसीं च दलिकस्या-  
 पवर्तनाद्विरचितवान् । इह पुनर्विशुद्धतरत्वादपूर्वा कालतो ह्रस्वतरां पृथुतरां च प्रभूततरदलिक-

स्यापवर्तनाद्विरचयतीति । तथा वक्ष्यमानशुभप्रकृतिष्ववध्यमानाशुभप्रकृतिदलिकस्य प्रतिसमयम-  
संख्येयगुणवृद्धया विशुद्धिवशान्नयनं गुणसंक्रमः, तमपीह पूर्वा करोति । तथा स्थितिं कर्मणां  
प्राग् अशुद्धत्वाद्द्राघीयसीं वद्ववान्, इह तु तामपूर्वीं विशुद्धिवशाद् ह्सीयसीं वध्नातीति । एष  
चापूर्वकरणो द्विधा, क्षपक उपशमकश्च । क्षणोपशमार्हत्वाच्चैवमुच्यते । राज्यार्हकुमारराजवत् ।  
न पुनरसौ क्षपयति उपशमयति वा, तस्य गुणस्थानमपूर्वकरणगुणस्थानम् । अस्मिंश्च गुणस्था-  
नके कालत्रयवर्तिनो नानाजीवानाश्रित्य प्रतिसमयं यथोत्तरमधिकवृद्धयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रमा-  
णान्यध्यवसायस्थानानि भवन्ति । तथाहि—येऽस्य गुणस्थानकस्य प्रथमसमयं प्रतिपद्यन्ते प्रति-  
पत्स्यन्ते च तान् सर्वानपेक्ष्य जघन्यादीन्युत्कृष्टान्तान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यव-  
सायस्थानानि लभ्यन्ते, क्वचित्कदाचित्केपांचित्तेषां प्रथमसमयवर्तिनां परस्परमध्यवसायस्थानना-  
नात्वस्यापि भावात् । तस्य च नानात्वस्यैतावत् एव केवलवेदिनोपलब्धत्वात् । अत एव चेद-  
मपि न वाच्यम्, कालत्रयवर्तिनामेतद्गुणस्थानकप्रथमसमयप्रतिपत्तुणामानन्त्यात्परस्परमध्यव-  
सायस्थाननानात्वाच्चानन्तान्यध्यवसायस्थानानि प्राप्नुवन्तीति बहूनां प्राय एकाध्यवसायस्थान-  
वर्तित्वाद्द्वितीयसमये तदन्यान्यधिकतराण्यध्यवसायस्थानानि लभ्यन्ते तृतीयसमये तदन्यान्य-  
धिकतराणी चतुर्थसमये तदन्यान्यधिकतराणीत्येवं यावच्चरमसमयः । एतानि च स्थाप्यमानानि

०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०

विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्त्वृणन्ति । स्थापना ॥ ननु द्वितीयादिसमयेष्वध्यवसाय-  
स्थानानां वृद्धौ किं कारणम् ?, उच्यते, तथास्यभावविशेषः । एतद्गुणस्था-  
नकं प्रविपत्तारो हि प्रतिसमयं विशुद्धिप्रकर्षमासादयन्तः खलु स्वभावात् एव  
ऊर्ध्वमूर्ध्वतरं गच्छन्तो बहवो विभिन्नेषु विभिन्नेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्तन्त

इति । अत्र च प्रथमसमयजघन्याध्यवसायस्थानात्प्रथमसमयोत्कृष्टमध्यवसायस्थानमनन्तगुणविशुद्धम् ।  
प्रथमसमयोत्कृष्टाध्यवसायस्थानाद्द्वितीयसमये जघन्यमध्यवसायस्थानमनन्तगुणविशुद्धमिति ।  
तस्मात्तदुत्कृष्टमनन्तगुणविशुद्धमित्येवं यावद्द्विचरमसमयोत्कृष्टाध्यवसायस्थानाच्चरमसमयजघ-  
न्यमध्यवसायस्थानमनन्तगुणविशुद्धम् । तस्मादपि तदुत्कृष्टमनन्तगुणविशुद्धम् । इत्येकसमयग-  
तानि चामून्यध्यवसायस्थानानि परस्परमनन्तभागवृद्धा १ ऽसंख्यातभागवृद्ध २ संख्यातभाग-  
वृद्ध ३ संख्येयगुणवृद्धा ४ ऽसंख्येयगुणवृद्धा ५ ऽनन्तगुणवृद्ध ६ रूपषट्स्थानकपतितानि । युग-  
पदेतद्गुणस्थानकप्रविष्टानां च परस्परमध्यवसायस्थानस्य व्यावृत्तिलक्षणा निवृत्तिरप्यस्ति,  
यथोक्तमनन्तरमितिकृत्वा निवृत्तिगुणस्थानकमप्येतदुच्यते । उक्तं च—'नियदृि अनियदृि षायरे  
सुष्टुमे' इति इदानीमनिवृत्तिनादरसंपरायगुणस्थानकमुच्यते—तत्र युगपद्गुणस्थानकं प्रतिपन्नानां  
बहूनामपि जीवानामन्योऽन्यमध्यवसायस्थानस्य व्यावृत्तिर्निवृत्तिः सा नास्त्यस्येत्यनिवृत्तिः ।  
समकालमेतद्गुणस्थानकरुढस्थापरस्य यस्मिन् समये यदध्यवसायस्थानमसावपि विवक्षितः



पुरुषस्मिन् समये तदेवाध्यवसायस्थानमनुवर्तत इति यावत् । संपरैति पर्यटति मंमारमनेनेति  
संपरायः कपायोदयः, वादरः सूक्ष्मकिङ्कीकृतसंपरायापेक्षया स्थूरः संपरायो यस्य स वादरसंपरायः,  
अनिवृत्तिश्चासौ वादरसंपरायश्च तस्य गुणस्थानं अनिवृत्तिवादरसंपरायगुणस्थानम् । तस्यां  
चानिवृत्तिवादरसंपरायगुणस्थानकाद्धायामान्तमौहूर्तिक्रिया प्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमनन्तगुण-  
विशुद्धं यथोत्तरमध्यवसायरथानं भवति । यावन्तश्चान्तमूर्हूर्ते समयास्तावन्त्येवाध्यवसायरथानानि  
तत्प्रविष्टानां भवन्ति नाधिकानि, एकसमयप्रविष्टानां सर्वेषामप्येकाध्यवसायस्थानत्वात् । स  
चानिवृत्तिवादरो द्वेधा, क्षपक उपशमकश्च । क्षपयत्युपशमयति वा मोहनीयं कर्मेतिकृत्वा ॥  
तथा सूक्ष्मः किङ्कीकृतः संपरायो लोमकपायोदयरूपो यस्य स सूक्ष्मसंपरायः । स द्विधा, क्षपक  
उपशमकश्च । क्षपयति उपशमयति वा लोमकेकमितिकृत्वा तस्य गुणस्थानं सूक्ष्मसंपरायगुण-  
स्थानम् ॥ तथा छ्वाद्यति ज्ञानादिगुणमात्मन इति च्छन्न ज्ञानावरणीयादिघातिकर्मोदयः । छन्नानि  
तिष्ठतीति च्छन्नस्थः । च स सरागोऽपि भवतीति तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतो विगतो  
रागो मायालोमकपायोदयरूप उपलक्षणत्वादस्य द्वेषोऽपि क्रोधमानोदयरूपो यस्यासौ वीतरागः  
स चासौ छन्नस्थश्च वीतरागच्छन्नस्थः । स च क्षीणकपायोऽपि भवति तस्यापि यथोक्तरागाप-  
गमात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थमुपशान्तकपायग्रहणम् । उपशान्ता उपशमिता विद्यमाना एव  
सन्तः संक्रमणोद्घर्तनादिकरणत्रिपाकप्रदेशोदयायोग्यत्वेन व्यवस्थापिताः कपायाः प्राङ्निरूपितश-  
ब्दार्था येन स उपशान्तकपायः स चासौ वीतरागच्छन्नस्थश्च तस्य गुणस्थानमुपशान्तकपायवीत-  
रागच्छन्नस्थगुणस्थानम् । एतद्विनेयजनानुग्रहाय विशेषतो मूलत एव भाव्यते । तत्र प्रथमतो-  
ऽनन्तानुबन्धिकपायानविरतो देशविरतः प्रमत्तोऽप्रमत्तो वोपशमय्य ततो दर्शनमोहनीयत्रितयमु-  
पशमयति । कथमनन्तानुबन्धिनामुपशमनम् ? इति चेत्, उच्यते, योऽविरतादीनामन्यतमोऽन-  
न्तानुबन्धन उपशमयितुं प्रयतते सोऽन्यतमस्मिन् योगे वर्तमानोऽवश्यं तेजःपद्मशुक्ललेश्याऽ-  
न्यतमलेश्यायुक्तः साकारोपयोगोपयुक्तोऽन्तःसागरोपमकोटीकोटीस्थितिसत्कर्मा प्रकृतीश्च  
चघ्नाति परिवर्तमानाः शुभा एव । प्रतिसमयं चाशुमानां कर्मणामनुभागमनन्तगुणहान्या  
करोति, शुमानां चानन्तगुणवृद्ध्या । स्थितिबन्धेऽपि च पूर्णं पूर्णं सत्यन्यं स्थितिबन्धं पन्थोप-  
मासंख्येयमागन्धूनं करोति । करणकालात्पूर्वमपि चान्तमूर्हूर्त कालं यावदवदायमानचित्तसंत-  
तिरवतिष्ठते । स्थित्वा च तावन्तं कालमान्तमौहूर्तिकानि त्रीणि करणानि करोति । तद्यथा—  
यथाप्रवृत्तकरण १ मूर्ध्वकरण २ मनिवृत्तिकरणं ३ च । चतुर्थी तूपशान्ताद्धा । तत्र यथाप्रवृत्त-  
करणे प्रविशन् प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या प्रविशति, न च तत्र स्थितिघातं रसघातं  
गुणश्रेणिं गुणसंक्रमणं वा करोति तद्योग्यविशुद्धयभावात् । तस्यां चान्तमौहूर्तिक्रिया यथाप्रवृत्त-  
करणार्था कालत्रयवर्तिनानाजीवापेक्षया प्रतिसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि विशुद्धि-

स्थानानि भवन्ति । प्रतिसमयं चैतानि सर्वाण्यपि षट्स्थानपतितानि । तत्र प्रथमसमये या जघन्या विशुद्धिः सा सर्वस्तोका । ततो द्वितीयसमये जघन्या विशुद्धिरनन्तगुणा । ततोऽपि तृतीयसमये जघन्या विशोधिरन्तगुणा । एवं तावद्द्रष्टव्यं यावत्तस्य यथाप्रवृत्तकरणस्यासंख्येयो भागो गतो भवति । ततोऽसंख्येयभागगतचरमसमयजघन्यविशुद्धेः सकाशात्प्रथमसमये उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । ततोऽपि यतो जघन्यविशुद्धिस्थानाभिषुत्तस्तत उपरितनं जघन्यं स्थानमनन्तगुणम् । ततो द्वितीयसमये उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । तत उपरितनं जघन्धं स्थानमनन्तगुणम् । ततस्त्र्तीयसमये उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । एवमुपदर्शितक्रमेण जघन्यमुत्कृष्टं चासुश्रुता सताऽनन्तगुणवृद्धया श्रेण्या तावज्ज्ञानव्यं यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्यान्तिमं जघन्यं विशुद्धिस्थानम् । ततः शेषाण्युत्कृष्टानि स्थानानि सर्वाण्यप्यनन्तगुणवृद्धया श्रेण्या नेतव्यानि यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसमये उत्कृष्टं विशुद्धिस्थानम् । भणितं यथाप्रवृत्तकरणम् ॥ इदानीमपूर्वकरणमुच्यते-

१२	०	०	०	०	०	०	०	०	१६
१०	०	०	०	०	०	०	०	०	१५
८	०	०	०	०	०	०	०	०	१४
६	०	०	०	०	०	०	०	०	१३
४	०	०	०	०	०	०	०	०	१२
३	०	०	०	०	०	०	०	०	११
२	०	०	०	०	०	०	०	०	१०
१	०	०	०	०	०	०	०	०	९

तत्रापूर्वकरणस्य प्रतिसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि विशुद्धिस्थानानि भवन्ति, तानि च प्रतिसमयं षट्स्थानपतितानि । तत्र प्रथमसमये जघन्या विशुद्धिः सर्वस्तोका, सा च यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयोत्कृष्टविशुद्धिस्थानादनन्तगुणा । ततोऽपि चापूर्वकरणस्य प्रथमसमय एवोत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा ।

ततोऽपि च द्वितीयसमये जघन्या विशुद्धिरनन्तगुणा । एवं जघन्यमुत्कृष्टं चानन्तगुणवृद्धया श्रेण्या तावन्नेतव्यं यावदपूर्वकरणस्य चरमसमये जघन्यविशुद्धित उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । स्थापना

६	०	०	०	०	०	०	०	०	१०
७	०	०	०	०	०	०	०	०	९
४	०	०	०	०	०	०	०	०	६
३	०	०	०	०	०	०	०	०	४
१	०	०	०	०	०	०	०	०	२

चेयम्- ॥ अस्मिन्नापूर्वकरणे प्रविशन् स्थितिघातं रसघातं गुणश्रेणिं गुणसंक्रमं स्थितिबन्धं च युगपदारमते । तत्र स्थितिघातो नाम सत्कर्मणोऽग्रिमभागादुत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्स्वमात्रां जघन्यतः पल्योपमासंख्येयभागमात्रां

स्थितिं खण्डयति तद्वह्लिकं चाधस्ताद्याः स्थितीर्न खण्डयिष्यति तत्र प्रक्षिपति । अन्तर्मुहूर्तमात्रकालेन तद्वह्लिकं खण्डयते । ततः पुनरपि ततोऽधस्तादुपदर्शितक्रमेणैव पल्योपमासंख्येयभागमात्रं स्थितिखण्डमुत्करति निक्षिपति च । एवमपूर्वकरणाद्वायामनेकानि स्थितिखण्डसहस्राणि भवन्ति । तस्य चापूर्वकरणस्य प्रथमसमये यत्स्थितिसत्कर्मासीत् तस्यैव चरमसमये संख्येयगुणहीनं जातम् । अधुनाऽनुभागघातो भण्यते-तत्र यदशुभप्रकृतीनामनुभागसत्कर्म तस्यानन्ततमभागमपहाय शेषस्य प्रतिसमयमनन्तानुभागभागान् विनाशयन् साकल्यतोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण विनाशमापादयति । ततः पुनरपि तस्यानन्तरमुक्तस्यानन्ततमभागस्यानन्तभागं विमुच्य शेषं प्रतिसमयमनन्ताननुभागभागान् विनाशयन् साकल्यतोऽनन्तर्मुहूर्तमात्रेण विनाशयति । ततः पुनरपि प्राग्मुक्तस्यानन्तभागस्यानन्तभागं मुक्त्वा शेषमन्तर्मुहूर्तमात्रेण पूर्वोक्तविधिना साकल्येन विनाशयति ।

कस्थितिखण्डोत्किरणकालेऽनेकान्यनुमागखण्डसहस्राणि व्यतिक्रामन्ति । स्थितिखण्डसहस्रं स्त्व-  
पूर्वकरणं परिसमाप्यते । तथा गुणश्रेणिं कालतोऽपूर्वकरणकालतोऽनिवृत्तिकरणकालतश्च विशेष-  
धिकां करोति । तत्रोदयक्षणादन्तर्मुहूर्तप्रमाणाभ्यः स्थितिभ्य उपरितनीनां स्थितीनां संबन्धि-  
दलिकमादायोदयावलिजात उपरि वर्तमानासु स्थितिष्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणासु मध्ये निक्षिपति । यच्च  
प्रथमसमयगृहीतं दलिकं निक्षिप्यते तत्प्रथमस्थितौ स्तोकम्, द्वितीयस्थितावसंख्येयगुणम्,  
तृतीयस्थितावसंख्येयगुणम्, एवं यावन्निक्षेपविषयभूतान्तर्मुहूर्तचरमस्थितिः । द्वितीयसमयेऽपि  
यदलिकमन्तर्मुहूर्तादुपरितनस्थितिभ्यो गृह्यते, ततः प्रथमसमयगृहीतदलिकादसंख्येयगुणम्,  
तदपि निक्षिप्यमाणं पूर्ववदेवावगन्तव्यम् । एवं तृतीयादिसमयेऽपि ग्रहणनिक्षेपौ द्रष्टव्यौ ।  
विपाकानुभवतश्च क्षीयमाणास्वधस्तनस्थितिषु तत उपर्युपरितरमारभ्योदयावलिजात ऊर्ध्व  
शेषासु स्थितिषु शेषसमयगृहीतं दलिकं निक्षिप्यते इति । अधुनां गुणसंक्रमो भण्यते—तत्रापूर्वक-  
रणस्य प्रथमसमये यदनन्तानुबन्धिकषायसंबन्धदलिकं परप्रकृतौ संक्रमयति तत्स्तोकम् । ततो  
द्वितीयसमये संक्रम्यमाणमसंख्येयगुणम् । तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणम् । एवं यावदपूर्वकरणाद्वा-  
याश्चरमसमयः । तथाऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽन्य एव स्थितिबन्ध आरभ्यते । स्थितिबन्धस्थिति-  
खण्डे च युगपदारभ्येते युगपदेव च निर्घां यातः । एवमेते पञ्च पदार्था अस्मिन्नपूर्वकरणे युगपदार-  
भ्यन्ते । गतमपूर्वकरणम् । इदानीमनिवृत्तिकरणमुच्यते—अनिवृत्तिशब्दार्थभावना प्राग्बदवग-  
न्तव्या । अत्रापि पूर्वोक्ताः स्थितिघातादयः पञ्च पदार्था युगपदारभ्यन्ते । तस्याश्चानिवृत्तिकर-  
णाद्वायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्स्वनन्तानुबन्धिनां कषायाणामन्तरकरणं करोति । तच्चैवम्-  
अघस्तादावलिकामात्रं मुक्त्वा तत उपरिष्ठादन्तर्मुहूर्तमात्रं स्थितिखण्डमुत्किरति । उत्कीर्यमाणं  
च दलिकं बध्यमानासु परप्रकृतिषु संक्रमयति । अन्तर्मुहूर्तमात्रकालेन च स्थितिबन्धकालसमेन  
तदन्तरकरणं परिसमाप्यते । तस्मिन्नेव च समये प्रथमस्थित्यावलिजागतं च दलिकं 'स्तिबुक्'-  
संक्रमेण वेद्यमानासु परप्रकृतिषु प्रक्षिपति । उपरितनस्थितिगतं च 'दलिकमेवमुपशमयति—प्रथम-  
समये स्तोकम् । द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । तृतीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । एवम-  
न्तर्मुहूर्तमात्रेणानन्तानुबन्धिनः साकल्येनोपशमयति ।

अन्ये पुनराहुः—नैवानन्तानुबन्धिनामुपशमना भवति, किन्तु विसंयोजनैव, सा पुनरेवम्—  
इहाविरतादयः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टयश्चातुर्गतिका अपि । तद्यथा—नारका देवा अविरतसम्यग्दृ-  
ष्टयः, तिर्यञ्चोऽविरतसम्यग्दृष्टयो देशविरता वा, मनुजा अविरतसम्यग्दृष्टयो देशविरताः सर्वविरता  
वा, यथासंभवं विशुद्धिपरिणामेन परिणममाना अनन्तानुबन्धिनां विसंयोजनार्थं यथाप्रवृत्तादीनि

१ अनुदीर्णसुदीर्णान्तस्तुल्यकालं प्रतिपक्षणम् । दलिकं संक्रमं याति येन स स्तिबुको मतः ॥१॥ २  
“दलिकमुपशमयितुमारभते । तच्चैवम्” इत्यपि पाठः ॥

श्रीणि करणानि कुर्वन्ति । तत्र यथाप्रवृत्तमपूर्वं च प्राग्वत् । अनिवृत्तिकरणं पुनः प्राप्तः सन् अनन्तानुबन्धिनां स्थितिमुद्वलनासंक्रमेणोद्वलयन् तावदुद्वलयति यावत्पण्योपमासंख्येयभागामात्रं स्थितम् । तदपि च वध्यमानासु मोहनीयप्रकृतिषु परिणमयति प्रथमसमये स्तोकम्, द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम् । एवं यावच्चरमसमये आवलिकागतं भुवत्वा शेषं सर्वं संक्रमेण द्विचरमसमयपरिणमितादसंख्येयगुणं परिणमयति । आवलिकागतं पुनः स्तिबुकसंक्रमेण वेद्यमानासु प्रकृतिषु संक्रमयति । भणिता अनन्तानुबन्धिनां विसंयोजना । साम्प्रतं दर्शनत्रिकस्योपशमना भण्यते—तत्र मिथ्यात्वस्योपशमको द्विधा, मिथ्यादृष्टिः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिश्च । इतरयोस्तु द्वयोरपि क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिरेव । तत्र मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वोपशमना यथा कर्मप्रकृतिसंग्रहणायाम् इह तु ग्रन्थगौरवभयान्नोच्यते । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टेर्दर्शनत्रिकोपशमनाविधिः पुनरयम्—इह क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिः संयमे वर्तमानः सन्नन्तमुर्हूर्तमात्रेण दर्शनत्रिकमुपशमयति । उपशमयतश्च करणत्रिकविधिः पूर्ववत्तावद्वक्तव्यः यावदनिवृत्तिकरणाद्वायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्स्वन्तरकरणम् । अन्तरकरणं च कुर्वन् वेदकसम्यक्त्वस्य प्रथमस्थितिमन्तमुर्हूर्तमात्रां स्थापयति । मिथ्यात्वमिश्रयोश्चावलिकामात्राम् । उत्कीर्यमाणं च दलिकं त्रयाणामपि सम्यक्त्वस्य प्रथमस्थितौ प्रक्षिपति । मिथ्यात्वमिश्रयोः प्रथमस्थितिदलिकं सम्यक्त्वस्य प्रथमस्थितिदलिकमध्ये स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । सम्यक्त्वस्य पुनः प्रथमस्थितौ विपाकानुभवतः क्रमेण क्षीणार्था सत्यामुपशमसम्यग्दृष्टिर्भवति । उपरितनदलिकस्य चोपशमना त्रयाणामपि मिथ्यात्वादीनामनन्तानुबन्धिनामुपरितनस्थितिदलिकस्येवावसेया । एवमुपशान्तदर्शनमोहनीयत्रिकश्चारित्रमोहनीयमुपशमयितुकामः पुनरपि यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति । करणानां च स्वरूपं प्राग्वदवगन्तव्यम् । केवलमिह यथाप्रवृत्तकरणमप्रमत्तगुणस्थाने भवति । अपूर्वकरणमपूर्वकरणगुणस्थानके । अत्रापि स्थितिघातादयः पूर्ववदेव । अपूर्वकरणाद्वायाश्च संख्येयभागे गते सति निद्राप्रचलयोर्बन्धव्यवच्छेदः । ततः प्रभूतेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु सत्त्वपूर्वकरणद्वायाः संख्येया भागा गता भवन्ति । अस्मिन्श्चान्तरे देवगति १ देवानुपूर्वी २ पञ्चेन्द्रियजाति ३ वैक्रिया ४ ऽऽहारक ५ तैजस ६ कर्मण ७ समचतुरस्र ८ वैक्रिया ९ ऽऽहारकाङ्गोपाङ्ग १० वर्णादिचतुष्का १४ ऽगुरुलघू १५ पषात १६ पराघातो १७ च्छ्वास १८ त्रस १९ वादर २० पर्याप्त २१ प्रत्येक २२ प्रज्ञस्तविहायोगति २३ स्थिर २४ शुभ २५ सुमग २६ सुस्वरा २७ ऽऽदेय २८ निर्माण २९ तीर्थकर ३० संज्ञितानां त्रिशतः प्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदः । ततः स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते सत्यपूर्वकरणाद्वायाश्चरमसमये हास्यरतिभयजुगुप्सानां बन्धव्यवच्छेदः । उदयव्यवच्छेदश्च सर्वकर्मणां देशोपशमनान्धिचिनिक्वाचनाकरणव्यवच्छेदश्च । ततोऽनन्तरसमयेऽनिवृत्तिकरणे प्रविशति । तत्रापि स्थितिघातादीनि पूर्व-

वत्करोति । ततोऽनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु दर्शनमसकशेषाणामे-  
 कावैशतेर्मोहनीयप्रकृतीनामन्तरकरणं करोति । तत्र यस्य वेदस्य संज्वलनस्य चोदयोऽस्ति  
 तयोः स्वोदयकालप्रमाणां प्रथमस्थितिं करोति शेषाणां त्वेकादशकपायाणामष्टानां च नोक-  
 षायाणामावलिकामात्राम् । वेदत्रिकसंज्वलनचतुष्टयस्य तूदयकालप्रमाणमिदम्—स्त्रीवेदनपुंसक-  
 वेदयोरुदयकालः सर्वस्तोकः, स्वस्थाने तु परपरं तुल्यः, ततः पुरुषवेदस्यासंख्येयगुणः,  
 तस्मादपि संज्वलनक्रोधस्योदयकालो विशेषाधिकः, तस्मादपि मानस्य विशेषाधिकः  
 एवं यथोत्तरं मायालोभयोरुदयकालो विशेषाधिको वाच्यः । अत एवान्तरकरणमु-  
 परितनभागापेक्षया समम्, अधोभागापेक्षया तूक्तनीत्या विपमम् । अन्तरकरणविधान-  
 कालश्च स्थितिघाताभिनवकर्मबन्धकालसमानः । अन्तरकरणगतस्य चोत्कीर्यमाणस्य दलिकरय  
 प्रक्षेपविधिरयम्—यस्य कर्मणस्तदानुभवनं बन्धश्च भवति तस्यान्तरकरणसत्त्वाप्रदेशाग्रं प्रथम-  
 स्थितौ द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति, यथा पुरुषवेदोदयारूढः पुरुषवेदस्य । यस्य पुनरनु-  
 भवनमस्ति, न तु बन्धः, तस्यान्तरकरणसत्त्वं दलिकं प्रथमस्थितौ प्रक्षिपति, यथा स्त्रीनपुंसक-  
 वेदोदयारूढः स्त्रीनपुंसकवेदयोः । यस्य पुनरुदयो नास्ति, बन्धः पुनरस्ति, तस्यान्तरकरणसत्त्वं  
 दलिकं द्वितीयस्थितौ प्रक्षिपति, यथा संज्वलनक्रोधोदयारूढः शेषसंज्वलनानां । यस्य पुनरुदयो  
 बन्धश्च नास्ति तस्यान्तरकरणसत्त्वं प्रदेशाग्रं परप्रकृतिषु प्रक्षिपति, यथा द्वितीयतृतीयकपाया-  
 णाम् । इहानिवृत्तिकरणे बहु वपुष्यं तद्ग्रन्थगौरवभयाञ्चोच्यते । केवलं विशेषार्थिना कर्म-  
 प्रकृतिसंग्रहणिर्निरीक्षितव्या । अन्तरकरणं च कृत्वा ततो नपुंसकवेदमन्तर्मुहूर्तमात्रेणोपशम-  
 यति । उपशमनाविधिः प्राग्वत् । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण स्त्रीवेदम् । ततोऽन्तर्मुहूर्तेन हास्यादि-  
 षट्कम् । तस्मिन्प्रोपशान्ते तत्समयमेव पुरुषवेदस्य बन्धोदयव्यवच्छेदः । ततः समयोनावलि-  
 काद्विकेन पुरुषवेदमुपशमयति, ततो युगपदन्तर्मुहूर्तमात्रेणाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरण-  
 क्रोधौ । तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणव्यवच्छेदः । ततः  
 समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनक्रोधमुपशमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाप्रत्याख्यानावरणप्रत्या-  
 ख्यानावरणौ मानौ युगपदुपशमयति । तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनमानस्य बन्धोदयो-  
 दीरणव्यवच्छेदः । ततः समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमानमुपशमयति । ततो युगपदन्त-  
 र्मुहूर्तमात्रेणाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणे माये उपशमयति । तदुपशान्तौ च तत्समय-  
 मेव संज्वलनमायाया बन्धोदयोदीरणव्यवच्छेदः । ततोऽसौ लोभवेदको जातः । लोभवेदका-  
 द्धायाश्च द्वयोस्त्रिभागयोर्वर्तमानो द्वितीयस्थितेः सकाशाद्दलिकमानीय प्रथमस्थितिं करोति वेद-  
 यति च । तत्र प्रथमत्रिभागोऽश्वकर्णकरणाद्वा तत्र विशुद्धया वर्द्धमानोऽपूर्वस्पर्द्धकानि करोति ।  
 अपूर्वस्पर्द्धकशब्दार्थं चाग्रे वक्ष्यामः । संज्वलनमायायाश्च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने सति ततः

समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमायामुपशमयति । एवमश्वकर्णकरणाद्द्वार्यां गतार्यां ततो द्वितीये लोभवेदकाद्वायास्त्रिभागे वर्तमानो लोभस्य द्वितीयस्थितिगतस्य किट्टीः करोति । किट्टीकरणाद्वाया-  
 श्वरमसमये युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशमयति । तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदः वादरलोभोदयव्यवच्छेदश्च । ततोऽसौ सूक्ष्मसंपरायो भवति । तदा चोप-  
 रितनस्थितौ यत्किट्टीकृतं दलिकं तत्कतिपयं ततः समानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्धान्तर्मुहूर्तप्रमाणा । तदानीं च सूक्ष्मकिट्टीकृतं दलिकं समयोनावलिकाद्विकवद्धं चोपश-  
 मयति सूक्ष्मसंपरायाद्वायाश्वरमसमये संज्वलनलोभ उपशान्तो भवति, तत्सममेव च ज्ञानावरणपञ्चक  
 ५ दर्शनावरणचतुष्का ९ ऽन्तरायपञ्चक १४ यशःक्षीच्यु १५ च्चैर्गोत्राणां १६ बन्धव्यवच्छेदः ।  
 ततोऽनन्तरसमयेऽसावुपशान्तकपायो भवति, स च जवन्येनैकसमयमात्रमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावद्भवत्येते । तत् ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति । प्रतिपातश्च द्विधा, भवक्षयेण अद्वाक्षयेण च । तत्र  
 भवक्षयो त्रियमाणस्य । अद्वाक्षय उपशान्ताद्द्वार्यां समाप्तायाम् । अद्वाक्षयेण च प्रतिपतन् यथैवारूढ-  
 स्तथैव प्रतिपतति । यत्र यत्र बन्धोदयो व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति यावत् । प्रतिपतंश्च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् । कश्चित् पुनस्ततोऽप्यधस्तनं गुण-  
 स्थानकद्विकं याति । कोऽपि सासादनभावमपि । यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमय एव सर्वाण्यपि बन्धानादीनि करणानि प्रवर्तयतीत्येष विशेषः । उत्कर्षतश्चैकस्मिन् भवे द्वौ वारावुपशम-  
 श्रेणिं प्रतिपद्यते । यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य नियमात्तस्मिन् भवे क्षपकश्रेण्यभावः ।  
 यः पुनरेकं वारं प्रतिपद्यते । तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपि इत्येष कार्मग्रन्थिकाभिप्रायः । सिद्धान्ता-  
 भिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकामेव श्रेणिं प्रतिपद्यते । यत् उक्तं कल्पाध्ययने—“अन्नयरसेदि-  
 षञ्जं एगभवेणं च सव्वाहं” । ‘सव्वाहं’ इति सर्वाणि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनि । अन्य-  
 त्राप्युक्तम्—मोहोपशम एकस्मिन् , भवे द्विः स्थावसंततः । यस्मिन् भवे तूपशमः,  
 क्षयो मोहस्य तत्र न ॥१॥” इति ॥ ‘क्षीणकषायर्वातरागच्छन्नस्थगुणस्थानमिति’ क्षीणा  
 अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः, तत्रान्येष्वपि गुणस्थानकेषु वक्ष्यमाणयुक्त्या कापि  
 कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतराग-  
 ग्रहणम् । क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छन्नस्थग्रहणम् । यद्वा छन्नस्थः  
 सरागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतरागश्चासौ छन्नस्थश्चेति वीतरागच्छन्नस्थः,  
 स चोपशान्तकषायोऽपि भवतीति तन्निरासार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छ-  
 न्नस्थश्च तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छन्नस्थगुणस्थानम् । इदं च यथाऽवाप्यते तथा मूलत  
 एव भाव्यते । इह यः क्षपकश्रेणिमारभते सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाष्टकाद्योपरि वर्तमानः, स च प्रथम-  
 मनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति । तद्विसंयोजना च प्रागेव भण्णता । ततो दर्शनमोहक्षपणार्थं यथा-  
 प्रवृत्तादीनि श्रेणि करणानि करोति । तत्र यावदपूर्वकरणं तावत्पूर्ववदेव वक्तव्यम् । अनिष्टचिकरणा-

द्वारां च वर्तमानो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म तावदुद्वलनासंक्रमेणोद्वलयति यावत्पल्योपमा-  
संख्येयभागमात्रमवतिष्ठते । ततो मिथ्यात्वदलिकं सम्यक्त्वमिश्रयोः प्रक्षिपति, तच्चैवम्-प्रथम-  
समये स्तोकम्, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । एवं यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमये आवलिकागतं  
मुक्त्वा शेषं द्विचरमसमयसंक्रमितादलिकादसंख्येयगुणं संक्रमयति । आवलिकागतं तु स्तिबुक-  
संक्रमेण सम्यक्त्वे संक्रमयति । एवं मिथ्यात्वं क्षपितम् । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण सम्यग्मिथ्या-  
त्वमप्यनेनैव क्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति । ततः सम्यग्मिथ्यात्वमपि क्षपितम् । ततः सम्यक्त्व-  
मपवर्तयितुं तथा लभो यथाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण तदप्यन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकं जातम्, तच्च क्रमेणानु-  
भूयमानमनुभूयमानं सत्समयाधिकावलिकाशेषं जातम् । ततोऽन्नतरसमये तस्योदीरणव्यवच्छेदः ।  
ततो विपाकानुभवनेनैव केवलेन वेदयति यावच्चरमसमयः । ततोऽनन्तरसमयेऽसौ क्षायिकसम्यग्दृष्टि-  
र्जायते । उक्तो दर्शनत्रिकक्षणाविधिः । इह यदि बद्धायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभते, तत एताव-  
त्येवावतिष्ठते । अथावद्वायुष्कस्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे गते सति पुनरपि चारित्रमोहनीयक्षपणार्थं  
यथाप्रवृत्तादीनि श्रीणि करणान्यारभते, तेषां च स्वरूपं पूर्ववदेव वक्ष्यते । तत्रापूर्वकरणे स्थिति-  
घातादिभिरप्रत्याख्यानावरणक्रोधादीन्यष्टौ कर्माणि तथा क्षपयति स्म यथाऽनिष्टृत्तिकरणाद्वा-  
प्रथमसमये तानि पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थितिकानि जातानि । अनिष्टृत्तिकरणाद्वायाश्च संख्ये-  
येषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानर्द्धित्रिक ३ नरकगति ४ तिर्यग्गति ५ एक ६ द्वि ७ त्रि ८ चतुरि-  
न्द्रियजाति ९ नरकानुपूर्वी १० तिर्यगानुपूर्वी ११ स्थावरा १२ ऽऽतपो १३ दूधोत १४ सूक्ष्म  
१५ साधारणा १६ नां षोडशप्रकृतीनां प्रतिसमयमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पल्योपमासं-  
ख्येयभागमात्रा स्थितिर्जाता । ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमा-  
णानि तानि षोडश कर्माणि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति । इहाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्या-  
नावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं नाद्यापि क्षीणं केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं  
प्रकृतिषोडशकं क्षपितम् । ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमुद्वलनविधिनाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण क्षपयति,  
एष सूत्रादेशः । अन्ये पुनराहुः-षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते । केवलमपान्तरालेऽष्टौ  
कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां  
चतुर्णां च संज्वलनानामन्तरकरणं करोति, तच्च कृत्वा नपुंसकवेदमुद्वलनविधिना क्षपयितुमा-  
रभते । तत्रान्तरकरणस्योपरितनस्थितिदलिकमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानमुद्वल्यमानं पल्योपमा-  
संख्येयभागमात्रं जातम् । ततः प्रभृति बध्यमानप्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तदलिकं प्रक्षिपति ।  
तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीणम् । अधस्तनस्थितिदलिकं च  
यदि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावलिकामात्रम् । तच्च  
वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः । ततोऽन्तर्मुहूर्तमा-

समयोनावलिकादिकेन संज्वलनमायासुपशमयति । एवमक्षकर्णकरणाद्वायां गतायां ततो द्वितीये लोभवेदकाद्वायास्त्रिभागे वर्तमानो लोभस्य द्वितीयस्थितिगतस्य किङ्कीः करोति । किङ्कीकरणाद्वाया-  
 श्रमसमये युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशमयति । तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदः बादरलोभोदयव्यवच्छेदश्च । ततोऽसौ सूक्ष्मसंपरायो भवति । तदा चोप-  
 रितनस्थितौ यत्किङ्कीकृतं दलिकं तत्कतिपयं ततः समानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्धान्तमुर्द्ध्वप्रमाणा । तदानीं च सूक्ष्मकिङ्कीकृतं दलिकं समयोनावलिकादिकवद्धं चोपश-  
 मयति सूक्ष्मसंपरायाद्वायाश्रमसमये संज्वलनलोभ उपशान्तो भवति, तत्समयमेव च ज्ञानावरणपञ्चक ५ दर्शनावरणचतुष्का ९ ऽन्तरायपञ्चक १४ यशःकीर्त्यु १५ च्चैर्गोत्राणां १६ बन्धव्यवच्छेदः ।  
 ततोऽनन्तरसमयेऽसावुपशान्तकषायो भवति, स च जघन्येनैकसमयमात्रमुत्कर्षतोऽन्तमुर्द्ध्व कालं यावत्सम्यते । तत ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति । प्रतिपातश्च द्विधा, भवक्षयेण अद्वाक्षयेण च । तत्र भवक्षयो त्रियमाणस्य । अद्वाक्षय उपशान्ताद्वायां समाप्तायाम् । अद्वाक्षयेण च प्रतिपतन् यथैवारूढ-  
 स्तथैव प्रतिपतति । यत्र यत्र बन्धोदयो व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति यावत् । प्रतिपतंश्च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् । कश्चित् पुनस्ततोऽप्यधस्तनं गुण-  
 स्थानकद्विकं याति । कोऽपि सासादनभावमपि । यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमय एव सर्वाण्यपि बन्धानादीनि करणानि प्रवर्तयतीत्येष विशेषः । उत्कर्षतश्चैकस्मिन् भवे द्वौ वारावुपशम-  
 श्रेणिं प्रतिपद्यते । यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य नियमात्तस्मिन् भवे क्षपकश्रेण्यभावः । यः पुनरेकं वारं प्रतिपद्यते । तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपि इत्येष कर्मग्रन्थिकाभिप्रायः । सिद्धान्ता-  
 भिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकामेव श्रेणिं प्रतिपद्यते । यत उक्तं कल्याण्ययने—“अन्नघरसेदि-  
 वञ्जं एगभवेणं च सञ्वाहं” । ‘सञ्वाहं’ इति सर्वाणि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनि । अन्य-  
 त्राप्युक्तम्—मोहोपशम एकस्मिन् , भवे द्विः स्थावसंततः । यस्मिन् भवे तूपशमः,  
 क्षयो मोहस्य तत्र न ॥१॥” इति ॥ ‘क्षोणकषायवीतरागच्छद्ब्रस्थगुणस्थानमिति’ क्षीणा  
 अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः, तत्रान्येष्वपि गुणस्थानकेषु वक्ष्यमाणयुक्त्या क्वापि  
 कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतराग-  
 ग्रहणम् । क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्ब्रस्थग्रहणम् । यद्वा छद्ब्रस्थः  
 सरागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतरागश्चासौ छद्ब्रस्थश्चेति वीतरागच्छद्ब्रस्थः,  
 स चोपशान्तकषायोऽपि भवतीति तन्निरासार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छ-  
 द्ब्रस्थश्च तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्ब्रस्थगुणस्थानम् । इदं च यथाऽवाप्यते तथा मूलत  
 एव माव्यते । इह यः क्षपकश्रेणिमारमते सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाष्टकावोपरि वर्तमानः, स च प्रथम-  
 मनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति । तद्विसंयोजना च प्रागेव भण्णिता । ततो दर्शनमोहक्षपणार्थं यथा-  
 प्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति । तत्र यावदपूर्वकरणं तावत्पूर्ववदेव वक्तव्यम् । अनिष्टतिकरणा-



द्वार्या च वर्तमानो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म तावदुद्वलनामंक्रमेणोद्वलयति यावत्पत्योपमा-  
संख्येयभागमात्रमवतिष्ठते । ततो मिथ्यात्वदलिकं सम्यक्त्वमिथयोः प्रक्षिपति, तच्चैवम्—प्रथम-  
समये स्तोत्रम्, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । एवं यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमये आवल्लिकागतं  
शुक्त्वा शेषं द्विचरमसमयसंक्रमितादलिकादसंख्येयगुणं संक्रमयति । आवल्लिकागतं तु स्तिबुक्-  
संक्रमेण सम्यक्त्वे संक्रमयति । एवं मिथ्यात्वं क्षपितम् । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण सम्यग्मिथ्या-  
त्वमप्यनेनैव क्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति । ततः सम्यग्मिथ्यात्वमपि क्षपितम् । ततः सम्यक्त्व-  
मपवर्तयितुं तथा लघो यथाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण तदप्यन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकं जातम्, तच्च क्रमेणानु-  
भूयमानमनुभूयमानं सत्समयाधिक्रावल्लिकाशेषं जातम् । ततोऽन्तरसमये तस्योदीरणव्यवच्छेदः ।  
ततो विपाकानुभवनेनैव केवलेन वेदयति यावच्चरमसमयः । ततोऽन्तरसमयेऽसौ क्षायिकसम्यग्दृष्टि-  
र्जायते । उक्तो दर्शनत्रिकक्षपणाविधिः । इह यदि बद्धायुष्कः क्षपकत्रेणिमारभते, तत एताव-  
त्येवावतिष्ठते । अथावद्वायुष्कस्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे गते सति पुनरपि चारित्रमोहनीयक्षपणार्थं  
यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणान्यारभते, तेषां च स्वरूपं पूर्ववदेव बवत्व्यम् । तत्रापूर्वकरणे स्थिति-  
घातादिभिरप्रत्याख्यानावरणक्रोधादीन्यष्टौ कर्माणि तथा क्षपयति स्म यथाऽनिष्टुत्तिकरणाद्वा-  
प्रथमसमये तानि पत्योपमासंख्येयभागमात्रस्थितिकानि जातानि । अनिष्टुत्तिकरणाद्वायाश्च संख्ये-  
येषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानर्द्धिप्रिक ३ नरकगति ४ तिर्यग्गति ५ एक ६ द्वि ७ त्रि ८ चतुरि-  
न्द्रियजाति ९ नरकानुपूर्वी १० तिर्यगानुपूर्वी ११ स्थावरा १२ ऽऽतपो १३ द्यूतो १४ दृक्ष्म  
१५ साधारणा १६ नां षोडशप्रकृतीनां प्रतिसमयमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पत्योपमासं-  
ख्येयभागमात्रा स्थितिर्जाता । ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमा-  
णानि तानि षोडश कर्माणि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति । इहाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्या-  
नावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं नाद्यापि क्षीणं केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं  
प्रकृतिषोडशकं क्षपितम् । ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमुद्वलनविधिनाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण क्षपयति,  
एष सूत्रादेशः । अन्ये पुनराहुः—षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते । केवलमपान्तरालेऽष्टौ  
कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां  
चतुर्णां च संज्वलनानामन्तरकरणं करोति, तच्च कृत्वा नपुंसकवेदमुद्वलनविधिना क्षपयितुमा-  
रभते । त्रान्तरकरणस्योपरितनस्थितिदलिकमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानमुद्वल्यमानं पत्योपमा-  
संख्येयभागमात्रं जातम् । ततः प्रभृति बध्यमानप्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तदलिकं प्रक्षिपति ।  
तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीणम् । अघस्तनस्थितिदलिकं च  
यदि नपुंसकवेदेन क्षपकत्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावल्लिकामात्रम् । तच्च  
वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुक्संक्रमेण संक्रमयति । तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः । ततोऽन्तर्मुहूर्तमा-

समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमायाद्युपशमयति । एवमश्वकर्णकरणाद्वायां गतायां ततो द्वितीये लोभवेदकाद्वायास्त्रिभागे वर्तमानो लोभस्य द्वितीयस्थितिगतस्य किड्डीः करोति । किड्डीकरणाद्वाया-  
 श्रमसमये युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशमयति । तदुपशान्तौ च तत्समयमेव  
 संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदः वादरलोभोदयव्यवच्छेदश्च । ततोऽसौ सूक्ष्मसंपरायो भवति । तदा चोप-  
 रितनस्थितौ यत्किड्डीकृतं दलिकं तत्कतिपयं ततः समानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च, सा च  
 सूक्ष्मसंपरायाद्धान्तर्मुहूर्तप्रमाणा । तदानीं च सूक्ष्मकिड्डीकृतं दलिकं समयोनावलिकाद्विकवद्धं चोपश-  
 मयति सूक्ष्मसंपरायाद्वायाश्रमसमये संज्वलनलोभ उपशान्तो भवति, तत्सममेव च ज्ञानावरणपञ्चक  
 ५ दर्शनावरणचतुष्का ९ ऽन्तरायपञ्चक १४ यशःकीर्त्यु १५ च्यैर्गोत्राणां १६ बन्धव्यवच्छेदः ।  
 ततोऽनन्तरसमयेऽसावुपशान्तकषायो भवति, स च जत्रन्येनैकसमयमात्रमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तं कालं  
 यावद्भव्यते । तत् ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति । प्रतिपातश्च द्विधा, भवक्षयेण अद्वाक्षयेण च । तत्र  
 भवक्षयो म्रियमाणस्य । अद्वाक्षय उपशान्ताद्वायां समाप्तायाम् । अद्वाक्षयेण च प्रतिपतन् यथैवारूढ-  
 स्तथैव प्रतिपतति । यत्र यत्र बन्धोदयो व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति  
 यावत् । प्रतिपतंश्च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् । कश्चित् पुनस्ततोऽप्यधस्तनं गुण-  
 स्थानकद्विकं याति । कोऽपि सासादनभावमपि । यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमय एव  
 सर्वाण्यपि बन्धानादीनि करणानि प्रवर्तयतीत्येष विशेषः । उत्कर्षतरश्चैकस्मिन् भवे द्वौ वारावुपशम-  
 श्रेणिं प्रतिपद्यते । यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य नियमात्तस्मिन् भवे क्षपकश्रेण्यभावः ।  
 यः पुनरेकं वारं प्रतिपद्यते । तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपि इत्येष कर्मप्रन्थिकाभिप्रायः । सिद्धान्ता-  
 भिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकामेव श्रेणिं प्रतिपद्यते । यत् उक्तं कल्प्याध्ययने—“अन्नघरसेदि-  
 वज्जं एगभवेणं च सव्वाहं” । ‘सव्वाहं’ इति सर्वाणि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनि । अन्य-  
 त्राप्युक्तम्—मोहोपशम एकस्मिन्, भवे द्विः स्यादसंततः । यस्मिन् भवे तूपशमः,  
 क्षयो मोहस्य तत्र न ॥१॥” इति ॥ ‘क्षीणकषायर्वातरागच्छद्यस्थगुणस्थानमिति’ क्षीणा  
 अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः, तत्रान्येष्वपि गुणस्थानकेषु वक्ष्यमाणयुक्त्या क्वापि  
 कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतराग-  
 ग्रहणम् । क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्यस्थग्रहणम् । यद्वा छद्यस्थः  
 सरागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतरागश्चासौ छद्यस्थश्चेति वीतरागच्छद्यस्थः,  
 स चोपशान्तकषायोऽपि भवतीति तन्निरासार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छ-  
 द्यस्थश्च तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्यस्थगुणस्थानम् । इदं च यथाऽवाप्यते तथा मूलत  
 एव भाव्यते । इह यः क्षपकश्रेणिमारभते सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाष्टकाद्योपरि वर्तमानः, स च प्रथम-  
 मनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति । तद्विसंयोजना च प्रागेव मणिता । ततो दर्शनमोहक्षपणार्थं यथा-  
 प्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति । तत्र यावदपूर्वकरणं तावत्पूर्ववदेव वक्तव्यम् । अनिष्टत्तिकरणा-

द्वारां च वर्तमानो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म तावदुद्वलनामंक्रमेणोद्वलयति यावत्पल्योपमा-  
संख्येयभागमात्रमवतिष्ठते । ततो मिथ्यात्वदलिकं सम्यक्त्वमिश्रयोः प्रक्षिपति, तच्चैवम्-प्रथम-  
समये स्तोत्रम्, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । एवं यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमये आवलिकागतं  
मुक्त्वा शेषं द्विचरमसमयसंक्रमितादलिकादसंख्येयगुणं संक्रमयति । आवलिकागतं तु स्तिबुक-  
संक्रमेण सम्यक्त्वे संक्रमयति । एवं मिथ्यात्वं क्षपितम् । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण सम्यग्मिथ्या-  
त्वमप्यनेनैव क्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति । ततः सम्यग्मिथ्यात्वमपि क्षपितम् । ततः सम्यक्त्व-  
मपवर्तयितुं तथा लभो यथाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण तदप्यन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकं जातम्, तच्च क्रमेणानु-  
भूयमानमनुभूयमानं सत्समयाधिकावलिकाशेषं जातम् । ततोऽन्तरसमये तस्योदीरणव्यवच्छेदः ।  
ततो विपाकानुभवनेनैव केवलेन वेदयति यावच्चरमसमयः । ततोऽन्तरसमयेऽसौ क्षायिकसम्यग्दृष्टि-  
र्जायते । उक्तो दर्शनत्रिकक्षपणाविधिः । इह यदि बद्धायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभते, तत एताव-  
त्येवावतिष्ठते । अथाबद्धायुष्कस्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे गते सति पुनरपि चारित्रमोहनीयक्षपणार्थं  
यथाप्रवृत्तादीनि श्रीणि करणान्यारभते, तेषां च स्वरूपं पूर्ववदेव ववतव्यम् । तत्रापूर्वकरणं स्थिति-  
घातादिभिरप्रत्याख्यानावरणक्रोधादीन्यष्टौ कर्माणि तथा क्षपयति स्म यथाऽनिष्टत्तिकरणाद्वा-  
ग्रथमसमये तानि पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थितिकानि जातानि । अनिष्टत्तिकरणाद्वायाश्च संख्ये-  
येषु मार्गेषु गतेषु सत्सु स्त्यानद्वित्रिक ३ नरकगति ४ तिर्यग्गति ५ एक ६ द्वि ७ त्रि ८ चतुरि-  
न्द्रियजाति ९ नरकानुपूर्वी १० तिर्यगानुपूर्वी ११ स्थावरा १२ ऽऽतपो १३ इद्योत १४ छक्ष्म  
१५ साधारणा १६ नां षोडशप्रकृतीनां प्रतिसमयमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पल्योपमासं-  
ख्येयभागमात्रा स्थितिर्जाता । ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमा-  
णानि तानि षोडश कर्माणि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति । इहाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्या-  
नावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं नाद्यापि क्षीणं केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं  
प्रकृतिषोडशकं क्षपितम् । ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमुद्वलनविधिनाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण क्षपयति,  
एष सूत्रादेशः । अन्ये पुनराहुः-षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते । केवलमपान्तरालेऽष्टौ  
कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां  
चतुर्णां च संज्वलनानामन्तरकरणं करोति, तच्च कृत्वा नपुंसकवेदमुद्वलनविधिना क्षपयितुमा-  
रभते । तत्रान्तरकरणस्योपरितनस्थितिदलिकमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानमुद्वल्यमानं पल्योपमा-  
संख्येयभागमात्रं जातम् । ततः प्रकृति बध्यमानप्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तदलिकं प्रक्षिपति ।  
तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीणम् । अधस्तनस्थितिदलिकं च  
यदि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावलिकामात्रम् । तच्च  
वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः । ततोऽन्तर्मुहूर्तमा-

समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमायामुपशमयति । एवमश्वकर्णकरणाद्धायां गतायां ततो द्वितीये लोभवेदकाद्धायास्त्रिभागे वर्तमानो लोभस्य द्वितीयस्थितिगतस्य किङ्कीः करोति । किङ्कीकरणाद्धाया-  
 श्वरमसमये युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशमयति । तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदः वादरलोभोदयव्यवच्छेदश्च । ततोऽसौ सूक्ष्मसंपरायो भवति । तदा चोप-  
 रितनस्थितौ यत्किङ्कीकृतं दलिकं तत्कतिपयं ततः समानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्धान्तमुर्हृतप्रमाणा । तदानीं च सूक्ष्मकिङ्कीकृतं दलिकं समयोनावलिकाद्विकवद्वं चोपश-  
 मयति सूक्ष्मसंपरायाद्धायाश्वरमसमये संज्वलनलोभ उपशान्तो भवति, तत्सममेव च ज्ञानावरणपञ्चक ५ दर्शनावरणचतुष्का ९ ऽन्तरायपञ्चक १४ यशःकीर्त्यु १५ च्चैर्गोत्राणां १६ बन्धव्यवच्छेदः ।  
 ततोऽनन्तरसमयेऽसावुपशान्तकपायो भवति, स च जघन्यैर्नैकसमयमात्रमुत्कर्षतोऽन्तमुर्हृतं कालं यावन्नभ्यते । तत ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति । प्रतिपातश्च द्विधा, भवक्षयेण अद्वाक्षयेण च । तत्र भवक्षयो त्रियमाणस्य । अद्वाक्षय उपशान्ताद्धायां समाप्तायाम् । अद्वाक्षयेण च प्रतिपतन् यथैवारूढ-  
 स्तथैव प्रतिपतति । यत्र यत्र बन्धोदयो व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति यावत् । प्रतिपतंश्च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् । कश्चित् पुनस्ततोऽप्यधस्तनं गुण-  
 स्थानकद्विकं याति । कोऽपि सासादनभावमपि । यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमय एव सर्वाण्यपि बन्धानादीनि करणानि प्रवर्तयतीत्येष विशेषः । उत्कर्षतश्चैकस्मिन् भवे द्वौ वारावुपशम-  
 श्रेणिं प्रतिपद्यते । यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य नियमात्स्मिन् भवे क्षपकश्रेण्यभावः । यः पुनरेकं वारं प्रतिपद्यते । तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपि इत्येष कार्मग्रन्थिकाभिप्रायः । सिद्धान्ता-  
 मिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकामेव श्रेणिं प्रतिपद्यते । यत उक्तं कल्पाध्ययने—“अन्नघरसेदि-  
 वज्जं एगभवेणं च सन्वाहं” । “सन्वाहं” इति सर्वाणि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनि । अन्य-  
 त्राप्युक्तम्—मोहोपशम एकस्मिन् , भवे द्विः स्थावसंतमः । यस्मिन् भवे तूपशमः,  
 क्षयो मोहस्य तत्र न ॥१॥” इति ॥ ‘क्षीणकषायर्षातरागच्छन्नस्थगुणस्थानमिति’ क्षीणा  
 अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः, तत्रान्येष्वपि गुणस्थानकेषु वक्ष्यमाणयुक्त्या कापि  
 कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतराग-  
 ग्रहणम् । क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छन्नस्थग्रहणम् । यद्वा छन्नस्थः  
 सरागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतरागश्चासौ छन्नस्थश्चेति वीतरागच्छन्नस्थः,  
 स चोपशान्तकषायोऽपि भवतीति तन्निरासार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छ-  
 न्नस्थश्च तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छन्नस्थगुणस्थानम् । इदं च यथाऽवाप्यते तथा मूलत  
 एव भाव्यते । इह यः क्षपकश्रेणिमारमते सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाएकावोपरि वर्तमानः, स च प्रथम-  
 मनन्तानुबन्धिनो विंसंयोजयति । तद्विंसंयोजना च प्रागेव भण्तिता । ततो दर्शनमोहक्षपणार्थं यथा-  
 प्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति । तत्र यावदपूर्वकरणं तावत्पूर्ववदेव वक्तव्यम् । अनिबृत्तिकरणा-

द्वार्यां च वर्तमानो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म तावदुद्वलनासंक्रमेणोद्वलयति यावत्पल्योपमा-  
संख्येयभागमात्रमवतिष्ठते । ततो मिथ्यात्वदलिकं सम्यक्त्वमिश्रयोः प्रक्षिपति, तच्चैवम्-प्रथम-  
समये स्तोकम्, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । एवं यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमये आवलिकागतं  
मुक्त्वा शेषं द्विचरमसमयसंक्रमितादलिकादसंख्येयगुणं संक्रमयति । आवलिकागतं तु स्तिबुक-  
संक्रमेण सम्यक्त्वे संक्रमयति । एवं मिथ्यात्वं क्षपितम् । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण सम्यग्मिथ्या-  
त्वमप्यनेनैव क्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति । ततः सम्यग्मिथ्यात्वमपि क्षपितम् । ततः सम्यक्त्व-  
मपवर्तयितुं तथा लभो यथाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण तदप्यन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकं जातम्, तच्च क्रमेणानु-  
भूयमानमनुभूयमानं सत्समयाधिकावलिकाशेषं जातम् । ततोऽन्तरसमये तस्योदीरणव्यवच्छेदः ।  
ततो विपाकानुभवनेनैव केवलेन वेदयति यावच्चरमसमयः । ततोऽन्तरसमयेऽसौ क्षायिकसम्यग्दृष्टि-  
र्जायते । उक्तो दर्शनत्रिकक्षपणाविधिः । इह यदि बद्धायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभते, तत एताव-  
त्येवावतिष्ठते । अथावद्धायुष्कस्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे गते सति पुनरपि चारित्रमोहनीयक्षपणार्थं  
यथाप्रवृत्तादीनि श्रीणि करणान्यारभते, तेषां च स्वरूपं पूर्ववदेव बवतव्यम् । तत्रापूर्वकरणं स्थिति-  
घातादिभिरप्रत्याख्यानावरणक्रोधादीन्यष्टौ कर्माणि तथा क्षपयति स्म यथाऽनिष्टित्तिकरणाद्वा-  
प्रथमसमये तानि पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थितिकानि जातानि । अनिष्टित्तिकरणाद्वायाश्च संख्ये-  
येषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानद्वित्रिक ३ नरकगति ४ तिर्यग्गति ५ एक ६ द्वि ७ त्रि ८ चतुरि-  
न्द्रियजाति ९ नरकानुपूर्वी १० तिर्यगानुपूर्वी ११ स्थावरा १२ ऽऽत्पो १३ इद्योत १४ सूक्ष्म  
१५ साधारणा १६ नां षोडशप्रकृतीनां प्रतिसमयमुद्वलनासंक्रमेणोद्व्यमानानां पल्योपमासं-  
ख्येयभागमात्रा स्थितिर्जाता । ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमा-  
णानि तानि षोडश कर्माणि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति । इहाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्या-  
नावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं नाद्यापि क्षीणं केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं  
प्रकृतिषोडशकं क्षपितम् । ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमुद्वलनविधिनाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण क्षपयति,  
एष सूत्रादेशः । अन्ये पुनराहुः-षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते । केवलमपान्तरालेऽष्टौ  
कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति । ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां  
चतुर्णां च संज्वलनानामन्तरकरणं करोति, तच्च कृत्वा नपुंसकवेदमुद्वलनविधिना क्षपयितुमा-  
रभते । तत्रान्तरकरणस्योपरितनस्थितिदलिकमुद्वलनासंक्रमेणोद्व्यमानमुद्व्यमानं पल्योपमा-  
संख्येयभागमात्रं जातम् । ततः प्रभृति बध्यमानप्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तदलिकं प्रक्षिपति ।  
तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीणम् । अधस्तनस्थितिदलिकं च  
यदि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावलिकामात्रम् । तच्च  
वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः । ततोऽन्तर्मुहूर्तमा-

त्रेण स्त्रीवेदोऽप्यनेनैव क्रमेण क्षिप्यते । ततः पद् नोकपायान् युगपत्क्षपयितुमारभते । ततः प्रमृति च तेषामुपरितनस्थितिदलिकं न पुरुषवेदे संक्रमयति किन्तु संज्वलनक्रोध एव, एतेऽपि च पूर्वोक्तत्रिविधिना क्षिप्यमाणा अन्तर्द्वृहूर्तमात्रेण निःशेषाः क्षीणाः । तत्समयमेव च पुरुषवेदस्य बन्धोदयोदीरणव्यवच्छेदः समयोनावलिकाद्विक्रवद्वं भुवत्वा शेषदलिकस्य क्षयश्च । ततोऽसाविदानीमवेदको जातः । क्रोधं च वेदयतः सतस्तस्य क्रोधाद्वायाल्लयो विभागा भवन्ति । तद्यथा—अश्वकर्णकरणाद्वा १, किट्टिकरणाद्वा २, किट्टिवेदनाद्वा ३ च । तत्राश्वकर्णकरणाद्वायां वर्तमानः प्रतिसमयमनन्तान्यपूर्वस्पर्द्धकानि चतुर्णामपि संज्वलनानामन्तरङ्गरणदुपरितनस्थितौ करोति । अथ किमिदं स्पर्द्धकम् ? इति, उच्यते, इह तावदनन्तान्तैः परमाणुभिर्निष्पन्नान् स्कन्धान् जीवः कर्मतया गृह्णाति । तत्र चैकैकस्मिन् स्कन्धे यः सर्वजघन्यरसः परमाणुः तस्यापि रसः केवलप्रज्ञया छिद्यमानः सर्वजीवैभ्योऽनन्तगुणान् रसभागान् प्रयच्छति । अपरस्तु तानप्येकाधिकान् । अन्यस्तु द्वयधिकान् । एवमेकोत्तरया वृद्धया तावन्नेयं यावदन्यः परमाणुः सिद्धानन्तभागाधिकान् रसविभागान् प्रयच्छति । तत्र जघन्यरसा ये केचन परमाणवस्तेषां समुदायः समानजातीयत्वादेका वर्गणा इत्युच्यते । अन्येषां त्वेकाधिकरसभागयुक्तानां समुदायो द्वितीया वर्गणाः अपरेषां तु द्वयधिकरसभागयुक्तानां समुदायस्तृतीया । एवमनया दिशैकैकरसभागवृद्धानामर्णानां समुदायरूपा वर्गणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा अभव्येभ्योऽनन्तगुणा वाच्याः । एतासां च समुदायः स्पर्द्धकमित्युच्यते । स्पर्द्धन्त इवोत्तरोत्तरवृद्धया परमाणुवर्गणा अत्रेति-कृत्वा । इत ऊद्भवमेकोत्तरया निरन्तरवृद्धया प्रवर्द्धमानो रसो न लभ्यते, किन्तु सर्वजीवानन्तगुणैरेव रसभागैः । ततस्तेनैव क्रमेण ततः प्रमृति द्वितीयं स्पर्द्धकमारभ्यते । एवमेव च तृतीयम् । एवं तावद्वाच्यं यावदनन्तानि स्पर्द्धकानि । एतेभ्य एव च इदानीं प्रथमादिवर्गणा गृहीत्वा विशुद्धिप्रकर्षवशादनन्तगुणहीनरसाः कृत्वा पूर्ववत्स्पर्द्धकानि करोति । न चैवंभूतानि कदाचनपि पूर्वं कृतानि ततोऽपूर्वाणीत्युच्यन्ते । अस्यां चाश्वकर्णकरणाद्वायां वर्तमानः पुरुषवेदं समयो-नावलिकाद्विकेन क्रोधे गुणसंक्रमेण संक्रमयन् चरमसमये सर्वसंक्रमेण संक्रमयति, तदेवं क्षीणः पुरुषवेदः । किट्टिकरणाद्वायां पुनर्वर्तमानश्चतुर्णामपि संज्वलनानामुपरितनस्थितिगतदलिकस्य किट्टीः करोति । अथ किमिदं किट्टिः ? इति, उच्यते, पूर्वस्पर्द्धकेभ्योऽपूर्वस्पर्द्धकेभ्यश्च प्रथमादिवर्गणा गृहीत्वा विशुद्धिप्रकर्षवशादत्यन्तहीनरसाः कृत्वा तासामेकैकोत्तरवृद्धित्यागेन बृहदन्तरालतया व्यवस्थापनम् । यथा यासामेव वर्गणानामसत्कल्पनयाऽनुभागभागानां शतमेकोत्तरादि चासीत्, तासामेव विशुद्धिवशादनुभागभागानां दशकस्य पञ्चदशकादेश्च व्यवस्थापनमिति । एताश्च किट्टयः परमार्थतोऽनन्ता अपि स्थूलजातिमेदापेक्षया द्वादश कल्पन्ते एकैकस्य कषायस्य तिस्रस्तिस्रः । तद्यथा—प्रथमा द्वितीया तृतीया च । एवं क्रोधेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य द्रष्टव्यम् ।

यदा तु मानेन प्रतिपद्यते तदोद्वलनविधिना पूर्वोक्तेन क्रोधे क्षपिते सति शेषाणां त्रयाणां पूर्व-  
क्रमेण नवकिट्टीः करोति । मायया चेत्प्रतिपन्नस्तर्हि क्रोधमानयोरुद्वलनविधिना क्षपिनयोः  
सतोः शेषद्विकस्य पूर्वक्रमेण षट् किट्टीः करोति । यदि पुनर्लोभेन प्रतिपद्यते तत उद्वलनविधिना  
क्रोधादित्रिके क्षपिते सति लोभस्य किट्टित्रिकं करोति । एष किट्टीकरणविधिः । किट्टीकरणा-  
द्वार्या निष्ठितार्या क्रोधेन प्रतिपन्नः सन् क्रोधस्य प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य  
प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रमवशिष्यते । ततोऽन्तर-  
समये द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् याव-  
त्समयाधिकावलिकामात्रमवशिष्यते । ततस्त्वृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथम-  
स्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावदिहापि समयाधिकावलिकामात्रं शेषः, तिसृष्वपि चामृषु  
किट्टिवेदनाद्वाहपरितनस्थितिगतं दलिकं गुणसंक्रमेणापि प्रतिसमयमसंख्येयगुणवृद्धिलक्षणेन संज्व-  
लनमाने प्रक्षिपति । तृतीयकिट्टिवेदनाद्वायाश्चरमसमये संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणानां युगप-  
द्व्यवच्छेदः । सत्कर्मणि च तस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धं सूक्त्वाऽन्यन्नास्ति, सर्वस्य माने प्रक्षि-  
प्तत्वात् । ततोऽनन्तरसमये मानस्य प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति  
वेदयति च तावद् यावदन्तर्गु हूर्तम् । क्रोधस्यापि च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने सति तस्य संबन्धि दलिकं  
समयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन माने गुणसंक्रमेण संक्रमयति । मानस्यापि च प्रथमकिट्टिदलिकं  
प्रथमस्थितीकृतं समयाधिकावलिकाशेषं जातम् । ततोऽनन्तरसमये मानस्य द्वितीयकिट्टिदलिकं  
द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रं  
शेषः । ततस्त्वृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद्  
यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तस्मिन्नेव च समये मानस्य बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यव-  
च्छेदः । सत्कर्मापि च तस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धमेव, शेषस्य क्रोधशेषस्येव माने मायार्या प्रक्षि-  
प्तत्वात् । ततो मायायाः प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति  
च तावद् यावदन्तर्गु हूर्तमात्रम् । संज्वलनमानस्य च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने तस्य संबन्धि दलिकं  
समयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन गुणसंक्रमेण मायार्या प्रक्षिपन् चरमसमये सर्वसंक्रमेण संक्र-  
मयति । ततो मायार्या च प्रथमकिट्टिदलिकं प्रथमस्थितीकृतं समयाधिकावलिकाशेषं जातम् ।  
ततोऽनन्तरसमये मायाया द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेद-  
यति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । ततोऽनन्तरसमये तृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीय-  
स्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः ।  
तस्मिन्नेव च समये मायाया बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदः । सत्कर्मापि च तस्याः सम-  
योनावलिकाद्विकबद्धमात्रमेव, शेषस्य गुणसंक्रमेण लोभे प्रक्षिप्तत्वात् । ततोऽनन्तरसमये लोभस्य

प्रथमकिङ्चिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावदन्तर्मु-  
 हूर्तमात्रं संज्वलनमायायाश्च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने सति तस्याः संबन्धि दलिकं समयोनावलि-  
 काद्विक्रमात्रेण कालेन गुणसंक्रमेण लोमे प्रक्षिपन् चरमसमये सर्वसंक्रमेण संक्रमयति । संज्व-  
 लनलोभस्य च तदानीं प्रथमकिङ्चिदलिकं प्रथमस्थितीकृतं समयाधिकावलिकामात्रशेषं जातम् ।  
 ततोऽनन्तरसमये लोभस्य द्वितीयकिङ्चिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति, तां  
 च वेदयन् तृतीयकिङ्चिदलिकं गृहीत्वा सूक्ष्मकिङ्चिः करोति तावद् यावद्द्वितीयकिङ्चिद-  
 लिकस्य प्रथमस्थितीकृतस्य समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तस्मिन्नेव च समये संज्वलन-  
 लोभस्य बन्धव्यवच्छेदः, वादरकपायोदयोदीरणव्यवच्छेदः अनिवृत्तिगुणस्थानककालव्यवच्छे-  
 दश्च युगपज्जायते । ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकिङ्चिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं  
 करोति वेदयति च तदानीमसौ सूक्ष्मसंपराय उच्यते । पूर्वोक्ताश्चावलिकाः द्वितीयतृतीयकिङ्चि-  
 गताः शेषीभूताः सर्वा अपि वेद्यमानासु परप्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । प्रथमद्वितीय-  
 किङ्चिगताश्च यथास्त्रं द्वितीयतृतीयकिङ्चिन्तर्गता एव वेद्यन्ते । सूक्ष्मसंपरायश्च लोभस्य सूक्ष्मकिङ्चि-  
 वेदयन् सूक्ष्मकिङ्चिदलिकं समयोनावलिकाद्विक्रमं च प्रति समयं स्थितिघातादिभिस्तावत्क्षपयति  
 यावत्सूक्ष्मसंपरायाद्वायाः संख्येयभागा गता भवन्ति, एकोऽवशिष्यते । ततस्तस्मिन् संख्येये  
 भागे संज्वलनलोभं सर्वापवर्तनयाऽपवर्त्य सूक्ष्मसंपरायाद्वासमं करोति, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्वा  
 अधाप्यन्तर्मुहूर्त्प्रमाणा, ततः प्रभृति च मोहस्य स्थितिघातादयो निवृत्ताः । शेषकर्मणां तु  
 प्रवर्तन्त एव । तां च लोभस्यापवर्तितां स्थितिमुदयोदीरणाभ्यां वेदयन् तावद्गतः यावत्समया-  
 धिकावलिकामात्रं शेषः । ततोऽनन्तरसमये उदीरणा स्थिता । तत उदयेनैव केवलेन तां वेद-  
 यति यावच्चरमसमयः । तस्मिंश्चरमसमये ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रा-  
 न्तरायपञ्चकानां षोडशकर्मणां बन्धव्यवच्छेदः, मोहनीयस्योदयत्ताव्यवच्छेदश्च भवति । ततोऽ-  
 सावनन्तरसमये क्षीणकषायो जातः, तस्य च शेषकर्मणां स्थितिघातादयः पूर्ववत्प्रवर्तन्ते,  
 यावत्क्षीणकषायाद्वायाः संख्येया भागा गता भवन्ति, एकः संख्येयो भागोऽवशिष्यते ।  
 तस्मिंश्च ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकरूपाणां षोडशकर्मणां स्थिति-  
 सत्कर्मसर्वापवर्तनयाऽपवर्त्य क्षीणकषायाद्वासमं करोति । केवलं निद्राद्विकस्य दलिकापेक्षया  
 समयन्यूनं कालतस्तु तुल्यं करोति । सा च क्षीणकषायाद्वाऽध्याप्यन्तर्मुहूर्त्प्रमाणा, ततः  
 प्रभृति चैतेषां स्थितिघातादयः स्थिताः, शेषाणां तु भवन्त्येव । तानि च षोडश कर्माणि निद्रा-  
 द्विकवर्जितान्युदयोदीरणाभ्यां वेदयन् तावद्गतः यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । ततोऽन-  
 न्तरसमये - तेषां निद्राद्विकवर्जितानां चतुर्दशकर्मणामुदीरणा निवृत्ता । तत आवलिकामात्रं  
 कालं यावदुदयेनैव केवलेन तानि वेदयति यावत्क्षीणकषायाद्वाया द्विचरमसमयः ।



तस्मिन् च द्विचरमसमये निद्राद्विकं स्तिबुकसंक्रमेणान्यत्र संक्रमयति । एवं निद्राद्विकं स्वरूप-  
सचाऽपेक्षया क्षीणम् । चतुर्दशानरं च प्रकृतीनां चरमसमये क्षयः । ततोऽन्तरसमये  
केवली जायत इति ॥ 'सयोगिकेवल्लिगुणस्थानम्' इति योगो वीर्यं परिस्पन्द इत्यनर्थान्तरम्  
सह योगेन वर्तन्ते ये ते सयोगा मनोवाक्कायाः ते यस्य विद्यन्ते इति सयोगी । तत्र भगवतः  
काययोगश्चङ्क्रमणनिमेषोन्मेषादिः, वाचिको देशनादिः, मातसिको मनःपर्यायज्ञानिभिरनुत्तर-  
सुरादिभिर्वा पृष्टस्य सतो मनसैव देशनात् । ते हि भगवत्प्रयुक्तानि मनोद्रव्याणि मनःपर्याय-  
ज्ञानेनावधिज्ञानेन च पश्यन्ति, दृष्ट्या च ते विवक्षितवस्त्वालोचनाकारान्यथाऽनुपपत्त्याऽलोक-  
स्वरूपादिकमपि बाह्यमर्थं पृष्टमवगच्छन्तीति । केवलं ज्ञानं दर्शनं चोक्तस्वरूपं विद्यते यस्य स  
केवली, सयोगी चासौ केवली च सयोगिकेवली तस्य गुणस्थानं सयोगिकेवल्लिगुणस्थानम् ।  
सयोगिकेवली च जघन्येनान्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षतो देशोनां पूर्वकोटीं विहृत्य कश्चित् कर्मणां  
समीकरणार्थं समुद्घातं गच्छति, यस्य वेदनीयादिकभाषुषः सकाशादधिकतरम् । अन्यस्तु न  
गच्छत्येव । गत्वा चागत्वा च समुद्घातमघातिकर्मक्षपणाय लेश्यातीतमत्यन्ताप्रकम्पं परमनिर्ज-  
राकारणं ध्यानं प्रतिपित्सुर्योगनिरोधायोपक्रमत एव । तत्र पूर्वं वादरकाययोगेन वादरमनोयोगं  
निरुणद्धि, ततो वाग्योगम्, ततः सूक्ष्मकाययोगेन वादरकाययोगम्, ततस्तेनैव सूक्ष्ममनोयोगम्,  
ततः सूक्ष्मवाग्योगम्, ततः सूक्ष्मकाययोगं निरुन्धानः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानमारोहति ।  
तत्सामर्थ्याच्च घदनोदरादिविवरपूरणेन संकुचितदेहत्रिभागवर्तिप्रदेशो भवति । योगनिरोधश्चैप  
विस्तरतरकेणास्मामिर्बृहद्धर्मसारटीकायामभिहित इति नेह पुनः प्रतायते । तस्मिन् च ध्याने वर्त-  
मानः स्थितिघातादिभिरायुर्वर्जानि सर्वाण्यपि अघातिकर्माणि तावदपवर्तयति यावत्सयोग्यवस्था-  
चरमसमयः तस्मिन् चरमसमये सर्वाण्यपि कर्माण्ययोग्यवस्थासमस्थितिकानि जातानि । येषां  
च कर्मणामयोग्यवस्थायासुदयामात्रः तेषां स्थितिं च स्वरूपं प्रतीत्य समयोनां विधत्ते । सामा-  
न्यतः सचाकालं त्वाश्रित्यायोग्यवस्थासमानामेव । तस्मिन् च सयोग्यवस्थाचरमसमये औदारिक  
१ तैजस २ कार्यणशीर ३ संस्थानपट्क ६ प्रथमसंहननौ १० दारिकाङ्गोपाङ्ग ११ वर्णादिच-  
तुष्का १५ ऽगुरुलघू १६ पचात १७ पराचात १८ शुभाशुभविहायोगति १९ २० प्रत्येक  
२१ स्थिरा २२ ऽस्थिर २३ शुभा २४ ऽशुभ २५ निर्माण २६ नाम्नासुदयोदीरणा-  
व्यवच्छेदः, अन्यतरवेदनीयस्य २७ च उच्छ्वास २८ सुस्वर २९ दुःस्वराणां ३० च ततोऽन्-  
न्तरसमयेऽयोगिकेवली भवति ॥ 'अयोगिकेवल्लिगुणस्थानकम्' इति योगः पूर्वोक्तो विद्यते  
यस्यासौ योगी, न योगी अयोगी, अयोगी चासौ केवली चायोगिकेवली, तस्य गुणस्थानं अयोगि-  
केवल्लिगुणस्थानम् । तस्मिन् च वर्तमानः कर्मक्षपणाय व्युपरतक्रियमप्रतिपातिध्यानमारोहति । एव-  
मसावयोगिकेवली स्थितिघातादिरहितो यान्युदयवन्ति कर्माणि तानि स्थितिक्षयेणानुभवन् क्षप-

यति । यानि पुनरुदयव्रन्ति तदानीं न सन्ति तानि वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयन्  
वेद्यमानप्रकृतिरूपतया च वेदयन् तावद्याति यात्रदयोग्यवस्थाद्विचरमसमयः तस्मिंश्च द्विचरमसमये  
देवगति १ देवानुपूर्वी २ शरीरपञ्चक ७ बन्धनपञ्चक १२ संघातपञ्चक १७ संस्थानपञ्चका २३  
ऽङ्गोपाङ्गत्रय २६ संहननपट्क ३२ वर्णादिविंशति ५२ पराघातो ५३ पघाता ५४ ऽगुरुलघु  
५५ छ्वास ५६ प्रशस्ता ५७ ऽप्रशस्त ५८ विहायोगति स्थिरा ५९ ऽस्थिर ६० शुभा ६१  
ऽशुभ ६२ सुस्वर ६३ दुःस्वर ६४ दुर्मग ६५ प्रत्येका ६६ ऽनादेया ६७ ऽयशःकीर्ति ६८  
निर्माणा ६९ ऽपर्याप्तक ७० नीचैर्गोत्रा ७१ ऽसातासातान्यतरा ७२ नुदितवेदनीयानि द्विस-  
प्ततिसंख्यानि स्वरूपसत्तामधिकृत्य क्षयमृगगच्छन्ति । चरमसमये तेषां सर्वात्मना स्तिबुकसंक्र-  
मेणोदयवतीषु प्रकृतिषु मध्ये संक्रमयिष्यमाणतया न स्वरूपसत्ता संभवति । संक्रमश्च सर्वोऽप्युक्त-  
स्वरूपो मूलप्रकृत्यभिन्नासु परप्रकृतिषु द्रष्टव्यः । मूलप्रकृत्यभिन्नाः संक्रमयति गुणत उत्तराः  
प्रकृतीः' इतिवचनात् । चरमसमये सातासातान्यतरोदितवेदनीय १ मनुष्यगति-२ मनुष्यानुपूर्वी  
३ मनुष्यायुः ४ पञ्चेन्द्रियजाति ५ त्रस ६ सुभगा ७ ऽऽदेय = यशःकीर्ति ९ पर्याप्तक १०  
वादर ११ तीर्थकरो १२ च्चैर्गोत्राणां १३ त्रयोदशप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः । अन्ये पुनराहुः-  
मनुष्यानुपूर्व्यां द्विचरमसमये व्यवच्छेदः, उदयाभावात् । उदयवतीनां हि स्तिबुकसंक्रमाभावा-  
त्स्वरूपेण चरमसमये दलिकं दृश्यत एवेति युक्तस्तासां चरमसमये सत्ताव्यवच्छेदः । आनु-  
पूर्वीनाम्नां तु चतुर्णामपि क्षेत्रविपाकतया भवापान्तरालगतावेवोदयस्तेन न भवस्थस्य तदुदय-  
संभवः । तदसंभवाच्चायोग्यवस्थाद्विचरमसमय एव मनुष्यानुपूर्व्याः सत्ताव्यवच्छेद इति । तन्म-  
तेन द्विचरमसमये त्रिसप्ततिप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः, चरमसमये द्वादशानामिति । ततोऽनन्तर-  
समये क्रोशवन्धविमोक्षलक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषादेरण्डफलमिव भगवानपि कर्मसंब-  
न्धविमोक्षलक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषसंभवादूर्ध्वं गच्छति । स चोर्ध्वं गच्छन् ऋजुश्रेण्या  
यावत्स्वाकाक्षप्रदेशेष्विहावगाढस्तावत् एव प्रदेशान् ऊर्ध्वमप्यवगाहमानो विवक्षितसमयाच्चा-  
न्यत्समयान्तरमस्पृशन् लोकान्ते गच्छति । तदुक्तमावश्यकवृणौ—जेस्ति९ जोषोऽवगाढो  
तावइयाए ओगाहणाए उर्ध्वं उज्जगं गच्छइ न धकं बिइयं समयं च न फुसए'  
इति । तत्र गतः सन् भगवान् शाश्वतं कालमवतिष्ठते । इति ॥२६॥

तदेवमुक्तानि प्रसक्तानुप्रसक्तप्रतिपादनेन सप्रपञ्चं गुणस्थानकानि । साम्प्रतमेतानि  
मार्गणास्थानेषु चिन्तयन्नाह—

चत्वारि देवनरएसु पंच तिरिएसु चउदस नरेसुं ।

इगिविगलेसुं दो दो पंचिदीसुं चउदस वि ॥२७॥

(हारि०) व्याख्या—‘चत्वारि’ मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानकानीति गम्यते । क ? इत्याह—देवनारकेषु प्रत्येकं भवन्तीति शेषः । तथा पञ्च तिर्यक्वाद्यान्येव । तथा चतुर्दश नरेषु । इति मार्गितानि गतिषु गुणस्थानकानि, साम्प्रतमिन्द्रियेषु तान्याह—‘इगिविगलेसु’ इति एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु द्वे द्वे गुणस्थानके मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे भवतः । एकेन्द्रियेषु सासादनं प्राग्वत् । तथा पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति । इति गाथार्थः ॥२७॥

इत्युक्तानि गुणस्थानकानीन्द्रियेषु, इतः कायादिषु चतुर्षु मार्गणास्थानेषु तान्येवाह—

(मल०) देवेषु नारकेषु च प्रत्येकमाद्यानि मिथ्यादृष्ट्यादीन्यविरतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति न देशविरतादीनि, तेषु भवस्वभावतो देशतोऽपि विरतेरभावात् । ‘पञ्च तिरिसु’ इति तिर्यक्षु पञ्च गुणस्थानकानि भवन्ति, तत्र चत्वारि पूर्वोक्तान्येव, पञ्चमं तु देशविरतिगुणस्थानकम्, तेषु देशविरतेः सद्भावात् । तथा ‘नरेषु’ मनुष्येषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति, तेषु मिथ्यात्वादीनां शैलेश्यवस्थापर्यन्तानां सर्वभावानामपि संभवात् । तथैकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु प्रत्येकं ‘द्वे द्वे’ मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकमविशेषेण सर्वेषु द्रष्टव्यम् । सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं पुनस्तेजोवायुवर्जप्रत्येकवादेरैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन त्वपर्याप्तेषु न सर्वेष्विति । ‘पञ्चिद्योसु’ अउइस धि’ इति पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति । तत्रामञ्चिपञ्चेन्द्रियेषु द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिलक्षणे गुणस्थानके प्राप्येते, तेषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन त्वपर्याप्तेषु सासादनभावस्यापि लभ्यमानत्वात् । लब्ध्यपर्याप्तेषु तु तेषु मिथ्यादृष्टिलक्षणमेवैकं गुणस्थानकम् । संक्षिपञ्चेन्द्रियेषु पुनरपर्याप्तेषु त्रीणि गुणस्थानकानि, तत्र ‘द्वे’ पूर्वोक्ते एव, तृतीयं त्वविरतिसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकम् । एतेष्वेव च करणपर्याप्तेषु सर्वाण्यपि गुणस्थानकानि भवन्ति, मनुष्येषु सर्वभावसंभवात् ॥ २७ ॥

भूदगतरुसु दो एगमगणिवाऊसु चउदस तसेसु ।

जोए तेरस वेए तिकसाए नव दस य लोमे ॥२८॥

(हारि०) व्याख्या—‘भूदगतरुसु’ भूम्यम्बुवनस्पतिकारिकेषु ‘द्वे’ प्रथमे गुणस्थानके प्रत्येकं भवतः । तथा ‘एकं’ आद्यं गुणस्थानकमग्निवायुकारिकेषु, सासादनभावान्वितस्य तेष्वनुत्पादात् । तथा चतुर्दश त्रसेषु । तथा ‘जोए’ इति योगत्रये मनोवाकायलक्षणे त्रयोदश गुणस्थानान्यन्त्यगुणस्थानकवर्जितानि, चतुर्दशगुणस्थानके तु योगानामभावात् । तथा नवशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्, ‘वेदत्रये’ स्त्रीपुंनपुंसकलक्षणे नव गुणस्थानानि, ‘कषायत्रये’ क्रोधमानमायालक्षणे नवैवाद्यानि, तथा दश आऽऽद्यान्येव लोमे भवन्ति । इति गाथार्थः ॥२८॥

इति काययोगवेदकषायेषु मार्गितानि गुणस्थानकानि, साम्प्रतं ज्ञानपञ्चकेऽज्ञानत्रया-  
न्विते तथा लाघवार्थमवधिदर्शने केवलदर्शने च तान्येवाह—

(मल०) 'भूदगतुरुधु' पृथिव्यम्बुवनस्पतिषु प्रत्येकं 'द्वे द्वे' मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणो  
गुणस्थानके भवतः, करणापर्याप्तावस्थायामेतेषु लब्धिपर्याप्तकेषु सासादनभावस्यापि लभ्यमान-  
त्वात् । 'इगमगणिवाडसु' इति अग्निषु वायुषु चैकमेव मिथ्यादृष्टिलक्षणं गुणस्थानकं भवति,  
सासादनभावोपगतस्य तेषु मध्ये उत्पादाभावात् । 'खडदस तसेसु' इति त्रसेषु चतुर्दशापि  
गुणस्थानकानि भवन्ति, एकेन्द्रियवर्जितानां सर्वेषामपि त्रसत्वात् । तत्र च मनुष्यापेक्षया सर्व-  
गुणस्थानकानामपि संभवात् । तथा 'द्यागे' मनोवाकायरूपेऽयोगिकेवल्लिगुणस्थानकवर्जितानि  
शेषाणि त्रयोदशापि गुणस्थानकानि भवन्ति सर्वेष्वप्येतेषु यथायोगं योगत्रयस्यापि संभवात् ।  
तथा 'वेदे' स्त्रीषु नपुंसकलक्षणे, 'कषायत्रये' क्रोधमानमायारूपे मिथ्यादृष्ट्यादीन्यनिवृत्ति-  
वादरपर्यन्तानि नव गुणस्थानकानि भवन्ति, न शेषाणि; अनिवृत्तिवादर एव क्षीणत्वेनोपशा-  
न्तत्वेन वा शेषेषु गुणस्थानकेषु तेषामसंभवात् । 'दस च लोभे' इति लोभे=लोभकपाये दश  
गुणस्थानकानि भवन्ति । तत्र नव पूर्वोक्तान्येव, दशमं सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकम् ; तत्र  
किङ्कीकृतलोभदलिकस्य वेद्यमानत्वात् ॥ २८ ॥

मइसुयओहिदुगे नव अजयाइ जयाइ सत्त मणनाणे ।

केवलदुगंमि दो तिन्नि दो व पठमा अनाणतिगे ॥ २९ ॥

(हारि०) व्याख्या—मतिश्रुतावधिद्विके, अत्र द्वन्द्वैकवद्भावः, तत्र मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने  
अवधिज्ञाने अवधिदर्शने च प्रत्येकं नव गुणस्थानानि भवन्तीति । अथ किमाद्यानि ? तान्याह-  
'अजयाइ' इति विभक्तिलोपादयतादीन्यनिरतिसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकप्रभृतीनि क्षीणमोहा-  
न्तानि । तथा 'जयाइ सत्त मणनाणे' इति अत्रापि विभक्तिलोपाद्यतादीनि प्रसत्तयति-  
प्रमुखानि क्षीणमोहान्तानि सप्त गुणस्थानकानि मनःपर्यवहाने भवन्ति । तथा 'केवलदुगंमि'  
केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे 'द्वे' संयोग्ययोग्याख्ये गुणस्थानके भवतः । तथा 'त्रीणि' प्रथमानि  
मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररूपाणि, 'द्वे वा प्रथमे' मिथ्यादृष्टिसासादनरूपे, क ? इत्याह—  
'अज्ञानत्रिके' मत्तज्ञानश्रुतज्ञानविभङ्गलक्षणे । तत्र यदभिप्रायेण त्रीणि गुणस्थानानि  
भवन्ति, तेषामयमाशयः—यदुत मिश्रदृष्टेर्व्यामिश्रज्ञानान्यप्यज्ञानान्येव यथावस्थिततत्त्वनिर्णया-  
भावात्, अतस्त्रीण्यपि गुणस्थानान्यत्राज्ञानत्रिके भवन्तीति । यदभिप्रायेण च द्वे गुणस्थानके  
भवतः तेषामिदमाकृतम्—यदुत मिश्रदृष्टेः किञ्चित्सम्यग्रूपत्वात्तज्ज्ञानानि किञ्चित्कलुषाण्यपि सम्य-

१ अत्र टीकायां "दो दो इगमगणिवाडसु" इति पाठान्तरानुसारेण व्याख्यातं ज्ञेयम् ।

२-३ "त्वि" इत्यपि पाठः ।

गुणानान्येव, अतोऽज्ञानत्रये द्वे एव गुणस्थानके भवतः । अह्वैवं तद्दिं सासादनस्यापि सम्यग्दृष्टित्वेन तदवबोधस्यापि ज्ञानरूपत्वात्कथमज्ञानत्रये सासादनगुणस्थानकसंभवः ? इति, सत्यमेतन् , नवरं तज्ज्ञानस्थानन्तानुबन्धिप्रथमकपायोदयेनातिदूषितत्वादज्ञानमेवेति भावः । इति गाथार्थः ॥२९॥

एवं ज्ञानेषु सप्रतिपक्षेषु अवधिदर्शनं केवलदर्शने च तानि प्ररूपितानि गुणस्थानकानि, साम्प्रतं संयमे सामायिकादिपञ्चप्रकारे देशभंग्यमे च तानि प्रतिपिपादयिपुराह—

(मल०) मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिद्विके अवधिज्ञानदर्शनरूपे 'अयत्तादीनि' अविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणमोहान्तानि नव गुणस्थानकानि भवन्ति न शेषाणि । तथाहिं न मतिश्रुतावधिज्ञानानि मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रेषु भवन्ति तद्भावे ज्ञानत्वस्यैवायोगात् । यच्चवधिदर्शनं तत्कुतश्चिदमिप्रायाद्विशिष्टश्रुतविदो मिथ्यादृष्ट्यादीनां नेच्छन्ति । तन्मतमाश्रित्याचार्येणापि तत्तेषां नेष्टम् । अथ च सूत्रे मिथ्यादृष्ट्यादीनामप्यवधिदर्शनं प्रतिपाद्यते । यदुक्तं ब्रह्मसूत्रे—“ओहिदं-” सणअणगारोषउत्ताणं भन्ते ? किं नाणां अन्नाणी ? गोयमा ! णाणीवि अन्नाणीवि । जह नाणी ते अत्थेगइआ तिण्णाणी, अत्थेगइया चउणाणी । जे तिण्णाणी ते आभिणिवाहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी । जे चउणाणि ते आभिणिवाहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी जे अण्णाणी ते णियमा 'महअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगनाणी' इति । अत्र हि येऽज्ञानिनस्ते मिथ्यादृष्टय एवेति मिथ्यादृष्टीनामप्यवधिदर्शनं साक्षादत्र सूत्रे प्रतिपादितम्, स एव च विभङ्गज्ञानी । यदा सासादनभावे मिश्रभावे वा वर्तते तदानीं तत्राप्यवधिदर्शनं प्राप्यत इति । यत्तु सयोग्ययोगिकेवल्लिगुणस्थानकद्विकं तत्र मतिज्ञानादि न संभवत्येव, तद्व्यच्छेदेनैव केवलज्ञानस्य प्रादुर्भावात् । नहंमि उ छाउमत्थिए नाणे" इतिवचनप्रामाण्यात् । आह, ननु यदि मतिज्ञानादीनि स्वस्वावरणक्षयोपशमभावेऽपि प्रादुर्भवन्ति ततो निःशेषतः स्वस्वावरणक्षये सुतरां भवेद्युश्चारित्रपरिणामवत्तत्कथं तदानीं तेषामभावः ? आह च—“आवरणदेसविगमे जाहं विज्जन्ति महसुयाईणि । आवरणसत्त्वविगमे कह ताई न होति जीवस्स ॥१॥” इति, उच्यते, इह यथा सहस्रमानोरुपचितघनपटलान्तरितस्यापान्तरालावस्थितकटकुट्ट्याधावरणविवरप्रविष्टः प्रकाशो घटपटादीन् प्रकाशयति, तथा केवलज्ञानावरणाधृतस्य केवलज्ञानस्यापान्तरालमतिज्ञानाधावरणक्षयोपशमरूपविवरविनिर्गतः प्रकाशो जीवादीन् पदार्थान् प्रकाशयति, स च तथा प्रकाशयन् मतिज्ञानमित्यादिलक्षणं तत्तत्क्षयोपशमानुरूपमभिधानमुद्ब्रहति । ततो यथा सकलघनपटलकटकुट्ट्याधावरणापगमे स तथाविधः प्रकाशः सहस्रमानोरस्पष्टरूपो न भवति, किन्तु सर्वात्मना स्फुटरूपोऽन्य एव, तथेहापि सकलकेवलज्ञानावरणमतिज्ञानाधावरणक्षये

१ ति अन्नाणी, तं जहा ।

न तथाविधो मतिज्ञानादिसंज्ञितः केवलज्ञानस्य प्रकाशो भवति, किन्तु सर्वात्मना यथावस्थितं वस्तु परिच्छिन्दम् परिस्फुटरूपोऽन्य एवेत्यदोषः । उक्तं च—“कञ्चिविवरागयकिरणा मेहंनरियस्स जह् दिणेसस्स । ते कञ्चमेहावगमे; न होंति जह् तह इमाहंपि ॥१॥” इति । अन्ये पुनराहुः—सन्त्येव मतिज्ञानादीन्यपि सयोगिकैवल्य्यादौ, केवलमफलत्वात् सन्त्यपि तदानीं न विवक्ष्यन्ते यथा सूर्योदये नक्षत्रादीनीति । तथा चोक्तम्—“अण्णे आम्भिणिबोहियणाणार्हणि वि जिणस्स विज्जंति । अफलाणि सूरुदये, जहेव णक्खत्तमार्हणि ॥१॥” ‘जयाह सत्त मणनाणे’ इति यतादीनि प्रमत्तयतिप्रसूखानि क्षीणमोहान्तानि सप्त गुणस्थानकानि मनःपर्यायज्ञाने भवन्ति न शेषाणि । भावना पूर्वोक्तानुसारेणावसेया । तथा ‘केवलद्विके’ केवलज्ञानदर्शनरूपे द्वे सयोग्ययोगिकैवलिलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तथा ‘अज्ञानत्रिके’ मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणे प्रथमानि त्रीणि मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रलक्षणानि गुणस्थानकानि भवन्ति । मिश्रदृष्टेश्च यद्यपि—‘मीसंमि वा मिस्सं’ इतिवचनात्, ज्ञानव्यामिश्राण्यज्ञानानि प्राप्यन्ते न शुद्धान्यज्ञानानि, तथाऽपि तान्यज्ञानान्येव, यथावस्थितवस्तुतत्त्वनिर्णयाभावात् । अन्ये पुनराहुः—यद्यपि न तदानीं यथावस्थितवस्तुतत्त्वनिर्णयस्तथाऽपि न तान्यज्ञानान्येव, सम्यग्ज्ञानलेशव्यामिश्रत्वात् । - तदुक्तम्—मिथ्यात्वाधिकस्य मिश्रदृष्टेरज्ञानबाहुल्यम्, सम्यक्त्वाधिकस्य पुनः सम्यग्ज्ञानबाहुल्यमित्यादि । तन्मतमाश्रित्याह—‘दो व’ इति द्वे वा प्रथमे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । इति ॥२९॥

सामाह्यच्छेषु, चउरो परिहार दो पमत्ताई ।

देससुहुमे सगं पढमचरमचउ अजयअहखाए ॥३०॥

(हारि०) व्याख्या—सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोश्चत्वारि गुणस्थानानि विभक्तिलोपात्प्रमत्तादीनीति सण्टक्कः । तथा परिहारविशुद्धिके द्वे प्रमत्ताप्रमत्ते । तथा ‘देशसूक्ष्मे’ अत्र द्वन्द्वः, स्वकमिति प्रत्येकं योज्यम् । देशे=देशविरते=चारित्राचारित्र इत्यर्थः, ‘स्वकं’ स्वकीयं देशयति गुणस्थानकमित्यर्थः । तथा सूक्ष्मसंपराये च चतुर्थचारित्रे स्वकं=स्वकीयं सूक्ष्मसंपरायाभिध-गुणस्थानकमित्यर्थः । तथा प्रथमं च चरमं च प्रथमचरमे, \*प्रथमचरमे च\* ते ‘षड’ इति चतुष्के च प्रथमचरमचतुष्के ते भवतः, अत्र प्रथमाद्विवचनलोपो द्रष्टव्यः । कयोः ? इत्याह—वचनव्यत्यादादयतयथाख्यातयोर्थथासंख्यम् । अयमभिप्रायः—अयतशब्देन गुणगुणिनोरमेदोपचारादसंयमो गृहीतः, ततोऽसंयमे प्रथमानि मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्राविरतलक्षणानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति । यथाख्याते तु संयमे चरमाण्युपशान्तक्षीणमोहसयोग्ययोगिकैवलिलक्षणानि चत्वारि गुणस्थानानि भवन्ति । इति गार्थार्थः ॥३०॥

इति संयमे सप्रतिपक्षे भणितानि गुणस्थानानि, साम्प्रतं दर्शनलेश्यामव्येषु तान्येवाह—

(मल०) सामायिकच्छेदोपस्थापनयोश्चत्वारि प्रमत्तादीन्यनिवृत्तिवादपर्यन्तानि गुणस्थानकानि भवन्ति । तथा परिहारविशुद्धिके संयमे द्वे प्रमत्ताप्रमत्तयत्तिलक्षणे गुणस्थानके भवतः, नोत्तराणि; तस्मिन् संयमे वर्तमानस्य श्रेण्यागेहप्रतिषेधात् । 'देससुहुमे सग' इति देशविरता सूक्ष्मसंपरायसंयमे च स्वकं=स्वकीयं स्वकीयं यथाक्रमं देशविरतिगुणस्थानकं सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं भवति । 'पठमचरमचउ अजयअहखाए' इति यथाक्रमं अयते=प्रमंयते=संयमर्हाने प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीन्यविरतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति । यथाख्यातचारित्र्ये पुनश्चरमाण्युपशान्तमोहादीन्ययोगिकेवलपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानानि भवन्ति ॥३०॥

बारस अचखुचखुसु पठमा लेमासु तिसु छ दुसु सत्त ।

सुवकाएँ तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(हारि०) व्याख्या-द्वादश प्रथमानि गुणस्थानकानीति योगः । क १ इत्याह-अचक्षु. इचक्षुषोः' 'अचक्षुर्दर्शने चक्षुर्दर्शने इत्यर्थः । तथा प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानानि पांडति संबन्धः । कासु १ इत्याह- 'लेइयासु' तिसृषु कृष्णनीलकापोतामिधानासु । तथा सप्त प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तयत्यन्तानि । कयोः १ इत्याह-'दुसु' इति द्वयोर्लेशययोस्तैजसी-पन्नामिधानयोः । तथा 'शुक्लेश्यायां' शुक्ललेश्यायां प्रथमानि त्रयोदश गुणस्थानानि । प्रथमशब्दश्चतुर्ष्वपि पदेषु योज्यते । तथा मव्ये सर्वाणि गुणस्थानानि । तथाऽमव्ये एकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकम्, अत्र जातावेकवचनम् । इति गाथार्थः ॥३१॥

इति दर्शनादिपदत्रये मार्गितानि गुणस्थानानि, साम्प्रतं सम्यक्त्वसंज्ञिपदद्वये तान्येवाह-

(मल०) अचक्षुर्दर्शने चक्षुर्दर्शने च प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणमोहपर्यन्तानि द्वादश गुणस्थानकानि भवन्ति । भावना सुज्ञाना । तथा प्रथमासु तिसृषु 'लेइयासु' कृष्णनीलकापोतरूपासु प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि प्रमत्तान्तानि षट् गुणस्थानकानि भवन्ति । कृष्णनीलकापोतलेश्यानां हि प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायरथानानि, ततो मन्दसंक्लेशेषु तदध्यवसायस्थानेषु तथाविधसम्यक्त्वदेशसर्वविरतीनामपि सद्भावो न विरुध्यते । तदुक्तम्-सम्यक्त्वदेशविरतिसर्वविरतीनां प्रतिपत्तिकाले शुभलेश्यात्रयमेव भवति । उत्तरकालं तु सर्वा अपि लेश्याः परावर्तन्तेऽपीति । तथा 'ब्रह्मोः' तेजःपद्मरूपयोर्लेशययोः सप्त गुणस्थानानि भवन्ति । तत्र षट् पूर्वोक्तान्येव सप्तमं त्वप्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् मिथ्यादृष्ट्यादीनां त्वेते लेश्ये जघन्यात्यन्ताविशुद्धतदध्यवसायस्थानापेक्षया द्रष्टव्ये । एवमुत्तरत्रापि भावनीयम् । तथा 'शुक्लेश्यायां' शुक्ललेश्यायां प्रथमानि त्रयोदश गुणस्थानकानि भवन्ति, न त्वयोगिगुणस्थानकम्; अयोगिनो लेश्यातीतत्वात् । तथा मव्ये सर्वाण्यपि गुणस्थानकानि भवन्ति, योग्यत्वात् । अमव्ये पुनरेकमेव मिथ्यादृष्टिलक्षणं गुणस्थानकमिति ॥३१॥

१ 'चक्षुर्दर्शने-ऽचक्षुर्दर्शने चेत्यर्थः' इत्यपि पाठः ।

वेयगखइगउवसमे चउरो एक्कारसट्ट तुरियाई ।

सेसतिगे सट्टाणं सत्तिसु चउदस असत्तिसु दो ॥३२॥

(हारि०) व्याख्या--वेदकं=क्षायोपशमिकं तच्च क्षायिकं चौपशमिकं चेति समाहारद्वन्द्वः । तत्र यथासंख्येन चत्वार्येकादशाष्टौ गुणस्थानानि भवन्ति । किमाद्यानि ? इत्याह--विभक्ति-लोपात् 'तुर्यादोनि' चतुर्थादीनि । तत्र वेदकेऽविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तयतिना-मानि चत्वारि गुणस्थानानि । क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिकैवल्लिगुणस्थानकान्ता-न्येकादश । औपशमिकेऽविरतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तमोहान्तान्यष्टौ गुणस्थानकानि भवन्ति । तथा 'शेषत्रिके' मिश्रसासादनमिध्यादृष्टिरूपे 'स्वस्थानं' स्वकीयपदं भवति । अयमर्थः--सम्य-ग्मिध्यात्वे सम्यग्मिध्यादृष्टिगुणस्थानकम् । एवं सासादने सासादनम्, मिध्यात्वे मिध्यात्व-मिति । तथा 'संज्ञिषु' मनोविज्ञानयुक्तेषु चतुर्दश गुणस्थानकानि भवन्ति । नन्वत्र चतुर्दश-गुणस्थानकमणनेन सामान्येन केवल्यपि संज्ञित्वेन गृहीतः, तत्र सयोगिनं प्रति संज्ञित्वभावना द्रव्यमनःसमाश्रयणेन भवद्भिः प्रागुवता अयोगिनं प्रति सा कथं बुध्यते ?, अत्रोच्यते, पूर्वाव-स्थामाश्रित्य द्रष्टव्येति संभाव्यते कथंवा दृष्टिवादौपदेशिकी संज्ञा गृह्यते । तथा\* 'असंज्ञिषु' मनोविज्ञानरहितेषु द्वे मिध्यात्वसासादनलक्षणगुणस्थानके भवतः । इति गाथार्थः ॥३२॥

इति सम्यक्त्वद्वारे सप्रतिपक्षे संज्ञिद्वारे चोक्तानि गुणस्थानानि । अथ पर्यन्तवर्त्या-हारकद्वारे सप्रतिपक्षे तानि प्रतिपादयन् गत्यादिषु गुणस्थानकसमर्थनां दर्शयन्नाह—

(मल०) वेदकं=क्षायोपशमिकं तस्मिन्, तथा क्षायिके औपशमिके च सम्यक्त्वे यथा-संख्यं चत्वारि एकादशाष्टौ च गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि पुनस्तानि ? इत्यत आह-- 'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्यप्रमत्तपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति, क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तान्येकादश गुण-स्थानकानि भवन्ति, औपशमिकसम्यक्त्वे पुनरविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्युपशान्तमोहपर्यन्तान्यष्टा-विति । 'सेसतिगे सट्टाणं' इति शेषत्रिके मिध्यादृष्टिसासादनमिश्रलक्षणे स्वस्थानं स्वं स्वमेव गुणस्थानकं भवति । तथा संज्ञिषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति, सयोग्ययोग्यवस्थायामपि द्रव्यमनोऽपेक्षया संज्ञित्वाभ्युपगमात् । 'असत्तिसु दो' इति असंज्ञिषु द्वे मिध्यादृष्टिसासा-दनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तत्र सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं लब्धिपर्याप्तकानां करणा-पर्याप्तावस्थायां द्रष्टव्यम् ॥३२॥

आहारगेषु पढमा तेरसऽणाहारगेषु पंच इमे ।

'पढमंतिमदुगअविरय इय् गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

\* एतच्चिह्नद्वयान्तर्गतपाठः प्रत्यन्तरे नास्ति । ? "पढमंतदुगअविरया" इति वा ।



(हारि०) व्याख्या—आहारकेषु प्रथमानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति । तथाऽनाहारके पञ्चेमानि वक्ष्यमाणानि । तान्येवाह—‘पढमंतिमद्गुगअचिरय’ इति द्विकशब्दस्य प्रत्येक-मभिसंबन्धात्प्रथमद्विकान्त्यद्विकविरतानीति तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः । तत्र मिथ्यादृष्टिसासादना-विरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकानि त्रीणि विग्रहगतौ सयोगिकेवल्लिगुणस्थानकम् । समुद्घाते चतुर्थपञ्चमतृतीयसमयेषु सिद्धान्तप्रसिद्धेषु अयोगिकेवल्लिगुणस्थानं त्वीपद्दृष्ट्वाक्षरपञ्चकोद्विरण-मात्रं कालं समस्तगुणस्थानकमित्यर्थः । उक्तं च—“विग्गहगइमावत्ता, केवल्लिणो समु-द्वया अजोगी य । सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा ॥१॥” इत्यना-हारके पञ्चेति गत्यादिष्वाहारकपर्यवसानेषु चतुर्दशपदेषु द्विपद्युत्तरमेदप्रभिन्नेषु ‘इति’ अमृता प्रकारेण गुणस्थानकान्यभिहितानीति शेषः । इति गाथार्थः ॥३३॥

साम्प्रतं मार्गणास्थानेष्वेव योगान्मार्गयितुकामः पूर्वं तानेव प्ररूपयन्नाह—

(मल०) आहारकेषु प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश गुणस्थानकानि भवन्ति, सर्वेष्वप्येतेषु ओजोलोमप्रक्षेपाहाराणामन्यतमस्याहारस्य यथायोगं संभवात् । तथाऽनाहारकेषु पञ्च इमानि वक्ष्यमाणानि गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि ? इत्यत आह—‘पढमंतिमद्गुगअ-चिरय’ इति प्रथमद्विकं मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणम्, अन्तिमद्विकं सयोग्ययोगिकेवल्लिक्षणम्, अविरतसम्यग्दृष्टिश्चेति । तत्र सयोगिनोऽनाहारकत्वं समुद्घातगतस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु तदुक्तम्—“चतुर्थपञ्चमतृतीयेष्वनाहारकः” इति । अयोग्यवस्थायां तु योगरहितत्वेनौ-दारिकादिशरीरपोषकपुद्गलप्रहणाभावादानाहारकत्वम् औदारिकवैक्रियाहारकशरीरपोषकपुद्गलो-पादानमाहार इति हि समयोपनिषद्वेदिनः । मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिषु विग्रहगता-चनाहारकत्वमिति । उपसंहारमाह—‘गइयाइसु इय गुणङ्गाणा’ ॥३३॥

तदेवमुक्तानि मार्गणास्थानेषु गुणस्थानकानि, साम्प्रतमेतेषु योगानभिधित्सुस्तानेव पूर्वं स्वरूपतो निर्दिशति—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य ।

उरलविउब्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(हारि०) व्याख्या—सन्तो मुनयः पदार्था वा, तेषु यथासंख्येन मुक्तिप्रापकत्वेन यथा-वस्थितस्वरूपचिन्तनेन वा हितं सत्यम् । अस्ति जीवः सदसद्रूपो वा देहमात्रव्यापकः, इत्यादि यथावस्थितवस्तुविकल्पनपरम् । तथा तद्विपरीतं मृषा । नास्ति जीव एकान्तसद्रूपो वेत्यादि । यथावस्थिता-ऽयथावस्थितवस्तुचिन्तनपरं मिश्रम् । इह धवखदिरपलाशादिभिन्नेषु बहुष्वशोक-वृक्षेषु अशोकवनमिदमिति यदा विकल्पयति तदा प्रस्तुतमिश्रविषयता । इदं हि विकल्पनमत्रा-प्तोकवृक्षाणां सद्भावात्सत्यम्, अन्येषामपि धवादीनां तत्र सद्भावादसत्यमिति मिश्रम् । न

वेयगखइगउवसमे चउरो एक्कारसट्ट तुरियाई ।

सेसतिगे सट्टाणं सत्तिस्सु चउदस असत्तिस्सु दो ॥३२॥

(हारि०) व्याख्या--वेदकं=क्षायोपशमिकं तच्च क्षायिकं चौपशमिकं चेति समाहारद्वन्द्वः । तत्र यथासंख्येन चत्वार्येकादशाष्टौ गुणस्थानानि भवन्ति । किमाद्यानि ? इत्याह--विभक्ति-लोपात् 'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र वेदकेऽविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तयतिना-मानि चत्वारि गुणस्थानानि । क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिकैवल्यगुणस्थानकान्तान्येकादश । औपशमिकेऽविरतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तमोहान्तान्यष्टौ गुणस्थानकानि भवन्ति । तथा 'शेषत्रिके' मिश्रसासादनमिध्यादृष्टिरूपे 'स्वस्थानं' स्वकीयपदं भवति । अयमर्थः--सम्यग्मिध्यात्वे सम्यग्मिध्यादृष्टिगुणस्थानकम् । एवं सासादने सासादनम्, मिध्यात्वे मिध्यात्वमिति । तथा 'संज्ञिषु' मनोविज्ञानयुक्तेषु चतुर्दश गुणस्थानकानि भवन्ति । नन्वत्र चतुर्दश-गुणस्थानकभणनेन सामान्येन केचन्यपि संज्ञित्वेन गृहीतः, तत्र सयोगिनं प्रति संज्ञित्वभावना द्रव्यमनःसमाश्रयणेन भवद्भिः प्रागुवता अयोगिनं प्रति सा कथं बुध्यते ?, अत्रोच्यते, पूर्वावस्थामाश्रित्य द्रष्टव्येति संभाव्यते कथं दृष्टिवादीपदेशिकी संज्ञा गृह्यते । तथा\* 'असंज्ञिषु' मनोविज्ञानरहितेषु द्वे मिध्यात्वसासादनलक्षणगुणस्थानके भवतः । इति गाथार्थः ॥३२॥ इति सम्यक्त्वद्वारे सप्रतिपक्षे संज्ञिद्वारे चोक्तानि गुणस्थानानि । अथ पर्यन्तवर्त्या-हारकद्वारे सप्रतिपक्षे तानि प्रतिपादयन् गत्यादिषु गुणस्थानकसमर्थनां दर्शयन्नाह—

(मल०) वेदकं=क्षायोपशमिकं तस्मिन्, तथा क्षायिके औपशमिके च सम्यक्त्वे यथासंख्यं चत्वारि एकादशाष्टौ च गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि पुनस्तानि ? इत्यत आह--'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्यप्रमत्तपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति, क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तान्येकादश गुणस्थानकानि भवन्ति, औपशमिकसम्यक्त्वे पुनरविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्युपशान्तमोहपर्यन्तान्यष्टौ-विति । 'सेसतिगे सट्टाणं' इति शेषत्रिके मिध्यादृष्टिसासादनमिश्रलक्षणे स्वस्थानं स्वं स्वमेव गुणस्थानकं भवति । तथा संज्ञिषु चतुर्दशपि गुणस्थानकानि भवन्ति, सयोग्ययोग्यवस्थायामपि द्रव्यमनोऽपेक्षया संज्ञित्वाभ्युपगमात् । 'असत्तिस्सु दो' इति असंज्ञिषु द्वे मिध्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तत्र सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं लब्धिपर्याप्तकानां करणापर्याप्तावस्थार्या द्रष्टव्यम् ॥३२॥

आहारगेषु पढमा तेरसऽणाहारगेषु पंच इमे ।

'पढमंतिमदुगअविरय इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(हारि०) व्याख्या—आहारकेषु प्रथमानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति । तथाऽनाहारके पञ्चेमानि वक्ष्यमाणानि । तान्येवाह—‘पदमन्तिमदुगअचिरय’ इति द्विकशब्दस्य प्रत्येक-मभिसंबन्धात्प्रथमद्विकान्त्यद्विकविरतानीति तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः । तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकानि त्रीणि विग्रहगतौ सयोगिकेवल्लिगुणस्थानकम् । समुद्धाते चतुर्थपञ्चमतृतीयसमयेषु सिद्धान्तप्रसिद्धेषु अयोगिकेवल्लिगुणस्थानं त्वीपद्दृष्ट्वाक्षरपञ्चकोद्विरण-मात्रं कालं समस्तगुणस्थानकमित्यर्थः । उक्तं च—“विग्रहगहृभावना, केवल्लिणो समु-हया अजोगी य । सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा ॥१॥” इत्यना-हारके पञ्चेति गत्यादिष्वानाहारकपर्यवसानेषु चतुर्दशपदेषु द्विपष्ट्युत्तरमेदप्रभिन्नेषु ‘इति’ अमुना प्रकारेण गुणस्थानकान्यमिहितानीति शेषः । इति गार्थार्थः ॥३३॥

साम्प्रतं मार्गणास्थानेष्वेव योगान्मार्गयितुकामः पूर्वं तानेव प्ररूपयन्नाह—

(मल०) आहारकेषु प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश गुणस्थानकानि भवन्ति, सर्वेष्वप्येतेषु ओजोलोमप्रक्षेपाहाराणामन्यतमस्याहारस्य यथायोगं संभवात् । तथाऽनाहारकेषु पञ्च इमानि वक्ष्यमाणानि गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि ? इत्यत आह—‘पदमन्तिमदुगअ-चिरय’ इति प्रथमद्विकं मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणम्, अन्तिमद्विकं सयोग्ययोगिकेवल्लिलक्षणम्, अविरतसम्यग्दृष्टिश्चेति । तत्र सयोगिनोऽनाहारकत्वं समुद्धातगतस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु तदुक्तम्—“चतुर्थपञ्चमतृतीयेष्वनाहारकः” इति । अयोग्यवस्थायां तु योगरहितत्वेनौ-दारिकादिक्षरीरपोषकपुद्गलग्रहणाभावादानाहारकत्वम् औदारिकवैक्रियाहारकक्षरीरपोषकपुद्गलो-पादानमाहार इति हि समयोपनिषद्देदिनः । मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिषु विग्रहगता-वनाहारकत्वमिति । उपसंहारमाह—‘गद्याइसु इय गुणङ्गाणा’ ॥३३॥

तदेवमुक्तानि मार्गणास्थानेषु गुणस्थानकानि, साम्प्रतमेतेषु योगानभिधित्युस्तानेव पूर्वं स्वरूपतो निर्दिशति—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य ।

उरलविउब्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(हारि०) व्याख्या—सन्तो मूनयः पदार्था वा, तेषु यथासंख्येन मुक्तिप्रापकत्वेन यथा-वस्थितस्वरूपचिन्तनेन वा हितं सत्यम् । अस्ति जीवः सदसद्रूपो वा देहमात्रव्यापकः, इत्यादि यथावस्थितवस्तुविकल्पनपरम् । तथा तद्विपरीतं मृषा । नास्ति जीव एकान्तसद्रूपो वेत्यादि । यथावस्थिता-ऽयथावस्थितवस्तुचिन्तनपरं मिश्रम् । इह धवखदिरपलाशादिमिश्रेषु बहुष्वश्लोक-वृक्षेषु अश्लोकवनमिदमिति यदा विकल्पयति तदा प्रस्तुतमिश्रविषयता । इदं हि विकल्पनमत्रा-श्लोकवृक्षाणां सद्भावात्सत्यम्, अन्येषामपि धवादीनां तत्र सद्भावादसत्यमिति मिश्रम् । न

वेयगखहगउवसमे चउरो एक्कारसट्ट तुरियाई ।

सेसतिगे सट्टाणं सत्तिसु चउदस असत्तिसु दो ॥३२॥

(हारि०) व्याख्या--वेदकं=क्षायोपशमिकं तच्च क्षायिकं चौपशमिकं चेति समाहारद्वन्द्वः । तत्र यथासंख्येन चत्वार्येकादशाष्टौ गुणस्थानानि भवन्ति । किमाद्यानि ? इत्याह--विभक्ति-लोपात् 'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र वेदकेऽविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तयतिना-मानि चत्वारि गुणस्थानानि । क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिकेवल्लिगुणस्थानकान्ता-न्येकादश । औपशमिकेऽविरतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तमोहान्तान्यष्टौ गुणस्थानकानि भवन्ति । तथा 'शेषत्रिके' मिश्रसासादनमिथ्यादृष्टिरूपे 'स्वस्थानं' स्वकीयपदं भवति । अयमर्थः--सम्य-ग्मिथ्यात्वे सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकम् । एवं सासादने सासादनम्, मिथ्यात्वे मिथ्यात्व-मिति । तथा 'संज्ञिषु' मनोविज्ञानयुक्तेषु चतुर्दश गुणस्थानकानि भवन्ति । नन्वत्र चतुर्दश-गुणस्थानकभणनेन सामान्येन केवल्यपि संज्ञित्वेन गृहीतः, तत्र सयोगिनं प्रति संज्ञित्वभावना द्रव्यमनःसमाश्रयणेन भवद्भिः प्रागुवता अयोगिनं प्रति सा कथं बुध्यते ?, अत्रोच्यते, पूर्वाव-स्थामाश्रित्य द्रष्टव्येति संभाव्यते कथं वा दृष्टिवादौपदेशिकी संज्ञा गृह्यते । तथा 'असंज्ञिषु' मनोविज्ञानरहितेषु द्वे मिथ्यात्वसासादनलक्षणगुणस्थानके भवतः । इति गाथार्थः ॥३२॥

इति सम्यक्त्वद्वारे सप्रतिपक्षे संज्ञिद्वारे चोक्तानि गुणस्थानानि । अथ पर्यन्तवर्त्या-हारकद्वारे सप्रतिपक्षे तानि प्रतिपादयन् गत्यादिषु गुणस्थानकसमर्थनां दर्शयन्नाह—

(मल०) वेदकं=क्षायोपशमिकं तस्मिन्, तथा क्षायिके औपशमिके च सम्यक्त्वे यथा-संख्यं चत्वारि एकादशाष्टौ च गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि पुनस्तानि ? इत्यत आह--'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्यप्रमत्तपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति, क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तान्येकादश गुण-स्थानकानि भवन्ति, औपशमिकसम्यक्त्वे पुनरविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्युपशान्तमोहपर्यन्तान्यष्टा-विति । 'सेसतिगे सट्टाणं' इति शेषत्रिके मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रलक्षणे स्वस्थानं स्वं स्वमेव गुणस्थानकं भवति । तथा संज्ञिषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति, सयोग्ययोग्यवस्थायामपि द्रव्यमनोऽपेक्षया संज्ञित्वाम्युपगमात् । 'असत्तिसु दो' इति असंज्ञिषु द्वे मिथ्यादृष्टिसासा-दनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तत्र सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं लब्धिपर्याप्तकानां करणा-पर्याप्तावस्थार्या द्रष्टव्यम् ॥३२॥

आहारगेसु पढमा तेरसऽणाहारगेसु पंच इमे ।

'पढमंतिमदुगअविरय इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

साम्प्रतमेते गत्यादिमार्गणास्थानेषु योज्यन्ते—

(मल०) इह योगशब्देन कारणे कार्योपचारात्तत्सहकारिभूतं मनः प्रभृत्येव विवक्षितमिति तैः सह योगस्य सामानाधिकरण्यम् । तत्र मनश्चतुर्धा, तद्यथा-सत्यं, मृषाः 'मिश्रम्' इति सत्यामृषा असत्यामृषेति । तत्र सत्यमिति सन्तो मुनयः पदार्था वा, तेषु यथासंख्यं मुक्ति-प्रापकत्वेन यथावस्थितवस्तुस्वरूपचिन्तनेन च साधु सत्यम्, यथाऽस्ति जीवः सदसद्रूपो देहमात्रव्यापी, इत्यादिरूपतया यथावस्थितवस्तुचिन्तनपरम् । सत्यधिपरीतमसत्यम्, यथा नास्ति जीव एकान्तासद्रूपो वा, इत्यादिकृद्विकल्पनपरम् । सत्यं च मृषा चेति मिश्रम्, यथा धवखदिरपलाशादिमिश्रेषु बहुध्वशोकवृक्षेष्वशोकवनमेवेदमिति विकल्पनपरम् । अत्र हि कतिपयाशोकवृक्षाणां सद्भावात्सत्यता, अन्येषामपि धवादीनां सद्भावादसत्यता, व्यवहारनयमतापेक्षया चैवमुच्यते । परमार्थतः पुनरिदमसत्यमेव, यथाविकल्पितार्थायोगात् । तथा यन्न सत्यं नापि मृषा तदसत्यामृषा । इह विप्रतिपत्तौ सत्यां यद्वस्तुप्रतिष्ठाशया सर्वज्ञमतानुसारेण विकल्प्यते, यथाऽस्ति जीवः सदरुद्रूप इत्यादि, तत्किल सत्यं परिभाषितम् । यत्पुनर्विप्रतिपत्तौ सत्यां वस्तुप्रतिष्ठाशया सर्वज्ञमतोत्तीर्णं विकल्प्यते, यथा नास्ति जीव एकान्तनित्यो वेति तदसत्यम्, विराघकत्वात् । यत्पुनर्द्वस्तुप्रतिष्ठाशामन्तरेण स्वरूपमात्रपर्यालोचनपरम् ; यथा हे देवदत्त ! घटमानय, गां देहि मङ्गम् ; इत्यादिचिन्तनपरं तदसत्यामृषा । इदं हि स्वरूपमात्रपर्यालोचनपरत्वात् यथोक्तलक्षणं सत्यं नापि मृषेति, इदमपि व्यवहारनयमतेन द्रष्टव्यम्, निश्चयनयमतेन तु विप्रतारणादिबुद्धिपूर्वकमसत्येऽन्तर्भवति अन्यथा तु सत्ये इति । 'तह षई' इति यथा मनः सत्यादिमेदाश्चतुर्धा तथा वागपि सत्यादिमेदाश्चतुर्धा । 'उरलघिउच्चाहारा' इति औदारिकवैक्रियाहारकाणि । तत्रोदारं=प्रधानम् । प्राधान्यं च तीर्थकरणधरशरीरापेक्षया द्रष्टव्यम् । ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्याप्यनन्तगुणहीनरूपत्वादुदारमेवौदारिकम् । विनयादित्वादिकण् । अथवोदारं=सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाणम् । बृहत्ता चास्य वैक्रियमधिकृत्य भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया द्रष्टव्या । अन्यथोत्तरवैक्रियं योजनलक्षमानमपि लभ्यत इति । उदारमेवौदारिकम् । प्राग्बदिकणप्रत्ययः । तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियम् । तथा चतुर्दशपूर्वविदा तीर्थकरस्फातिदर्शनादिकतथाविधप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादाद्द्वियते=निर्वर्त्यत इत्याहारकम् । कृद्बहुलमिति वचनात् कर्मणि वुञ् । यथा पादहारक इत्यत्र । 'मिस्सा' इति मिश्रशब्दः प्रत्येकममिसंबध्यते । औदारिकमिश्रं वैक्रियमिश्रं आहारकमिश्रं च । तत्रौदारिकमिश्रं कर्मणेन, तच्चापर्याप्तावस्थार्यां केवलिसमुद्धातावस्थार्यां वा उत्पत्तिदेशे हि पूर्वमवादनन्तरमागतो जीवः प्रथमसमये कर्मणेनेव केवलेनाहारयति, ततः परमौदारिकस्याप्यारब्धत्वादौदारिकेण कर्मणमिश्रेण यावच्छरीरस्य निष्पत्तिः । उक्तं च 'जोषण

विद्यते मृषा यत्र तद्भवत्यमृषम्, असत्यं च तदमृषं चेति कृताकृतादिवन्कर्मधारयः, आमन्त्रण-  
प्रज्ञापनादिरूपम्, यथा हे देवदत्त ! घटमानय, धर्मं कुरु, भिक्षां देहि इत्यादि । एवंविधं  
क्रिम् ! इत्याह—‘मर्ण’ इति मन=श्चित्तं, तथाशब्दो वाक्योपश्लेषार्थः । लिङ्गव्यत्ययेन वाक्चैवं-  
विधैव चतुर्थेऽन्त्यर्थः । तथा ‘उरल्विउच्चाहारा’ इति सूचकत्वात्सूत्रस्यौदारिकवैक्रिया-  
हारककाययोगाः । तथा ‘मोसा’ इति एत एवौदारिकादयो मिश्रास्त्रयः । ‘कम्मङ्ग’  
इति प्राकृतत्वात्कार्मणकाययोग इति सप्तविधकाययोगः । तत्रोदारं=प्रधानं, उदारमेवौ-  
दारिकम् । प्राधान्यं चेह तीर्थकरणधरशरीरापेक्षया वेदितव्यम् । ततोऽन्यस्यानुत्तरसुर-  
शरीरस्याप्यनन्तगुणहीनरूपत्वात् । अथवा उदारं=सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरेभ्यो  
बृहत्प्रमाणम्, उदारमेवौदारिकम् । बृहत्त्वं चास्य भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया मन्तव्यम् ।  
अन्यथा हि उत्तरवैक्रियं लक्ष्ययोजनमानमपि लभ्यत इति । औदारिकमेव चीयमानत्वात्कायः,  
तेन सहकारिकारणभूतेन तद्विषयो वा योग औदारिककाययोगः १ । तथा विविधा विशिष्टा  
वा क्रिया विक्रया तस्या भवं वैक्रियम्, विशिष्टं कुर्वन्ति तदिति च निपातनाद्द्वैक्रियम्, तदेव  
कायस्तेन योगो वैक्रियकाययोगः २ । तथा चतुर्दशपूर्वविदा तथाविधकार्योत्पत्तौ विशिष्टल-  
ब्धिवशादाहियते=निर्वर्त्यत इत्याहारकम्, अथवा आहियन्ते=गृह्यन्ते तीर्थकरादिसमीपे धूम्रा  
जीवादयः पदार्था अनेनेत्याहारकम्, तदेव कायः, तेन योग आहारककाययोगः ३ । तथा  
औदारिकं मिश्रं यत्र, कारणेनेति गम्यते, स भवत्यौदारिकमिश्रः । उत्पत्तिदेशे हि अनन्तरगतो  
जीवः प्रथमसमये कार्मणेनैवाहारयति ततः परमौदारिकस्यारब्धत्वादौदारिकेण कार्मणमिश्रेणा-  
हारयति, उक्तं च नियुक्तिकृता—‘जोएण कम्मएणं, आहारेई षणंतर जीवो । तेण  
परं मोसंणं, जावं सरारस्स निप्फत्ती ॥१॥’ औदारिकमिश्रश्चासौ कायश्च तेन योग  
औदारिकमिश्रकाययोगः ४ । तथा वैक्रियं मिश्रं यत्र कार्मणेनेति गम्यते स वैक्रियमिश्रः ।  
अयं तु देवनारकाणामपर्याप्तावस्थार्या मन्तव्यः । शेषस्तु वाय्वादीनामौदारिक (वैक्रिय) मिश्रो  
न ग्राह्योऽप्रधानत्वादिति ५ । तथाऽऽहारकं मिश्रं यत्रौदारिकेणेति गम्यते स आहारकमिश्रः, स  
एव कायस्तेन योग आहारकमिश्रकाययोगः । यदा सिद्धप्रयोजनश्चतुर्दशपूर्वविदाऽऽहारकं  
परित्यज्यौदारिकोदादानाय प्रवर्तते तदौदारिकेण मिश्रमाहारकं प्राप्यते । बहुव्यापारत्वेन प्रधान-  
त्वादाहारकेण व्यपदेश इति भावः । अन्ये त्वस्यापि प्रारम्भकाल एवाहारकमिश्रं प्रतिपद्यन्ते,  
प्रारम्भमाणत्वेनाहारकस्य प्राधान्यविवक्षया तेनैव व्यपदेशमिच्छन्तीति हृदयम् ६ । तथा कर्मैव  
कार्मणः, अथ कर्मणो विकारः कार्मणः, उक्तं च—‘कम्मविधागो कम्मणमड्विह्विचित्त-  
कम्मनिप्फन्नं । सव्वेस्सि सरौराणं कारणभूयं मुणोयच्चं ॥१॥ कार्मणश्चासौ कायश्च  
तेन योगः कार्मणकाययोगः ७ । ‘इय जांगा’ इति ‘इति’ अमुना प्रकारेण योगाः पञ्च-  
दशापि प्ररूपिता इति शेषः । इति गाथार्थः ॥३४॥

साम्प्रतमेते गत्यादिमार्गणास्थानेषु योज्यन्ते—

(मल०) इह योगशब्देन कारणे कार्योपचारात्सहकारिभूतं मनः प्रभृत्यैव विवक्षितमिति तैः सह योगस्य सामानाधिकरण्यम् । तत्र मनश्चतुर्धा, तद्यथा—सत्यं, मृषाः 'मिश्रम्' इति सत्यामृषा असत्यामृषेति । तत्र सत्यमिति सन्तो मुनयः पदार्था वा, तेषु यथासंख्यं मुक्ति-प्रापकत्वेन यथावस्थितवस्तुस्वरूपचिन्तनेन च साधु सत्यम्, यथाऽस्ति जीवः सदसद्रूपो देहमात्रव्यापी, इत्यादिरूपतया यथावस्थितवस्तुचिन्तनपरम् । सत्यधिपरीतमसत्यम्, यथा नास्ति जीव एकान्तासद्रूपो वा, इत्यादिक्रविकल्पनपरम् । सत्यं च मृषा चेति मिश्रम्, यथा धवखदिरपलाशादिमिश्रेषु बहुष्वशोकवृक्षेष्वशोकवनमेवेदमिति विकल्पनपरम् । अत्र हि कतिपयाशोकवृक्षाणां सद्भावात्सत्यता, अन्येषामपि धवादीनां सद्भावादसत्यता, व्यवहारनयमतापेक्षया चैवमुच्यते । परमार्थतः पुनरिदमसत्यमेव, यथाविकल्पितार्थायोगात् । तथा यत्र सत्यं नापि मृषा तदसत्यामृषा । इह विप्रतिपत्तौ सत्यां यद्वस्तुप्रतिष्ठाशया सर्वज्ञमत्तानुसारेण विकल्प्यते, यथाऽस्ति जीवः सदरुद्रूप इत्यादि, तत्किल सत्यं परिभाषितम् । यत्पुनर्विप्रतिपत्तौ सत्यां वस्तुप्रतिष्ठाशया सर्वज्ञमतोत्तीर्णं विकल्प्यते, यथा नास्ति जीव एकान्तनिस्त्यो वेति तदसत्यम्, विराधकत्वात् । यत्पुनर्वस्तुप्रतिष्ठाशामन्तरेण स्वरूपमात्रपर्यालोचनपरम् ; यथा हे देवदत्त ! घटमानय, गां देहि मक्षम् ; इत्यादिचिन्तनपरं तदसत्यामृषा । इदं हि स्वरूपमात्रपर्यालोचनपरत्वाच्च यथोक्तलक्षणं सत्यं नापि मृषेति, इदमपि व्यवहारनयमतेन द्रष्टव्यम्, निश्चयनयमतेन तु विप्रतारणादिबुद्धिपूर्वकमसत्येऽन्तर्भवति अन्यथा तु सत्ये इति । 'तद् बर्हे' इति यथा मनः सत्यादिभेदाच्चतुर्धा तथा वागपि सत्यादिभेदाच्चतुर्धा । 'उरल्लिङ्गवाहारा' इति औदारिकवैक्रियाहारकाणि । तत्रोदारं=प्रधानम् । प्राधान्यं च तीर्थकरणधरशरीरापेक्षया द्रष्टव्यम् । ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्याप्यनन्तगुणहीनरूपत्वादुदारमेवौदारिकम् । विनयादित्वादिकण् । अथवोदारं=सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाणम् । बृहत्ता चास्य वैक्रियमधिकृत्य भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया द्रष्टव्या । अन्यथोत्तरवैक्रियं योजनलक्षमानमपि लभ्यत इति । उदारमेवौदारिकम् । प्राग्वादिकण्प्रत्ययः । तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियम् । तथा चतुर्दशपूर्वविदा तीर्थकरस्फातिदर्शनादिकतथाविधप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादाह्रियते=निर्वर्त्यत इत्याहारकम् । कृद्बहुत्वमिति वचनात् कर्मणि भुञ् । यथा पादहारक इत्यत्र । 'मिस्सा' इति मिश्रशब्दः प्रत्येकमभिसंघच्यते । औदारिकमिश्रं वैक्रियमिश्रं आहारकमिश्रं च । तत्रौदारिकमिश्रं कार्मणेन, तच्चापर्याप्तावस्थायां केवलिसमृद्धात्तावरथायां वा उत्पत्तिदेशे हि पूर्वभवादनन्तरमागतो जीवः प्रथमसमये कार्मणेनेव केवलेनाहारयति, ततः परमौदारिकस्याप्यारब्धत्वादौदारिकेण कार्मणमिश्रेण यावच्छरीरस्य निष्पत्तिः । उक्तं च 'जोएण

विद्यते मृगं यत्र तद्भवत्यमृगम्, अमृत्यं च तदमृतं चेति कृताकृतादियन्कर्मधारयः, आमन्त्रण-  
 प्रज्ञापनादिरूपम्, यथा हे देवदत्त ! घटमानय, धर्मं कुरु, भिक्षां देहि इत्यादि । एवंविधं  
 किम् ! इत्याह—‘मगं’ इति मन=श्चित्तं, तथाशब्दो वाक्योपश्लेषार्थः । लिङ्गव्यत्ययेन वाक्चैवं-  
 विधैव चतुर्थेदेत्यर्थः । तथा ‘उरलविउच्चाहारा’ इति द्वचक्रत्वात्स्वयौदारिकवैक्रिया-  
 हारककाययोगाः । तथा ‘मीसा’ इति एत एवौदारिकादयो मिश्रास्त्रयः । ‘कम्मइग’  
 इति प्राकृतत्वात्कार्मणकाययोग इति सप्तविधकाययोगः । तत्रोदारं=प्रधानं, उदारमेवौ-  
 दारिकम् । प्राधान्यं चेह तीर्थकरणधरशरीरापेक्षया वेदितव्यम् । ततोऽन्यस्यानुत्तरसुर-  
 शरीरस्याप्यनन्तगुणहीनरूपत्वात् । अथवा उदारं=सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरेभ्यो  
 बृहत्प्रमाणम्, उदारमेवौदारिकम् । बृहत्त्वं चास्य भवधारणीयसहस्रशरीरापेक्षया मन्तव्यम् ।  
 अन्यथा हि उत्तरवैक्रियं लक्षयोजनमानमपि लभ्यत इति । औदारिकमेव चीयमानत्वात्कायः,  
 तेन सहकारिकारणभूतेन तद्विषयो वा योग औदारिककाययोगः १ । तथा विविधा विशिष्टा  
 वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियम्, विशिष्टं कुर्वन्ति तदिति च निपातनाद्वैक्रियम्, तदेव  
 कायस्तेन योगो वैक्रियकाययोगः २ । तथा चतुर्दशपूर्वविदा तथाविधकार्योत्पत्तौ विशिष्टल-  
 ङ्घिवशादाहियते=निर्वर्त्यते इत्याहारकम्, अथवा आहियन्ते=गृह्यन्ते तीर्थकरादिसमीपे सूक्ष्मा  
 जीवादयः पदार्था अनेनेत्याहारकम्, तदेव कायः, तेन योग आहारककाययोगः ३ । तथा  
 औदारिकं मिश्रं यत्र, कार्मणेनेति गम्यते, स भवत्यौदारिकमिश्रः । उत्पत्तिदेशे हि अनन्तरागतो  
 जीवः प्रथमसमये कार्मणेनैवाहारयति ततः परमौदारिकस्यारब्धत्वादौदारिकेण कार्मणमिश्रेणा-  
 हारयति, उक्तं च नियुक्तिकृता—“जोएण कम्मएणं, आहारेई अणंतरं जीषो । तेण  
 परं मीसेणं, जावे सरारस्स निप्फत्ती ॥१॥” औदारिकमिश्रश्चासौ कायश्च तेन योग  
 औदारिकमिश्रकाययोगः ४ । तथा वैक्रियं मिश्रं यत्र कार्मणेनेति गम्यते स वैक्रियमिश्रः ।  
 अयं तु देवनारकाणामपर्याप्तावस्थार्या मन्तव्यः । शेषस्तु बाध्यादीनामौदारिक (वैक्रिय) मिश्रो  
 न ग्राहोऽप्रधानत्वादिति ५ । तथाऽऽहारकं मिश्रं यत्रौदारिकेणेति गम्यते स आहारकमिश्रः, स  
 एव कायस्तेन योग आहारकमिश्रकाययोगः । यदा सिद्धप्रयोजनश्चतुर्दशपूर्वविदाऽऽहारकं  
 परित्यज्यौदारिकोपादानाय प्रवर्तते तदौदारिकेण मिश्रमाहारकं प्राप्यते । बहुव्यापारत्वेन प्रधान-  
 त्वादाहारकेण व्यपदेश इति भावः । अन्ये त्वस्यापि प्रारम्भकाल एवाहारकमिश्रं प्रतिपद्यन्ते,  
 प्रारम्भमाणत्वेनाहारकस्य प्राधान्यविवक्षया तेनैव व्यपदेशमिच्छन्तीति हृदयम् ६ । तथा कर्मैव  
 कार्मणः, अथ कर्मणो विकारः कार्मणः, उक्तं च—‘कम्मविचागो कम्मणमइविह्विचित्त-  
 कम्मनिप्फन्नं । सव्वेसि सरौराणं कारणमूयं सुणयव्वं ॥१॥ कार्मणश्चासौ कायश्च  
 तेन योगः कार्मणकाययोगः ७ । ‘इय जांगा’ इति ‘इति’ अमुना प्रकारेण योगाः पञ्च-  
 दशापि प्ररूपिता इति शेषः । इति गाथार्थः ॥३४॥



नरगह' पर्णिदि' तस' तणु' नर' अपुम' कसाय' मह' सु' आहदुग' ।  
अचक्खु' छलेमा' भव' सम्मदुग' सन्निसु' य मव्वे ॥३६॥

(हारि०) व्याख्या—'नरगह' इति मनुष्यगतौ १ पञ्चेन्द्रियेषु २ त्रसेषु ३ 'तणु' इति काययोगे ४ 'नर' इति पुरुषवेदे ५ 'अपुम' इति नपुंसकवेदे ६ 'कसाय' इति क्रोध ७ मान ८ माया ९ लोभेषु १० मतिज्ञाने ११ श्रुतज्ञाने १२ 'ओहिदुगे' इति अवधिज्ञाने १३ अवधिदर्शने १४ च । एतेषु समाहारद्वन्द्वः 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने १५ 'छलेसा' इति कृष्ण १६ नील १७ कापोत १८ तैजसी १९ पद्म २० शुक्ललेशयासु २१ भव्येषु २२ सम्मदुग' इति क्षायोपशमिके २३ क्षायिके २४ संज्ञिषु २५, अत्रापीतरेतरद्वन्द्वः, चशब्दः समुच्चये, 'सव्वे' योगा इति प्रक्रमः, पञ्चदशापि पञ्चविंशतिपदेषु भवन्ति । इति गार्थः ॥३६॥

तथा—

(मल०) नरगतौ मनुष्यगतौ । इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियेषु कायद्वारे त्रसकायेषु, योगद्वारे काययोगे, वेदद्वारे पुंवेदनपुंसकवेदयोः, कषायद्वारे चतुर्ष्वपि कषायेषु 'महसुओहिदुगे' इति ज्ञानद्वारे मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने, दर्शनद्वारे अवधिदर्शने 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने, लेश्याद्वारे षट्स्वपि लेशयासु, भव्यद्वारे भव्येषु 'सम्मदुग' इति सम्यक्त्वद्वारे क्षायोपशमिके क्षायिके च, संज्ञिद्वारे संज्ञिषु पञ्चदशापि योगा भवन्ति । सुज्ञानत्वाच्च नेह भावना क्रियते ॥३६॥

एर्णिदिपसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।

कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(हारि०) व्याख्या—एकेन्द्रियेषु पञ्चैव योगा इति प्रक्रमः । तुशब्द एवकारार्थः, स च योजित एव । के एते ? युगलशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्कार्मणवैक्रिययुगलौदारिकयुगलानि, अत्र तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः । तत्र कर्मणं विग्रहगतौ, वैक्रियद्विकं बादरपर्याप्तकवायुकायिकापेक्षम्, तथा कर्मणौदारिकद्विकमिति द्वन्द्वः, अन्त्यभाषा चेति 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपेषु प्रत्येकं चत्वारो योगा इति प्रक्रमः । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । तत्र कर्मणं विग्रहगतौ, अन्त्यभाषाऽसत्यामृषालक्षणा इति गार्थः । ॥३७॥

तथा—

(मल०) एकेन्द्रियेषु पञ्च योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह—'कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि' इति कर्मणमौदारिकयुगलं वैक्रिययुगलं च । तत्र कर्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायां, पर्याप्तावस्थायां त्वौदारिकम् । वैक्रिययुगलं बादरपर्याप्तावस्थायां तस्य तल्लिङ्गसंभवात् । तथा 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियलक्षणेषु कर्मणौदारिकद्विकान्तिमभाषारूपाश्चत्वारो योगा भवन्ति । तत्र कर्मणौदारिकद्विकभावना प्राग्वत् । अन्तिमभाषा चासत्यामृषारूपा, शेषा तु भाषा तेषां न संभवत्येव, "विगलेषु असहभोसेव" इतिवचनात् ॥३७॥

कम्मएणं, आहारेई अणंतरं जीवो । तेण परं मोसेणं, जाव सरीरस्स निप्फत्ती ॥१॥” केवलिसमुद्घातावस्थायां तु द्वितीयपष्ठसप्तमसमयेषु कार्मणेन मिश्रमौदारिकं प्रतीतमेव । तथा वैक्रियमिश्रं कार्मणेन औदारिकेण वा । तत्कार्मणेन मिश्रं देवनारकाणामपर्याप्तावस्थायां प्रथमसमयादनन्तरं द्रष्टव्यम् । वादरपर्याप्तकवायोः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च वैक्रियलब्धिमतां वैक्रियारम्भकाले वैक्रियपरित्यागकाले वा औदारिकेणेति । तथा सिद्धप्रयोजनस्य चतुर्दश-पूर्वविद आहारकं परित्यजत औदारिकमुपपादनस्य आहारकं वा प्रारम्भमाणस्याहारकमिश्रमौदारिकेण द्रष्टव्यम् । ‘कम्मङ्ग’ इति कर्मैव कार्मणम् । प्रज्ञादित्वाद्दण् । संसार्यात्मनां गत्यन्तर-संक्रमणे साधकतमं करणम् । ‘ह्य जोगा’ इतिः परिसमाप्तिवचनः । ततोऽयमर्थः—एते एव योगा नान्ये इति । ननु तैजसमपि शरीरं विद्यते तदुक्ताहारपरिणमनहेतुः, यद्वशाद्वा विशिष्ट-तपोविशेषसमुत्थलब्धिविशेषस्य पुंसस्तेजोलेश्याविनिर्गमः तत्कथम् ? उच्यते, एत एव योगा इति नैष दोषः, सदा कार्मणेन सहाव्यभिचारितया तस्य तद्ग्रहेणैव गृहीतत्वादिति ॥३४॥

उक्ताः स्वरूपतो योगाः, साम्प्रतमेतानेव मार्गणास्थानेषु चिन्तयन्नाह—

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।

जोगा तिरियगईए तेरम आहारगदुगूणा ॥३५॥

(हारि०) व्याख्या—एकादशेति संख्या योगा इति योगः । किं स्वरूपास्ते ! इत्याह—‘आहारकद्विकौदारिकद्विकरहिताः’ द्विकशब्दः प्रत्येकमभिसंबन्ध्यते कयोः, ? सुरनारक-गस्योः’ सुराणां नारकाणां चैकादश योगा इत्यर्थः । आहारकद्विकं यतेरेव । औदारिकद्विकं तु नरतिरश्चामेवेतिकृत्वेति तद्वर्जनम् । तथा तिर्यग्गतौ त्रयोदश योगा इति प्राक्तनेन संबन्धः । कीदृशास्ते ? इत्याह—आहारकद्विकोनाः, भावना तु पूर्ववत् इति गाथार्थः ॥३५॥

सम्प्रत्येकगाथया पञ्चविंशतिपदेषु पञ्चदशापि योगान् संगृह्य लाघवार्थमाह—

(मल०) सुरगतौ नरकगतौ च प्रत्येकमाहारकद्विकौदारिकद्विकरहिताः शेषा एकादश मनो-योगचतुष्टयं वाग्योगचतुष्टयं च वैक्रियं ६ वैक्रियमिश्रं १० कार्मणं ११ लक्षणा योगा भवन्ति । तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च, वैक्रियमिश्रमपर्याप्तावस्थायाम्, पर्याप्तवस्थायां तु वैक्रियम्, मनोयोगचतुष्टयं वाग्योगचतुष्टयं च पर्याप्तवस्थायां सुप्रतीतमेव । यदा-ऽऽहारकद्विकमाहार-कतन्मिश्रलक्षणं तत्र संभवत्येव, तत्र सर्वविरत्यभावात् । सर्वविरतस्य हि चतुर्दशपूर्ववेदिन आहारक-द्विकं संभवति—“आहारं च उदसपुच्छिणो उ” इत्यादिवचनप्रामाण्यात् । औदारिकद्विकमप्यौ-दारिकतन्मिश्रलक्षणं नरतिरश्चामेवोपपद्यते, न देवनारकाणामिति । तथा तिर्यग्गतौ आहारकद्विकेन आहारकतन्मिश्रलक्षणेन ऊना=हीनाः शेषास्त्रयोदश भवन्ति । तत्रैकादश पूर्वोक्ता एव तिरश्चामपि केषांचिद्वैक्रियलब्धियोगतो वैक्रियद्विकसंभवात्केवलमौदारिकद्विकमधिकमिह प्रक्षिप्यते ॥३५॥

नरगह' पर्णिदि' तस' तणु' नर' अपुम' कसाय' मइ' सु आ॥हदुग' ।  
अचक्खु' छलेमा' भव' सम्मदुग' सन्निसु' य मव्वे ॥३६॥

(हारि०) व्याख्या—'नरगह' इति मनुष्यगतौ १ पञ्चेन्द्रियेषु २ त्रसेषु ३ 'तणु' इति काययोगे ४ 'नर' इति पुरुषवेदे ५ 'अपुम' इति नपुंसकवेदे ६ 'कसाय' इति क्रोध ७ मान ८ माया ९ लोभेषु १० मतिज्ञाने ११ श्रुतज्ञाने १२ 'ओहिदुगे' इति अवधिज्ञाने १३ अवधिदर्शने १४ च । एतेषु समाहारद्वन्द्वः 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने १५ 'छलेसा' इति कृष्ण १६ नील १७ कापोत १८ तैजसी १९ पद्म २० शुक्ललेशयासु २१ भव्येषु २२ सम्मदुग' इति क्षायोपशमिके २३ क्षायिके २४ संज्ञिषु २५, अत्रापीतरंतरद्वन्द्वः, चशब्दः समुच्चये, 'सव्वे' योगा इति प्रक्रमः, पञ्चदशापि पञ्चविंशतिपदेषु भवन्ति । इति गाथार्थः ॥३६॥

तथा—

(मल०) नरगतौ मनुष्यगतौ इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियेषु कायद्वारे त्रसकायेषु, योगद्वारं काययोगे, वेदद्वारे पुंवेदनपुंसकवेदयोः, कषायद्वारे चतुर्ष्वपि कषायेषु 'मइसुओहिदुगे' इति ज्ञानद्वारे मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने, दर्शनद्वारे अवधिदर्शने 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने, लेशयाद्वारे षट्स्वपि लेशयासु, भव्यद्वारे भव्येषु 'सम्मदुग' इति सम्यक्त्वद्वारे क्षायोपशमिके क्षायिके च, संज्ञिद्वारे संज्ञिषु' पञ्चदशापि योगा भवन्ति । सुज्ञानत्वाच्च नेह भावना क्रियते ॥३६॥

एग्गिदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।

कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(हारि०) व्याख्या—एकेन्द्रियेषु पञ्चैव योगा इति प्रक्रमः । तुशब्द एवकारार्थः, स च योजित एव । के एते ? युगलशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्कार्मणवैक्रिययुगलौदारिकयुगलानि, अत्र तत्पुरुषगमो द्वन्द्वः । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, वैक्रियद्विकं बादरपर्याप्तकवायुकायिकापेक्षम्, तथा कार्मणौदारिकद्विकमिति द्वन्द्वः, अन्त्यभाषा चेति 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपेषु प्रत्येकं चत्वारो योगा इति प्रक्रमः । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, अन्त्यभाषाऽसत्यामृषालक्षणा इति गाथार्थः । ॥३७॥

तथा—

(मल०) एकेन्द्रियेषु पञ्च योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह—'कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि' इति कार्मणमौदारिकयुगलं वैक्रिययुगलं च । तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायां, पर्याप्तावस्थायां त्वौदारिकम् । वैक्रिययुगलं बादरपर्याप्तकवायुकायिकस्य तस्य तद्विधिसंभवात् । तथा 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियलक्षणेषु कार्मणौदारिकद्विकान्तिमभाषारूपाश्चत्वारो योगा भवन्ति । तत्र कार्मणौदारिकद्विकभाषना प्राग्भवत् । अन्तिमभाषा चासत्यामृषारूपा, शेषा तु भाषा तेषां न संभवत्येव, 'विगलेषु असत्त्वमोसेव' इतिवचनात् ॥३७॥

कम्मएणं, आहारेई क्षणंतरं जीवो । तेण परं मोसेणं, जाव सरीरस्स निप्फत्ती ॥१॥” केवलिसमुद्घातावस्थायां तु द्वितीयपष्ठसप्तमसमयेषु कार्मणेन मिश्रमौदारिकं प्रतीतमेव । तथा वैक्रियसिञ्चं कार्मणेन औदारिकेण वा । तत्कार्मणेन मिश्रं देवनारकाणामपर्याप्तावस्थायां प्रथमसमयादनन्तरं द्रष्टव्यम् । बादरपर्याप्तकवायोः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च वैक्रियलब्धिमतां वैक्रियारम्भकाले वैक्रियपरित्यागकाले वा औदारिकेणेति । तथा सिद्धप्रयोजनस्य चतुर्दशपूर्वविद आहारकं परित्यजत औदारिकमुपपादनस्य आहारकं वा प्रारभमाणस्याहारकमिश्रमौदारिकेण द्रष्टव्यम् । ‘कम्मङ्ग’ इति कर्मैव कार्मणम् । प्रज्ञादित्वाद्दण् । संसार्यात्मनां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकतमं करणम् । ‘ह्य जोगा’ इतिः परिसमाप्तिवचनः । ततोऽयमर्थः—एते एव योगा नान्ये इति । ननु तैजसमपि शरीरं विद्यते तदुक्ताहारपरिणमनहेतुः, यद्दशाद्वा विशिष्टतपोविशेषसमुत्थलब्धिविशेषस्य पुंसस्तेजोलेश्याविनिर्गमः तत्कथम् ? उच्यते, एत एव योगा इति नैप दोषः, सदा कार्मणेन सहाव्यभिचारितया तस्य तद्ग्रहेणैव गृहीतत्वादिति ॥३४॥

उक्ताः स्वरूपतो योगाः, साम्प्रतमेतानेव मार्गणास्थानेषु चिन्तयन्नाह—

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।

जोगा तिरियगईए तेरम आहारगदुगूणा ॥३५॥

(हारि०) व्याख्या—एकादशेति संख्या योगा इति योगः । किं स्वरूपास्ते ! इत्याह—‘आहारकद्विकौदारिकद्विकरहिताः’ द्विकशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते कयोः, ? सुरनारकगत्योः’ सुराणां नारकाणां चैकादश योगा इत्यर्थः । आहारकद्विकं यतेरेव । औदारिकद्विकं तु नरतिरश्वामेवेतिकृत्वैति तद्दर्जनम् । तथा तिर्यगतौ त्रयोदश योगा इति प्राक्त्तनेन संबन्धः । कीदृशास्ते ? इत्याह—आहारकद्विकोनाः, भावना तु पूर्ववत् इति गाथार्थः ॥३५॥

सम्प्रत्येकगाथया पञ्चविंशतिपदेषु पञ्चदशापि योगान् संगृह्य लाघवार्थमाह—

(मल०) सुरगतौ नरकगतौ च प्रत्येकमाहारकद्विकौदारिकद्विकरहिताः शेषा एकादश मनोयोगचतुष्टय ४ वाग्योगचतुष्टय ८ वैक्रिय ६ वैक्रियमिश्र १० कार्मण ११ लक्षणा योगा भवन्ति । तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च, वैक्रियमिश्रमपर्याप्तावस्थायाम्, पर्याप्तवस्थायां तु वैक्रियम्, मनोयोगचतुष्टयं वाग्योगचतुष्टयं च पर्याप्तावस्थायां सुप्रतीतमेव । यदा-ऽऽहारकद्विकमाहारकतन्मिश्रलक्षणं तत्र संभवत्येव, तत्र सर्वविरत्यभावात् । सर्वविरतस्य हि चतुर्दशपूर्ववेदिन आहारकद्विकं संभवति—“आहारं षडक्षसपुच्छिणो ष” इत्यादिवचनप्रामाण्यात् । औदारिकद्विकमप्यौदारिकतन्मिश्रलक्षणेन नरतिरश्वामेवोपपद्यते, न देवनारकाणामिति । तथा तिर्यगतौ आहारकद्विकेन आहारकतन्मिश्रलक्षणेन ऊना=हीनाः शेषास्त्रयोदश भवन्ति । तत्रैकादश पूर्वोक्ता एव तिरश्चामपि केषांचिद्वैक्रियलब्धियोगतो वैक्रियद्विकसंभवात्केवलमौदारिकद्विकमधिकमिह प्रक्षिप्यते ॥३५॥

नरगइ' पर्णिदि' तस' तणु' नर' अपुम' कसाय' मइ' सु' ओहिदुगे' ।  
अचक्खु' छलेमा' भव्व' सम्मदुग' सन्निसु' य मव्वे ॥३६॥

(हारि०) व्याख्या—'नरगइ' इति मनुष्यगतौ १ पञ्चेन्द्रियेषु २ त्रसेषु ३ 'तणु' इति काययोगे ४ 'नर' इति पुरुषवेदे ५ 'अपुम' इति नपुंसकवेदे ६ 'कसाय' इति क्रोध ७ मान ८ माया ९ लोभेषु १० मतिज्ञाने ११ श्रुतज्ञाने १२ 'ओहिदुगे' इति अवधिज्ञाने १३ अवधिदर्शने १४ च । एतेषु समाहारद्वन्द्वः 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने १५ 'छलेसा' इति कृष्ण १६ नील १७ कापोत १८ तैजसी १९ पद्म २० शुक्ललेरयासु २१ भव्येषु २२ सम्मदुग' इति क्षायोपशमिके २३ क्षायिके २४ संज्ञिषु २५, अत्रापीतरेतरद्वन्द्वः, चशब्दः ससुचये, 'सव्वे' योगा इति प्रक्रमः, पञ्चदशापि पञ्चविंशतिपदेषु भवन्ति । इति गाथार्थः ॥३६॥

तथा—

(मल०) नरगतौ मनुष्यगतौ. इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियेषु कायद्वारे त्रसकायेषु, योगद्वारे काययोगे, वेदद्वारे पुंवेदनपुंसकवेदयोः, कषायद्वारे चतुर्ष्वपि कषायेषु 'मइसुओहिदुगे' इति ज्ञानद्वारे मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने, दर्शनद्वारे अवधिदर्शने 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने, लेश्याद्वारे षट्स्वपि लेश्यासु, भव्यद्वारे भव्येषु 'सम्मदुग' इति सम्यक्त्वद्वारे क्षायोपशमिके क्षायिके च, संज्ञिद्वारे संज्ञिषु पञ्चदशापि योगा भवन्ति । सुज्ञानत्वाच्च नेह भावना क्रियते ॥३६॥

एणिदिणसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।

कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(हारि०) व्याख्या—एकेन्द्रियेषु पञ्चैव योगा इति प्रक्रमः । तुशब्द एवकारार्थः, स च योजित एव । के एते ? युगलशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्कार्मणवैक्रिययुगलौदारिकयुगलानि, अत्र तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, वैक्रियद्विकं वादरपर्याप्तकवायुकायिकापेक्षम्, तथा कार्मणौदारिकद्विकमिति द्वन्द्वः, अन्त्यभाषा चेति 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपेषु प्रत्येकं चत्वारो योगा इति प्रक्रमः । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, अन्त्यभाषाऽसत्यामृषालक्षणा इति गाथार्थः । ॥३७॥

तथा—

(मल०) एकेन्द्रियेषु पञ्च योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह—'कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि' इति कार्मणमौदारिकयुगलं वैक्रिययुगलं च । तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायां, पर्याप्तावस्थायां त्वौदारिकम् । वैक्रिययुगलं वादरपर्याप्तावस्थायां तस्य तल्लब्धिसंभवात् । तथा 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपेषु कार्मणौदारिकद्विकान्तिमभाषारूपाश्चत्वारो योगा भवन्ति । तत्र कार्मणौदारिकद्विकभाषा प्राग्वत् । अन्तिमभाषा चासत्यामृषारूपा, शेषा तु भाषा तेषां न संभवत्येव, 'विगलेषु असच्चमोसेव' इतिवचनात् ॥३७॥

कम्पुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।

पढमंतिममणवइदुगकम्पुरलदु केवलदुगंमि ॥३८॥

(हारि०) व्याख्या-कर्मणौदारिकद्विकम्, अत्र समाहाद्ब्रह्मन्द्ः । तत्र कर्मणं विग्रहगतौ, औदारिकद्विकं त्वौदारिकशरीरतन्मिश्रलक्षणमिति त्रयो योगाः । क ? इत्याह-‘स्थावरकाये’ पृथिव्यम्बुतेजोवनस्पतिरूपे । तथा ‘वायौ’ वायुकायिके प्राक्तनत्रयं स्थावरकायसत्त्वं वैक्रिययुगलयुतमिति पञ्च योगा वायुकाये । वैक्रियद्विकभावना तु प्राग्ब्रह्मिति । तथा मिभक्तिलोपात्प्रथमान्त्यमनोवाग्द्विककर्मणौदारिकद्विकमिति कर्मधारयगर्भो ब्रह्म इति योगसप्तकं ‘केवलद्विके’ केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे भवति । तत्र सत्यासत्यंमृषारूपं मनोद्वयम् २ एवं वाग्द्वयमपि २ । औदारिकं च सर्वदैव, कर्मणौदारिकमिश्रद्वयं तु केवलिसमुद्घाते, उक्तं च-‘औदारिकप्रयोक्ता, प्रथमाष्टमसमययोरसाविष्टः । मिश्रौदारिकयोक्ता, सप्तमषष्टद्वितीयेषु ॥१॥ कर्मणशरीरयोगो, चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च । समयत्रयेऽपि तस्मिन्, भवत्यनाहारको नियमात् ॥२॥’ इति गाथार्थः ॥३८॥

साम्प्रतं प्रथमाद्धेन पदनवके आहारकद्विकवर्जत्रयोदशयोगान्, द्वितीयाद्धेन पदपदके औदारिकमिश्रकर्मणवर्जत्रयोदशयोगानेव च संगृह्णाह-

(मल०) कर्मणमौदारिकतन्मिश्रलक्षणम्, इत्येते त्रयो योगा ‘स्थावरकाये’ पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिलक्षणे भवन्ति, भावना प्राग्ब्रह्म, न शेपा, असंभवात् । तथा वातकाये तदेव पूर्वोक्तं त्रिकं-‘वैक्रिययुगलयुत’ वैक्रियतन्मिश्रसहितं द्रष्टव्यम्, तस्य बादरपर्याप्तस्य सतः कस्यचिद् वैक्रियलब्धिसंभवात् । ननु च कथमुच्यते कस्यचिद् वैक्रियलब्धिसंभवः ? यावता सर्वोऽपि बादरपर्याप्तो वायुकायिकः स वैक्रिय एव, अवैक्रियस्य चेष्टाया एवाप्रवृत्तेः, तदुक्तम्-सव्वे वेउव्विया वाया वायंति अवेउव्वियाणं चेहा चेव न पवत्तइ” इति, तदयुक्तम्, अवेक्रियाणामपि तेषां स्वभावत एव तथाचेष्टोपपत्तेः, उक्तं च-“जेण सव्वेसु चेव लोगागासाइसु चला वायवो वायंति तम्हा अवेउव्वियावि वाया वायंति सि घेत्तव्वं सभावमो तेसि वाइयव्व” इति वानाद्वायुरितिकृत्वा । तथाऽन्यत्रायुक्तम्-“त थ ताव तिण्हं रासीणं वेउव्वियलखी चेव नत्थि । वायरपज्जत्ताणपि असंखिज्जइभागमेत्ताणं लखी अत्थि ति तिण्हं रासीणं” इति । त्रयाणां राशीनां पर्याप्तापर्याप्तस्यैवापर्याप्ताबादरवायुकायिकानाम् । तथा ‘केवलद्विके’ केवलज्ञानदर्शनरूपे सप्त योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह-“पढमंतिममणवइदुगकम्पुरलदु” इति, प्रथमान्तिमरूपं मनोद्विकं सत्यमनः असत्यामृषामनश्च, वाग्द्विकं प्रथमान्तिमरूपं सत्या असत्यामृषा च भाषा, शेषस्य मनोद्विकस्य वाग्द्विकस्य चासंभवाच्छब्दस्थविरहितत्वात् । औदारिककाययोगः सयोग्यवस्थायां तस्यामेव चावस्थायां समुद्घातगतस्य कर्मणौदारिकमिश्रलक्षणयोगद्वयसंभव इति ॥३८॥

'श्रीवेद १ ज्ञानो ४ वसम ५ अजय ६ सासण ७ अभव्य ८ मिच्छेसु ९ ।  
तेरस मण १ वड २ मणनाण ३ छेय ४ सामइय ५ चक्खुमु ६ य ॥३९॥

(हारि०) व्याख्या—श्रीवेदे १ मत्यज्ञाने २ श्रुताज्ञाने ३ विभङ्गज्ञाने ४ औपशमिकसम्य-  
क्त्वे ५ 'अजय' इति अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके ६ सासादने ७ अभव्ये = मिथ्यादृष्टि-  
गुणस्थानके ९ अत्र द्वन्द्वः, आहारकद्विकवर्जास्त्रयोदश योगा भवन्त्येतेषु नवसु स्थानेषु चतुर्दश-  
पूर्वघरत्वाभावेनाहारकद्विकाभावो भावनीयः । तद्यथा—मनोयोगे १ वाग्योगे २ मनःपर्यायज्ञाने ३  
छेदोपस्थापनीयसंयमे ४ सामायिकसंयमे ५ 'चक्खुमु' इति चक्षुर्दर्शने च ६ द्वन्द्वः, चशब्दः  
समुच्चये, न केवलं प्राक्तनपदनवके त्रयोदश योगाः, किन्तु मनोयोगादिपदपदके चात्राप्यसका-  
भावादौदारिकमिश्रकर्मणकाययोगवर्जत्रयोदशयोगा भवन्तीति । अत्रायं गर्भार्थः—इह वर्जनीययोग-  
द्वयं द्वयोरपि पदकदम्बयोर्भिन्नं भिन्नं भिन्नविभक्तिनिर्देशादेवैतदर्थमेव तन्मध्ये त्रयोदशशब्दस्य-  
प्रक्षेपो विहितः । वर्जनीययोगद्वयं च सुज्ञानात्वात्सूत्रे सूत्रकृता नोक्तम् । इति गाथार्थः ॥३९॥

तथा —

(मल०) वेदद्वारे श्रीवेदे, ज्ञानद्वारे अज्ञाने मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणे, सम्यक्त्वद्वारे  
औपशमिकसम्यक्त्वे, अयते विरतिहीने, सासादने, अभव्ये, मिथ्यात्वे च आहारकद्विकहीनाः  
शेषास्त्रयोदश योगा भवन्ति । यत्त्वाहारकद्विकं तदेतेषु न संभवत्येव, यतस्तच्चतुर्दशपूर्वविदो  
भवति—'आहारदुग्गं जायह् चउहसुमुच्चिण' इति वचनात् । तानि चतुर्दशापि पूर्वाण्य-  
ज्ञानाऽयतसासादनाऽमव्यमिथ्यादृष्टिषु दूरतोऽपास्तानि । श्रीवेदश्चेह द्रव्यरूपो द्रष्टव्यः, न तु  
तथारूपाध्यवसायलक्षणो भावरूपः, तथाविवक्षणात् । एवमुपयोगमार्गणायासपि द्रष्ट-  
व्यम् । प्राक्तु गुणस्थानकमार्गणायां सर्वोपि वेदो भावरूपो गृहीतः, तथा विवक्षणा-  
देव । अन्यथा तेषु यथोक्तगुणस्थानकनवकसंख्यानायोगात्सयोगिकेवन्न्यादावपि द्रव्यवेदस्य  
भावात् । द्रव्यवेदश्च बाह्यमाकारमात्रम्, तत्कृतः श्रीवेदे चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभवः ।  
यत आहारकद्विकं तत्रोपपद्यते, श्लिणामागमे दृष्टिवादाध्ययनप्रतिषेधात्, तदुक्तम्—  
'तुच्छा गारवबहुला, खल्लिदिया हुब्बला य घोईप । इय अइसेस-  
उल्लयणा, भूयावादां उ भोत्थोर्ण ॥१॥' इति । 'भूयावादा' इति भूतवादी=दृष्टिवादः ।  
तथा औपशमिकसम्यक्त्वं प्रथमसम्यक्त्वोत्पादकाले उपशमश्रेण्यारोहे वा, न च सम्यक्त्वोपा-  
दकाले चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभवः, तदभावाच्च कथमाहारकद्विकभावः ? श्रेण्यारूढस्त्वाहारकं नार-  
मत एव, तस्याप्रमत्तत्वात् । आहारकारम्मकस्य तु लब्धुपजीवनेनौत्सुक्यभावतः प्रमादबहुल-

१ "जोगा-ऽऽहारदुग्गणा तेरस श्रीमाइनवसु वारेसु । ओरालमित्सकम्मणरहिया मणमाइच्छण्हंवि ॥ ॥"  
इति गाथा-ऽधिकतयादृश्यतेहस्त्वलिखितप्रतौ ।

'थीवेअ १ ज्ञाणो ४ वसम ५ अजय ६ सासण ७ अभव्व ८ मिच्छेसु ९ ।

तेरस मण १ वइ २ मणनाण ३ छेय ४ मामइय ५ चक्खुसु ६ य ॥३९॥

(हारि०) व्याख्या—स्त्रीवेदे १ मत्पज्ञाने २ श्रुताज्ञाने ३ विभङ्गज्ञाने ४ औपशमिकसम्य-  
क्त्वे ५ 'अजय' इति अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके ६ सासादने ७ अभव्ये = मिथ्यादृष्टि-  
गुणस्थानके ९ अत्र द्वन्द्वः, आहारकद्विकवर्जस्त्रयोदश योगा भवन्त्येतेषु नवसु स्थानेषु चतुर्दश-  
पूर्वधरत्वाभावेनाहारकद्विकाभावो भावनीयः । तद्यथा—मनोयोगे १ वाग्योगे २ मनःपर्यायज्ञाने ३  
छेदोपस्थापनीयसंयमे ४ सामायिकसंयमे ५ 'चक्खुसु' इति चतुर्दर्शने च ६ द्वन्द्वः, चशब्दः  
समुच्चये, न केवलं प्राक्तनपदनवके त्रयोदश योगाः, किन्तु मनोयोगादिपदपदके चात्राप्याप्तका-  
भावादौदारिकमिश्रकर्मणकाययोगवर्जत्रयोदशयोगा भवन्तीति । अत्रायं गर्भार्थः—इह वर्जनीययोग-  
द्वयं द्वयोरपि पदकदम्बयोर्भिन्नं भिन्नं भिन्नविभक्तिनिर्देशादेवैतदर्थमेव तन्मध्ये त्रयोदशशब्दस्य-  
प्रक्षेपो विहितः । वर्जनीययोगद्वयं च सुज्ञानात्वात्सूत्रे सूत्रकृता नोक्तम् । इति गाथार्थः ॥३६॥

तथा—

(मल०) वेदद्वारे स्त्रीवेदे, ज्ञानद्वारे अज्ञाने मत्पज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणे, सम्यक्त्वद्वारे  
औपशमिकसम्यक्त्वे, अयते विरतिहीने, सासादने, अभव्ये, मिथ्यात्वे च आहारकद्विकहीनाः  
शेषास्त्रयोदश योगा भवन्ति । यच्चाहारकद्विकं तदेतेषु न संभवत्येव, यतस्तच्चतुर्दशपूर्वविदो  
भवति—'आहारदुग्गं जायह चउइसुण्विण' इति वचनात् । तानि चतुर्दशपि पूर्वाण्य-  
ज्ञानाऽयतसासादनाऽमव्यमिथ्यादृष्टिषु दूरतोऽपास्तानि । स्त्रीवेदश्चेह द्रव्यरूपो द्रव्यः, न तु  
तथारूपाध्यवसायलक्षणो भावरूपः, तथाविवक्षणात् । एवमुपयोगमार्गणायामपि द्रव्य-  
व्यम् । प्राक्तु गुणस्थानकमार्गणयां सर्वोपि वेदो भावरूपो गृहीतः, तथा विवक्षणा-  
देव । अन्यथा तेषु यथोक्तगुणस्थानकनवकसंख्यानायोगात्सयोगिकेऽन्यादावपि द्रव्यवेदस्य  
भावात् । द्रव्यवेदश्च बाह्यमाकारमात्रम्, तत्कृतः स्त्रीवेदे चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभवः ।  
यत आहारकद्विकं तत्रोपपद्यते, स्त्रीणामागमे दृष्टिवादाध्ययनप्रतिषेधात्, तदुक्तम्—  
'तुच्छा शारवणहुला, चलिदिया हुच्चला य घोईप । इय भइसेस-  
ल्लयणा, भूयावादां ल नोत्थोणं ॥१॥' इति । 'भूयावादो' इति भूतवादो=दृष्टिवादः ।  
तथा औपशमिकसम्यक्त्वं प्रथमसम्यक्त्वोत्पादकाले उपशमश्रेण्यारोहे वा, न च सम्यक्त्वोपा-  
दकाले चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभवः, तदभावाच्च कथमाहारकद्विकभावः ? श्रेण्यारूढस्वाहारकं नार-  
मत एव, तस्याप्रमत्तत्वात् । आहारकारम्मकस्य तु लब्धुपजीवनेनौत्सुक्यभावतः प्रसादबहुल-

१ "जोगा-ऽऽहारदुग्गुणा तेरस थीमाइनवसु शारेसु । ओरालमिस्सकम्मणरहिया मणमाइछण्हवि ॥ ॥"  
इति गाथा-ऽधिकतयाहश्यतेहस्त्वलिखितप्रती ।



त्वात्, अत एवोक्तमन्यत्र—“आहारगं पमत्तो उप्पाएह न अप्पमत्तो” इति । आहारक-  
स्थितश्चोपशमश्रेणि नारमत एव, तथास्वभावत्वात् । औदारिकमिश्रं चेह सासादनभावामिष्टुखस्य  
कदाचित्कालकरणसंभवादवसेयमिति । ‘मणषह’ इत्यादि मनोयोगे वाग्योगे मनःपर्यायज्ञाने  
छेदोपस्थापने सामायिके चक्षुर्दर्शने च कर्मणौदारिकमिश्रवर्जाः शोषास्त्रयोदश योगा भवन्ति  
कर्मणौदारिकमिश्रयोगौ तु तेषु न संभवत एव, तयोरपर्याप्तावस्थार्या भावात् एतेषां तु मनो-  
योगादीनां तस्यामवस्थायामसंभवात् ॥३६॥

परिहारे सुहुमं नव, उरल १ वइ २ मणा ३ ते सकम्पुरलमिस्सा ।  
अहखाए सविउव्वा, मीसे देसे सविउविदुगा ॥४०॥

(ह्यारि०) व्याख्या—परिहारविशुद्धिके तृतीयसंयमे सूक्ष्मसंपराये च चतुर्थसंयमे, अत्र समा-  
हारद्वन्द्वः । औदारिकवाग्मनांसीति द्वन्द्वः । औदारिककाययोगो वाक्चतुष्टयं मनश्चतुष्टयं च इति  
प्रत्येकं नव योगा भवन्ति । तथा ‘ते’ पूर्वोक्ता नव ‘सकार्मणौदारिकमिश्राः’ कर्मणका-  
ययोगौदारिकमिश्रयोगयुक्ता एकादश योगा ‘यथाक्यान्’ पञ्चमे संयमे भवन्ति । यथाख्यात-  
संयमश्चान्त्यगुणस्थानकचतुष्के प्राप्यते, ततः कर्मणौदारिकमिश्रयोगद्वयं वेवलिस्समुद्धते प्राग्बद्-  
द्रष्टव्यम् । उपशान्तक्षीणमोहयोस्तु नव नव योगा भवन्ति । अयोगिनि पुनः सर्वयोगाभाव  
एवेति तात्पर्यम् । तथा ‘सविउव्वा मीसे’ इति तच्छब्दः पूर्वोक्तोऽत्राप्यनुवर्तते, तत्रते पूर्वो-  
क्ताः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायसत्का नव योगा सर्वैक्रियाः सर्वैक्रियशरीरा दशेत्यर्थः, क ?  
इत्याह—‘मिश्रे’ मिश्रगुणस्थानके । इदं च वैक्रियं देवनारकापेक्षम् । तथा ‘देसे सविउवि-  
दुगा’ इति देशे देशविरते गुणस्थानके, अत्रापि तच्छब्दोऽनुवर्तनीयः । तत्रते पूर्वोक्ता नव  
सर्वैक्रियद्विका वैक्रियशरीरतन्मिश्रान्विता इत्येकादश योगा भवन्ति । वैक्रियद्विकं च यथासंभवं  
लब्धौ सत्यां देशविरताः कुर्वन्ति । इति गाथार्थः ॥४०॥

तथा—

(मल०) परिहारविशुद्धिके सूक्ष्मसंपराये च संयमे नव योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह—  
‘उरलषइ मणा’ औदारिकं चतुर्धा वाक्चतुर्धा मनश्च । यद्वाहारकद्विकं वैक्रियद्विकं कर्मणमौ-  
दारिकमिश्रं च तत्र संभवत्येव । तथाहि, आहारकद्विकं चतुर्दशपूर्ववेदिनः । परिहारविशुद्धिक-  
संयमोपेतश्चोत्कर्षतोऽप्यधीतकिंचिन्मूनदशपूर्वं एव, उत्कर्षतोऽपि तावदधीतश्चतुष्टयैव तत्संयम-  
प्रतिपत्त्यभ्यनुज्ञानात्, तत्कथं तस्याहारकद्विकसंभवः ? नापि तस्य वैक्रियद्विकसंभवः, तस्यामव-  
स्थार्या तत्करणानुज्ञानाञ्जिनकल्पिकस्येव, तस्याप्यत्यन्तविशुद्धाप्रमादमूलधोरानुष्ठानपरायण-  
त्वात्, वैक्रियारम्भे च लब्धुपजीवनेनौत्सुक्यभावतः प्रमादसंभवात् । अत एव सूक्ष्मसंपराय  
संयमेऽपि चतुर्णामपि योगानामभावः, तत्संयमोपेतस्याप्यत्यन्तविशुद्धतया निस्तरङ्गमहोदधिक-

ल्पत्वेन वैक्रियाधारम्भासंभवात् । कार्मणमौदारिकमिश्रं चापर्याप्तावस्थायामेवेति संयमद्वयेऽपि तस्याभावः । तथा यथाख्यातसंयमे त एव नव पूर्वोक्ता योगाः कार्मणौदारिकमिश्रसहिताः सन्त एकादश भवन्ति । यथाख्यातसंयमो हि केवलिनोऽपि भवति । तस्य च समुद्रातगतस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु कार्मणं “कार्मणशरीरयांगां, चतुर्थके पञ्चमे तृतांये च ।” इति वचनात् । द्वितीयषष्ठसप्तमसमयेषु त्वौदारिकमिश्रं “मिश्रौदारिकयांक्ता सप्तमषष्ठद्वितीयेषु इतिवचनादवाप्यत इति, यथाख्यातसंयमे द्वयोरपि संभवः । सचिउच्चा मांसे’ इति मिश्रे सम्यग्मिध्यादृष्टौ त एव पूर्वोक्ता योगा वैक्रियसहिताः सन्तो दश भवन्ति । तत्र वैक्रियं देवनारकां पेशम्, यत्तु वैक्रियमिश्रं तन्नैवावाप्यते, तस्यापर्याप्तावस्थाभावित्वात् । मिश्रभावस्य च—‘न सम्मामिच्छो कुण्ड कालं’ इतिवचनप्रामाण्यतोऽपर्याप्तावस्थायामसंभवात् । स्यादेतद्वैक्रियलब्धिमतां मनुष्यतिरथां सम्यग्मिध्यादृशां सतां वैक्रियमिश्रं नावाप्यते ? इति, तेषां वैक्रियारम्भासंभवादन्त्यतो वा कृतश्चित्कारणादाचार्येणान्यैश्च तन्नाभ्युपगम्यत इति न सम्यगवच्छामस्तथाविषसंप्रदायाभावात् । ‘देसे सचिउचदुगा’ इति देशे देशविरतिरूपे संयमे त एव नव पूर्वोक्ताः सर्वेक्रियद्विका वैक्रियतन्मिश्रसहिताः सन्त एकादश योगा भवन्ति, देशविरतानामम्बहादीनामिव वैक्रियलब्धिमतां वैक्रियद्विकसंभवात् ॥४०॥

कम्मुरलविउव्विदुगाणि चरमभासा य छ उ असन्निमि ।

जोगा अकम्मगाहारगेषु कम्मणमणाहारे ॥४१॥

(हारि०) व्याख्या—द्विकशब्दः पदद्वयेऽपि संबध्यते । कार्मणौदारिकद्विकवैक्रियद्विकानि अत्र तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः, ‘वश्मभाषा च’ असत्यामृषारूपेति, षड्योगा इति संबन्धः । ‘असञ्जिनि’ मनोविज्ञानविकले एकेन्द्रियादौ । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, औदारिकमिश्रमपर्याप्तकावस्थायाम्, औदारिकं पर्याप्तावस्थायाम्, सर्वदैव वैक्रियद्विकं बादरपर्याप्तकावस्थायां वायुकायिकापेशम् । अन्त्यभाषा च छङ्गादिद्वीन्द्रियादीनाम् । तथा योगाः ‘अकार्मणाः’ कार्मणशरीरहिताश्चतुर्देशेत्यर्थः, केषु ? इत्याह—आहारकेषु भवन्ति । कार्मणमेदैकं ‘अनाहारे’ अनाहारकजीवे । अनाहारको हि मिध्यादृष्टिसादनाविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकत्रये विग्रहगतौ सयोगिगुणस्थानके केवलिसमुद्घाते ‘इह यद्यप्ययोग्यप्यनाहारको वर्तते तथाऽपि निरुद्धसमस्तयोगत्वाभास्य कार्मणकयोगो भवति । इति गार्थः ॥४१॥

एवं मार्गणास्थानेषु योजिता योगाः, साम्प्रतमूपयोगनामसूचां कुर्वस्तावदाह—

(मल०) कार्मणम्, औदारिकद्विकमौदारिकतन्मिश्रलक्षणं, वैक्रियद्विकं वैक्रियतन्मिश्रल-

१ ‘ममयत्रये अयोगिगुणस्थानके समस्तेऽपि प्राप्यते तत्रैव कामेणकयोगो नान्यत्रेति गार्थायं. ॥४१॥’ इति जे० ।

त्वात्, अत एवोक्तमन्यत्र—“आहारगं पमत्तो उप्पाएइ न अप्पमत्तो” इति । आहारक-  
स्थितश्चोपशमश्रेणि नारमत एव, तथास्वभावत्वात् । औदारिकमिश्रं चेह सासादनभावामिभुखस्य  
कदाचित्कालकरणसंभवादवसेयमिति । ‘मणवइ’ इत्यादि मनोयोगे वाग्योगे मनःपर्यायज्ञाने  
छेदोपस्थापने सामायिके चक्षुर्दर्शने च कर्मणौदारिकमिश्रवर्जाः शेषास्त्रयोदश योगा भवन्ति  
कर्मणौदारिकमिश्रयोगौ तु तेषु न संभवत एव, तयोरपर्याप्तावस्थार्या भावात् एतेषां तु मनो-  
योगादीनां तस्याभवस्थायामसंभवात् ॥३६॥

परिहारे सुहुमं नव, उरल १ वइ २ मणा ३ ते सकम्मुरलमिस्सा ।  
अहखाए सविउब्बा, मीमे देसे सविउविदुगा ॥४०॥

(हारि०) व्याख्या—परिहारविशुद्धिके तृतीयसंयमे सूक्ष्मसंपराये च चतुर्थसंयमे, अत्र समा-  
हारद्वन्द्वः । औदारिकवाग्मनांसीति द्वन्द्वः । औदारिककाययोगो वाक्चतुष्टयं मनश्चतुष्टयं च इति  
प्रत्येकं नव योगा भवन्ति । तथा ‘ते’ पूर्वोक्ता नव ‘सकर्मणौदारिकमिश्राः’ कर्मणका-  
ययोगौदारिकमिश्रयोगयुक्ता एकादश योगा ‘यथाकथानं’ पञ्चमे संयमे भवन्ति । यथाख्यात-  
संयमश्चान्त्यगुणस्थानकचतुष्के प्राप्यते, ततः कर्मणौदारिकमिश्रयोगद्वयं वैवलिसमुद्धाते प्राग्वद्  
द्रष्टव्यम् । उपशान्तक्षीणमोहयोस्तु नव नव योगा भवन्ति । अयोगिनि पुनः सर्वयोगामाव  
एवेति तात्पर्यम् । तथा ‘सविउब्बा मीसे’ इति तच्छब्दः पूर्वोक्तोऽत्राप्यनुवर्तते, तत्रते पूर्वो-  
क्ताः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायसत्का नव योगा सर्वैक्रियाः सर्वैक्रियशरीरा दशेत्यर्थः, क ?  
इत्याह—‘मिश्रे’ मिश्रगुणस्थानके । इदं च वैक्रियं देवनारकापेक्षम् । तथा ‘देसे सविउवि-  
दुगा’ इति देशे देशविरते गुणस्थानके, अत्रापि तच्छब्दोऽनुवर्तनीयः । तत्रते पूर्वोक्ता नव  
सर्वैक्रियद्विका वैक्रियशरीरतन्मिश्रान्विता इत्येकादश योगा भवन्ति । वैक्रियद्विकं च यथासंभवं  
लब्धौ सत्यां देशविरताः कुर्वन्ति । इति गाथार्थः ॥४०॥

तथा—

(मल०) परिहारविशुद्धिके सूक्ष्मसंपराये च संयमे नव योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह—  
‘उरलवइमणा’ औदारिकं चतुर्धा वाक्चतुर्धा मनश्च । यथाहारकद्विकं वैक्रियद्विकं कर्मणमौ-  
दारिकमिश्रं च तत्र संभवत्येव । तथाहि, आहारकद्विकं चतुर्दशपूर्ववेदिनः । परिहारविशुद्धिक-  
संयमोपेतश्चोत्कर्षतोऽप्यधीतकिंचिन्मूनदशपूर्वं एव, उत्कर्षतोऽपि तावदधीतश्रुतस्यैव तत्संयम-  
प्रतिपत्त्यस्यनुष्ठानात्, तत्कथं तस्याहारकद्विकसंभवः ? नापि तस्य वैक्रियद्विकसंभवः, तस्याभव-  
स्थार्या तत्करणानुष्ठानाञ्जनकल्पिकस्येव, तस्याप्यत्यन्तविशुद्धाप्रमादमूलघोरानुष्ठानपरायण-  
त्वात्, वैक्रियारम्भे च लब्ध्युपजीवनेनौत्सुक्यमावसः प्रमादसंभवात् । अत एव सूक्ष्मसंपराय  
संयमेऽपि चतुर्णामपि योगानामभावः, तत्संयमोपेतस्याप्यत्यन्तविशुद्धतया निस्तरङ्गमहोदधिक-

हारः, चतुर्दर्शनमिति शब्दोऽपि योज्यः, ते च इत्येवंरूपा अनकाराश्च ५४ प्रामान्यग्राहिणो द्वादशेति संख्योपयोगा इति सण्टङ्कः । कीदृशास्ते ? इत्याह— 'जियलक्खण' इति विभक्तिलोपाञ्जीवानां पूर्वोक्तस्वरूपाणां लक्षणानि चिह्नानि जीवलक्षणानि—'उपयोगलक्षणो जीवः' इति वचनात् । इति गाथार्थः ॥४२॥

अथैतस्तिष्वेव योजयन्नाह—

(मल०) 'उपयोगाः' प्राग्ग्निरूपितशब्दार्था द्वादश भवन्ति । किंविशिष्टाः ? इत्याह— 'जियलक्खण' इति प्राकृतत्वाद्भिक्तिलोपः, जीवस्यात्मनो लक्षणं, लक्ष्यते ज्ञायते तदन्यव्यवच्छेदेनेति लक्षणं असाधारणं स्वरूपम्, अत एवोक्तमन्यत्र—'उपयोगलक्षणो जीवः' इति । ते च द्विधा, साकारा अनाकाराश्च । तत्राकारः प्रतिवस्तुप्रतिनियतो ग्रहणपरिणामरूपो विशेषः "आगारो उ विसेसो" इति वचनात्, सहाकारेण वर्तन्ते इति साकाराः, यथोक्ताकारविकलास्त्वेनाकाराः । तत्र साकाराः पञ्चविधं ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवललक्षणम्, अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपम्, 'इतिः' परिसमाप्तौ, एतावन्त एवाष्टौ साकारा उपयोगा न त्वन्ये इति । चत्वारि दर्शनानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनलक्षणान्यनाकारा उपयोगाः । अमूनि च ज्ञानान्यज्ञानानि दर्शनानि च मार्गणास्थानमेदामिधानावसरे सप्रपञ्चं व्याख्यातानीति नेह भूयो व्याख्यायन्ते ॥४२॥

अथैतान् मार्गणास्थानेषु योजयन्नाह—

मणुयगईए बारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु ।

थावरइगिबितिइंदिसु, अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥

(हारी०) व्याख्या—मनुष्यगतौ द्वादशोपयोगा इति प्रक्रमः । तथा मनःपर्यवज्ञानकेवलद्विकरहिता इति द्वन्द्वगर्मस्तत्पुरुषः, नवोपयोगाः 'अन्यासु' मनुष्यगत्सु तिर्यग्गतिषु । इत्युक्ता गतिषूपयोगाः । इत इन्द्रियादिषु तान् प्रतिपादयत् 'बितिइंदिसु' इति "गइइंदिए य काए" इत्यादिगाथया केषांचित्पदानां मणनं तल्लाघवार्थमिति । पृथिव्यम्बुतेजोवायुवनस्पत्येकद्वित्रीन्द्रियेष्वित्यष्टसु ष्वचक्षुरदर्शनमज्ञानद्विकमिति त्रय उपयोगाः । इति गाथार्थः ॥४३॥

तथा—

(मल०) मनुजगतौ उपयोगा द्वादशापि यथोक्ता भवन्ति । तत्र केवलज्ञानादीनामपि संभवात् । तथा मनः पर्यायके ज्ञानके

हारः, चतुर्दर्शनमिति शब्दोऽत्रापि योज्यः, ते च इत्येवंरूपा अनकाराः १४ प्रामान्यप्राणिणो द्वादशेति संख्योपयोगा इति सण्टकः । कीदृशास्ते ? इत्याह— 'जियलक्षण' इति विभक्तिलोपाः जीवानां पूर्वोक्तस्वरूपाणां लक्षणानि चिह्नानि जीवलक्षणानि— 'उपयोगलक्षणो जीवः' इति वचनात् । इति गाथार्थः ॥४२॥

अथैतस्तिष्वेव योजयन्नाह—

(मल०) 'उपयोगाः' प्राग्निरूपितशब्दार्था द्वादश भवन्ति । किंविशिष्टाः ? इत्याह— 'जियलक्षण' इति प्राकृतत्वाद्भिक्तिलोपः, जीवस्यात्मनो लक्षणं, लक्ष्यते ज्ञायते तदन्यव्यवच्छेदेनेति लक्षणं असाधारणं स्वरूपम्, अत एवोक्तमन्यत्र— 'उपयोगलक्षणो जीवः' इति । तं च द्विधा. साकारा अनाकाराश्च । तत्राकारः प्रतिवस्तुप्रतिनियतो ग्रहणपरिणामरूपो विशेषः "आगारो उ चिसेसो" इति वचनात्, सहाकारेण वर्तन्त इति साकाराः, यथोक्ताकारविकलास्त्वनाकाराः । तत्र साकाराः पञ्चविधं ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवललक्षणम्, अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपम्. 'इतिः' परिसमाप्तौ, एतावन्त एवाष्टौ साकारा उपयोगा न त्वन्ये इति । चत्वारि दर्शनानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनलक्षणान्यनाकारा उपयोगाः । अमूनि च ज्ञानान्यज्ञानानि दर्शनानि च मार्गणास्थानभेदाभिधानावसरे सप्रपञ्चं व्याख्यातानीति नेह भूयो व्याख्यायन्ते ॥४२॥

अथैतान् मार्गणास्थानेषु योजयन्नाह—

मणुयगईए बारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु ।

थावरइगिबितिइंदिसु, अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥

(हारी०) व्याख्या—मनुष्यगतौ द्वादशोपयोगा इति प्रक्रमः । तथा मनःपर्यवज्ञानकेवलद्विकरहिता इति द्वन्द्वगर्मस्तत्पुरुषः, नवोपयोगाः 'अन्यासु' मनुष्यगत्युद्धरितासु सुरनारकतिर्यग्गतिषु । इत्युक्ता गतिषूपयोगाः । इत इन्द्रियादिषु तान् प्रतिपादयन्नाह— 'थावरइगिबितिइंदिसु' इति "गइइंविप च काए" इत्यादिगाथया केषांचित्पदानां क्वचित्पदव्यत्ययेन मणनं तल्लाघवार्थमिति । पृथिव्यम्बुतेजोवायुवनस्पत्येकद्वित्रीन्द्रियेष्वित्यष्टसु पदेषु कृतद्वन्द्वेष्वचक्षुरदर्शनमज्ञानद्विकमिति त्रय उपयोगाः । इति गाथार्थः ॥४३॥

तथा—

(मल०) मनुजगतौ उपयोगा द्वादशापि यथोक्ता भवन्ति । तत्र सर्वविरतिसङ्गावेन मनःपर्यायकेवलज्ञानादीनामपि संभवात् । तथा मनःपर्यायज्ञानकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपकेवलद्विकरहिताः

क्षणं, चरमभाषा अन्तिमभाषा इत्येते षड् योगाः 'असंज्ञिनि' संज्ञिच्यतिरिक्ते जीवे भवन्ति । तत्र कर्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायाम् । पर्याप्तावस्थायामौदारिकम्, वैक्रियद्विकं चादरपर्याप्तवायुकायिकानाम्, चरमभाषा शङ्खादिद्वीन्द्रियादी नामिति । 'अकम्मगाहारगेषु' इति आहारकेषु कर्मणकाययोगविकलाः, शेषाश्चतुर्दशापि योगा भवन्ति । यत्तु कर्मणं तन्न घटत एव, तस्यापान्तरालगतौ केवलिसमुद्घातवृत्तीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु वा भावात्, तदानीं चानाहारकत्वात् । एतच्चाचार्येणोक्तं न सम्यगवगम्यते, यत ऋजुगतौ विग्रहगतौ वा उत्पत्तिप्रथमसमये—“जोएण कम्मएणं, आहारेई अणंतरं जोवो । तेण परं मोसेणं, जाव सरंरस्स नि'फत्तो॥१॥” इति परममुनित्रचनप्रामाण्यादाहारकस्यापि सतः कर्मणकाययोगोऽस्त्येव । अथोच्येत, गृह्यमाणं गृहीतमिति निश्चयनयवशात्प्रथमसमयेऽप्यौदारिकादिपुद्गला गृह्यमाणा गृहीता एव, ततो द्वितीयादिसमयेष्विव तदानीमप्यौदारिकमिश्रकाययोग इति, तदेतदयुक्तम्, यतो यद्यपि तदानीमौदारिकादिपुद्गला गृह्यमाणा अपि गृहीता एव तथाऽपि न तेषां गृह्यमाणानां स्वग्रहणक्रियां प्रति करणरूपता येन तन्निबन्धनो योगः परिकल्प्येत, किन्तु कर्मरूपतैव, निष्पन्नरूपस्य सत उत्तरकालं करणभावदर्शनात्, न हि घटः स्वनिष्पादनक्रियां प्रति कर्मरूपतां करणरूपतां च प्रपद्यमानो दृश्यते । द्वितीयादिसमयेषु तु तेषामपि प्रथमसमयगृहीतानामन्यपुद्गलोपादानं प्रति करणभावो न विरुध्यते निष्पन्नत्वात्, अतस्तदानीमौदारिकादिमिश्रकाययोग उपपद्यत एव, अत एवोक्तम्—“तेण परं मोसेणं” इति तस्मादस्ति आहारकस्याप्युत्पत्तिप्रथमसमये कर्मणकाययोग इति । 'कम्मणमणाहारे' इति व्यवच्छेदफलं हि वाक्यमतोऽवश्यमवधारयितव्यम् । तक्षावधारणमिहैवं कर्मणमेवैकमनाहारके न शेषयोगा असंभवादिति । न पुनरेवं कर्मणमनाहारकेष्वेवेति । आहारकेष्वप्युत्पत्तिप्रथमसमये कर्मणयोगसंभवात्तपि कर्मणमनाहारकेषु भवत्येवेत्यवधारणम्, अयोग्यवस्थायामनाहाकस्यापि कर्मणकाययोगाभावात् । वक्ष्यति च—“गयजोगो ङ अजोगी” इत्येवमन्यत्रापि यथासंभवमवधारणविधिरनुसरणीयः ॥४१॥

तदेवं मार्गणास्थानेषु योगानभिधाय साम्प्रतमेतेष्वेवोपयोगानभिधित्सुस्तानेव स्वरूपतस्तावदाह—

नाणं पंचविहं तह, अन्नाणतिगं ति अट्ट सागारा ।

चउदंसणमणगारा, बारस जियलक्खणुवओगा ॥४२॥

(हारि०) व्याख्या—'ज्ञानं' बोधः 'पञ्चविधं' मतिज्ञानादिपञ्चप्रकारम्, तथाशब्दः समुच्चयार्थः, 'अज्ञानत्रिकं' मत्यज्ञानादित्रिमेदम्, 'इत्येवंप्रकारा अष्टेति संख्याः 'साकाराः' सहाकारैर्विशेषग्राहकैर्वर्तन्त इति साकाराः । तथा चतुर्णां दर्शनानां चक्षुर्दर्शनादीनां समा-

हारः, चतुर्दर्शनमिति शब्दोऽपि योज्यः, ते च इत्येवंरूपा अनकाराः ५८ प्रामान्यग्राहिणो  
द्वादशेति संख्योपयोगा इति सण्टकः । कीदृशास्ते ? इत्याह—‘जियलकखण’ इति विभ-  
क्तिलोपाः जीवानां पूर्वोक्तस्वरूपाणां लक्षणानि चिह्नानि जीवलक्षणानि—‘उपयोगलक्षणो  
जीवः’ इति वचनात् । इति गाथार्थः ॥४२॥

अथैतस्तिष्वेव योजयन्नाह—

(मल०) ‘उपयोगाः’ प्राग्निरूपितशब्दार्था द्वादश भवन्ति । किंविशिष्टाः ? इत्याह—  
‘जियलकखण’ इति प्राकृतत्वाद्भिक्तिलोपः, जीवस्यात्मनो लक्षणं, लक्ष्यते ज्ञायते तदन्य-  
व्यवच्छेदेनेति लक्षणं असाधारणं स्वरूपम्, अत एवोक्तमन्यत्र—‘उपयोगलक्षणो जीवः’  
इति । ते च द्विधा. साकारा अनाकाराश्च । तत्राकारः प्रतिवस्तुप्रतिनियतो ग्रहणपरिणामरूपो  
विशेषः “आगारो उ विसेसो” इति वचनात्, सहाकारेण वर्तन्त इति साकाराः, यथोक्ता-  
कारत्रिकलास्त्वनाकाराः । तत्र साकाराः पञ्चविधं ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवललक्षणम्,  
अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपम्. ‘इतिः’ परिसमाप्तौ, एतावन्त एवाष्टौ साकारा  
उपयोगा न त्वन्ये इति । चत्वारि दर्शनानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनलक्षणान्यनाकारा  
उपयोगाः । अमूनि च ज्ञानान्यज्ञानानि दर्शनानि च मार्गणास्थानभेदाभिधानावसरे सप्रपञ्चं  
व्याख्यातानीति नेह भूयो व्याख्यायन्ते ॥४२॥

अथैतान् मार्गणास्थानेषु योजयन्नाह—

मणुयगईए बारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु ।

थावरइगिबित्तिइंदिसु, अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥

(हारी०) व्याख्या—मनुष्यगतौ द्वादशोपयोगा इति प्रक्रमः । तथा मनःपर्यवज्ञानकेवल-  
द्विकरहिता इति द्वन्द्वगर्भस्तत्पुरुषः, नवोपयोगाः ‘अन्यासु’ मनुष्यगत्युद्धरितासु सुरनारक-  
तिर्यग्गतिषु । इत्युक्ता गतिषूपयोगाः । इत इन्द्रियादिषु तान् प्रतिपादयन्नाह—‘थावरइगि-  
बित्तिइंदिसु’ इति “गइइंदिए य काए” इत्यादिगाथया केषांचित्पदानां क्वचित्पदव्यत्ययेन  
मणनं तल्लाघवार्थमिति । पृथिव्यम्बुतेजोवायुवनस्पत्येकद्वित्रयीन्द्रियेष्वित्यष्टसु पदेषु कृतद्वन्द्वे-  
ष्वचक्षुरदर्शनमज्ञानद्विकमिति त्रय उपयोगाः । इति गाथार्थः ॥४३॥

तथा—

(मल०) मनुजगतौ उपयोगा द्वादशापि यथोक्ता भवन्ति । तत्र सर्वविरतिसद्भावेन मनःपर्याय-  
केवलज्ञानादीनामपि संभवात् । तथा मनःपर्यायज्ञानकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपकेवलद्विकरहिताः

शेषाः नवोपयोगा 'अन्यासु' मनुजगतिव्यतिरिक्तासु सुरनारकतिर्यग्गतिषु भवन्ति. तासु सर्वविरत्यसंभवेन मनःपर्यायज्ञानादीनामसंभवात् । तथा कायद्वारे स्थावरेषु पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पतिलक्षणेषु, इन्द्रियद्वारे एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियेषु, अचक्षुर्दर्शनम्, अज्ञानद्विकं च मत्य-ज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणमिति त्रय उपयोगा भवन्ति, न शेषाः । यतः सम्यक्त्वाभावाच्च तेषु मतिज्ञान-श्रुतज्ञानसंभवः, सर्वविरत्यभावाच्च मनःपर्यायकेवलज्ञानकेवलदर्शनाभावः । यच्चवधिज्ञानमव-धिदर्शनं विमङ्गलज्ञानं च तद् भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं वा न चानयोरन्यतरोऽपि प्रत्ययः संभवति । चक्षुर्दर्शनोपयोगाभावस्तु चक्षुरिन्द्रियाभावादेव सिद्धः । इति ॥४३॥

चक्खुजुयं चउरिंदिसु, तं चिय बारम 'पणिंदि'तसकाए ।

'जाए' वेए'सुकाए' 'भव' 'सन्नीसु' 'आहारे ॥४४॥

(हारि०) व्याख्या—'अक्षुर्द्युतं' चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्वितं 'तं चिय' इति तदेव पूर्वो-क्तमुपयोगत्रयं च, क ? इत्याह—'चतुरिन्द्रियेषु' अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं चक्षुर्दर्शनमिति चत्वार उपयोगाश्चतुरिन्द्रियेषु भवन्तीत्यर्थः । अथ द्वादशपदेषु लाघवार्थं सर्वोपयोगान् संगृह्य प्रदर्शयन्नाह—'बारस' इति द्वादशोपयोगाः, क ? इत्याह—पञ्चेन्द्रिय १ त्रसकाये २ इति समाहारद्वन्द्वः, योगे मनो ३ वा ४ काय ५ रूपे, वेदे स्त्री ६ पुं ७-नपुंसक ८ लक्षणे, 'सुकाए' इति शुक्ललेश्यायां ९, भव्ये १०, संज्ञिषु ११ अत्र द्वन्द्वः, आहारे १२ इति पद-द्वादशके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥४४॥

तथा गाथाद्धेन पदैकादशके दशोपयोगान् संगृह्य तथा केवलद्विके निजद्विकं क्षायिके नवोपयोगाश्चापराद्धेनाह—

(मल०) 'अक्षुर्द्युतं' चक्षुर्दर्शनोपयोगसहितं तदेव पूर्वोक्तमुपयोगत्रयं चतुरिन्द्रियेषु भवति । तथा पञ्चेन्द्रियेषु, कायद्वारे त्रसेषु योगेषु च मनोवाकायरूपेषु, वेदेषु च द्रव्यवेद-रूपस्त्रीपुंनपुंसकलक्षणेषु, शुक्ललेश्यायां, भव्येषु, संज्ञिषु, आहारकेषु च द्वादशोपयोगा भवन्ति, एतेषु सर्वेष्वपि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनां संभवात् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस, 'कसाय'पणलेस' चक्खूसु ।

केवलदुगे नियदुगं, खइगे नय नो अनाणतिगं ॥४५॥

(हारि०) व्याख्या—'केवलद्विकहोनाः' केवलज्ञानकेवलदर्शनरहिता दशोपयोगा भवन्ति. केषु ? इत्याह—कषाय ४ पञ्चलेश्या ६ अचक्षु १० अक्षुषु ११ अत्र द्वन्द्व इति



पदैकादशके इति । तथा 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे 'निजद्विकं' केवलज्ञाने केवलज्ञानोपयोगः, केवलदर्शने केवलदर्शनोपयोग इत्यर्थः । तथा क्षायिके सम्यक्त्वे नवोपयोगाः, कथम् ? इत्याह—'नो' नैव 'अज्ञानत्रिकं' मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपमेतदुपयोगत्रयं विनेत्यर्थः । इति गाथार्थः ॥४५॥

तथा—

(मल०) केवलद्विकेन केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणेन हीनाः शेषा दशोपयोगाः कपायेषु क्रोधमानमायालोभरूपेषु, शुक्लक्षेरयावर्जितासु शेषासु पञ्चसु पद्मादिलेरयासु, अचक्षुर्दर्शने च भवन्ति, न तु केवलद्विकं कपायादिसद्भावे तस्यानुत्पादात् 'केवलदृग्गे नियदृगं' इति केवलद्विके केवलज्ञानदर्शनलक्षणे निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणं स्वकीयमुपयोगद्वयं भवति न शेषा उपयोगाः, देशज्ञानदर्शनव्यवच्छेदेनैव केवलद्विकस्य सद्भावात् । एतच्च प्रागेवोक्तम् । तथा क्षायिके सम्यक्त्वे नव उपयोगा भवन्ति कुतः ? इत्याह—'नो अनाणतिगं' इति यतस्तत्सद्भावेऽज्ञानत्रिकं न भवति, तस्य मिथ्यात्वनिबन्धनत्वात्, निर्मूलतो मिथ्यात्वक्षयेण च क्षायिकसम्यक्त्वोत्पादात्, अतस्तत्र नवोपयोगा भवन्ति ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।

नाणचउदंसणतिगं, केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(हारि०) व्याख्या—ज्ञानानि च मतिज्ञानादीनि संयमाश्च सामायिकसंयमादयो ज्ञानसंयमाः, चत्वारश्च ते ज्ञानसंयमाश्च चतुर्ज्ञानसंयमाः, प्रथमाश्च ते चतुर्ज्ञानसंयमाश्च प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमाः, प्रथमचतुर्ज्ञानानि प्रथमचतुःसंयमाश्चेत्यर्थः, प्रथमचतुःशब्दयोः प्रत्येकमभिसंबन्धात्, ततः प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमाश्च वेदफं च क्षायोपशामिकसम्यक्त्वमौपशामिकं च अवधिदर्शनं च प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमवेदकौपशामिकावधिदर्शनानि तेष्वेकादशस्थानकेषु कत्युपयोगाः ? इत्याह—ज्ञानचतुष्टयदर्शनत्रिकमिति तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः, तत्र ज्ञानचतुष्कं मतिश्रुतावधिमनःपर्यवज्ञानलक्षणम्, दर्शनत्रिकं तु चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनरूपम्, इति सप्तोपयोगा भवन्ति । तथा 'केवलद्विकयुतं' केवलज्ञानकेवलदर्शनद्वययुक्तं पूर्वोक्तमुपयोगसप्तकमुपयोगनवकं भवति तत् क ? इत्याह—'घषारुघाते' पञ्चमसंयमे, एतच्चान्त्यगुणस्थानकचतुष्टये भवति । ततश्चोपयोगसप्तकं छन्नस्थवीतरागोपशान्तक्षीणमोहगुणस्थानकयोः । केवलद्विकं च केवलिनः स्वगुणस्थानकयोरिति भावना । इति गाथार्थः ॥४६॥

तथा—

शेषाः नवोपयोगा 'अन्यास्तु' मनुजगतिव्यतिरिक्तास्तु सुरनारकतिर्यग्गतिषु भवन्ति. तासु सर्वविरत्यसंभवेन मनःपर्यायज्ञानादीनामसंभवात् । तथा कायद्वारे स्थावरेषु पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पतिलक्षणेषु, इन्द्रियद्वारे एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियेषु, अचक्षुर्दर्शनम्, अज्ञानद्विकं च मत्य-ज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणमिति त्रयउपयोगा भवन्ति, न शेषाः । यतः सम्यक्त्वाभावाच्च तेषु मतिज्ञान-श्रुतज्ञानसंभवः, सर्वविरत्यभावाच्च मनःपर्यायकेवलज्ञानकेवलदर्शनाभावः । यच्चवधिज्ञानमव-धिदर्शनं विभङ्गज्ञानं च तद् भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं वा न चानयोरन्यतरोऽपि प्रत्ययः संभवति । चक्षुर्दर्शनोपयोगाभावस्तु चक्षुरिन्द्रियाभावादेव सिद्धः । इति ॥४३॥

चक्खुजुयं चउरिंदिसु, तं चिय बारम 'पणिदि'तसकाए ।

'जाए वेए'सुकाए 'भव'सन्नीसु 'आहारे ॥४४॥

(हारि०) व्याख्या—'चक्षुयुत्तं' चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्वितं 'तं चिय' इति तदेव पूर्वो-क्तमुपयोगत्रयं च, क ? इत्याह—'चतुरिन्द्रियेषु' अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं चक्षुर्दर्शनमिति चत्वार उपयोगाश्चतुरिन्द्रियेषु भवन्तीत्यर्थः । अथ द्वादशपदेषु लाघवार्थं सर्वोपयोगान् संगृह्य प्रदर्शयन्नाह—'बारस' इति द्वादशोपयोगाः, क ? इत्याह—पञ्चेन्द्रिय १ त्रसकाये २ इति समाहारद्वन्द्वः, योगे मनो ३ वा ४ काय ५ रूपे, वेदे स्त्री ६ पुं ७-नपुंसक ८ लक्षणे, 'सुकाए' इति शुक्ललोश्यायां ९, मव्ये १०, संज्ञिषु ११ अत्र द्वन्द्वः, आहारे १२ इति पद-द्वादशके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥४४॥

तथा गाथाद्धेन पदैकादशके दशोपयोगान् संगृह्य तथा केवलद्विके निजद्विकं क्षायिके नवोपयोगाश्चापराद्धेनाह—

(मल०) 'चक्षुयुत्तं' चक्षुर्दर्शनोपयोगसहितं तदेव पूर्वोक्तमुपयोगत्रयं चतुरिन्द्रियेषु भवति । तथा पञ्चेन्द्रियेषु, कायद्वारे त्रसेषु योगेषु च मनोवाक्कायरूपेषु, वेदेषु च द्रव्यवेद-रूपस्त्रीपुंनपुंसकलक्षणेषु, शुक्ललोश्यायां, मव्येषु, संज्ञिषु, आहारकेषु च द्वादशोपयोगा भवन्ति, एतेषु सर्वेष्वपि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनां संभवात् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस, 'कसाय'पणलेस'चक्खुसु ।

केवलदुगे नियदुगं, खइगे नय नो अनाणतिगं ॥४५॥

(हारि०) व्याख्या—'केवलद्विकहीणाः' केवलज्ञानकेवलदर्शनरहिता दशोपयोगा भवन्ति. केपु १ इत्याह—कपाय ४ पञ्चलोश्या ६ अचक्षु १० अक्षुषु ११ अत्र द्वन्द्व इति

पदैकादशके इति । तथा 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे 'निजद्विकं' केवलज्ञाने केवलज्ञानोपयोगः, केवलदर्शने केवलदर्शनोपयोग इत्यर्थः । तथा क्षायिके सम्यक्त्वे नवोपयोगाः, कथम् ? इत्याह—'नो' नैव 'अज्ञानत्रिकं' मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपमेतदुपयोगत्रयं विनेत्यर्थः । इति गार्थार्थः ॥४५॥

तथा—

(मल०) केवलद्विकेन केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणेन हीनाः शेषा दशोपयोगाः कषायेषु क्रोधमानमायालोभरूपेषु, शुक्ललेश्यावर्जितासु शेषासु पञ्चसु पद्मादिलेश्यासु, अचक्षुर्दर्शने च भवन्ति, न तु केवलद्विकं कषायादिसद्भावे तस्यानुत्पादात् 'केवलद्वुगे नियद्वुगं' इति केवलद्विके केवलज्ञानदर्शनलक्षणे निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणं स्वकीयमुपयोगद्वयं भवति न शेषा उपयोगाः, देशज्ञानदर्शनव्यवच्छेदेनैव केवलद्विकस्य सद्भावात् । एतच्च प्रागेवोक्तम् । तथा क्षायिके सम्यक्त्वे नव उपयोगा भवन्ति कुतः ? इत्याह—'नो अनाणतिगं' इति यतस्तत्सद्भावेऽज्ञानत्रिकं न भवति, तस्य मिथ्यात्वनिबन्धनत्वात्, निर्मूलतो मिथ्यात्वक्षयेण च क्षायिकसम्यक्त्वोत्पादात्, अतस्तत्र नवोपयोगा भवन्ति ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।

नाणचउदंसणतिगं, केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(हारि०) व्याख्या—ज्ञानानि च मतिज्ञानादीनि संयमाश्च सामायिकसंयमादयो ज्ञानसंयमाः, चत्वारश्च ते ज्ञानसंयमाश्च चतुर्ज्ञानसंयमाः, प्रथमाश्च ते चतुर्ज्ञानसंयमाश्च प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमाः, प्रथमचतुर्ज्ञानानि प्रथमचतुःसंयमाश्चेत्यर्थः, प्रथमचतुःशब्दयोः प्रत्येकमभिसंबन्धात्, ततः प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमाश्च वेदकं च क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमौपशमिकं च अवधिदर्शनं च प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमवेदकौपशमिकावधिदर्शनानि तेष्वेकादशस्थानकेषु कत्युपयोगाः ? इत्याह—ज्ञानचतुष्टयदर्शनत्रिकमिति तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः, तत्र ज्ञानचतुष्टकं मतिश्रुतावधिमनःपर्यवज्ञानलक्षणम्, दर्शनत्रिकं तु चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनरूपम्, इति सप्तोपयोगा भवन्ति । तथा 'केवलद्विकयुतं' केवलज्ञानकेवलदर्शनद्वययुक्तं पूर्वोक्तमुपयोगसप्तकमुपयोगनवकं भवति तत् क ? इत्याह—'घषारुयाते' पञ्चमसंयमे, एतच्चान्त्यगुणस्थानकचतुष्टये भवति । ततश्चोपयोगसप्तकं छषस्थवीतरागोपशान्तक्षीणमोहगुणस्थानकयोः । केवलद्विकं च केवलिनः स्वगुणस्थानकयोरिति भावना । इति गार्थार्थः ॥४६॥

तथा—

(मल०) प्रथमेषु चतुष्टु<sup>१</sup> ज्ञानेषु मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानलक्षणेषु प्रथमेषु च चतुष्टु<sup>२</sup> संयमेषु सामायिकच्छेदापस्थापनीयपरिहारविशुद्धिकक्षमसंपरायरूपेषु, 'वेद्यग' इति क्षायोपशमिके औपशमिके च सम्यक्त्वेऽवधिदर्शने च चत्वारि ज्ञानानि मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानलक्षणानि, तथा दर्शनत्रिकं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनलक्षणम्, इत्येते सप्त उपयोगा भवन्ति न शेषाः, तद्भावे मत्यज्ञानादीनामसंभवात् । इहाप्यवधिदर्शने मत्यज्ञानाद्युपयोगप्रतिषेधो मतान्तरापेक्षया द्रष्टव्यः । अन्यथा हि मत्यज्ञानादिमतामपि सूत्रे साक्षादवधिदर्शनं प्रतिपादितमेव यथोक्तं प्रागिति । 'केवलदुज्युं अहक्त्वाए' इति यथाख्यातसंयमे तदेव पूर्वोक्तमुपयोगसप्तकं 'केवलद्विकयुत्तं' केवलज्ञानदर्शनयुतं द्रष्टव्यम्, यथाख्यातमंयमस्य सयोगिकेवन्यादावपि भावात् । तत्र च केवलद्विकस्य भावात् । इति ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं, देसे मीसे अनाणमीसं तं ।

केवलदुगपणपज्जववजा अस्संजयंमि नव ॥ ४७ ॥

(हारि०) व्याख्या-ज्ञानत्रिकदर्शनत्रिकमिति द्वन्द्वः, इति षडुपयोगाः, क ? इत्याह-'देशे' देशविरतसंयमे, तथा 'मिश्रे' मिश्रगुणस्थानके, तदिति ज्ञानदर्शनत्रिकं मिश्रमज्ञानमिश्रम्, तथा केवलद्विकमनःपर्यायज्ञानवर्जा इह यथायोगं समासः, नवोपयोगाः. क ? इत्याह-'असंयते' संयमरहिते, तत्र मिश्रे उक्ता एवोपयोगाः । मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य चाज्ञानत्रयम्, सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च, त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनं चेति नवोपयोगमावना । इति गार्थार्थः ॥४७॥

तथा—

(मल०) ज्ञानत्रिकं मतिश्रुतावधिलक्षणम्, दर्शनत्रिकं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनलक्षणम्, इत्येते षड् उपयोगा देशविरतिसंयमे भवन्ति न शेषाः, मिथ्यात्वसर्वविरत्यभावात् 'मीसे अनाणमीसं तं' इति मिश्रे सम्यग्दृष्टौ तज्ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चाज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम् । मतिज्ञानं मत्यज्ञानमिश्रम्, श्रुतज्ञानं श्रुताज्ञानमिश्रम्, अवधिज्ञानं विभङ्गज्ञानमिश्रम् । इह चावधिदर्शनमाचार्येण मतान्तरापेक्षया भणितम् । अन्यथैतेष्वेव मार्गणास्थानकेषु गुणस्थानकमार्गणायाम्—"महसुय-भोहिदुगे नव अजयाई" इत्यनेन ग्रन्थेन यदुक्तं अवधिदर्शनस्यायतादीनि क्षीणमोहान्तानि नव गुणस्थानकानि भवन्तीति तद्विरुध्येत, मिश्रगुणस्थानकेऽपीदानीमवधिदर्शनस्याभिधानादिति । तथा केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणकेवलद्विकमनःपर्यायज्ञानवर्जाः शेषा नवोपयोगाः 'असंयते' संयमहीने भवन्ति, न तु केवलद्विकमनःपर्यायज्ञाने, तस्य विरतिहीनत्वात्, तेषां च विरतिनिबन्धनत्वात् ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे, साम्णमिच्छे य पंच उवओगा ।

दो दंसण तिअनाणा, ते अविभंगा असन्निम्मि ॥४८॥

(हारि०) व्याख्या—अज्ञानत्रिकं च पूर्वोक्तमभव्यश्चेति समाहारद्वन्द्वः, तत्राज्ञानत्रिका-  
भव्ये, सासादनं च मिथ्यात्वं चात्रापि समाहारद्वन्द्वः, तत्र सासादनमिथ्यात्वे च, चशब्दः समु-  
च्चयार्थः, इति पदषट्के, किम् ? इत्याह—पञ्चोपयोगाः । कीदृशाः ? इत्याह—‘द्वे दर्शने’ चक्षुर्द-  
र्शनाचक्षुर्दर्शनलक्षणे, ‘त्राण्यज्ञानानि’ मत्यज्ञानादीनि । तथा ‘ते’ पूर्वोक्ताः पञ्चाविभङ्गा  
विभङ्गवर्जिताश्चत्वार इत्यर्थः, क्व ? ‘असन्निनि’ मनोविज्ञानविकले । इति गाथार्थः ॥४८॥

साम्प्रतमुपयोगानुपसंहरन् मतान्तरं दर्शयन्नाह—

(मल०) अज्ञानत्रिके मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणे, तथाऽभव्ये, सासादने, मिथ्यात्वे  
च, दर्शनद्विकं चक्षुरचक्षुर्दर्शनलक्षणम्, अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणम्,  
इत्येते पञ्च उपयोगा भवन्ति न शेषाः, अवदातसम्यक्त्वविरत्यभावात् । अज्ञानत्रिकादौ चाव-  
धिदर्शनं यतः कुतश्चिदभिप्रायादाचार्येण नोक्तं तन्न सम्यगवगच्छामः, सूत्रे मत्यज्ञानादावप्यव-  
धिदर्शनस्य प्रतिपादितत्वात् । एतच्च प्रागेवानेकश उक्तम् । “ते अविभंगा असन्निम्मि”  
इति त एव पूर्वोक्ताः पञ्चोपयोगा अविभङ्गा विभङ्गज्ञानविकलाः सन्तः शेषाश्चत्वार उपयोगा  
असंज्ञिनि संज्ञिव्यतिरिक्ते जीवे भवन्ति । यत्तु विभङ्गज्ञानं तदसंज्ञिनि नोपपद्यते, तद्धि भवप्रत्य-  
यतो गुणप्रत्ययतो वा जायते, न चानयोरेकतरोऽपि प्रत्ययोऽत्र घटते । इति ॥४८॥

मणनाणचक्खुरहिया, दस उ अणाहारगेषु उवओगा ।

इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेषु ॥४९॥

(हारि०) व्याख्या—मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनरहिता दशैवोपयोगाः, तुरेवकारार्थः, क्व ?  
इत्याह—अनाहारके विग्रहगतौ केवलिसमुद्घाते च यथायोगं योज्याः । तथाहि—विग्रहगतौ सम्य-  
ग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च, मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य चाज्ञानत्रयम्, त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनं  
तस्यानाहारकावस्थायामपि लब्धिमाश्रित्याभ्युपगमात् । इत्येवमेतेऽष्टौ केवलिसमुद्घातेऽयोगिनि  
गुणस्थानके च केवलज्ञानकेवलदर्शनद्विकर्मित्यनाहारके दर्शेति भावना । इति गत्यादिषूपयोगा  
योजिता इति शेषः इति । अत्र नयमतेन निश्चयनयामिप्रायेणैकैकयोगापेक्षयेत्यर्थः, नानात्वं  
नयमंतनानात्वं विशेषो योगेषु मनोवाक्यारूपेषु । कीदृशं नानात्वम् ? अत आह—इदं वक्ष्य-  
माणम्, तुशब्दः पुनरर्थः, प्राक्तनव्याख्यापेक्षया वक्ष्यमाणव्याख्यानस्य विशेषद्योतकः । इति  
गाथार्थः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

(मल०) मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनरहिताः शेषा दशैवोपयोगा अनाहारके भवन्ति, तुरेवकारार्थः, तदुक्तम्—“तुः स्याद्भेदेऽवधारणे” इति । अनाहारको हि विग्रहगतौ केवलिसमुद्धातावस्थायामयोग्यवस्थायाम् वा, न च तदानीं मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनसंभव इति, उपसंहारमाह—‘उच्योगा इय गहयाइस्तु’ इति, इति एवमुक्तेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषूपयोगा भवन्ति । साम्प्रतं योगेषु गुणस्थानकजीवस्थानोपयोगयोगानधिकृत्य मतान्तरस्यपक्षिमाह—‘नयमयणाणत्तमिणं तु जोगेसु’ योगेषु मनोवाक्कायलक्षणेषु नयनमतेन “नयो ज्ञातुरभिप्रायः” इतिवचनात्, अभिप्रायान्तरविशेषरूपेण नानात्वमिदं वक्ष्यमाणरूपं द्रष्टव्यम् । तुविशेषणे, स च शेषेषु मार्गणास्थानकेषु यथाभिहितं तथैवावगन्तव्यम् । योगेषु पुनर्वक्ष्यमाणनयमतापेक्षयाऽन्यथाऽपीति विशेषयति ॥४९॥

तदेव नानात्वमुपदर्शयति—

तणुवहमणेषु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्टुचउत्रउरो ।  
तेरसदुवारतेरस, गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥५०॥

(हारि०) व्याख्या-तनुवाब्मनस्सु ‘क्रमशो’ यथासंख्येन द्वि १ चतु २ त्रि ३ पञ्च ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगा ४ इति तनौ काययोगे । तथा क्रमश एव द्वि १ अष्ट २ चतु ३ श्चत्वारो ४ गुण १ जीवो २ पयोग ३ योगाः ४ इति वाचि वाग्योगे । तथा क्रमश इत्यत्रापि संबध्यते, तत्संख्योदश १ द्वि २ द्वादश ३ त्रयोदश ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगाः ४ इति मनसि मनोयोगे भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थो गाथाभिः ‘कथ्यते-’  
“केवलतणुजोगंमो, वो गुणषउजीवआइमा हुंति । मः सुयअभाणदुगं, अक्षकूख्  
तिन्नि उवओगा ॥१॥ वेउच्चिउरलजुयला ४. कम्मणजोगो य १ पंच जोगत्ति ।  
अमणवईए पढमा, वो गुण जिय अट्टु चउ उवरिं ॥२॥ चकस्तुअषक्खु महसुय  
अनाण चसति हुंति उवओगा । कम्मणउरालजुयलं २, असवभासा य चउ  
जोगा ॥३॥ तेरस गुण मणजोगे, अंतिमवो जीव चारउवओगा । तेरस जोगा  
य तहा, कम्मोरलमिस्स २ वज्जसि ४ ॥४॥” मनोयोगे नानात्वं जीवस्थानेष्वेव शेष-  
पदत्रयाभिधानं च प्रसङ्गादिति । अत्र यन्त्रस्थापनेयम्-  
गम्भीरार्थाऽपि सूत्रकारेण केनाप्यभिप्रायेण न विवृता  
बोधं विवृता । इति गाथार्थः ॥५०॥

म	११३	२	१२	१३
व	१	२	५	४
त	१	२	५	५
०	१	गु	जो	उ

मतान्तराभिधायकगाथा-  
अस्माभिरच यथाऽव-

(मल०) मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनरहिताः शेषा दशैत्रोपयोगा अनाहारके भवन्ति, तुरेवकारार्थः, तदुक्तम्—“तुः स्याद्भेदेऽवधारणे” इति । अनाहारको हि विग्रहगतौ केवलिसमुद्धातावस्थायामयोग्यवस्थार्या वा, न च तदानीं मनःपर्यायज्ञ नचक्षुर्दर्शनसंभव इति, उपसंहारमाह—‘उद्योगा इय गइयाइसु’ इति, इति एवमुक्तेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषूपयोगा भवन्ति । साम्प्रतं योगेषु गुणस्थानकजीवस्थानोपयोगयोगानधिकृत्य मतान्तरमुपक्षिणाह—‘नद्यमघणाणत्तमिणं तु जोगेसु’ योगेषु मनोवाकायलक्षणेषु नयनमतेन “नयो ज्ञातुरभिप्रायः” इतिवचनात्, अमिप्रायान्तरविशेषरूपेण नानात्वमिदं वक्ष्यमाणरूपं द्रष्टव्यम् । तुर्विशेषणे, स च शेषेषु मार्गणास्थानकेषु यथाभिहितं तथैवावगन्तव्यम् । योगेषु पुनर्वक्ष्यमाणनयमतापेक्षयाऽन्यथाऽपीति विशेषयति ॥४९॥

तदेव नानात्वमुपदर्शयति—

तणुवद्मणेषु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्टुचउचउरो ।

तेरसदुबारतेरस, गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥५०॥

(हारि०) व्याख्या-तनुवाभूमनस्सु ‘क्रमशो’ यथासंख्येन द्वि १ चतु २ छि ३ पञ्च ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगा ४ इति तनौ काययोगे । तथा क्रमश एव द्वि १ अष्ट २ चतु ३ श्चत्वारो ४ गुण १ जीवो २ पयोग ३ योगाः ४ इति वाचि वाग्योगे । तथा क्रमश इत्यत्रापि संबध्यते, ततस्त्रयोदश १ द्वि २ द्वादश ३ त्रयोदश ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगाः ४ इति मनसि मनोयोगे भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थो गाथाभिः ‘कथ्यते-’ “केवलतणुजोगंमो, दो गुणचउजीवआइमा हुंति । मइ सुयभन्नाणदुगं, अषक्खु तिस्सि उषओगा ॥१॥ वेउच्चिउरलजुयला ४, कम्मणजोगो य १ पंच जोगत्ति । अमणवईए पढमा, दो गुण जि य अट्टु चउ उवरिं ॥२॥ चक्खुअचक्खु मइसुय भनाण चत्तारि हुंति उषओगा । कम्मणउरालजुयलं २, असब्भासा य चउ जोगा ॥३॥ तेरस गुण मणजोगे, अंतिमदो जीव बारउषओगा । तेरस जोगा य तहा, कम्मोरलमिस्स २ उज्जत्ति ४ ॥४॥” मनोयोगे नानात्वं जीवस्थानेष्वेव शेषपदत्रयाभिधानं च प्रसङ्गादिति । अत्र यन्त्रस्थापनेयम्-

म	१२३	२	१२	१३
ष	१	२	५	४
च	१	२	४	३
०	१	गु	जो	उ

मतान्तराभिधायकगाथा-  
अस्माभिश्च यथाऽव-  
बोधं विवृता । इति गाथार्थः ॥५०॥

अधुना लेश्यास्तेष्वेव योज्यन्ते—

(मल०) तनुवाङ्मनस्सु 'क्रमशः' क्रमेण यानि द्विचतुरादीनि द्वादशसङ्ख्यापदानि तानि चत्वारि चत्वारि भूत्वा क्रमश एव पृथक् पृथक् गुणस्थानकजीवस्थानकोपयोगयोगाभिधायकानि ज्ञातव्यानीत्यक्षरघटना । अस्य च नानात्वस्य निबन्धनम् । अयमभिप्रायः—प्राग्योगान्तरसहितोऽसहितो वा स्वस्वरूपमात्रेणैव काययोगादिविबक्षितः, तेन यत्र यथोक्तगुणस्थानकादिवक्तव्यता-सर्वाऽप्युपपद्यते । इह तु काययोगादियोगान्तरविरहित एव विवक्ष्यते । यथा वाग्योगमनोयोगविरहितः काययोगः, मनोयोगकेवलकाययोगविरहितश्च वाग्योगः, केवलकाययोगवाग्योगविरहितश्च मनोयोगः, ततः पूर्वस्माद्भानात्वमिति । तत्र केवलकाययोगे द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके, चत्वारि पर्याप्तापर्याप्तसङ्ख्यमन्त्रादरैकेन्द्रियलक्षणानि जीवस्थानकानि, त्रयो मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनरूपा उपयोगाः, वैक्रियद्विकौदारिकद्विककार्मणलक्षणाः पञ्च योगाः, केवलकाययोगो द्वे केन्द्रियेष्वेवाप्यते, तत्र च गुणस्थानकादीनि यथोक्तान्येव घटन्त इति । तथा वाग्योगे मनोयोगविरहिते द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके अष्टौ, पर्याप्तापर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि जीवस्थानानि, चत्वारश्चक्षुरचक्षुर्दर्शनमत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणा उपयोगाः, कार्मणौदारिकद्विकासत्यामृषामाषारूपाश्चत्वारो योगाः, केवलवाग्योगो हि केवलकाययोगविरहितस्वरूपो द्वीन्द्रियादिवेवासंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु संभवति नान्येषु, ततो यथोक्तान्येव गुणस्थानकादीनि तत्र भवन्ति न ऊनाधिकानि । तथा मनोयोगेऽयोगिकेवलवर्जितानि शेषाणि त्रयोदशगुणस्थानकानि, द्वे च पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणे जीवस्थानके, द्वादशाप्युपयोगाः, कार्मणौदारिकमिश्रवर्जिताश्च शेषास्त्रयोदश योगाः, कार्मणौदारिकमिश्रौ हि काययोगावपर्याप्तावस्थार्यां केवलिसमुद्घातावस्थार्यां वा, न च तदानीं मनोयोगोऽपर्याप्तावस्थार्यां मनस एवाभावात् केवलिसमुद्घातावस्थार्यां तु प्रयोजनाभावात् । तदुक्तम् मनोवचसी तु तदा सर्वथा न व्यापारयति. प्रयोजनाभावादिति ॥५०॥

उक्तं योगेषु नयमतनानात्वम्, साम्प्रतं मार्गणास्थानेषु लेश्या अभिधित्सुराह—

'लेसा उ तिन्नि पढमा, नारगविगलगिवाउकाएसु ।

एगिदिभूतरूदगअसन्निसु' पढमिया चउरो ॥५१॥

(हारि०) व्याख्या—लेश्यास्तिस्रः प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्या भवन्तीति । केषु ? इत्याह—नारक १-विकला ४ ऽभि ५ वायुकायिकेषु ६ अत्र द्वन्द्वः इति पदपञ्चके प्रथमा एव प्रथमिकाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततैजस्यभिधाना भवन्ति । इति गार्थः ॥५१॥



(मल०) मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनरहिताः शेषा दशैवोपयोगा अनाहारके भवन्ति, तुरेवकारार्थः, तदुक्तम्—“तुः स्याद्भेदेऽवधारणे” इति । अनाहारको हि विग्रहगतौ केवलिसमुद्धातावस्थायामयोग्यवस्थार्या वा, न च तदानीं मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनसंभव इति, उपसंहारमाह—‘उच्योंगा इय गइयाइसु’ इति, इति एवमुक्तेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषूपयोगा भवन्ति । साम्प्रतं योगेषु गुणस्थानकजीवस्थानोपयोगयोगानधिकृत्य मतान्तरसुपक्षिन्नाह—‘नयमयणाणत्तभिणं तु जोगेसु’ योगेषु मनोवाकायलक्षणेषु नयनमतेन “नयो ज्ञातुरभिप्रायः” इतिवचनात्, अभिप्रायान्तरविशेषरूपेण नानात्वमिदं वक्ष्यमाणरूपं द्रष्टव्यम् । तुर्विशेषणे, स च शेषेषु मार्गणास्थानकेषु यथामिहितं तथैवावगन्तव्यम् । योगेषु पुनर्वक्ष्यमाणनयमतापेक्षयाऽन्यथाऽपीति विशेषयति ॥४९॥

तदेव नानात्वसुपदर्शयति—

तणुवइमणेषु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्टुचउचउरो ।  
तेरसदुवारतेरस, गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥५०॥

(हारि०) व्याख्या-तनुवाज्मनस्सु ‘कमसो’ यथासंख्येन द्वि १ चतु २ त्रि ३ पञ्च ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगा ४ इति तर्ना काययोगे । तथा क्रमश्च एव द्वि १ अष्ट २ चतु ३ श्चत्वारो ४ गुण १ जीवो २ पयोग ३ योगाः ४ इति वाचि वाग्योगे । तथा क्रमश्च इत्यत्रापि संबध्यते, तत्स्रयोदश १ द्वि २ द्वादश ३ त्रयोदश ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगाः ४ इति मनसि मनोयोगे भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थो गाथाभिः ‘कथ्यते-’ “केवलतणुजोगंमो, दो गुणचउजीवआइमा हुंति । मइ सुयअमणदुगं, अषकूख्त्तिभि उषओगा ॥१॥ वेउन्विउरलजुयला ४. कम्मणजोगो य १ पंच जोगत्ति । अमणवईए पढमा, दो गुण जि य अट्टु चउ उवरिं ॥२॥ अकसुअचक्खु मइसुय अनाण चत्तारि हुंति उषओगा । कम्मणउरालजुयलं २, असअभासा य चउ जोगा ॥३॥ तेरस गुण मणजोगे, अंतिमदो जीव वारउषओगा । तेरस जोगा य तहा, कम्मोरलमिस्स २ षज्जत्ति ४ ॥४॥” मनोयोगे नानात्वं जीवस्थानेष्वेव शेषपदत्रयाभिधानं च प्रसङ्गादिति । अत्र यन्त्रस्थापनेयम्-

स	११३	२	१२१	१३
व	१	२	५	४४
त	१	२	५	३१५
०	१	गु	जी	उजो

मतान्तराभिधायकगाथा-  
गम्भीरार्थाऽपि सूत्रकारेण केनाप्यभिप्रायेण न विवृता अस्माभिश्च यथाऽव-  
बोधं विवृता । इति गाथार्थः ॥५०॥

अधुना लेश्यास्तेष्वेव योज्यन्ते—

(मल०) तनुवाङ्मनस्सु 'क्रमशः' क्रमेण यानि द्विचतुरादीनि द्वादशसङ्ख्यापदानि तानि चत्वारि चत्वारि भूत्वा क्रमश एव पृथक् पृथक् गुणस्थानकजीवस्थानकोपयोगयोगाभिधायकानि ज्ञातव्यानीत्यक्षरघटना । अस्य च नानात्वस्य निबन्धनम् । अयमभिप्रायः—प्राग्योगान्तरसहितोऽसहितो वा स्वस्वरूपमात्रेणैव काययोगादिविभक्तितः, तेन यत्र यथोक्तगुणस्थानकादिवक्तव्यता-सर्वाऽप्युपपद्यते । इह तु काययोगादियोगान्तरविरहित एव विवक्ष्यते । यथा वाग्योगमनोयोगविरहितः काययोगः, मनोयोगकेवलकाययोगविरहितश्च वाग्योगः, केवलकाययोगवाग्योगविरहितश्च मनोयोगः, ततः पूर्वस्मान्मानात्वमिति । तत्र केवलकाययोगे द्वे मिथ्यादृष्टिसादनलक्षणे गुणस्थानके, चत्वारि पर्याप्तापर्याप्तसङ्ख्यमबादरैकेन्द्रियलक्षणानि जीवस्थानकानि, त्रयो मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनरूपा उपयोगाः, वैक्रियद्विकौदारिकद्विककार्मणलक्षणाः पञ्च योगाः, केवलकाययोगो ह्येकेन्द्रियेष्वेवाप्यते, तत्र च गुणस्थानकादीनि यथोक्तान्येव घटन्त इति । तथा वाग्योगे मनोयोगविरहिते द्वे मिथ्यादृष्टिसादनलक्षणे गुणस्थानके अप्यौ, पर्याप्तापर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि जीवस्थानानि, चत्वारश्चक्षुरचक्षुर्दर्शनमत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणा उपयोगाः, कार्मणौदारिकद्विकासत्यामृषाभाषारूपाश्चत्वारो योगाः, केवलवाग्योगो हि केवलकाययोगविरहितस्वरूपो द्वीन्द्रियादिष्वेवासंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु संभवति नान्येषु, ततो यथोक्तान्येव गुणस्थानकादीनि तत्र भवन्ति न ऊनाधिकानि । तथा मनोयोगेऽयोगिकेवलवर्जितानि शेषाणि त्रयोदशगुणस्थानकानि, द्वे च पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणे जीवस्थानके, द्वादशाप्युपयोगाः, कार्मणौदारिकमिश्रवर्जिताश्च शेषास्त्रयोदश योगाः, कार्मणौदारिकमिश्रौ हि काययोगावपर्याप्तावस्थार्या केवलिसद्गुहातावस्थार्या वा, न च तदानीं मनोयोगोऽपर्याप्तावस्थार्या मनस एवाभावात् केवलिसद्गुहातावस्थार्या तु प्रयोजनाभावात् । तदुक्तम् मनोवचसी तु तदा सर्वथा न व्यापारयति, प्रयोजनाभावादिति ॥५०॥

उक्तं योगेषु नयमतनानात्वम्, साम्प्रतं मार्गणास्थानेषु लेश्या अभिधित्सुराह—

'लेसा उ तिन्नि पढमा, नारगविगलगिवाउकाएसु ।

एगिदिभूतरूदगअसन्निसु' पढमिया चउरो ॥५१॥

(हारि०) व्याख्या—लेश्यास्तिस्रः प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्या भवन्तीति । केषु ? इत्याह—नारक १-विकला ४ ऽग्नि ५ वायुकायिकेषु ६ अत्र द्वन्द्वः इति पदपञ्चके प्रथमा एव प्रथमिकाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततैजस्यभिधाना भवन्ति । इति गार्थ्यः ॥५१॥

तथा—

(मल०) लेश्यास्तिष्ठः कृष्णनीलकापोतरूपा नारकेषु विकलेन्द्रियेष्वग्निषु वायुकायिकेषु च संभवन्ति नान्याः प्रायोः मीपामप्रशस्ताध्यवसायस्थानोपेतत्वात् । तथेन्द्रियद्वारे एकेन्द्रियेषु, कायद्वारे भूतरूदकेष्वमग्निषु च प्रथमाश्रयतः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा लेश्या भवन्ति । भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधमेशाना हि देवाः स्वस्वभवविच्युतावेतेषूपघन्ते ते च तेजोलेश्यावन्तः । जीवश्च यल्लेश्यो म्रियते अग्रेऽपि तल्लेश्य एवोपपद्यते, 'जल्लेसे मरह् तल्लेसे उवघञ्जह' इति वचनात् । तत एतेपामपर्याप्तावस्थार्या कियत्कालं तेजोलेश्या भवतीति ॥५१॥

केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेषु सुक्लसेव ।

लेसासु छसु सठाणं गहयाइसु छावि संसेसु ॥५२॥

(हारि०) व्याख्या—केवलजुगलयथाख्यातसूक्ष्मरागेषु इति द्वन्द्वः, इति पदचतुष्के शुक्लै-  
वैका लेश्या । तथा लेश्यासु षट्सु स्वस्थानम् । कृष्णलेश्यायां कृष्णलेश्या, नीललेश्यायां,  
नीललेश्या, इत्यादि । तथा गत्यादिषु शेषेष्वेकचत्वारिंशत्पदेषु षडपि लेश्याः । इति  
गाथार्थः ॥५२॥

इति योजिता लेश्याः, इतोऽल्पबहुत्वमुच्यते—

(मल०) केवलजुगले केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे, तथा यथाख्यातसंयमे सूक्ष्मसंपरायसंयमे च शुक्ललेश्या भवति न शेषलेश्याः, केवलजुगलादावेकान्तविशुद्धपरिणामभावात्, तस्य शुक्ललेश्याऽविनाभूतत्वात् । तथा षट्सु लेश्यासु 'स्वस्थानम्' इति स्वा स्वा लेश्या भवति यथा कृष्णलेश्यायां कृष्णलेश्या इत्यादि । 'शेषेषु' च गत्यादिमार्गणास्थानकेष्वेकचत्वारिंशत्संख्येषु षडपि लेश्या भवन्तीति । ५२ ।

तदेवमुक्ता मार्गणास्थानकेषु लेश्याः, इदानीमेतेष्वेव चतुर्दशसु मार्गणास्थानेषु स्वस्थानापेक्षयाऽल्पबहुत्वमुच्यते—

गहयाइसु अप्पबहुं, भणामि साम्नाओ सठाणे वि ।

नरनिरयदेवतिरिया, थोवा दुअसंखणंतगुणा ॥५३॥

(हारि०) व्याख्या—'गम्यादिषु' चतुर्दशस्थानेषु 'अल्पबहुत्वं' एते स्तोका एतेभ्य एते बहव इत्येवंलक्षणं 'भणामि' प्रतिपादयामि, 'स्वस्थानेऽपि' सप्रतिभेदे गत्यादौ 'सामान्यतो' देवमनुष्यादिगतिभेदानपेक्षं यथा भवति, एतदेवाह—'नर' इत्यादि, अत्र

यथासंख्येन पदयोजना कार्या, सा चैवम्—नरास्तावत् स्तोकाः १, ततो नारका अमंख्यातगुणाः २, ततो देवा असंख्यातगुणाः ३, ततस्तिर्यञ्चोऽनन्तगुणाः ४ तत्रानन्तवनस्पतिमद्भावात् । एवमन्यत्रापि यथासंभवं वनस्पतिमाश्रित्यानन्तत्वभावना कार्या । इति गाथार्थः ॥५३॥

इति गतिष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) गत्यादिषु चतुर्दशसु मार्गणास्थानेषु 'सठाणे वि' इति अपिरवधारणे स्वस्थान एव न तु परस्थाने, स्वगत नारकाद्यपेक्षयैवेति यावत् 'अल्पबहुत्वम्' एतेभ्य एते स्तोका एते बहव इत्येवं लक्षणं मणामि, 'वर्तमानसामोप्ये वर्तमानवद्वा' इति भविष्यति वर्तमाना, ततो मणामि मणिष्यामीत्यर्थः । कथम् ? इत्याह—'सामान्यतः' सामान्येन स्तोकविशेषाधिका-संख्यातादित्वरूपेण, न तु विशेषेण श्रेणिप्रतराद्याकाशप्रदेशोत्सर्पिण्यादिसमयापहारलक्षणेन, तथाऽभिधाने सति ग्रन्थगौरवापत्तितः संक्षिप्तरुचिदिनेयजनोपकारानुपपत्तेः । तदेव मामान्यतो-ऽल्पबहुत्वमाह—'नरनिरघ' इत्यादि । इह यथासंख्येन पदयोजना कर्तव्या । सा चैवम्—नरा मनुष्या निरयदेवतिर्यग्योनिभ्यः सकाशात्स्तोकाः, यतस्तैरुत्कृष्टपदवर्तिभिरपि सर्वतः सप्तरज्जु-प्रमाणस्य घनीकृतस्य लोकस्योपरितनाधस्तनप्रदेशरहितमेकैकप्रदेशपङ्क्तिरूपं श्रेणिमात्रम-प्यङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसंबन्धितृतीयवर्गमूलगुणितप्रथमवर्गमूलप्रदेशप्रमाणैरसत्कल्पनया पट्ट-पञ्चाशदधिकशतद्वयप्रमाणाङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसंबन्धित्विकलक्षणतृतीयवर्गमूलगुणितषोडश-लक्षणप्रथमवर्गमूललब्धद्वित्रिंशत्प्रदेशप्रमाणैराकाशरूपद्वैर्धनुष्यरूपस्थानीयैरपह्रियमाणमपि नाप-ह्रियते, एकरूपहीनत्वात् । यदि पुनरेतावत्प्रमाणमेकं रूपमन्यत्स्यात्, ततः सकलाऽपि श्रेणिरपह्रियते । कालतश्च प्रतिसमयमेतावत्प्रमाणैरप्याकाराखण्डैरपह्रियमाणा श्रेणिरसंख्याता-मिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिर्निःशेषतोऽपह्रियते, कालतः सकाशात्क्षेत्रस्यात्यन्तसूक्ष्मत्वात् । उक्तं च "उक्कोसपए जे मणुस्सा भवन्ति तेसु एकंमि मणुयरूवे पक्खित्ते समाणे तेहि मणुस्सेहि सेढी अबहोरइ । तीसे य सेढीए कालक्खित्तेहि अबहारो मग्गि-ज्जइ । कालतो ताव असंखेज्जाहि उस्सपिणिओसप्पिणोहिं, खेत्तओ अंगुलायए खण्डे जो पएसरासी, तस्स जं पढमवग्गमूलपवेसरासिमाणं तं तं तइयवग्गमूलपएसरा-सिणा पडुपाइज्जइ पडुप्पाइए समाणे जो पएसरासी हवइ एवइएहिं खण्डेहिं अबहोरमाणी अबहोरमाणी जाव निड्डाइ ताव मणुस्सावि अबहोरमाणा निडुंति । आह, कहमेगा सेढी एइहमेसेहिं खण्डेहिं अबहोरमाणी अबहोरमाणी असंखि-

आहि उस्सप्पिणिओसप्पिणोहिं भवहीरह । आयरिओ आह, खेत्तस्स सुहुमत्त-  
णओ सुत्ते विमं भणियं-‘सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमययरं हवइ खेत्तं ।  
अंगुलसेदोमित्तं, ओसप्पिणिओ असंखेज्जा ॥१॥’ इति ।” अतो निरयादिभ्यः सका-  
शात्स्तोका मनुष्याः, तेभ्यो नारका असंख्यातगुणाः, यतः सप्तरज्जुप्रमाणस्य घनीकृतस्य  
लोकस्योर्ध्वाध आयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिगतप्रथमवर्गमूलघन-  
प्रदेशराशिप्रमाणास्तासां यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणा नारकाः, अतस्ते नरेभ्योऽसंख्यातगुणा  
एव, तेभ्योऽपि देवा असंख्यातगुणाः, कथम्? इति चेद् . उच्यते, देवा हि भवनपतिव्यन्तरज्यो-  
तिष्कवैमानिकमेदेन चतुर्विधाः । भवनपतयश्चासुरनागसुवर्णादिभेदेन दशविधाः । तत्रासुरकुमारा  
अपि तावद्घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाध आयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽङ्गुलमात्रक्षेत्रगत-  
प्रदेशराशिसंबन्धिप्रथमवर्गमूलासंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणास्तासां संबन्धी यावान् प्रदेश-  
राशिस्तावत्संख्याकाः । एवं नागकुमारादयोऽपि प्रत्येकं द्रष्टव्याः । तथा संख्येययोजनप्रमाणा-  
काशप्रदेशसूचिरूपैः खण्डैर्यावद्विर्धनीकृतस्य लोकस्य (‘उपरितनाधस्तनप्रदेशरहितं मण्डकाकारं)  
प्रतरमपह्नियते तावत्प्रमाणा व्यन्तराः । उक्तं च-“संखेज्जजोयणाणां, सूइपएसेहिं भाइयं  
पयरं । वंतरसुरेहिं हीरह, एवं एक्केकभेदेणं ॥१॥” इति । अस्या अक्षरगमनिका-संख्येययो-  
जनानां या सूचिरेकप्रादेशिकी पङ्क्तिस्तत्प्रदेशैः संख्येययोजनप्रमाणैकप्रादेशिकपङ्क्तिप्रदेशैरिति  
यावद्भक्तं प्रतरं व्यन्तरसुरैरपह्नियते तावद्भागलब्धराशिप्रमाणा व्यन्तरसुरा इत्यर्थः । इयमत्र भाव-  
नासंख्येययोजनप्रमाणसूचिप्रदेशाः किलासत्कल्पनया दश प्रतरप्रदेशाश्च लक्षम् , तस्य दशभिर्भगि  
हते लब्धाः सहस्रा दश एतावन्त इत्यर्थः । एवमुक्तेन प्रकारेण प्रतिनिकायं व्यन्तराणां  
भावना कार्या । न चैवं सर्वसमुदायप्रमाणनियमव्याघातप्रसङ्गः, सूचिप्रमाणहेतुयोजनसंख्येय-  
त्वस्य वैचित्र्यादिति । तथा षट्पञ्चाशदधिकशतद्रयाङ्गुलप्रमाणैराकाशप्रदेशसूचिरूपैः खण्डैर्या-  
वद्विर्धयोक्तस्वरूपं प्रतरमपह्नियते तावत्प्रमाणा ज्योतिष्का देवाः । तदुक्तम्-‘सुप्पन्नदोसयं-  
गुलसूइपएसेहिं भाइयं पयरं । जोइसिएहिं हारह’ इति । अत एवोक्तं सूत्रे-“वाण-  
मत्तरेहितो संखेज्जगुणा जोइसिया” इति तथा वैमानिकदेवा घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाध-  
आयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसंबन्धितृतीयवर्गमूलघनप्रमाणास्तासां  
यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणाः । अतः सकलभवनपत्यादिसमुदायापेक्षया चिन्त्यमाना देवा  
नारकैभ्योऽसङ्ख्यातगुणा एव । तथा चोक्तम्-“थोवा नरा नरेहिं य, असंखगुणिया हवंति  
भैरहया । तत्तो सुरासुरेहिं य, सिञ्जाणंता तथो तिरिया ॥१॥” इति । यदुक्तं  
तृतीयवर्गमूलघनप्रमाणा इति, तस्येयं गणितभावना-अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेरसत्कल्पनया

षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयप्रमाणस्य प्रथमं वर्गमूलं षोडश, द्वितीयं चत्वारि, तृतीये द्वे, तच्च तृतीयं वर्गमूलं द्वितीयेन वर्गमूलेन चतुष्टयलक्षणेन गुण्यते ततोऽष्टौ भवन्ति; एष तृतीयवर्गमूलस्य घनः ।

अङ्कस्थापना-<sup>२५७</sup><sub>१६</sub> अरय घनः ८ । एवं प्रागपि वर्गमूलघनभावना द्रष्टव्या । तेभ्योऽपि च देवेभ्यस्तिर्य-<sup>४</sup><sub>२</sub> ऋऽनन्तगुणाः; तत्रानन्तसंख्योपेतस्य वनस्पतिकायस्य सद्भावात् ॥५३॥

तदेवं गतिष्वल्पबहुत्वमभिधाय, साम्प्रतमिन्द्रियद्वारे तदमिधित्सुराह—

पणचउतिदुर्गिदी, थोवा तिन्नि अहिया अणंतगुणा ।

तमतेउपुढविजलवाउहरिकाया पुण कमेणं ॥५४॥

थोवा असंखगुणिया, तिन्नि विसेसाहिया अणंतगुणा ।

मणवयणकायजोगी, थोवासंखगुणणंतगुणा ॥५५॥

(हारि०) व्याख्या—सूक्ष्मकत्वात्सूत्रस्य पञ्चचतुस्त्रिदशकेन्द्रियाः, अत्र द्वन्द्वगर्भो बहु-  
व्रीहिः । तत्र पञ्चेन्द्रियाः स्तोकाः, तेभ्यश्चतुरिन्द्रिया अधिकाः, तेभ्यस्त्रीन्द्रिया अधिकाः, ततो  
द्गीन्द्रिया अधिकाः, तेभ्य एकेन्द्रिया अनन्तगुणाः । अनन्तत्वभावना प्राग्वत् । इतीन्द्रियेष्व-  
ल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा त्रसतेजःपृथिवीजलवायुहरितकायाः, इह द्वन्द्वगर्भस्तत्पुरुषः । पुनः क्रमे-  
णान्त्वबहुत्वं वक्ष्यमाणगाथया मन्तव्यम् । इति गाथार्थः ॥५४॥

तदेवाह—

(हारि०) व्याख्या—त्रसादयः प्राग्गाथापराद्धोवताः । तत्र त्रसाः स्तोकाः, तेभ्यस्तेज-  
स्काया असङ्ख्यगुणिताः, ततः पृथिवीकायिका विशेषाधिकाः, तेभ्यो जलकायिका विशेषा-  
धिकाः, तेभ्यो वायुकायिका विशेषाधिकाः, तेभ्यो हरितकायिका अनन्तगुणाः । अनन्तत्वभा-  
वना प्राग्वत् । इति कायेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा मनोवचनकाययोगिनः क्रमेणेति प्रक्रमः ।  
स्तोका मनोयोगिनः सं ज्ञेयपञ्चेन्द्रियाः, तेभ्योऽसङ्ख्यगुणा वचनयोगिनो द्वीन्द्रियादयः, तेभ्यो-  
ऽनन्तगुणाः काययोगिन एकेन्द्रियाः पृथ्वीप्रसृतयः । अनन्तगुणत्वभावना प्रागिव । इति  
योगेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । इति गाथार्थः ॥५५॥

तथा—

(मल०) पञ्चेन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियादिभ्यः सकाशात्स्तोकाः, तेभ्यश्चतुरिन्द्रिया विशेषा-  
धिकाः, तेभ्योऽपि त्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्योऽपि द्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः । तत्र यद्यपि च  
घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाधायता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयः असंख्यातयोजनकोटीकोटीप्रमा-  
णाकाशप्रदेशसूचिगतप्रदेशराशिप्रमाणास्तासां यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-

चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिपञ्चेन्द्रिया अविशेषेण सूत्रे निर्दिष्टाः । तथा चोक्तं तत्र यथोक्तरूप-  
द्वीन्द्रियपरिमाणभिधानानन्तरम्—“जहा बेइंदियाणं तहा तेइंदियाणं चउरिंदियाण वि  
भाणियव्व, पंचिंदियातिरिक्खज्जोणियाणंपि” इति । तथाऽपि सूचिपरिमाणहेत्वसङ्ख्यात-  
रूपसङ्ख्याया बहुभेदत्वान्न यथोक्तविशेषाधिकत्वाभिधानव्याघातः । अत एव च हेतोस्तिर्यग्यो-  
निपञ्चेन्द्रियेषु द्वीन्द्रियादितुल्यतया सूत्रेऽभिहितेष्वपि तत्रापि नरनिरयदेवप्रक्षेपेऽपि पञ्चेन्द्रिया-  
श्चतुरिन्द्रियादिभ्यः स्तोका एव द्रष्टव्याः । तदुक्तम्—पंचिंदिया य थोवा, विवज्जएण विचला  
विसेसहिया” इति द्वीन्द्रियेभ्योऽपि चैकेन्द्रिया अनन्तगुणाः, वनस्पतिकायजीवराशेरनन्तानन्त-  
त्वात् । तस तेउ’ इत्यादि सोचरगाथाःर्द्धम् । तसा द्वीन्द्रियादयः पूर्वनिर्दिष्टसंख्याकाः, ते  
तेजस्कायिकादिभ्यः सकाशात्स्तोकाः, तेभ्यः पुनस्तेजस्कायिका असंख्यातगुणाः, तेषां सूक्ष्म-  
बादरमेदमिन्नानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् तेभ्यः पृथ्वीकायिका विशेषाधिकाः,  
तेभ्योऽष्कायिका विशेषाधिकाः, तेभ्योऽपि वायुकायिका विशेषाधिकाः । यद्यपि चैतेषामपि  
पृथ्वीकायिकादीनामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणतया सूत्रेऽविशेषेण निर्देशः कृतः । तथा  
चोक्तम्—जहा पुदविकाइयाणं एवं आउकाइयाणं पि” इत्यादि । तथाऽपि लोकानाम-  
संख्यातत्वस्यानेकभेदत्वादिहेव विशेषाधिकत्वाभिधानेऽपि न कश्चिद्दोषः । उक्तं च—“थोवा  
य तसा तसा, तेउ असंखा तओ विसेसहिया । कमसो भूदगवाऊ, अकायहरिया  
अणंतगुणा ॥१॥” ‘अकाय’ इति सिद्धाः, तथा तेभ्यो वायुकायिकेभ्यो हरितकाया अनन्त-  
गुणाः, अनन्तलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् । मणवयग’ इत्यादि । मनोयोगिनः स्तोकाः,  
संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामेव मनोयोगित्वात् । तेभ्यश्च वाग्योगिनोऽसङ्ख्यातगुणाः, द्वीन्द्रियादीनाम-  
प्यसंज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां वाग्योगिनां मनोयोगिभ्योऽसङ्ख्यातगुणानां तत्र प्रक्षेपात् ।  
वाग्योगिभ्योऽपि काययोगिनोऽनन्तगुणाः, वनस्पतिकायिकानामप्यनन्तानन्तानां तत्र प्रक्षे-  
पात् ॥५४॥५५॥

पुरिसेहितो इत्थी, संखेज्जगुणा नपुं सणंतगुणा ।

माणी कोही 'मायी, लोही कमसो विसेसहिया ॥५६॥

(हारि०) व्याख्या—पुरुषाः स्तोका इति सामर्थ्याल्लभ्यते, ततः पुरुषेभ्यः स्त्रियः संख्येय-  
गुणाः । तथा चागमः—“देवेहितो बत्तीसगुणाओ देवीणो नरेहितो ससावोसगुणाओ  
नारीओ, निरिएहितो तिगुणाओ तिरिच्छीओ किंचि अहियाओ ।” इति । अत्रार्थे  
गाथे ‘तिगुणा तिरुवअहिया, तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा । ससावोसगुणा पुण,  
मणुयाणं तदहिया खेव ॥१॥ बत्तीसगुणा बत्तीसख्यअहिया य तह य देवाणं ।

देवीओ पन्नत्ता, जिणेहि जियरागदोसेहि ॥२॥” ततः स्त्रीभ्यो नपुंसकान्यनन्तगुणानि । अनन्तत्वमायना पूर्ववत् । इति वेदेष्वल्पवहुत्वमुक्तम् । तथा मानिनः, क्रोधवन्तो, मायिनो, लोभवन्तः क्रमेण विशेषाधिकाः, अयमर्थः—स्तोका मानवन्त इत्यागमे भणनास्तोका इति सामर्थ्यलभ्यम् । शेषा मणितक्रमेण विशेषाधिका ज्ञेयाः । सामान्येन चत्वारोऽयनन्ताः, अनन्तकायिकादिष्वेतच्चतुष्कपायसद्भावात् । इति कषायेष्वल्पवहुत्वमुक्तम् । इति गाथार्थः ॥५६॥

तथा—

(मल०) स्यादिस्यः सकाशात्पुरुषाः स्तोका इति सामर्थ्याल्लभ्यते, अन्यथा तेभ्यः स्त्रीणां सङ्ख्यातगुणः नोपपद्यते, पुरुषेभ्यः सकाशात्त्रियः संख्यातगुणाः । उक्तंच—“तिगुणा तिरूवअहिया, तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा । सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिया खेव ॥१॥ बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया य तह य देवाणं । देवीओ पणत्ता, जिणेहि जियरागदोसेहिं ॥२॥” स्त्रीभ्यश्च नपुंसका अनन्तगुणाः, अनन्तगुणता च वनस्पतिक्रायापेक्षया द्रष्टव्या । ‘माणी’ इत्यादि सर्वस्तोका मानिनः, मानपरिणामकालस्य क्रोधादिपरिणामकालापेक्षया सर्वस्तोकत्वात् । तेभ्यः क्रोधवन्तो विशेषाधिकाः, क्रोधपरिणामकालस्य मानपरिणामकालापेक्षया विशेषाधिकत्वात् । तेभ्योऽपि मानिनो विशेषाधिकाः, भूयस्त्वेन जन्तूनां प्रभूतकालं च मायाबहुत्वात् । ततोऽपि विशेषाधिका लोभवन्तः, सर्वेषामपि प्रायः संसारिजीवानां सदा परिग्रहाद्याकाङ्क्षासद्भावात् ॥५६॥

मणपज्जविणो थोवा, ओहिण्णाणी तओ असंखगुणा ।

मइसुयनाणी तत्तो, विसेमअहिया समा दोवि ॥५७॥

(हारि०) व्याख्या—मनःपर्यवज्ञानिनः स्तोकाः, अवधिज्ञानिनस्ततोऽसंख्यगुणाः, असंख्यत्वात्सम्यग्दृष्टिदेवादीनाम् । मतिश्रुतज्ञानिनस्ततो विशेषाधिकाः, अवधिरहितसम्यग्दृष्टितिर्यङ्करप्रक्षेपात् । स्वस्थाने पुनः ‘समौ’ तुन्यौ द्वावपि राशी । इति गाथार्थः ॥५७॥

तथा—

(मल०) मनःपर्यायज्ञानिनः शेषज्ञान्यपेक्षया स्तोकाः, तद्धि गर्भव्युत्क्रान्तमनुष्याणां तत्रापि संयताः।मप्रमत्तानां विविधामर्षौषध्यादिलब्धयुवतानामुपजायते । यत् उक्तम्—“त्तं सजयस्स सब्बप्पमायरहियस्स विविहरिच्चिमतो ।” इत्यादि । ते च स्तोका एव, सङ्ख्यातत्वात् । तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणा अवधिज्ञानिनः, सम्यग्दृष्टिदेवादीनामवधिज्ञानयुक्तानां तेभ्योऽसंख्यातगुणत्वात् । ‘ततः’ अवधिज्ञानिभ्यः सकाशान्मतिश्रुतज्ञानिनो विशेषाधिकाः, अवधिज्ञानरहितसम्यग्दृष्टिरतिर्यक्प्रक्षेपात् । एतौ च मतिज्ञानिश्रुतज्ञानिनौ स्वस्थाने चिन्त्यमानौ



द्वावपि तुल्यौ, मतिश्रुतज्ञानयोः परस्परनान्तरीयकत्वात् । तथा च सूत्रम्—“जस्थ महनाणं तस्थ सुयनाणं, जस्थ सुयनाणं तस्थ महनाणं । षोवि एयाहं अन्नान्नमणुगयाहं” इति ॥५७॥

विभंगिणो असंखा, केवलनाणी तओ अणंतगुणा ।

ततोऽणंतगुणा दो, महसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥५८॥

(हारि०) व्याख्या—वक्ष्यमाणतच्छब्दस्यात्रापि योगात्ततः पूर्वगाथोऽतमतिश्रुतज्ञानिभ्यः सकाशाद्विमङ्गिनोऽसंख्याः, मिथ्यादृष्टिसुरादीनामसंख्यगुणत्वात् । केवलज्ञानिनस्ततोऽनन्तगुणाः सिद्धानामानन्त्यात् । ततोऽनन्तगुणौ द्वौ मतिश्रुताज्ञानिनौ, एतदज्ञानद्वयवतां हि मिथ्यादृष्ट्यादीनामनन्तगुणत्वात् । 'तुल्यौ' समौ स्वस्थान इति शेषः । इति गाथार्थः ॥५८॥

इति ज्ञानेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) तेभ्यश्च मतिज्ञानिश्रुतज्ञानिभ्यः सकाशाद्विमङ्गज्ञानिनोऽसङ्ख्यातगुणाः, मिथ्यादृष्टिसुरादीनां विमङ्गज्ञानवतां तेभ्योऽसङ्ख्यातगुणत्वात् । ततोऽपि च विमङ्गज्ञानिभ्यः सकाशात्केवलिनोऽनन्तगुणाः, सिद्धानां तेभ्योऽनन्तगुणत्वात्, तेषां च केवलज्ञानयुक्तत्वात् । तेभ्योऽपि च केवलज्ञानिभ्यः सकाशादनन्तगुणाः मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनः, सिद्धेभ्यो वनस्पतिकारिकाणामनन्तगुणत्वात्, तेषां च मिथ्यादृष्टितया मतिश्रुताज्ञानयुक्तत्वात् । एतौ द्वावपि मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनौ स्वस्थाने चिन्त्यमानौ तुल्यौ, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानयोः परस्परमविनाभावित्वात् ॥५९॥

सुहुमपरिहारअहस्वायच्छेयसामहयदेसजहअजया ।

थोवा संखेजगुणा, चउरो अस्संखणंतगुणा ॥५९॥

(हारि०) व्याख्या—सूचकत्वात्सूत्रस्य सूक्ष्मसंपरायपरिहारविशुद्धिकथारख्यातच्छेदोपस्थापनीयसामायिकदेशयत्ययताः क्रमेणेति प्रक्रमः । प्रथमाः स्तोकाः । ततः संख्येयगुणाश्चत्वारः । ततो देशयतयो गुणशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धादसंख्यगुणाः असंख्यगुणत्वाद्देशविरततिरश्चाम् । ततोऽनन्तगुणा अयंताः, आद्यगुणस्थानकचतुष्टयवर्त्यसंयमिनः । भावना पूर्ववत् । इति गाथार्थः ॥५९॥

इति संयमेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) सर्वस्तोकाः सूक्ष्मसंपरायसंयमिनः, शतपृथक्त्वमात्रसंभवात् । तेभ्यः सङ्ख्येयगुणाः परिहारविशुद्धिकाः, सहस्रपृथक्त्वसंभवात् । तेभ्योऽपि सङ्ख्येयगुणा यथाख्यातचारित्रिणाः, कोटीपृथक्त्वेन प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्योऽपि च च्छेदोपस्थापनचारित्रिणः सङ्ख्येयगुणाः, कोटीशतपृथक्त्वेन लभ्यमानत्वात् । तेभ्योऽपि सामायिकसंयमिनः सङ्ख्येयगुणाः, कोटीसहस्रपृथ-

क्त्वेन प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्योऽपि देशयतयोऽसङ्ख्यातगुणाः, असङ्ख्यातानां तिरश्चां देशविरति-  
संभवात् । तेभ्योऽप्ययताः संयमहीना आद्यगुणरथानकचतुष्टयवर्तिनोऽनन्तगुणाः, मिथ्यादशाम-  
नन्तानन्तत्वात् । 'संखेज्जगुणा चउरो' इति चत्वारः परिहारविशुद्धिकयथाख्यातच्छेदोपस्था-  
नसामायिकवन्तः क्रमेण सङ्ख्येयगुणाः शेषाक्षरगमनिका सुज्ञाना । इति ॥५६॥

इय ओहिचक्खुकेवलअचक्खुदंसी कमेण विन्नेया ।

थोवा अस्संखगुणा, अणंतगुणिया अणंतगुणा ॥६०॥

(हारि०) व्याख्या- 'इति' अमुनोन्लेखेन विज्ञेया इति संबन्धः, पदावयवे पदसमुदायो-  
पचारात् । अवधिदर्शनचक्षुर्दर्शनकेवलदर्शनाचक्षुर्दर्शनिनः, 'क्रमेण' भणितपरिपाटया 'विज्ञेयाः'  
ज्ञातव्याः । कथम् ? स्तोका अवधिदर्शनिनः । ततोऽसंख्यगुणाश्चक्षुर्दर्शनिनः चतुरिन्द्रियप्रमुख-  
चक्षुष्मतामसंख्यगुणत्वात् । ततोऽनन्तगुणताः केवलदर्शनिनः, सिद्धानामनन्तत्वादेव । ततोऽन-  
न्तगुणा अचक्षुर्दर्शनिनः, सर्वजीवव्यापित्वादचक्षुर्दर्शनस्य । तदुक्तम्- "ज्ञानं सम्यग्दृष्टेर्दर्शन-  
मथ भवति सर्वजीवानाम् । इति भावना ।" इति गाथार्थः ॥६०॥

इति दर्शनेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) 'इतिः' एवं वक्ष्यमाणलक्षणेन प्रकारेणावधिचक्षुःकेवलाचक्षुर्दर्शनिनः क्रमेण  
विज्ञेयाः । केन प्रकारेण ? इत्याह- 'थोवा' इत्यादि, स्तोका अवधिदर्शनिनः, सुरनारकार्णा नरति-  
रश्चां च केषांचिदवधिदर्शनसंभवात् । तेभ्यश्चक्षुर्दर्शनिनोऽसङ्ख्यातगुणाः, चतुरिन्द्रियादीनामपि  
चक्षुर्दर्शनिनां तत्र प्रक्षेपात् । तेभ्योऽनन्तगुणा, केवलदर्शनिनः, सिद्धानां तेभ्योऽनन्तगुणत्वात्,  
तेषां च केवलदर्शनयुक्तत्वात् । तेभ्योऽप्यनन्तगुणा अचक्षुर्दर्शनिनः, सर्वसंसारिजीवानां सिद्धे-  
भ्योऽनन्तगुणत्वात्, तेषां च नियमादचक्षुर्दर्शनोपेतत्वात् । इति ॥६०॥

सुक्का पम्हा तेऊ, कऊ नीला य किण्हलेसा य ।<sup>१५</sup>

थोवा दो संखगुणाऽणंतगुणा दो विसैसंहियां ॥६१॥

(हारि०) व्याख्या- इह गुणगुणिनोरभेदोपचारादेतल्लेश्यावन्तो गृह्यन्ते । ततः शुक्लले-  
श्यावन्तः स्तोकाः, ततः पद्मतेजोलेश्यावन्तौ संख्येयगुणौ द्वौ प्रत्येकम् । ततोऽनन्तगुणाः  
कापोतलेश्यावन्तः कापोतलेश्याया अनन्तकायिकेष्वपि सङ्गावात् । ततो द्वाष्टुमौ राशी विशेषा-  
धिकौ । 'नोलाञ्च' नीललेश्यावन्तः कृष्णलेश्याश्च । तत्र नीललेश्याधिक्यं चतुर्थनरके सङ्गावात् ।  
कृष्णलेश्याधिक्यं षष्ठसप्तमनरकसङ्गावात् । इति गाथार्थः ॥६१॥

इति लेश्यास्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) स्तोकाः शुक्ललेश्यावन्तः, वैमानिकेष्वेव देवेषु लान्तकादिष्वनुत्तरसुरपर्यवसानेषु

केषुचिदेव च मनुष्यस्त्रीपुंसेषु कर्मभूमिजेषु तिर्यक्स्त्रीपुंसेषु च केषुचित्सङ्ख्यातवर्षायुष्केषु शुक्ल-  
लेश्यासंभवात् । ततः सङ्ख्येयगुणाः पद्मलेश्यावन्तः, सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकदेवेषु उवतस्व-  
रूपेषु च मनुष्यतिर्यक्षु पद्मलेश्याभावात्, सनत्कुमारादिदेवानां च लान्तकादिदेवेभ्यः सङ्ख्येय-  
गुणत्वात् । तेभ्योऽपि तेजोलेश्यावन्तः सङ्ख्येयगुणाः, सौधर्मेशानादिदेवेषु केषुचिच्च तिर्यक्-  
मनुष्येषु तेजोलेश्यासद्भावात्, तेषां च सकलपद्मलेश्यासहिततिर्यगादिप्राणिगणापेक्षया संख्येय-  
गुणत्वात् । ततः कापोतलेश्यावन्तोऽनन्तगुणाः, अनन्तकायिकेष्वपि कापोतलेश्यासद्भावात् । ततो  
विशेषाधिका नीललेश्यावन्तः, नारकादीनां तल्लेश्यावतां तत्र प्रक्षेपात् । ततोऽपि विशेषाधिकाः  
कृष्णलेश्यावन्तः, भूयसां तल्लेश्यासद्भावात् ॥६१॥

थोवा जहन्नजुत्ताऽणंतयतुल्लति इह अभव्वजिया ।

तेहितोऽणंतगुणा, भव्वा णिव्वाणगमणरिहा ॥६२॥

(हारि०) व्याख्या—स्तोका इहात्र विचारे वर्तन्ते । क एते ? अभव्यजीवा मुक्तिगमना-  
योग्यजन्तवः, किं परिमाणाः ? जघन्यं च तद्युक्तानन्तकं च जघन्ययुक्तानन्तकं सिद्धान्तप्रसि-  
द्धम्, तेन तुल्याः समा जघन्ययुक्तानन्तकतुल्याः । इह युक्तानन्तकपदे स्थानाशून्यार्थं काचि-  
द्भावात् लिख्यते—तत्र जम्बूद्वीपप्रमाणशलाकाप्रतिशलाकामहाशलाकाख्यपल्यत्रयमनवस्थितचतुर्थ-  
पल्येन भ्रियते, एकैकमरणपूर्वकं यावच्चत्वारोऽपि पल्या मृता एकशलाकोना भवन्ति तावत्संख्या-  
तमुत्कृष्टं भवति । तत एकशलाकाक्षेपे परीतासंख्यातं जघन्यं स्यात् १ । एवमनेकप्रक्षेपैर्द्विगि-  
तसंवर्गितन्यायेन च मध्यमपरीतासंख्यातम् २ । उत्कृष्टपरीतासंख्यातं च ३ । एवं जघःयादि-  
मेदत्रयेण युक्तासंख्यातम् ३ । एवं मेदत्रयेणाऽसंख्यातासंख्यातं भवति ३ । एवमसंख्यातपद-  
स्थानेऽनन्तपदं वाच्यम् । ततोऽनन्तेऽपि नवमेदा जाताः ९ । प्रक्षेपादिकं सर्वं जीवसमासादि-  
ग्रन्थेभ्योऽवसेयम् । वचनमात्रमत्र लिखितमिति । किन्त्वनन्तानन्तकमुत्कृष्टं न कथंचित्पूर्यते  
प्रस्तुते त्वमव्या युक्तानन्तकप्रथममेदसमा मन्तव्याः । इतिशब्दो वाक्यार्थसमाप्तौ । इहशब्दो  
योजित एव । तेभ्योऽनन्तगुणा भव्याः । कीदृशा भव्याः ? 'निर्वाणगमनार्हाः' निवृत्ति-  
यानयोग्याः । इति गार्थः ॥६२॥

इति मव्येष्वल्पवहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) 'इह' अस्मिन् जगति मव्यापेक्षयाऽमव्यजीवाः स्तोकाः, कृतः ? इत्याह—'जह-  
न्नजुत्ताणंतयतुल्लति' हेतावियं प्रथमा । ततोऽयमर्थः—यतोऽमव्यजीवा जघन्ययुक्तानन्तक-  
तुल्या इति, तस्मान्मव्यजीवापेक्षया ते स्तोकाः । अथ किमिदं जघन्ययुक्तानन्तकं नाम ?  
उच्यते, अनन्तसङ्ख्याविशेषः, स च सङ्ख्यातासङ्ख्यातरूपसङ्ख्याविशेषप्ररूपणामन्तरेण न प्ररू-  
पयितुं शक्यते, एकादिप्ररूपणामन्तरेण शतादिसङ्ख्यावत्, तत आदितः कथयितुमारभ्यते ।

तत्र सङ्ख्यातं त्रिधा, जघन्यं मध्यमुत्कृष्टं च । तत्र जघन्यं द्वौ एकस्य एकत्वादेव गणनागो-  
चरातिक्रान्तत्वात् । मध्यमं संख्यातं त्रिप्रभृति यावदेकरूपहीनतया उत्कृष्टं सङ्ख्यातं न भवति ।  
तच्चोत्कृष्टमेवम्—इह जम्बूद्वीपप्रमाणा अधस्ताद्योजनसहस्रमवगाढा उपरिष्टादष्टयोजनोच्छ्रितचतुर्धा-  
दशोपर्यधोविस्तृतप्राकारतदुपरिषश्वनुःशतविस्तृतद्विगव्यूतोच्छ्रितवेदिकान्तसहिताश्चत्वारः पल्याः  
कल्प्यन्ते । तत्र प्रथमोऽनवस्थितपल्यः । द्वितीयः शलाकापल्यः । तृतीयः प्रतिशलाकापल्यः ।  
चतुर्थो महाशलाकापल्यः । प्रथमपल्यश्चानवस्थितनामा सशिखाकः सर्षपैरापूर्यते, यावदेकोऽ-  
प्यन्यः सर्षपस्तत्र प्रक्षिप्तः सन् नावस्थातुं शक्नोति । ततोऽसत्कल्पनया कश्चनापि देवो वा  
दानवो वा तमनवस्थितं पल्यं वामकरतले धृतैकं सर्षपं द्वीपे प्रक्षिपेद् एकं समुद्रे पुनरप्येकं द्वीपे  
एकं समुद्रे, एवं तावत्प्रचेपो वाच्यो यावदसावनवस्थितपल्यो निःशेषतो निष्ठितो भवति, तत  
एकोऽनवस्थितपल्यसत्कसर्षपम्योऽन्य एव सर्षपः शलाकापल्ये प्रक्षिप्यते, ततो यत्र द्वीपे समुद्रे  
चाऽसौ अनवस्थितपल्यो निष्ठां गतः, तदन्ता ये द्वीपसमुद्रास्तावत्प्रमाणः पुनरन्यः पल्यः  
परिकल्प्यते । सोऽप्यधोयोजनसहस्रमवगाढ उपरिष्टाद्यथोक्तजगतीवेदिकापरिकल्पितः सशिखाकः  
सर्षपैरापूर्यते । ततस्तमुत्पाद्य यस्मिन् द्वीपे समुद्रे वा प्रथमः पल्यो निष्ठितस्ततः परतो द्वीपसमु-  
द्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेत्तावद् यावदसौ निलेपो भवति । ततः शलाकापल्ये द्वितीया सर्षपरूपा  
शलाका प्रक्षिप्यते । अन्ये त्वाहुः—एषैव प्रथमा शलाकेति । तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्ति । ततो  
यस्मिन् द्वीपे समुद्रे वा स एष द्वितीयः पल्यो निष्ठितस्तदन्ता मूलतः सर्वेऽपि ये द्वीपसमुद्रास्ता-  
वत्प्रमाणः पुनरन्यः पल्यः परिकल्प्यते, पूर्ववत्सर्षपैश्चापूर्यते । ततस्तं तावत्प्रमाणं पल्यमुत्पाद्य  
ततो निष्ठितस्थानात्परतो द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततस्तृतीया  
सर्षपरूपा शलाका शलाकापल्ये प्रक्षिप्यते । एवमनेन क्रमेण पुनः पुनरनवस्थितपल्यसर्षपाऽऽ-  
पूरणरिक्तीकरणलब्धैकेकसर्षपरूपाभिः शलाकाभिः शलाकापल्यो यथोक्तप्रमाणः सशिखाकस्ता-  
वदापूरयित्वा यो यावत्त्रैकोऽप्यन्यः सर्षपो न मातीति । ततः पूर्वपरिपाद्यागतोऽनवस्थितः पल्यः  
सर्षपैरापूरणीयः । ततः शलाकापल्यं वामकरतले कृत्वा पूर्वानवस्थितपल्यचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वी-  
पात्समुद्राद्वा परतः प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं त्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततः  
प्रतिशलाकापल्ये सर्षपरूपा प्रथमा प्रतिशलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनन्तरोक्तोऽनवस्थितपल्य  
उत्पाद्यते । ततः शलाकापल्यचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतः पूर्वक्रमेण द्वीपसमुद्रे-  
ष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निःशेषतो निष्ठितो भवति । ततः शलाकापल्ये पुनरपि सर्षपरूपा  
एका शलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनन्तरोक्तानवस्थितपल्यचरमसर्षपाक्रान्तो द्वीपः समुद्रो वा  
यस्तदन्तमनवस्थितपल्यं सर्षपैर्भृत्वा ततः परतः पुनरप्येकैकं सर्षपं प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं च प्रक्षि-  
पेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततो द्वितीया शलाका शलाकापल्ये प्रक्षिप्यते । एवमपरापरानव-

स्थितपल्यापूरणरिक्तीकरणलःधैकैकसर्षपैर्यदा शलाकापल्य आपूरितो भवति । पूर्वपरिपाद्या चानवस्थितपल्यस्तदा शलाकापल्यमुत्पाद्य प्राक्तनानवस्थितपल्यचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतः प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं चैकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निर्लेपो भवति । ततः प्रतिशलाकापल्ये मर्षपरूपा द्वितीया शलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनवस्थितपल्यमुत्पाद्यानन्तररिक्तीकृतशलाकापल्यचरममर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतः पूर्वक्रमेण द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततः पुनरपि शलाकापल्ये सर्षपरूपा शलाका प्रक्षिप्यते, यत्र चासौ द्वीपे समुद्रे वा निष्ठितस्तावत्प्रमाणविस्तरात्मकमनवस्थितपल्यं सर्षपैरापूर्य ततः परतः पूर्वक्रमेण द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततः शलाकापल्ये द्वितीया शलाका प्रक्षिप्यते । एवमनेन क्रमेण तावद्वक्तव्यं यावत्योऽपि प्रतिशलाकापल्यशलाकापल्यानवस्थितपल्याः परिपूर्णमापूरिता भवन्ति । ततः प्रतिशलाकापल्यमुत्पाद्य निष्ठितस्थानात्परतः प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रेमेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततो महाशलाकापल्ये एका मर्षपरूपा शलाका प्रक्षिप्यते । ततः शलाकापल्यमुत्पाद्य प्रतिशलाकापल्यगतचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा । परतः प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रेमेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततः प्रतिशलाकापल्ये एका शलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनवस्थितपल्यमुत्पाद्येत्, उत्पाद्य च शलाकापल्यगतचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतो द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेत्, तावद्गच्छेद् यावदसौ निःशेषतो रिक्तीभवति । ततः शलाकापल्ये प्रथमा शलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनन्तरोक्तानवस्थितपल्यगतचरमसर्षपाक्रान्तो द्वीपः समुद्रो वा यस्तत्पर्यन्तविस्तरात्मकोऽनवस्थितपल्यः कल्पयित्वा सर्षपैरापूर्यते । ततस्तमुत्पाद्य ततो निष्ठितस्थानात्परतो द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततो द्वितीया शलाका शलाकापल्ये प्रक्षिप्यते । एवं शलाकापल्यः पूरणीयः । एवमापूरणोत्पादनप्रक्षेपपरम्परया तावद्वक्तव्यं यावन्महाशलाकापल्यप्रतिशलाकापल्यशलाकापल्यानवस्थितपल्याः सर्वेऽपि परिपूर्णशिखायुक्ताः समापूरिता भवन्ति । अत्र च यावन्तोऽनवस्थितपल्यशलाकापल्यप्रतिशलाकापल्यसर्षपप्रक्षेपव्याप्ता द्वीपसमुद्रा यावन्तश्च चतुष्पल्यसर्षपा एतावत्प्रमाणो राशिरेकरूपो न उत्कृष्टं संख्यातं भवति । तदुक्तम्—“पठमतिपल्लुद्धरिघा दीवुद्वीपल्लवचसरिसघा घ । सव्वोवि एसा रासी, रूवूणो परमसंखेज्जं ॥१॥” इति । सिद्धान्ते च यत्र कुत्रचित्संख्यातग्रहणम्, तत्र सर्वत्रापि जघन्योत्कृष्टापान्तरालवर्तिमध्यमं संख्यातं द्रष्टव्यम् । तदुक्तमनुयोगद्वारचूर्णौ सिद्धान्ते—“अत्थ जत्थ संखेज्जगगहणं तत्थ तत्थ सव्वत्थ अजहणमणुकोसथं द्दब्धं” इति । उक्तं सङ्ख्यातं, साम्प्रतमसङ्ख्यातकमुच्यते । तच्च त्रिधा, परीतासङ्ख्यातकं युक्तासङ्ख्यातकं असङ्ख्यातासङ्ख्यातकं च । पुनरप्येकैकं त्रिधा, जघन्यं मध्यमं उत्कृष्टं च । तत्र जघ-

न्यं परीतासंख्यातकं उत्कृष्टसङ्ख्यातकमेवैकरूपाधिकं द्रष्टव्यम् । यत उक्तं सूत्रे—“उक्कोसए संखेज्जयं रुव पक्खिखरां जह्णणय परितासंखेज्जयं हाइ” इति । ततः परमसंख्या- तसंख्यास्थानानि सर्वाण्यपि मध्यमपरीतासंख्यातकरूपाणि द्रष्टव्यानि यावदुत्कृष्टं परीता- संख्यातकं न भवति । तच्चैवरूपम्—जघन्यपरीतासंख्यातकसंबन्धीनि यावन्ति सर्पपलक्षणानि रूपाणि तान्येकैकशः पृथक् पृथक् संस्थाप्य, तत एकैकस्मिन् रूपे जघन्यपरीतासंख्यात- कप्रमाणो राशिर्व्यवस्थाप्यते । तेषां च राशीनां परस्परमभ्यासो विधीयते । इहैवं भावना-असत्क- ल्पनया किल जघन्यपरीतासंख्यातकराशिस्थाने पञ्च रूपाणि कल्प्यन्ते । तानि च रूपाणि पृथक् पृथक् विभ्रियन्ते । जाताः पञ्च एककाः

१	एतेपामेककानां स्थाने प्रत्येकं पञ्चपरि-
२	
३	
४	
५	

साणो राशिर्व्यवस्थाप्यते एतेषां च

१	राशीनामेवमभ्यासः क्रियते । पञ्चभि-
२	
३	
४	
५	

गुणिताः पञ्च, जाता पञ्चविंशतिः ।

१	एषा पञ्चभिरभ्यस्यते, जाते पञ्चविंशं शतं
२	
३	
४	
५	

एवमनेन क्रमेण परस्परमभ्यासे सति जातानि पञ्चविंशत्यधिकान्येकत्रिंशच्छतानि ३१२५

एवमिहापि यथोक्तजघन्यपरीतासंख्यातकराशीनां पृथक् पृथक् एकैकस्मिन् रूपे व्यवस्थापितानां परस्परमभ्यासे सति यावान् राशिरूपघते, तावान् रूपोनः सन्नुत्कृष्टं परीतासंख्यातकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यं युक्तासंख्यातकं भवति, तावत्प्रमाणा एव च समया एकस्यामा- वत्तिकायां द्रष्टव्याः । तथा च सूत्रं जघन्ययुक्तासंख्यातकाभिधानानन्तरम्—“आचल्लिया वि त- त्तिल्लिया चैव” इति । ततः परं यान्यसंख्यातसंख्यास्थानानि तानि मध्यमयुक्तासंख्यातक- स्थानानि द्रष्टव्यानि, यावदुत्कृष्टं युक्तासंख्यातकं न भवति । तच्चैवरूपम्—यानि जघन्ययुक्ता- संख्यातकराशौ रूपाणि तान्येकैकशः पृथक् पृथक् संस्थाप्य तत एकैकस्मिन् रूपे जघन्ययुक्ता- संख्यातकप्रमाणो राशिर्व्यवस्थाप्यते । तेषां च राशीनां पूर्वोक्तप्रकारेण परस्परमभ्यासे सति यावान् राशिः संपद्यते, तावान् एकरूपोनः सन्नुत्कृष्टं युक्तासंख्यातकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यमसंख्यातासंख्यातकं भवति । अन्ये पुनराहुः—जघन्ययुक्तासंख्यातकराशौ जघन्ययु- क्तासंख्याकराशिना वर्गिते सति यावान् राशिः संभवति । यथा चतुष्केन वर्गिते षोडश, तावत्प्रमाणो राशिरैकरूपोनः सन्नुत्कृष्टं युक्तासंख्यातकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यमसंख्याता- संख्यातकं भवति । ततः परं यान्यसंख्यातसंख्यास्थानानि तानि सर्वाण्यपि मध्यमासंख्याता- संख्यातकस्थानानि, यावदुत्कृष्टमसंख्यातासंख्यातकं न भवति । तत्पुनः कियत् ? इति चेद्, उच्यते, जघन्यासंख्यातासंख्यातकराशिरूपाणि पृथक्पृथक् एकैकशो व्यवस्थाप्य तत एकैकस्मिन् रूपे जघ- न्यासंख्यातासंख्यातकराशिर्व्यवस्थाप्यते । तेषां च राशीनां परस्परमभ्यासे कृते सति यावान् राशिः संभवति तावानेकरूपहीनः सन्नुत्कृष्टमसंख्यातासंख्यातकं भवति । अन्ये पुनरेवमाहुः—जघन्यासं- ख्यातासंख्यातकराशेर्वर्गो विधीयते । वर्गितस्यापि च तस्य राशेः पुनरन्यो वर्गो विधीयते । ततः

पुनरपि तस्य वर्गितवर्गितस्यान्यो वर्गो विधीयते । इत्येवं । त्रीन् वारान् वर्गो कृते सति इमान् दशाऽसंख्यातकप्रचेपान् प्रक्षिपेत् । “लोगागासपएसा, धम्माधम्मेगजीवदेसाय । दव्वड्डिया निगोया, पत्तोया चेव षोड्ढवा ॥१॥ ठिइब्धञ्जवसाया, अणुभागा जोग्ग्येपल्लिभागा । दोण्ह य समाणसमया, असंखपक्खेव दसउ त्ति ॥२॥” “दव्वड्डिया निगोया” इति द्रव्यस्थिता निगोदाः सूक्ष्माणां च वादराणां चानन्तकायिकजीवानां शरीराणि ‘पत्तोया’ इति अनन्तकायिकव्यतिरिक्ताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसाः प्रत्येकशरीरिणः । “ठिइब्धञ्जवसाया” इति स्थितिवन्धस्य कारणभूता अध्यवसायाः कपायोदयरूपाः । “ठिइअणुभागं कसायओ कुणह” इतिवचनात् । स्थितिवन्धाध्यवसायाः तेऽप्यसंख्याता एव । तथाहि-ज्ञानावरणीयस्य कर्मणस्तावजघन्यस्थितिवन्धोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः । मध्यमः स एवैकसमयाधिको द्विसमयाधिक इत्यादिरूपः । उत्कृष्टस्तु त्रिशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणः । एषां च स्थितिवन्धानां निर्वर्तका अध्यवसायाः प्रत्येकनमंख्येयलोकाकाशप्रमाणाः । “ठिइब्धे ठिइब्धे अज्जवसाणाणऽसंखिया लोगा” इति वचनान् । एवं च सत्येकस्मिन्नपि ज्ञानावरणीये कर्मण्यसंख्याताः स्थितिवन्धाध्यवसायाः प्राप्यन्ते । किं पुनः समस्तेषु कर्मसु ? इति । अनुभागाज्ञानावरणीयादिकर्मणां दलिकेषु जघन्यमध्यमादिमेदभिन्ना रसविशेषाः । तेषां निष्पादकानि यान्यध्यवसायस्थानानि तान्यनुभागवन्धाध्यवसायस्थानानि, पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् । तत्रानुभागवन्धाध्यवसायस्थानान्यनुभागशब्देनोक्तानि तानि चामंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि । “जोग्ग्येपल्लिभागो” इति योगो मनोवाक्कायनिमित्तं वीर्यम् तस्य प्रज्ञाच्छेदनकच्छेदेन प्रतिविशिष्टा निर्विभागा भागा योगच्छेदप्रतिमागाः, ते च जघन्ययोगस्थानादारम्योत्कृष्टयोगस्थानं यावत्प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा भवन्ति । “दोण्ह य समाणसमया” इति । द्वयोः समयोरुत्तर्पिण्यवसर्पिणिरूपयोः समयाः परमनिरुद्धाः कालविशेषाः, तेऽप्यसंख्याता एव । एतेषां च दशानां राशीनां प्रक्षेपे सति पुनः समस्तस्यापि राशोः पूर्ववत्त्वीन् वारान् वर्गो विधीयते । तत एतावत्प्रमाणो राशिरैकरूपोऽन उत्कृष्टमसंख्यातासंख्यातकं भवति । उवत्तमसंख्यातकम्, इदानीमनन्तकमुच्यते । तदपि त्रिधा, परीतानन्तकं युक्तानन्तकं अनन्तानन्तकं च । पुनरप्येकैकं त्रिधा, जघन्यं मध्यममुत्कृष्टं च । तत्रोत्कृष्टासंख्यातासंख्यातकराशावेकरूपे प्रक्षिप्ते सति जघन्यं परीतानन्तकं भवति । ततः परं यान्यनन्तकरूपसंख्यास्थानानि तानि मध्यमपरीतानन्तकानि द्रष्टव्यानि, यावदुत्कृष्टं परीतानन्तकं न भवति । तच्चैवम्-जघन्यपरीतानन्तकराशौ यावन्ति रूपाणि तावत्संख्याकार्णां जघन्यपरीतानन्तकराशीनां परस्परमभ्यासे कृते सति यावान् राशिर्भवति । तावानेकरूपहीनः सन्नुत्कृष्टं परीतानन्तकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यं युक्तानन्तकं भवति । एतावत्प्रमाणा अभ्यजीवाः । तथा च सूत्रं जघन्ययुक्तानन्तकसंख्याभिधानानन्तरम्-“अभव-

सिद्धिया वि तस्यिया चैव” इति । इह तावदेतावतैव पर्याप्तम् । अतः परं तु विनेयजनानु-  
ग्रहाय मध्यमयुक्तानन्तकादीन्यपि संख्यास्थानान्युपदर्शयन्ते । तत्र जघन्ययुक्तानन्तकात्पराणि  
यान्यनन्तसंख्यास्थानानि तानि मध्यमयुक्तानन्तकस्थानानि द्रष्टव्यानि, यावदुत्कृष्टं युक्तान-  
न्तकं न भवति । तच्चैवमवगन्तव्यम्—जघन्ययुक्तानन्तकराशौ यावन्ति रूपाणि तावत्प्रमाण-  
नामेव जघन्ययुक्तानन्तकराशीनामन्योन्यमभ्यासे कृते सति यावान् राशिः संपद्यते तावानेक-  
रूपोनः सन्तुत्कृष्टं युक्तानन्तकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यमनन्तानन्तकं भवति । ततः  
परं यान्यनन्तसंख्यास्थानानि तानि सर्वाण्यपि मध्यमानन्तानन्तकरूपाणि द्रष्टव्यानि । उत्कृष्टं  
त्वनन्तानन्तकं नास्त्येव । तथा च सूत्रम्—“उक्तांस्य अणंताणंतयं नत्थि” इति अत्रे पुन-  
राहुः—जघन्यानन्तानन्तकराशेस्तावतैव राशिना गुणस्वरूपो वर्गः क्रियते, ततस्तस्य वर्गितराशेः  
पुनर्वर्गस्तस्यापि भूयो वर्गः । एवं वारत्रयं वर्गं कृते सति इमे षट् प्रक्षेपाः प्रक्षिप्यन्ते—“सिद्धा  
निगोयजीवा, षणस्सई कालपुग्गला चैव । सच्चमलोगागासं, छप्पेएणंतपक्खेवा  
॥१॥” इत्यस्य व्याख्या—सर्वे एव सिद्धा अपगतसकलकर्मकलङ्काः । तथा सर्वेऽपि सूक्ष्मबाद-  
रमेदमिन्ना निगोदजीवा अनन्तकायिकसत्त्वाः, तथा सर्वे वनस्पतयः प्रत्येकानन्तवनस्पतिजीवाः,  
‘काल’ इति सर्वेऽतीतानागताः समयाः, सर्वे पुद्गलाः समस्तपुद्गलास्तिकायगताः परमाणवः,  
तथा सर्वे समस्तमलोकाकाशम्, अयं च सर्वशब्दः प्रत्येकं लिङ्गवचनपरिणामेन संबन्धनीयः, स  
च तथैव संबन्धितः । एते प्रदर्शितस्वरूपाः षडपि प्रक्षिप्यन्त इति प्रक्षेपाः, कर्मणि घञ्  
प्रक्षेपणीया राशयः पूर्वोक्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते ततः पुनरप्येतावत्प्रमाणस्य राशेः पूर्वोक्तेनैव  
क्रमेण वारत्रयं वर्गो विधीयते ततः केवलज्ञानदर्शनपर्यायाः सर्वेऽपि तत्र प्रक्षिप्यन्ते, तत उत्कृष्ट-  
मनन्तानन्तकं भवति । सूत्राभिप्रायतरचैवमप्युत्कृष्टमनन्तानन्तकं न भवतीति । प्रकृतमिदानी-  
मनुस्रियते । तत्र यथोक्तसंख्येभ्योऽभ्येभ्यः सकाक्षाद्भव्या अनन्तगुणाः । किरूपास्ते ?  
इत्याह—निर्वाणगमनार्हाः’ निर्वृतिगमनयोग्याः ॥६२॥

सामाणउवममियमिस्सवेयगक्खइगमिच्छदिट्ठीओ ।

थोवा दो संखगुणा, असंखगुणिया अणंता दो ॥६३॥

(हारि०) व्याख्या—सासादनौपशमिकमिश्रवेदकक्षायिकमिध्यादृष्टय इति द्वन्द्वः । तत्र  
स्तोकाः सासादनाः, ततो द्वावौपशमिकमिश्रदृष्टी संख्यातगुणौ, ततोऽसंख्यातगुणिता वेदकाः,  
त्रायोपशमिकसम्यग्दृष्टय इत्यर्थः, एतत्सम्यक्त्ववर्ता देवादीनामसंख्यगुणत्वात् । ततोऽनन्तगुणौ  
द्वौ क्षायिकमिध्यादृष्टी । तत्र क्षायिकेष्वनन्तत्वं सिद्धापेक्षम् मिध्यादृष्टिषु च भावितार्थमेव ।  
इति गार्थः ॥६३॥



इति सम्यक्त्वे सप्रतिपक्षेऽल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) स्तोकाः. सासादनसम्यग्दृष्टयः, तेभ्यः संख्यातगुणा औपशमिकसम्यग्दृष्टयः, केषाञ्चिदेवोपशमिकसम्यक्त्वतः प्रच्युतेः, ततः प्रच्यवमानानां च सासादत्वात् । तेभ्योऽपि चौरशमिकसम्यग्दृष्टिभ्यः, सकाशान्मिश्राः संख्यातगुणाः, तेभ्योऽपि क्षावोपशमिकसम्यग्दृष्टयोऽनसंख्यातगुणाः, तेभ्योऽपि क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽनन्तगुणाः, क्षायिकसम्यक्त्वात् सिद्धानामनन्त्यात् । तेभ्योऽपि मिथ्याद्रष्टयोऽनन्तगुणाः, सिद्धेभ्योऽपि वनस्मृतिजीवानामनन्तत्वत् । तेषां च मिथ्याद्रष्टत्वात् ॥६३॥

सन्नीथोवा ततो, अणंतमुणिया असन्निणो ह्येति ।

थोवाणाहारजिया, तदसंखगुणा, साहारा, ॥६४॥

(हारि०) व्याख्या—संज्ञिनः स्तोकाः ततोऽनन्तगुणिताः, 'असंज्ञिनः' मनोविज्ञानवि-  
कलाः पृथिवीकायिकादिसर्वजीवाः भवन्तीति, क्रियाप्रदं सर्वत्रपबहुत्वपदेषु योज्यम् ॥ इति  
संज्ञिष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा स्तोका आहारकपेक्षयाऽनन्ता अप्यन्ताहारकाः, एषां चानन्तत्वं  
प्रतिसमयोद्धृत्तभिगोदासंख्येयाभ्याप्रमाणानन्तकायिकजीवानामनन्तानां, विग्रहगत्यापन्नानां, तथा  
सिद्धानां चानन्तानां सद्भावात् । तेभ्योऽसंख्यातगुणास्तद्रसंख्यातगुणा भवन्ति, के १ इत्याह—  
सद्भाहारेण वर्तन्ते इति साहारकाः, च्युतोऽनन्तहारका विग्रहगत्यापन्ना, एकैकभिगोदासंख्येय-  
भागवृत्तिन उक्ताः, शेषाश्चाहारकाः, अतोऽनन्तहारकेभ्य आहारकाः असंख्येयगुणा एव ॥ इति  
गाथार्थः ॥६४॥

इत्युक्तमल्पबहुत्वम्; तदभिधानार्थं भणितं मार्गणार्थानगताभिधेयपदपदकम्,  
गुणस्थानकेषु जीवस्थानाद्यभिधेयपददर्शकं मार्गीयतुकामः प्रथमतस्तेष्वेव जीवस्थ  
अत्रार्थेऽन्यकर्तृकी संबन्धगोक्षेयम्-इयं जियह्वापाईयं, अरगणठणोसु अगियय  
संपह गुणदाणेसु, जीवदाणाइयं षोडशं, ॥१॥ इतः प्रस्तुताशौच्यते ॥

(मल०) स्तोकाः संज्ञिनो जीवाः, तेन च ततः  
त्वत् । तेभ्योऽसंज्ञिनः संज्ञिव्यतिरिक्ता अनन्तगुणाः, वनस  
स्तोका अनाहारकाः । विग्रहगत्यापन्नसंख्यातगतकेवलमव  
कत्वात् । तेभ्योऽसंख्यातगुणाः साहारा आहारकजीवाः ।

१ "हुति" इत्यपि पाठः । २ "उ साहारा" ॥ इत्यपि पाठः ।  
इत्यपि पाठः ।

जीवाः ते च प्राय आहारकाः. तत्कथमसंख्यातगुणा अनाहारकेभ्य आहारकाः ? इति, नैप दोषः, यतः प्रतिसमयमेकैकस्य निगोदरयोसंख्येयमार्गप्रमाणां विग्रहगत्यापन्ना जीवा लभ्यन्ते ते चानाहारकाः. तत आहारकजीवानामनाहारकजीवापेक्षयाऽसंख्यातगुणत्वमेवेति ॥६४॥

उक्तं गत्यादिषु मार्गणास्थानेषु स्वस्थानापेक्षयाऽल्पवहुत्वं । इदानीं गुणस्थानकेषु जीवस्थानानि चिन्तयन्नाह—

मिच्छे स्रुवे छ अपज सन्निपजत्तगो य सासाणे ।

सम्मे दुविहो सन्नीः सेसेसु सन्निपजत्तोः ॥६५॥

(हारि०) व्याख्या—मिथ्यादृष्टौ सर्वजीवस्थानानि भवन्तीति गम्यम् । तथा पक्षपर्याप्तक- जीवस्थानानि सूक्ष्मरहितानि संज्ञी पर्याप्तकश्चेति सप्त जीवस्थानकम् . क ? इत्याह—सासादने । तथा 'सम्मे' इति अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके, किम् ? इत्याह—'द्विविधः' पर्याप्तापर्याप्तलक्षणः संज्ञीति जीवस्थानकद्वयम् । तथा 'शेषिष्ठु' मिश्रदेशविरत्यादिष्वैकादशगुणस्थानकेषु संज्ञी पर्याप्त इत्येकं जीवस्थानकम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

साम्प्रतं गुणस्थानकेषु जीवस्थानकसमर्थनां सूचयन् योगादिसंबन्धं दर्शयंश्च तेषु तानेवाह—

(मल०) मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके सर्वाण्यपर्याप्तसूक्ष्मकेन्द्रियादीनि पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय- पर्यन्तानि जीवस्थानानि भवन्ति, मिथ्यात्वस्य सर्वेष्वप्येतेषु संभवात् । तथा सूक्ष्मकेन्द्रियव- जिताः शेषाः षट् अपर्याप्तकाः संज्ञी पर्याप्तकश्चेति सप्त जीवस्थानानि सासादनसम्यग्दृष्टि- गुणस्थानके भवन्ति । अपर्याप्तकाश्चेह करणापर्याप्तका द्रष्टव्याः न तु लब्ध्यपर्याप्तकाः, तेषु मध्ये सासादनसम्यक्त्वसहिष्योत्पादाभावात् । 'सम्मे दुविहो सन्नी' इति अविर- तसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने 'द्विविधः पर्याप्तापर्याप्तरूपतया द्विप्रकारः संज्ञी ज्ञातव्यः । इहाप्यपर्याप्तकः करणापेक्षया द्रष्टव्यः न तु लब्ध्यपर्याप्तकमध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावात् । 'शेषिष्ठु' मिश्र- देशविरत्यादिषु गुणस्थानकेषु पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणमेकमेव जीवस्थानकं द्रष्टव्यं न शेषाणि, तेषां मिश्रमावदेशसर्वविरतिप्रतिपत्त्यभावात् । न च पूर्वप्रतिपन्नमिश्रमावोऽन्येषु जीवस्थानकेषु लभ्यते—'न सम्ममिच्छो कुणह काल' इतिवचनात् ॥६५॥

उपसंहारमाह—

इय जिषठाषा गुणठाणगेसु जोगाह वोच्छमेत्ताहे ।

जीगाहारदुगूणा, मिच्छे सांसणअविरणं य ॥६६॥

इति सम्यक्त्वे सप्रतिपक्षेऽल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः, तेभ्यः संख्यन्तगुणा औपशमिकसम्यग्दृष्टयः, केषां चिदेवोपशमिकसम्यक्त्वतः प्रच्युतेः, ततः प्रच्यवमानानां च । सासादत्वात् । तेभ्योऽपि औपशमिकसम्यग्दृष्टिभ्यः सकाशान्मिश्राः संख्यातगुणाः तेभ्योऽपि क्षाकोपशमिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः तेभ्योऽपि ज्ञायिकसम्यग्दृष्टयोऽनन्तगुणाः, क्षायिकसम्यक्त्वात् सिद्धान्तान् नन्त्यात् । तेभ्योऽपि मिथ्याद्रष्टयोऽनन्तगुणाः, सिद्धेभ्योऽपि वनस्पतिजीवानामनन्तत्वात्, तेषां च मिथ्याद्रष्टत्वात् ॥ इति ॥६३॥

सन्नि योवा ततो, अणंतगुणिया असन्निणो ह्येति ।

योवाणाहारजिया, तदसंखगुणा, साहारा ॥६४॥

(हारि०) व्याख्यान—संज्ञिनः स्तोकाः ततोऽनन्तगुणिताः 'असंज्ञिनः' मनोविज्ञानवि-  
कलाः पृथिवीकायिकादिसर्वजीवा भवन्तीति, क्रियाप्रदं सर्वत्राप्यवहुत्वपदेषु योज्यम् ॥ इति ।  
संज्ञिष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा स्तोका आहारकपेक्षयाऽनन्ता अप्यनाहारकाः । एषां ज्ञानन्तत्वं  
प्रतिसमयोद्धृता रगोदासंख्येयाभागप्रमाणानन्तकार्यिकजीवानामनन्तानां, विग्रहगत्यापन्नानां तथा  
सिद्धानां चानन्तानां सद्भवत्वात् । तेभ्योऽसंख्यातगुणास्तदसंख्यातगुणा भ्रान्तिः, के १ इत्याह—  
सहाहारेण वर्तन्त इति साहाराः । यतोऽनन्तहारका विग्रहगत्यापन्ना, एकैकान् रगोदासंख्येय-  
भागवृत्तिन उक्ताः शेषासाहाराः ततोऽनाहारकेभ्य आहारकाः असंख्येयगुणा एवत इति  
गाथार्थः ॥६४॥

इत्युक्तमल्पबहुत्वम्; तदभिधानाच्च भणितं मार्गणास्थानगताभिधेयपदवर्त्मम् । अधुना  
गुणस्थानकेषु जीवस्थानाद्यभिधेयपददशकं मार्गीयतुक्कामः प्रथमतस्तेष्वेव जीवस्थानान्पारह,  
अत्रार्थेऽन्यकर्तृकी, संबन्धगोचयेयम्-इयं जियह्यपाईयं, सरगणठाणेसु मग्गियमसेसं ।  
संपह गुणदाणेसु, जीवहाणाइयं, षोडशं, ॥१॥ इतः प्रस्तुतायाश्च्यते ॥

(मल०) स्तोकाः संज्ञिनो जीवाः, देवनारकसमनस्कपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मरणाणामेव संज्ञि-  
त्वात् । तेभ्योऽसंज्ञिनः संज्ञिव्यतिरिक्ता अनन्तगुणाः, वनस्पतिकायजीवानामनन्तत्वात् । तथा  
स्तोका अनाहारकाः । विग्रहगत्यापन्नसंख्यातगतकेवलिसंस्थायिगिकैवलिसिद्धानामेवनाहार-  
कर्त्वात् । तेभ्योऽसंख्यातगुणाः साहारा आहारकजीवाः । ननु च सिद्धेभ्योऽनन्तगुणाः संसारि-

१ "हुति" इत्यपि पाठः । २ "व साहारा" ॥ इत्यपि पाठः । ३ "तेभ्योऽसंख्यातगुणाः भ्रान्तिः" इत्यपि पाठः ।

णान्यैश्च तन्नाभ्युपगम्यते तन्न सम्यगवगच्छामः. तथाविधसंप्रदायाभावात्, एतच्च प्रागेवोक्त-  
मिति । त एवानन्तरोक्ता दश योगा वैक्रियमिश्रयुताः सन्त एकादश देशयत्ने' देशविरति-  
गुणस्थानके भवन्ति, अम्बहस्येव वैक्रियलब्धिमतो देशविरतस्य वैक्रियारम्भमंभवात् । तथा  
'प्रमत्ते' प्रमत्तगुणस्थानके त एवानन्तरोक्ता एकादश योगा 'साहारद्विकाः' आहारकद्विक-  
सहिताः मन्तस्त्रयोदश भवन्ति ॥६७॥

एकारस अपमत्ते, मणवइआहारउरलवेउव्वा ।

अप्पुव्वाइसु पंचसु, नव ओरालो मणवई य ॥६८॥

हारि०) व्याख्या—एकादश योगाः, क ? इत्याह—अप्रमत्ते, कीदृशास्ते ? इत्याह—मनो-  
वागाहारकौदारिकवैक्रियाणीति द्वन्द्वः । तत्रौदारिकमिश्रमपर्याप्तकतिर्यङ्मनुष्याणां केवलिसमुद्धाते  
च । कर्मणं तु विग्रहगतौ तिर्यगादीनां केवलिसमुद्धाते च । तथाऽऽहारकमिश्रं प्रमत्तयतेः । वैक्रि-  
यमिश्रं तु देवादीनामिति । एते चत्वारो योगा यथायोगमेषु भवन्ति, अतोऽप्रमत्ते प्रोक्ता  
एवैकादश योगा भवेयुरिति । तथाऽपूर्वादिषु निवृत्तिवादरगुणस्थानकादिषु पञ्चसु क्षीणमोहा-  
न्तेष्वित्यर्थः, कियन्तो योगाः ? इत्याह—नवेति संख्यौदारिकमनोवचांसि चेति द्वन्द्वः, औदारि-  
ककाययोगश्चत्वारि मर्नांसि चत्वारि वचनानि । इति गाथार्थः ॥६८॥

साम्प्रतं योगान् समर्थयन्नुपयोगसंबन्धं दर्शयन्नाह—

(मल०) चतुर्विधवाग्योगचतुर्विधमनोयोगाहारकौदारिकवैक्रियलक्षणा एकादश योगाः अप्र-  
मत्ते' अप्रमत्तगुणस्थानके भवन्ति । यत्तु वैक्रियमिश्रमाहारकमिश्रं च तन्न संभवति, तद्वि वैक्रिय-  
स्याहारकस्य च प्रारम्भकाले भवति, तदानीं लब्धुपजीवनादिनौत्सुक्यभावतः प्रमादसंभव इति ।  
तथा औदारिकमिश्रमपर्याप्तवस्थायाम्, कर्मणं त्वपान्तरालगतौ, यद्वोमेऽपि केवलिसमुद्धाताव-  
स्थायाम्, ततस्तेऽपीह पूर्वत्र च गुणस्थानके न संभवत इति । 'अप्पुव्वाइसु' इत्यादि ।  
अपूर्वादिष्वपूर्वकरणादिषु क्षीणमोहपर्यन्तेषु पञ्चसु गुणस्थानकेष्वौदारिकं चतुर्विधं मनश्चतुर्विधा  
वाग् इत्येते नव योगा भवन्ति, न शेषाः, अत्यन्तविशुद्धतया तेषां वैक्रियाहारकारम्भासंभवात्,  
तत्र स्थितानां च स्वभावत एव श्रेण्यारोहाभावात् । औदारिकमिश्रकर्मणकाययोगाभावस्तु  
पूर्वोक्तयुक्तेरेवावसेय इति ॥६८॥

चरमाइमणवइदुगकम्मुरलदुगं'ति जोगिणो सत्त ।

गयजोगो थ अजोगी, वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(हारि०) व्याख्या—मनश्च वाक् च तयोद्विके, मनोवाग्द्विके चरमं चान्त्यं, आदिमं चाद्यं चर-

(हारि०) व्याख्या—इति जीवस्थानानि गुणस्थानकेषुक्तानि । इति शेषो दृश्यः ॥१॥ इतो योगादि वक्ष्ये. इति गाथाद्वेन संबन्धोऽभिहितः । माम्प्रतं मन्धितमेवार्थमाह—योगा उक्तस्वरूपा भवन्ति । किमशेषा अपि ? न इत्याह—आहारकद्विकोनास्त्रयोदशेत्यर्थः, क ? इत्याह—‘मिच्छे’ इति मिथ्यादृष्टौ सामादनेऽविरते च गाथार्थः ॥६६॥

तथा—

(मल०) ‘इति’ एवमुपदक्षितेन प्रकारेण जीवस्थानकानि गुणस्थानकेषु द्रष्टव्यानि । ‘एसाहे’ इति इत ऊर्ध्वं सम्प्रति ‘योगादि’ आदिशब्दाद्दुपयोगादिपरिग्रहः, ‘वक्ष्ये’ अभिधास्ये । तत्र योगान् तावदाह—‘जोगा’ इत्यादि । योगा आहारकद्विकेन आहारकतन्मिश्रलक्षणेन ऊना रहिताः शेषास्त्रयोदश मिथ्यादृष्टौ सासादने अविरतौ च भवन्ति । मिथ्यादृष्टादिगुणस्थानकप्रये हि संज्ञिपञ्चेन्द्रियोऽपि लभ्यते, तस्य च यथोक्तास्त्रयोदशापि योगाः संभवन्ति । यथाआहारकद्विकं तच्चतुर्दशपूर्विण एव । तदुक्तम्—‘आहारदुर्गं जायह चउदसपुञ्जिस्स’ इति । न च मिथ्यादृष्ट्यादौ चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभव इति ॥६६॥

उरलविउव्व'वडमणा दस मीसे ते विउव्वमीसजुया ।

देमजए एकारस साहारदुगा पमत्ते ते ॥६७॥

(हारि०) व्याख्या—औदारिकवैक्रियवाग्मनासीति द्वन्द्वः, इति दश योगा मिश्रे—न सम्मिच्छो कुणह कालं” इतिवचनात् । कर्मणौदारिकवैक्रियमिश्रत्रिकं न भवति, आहारकद्विकं तु यतेरेव भवति, अतो मिश्रे दश योगा इति भावना । तथा ते पूर्वोक्ता दश योगा वैक्रियमिश्रयुता एकादशेत्यर्थः क ? इत्याह—देशयते । तथा सहाहारकद्विकेन आहारकशरीरतन्मिश्रलक्षणेन वर्तन्त इति साहारकद्विकास्ते पूर्वोक्ता एकादश त्रयोदशेत्यर्थः, क ? इत्याह—‘प्रमत्ते’ षष्ठगुणस्थानके । इति गाथार्थः ॥६७॥

तथा—

(मल०) औदारिकवैक्रियचतुर्विधवाग्योगचतुर्विधमनोयोगलक्षणा दश योगा मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्टौ भवन्ति न शेषाः । तथा साहारकद्विकस्यासंभवः पूर्वोक्तयुक्तेरेव, कर्मणशरीरं त्वपान्तरालगतौ संभवति, अस्य च मरणासंभवेनापान्तरालगत्यसंभवस्ततस्तस्याप्यसंभवः, अत एवौदारिकवैक्रियमिश्रेऽपि न संभवतः, तयोरपर्याप्तावस्थाभावित्वात् . तस्यां चावस्थायां सम्यग्मिथ्यात्वाभावात् । ननु च मा भूदेवनारकसंबन्धि वैक्रियमिश्रम्, यत्पुनर्मनुष्यतिरश्चां सम्यग्मिथ्यादृष्टां वैक्रियलब्धिमतां वैक्रियकरणसंभवेन तदारम्भकाले वैक्रियमिश्रं भवति तत्कस्मान्नाभ्युपगम्यते ? उच्यते, तेषां वैक्रियकरणासंभवतोऽन्यतो वा यतः कुतश्चित्कारणादाचार्ये-

गान्यैश्च तन्नाभ्युपगम्यते तन्न सम्यगवगच्छामः. तथाविधसंप्रदायाभावात्, एतच्च प्रागेवोक्त-  
मिति । त एवानन्तरोक्ता दश योगा वैक्रियमिश्रयुताः सन्त एकादश 'देशयते' देशविरति-  
गुणस्थानके भवन्ति, अम्बहस्येव वैक्रियलब्धिमतो देशविरतस्य वैक्रियारम्भमंभवात् । तथा  
'प्रमत्ते' प्रमत्तगुणस्थानके त एवानन्तरोक्ता एकादश योगा 'साहारद्विकाः' आहारकद्विक-  
सहिताः मन्तस्त्रयोदश भवन्ति ॥६७॥

एकारस अपमत्ते, मणवइआहारउरलवेउव्वा ।

अप्पुव्वाइसु पंचसु, नव ओरालो मणवई य ॥६८॥

हारि०) व्याख्या-एकादश योगाः, क ? इत्याह-अप्रमत्ते, क्रीदशास्ते ? इत्याह-मनो-  
वागाहारकौदारिकवैक्रियाणीति द्वन्द्वः । तत्रौदारिकमिश्रमपर्याप्तकतिर्यङ्मनुष्याणां केवलिसमृद्धाते  
च । कर्मणं तु विश्रहगतौ तिर्यगादीनां केवलिसमृद्धाते च । तथाऽऽहारकमिश्रं प्रमत्तयतेः । वैक्रि-  
यमिश्रं तु देवादीनामिति । एते चत्वारो योगा यथायोगमेषु भवन्ति, अतोऽप्रमत्ते प्रोक्ता  
एवैकादश योगा भवेयुरिति । तथाऽपूर्वादिषु निवृत्तिबादरगुणस्थानकादिषु पञ्चसु क्षीणमोहा-  
न्तेष्वित्यर्थः, कियन्तो योगाः ? इत्याह-नवेति संख्यौदारिकमनोवचांसि चेति द्वन्द्वः, औदारि-  
ककाययोगश्चत्वारि मनांसि चत्वारि वचनानि । इति गाथार्थः ॥६८॥

साम्प्रतं योगान् समर्थयन्नुपयोगसंबन्धं दर्शयन्नाह—

(मल०) चतुर्विधवाग्योगचतुर्विधमनोयोगाहारकौदारिकवैक्रियलक्षणा एकादश योगाः अप्र-  
मत्ते' अप्रमत्तगुणस्थानके भवन्ति । यत्तु वैक्रियमिश्रमाहारकमिश्रं च तन्न संभवति, तद्वि वैक्रिय-  
स्याहारकस्य च प्रारम्भकाले भवति, तदानीं लब्ध्युपजीवनादिनौत्सुक्यभावतः प्रमादसंभव इति ।  
तथा औदारिकमिश्रमपर्याप्तवस्थायाम्, कर्मणं त्वपान्तरालगतौ, यद्वोमेऽपि केवलिसमृद्धाताव-  
स्थायाम्, ततस्तेऽपीह पूर्वत्र च गुणस्थानके न संभवत इति । 'अप्पुव्वाइसु' इत्यादि ।  
अपूर्वादिष्वपूर्वकरणादिषु क्षीणमोहपर्यन्तेषु पञ्चसु गुणस्थानकेष्वौदारिकं चतुर्विधं मनश्चतुर्विधा  
वाग् इत्येते नव योगा भवन्ति, न शेषाः, अत्यन्तविशुद्धतया तेषां वैक्रियाहारकारम्भासंभवात्,  
तत्र स्थितानां च स्वभावत एव श्रेण्यारोहाभावात् । औदारिकमिश्रकर्मणकाययोगाभावस्तु  
पूर्वोक्तयुक्तेरेवावसेय इति ॥६८॥

चरमाइममणवइदुगकम्मुरलदुगं'ति जोगिणो सत्त ।

गयजोगो य अजोगी, वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(हारि०) व्याख्या-मनश्च वाक् च तयोद्विके, मनोवाग्द्विके चरमं चान्त्यं, आदिमं चाद्यं चर-

मादिमे, ते च ते मनोवाग्द्विके च चरमादिममनोवाग्द्विके, चरमादिमं च मनोऽसत्यामृषं सत्यं चेत्यर्थः, चरमादिमा च वागसत्यामृषा सत्या चेत्यर्थः, ततश्चरमादिमनोवाग्द्विके च कर्मणं चौदारिकद्विकं चौदारिकशरीरतन्मिश्रलक्षणं चरमादिसमनोवाग्द्विककर्मणौदारिकद्विकम्, इत्येते सप्तैति संबन्धः, योगा भवन्ति । कस्य ? इत्याह—'योगिनः' सयोगिकेवलिनः । तत्र मनोद्विकं दूरदेशमनःपर्याय-ज्ञानादिषु द्रव्यमनोव्यापारणात् । वाग्द्विकं देशनादावुपयोगात् । कर्मण औदारिकमिश्रश्च केवलि-समुद्धातेऽष्टसामयिके यथासंभवमौदारिकश्च चङ्कमणादौ द्रष्टव्यं इति, तथा गतयोगश्चायोगीति । इति योजिता योगा गुणस्थानकेषु ११ वक्ष्येऽभिधास्येऽत ऊर्ध्वं कान् ? उपयोगान् प्राक्प्रति-पादितस्वरूपान्, कियतः ? द्वादश गुणस्थानकेष्विति प्रक्रमः । इति गाथार्थः ॥६६॥

- प्रस्तावितमेवाह—

(मल०) चरमादिसमनो मनोद्विकं चरमादिसमनं च वाग्द्विकं कर्मणमौदारिकतन्मिश्र-लक्षणमौदारिकद्विकं चेति सप्त योगाः 'योगिनः' सयोगिकेवलिनो भवन्ति-तत्र चरमं मनोऽ-सत्यामृषा आदिमं सत्यम् एवं चरमादिमे वाचावपि द्रष्टव्ये । कर्मणौदारिकमिश्रे तु समुद्धा-तावस्थायामिति । 'गयजोगो' अजोगो' इति अयोगी अयोगिकेवली व्यातयोग एव भवति, योगोभावनिबन्धनस्त्रीदयोगित्वावस्थाययाः. तुशब्द एवकारार्थः तदेवमभिहितं गुणस्थानकेषु योगाः । साम्प्रतमेतेष्वेवोपयोगानभिधातुकाम आह—'वोच्छ्रमभ्यो' इत्यादि. । वक्ष्येऽभिधा-स्येऽत ऊर्ध्वं गुणस्थानकेषु द्वादश उपयोगान् ॥६६॥

तानेवाह—

अक्षरवुचक्षुदंमणमन्त्राणतिगं च मिच्छमासाणे ।

अविरयसम्मे देसे, तिनाणदंसणतिगंति छे उ ॥७०॥

(हारि०) व्याख्या—दर्शनशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धादचक्षुर्दर्शनचक्षुर्दर्शनमिति द्वन्द्वः, तथाऽज्ञानत्रिफं चेति पञ्चोपयोगाः, कयोः ? इत्याह—वचनव्यत्ययान्मिथ्यादृष्टिसासादनयोरिति द्वन्द्वः । तथाऽविरतसम्यक्त्वे 'देसे' देशविरते च, किम् ? इत्याह—त्रिज्ञानदर्शनत्रिकमिति कर्म-धारयतत्पुरुषगर्भः समाहारद्वन्द्वः, इत्येते षडुपयोगाः । इति गाथार्थः ॥७०॥

तथा—

(मल०) अक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनं अज्ञानत्रिकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविमङ्गलक्षणमित्येते पञ्चोपयोगा मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानकयोर्भवन्ति न शेषाः, सम्यक्त्वविरत्यभावात् । तथा-ऽविरतसम्यग्दृष्टौ देशविरते च त्रीणि ज्ञानानि मतिश्रुतावधिलक्षणानि, दर्शनत्रिकं चक्षुरचक्षुर-वधिदर्शनलक्षणमित्येते षडुपयोगा भवन्ति न शेषाः, मिथ्यात्वसर्वविरत्यभावात् ॥७०॥

मीसे 'ते चिद्य मीसा सत् प्रमत्ताइसु समणनाणा ।

केवलियनाणदंसणउवओगा जोमजोमीसु ॥७१॥

(हारि०) व्याख्या-मिश्रगुणस्थानके त एव पूर्वोक्ताः षडुपयोगा अज्ञानमिश्राः । तथा संतोषयोगाः, केष्टु ? इत्याह-प्रमत्तयत्यादिषु क्षीणमोहान्तेषु सप्तगुणस्थानकेषु, कीदृशाः ? समनःपर्यायज्ञानाः । 'ते चिद्य' इत्यत्रापि संनन्धात् एव पूर्वोक्ताः षडुपयोगाः समनःपर्यायज्ञानाः सन्तेत्यर्थः । तथा केवलिकज्ञानदर्शनोपयोगाविति कर्मधारयः, कयोः ? इत्याह-'योग्ययोगिनोः' सयोग्ययोगिकेवल्लिगुणस्थानकयोर्भवत् इति शेषः । इति शार्थार्थः ॥७१॥

इत्युक्ता उपयोगा गुणस्थानकेषु । साम्प्रतमिहैवांगमोक्तानामपि केषांचिदर्थानामनधिकृतत्वमाह—

(मल०) 'मिश्रे' मिश्रगुणस्थानके त एव पूर्वोक्ताः षडुपयोगा अज्ञानमिश्रा द्रष्टव्याः, तस्योभयदृष्टिपातित्वात् । केवलं कदाचित्सम्यक्त्वबाहुल्येन ज्ञानबाहुल्यम्, कदाचिच्च मिथ्यात्वबाहुल्येनाज्ञानबाहुल्यम्, समकक्षतायां तुभयोरपि समतेति । अस्मिन् गुणस्थानके यदवधिदर्शनमुक्तं तत्सैद्धान्तिकमतापेक्षया द्रष्टव्यमित्युक्तं प्राक् । तथा प्रमत्तादिषु क्षीणमोहपर्यन्तेषु सप्तसु गुणस्थानकेषु त एव पूर्वोक्ताः षडुपयोगाः 'समणनाणा' इति समनःपर्यायज्ञानाः सन्तः सप्त भवन्ति न शेषाः, मिथ्यात्वपातिकर्मक्षयाभावात् । तथा केवलिकज्ञानदर्शनलक्षणां षडुपयोगी सुयोगिकेवल्लिनि अयोगिकेवल्लिनि च गुणस्थानके भवतो न शेषा दश ज्ञानदर्शनलक्षणाः, तदुच्छेदेनैव केवलज्ञानदर्शनोत्पत्तेः । 'नहमि उ छाउमत्थिए नाणे' इतिवचनात् ॥७१॥

तदेवमुक्ता गुणस्थानकेषुपयोगाः । साम्प्रतं यदिह प्रकरणे सूत्रामिमत्तमपि कर्मग्रन्थिकाभिप्रायानुसरणतो नाधिकृतं तद्दर्शयन्माह—

सासणभावे नाणं विउन्विगाहारगे उरलमिस्सं ।

नेगिंदिसु सासाणो नेहाट्टिगयं सुयमयंपि ॥७२॥

(हारि०) व्याख्या 'सासादनभावे' सासादने सति ज्ञानमित्यादि 'श्रुतमतमपि' सिद्धान्तामिप्रेतमपि 'न' नैव 'इह' अस्मिन् प्रकरणे 'अधिकृतं' अस्युपगतम्, किन्त्वज्ञानमेवाधिकृतं कर्मग्रन्थामिप्रायस्येहाश्रितत्वादिति संबन्धः । तथा 'वैक्रियाहारके' वैक्रियाहारककरणे औदारिकमिश्रमित्यपि नाधिकृतम्, किन्तु वैक्रियमिश्रमाहारकमिश्रं चाधिकृतम्, तस्यैव प्रधा-



नत्वात् । तथा 'न' नैवेकेन्द्रियेषु 'सासाणो' इति लिङ्गव्यत्ययात्सासादनमिति न चाधिकृतम्, किन्त्वेकेन्द्रियेषु सासादनमधिकृतं तत एव हेतोः । इति गाथार्थः ॥७२॥

इतो लेश्यास्तेष्वेवाभिधित्सुराह—

(मल०) 'सासादनभावे' सासादनसम्यग्दृष्टित्वे सति ज्ञानं भवति, नाज्ञानमिति । श्रुत-  
मतमपि' सूत्रसम्मतमपि, तथाहि—वेङ्कदियाणं भते ! किं नाणो अन्नाणी ? गोयमा !  
णाणीवि अण्णाणीवि । जे नाणो ते नियमा दुनाणी । तंजहा—आभिणिषोहिय-  
नाणी सुयणाणी । जे अण्णाणी ते वि नियमा दुअन्नाणी । तंजहा—मइअन्नाणी  
सुयअन्नाणी य ॥" इत्यादि सूत्रे द्वीन्द्रियादीनां ज्ञानित्वमभिहितम्, तच्च सासादनसम्यक्त्वा-  
पेक्षयैव न शेषसम्यक्त्वापेक्षया, असंभवात् । उक्तं च प्रज्ञापनाटीकायाम्—वेङ्कदियस्स दो  
णाणी कहं लब्भंति ? अण्णइ सासायणं पडुच्च तस्सापज्जत्तयस्स दो णाणा  
लब्भंति" इति । ततः सासादनभावेऽपि ज्ञानं सूत्रे सम्मतमेव, तच्चेत्थं सम्मतमपि नेह  
प्रकरणेऽधिकृतं किंत्वज्ञानमेव, कर्मग्रन्थिकाभिप्रायस्यानुसरणात् । तदभिप्रायश्चायम्—सासादनस्य  
मिथ्यात्वाभिमुखतया तत्सम्यक्त्वस्य मलीमसत्त्वेन तन्निवन्धनस्य ज्ञानस्यापि मलीमसत्त्वाद्ज्ञान-  
रूपतेति । तथा सूत्रे वैक्रिये आहारके चारम्यमाणे तेन प्रारम्यमाणेन सहौदारिकस्य मिश्री-  
मवनात्, औदारिकमिश्रपुक्तम् । तथा चाह प्रज्ञापनाटीकाकारः—यदा पुनरौदारिकशरीरी वैक्रि-  
यलब्धिसंपन्नो मनुष्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको वा पर्याप्तवाद्द्रवायुकायिको वा वैक्रियं करोति  
तदौदारिकशरीरयोग एव वर्तमानः प्रदेशान् विक्षिप्य वैक्रियशरीरयोग्यान् पुद्गलानादाय  
यावद्वैक्रियशरीरपर्याप्त्या पर्याप्तिं न गच्छति तावद्वैक्रियेण मिश्रता व्यपदेशश्चौदारिकेण  
तस्य प्रधानत्वात् । एवमाहारकेणापि सह मिश्रता द्रष्टव्या । आहारयति च तेनैवेति  
तेनैव व्यपदेश इति । परित्यागकाले च वैक्रियस्याहारकस्य च यथाक्रमं वैक्रिय-  
मिश्रमाहारकमिश्रं च । उक्तं च प्रज्ञापनाटीकायामेवाहारकमधिकृत्य—यदाहारकशरीरी भूत्वा  
कृतकार्यः पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाऽऽहारकस्य प्रधानत्वादौदारिकप्रवेशं प्रति व्यापारभावात्  
परित्यज्यते, यावत्सर्वथैवाहारकं तदौदारिकेण सह मिश्रतेत्याहारकमिश्रता इत्याहारकमिश्रशरीर-  
कायप्रयोग इति । तच्चेत्थम्—वैक्रियाहारकारम्भकाले औदारिकमिश्रं सूत्रेऽभिहितमपि नेह  
प्रकरणेऽधिकृतं कर्मग्रन्थिकैः, गुणविशेषप्रत्ययसमुत्थलब्धिविशेषकारणतया प्रारम्भकाले परित्या-  
गकाले च वैक्रियस्याहारकस्य च प्राधान्यविवक्षया वैक्रियमिश्रस्याहारकमिश्रस्यैव चाभिधा-  
नात् तदभिप्रायस्य चेहानुसरणात् । तथा नैकेन्द्रियेषु 'सासाणो' इति भावप्रधानोऽयं निर्देशः  
सासादनभावः सूत्रे मतः, अन्यथा द्वीन्द्रियादीनामिवैकेन्द्रियाणामपि ज्ञानित्वमुच्येत न चोच्यते,  
किन्तु विशेषतः प्रतिपिच्यते । तथाहि—'एङ्गदियाणं भते ! किं नाणी अण्णाणी ?

गोयमा ! नो नाणी निघमा अन्नाणी” इति । स चेत्यं सासादनभावप्रतिषेधः सूत्रे मतोऽपि केनचित्कारणेन कर्मग्रन्थिकैर्नाभ्युपैयत, इतीहापि नाधिक्रियते तदभिप्रायस्यैवेह प्रायोऽनुसरणादिति । ‘नेहाहिगयं सुयमयंपि’ इत्येतद्विभक्तिपरिणामेन प्रतिपादं संबन्धनीयं तथैव च संबन्धितमिति ॥७२॥

गुणस्थानकेष्वेव लेश्या अभिधित्सुराह—

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊपम्हा उ अप्पमत्तंता ।

सुक्का जाव सजोगी निरुद्धलेसो अजोगि त्ति ॥७३॥

(हारि०) व्याख्या—आद्यास्तिस्रो लेश्याः प्रमत्तान्ताः प्रमत्तात्परतो न भवन्तीति प्रमत्तं यावत्षडपीत्यर्थः । तथा तैजसीपद्मे त्वप्रमत्तान्तेऽप्रमत्तात्परतस्ते न भवतोऽप्रमत्ते अन्त्यास्तिस्रो लेश्या इत्यर्थः, ततोऽप्रमत्तादूर्ध्वं ‘शुक्का’ शुक्ललेश्यैकैवेत्यर्थो यावत् सयोगिगुणस्थानम् । तथा ‘निरुद्धलेश्यः’ अलेश्य इत्यर्थः, कोऽसौ ? इत्याह—‘अयोगी’ अयोगिकेवली । इतिशब्दो लेश्याद्वारसमाप्त्यर्थे । इति गार्थार्थः ॥७३॥

इत्युक्ता लेश्या गुणस्थानकेषु ४ । साम्प्रतं बन्धहेतवः, ते च मूलमेदतश्चत्वार उत्तर-  
मेदतः सप्तपञ्चाशदिति तानुभयथाऽभिधित्सुराह—

(मल०) आद्यास्तिस्रो लेश्याः ‘प्रमत्तान्ताः’ प्रमत्तगुणस्थानकपर्यन्ता भवन्ति, प्रमत्ता-  
त्परतो न भवन्तीति यावत् । तेजःपद्मलेश्ये तु ‘अप्रमत्तान्ते’ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्प्रभृति  
यावदप्रमत्तगुणस्थानकं तावद्भवत इत्यर्थः । ‘सुक्का जाव सजोगी’ इति मिथ्यादृष्टिगुणस्था-  
नकात्प्रभृति यावत्सयोगिकेवलिगुणस्थानकं तावत् ‘शुक्का’ शुक्ललेश्या भवति । ‘निरुद्धलेसो  
अजोगी त्ति’ अयोगी अयोगिकेवली ‘निरुद्धलेश्यः’ अपगतलेश्यो भवति । इतिवाक्यपरि-  
समाप्तौ । इह लेश्यानां प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि । ततो  
मन्दाध्यवसायस्थानापेक्षया शुक्ललेश्यादीनामपि मिथ्यादृष्ट्यादौ कृष्णलेश्यादीनामपि प्रमत्त-  
गुणस्थानकेऽपि संभवो न विरुध्यत इति ॥७३॥

तदेवमुक्ता गुणस्थानकेषु लेश्याः । साम्प्रतं बन्धहेतवो ववतुमवसरप्राप्ताः, ते च मूलमे-  
दतश्चत्वार उत्तरमेदतश्च सप्तपञ्चाशत्, एतानुभयथाऽप्यभिधित्सुराह—

बंधस्स मिच्छअविरइकसायजोग त्ति हेयवो चउरो ।

पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥७४॥

(हारि०) व्याख्या—मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः, ‘इति’ अमुना प्रकारेण बन्धस्य मूल-

नत्वात् । तथा 'न' नैवैकेन्द्रियेषु 'सासाणो' इति लिङ्गव्यत्ययात्सासादनमिति न चाधिकृतम् , किन्वेकेन्द्रियेषु सासादनमधिकृतं तत एव हेतोः । इति गाथार्थः ॥७२॥

इतो लेश्यास्तेष्वेवाभिधित्सुराह—

(मल०) 'सासादनभावे' सासादनसम्यग्दृष्टित्वे मति ज्ञानं भवति, नाज्ञानमिति । श्रुत-  
मममपि' सूत्रसम्मतमपि, तथाहि—वेद्दियाणं मते ! किं नाणो अन्नाणो ? गोयमा !  
णाणीवि अण्णाणीवि । जे नाणो ते नियमा दुनाणो । तंजहा—आमिणिबोहिय-  
नाणी सुयणाणी । जे अण्णाणो ते वि नियमा दुअन्नाणी । तंजहा—मद्दअन्नाणी  
सुयअन्नाणी य ॥" इत्यादि सूत्रे द्वीन्द्रियादीनां ज्ञानित्वमभिहितम् , तच्च सासादनमस्यक्त्वा-  
पेक्षयैव न शेषसम्यक्त्वापेक्षया, असंभवात् । उक्तं च प्रज्ञापनाटीकायाम्—वेद्दियस्स दो  
णाणो क्हं लब्भंनि ? भण्णह सासायणं पडुष्व तस्सापज्जसयस्स दो णाणा  
लब्भंति" इति । ततः सासादनभावेऽपि ज्ञानं सूत्रे सम्मतमेव, तच्चेत्थं सम्मतमपि नेह  
प्रकरणेऽधिकृतं किंत्वज्ञानमेव, कर्मग्रन्थिकाभिप्रायस्यानुसरणात् । तदभिप्रायश्चायम्—सासादनस्य  
मिथ्यात्वामिमुखतया तत्सम्यक्त्वस्य मलीमसत्त्वेन तन्निवन्धनस्य ज्ञानस्यापि मलीमसत्त्वादज्ञान-  
नरूपतेति । तथा सूत्रे वैक्रिये आहारके चारम्यमाणे तेन प्रारम्यमाणेन सहौदारिकस्य मिश्री-  
भवनात् , औदारिकमिश्रपुक्तम् । तथा चाह प्रज्ञापनाटीकाकारः—यदा पुनरौदारिकशरीरी वैक्रि-  
यलब्धिसंपन्नो मनुष्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको वा पर्याप्तवाद्दरवायुकार्यिको वा वैक्रियं करोति  
तदौदारिकशरीरयोग एव वर्तमानः प्रदेशान् विक्षिप्य वैक्रियशरीरयोग्यान् पुद्गलानादाय  
यावद्द्वैक्रियशरीरपर्याप्त्या पर्याप्तिं न गच्छति तावद्द्वैक्रियेण मिश्रता व्यपदेशश्चौदारिकेण  
तस्य प्रधानत्वात् । एवमाहारकेणापि सह मिश्रता द्रष्टव्या । आहारयति च तेनैवेति  
तेनैव व्यपदेश इति । परित्यागकाले च वैक्रियस्याहारकस्य च यथाक्रमं वैक्रिय-  
मिश्रमाहारकमिश्रं च । उक्तं च प्रज्ञापनाटीकायामेवाहारकमधिकृत्य—यदाहारकशरीरी भूत्वा  
कृतकार्यः पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाऽऽहारकस्य प्रधानत्वादौदारिकप्रवेशं प्रति व्यापारमावाप्त  
परित्यज्यते, यावत्सर्वथैवाहारकं तदौदारिकेण सह मिश्रतेत्याहारकमिश्रता इत्याहारकमिश्रशरीर-  
कायप्रयोग इति । तच्चेत्थम्—वैक्रियाहारकारम्भकाले औदारिकमिश्रं सूत्रेऽभिहितमपि नेह  
प्रकरणेऽधिकृतं कर्मग्रन्थिकैः, गुणविशेषप्रत्ययसमुत्थलब्धिविशेषकारणतया प्रारम्भकाले परित्या-  
गकाले च वैक्रियस्याहारकस्य च प्राधान्यविवक्षया वैक्रियमिश्रस्याहारकमिश्रस्यैव चाभिधा-  
नात् तदभिप्रायस्य चेहानुसरणात् । तथा नैवेकेन्द्रियेषु 'सासाणो' इति भावप्रधानोऽयं निर्देशः  
सासादनभावः सूत्रे मतः, अन्यथा द्वीन्द्रियादीनामिवैकेन्द्रियाणामपि ज्ञानित्वमुच्येत न चोच्यते,  
किन्तु विशेषतः प्रतिपिच्यते । तथाहि—'पण्डियाणं मते ! किं नाणी अण्णाणी ?

गोयमा ! नो नाणी निघमा अन्नाणी” इति । स चेत्यं सासादनभावप्रतिषेधः सूत्रे मतो-  
ऽपि केनचित्कारणेन कर्मग्रन्थिकैर्नाभ्युपैयत, इतीहापि नाधिक्रियते तदभिप्रायस्यैवेह प्रायो-  
ऽनुसरणादिति । ‘नेहाहिगयं सुयमयंपि’ इत्येतद्विभक्तिपरिणामेन प्रतिपादं संबन्धनीयं तथैव  
च संबन्धितमिति ॥७२॥

गुणस्थानकेष्वेव लेश्या अभिधित्सुराह—

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊपम्हा उ अप्पमत्तंता ।

सुक्का जाव सजोगी निरुद्धलेसो अजोगि त्ति ॥७३॥

(हारि०) व्याख्या—आद्यास्तिस्रो लेश्याः प्रमत्तान्ताः प्रमत्तात्परतो न भवन्तीति प्रमत्तं  
यावत्त्वद्वयीत्यर्थः । तथा तेजसीपद्मे त्वप्रमत्तान्तेऽप्रमत्तात्परतस्ते न भवतोऽप्रमत्ते अन्त्यास्तिस्रो  
लेश्या इत्यर्थः, । ततोऽप्रमत्ताद्ध्वं ‘शुक्का’ शुक्ललेश्यैकैवेत्यर्थो यावत् सयोगिगुणस्थानम् ।  
तथा ‘निरुद्धलेश्यः’ अलेश्य इत्यर्थः, कोऽसौ ? इत्याह—‘अयोगी’ अयोगिकेवली । इतिशब्दो  
लेश्याद्वारसमाप्त्यर्थे । इति गार्थार्थः ॥७३॥

इत्युक्ता लेश्या गुणस्थानकेषु ४ । साम्प्रतं बन्धहेतवः, ते च मूलभेदतश्चत्वार उत्तर-  
मेदतः सप्तपञ्चाशदिति तानुमयथाऽभिधित्सुराह—

(मल०) आद्यास्तिस्रो लेश्याः ‘प्रमत्तान्ताः’ प्रमत्तगुणस्थानकर्पर्यन्ता भवन्ति, प्रमत्ता-  
त्परतो न भवन्तीति यावत् । तेजःपद्मलेश्ये तु ‘अप्रमत्तान्ते’ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्प्रभृति  
यावदप्रमत्तगुणस्थानकं तावद्भवत इत्यर्थः । ‘सुक्का जाव सजोगी’ इति मिथ्यादृष्टिगुणस्था-  
नकात्प्रभृति यावत्सयोगिकेवल्लिगुणस्थानकं तावत् ‘शुक्का’ शुक्ललेश्या भवति । ‘निरुद्धलेसो  
अजोगी त्ति’ अयोगी अयोगिकेवली ‘निरुद्धलेश्यः’ अपगतलेश्यो भवति । इतिर्वाक्यपरि-  
समाप्तौ । इह लेश्यानां प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि । ततो  
मन्दाध्यवसायस्थानापेक्षया शुक्ललेश्यादीनामपि मिथ्यादृष्ट्यादौ कृष्णलेश्यादीनामपि प्रमत्त-  
गुणस्थानकेऽपि संभवो न विरुध्यत इति ॥७३॥

तदेवमुक्ता गुणस्थानकेषु लेश्याः । साम्प्रतं बन्धहेतवो ववतुमवसरग्राप्ताः, ते च मूलभे-  
दतश्चत्वार उत्तरमेदतश्च सप्तपञ्चाशत्, एतानुमयथाऽप्यभिधित्सुराह—

बंधस्स मिच्छअविरड्कसायजोग त्ति हेयवो चउरो ।

पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥७४॥

(हारि०) व्याख्या—मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः, ‘इति’ अमुना प्रकारेण बन्धस्य मूल-

हेतवश्चत्वारः । एषां च मिथ्यात्वादीनां 'क्रमेण' परिपाठ्या इति संबन्धः । पञ्च-द्वादश-पञ्च-विंशति-पञ्चदशसंख्या भेदा भवन्ति । एते च मीलिताः सप्तपञ्चाशद्बन्धहेतूत्तरभेदाः । इति गाथार्थः ॥७४॥ एतानेव विवृण्वन्नाह—

(मल०) 'बन्धस्थ' सामर्थ्याज्ज्ञानावरणीयादिकर्मबन्धस्य मूलहेतवश्चत्वारः । के ते ? इत्याह—मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः । तत्र मिथ्यात्वं विपरीतावबोधस्वभावम् । अविरतिः सावद्ययोगेभ्यो निवृत्त्यभावः । कषाययोगाः प्राङ्निरूपितस्वरूपाः । नन्वन्यत्र प्रमादोऽपि बन्धहेतुरभिधीयते, तदुक्तम्—“मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः” इति । स कथमिह नोक्तः ? उच्यते, कर्मग्रन्थिकैर्मद्यविषयरूपस्य तस्याविरतावेवान्तर्भावो विवक्षितः कषायश्च पृथगेवोक्तः । वैक्रियारम्भादिसंभवी तु प्रमादो योगग्रहणेनैव गृहीत इत्यदोषः । अमीषामेवोत्तरभेदानाह—‘पंच’ इत्यादि । मिथ्यात्वस्योत्तरभेदाः पञ्च, अविरतेर्द्वादश कषायाणां पञ्चविंशतिः, योगानां पञ्चदश ॥७४॥ एतानेव स्वरूपतः कथयन्नाह—

★आभिग्गहियं अणभिग्गहं च तह अभिनिवेशियं चैव ।  
संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥७५॥  
बारसविहा अविरई मणहंदियअनियमो छकायवहो ।  
सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरसजोगा ॥७६॥

(हारि०) व्याख्या—आभिग्रहिकं दीक्षितानाम् १ । अनभिग्रहं चेतरेषाम् २ । तथाऽऽभिनिवेशिकं गोष्ठाभाहिलादीनाम् ३ । सांशयिकं जिनोक्ततत्त्वेषु संशयवताम् ४ । अनाभोगमेकेन्द्रियादीनाम् ५ । मिथ्यात्वं पञ्चधा 'पंच' इत्येवंप्रकारमिति ॥७५॥ अथ द्वितीयगाथा व्याख्यायते—द्वादशविधाऽविरतिर्भवति । कथम् ? इत्याह—मनश्चेन्द्रियाणि च मनइन्द्रियाणि तेषामनियमोऽनियन्त्रणमिति समासः । तथा षट् च ते कायाश्च पृथिव्यादयः तेषां च बधो=हिंसेति समासः । तथा षोडश नव च कषायाः प्रसिद्धस्वरूपोः कियन्तो मीलिता भवन्ति ? इत्याह—पञ्चविंशतिः । तथा पञ्चदश योगाः प्राक्प्रतिपादितस्वरूपोः । इति गाथाद्वयार्थः ॥७६॥

अथ बन्धहेतूत्तरभेदान् गुणस्थानकेषु यथासंख्येन योजयन्नाह—

(मल०) गाथाद्वयम् । मिथ्यात्वमुक्तस्वरूपम् । 'एवम्' अमुना प्रकारेण 'पञ्चधा' पञ्चप्रकारम् । केन च प्रकारेण ? इत्याह—आभिग्रहिकं २ आनाभिग्रहिकं २ च तथाऽऽभिनिवेशिकं ३ चैव सांश-

★ उक्तगाथा द्वयमध्येऽन्यगाथाद्वयं हस्तलिखितमूलगाथाप्रतावधिकतयेत्यं दृश्यते तद्यथा—

आभिग्गहियं किंलि दिक्खियाणमणभिग्गहं तु इयरण । गुट्टामाहिलमार्हणं जं अभिनिवेशियं तं तु ॥  
संसइयं मिच्छत्तं जा संका जिषवरुत्तवत्तेसु । विगळिदियाणं जं पुण तमणाभोगं विणिहिदं ॥

यिकं ४ अनाभोगिक ५ मिति । तत्राभिग्रहेण इदमेव दर्शनं शोभनं नान्यद् इत्येवंरूपेण कुर्शन्विषयेण निवृत्तमाभिग्रहिकम् यद्दशाद्रोटिकादिकुदर्शनानामन्यतमं दर्शनं गृह्णाति १ । एतद्विपरीतमनाभिग्रहिकम् यद्दशात्सर्वाण्यपि दर्शनानि शोभनानीत्येवमीपन्माध्यस्थ्यमुपजायते ३ । आभिनिवेशिकं यदभिनिवेशेन निवृत्तम्, यथा गोष्ठामाहिलादीनाम् ३ । सांशयिकम्, यद्दशाङ्ग-गवदहर्दुपदिष्टेष्वपि जीवादिनस्त्रेषु संशय उपजायते, यथा न जाने किमिदं भगवदुक्तं धर्मास्ति-कायादि सत्यमुतान्यथेति ४ । अनाभोगिकं यदनाभोगेन निवृत्तम्, तच्चैकैन्द्रियादीनामिति ५ । तथा द्वादशविधाऽविरतिः । कथम् ? इत्याह—‘मणइंदियअनियमां ल्कायवहो’ इति पञ्चानामिन्द्रियाणां षष्ठस्य च मनसः स्वस्वविषये प्रवर्तमानस्य यदनियमनं अनियन्त्रणम् । तथा षण्णां पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसरूपाणां कायानां बधो=हिंसा इति । तथा कपायाः प्रागुक्तशब्दार्थाः पञ्चविंशतिः । कथम् ? इत्याह—षोडश नव चेति । तत्र क्रोधमानमायालोभाः प्रत्येकमनन्तानुबन्धिनोऽप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः संज्वलनाश्च ततस्ते षोडश भवन्ति । तत्र पारंपर्येण भवमनन्तमनुबन्धन्तीत्येवं शीला अनन्तानुबन्धिनः, उदयस्थानाम-मीषां सम्मक्त्वविधातकृत्वात् । तथाऽल्पमपि प्रत्याख्यानमावृण्वन्तीत्यप्रत्याख्यानावरणाः, तदुदये लेशतोऽपि प्रत्याख्यानानुत्पत्तेः । प्रत्याख्यानं सर्वविरतिरूपमावृण्वन्तीति प्रत्या-ख्यानावरणाः । तथा पगीषहोपमर्गादिसंपाते चारित्रिणमपि सम् ईषज्ज्वलयन्तीति संज्व-लनाः । पश्चानुपूर्व्या च स्वरूपमेतेषामेवम्—‘जलरेणुपुहविषव्वयराईसरिसो चउव्विहो कोहो । तिणिसलयाकहृद्वियसेलथंभोवभो माणो ॥१॥ मायावलेह्विगोसुत्ति-मिंढसिगघणवंसमूलसमा । लोहो हल्लिइस्वंजणकहमकिमिरागसारिच्छो ॥२॥ पक्खचउमासवच्छरजावञ्जीवाणुगामिणो कमसो । देवनरतिरियनारयगइसाह-णहेयवो भणिया ॥३॥’ इति तथा वेदत्रिकहास्यादिषट्करूपा नव नोकषायाः । ते च कपाय-सहचारित्वाद्दुपचारेणह कषाया इत्युक्ताः । तत्र वेदत्रिकं प्रागनिर्दिष्टस्वरूपम् । हास्यादिषट्कं हास्यरत्यरतिभयशोकजुगुप्सालक्षणम् । तत्र सनिमित्तमनिमित्तं वा यद्दर्शनं तद्भास्यम् । बाह्या-भ्यन्तरेषु वस्तुषु प्रीती रतिः । तेज्ज्वाप्रीतिररतिः । मयं त्रासः । परिदेवनादिलङ्गः शोकः । सचेतनाचेतनेषु वस्तुषु व्यलीककरणं जुगुप्सा इति । योगाः पञ्चदश, ते च सर्वेऽपि प्राक् प्रति-पादितस्वरूपाः ॥७५॥७६॥

इदानीममूनेव बन्धहेतून् गुणस्थानकेषु चिन्तयन्नाह—

पणपन्नपन्नतियच्छहियं चत्तउणत्तं छत्तं दुगवीसा ।

मोलसदंमनवनवसत्तहेउणो न उ अजोगिम्मि ॥७७॥

(हारि०) व्याख्या-अस्याः केनाप्यभिप्रायेण सूत्रकारेण पदविवरणं न कृतम् तच्च यथा-  
वबोधमस्माभिः शास्त्रानुसारेण लिख्यते-तत्र सामान्येन पूर्वोक्ताः सप्तपञ्चाशदुत्तरमेदा बन्ध-  
हेतवो भवन्ति ५७ । ततो । मिथ्यादृष्टेराहारकतन्मिश्रवर्जनात्पञ्चपञ्चाशदेव मन्तव्याः, तद्वर्जनं तु  
संयमवतस्तत्सद्भावादिति ५५ । तथा पूर्वोक्तायाः पञ्चपञ्चाशतो मिथ्यात्वपञ्चकेऽपनीते सासादन-  
स्य पञ्चाशद्दृष्टव्याः ५० । सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्तु परलोकगमनाभावात्कार्मणं औदारिकमिश्रं वैक्रिय-  
मिश्रं च न संभवति, अनन्तानुबन्ध्युदयस्य चास्य निषिद्धत्वात् ; अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं च नास्ति  
अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषास्त्रिचत्वारिंशदुत्तरमेदा भवन्ति ४३ । तथाऽ-  
विरतस्य परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतकार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रत्रये पूर्वोक्तात्रिचत्वारिंशति  
पुनः-प्रक्षिप्ते षट्चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति ४६ । तथा देशविरतस्याप्रत्याख्यानावरणोदयस्य निषि-  
द्धत्वादप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं तथा विग्रहगताचपर्याभावस्थायी च देशविरतेरभावात् कार्म-  
णौदारिकमिश्रद्वयं त्रससंयमानिषुत्तत्वात् त्रसासंयमश्च न संभवति, अत एतानि पूर्वोक्तायाः षट्चत्वा-  
रिंशतोऽपनीयन्ते, ततः शेषा एकोनचत्वारिंशद्बन्धहेतवो भवन्ति । अत्राह, ननु देशविरतस्य-  
सासंयमान्संकल्पजा देव निवृत्तो न त्वारम्भजादेः, तत्कथं सर्वोऽप्येषोऽपनीयते ? सत्यम्, किन्तु,  
गृहिणामशक्यपरिहारत्वेन सन्नप्यारम्भजत्रसासंयमो न विवक्षित इत्यदोषः । एतच्च शतकबृह-  
चूर्णिमनुश्रित्य लिखितमिति नात्र स्वमनीषिका भावनीयेति । तथा प्रमत्तस्य पूर्वापनीतत्रसा-  
संयमव्यतिरिक्तानामेकादशाविरतीनामभावात् प्रत्याख्यानावरणानां चाभावादेव आहारकं द्विक-  
सद्भावात् पूर्वोक्तायामेकोनचत्वारिंशति पञ्चदशकेऽपनीते द्विके च क्षिप्ते षड्विंशत्युत्तरमेदा  
भवन्ति २६ । तथाऽप्रमत्तस्य त्वनन्तरोक्तायाः षड्विंशतेर्लब्ध्यनुपजीवनेनाहारवैक्रियानारम्भक-  
त्वाद्वैक्रियमिश्राहारकमिश्रद्वयेऽपनीते शेषाश्चतुर्विंशत्युत्तरमेदा भवन्ति २४ । तथाऽपूर्वकरणे  
त्वतिविशुद्धत्वाद्वैक्रियाहारकमपि न संभवत्वेव, ततो वैक्रियाहारकद्विकेऽनन्तरोक्तायाश्चतुर्विंश-  
तेर्मध्यादपनीते शेषा द्वाविंशतिर्भवति २२ । तथाऽनिषुत्तिवादरस्य तु हास्यादिषट्कस्यापूर्व-  
करण एव व्यवच्छिन्नत्वात् शेषाः संज्वलनाश्चत्वारः कषायाः, वेदत्रयम्, मनो ४ वचनौ ४  
दारिकरूपा नव योगाः, एते षोडश भवन्ति १६ । यावदद्यापि वेदत्रयं संज्वलनत्रयं च नाप-  
गच्छति, तदपगमने तु यथासंभवो वाच्यः । तथा सूक्ष्मसंपरायस्य वेदत्रयक्रोधादित्रिकयोर-  
निषुत्तिवादर एव व्यवच्छिन्नत्वाच्छेषा नव योगाः संज्वलनलोभश्चेति दश भवन्ति १० ।  
तथा त्रयाणामुपशान्तादीनां योगप्रत्यय एव बन्धः, ततश्चोपशान्तक्षीणमोहयोः प्रत्येकं नवधा  
भवति, अष्टौ मनोवाचः औदारिककाययोगश्चेति ९ । तथा सयोगिकेवलिनस्तु योगः सप्तधा

१- 'दुत्तरमेदा लभ्यन्ते' इत्यपि ॥ २- '०देरेषासौ' इत्यपि । ३ 'मिमवैक्रियमिश्रसद्भावात्' इत्यपि ।

भवति, पूर्वोक्तनवकमध्यान्मृपामिप्ररूपे मनोद्वये एवं वाग्द्वये चापनीते औदारिकमिश्रकार्मणे च क्षिप्ते सति । तथाऽयोगी तु प्रत्ययाभावादबन्धकः । अयमर्थो गाथाभिरपि कथ्यते शिष्यानु-  
ग्रहार्थम्—आहारगदुगहीणा, पणवन्ना होइ मिच्छदिट्ठिम्मि ५५ । सा मिच्छपणग-  
हीणा, ग्नासा तह य सासाणे ५० ॥१॥ सा चउणंतकसाया ४, ओरालविउव्वि-  
मोसकम्मइगं । इय सत्तणेण रहिया, तेयाला मोसगुणठाणे ४३ ॥२॥ ओरालियवे-  
उव्वियमोसइगं तह य कम्मणसरीरं । एय तिणेणं सहिया, अविरयसंमंमि  
छायाला ४६ ॥३॥ ओरालमोसकम्मणचउवीयकसायतसअविरई य । इय सत्त-  
णेण रहिया, इगुयाला वेसविरइयंमि ३९ ॥४॥ तइयकसायचउकं, एक्कारस  
अविरई य 'मोत्तूण । आहारगदुगसहिया, पमत्तसाहुस्स उव्वोसा २६ ॥५॥ विउ-  
वाह रगमोसगरहिया चउवीस होइ अपमत्ते २४ । आहारगवेउव्वियहीणदुवीसा  
अपुव्वंमि २२ ॥६॥ हासाइछक्करहिया, सोलस अनियट्ठिवायरे होंति १६ । संज-  
लणवेयनियतियरहिया इह होंति वस सुहमे १०॥७॥ उवसंते ९ तह त्थोणे ९,  
नव नव हेऊ य लोहपरिहीणा । दोमणदोवहरहिया, कम्मणओरालमोसजुया  
॥८॥ एवं सत्त सजोगे ७, एए सव्वे न हुंतऽजोगंमि । चउवस गुणठाणेसुं, पण-  
वन्निच्चाइ वक्खायं ॥९॥" इति गाथार्थः ॥७७॥

इत्युक्ता बन्धहेतवः । अनुना येषां कर्मणामेते बन्धहेतवस्तेभ्यस्तेषां बन्धं दर्शयन् संख्या-  
विशिष्टानि तान्याह—

(मल०) इह मिथ्यात्वाद्यवान्तरमेदानामनन्तरोक्तानां पञ्च द्वादशादीनामेकत्र मीलने सप्त-  
पञ्चाशद्भवति । तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके आहारकतन्मिश्रवर्जाः शेषाः पञ्चपञ्चाशद्बन्धहेतवो  
भवन्ति । आहारकद्विकवर्जनं तु 'संयमघर्ता तदुदयो नान्यस्य' इतिवचनात् । तथा  
सासादनसम्यग्दृष्टौ पञ्चाशद्बन्धहेतवः, मिथ्यात्वपञ्चकस्येहासंभवेनोपनयनात् । तथा सम्यग्मि-  
थ्यादृष्टौ त्रिचत्वारिंशद्बन्धहेतवः, यतोऽत्र "न सम्ममिच्छो कुणइ कालं" इतिवचनात्,  
न परलोकगमनं तदभावाच्च न कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रसंभवः, अनन्तानुबन्ध्युदयस्य चात्र  
निषिद्धत्वादनन्तानुबन्धिचतुष्टयमपि न संभवति, अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु  
शेषास्त्रिचत्वारिंशदेव भवति । तथाऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके षट्चत्वारिंशद्बन्धहेतवः यतोऽत्र  
परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतं कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रलक्षणं त्रिकं पूर्वोक्तायां त्रिचत्वा-  
रिंशति पुनः प्रक्षिप्यत इति । तथा देशचिरतिगुणस्थानके एकोनचत्वारिंशद्बन्धहेतवः यस्मा-  
न्नात्राप्रत्याख्यानावरणकषायोदयः, न च त्रसासंयमः, नाप्येतद्गुणस्थानकमपान्तरालगतावपर्या-  
प्तावस्थार्या वा लभ्यते, ततोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयकार्मणौदारिकमिश्रत्रसासंयमरूपेषु सप्तसु



(हारि०) व्याख्या-अस्याः केनाप्यभिप्रायेण सूत्रकारेण पदविवरणं न कृतम् तच्च यथा-  
वबोधमस्माभिः शास्त्रानुसारेण लिख्यते-तत्र सामान्येन पूर्वोक्ताः सप्तपञ्चाशदुत्तरमेदा बन्ध-  
हेतवो भवन्ति ५७ । ततो । मिथ्यादृष्टेराहारकतन्मिश्रवर्जनात्पञ्चपञ्चाशदेव मन्तव्याः, तद्वर्जनं तु  
संयमवतस्तत्सद्भावादिति ५५ । तथा पूर्वोक्तायाः पञ्चपञ्चाशतो मिथ्यात्वपञ्चकेऽपनीते सासादन-  
स्य पञ्चाशदुद्दृष्टव्याः ५० । सम्यगमिथ्यादृष्टेस्तु परलोकगमनाभावात्कार्मणं औदारिकमिश्रं वैक्रिय-  
मिश्रं च न संभवति. अनन्तानुबन्धुदयस्य चास्य निषिद्धत्वात् ; अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं च नास्ति  
अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषास्त्रिचत्वारिंशदुत्तरमेदा भवन्ति ४३ । तथाऽ-  
विरतस्य परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतकार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रत्रये पूर्वोक्तात्रिचत्वारिंशति  
पुनः-प्रक्षिप्ते षट्चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति ४६ । तथा देशविरतस्याप्रत्याख्यानावरणोदयस्य निषि-  
द्धत्वादप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं तथा विग्रहगतावपर्याभावस्थायां च देशविरतेरभावात् कार्म-  
णौदारिकमिश्रद्वयं त्रससंयमानिष्टत्वात् त्रसासंयमश्च न संभवति, अत एतानि पूर्वोक्तायाः षट्चत्वा-  
रिंशतोऽपनीयन्ते, ततः शेषा एकोनचत्वारिंश 'द्वन्द्वहेतवो भवन्ति । अत्राह, ननु देशविरतस्य-  
सासंयमात्संकल्पजा 'देव निष्टुत्तो न त्वारम्भजादेः, तत्कथं सर्वोऽप्येषोऽपनीयते ? सत्यम्, किन्तु,  
गृहिणामशक्यपरिहारत्वेन सन्नप्यारम्भजत्रसासंयमो न विवक्षित इत्यदोषः । एतच्च शतकष्टह-  
चूणिमनुश्रित्य लिखितमिति नात्र स्वमनीषिका भावनीयेति । तथा प्रमत्तस्य पूर्वापनीतत्रसा-  
संयमव्यतिरिक्तानामेकादशविरतीनामभावात् प्रत्याख्यानावरणानां चाभावादेव आहारक द्विक-  
सद्भावात् पूर्वोक्तायामेकोनचत्वारिंशति पञ्चदशकेऽपनीते द्विके च क्षिप्ते षड्विंशत्युत्तरमेदा  
भवन्ति २६ । तथाऽप्रमत्तस्य त्वनन्तरोक्तायाः षड्विंशतेर्लब्धयनुपजीवनेनाहारवैक्रियानारम्भक-  
त्वाद्वैक्रियमिश्राहारकमिश्रद्वयेऽपनीते शेषाश्चतुर्विंशत्युत्तरमेदा भवन्ति २४ । तथाऽपूर्वकरणे  
त्वतिविशुद्धत्वाद्वैक्रियाहारकमपि न संभवत्वेव, ततो वैक्रियाहारकद्विकेऽनन्तरोक्तायाश्चतुर्विंश-  
तेर्मध्यादपनीते शेषा द्वाविंशतिर्भवति २२ । तथाऽनिष्टुत्तिवादरस्य तु हास्यादिषट्कस्यापूर्व-  
करण एव व्यवच्छिन्नत्वात् शेषाः संज्वलनाश्चत्वारः कषायाः, वेदत्रयम्, मनो ४ वचनौ ४  
दारिकरूपा नव योगाः, एते षोडश भवन्ति १६ । यावदद्यापि वेदत्रयं संज्वलनत्रयं च नाप-  
गच्छति, तदपगमने तु यथासंभवो वाच्यः । तथा सूक्ष्मसंपरायस्य वेदत्रयक्रोधादित्रिकयोर-  
निष्टुत्तिवादर एव व्यवच्छिन्नत्वाच्छेषा नव योगाः संज्वलनलोमश्चेति दश भवन्ति १० ।  
तथा त्रयाणामुपशान्तादीनां योगप्रत्यय एव बन्धः, ततश्चोपशान्तक्षीणमोहयोः प्रत्येकं नवधा  
भवति, अष्टौ मनोवाचः औदारिककाययोगश्चेति ९ । तथा सयोगिकेवलिनस्तु योगः सप्तधा

भवति, पूर्वोक्तनवकमध्यान्मृषामिग्ररूपे मनोद्वये एवं वाग्द्वये चापनीते औदारिकमिश्रकार्मणे च क्षिप्ते सति । तथाऽयोगी तु प्रत्ययाभावादबन्धकः । अयमर्थो गाथाभिरपि कथ्यते शिष्यानु-  
प्रहार्थम्—आहारगदुगहीणा, पणवन्ना होइ मिच्छदिद्धिम्मि ५५ । सा मिच्छपणग-  
हीणा, गन्नासा तह य सासाणे ५० ॥१॥ सा चउणंतकसाया ४, ओरालविउव्वि-  
मोसकम्महंगं । इय सत्तगेण गहिया, तेयाला मोसगुणठाणे ४३ ॥२॥ ओरालियवे-  
उव्विद्यमोसदुगं तह य कम्मणसरीरं । एय निगेणं सहिया, अविरयसंमंमि  
छायाला ४६ ॥३॥ ओरालमोसकम्मणचउव्वीयकसायतसअविरई य । इय सत्त-  
गेण रहिया, इगुयाला देसविरइयंमि ३९ ॥४॥ तइयकसायचउक्कं, एक्कारस  
अविरई य 'मोसूण । आहारगदुगसहिया, पमत्तसाहुस्स लव्वीसा २६ ॥५॥ विउ-  
वाह रगमोसगरहिया चउव्वीस होइ अपमत्ते २४ । आहारगवेउव्विद्यहीणदुव्वीसा  
अपुव्वंमि २२ ॥६॥ हासाइल्लकरहिया, सोलस अनियट्टिवायरे होंति १६ । संज-  
लणवेयनियत्तियरहिया इह होंति दस सुहमे १० ॥७॥ उवसंते ९ तह खीणे ९,  
नध नध हेळ य लोहपरिहीणा । दोमणदोषहरहिया, कम्मणओरालमोसजुया  
॥८॥ एवं सत्त सजोगे ७, एए सव्वे न हूंनऽजोगंमि । चउदस गुणठाणेसुं, पण-  
वन्निच्चाइ वक्खायं ॥९॥” इति गाथार्थः ॥७७॥

इत्युक्ता बन्धहेतवः । अत्रुना येषां कर्मणामेते बन्धहेतवस्तेभ्यस्तेषां बन्धं दर्शयन् संख्या-  
विशिष्टानि तान्याह—

(मल०) इह मिथ्यात्वाद्यवान्तरभेदानामनन्तरोक्तानां पञ्च द्वादशादीनामेकत्र मीलने सप्त-  
पञ्चाशद्भवति । तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके आहारकतन्मिश्रवर्जाः शेषाः पञ्चपञ्चाशद्बन्धहेतवो  
भवन्ति । आहारकद्विकवर्जनं तु 'संयमवर्ता तदुदयो नान्यस्य' इतिवचनात् । तथा  
सासादनसम्यग्दृष्टौ पञ्चाशद्वन्धहेतवः, मिथ्यात्वपञ्चकस्येहासंभवेनोपनयनात् । तथा सम्यग्मि-  
थ्यादृष्टौ त्रिचत्वारिंशद्बन्धहेतवः, यतोऽत्र "न सम्ममिच्छो कुणह कालं" इतिवचनात् ।  
न परलोकगमनं तदभावाच्च न कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रसंभवः, अन्तानुबन्ध्युदयस्य चात्र  
निषिद्धत्वादनन्तानुबन्धिचतुष्टयमपि न संभवति, अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु  
शेषास्त्रिचत्वारिंशदेव भवति । तथाऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके षट्चत्वारिंशद्बन्धहेतवः यतोऽत्र  
परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतं कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रलक्षणं त्रिकं पूर्वोक्तायां त्रिचत्वा-  
रिंशति पुनः प्रक्षिप्यत इति । तथा देशविरतिगुणस्थानके एकोनचत्वारिंशद्बन्धहेतवः यस्मा-  
न्नात्राप्रत्याख्यानावरणकषायोदयः, न च त्रसासंयमः, नाप्येतद्गुणस्थानकमपान्तरालगतावपर्या-  
सावस्थायां वा लभ्यते, ततोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयकार्मणौदारिकमिश्रत्रसासंयमरूपेषु सप्तसु

(हारि०) व्याख्या-अस्याः केनाप्यभिप्रायेण सूत्रकारेण पदविवरणं न कृतम् तच्च यथा-  
 वबोधमस्माभिः शास्त्रानुसारेण लिख्यते-तत्र सामान्येन पूर्वोक्ताः सप्तपञ्चाशदुत्तरमेदा बन्ध-  
 हेतवो भवन्ति ५७ । ततो । मिथ्यादृष्टेराहारकतन्मिश्रवर्जनात्पञ्चपञ्चाशदेव मन्तव्याः, तद्वर्जनं तु  
 संयमवतस्तत्सद्भावादिति ५५ । तथा पूर्वोक्तायाः पञ्चपञ्चाशतो मिथ्यात्वपञ्चकेऽपनीते सासादन-  
 स्य पञ्चाशद्दृष्टव्याः ५० । सम्यगमिथ्यादृष्टेस्तु परलोकगमनाभावात्कार्मणं औदारिकमिश्रं वैक्रिय-  
 मिश्रं च न संभवति, अनन्तानुबन्ध्युदयस्य चास्य निषिद्धत्वात् ; अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं च नास्ति  
 अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषास्त्रिचत्वारिंशदुत्तरमेदा भवन्ति ४३ । तथाऽ-  
 विरतस्य परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतकार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रत्रये पूर्वोक्तात्रिचत्वारिंशति  
 पुनः-प्रक्षिप्ते षट्चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति ४६ । तथा देशविरतस्याप्रत्याख्यानावरणोदयस्य निषि-  
 द्धत्वादप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं तथा विग्रहगतावपर्याभावस्थायां च देशविरतेरभावात् कार्म-  
 णौदारिकमिश्रद्वयं त्रससंयमानिष्टत्वात् त्रसासंयमश्च न संभवति, अत एतानि पूर्वोक्तायाः षट्चत्वा-  
 रिंशतोऽपनीयन्ते, ततः शेषा एकोनचत्वारिंश 'द्वन्द्वहेतवो भवन्ति । अत्राह, ननु देशविरतस्य  
 सासंयमात्संस्कल्पजा'देव निष्टुतो न त्वारम्भजादेः, तत्कथं सर्वोऽप्येषोऽपनीयते ? सत्यम्, किन्तु,  
 गृहिणामशक्यपरिहारत्वेन सन्नप्यारम्भजत्रसासंयमो न विवक्षित इत्यदोषः । एतच्च शतकबृह-  
 चूणिमनुश्रित्य लिखितमिति नात्र स्वमनीषिका भावनीयेति । तथा प्रमत्तस्य पूर्वापनीतत्रसा-  
 संयमव्यतिरिक्तानामेकादशाविरतीनामभावात् प्रत्याख्यानावरणानां चाभावादेव आहारकं द्विक-  
 सद्भावात् पूर्वोक्तायामेकोनचत्वारिंशति पञ्चदशकेऽपनीते द्विके च क्षिप्ते षड्विंशत्युत्तरमेदा  
 भवन्ति २६ । तथाऽप्रमत्तस्य त्वनन्तरोक्तायाः षड्विंशतेर्लब्ध्यनुपजीवनेनाहारवैक्रियानारम्भक-  
 त्वाद्वैक्रियमिश्राहारकमिश्रद्वयेऽपनीते शेषाश्चतुर्विंशत्युत्तरमेदा भवन्ति २४ । तथाऽपूर्वकरणे  
 त्वतिविशुद्धत्वाद्वैक्रियाहारकमपि न संभवत्वेव, ततो वैक्रियाहारकद्विकेऽनन्तरोक्तायाश्चतुर्विंश-  
 तेर्मध्यादपनीते शेषा द्वाविंशतिर्भवति २२ । तथाऽनिष्टुत्तिबादरस्य तु हास्यादिषट्कस्यापूर्व-  
 करण एव व्यवच्छिन्नत्वात् शेषाः संज्वलनाश्चत्वारः कषायाः, वेदत्रयम्, मनो ४ वचनौ ४  
 दारिकरूपा नव योगाः, एते षोडश भवन्ति १६ । यावदद्यापि वेदत्रयं संज्वलनत्रयं च नाप-  
 गच्छति, तदपगमने तु यथासंभवो वाच्यः । तथा सूक्ष्मसंपरायस्य वेदत्रयक्रोधादित्रिकयोर-  
 निष्टुत्तिबादर एव व्यवच्छिन्नत्वाच्छेषा नव योगाः संज्वलनलोभश्चेति दश भवन्ति १० ।  
 तथा त्रयाणामुपशान्तादीनां योगप्रत्यय एव बन्धः, ततश्चोपशान्तक्षीणमोहयोः प्रत्येकं नवधा  
 भवति, अष्टौ मनोवाचः औदारिककाययोगश्चेति ९ । तथा सयोगिकेवलिनस्तु योगः सप्तधा

व्यापाराहृतकर्मवर्गणान्तःपाती विशिष्टपुद्गलसमूहः, ज्ञानं च दर्शनं च तयोरावरणे, तथा वेद्यते सातसातरूपेणेति वेदनीयम्, यद्यपि च सर्वं कर्म वेद्यते, तथाऽपीह पङ्कजादिशब्दब्रह्मेदनीयशब्दस्य रूढिविषयत्वात्सातासातरूपमेव कर्म वेदनीयं न शेषम्, ज्ञानदर्शनावरणे च वेदनीयं च तानि । मोहयतीति मोहनीयं, मिथ्यादर्शनादि । चः समुच्चये । आयात्यागच्छति प्रतिबन्धकर्ता स्वकृतकर्मावाप्तनरकादिक्वगतेर्निष्क्रमितुमनसो जन्तोरित्यायुः । नामयति गत्यादिविधिविधभावानुभवनं प्रति जीवं प्रवणयतीतिनाम, गतिजात्यादि । गूयते शब्दयते उच्चावच्चैः शब्दैरात्मा यस्मात्तद्गोप्रम् । अन्तरा दात्प्रतिग्राहकयोरन्तर्विघ्नहेतुतयाऽयते गच्छतीत्यन्तरायं दानान्तरायादि ॥७८॥

तदेवं बन्धहेतुस्यो यानि कर्माणि बध्यन्ते तान्युपदर्श्य, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धादिस्थान-  
भन्व्यामाह—

'सत्त'ट्टुल्लेग'ब'धा, संतुदया 'अट्ट'सत्तचत्तारि ।

'सत्त'ट्टु'ल्लपं'च'दुगं, उदीरणाठाणसंखेयं ॥७९॥

(इतरि०) व्याख्या—सप्ताष्टषडेकविधबन्धभेदाच्चत्वारि बन्धस्थानानि ४ । अष्टसत्तचतु-  
विधसत्तामेदात् त्रीणि सत्तास्थानानि ३ । एवमुदयस्थानान्यपि त्रीणि ३ सप्ताष्टपट्पञ्चद्विविधोदी-  
रणभेदात्पञ्चसंख्योदीरणास्थानानि ५ । इति गाथार्थः । ॥७९॥

अथैतानि गुणस्थानकेषु योजयति—

(मल०) चत्वारि बन्धस्थानानि । तद्यथा—सप्तःष्टौ षडेकमिति । तत्र यदाऽऽयुर्न बध्यते तदा सप्त, शेषकालं त्वष्टौ । आयुर्मोहनीयबन्धव्यवच्छेदे षट् । ज्ञानदर्शनावरणान्तरायनाम-  
गोत्रबन्धस्य व्यवच्छेदे चैकमिति । त्रीणि सत्तास्थानानि । तद्यथा—अष्टौ सप्त चत्वारि । तत्राष्टौ प्रतीतानि । मोहनीयसत्ताक्षये सप्त । ज्ञानादर्शनावरणान्तरायसत्ताक्षयेऽपि चत्वारि । उदयस्थानान्यपि त्रीणि । तद्यथा—अष्टौ सप्त चत्वारि । तत्राष्टानामुदयः सर्वसंसारिणामुप-  
शान्तमोहादौ । मोहनीयोदयव्यवच्छेदे सप्तानाम् । घातिकर्मक्षये तु चतुर्णामिति । उदीरणा-  
स्थानानि पञ्च । तद्यथा—सप्ताष्टौ षट् पञ्च द्वे इति । तत्रायुष उदीरणायामपगतायां सप्तानाम् । आयुरप्युदीरयतामष्टानाम् । वेदनीयायुषोरुदीरणायामपगतायां षण्णाम् । वेदनीयायुर्मोहनीयो-  
दीरणायामपगतायां पञ्चानाम् । नामगोत्रे एव केवलं उदीरयतो द्वयोरुदीरणेति । इयं बन्धा-  
दीनां स्थानसंख्या ॥७९॥

साम्प्रतं बन्धस्थानानि गुणस्थानकेषु योजयन्माह—

अपमत्तंता सत्तट्टु मीसअप्पुव्वबायरा सत्त ।

बंधंति छ सुहुमो एगमुवरिमा बंधगोऽजोगी ॥८०॥

पूर्वोक्तायाः षट्चत्वारिंशतोऽपनीतेषु शेषा एकोनचत्वारिंशद्वन्धहेतवो भवन्ति । ननु देशविरत-  
स्त्रसासंयमात्संकल्पजादेव निवृत्तो न त्वारम्भजात्, तत्कथमेषोऽत्रापनीयते ? इति, नैष दोषः,  
आरम्भेऽपि तस्य यतनया प्रवर्तमानत्वेन तन्निमित्तस्य त्रसासंयमस्य सतोपीहाविवक्षणात् ।  
तथा प्रमत्तगुणस्थानके षड्विंशतिर्वन्धहेतवः, यत इहैकादशधाऽविरतिः प्रत्याख्यानावरण-  
चतुष्टयं च न संभवति, आहारकाद्विक्रं च संभवति, ततः पूर्वोक्ताया एकोनचत्वारिंशतः पञ्च-  
दशकेऽपनीते द्विके च तत्र प्रक्षिप्ते षड्विंशतिरेव भवति । तथाऽप्रमत्तस्य लब्धयन्तुपजीवनेना-  
हारकवैक्रियानारम्भादाहारकमिश्रवैक्रियमिश्रलक्षणे द्विके षड्विंशतेरप्यपनीते शेषाश्चतुर्विंशति-  
र्वन्धहेतवोऽप्रमत्तगुणस्थानके भवन्ति । अपूर्वकरणगुणस्थानके तु वैक्रियाहारके अपि न संभवतः,  
इत्यनन्तरोक्तायाश्चतुर्विंशतेर्वैक्रियाहारकरूपे द्विकेऽपनीते शेषा द्वाविंशतिर्वन्धहेतवः । तथा  
हास्यादिषट्कस्यापूर्वकरणगुणस्थानक एव व्यवच्छिन्नत्वादिनिवृत्तिवादासंपरायगुणस्थानके  
द्वाविंशतेः षट्केऽपनीते शेषाः षोडश बन्धहेतवो भवन्ति, ते च 'वेदत्रय'संज्वलनचतुष्टयौ-  
'दारिककाययोग' 'चतुर्विधत्राग्योग' 'चतुर्विधमनोयोग'रूपा द्रष्टव्याः । तथा सूक्ष्मसंपरायगुण-  
स्थानके वेदत्रये क्रोधादित्रये चानिवृत्तिवादा एव व्यवच्छिन्नत्वात्षोडशकादपनीते शेषा दश  
बन्धहेतवो भवन्ति । उपशान्तमोहगुणस्थानके नव बन्धहेतवः, लोभस्य सूक्ष्मसंपराये व्यव-  
च्छिन्नत्वात् अत एव क्षीणमोहगुणस्थानकेऽपि, सयोगिकेवल्लिगुणस्थानके सत्यासत्यामृषामनोयोग-  
सत्यासत्यामृषावाग्योगकार्मणौदारिकतन्मिश्रलक्षणाः सप्त बन्धहेतवो भवन्ति । 'न उ अजो-  
गिस्मि' इति अयोगिकेवल्लिगुणस्थानके तु न कश्चिद्वन्धहेतुः, योगस्यापि व्यवच्छिन्नत्वात् ॥७७॥

उक्ता बन्धहेतवः । साम्प्रतं येषां कर्मणामेते बन्धहेतवस्तेषामेतेभ्यो बन्धमुपदर्शयन्नाह—

तो 'नाण'दंसणावरण'वेयणीयाणि 'मोहणिज्जं च ।

'आउय'नामं 'गोयं'तरायमिद् अट्ट कम्माणि ॥७८॥

(हारि०) व्याख्या—'तो' इति तेभ्यो मिथ्यात्वादिभ्यः सकाशाज्ज्ञानदर्शनावरणवेदनीया-  
नीति द्वन्द्वः । तथा मोहनीयं च । आयुर्नामेति समाहारद्वन्द्वः । तथा गोत्रान्तरायमित्यत्रापि  
समाहारद्वन्द्वः । इत्येतान्यष्टौ कर्माणि बध्यन्त इति शेषः । इति गाथार्थः ॥७८॥

अधुनैषां बन्धादिस्थानसंख्यामाह—

(मल०) 'तो' इति तेभ्योऽनन्तरेवतेभ्यो बन्धहेतुभ्यः 'इति' अमून्यष्टौ कर्माणि  
बध्यन्त इति शेषः । कानि ? इत्यत आह—'णाण' इत्यादि ज्ञायतेऽनेन ज्ञासिर्वा ज्ञानम्,  
सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषप्रहणात्मकोऽवबोधः, दृश्यतेऽनेन दृष्टिर्वा दर्शनम्, सामा-  
न्यावबोधात्मकं चक्षुर्दर्शनादि, आत्रियते=आच्छाद्यतेऽनेनेत्यावरणम्, मिथ्यात्वादिसचिवजीव-

मष्टौ । 'क्षीणे' क्षीणमोहगुणस्थानके सत्तायामुदये च समु कर्मप्रकृतयोः, मोहनीयस्य क्षीण-  
त्वात् । 'षत्तारि सेसेसु' इति प्राकृतत्वाद् द्वित्वेऽपि बहुवचनम् । शेषयोः सयोग्ययोगिकेन्द्र-  
लिगुणस्थानकयोरुदये सत्तायां चतस्रोऽघातिकर्मप्रकृतयो भवन्ति, घातिकर्मचतुष्टयस्य क्षीण-  
त्वात् ॥८१॥

उक्ता सत्तोदयस्थानकयोजना । साम्प्रतमुदीरणास्थानानि योजयन्नाह—

सत्तद्द पमत्तंता, 'कम्मे उइरिंति अट्ट मीसो उ'

वेयणियाउ विणा छ उ, अपमत्तअपुव्वअनियट्ठी ॥८२॥

(हारि०) व्याख्या—सप्ताष्ट वा कर्माण्युदीरयन्तीति सण्टङ्कः । क एते ? प्रमत्तान्तां पञ्च  
मिश्रवर्जाः, तस्य पृथग्भणनात् । तदेवाह—'अट्ट मीसो उ' इति अष्टावेव वचनव्यत्ययाद्दुदीर-  
यति मिश्रः, तुरेवकारार्थो योजित एव । तथा विभक्तिलोपाद्वेदनीयायुर्म्यां विना षट् कर्माण्यु-  
दीरयन्ति । क एते ? अप्रमत्तापूर्वानिष्टुत्तिबादरा इति द्वन्द्वः । इति गाथार्थः ॥८२॥

तथा—

(मल०) मिथ्यादृष्टिप्रभृतयः प्रमत्तान्ता यावदधाप्यनुभूयमानमवायुरावलिकावशेषं न  
भवति तावत्सर्वेऽप्यमी निरन्तरमष्टावपि कर्माण्युदीरयन्ति, आवलिकावशेषे पुनरनुभूयमान-  
मवायुषि सप्तैव, आवलिकावशेषस्य कर्मण उदीरणाया अभावात्तथास्वामाव्यात् । 'अट्ट मीसो  
उ' इति मिश्रस्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टिः पुनरष्टावेव कर्माण्युदीरयति, न तु कदाचनापि सप्त, सम्य-  
ग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके वर्तमानस्य सप्त आयुष आवलिकावशेषाभावात् । स हि अन्तर्मुहूर्ताव-  
शेषायुष्क एव तद्भावं परित्यज्य सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा नियमात्प्रतिपद्यत इति । तथाऽप्रमत्ता-  
पूर्वकरणानिष्टुत्तिबादरा वेदनीयायुषी वर्जयित्वा शेषाणि षट् कर्माण्युदीरयन्ति न तु वेदनीया-  
युषी, अतिविशुद्धतया तदुदीरणायोग्याध्यवसायस्थानामावात् ॥८२॥

सुहुमो छ पंच 'उइरेइ पंच 'उवसंतु पंच दो खीणो ।  
जोगी उ नामगोए, अजोगि 'अणुदीरगो भयवं ॥८३॥

(हारि०) व्याख्या—सूक्ष्मसंपरायः षट् पञ्च वोदीरयति । तथा पञ्चोपशान्तमोहः । तथा  
पञ्च द्वे वा क्षीणमोहः । तथा योगी सयोगिकेवली तुरेवकारार्थः, उत्तरत्र योक्ष्यन्ते, नामगोत्रे  
एव । तथाऽयोगी अनुदीरको न किञ्चिदुदीरयति भगवान् पूज्य इति । सप्ताष्टषडादिपदभावना  
त्वेवं द्रष्टव्या—इह मिथ्यादृष्टेः प्रभृति यावत्प्रमत्तसंयतो यावदधाप्यावलिकावशेषमात्मीया-

१ 'कम्मवईरिंति' इत्यपि पाठः । २ 'उइरेइ' इत्यपि पाठः । ३ 'उवसंत' इत्यपि । ४ - अणुदीरणां  
भगवं" इत्यपि ।

(हारि०) व्याख्या—‘अप्रमत्तान्ताः’ इत्युक्ते मिथ्यादृष्टिप्रभृतय इति लभ्यन्ते । तत एते षट् मिश्रवर्जास्तस्य पृथग्भणनात्सप्ताष्टौ वा बध्नन्तीति संबन्धः । तथा मिश्रापूर्ववादरा-  
क्षयोऽपि सप्त बध्नन्तीति । तथा षट् सूक्ष्मसंपराया बध्नन्ति । तथैकमुपरितना उपशान्तक्षीण-  
मोहसयोगिकेत्रलिनः । तथा ‘अबन्धगोऽजोगी’ इति अयमर्थः—सप्तविधबन्धका आयुर्वन्धवर्जाः  
षड्विधबन्धका मोहायुर्वन्धवर्जिता एकविधबन्धकाः सातमेवैकं बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥८०॥

इति बन्धस्थानयोजना गुणस्थानकेषुक्ता ६ । अथोदयसत्तास्थानद्वयं तेष्वेव निरूप-  
यन्नाह—

(मल०) मिथ्यादृष्टिप्रभृतयोऽप्रमात्तान्ताः सप्ताष्टौ वा कर्माणि बध्नन्ति, आयुर्वन्धकाले-  
ऽष्टौ, शेषकालं तु सप्तैव । ‘मोसअप्पुन्ववायरा’ इति मिश्रापूर्वकरणानिवृत्तिवादराः सप्तैव  
बध्नन्ति, तेषामायुर्वन्धाभावात् । तत्र मिश्रस्य तथास्वाभाव्यात्, इतरयोस्त्वतिविशुद्धत्वात्,  
आयुर्वन्धस्य च घोलनापरिणामनिमित्तत्वात् । ‘छ सुहुमो’ इति सूक्ष्मसंपरायो मोहनीया-  
युर्वर्जानि षट् कर्माणि बध्नाति, मोहनीयबन्धस्य वादरकपायोदयनिमित्तत्वात्, तस्य च  
तदभावादायुर्वन्धाभावस्त्वतिविशुद्धत्वादवसेयः । ‘एगमुवरिमा’ इति एकं सातवेदनीयलक्षणं  
कर्मोपरितना उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेत्रलिनो बध्नन्ति न शेषाणि, तद्बन्धहेत्वभावात् ।  
‘अबन्धगोऽजोगी’ इति अयोगी=अयोगिकेत्रली योगस्यापि बन्धहेतोरभावाद्बन्धकः ॥८०॥

उदता गुणस्थानकेषु बन्धस्थानयोजना । साम्प्रतमेतेषूदयसत्तास्थानयोजनां निरूप-  
यन्नाह—

जा सुहुमो ता अट्टवि, उदए संते य होंति पयडीओ ।  
सत्तठ्ठुवसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु ॥८१॥

(हारि०) व्याख्या—मिथ्यादृष्टेरारम्य यावत्सूक्ष्मसंपरायस्तावदष्टावपि, किम् ? ‘उदए  
संते य’ इति उदये सत्तायां च ‘भवन्ति’ जायन्ते प्रकृतयः कर्मणामिति शेषः । तथा सप्ताष्टौ  
चोपशान्ते, सप्त उदयेऽष्टौ सत्तायामित्यर्थः । तथा ‘क्षीणे’ क्षीणमोहे मोहवर्जा उदये सत्तायां  
च सप्तैति । तथा चत्वार्यघातिकर्माणीति शेषः । शेषयोः सयोग्ययोगिकेत्रलिगुणस्थानकयोरुदये  
सत्तायां च भवन्तीति सर्वत्र योज्यम् । इति गाथार्थः ॥८१॥

इत्युदयसत्तास्थानानि निरूपितानि गुणस्थानकेषु । ८१ । साम्प्रतमुदीरणास्थानानि  
तेष्वेव योजयन्नाह—

(मल०) मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकमारम्य यावत्सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानं तावदष्टावपि कर्म-  
प्रकृतय उदये सत्तायां च प्राप्यन्ते । उपशान्तमोहगुणस्थानके उदये सप्त कर्मप्रकृतयः, सत्ताया-

मष्टौ । 'क्षीणो' क्षीणमोहगुणस्थानके सत्तायामुदये च सप्त कर्मप्रकृतयः, मोहनीयस्य क्षीण-  
त्वात् । 'बस्तारि सेसेस्तु' इति प्राकृतत्वाद् द्वित्वेऽपि बहुवचनम् । शेषयोः सयोग्ययोगिकेन्द्र-  
लिगुणस्थानकयोः रुदये सत्तायां चतस्रोऽघातिकर्मप्रकृतयो भवन्ति, घातिकर्मचतुष्टयस्य क्षीण-  
त्वात् ॥८१॥

उक्ता सत्तोदयस्थानकयोजना । साम्प्रतमुदीरणास्थानानि योजयन्नाह—

सत्तट्ट पमत्तांता, 'कम्मे उहरिंति अट्ट मीसो उ

वेयणिघाउ विणा छ उ, अपमत्तअपुव्वअनियट्ठी ॥८२॥

(हारि०) व्याख्या—सप्ताष्ट वा कर्माण्युदीरयन्तीति सण्टङ्कः । क एते ? प्रमत्तान्तां पञ्च  
मिश्रवर्जाः, तस्य पृथग्भणनात् । तदेवाह—'अट्ट मीसो उ' इति अष्टाधेव वचनव्यत्ययाद्दुदीर-  
यति मिश्रः, तुरेवकारार्थो योजित एव । तथा विभक्तिलोपाद्वेदनीयायुर्म्यां विना षट् कर्माण्यु-  
दीरयन्ति । क एते ? अप्रमत्तापूर्वानिष्ठिबादरा इति द्वन्द्वः । इति गाथार्थः ॥८२॥

तथा—

(मल०) मिथ्यादृष्टिप्रभृतयः प्रमत्तान्ता यावदद्याप्यनुभूयमानमवायुरावलिकावशेषं न  
भवति तावत्सर्वेऽप्यमी निरन्तरमष्टावपि कर्माण्युदीरयन्ति, आवलिकावशेषे पुनरनुभूयमान-  
मवायुषि सप्तैव, आवलिकावशेषस्य कर्मण उदीरणाया अमावात्तथास्वामाव्यात् । 'अट्ट मीसो  
उ' इति मिश्रस्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टिः पुनरष्टाधेव कर्माण्युदीरयति, न तु कदाचनापि सप्त, सम्य-  
ग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके वर्तमानस्य सत आयुष आवलिकावशेषामावात् । स हि अन्तर्भू हृत्वा-  
शेषायुष्क एव तद्भावं परित्यज्य सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा नियमात्प्रतिपद्यत इति । तथाऽप्रमत्ता-  
पूर्वकरणानिष्ठिबादरा वेदनीयायुषी वर्जयित्वा शेषाणि षट् कर्माण्युदीरयन्ति न तु वेदनीया-  
युषी, अतिविशुद्धतया तदुदीरणायोग्याव्यवसायस्थानामावात् ॥८३॥

सुहुमो छ पंच उहरेइ पंच उवसंतु पंच दो खीणो ।

जोगी उ नामगोए, अजोगि अणुदीरगो भयवं ॥८३॥

(हारि०) व्याख्या—सूक्ष्मसंपरायः षट् पञ्च वेदीरयति । तथा पञ्चोपशान्तमोहः । तथा  
पञ्च द्वे वा क्षीणमोहः । तथा योगी सयोगिकेवली तुरेवकारार्थः, उत्तरत्र योक्ष्यते, नामगोत्रे  
एव । तथाऽयोगी अनुदीरको न किञ्चिदुदीरयति भगवान् पूज्य इति । सप्ताष्टपडादिपदमावना  
त्वेवं द्रष्टव्या—इह मिथ्यादृष्टेः प्रभृति यावत्प्रमत्तसंयतो यावदद्याप्यावलिकावशेषमात्मीया-

१ "कम्मउहरिंति" इत्यपि पाठः । २ "उहरेइ" इत्यपि पाठः । ३ "उवसंत" इत्यपि । ४ - अणुदीरणो  
भयवं" इत्यपि ।



त्मीयमायुर्न भवति तावत्सर्वेऽप्यमी निरन्तरमष्टावपि प्रकृतीरुदीरयन्ति, तदुदीरणायोग्याध्यवसा-  
यस्य सर्वेष्वपि भावात् । अद्वावलिकावशेषे आयुषि सप्तैव प्रकृतीरुदीरयन्ति न त्वायुष्कम् ।  
सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्तु अष्टावेवोदीरयति न तु कदाचनापि सप्तेति, सम्यग्मिथ्यादृष्टेरायुष आक-  
लिकावशेषताया अभावात्, सङ्घायुष्कान्तमुहूर्तावशेष एव तद्भावं परित्यज्य सम्यक्त्वं मिथ्या-  
त्वं वा नियमात्प्रतिपद्यत इति । अप्रमत्तादयस्त्रयः षट् कर्माण्युदीरयन्ति, अतिविशुद्धत्वेन वेदनी-  
यायुरुदीरणायोग्याध्यवसायाभावात् । सूक्ष्मसंपरायस्तु पञ्चविधोदीरकस्तावद् यावन्मोहनीयमाव-  
लिकावशेषं न भवति, तदवशेषे तु तस्मिन् पञ्चविधोदीरक एवेति । उपशान्तमोहस्तु पूर्वोक्त-  
पञ्चविधोदीरक इति । क्षीणमोहस्तु ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायेष्ववलिकावशेषे तु द्विविधो-  
दीरकः, पूर्वं तु पञ्चविधोदीरक इति । सयोगिकेवली पुनर्द्विविधोदीरक एव, यतो वेद्यमानमेव  
कर्मोदीर्यते । तत्र घातिचतुष्टयस्य क्षीणत्वाद्देदनमेव नास्ति, कुतस्तदुदीरणम् ? वेदनीयायुषोस्तु-  
दीरणा प्रागेवोपरतेति । अयोगिकेवली तु न किञ्चिदुदीरयति, उदीरणस्य योगसव्यपेक्षत्वात्,  
तस्य च तदभावात् । इति गाथार्थः ॥८३॥

इत्युक्तोदीरणा । अथान्पबहुत्वमाह—

(मल०) सूक्ष्मः=सूक्ष्मसंपरायः षट् पञ्च वा कर्माण्युदीरयति । तत्र षडनन्तरोक्तानि तानि  
च तावदुदीरयति यावन्मोहनीयमावलिकावशेषं न भवति, आवलिकावशेषे च मोहनीये  
तस्याप्युदीरणाया अभावात् शेषाणि पञ्च कर्माण्युदीरयति । 'पञ्च उषसंतु' इति उपशान्त-  
उपशान्तमोहः पञ्चकर्माण्युदीरयति न वेदनीयायुर्मोहनीयानि । तत्र वेदनीयायुषोः कारणं  
प्रागेवोक्तम् । मोहनीयं तदुदयाभावाद्भोदीर्यते 'वेद्यमानमेवोदीर्यते' इतिवचनात् ।  
'पञ्च दो ऋणो' इति क्षीणः=क्षीणमोहोऽनन्तरोक्तानि पञ्च कर्माण्युदीरयति, तानि च  
तावदुदीरयति यावज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणि आवलिकाप्रविष्टानि न भवन्ति, आवलिका-  
मात्रप्रविष्टेषु तु तेषु तेषामप्युदीरणाया अभावाद् द्वे एव नामगोत्रलक्षणे कर्मणी उदीरयति ।  
'जोगी उ नामगोत्र' इति योगीतु=सयोगिकेवली पुनर्नामगोत्रे उदीरयति, न शेषाणि, घाति-  
कर्मचतुष्टयं हि निर्मूलत एव क्षीणमिति न तस्योदीरणासंभवः, वेदनीयायुषोस्तुदीरणा पूर्वो-  
क्तकारणादेव न भवतीति । 'अजोगि अणुदीरगो भयर्थ' इति अयोगिकेवली भगवान्  
अनुदीरको=न किञ्चिदपि कर्मोदीरयति, योगसव्यपेक्षत्वाद्दुदीरणायाः, तस्य च योगा-  
भावात् ॥८३॥

इत्युक्ता गुणस्थानकेषुदीरणास्थानयोजना । साम्प्रतमेतेष्वेव वर्तमानानां जन्तूनामन्प-  
बहुत्वमाह—

उवसंतजिणा थोवा, संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।

सुहुमनियट्टिनियट्टी, तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥८४॥

जोगिअपमत्तइयरे, संखगुणा देससासणा मिससा ।

अविरयअजोगिमिच्छा, असंख चउरां दुवेऽणंता ॥८५॥

(हारि०) व्याख्या-उपशान्तजिनाः स्तोकाः, यतस्ते प्रतिपद्यमानकाश्चतुष्पञ्चाशत्प्रमाणा एव प्राप्यन्ते, तेभ्यः संख्येयगुणाः क्षीणमोहजिनाः, यतस्तेऽष्टोत्तरशतसंख्या एकसमये प्रतिपद्यमाना लभ्यन्ते । एते द्वयेऽपि यदोत्कृष्टपदे लभ्यन्ते तदा ज्ञेयाः, कदाचिद्विपर्ययेणापि स्युः क्षीणमोहाः स्तोका उपशान्तमोहास्तु बहव इति । ततो विशेषाधिकाः, क एते ? सूक्ष्मसंपरायानिष्ठित्तिनिष्ठित्तिनादरास्त्रयोऽपि स्वस्थाने तुल्याः, तुल्यत्वादेतद्गुणस्थानकत्रयस्यारम्भकाणामिति ॥८४॥ इतो द्वितीयगाथा व्याख्यायते- तेभ्यो योग्यप्रमत्तरे इति द्वन्द्वः । इतरः=प्रमत्तो गृह्यते, संख्यातगुणाः, यतः सयोगिकेवलिनं कोटीपृथक्त्वं प्राप्यते । अप्रमत्तप्रमत्तगुणस्थानकवर्ता तु कोटीसहस्रपृथक्त्वं सामायिके कोटीशतपृथक्त्वं छेदोपस्थापनीये परमप्रमत्तान्तर्मुहूर्तं लघु प्रमत्तान्तर्मुहूर्तं बृहत्प्रमाणम्, इत्यतो यथोक्तं संख्यातगुणत्वं लभ्यते । ततो देशविरत्सासादनमिश्राऽविरतायोगिमिध्यादृष्टयः क्रमेणासंख्याश्चत्वारो द्वयेऽनन्ताः । भावना त्वेवम्-प्रमत्तयतिभ्योऽसंख्यातत्वाद्देशविरतितिर्यग्मनुष्याणाम् । सासादनास्तु कदाचित्सर्वथैव न भवन्ति, यदा तु भवन्ति तदा जघन्यपदे एको वा द्वौ वा यावदुत्कृष्टतो गतिचतुष्टयसंभवित्वाद्देशविरतेभ्योऽसंख्येयगुणा भवन्ति । मिश्रा यदा भवन्ति तदोत्कृष्टतः सासादनेभ्योऽसंख्यातगुणाः, उत्कृष्टतोऽपि षडावलिकाप्रमाणत्वात्सासादनाद्वायाः, मिश्राद्वायास्त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वादिति । मिश्रेभ्योऽसंख्येयगुणा अविरतसम्यग्दृष्टयः, चतुर्गतिषु सर्वकालभावित्वात्तेषामिति । तेभ्योऽनन्तगुणा अयोगिनः, अयोगिग्रहणेन चात्र सिद्धा अपि गृहीताः, यतोऽयोगिनो भवस्थाभवस्थमेदेन द्विविधा भवन्ति । तेभ्योऽनन्तगुणा मिध्यादृष्टयः, पृथिव्यादिसाधारणमिध्यादृष्टीनामनन्तत्वात् । इति गाथार्थः ॥८५॥

इत्युक्तमल्पबहुत्वम्, तद्गणनाश्लोक्तं यथाप्रतिज्ञातं समस्तमभिधेयजातम् । साम्प्रतं प्रकरणस्यादेयताख्यापनार्थं प्रकरणकारो गुणनिष्पन्नं स्वनाम सूचयन्नुपदेशमाह—

(मल०) उपशान्तजिना=उपशान्तवीतरागाः स्तोकाः, यतस्ते प्रतिपद्यमानका उत्कर्षतोऽपि

चतुष्पञ्चाशत्प्रमाणा एव प्राप्यन्त इति । तेभ्यः सकाशात्पुनः क्षीणमोहजिनाः संख्येयगुणाः, यतस्ते प्रतिपद्यमानका एकस्मिन् समयेऽष्टोत्तरशतप्रमाणा अपि लभ्यन्ते । एतच्चैवमाचार्येणामिहितमुत्कृष्टपदापेक्षया, अन्यथा कदाचिद्विपर्ययोऽपि द्रष्टव्यः । स्तोकाः क्षीणमोहाः, बहवस्तु

तेभ्य उपशान्तमोहा इति । तथा तेभ्यः क्षीणमोहेभ्यः सकाशात्सूक्ष्मानिष्टत्तिनिष्टचयः सूक्ष्म-  
संपरायानिष्टत्तिवादरापूर्वकरणा विशेषाधिकाः । स्वस्थाने पुनरेते चिन्त्यमानास्त्रयोऽपि तुल्या  
इति ॥८४॥ 'इयर' इति अप्रमत्तप्रतियोगिनः प्रमत्ताः तेभ्यः सूक्ष्मादिभ्यः सकाशाद्योगिनः  
सयोगिकेवलिनः सङ्ख्यातगुणाः, तेषां कोटीपृथक्त्वेन लभ्यमानत्वात् । तेभ्योऽप्रमत्ताः संख्येय-  
गुणाः कोटीसहस्रपृथक्त्वेन प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्योऽपि संख्येयगुणाः प्रमत्ताः । प्रमादभावो  
हि बहूनां बहुकालं च लभ्यते, विपर्ययेण त्वप्रमाद इति न यथोक्तसंख्याव्याघातः । 'देस'  
इत्यादि, देशविरतसासादनमिश्राविरतिलक्षणाश्चत्वारो यथोत्तरमसंख्येयगुणाः । अयोगिमिध्या-  
दृष्टिलक्षणौ च द्वौ यथोत्तरमनन्तगुणौ । तत्र प्रमत्तेभ्यो देशविरता असंख्येयगुणाः, तिरश्चाम-  
संख्यातानां देशविरतिभावात् । सासादनास्तु कदाचित्सर्वथैव न भवन्ति, यदा तु भवन्ति तदा  
जन्मनेनैको द्वौ वा, उत्कर्षतस्तु देशविरतेभ्योऽप्यसंख्येयगुणाः । तेभ्योऽपि मिश्रा असंख्येय-  
गुणाः, सासादनाद्धाया उत्कर्षतोऽपि पडावलिकामात्रतया स्तोक्तत्वात्, मिश्राद्धायास्त्वन्त-  
मृहतेप्रमाणतया प्रभूतत्वात् । तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणा अविरतसंख्येयगुणाः, तेषां गतिचतुष्टयेऽपि  
प्रभूतनयां संवकालं संभवात् । तेभ्योऽप्ययोगिनो भवस्थाभवस्थमेद्रमिश्रा अनन्तगुणाः, सिद्धा-  
नामनन्तत्वात् । तेभ्योऽप्यनन्तगुणा मिध्यादृष्टयः साधारणवनस्पतीनां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुण-  
त्वात्, तेषां च मिध्यादृष्टित्वादिति ॥८५॥

तदेवमभिहितं गुणस्थानकवर्तिनां जीवानामल्पबहुत्वम्, तदभिधानाच्च यत् 'षोडशामि  
जीवसंख्येयगुण' इत्यादि प्राक् प्रतिज्ञातं तदपि समर्थितम् । साम्प्रतं जिनवचनानुसारिप्रकरण-  
मिदमित्येतत्प्रकरणश्रवणादिक्रियासु वर्तमानानां जीवानामेकान्तेन हितसंप्राप्तिमुत्पेक्षमाण  
आचार्यो निजान्वर्थनामोत्कीर्तनपूर्वकं जिनशासनगौरवख्यापनपूर्वकं च परेषामुपदेशमाह—

जिणवेस्सहोवणीयं, जिणवयणामयसमुद्धविंदुमिमं ।

हियकंखिणो बुहजणां, निसुणंतु गुणंतु जाणंतु ॥८६॥

॥ इति षडशीत्यपरपर्यायागमिकवस्तुविचारसारप्रकरणम् ॥

(हारि०) व्याख्या—जिनो बल्लभो यस्य स तथा तेनोपनीतस्तम्, इत्यनेन प्रकरणादे-  
यतामाह । भवति हि यथोक्तान्वर्थनाम्ना पुरुषविशेषेणोपनीते वस्तुनि बुधजनानामादेयताबुद्धिः,  
एतदेव च प्रस्तुतप्रकरणकर्तुरभिधानम् । जिना=रागादिवैरिवारजेतारः, तेषां वचन=मागमः,  
तदेवामृतं=त्रिदशाहारः, तस्य समुद्रः=सिन्धुः, तस्य बिन्दुरिवबिन्दुस्तम्, इमं प्रस्तुतप्रकरणरूपं  
'द्वितकाङ्क्षिणः' मोक्षाभिलाषिणो 'बुधजेनाः' पण्डितलोकाः 'निभृष्टवन्तु' आकर्णयन्तु  
'गुणयन्तु' परावर्तयन्तु 'जानन्तु' बुध्यताम् । इति गायार्थः ॥८६॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

- \* प्रायोऽन्यशास्त्रदृष्टः, सर्वोऽप्यर्थो मयाऽत्र संचरितः ।  
न पुनः स्वमतीषिक्रया, तथापि यत्किंचिदिह वितथम् ॥१॥
- \* सूत्रमतिलङ्घ्य लिखितं, तच्छोष्यं मय्यनुग्रहं कृत्वा ।  
षरकीयदोषमुणयोस्त्यागोपादानविधिकुशलैः ॥२॥
- \* छत्रस्थस्य हि बुद्धिः, स्वलति न कस्येह कर्मवशस्य ।  
सद्बुद्धिविरहितानां, विशेषतो मद्भिषासुमताम् ॥३॥
- \* कृत्वा यद्बुद्धिमिमां, पुण्यं समुपाजितं मया तेन ।  
सृष्टिमन्त्रिण लभतां, क्षयितरजाः सर्वभयजनः ॥४॥
- × मध्यस्थभावादचलप्रतिष्ठः, सुवर्णरूपः सुमनोनिवासः ।  
अस्मिन्महामेरुरिवास्ति लोके, श्रीमान् बृहद्गच्छ इति प्रसिद्धः ॥५॥
- × तस्मिन्भूदायतबाहुश्चासुः कल्पद्रुमामः प्रभुमानदेवः ।  
यदीयबाचो विबुधैः सुबोधाः, कर्णेकृता नूतनमञ्जरीवत् ॥६॥
- × तस्मादुपाध्याय इहाजनिष्ट, श्रीमान्मनस्वी जिनदेवनामा ।  
गुरुक्रमाराधयितान्पबुद्धिस्तस्यास्ति शिष्यो हरिभद्रसूरिः ॥७॥
- \* अणहिल्लपाटकपुरे, श्रीमञ्जयसिंहदेवनृपराज्ये ।  
आशापूर्वसत्यां, श्रुतिस्तेनेयमारचिता ॥८॥
- \* एकैकाक्षरगणनादरया वृत्तेरनुष्ठुमां मानम् ।  
अष्टौ शतानि ज्ञातं, पञ्चाशत्समधिकानीति ८५० ॥९॥
- \* वर्षशतैकादशके, द्वासप्तत्याधिके ११७२ नभोभासे ।  
सितपञ्चम्यां सूर्ये, समर्थिता श्रुतिकेयमिति ११०॥

॥ इत्यागमिकवस्तुविचारसारप्रकरणश्रुतिः, श्रीमद्भद्रसूरिनिर्मिता समाप्ता ॥



श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवप्रणीते इति  
श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे  
प्रथमा श्रीहरिभद्रसूक्तिका द्वितीया श्रीमलयगिरिसूक्तिका च टीका समाप्ता

षडशीतिनाम्नि चतुर्थे कर्मग्रन्थे श्रीमलयगिरिसूरिकृतटीकागता प्रशस्तिः

(मल०) सुगमम् ॥८६॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

यद्गदितमल्पमतिना, जिनवचनविरुद्धमर्थतत्त्वेषु ।  
विद्वद्भिस्तत्त्वज्ञैः, प्रसादमाधाय तच्छोध्यम् ॥१॥ [आर्या]  
यद्दुर्गमल्पस्यन्दं, प्रकरणमेतद्विष्णुवता कुशलम् ।  
यद्वापि मलयगिरिणा, सिद्धिं तेनाश्रुतां लोकः ॥२॥ [ ११ ]

॥ इति श्रीमन्मलयगिरिसूरिविरचिता षडशीतिप्रकरणवृत्तिः समाप्ता ॥

॥ समाप्तोऽयं टीकाद्वयोपेतः षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

इति  
श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवप्रणीते  
श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे  
प्रथमा श्रीहरिभद्रसरिकृता द्वितीया श्रीमलयगिरिसरिकृता च टीका समाप्ता



श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीते  
अथ  
श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे  
द्वितीया श्रीयशोमद्रसूरिकृता टीका प्रारभ्यते

॥ ॐ ह्रीं श्रीं अई श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथायनमः ॥  
 न्यायाम्मोनिधिः श्रीमद् विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥  
 सकलागमरहस्यवेदिः श्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥  
 कर्मसाहित्यनिष्णातः श्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥  
 श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीतः

## षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ।

( अपरनाम—आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरणम् )

श्रीमद् यशोभद्रसूरीश्वरप्रणीतटीकया समलङ्कृतः ॥



श्री नमः सर्वज्ञाय

आगमिकवस्तुगोचरविचारसारप्रकरणपदजातं

किञ्चित्किञ्चिद्विवृणोमि नतहिता भारतीं स्मृत्वा ॥ १ ॥

कासौ श्रीजिनवल्लभस्य रचना \*सूक्ष्मार्थचर्चाऽर्चिता,

कथं मे मतिरग्रिमा प्रणयिनी मृगधत्वपृथ्वीमृजः ।

पद्गोस्तुङ्गानगाधिरोहणसुहृद्यत्नोऽयमार्यास्ततो,

ऽसद्दुष्यानव्यसनाण्ये निपततः स्वान्तस्य पोतोऽर्पितः ॥ २ ॥

निच्छिन्नमोहपासं पमरियविमलोरुकेवलपयासं ।

पणयजणपूरियासं पयओ पणमित्तु जिणपासं ॥ १ ॥

(यद्यो०) "निच्छिन्नमोहपासं" मित्यादि, विशेषणविभूषितात्मानं जिनपार्श्वं प्रणम्य जीव-  
 मार्गाणागुणस्थानादि 'वक्ष्य' इत्युत्तरगाथया संबन्धः । तत्र "निच्छिन्ने"ति अक्षरतसम्यग्दृष्ट-  
 चादीनामपि सूक्ष्मसंपरायान्तानां किञ्चित् किञ्चिद् मोहद्वेदोऽस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं निशब्दोपादानं  
 नितरामतिशयेन छिन्नः=छिन्डितो मोह एव सर्वोपद्रवन्व्यस्थानगमनविचारकत्वात्पाशोऽनेन स  
 तथा, एवंरूपश्च क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थावस्थावलम्ब्यपि भगवान् स्यादत आह—प्रसृतो=  
 ऽसर्वगतात्मनि व्यवस्थित एव विस्तृतः=प्रचुरभावमापन्नः समस्ततदावरणविरयाद्विमलः  
 सकललोकालोकन्यापकत्वादुरू=र्महान् केवलस्य=केवलज्ञानस्य प्रकाशः=प्रकाशनशक्तिः=

ॐ "सूक्ष्मार्थचर्चा-ऽञ्चति" इति वा ।

विषयपरिच्छेदसामर्थ्यं यस्य प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशः । इह यद्यपि मोह इव ज्ञानावरण-  
दर्शनावरणान्तरायेष्वपि छिन्नेष्वेव केवलप्रसरस्तथापि मोहोद्देश्य प्रधानतया मोहच्छेदहेतुकः  
केवलप्रकाशः प्रतिपादितः । अनेन विशेषणद्वयेनापायापगम-ज्ञानातिशयावभिहितौ ताम्यां च  
तीर्थकरस्तुतेः प्रस्तुतत्वात्तीर्थकरनामकर्मोदयाविनाभाविनौ पूजा-वचनातिशयावाक्षिप्तौ । इत्थं वानि-  
ष्टविधातेष्टप्राप्तिशरीरा स्वार्थसंपत्तिः प्रकाशिता । प्रणतजनस्य पूरिताः सकलसत्त्वसाधारणेन  
वचसा स्वर्गापवर्गमार्गप्रकाशनादाशा=त्राञ्छा येनेत्यनेन च परार्थसंपत्तिः । प्रयत आदरपरः ।  
एवं च सम्पूर्णस्वार्थपरार्थसंपदो भगवतः “प्रणम्ये” ति प्रकर्षप्राप्तनमस्कारस्वरूपमनुपधि धर्मोपा-  
दनद्वारा विघ्नजनका-ऽधर्मप्रतिवन्धान्निखिलविघ्नविधातनिघ्नं तत्त्वतो मह्यग्लमाविष्कृतमिति ।  
अर्हतां तुन्यगुणत्वेषुपि पार्श्वजिनस्य यदत्रोपादानं तत्तच्छासनाधिष्ठायकसाहायकेन प्रकरणस्य  
प्रणीतत्वात् ॥ १ ॥

बोच्छामि जीवमगणगुणठाणुवओगजोगलेसाई ।

किंचि सुगुरुवएसा सन्नाणसुज्ञाणहेउत्ति ॥ २ ॥

(यशो०) जीवाश्च मार्गणगुणाश्च, तेषां स्थानानि, तानि चोपयोगाश्चेत्यादि द्वन्द्वगर्भो  
बहुव्रीहीः । आदिशब्दात्कर्मबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानान्पवहुत्वबन्धहेतुपरिग्रहः । किंचिदिति  
पिद्धान्तसिन्धोरुद्धृत्य विन्दुमात्रम् । वक्ष्ये=ऽभिधास्ये । किमिति ? सज्ज्ञानरय सुध्यानस्य च हेतुः=  
कारणमिति कृत्वा । “सुगुरुवएसे” ति शोभनस्य=समयानुसारिसम्यग्ज्ञानानुष्ठानसारस्य गुरो-  
रुपदेशेन, अनेन कश्चिदप्राप्तप्रवरात्मनाय इदं प्रणीतवानिति शंकानिराशः । एवं च जीवस्थानाद्य-  
मिधेयं निखिलजगदुपादेयताकुलगृहम् । गुरुपर्वक्रमलक्षणः संबन्धः । जीवादिबस्तुविषय-  
प्रकरणकरणद्वारेणातिद्रिढिमोपारूढबोधरूपं सन्=शोभनं ज्ञानम्, धर्मव्यानाधिरोहणार्थं श्रुत-  
धर्मानुगतानि वाचनाप्रच्छनापरावर्त्तनानुप्रेक्षारूपाण्यालम्बनान्येव शोभनं रूपध्यानं च  
कर्तुरनंतरप्रयोजने एतत्प्रकरणश्रवणप्रसादसमासादितजीवस्थानादिव्युत्पत्तिस्वरूपं ज्ञानमुप-  
वर्णितचरं सुध्यानं च श्रोतुरनंतरप्रयोजने प्रतिपादितानि । परंपरप्रयोजनं तु कर्तृश्रोत्रोः  
“ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिव”मिति वचनात्परमपदरूपमाक्षिप्तं द्रष्टव्यम् । इह यद्यपि जीवस्थानाद्यमिधेयं  
सामान्यत उक्तम्, तथापि जीवस्थानेषु गुणस्थानयोगोपयोगलेश्याबन्धोदयोदीरणासत्ताख्या-  
न्यष्टौ, मार्गणास्थानेषु जीवस्थानगुणस्थानयोगोपयोगलेश्याल्पबहुत्वामिधानानि पद्, गुण-  
स्थानेषु जीवस्थानयोगोपयोगलेश्याबन्धहेतुबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानान्पवहुत्वख्यानि च  
दशाभिधेयानि “व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति” रितिन्यायादवगन्तव्यानि जीवस्थानगुणस्था-  
नादीनाम्, तुशब्दार्थो यथावसरमुपवर्णयिष्यते । अत्र च प्रकरणकृत् ‘प्रणम्ये’ति क्त्वाप्रत्ययेन  
पूर्वकालभाविना ‘वक्ष्य’ इत्युत्तरकालभाविन्यासव्यपेक्षेण प्रणमनक्रियामभिदधता कथञ्चि-

न्नित्यानित्यपक्षं समर्थयते स्म । एकान्तनित्यानित्यपक्षे हि क्त्वाप्रत्ययानुपपत्तिः । एकान्त-  
नित्यतायां कर्त्तुः प्रणमनक्रियास्वभावात् , जीवस्थानादिकर्मकवचनक्रियाया अभावाद् , एका-  
न्ताऽनित्यतायां चान्यः प्रणमनक्रियायाः कर्त्ताऽपरो वचनक्रियायाः कर्त्तेति विभिन्नकर्त्तृकत्वात्  
प्रत्ययानुपपत्तिः ॥ २ ॥

तत्र जीवस्थानानां संख्यावच्छिन्नं स्वरूपं निरूपयन्नाह—

इह सुहुमवायरंगिदिबितिचउअमन्निसन्नपर्वेदी ।

अपजत्तापजत्ता कमेण चउदम जियट्टाणा ॥ ३ ॥

(यशो०) इह=जगति प्रवचने वा सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्माः सर्लोकन्यापिनो, वादरनाम-  
कर्मोदयाद्वादरा लोकदेशवर्तिन एकेन्द्रियाः । सूचकत्वात्सूत्रस्य द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः ।  
“असन्निसन्ना”ति, संज्ञा=विज्ञानं सा हेतुवाददीर्घकालदृष्टिवादभेदात् त्रिधा । तत्र हेतोर्वादस्तेन  
संज्ञा । द्वित्रिचतुरिन्द्रियाऽमंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां मन्तव्या । ते हि हेतुवादेन एवं वक्तुं शक्यन्त एव,  
संज्ञिन एते, आतपादिभ्यश्छयाद्याश्रयणादाहारादिनिमित्तचेष्टान्वितत्वाच्च । एतदपेक्षया पृथिव्या-  
दयोऽमंज्ञिनः, या तु सिद्धान्ते पृथिव्यादीनामपि आहारादिभेदाद्दृशविधा संज्ञा प्रतिपादिता सा  
तेषामतिशयेनाव्यक्तेति न विवक्षिता १ । दीर्घकालिकी संज्ञा सामिधीयते यस्यां सत्यां कालत्रये-ऽपि  
इदमकार्षमिदं करोमि इदं करिष्यामीति विमृश्यते । एतदपेक्षया मनोलब्ध्या वन्ध्याः सर्वेऽप्यसंज्ञिनः ।  
एषा च न हेतुवादेन प्रतीयते, बालानामपि सुप्रतीतत्वात् २ । दृष्टिः=सम्यग्दर्शनं तस्य वदनं\*(वादस्)  
तेन संज्ञा सम्पद्-रूत्रविमलीकृतज्ञानरूपा । एतदपेक्षया संज्ञिपञ्चेन्द्रिया अपि मिथ्यादृशोऽसंज्ञिन  
उच्यन्ते । समये तु यत्र क्वचित्संज्ञिसंज्ञिव्यवहारः, स समस्तोऽपि दीर्घकालिकसंज्ञाभावाभावाव-  
लम्ब्येत्यत्रापि दीर्घकालिकसंज्ञान्वतः संज्ञिनस्तद्विपरीतास्त्वसंज्ञिनः, पञ्चेन्द्रियाः । “अपजत्ताप-  
जत्ते” ति पर्याप्तापर्याप्तव्यवहारस्य पर्याप्तिपरिज्ञानपुरस्सरत्वादादौ पर्याप्तेः संक्षेपतः स्वरूपं सोपयो-  
गित्वाद् भेदकालस्वामिनश्चोच्यन्ते । तत्र पर्याप्ति=आहारप्रवृत्तिभोग्यपुद्गलदलिकोपादनपरिणामनका-  
रणं जीवस्य पुद्गलोपचयः शक्तिविशेष इति स्वरूपम् । यथा बाह्यमाहारमाहृत्य खल्लरसरूपतया  
परिणामयति जन्तुः सा शक्तिराहारपर्याप्तेः । यथा रसीभूतमाहारं रसासृक्मांसमेदोस्थिमज्जा-  
शुक्ररूपसप्तधातुमयौदारिकशरीररूपतया वैक्रियाहारकयोर्योग्यानि च द्रव्यान्यादाय वैक्रियाहारक-  
रूपतया च परिणतिं नयति, सा शरीरपर्याप्तिः । इयं च न शरीरनामकर्मण्यन्तर्भवति, साध्यभेदात् ।  
शरीरनाम्नो हि कर्मणो जीवेन गृहीतानां पुद्गलानामौदारिकादिदेहत्वेन परिणतिः साध्या,  
शरीरपर्याप्तेस्त्वारब्धशरीरस्य परिसमाप्तिरिति । ययेन्द्रियभोग्यघातुभूतमाहारमिन्द्रियतया-  
परिणामप्लवयति, सेन्द्रियपर्याप्तिः । ययोच्छ्वासयोग्यं वर्गणाद्रव्यं स्वीकृत्योच्छ्वासतया परि-

\* ( ) एतश्चान्तर्गतः पाठः प्रक्षिप्तो द्रष्टव्यः । एवमप्येऽपि ।

विषयपरिच्छेदसामर्थ्यं यस्य प्रमृतविमलोरुकेवलप्रकाशः । इह यद्यपि मोह इव ज्ञानावरण-  
दर्शनावरणान्तरायेष्वपि छिन्नेष्वेव केवलप्रसरस्तथापि मोहछेदस्य प्रधानतया मोहछेदहेतुकः  
केवलप्रकाशः प्रतिपादितः । अनेन विशेषणद्वयेनापायापगम-ज्ञानातिशयावभिहितौ ताभ्यां च  
तीर्थकरस्तुतेः प्रस्तुतत्वात्तीर्थकरनामकर्मोदयाविनाभाविनौ पूजा-वचनातिशयावाक्षिप्तौ । इत्थं वानि-  
ष्टविधातेष्टप्राप्तिशरीरा स्वार्थसंपत्तिः प्रकाशिता । प्रणतजनस्य पूरिताः सकलसत्त्वसाधारणेन  
वचसा स्वर्गापवर्गमार्गप्रकाशनादाशा=वाञ्छा येनेत्यनेन च परार्थसंपत्तिः । प्रयत आदरपरः ।  
एवं च सम्पूर्णस्वार्थपरार्थसंपदो भगवतः “प्रणम्ये” ति प्रकर्षप्राप्तनमस्कारस्वरूपमनुपधि धर्मोपा-  
दनद्वारा विघ्नजनका-ऽधर्मप्रतिबन्धान्निखिलविघ्नविधातनिघ्नं तत्त्वतो मद्गुणमाविष्कृतमिति ।  
अर्हतां तुल्यगुणत्वेऽपि पार्श्वजिनस्य यदत्रोपादानं तच्चच्छासनाधिष्ठायकसाहायकेन प्रकरणस्य  
प्रणीतत्वात् ॥ १ ॥

वोच्छामि जीवमगणगुणठाणुवओगजोगलेसाई ।

किंचि सुगुरुवएसा सन्नाणसुझाणहेउत्ति ॥ २ ॥

(यशो०) जीवाश्च मार्गणगुणाश्च, तेषां स्थानानि, तानि चोपयोगाश्चेत्यादि द्वन्द्वगर्भो  
बहुव्रीहीः । आदिशब्दात्कर्मबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानाल्पबहुत्वबन्धहेतुपरिग्रहः । किंचिदिति  
मिद्धान्तसिन्धोरुद्धृत्य विन्दुमात्रम् । वक्ष्ये=ऽभिधास्ये । किमिति ? सज्ज्ञानरय सुध्यानस्य च हेतुः=  
कारणमिति कृत्वा । “सुगुरुवएसे” ति शोभनस्य=समयानुसारिसम्यग्ज्ञानानुष्ठानसारस्य गुरो-  
रुपदेशेन, अनेन कश्चिदप्राप्तप्रवरान्नाय इदं प्रणीतवानिति शंकानिराशः । एवं च जीवस्थानाद्य-  
भिधेयं निखिलजगदुपादेयताकुलगृहम् । गुरुपर्वक्रमलक्षणः संबन्धः । जीवादिवस्तुविषय-  
प्रकरणकरणद्वारेणातिद्रढिमोपारूढबोधरूपं सन्=शोभनं ज्ञानम्, धर्मध्यानाधिरोहणार्थं श्रुत-  
धर्मानुगतानि वाचनाप्रच्छनापरावर्त्तनानुप्रेक्षारूपाण्यालम्बनान्येव शोभनं रूपध्यानं च  
कर्तुरनंतरप्रयोजने एतत्प्रकरणश्रवणप्रसादसमासादितजीवस्थानादिव्युत्पत्तिस्वरूपं ज्ञानश्रुप-  
वर्णितचरं सुध्यानं च श्रोतुरनंतरप्रयोजने प्रतिपादितानि । परंपरप्रयोजनं तु कर्तृश्रोत्रोः  
“ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिव”मिति वचनात्परमपदरूपमाक्षिप्तं द्रष्टव्यम् । इह यद्यपि जीवस्थानाद्यभिधेयं  
सामान्यत उक्तम्, तथापि जीवस्थानेषु गुणस्थानयोगोपयोगलेश्याबन्धोदयोदीरणासत्ताख्या-  
न्यष्टौ, मार्गणास्थानेषु जीवस्थानगुणस्थानयोगोपयोगलेश्याल्पबहुत्वाभिधानानि पट्, गुण-  
स्थानेषु जीवस्थानयोगोपयोगलेश्याबन्धहेतुबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानाल्पबहुत्वाख्यानि च  
दशाभिधेयानि “व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति” रितिन्यायादवगन्तव्यानि जीवस्थानगुणस्था-  
नादीनाम्, तुशब्दार्थो यथावसरमुपवर्णयिष्यते । अत्र च प्रकरणकृत् ‘प्रणम्ये’ति क्त्वाप्रत्ययेन  
पूर्वकालभाविना ‘वक्ष्य’ इत्युत्तरकालभाविक्रियासव्यपेक्षेण प्रणमनक्रियामभिदधता कथञ्चि-

न्नित्यानित्यपक्षं समर्थयते स्म । एकान्तनित्यानित्यपक्षे हि क्त्वाप्रत्ययानुपपत्तिः । एकान्त-  
नित्यतायां कर्तुः प्रणमनक्रियास्वभावात् , जीवस्थानादिकर्मकवचनक्रियाया अभावाद् , एका-  
न्ताऽनित्यतायां चान्यः प्रणमनक्रियायाः कर्त्ताऽपरो वचनक्रियायाः कर्त्तेति विभिन्नकर्तृक्त्वात्  
प्रत्ययादुत्पत्तिः ॥ २ ॥

तत्र जीवस्थानानां संख्यावच्छिन्नं स्वरूपं निरूपयन्नाह—

इह सुहुमवायरंगिदिबितिचउअसन्निसन्निपंवेदी ।

अपजत्तापज्जत्ता कमेण चउदम जियद्वाणा ॥ ३ ॥

(यशो०) इह=जगति प्रवचने वा सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्माः सर्लोकज्यापिनो, वादरनाम-  
कर्मोदयाद्वादरा लोकदेशवर्तिन एकेन्द्रियाः । सूचकत्वात्सूत्रस्य द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः ।  
“असन्निसन्ना”ति, संज्ञा=विज्ञानं सा हेतुवाददीर्घकालदृष्टिवादभेदात् त्रिधा । तत्र हेतोर्वादस्तेन  
संज्ञा । द्वित्रिचतुरिन्द्रियाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां मन्तव्या । ते हि हेतुवादेन एवं वक्तुं शक्यन्त एव,  
संज्ञिन एते, आतपादिभ्यच्छ्रयाद्याश्रयणादाहारादिनिमित्तवेष्टान्वितत्वाच्च । एतदपेक्षया पृथिव्या-  
द्योऽसंज्ञिनः, या तु सिद्धान्ते पृथिव्यादीनामपि आहारादिभेदाद्दृष्टिधा संज्ञा प्रतिपादिता सा  
तेषामतिशयेनाव्यक्तेति न विवक्षिता १ । दीर्घकालिकी संज्ञा सामिधीयते यस्यां सत्यां कालत्रये-ऽपि  
इदमकार्थमिदं करोमि इदं कश्चिन्मीति विमृश्यते । एतदपेक्षया मनोऽलब्ध्या वन्ध्याः सर्वेऽप्यसंज्ञिनः ।  
एषा च न हेतुवादेन प्रतीयते, बालानामपि सुप्रतीतत्वात् २ । दृष्टिः=सम्यग्दर्शनं तस्य वदनं\*(वादस्)  
तेन संज्ञा सम्यक्त्वविमलीकृतज्ञानरूपा । एतदपेक्षया संज्ञिपञ्चेन्द्रिया अपि मिथ्यादृशोऽसंज्ञिन  
उच्यन्ते । समये तु यत्र कश्चित्संशयसंज्ञिव्यवहारः, स समस्तोऽपि दीर्घकालिकसंज्ञाभावाभावाव-  
लम्ब्येत्यत्रापि दीर्घकालिकसंज्ञावन्तः संज्ञिनस्तद्विपरीतास्त्वसंज्ञिनः, पञ्चेन्द्रियाः । “अपजत्ताप-  
ज्जत्ते” ति पर्याप्तपर्याप्तव्यवहारस्य पर्याप्तपरिज्ञानपुरस्सरत्वादादौ पर्याप्तेः संक्षेपतः स्वरूपं सोपयो-  
गित्वाद् भेदकालस्वामिनश्चोच्यन्ते । तत्र पर्याप्ति=गाहारप्रवृत्तियोग्यपुद्गलदलिकोपादनपरिणामनका-  
रणं जीवस्य पुद्गलोपचयः शक्तिविशेष इति स्वरूपम् । यया बाह्यमाहारमाहृत्य खलरसरूपतया  
परिणामयति जन्तुः सा शक्तिराहारपर्याप्तेः । यया रसीभूतमाहारं रसासृक्मांसमेदोस्थिमज्जा-  
शुक्ररूपसप्तधातुमयौदारिकशरीररूपतया वैक्रियाहारकयोर्योग्यानि च द्रव्यान्यादाय वैक्रियाहारक-  
रूपतया च परिणतिं नयति, सा शरीरपर्याप्तिः । इयं च न शरीरनामकर्मण्यन्तर्मवति, साध्यमेदात् ।  
शरीरनाम्नो हि कर्मणो जीवेन गृहीतानां पुद्गलानामौदारिकादिदेहत्वेन परिणतिः साध्या,  
शरीरपर्याप्तेस्त्वारब्धशरीरस्य परिसमाप्तिरिति । यथेन्द्रिययोग्यघातुभूतमाहारमिन्द्रियतया-  
परिणामप्रपनयति, सेन्द्रियपर्याप्तिः । ययोच्छ्वासयोग्यं वर्गणाद्द्रव्यं स्वीकृत्योच्छ्वासतया परि-

१ ( ) एतच्चिन्तान्तर्गतः पाठः प्रक्षिप्तो द्रष्टव्यः । एवमत्रोऽपि ।

गुणस्थानान्यादिः—प्रथमं यस्य योगादिस्थानसप्तकस्य तत्तथा, तावच्छब्दः क्रमार्थः । ततो जीव-  
स्थानेषु गुणस्थानानि ततो योगास्तत उपयोगा इत्यादि । 'वाग्दे' ति सूचकत्वात्सूत्रस्य वादरै-  
केन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रिया इति दृश्यम् । तच्च समाहारद्वन्द्वश्रयणाल्लुप्तसप्तम्येक-  
वचनान्तम् । एवमन्यत्रापि । एकादश समुदायव्यपदेशविभक्तिलोपावम्बूद्धौ । ततश्च नादरादिष्व-  
संज्ञिपर्यवसानेष्वपर्याप्तेषु पञ्चसु 'पदमगुणे' ति प्रथमे मिथ्यात्वसास्वादनरूपे गुणस्थाने  
भवतः । तत्र प्रथमगुणस्थानमेतेषु प्रतीतम् । द्वितीयं तु करणापर्याप्तवादरैकेन्द्रियादिषु वद्वाद्युपः  
संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्यन्त औपशमिकसम्यक्त्वमवाप्य तदैव वमतो मिथ्यात्वं चाऽप्राप्नुवतस्तेष्वे-  
वोत्पद्यमानस्य जघन्यतः समयमुत्कृष्टः पडावलिका भवतीति कार्मग्रन्थिकमतम् । यत्तु 'उभवा  
(या)भावो पुढवाइपसु' इति वचनात्तु सम्यक्त्वश्रुतादिसामायिकानामुभयस्य पूर्वप्रतिपन्नप्रति  
पद्यमानरूपस्यैकेन्द्रियेष्वन्तर्भाव इति सिद्धान्तमतम् । तदिह नाश्रितमिति 'नेगिन्दिषु सासाणोत्ती'  
ति स्वयमेव वक्ष्यति । 'सन्निअपज्जत्ते' ति अत्र मिथ्यादृष्टिसास्वादाने पूर्ववत्, अविरतसम्यग्-  
दृष्टिगुणस्थानसद्वभावस्तु कस्यचिदप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य करणापर्याप्तसंज्ञिपूत्पद्यमानस्य ।  
'सञ्चे सन्नि' ति सर्वाणि चतुर्दशाऽपि संज्ञिनि पर्याप्ते ग्राप्यन्ते, नानाजीवानपेक्ष्य सयोगिनि च  
संज्ञीति व्यवहारो द्रव्यमनोऽपेक्षया, अयोगिनि तु भूतपूर्वमनो-ऽपेक्षया । 'सेसे' खिति उक्तातिरिक्-  
तेषु सप्तसु पर्याप्तापर्याप्ते सूक्ष्मैकेन्द्रिये वादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु  
तु पर्याप्तेष्वित्यर्थ ॥४-५॥

अथैतेष्वेव जीवस्थानेषु [प्र]योगान्योजयन्नाह—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।

वेउव्वियमीसजुया सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(यशो०) षट्सु अपर्याप्तेषु (अ)पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जेषु योगौ कार्मणौदारिकमिश्रौ । तत्रै-  
तेषामृजुगतिविग्रहग[तिउ](त्यु)त्पतिप्रथमसमयवर्तिना कार्मणकाययोगः । उपत्तिप्रथमसमयादपर-  
समयगतानां पर्यप्तिरसमर्थयमानानामौदारिकं मिश्रं कामणेन यत्र तत्तथा, तद्भवति । तावेव  
पूर्वोक्तौ वैक्रियं मिश्रं कार्मणेन यत्र तत्तथा, तेन युतौ सहिताविति प्रयो योगाः संज्ञिन्यपर्याप्ते  
भवन्ति । तत्र वैक्रियमिश्रयोगोऽस्य देवनारकेषूपद्यमानस्य बोद्धव्यः ॥६॥

अथाद्याद्धेन मतान्तरमाह—

विंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।

(यशो०) इह सूत्रकृदङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे भाहारपरिशाख्यतृतीयाध्ययने 'ओया-  
हारा जीव सञ्चे अपज्जत्ताणे' ति नियुक्तिगाथार्या १२ प्रकास्तु इन्द्रियादिभि पर्याप्तिभिः पर्याप्तकः केच-

णमय्यालम्ब्य च मुञ्चति, सोच्छ्वासपर्याप्तिः । इयमुच्छ्वासनाम्नो मित्रा, यत उच्छ्वासनामोदयेन  
 जनितामपि सतीमुच्छ्वासनलब्धिमुच्छ्वासलब्ध्या जन्तुर्व्यापारयितुं समर्थः, नान्यथा । यया  
 भाष कुलं वर्गणाद्रव्यं गृहीत्वा भाषारूपत्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति, सा भाषापर्याप्तिः । यया  
 मनःप्र योग्यं वर्गणाद्रव्यमुपादाय मनस्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति, सा मन्ःपर्याप्तिरिति पट् ।  
 प्रज्ञापना-व्याख्याप्रज्ञाप्यादौ त्वन्त्यपर्याप्तयोर्बहुश्रुतिगम्ययुक्तिकयैकविविधक्षया पञ्चेति  
 मेदाः । “वेत्त्वाह राणं सरीरअन्नाउपणाइगिगसमया । पिह ण अउमुहुत्ता उरत्ते आहारइगममये” ति-  
 वचनात्, वैक्रियस्याहारकस्य च शरीरपर्याप्तिरान्तमौहूर्तिकी, शेषास्तु सामायिकाः; औदारिक-  
 स्याहारपर्याप्तिः सामायिका. शेषाः पुनरान्तमौहूर्तिक्य इति कालः । प्रज्ञापनायां त्वाहारादि-  
 पर्याप्तीनां युगपदारब्धानां मध्ये आहारपर्याप्तेः समयः, शेषाणां प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तम् । सामान्येन  
 निष्पत्तिकाल उक्तः । तत्राद्यानां च तिसृणामेकेन्द्रिया मापापर्याप्तिसहितानां [केव](विक)लेन्द्रिया  
 मापापर्याप्तिसमन्वितानां पञ्चेन्द्रिया इति स्वामिनः । एताश्च पर्याप्तयो विद्यन्ते येषां ते मत्वर्थी-  
 यात्प्रत्यये पर्याप्ताः तद्विपरीता अपर्याप्ताः । ते च, ये भवान्तरालवर्तिनो विवक्षितभवे च प्रथमो-  
 त्पन्नास्त एव वाच्याः, न पुनर्भवारम्भभाविपर्याप्तिसमापया पर्याप्त्या विज्ञेयतीर्थादायो वैक्रिया-  
 द्यारम्भादिकालवर्तिनः, सत्यामपि वैक्रियाद्यपेक्षया पर्याप्त्यसमाप्तौ तेषामपर्याप्तत्वेन सैद्धान्ति-  
 कैरपरिमापितत्वात् । ततश्च सूक्ष्मवादैरैकेन्द्रिया द्वीन्द्रियादयः संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्ताः प्रत्येकम-  
 पर्याप्तपर्याप्तमेदमाजः क्रमेणेति । सूक्ष्मत्वस्य सर्वप्राणिनां मूलस्थानत्वेन प्रथमं सूक्ष्मास्ततो  
 यथोत्तरं प्रवर्द्धमानकर्मक्षयोपशमपात्रत्वेन वादराद्याः संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्ता निर्देश्याः, त एव  
 चापर्याप्तत्वपूर्वकत्वाद्विषयित्वे पर्याप्तत्वस्य पर्याप्त्येभ्यः प्रथममपर्याप्ता इत्यनेनैव क्रमेण ।  
 “जियद्वाणे”ति प्राकृतत्वात्पुंसा निर्देशः । एवमन्यत्रापि लिङ्गव्यत्ययादि तत्र तत्र दृष्टव्यम् ।  
 जीवन्ति जीविष्यन्ति जीवितवन्त इति जीवास्तिउन्ति जीवास्तत्कर्मपारतन्त्र्यादेष्विति स्थानानि=  
 स्वरूपमेदाः, जीवानां स्थानानि मन्तव्यनीति शेषः । अत्र सामर्थ्यादेव चतुर्दशत्वे लब्धे चतु-  
 र्दशेति न्यूनाधिकसंख्याव्यवच्छेदार्थमिति ॥३॥

संप्रति जीवस्थानेषु गुणस्थानानि संबन्धपुरस्सरं गाथायुगेनाह—

सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाह ता भणिमो ।

पढमगुणा दो वायरवितिचउरअसन्निअपजत्ते ॥ ४ ॥

सन्निअपजत्ते मिच्छदिट्टिमासाणअविरया तिन्नि ।

सव्वे सन्निपजत्ते मिच्छं सेसेसु सत्तसु विं ॥ ५ ॥

(यशो०) इह प्रकरणे सर्वेषां भणनार्हाणां गुणस्थानादीनामाद्येषु “तेस्वि”ति तेषु जीवस्थानेषु



गुणस्थानान्यादिः—प्रथमं यस्य योगादिस्थानसप्तकस्य तत्तथा, तावच्छुद्धः क्रमार्थः । ततो जीव-  
स्थानेषु गुणस्थानानि ततो योगास्तत उपयोगा इत्यादि । 'वायरे' ति सूचकत्वात्सूत्रस्य वादरै-  
केन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रिया इति दृश्यम् । तच्च समाहारद्वन्द्वश्रयणाल्लुप्तसप्तम्येक-  
वचनान्तम् । एवमन्यत्रापि । एकादश समुदायव्यपदेशविभक्तिलोपावभ्यूहो । ततश्च नादरादिष्व-  
संज्ञिपर्यवसानेष्वपर्याप्तेषु पञ्चसु 'पढमगुणे' ति प्रथमे मिथ्यात्वसास्वादनरूपे गुणस्थाने  
भवतः । तत्र प्रथमगुणस्थानमेषु प्रतीतम् . द्वितीयं तु करणापर्याप्तवादरैकेन्द्रियादिषु बद्धायुषः  
संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्यन्त औपशमिकसम्यक्त्वमवाप्य तदैव वमतो मिथ्यात्वं चाऽप्राप्नुवतस्तेष्वे-  
वोत्पद्यमानस्य जघन्यतः समयमुत्कृष्टः पढावलिका भवतीति कार्मग्रन्थिकमतम् । यत्तु ' उभवा  
(या)भावो पुढवाहपसु" इति वचनात्तु सम्यक्त्वश्रुतादिसामायिकानामुभयस्य पूर्वप्रतिपन्नप्रति  
पद्यमानरूपस्यैकेन्द्रियेष्वन्तर्भाव इति सिद्धान्तमतम् । तदिह नाश्रितमिति 'नेगिदिसु सासाणोत्ती'  
ति स्वयमेव वक्ष्यति । 'सन्निअपज्जत्ते' ति अत्र मिथ्यादृष्टिसास्वादाने पूर्ववत् , अविरतसम्यग्-  
दृष्टिगुणस्थानसद्भावस्तु कस्यचिदप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य करणापर्याप्तसंज्ञिषूत्पद्यमानस्य ।  
'सत्त्वे सन्नि' ति सर्वाणि चतुर्दशाऽपि संज्ञिनि पर्याप्ते प्राप्यन्ते, नानाजीवानपेक्ष्य सयोगिनि च  
संज्ञीति व्यवहारो द्रव्यमनोऽपेक्षया, अयोगिनि तु भूतपूर्वमनो-ऽपेक्षया । 'सेसे' स्विति उक्तातिरिक्-  
तेषु सप्तसु पर्याप्तापर्याप्ते सूक्ष्मैकेन्द्रिये वादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु  
तु पर्याप्तेष्वित्यर्थः ॥४-५॥

अथैतेष्वेव जीवस्थानेषु [प्र]योगान्योजयन्नाह—

जोगा षसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।

वेउव्वियमीसजुया सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(यशो०) षसु अपर्याप्तेषु (अ)पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जेषु योगौ कार्मणौदारिकमिश्रौ । तत्रै-  
तेषामृजुगतिविग्रहग[तिउ](त्यु)त्पतिप्रथमसमयवर्तिनां कार्मणकाययोगः । उत्पत्तिप्रथमसमयादपर-  
समयगतानां पर्याप्तिरसमर्थयमानानामौदारिकं मिश्रं कामणेन यत्र तत्तथा, तद्भवति । तावेव  
पूर्वोक्तौ वैक्रियं मिश्रं कार्मणेन यत्र तत्तथा, तेन युतौ सहिताविति त्रयो योगाः संज्ञिन्यपर्याप्ते  
भवन्ति । तत्र वैक्रियमिश्रयोगोऽस्य देवनारकेषूत्पद्यमानस्य बोद्धव्यः ॥६॥

अथाद्याद्धेन मतान्तरमाह—

विंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।

(यशो.) इह सूत्रकृदङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्मन्धे भाहारपरिज्ञाक्यमृतीयाध्ययने'ओवा.  
हारा जीव सत्त्वे अज्जत्तगे'ति नियुक्तिगाथार्या १२५ तकास्तु इन्द्रियादिभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तकः केषा-

स्त्रिन्मतेन शरीरपर्याप्त्या वा पर्याप्तका गृह्यन्ते” इति विवृत्तिः। ततः शरीरपर्याप्त्यापि पर्याप्ताः पर्याप्ता उच्यन्ते । तेनेन्द्रियादिपर्याप्तीरपेक्षयाऽपर्याप्तानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिककाययोगं केचिदाचक्षते । तथा षाऽऽचाराङ्गस्य लोकविषयाख्यद्वितीयाध्ययनप्रथमोद्देशके पञ्चदशमेदमनोवाकायलक्षणप्रयोगकर्मविषयारे “औदारिककाययोगास्तिर्यग्मनुष्योः शरीरपर्याप्ते-रुद्धर्ष” मिति विवरणम् । नत्वेवं सुरनारकाणां वैक्रियकाययोगः कथं नेष्यते ? पर्याप्ता हि द्विधा, लब्धतः करणतश्च । ततस्तत्र [कृता?] लब्ध्यपर्याप्तानामौदारिकः काययोगो विवक्षितः, लब्ध्यपर्याप्तास्तु देवनारका न भवन्तीति तेषां वैक्रिययोगाऽप्रसङ्गः । करणापर्याप्तानां सुरनारकाणां वैक्रियकाययोगो नरतिरश्चां च औदारिककाययोगो न विवक्षित इति । “बिन्ति भपञ्जत्ताण वि” इत्यौदारिकस्यैवोक्तेरेवानुमीयते । अथवा वैक्रियशरीरिणः शरीरपर्याप्तिरान्त-मौर्हृत्तिका, शेषाः पञ्च सामायिक्य इति । संज्ञिनोऽपर्याप्तकस्य स्वल्पकालत्वेन वैक्रियं न विवक्षित-मिति । लब्धतः करणतश्च पर्याप्तापर्याप्तयोरयं विशेषः—यः रवपर्याप्तीरसमाप्य म्रियते स लब्ध्य-पर्याप्तः । स च ‘आइतिए न त्थ भपञ्जत्तो’ इति वचनादाद्यं पर्याप्तित्रिकं समाप्यैव म्रियेत इति दृश्यम् । यस्मादागामिभवायुष्कं बद्धैव म्रियते । तच्च समापिताद्यपर्याप्तित्रिकेणैव बध्यते, यत औदारिकवैक्रियाहारककाययोगे विशिष्टे परमभायुर्वन्धः । तद्विशिष्टता च न शरीर-पर्याप्त्यैव किन्तु शरीरेन्द्रियपर्याप्तिभ्यां पर्याप्तस्य, अन्यथैकेन्द्रियादिव्यपदेशस्याप्यम वप्रसङ्गः । तद्विपरीतो लब्धपर्याप्तः । यः पुनरुच्छ्वासादिकाः स्वस्वविषयेषु परिणमनं प्रतिसाधकतमत्वेन करणापर्याप्ताः पर्याप्तीर्नाद्यापि पूर्यति परं पूर्यिष्यति स करणापर्याप्तः । यः पूरेतनिजपर्याप्तिः स करणपर्याप्तः । तत्र सुरनारकासंख्यातवर्षाद्युर्नरतिर्यगुत्तमपुरुषचरिमशरीरिणो लब्धतः पर्याप्ता एव भवन्ति, निरूपक्रमायुष्कत्वेनापर्याप्तदशयां मरणाभावात् । निरूपक्रमसोपक्रमायुष्कता चैवम्—यदा जन्तुः स्वायुषस्त्रिभागे त्रिभागत्रिभागे वा जघन्यत एकेन द्वाम्याञ्च, उत्कृष्टतः सप्तभिरष्टाभिर्वाकर्षैरायुःकर्माणुग्रहणरूपैरन्तर्मुहूर्तप्रमाणेन कालेन जीवप्रदेशरचनानादिकान्त-र्वर्तिन आयुःकर्मवर्गणापुद्गलान्विशिष्टवीर्येण करोति, तदा निरूपक्रमायुर्भवति । अन्यदा तु सोपक्रमायुष्क इत्याऽऽचारादीका । आयुषि सप्तभिरष्टाभिर्वाकर्षैर्वातिव मरुषु जगलं दूषग्रहण-रूपैर्यत्पुद्गलोपादानं तदतिदृढमित्यपवर्त्तयितुमशक्यतया निरूपक्रममुच्यते । यत्तु षड्भिः पञ्चभि-श्चतुर्भिर्वा आगृहीतं दलिफं तदपवर्त्तनाकरणेनोपक्रम्यत इति सोपक्रममिति घृहकुस्तराध्ययनटी-केति । करणतस्त्वमी उभयथापि स्युः ।

अत्र संप्रहगाथाः—

“सो लद्धिअपज्जत्तो जो मरइ अपूरिदं अपञ्जत्तो, लद्धिअपज्जत्तो सो पुण जो मरई ताउ पूरित्ता ॥ १ ॥  
नञ्चवि पूरेइ परं पूरित्सइ स इह करणअपज्जत्तो । सो पुण करणअपज्जत्तो जेणं ता पूरया हुन्ति ॥ २ ॥  
नेइइयसुरासंखाउतिरियनरचरिमत्तणुपवरपुरिसा । लद्धिअजत्ता नियमा करणेणं हुन्ति हुविहा वि ॥३॥”

इत्यलम् ।

बायरपज्जते तिन्नि उरलवेउव्वियदुगं च ॥ ७ ॥

(यशो०) बादरपर्याप्तैकैन्द्रियस्य पृथिव्यादेरौदारिककायये गः । वैक्रियो वैक्रियमिश्रश्च बादरपर्याप्तवायुकायिकं प्रतीत्य । तथाहि—अस्य वैक्रियलब्धिमतो वैक्रियः, वैक्रियारम्भत्याग-कालयोरौदारिकेण मिश्रो वैक्रियो वैक्रियमिश्रः, स च योगः प्राप्यते । अत्रौदारिकवैक्रिययोर्मिश्र-तायां समायामपि प्रारम्भकाले प्रारम्भमाणत्वेन त्यागकाले च बहुव्यापारत्वेन वैक्रियस्य प्राधान्याद्वैक्रियमिश्र इति व्यपदेशो, न त्वौदारिकमिश्र इति । ‘विष्वग्गाहारणे उरलमिस्त’ मिति वक्ष्यमाणोक्तेः । अन्ये तु वायोवैक्रियारम्भकाले वैक्रियेण मिश्र औदारिकमिश्र इति व्यप-दिशन्ति । बहुव्यापारत्वेनौदारिकस्य प्राधान्यविवक्षया ॥९॥

अथाद्याद्धेन योगान्समर्थयन् जीवस्थानेष्वेवोपयोगानाह—

उरलं सुहुमे चउसु य भासजुयं पनरसा वि सन्निमि ।

उवओगा दससु तओ अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(यशो०) पज्जत्त’ इति प्रागुक्तानुवृत्त्या सूक्ष्मे पर्याप्त औदारिकः, चतुर्षु च द्वीन्द्रियत्री-न्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु भाषयाऽसत्यामृषारूपया युक्त औदारिकः, चः पुनरर्थत्वात् संज्ञिनि पर्याप्ते पुनः पञ्चदश चतुर्विधमनश्चतुर्विधवाक्सप्तविधकायरूपा योगाः । तत्र वैक्रियमिश्रो गर्भजतिर्यग्मनुष्ययोर्लब्धिमतोवैक्रियस्याऽऽरम्भकाले त्यागकाले च । लब्धि-पर्याप्तस्य च पर्याप्तग्रहणेन ग्रहणादुत्पद्यमानयोरपर्याप्तयोर्देवनारकयोरपि वैक्रियस्यारम्भकाले पर्याप्तयोस्तुभयोरुत्तरवैक्रियारम्भकाले च वैक्रियमिश्रः । आहारकमिश्रस्तु लब्धिमतां संयतानामाहा-रकस्यारम्भकाले त्यागकाले च मन्तव्यः । अन्ये तु तिर्यग्मनुष्ययोर्वैक्रियस्यारम्भकाले, संयतानामा-ऽऽहारकस्यारम्भकाले । केचित्तु तयोः त्यागकाले औदारिकमिश्रमिति मन्यन्ते । औदारिकमिश्रस्तु केवलिसमुद्भाते सप्तमषष्ठ-द्वितीयसमयेषु । कार्मणयोगः पुनस्तत्रैव चतुर्थ-पञ्चमतृतीयसमयेषु द्रष्टव्यः । शेषयोगास्तु मुञ्चाना एव । ‘तओ’ इति त्रय उपयोगा दशसु पर्याप्तापर्याप्तेषु सूक्ष्मनादरैकैन्द्रियद्वी-न्द्रियत्रीन्द्रियेषु अपर्याप्तयोस्तु चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रिययोः त्रय इति व्याचष्टे । ‘अचक्खुदंस-णमनाणदुग’ मिति अचक्षुपा=चक्षुर्वर्जेन्द्रियैर्दर्शनं=सामान्यः शत्राही बोधोऽचक्षुर्दर्शनं पर्याप्तेषु इन्द्रियानाश्रितसामान्योपयोगमात्ररूपं चापर्याप्तेषु । अज्ञानद्विकं=मत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपम् । तत्रास्य द्विकस्य द्वीन्द्रियादिषु सद्भावः स्रपपादः । एकैन्द्रियेषु स्पर्शनावरणश्लयोपशमसमृत्थाया मतेर्माषा-श्रोतेन्द्रियलब्धभावेपि भावेन्द्रियप्रसृतस्थानभिव्यक्तशब्दार्थोन्लेखोपप्लावितोपलब्धिरूपस्य

श्चिन्मतेन शरीरपर्याप्त्या वा पर्याप्तका गृह्यन्ते” इति विशृत्तिः। ततः शरीरपर्याप्त्यापि पर्याप्ताः पर्याप्ता उच्यन्ते । तेनेन्द्रियादिपर्याप्तीरपेक्षयाऽपर्याप्तानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिककाययोगं केचिदाचक्षते । तथा चाऽऽचाराङ्गस्य लोकविषयाख्यद्वितीयाध्ययनप्रथमोद्देशके पञ्चदशभेदमनोवाक्कायलक्षणप्रयोगकर्मविचारे “औदारिककाययोगास्तिर्यग्मनुष्योः शरीरपर्याप्ते-रुद्ध्व” मिति विवरणम् । नत्वेवं सुरनारकाणां वैक्रियकाययोगः कथं नेष्यते ? पर्याप्ता हि द्विधा, लब्धितः करणतश्च । ततस्तत्र [कृता?]लब्ध्यपर्याप्तानामौदारिकः काययोगो विवक्षितः, लब्ध्यपर्याप्तास्तु देवनारका न भवन्तीति तेषां वैक्रिययोगाऽप्रसङ्गः । करणापर्याप्तानां सुरनारकाणां वैक्रियकाययोगो नरतिरश्चां च औदारिककाययोगो न विवक्षित इति । “विंस्ति अपञ्जत्ताण वि” इत्यौदारिकस्यैवोक्तेरेवानुमीयते । अथवा वैक्रियशरीरिणः शरीरपर्याप्तिरान्त-मौर्हृत्तिकी, शेषाः पञ्च सामायिक्य इति । मंझिनोऽपर्याप्तकस्य श्वल्पकालत्वेन वैक्रियं न विवक्षित-मिति । लब्धितः करणतश्च पर्याप्तापर्याप्तयोरयं विशेषः—यः स्वपर्याप्तीरसमाप्य म्रियते स लब्ध्य-पर्याप्तः । स च ‘आइतिए न त्य अपज्जत्तो’ इति वचनादाद्यं पर्याप्तित्रिकं समाप्यैव म्रियेत इति दृश्यम् । यस्मादागामिभवायुष्कं चतुर्धैव म्रियते । तच्च समापिताद्यपर्याप्तित्रिकेणैव चध्यते, यत औदारिकवैक्रियाहारककाययोगे विशिष्टे परमवायुर्बन्धः । तद्विशिष्टता च न शरीर-पर्याप्त्यैव किन्तु शरीरेन्द्रियपर्याप्तिभ्यां पर्याप्तस्य, अन्यथैकेन्द्रियादिव्यपदेशस्याप्यम वप्रसङ्गः । तद्विपरीतो लब्धिपर्याप्तः । यः पुनरुच्छ्वासादिकाः स्वस्वविषयेषु परिणमनं प्रतिसाधकतमत्वेन करणापर्याप्ताः पर्याप्तीर्नाद्यापि पूरयति परं पूरयिष्यति स करणापर्याप्तः । यः पूरेतनिजपर्याप्तिः स करणपर्याप्तः । तत्र सुरनारकासंख्यातवर्षायुर्नरतिर्यगुत्तमपुरुषचरिमशरीरिणो लब्धितः पर्याप्ता एव भवन्ति, निरूपक्रमायुष्कत्वेनापर्याप्तदशार्थां मरणाभावात् । निरूपक्रमसोपक्रमायुष्कता चैवम्—यदा जन्तुः स्वायुषस्त्रिभागे त्रिभागत्रिभागे वा जघन्यत एकेन द्वाभ्याश्च, उत्कृष्टतः सप्तभिरष्टाभिर्वाकर्षैरायुःकर्माणुग्रहणरूपैरन्तर्मुहूर्तप्रमाणेन कालेन जीवप्रदेशरचनानाडिकान्त-वर्तिन आयुःकर्मवर्गणापुद्गलान्विशिष्टवीर्येण करोति, तदा निरूपक्रमायुर्भवति । अन्यदा तु सोपक्रमायुष्क इत्या-ऽऽचारादौका । आयुषि सप्तभिरष्टाभिर्वाकर्षैर्वाभिव मरुषु जगलं दूषग्रहण-रूपैर्यत्पुद्गलोपादानं तदतिदृढमित्यपवर्चयितुमशक्यतया निरूपक्रममुच्यते । यत्तु षड्भिः पञ्चभि-श्चतुर्भिर्वा आगृहीतं दलिङ्गं तदपवर्चनाकरणेनोपक्रम्यत इति सोपक्रममिति घृह्णुत्तराध्ययनदो-केति । करणतस्त्वमी उभयथापि स्युः ।

अत्र संप्रहगायाः—

“सो लद्धिअपज्जत्तो जो मरह अपूरिं अपज्जत्तो, लद्धिपज्जत्तो सो पुण जो मरई ताउ पूरित्ता ॥ १ ॥  
नब्धवि पूरेइ परं पूरित्ताइ स इह करणाअपज्जत्तो । सो पुण करणाअज्जत्तो जेणं ता पूरया ह्वन्ति ॥ २ ॥  
नेरुद्धयसुरासंखाउतिरियनरचरिमत्तणुपवरपुरिसा । लद्धिअज्जसा नियमा करयेणं ह्वन्ति हुधिहा वि ॥३॥”

इत्यलम् ।

बायरपञ्जते तिन्नि उरलवेउव्वियदुगं च ॥ ७ ॥

(यशो०) बादरपर्याप्तैकेन्द्रियस्य पृथिव्यादेरौदारिककायये गः । वैक्रियो वैक्रियमिश्रश्च बादरपर्याप्तवायुकायिकं प्रतीत्य । तथाहि—अस्य वैक्रियलब्धिमतो वैक्रियः, वैक्रियारम्भत्याग-कालयोरौदारिकेण मिश्रो वैक्रियो वैक्रियमिश्रः, स च योगः प्राप्यते । अत्रौदारिकवैक्रिययोर्मिश्र-तायां समायामपि प्रारम्भकाले प्रारम्भमाणत्वेन त्यागकाले च बहुव्यापारत्वेन वैक्रियस्य प्राधान्याद्वैक्रियमिश्र इति व्यपदेशो, न त्वौदारिकमिश्र इति । 'विच्छ्वगाहारगे उरलमिस्स' मिति वक्ष्यमाणोक्तेः । अन्ये तु वायोवैक्रियारम्भकाले वैक्रियेण मिश्र औदारिकमिश्र इति व्यप-दिशन्ति । बहुव्यापारत्वेनौदारिकस्य प्राधान्यविवक्षया ॥ ७ ॥

अथाद्याद्धेन योगान्समर्थयन् जीवस्थानेष्वेवोपयोगानाह—

उरलं सुहुमे चउसु य भासजुयं पनरसा वि सन्निमि ।

उवओगा दससु तओ अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(यशो०) पञ्जत्' इति प्रागुक्तानुष्ठुत्या सूक्ष्मे पर्याप्त औदारिकः, चतुर्षु च द्वीन्द्रियत्री-न्द्रियचतुरिन्द्रियामंझिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु भाषयाऽसत्यामृषारूपया युक्त औदारिकः, चः पुनरर्थत्वात् संज्ञिनि पर्याप्ते पुनः पञ्चदश चतुर्विधमनश्चतुर्विधवाक्समविधकायरूपा योगाः । तत्र वैक्रियमिश्रो गर्भजतिर्यग्मनुष्ययोर्लब्धिमतोवैक्रियस्या-ऽऽरम्भकाले त्यागकाले च । लब्धि-पर्याप्तस्य च पर्याप्तग्रहणेन ग्रहणादुत्पद्यमानयोरपर्याप्तयोर्देवनारकयोरपि वैक्रियस्यारम्भकाले पर्याप्तयोस्तूमयोरुत्तरवैक्रियारम्भकाले च वैक्रियमिश्रः । आहारकमिश्रस्तु लब्धिमतां संयतानामाहा-रकस्यारम्भकाले त्यागकाले च मन्तव्यः । अन्ये तु तिर्यग्मनुष्ययोर्वैक्रियस्यारम्भकाले, संयतानामा-ऽऽहारकस्यारम्भकाले । केचित्तु तयोः त्यागकाले औदारिकमिश्रमिति मन्यन्ते । औदारिकमिश्रस्तु केवलसमृद्धाते सप्तमषष्ठ-द्वितीयसमयेषु । कर्मणयोगः पुनस्तत्रैव चतुर्थ-पञ्चमत्तीयसमयेषु द्रष्टव्यः । शेषयोगास्तु सुज्ञाना एव । 'तओ' इति त्रय उपयोगा दशसु पर्याप्तापर्याप्तेषु सूक्ष्मवादरैकेन्द्रियद्वी-न्द्रियत्रीन्द्रियेषु अपर्याप्तयोस्तु चतुरिन्द्रियासंझिपञ्चेन्द्रिययोः त्रय इति व्याचष्टे । 'अचक्खुदंस-णमनाणदुगं' मिति अचल्लुपा=चल्लुर्वर्जेन्द्रियैर्दर्शनं=सामान्यः, शग्राही बोधोऽचल्लुर्दर्शनं पर्याप्तेषु इन्द्रियानाश्रितसामान्योपयोगमात्ररूपं चापर्याप्तेषु । अज्ञानद्विकं=मत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपम् । तत्रास्य द्विकस्य द्वीन्द्रियादिषु सद्भावः सूपपादः । एकेन्द्रियेषु स्पर्शनावरणक्षयोपशमसमुत्थाया मतेर्भाषा-श्रोतेन्द्रियलब्ध्यभावेपि भावेन्द्रियप्रसृतस्थानभिष्यत्तद्व्यर्थोन्लेखोपप्लावितोपलब्धिरूपस्य

कस्यापि श्रुतस्य च सद्भावः । बुद्धेदनीयप्रादुर्भूताहाराभिलाषात्मकाहारसंज्ञाया इव मतेः श्रुतस्य च मिथ्यात्वाक्रान्तत्वादज्ञानता ॥ ८ ॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।  
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥ ९ ॥

(यशो ) असन्नो'ति लुप्तसप्त रीबहुवचनातं पर्याप्तेष्विति प्रत्येकं सम्बध्यते. ततस्ते पूर्वोक्ता-  
स्त्रयश्चक्षुर्दर्शनयुक्ताश्चत्वारः पर्याप्तेषु चतुरिन्द्रियेष्वसंज्ञिष्वेन्द्रियेषु च योगाः । संज्ञिन्यपर्याप्ते  
पुनरष्टौ । तथाहि-ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं करणापर्याप्तस्याविरतसम्यग्दृशो विमद्गस्तु मिथ्यादृशः,  
नवरं मनुष्यस्य विमद्गस्तिरश्वावधि.विमद्गौ न स्तः, प्रज्ञापनादिषु प्रतिषिद्धत्वात् ; तिर्यक्षु  
हि विमद्गावध्योः प्रतिपतितयोरेवोत्पत्तिः, मनुष्येषु तु विमद्गमे प्रतिपतित एव, अवधौ तु सत्यपि  
तीर्थकरवत् , मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च लब्धितः करणतश्चापर्याप्तस्य मिथ्यादृशः, अचक्षुर्दर्शनं लब्धितः  
करणतश्चापर्याप्तयोः सम्यग्मिथ्यादृशोर्भवतीत्यत एवाह-‘मणानाणे’त्यादि ॥ ९ ॥

अथ प्रथमपादेनोपयोगान् समर्थयन् लेस्या दर्शयन्नाह—

सव्वे सन्निसु एत्तो लेसाओ छावि दुविहमन्निमि ।  
चउरो पढमा बायरअपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(यशो ) संज्ञिषु पारिशेष्यात्पर्याप्तेषु सर्वे द्वादश मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानमत्यज्ञान-  
श्रुताज्ञानविमद्गचक्षुरचक्षुरवधिक्वैवलदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति इति । उपयोगानन्तरं लेस्या  
वक्ष्यन्त इति शेषः । ताश्च द्विविधे पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणे संज्ञिनि षडपि कृष्णनीलकापोती  
तेजसीपद्माशुक्लाभिधाः । बादरापर्याप्तलक्षणे जीवस्थाने प्रथमाश्चतस्रस्तिस्रः प्रतीतास्तैजस्यास्तु  
सद्भावः पुढवीआउवणास्सई'त्यादिवचनाऽविशिष्टत्वेऽपि जघन्यायुर्देवेभ्य ईशानान्तेभ्यश्च्युत्वा  
जघन्यस्थितिरहितस्थितिकेषु शुभपृथिव्युद्काप्रशस्तपलाशादिशेषप्रशस्तोन्पलादिवनस्पति-  
प्लुत्पद्यमाने करणापर्याप्ते । अत्रापि 'प्रथमा' इति सम्बन्धात्तिस्रः प्रथमाः शेषेषु=द्विविधसंज्ञिवादरा-  
पर्याप्तवर्जितेष्वेकादशसु ॥ १० ॥

अथ जीवस्थानेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्कारणं स्थानचतुष्टयमाह—

सत्तऽट्टअट्ट सत्तऽट्ट अट्ट बन्धुदउदीरणामंता ।  
तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओओ ॥११॥

(यशो ) सप्ताष्टौ च अष्टौ च सप्ताष्टौ च अष्टौ चेति संख्यानि यथाक्रमं 'सन्ने' ति भावप्रधान-  
त्वानिर्देशस्य बन्धोदयोदीरणासत्कारुपाणि स्थानानि भवन्तीति

दाशौ बन्धस्य, ततो बन्धस्वरूपप्रच्युतेर्हेतुत्वेन बन्धप्रतिपक्षत्वादुदयोदीरणयोः, तत्राप्युदयविशेष एवोदीरणेत्युदयानन्तरमुदीरणायाः, ततो बन्धस्वरूपप्रच्युतेरहेतुत्वेनोदयोदीरणयोः प्रतिपक्षत्वात्सत्तायाः स्थानानीत्ययमेव बन्धादीनां क्रमः । इह च बन्धादीनां प्रत्येकमेकप्रकारत्वेपि सप्ताष्टादिमूलकर्मापेक्षया सप्ताष्टादिसंख्यात्वम् । तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयनामगोत्रान्तरायात्मनां सप्तानामायुर्वृक्षानामष्टानां कर्मर्षणां बन्धः, एवमुदीरणापि, उदयमत्ते त्वष्टानामेवेति त्रयोदशसु जीवस्थानेषु । संज्ञिनि तु पर्याप्त ओषः=सामान्यं बन्धादीनाम्, विशेषन्तु गुणस्थानक-विशेषापेक्षया "सन्नद्रष्टेगबन्धे" स्यादिना वक्ष्यति । स चैवं सुखार्थं किञ्चिदिहापि दर्शयते ।

अद्वेव य सत्ताउगरहिंया छम्भोहभाउयविउत्ता । सायं एगं एयं चउरो ठाणापि बन्धस्त ॥ १ ॥  
अद सत्ता मोहरहिंया चउरो वेज्जाउनामगोयापि । 'वेज्ज'ति वेदनीयं । सत्ताए उदएवि ठाणापि य पत्तोयं ॥ २ ॥  
अद सत्ता-SSउविणा-ऽणाउवेज्ज छरण अमोहविज्जाऊ दो नामं गोयं तद इय पंच उईरणाट्टाणा ॥ ३ ॥

'अणाउवेज्ज'ति आयुरेदनीयरहितानि षट् । बन्धादीनां स्वरूपमिदम्-निरन्तरं पुद्गल-परिपूर्णलोके कर्मवर्गगानुगुणानामणुनामात्मनश्च बह्व्ययस्मिण्डवत्परस्परमभेदेनेव मिथ्या-त्वादिर्हेतुभिः सम्बन्धो बन्धः । तेषामेव यथास्वस्थितिवद्धानां करणविशेषनिर्मिते स्वामात्रिके वाऽबाधाकालक्षयरूपे स्थित्यपचये सत्युदयसमयमायातानां विपाकवेदनमुदयः । तेषा-मेवानागतफलानां करणविशेषनिर्वर्तिते स्थित्यपचये सत्युदयाऽऽवालिकायां प्रवेशनमुदीरणा । बन्धसंक्रमाम्यां लब्धात्मलामानां कर्मणां निर्जरणसंक्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता ।

अत्र संग्रहगाथाः—

जीवस्त पोग्गलाय य जोगाण परोपरं अभेएणं । भिरुञ्जाइहेउविहिंया जा बहणा एत्य सो बन्धो ॥ १ ॥  
करणेण सहावेण च ठियवचए तेसिमुदययत्ताणं । जं वेयणं विवागेणं सो उदओ जिणाभिहिओ ॥ २ ॥  
कम्माणुणं जाए करणविसेसेण ठियवचयभावे । जं उदयाबलियाए पवेसणमुदीरणा सेह ॥ ३ ॥  
बंधणसंकमलद्धत्तालाहकम्मस्त रूवअविणासे । निज्जरणसंकमेहिं सग्भावो जो य सा सत्ता ॥ ४ ॥

'करणेण'ति सूचितानि करणान्यमूनि—

बंधणसंकमणुव्वट्टणा य अववट्टणा उईरण्या । उवसामणा निहत्ती निकायणा चत्ति करणाइं ॥ १ ॥

अस्था व्याख्या— बन्धनकरणं बन्ध एव ।

पगिइठिइरसपएसाणमभकम्मत्तायेण ठवियाणं । जं अन्नरूमरूवत्ताठावणं संकमो एसो ॥ १ ॥  
ए उववट्टणकरणं जं ठिइरसवुइयपडियपडुषं । ठिइरसहत्तीकरणं करणं अववत्ताणं जाणं ॥ २ ॥  
उदीरणोव्वतैव ।

उदयनिहित्तिनिकायणाउदीरणाणं अजोग्गयत्तेणं । कम्माणं जं ठावणमुवसमणा सा विणिहिट्टा ॥ ३ ॥  
उववट्टणापवत्ताणियरकरणाजोग्गयए कम्माणं । संठावणं निहत्ती निकायणा करणणुवियत्तां ॥ ४ ॥  
सर्वकरणायोग्यमित्यर्थः ॥ ११ ॥

कस्यापि श्रुतस्य च सद्भावः । जुद्धेदनीयप्रादुर्भूताहाराभिलाषात्मकाहारसंज्ञाया इव मतेः श्रुतरय  
च मिथ्यात्वाक्रान्तत्वादज्ञानता ॥ ८ ॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।  
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥ ९ ॥

(यशो ) असन्नो'ति लुप्तसप्त ऋषिद्वयचनानां पर्याप्तेष्विति प्रत्येकं सम्बध्यते. ततस्ते पूर्वोक्ता-  
स्त्रयश्चतुर्दर्शनयुक्ताश्चत्वारः पर्याप्तेषु चतुरिन्द्रियेष्वमंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु च योगाः । संज्ञिन्यपर्याप्ते  
पुनरष्टौ । तथाहि-ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं करणापर्याप्तस्याविरतसम्यग्दृशो विभङ्गस्तु मिथ्यादृशः,  
नवरं मनुष्यस्य विभङ्गस्तिरश्वावधि-विभङ्गौ न स्तः, प्रज्ञापनादिषु प्रतिषिद्धत्वात् ; तिर्यक्षु  
हि विभङ्गावधयोः प्रतिपतितयोरेवोत्पत्तिः, मनुष्येषु तु विभङ्गे प्रतिपतित एव, अवधौ तु सत्यपि  
तीर्थकरवत्, सत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च लब्धतः करणतश्चापर्याप्तस्य मिथ्यादृशः, अचक्षुर्दर्शनं लब्धतः  
करणतश्चापर्याप्तयोः सम्यग्मिथ्यादृशोर्भवतीत्यत एवाह—'मणानाणे'त्यादि ॥ ९ ॥

अथ प्रथमपादेनोपयोगान् समर्थयन् लेश्या दर्शयन्नाह—

सव्वे सन्निसु एतो लेसाओ छावि दुविहमन्निमि ।  
चउरो पढमा वायरअपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(यशो०)संज्ञिषु पारिशेष्यात्पर्याप्तेषु सर्वे द्वादश मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानमत्यज्ञान-  
श्रुताज्ञानविभङ्गचक्षुरचक्षुवधिकेवलदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति इति । उपयोगानन्तरं लेश्या  
वक्ष्यन्त इति शेषः । ताश्च द्विविधे पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणे संज्ञिनि षडपि कृष्णनीलकापोती  
तेजसीपद्माशुक्लाभिधाः । वादरापर्याप्तलक्षणे जीवस्थाने प्रथमाश्चतस्रस्तिन्नः प्रतीतास्तैजस्यास्तु  
सद्भावः पुढवीआउवणस्सई'त्यादित्रयानां विशिष्टत्वेऽपि जघन्यायुर्देवेभ्य ईशानान्तेभ्यश्च श्रुत्वा  
जघन्यस्थितिरहितस्थितिकेषु शुभपृथिव्युदकाप्रशस्तपलाशादिशेषप्रशस्तोत्पलादिवनस्पति-  
पृत्पद्यमाने करणापर्याप्ते । अत्रापि 'प्रथमा' इति सम्बन्धात्तिस्रः प्रथमाः शेषेषु=द्विविधसंज्ञिवादरा-  
पर्याप्तवर्जितेष्वेकादशसु ॥ १० ॥

अथ जीवस्थानेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्कारणं स्थानचतुष्टयमाह—

सत्तऽट्टअट्ट सत्तऽट्ट अट्ट बन्धुदउदीरणामंता ।  
तेरमसु जीवठाणेषु सन्निपज्जत्ताए ओत्रो ॥११॥

(यशो०)सप्ताष्टौ च अष्टौ च सप्ताष्टौ च अष्टौ चेति संख्यानि यथाक्रमं 'सन्ते' सि भावप्रधान-  
त्वाभिर्देशस्य बन्धोदयोदीरणासत्कारणाणि स्थानानि भवन्तीति शेषः । उदयादीनां बन्धाधीनत्वा-



दाशै बन्धस्य, ततो बन्धस्वरूपप्रच्युतेर्हेतुत्वेन बन्धप्रतिपक्षत्वाद्दुदयोदीरणयोः, तत्राप्युदयविशेष एवोदीरणेषुदयानन्तरमुदीरणायाः, ततो बन्धस्वरूपप्रच्युतेरहेतुत्वेनोदयोदीरणयोः प्रतिपक्षत्वात्सत्तायाः स्थानानीत्ययमेव बन्धादीनां क्रमः । इह च बन्धादीनां प्रत्येकमेकप्रकारत्वेपि सप्ताष्टादिमूलकर्मापेक्षया सप्ताष्टादिसंख्यात्वम् । तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयनामगोत्रान्तरायात्मनां सप्तानामायुर्धुक्कानामष्टानां कर्मणां बन्धः, एवमुदीरणापि, उदयमत्ते त्वष्टानामेवेति त्रयोदशसु जीवस्थानेषु । संज्ञिनि तु पर्याप्त ओषः=सामान्यं बन्धादीनाम्, विशेषन्तु गुणस्थानक-विशेषापेक्षया "सन्नदृष्टेगबन्धे" त्यादिना वक्ष्यति । स चैवं सुखार्थं किञ्चिदिहापि दर्शयते ।

अद्वेष य सत्ताउपरहिंया छम्मोहप्राउयविउत्ता । सायं एगं एयं चउरो ठाणाणि बन्धस्स ॥ १ ॥  
अहससरा मोहरहिंया चउरो वेज्जाउनामगोयाणि । 'वेज्ज'तिवेदनीयं । सत्ताए उदएवि ठाणाणि य पत्तोयं ॥ २ ॥  
अहसत्ता-ऽऽउधिणा-ऽणाउवेज्ज छरण अमोहविज्जाऊ दो नामं गोयं तह इय पंच उईरणाट्टाणा ॥ ३ ॥

'अणाउवेज्ज'ति आयुर्वेदनीयरहितानि षट् । बन्धादीनां स्वरूपमिदम्-निरन्तरं पुद्गल-परिपूर्णलोके कर्मवर्गणानुगुणानामणानामात्मनश्च बह्व्ययस्मिण्डवत्परस्परममेदेनेव मिथ्या-त्वादिहेतुभिः सम्बन्धो बन्धः । तेषामेव यथास्वस्थितिबद्धानां करणविशेषनिर्मिते स्वाभाविके वाऽबाधाकालक्षयरूपे स्थित्यपचये सत्युदयसमयमायातानां विपाकवेदनमुदयः । तेषा-मेवानागतफलानां करणविशेषनिर्वर्चिते स्थित्यपचये सत्युदयाऽऽवालिकायां प्रवेशनमुदीरणा । बन्धसंक्रमाम्यां लब्धात्मलामानां कर्मणां निर्जरणसंक्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता ।

### अत्र संग्रहगाथाः—

जीवस्स पोग्गलाण य जोगाण परोपरं अमेएणं । भिरुञ्जाइहेउविहिंया जा चडणा एत्थ सो बन्धो ॥ १ ॥  
करणेण सहावेण च ठियवचए तेसिसुदयनत्ताणं । जं वेयणं धिषामेणं सो उदओ जिणामिहिओ ॥ २ ॥  
कम्माणुणं जाए करणधिसेसेण ठियवचयभावे । जं उदयावळियाए पवेसणमुदीरणा सेह ॥ ३ ॥  
बंधणसंकमलसत्तालाहकम्मस्स रूवअधिणासे । निज्जरणसंक्रमेहिं सग्भावो जो य सा सत्ता ॥ ४ ॥

### 'करणेण'ति सूचितानि करणान्यमूनि—

बन्धणसंकमणुवट्टणा य अवधट्टणा उईरणया । उवसामणा निहत्ती निकायणा चस्ति करणाइं ॥ १ ॥

### अस्या व्याख्या— बन्धनकरणं बन्ध एव ।

पगिइठिरसपएसणमभ्रकम्मत्तायोण ठधियाणं । जं अन्नकम्मरूवत्ताठावणं संकमो एसो ॥ १ ॥  
ए उवधट्टणाकरणं जं ठिरसत्तुडियपडियपडुषं । ठिरसहत्तीकरणं करणं अवचरणं जाणं ॥ २ ॥  
उदीरणोक्तैव ।

उदयनिहितिनिकायणउदीरणं अजोग्गयत्तेणं । कम्मणं जं ठावणमुवसमणा सा विणिहिट्टा ॥ ३ ॥  
उवधट्टणापवत्ताणियरकरणाजोग्गयार्हं कम्माणं । संठावणं निहत्ती निकायणा करणमुवियसं ॥ ४ ॥  
सर्वकरणायोग्यमित्यर्थः ॥ ११ ॥

कस्यापि श्रुतस्य च सद्भावः । जुद्धेदनीयप्रादुर्भू ताहाराभिलापात्मकाहारसंज्ञाया इव मतेः श्रुतरय  
च मिथ्यात्वाक्रान्तत्वादज्ञानता ॥ ८ ॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।

मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥ ९ ॥

(यशो ) असन्नो'ति लुप्तसप्त मीवद्बुचनानां पर्याप्तेष्विति प्रत्येकं सम्बध्यते. ततस्ते पूर्वोक्ता-  
स्त्रयश्चक्षुर्दर्शनयुक्ताश्चत्वारः पर्याप्तेषु चतुरिन्द्रियेष्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु च योगाः । संज्ञिन्यपर्याप्ते  
पुनरष्टौ । तथाहि-ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं करणापर्याप्तस्याविरतसम्यग्दृशो विभङ्गस्तु मिथ्यादृशः,  
नवरं मनुष्यस्य विभङ्गस्तिरश्चश्चावधि-विभङ्गौ न स्तः, प्रज्ञापनादिषु प्रतिषिद्धत्वात् ; तिर्यक्षु  
हि विभङ्गावधयोः प्रतिपतितयोरेवोत्पत्तिः, मनुष्येषु तु विभङ्गे प्रतिपतित एव, अवधौ तु सत्यपि  
तीर्थकरवत्, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च लब्धितः करणतश्चापर्याप्तस्य मिथ्यादृशः, अचक्षुर्दर्शनं लब्धितः  
करणतश्चापर्याप्तयोः सम्यग्मिथ्यादृशोर्भवतीत्यत एवाह- 'मणानाणे'त्यादि ॥ ९ ॥

अथ प्रथमपादेनोपयोगान् समर्थयन् लेश्या दर्शयन्नाह—

सव्वे सन्निसु एत्तो लेसाओ छांवि दुविहमन्निमि ।

चउरो पढमा बायरअपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(यशो ) संज्ञिषु पारिशेष्यात्पर्याप्तेषु सर्वे द्वादश मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानमत्यज्ञान-  
श्रुताज्ञानविभङ्गचक्षुरचक्षुवधिकेवलदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति इति । उपयोगानन्तरं लेश्या  
वक्ष्यन्त इति शेषः । ताश्च द्विविधे पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणे संज्ञिनि षडपि कृष्णनीलकापोती  
तेजसीपद्माशुक्लाभिधाः । बादरापर्याप्तलक्षणे जीवस्थाने प्रथमाश्चतस्रस्तिस्रः प्रतीतास्तैजस्यास्तु  
सद्भावः पुढधीआउरणस्सई'त्यादिवचनाऽविशिष्टत्वेऽपि जघन्यायुर्देवेभ्य ईशानान्तेभ्यश्च्युत्वा  
जघन्यस्थितिरहितस्थितिकेषु शुभपृथिव्युद्काप्रशस्तपलाशादिशेषप्रशस्तोत्पलादिवनस्पति-  
षुत्पद्यमाने करणापर्याप्ते । अत्रापि 'प्रथमा' इति सम्बन्धात्तिस्रः प्रथमाः शेषेषु=द्विविधसंज्ञिवादरा-  
पर्याप्तवर्जितेष्वेकादशसु ॥ १० ॥

अथ जीवस्थानेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यं स्थानचतुष्टयमाह—

सत्तऽट्टअट्ट सत्तऽट्ट अट्ट बन्धुदउदीरणामंता ।

तेरमसु जीवठाणेषु सन्निपज्जत्तए ओशो ॥११॥

(यशो ) सप्ताष्टौ च अष्टौ च सप्ताष्टौ च अष्टौ चेति संख्यानि यथाक्रमं 'सन्ने' सि भावप्रधान-  
त्वान्निर्देशस्य बन्धोदयोदीरणासत्तारूपाणि स्थानानि भवन्तीति शेषः । उदयादीनां बन्धाधीनत्वा-

संज्ञिषुवेन्द्रियाश्च मीनमहिष्याइयस्तिर्यञ्चः । निरयाः=नरकाबासास्तत्रोत्पन्ना अपि जन्तवो  
निरयाः । सुरनरादिषु विषये गतिः सुरनरादिशब्दव्यपदेश्यपर्यायनिबन्धनम् । अत्र प्रायः प्रकृत-  
सुखस्य च्यवनेर्ष्याविषदादेरीषदसुखस्य चाऽऽधारतया प्रथमं सुराणाम् , प्रायोल्पसुखस्य बहो-  
र्बन्ध-वध-परिभव-गर्भोत्पत्ति-जरा-रुगादेरसुखस्य चाऽऽधारतया तदनु नराणाम् , प्रायोल्पसुखस्य  
बहुतरस्य शीतवातातपपारतन्व्यादेरसुखस्य चाऽऽस्पदतया ततस्तिरश्चाम् , परमाधार्मिकपरस्पो-  
दीरणक्षेत्रप्रत्ययबहुतमकेवलसुखनिकेतनतया तदनन्तरं नारकाणां गतिरुक्ता । सर्वदैवातिती-  
व्राज्ञानोदयाद्याधारतया प्रागेकेन्द्रियास्तदपेक्षयोत्तरोत्तरविशिष्टक्षयोपशमसमर्पिताधिकाधिक-  
करणोपबृंहितज्ञानभाक्त्वेन क्रमेण द्वीन्द्रियाद्याः पञ्चेन्द्रियान्ता निर्दिष्टाः । एकेन्द्रियादिव्य-  
पदेशश्चामीषां यथोत्तरं प्रवर्द्धमानमतिज्ञानावरणक्षयोपशमाविर्भूतस्यैकेन्द्रियादिजातिनामकर्मो-  
दयनियमितक्रमस्य पर्याप्तकनामकर्मादिसामर्थ्यसिद्धस्य द्रव्यभावरूपस्पर्शनादेरेकद्वयादीन्द्रिय-  
स्य भाजनत्वात् । प्रायोवादीनां धरणस्खलनादिक्षमाशिथिलावयवतया प्रथमं पृथिवीकायस्य, ततः  
शिथिलावयवतया तद्विषयस्या-ऽऽकायस्य, ततस्तद्विरोधित्वेन तेजस्कायस्य, ततस्तदुपबृंहकत्वेन  
वायोस्ततस्तत्साद्गुण्यवैगुण्यानुसारिणीवनस्पतेः साद्गुण्यवैगुण्य इति वनस्पतिकायस्याथ  
शकलपृथिवीकायाद्युपभोगयोग्यत्वेन त्रसकायस्य निर्देशः ॥१३॥

मणवयकाया जोगा इत्थी पुरिसो नपुंसगो वेया ।

कोहो माणो माया लोभो चउरो कसायत्ति ॥१४॥

(यशो०) काययोगेन मनोयोग्यवर्गणाभ्यो गृहीत्वा मनोरूपेण परिणमितानि वस्तुचिन्ता-  
प्रवर्त्तकानि द्रव्याणि मन इत्युच्यते । तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगो मनोयोगः । उच्यत  
इति वाहू=भाषापरिणतिमापन्नः पुद्गलसमूहस्तया सहकारिण्या तद्विषयो वा योनो  
वाग्योगः । चीयत इति काय औदारिकादिस्तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगः काययोगः ।  
तत्र स्तोकाधारतया प्रथमं मनोयोगस्य, तदपेक्षया ब्रह्माश्रयतया वाग्योगस्य, तदपेक्षयाऽति-  
ब्रह्माश्रयतया तत्पृष्ठे काययोगस्योपन्यासः । यद्गुदये स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः स फुंफकाग्नि-  
समानः स्त्रीवेदः । यद्गुदये पुंसः स्त्रियामभिलाष[स्त्रि](स्तृ)णाग्निज्वालातुल्यः स पुंवेदः । यद्गुदये  
नपुंसकस्य स्त्रीपुंसयोरभिलाषः स महानगरदवाग्निसमो नपुंसकवेदः । तत्र पुरुषवेदापेक्षया  
ब्रह्माश्रितत्वादादौ स्त्रीवेदः, ततः पुरुषवेदः, स्त्री-पुरुषोभयामभिलाषित्वेनातिसंक्लिष्टतया तयोरन्ते  
नपुंसकवेदः । क्रोधो=ऽक्षान्तिस्वरूपो मानो=गर्वो जात्याद्युद्भवममार्दवं माया=ब्रह्मना-  
घात्मिका परिणतिर्लोभो=ऽसंतोषात्मको गार्ह्यपरिणामः; सर्वानुगामित्वादादौ क्रोधस्य, तदनु-

जीवस्थानेषु गुणस्थानादीन्यष्टौ पदान्युक्तानि जीवस्थानगुणस्थानादीनामन्वेषणा-  
रूपाया मार्गणायाः स्थानानि मार्गणास्थानानि मूलमेदापेक्षया चतुर्दशसंख्यान्याह—

एतो गइइंदियकायजोयवेए कमायनाणे य ।

संजमदंमणलेमा भवसम्मे सन्निआहारं ॥१२॥

(यशो०) एतो=जीवस्थानाद्यनन्तरम्, अत्र गतयश्चेन्द्रियाणि चेत्यादिः 'सुरनरतिरिनरयगई'  
। त्यादिविभागानुसारेण विग्रहे यथासम्भवं समाहारद्वन्द्वः, एवन्तु सर्वत्र प्राकृतप्रभवम् । तत्र  
गम्यन्ते स्वपरिगामनिर्मितकर्मपाशावनञ्जन्तुभिरिति गतयः । इन्द्रयाऽऽत्मनो लिङ्गानी-  
न्द्रयाणि । अत्राश्रितेनेन्द्रियेणाश्रयमुपलक्ष्यता इन्द्रियवन्त उक्ता भवन्ति, तथा च 'इगिबिती'  
त्यादिना विमानेन सहाविरंध्यः । एवमन्यत्रापि यथासम्भवं व्याख्येयम् । शीयन्त इति कायाः  
पृथिव्यादयः । कायशब्दश्चात्र शरीर इव पृथिव्यादिजीवनिचये वर्तते, चयसाधर्म्यात् । युज्यते=  
धावनादिक्रियासु व्यापार्यते जीम एभिरिति, युज्यते = संबध्यन्ते धावनादिक्रियायाऽऽसुमन्त  
एभिरिति वा योगाः । वेद्यन्ते = आद्यमिलपोत्पादकत्वेनानुभूयन्त इति वेदाश्चारित्रमोहनीया-  
न्तर्गतकर्मदलिक्रनिकयविशेषाः । कष्यन्ते = नरकादिस्थानेषु देहिनोऽनेनेति कषं=कर्म, कष्यन्ते  
प्राणिनः परस्परमस्मिन्निति कषः=संसारो वा, तदेव, स एव वा, आयो = लाभो येभ्य इति वा.  
कषमयन्ते=गच्छन्त्येभिरिति वा कषायाः । ज्ञायन्ते=निर्णयन्ते सामान्यविशेषात्मकानि वस्तूनि  
विशेषरूपत्वेनैभिरिति ज्ञानानि । सं=सम्यग् यम्यते=निवर्त्यते जन्तुर्जन्तुघातादिभ्य एभिरिति  
संयमाः । दृश्यते सामान्यविशेषाभ्यासितं वस्तुसामान्यरूपतयैभिरिति दर्शनानि । लिश्यति =  
श्लिष्यति कर्मणा प्राणी आभिरिति लेश्याः=सकलकर्मनिस्पन्दभूतकृष्णनीलादिद्रव्यसंवि-  
वस्य जीवस्य शुभा अशुभाश्च परिणामविशेषाः । मुक्तिपर्यायेण भविष्यन्तीति त्रैकालिके-  
ऽच्छ्रत्यये भवाः=भव्याः । जीवादितत्त्वश्रद्धानेन सम्यगश्नन्ति=प्रवर्तन्ते सम्यग्ः=सम्यग्दृश-  
स्तेषां भावाः=सम्यक्त्वानि=जीवादितत्त्वश्रद्धानपरिणामाः । इदं कृतमिदं करोमीदं करिष्यामी-  
त्यादिदीर्घकालत्रयत्रिषयविशिष्टमनोव्यापारवती दीर्घकालिक्यभिधाना संज्ञाऽऽरयाऽऽस्तीति संज्ञी ।  
ओजोलोमप्रक्षेपमेदाश्च त्रिविधमाहारं यथासम्भवमाहारयन्तीत्याहारकाः ॥१२॥

सुरनरतिरिनरयगई 'इगिबितिचउरिंदिया य 'पंचेदी ।

पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणसइतसा काया ॥१३॥

(यशो०) उतानार्था । नवरं भवन्नपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकस्वरूपाः सुराः । सम्पूर्च्छिमा  
गर्मजाश्च प्रतीता नराः । एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सम्पूर्च्छेजमनुष्यव्यतिरिक्ता असंक्षिपञ्चेन्द्रियाः

जीवस्थानेषु गुणस्थानादीन्यष्टौ पदान्युक्तानि जीवस्थानगुणस्थानादीनामन्वेषणा-  
रूपाया मार्गणायाः स्थानानि मार्गणास्थानानि मूलभेदापेक्षया चतुर्दशसंख्यान्याह—

एतो गइइंदियकायजोयवेए कमायनाणे य ।

संजमदंमणलेमा भवसम्मे सन्निआहारे ॥१२॥

(यश्चो०) एतो=जीवस्थानाद्यनन्तरम्, अत्र गतयश्चेन्द्रियाणि चेत्यादिः 'सुरनरतिरिनरयगई'  
ःत्यादिविभागानुसारेण विग्रहे यथासम्भवं समाहारद्वन्द्वः. एत्वन्तु सर्वत्र प्राकृतप्रभवम् । तत्र  
गम्यन्ते स्वपरिगामनिर्मितकर्मपाशावनर्द्धंजन्तुभिरिति गतयः । इन्द्रस्याऽऽत्मनो लिङ्गानी-  
न्द्रियाणि । अत्राश्रितेनेन्द्रियेणाश्रयमुपलक्ष्यता इन्द्रियवन्त उक्ता भवन्ति, तथा च 'इगबिती'  
त्यादिना विभागेन सहाविरोधः । एवमन्यत्रापि यथासम्भवं व्याख्येयम् । चीयन्त इति कायाः  
पृथिव्यादयः । कायशब्दश्चात्र शरीर इव पृथिव्यादिजीवनिचये वर्तते, चयसाधर्म्यात् । युज्यते=  
धावनादिक्रियासु व्यापार्यते जीव एभिरिति, युज्यन्ते = संबध्यन्ते धावनादिक्रिययाऽसुमन्त  
एभिरिति वा योगाः । वेद्यन्ते = आद्यभिलषोत्पादकत्वेनानुभूयन्त इति वेदाश्चारित्रमोहनीया-  
न्तर्गतकर्मदलिक्रमिकविशेषाः । कष्यन्ते = नरकादिस्थानेषु देहिनोऽनेनेति कषं=कर्म, कष्यन्ते  
प्राणिनः परस्परमस्मिन्निति कषः=संसारो वा, तदेव, स एव वा, आयो = लामो येम्य इति वा.  
कषमयन्ते=गच्छन्त्येभिरिति वा कषायाः । ह्यायन्ते=निर्णयन्ते सामान्यविशेषात्मकानि वस्तूनि  
विशेषरूपत्वेनैभिरिति ज्ञानानि । सं=सम्यग् यम्यते=निवर्त्यते जन्तुर्जन्तुघातादिम्य एभिरिति  
संयमाः । दृश्यते सामान्यविशेषाध्यासितं वस्तुसामान्यरूपतयैभिरिति दर्शनानि । लिश्यति =  
श्लिष्यति कर्मणा प्राणी आभिरिति लेश्याः=सकलकर्मनिस्स्यन्दभूतकृष्णनीलादिद्रव्यसच्चि-  
वस्य जीवस्य शुभा अशुभाश्च परिणामविशेषाः । मुक्तिपर्यायेण भविष्यन्तीति त्रैकालिके-  
ऽच्छत्यये भवाः=भव्याः । जीवादितत्त्वश्रद्धानेन सम्यगश्चन्ति=प्रवर्तन्ते सम्यञ्चः=सम्यग्दृश-  
स्तेषां भावाः=सम्यक्त्वानि=जीवादितत्त्वश्रद्धानपरिणामाः । इदं कृतमिदं करोमीदं करिष्यामी-  
त्यादिदीर्घकालत्रयविषयविशिष्टमनोव्यापारवती दीर्घकालिक्यभिधाना संज्ञाऽस्याऽस्तीति संज्ञी ।  
ओजोलोमप्रक्षेपभेदान् त्रिविधमाहारं यथासम्भवमाहारयन्तीत्याहारकाः ॥१२॥

सुरनरतिरिनरयगई 'इगबितिचउरिंदिया य 'पंचेदी ।

पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणसइतसा काया ॥१३॥

(यश्चो०) उत्तानार्था । नवरं भवत्पतिच्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकस्वरूपाः सुराः । सम्पृच्छिमा  
गर्मजाश्च प्रतीता नराः । एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सम्पृच्छंजमनुष्यव्यतिरिक्ता असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः

संज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च मीनमहिष्याद्यस्तिर्यञ्चः । निरयाः=नरकाबासारतत्रोत्पन्ना अपि जन्तवो  
 निरयाः । सुरनरादिषु विषये गतिः सुरनरादिशब्दव्यपदेश्यपर्यायनिबन्धनम् । अत्र प्रायः प्रकृष्ट-  
 सुखस्य च्यवनेर्ष्याविषादादेरीषदसुखस्य चाऽऽधारतया प्रथमं सुराणाम् , प्रायोन्पसुखस्य चहो-  
 र्वन्ध-वध-परिमव-गर्भोत्पत्ति-जरा-रुगादेरसुखस्य चाऽऽधारतया तदनु रराणाम् , प्रायोन्पसुखस्य  
 बहुतरस्य शीतवातातपपारतन्व्यादेरसुखस्य चाऽऽस्पदतया ततस्तिरश्चाम् , परमाधार्मिकपरस्पो-  
 दीरणक्षेत्रप्रत्ययबहुतमकेवलसुखनिकेतनतया तदनन्तरं नारकाणां गतिरुक्ता । सर्वदेवातिती-  
 व्राज्ञानोदयाद्याधारतया प्रागेकेन्द्रियास्तदपेक्षयोत्तरोत्तरविशिष्टक्षयोपशमसमर्पिताधिक्राधिक-  
 करणोपबृंहितज्ञानमाकृत्वेन क्रमेण द्वीन्द्रियाद्याः पञ्चेन्द्रियान्ता निर्दिष्टाः । एकेन्द्रियादिव्य-  
 पदेशश्चासीषां यथोत्तरं प्रवर्द्धमानमतिज्ञानावरणक्षयोपशमाविभूतस्यैकेन्द्रियादिजातिनामकर्मो-  
 दयनियमितक्रमस्य पर्याप्तकनामकर्मादिसामर्थ्यसिद्धस्य द्रव्यभावरूपस्पर्शनादेरेकद्वयादीन्द्रिय-  
 स्य भाजनत्वात् । प्रायोवादीनां धरणस्खलनादिक्षमाशिथिलावयवतया प्रथमं पृथिवीकायस्य, ततः  
 शिथिलावयवतया तद्विपक्षस्या-ऽष्कायस्य, ततस्तद्विरोधित्वेन तेजस्कायस्य, ततस्तदुपबृंहकत्वेन  
 वायोस्ततस्तत्साद्गुण्यवैगुण्यानुसारिणीवनस्पतेः साद्गुण्यवैगुण्य इति वनस्पतिकायस्याथ  
 शकलपृथिवीकायाद्युपभोगयोग्यत्वेन त्रसकायस्य निर्देशः ॥१३॥

मणवयकाया जोगा इत्थी पुरिसो नपुंसगो वेया ।  
 कोहो माणो माया लोभो चउरो कसायत्ति ॥१४॥

(यशो०) काययोगेन मनोयोग्यवर्गणाभ्यो गृहीत्वा मनोरूपेण परिणमितानि वस्तुचिन्ता-  
 प्रवर्चकानि द्रव्याणि मन इत्युच्यते । तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगो मनोयोगः । उच्यत  
 इति वाङ्=भाषापरिणतिमापन्नः पुद्गलसमूहस्तया सहकारिण्या तद्विषयो वा योगो  
 वाग्योगः । चीयत इति काय औदारिकादिस्तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगः काययोगः ।  
 तत्र स्तोकाधारतया प्रथमं मनोयोगस्य, तदपेक्षया ब्रह्माश्रयतया वाग्योगस्य, तदपेक्षयाऽति-  
 ब्रह्माश्रयतया तत्पृष्ठे काययोगस्योपन्यासः । यदुदये स्त्रियाः पुंस्यमिलाषः स फुंफकाग्नि-  
 समानः स्त्रीवेदः । यदुदये पुंसः स्त्रियाममिलाष[स्त्रि](स्त)णाग्निज्वालातुच्यः स पुंवेदः । यदुदये  
 नपुंसकस्य स्त्रीपुंसयोरमिलाषः स महानगरदवाग्निसमो नपुंसकवेदः । तत्र पुरुषवेदापेक्षया  
 ब्रह्माश्रितत्वादादौ स्त्रीवेदः, ततः पुरुषवेदः, स्त्री-पुरुषोभयामिलाषित्वेनातिसंक्लिष्टतया तयोरन्ते  
 नपुंसकवेदः । क्रोधो=ऽक्षान्तिस्वरूपो मानो=गर्वो जात्याद्युद्भवममार्दवं माया=ब्रह्मना-  
 धात्मिका परिणतिलोभो=ऽन्तोपात्मको गार्ह्यपरिणामः; सर्वानुगामित्वादादौ क्रोधस्य, तदनु-

जीवस्थानेषु गुणस्थानादीन्यष्टौ पदान्युक्तानि जीवस्थानगुणस्थानादीनामन्वेषणा-  
रूपाया मार्गणायाः स्थानानि मार्गणास्थानानि मूलमेदापेक्षया चतुर्दशसंख्यान्याह—

एतो गृह्णदियकाय जोयवेए कमायनाणे य ।

संजमदंमणलेमा भवसम्मे सन्निआहारं ॥१२॥

(यशो०) एतो=जीवस्थानाद्यनन्तरम्, अत्र गतयश्चेन्द्रियाणि चेत्यादिः 'सुरनरतिरिनरयगई'  
। त्यादिविभागानुसारेण विग्रहे यथासम्भवं समाहारद्वन्द्वः, एत्वन्तु सर्वत्र प्राकृतप्रभवम् । तत्र  
गम्यन्ते स्वपरिगामनिमित्तकर्मपाशावनर्द्धं जन्तुभिरिति गतयः । इन्द्रस्याऽऽत्मनो लिङ्गानी-  
न्द्रियाणि । अत्राश्रितेनेन्द्रियेणाश्रयमपलक्षयता इन्द्रियवन्त उक्ता भवन्ति, तथा च 'इगिबिती'  
त्यादिना विभागेन सहाविरोधः । एवमन्यत्रापि यथासम्भवं व्याख्येयम् । चीयन्त इति कायाः  
पृथिव्यादयः । कायशब्दश्चात्र शरीर इव पृथिव्यादिजीवनिचये वर्तते, चयसाधर्म्यात् । युज्यते=  
घावनादिक्रियासु व्यापार्यते जीव एभिरिति, युज्यन्ते = संबध्यन्ते घावनादिक्रियायाऽसुमन्त  
एभिरिति वा योगाः । वेद्यन्ते = आद्यभिलषोत्पादकत्वेदानुभूयन्त इति वेदाश्चारित्रमोहनीया-  
न्तर्गतकर्मदलिकनिकयविशेषाः । कष्यन्ते = नरकादिस्थानेषु देहिनोऽनेनेति कषं=कर्म, कष्यन्ते  
प्राणिनः परस्परमस्मिन्निति कषः=संसारो वा, तदेव, स एव वा, आयो = लाभो येस्य इति वा.  
कषमयन्ते=गच्छन्त्येभिरिति वा कषायाः । ज्ञायन्ते=निर्णयन्ते सामान्यविशेषात्मकानि वस्तूनि  
विशेषरूपत्वेनैभिरिति ज्ञानानि । सं=सम्यग् यम्यते=निवर्त्यते जन्तुर्जन्तुघातादिभ्य एभिरिति  
संयमाः । दृश्यते सामान्यविशेषाध्यासितं वस्तुसामान्यरूपतयैभिरिति दर्शनानि । लिश्यति =  
श्लिष्यति कर्मणा प्राणी आभिरिति लेश्याः=सकलकर्मनिस्पन्दभूतकृष्णनीलादिद्रव्यसच्चि-  
वस्य जीवस्य शुभा अशुभाश्च परिणामविशेषाः । मुक्तिपर्यायेण भविष्यन्तीति त्रैकालिके-  
ऽप्रत्यये भवाः=भव्याः । जीवादितत्त्वश्रद्धानेन सम्यगञ्चन्ति=प्रवर्तन्ते सम्यञ्चः=सम्यग्दृश-  
स्तेषां मात्राः=सम्यक्त्वानि=जीवादितत्त्वश्रद्धानपरिणामाः । इदं कृतमिदं करोमीदं करिष्यामी-  
त्यादिदीर्घकालत्रयविषयविशिष्टमनोव्यापारवती दीर्घकालिक्यभिधाना संज्ञाऽऽस्तातीति संज्ञी ।  
ओजोलोमप्रक्षेपमेदान् त्रिविधमाहारं यथासम्भवमाहारयन्तीत्याहारकाः ॥१२॥

सुरनरतिरिनरयगई 'इगिबितिचउरिंदिया य 'पंचेदी ।

पुठवी आऊ तेऊ वाऊ वणसइतसा काया ॥१३॥

(यशो०) उतानार्था । नहरं भववपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकस्वरूपाः सुराः । सम्मूर्च्छिमा  
गर्मजाश्र प्रतीता नराः । एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सम्मूर्च्छजमनुष्यव्यतिरिक्ता असंक्षिपञ्चेन्द्रियाः

संज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च मीनमहिष्याइयस्तिर्यश्चः । निग्थाः=नरकाबासास्तत्रोत्पन्ना अपि जन्तवो  
निरयाः । सुरनरादिषु विषये गतिः सुरनरादिशब्दव्यपदेश्यपर्यायनिबन्धनम् । अत्र प्रायः प्रकृष्ट-  
सुखस्य च्यवनेर्ष्याविषादादेरीषदसुखस्य चाऽऽधारतया प्रथमं सुराणाम् , प्रायोल्पसुखस्य बहो-  
र्वन्ध-वध-परिभव-गर्भोत्पत्ति-जरा-रुगादेरसुखस्य चाऽऽधारतया तदनु नराणाम् , प्रायोल्पसुखस्य  
बहुतरस्य शीतवातातपपारतन्व्यादेरसुखस्य चाऽऽस्पदतया ततस्तिरश्चाम् , परमाधार्मिकपरस्परो-  
दीरणक्षेत्रप्रत्ययबहुतमेवलसुखनिकेतनतया तदनन्तरं नारकाणां गतिरुक्ता । सर्वदैवातिती-  
व्राज्ञानोदयाद्याधारतया प्रागेकेन्द्रियारतदपेक्षयोत्तरोत्तरविशिष्टक्षयोपशमसम्पिताधिकाधिक-  
करणोपष्टुहितज्ञानभाक्त्वेन क्रमेण द्वीन्द्रियाद्याः पञ्चेन्द्रियान्ता निर्दिष्टाः । एकेन्द्रियादिव्य-  
पदेशश्चामीषां यथोत्तरं प्रबद्धमानमतिज्ञानावरणक्षयोपशमाविभूर्तस्यैकेन्द्रियादिजातिनामकर्मो-  
दनियमितक्रमस्य पर्याप्तकनामकर्मादिसामर्थ्यसिद्धस्य द्रव्यमावरूपस्पर्शनादेरेकद्वयादीन्द्रिय-  
स्य भाजनत्वात् । प्रायोवादीनां धरणस्खलनादिक्षमाशिशिलावयवतया प्रथमं पृथिवीकायस्य, ततः  
शिशिलावयवतया तद्विषयस्या-ऽष्कायस्य, ततस्तद्विरोधित्वेन तेजस्कायस्य, ततस्तदुपष्टुहितत्वेन  
वायोस्ततस्तत्साद्गुण्यवैगुण्यानुसारिणीवनस्पतेः साद्गुण्यवैगुण्य इति वनस्पतिकायस्याथ  
शकलपृथिवीकायाद्युपभोगयोग्यत्वेन त्रसकायस्य निर्देशः ॥१३॥

मणवयकाया जोगा इत्थी पुरिसो नपुंसगो वेया ।

कोहो माणो माया लोभो चउरो कसायत्ति ॥१४॥

(यशो०) काययोगेन मनोयोग्यवर्गणाभ्यो गृहीत्वा मनोरूपेण परिणमितानि वस्तुचिन्ता-  
प्रवर्तकानि द्रव्याणि मन इत्युच्यते । तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगो मनोयोगः । उच्यत  
इति वाहू=भाषापरिणतिमापन्नः पुद्गलसमूहस्तया सहकारिण्या तद्विषयो वा योगो  
वाग्योगः । चीयत इति काय औदारिकादिस्तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगः काययोगः ।  
तत्र स्तोकाधारतया प्रथमं मनोयोगस्य, तदपेक्षया ब्रह्माश्रयतया वाग्योगस्य, तदपेक्षयाऽति-  
ब्रह्माश्रयतया तत्पृष्ठे काययोगस्योपन्यासः । यदुदये स्त्रियाः पुंस्यमिलाषः स फुंफकाग्नि-  
समानः स्त्रीवेदः । यदुदये पुंसः स्त्रियाममिलाष[स्त्रि](स्त)णाग्निज्वालातुल्यः स पुं वेदः । यदुदये  
नपुंसकस्य स्त्रीपुंसयोरमिलाषः स महानगरदवाग्निसमो नपुंसकवेदः । तत्र पुरुषवेदापेक्षया  
ब्रह्माश्रितत्वादादौ स्त्रीवेदः, ततः पुरुषवेदः, स्त्री-पुरुषोभयामिलाषित्वेनातिसंक्लिष्टतया तयोरन्ते  
नपुंसकवेदः । क्रोधो=ऽक्षान्तिस्वरूपो मानो=गर्वो जात्याद्युद्भवममार्दवं माया=ब्रह्मना-  
धात्मिका परिणतिलोभो=ऽसंतोषात्मको गार्ह्यपरिणामः; सर्वानुगामित्वादादौ क्रोधस्य, तदनु-



तत्संबद्धत्वान्मानस्य, लोभार्थं मायोपादीयत इति ततो लोभकारणत्वान्मायायाः, ततस्तत्कार्य-  
त्वात्सर्वदोषाश्रयत्वात्सर्वगुरुत्वात्सर्वोपरिक्षपणक्रमाद्वा लोभस्योपादानम् । 'कसायसि' इतिशब्द  
उपप्रदर्शनार्थः ॥१४॥

मइसुयओहीमणके वलाणि महसुयअनाणविब्भंगा ।

सामइयछेयपरिहा-रसुहुमअहखायदेसजयअजया ॥१५॥

(यशो०) "पदैकदेशे पवससुवाय" इति न्यायान्मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमनःपर्यायज्ञान-  
केवलज्ञानानीति मन्तव्यम् । एवं च्छेदादिष्वपि । योग्यदेशस्थितस्यार्थस्येन्द्रियाण्याश्रित्य मननं  
मतिस्तद्रूपं ज्ञानम्, श्रवणं श्रुतं शब्दसंपृक्तार्थप्रत्ययः, यदि वा श्रूयत इति श्रुतं=शब्दस्तत्पुनर्ज्ञानं  
कारणे कार्योपचारद्वारा । अवधानम्=इन्द्रियाद्यनपेक्षतयात्मनः साक्षात्कारेण वस्तुग्रहणम्, यदि  
वाऽवधि=मर्यादा तेन रूपिद्रव्यमर्यादात्मकेन यज्ज्ञानमुत्पद्यते तदप्युपचारादवधिः । मनसां  
पर्याया=श्चिन्तनानुगुणाः परिणामास्तेषु ज्ञानम्, अथवा मनांसि पर्येति=सर्वात्मना जानातीति  
कर्मण्यणि मनःपर्यायम्, तच्च तज्ज्ञानं च मनःपर्यायज्ञानम्, एतेषां च ज्ञानानां यथास्वमन्यत्र  
भेदा उक्ता अपि प्रस्तुताऽपयोगित्वान्नेहोच्यन्ते । केवलं=तद्भावे शेषज्ञानाभावादेकमित्यर्थः,  
तच्च तज्ज्ञानं च केवलज्ञानमिति ज्ञानानि पञ्च । इह स्वामि-काल-कारण-विषय-परोक्षत्व-साधर्म्या-  
त्तद्भावे च शेषज्ञानसद्भावादादावेव मति-श्रुतयोरुपन्यासः । तत्र स्वामी मतिश्रुतयोरेकः । कालः  
स्थितिकालः प्रधाहापेक्षयाऽतीतादिः सर्व एव । अप्रतिपतितैकजीवापेक्षयोत्कृष्टतः षट्षष्टि-  
सागरोपमाण्यधिकानि । कारणं तत्रापि मतिपूर्वकत्वान्मतिभेदत्वाद्वा श्रुतस्य प्रथमं मतेस्ततः  
श्रुतस्य । ततो जीवस्य साक्षात्कारेण व्याप्रियमाणत्वेन विशिष्टत्वात्कालविपर्ययस्वामिलाभ-  
साधर्म्याद्वाद्यज्ञानद्वयानन्तरमत्रघेर्ग्रहः । तथाहि-य एव मतिश्रुतयोरुक्तः कालः स एवावधेः ।  
यथा च मतिश्रुतयोर्विपक्षेऽज्ञाने, तथास्य विभङ्गः । य एव च तयोः स्वामी स एवास्यापि ।  
तथा विभङ्गज्ञानिनः सुरादेः सम्यक्त्वावाप्तौ युगपदेव मतिश्रुतावधिज्ञानानां लाभः । ततो  
विशुद्धचारित्रसव्यपेक्षत्वेनातिविशिष्टत्वान्मनःपर्यायस्य । एभ्यः सर्वेभ्य उत्कृष्टत्वादन्ते केवल-  
ग्रहणम्, आद्यज्ञानत्रयविपक्षभूतानि 'नाण' इत्युद्देशश्चिदानि मत्यज्ञानादीनि तु श्रीण्यज्ञानानि ।  
तत्र मतिज्ञानमपि मिथ्यादृशो नञः कुत्सार्थत्वान्मिथ्यात्वसंचलितत्वेन कुत्सितं ज्ञानं मत्यज्ञानम् ।  
एवमस्य श्रुतज्ञानमपि श्रुताज्ञानम् । एवमस्यावधिज्ञानमपि । विविधो विरूपो वा सम्यग्ज्ञान-  
वैदृश्येन मद्भगः=परिच्छेदप्रकाशोऽस्मादिति विभङ्गस्तद्रूपं ज्ञानं विभङ्गज्ञानमुच्यते । अत्र  
विभङ्गध्वनिनैव कुत्साया गमित्वान्न ज्ञानशब्दो नञा विशेषितः । एषामपि क्रमकारणमाद्यज्ञान-  
त्रयवद्विज्ञेयः । सामायिकादयः पञ्च संयमाः । तत्र समो=रागद्वेपरहितस्य ज्ञानादीनामायो=लाभः  
समायः, स एव सामायिकं चारित्राचारकर्मक्षयोपशमसमुत्थः सर्वविरतिरूपो जीवपरिणतिविशेष-

स्तपश्चविधमपि सामान्यतः सामायिकमुच्यते । केवलं यच्छेदोपस्थापनीया.देभेदोपसेवितं तत्तरेव-  
 भेदैरौचित्येन निगद्यते । यत्तुक्तभेदवन्ध्यं तत्सामान्येन सामायिकमुच्यते । तच्च द्वैधमल्पकालिकं  
 यावज्जीविकं च, तत्राद्यं भरतैरावते.वादिमान्तिमतीर्थकरतीर्थेष्वनारोपितमहाव्रतरय, द्वितीयं तु  
 मध्यमतीर्थकरतीर्थवर्तिनां विदेहतीर्थान्तर्दतिनां च । छेदोपस्थापनात्स्त्रिकाया[या] उपस्थापनाया  
 [त्स](अ)भावाद्विज्ञेयम् । प्राचीनपर्यायच्छेदाच्छेदश्च महाव्रतेषूपस्थापनं चात्मनो यत्र तच्छेदो-  
 पस्थापनम् । तत्सातिचारमितरश्च । तत्र सातिचारं मूलगुणघातिनः पुनर्व्रतारोपरूपम् । इतरन्निरति-  
 चारमल्पकालिक.सामायिकस्य व्रतारोपणात्मकम्, तीर्थात्तीर्थान्तरसंक्रमे वा चतुर्यामधर्मात् पञ्चया-  
 मधर्माभ्युपगम इति । परिहारेण तपोविशेषण विशुद्धिर्यत्र तत्परिहारविशुद्धिकम् । तद्द्विविधम् ।  
 निर्विशमानकं निविष्टकायिकं च । तत्र निर्विशमानकांस्तदा सेवकाः परिहारिकास्तदभेदात्तदपि  
 निर्विशमानकम् । निविष्ट=आसेवितप्रस्तुतचारित्रः कायो येषां ते स्वार्थिकैक.ण निविष्टकायिका  
 अनुपारिहारिकाः । कल्पस्थितश्च कृतप्रस्तुततपसस्तदभेदाच्चारित्रमपि निविष्टकायिकम् । तत्र चत्वारो  
 यतयः पारिहारिका अनुपारिहारिकाश्चत्वारः कल्पस्थितस्तु वाचनाचार्य एक इति नवको गणः ।  
 प्रथमसंहन्तो जन्मत आरम्य जघन्यत एकोनत्रिंशद्वर्षो यतित्वमाश्रित्य विंशतिवर्ष उभयमनु-  
 श्रृत्योत्कृष्टतो देशोनूर्वकोटिको गणगणनाश्रयणेन जघन्यतस्त्रिसंख्य उत्कृष्टतः शतशः  
 पुरुषापेक्षया सप्तविंशतिसंख्यपुरुषा उत्कृष्टतः सहस्रशो जघन्यतोप्यवगाढनवमपूर्ववृत्तीयाचारा-  
 मिधानवस्त्वसानदृष्टिवाद उत्कृष्टतोऽपरिपूर्णदशपूर्वो गच्छान्निर्गत्य तीर्थकरस्य सन्निधानासेवित-  
 तत्तपसो वा सन्निधौ ग्रीष्मे जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदतो यथाक्रमं चतुर्थपष्टाष्टमान्तं शिशिरे  
 षष्ठाष्टमदशमान्तं वर्षास्वष्टमदशमद्वादशमान्तं संसृष्टा-ऽसंसृष्टवर्जितोद्धृताल्पलेपावगृहीता भिक्षाग्रह-  
 भक्तपानात्मकभिक्षाद्वयाभिग्रहपवित्राचामाश्लपारणकं पारिहारिकानुपारिहारिककल्पस्थितापेक्षया  
 प्रत्येकं पाणमासावधि समुदितापेक्षयाष्टादशमासावसानमेतत्तपः प्रतिपद्यते । परं प्रथमं पारिहारिकै  
 स्ततोऽनुपारिहारिकैः प्रतिपन्नपारिहारिकैः 'भावैरस्मिस्तपसि पूर्णतां नीते कल्पस्थित इदं तपः करोति,  
 शोपास्त्वनुपारिहारिककल्पस्थितत्वे प्रतिपद्यन्ते, एतत्तपःममाप्तौ सर्वेप्यमी पुनरिदमेव जिनकल्पं  
 गच्छं वा समाश्रयन्ति । तत्र ये भूयो गच्छमाना गच्छन्ति त इत्वराः शुद्धपारिहारिकास्तेषां  
 संहरणोपसर्गात्तद्भवेदनानामभाव एतत्तपःप्रभावादेव । ये तु जिनकल्पं प्रतिपद्यन्ते ते यावत्क-  
 थिकास्तेषां संहरणादयो भाज्याः । ततश्चैषाणुभयेषां चारित्रं परिहारविशुद्धिकम् । सूक्ष्मः=किष्टीकृ-  
 तलोमलक्षणः संपरायः=कषायो यत्र तत्सूक्ष्मसंपरायम् । इदं च विशुध्यमानकं क्षपकोपशमयश्रे-  
 णिद्वयमारोहतो भवति । संक्लिरयमानकं तूपशमश्रेणितः प्रतिपद्यतः । सर्वकषायेभ्योऽकपायचारित्रं  
 शुद्धं भवतीति जिनसमये समाख्यातम् । ततो यथैवाख्यातं समये तथैव यच्चारित्रं तद्यथाख्यातम् ।  
 सर्वथैव कपायोदयशून्यमित्यर्थः । अहक्खायमिति तु 'कगचजतदपयवां प्राथो लुगि' त्यनेन

बाहुलकादादिस्थस्यापि यस्य लोपे निर्देष्टः, यद्वा 'अहसहो जाहृत्ये आङोऽभिधिहीर्षे कहियमङ्खाय । चरणमकसायमुश्य तमहङ्खाय अहङ्खाय' ॥ मिति च वचनादथशब्दो यथार्थः । ततोऽथैव= यथैवाऽकपायतयेत्यर्थः, आ=अभिधिधिना-ऽऽख्यात=पुवतमथाख्यातम् । इदं चौपशान्तमोह-क्षीणमोहसयोग्ययोगिकेवलिसम्बन्धितया चतुर्द्धा । इहच्छेदोपस्थापनीयादिविशेषाविवक्षया सामान्यं सामायिकमादा, चरोत्तरविशुद्धाऽऽधारतयाच्छेदोपस्थापनीयादीनि क्रमेणोपन्यस्थानीति संयमाः । स्वामिनस्तु पुलाक-बकुश-प्रतिसेवनाकुशीला आद्यद्वितीयसंयमयोः, कषायकुशीलोन्त्य-षज्जानाम्, निर्ग्रन्थस्नातकावन्त्यस्य । पुलाकाद्यस्तु पुलाकोद्देशकादवसेयाः । संयमविपक्षतया च 'संयमे' त्युद्देशश्चिंतौ संयमासंयमाऽसंयमरूपौ धर्मे धर्मिणि उपचाराद्देश्यतायतायुक्तौ । व्याख्यास्यमानार्थं ता चोत्कृष्टतया देश्यतः प्रथमं निर्दिष्टस्ततोऽप्यतः ॥१५॥

अच्चखुत्रखुओही केवलदंसणमओ य छल्लेसा ।

किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥१६॥

(यशो.) इह दर्शनशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धादचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमित्यादि दृश्यम् । तत्राच-क्षुषा=चक्षुर्वेजेन्द्रियचतुष्टयेन मनसा च सामान्यविशेषात्मनोवस्तुनः सामान्यांशग्राही बोधोत्पा-दसमयेऽपि सद्भावेनेन्द्रियानाश्रितसामान्योपयोगमात्रं चाऽचक्षुर्दर्शनम् । चक्षुषोक्तरूपस्य वस्तुनः सामान्यांशग्रहणात्मकं दर्शनं चक्षुर्दर्शनम् । अवधिना=रूपद्रव्यमर्यादयावधिरेव वा करणनिरपेक्ष-बोधरूपो दर्शनं सामान्यार्थोपादानमधिदर्शनम् । केवलेन=सम्पूर्णवस्तुतत्त्वग्राहिबोधविशेषरूपेण दर्शनं वस्तुसामान्यांशग्रहणं केवलदर्शनम् । तत्र चाऽचक्षुर्दर्शनमेकेन्द्रियादीनामपि भवतीत्यवि-शिष्टत्वात्प्रथममचक्षुर्दर्शनम् । तत उत्तरोत्तरविशिष्टतया चक्षुर्दर्शनादीन्युक्तानि । अतो लेश्या विभज्यन्त इति शेषः । ताश्च कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुद्धलद्रव्यसाच्चियोपनीततत्तत्परिणाम-विशेषोदयासादितकृष्णनीलादिव्यपदेशभाजः षट्, 'मूलं साहरस हा गुच्छफले भूमिपञ्चियमक्लणया । सर्वं माणुसपुरिसे सावहजुर्क्षतधणहरणा ॥' इति गार्थोक्तजम्बूखादकग्रामघातकोदाहरणद्वय-प्रतीततात्पर्यार्थाः । तत्र प्रकर्षपदप्राप्ताशुद्धिकत्वेन प्रथमं कृष्णां लेश्यामुपदर्शयित्वा चरोत्तराधिक-विशुद्धतयोक्तक्रमेण नीलाकापोताद्याः प्रदर्शिताः ॥१६॥

भव्वअभव्वा खउवसम खइय उवसमिय मीस सासाणा ।

मिच्छो य सन्नसन्नी आहारणहार इय भेया ॥१७॥

(यशो.) भव्या=पुक्त्यर्हास्तद्विपक्षतया 'भवै' त्युद्देशश्चिन्ताश्चा-ऽभव्याः । इह भव्यानां भव्य-त्वमनादिकालसिद्धमेवमभव्यानामप्यभव्यत्वम् । इदं भव्यत्वमभव्यत्वं चानादिकालसंसिद्धमपि केवलानां प्रत्यक्षसिद्धम् । चर्मचक्षुषामनुमानगम्यम् । लिङ्गं त्विदम्-यः संसारविपक्षं मोक्षं प्रतिप-

घते तदमिलाषं च सस्पृहं वहति, किमहं भव्योऽभव्यो वा, यदि भव्यस्तदा भव्यम्, अथामव्यस्तदा धिग्मामित्यादि चिन्तयति कदाचित्स भव्य इति भव्यत्वस्येति । यस्य नेदृशी चिन्ता कदाचित्सोऽभव्य इत्यभव्यत्वस्येति । मिथ्यात्वमोहनीयस्योदीर्णस्य क्षयादनुदीर्णरथानुविपाकत उपशान्तत्वात् क्षयोपशमाभ्यां निवृत्तं क्षायोपशमिकम् । अनन्तानुबन्धिकपायचतुष्टयक्षयपूर्वकेण सम्यक्त्वमिश्रमिथ्यात्वरूपस्य दर्शनत्रिकस्य विशुद्धा-ऽध्यवसायात्सर्वथा दत्तिकन्तिर्लेपनाकरणरूपेण क्षयेण निवृत्तं क्षायिकम् । उदयमायातस्य मिथ्यात्वरय क्षयेऽनुदीर्णरय सत्तामात्रवर्तिनः प्रदेशतयाप्युदयविघातरूपेणोपशमेन निवृत्तमौपशमिकम् । तत्र संसारिणां क्षायिकापेक्षया प्रभूतकालभावित्वेनादौ क्षायोपशमिकस्य, ततः क्षायिकस्य, ताभ्यामप्यल्पकालत्वेनौपशमिकस्य पश्चाद्भिर्देश इति सम्यवत्वानि । एतद्विपक्षतया "सम्मे"त्युद्देशश्चिदानि मिश्र-सास्वादन-मिथ्यात्वादीनि वक्ष्यमाणार्थानि । तत्र मध्यस्थत्वादक्लिष्टतया मिश्रस्य, ततः क्लिष्टतया सास्वादनरय, ततोऽतिक्लिष्टतया मिथ्यात्वस्य कथनम् । संज्ञिनो व्याकृतार्थास्तद्विपक्षतया चासंज्ञिनः "सज्ञो"ऽत्युद्देशश्चिदा इति निर्दिष्टाः । आहारका अपि निर्दिष्टार्थास्तद्विपक्षतया वाऽऽ "हारे"त्युद्देशश्चिदानामनाहारकाणां निर्देशः । इत्येवंरूपा उत्तरभेदा द्वाषष्टिमार्गणास्थानानां तेषाञ्च निजनिजस्थानापेक्षया निर्देशक्रमकारणानि यथामति दर्शितानि ब्रह्मदृशा त्वन्यथाऽप्युद्धानि ॥१७॥

सांप्रत्येतेषु जीवस्थानान्याह—

सुरनरए सन्निदुगं नरेसु तहओ असन्निपज्जतो ।

तिरियगईए चउदस एगिंदिसु आइमा चउरो ॥१८॥

(यज्ञो०) [.....मेदा सुरनरकयोः=सुरनर-  
कगत्योः संज्ञिद्वयं पर्याप्तकरणापर्याप्तरूपं.....नरकगत्यो.....  
.....वगर्भजम.....रदात्य...इभयं.....त्य..... । अ या  
संशय.....पर्याप्तघटनीय.....स्य.....सं.....का देस्तु नराणां  
जीवस्थानद्वयमत्प्रकार्ष ]( "सुरनरए" इत्यादि, मार्गणास्थानेषु जीवभेदाः । सुरनरकयोः=सुर-  
नरकगत्योः संज्ञिद्वयं=पर्याप्तकरणा-ऽपर्याप्तरूपं संज्ञिभेद द्वयम्, सुरनरकगत्योर्लब्ध्यपर्याप्तस्यो-  
त्पादाभावादिह करणा-ऽपर्याप्तस्य ग्रहणम् । "नरेसु" इत्यादि, नरेषु=मनुष्येषु प्राग्वत् संज्ञिद्विकम्,  
केवलमिहा-ऽपर्याप्तो लब्धिकरणभेदेन द्विविधोऽवगन्तव्यः, लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिनोऽपीह प्रवेशात् ।  
तृतीयश्च जीवभेदो लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणः प्राप्यते, वान्तपिचादिसंमूर्छिममनुष्याणाम-  
संज्ञिलब्ध्यपर्याप्तकत्वात् । तद्यथा—इह द्विविधा मनुष्याः, गर्भजमनुष्याः संमूर्छिममनुष्याश्च ।  
तत्र गर्भजमनुष्येषु पर्याप्ता-ऽपर्याप्तसंज्ञिभेदद्वयम्, वान्तपिचादिगतसंमूर्छिममनुष्येष्वपर्याप्तासंज्ञि-

बाहुलकादादिस्थस्यापि यस्य लोपे निर्देशः, यद्वा 'अहसदो जाहृत्ये आम्नेऽभिषिहीर्णे कहियमक्खायं । चरणमकसायमुइय तमहक्खाय अहक्खाय' ॥ मिति च वचनादथशब्दो यथार्थः । ततोऽर्थव= यथैवाऽकपायतयेत्यर्थः, आ=अभिषिधिना-ऽऽख्यात=प्लुवतमथाख्यातम् । इदं चोपशान्तमोह-क्षीणमोहसयोग्ययोगिकेवलिसम्बन्धितया चतुर्द्धा । इहच्छेदोपस्थापनीयादिविशेषाविवक्षया सामान्यं सामायिकमादा चरं चरविशुद्धाऽऽधारतयाच्छेदोपस्थापनीयादीनि क्रमेणोपन्यस्थानीति संयमाः । स्वामिनस्तु पुलाक-चक्षुश-प्रतिसेवनाकुशीला आद्यद्वितीयसंयमयोः, कषायकुशीलोन्त्य-वज्जानाम्, निर्ग्रन्थस्नातकावन्त्यस्य । पुलाकाद्यस्तु पुलाकोद्देशकादवसेयाः । संयमविपक्षतया च 'संयमे' त्युद्देशसूचितौ संयमासंयमा ऽसंयमरूपौ धर्मे धर्मिणि उपचाराद्देश्यतायतावुक्तौ । व्याख्यास्यमानार्थं तत्र चोत्कृष्टतया देश्यतः प्रथमं निर्दिष्टस्ततोऽयतः ॥१५॥

अच्चक्खुचक्खुओही केवलदंसणमओ य छल्लेसा ।

किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥१६॥

(यशो.) इह दर्शनशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धादचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमित्यादि दृश्यम् । तत्राच-क्षुषा=चक्षुर्वजेन्द्रियचतुष्टयेन मनसा च सामान्यविशेषात्मनो वस्तुनः सामान्याशग्राही बोधोत्पा-दसमयेऽपि सद्भावेनेन्द्रियानाश्रितसामान्योपयोगमात्रं चाऽचक्षुर्दर्शनम् । चक्षुर्गोक्तरूपस्य वस्तुनः सामान्याशग्रहणात्मकं दर्शनं चक्षुर्दर्शनम् । अवधिना=रूपिद्रव्यमर्यादयावधिरेव वा करणनिरपेक्ष-बोधरूपो दर्शनं सामान्यार्थोपादानमवधिदर्शनम् । केवलेन=सम्पूर्णवस्तुतत्त्वग्राहिवोधविशेषरूपेण दर्शनं वस्तुसामान्याशग्रहणं केवलदर्शनम् । तत्र चाऽचक्षुर्दर्शनमेकेन्द्रियादीनामपि भवतीत्यवि-शिष्टत्वात्प्रथमचक्षुर्दर्शनम् । तत्र उत्तरोत्तरविशिष्टतया चक्षुर्दर्शनादीन्युक्तानि । अतो लेश्या विभज्यन्त इति शेषः । ताश्च कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लद्रव्यसाचिद्योपनीततत्परिणाम-विशेषोदयासादितकृष्णनीलादिव्यपदेशभाजः षट्, 'मूलं साहरस हा गुच्छफले भूमिपडियमक्खणया । सर्व्वं माणुसपुरिसे साव्हजुअंतधणहरणा ॥' इति गाथोक्तजम्बूखादकग्रामघातकोदाहरणद्वय-प्रतीततात्पर्यार्थाः । तत्र प्रकर्षपदग्राह्याशुद्धिकत्वेन प्रथमं कृष्णां लेश्यामुपदर्शयोत्तरोत्तराधिक-विशुद्धतयोक्तक्रमेण नीलाकापोताद्याः प्रदर्शिताः ॥१६॥

भवअभवा खउवसम खइय उवसमिय मीस सासाणा ।

मिच्छो य सन्नसन्नी आहारणहार इय भेया ॥१७॥

(यशो.) भव्या=प्लुक्त्यर्हास्तद्विपक्षतया 'भवे' त्युद्देशसूचिताश्चा-ऽभव्याः । इह भव्यानां भव्य-त्वमनादिकालसिद्धमेवमभव्यानामप्यभव्यत्वम् । इदं भव्यत्वमभव्यत्वं चानादिकालसंसिद्धमपि केवलिनं प्रत्यक्षसिद्धम् । चर्मचक्षुषामनुमानगम्यम् । लिङ्गां त्विदम्-यः संसारविपक्षं मोक्षं प्रतिप-

(यशो०) अवधिद्विक्रमवधिज्ञानमवाधिदर्शनं च, त्रीणि सम्यक्त्वानिःश्रयाँपशमिक-क्षायि-  
कौ-पशमिकरूपाणि, एतेषु च मत्यादिष्वेकादशसु स्थानेषु पर्याप्तकरणपर्याप्तसंज्ञलक्षणे द्वे जीव-  
स्थाने तत्र करणापर्याप्तरूपं जीवस्थानमेतेषु देवादिभ्यः समागत्य मनुष्यादौ प्रथमं समुत्पन्नस्य । नवरं  
रत्नप्रभायां भुवनपतिव्यन्तरेषु चासंज्ञिभ्य उत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्य विमङ्गो न लभ्यते ।  
संज्ञिभ्यः पुनरपर्याप्तस्यापि भवतीति विमङ्गे विशेषो दृश्यः । पर्याप्तसंज्ञिरूपं प्रतीतम् । यद्यपर्याप-  
शमिके पर्याप्त एव संज्ञी सद्गतिमद्गतिः अपर्याप्तरय संज्ञिन औपशमिकामावात् । तथा ह्यसाव-  
पर्याप्तदश्यायां तावदिदं तथाविधविशुध्यमावाचोत्पादयितुं समर्थः । पारमविक्रं तु नोपपत्तिसहम् ।  
यतो योऽनादिमिथ्यादृक् तत्प्रथमतया औपशमिकमाप्नोति, न स तद्भावमापन्नः कालं करोति ।  
यत् उक्तम्—

“अणुद्वन्द्वोदय २, मातृगबंधं ३ कालं च ४ सासणे कुण्डे । उवसमसम्महिद्वी चउण्हमेवकं पि नो कुण्डे” त्ति ।

न चोपशमश्रेणोर्त्वाऽनुत्तरसुरेषुत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्यैतत्प्राप्यत इति प्रतिपादयितुं-  
सांप्रतम्, तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् । उक्तं च— जो उवसमसम्महिद्वी  
उवसमसेदीए कालं करेइ, सो ँढमसमए चैव सम्मत्तपुंजं उदयावलिषाप. छोऽण सम्मत्तपुगले वेएइ,  
तेण न उवसमसम्महिद्वी अपज्जत्तगो लब्भइ” इति निश्चयनपरशातकमतम् तथापि व्यवहारनयपर-  
पञ्चसंग्रहादिमतमवलम्ब्यात्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेः संशयपर्याप्तोऽप्यभिहितः, यतरतत्र-ऽवक्तव्यरय  
मर्वथोपशान्तये मोहस्योदया अवक्तव्योदया मोहस्यैव नानार्जावापेक्षया पञ्चाभिहिता एक-  
षट्-सप्ताष्टनवोदयरूपाः । तत्रैकोदयो लोमस्यैकरयोदयोऽद्वाक्षये उपशमश्रेणोः प्रतिपतितः सूक्ष्म-  
संपरायप्रथमसमयेऽवाप्यते । शेषाश्चत्वारो भवन्त्य एव । यत् उपशान्तस्य सत् आयुःक्षयाद-  
नुत्तरसुरेषु प्रथमसमय उत्पद्यमानस्य लभ्यन्ते । तत्रानन्तानुबन्धिशेषकपायत्रयहास्यरति-  
पुरुषवेदानामुदयः षडुदयः । भयेन वा जुगुप्सया वा वेदकेन वा क्षिप्तेन त्रिधा सप्तोदयः ।  
भयजुगुप्सयोर्भयवेदकयोर्वा जुगुप्सावेदकयोर्वाऽऽक्षिप्तयोस्त्रिघाष्टोदयः । तत्रैकषडुदयो द्वौ सप्तो-  
दयौ वेदकवन्ध्यावेकोऽष्टोदयो वेदकविकल इति चत्वार उदया औपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टेश्च सम्भवन्ति । तत् उपशान्तः कालगत औपशमिकसम्यग्दृष्टिः संशयपर्याप्तोऽपि  
लभ्यते । न च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरेव वेदकरहिता उदया इति वाच्यम् । तत्र पृथग्विवक्षया  
अभावात् । कर्मसप्ततिकाचूपर्यां च ‘छलोदयो उवसमसम्महिद्विस्त वा खाङ्गसम्मदिद्विस्त वे’  
त्यादेर्व्यक्तमेव भणनाद्युक्तम्वक्तं सूत्रकृतौपशमिकसम्यक्त्वे संशयपर्याप्तोऽपि भवतीति ॥२२॥

मणपज्ज ३केवलदुगसंजयदेसजयमीसदिद्वीसु ।

सन्नी पज्जो चक्खुंमि तिन्नि छ व पज्जियरचरमा ॥२३॥

(यशो०) अत्र गुणगुणिनोरमेदोपचारादिह संयतशब्देन संयमः सामायिकादिः पञ्चविधोऽपि

पञ्चेन्द्रियरूपस्तृतीयो जीवमेदोऽप्यत्राप्यते । नन्वन्यन्त्र बन्धघृतक-बन्धस्वामित्व-पञ्चसंग्रहादिषु  
ग्रन्थेषु नरःणां ज.वस्थानद्वयमेवोदितम्, तत्कथं घटनीयमिति चेत्, सत्यम्, ) तत्र मनुष्यधर्माकार-  
णात्संक्लिष्टत्वाच्च सम्मूर्च्छजनरारितर्यग्रहणेन गृहीता इत्येके; अपर्याप्तका एवामी कालं कुर्व-  
न्तीत्यल्पकात्त्वाच्च विवक्षिता इत्यपरे मन्यन्त इति । तिर्यग्गतौ चतुर्दश, एकेन्द्रियादीनां  
संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानां समेदानां व्यापकत्वाद्दस्याः । एकेन्द्रियेषु पृथिव्यादिषु सूक्ष्मवादरात्म-  
कानि पर्याप्ताऽपर्याप्तमेदानि चत्वारि जीवस्थानानि ॥१८॥

वितिचउरिंदिसु दो दो अंतिमचउरो पणिंदिसु हवन्ति ।

थावरपणगे पढमा चउरो चरमा दम तंसु ॥ १९॥

(यशो०) द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियेषु द्वे द्वे पर्याप्तापर्याप्तरूपे जीवस्थाने, दोषाणामसम्भ-  
वात् । पञ्चेन्द्रियेष्वन्त्यानि चत्वारि संश्रयसंज्ञि-पर्याप्ताऽपर्याप्तलक्षणानि । उष्माद्यमित्ता अपि  
स्थानशीलाः स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरूपास्तेषां पञ्चके सूक्ष्म-वादरापर्याप्ताऽपर्याप्त-  
रूपाणि प्रथमानि चत्वारि । त्रस्यन्त्युष्माद्यमित्तास्तस्मादुद्विजन्ते छायाद्यभिसर्पन्तीति त्रसा  
द्वीन्द्रियाद्यस्तेष्वन्त्यानि (पर्याप्ताऽऽ) पर्याप्तसूक्ष्मवाद्दरहितानि दश ॥१९॥

विगलतियसन्निसन्नी पज्जता पंच हुंति वयजोगे ।

मणजोगे सन्निको पुमित्थिंणं चरिमचउरो ॥२०॥

(यशो०) “पदेकदेशे पदसमुदाय” इति न्यायाद्विकला=विकलेन्द्रिया=अपरिपूर्णैन्द्रिया=द्वीन्द्रिय-  
त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियास्तेषां त्रिकं चासंज्ञी (च) संज्ञी च विभक्तिलोपाद्विकलत्रिकामंज्ञिसंज्ञिनः  
पर्याप्ताः पञ्चवचनयोगे, न शेषाणि, तेषु वाग्योगाभावात् । मनोयोगे एकः संज्ञी पर्याप्तः, तत्रैव  
मनसः सद्भावात् । पुंवेद स्त्री-वेदयोश्चरमाणि पर्याप्तकरणापर्याप्तसंश्रयसंज्ञिरूपाणि जीवस्थानानि ।  
लब्धपर्याप्तस्तु सर्वोपि न पुंसक एव । यच्चात्रासंज्ञेनि स्त्रीपुंसाभिधानं तत् स्त्रीपुरुषाकारमात्र-  
मङ्गीकृत्य कर्मग्रन्थिकमतेन । सिद्धान्तमतेन त्वसंज्ञी द्विविधोऽपि न पुंसक एव ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणभविरयअत्रक्खू ।

आइतिलेमा भव्वियरमिच्छआहाग्गे सव्वे ॥ २१ ॥

मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु य सम्मेसु ।

सन्निमि य दो ठाणा सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥ २२ ॥

(यशो०) अवधिद्विक्रमवधिज्ञानमवधिदर्शनं च, त्रीणि सम्यक्त्वानि आर्यापशमिक-आर्य-  
कौ-पशमिकरूपाणि, एतेषु च मत्यादित्रैकादशसु स्थानेषु पर्याप्तकर्णापर्याप्तमंडलक्षणं द्वे जीव-  
स्थाने तत्र करणापर्याप्तरूपं जीवस्थानमेतेषु देवादिभ्यः समागत्य मनुयादा प्रथमं समुत्पन्नम् । नवरं  
रत्नप्रभायां भुवनवर्तव्यन्तरेषु चासंज्ञिभ्य उत्पद्यमानरयापर्याप्तस्य विभट्गो न लभ्यते ।  
संज्ञिभ्यः पुनरपर्याप्तस्यापि भवतीति विभट्गे विशेषो दृश्यः । पर्याप्तमंडिरूपं प्रतीतम् । यद्यपर्याप्त-  
शमिके पर्याप्त एव संज्ञी सङ्गतिमङ्गतिः अपर्याप्तस्य संज्ञिन औपशमिकाभावान् । तथा न्यनाव-  
पर्याप्तदशायां तावदिदं तथाविधविशुध्यभावानोत्पादयितुं समर्थः । पारमविभट्गं तु नोपपत्तिसदृशम् ।  
यतो योऽनादिमिथ्यादृक् तत्प्रथमतया औपशमिकमानोति, न न तद्भावमापन्नः कालं करोति ।  
यत उक्तम्—

“अणवन्वोदय २, माळगबंधं ३ क.लं च ४ सासणे कुण्ड । उवसमसम्मदिट्टी चउण्हमेक्कं पि नो वुण्ड” ति ।

न चोपशमश्रेणोर्मुत्वाऽनुत्तरसुरेषूपत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्यैतत्प्राप्यत इति प्रतिपादयितुं-  
सांप्रतम्, तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् । उक्तं च— जो उवमममन्दिट्टी  
उवसमसेढीए कालं करेइ, सो ण्हमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोण्हण सम्मत्तपुग्गले वेण्ड.  
तेण न उवसमसम्मदिट्टी अपज्जत्तागो लब्भइ” इति निश्चयनयपरशान्तकमतम् तथापि व्यवहारनयपर-  
पञ्चसंग्रहादिमतमवलम्ब्यात्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेः संश्यपर्याप्तोऽप्यभिहितः, यतरतत्र-ऽववत्त्व्यरय  
मर्वथोपशान्तये मोहस्योदया अवक्तव्योदया मोहस्यैव नानार्जावापेक्षया पञ्चाभिहिता एक-  
षट्-सप्ताष्टनवोदयरूपाः । तत्रैकोदयो लोभस्यैकरयोदयोऽद्धाक्षये उपशमश्रेणोः प्रतिपातितः सूक्ष्म-  
संपरायप्रथमसमयेऽवाप्यते । शेषाश्चत्वारो भवन्त्य एव । यत उपशान्तस्य सत आयुःक्षयाद्-  
जुघरसुरेषु प्रथमसमय उत्पद्यमानस्य लभ्यन्ते । तत्रानन्तानुबन्धिशेषकपायत्रयहास्यरति-  
पुरुषवेदानामुदयः षड्दयः । भयेन वा जुगुप्सया वा वेदकेन वा क्षिप्तेन त्रिधा सप्तोदयः ।  
भयजुगुप्सयोर्भयवेदकयोर्वा जुगुप्सावेदकयोर्वाऽऽक्षिप्तयोस्त्रिधाष्टोदयः । तत्रैकषड्दयो द्वौ सप्तो-  
दयौ वेदकवन्ध्यात्रैकोऽष्टोदयो वेदकविक्रल इति चत्वार उदया औपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टेश्च सम्भवन्ति । तत उपशान्तः कालगत औपशमिकसम्यग्दृष्टिः संश्यपर्याप्तोऽपि  
लभ्यते । न च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरैव वेदकरहिता उदया इति वाच्यम् । तत्र पृथग्विवक्षाया  
अभावात् । कर्मसप्तिकाचूपर्यां च ‘छलोदयो उवसमसम्मदिट्टस्स वा खाडगसम्मदिट्टिस्स वे’  
त्यादेर्व्यक्तमेव भणनाद्युक्तमुक्तं सूत्रकृतौपशमिकसम्यक्त्वे संश्यपर्याप्तोऽपि भवतीति ॥२२॥

मणपज्जकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्टीसु ।

सन्नी पज्जो चक्खुमि तिन्नि छ व पज्जियरचरमा ॥२३॥ .

(यशो०) अत्र गुणगुणिनोरभेदोपचारादिह संयतशब्देन संयमः सामायिकादिः पञ्चविधोऽपि



पञ्चेन्द्रियरूपस्तृतीयो जीवमेदो-ऽप्यवाप्यते । नन्वन्यन्त्र बन्धश्चतक-बन्धस्वामित्व-पञ्चसंग्रहादिषु ग्रन्थेषु नर.णां जीवस्थानद्वयमेवोदितम्, तत्कथं घटनीयमिति चेत्, सत्यम्, ) तत्र मनुष्यवार्थावरणात्संक्लिष्टत्वाच्च सम्मूर्च्छजनरारित्यग्रहणेन गृहीता इत्येके; अपर्याप्तका एवामी कालं कुर्वन्तीत्यल्पकालत्वाच्च विवक्षिता इत्यपरे मन्यन्त इति । तिर्यग्गतौ चतुर्दश, एकेन्द्रियादीनां संक्षिपञ्चेन्द्रियान्तानां समेदानां व्यापकत्वाद्दस्याः । एकेन्द्रियेषु पृथिव्यादिषु सूक्ष्मबादरात्मकानि पर्याप्ता-ऽपर्याप्तमेदानि चत्वारि जीवस्थानानि ॥ १८ ॥

वितिचउरिंदिसु दो दो अंतिमचउरो पणिदिसु हवन्ति ।

थावरपणगे पढमा चउरो चरमा दम तसंसु ॥ १९ ॥

(यशो०) द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियेषु द्वे द्वे पर्याप्तापर्याप्तरूपे जीवस्थाने. शेषाणामसम्भवात् । पञ्चेन्द्रियेष्वन्त्यानि चत्वारि संज्ञ्यसंज्ञि-पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणानि । उष्माद्यमितप्ता अपि स्थानशीलाः स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरूपास्तेषां पञ्चके सूक्ष्म-बादरापर्याप्ता-ऽपर्याप्तरूपाणि प्रथमानि चत्वारि । त्रस्यन्त्युष्माद्यमितप्तास्तस्माद्द्विजन्ते च्छायाद्यभिसर्प्यन्तीति त्रसा द्वीन्द्रियादयस्तेष्वन्त्यानि (पर्याप्ता-ऽ) पर्याप्तसूक्ष्मबादररहितानि दश ॥ १९ ॥

विगलतियसन्निसन्नी पज्जत्ता पंच हुंति वयजोगे ।

मणजोगे सन्निक्को पुमिथिवंण चरिमचउरो ॥ २० ॥

(यशो०) “पदेकदेशे पदसमुदाय” इतिन्यायाद्विकला=विकलेन्द्रिया=अपरिपूर्णैन्द्रिया=द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियास्तेषां त्रिकं चासंज्ञी (च) संज्ञी च विभक्तिलोपाद्विकलत्रिकामंज्ञिसंज्ञिनः पर्याप्ताः पञ्चवचनयोगे, न शेषाणि, तेषु वाग्योगाभावात् । मनोयोगे एकः संज्ञी पर्याप्तः, तत्रैव मनसः सदुभावात् । पुंवेद स्त्री-वेदयोश्चरमाणि पर्याप्तकरणापर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिरूपाणि जीवस्थानानि । लब्धपर्याप्तस्तु सर्वोपि नपुंसक एव । यच्चात्रासंज्ञेनि स्त्रीपुंसाभिधानं तत् स्त्रीपुरुषाकारमात्र-मङ्गीकृत्य कर्मग्रन्थिकमतेन । सिद्धान्तमतेन त्वसंज्ञी द्विविधोऽपि नपुंसक एव ॥ २० ॥

काओगिनपुंसकसायमहसुयअनाणअविरयअचक्खू ।

आइतिलेमा भव्वियरमिच्छआहाग्गे सव्वे ॥ २१ ॥

महसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु य सम्मेसु ।

सन्निम्मि य दो ठाणा सन्निअपज्जत्तापज्जत्ता ॥ २२ ॥

(यशो०) अवधिद्विक्रमवधिज्ञानमवधिदर्शनं च, त्रीणि सम्यक्त्वानिःक्षार्यापशमिक-क्षायिक-कौ-पशमिकरूपाणि, एतेषु च मत्यादिव्हेकादशसु स्थानेषु पर्याप्तकरणापर्याप्तसंज्ञिलक्षणे द्वे जीव-स्थाने तत्र करणापर्याप्तरूपं जीवस्थानमेतेषु देवादिभ्यः समागत्य मनुष्यादां प्रथमं समुत्पन्नम् । नवरं रत्नप्रभार्या भुवनपतिव्यन्तरेषु चासंज्ञिभ्य उत्पद्यमानरयापर्याप्तस्य विभङ्गो न लभ्यते । संज्ञिभ्यः पुनरपर्याप्तस्यापि भवतीति विभङ्गे विशेषो दृश्यः । पर्याप्तसंज्ञिरूपं प्रतीतम् । यद्यपर्याप-शमिके पर्याप्त एव संज्ञी सङ्गतिमङ्गतिः अपर्याप्तरय संज्ञिन औपशमिकाभावात् । तथा त्वमाव-पर्याप्तदक्षार्या तावदिदं तथाविधविशुध्यभावान्नोत्पादयितुं समर्थः । पारमत्रिकं तु नोपपत्तिसहम् । यतो यो-ऽनादिमिध्याहृत् तत्प्रथमतया औपशमिकमानोति, न स तद्भावमापन्नः कालं करोति । यत उक्तम्-

“अणवन्धोदय २, मात्तगबंधं ३ क.लं च ४ सासरो कुणइ । उवसमसम्महिट्टी चउण्हमेक्कं पि नो वुणइ” त्ति ।

न चोपशमश्रेणोर्मुत्वाऽनुत्तरसुरेषूपद्यमानस्यापर्याप्तस्यैतत्प्राप्यत इति प्रतिपादयितुं सांप्रतम्, तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् । उक्तं च- जो उवसमसम्महिट्टी उवसमसेढीए कालं करेइ, सो ँहमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावळियाणं छोणुण सम्मत्तपुग्गले वेएइ. तेण न उवसमसम्महिट्टी अपज्जत्तगो लब्भइ” इति निश्चयनपरदातकमतम् तथापि व्यवहारनयपर-पञ्चसंग्रहादिमतमवलम्ब्या औपशमिकसम्यग्दृष्टेः संशयपर्याप्तोऽप्यभिहितः, यतरतत्र-ऽववतव्यरय मर्वथोपशान्तये मोहस्योदया अववतव्योदया मोहस्यैव नानार्जीवापेक्षया पञ्चाभिहिता एक-षट्-सप्ताष्टनवोदयरूपाः । तत्रैकोदयो लोमस्यैकरयोदयोऽद्वाक्षये उपशमश्रेणोः प्रतिपातितः सूक्ष्म-संपरायप्रथमसमयेऽवाप्यते । शेषाश्चत्वारो भवन्त्य एव । यत उपशान्तस्य सत आयुःक्षयाद-नुत्तरसुरेषु प्रथमसमय उत्पद्यमानस्य लभ्यन्ते । तत्रानन्तानुवन्धिशेषकपायत्रयहास्यरति-पुरुषवेदानामुदयः षडुदयः । भयेन वा जुगुप्सया वा वेदकेन वा क्षिप्तेन त्रिधा सप्तोदयः । मयजुगुप्सयोर्भयवेदकयोर्वा जुगुप्सावेदकयोर्वाऽऽक्षिप्तयोस्त्रिघाटोदयः । तत्रैकषडुदयो द्वौ सप्तो-दयौ वेदकवन्ध्यावेकोऽष्टोदयो वेदकविकल इति चत्वार उदया औपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिक-सम्यग्दृष्टेश्च सम्भवन्ति । तत उपशान्तः कालगत औपशमिकसम्यग्दृष्टिः संशयपर्याप्तोऽपि लभ्यते । न च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरेव वेदकरहिता उदया इति वाच्यम् । तत्र पृथग्विवक्षाया अभवात् । कर्मसप्तनिकाशुपर्या च ‘छलोदयो उवसमसम्महिट्टस्स वा ख्वाइगसम्मदिट्टिस्स वे’ त्यादेर्व्यक्तमेव भणनाद्युक्तमुक्तं सूत्रकृतौपशमिकसम्यक्त्वे संशयपर्याप्तोऽपि भवतीति ॥२२॥

मणपज्जकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्टीसु ।

सन्नी पज्जो चक्खुंमि तिन्नि छ व पज्जियरचरमा ॥२३॥ :

(यशो०) अत्र गुणगुणिनोरभेदोपचारादिह संयतशब्देन संयमः सामायिकादिः पञ्चविधोऽपि

परिगृहीतस्तत एतेषु मनःपर्यवादिषु पर्याप्तसंज्ञिरूपमेकं जीवस्थानम् । केवली च यद्यपि न संज्ञी-  
नाय्यसंज्ञीति प्रतीतस्तथापि द्रव्यमनोयोगादिह संज्ञित्वेन विवक्षितः । चक्षुर्दर्शने त्रीणि पर्याप्त-  
चतुरिन्द्रिया-ऽसंज्ञि-संज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि षट् वा चरमाणि पर्याप्तेतराणि पर्याप्तकरणापर्याप्त-  
चतुरिन्द्रियानसंज्ञिसंज्ञिरूपाणि । यतः क्षेत्रदिन्द्रियपर्याप्तिमात्रपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शन-  
मभ्युपगच्छन्ति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे वायराइ छ अपज्जसन्निपज्जा य ।

तेउल्लेसे वायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥२४॥

(यशो०) तुरेवार्थः, ततो-ऽयमर्थः सासादनभावे मृतस्य वद्धायुषो वादरादिषूपद्यमानस्य  
सासादनरुवाप्यतेऽतः सासादने वादरादीनि संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानि करणापर्याप्तरूपाणि षट्, पर्या-  
प्तसंज्ञिरूपं चेति सप्तैव । तथा ईशानान्तजघन्यायुदेवेभ्यश्च्युतस्य शुभपृथिव्युदकवनस्पतेः  
पञ्चेन्द्रियेषूपत्यस्य करणापर्याप्तस्य प्राग्भवभाविनी पर्याप्तपञ्चेन्द्रियस्य तद्भवभाविनी  
तेजोलेश्या भवतीति तेजोलेश्यायां करणापर्याप्तवादरसंज्ञिरूपे पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति त्रीणि ॥२४॥

अम्सन्नि आइ वारस अणहारे अट्ट सत्त अपजत्ता ।

सन्नी पज्जत्तो तह इय 'गइयाइसु जियठाणा ॥२५॥

(यशो०) असंज्ञिनि मनोविज्ञानशून्ये एकेन्द्रियादौ "आई"ति विभक्तिलोपादाद्यानि द्वादश  
पर्याप्ताऽपर्याप्तसंज्ञिरहितान्तीत्यर्थः । अनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि जीवस्थानानि विग्रहगताविति  
सा निरूप्यते । जन्तोर्मरणस्थानाद् भाविभवोत्पादस्थान एकसमयेन प्राञ्जलगमनमृजुगतिः, तद-  
पेक्षया वक्रत्वेन विलक्षणायाः श्रेणोर्ग्रहणं विग्रहस्तेन गतिर्विग्रहगतिः । सा द्विसमया एकवक्रा,  
यथा यदेशानकोणोपरिभागादाग्नेयकोणाघस्तनभागे कश्चिद्रुत्पद्यते, तदाद्ये समय ईशानकोणोप-  
रिभागादाग्नेयकोणोपरिभागं गत्वा तदघस्तनभागलक्षणस्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते,  
जीवपुद्गलयोरनुश्रेणिगमनादाद्यसमय एवोत्पत्तिस्थानाप्राप्तेः; ततो द्वितीयसमये वक्रं विधाय  
तत्रोत्पत्तिस्थाने वन्तुरत्यद्यत इति, अस्यां कैकवक्रायां द्विसमयायां विग्रहगतावाद्यसमये  
मुच्यमानं मुक्त = मभावीभूतमिति पूर्वशरीरस्य मुक्तत्वाद्ग्रेतनस्याद्याप्यप्राप्तत्वाद्नाहारक इति  
क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदवादिनिश्चयनयानुगप्रवृत्त्यघागमात्सारिणः । क्रियाकालनिष्ठाका-  
लयोर्भेदवादिष्वहारनयमतावलम्बितत्वार्थटीकाद्यनुसारिणस्तु मन्यन्ते-अत्राद्यसमयेप्यनाहार-  
कोऽमौ न भवति । प्राक्तनशरीरं ह्यत्र मुच्यमानममुक्तमत एवायं पूर्वभवचरमसमय एव,

न तु परभवप्रथमसमयः । पूर्वशरीरस्याद्यापि सद्भावात्तत्सद्भावे च न विद्यत आहारोऽस्येत्य-  
नाहारक इति वक्तुमशक्यमेवेत्यनाहारको न भवति । इदं च मतद्वयमपि कथञ्चित्प्रमाणम् , मन-  
द्वयमयत्वात् जिनशासनस्येति । द्वितीयसमये चाहारक इत्यत्रा-ऽविवादः । द्विचक्रा त्रिसमया, यथा  
यदा तस्मादेवेशानकोणोपरिभागान्नेरुतकोणाधरस्तनप्रदेशे उत्पत्तिस्तदाद्यक्षणे चायद्यकोणो-  
परिभागं गच्छति, ततो द्वितीयक्षणे विग्रहेण नैरुतकोणोपरिभागं गच्छति, तृतीयक्षणे  
विग्रहेणैव तदधस्तनमागरूपमुत्पत्तिस्थानमासादयतीति । अत्रापि प्रागुक्तयुद्धेतिनिश्चयनयमत  
आद्यक्षणद्वयेऽनाहारकः । व्यवहारनयमते तु प्रागुक्तोपपत्तेरेदंकरिमन्नेव मध्यमे क्षणेऽनाहा-  
रको न त्वाद्यान्त्यक्षणयोरिति । तदेवं त्रसानामृजुगतिरेकचक्रा द्विचक्रा च विग्रहगतिरित्येतदेव  
गतित्रयं भवति । अर्थकेन्द्रियाणामेव त्रिचक्रा चतुःसमया यथा यदा त्रसनाड्या बहिर्विदिग् व्य-  
स्थितम्य यस्य निगोदादेरघोलोकाद्घूर्णलोक उत्पादो नाड्या बहिरेव दिशि भवति. तदैकेन-  
समयेनाड्यो विदिशो दिशमागत्य द्वितीयेन नाडीं प्रविश्य तृतीयेनोद्धर्त्तलोकं गत्वा चतुर्थेन नाडीं तो  
निर्गत्योत्पत्तिस्थानं उत्पद्यत इति । अत्रापि प्राग्वदेकीयमते नाडीं एषु त्रिषु समयेष्वनाहारक-  
श्चतुर्थेऽनाहारकः । अन्यदीयमतेन तु मध्यमयोर्वक्रसमययोरेवानाहारको न त्वाद्मान्तिम-  
समययोः । चतुर्वक्रा पञ्चसामायिकी, यथा यदा त्रसनाडी बहिर्विदिशस्तद्विदिग्दशेवोत्पद्यते  
तदा भवति । अत्र स समयत्रयं पूर्वचदेव चतुर्थे तु समये नाडीं तो बहिर्निर्गत्योत्पत्तिस्थानस्य  
समश्रेणीं प्रतिपद्यते, पञ्चमे तु नाडी बहिर्विदिग्लक्षणमुत्पत्तिस्थानमाप्नोति । अत्राप्येकमतेनाद्य-  
समयचतुष्टयेऽनाहारकः पञ्चमेऽनाहारकः । अन्यमतेन मध्यमे चक्रसमयत्रय एवानाहारको न तु  
प्रथमचरमसमययोरिति । मंडिपर्याप्तलक्षणं तु [बहिः] (जि.व)स्थानं समुद्घाते । समुद्घातश्च सम्-  
शब्दस्यैकीभाचार्यत्वाज्जीवस्य वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावेन तदेकपरिणामात्मना उच्छब्दस्य  
प्राबल्यार्थत्वात्प्राबल्येन घातो=हननं बहूनां वेदनीयादिकर्मप्रदेशानां कालान्तरानुभवयोग्यानामु-  
दीरणाकरणेनाकृष्योदयप्रक्षेपपुरस्सरमनुभूयनिर्जरणं=जीवप्रदेशैःसह सम्बद्धानां घातन (मिःयर्थः) ।  
यदा समन्ताद्घूर्णं च हन्यन्ते क्षिप्यन्ते जीवप्रदेशा यत्रा-ऽसौ समुद्घातः । स च सप्तधा : यद्युक्तःम्-

वेद्यग १ कषाय २ मारण ३ वेदच्छिन्न ४ तेय ५ हार ६ केवलिया ७ ।

सगपण च व विभ्रिकमा मणु ७ सुर ५ नेरह्य ४ तिरियाण ३ ॥"मिति ।

\* अस्या ष्याक्या-तत्र यदा वेदनाभिभूतः कश्चित्प्रदेशाननन्तानन्तकर्म-  
स्कन्धानुविद्वान् शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, तैश्च बठरमुखादिशुषिराण्या ऽऽपूर्य विस्ता-  
रायामान्यां देहमानं क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति; तदा तस्य वेदनया=ऽसद्वेदनीयोदय-  
प्रभवया पीडया समुद्घातो वेदनासमुद्घातः । अनेन च प्रभूतासातवेदनीयपुद्गलानां घातो  
भवति ॥१॥ यदा तु तीव्रकषायोदयाकृतितः स्वप्रदेशान्बहिः क्षिप्त्वा स्वप्रदेशैरेव सर्वशुषि-

ॐ अत्र प्रतिपादितसमुद्घातस्वरूपं जीवसमासश्रीमन्मलधारगच्छीयहैमचन्द्रसुरिवृत्त्यनुसारि ।

परिगृहीतस्तत एतेषु मनःपर्यवादिषु पर्याप्तसंज्ञिरूपमेकं जीवस्थानम् । वेदली च यद्यपि न संज्ञी-  
नाप्यसंज्ञीति प्रतीतस्तथापि द्रव्यमनोयोगादिह संज्ञित्वेन विवक्षितः । चक्षुर्दर्शने त्रीणि पर्याप्त-  
चतुरिन्द्रियाऽसंज्ञि-संज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि षड् वा चरमाणि पर्याप्तेतराणि पर्याप्तकरणापर्याप्त-  
चतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिरूपाणि । यतः केचिदिन्द्रियपर्याप्तिमात्रपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शन-  
मभ्युपगच्छन्ति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्जसन्निपज्जा य ।

तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥२४॥

(यशो०) तुरेवार्थः, ततोऽयमर्थः सासादनभावे मृतस्य बद्धायुषो बादरादिषूत्पद्यमानस्य  
सासादनमवाप्यतेऽतः सासादने बादरादीनि संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानि करणापर्याप्तरूपाणि षट्, पर्या-  
प्तसंज्ञिरूपं चेति सप्तैव । तथा ईशानान्तजघन्यायुर्देवेभ्यश्च्युतस्य शुभपृथिव्युदकवनस्पतेः  
पञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नस्य करणापर्याप्तस्य प्राग्भवमाविनी पर्याप्तपञ्चेन्द्रियस्य तदुभवमाविनी  
तेजोलेश्या भवतीति तेजोलेश्यायां करणापर्याप्तबादरसंज्ञिरूपे पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति त्रीणि ॥२४॥

अरसन्नि आइ बारस अणहारे अट्ट सत्त अपजत्ता ।

सन्नी पज्जत्तो तह इय 'गइयाइसु जियठाणा ॥२५॥

(यशो०) असंज्ञिनि मनोविज्ञानशून्ये एकेन्द्रियादौ "आई"ति विभक्तिलोपादाद्यानि द्वादश  
पर्याप्ताऽपर्याप्तसंज्ञिरहितानीत्यर्थः । अनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि जीवस्थानानि विग्रहगताविति  
सा निरूप्यते । जन्तोर्दरणस्थानाद् भाविभवोत्पादस्थान एकसमयेन प्राञ्जलगमनमृजुगतिः, तद-  
पेक्षया वक्रत्वेन विलक्षणायाः श्रेयोर्ग्रहणं विग्रहस्तेन गतिर्विग्रहगतिः । सा द्विसमया एकवक्रा,  
यथा यदेशानकोणोपरिमागादाग्नेयकोणाधस्तनभागे कश्चिदुत्पद्यते, तदाद्ये समय ईशानकोणोप-  
रिमागादाग्नेयकोणोपरिभागं गत्वा तदधस्तनभागलक्षणस्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते,  
जीवपुद्गलयोरनुश्रेणिगमनादाद्यसमय एवोत्पत्तिस्थानाप्राप्तेः; ततो द्वितीयसमये वक्रं विधाय  
तत्रोत्पत्तिस्थाने जन्तुरत्यद्यत इति, अस्यां द्वैकवक्रायां द्विसमयायां विग्रहगतावाद्यसमये  
मुच्यमानं मुक्त = मभावीभूतमिति पूर्वशरीरस्य मुक्तत्वादग्रेतनस्याद्याप्यप्राप्तत्वादानाहारक इति  
क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदवादिनिश्चयनयानुगप्रपञ्चप्यद्यागमानुसारिणः । क्रियाकालनिष्ठाका-  
लयोर्भेदवादिद्व्यवहारनयमतावलम्बितत्वार्थटीकाधनुसारिणस्तु मन्वन्ते-अत्राद्यसमयेप्यनाहार-  
कोऽसौ न भवति । प्राक्तनशरीरं ह्यत्र मुच्यमानममुक्तमत एवायं पूर्वभवचरमसमय एव,

न तु परभवप्रथमसमयः । पूर्वशरीरस्याद्यापि सद्भावात्तत्सद्भावे च न विद्यत आहारोऽस्येत्य-  
नाहारक इति वक्तुमशक्यमेवेत्यनाहारको न भवति । इदं च मतद्वयमपि कथञ्चित्प्रमाणम् , मत-  
द्वयमयत्वात् जिनशासनस्येति । द्वितीयसमये चाहारक इत्यत्रा-ऽविवादः । द्विवक्रा त्रिसमया, यथा  
यदा तस्मादेवेशानकोणोपरिभागान् नैरुतकोणाधरस्तनप्रदेशे उत्पत्तिस्तदाद्यक्षणे चायद्यकोणो-  
परिभागं गच्छति, ततो द्वितीयक्षणे विग्रहेण नैरुतकोणोपरिभागं गच्छति, तृतीयक्षणे  
विग्रहेणैव तदधस्तनभागरूपमुत्पत्तिस्थानमासादयतीति । अत्रापि प्रागुक्तयुक्तैर्निश्चयनयमत  
आद्यक्षणद्वयेऽनाहारकः । व्यवहारनयमते तु प्रागुक्तोपपत्तेरेकस्मिन्नेव मध्यमे क्षणेऽनाहा-  
रको न त्वाद्यान्त्यक्षणयोरिति । तदेवं त्रसानामृजुगतिरेकवक्रा द्विवक्रा च विग्रहगतिरित्येतेदेव  
गतित्रयं भवति । अथैकेन्द्रियाणामेव त्रिवक्रा चतुःसमया यथा यदा त्रसनाड्या वहिर्विदग् व्यव-  
स्थितभ्य यस्य निमोदादेरधोलोकाद्धर्धलोक उत्पादो नाड्या वहिरेष दिशि भवति. तदैकेन-  
समयेनामौ विदिशो दिशमागत्य द्वितीयेन नाडीं प्रविश्य तृतीयेनोद्धर्धलोकं गत्वा चतुर्थेन नाडींतो  
निर्गत्योत्पत्तिस्थानं उत्पद्यत इति । अत्रापि प्राग्वदेकीयमते नाडीं एषु त्रिषु समयेवनाहारक-  
त्रयं वाहारकः । अन्यदीयमतेन तु मध्यमयोर्वक्रसमययोरेवानाहारको न त्वादिमान्तिम-  
समययोः । चतुर्वक्रा पञ्चसामायिकी, यथा यदा त्रसनाडी वहिर्विदिशस्तद्वहिविदग्देवोत्पद्यते  
तदा भवति । अत्र स समयत्रयं पूर्ववदेव चतुर्थे तु समये नाडींतो वहिर्निर्गत्योत्पत्तिस्थानस्य  
समश्रेणीं प्रतिपद्यते, पञ्चमे तु नाडी वहिर्विदिग्लक्षणमुत्पत्तिस्थानमाप्नोति । अत्राप्येकमतेनाद्य-  
समयचतुष्टयेऽनाहारकः पञ्चमेवाहारकः । अन्यमतेन मध्यमे वक्रसमयत्रय एवानाहारको न तु  
प्रथमचरमसमययोरिति । मांङ्गपर्याप्तलक्षणं तु [बहिः] (जि.व)स्थानं समुद्घाते । समुद्घातश्च सम्-  
शब्दस्यैकीभावार्यत्वाज्जीवस्य वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावेन तदेकपरिणामात्मना उच्छब्दस्य  
प्राबन्त्यार्थत्वात्प्राबन्त्येन घातो=हननं बहूनं वेदनीयादिकर्मप्रदेशानां कालान्तरानुभवयोग्यानामृ-  
दीरणाकरणेनाकृष्योदयप्रक्षेपपुरस्सरमनुभूयनिर्जरणं=जीवप्रदेशैःसह सम्बद्धानां शातन (मःयर्थः ।  
यद्वा समन्ताद्बुद्धौ च हृम्यन्ते क्षिप्यन्ते जीवप्रदेशा यत्रा-ऽसौ समुद्घातः । स च सप्तधा ; यद्बुद्धि-  
वेयण १ कषाय २ मारण ३ वेत्तविव ४ तेय ५ हार ६ केवलिया ७ ।

सगपण चठ विभ्रिकमा मरु ७ सुर ५ नेरइय ४ विरियाण ३॥"मिति ।

# अस्या ह्याख्या-तत्र यदा वेदनाभिभूतः कश्चित्प्रदेशानन्तानन्तकर्म-  
स्कन्धानुविद्धान् शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, तैश्च जठरमुखादिशुषिराण्या ऽऽपूर्य विस्ता-  
रायामाभ्यां देहमानं क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति; तदा तस्य वेदनया=सद्वेदनीयोदय-  
प्रभवया पीडया समुद्घातो वेदनासमुद्घातः । अनेन च प्रभृतासातवेदनीयपुद्गलानां शातो  
भवति ॥१॥ यदा तु तीव्रकषायोदयाकूलितः स्वप्रदेशान्बहिः क्षिप्त्वा स्वप्रदेशैरेव सर्वशुषि-

अत्र प्रतिपादितसमुद्घातस्वरूपं जीवसमासभ्रीमन्मलवारगच्छीयहैमचन्द्रसुरिवृत्त्यनुसारि ।

परिगृहीतस्तत् एतेषु मनःपर्यवादिषु पर्याप्तसंज्ञिरूपमेकं जीवस्थानम् । केवली च यद्यपि न संज्ञी-  
नाप्यसंज्ञीति प्रतीतस्तथापि द्रव्यमनोयोगादिह संज्ञित्वेन विवक्षितः । चक्षुर्दर्शने त्रीणि पर्याप्त-  
चतुरिन्द्रियाऽसंज्ञि-संज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि षट् वा चरमाणि पर्याप्तेतराणि पर्याप्तकरणापर्याप्त-  
चतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिरूपाणि । यतः केचिदिन्द्रियपर्याप्तिमात्रपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शन-  
मभ्युपगच्छन्ति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे वायराइ छ अपज्जसन्निपज्जा य ।

तेउल्लेसे वायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥२४॥

(यशो०) तुरेवार्थः, ततोऽयमर्थः सासादनभावे मृतस्य वद्धायुषो बादरादिषूत्पद्यमानस्य  
सासादनमवाप्यतेऽतः सासादने बादरादीनि संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानि करणापर्याप्तरूपाणि षट्, पर्या-  
प्तसंज्ञिरूपं चेति सप्तैव । तथा ईशानान्तजघन्यायुर्देवेभ्यश्च्युतस्य शुभपृथिव्युदकवनस्पतेः  
पञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नस्य करणापर्याप्तस्य प्राग्भवभाविनी पर्याप्तपञ्चेन्द्रियस्य तद्भवभाविनी  
तेजोलेख्या भवतीति तेजोलेख्यायां करणापर्याप्तबादरसंज्ञिरूपे पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति त्रीणि ॥२४॥

अरसन्नि आइ वारस अणहारे अट्ट सत्त अपजत्ता ।

सन्नी पज्जत्तो तह इय 'गइयाइसु जियठाणा ॥२५॥

(यशो०) असंज्ञिनि मनोविज्ञानशून्ये एकेन्द्रियादौ "आई"ति विभक्तिलोपादाद्यानि द्वादश  
पर्याप्ताऽपर्याप्तसंज्ञिरहितानीत्यर्थः । अनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि जीवस्थानानि विग्रहगताविति  
सा निरूप्यते । जन्तोर्दर्शनस्थानाद् भाविमवोत्पादस्थान एकसमयेन प्राञ्जलगमनमृजुगतिः, तद-  
पेक्षया वक्रत्वेन विलक्षणायाः श्रेयोर्ग्रहणं विग्रहस्तेन गतिर्विग्रहगतिः । सा द्विसमया एकवक्रा,  
यथा यदेशानकोणोपरिभागादाग्नेयकोणाधस्तनभागे कश्चिदुत्पद्यते, तदाद्ये समय ईशानकोणोप-  
रिभागादाग्नेयकोणोपरिभागं गत्वा तदधस्तनभागलक्षणस्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते,  
जीवपुद्गलयोरनुश्रेणिगमनादाद्यसमय एवोत्पत्तिस्थानाप्राप्तेः; ततो द्वितीयसमये वक्रं विधाय  
तत्रोत्पत्तिस्थाने जन्तुरत्यद्यत इति, अस्यां कैकवक्रायां द्विसमयायां विग्रहगतावाद्यसमये  
मुच्यमानं मुक्त = ममावीभूतमिति पूर्वशरीरस्य मुक्तत्वाद्ग्रेतनस्याद्याप्यप्राप्तत्वादानाहारक इति  
क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदवादिनिश्चयनयानुगप्रज्ञप्त्यघागमानुसारिणः । क्रियाकालनिष्ठाका-  
लयोर्भेदवादिव्यवहारनयमतावलम्बितत्वार्थटीकाद्यनुसारिणस्तु मन्यन्ते-अत्राद्यसमयेप्यनाहार-  
कोऽसौ न भवति । प्राक्तनशरीरं ह्यत्र मुच्यमानममुक्तमत एवायं पूर्वभवचरमसमय एव,

न तु परभवप्रथमसमयः । पूर्वशरीरस्याद्यापि सद्भावात्तत्सद्भावे च न विद्यत आहारोऽस्येत्य-  
नाहारक इति वक्तुमशक्यमेवेत्यनाहारको न भवति । इदं च मतद्वयमपि कथञ्चित्प्रमाणम् , मत-  
द्वयमयत्नात् जिनशासनस्येति । द्वितीयसमये चाहारक इत्यत्रा-ऽविवादः । द्विवक्रा त्रिसमया, यथा  
यदा तस्मादेवेशानकोणोपरिभागान्नेरुतकोणाघरतनप्रदेशे उत्पत्तिस्तदाद्यक्षणे वायव्यकोणा-  
परिभागं गच्छति, ततो द्वितीयक्षणे विग्रहेण नैरुतकोणोपरिभागं गच्छति, तृतीयक्षणे  
विग्रहेणैव तदघस्तनभागरूपमुत्पत्तिस्थानमासादयतीति । अत्रापि प्रागुक्तयुद्धतेनिश्चयनयमत  
आद्यक्षणद्वयेऽनाहारकः । व्यवहारनयमते तु प्रागुक्तोपपत्तेरेकैकरिमन्नेच मध्यमे क्षणेऽनाहा-  
रको न त्वाद्यान्त्यक्षणयोरिति । तदेवं त्रसानामृजुगतिरेकवक्रा द्विवक्रा च विग्रहगतिरित्येतदेव  
गतित्रयं भवति । अर्थकेन्द्रियाणामेव त्रिवक्रा चतुःसमया यथा यदा त्रसनाड्या वहिर्विदग्गव्यव-  
स्थितभ्य यस्य निगोदादेरधोलोकाद्ध्र्वलोक उत्पादो नाड्या वहिरेव दिशि भवति. तदैकेन-  
समयेनामो विदिशो दिशमागत्य द्वितीयेन नाडीं प्रविश्य तृतीयेनोद्ध्र्वलोकं गत्वा चतुर्थेन नाडीं तो  
निर्गत्योत्पत्तिस्थानं उत्पद्यत इति । अत्रापि प्राग्बदेकीयमते नाडीं एषु त्रिषु समयेष्वनाहारक-  
अर्थे वाहारकः । अन्यदीयमतेन तु मध्यमयोर्वक्रसमययोरेवानाहारको न त्वा दमान्तिम-  
समययोः । चतुर्वक्रा पञ्चसामायिकी, यथा यदा त्रसनाडी वहिर्विदिशस्तद्वहिविदिशेचोरपद्यते  
तदा भवति । अत्र स समयत्रयं पूर्ववदेव चतुर्थे तु समये नाडीं तो वहिर्निर्गत्योत्पत्तिस्थानस्य  
समश्रेणीं प्रतिपद्यते, पञ्चमे तु नाडी वहिर्विदिग्लक्षणमुत्पत्तिस्थानमाप्नोति । अत्राप्येकमतेनाद्य-  
समयचतुष्टयेऽनाहारकः पञ्चमेधाहारकः । अन्यमतेन मध्यमे वक्रसमयत्रय एवानाहारको न तु  
प्रथमचरमसमययोरिति । मङ्गिपर्याप्तलक्षणं तु [वहिः] (जि.व)स्थानं समुद्घाते । समुद्घातश्च सम्-  
शब्दस्यैकीभावात्त्वाज्जीवस्य वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावेन तदेकपरिणामात्मना उच्छब्दस्य  
प्राचन्यार्थत्वात्प्राबल्येन घातो=हननं बहूनां वेदनीयादिकर्मप्रदेशानां कालान्तरानुभवयोग्यानामु-  
दीरणाकरणेनाकृष्योदयप्रक्षेपपुरस्सरमनुभूयनिर्जरणं=जीवप्रदेशैःसह सम्बद्धानां शासन (मि.यर्थः) ।  
यदा समन्ताद्दृष्णं च हन्यन्ते क्षिप्यन्ते जीवप्रदेशा यत्रा-ऽसौ समुद्घातः । स च सप्तधा ; यदुक्तं भू-

वेयण १ कषाय २ भारण ३ वेतविविध ४ तेय ५ हार ६ केवलिया ७ ।

सगपण चठ तिमिकिमा मणु ७ सुर ५ नेरस्य ४ तिरियाण ३॥"मिति ।

\* अस्या ह्याह्या-तत्र यदा वेदनाभिभूतः काश्चित्प्रदेशानन्तानन्तकर्म-  
स्कन्धानुविद्धान् शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, तैश्च बरसुखादिशुषिराण्याःऽऽपूर्य विस्ता-  
रायामभ्यां देहमानं क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति; तदा तस्य वेदनया=ऽसद्वेदनीयोदय-  
प्रभवया पीडया समुद्घातो वेदनासमुद्घातः । अनेन च प्रभूतासातवेदनीयपुद्गलानां शातो  
भवति ॥१॥ यदा तु तीव्रकषायोदयाकूलितः स्वप्रदेशान्बहिः क्षिप्त्वा स्वप्रदेशैरेव सर्वशुषि-

अत्र प्रतिपादितसमुद्घातस्वरूपं जीवसमासश्रीमन्मलधारणच्छीयहैमचन्द्रसुरिवृत्यनुसारि ।



राण्याऽऽपूर्वाऽऽयामविस्ताराभ्यां कायप्रमाणं क्षेत्रं व्याप्या ऽऽस्ते, तदा तस्य कषायैर्हेतुभिः समुद्घातः कषायसमुद्घातः । अनेन कषायमोहनीयपुद्गलानां शातो भवति ॥२॥ यदा कश्चिदन्तर्मुहूर्तशेषेष्वायुर्मिबिष्कम्भवाहल्याभ्यां शरीरमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागमुत्कृष्टतोऽसंख्येययोजनानि शरीराद्बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य परमवे यत्र स्थाने स्वयमुत्पत्स्यते तत्र प्रक्षिपति, तदा तस्य मरणमेव प्राणिनामन्तकारित्वादन्तो मरणान्तस्तत्र मवो मारणात्तः समुद्घातः । एतेन चायुःकर्मपुद्गलानां शातो भवति ॥३॥ यदा कश्चिद्वैक्रियलब्धिमान् वैक्रियकरणकाले विष्कम्भवाहल्याभ्यां कायमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलसंख्येयभागमुत्कृष्टतः संख्येयानि योजनानि शरीराद्बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य यथा स्थूलान्वैक्रियशरीरानामकर्मपुद्गलान्प्राग्बद्धान् शातयति \* (तदा तस्य वैक्रियशरीरनामकर्मविषयः समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः, यद्वा वैक्रियशरीरकरणकालविषयः समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः ॥४॥ यदा कश्चित्तेजोनिर्गलब्धिमान् क्रुद्धः साध्वादिः सप्ताष्टौ पदान्यवञ्चक्य विष्कम्भवाहल्याभ्यां देहमानमायामेन तु जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागमुत्कृष्टतः पुनः संख्येयानि योजनान्यनन्ततेजसशरीरस्कन्धवेष्टितानां जीवप्रदेशानां दण्डं शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, ततः क्रोधविषयीकृतं मनुष्यादि निर्दहति, तदा तस्य तेजोविषयः समुद्घातः तेजःसमुद्घातः । अनेन च प्रभूर्तास्तैजःशरीरनामकर्मपुद्गलान् शातयति ॥५॥ यदा कश्चिदाऽऽहारकशरीरलब्धिमान् चतुर्दशपूर्वविद् आहारकशरीरकरणकाले विष्कम्भवाहल्याभ्यां शरीरमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलसंख्येयभागमुत्कृष्टतस्तु संख्येयानि योजनानि शरीराद् बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य यथास्थूलान् प्रभूतानाहारकशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति तदा तस्याहारकशरीरकरणकाले समुद्घात आहारकसमुद्घातः ॥६॥ एते च वेदनादयः षडन्यान्तर्मुहूर्तिकाः ॥ यदान्तर्मुहूर्तायुः केवली वेदनीय-नाम-गोत्र-कर्मत्रयं नायुषः समं न्यूनं वा किन्त्वतिप्रचुरमाकलयति. तदा वेदनीयादित्रयस्य क्षिप्रतरक्षपणाय केवलज्ञानामोगतो जीवप्रदेशसंघातं प्रथमसमये विष्कम्भवाहल्याभ्यां कायप्रमितमायामत ऊर्ध्वधोलोकान्तगामिनं दण्डाकारत्वेन दण्डं द्वितीयसमये तमेव पूर्वपरदिक्प्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तकपाटाकारत्वेन कपाटं तृतीयसमये च दक्षिणोत्तरदिक्प्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तव्यापाकं मथ्याकारत्वेन मन्थानं कृत्वा चतुर्थसमये च जीवप्रदेशानामनुश्रेणिगमनात्तृतीयसमये पूरतानि मध्यन्तराणि लोकनिष्कृतानि च पूरयित्वा पञ्चमसमये मध्यन्तरप्रसृतान् जीवप्रदेशान् संहृत्य षष्ठे समये मन्थानमुपसंहृत्य सप्तमसमये कपाटं शङ्कोच्याष्टम-

समये दण्डं संहृत्य शरीरस्थो भवति । तदा तस्य केवलिनः समुद्घातः केवलिसमुद्घातः ॥७॥  
 अयं चाष्टसामायिकः ॥ इति पूर्वार्द्धार्थः ॥ उत्तरार्द्धार्थस्तु—मनुजानां सर्वसम्भवात्सप्तापि । चतु-  
 विधदेवानामाहाकलब्धिकेवलित्वाभावात्पञ्चाद्याः । नारकाणां तैज[मथा](सा-SS)हाकलब्धिकेव-  
 लित्वाभावाद्वाद्याश्चत्वारः । पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां वैक्रियलभ्यभावात् त्रयः ।  
 वायूनां बादरकरणपर्याप्तत्रसनाञ्च्यन्तर्गतानां प्रायो वैक्रियलब्धिसंभवाच्चत्वारः । गर्भजपञ्चेन्द्रिय-  
 तिरश्चां तेजोल्बेरेपि भावादाद्याश्चत्वारः । एवं समुद्घातस्य सप्तविधत्वेऽपि संज्ञिपर्याप्तलक्षण-  
 मेकं जीवस्थानं केवलीसमुद्घात एव मन्तव्यम्, अत्रैव तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्वनाहारकत्व-  
 सम्भवात् । इत्येवमनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि संज्ञिपर्याप्तेन सहाष्टौ जीवस्थानानीति स्थितम् ।  
 इत्यनेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषु जीवस्थानानि चिन्तितानि ॥ २५ ॥

इदानीं मार्गणास्थानेषु योजयितुकामो गुणस्थानानि चतुर्दश नामतः स्वरूपतश्च-

मिच्छे सासणमिस्से अविरयदेसे पमत्तापमत्ते ।

नियटिनियटिसुहुमुवसमखीणसजोगजोगिगुणा ॥२६॥

(यज्ञो.) “निघटो”त्यत्र प्राकृतत्वात् इत्य द्वित्वाभावः । सूचकत्वात्सूत्रस्य, पदैकदेशे पदस-  
 मुदायोपचाराद्वा मिच्छादिद्विगुणठाणं सासायणसम्मदिद्विगुणठाणमित्यादि दृश्यम् । तत्र मिथ्या=  
 विपर्यासवती दृष्टि=रह्वत्प्रणीततत्त्वप्रतिपत्तिर्यस्य क्वलितहृत्पूरस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत्स मिथ्या-  
 दृष्टिः । गुणा=ज्ञानादिरूपा जीवस्वभावविशेषास्तिष्ठन्त्यरिमञ्चिति स्थानम्, गुणानामेवोपचया-  
 पचयजः स्वरूपविशेषः, गुणानां स्थानं गुणस्थानम्, ततश्च मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानं सास्वादनाद्य-  
 पेक्षया गुणानामपचयजः स्वरूपविशेषो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । इह यद्यपि मिथ्यादृष्टेर्विपर्यस्त-  
 दृष्टित्वात्सम्यग्बोधाभावेन गुणानामभावेन गुणस्थानाभावः । तथापि तस्य काचिच्चैतन्यकला  
 कश्चीकार्याऽन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गः । सा च मिथ्यात्वोदया विपर्ययपरीताऽपि चिद्रूपत्वात् व्यव-  
 हारतो गुणत्वेनेष्टेति तद्भाजनतया मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानत्वमुपपन्नम् । अत्र गुणस्थाने समस्त-  
 जन्तुराशेरन्ततमेन भागेन रहिताः सर्वेऽपि जन्तवोऽवाप्यन्ते ॥१॥ आद्यमौपशमिकसम्यग्द-  
 र्शनप्राप्तिरूपं सादयत्य=ऽपनयतीति नैरुक्ते यशब्दलोपः, आसादनं=प्रथमकषायोदयवेदनम् । ततश्च  
 सहा-SSसादनेन वर्तते इति सासादनः । स चासौ सम्यग्=अविपरीता दृष्टिर्जिनप्रणीततत्त्वप्रति-  
 पत्तिरस्येति सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिस्तरय गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ।  
 यद्वा सह सातनया प्रथमकषायोदयरूपया वर्तते इति सासादनः । स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यादि  
 प्राग्वत् । अथवा सह औपशमिकतन्वरसास्वादनेन वर्तते, तद्रसं नाद्या-ऽपि सर्वथा त्यजतीति  
 सास्वादनेन, स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यादि प्राग्वत् । एतच्च यथा भवति तथा समासत उच्यते,-

राण्या-ऽऽपूर्वा-ऽऽयामविस्ताराभ्यां कायप्रमाणं क्षेत्रं व्याप्या ऽऽस्ते, तदा तस्य कषायैर्हृतुभिः समुद्घातः कषायसमुद्घातः । अनेन कषायमोहनीयपुद्गलानां शातो भवति ॥२॥ यदा कश्चिदन्तर्मुहूर्तशेषेष्वायुर्मिबिक्कम्भवाहृन्त्याभ्यां शरीरमानमायामेन जघन्यतोऽहृगुलासंख्येयभागमुत्कृष्टतोऽसंख्येययोजनानि शरीराद्बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य परमवे यत्र स्थाने स्वयमुत्पत्स्यते तत्र प्रक्षिपति, तदा तस्य मरगमेव प्राणिनामन्तकारित्वादन्तो मरणान्तस्तत्र भवो मारणात्तः समुद्घातः । एतेन चायुःकर्मपुद्गलानां शातो भवति ॥३॥ यदा कश्चिद्वैक्रिय-लब्धिमान् वैक्रियकरणकाले विक्कम्भवाहृन्त्याभ्यां कायमानमायामेन जघन्यतोऽहृगुलसंख्येय-भागमुत्कृष्टतः संख्येयानि योजनानि शरीराद्बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य यथा स्थूलान्वैक्रिय-शरीरानामकर्मपुद्गलान्प्राग्बद्धान् शातयति \* (तदा तस्य वैक्रियशरीरनामकर्मविषयः समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः, यद्वा वैक्रियशरीरकरणकालविषयः समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः ॥४॥ यदा कश्चित्तेजोनिर्गल्लब्धिमान् क्रुद्धः साध्वादः सप्ताष्टौ पदान्यवञ्चक्य विक्कम्भवाहृन्त्याभ्यां देहमानमायामेन तु जघन्यतोऽहृगुलासंख्येयभागमुत्कृष्टतः पुनः संख्येयानि योज-नान्यनन्ततैजसशरीरस्कन्धवेष्टितानां जीवप्रदेशानां दण्डं शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, ततः क्रोधविषयीकृतं मनुष्यादि निर्दहति, तदा तस्य तेजोविषयः समुद्घातः तेजःसमुद्घातः । अनेन च प्रभूर्तास्तैजःशरीरनामकर्मपुद्गलान् शातयति ॥५॥ यदा कश्चिदा-ऽऽहारकशरीरलब्धिमान् चतुर्दशपूर्वविद् आहारकशरीरकरणकाले विक्कम्भवाहृन्त्याभ्यां शरीरमानमायामेन जघन्यतोऽहृगु-लसंख्येयभागमुत्कृष्टतस्तु संख्येयानि योजनानि शरीराद् बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य यथास्थूलान् प्रभूतानाहारकशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति तदा तस्याहारकशरीरकरणकाले समुद्घात आहारकसमुद्घातः ॥६॥ एते च वेदनादयः षडन्यान्तर्मुहूर्तिकाः ॥ यदान्तर्मुहूर्तायुः केवली वेदनीय-नाम-गोत्र-कर्मत्रयं नायुषः समं न्यूनं वा किन्त्वतिप्रचुरमाकलयति. तदा वेदनीयादित्रयस्य क्षिप्रतरक्षपणाय केवलज्ञानामोगतो जीवप्रदेशसंघातं प्रथमसमये विक्कम्भवाहृन्त्याभ्यां काय-प्रमितमायामत ऊर्ध्वाधोलोकान्तगामिनं दण्डाकारत्वेन दण्डं द्वितीयसमये तमेव पूर्वपर-दिक्प्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तकपाटाकारत्वेन कपाटं तृतीयसमये च दक्षिणोत्तरदिक्प्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तव्यापाकं मध्याकारत्वेन मन्थानं कृत्वा चतुर्थसमये च जीवप्रदेशानामनुश्रेणि-गमनाचतृतीयसमये पूरतानि मध्यन्तराणि लोकनिष्कृतानि च पूरयित्वा पञ्चमसमये मध्यन्तर-प्रसृतान् जीवप्रदेशान् संहृत्य षष्ठे समये मन्थानमुपसंहृत्य सप्तमसमये कपाटं शङ्कोच्याष्टम-

समये दण्डं संहृत्य शरीरस्थो भवति । तदा तस्य केवलिनः समुद्घातः केवलिसमुद्घातः ॥७॥  
 अयं चाष्टसामायिकः ॥ इति पूर्वोद्धार्यः ॥ उत्तराद्धार्यस्तु—मनुजानां सर्वसम्भवात्सप्तापि । चतु-  
 विधदेवानामाहाकलब्धिकेलित्वाभावात्पञ्चाद्याः । नारकाणां तैज[मआ](सा-SS)हारकलब्धिकेव-  
 लित्वाभावादाद्याश्चत्वारः । पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां वैक्रियलब्धमात्रात् त्रयः ।  
 वायूनां वादरकरणपर्याप्तवसनाञ्चन्तर्गतानां प्रायो वैक्रियलब्धिसंभवाच्चत्वारः । गर्भजपञ्चेन्द्रिय-  
 तिरश्चां तेजोलब्धेरपि भावादाद्याश्चत्वारः । एवं समुद्घातस्य सप्तविधत्वेऽपि संज्ञिपर्याप्तलक्षण-  
 मेकं जीवस्थानं केवलीसमुद्घात एव मन्तव्यम्, अत्रैव तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्वनाहारकत्व-  
 सम्भवात् । इत्येवमनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि संज्ञिपर्याप्तेन सहाष्टौ जीवस्थानानीति स्थितम् ।  
 इत्यनेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषु जीवस्थानानि चिन्तितानि ॥ २५ ॥

इदानीं मार्गणास्थानेषु योजयितुकामो गुणस्थानानि चतुर्दश नामतः स्वरूपतश्च-

मिच्छे सासणमिस्से अविरयदेसे पमत्तअपमत्ते ।

नियटिअनियट्टिसुहुमुवसमखीणसजोगजोगिगुणा ॥२६॥

(यशो.) “निघटी”त्यत्र प्राकृतत्वात् इत्य द्वित्वाभावः । सूचकत्वात्सुत्रस्य, पदैकदेशं पदस-  
 मुदायोपचाराद्वा मिच्छादिद्विगुणठाणं सासायणसम्महिद्विगुणठाणमित्यादि दृश्यम् । तत्र मिथ्या=  
 विपर्यासवती दृष्टि=रहत्प्रणीततत्त्वप्रतिपत्तिर्यस्य कवलितहृत्पूरस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत्स मिथ्या-  
 दृष्टिः । गुणा=ज्ञानादिरूपा जीवस्वभावविशेषास्तिष्ठन्त्यरिमच्चिति स्थानम्, गुणानामेवोपचया-  
 पचयजः स्वरूपविशेषः, गुणानां रथानं गुणस्थानम्, ततश्च मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानं सास्वादनाद्य-  
 पेक्षया गुणानामपचयजः स्वरूपविशेषो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । इह यद्यपि मिथ्यादृष्टेर्विपर्यस्त-  
 दृष्टित्वात्सम्यग्बोधामावेन गुणानामभावेन गुणस्थानाभावः । तथापि तस्य काचिच्चैतन्यवला  
 कक्षीकार्याऽन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गः । सा च मिथ्यात्वोदया विपर्ययपरीताऽपि चिद्रूपवद् व्यव-  
 हारतो गुणत्वेनेष्टेति तद्भाजनतया मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानत्वमुपपन्नम् । अत्र गुणस्थाने समस्त-  
 जन्तुराशेरनन्ततमेन भागेन रहिताः सर्वेऽपि जन्तवोऽवाप्यन्ते ॥१॥ आद्यमौपशमिकसम्यग्द-  
 र्शनप्राप्तिरूपं सादयत्य=ऽपनयतीति नैरुक्ते यशब्दलोपः, आसादनं=प्रथमकषायोदयवेदनम् । ततश्च  
 सहा-ऽऽसादनेन वर्त्तत इति सासादनः । स चासौ सम्यग्=अविपरीता दृष्टिर्जिनप्रणीततत्त्वप्रति-  
 पत्तिरस्येति सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिस्तरय गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ।  
 यद्वा सह सातनया प्रथमकषायोदयरूपया वर्त्तत इति सासादनः । स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यादि  
 प्राग्वत् । अथवा सह औपशमिकतत्त्वरसास्वादनेन वर्त्तते, तद्रसं नाद्या-ऽपि सर्वथा त्यजतीति  
 सास्वादनः, स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यादि प्राग्वत् । एतच्च यथा भवति तथा समासत उच्यते,-

अनादिमिथ्याद्याष्टरमुमान् निमित्तदर्शनत्रिपुञ्जोऽनाभोगानर्धतितेन । गरिसरिदुपलघोलनाकल्पेन  
यथा येनैव प्रकारेणानादकाले अभूत्तेनैव प्रवृत्तं नाऽपूर्वं स्वभावान्तरं प्राप्तमित्यन्वयेन यथाप्रवृ-  
त्तेन क्रियते कर्मबन्धोदयदीरणोपशमनाद्यनेनेति करणनाध्यवसायविशेषेण मोहस्य सागरापमा-  
णामेकाक्षसप्ततिं नाम्नो गोत्रस्य चैकान्नविंशतमायुर्वर्जानामन्येषां कर्मणामेकोनत्रिंशत् च क्षपाय-  
त्वा प्रत्येकं कृतपण्योपमा-ऽसंख्येयभागन्यूनान्त्यसागरकांटिकोटिस्थितिको मध्यमस्थितावायुषो  
वर्तमानो विशुद्धावशेषस्वरूपेणानादौ संसारे अप्राप्तपूर्वत्वात् स्थितिघातरसघाताद्यपूर्वार्थनिर्दत्ते-  
कत्वाद् अपूर्वेण करणेन भिन्नघनरागद्वेषरूपग्रन्थिः प्रधानतरविशुद्ध्यात्मकं न विद्यते मोक्षतरुर्वाजं  
सम्यक्त्वमनासाद्य निश्चिन्ति [व्याघ्रुटगमस्येण स्वर्द्ध] (=व्याघ्रुत्तिर्यस्य यस्मिन् वा तद्, तच्च तत्करण)-  
मानपृच्छिकरणमनुभवान्मिथ्यात्वास्थितेरुदयक्षणादारभ्यान्तर्मुहूर्त्तरयोपरि प्रदेशतो विपाकतश्च  
मिथ्यात्वदल्लिकानुदयरूपमन्तरकरणं करोति । कृते चैतस्मिन् मिथ्यात्वस्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमानाऽघ-  
स्तना । तदुपरिगता अन्तर्मुहूर्त्तान्तःसागरापमकोटीकोटिमाना द्वितीया । तत्रा-ऽऽद्यायां स्थि-  
तौ वत्तमाना मिथ्यात्वाद्यान्मिथ्याद्याष्टिरेव, अन्तर्मुहूर्त्तेन तस्यामुपगतायामन्तरकरणप्रथम(समय)  
एवं, पशमिकसम्यग्दर्शनप्राप्तावुपशान्ताद्धायामान्तर्मुहूर्त्तिकायां जघन्येन समयशेषायासुत्कृष्टतः  
पडावलेकाशेषायामनन्तानुबन्धुदयः कस्यचिद् भवति । तत्र चासौ सास्त्रादनसम्यग्दृष्टि-  
गुणस्थाने वर्तते । उपशमश्रेणेषां प्रतिपतितः कश्चिदिति कर्मग्रन्थमतम् । तत्र तस्याद्यगुणस्थान-  
मपि यावत् गमनात् । सिद्धान्तमते तु श्रेणेः समाप्तौ निश्चिन्तः प्रमत्तगुणेऽप्रमत्तगुणे वा-ऽवतिष्ठते ।  
कालगतस्तु देवेष्वविरतो भवतीति । सास्त्रादनोत्तरकालं चावश्यं मिथ्यात्वोदयान्मिथ्याद्याष्टिः  
स्यात् । अत्र च गुणस्थाने उत्कर्षतो-ऽसंख्येयाः प्राणिनः प्राप्यन्ते ॥२॥ सम्यक् च मिथ्या  
च दृष्टिरस्येति सम्यग्मिथ्याद्याष्टिस्तस्य गुणस्थानं सम्यग्मिथ्याद्याष्टिगुणस्थानम् । यदा हि पूर्वोक्त-  
प्रकारेणा-ऽवाप्तेन, पशमिकसम्यक्त्वेनौपधकल्पेन वक्ष्यमाणमतभेदादपूर्वकरणेन वा मदनकोद्रव-  
वदशुद्धस्य मिथ्यात्वमोहनीयस्य शुद्धार्द्धविशुद्धाशुद्धतया त्रिधा कृतस्य सम्बन्धिनां पुञ्जानां  
मध्येऽर्द्धविशुद्धपुञ्ज उदेति, तदा तदुदयवशेनार्द्धविशुद्धजिनतन्वभ्रद्धानसद्भावात् सम्यग्मिथ्या-  
द्याष्टिरन्तर्मुहूर्त्तं यावत्त ऊर्ध्वं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा भजति । अप्राऽप्युत्कृष्टतोऽसंख्येयाः प्राण-  
माजो लभ्यन्ते ॥३॥ विरति स्म = सावद्ययोगेभ्यो निवर्त्तते स्म विरतो न तथाऽविरतः, यद्वा  
विरमणं विरतं=सावद्ययोगपरिहार एव, अप्रत्याख्यानकषायोदयान्नास्य विरतमस्तीत्यविरतः ।  
स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चाविरतसम्यग्दृष्टिः । स च पूर्वोपवर्णितौपशमिकसम्यग्दृष्टिः, शुद्धदर्शनमोह-  
पुञ्जोदयवर्त्ती वा क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिः, प्रथमकषायचतुष्कमिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वक्षपणात्  
क्षीणदर्शनसप्तको वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिस्तस्य गुणस्थानमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् । इह च  
कर्मग्रन्थमतेन प्रथमपुक्तरीत्यैव सर्वोऽप्यौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्मुत्वा कृतत्रिपुञ्जः क्षायोपशमिक-

सम्यग्दृष्टिर्मिश्रो मिथ्यादृग्वा भवति । सिद्धान्तमतेन तु कोऽप्यनाद्रिमिथ्यादृक्तथाविश्रगुवादि-  
सामग्र्यामपूर्वकरणेन पुञ्जत्रयं कृत्वा शुद्धपुञ्जपुद्गलान्वेदयतौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्यैव  
क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । अन्यस्तूक्तक्रमेणवौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । पुञ्जत्रयमसौ न  
करोत्येव । तदकरणादेव चौपशमिकाच्च्युतो मिथ्यात्वमेव व्रजति । यत्कल्पभाष्यम्—

“भालम्बणमलहन्ती जह सद्भाणं न मुञ्चई इलिया । एवं अकयतिपुञ्जी मिच्छं चिय उवसमी ॥१॥” ।

अत्रा-ऽसंख्याताः सर्वदैव आसाद्यन्ते ॥४॥ प्रत्याख्यानकपायोदयेन विचारितसर्वविरति-  
लाभत्वात्करणत्रययोगत्रयविषयसर्वसावद्ययोगस्य देशे विवर्तितैकव्रतगोचरस्थूलसावद्ययोगादौ  
समस्तव्रतविषयानुमतिरहितव्यापारान्ते विरतं=विरतिर्यस्य स तथा, तस्य गुणस्थानं देश-  
विरतगुणस्थानम् । अत्रापि संख्यातीताः सततमऽवाप्यन्ते ॥५॥ संयच्छति स्म सर्वसावद्ययोगात्,  
सम्यगुपरमति स्म संयतः, प्रमाद्यति स्म=संयमयोगेषु सीदति स्म प्रमत्तः, यद्वा प्रमदनं प्रमत्तं=  
प्रमादो मदिरा-विषय-कषाय-निद्रा-विकथानामन्यतमः, सर्वे वा, प्रमत्तमस्यास्तीति मत्वर्थाया-  
त्प्रत्यये प्रमत्तः, स चासौ संयतश्च स तथा, तस्य गुणस्थानं प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । अत्र कोटि-  
सहस्रपृथक्त्वं प्राप्यते ॥६॥ प्रमत्तविपरीतोऽप्रमत्तः, स चासौ संयतश्चाप्रमत्तसंयतस्तस्य  
गुणस्थानमप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । अवसर्पिण्यास्तृतीये चतुर्थे चारके उत्सर्पिण्या द्वितीये तृतीये  
चतुर्थे चारकेऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीव्यतिरिक्ते चतुर्थारकप्रतिमे च काले लब्धजन्मोत्तमसंहननो  
वर्षाष्टकोपरि शुमलेश्यो मनुष्योऽस्मिन्नप्रमत्तगुणस्थानकेऽविरतादीनां त्रयाणां गुणस्थान-  
कानामन्यतमे वा वर्त्तमानः प्रथमकषायचतुष्क-दर्शनत्रिकक्षपणाय आरम्भकः । अत्रा-ऽप्रमत्त-  
गुणस्थानके प्रमत्तसंयतेभ्यः स्तोकाः प्राप्यन्ते ॥७॥ युगपदिदं गुणस्थानमनुप्रविष्टानाम-  
न्योन्यमध्यवसायस्थानस्य मेदरूपा निवृत्तिरप्यरतीति निवृत्तिः, सा चासौ गुणस्थानं च  
निवृत्तिगुणस्थानम् । अस्य ‘नवसिखादर’ इत्यपि संज्ञा । यन्मूलावद्यकटीका—क्षपक  
श्रेण्यन्तर्गतो जीवग्रामः क्षीणदर्शनसप्तको निवृत्तिवादरो मण्यते । अपूर्वकरणगुणस्थानमिति संज्ञा-  
न्तरमप्यस्य, तत्रापूर्व=नवं स्थितिघात-रसघात-गुणश्रेणि-गुणसंक्रम-स्थितिबन्धानां करणं=निवर्त्तन-  
मस्येत्यपूर्वकरणः । तत्र महामानायाः कर्मस्थितेरपर्वर्त्तनाकरणेनाल्पीकरणं स्थितिघातः । रसस्य  
प्रभूतस्यापवर्त्तनाकरणेनाल्पीकरणं रसघातः । एतौ च प्राक्तनगुणस्थानेषु विशुद्धेरल्पत्वादल्पावेव  
व्यघादत्र तु विशुद्धेरुत्कृष्टत्वेन महाप्रमाणावपूर्वो विघत्ते । उपरितनस्थितोर्विशुद्धिवशादपवर्त्तना-  
करणेनावतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूत्तप्रमाणमुदयसमयस्योपरि शीघ्रतरक्षपणाय प्रतिसमयम-  
संख्येयगुणया वृद्ध्या रचनं गुणश्रेणिरुच्यते । एतां च पूर्वगुणस्थानेष्वविशुद्धत्वेन कालतो दीर्घां  
दलिकरचनामाश्रित्य लघीयसीं दलिकस्यापवर्त्तनात् कृतवान् । अत्र तु विशुद्धत्वात् पूर्वा कालतो  
द्वस्वतरां (दलिकरचनां) स्वीकृत्य पृथीयसीं बहुतरस्य दलिकस्यापवर्त्तनात् करोति । तथा बध्य-  
मानशुभकर्मस्ववच्यमानाशुभकर्मदलिकस्य प्रति[न्दश्चन्द](क्षण)मसंख्येयगुणवृद्ध्या विशुद्धिवशेन

अनादिमिथ्यादाष्टरसुमान निमित्तदर्शनत्रिपुञ्जोऽनाभोगानर्धतितेन । गरिसरिदुपलघोलनाकल्पेन  
यथा येनैव प्रकारेणानादकाले अभूत्तेनैव प्रष्टुं नाऽपूर्वं स्वभावान्तरं प्राप्तामत्यन्वर्धेन यथाप्रष्टु-  
त्तं क्रियते कर्मबन्धोदयदीरणोपशमनाद्यनेनेति करणनाध्यवसायविशेषेण मोहस्य सागरापमा-  
णामेकाग्रसप्तति नाम्नो गोत्रस्य चैकाग्रविंशतिमायुर्वर्जानामन्येषां कर्मणामेकोनविंशतं च क्षपाय-  
त्वा प्रत्येकं कृतपन्थोपमा-ऽसंख्येयभागन्यूनान्त्यसागरकोटिकोटिस्थितिको मध्यमस्थितावायुषो  
वर्त्तमानो विशुद्धावशेषस्वरूपेणानादौ संसारे अप्राप्तपूर्वत्वात् स्थितिघातरसघाताद्यपूर्वार्थनिर्दत्त-  
कत्वाद् अपूर्वण करणेन मिश्रघनरागद्वेषरूपग्रन्थिः प्रधानतरविशुध्यात्मकं न विद्यते मोहतरुर्बाजं  
सम्यक्त्वमनासाद्य निवृत्ति [व्याघ्रुटगमस्येण र्वर्द्ध] (=व्याघ्रुत्तिर्यस्य यस्मिन् वा तद्, तश्च तत्करण)-  
मानवृत्तिकरणमनुभवन्मिथ्यात्वास्थितेरुदयक्षणादारभ्यान्तर्मुहूर्त्तरयोपरि प्रदेशतो विपाकतश्च  
मिथ्यात्वदलिकानुदयरूपमन्तरकरणं करोति । कृते चैतस्मिन् मिथ्यात्वस्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमानाऽध-  
स्तना । तदुपरंशत्तना अन्तर्मुहूर्त्तोनान्तःसागरापमकोटीकोटिमाना द्वितीया । तत्रा-ऽऽघायां स्थि-  
तौ वर्त्तमाना मिथ्यात्वाद्यान्मिथ्यादाष्टिरेव, अन्तर्मुहूर्त्तेन तस्यामुपगतायामन्तरकरणप्रथम(समय)  
एवपशमिकसम्यग्दर्शनप्राप्तावुपशान्ताद्यायामान्तर्मुहूर्त्तिष्यां जघन्येन समयशेषायामुत्कृष्टतः  
षडावलेकाशेषायामनन्तानुबन्धुदयः कस्यचिद् भवति । तत्र चासौ सास्वादनसम्यग्दष्टि-  
गुणस्थाने वर्त्तते । उपशमश्रेणैर्वा प्रतिपतितः कश्चिदिति कर्मग्रन्थमतम् । तत्र तस्याद्यगुणस्थान-  
मपि यावत् गमनात् । सिद्धान्तमते तु श्रेणोः समाप्तौ निवृत्तः प्रमत्तगुणेऽप्रमत्तगुणे वा-ऽवतिष्ठते ।  
कालगतस्तु देवेष्वविरतो भवतीति । सास्वादनोचरकालं चावश्यं मिथ्यात्वोदयान्मिथ्यादाष्टिः  
स्यात् । अत्र च गुणस्थाने उत्कर्षतो-ऽसंख्येयाः प्राणिनः प्राप्यन्ते ॥६॥ सम्यक् च मिथ्या  
च दष्टिरस्येति सम्यग्मिथ्यादाष्टिस्तस्य गुणस्थानं सम्यग्मिथ्यादाष्टिगुणस्थानम् । यदा हि पूर्वोक्त-  
प्रकारेणा-ऽवाप्तेर्नापशमिकसम्यक्त्वेनौषधकल्पेन वक्ष्यमाणमतमेदादपूर्वकरणेन वा मदनकोद्रव-  
वदशुद्धस्य मिथ्यात्वमोहनीयस्य शुद्धार्द्धविशुद्धाशुद्धतया त्रिधा कृतस्य सम्बन्धिनां पुञ्जानां  
मध्येऽर्द्धविशुद्धपुञ्ज उदेति, तदा तदुदयवशेनार्द्धविशुद्धजिनतत्त्वभ्रद्धानसद्भावात् सम्यग्मिथ्या-  
दाष्टिरन्तर्मुहूर्त्तं यावत्त ऊर्द्ध्वं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा भजति । अत्राऽप्युत्कृष्टतोऽसंख्येयाः प्राण-  
माजो लभ्यन्ते ॥३॥ विरति स्म = सावद्ययोगेभ्यो निवर्त्तते स्म विरतो न तथाऽविरतः, यद्वा  
विरमणं विरतं=सावद्ययोगपरिहार एव, अग्रत्याख्यानकषायोदयास्त्रास्य विरतमस्तीत्यविरतः ।  
स चासौ सम्यग्दष्टिश्चाविरतसम्यग्दष्टिः । स च पूर्वोपवर्णितौपशमिकसम्यग्दष्टिः, शुद्धदर्शनमोह-  
पुञ्जोदयवर्त्ती वा क्षायोपशमिकसम्यग्दष्टिः, प्रथमक्षपायचतुष्कमिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वक्षपायात्  
क्षीणदर्शनसप्तको वा क्षायिकसम्यग्दष्टिस्तस्य गुणस्थानमविरतसम्यग्दष्टिगुणस्थानम् । इह च  
कर्मग्रन्थमतेन प्रथममुत्तरीत्यैव सर्वोऽप्यौपशमिकसम्यग्दष्टिर्मुत्वा कृतत्रिपुञ्जः क्षायोपशमिक-

सम्यग्दृष्टिर्मिश्रो मिथ्यादृग्वा भवति । सिद्धान्तमतेन तु कोऽप्यनादिमिथ्यादृक्त्तथाविधगुणादि-  
सामग्र्यामपूर्वकरणेन पुञ्जत्रयं कृत्वा शुद्धपुञ्जपुद्गलान्वेदयतैः पशमिकमभ्यग्दृष्टिर्भूत्यैव  
क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । अन्यस्तूक्तक्रमेणवौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । पुञ्जत्रयमसौ न  
करोत्येव । तदकरणादेव चौपशमिकाच्च्युतो मिथ्यात्वमेव व्रजति । यत्कल्पभाष्यम्—

“बालम्ब्रणमलहन्ती जह सद्भाणं न मुञ्चई दृष्टिया । एवं अक्यतिपुञ्जी मिच्छं चिय उवसमी णइ ॥” ।

अत्रा-ऽसंख्याताः सर्वदैव आसाद्यन्ते ॥४॥ प्रत्याख्यानकषायोदयेन विचारितसर्वविरति-  
त्तामत्वात्करणत्रययोगत्रयविषयसर्वसावद्ययोगस्य देशे विवर्चितैकव्रतगोचरस्थूलसावद्ययोगादौ  
समस्तव्रतविषयानुमतिरहितव्यापारान्ते विरतं=विरतिर्यस्य स तथा, तस्य गुणस्थानं देश-  
विरतगुणस्थानम् । अत्रापि संख्यातीताः सततमऽवाप्यन्ते ॥५॥ संयच्छति स्म सर्वसावद्ययोगात्,  
सम्यगुपरमति स्म संयतः, प्रमाद्यति स्म=संयमयोगेषु सीदति स्म प्रमत्तः, यद्वा प्रमदनं प्रमत्तं=  
प्रमादो मदिरा-विषय-कषाय-निद्रा-विकथानामन्यतमः, सर्वे वा, प्रमत्तमस्यास्तीति मत्वर्थीया-  
त्प्रत्यये प्रमत्तः, स चासौ संयतश्च स तथा, तस्य गुणस्थानं प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । अत्र कोटि-  
सहस्रपृथक्त्वं प्राप्यते ॥६॥ प्रमत्तविपरीतोऽप्रमत्तः, स चासौ संयतश्चाप्रमत्तसंयतस्तस्य  
गुणस्थानमप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । अवसर्पिण्यास्तृतीये चतुर्थे चारके उत्सर्पिण्या द्वितीये तृतीये  
चतुर्थे चारकेऽवसर्पिण्युत्सर्पिण्यतिरिक्ते चतुर्थारकप्रतिमे च काले लब्धजन्मोत्तमसंहननो  
वर्षाष्टकोपरि शुमलेशयो मनुष्योऽस्मिन्नप्रमत्तगुणस्थानकेऽविरतादीनां त्रयाणां गुणस्थान-  
कानामन्यतमे वा वर्त्तमानः प्रथमकषायचतुष्क-दर्शनत्रिकक्षपणाय आरम्भकः । अत्रा-ऽप्रमत्त-  
गुणस्थानके प्रमत्तसंयतेभ्यः स्तोकाः प्राप्यन्ते ॥७॥ युगपदिदं गुणस्थानमनुप्रविष्टानाम-  
न्योन्यमध्यवसायस्थानस्य मेदरूपा निवृत्तिरप्यरतीति निवृत्तिः, सा चासौ गुणस्थानं च  
निवृत्तिगुणस्थानम् । अस्य ‘नवत्तिबाधर’ इत्यपि संज्ञा । यन्मूलावश्यकटीका—क्षपक  
श्रेण्यन्तर्गतो जीवग्रामः क्षीणदर्शनसप्तको निवृत्तिबाधरो मण्यते । अपूर्वकरणगुणस्थानमिति संज्ञा-  
न्तरमप्यस्य, तत्रापूर्वं=नवं स्थितिघात-रसघात-गुणश्रेणि-गुणसंक्रम-स्थितिवन्धानां करणं=निवर्त्तन-  
मस्येत्यपूर्वकरणः । तत्र महामानायाः कर्मस्थितेरपर्वर्त्तनाकरणेनात्पीकरणं स्थितिघातः । रसस्य  
प्रभूतस्यापवर्त्तनाकरणेनात्पीकरणं रसघातः । एतौ च प्राक्तनगुणस्थानेषु विशुद्धेरन्यत्वादन्पावेव  
व्यघादत्र तु विशुद्धेरुत्कृष्टत्वेन महाप्रमाणावपूर्वो विधत्ते । उपरितनस्थितेविशुद्धिवशादपवर्त्तना-  
करणेनावतारितस्य दलिकस्यान्तर्द्वृत्तप्रमाणमुदयसमयस्योपरि शीघ्रतरक्षपणाय प्रतिसमयम-  
संख्येयगुणया वृद्ध्या रचनं गुणश्रेणिरुच्यते । एतां च पूर्वगुणस्थानेष्वविशुद्धत्वेन कालतो दीर्घां  
दलिकरचनामाश्रित्य लघीयसीं दलिकस्यापवर्त्तनात् कृतवान् । अत्र तु विशुद्धत्वाद् पूर्वा कालतो  
दृस्वतरां (दलिकरचनां) स्वीकृत्य पृथीयसीं बहुतरस्य दलिकस्यापवर्त्तनात् करोति । तथा बध्य-  
मानशुभकर्मस्वबध्यमानाशुभकर्मदलिकस्य प्रति[न्दशब्द](क्षण)मसंख्येयगुणवृद्ध्या विशुद्धिवशेन



नयनं=संचारणं गुणसंक्रमः । एनमप्यत्र विशिष्टतरत्वादपूर्वं करोति । विशिष्टाध्यवसायपरि-  
 गृहीतस्य कर्मदलिकस्य यत्कालनियमनं स स्थितिवन्धः एतं चाशुद्धत्वात्प्राग्द्राघीयांसमाकार्पी-  
 ङ्गिह तु विशुद्धत्वात्लघीयांसं करोति । उपलक्षणं चैतदुदयोद्वर्तनादीनाम् , यत एतानप्यपूर्वान्  
 करोत्यत्र स चापूर्वकरणः क्षपणाया उपशमनायाश्चाहत्वात् क्षपक उपशमको वा न पुनरयं  
 क्षपयत्युपशमयति वा किञ्चित् । तस्य गुणस्थानमपूर्वकरणगुणस्थानम् । अत्र संख्याता  
 लभ्यन्ते ॥८॥ एककालमिदं गुणस्थानमधिरूढानां बहूनामसुमन्तां परस्परसम्बन्धिनोध्य-  
 वसायरथानस्य व्यावृत्तिरिह निवृत्तिः, नास्ति तथाविधा साऽस्येत्यनिवृत्तिः । तुल्यकाल-  
 मिदमारूढानामन्येषां यदध्यवसायरथानं त्रिर्वाक्षतस्यापि तदेवेत्यर्थः ॥९॥ सम्परैति=पर्यटति  
 संसारमनेनेति सम्परायः=ऋषयोदयः, बादरसूक्ष्मसम्परायापेक्षया स्थूलः सम्परायोऽस्येति  
 बादरसम्परायोऽनिवृत्तिश्चासौ बादरसम्परायश्च स तथा, स च क्षपकोपशमकमेदात् द्विधा, तत्राऽ-  
 ब्रह्मायुः क्षपकः प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानकषायाष्टकमर्द्धक्षपितं कृतान्तराल एवातिविशुद्धिवशेन  
 क्षपितस्त्यानर्द्धिञ्चिकनरकद्विकतिर्यग्विद्वैकैन्द्रियादिजातिचतुष्कातपोद्योतस्थावर-साधारणसूक्ष्माभि-  
 धानषोडशप्रकृतिर्मतान्तरेण त्वपर्याप्तप्रक्षेपात्क्षपितसप्तशप्रकृतिस्तस्यैव क्षपितशेषं क्षपयति, ततः  
 क्रमेण नपुंसकवेद स्त्री-वेद-हास्यादिषट्क-पुंवेदसञ्चलनक्रोध-मान-मायाः क्षपयति, ततो  
 लोभमपि बादरं सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसम्पराय एव क्षपणात् उपशमकस्तु नपुंसकवेदं स्त्रीवेदं  
 हास्यादिषट्कं पुंवेदं द्वितीयतृतीयौ क्रोधौ चतुर्थक्रोधं द्वितीयतृतीयौ मानौ चतुर्थमानं द्वितीय-  
 तृतीये माये चतुर्थमायां द्वितीयतृतीयौ लोभौ च क्रमेणोपशमयति । ततश्चास्य सामान्येनेहोवत-  
 क्षपणोपशमविषयक्रमस्यावश्यकवृत्तिकृता विशेषेण क्षपणायामुपशमनार्या च निष्टब्धित-  
 क्रमान्तस्य हूर्त्तमनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानम् । अत्र संख्याताः प्राप्यन्ते ॥६॥ सूक्ष्मः सम्परायः=  
 किङ्कीकृतलोभकषायोदयरूपो यस्य स सूक्ष्मसम्परायः क्षपक उपशमो वा । तस्य गुणस्थानं  
 सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानं । अत्र संख्याता अधिगम्यन्ते ॥१०॥ छाद्यते केवलं ज्ञानं दर्शनं  
 चात्मनोऽनेति छद्म, तच्चात्र ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मोदयरूपम् , तत्र तिष्ठतीति  
 छद्मस्थः, वीतो रागो मायालोभोदयरूपो यस्य स तथा, स चासौ छद्मस्थश्च  
 वीतरागछद्मस्थः । उपशान्ता=उपशमं नीताः सन्त एव संक्रमणोद्वर्तनादिकरणायोग्यत्वेन  
 व्यवस्थापिताः कषाया येन स तथा, स चासौ वीतरागछद्मस्थश्च उपशान्तकषायवी-  
 तरागच्छद्मस्थस्तस्य गुणस्थानम् उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् । तत्रोपशान्त-  
 कषायग्रहणे सति वीतरागग्रहणमविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनां प्रमत्तान्तानां व्यवच्छेदाय, तेषामप्य-  
 नन्तानुबन्ध्यादिक्रियत्कषायोपशमकत्वात् , वीतरागग्रहणे चोपशान्तकषायवीतरागग्रहणं क्षीण-  
 कषायस्य निरासाय, उपशान्तकषायवीतरागग्रहणे छद्मस्थग्रहणं स्वरूपात्रिप्करणाथम् ; नक्ष-

छद्मस्थ उपशान्तकषाय वीतरागः सम्भवति, यः छद्मस्थग्रहणेन व्यवच्छिद्येत । अयमुपशान्त-  
कषायवीतरागच्छद्मस्थो जघन्यतः समयमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं भवति । तत ऊर्ध्वं नियमेनाद्वा-  
क्षयेण भवक्षयेण वा प्रतिपतति । तत्र भवचयो प्रियमाणस्य, अद्वाक्षय उपशान्ताद्वायां पूर्णायाम् ।  
अद्वाक्षयेण प्रतिपतन् यथैवारूढस्तथैव प्रतिपतति । अयं च वारचतुष्टयमुपशमश्रेणिं नानाभवेषु  
प्रतिपद्यते । 'च ३ उवसमित्तमोह' इति वचनात् । एकस्मिस्तु वारद्वयमुत्कर्षत 'एगभवे द्युत्तो-  
त्तरितमोहं चवसमेह' इति वचनात् । यश्च वारद्वयमेतां प्रतिपद्यते तस्य तत्र भवे नियमात् क्षपकश्रे-  
णेरभावः । यः पुनरेकवारं प्रतिपद्यते तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपीति कर्मग्रन्थमतम् । सिद्धान्तमतं  
त्वेकभवे एकामेव श्रेणीं प्रतिपद्यते । यस्करूपः—'अन्नयरसेद्विज्जं एगभदेण च सच्चा' इति । अत्र  
संख्याता वर्त्तन्ते ॥११॥ क्षीणाः—क्षयमापन्नाः कषाया यस्य स तथा, स चासौ वीतरागच्छद्म-  
स्थश्च क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थस्तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् ।  
अस्मिन् द्वादशे गुणस्थाने परमार्थेन दर्शितायाः क्षपकश्रेणोरेकादशे चोपशमश्रेणेः परिसमाप्ति-  
र्भवति । श्रेणिद्वयस्यास्य परिसमाप्तिकालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमेव, असंख्येयत्वादन्तर्मुहूर्त्तानाम् । तत्रा-  
विरताद्यप्रमतान्तेष्वाद्यान् कषायान्दर्शनत्रयं च, शेषास्तु संज्वलनलोभविकलाननिवृत्तौ, संज्वलनं  
लोभं च सूक्ष्मसम्पराये क्षपयति । तदेवमेतेष्वपि गुणस्थानेषु क्षीणकषायव्यपदेशः प्रसज्यते,  
क्वापि कियतां कषायाणां ह्यसद्भावाद्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम्, क्षीणकषायवी-  
तरागत्वे सति छद्मस्थग्रहणं केवलीव्युदासाय, छद्मस्थग्रहणे सति सरागपराकरणार्थं वीतराग-  
ग्रहणम्, क्षीणकषायग्रहणं चोपशान्तकषायव्यवच्छिद्ये । अत्र संख्याता भवन्ति ॥१२॥ सहयोगेन=  
वीर्येण वर्त्तन्ते=सयोगा मनोवाक्कायास्ते विद्यन्ते यस्य सयोगी । यद्वा अनुत्तरविमानवासिमनः-  
पर्यायज्ञानादिभिः किञ्चिन्मनसा पृष्टस्य केवलिनो मनसैवावेदने मनोयोगस्याद्यान्त्यमेदभाजः,  
देशनादौ वाग्योगस्यादिमान्तिममेदान्वितस्य, चंक्रमणादावौदारिककाययोगस्य च सद्भावात्,  
सहयोगैर्मनोवाक्कार्यैर्वर्त्तत इति सयोगः, सयोगी वा, सर्वधनादेशकृतिगणत्वेन मत्वर्थीयेन्वि-  
धानात्, केवलमस्तीति केवली, सयोगश्चासौ सयोगी वा चासौ केवली च तस्य गुणस्थानं  
सयोगकेवलिगुणस्थानं सयोगिकेवलिगुणस्थानमिति वा । अत्र कोटिपृथक्त्वमापद्यते ॥१३॥ न  
सन्ति प्राचीना[म]योगा यस्याऽसावयागोऽयोगी वा पूर्ववत् । अयोगित्वं पुनरेवम्—त्रिविधो-  
ऽपि योगः सूक्ष्मबादरत्वाभ्यां द्वेषा, केवली च केवलोत्पादाद्दूर्ध्वं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तस्युत्कृष्टतस्तु  
देशोनां पूर्वकोटीं विहृत्यान्तर्मुहूर्त्तशेषाद्युः शैलेशीं प्रतिपित्सुरादौ बादरकाययोगेन बादर-  
वाग्मनोयोगौ निरुच्य सूक्ष्मकाययोगावष्टम्भेन बादरकाययोगं निरुणद्धि । सर्वबादरयोगनिरोधा-  
नन्तरं च सूक्ष्मकाययोगावष्टम्भेन सूक्ष्मवाग्मनोयोगौ निरुणद्धि । सूक्ष्मकाययोगं तु सूक्ष्मक्रिय-  
मनिवर्त्तिशुक्लज्यान् ध्यायन् सावष्टम्भेनैव निरुणद्धि । अन्यस्यावष्टम्भनीययोगान्तरस्य तदा-

नयनं=संचारणं गुणसंक्रमः । एनमप्यत्र विशिष्टतरत्वादपूर्वं करोति । विशिष्टाध्यवसायपरि-  
 गृहीतस्य कर्मदालिकस्य यत्कालनियमनं स स्थितिवन्धः एतं चाशुद्धत्वात्प्राग्ग्राधीयांसमाकर्षी-  
 षिह तु विशुद्धत्वान्लघीयांसं करोति । उपलक्षणं चैतदुदयोद्वर्त्तनादीनाम् , यत एतानप्यपूर्वान्  
 करोत्यत्र स चापूर्वकरणः क्षपणाया उपसमनायाश्चार्हत्वात् क्षपक उपशमको वा न पुनरयं  
 क्षपयत्युपशमयति वा किञ्चित् । तस्य गुणस्थानमपूर्वकरणगुणस्थानम् । अत्र संख्याता  
 लभ्यन्ते ॥८॥ एककालमिदं गुणस्थानमधिरूढानां बहूनामसुमन्तां परस्परसम्बन्धिनोध्य-  
 वसायस्थानस्य व्यावृत्तिरिह निवृत्तिः, नास्ति तथाविधा साऽस्येत्यनिवृत्तिः । तुल्यकाल-  
 मिदमारूढानामन्येषां यदध्यवसायस्थानं विवक्षितस्यापि तदेवेत्यर्थः ॥९॥ सम्परैति=पर्यटति  
 संसारमनेनेति सम्परायः=हृषायोदयः, वादरसूक्ष्मसम्परायापेक्षया स्थूलः सम्परायोऽस्येति  
 वादरसम्परायोऽनिवृत्तिश्चासौ वादरसम्परायश्च स तथा, स च क्षपकोपशमकमेदात् द्विधा, तत्राऽ-  
 न्नद्वायुः क्षपकः प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानकषायाष्टकमर्द्धक्षपितं कृतान्तराल एवातिविशुद्धिवशेन  
 क्षपितस्त्यानर्द्धिप्रिकनरकद्विकृतिर्यग्विद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपोद्योतस्थावर-साधारणसूक्ष्माभि-  
 धानपोडशप्रकृतिर्मितान्तरेण त्वपर्याप्तप्रक्षेपात्क्षपितसप्तदशप्रकृतिस्तस्यैव क्षपितशेषं क्षपयति, ततः  
 क्रमेण नपुंसकवेद स्त्री-वेद-हास्यादिषट्क-पुंवेदसंज्वलनक्रोध-मान-मायाः क्षपयति, ततो  
 लोभमपि वादरं सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसम्पराय एव क्षपणात् उपशमकस्तु नपुंसकवेदं स्त्रीवेदं  
 हास्यादिषट्कं पुंवेदं द्वितीयतृतीयौ क्रोधौ चतुर्थक्रोधं द्वितीयतृतीयौ मानौ चतुर्थमानं द्वितीय-  
 तृतीये माये चतुर्थमायां द्वितीयतृतीयौ लोभौ च क्रमेणोपशमयति । ततश्चास्य सामान्येनेहोवत्-  
 क्षपणोपशमविषयक्रमस्यावश्यकवृत्तिकृता विशेषेण क्षपणायास्तुपशमनार्या च निष्टङ्कित-  
 क्रमान्तस्य हृत्तमनिवृत्तिवादरसंपरायगुणस्थानम् । अत्र संख्याताः प्राप्यन्ते ॥६॥ सूक्ष्मः सम्परायः=  
 किट्टीकृतलोभकषायोदयरूपो यस्य स सूक्ष्मसम्परायः क्षपक उपशमो वा । तस्य गुणस्थानं  
 सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानं । अत्र संख्याता अधिगम्यन्ते ॥१०॥ छाद्यते केवलं ज्ञानं दर्शनं  
 चात्मनोऽनेति छद्म, तच्चात्र ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकमोदयरूपम् , तत्र तिष्ठतीति  
 छद्मस्थः, वीतो रागो मायालोभोदयरूपो यय स तथा, स चासौ छद्मस्थश्च  
 वीतरागछद्मस्थः । उपशान्ता=उपशमं नीताः सन्त एव रंक्रमणोद्वर्त्तनादिकरणायोग्यत्वेन  
 व्यवस्थापिताः कषाया येन स तथा, स चासौ वीतरागछद्मस्थश्च उपशान्तकषायवी-  
 तरागच्छद्मस्थस्तस्य गुणस्थानम् उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् । तत्रोपशान्त-  
 कषायग्रहणे सति वीतरागग्रहणमविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनां प्रमत्तान्तानां व्यवच्छेदाय, तेषामप्य-  
 नन्तानुबन्ध्यादिकियत्कषायोपशमकत्वात् , वीतरागग्रहणे चोपशान्तकषायवीतरागग्रहणं क्षीण-  
 कषायस्य निरासाय, उपशान्तकषायवीतरागग्रहणे छद्मस्थग्रहणं स्वरूपाविक्रणार्थम् ; नक्ष-

छद्मस्थ उपशान्तकपाय वीतरागः सम्भवति, यः छद्मस्थग्रहणेन व्याचिच्छद्येत् । अयमुपशान्त-  
कपायवीतरागच्छद्मस्थो ज्वन्यतः समयमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं भवति । तत ऊर्ध्वं नियमेनाद्वा-  
क्षयेण भवक्षयेण वा प्रतिपतति । तत्र भवक्षयो म्रियमाणस्य, अद्वाक्षय उपशान्ताद्वायां पूर्णायाम् ।  
अद्वाक्षयेण प्रतिपतन् यथैवारूढस्तथैव प्रतिपतति । अयं च वारचतुष्टयमुपशमश्रेणिं नानाभवेषु  
प्रतिपद्यते । 'च ऽ उवसमित्तुमोऽ' इति वचनात् । एकस्मिस्तु वारद्वयमुत्कर्षत 'एगभवे द्रुमुत्तो-  
वरितमोऽ उवसमेऽ' इति वचनात् । यश्च वारद्वयमेतां प्रतिपद्यते तस्य तत्र भवे नियमात् क्षपकश्रे-  
णेरभावः । यः पुनरेकवारं प्रतिपद्यते तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपीति कर्मग्रन्थमतम् । सिद्धान्तमतं  
त्वेकभवे एकामेव श्रेणीं प्रतिपद्यते । यस्करूपः—'अन्नयरसेद्विज्जं एगभदेण च सच्चा' इति । अत्र  
संख्याता वर्त्तन्ते ॥११॥ क्षीणाः=क्षयमापन्नाः कषाया यस्य स तथा, स चासौ वीतरागच्छद्म-  
स्थश्च क्षीणकपायवीतरागच्छद्मस्थस्तस्य गुणस्थानं क्षीणकपायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् ।  
अस्मिन् द्वादशे गुणस्थाने परमार्थेन दर्शितायाः क्षपकश्रेणोरेकादशे चोपशमश्रेणेः परिसमाप्ति-  
र्भवति । श्रेणिद्वयस्यास्य परिसमाप्तिकालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमेव, असंख्येयत्वादन्तर्मुहूर्त्तानाम् । तत्रा-  
विरताद्यप्रमतान्तेष्वाद्यान् कपायान्दर्शनत्रयं च, शेषास्तु संज्वलनलोभविकलाननिवृत्तौ, संज्वलनं  
लोभं च सूक्ष्मसम्पराये क्षपयति । तदेवमेतेष्वपि गुणस्थानेषु क्षीणकपायव्यपदेशः प्रसज्यते,  
क्वापि कियतां कषायाणां क्षयसदृशावाद्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम्, क्षीणकपायवी-  
तरागत्वे सति छद्मस्थग्रहणं केवलीव्युदासाय, छद्मस्थग्रहणे सति सरागपराकरणार्थं वीतराग-  
ग्रहणम्, क्षीणकपायग्रहणं चोपशान्तकपायव्यवच्छिद्ये । अत्र संख्याता भवन्ति ॥१२॥ सहयोगेन=  
वीर्येण वर्त्तन्ते=सयोगा मनोवाक्कायास्ते विद्यन्ते यस्य सयोगी । यद्वा अनुत्तरविमानवासिमनः-  
पर्यायज्ञानादिभिः किञ्चिन्मनसा पृष्टस्य केवलिनो मनसैवावेदने मनोयोगस्याद्यात्यमेदभाजः,  
देशनादौ वाग्योगस्यादिमान्तिममेदान्वितस्य, चक्रमणादावौदारिककाययोगस्य च सदृभावात्,  
सहयोगैर्मनोवाक्यायैर्वर्त्तत इति सयोगः, सयोगी वा, सर्वधनादेशकृतिगणत्वेन मत्वर्थीयेन्वि-  
धानात्, केवलमस्तीति केवली, सयोगश्चासौ सयोगी वा चासौ केवली च तस्य गुणस्थानं  
सयोगकेवलिगुणस्थानं सयोगिकेवलिगुणस्थानमिति वा । अत्र कोटिपृथक्त्वमापद्यते ॥१३॥ न  
सन्ति प्राचीना[म]योगा यस्या-ऽसावयागोऽयोगी वा पूर्ववत् । अयोगित्वं पुनरेवम्-त्रिविधो-  
ऽपि योगः सूक्ष्मबादरत्वाभ्यां द्वेषा, केवली च केवलोत्पादादूर्द्ध्वं ज्वन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतस्तु  
देशानां पूर्वकोटीं विहृत्यान्तर्मुहूर्त्तशेषाद्युः शैलेर्षीं प्रतिपित्सुरादौ बादरकाययोगेन बादर-  
वाग्मनोयोगौ निरुध्य सूक्ष्मकाययोगावष्टम्भेन बादरकाययोगं निरुणद्धि । सर्वबादरयोगनिरोधा-  
नन्तरं च सूक्ष्मकाययोगावष्टम्भेन सूक्ष्मवाग्मनोयोगौ निरुणद्धि । सूक्ष्मकाययोगं तु सूक्ष्मक्रिय-  
सनिवर्त्तिशुक्लप्यानं ध्यायन् सावष्टम्भेनैव निरुणद्धि । अन्यस्यावष्टम्भनीययोगान्तरस्य तदा-

ऽसत्त्वात् । सन्निरोधानन्तरं च सम्युच्छिन्नक्रियमप्रतिपातिशुबलध्यानं ध्यायन् ह्रस्वपञ्चाक्षरोब्-  
गिरणमात्रमात्रकालं शैलीशीकरणं प्रविष्टो भवति । शीलस्य=योगलेश्यामलविकलयथाख्यात-  
चारित्ररूपस्य य ईशः स शीलेशस्तस्येयं शैलेशी, त्रिभागोनस्वदेहावगाहनायामृदरादिरन्ध्र-  
पूरणात्संकोचितस्वप्रदेशस्य शैलेश्या=ऽऽत्मनोऽत्यन्तस्थिरावस्थितिरित्यर्थः । तस्यां करणं=पूर्व-  
रचितशैलेशीसमयसमानगुणश्रेणीकस्य नाम-वेद्य-गोत्राख्यस्याघातिकर्मत्रयस्याऽसंख्येयगुणया  
श्रेण्या, आयुःशेषस्य तु यथास्वरूपस्थितिकया श्रेण्या निर्जरणं शैलेशीकरणम् । तत्र प्रविष्टोऽयोगो-  
ऽयोगी वा स चासौ केवली च स तथा । अयं च शैलेशीकरणचरमसमयानन्तरं सिद्धो भवति ।  
सिद्धोपि च सन्नयोगकेवलीति व्यपदिश्यते । योगानामभावात् केवलस्य च भावात् । एतद-  
पेक्षयैव चोत्तरत्रायोगिकेवललिनामानन्त्यं वक्ष्यते । भवस्थापेक्षया तु संख्यात्वमेव स्यात् । तस्य  
गुणस्थानमयोगकेवलिगुणस्थानमयोगिकेवल्लिगुणस्थानं वा ॥ १४ ॥ एषामुत्तरोत्तरप्रवर्द्धमान-  
विशुद्धमत्ता । एवं क्रमनिर्देशहेतुः । अत एवाह- 'गुणा' इति सूत्रकत्वात् सूत्रस्य इतेरुल्लेखार्थरय  
चं गम्यमानत्वादित्येवंरूपाणि गुणानां स्थानानि=उपचयापचयजाः स्वरूपविशेषा गुण-  
स्थानानि । तथाहि-पूर्वपूर्वगुणापेक्षयोत्तरोत्तरगुणानामुपचय उत्तरोत्तरगुणापेक्षया पूर्वपूर्वगुणानाम-  
पचयः । कालप्रमाणं चामीषां यथा-

जीवाणममञ्चाणं मिच्छन्तमणाद्भनिहणं नेयं । भधियाणमिणमणाई संत पत्तांमि सम्मत्ते ॥१॥  
सासाणं छावलिद्यं तुरियं तेत्तीससागरा भहिया । पंचममह तेरसमं देसूणा पुव्वकोडी उ ॥२॥  
चरिमं ह्रस्वपणकरवरडगिरणपमाणयं भवत्याणं । सिद्धणमणंतदधं भन्तमुहूत्तं तु सेसाणि ॥३॥  
समओ उ जहण्णेणं पमत्तसासगुव्वसन्तमोहाणं । वेससजोगिभसंजयमिच्छत्ताणं मुहूत्तांते ॥४॥  
जीवसमासे त्वप्रमत्तादीनां चतुर्णां समयो जघन्यः कालः ।

सांप्रतमेतानि मार्गणारथानेषु योजयति—

चत्वारि देवनरएसु पंच तिरिएसु चउदस नरेसुं ।

इगिविगलेसुं दो दो पंचिदीसुं चउदस वि ॥२७॥

(यशो०) देवनरकगत्योराद्यानि चत्वारि, न श्लेषाणि, विरतेरभावात् । तिर्यग्गतौ देशविरत्य-  
न्तान्याद्यानि पञ्च, नान्वानि, सर्वविरतेरभावात् । मनुष्यगतौ चतुर्दश-सर्वगुणाश्रयत्वात्तस्याः ।  
“इगिविगलेसुं”ति एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु मिथ्यात्वसास्वादनरूपे द्वे । तत्रैतेषु सर्वभेदमिन्नेषु  
मिथ्यात्वं प्रतीतम् । स्वास्वादनं तु तेजोवायुवर्जप्रत्येकषादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियेषु  
करणापर्याप्तेषु द्रष्टव्यम् । पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्दश । तत्रैतेषु सर्वभेदेषु मिथ्यात्वम्, असंज्ञिषु  
पञ्चेन्द्रियेषु करणापर्याप्तेषु सास्वादनम्, संज्ञिषु करणापर्याप्तेषु सासादना-ऽविरताख्ये, शेषाणि  
त्वेकादर्शापि संज्ञिषु पर्याप्तेष्वेव ॥ २७ ॥

भूदगतरूसु दो एगमगणिवाऊसु चउदम-तमेसुं ।  
जोए तेरस वेए तिकसाए नव दस य लोभे ॥२८॥

(यशो०) भूदकतरूपु पृथिव्यव्वनस्पतिषु द्वे द्वे आद्ये । तत्र मिथ्यात्वं सुगमम् । सास्वादनं करणापर्याप्तेषु । एकमाद्यमग्निवायुष्वतिसंक्लिष्टतया सासादनभावान्वितरयैष्वनुत्पत्तेः । त्रसेषु चतुर्दश । द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियान्तसंग्राहित्वेन सर्वगुणानां सम्भवात् । योगे मनोवाक्यरूपेऽयोगिवर्जानि त्रयोदश । वेदे नपुंसकस्त्रीषुरूपे त्रयः कषायाः समाहृतात्त्रिकषायं तत्र क्रोधमानमायात्मके नवाधानि । तत्राऽर्निवृत्तिबादराख्यनवमगुणस्थाने वर्तमानो यावदेतत्कषायत्रयवानवाप्यते, तक्षपयत्युपशमयति वा तावत् स्वगुणस्थानसंख्येयभागान्यावदेतद्वेदत्रयकषायत्रयवानवाप्यते, त परतः । लोभे दशादितः प्रमृति । सूक्ष्मसम्पराये-ऽपि किङ्कीकृतालोभसम्भवात् ॥२८॥

महसुयओहिदुगे नव अजयाइ जयाइ सत्त मणनाणे ।  
केवलदुगंमि दो तिन्नि दो व पढमा अनाएलिगे ॥ २९ ॥

(यशो०) मतिज्ञानश्रुतज्ञाना-ऽवधिज्ञाना-ऽवधिदर्शनेषु नव यतादीनि=अविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणमोहान्तानि मनःपर्यायज्ञाने यतादीनि=प्रमत्तसंयतादीनि क्षीणमोहान्तानि । केवलद्विके=केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मनि द्वे सयोग्ययोगिरूपे । अज्ञानत्रिके=मत्यज्ञान-श्रुतज्ञान-विमद्गारख्ये । त्रीण्यादिमानि द्वे वा प्रथमे । तत्र ये त्रीणि मन्यन्ते, तेषामिदमाकृतं यन्मिश्रदृष्टेर्ज्ञानान्यपि अज्ञानान्येव, यथाऽवस्थितवस्तुपरिच्छेदाभावात्, ज्ञानकार्याऽकरणाद्वा । ये तु द्वे एव प्रतिजानते, तेषामयमभिसंधिर्यदुत मिश्रदृष्टेर्ज्ञानानि किञ्चित्समीचीनरूपत्वादीपत्कलुषभावमांज्यपि सम्यग्ज्ञानान्येव, अतो-ऽज्ञानाप्रये मिश्रदृष्टिर्न प्राप्यते । न च सास्वादनस्यापि सम्यग्दृष्टित्वेन तदवबोधस्यापि सम्यग्ज्ञानात्मकत्वादज्ञानत्रितये सास्वादनगुणस्थानासद्भाव इति वाच्यम् । यतस्तज्ज्ञानस्य प्रथमकषायोदयेनातिदूषितत्वादज्ञानत्वमेव ॥२९॥

सामाइयछेएसुं चउरो परिहार दो पमत्ताई ।  
देससुहुमे सगं पढमचरमचउअजयअहखाए ॥ ३० ॥

(यशो०) सामाधिकच्छेदोपस्थापनीययोश्चत्वारि प्रमत्तादीनि अनिवृत्तिबादरान्तानि । परिहार-विशुद्धिके द्वे प्रमत्ताऽप्रमत्तरूपे, नोत्तराणि, श्रेणेरभावात् । देशविरते स्वकं स्वकीयं देशविरत्यभिधम्, सूक्ष्मसम्पराये, स्वकं सूक्ष्मसंरायात्मकम् । प्रथमचरमयोरयत्-यथाख्याताम्यां सह यथाक्रमं सम्बन्धस्ततः प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वार्यसंयते । यतोऽत्रासंयतत्वं विरतेरभावः, स चा-ऽविरतसम्यग्मिथ्यादृशोस्तुन्यः । यथाख्याते-तु चरमाणि उपशान्तकषायादीनि चत्वारि ॥३०॥

वारस अचक्खुचक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ द्सु सत्त ।  
सुक्काएँ तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(यशो०) "सव्वे भव्वे" इति पदं विहाय प्रथमशब्दस्य सर्वत्राभिसम्बन्धादचक्षुश्चक्षुर्दर्शनयोर्द्वां दश प्रथमानि । लेश्यास्वाद्यासु तिमृषु प्रथमानि षट् । तत्र कृष्णादिलेश्यात्रये प्रथमानां चतुर्णां सव्वभावः, मंदमंक्लेशे तु तत्र देशविरतप्रमत्तयोः सद्भावः । प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि ह्यध्यवसायस्थानानि । लेश्यानां मतमेदेन तु चत्वार्येव । यतः केचिद्देशविरतादित्रयस्य विशुद्धतै-जस्यादित्रये सद्भावं मन्यते । न कृष्णादिलेश्यात्रये । देशविरतादित्रयस्य विरतत्वात्, तथाविध-संक्लेशवर्जितानां तु तत्र विरतरभावात् । द्वयोस्तैनसीपद्मलेश्ययोः सप्त प्रथमानि । शुक्लार्यां तु प्रथमानि त्रयोदश । भव्वे सर्वाणि चतुर्दश । अभव्वे प्रथममेकम् । ॥३१॥

वेयग खइग उवसमे चउरो एक्कारसट्ट तुरियाई ।

सेसतिगे सट्टाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(यशो०) वेद्यन्ते=विपाकेनानुभूयन्ते सम्यक्त्वपुञ्जपुद्गलो यत्र तद्वेदकं=क्षायोपशमिकम् । यदप्यन्यत्र क्षपितप्रायदर्शनसप्तकस्य सम्यक्त्वपुञ्जचरमपुद्गलप्रासरूपं वेदकमुक्तं तदप्येतदेव । तत्र वेदके क्षायिक ओपशमिके च यथासंख्येन चत्वारि एकादश अष्टौ तुर्यादीनि=चतुर्थादीनि-अविरतसम्यग्दृष्टिप्रमुखाणि क्रमेणा=प्रमातान्तानि अयोग्यन्तानि उपशान्तमोहान्तानीत्यर्थः । शेषत्रिके सम्यक्त्वत्रयापेक्षया त्रिपक्षभूते मिश्रसास्वादनमिथ्यादृष्टिनाम्नि स्वस्थानं स्वपदं मिश्रे मिश्रं सास्वादाने सास्वादनं मिथ्यात्वे मिथ्यात्वमित्यर्थः । संज्ञपु=मनोविज्ञानसहितेऽपि चतुर्दश । यतोऽत्र द्रव्यमनोऽपेक्षया सयोगी । प्राचीनद्रव्यमनोऽपेक्षया चा-ऽयोग्यपि व्यवहृतः । अन्ये तु केवली "नोसन्नी नोऽसन्नी" इतिवचनाऽवष्टम्भेन संज्ञिषु सयोग्यं गुणस्थानं द्वयं न प्रतिपद्यन्ते । असंज्ञिषु द्वे आद्ये ॥३२॥

आहारगेसु पठमा तेरसणाहारगेसु पंच इमे ।

'पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(यशो०) आहारकेषु प्रथमानि त्रयोदश । अनाहारकेषु पञ्चैमा न्येवाह- ' ति द्विक-शब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमद्विकान्त्यद्विकाविरतरूपा मिथ्यात्व दनाविरतसम्यग्दृष्टिरूपाणि विग्रहगतौ । सयोगिगुणस्थानं अयोगिगुणस्थानं तु पञ्चदस्वाक्षरोद्गिरणमात्रकालम् । स्थानेषु गुणस्थानानि योजितानीति शेषः ॥३३॥

अधुना मार्गणास्थानेष्वेव योगान्योजयितुं योगभेदास्तावदाह—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं षणं तह वई य ।

उरलविउव्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(यज्ञो०) योगाः सपूर्वं व्याकृतार्थास्ते त्रिविधा अपि पञ्चदशभा मनोयोगचतुष्टयवाग्योग-  
चतुष्टयकाययोगसप्तकमीलनेन । अत एव गाथान्ते “इय जोगा” इतीयत्ताद्योतकं पदमुक्तम् । तत्र  
मनोयोगस्तावच्चतुर्धा, सत्यासत्यमिश्रासत्यामृषामेदेन । तत्र सन्ति मुनयः पदार्था वा तेभ्यो मुक्ति  
प्रापकत्वेन यथाऽवस्थितस्वरूपपर्यालोचनेन वा हितः सत्यः । यथास्ति जीवः सदसद्रूप इत्यादि ।  
यथावस्थितवस्तुचिन्तनपरः सत्यमनोयोगः । सत्यविज्ञानजनकत्वात्तु मनोयोगस्य सत्यत्व-  
व्यपदेशः, कारणे कार्योंपचारात् । एवमन्यत्रापि । तद्विपरीतो ऽसत्यो=मृषा । यथा नास्ति जीव  
एकान्तसद्रूपो वेत्यादि विमर्शनपरः । सत्यासत्योभयरूपो मिश्रो यथा धवखदिरमिश्रेषु बहुष्वशोक-  
वनमिति विकल्पननिष्ठः । न विद्यते सत्यं यत्र सोऽसत्यो न विद्यते मृषा यत्रासावमृषा  
असत्यश्चासावमृषश्च कृताकृतादिवत्कर्मधारयेऽसत्यामृषः । यत्किल विवादे सति वस्तुप्रतिष्ठाशया  
जिनमतानुसारेण विकल्प्यन्ते तत्सत्यम् । यजिनमतानवतारि विकल्पयते तदसत्यम् । यत्तु वस्तु  
प्रतिष्ठासां विना स्वरूपमात्रप्रज्ञापनापरं व्यवहारपतितं विमृश्यते तत्र सत्यं नाप्यसत्यं किन्त्व  
सत्यामृषम् । तदेवं देवदत्त घटमानय भिक्षां देहीत्यादिपरामर्शकोऽसत्यामृषो मनोयोगः ।  
एवं यथा मनोयोगश्चतुर्धा तथा तेन प्रकारेणास्ति जीवः सद्वृत्त इत्यादिसमुच्चारणमात्रमेदेन चतुर्धा  
वाग्योग उदाहार्यः । काययोगमेदास्तु सूत्रकत्वात् सूत्रस्य औदारिको वैक्रिय आहार इति त्रयः,  
पुनरेत एव प्रत्येकं मिश्रपदविशेषिता इति षट्, कर्मण्येन सह सप्त । तत्रोदारः=प्रधानं स एवौदा-  
रिकः प्राधान्यं च तीर्थकरणधरपुरुषापेक्षया यद्वा सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वात् शेषभवधार-  
णीयकायेभ्यो महाप्रमाण उदारः, स एवौदारिकः काययोगः । विशिष्टा विविधा वा क्रिया विक्रिया,  
तस्या भावो वैक्रियः । चतुर्दशपूर्वविदा संशयच्छेदनवार्थग्रहणार्थं तीर्थकरादिसन्धिगमन-प्राणि-  
दया-स्वसमृद्धिप्रकटनहेतवे विशिष्टलब्धिषणाद् द्वियते=निर्माप्यत इत्याहारकः । स च जघन्यत  
एको द्वौ त्रयो वा उत्कर्षतः सहस्रपृथक्त्वमानो युगपद्भानाजीवानां सम्भवति । एकजीवस्य त्वेक-  
मवे वारद्वयम् । सर्वमवेषु वारचतुष्टयमेव । चतुर्थवेलायां कृते तद्वभव एव मुक्तेरिति । औदारिको  
मिश्रो यत्र सामर्थ्याय तेन कर्मण्येन स औदारिकमिश्रः । उत्पत्तिदेसे हि समनन्तरागतो जन्तु-  
राद्यसमये कर्मण्येनैवाहारयति । तत् ऊर्ध्वमौदारिकस्याऽऽरब्धत्वात्काम्मणमिश्रेणौदारिकेण काम्म-  
णौदारिकयोर्मिश्रत्वे समाने पि औदारिकस्फारम्यमाणत्वेन प्राधान्यादौदारिकमिश्र इति व्यपदेशः ।  
वैक्रियो मिश्र उत्तरवैक्रियारम्भत्यागनालयोः पर्याप्तदेवनारकावपेक्ष्य वैक्रियेण । केषांचिन्मतेन



वारस अत्रक्खुत्रक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त ।  
सुक्काएँ तैरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(यशो०) "सव्वे भव्वे" इति पदं विहाय प्रथमशब्दस्य सर्वत्रामिसम्बन्धाच्चतुश्चक्षुर्दर्शनयोर्द्वां दश प्रथमानि । लेश्यास्वाद्यासु तिमृषु प्रथमानि षट् । तत्र कृष्णादिलेश्यात्रये प्रथमानां चतुर्णां सद्भावः, मंदसंक्लेशे तु तत्र देशविरतप्रमसयोः सद्भावः । प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि ह्यव्यवसायस्थानानि । लेश्यानां मतभेदेन तु चत्वार्येव । यतः केचिद्देशविरतादित्रयस्य विशुद्धतै-  
जस्यादित्रये सद्भावं मन्यते । न कृष्णादिलेश्यात्रये । देशविरतादित्रयस्य विरतत्वात्, तथाविध-  
संक्लेशवृत्तिर्नस्तु तत्र विरतेरभावात् । द्वयोस्तैजसीपद्मलेश्ययोः सप्त प्रथमानि । शुक्लायां तु प्रथमानि त्रयोदश । भव्वे सर्वाणि चतुर्दश । अभव्वे प्रथममेकम् । ॥३१॥

वेयग खइग उवसमे चउरो एक्कारसट्ट तुरियाई ।

सेसतिगे सट्टाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(यशो०) वेद्यन्ते=विपाकेनानुभूयन्ते सम्यक्त्वपुञ्जपुद्गलो यत्रतद्वेदकं=क्षायोपशमिकम् । यदध्यन्यत्र क्षपितप्रायदर्शनसप्तकस्य सम्यक्त्वपुञ्जचरमपुद्गलप्रासरूपं वेदकमुक्तं तदप्येतदेव । तत्र वेदके क्षायिक ओपशमिके च यथासंख्येन चत्वारि एकादश अष्टौ तुर्यादीनि=चतुर्थादीनि-  
अविरतसम्यग्दृष्टिप्रमुखाणि क्रमेणा=ऽप्रमातान्तानि अयोग्यन्तानि उपशान्तभोहान्तानीत्यर्थः । शेषत्रिके सम्यक्त्वत्रयापेक्षया विपक्षभूते मिश्रसास्वादनमिध्यादृष्टिनाम्नि स्वस्थानं स्वपदं मिश्रे मिश्रं सास्वादाने सास्वादनं मिध्यात्वे मिध्यात्वमित्यर्थः । संज्ञपु=मनोविज्ञानसहितेष्टु चतुर्दश । यतोऽत्र द्रव्यमनोऽपेक्षया सयोगी । प्राचीनद्रव्यमनोऽपेक्षया चा-ऽयोग्यपि संज्ञीति व्यवहृतः । अन्ये तु केवली "नोसन्नी नोऽसन्नी" इतिवचनाऽवष्टम्भेन संज्ञिषु सयोग्ययोगिरूपं गुणस्थानं द्वयं न प्रतिपद्यन्ते । असंज्ञिषु द्वे आद्ये ॥३२॥

आहारगेसु पठमा तैरसणाहारगेसु पंच इमे ।

'पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(यशो०) आहारकेषु प्रथमानि त्रयोदश । अनाहारकेषु पञ्चेमानि । तान्येवाह— 'पढमन्ते' ति द्विक-शब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमद्विकान्त्यद्विकाविरतरूपाणि पञ्च । तत्र मिध्यात्व-सास्वा-  
दनाविरतसम्यग्दृष्टिरूपाणि विग्रहगतौ । सयोगिगुणस्थानं समुद्घाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु । अयोगिगुणस्थानं तु पञ्चदशस्वाक्षरोद्गिरणमात्रकालम् । इत्यमूनोन्लेखेन गत्यादिषु मार्गणा-  
स्थानेषु गुणस्थानानि योजितानीति शेषः ॥३३॥

अधुना मार्गणास्थानेष्वेव योगान्योजयितुं योगभेदांस्तावदाह—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वर्डै य ।  
उरलविउवाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(यशो०) योगाः सपूर्वं व्याकृतार्थास्ते त्रिविधा अपि पञ्चदशभा मनोयोगचतुष्टयवाग्योग-  
चतुष्टयकाययोगसप्तकमीलनेन । अत एव गाथान्ते “इय जोगा” इतीयात्ताद्योतकं पदमुवत्तम् । तत्र  
मनोयोगस्तावच्चतुर्धा, सत्यासत्यमिश्रासत्यामृषामेदेन । तत्र सन्ति मुनयः पदार्था वा तेभ्यो मुक्ति  
प्रापकत्वेन यथाऽवस्थितस्वरूपपर्यालोचनेन वा हितः सत्यः । यथास्ति जीवः सदसद्रूप इत्यादि ।  
यथावस्थितवस्तुचिन्तनपरः सत्यमनोयोगः । सत्यविज्ञानजनकत्वात्तु मनोयोगस्य सत्यत्व-  
व्यपदेशः, क्षारखे कार्थोपचारात् । एवमन्यत्रापि । तद्विपरीतो ऽसत्यो=मृषा । यथा नास्ति जीव  
एकान्तसद्रूपो वेत्यादि विमर्शनपरः । सत्यासत्योभयरूपो मिश्रो यथा धवस्रदिमिश्रेषु बहुष्वशोक-  
वनमिति विकल्पननिष्ठः । न विद्यते सत्यं यत्र सोऽसत्यो न विद्यते मृषा यत्रासावमृषा  
असत्यश्चासावमृषश्च कृताकृतादिवत्कर्मर्षः रयेऽसत्यामृषः । यत्किल विवादे सति वस्तुप्रतिष्ठाशया  
जिनमतानुसारेण विकल्प्यन्ते तत्सत्यम् । यजिनमतानवतारि विकल्प्यन्ते तदसत्यम् । यत्तु वस्तु  
प्रतिष्ठासां विना स्वरूपमात्रप्रज्ञापनापरं व्यवहारपतितं विमृश्यते तत्र सत्यं नाप्यसत्यं किन्त्व  
सत्यामृषम् । तदेवं देवदत्त घटमानय भिक्षां देहीत्यादिपरामर्शकोऽसत्यामृषो मनोयोगः ।  
एवं यथा मनोयोगश्चतुर्धा तथा तेन प्रकारेणास्ति जीवः सद्रूप इत्यादिसमुच्चारणमात्रमेदेन चतुर्धा  
वाग्योग उदाहार्यः । काययोगमेदास्तु सूत्रकत्वात् सूत्रस्य औदारिको वैक्रिय आहार इति त्रयः,  
पुनरेत एव प्रत्येकं मिश्रपदविशेषिता इति षट्, कर्मयोगेन सह सप्त । तत्रोदारः=प्राधानं स एवौदा-  
रिकः प्राधान्यं च तीर्थकरणधरपुरुषापेक्षया यद्वा सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वात् शेषमवधार-  
णीयकायेभ्यो महाप्रमाण उदारः, स एवौदारिकः काययोगः । विशिष्टा विविधा वा क्रिया विक्रिया,  
तस्या भावो वैक्रियः । चतुर्हृषपूर्वविदा संशयच्छेदनवार्थग्रहणार्थ तीर्थकरादिसन्धिगमन-प्राणि-  
दया-स्वसमृद्धिप्रकटनहेतवे विशिष्टलब्धिवशाद् द्वियते=निर्माप्यत इत्याहारकः । स च जघन्यत  
एको द्वौ त्रयो वा उत्कर्षतः सहस्त्रपृथक्त्वमानो युगपद्भानाजीवानां सम्भवति । एकजीवस्य त्वेक-  
भवे वारह्वयम् । सर्वभवेषु धारचतुष्टयमेव । चतुर्थवेलायां कृते तद्भव एव मुक्तेरिति । औदारिको  
मिश्रो यत्र सामर्थ्याय तेन कर्मयोगेन स औदारिकमिश्रः । उत्पत्तिदेसे हि समनन्तरागतो जन्तु-  
राद्यसमये कर्मयोगेनैवाहारयति । तत् ऊर्ध्वमौदारिकस्याऽऽरब्धत्वात्काम्मर्षमिश्रेणौदारिकेण कर्म-  
णौदारिकयोर्मिश्रत्वे समाने पि औदारिकस्यारम्यमाणत्वेन प्राधान्यादौदारिकमिश्र इति व्यपदेशः ।  
वैक्रियो मिश्र उत्तरवैक्रियारम्भत्यागः । लयोः पर्याप्तदेवनारकावपेक्ष्य वैक्रियेण । केषांचिन्मतेन

तु कृतवैक्रयसमुद्घातौ तावपेक्ष्य कार्मणोनापि । अपर्याप्तदेवनारकापेक्षया तु कार्मणेन । पर्याप्तवादरवायुकायिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यापेक्षया पुनरौदारिकेण यत्र स वैक्रियमिश्रः । अत्राऽपि प्रारम्भकाले प्रारभ्यमाणत्वेन त्यागकाले च बहुव्यापकत्वेन वैक्रियस्य प्राधान्याद्वैक्रियमिश्र इति व्यपदेशः, न तु कार्मणमिश्र इत्यौदारिकमिश्र इति वा । अत्र सैद्धान्तिका वायुकायिक-तिर्यग्मनुष्याणां वैक्रियस्यारम्भकाले औदारिकस्य बहुव्यापारत्वेन प्राधान्यादौदारिकमिश्रमभ्युपयन्ति । अन्ये तु वैक्रियत्यागकाले औदारिकस्य प्रारभ्यमाणत्वेन प्राधान्यादौदारिकमिश्रमभ्युपयन्ति । आहारको मिश्रो यत्र सामर्थ्यप्राप्तेनौदारिकेण स आहारकमिश्रः । अयं च चतुर्दश-पूर्वविद् आहारकार्मण्यत्यागकालयोर्वोद्भव्यः । अन्ये त्वाहारकस्याऽऽरम्भकाले, केचित्तु त्याग-काल औदारिकमिश्रं मन्यन्ते । कारणानि तु पूर्ववत्, कर्मैव कार्मणम्, कर्मविपाको वा कार्मणः, तद्रूपः काययोगः । अयं तु केवल ऋजुगतौ विग्रहगतावुत्पत्तिप्रथमसमये केवलिसमुद्घातस्य च त्रिचतुःपञ्चसमयेषु लभ्यते । तैजसकाययोगस्तु सर्वदैव कार्मणसहभावित्वात् कार्मणेनैव संगृहीत इति पृथग्नोक्तः । मनोवाकाययोगानां क्रमकारणं प्रागुक्तम्, मनोभेदेषु प्रशस्यत्वादादौ सत्यस्य, ततस्तत्प्रतिपक्षत्वादसत्यस्य, ततस्तदुभयनिष्पन्नत्वान्मिश्रस्य, तदनुभयलब्धात्मलामत्वादसत्या-मृषस्योपादानम् । एष एव वाग्भेदेष्वपि निर्देशक्रमहेतुः ।  $\Delta$ काययोगभेदेषु पुनरुत्कृष्टतोऽनन्त-कालभावित्वेनौदारिकस्य, तत उत्कृष्टतः संख्यातसागरोपमकालभावित्वेन वैक्रियस्य, ततोन्त-र्मुहूर्तकालभावित्वेनाऽऽहारकस्य, तत औदारिकादियोगमूलानां मिश्राणां कार्मणैरौदारिकादि-मिश्राणाम् । तदनन्तरं केवलस्य कतिपयसमयभावित्वेन संसारान्त(र्वर्तिनां संसार)निमित्त(त्वेन च कार्मणस्य निर्देशः ॥ ३४ ॥

अथ तान् मार्गणा) स्थानेषु योजयति ।

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।

जोगा तिरियगईए तेरस आहारगदुगूणा ॥३५॥

(यशो०) सुरनारकगत्योरेकादश योगाः । द्विकशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धादाहारकद्विकेन रहिता औदारिकद्विकेन रहिताः । आहारका-ऽऽहारकमिश्रौदारिकौदारिकमिश्रैरहिता एकादश योगा इत्यर्थः । आहारकद्विकं यतेरेव औदारिकद्विकं तिर्यग्नराणामेवेति तत्परिहरणम्, तिर्यग्गतौ त्रयोदश, के ? आहारकद्विकेनोना = ऽऽहारकद्विकशेषा । भावना पूर्ववत् ॥३५॥

$\Delta$  अयं च बाहुल्यापेक्षया विवक्षाभेदः । अन्यथौदारिककायस्योत्कृष्टकालो देशेनद्वाविंशतिवर्षसह-स्राणि, वैक्रियस्य चान्तर्मुहूर्तमात्र एव इति ज्ञेयम् ।

नरगहपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।

अच्चक्खुल्लेसाभव्वसम्मदुगसन्निसु य सव्वे ॥ ३६ ॥

(यशो०) अत्राऽऽद्यार्धे समाहारद्वन्द्वोऽपराद्धे तु "सन्निसु ये"तिपर्यन्त इतरेतरयोगः "अपुमे"तिनपुंमकः अवधिद्विक=मवधिज्ञानावधिदर्शने, सम्यक्त्वद्विक=क्षायोपशमिक-क्षायिके, ततो नरगत्यादिषु पञ्चविंशतिसंख्येषु स्थानेषु सर्वयोगाः । भावना तु प्रतीता ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।

कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(यशो०) तुरेवार्थे, पञ्चैव, एकेन्द्रियेषु के ? कार्मणं युगलशब्दस्य वैक्रि[या-ऽऽहार]यौदा-  
रि)काम्यामभिसम्बन्धाद्वैक्रिययुगलमौदारिकयुगलं च । तत्र कार्मणं विग्रहगता ऋजुगतावुत्पत्तिप्र-  
थमसमये च औदारिकद्विकं पर्याप्तापर्याप्तदशायाम् । वैक्रियद्विकं तु पर्याप्तवादरवायुकायि-  
कापेक्षम् । विकलेषु=विकलेन्द्रियेषु=द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु कार्मणमौदारिकद्विकमन्तिसभाषा चास-  
त्यामृषारूपेति चत्वारः । भावना सुगमा ॥३७॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।

पढमंतिमणवइदुगकम्मुरलदुकेवलदुगंमि ॥३८॥

(यशो०) स्थावरकाये पृथिव्यादौ वनस्पत्यन्तेऽर्थाद्वायुवर्जे, कार्मणं च औदारिकद्विकं चेति  
द्वन्द्वे कार्मणौदारिकद्विकमिति योगत्रयम् । एतदेव वायुकाये वैक्रियद्विकेन युतं=युक्तमिति योगप-  
ञ्चकम् । भावना त्वेकेन्द्रियवत् । प्रथमं सत्यमन्तिममसत्यामृषं मनस्तद्रूपं द्विकं प्रथमा सत्यान्तिमा-  
ऽसत्यामृषा वाक् तद्रूपं द्विकं कार्मणमौदारिकद्विकं चेति योगसप्तकं केवलज्ञानकेवलदर्शनयोः । अत्र  
द्रव्यमनः प्रतीत्य मनोभेदद्वयमुक्तम्, वाग्द्वयमौदारिकं च प्रतीतम् । कार्मणौदारिकमिश्रयोगौ  
तु समुद्घाते । उक्तञ्च—"औदारिकप्रयोक्ता प्रथमाष्टमसमययोरसाविष्टः । मिश्रोदारिकयोक्ता  
सप्तमषष्ठ द्वितीयेषु ॥ कार्मणहारोरयोगी चतुष्के पञ्चमे तृतीये च"ति ॥३८॥

'थीवेयअनाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।

तेरस मणवहमणनाणछेयसामइयचक्खुसु य ॥३९॥

(यशो०) अत्र पूर्वार्द्धप्रतिपादिते स्थाननवके आहारकद्विकवर्जास्रयोदश । द्वितीयार्द्धगते तु  
स्थानपटकेऽपर्याप्तत्वाभावादौदारिकमिश्रकार्मणवर्जास्रयोदश विवक्षितवर्जनीयं योगद्विकं च सूत्र-  
कृता सुज्ञानत्वाभोक्तमिति ॥३९॥

परिहारे सुहुमे नव उरलवहमणा सकम्भुरलमिस्सा ।

अदखाए सविउवा मीसे देसे सविउवदुगा ॥ ४० ॥

(यज्ञो०) परिहारविशुद्धिके सूक्ष्मसम्पराये च औदारिको वाक्चतुष्टयं मनश्चतुष्टयं चेति नव । ते पूर्वोक्ता नव कर्मणौदारिकमिश्रौ केवलिसमुद्घातापेक्षौ । [ उपशा ] (चेत्येकादश योगा यथाख्यात-सं) यमेऽन्त्यगुणस्थानचतुष्कवर्षिणि भवन्ति । तत्र कर्मणौदारिकमिश्रौ केवलिसमुद्घातापेक्षौ । उप-शान्तक्षीणमोहयोस्तु नव नव योगाः । अयोगिनि सर्वयोगाभाव एव । मिश्रगुणस्थानके तच्छब्दानुवृत्त्या ते पूर्वोक्ताः परिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायसम्बन्धिनो नव, वैक्रियसहिता दश । अत्र “नसम्भमिच्छे कृणु काल” मिति वचनान्मिश्रस्य मरणाभावेन विग्रहगतिभावि कर्मणमपर्याप्तावस्थाभाविनावौदारिकमिश्रदेवनारकसम्बन्धिवैक्रियमिश्रौ च न भवन्ति । नरतिरश्चोस्तु सम्यग्मि-थ्यादृशो वैक्रियमिश्राभावो वैक्रियस्यैवाकरणादन्यतो वा कारणादिति तत्त्वविदो विदन्ति । आहारकद्विकाभावः प्रतीतः । देशे=देशविरतेऽत्रापि तच्छब्दानुवृत्त्या ते पूर्वोक्ता नव वैक्रियद्विकेन तु सहिता एकादश । वैक्रियद्विकं देशविरतस्याम्बडपरिव्राजक\_स्यैक\_ (स्येव) वैक्रियलब्धौ सत्यां द्रष्टव्यम् ॥४०॥

कम्भुरलविउवदुगाणि चरमभामा य छ उ असन्निभि ।

जोगा अकम्मगाहारगेषु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥

(यज्ञो०) द्विकशब्दस्यौदारिकवैक्रियाभ्यामभिसम्बन्धात्कार्मणौदारिकद्विकवैक्रियद्विकान्यऽसत्यामृषा भाषा चेति षड् योगाः । असंज्ञिनि=मनोविज्ञानशून्य एकेन्द्रियादौ । तत्र कर्मणं विग्रहगतौ, औदारिकमिश्रोऽपर्याप्तावस्थायाम्, औदारिकं पर्याप्तावस्थायाम्, वैक्रियद्विकं च बादरपर्याप्तायोः, असत्यामृषा भाषा च पर्याप्तद्विन्द्रियादीनाम् । आहारकेषु योगा अकर्मकाः कर्मणरहिताश्चतुर्द-शेत्यर्थः । यच्च अजुगतौ विग्रहगतौ “जोएण कम्मणं आहारेई अणंतरं जोरां ।” इति वचनादुत्पत्ति-पश्चमसमये कर्मणवतोऽप्या-ऽऽहारकत्वम्, तदल्पकालमावित्वाश्च विवक्षितमि[ति वृ\_ (त्यु) च्यते । कर्मणमेकमेवानाहारके । अनाहारको हि मिथ्यादृष्टि-सासादना-ऽविरतगुणस्थानप्रये विग्रहगतौ सयोगिगुणस्थाने च केवलिसमुद्घाततृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु प्राप्यते । स च तदा कर्मणेनैव योगेन युतः । अयोगिनस्तु अनाहारकस्य न कर्मणयोगोऽपि, निरूद्धसमग्रयोगत्वादेव ॥४१॥

अधुना मार्गणास्थानेषु योजयित्तुमुपयोगान् मेदतः स्वरूपतश्च तावदाह—

नाणं पंचविहं तह भन्नाणतिगं ति अट्ट सागारा ।

चउदंमणमणगारा बारस जियलक्खणुवओगा ॥४२॥

(यज्ञो०) उपयुज्यते=ऽर्थपरिच्छिन्ति प्रति व्यापार्यत इति उपयुज्यतेऽर्थे परिच्छेदं प्रतिव्यापा-

र्यते जीव एभिरिति वा उपयोगा=जीवस्वतत्त्वभूतबोध्यात्मनः । ते च परिच्छेद्यभेदाद् द्वेधा । साकारा अनाकाराश्च । तत्र सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषांशग्राहिणः साकाराः । सह विशिष्टाकारेण विशेषग्राहित्वात्मकेन वर्तन्ते इति कृत्वा । सामान्यांशग्राहिणोऽनाकाराः । विशिष्टाकारस्याऽभावात् । तत्र ज्ञानपञ्चकं भतिज्ञानादि पूर्वोपवर्णितं मत्तज्ञानाद्यज्ञानत्रिकं चैत्यष्टौ साकाराः । चतुर्णां दर्शनानामचक्षुर्दर्शनादीनां प्राग्व्याकृतार्थानां समाहारश्चतुर्दर्शनमिति शब्दानुवृत्तेरिति दर्शनचतुष्टयरूपा अनाकाराः । एते न भेदानुगतं स्वरूपमुक्तम् । 'जीवलक्षणं'ति जीवानां लक्षणानि=स्वरूपाणि 'उपयोगलक्षणो जीव' इति वचनादिदं च सामान्यानुयायि स्वरूपम् । द्वादशेति संख्यायाः सामर्थ्यगम्याया अपि साक्षादुपादानमेतवान्त एव न न्यूनाधिका इति नियमार्थम् । अत्र "सव्वाउ लद्धीओ सागरोवउत्तस भवन्ती" ति वचनाल्लब्धिहेतुत्वेन प्राधान्यात् । छद्मस्थगतसाकाराणामन्तर्दूर्त्तकालत्वेनाल्पेऽपि साकाराणां पर्यायपरिच्छेदकतयाचिरस्थायित्वेनाऽनाकारेभ्यः संख्यातगुणकालत्वादादौ साकारा उक्ताः, ततोऽनाकाराः । यत्तु विभङ्गज्ञानाभिवर्त्तमानस्य साकारानाकारोपयोगद्वयेऽपि वर्त्तमानस्य सम्यक्त्वावधिज्ञानप्रतिपत्तिरस्तीत्युक्तं पञ्चमाङ्गे तदवस्थितपरिणामापेक्षया "सव्वाओ लद्धीओ" इत्यादि तु वचनं प्रवर्त्तमानपरिणामापेक्षयेति न विरोधः । ज्ञानपञ्चकस्याऽज्ञानत्रिकस्य दर्शनचतुष्कस्य च निर्देशक्रमहेतवः प्रागुक्ताः ॥४२॥

अथैतान् मार्गणास्थानेषु योजयति-

मणुयगईए बारम गणकेवलदुरद्विया नवन्नासु ।

थावरहगवितिहंदिसु अचक्खुदंमणमनाणदुगं ॥ ४३ ॥

(यशो०) मनुष्यगतौ द्वादश, तत्र सर्वेषामपि सम्भवात् । मनःपर्यव-केवलद्विकवर्जिता नवाऽन्यासु देव-तिर्यग्नरकगतिषु । मनःपर्यवकेवलद्विकाभावस्तु संयमपरिणामाभावात् । स्थावरेषु पृथिव्यादिषु पञ्चसु एक-द्वि-त्रीन्द्रियेषु चाष्टासु पदेषु अचक्षुर्दर्शनमत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूप-मुपयोगत्रयम् ॥४३॥

चक्खुजुयं चउरिंदिसु तं चिय बारम पणिंदितमकाए ।

जोए वेए सुक्काए भव्वमन्नीसु आहारे ॥ ४४ ॥

(यशो०) चक्षुर्दर्शनयुक्तं तदेव प्राचीनमुपयोगत्रयं चतुरिन्द्रियेषु पञ्चेन्द्रियादिषु द्वादशसु पदेषु द्वादशोपयोगाः प्रतीताः । परं यत्संज्ञिनं केवलद्विकं निगदितं तत्केवलिनः संशय-ऽसंज्ञिव्य-पदेशशून्यस्यापि द्रव्यमनोऽपेक्षया 'संज्ञि' इति विवक्षणात्मन्तव्यम् । यस्वनिवृत्तिषादर एव व्य-

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनोऽपि पुरुषादिव्यप-  
देशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगद्दीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।

केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लेश्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दश; एतेषा-  
मभाव एव केवलद्विकसद्भावात् । केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम् । क्षायिके  
नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवमियओहिदंससु ।

नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो०) प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु  
प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायौपशमिकसम्यक्तत्वे औपशमिकसम्यक्तत्वा-  
ऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम् । एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथा-  
ख्यातसंयमेऽन्त्युगुणस्थानचतुष्कवृत्तिनि । तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च  
सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।

केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते । मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने  
तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट् । केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम् । इदमत्र तात्पर्यम्-  
मिश्रः=सम्यगमिथ्यादृष्टिरूच्यते । ततश्च यावताऽज्ञानाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावताऽस्य ज्ञानं  
कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवा-ऽज्ञानमिश्रीभूतं द्रष्टव्यम्, अत एवावधि-  
ज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विमह्गज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदु-  
क्तं स्यात् । केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादन-  
मिश्रा-ऽविरतमेदे न च स्वरूपे । तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य  
चाज्ञानत्रयम् । सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च । सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति  
नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।

दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु पदस्थानेषु चक्षुरक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमत्रानत्रिकं चेति पञ्च । इह विभङ्गेऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुचृत्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विपया-  
ऽनिश्चायकत्वादवधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विश्रितम् । प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्यावधि-  
दर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्—“दसणं विभंगोहीण जउनु ल्प.(ल्ल)मेवे” ति यथासम्यग्दृशो विशेष-  
विषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्य-  
विषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गरहिताश्चत्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञान-  
विकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायन्नाह—

मणनाणचक्खुरहिया दम उ अणाहारगेसु उवओगा ।

इय गहयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसुं ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्ये, दर्शवोपयोगा अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातभव-  
स्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्या-  
दृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने; विभङ्गज्ञानमपि तयोः,

“सम्मी नेरइएसुं” षरल्लपरिच्छाद्यणंतरे समए । विन्मंगं ओहिं वा अधिग्गहे विग्गहे लमइ ॥”  
इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूत्पद्यमानयोरपर्याप्तदशार्या मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नरकेषूत्पन्नस्य  
मिथ्यादृशः पर्याप्तदशायामेव विभङ्गज्ञानम्, यत उक्तम्—

‘अस्समी नरएसुं’ पल्लत्तो जेण लहइ विन्मंगं । नाणा तिन्नेव तओ अज्जणा दुमि तिन्नेवे” ति,  
एतच्च भवनपतिव्यन्तरे-ष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कैर्मानिकेषु पुनरसंज्ञिभ्य  
उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेष्वष्टौ । केवलि-  
समुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा  
योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु  
इदं वक्ष्यमाणम्, तुशब्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेसु कमसो दुवउतिपंचा दुअट्टुचउचउरो ।

तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजंगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः ।  
वाचि=वाग्योगे क्रमेण द्वावष्टौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=  
मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षरव-  
टना । भावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,



वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनोऽपि पुरुषादिव्यप-  
देशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगद्दीणा दस कसायपणलेसऽचखुचखुमु य ।

केवलदुगे नियदुगं खदुगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लेश्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दशः एतेषा-  
ममात्र एव केवलद्विकमवभावात् । केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम् । क्षायिके  
नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवमियओहिदंसंसु ।

नाणचउदंसणतिगं केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो०) प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकममिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु  
प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके—क्षायौपशमिकसम्यक्तत्वे औपशमिकसम्यक्तत्वा-  
ऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम् । एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथा-  
ख्यातसंयमेऽन्त्युगुणस्थानचतुष्कवृत्तिनि । तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च  
सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।

केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते । मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने  
तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट् । केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम् । इदमत्र तात्पर्यम्—  
मिश्रः=सम्यगमिथ्यादृष्टिरूच्यते । ततश्च यावताऽज्ञानाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावताऽस्य ज्ञानं  
कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवा-ऽज्ञानमिश्रीभूतं द्रष्टव्यम् । अत एवावधि-  
ज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विमङ्गलज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदु-  
क्तं स्यात् । केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादन-  
मिश्रा-ऽविरतमेदे न च स्वरूपे । तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य  
चाज्ञानत्रयम् । सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च । सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति  
नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।

दोर्दंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

मार्गणास्थानेषूपयोगानयविशेषेण योगत्रये गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोगयोगमत्कृतमन्तराणि च [ ३१

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु पदस्थानेषु चक्षुरक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च । इह विभङ्गोऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कमप्रकृत्यनुवृत्त्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषया-  
ऽनिश्चायकत्वादवधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विश्रितम् । प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्यावधि-  
दर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्—“इसणं विभंगोहीण जउतु त्प .(ह्र)मेवं” ति यथासम्यग्दृशो विशेष-  
विषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्य-  
विषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गरहिताश्चत्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञान-  
विकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायन्नाह—

मणनाणचक्खुरहिया दम उ अणाहारगेषु उवओगा ।

इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेषु ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्थे, दर्शवोपयोगा अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमृद्धातभव-  
स्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्या-  
दृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने; विभङ्गज्ञानमपि तयां;

“सन्नी नेरइएसु” वरत्तपरिच्छायणंतरे समए । विवमंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लमइ ॥”  
इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूपद्यमानयोरपर्याप्तदृश्यां मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नारकेषूपत्पन्नस्य  
मिथ्यादृशः पर्याप्तदृश्यामेव विभङ्गज्ञानम्, यत उक्तम्—

‘अस्सन्नी नरएसु’ पज्जत्तो जेण लइइ विवमंगं । नाणा तिन्नेव तओ अन्नाणा दुप्पि तिन्नेवे” ति,  
एत्तच्च भवनपतिव्यन्तरे-अप्पुत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिभ्य  
उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेष्वष्टौ । केवलि-  
समृद्धाते मत्स्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा  
योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु  
इदं वक्ष्यमाणम्, तुशब्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेषु कमसो दुचउतिपंचा दुअट्टुचउचउरो ।

तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजांगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः ।  
वाचि=वाग्योगे क्रमेण द्वादशौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=  
मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षर-  
टना । भावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनोऽपि पुरुषादिव्यप-  
देशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगद्दीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुमु य ।

केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लोरयापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दस्यः एतेषा-  
मभाव एव केवलद्विकसत्त्वात् । केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम् । क्षायिके  
नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवमियओहिदंससु ।

नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो.) प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु  
प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायौपशमिकसम्यक्तत्वे औपशमिकसम्यक्त्वा-  
ऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम् । एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथा-  
ख्यातसंयमेऽन्त्युगुणस्थानचतुष्कवर्तिनि । तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च  
सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे भीसे अनाणमीसं तं ।

केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते । मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने  
तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट् । केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रे द्रष्टव्यम् । इदमत्र तात्पर्यम्-  
मिश्रः=सम्यगभिध्याद्यद्विरूप्यते । तत्र च यावताऽशोनाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावताऽस्य ज्ञानं  
कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवा-ऽज्ञानमित्रीभूतं द्रष्टव्यम्, अत एवावधि-  
ज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विमरुगज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदु-  
क्तं स्यात् । केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादन-  
मिथा-ऽविरतमेदे न च स्वरूपे । तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य  
चाज्ञानप्रयम् । सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानप्रयमवधिदर्शनं च । सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति  
नवोपयोगमावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअमव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।

दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

मार्गणास्थानेषूपयोगानयविशेषेण योगत्रये गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोगयोगमत्कमतान्तराणि च [ ३१

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु पदस्थानेषु चक्षुरक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च । इह विभङ्गेऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुवृत्त्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषया-  
ऽनिश्चायकत्वाद्बधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विचक्षितम् । प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्यावधि-  
दर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्—“दसणं विभंगोहीण जउतु ल्प.(ल्ल)मेवे” ति यथासम्यग्दृशो विशेष-  
विषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्य-  
विषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गारहिताश्रित्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञान-  
विकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायन्नाह—

मणनाणचक्खुरहिया दम उ अणाहारगेषु उवओगा ।

इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेषु ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्ये, दर्शवोपयोग अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातभव-  
स्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्या-  
दृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने; विभङ्गाज्ञानमपि तयां;

“सन्नी नेरइपसु” उरत्तपरिच्छायणंतरे समप । विभंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लमइ ॥”  
इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूपत्यधमानयोरपर्याप्तदशयां मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नारकेषूपत्यधस्य  
मिथ्यादृष्टः पर्याप्तदशायामेव विभङ्गाज्ञानम्, यत उक्तम्—

‘अस्तन्नी नरएसु’ पञ्चत्तो जेण लहइ विभंगं । नाणा तिन्नेव तओ अजाणा दुत्ति तिन्नेवे” ति,  
एतच्च भवनपतिव्यन्तरे-ष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिभ्य  
उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेष्वष्टौ । केवलिस-  
समुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा  
योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु  
इदं वक्ष्यमाणम्, तुल्यदः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेषु कमसो दुवउतिपंचा दुअट्टचउचउरो ।

तेरसदुवारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः ।  
वाचि=वाग्योगे क्रमेण द्वावष्टौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=  
मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षरघ-  
टना । सावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनोऽपि पुरुषादिव्यप-  
देशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगद्दीणा दस कसायपणलेसऽत्रवसूत्रकसुमु य ।

केवलदुगे नियदुगं स्वदुगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कसायचतुष्के लेख्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दश; एतेषा-  
मभाव एव केवलद्विकसद्भावात् । केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम् । क्षायिके  
नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवःमियओहिदंसंसु ।

नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहकसाए ॥४६॥

(यशो०) प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु  
प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायीपञ्चमिकसम्यक्तत्वे औपञ्चमिकसम्यक्तत्वा-  
ऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम् । एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथा-  
ख्यातसंयमेऽन्त्युगुणस्थानचतुष्कवसिन्नि । तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च  
सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे भीसे अनाणमीसं तं ।

केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते । मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने  
तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट् । केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम् । इदमत्र तात्पर्यम्-  
मिश्रः=सम्यगभिध्यादृष्टिरूच्यते । तत्र च यावताऽज्ञानाऽत्र सम्यग्ज्ञानप्रवृत्तिस्तावताऽस्य ज्ञानं  
कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवा-ऽज्ञानमित्रीभूतं द्रष्टव्यम्, अत एवावधि-  
ज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विमलज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदु-  
क्तं स्यात् । केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादन-  
मिश्रा-ऽविरतमेदे न च स्वरूपे । तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य  
चाज्ञानत्रयम् । सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च । सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति  
नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।

दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(यज्ञो०) अज्ञानत्रिकादिषु पदस्थानेषु चक्षुरचक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च । इह विमङ्गोऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुधृत्त्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषया-  
ऽनिश्चायकत्वादवधिदर्शनं न विमङ्गात्पृथग्विश्वितम् । प्रज्ञापनायां तु विमङ्गस्यावधि-  
दर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्—“दसणं विभंगोहीण जउतु २५ (ल)मेव” ति यथासम्यग्दर्शो विशेष-  
विषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विमङ्गः सामान्य-  
विषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विमङ्गारहिताश्रित्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञान-  
विकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनापन्नाह—

मणनाणचक्खुरहिया दम उ अणाहारगेषु उवओगा ।

इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसुं ॥ ४९ ॥

(यज्ञो०) तुरेवार्थे, दर्शवोपयोगा अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातभव-  
स्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्या-  
दृष्टेः सास्वादनस्य च मत्पज्ञानश्रुताज्ञानेऽविमङ्गज्ञानमपि तयोः,

‘सम्मी नेरइएसुं’ षरत्तपरिच्छायणंतरे समए । धिब्भंगं ओहिं वा भच्चिग्गहे धिग्गहे लमइ ॥”  
इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषुत्पद्यमानयोरपर्याप्तदशायां मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नारकेषुत्पन्नस्य  
मिथ्यादृशः पर्याप्तदशायामेव विमङ्गाज्ञानम्, यत् उक्तम्—

‘अस्सम्मी नरएसुं’ पज्जत्तो जेण लइइ धिब्भंगं । नाणा तिन्नेव तओ अजाणा दुब्धि तिन्नेवे” ति,  
एतच्च भवनपतिव्यन्तरे-ष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिभ्य  
उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विमङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेष्वष्टौ । केवलि-  
समुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति त्रिवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा  
योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु  
इदं वक्ष्यमाणम्, तुश्चद्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवहमणेषु कमसो दुत्तउत्तिपंचा दुअट्टवउचउरो ।

तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजंगत्ति ॥ ५० ॥

(यज्ञो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः ।  
वाचि=वागयोगे क्रमेण द्वादशौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=  
मनोयोगे क्रमेण त्रयोदशौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षरघ-  
टना । मावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनोऽपि पुरुषादिव्यप-  
देशमाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुग्दीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।

केवलदुगे नियदुगं खदुगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लेश्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दशः एतेषा-  
मभाव एव केवलद्विकसद्भावात् । केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम् । क्षायिके  
नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवमियओहिदंससु ।

नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो०) प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु  
प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायौपशमिकसम्यक्त्वे औपशमिकसम्यक्त्वा-  
ऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम् । एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथा-  
ख्यातसंयमेऽन्त्युगुणस्थानचतुष्कवृत्तिनि । तत्रौपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च  
सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे भीसे अनाणमीसं तं ।

केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते । मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने  
तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट् । केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम् । इदमत्र तात्पर्यम्-  
मिश्रः=सम्यगभिध्यादृष्टिरूच्यते । तत्र यथावताऽशेनाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावताऽस्य ज्ञानं  
कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवाऽज्ञानमिश्रीभूतं द्रष्टव्यम् । अत एवावधि-  
ज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विमद्गज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदु-  
क्तं स्यात् । केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादन-  
मिश्रा-ऽविरतमेदे न च स्वरूपे । तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य  
चाज्ञानत्रयम् । सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च । सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति  
नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।

दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु पदस्थानेषु चक्षुरक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च । इह विभङ्गेऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुधृत्त्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषया-  
ऽनिश्चयकत्वादवधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विवक्षितम् । प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्यावधि-  
दर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्—“दृशणं विभंगोद्दीण जडु ल्प .(ल)मेवं”ति यथासम्यग्दृशो विशेष-  
विषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्य-  
विषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गारहिताश्रत्वारीऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञान-  
विकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायन्नाह—

मणनाणचक्खुरहिया दम उ अणाहारगेषु उवओगा ।

इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेषु ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्थे, दशैवोपयोगर अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातभव-  
स्थायोगिसिद्धदृशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्या-  
दृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने; विभङ्गज्ञानमपि तयां;

“सन्नी नेरइएसुं” सरलपरिच्छायणंतरे समए । विळ्मंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लमइ ॥”  
इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूपद्यमानयोर्पर्याप्तदृश्या मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नरकेषूपद्यस्य  
मिथ्यादृशः पर्याप्तदृश्यामेव विभङ्गज्ञानम्, यत उक्तम्—

‘भस्सन्नी नरएसुं’ पञ्चप्पो जेण ळइइ विळ्मंगं । नाणा तिन्नेष तओ अन्नाणा दुन्नि तिन्नेवे” ति,  
एतच्च भवनपतिव्यन्तरे-ष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिभ्य  
उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेष्वष्टौ । केवलिस-  
समुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा  
योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु  
इदं वक्ष्यमाणम्, तुष्टब्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेषु कमसो दुत्तउतिपंचा दुअट्टुचउचउरो ।

तेरसदुवारतेरस गुणजीवुवओगजांगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः ।  
वाचि=वागयोगे क्रमेण द्वावष्टौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=  
मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षर-  
दना । भावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,



प्रथमाज्ञानद्विकमचक्षुर्दर्शनं चेत्युपयोगत्रिकम्, वैकियद्विकमौदारिकद्विकं कर्मणं चेति योगपञ्चकम्, मनोवर्जिते न तु कायविरहिते वाचः कायाव्यभिचारित्वाद्वाग्योगे प्रथमगुणस्थानद्वयम्, पर्याप्तापर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाण्यष्टौ जीवस्थानानि, इह करणेनाऽपर्याप्तस्य वाग्योगो 'माविनि भूतवदुपचारः' इतिन्यायात्, चक्षुरचक्षुर्दर्शनमत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपा उपयोगाश्चत्वारः, औदारिकद्विकमसत्यमृषाभाषा कर्मणमिति योमाश्चत्वारः । मनोयोगे त्रयोदश गुणस्थानानि अयोगगुणस्थानरहितानि, संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तरूपे द्वे जीवस्थाने, करणाऽपर्याप्तस्य मनोयोगो भाविनि भूतवदुपचारात्, उपयोगा द्वादशापि, योगाः कर्मणौदारिकमिश्रवर्जास्त्रयोदश । मनोयोगः, कायवाग्भ्यां विना न सम्भवेतीति तत्सहचरितो गृहीतः । मनोयोगे च नानात्वं जीवस्थानेष्वेव शेषपदत्रयप्रतिपादनं प्रसङ्गात्कृतम् ॥५०॥

अथ लेश्यानामवसरस्ताश्चोत्तरोत्तरविशुद्धिमत्त्वात्क्रमेण स्वरूपतः प्रागेव प्रदर्शिताः, केवलं मार्गणास्थानेषु योज्यन्ते—

लेसा उ तिन्नि षडमा नारगविगलग्गिवाउकाएसुं ।

एगिंदिभूतरूदगअमन्निसुं षडमिया चउरो ॥५१॥

(यशो०) नारकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाग्निकायवायुकायेषु तिस्र एव, अन्यासामसम्भवात् । एकेन्द्रियादिके पदपञ्चके प्रथमा एव प्रथमिकाश्चतस्रः । तत्र तिस्रः प्रतीताः, तेजसी पुनरीक्षणान्तजघन्यायुर्देवेभ्य उत्सन्नानां सुमपृथिवीवनस्पत्यष्कायानां करणापर्याप्तानामवगन्तव्या । एतदपेक्षयैव च करणाऽपर्याप्तकैकेन्द्रियासंज्ञिनोस्तेजसौ प्रतिपादिता । शेषैकेन्द्रियशेषासंज्ञिनोस्तु मध्ये देवानामुत्पाद एव नास्ति ॥५१॥

केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेसु मुक्कलेसेव ।

लेसासु छसु सठाणं गइयाइमु छावि सेसेमुं ॥५२॥

(यशो०) केवलज्ञान-केवलदर्शनयोर्यथाख्याते सूक्ष्मरागे=सूक्ष्मसम्पराये च शुबलालेश्यैव, अन्यासां व्यवच्छिन्नत्वात् । लेश्यासु षट्सु स्वस्थानं स्वकीयं स्थानं कृष्णार्थां कृष्णा नीलार्थां नीलेत्यादि । शेषेषूक्तोद्धरितेषु गत्यादिष्वेकचत्वारिंशति पदेषु षडपि । इह चैकैकस्या अपि लेश्यायाः परिणामतारतम्येनाऽसंख्येया मेदा इति विशुद्धिमधिरूढेषु मनःपर्यव-सामायिकच्छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धिकादिषु प्रतिपत्तिकालं विहाय परिणामविशेषापेक्षया प्रथमलेश्यात्रयस्यापि सद्भावात्सामान्येन लेश्या षट्कोक्तिर्न विरूढ्यते । उक्तं च-

"सम्भक्तसुर्यं सव्वासु लहइ सुद्रासु तिसु य चारिषं । पुठ्वपड्विबन्नभो पुण अन्नयरीए उ लेसाए ॥" इति ॥५२॥

अथ प्रस्तावनापुरस्सरं मार्गणास्थानानामन्पबहुत्वं चिन्तयति ।

गइयाइसु अप्पवहुं भणामि सामन्नओ सठाणे वि ।  
नरनिरयदेवतिरिया थोवा दुअसंखण्तगुणा ॥५३॥

(यशो०) गत्यादिषु विभागेन चतुर्दशसु विभागेन द्वापष्टिसंख्येषु मार्गणास्थानेष्वल्पवहुत्व-  
मेतेऽल्पे एतेभ्य एते बहव इत्येवं रूपं "सठाणे वि" त्ति अपिरेवार्थं स्वस्थान एव स्वयमेव स्थानं  
भेदमपेक्ष्य सामान्यतोऽनपेक्षतया भवनपत्यादिगत्याद्यपेक्षं यथा भवति तथा वन्मि । तत्र  
नराः स्तोकाः, सर्वस्य संमूर्च्छजपर्याप्तापर्याप्तगर्मजभेदभाजो मनुष्यराशेरसंख्यातत्वेऽपि मनुजक्षेत्र  
एवोत्पत्तेः । नारकाद्यपेक्षया यदा तु गर्भजा एव नरा गृह्यन्ते तदा संख्याता एवेति स्तोकाः । एतेभ्यो  
नारकदेवौ द्वावसंख्यातौ, नारका असंख्याता देवाश्चाऽसंख्याता इत्यर्थः । अत्र नारकशब्दात्परेण  
देवशब्दोपपादाकारकेभ्यो देवा भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्क-वैमानिकरूपा असंख्याता इति  
दृश्यम् । एवमन्यत्रापि यथास्वं वाच्यम् । एतच्च "मइसुयअन्नाणिणो तुल्ले" त्यादिवक्ष्यमाणोक्तौ  
दुल्यादिग्रहणाद् गम्यते । एतेभ्यस्तिर्यञ्चोऽनन्तगुणाः । आनन्त्यमत्रानन्तकार्यिकवनस्पत्य-  
पेक्षया ॥५३॥

पणत्रउतिदुएगिन्दी थोवा तिन्नि अहिया अणन्तगुणा ।  
तमतेउपुढविजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥५४॥  
थोवा असंखगुणिया तिन्नि विसेसाहिया अणन्तगुणा

(यशो०) सूचकत्वात्सूत्रस्य 'इंदा'त्यनेन सूचितस्येन्द्रियस्य प्रत्येकमभिसंख्येभ्यात्वं  
श्चेन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया इत्यादि दृश्यम्, ततः पञ्चेन्द्रिया असंख्याता अपि उत्तरापेक्षया  
स्तोकाः । एवमुत्तरत्रापि यथास्वं संख्याताऽसंख्यातानन्तोत्तरपदापेक्षया स्तोक्तवस्तुभा-  
व्यम् । एभ्यश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियास्रयेऽधिका विशेषाधिकाः । अत्रापि चतुरिन्द्रि-  
येभ्यस्त्रीन्द्रिया विशेषाधिका इति निर्देशक्रमानुसारेण गम्यम् । एवमन्यत्रापि विशेषाधि-  
कत्वादि यथासम्भवं वाच्यम् । एकेन्द्रिया अनन्तगुणास्तेष्वनन्तवनस्पतिसद्भावात् ।  
तथा त्रसा द्वीन्द्रियाद्यास्रसनाडीमात्रान्तर्गतत्वेन स्तोकाः, ततस्तेजस्कायिका मनुष्यक्षेत्रभाविनो  
षादराः, सर्वलोकभाविनः सूक्ष्मा इत्यसंख्याताः । ततः पृथिवीकायिकास्ततोऽष्कायिकास्ततोऽपि  
वायुकायिका इति त्रयोऽप्यधिका = विशेषाधिकाः । यतो बादरपर्याप्ताग्निभ्यो बादरपर्याप्तपृथिव्य-  
व्वायवः क्रमेणाऽसंख्याताः, ततोऽग्निपृथिवीजलवायव एव षादराऽपर्याप्ता असंख्याताः, ततः  
सूक्ष्माऽपर्याप्तास्तेजःकायिका असंख्याताः, ततः सूक्ष्मापर्याप्ताः पृथिवीजलवायवो विशेषाधिकाः,  
तेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ताग्नयोऽसंख्याताः, तेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्तभूजलवायवो विशेषाधिका इति

प्रज्ञापनात्तृतीयपदार्थलेशः । वनस्पतयोऽनन्ता । आनन्त्यमनन्तकायिकापेक्षम् । दिग्बि-  
भान्तापेक्षं तु प्रज्ञापनात्तृतीयपदोपदर्शितम् । तं गत्यादिद्वारप्रयगोचरमल्पबहुत्वमेवम्—दक्षिणो-  
दीचीदिशोर्भरतैरावतादिलघुश्रेत्रवर्तितया नराः स्तोकाः । दक्षिणस्यामसंख्यातगुणाः । तस्यां  
हि प्रसूतपापाः कृष्णपक्षिकास्तिर्यश्चः प्रचुरा उत्पद्यन्ते इति सप्तम्याम् । एवं षष्ठ्यादिषु रत्नप्र-  
भान्तासु नारका वाच्याः । पूर्वप्रतीच्योर्मवनानां स्तोकात्वात्तन्निवासिनोपि देवाः स्तोकाः ।  
उदीच्यामसंख्यातगुणाः । याम्यायां भवनबहुत्वादसंख्यातगुणाः । यतो निकाये निकाये चत्वारि  
चत्वारि शतसहस्राण्यतिरिच्यन्ते । पूर्वस्यां व्यन्तराः स्तोकाः । यतो यत्र शुषिरं तत्र व्यन्तराः प्रच-  
रन्ति, यत्र पुनर्घनं तत्र न प्रचरंतीति घनत्वात्पूर्वस्याममीषामुपपत्तिमती](चेरतीव)स्तोकता ।  
अधोलौकिकग्रामसद्भावादपरस्यां विशेषाधिकाः । तत एव च याम्यायां विशेषाधिकाः ।  
प्राचिप्रतीच्योः स्तोका ज्योतिष्काः, यतश्चन्द्रसूर्यद्वीपेषु घानकल्पेषु तेषामन्या राजधान्यः । विमा-  
नबहुत्वात्कृष्णपाक्षिकदक्षिणदिग्गामित्वाच्च दक्षिणस्यां विशेषाधिकाः । उदीच्यां विशेषाधिकाः ।  
यस्मात्संख्येयासंख्येययोजनेभ्यो बहिर्द्वीपवर्तिनि विस्तरदीर्घत्वाभ्यां संख्यातयोजनकोटीकोटीके  
मानसाभिधाने सरसि बहून् ज्योतिष्कांस्तान् क्रीडनव्यावृत्ताननवरतमवलोक्य मत्स्यादयो  
जलचराः संजातजातिस्मरा आसन्नविमानदर्शनकृतनिदानाः किंचिद्भ्रतं प्रतिपद्य कृतानघना  
ज्योतिष्केषूपत्यन्ते । वैमानिका आद्यकल्पचतुष्टयवासिनः पूर्वस्यामपरस्यां च स्तोकाः । यत  
आवलिकाप्रविष्टानि विमानानि चतसृष्वपि दिक्षु तुल्यानि पुष्पावकीर्णानि तु दक्षिणस्यामुत्तरस्यां  
च बहून्यसंख्यातविस्तृतानि च ततः पूर्वापरयोः पुष्पावकीर्णविमानद्वारेणोदितदेवाः स्तोकाः ।  
उत्तरस्यां पुष्पावकीर्णविमानबहुत्वेनासंख्येययोजनविस्तृतत्वेन च सौधर्मवासिनोऽसंख्यातगुणाः ।  
दक्षिणस्यां विशेषाधिकाः, दक्षिणदिग्गामित्वाद् बहूनां कृष्णपाक्षिकजीवानाम् । ईशानवासिन  
उत्तरस्यामसंख्यातगुणाः । याम्यायां विशेषाधिकाः । सनत्कुमारवासिनोऽसंख्यातगुणा उत्तरस्या-  
म् । विशेषाधिका याम्यायाम् । एतदिग्गामिनो हि बहवः कृष्णपाक्षिकाः, स्वल्पाः शुक्लपाक्षिकाः ।  
एवं महेन्द्रवासिनोऽपि । ब्रह्मलोकवासिनः पूर्वापरोत्तरासु स्तोकाः । शुक्लपाक्षिका हि अल्पा एता  
स्युत्पद्यन्ते । उदीच्यामसंख्यातगुणाः । याम्यां त एव विशेषाधिकाः । प्रचुरकृष्णपाक्षिकतिरिष्ठां  
तत्रोत्पत्तेः । एवं सहस्रारं यावत् । आनतादिवासिनो बहुसमा मनुष्याणामेव हि तेषुत्पत्तिः ।  
तिर्यश्च=एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियविशेषरूपाः । अत एवैषामल्पबहुत्वमिन्द्रियकायद्वार-  
योर्वचमः । तत्रेन्द्रियद्वारे पृथिव्यादयः सूक्ष्माः प्रायः सर्वत्र समा एवेति तानुपेक्ष्य धादरानाश्रि-  
त्याल्पबहुत्वमित्थम्—पृथिवीकायिका दक्षिणस्यां स्तोकाः । यतो यत्र घनं तत्र पृथिवी बहुयत्र  
शुषिरं तत्र स्तोका । ततोऽस्यां बहुतरा भवनावासाश्च शुषिरा इति स्तोकाता तेषाम् । उदीच्यां  
विशेषाधिकाः, भवनावासनरकावासस्तोकतया । प्राच्यां चन्द्रसूर्यद्वीपावधिकृत्य विशेषाधिकाः ।

अपरस्यां विशेषाधिकाः । षड्सप्ततिसर्माधिकयोजनसहस्रोच्चत्वेन द्वादशयोजनधिक्रम्मेण लवणोदधिमध्यवर्तिना गौतमाभिधानद्वीपेन नवयोजनशतावगाहाधोलौकिकग्रामैश्च सहितावेता-  
 धिकृत्य अपरस्यामापः स्तोकाश्चन्द्रसूर्यगौतमद्वीपानपेक्ष्य । पूर्वस्यां विशेषाधिकाः, यतश्चन्द्र-  
 सूर्यद्वीपयोरेव तत्र भावो न तु गौतमद्वीपस्य । याम्यायां चन्द्रसूर्यद्वीपाभावाद्धिशेषाधिकाः ।  
 उदीच्यां तु पूर्वोपवर्णितमानससरोःसद्रभावेन तासां विशेषाधिकत्वम् । एवमुदीच्यां मानसा-  
 पेक्षया वनस्पति-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियतिरथां पूर्वादिदिक्त्रयापेक्षया विशेषाधिकत्व-  
 कारणमन्वेपणीयम् । दक्षिणोत्तरयोस्तेजस्कायिकाः स्तोकाः । यतोऽत्र मनुजास्तत्र पाकार-  
 र्म्मेण वादरतेजस्कायानां सम्भव इति भरतैरावतेषु मनुन्याणामल्पत्वात् गुणमादिष्वभावाच्च  
 स्तोकास्ते । पुरस्ताद्विदेहवर्तिमनुजजनितपाकारम्भद्वारा संख्यातगुणाः । पश्चिमायामधोलौकिक-  
 ग्रामान्तरीकृत्य विशेषाधिकाः । पूर्वस्यां वायवः स्तोकाः । यस्माद्यत्र शुपिरं तत्र वायुर्यत्र घनं तत्र  
 नासावस्ति । अधोलौकिकग्रामापेक्षयाऽपरस्यां विशेषाधिकाः । उत्तरस्यां भवनछिद्रबहुत्वान्  
 विशेषाधिकाः । दक्षिणस्यां भवनबहुत्वात् शुपिरबहुत्वमिति विशेषाधिकाः । बहुतरभवनछिद्र-  
 बहुत्वादेव । पूर्वस्यां स्तोका वनस्पतयः । इयमत्र भावना-इह सर्वबहवो वनस्पतय इति ते यत्र  
 सन्ति तत्र तेषां बहुत्वम् । तेषां च तत्र बहुत्वं यत्राऽष्कायः, यत्राऽयं तत्र नियमेन वनस्पतिः  
 पनकशैवलहृढादिर्वादरः । ततश्च द्वीपद्विगुणविष्कम्भेषु समुद्रेषु सलिलं बहु । प्राचीप्रतीच्योश्च  
 चन्द्रसूर्यद्वीपाः सन्ति । यत्र च तेऽवगाढास्तत्रोदकाभावः, तदभावाच्च वनस्पत्यभाव इति प्राच्यां  
 स्तोका वनस्पतयः । प्रतीच्यां तु लवणसमुद्रे गौतमद्वीपोऽभ्यधिकस्तत्र च जलाभा-  
 वादल्पतरा वनस्पतयः । याम्यायां तु चन्द्रसूर्यद्विपाभावात्पूर्वतो विशेषाधिकाः । याम्या-  
 तोऽप्युदीच्यां मानससरोऽपेक्षया विशेषाधिकाः । मानसजलनिश्रया वनस्पतिवदुदीच्यां द्वि-  
 चतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियतिरथां दिक्त्रयाऽपेक्षया बहुत्वमुत्तरत्रोहनीयम् । एवं चैकेन्द्रियाः काय-  
 पञ्चकाच्यभिचारिण इत्येकेन्द्रियाणामल्पबहुत्वभावनयैव कायपञ्चकाल्पबहुत्वमिहापि  
 लाघवार्थं निर्णीतमेवेति कायद्वारे कायपञ्चकस्याऽल्पबहुत्वगवेषणा न कार्या । द्वि-त्रि-चतुरि-  
 न्द्रियाः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च प्रतीच्यां स्तोकाः । पूर्वस्यां विशेषाधिकाः । दक्षिणस्यां विशेषा-  
 धिकाः । उत्तरस्यां विशेषाधिकाः । सुरनरनारकरूपाः पञ्चेन्द्रियाः प्रागेवाल्यबहुत्वेन निर्णीता  
 एव । कायद्वारे पृथिव्यादयो वनस्पत्यन्तास्त्रसाध्याल्पबहुत्वेन चिन्तिता एवेति गतीन्द्रियकायेति  
 द्वारत्रयमूरीकृत्य दिगपेक्षयाल्पबहुत्वचिन्ता कृतोपयोगित्वात् ॥५४॥

मणवयणकायजोगी थोवअसंखगुणन्तगुणा ॥५५॥

(यशो०) मनोयोगिनो गर्भजतिर्यग्मनुष्या देवा नारकाश्च असंख्याता अपि स्तोकाः । ततो  
 वाग्योगिनो द्वीन्द्रियादयोऽसंख्यातगुणाः । काययोगिनः सर्वे संसारिणोऽनन्तगुणाः । आनन्त्यं

प्रागिव । यद्यपि निगोदजीवानामनन्तानामप्येऽमौदारिकं वपुस्तथापि कार्मणापेक्ष्यानन्त-  
गुणत्वम् ॥५५॥

पुरिसंहितो इत्थी संसेजगुणा नपुंसणन्तगुणा ।

माणी कोही मायी लोभी कमसो विसेसहिया ॥५६॥

(यशो०) पुरुषेभ्यो देवगर्मजमनुजतिर्यग्विशेषरूपेभ्योऽसंख्यातेभ्यः स्त्रियो देवीनारीतिरश्च्यः  
संख्यातगुणाः । स्त्रीभ्यः पुरुषाः स्तोका इति तु सामर्थ्यलभ्यम् । उक्तं च—

“तिगुणा तिरुषअहिया तिरियाणं इत्थिओ मुण्येयव्वा । सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिया चेव ॥  
वत्तीसगुणा वत्तीसरुवअहिया य तह य देवाणं । देवीओ पन्त्ता सुत्ते जीवाभिगमनामे ॥”  
नपुंसकाः पूर्वोपवर्णितस्त्रीपुरुषवर्जाः संसारिणोऽनन्ताः, आनन्त्यं प्राग्वत् । तथा मानिनः स्तो-  
कास्ततः क्रोधिनी विशेषाधिकास्ततो मायिनस्ततोऽपि लोभिनः । यद्यप्यमी चत्वारोप्यनन्तवनस्प-  
तिगतेन सामान्येनाऽनन्तास्तथापि कषायसत्तामात्रस्याऽविवक्षया तथाविधोपयोगरूपमिह कषा-  
यित्वमङ्गीकृतमितिस्वल्पकालत्वात् मानोपयोगस्य मानिनामल्पमनन्तत्वम्, ततः क्रोधादीनां यथा-  
क्रमं बहुतरबहुतमालत्वात् क्रोधमायालोभोपयोगानां विशेषाधिकमानन्त्यमवगन्तव्यम् ॥५६॥

मणपञ्चविणो थोत्रा ओद्विन्नाणी तओ असंखगुणा ।

मइसुयनाणी तत्तो विसेसअहिया समा दोवि ॥५७॥

(यशो०) मनःपर्यवज्ञानिनःस्तोकाः=परिमिताः, मनः पर्यवज्ञानस्य विशुद्धिमच्चरित्रवतामेव भावात् ।  
सतोऽवधिज्ञानिनोऽसंख्यातगुणाः, असंख्यातानां देवनारकाणां भवप्रत्ययस्य तिर्यग्मनुष्याणां  
सम्यग्दृष्ट्यां गुणप्रत्ययस्यावधेः सद्भावात् । ततो मतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च विशेषाधिकाः,  
यतस्तेऽवधिज्ञानिनोऽपि मनःपर्यायज्ञानिनोप्यवध्यादिरहिता अपि पञ्चेन्द्रिया भवन्ति [परस्पर-  
पेक्षया भवन्ति] । परस्परापेक्षया पुनरुभयेऽप्यमी तुल्या एव । अत एवोक्तं “समा दो  
षी”ति ॥५७॥

विभंगिणो असंखा केवलनाणी तओ अणन्तगुणा ।

तत्तोऽणन्तगुणा दो मइसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥५८॥

(यशो०) तत इत्यनुवृत्त्या तेभ्यो=मतिश्रुतज्ञानिभ्यो विभङ्गज्ञानिनोऽसंख्या=असंख्याता मि-  
थ्यादृष्टिसुरादीनां विभङ्गभाजां सम्यग्दृष्ट्यपेक्षयाऽसंख्यातगुणत्वात् । ततोऽनन्तगुणाः केवलिनः,  
सिद्धकेवलिनामनन्तत्वात् । ततोऽनन्तगुणा मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च, अनन्तकार्यिकप्रक्षेपात् ।  
सिद्धकेवलिनोऽपि हि एकस्यापि निगोदस्यानन्ततम एव भागे वर्तन्ते, परस्परममी उभयेऽपि  
तुल्या एव । तत एवोक्तं “तुल्ला” इति ॥५८॥

सुहृमपरिहारअहस्वायछेयसामइयदेसजयअजया ।

थोवा संखेजगुणा चउरो अस्संखणन्तगुणा ॥५१॥

(यशो०) अत्र पदैकदेशे पद्मपुदायोपचारात् सूत्रमाः=सूत्रमयम्परायाः स्तोकाः, उन्कृष्टो-  
ऽपि शतपृथक्त्वमानत्वात्तेषाम् । पृथक्त्वं च द्विप्रभृतिरानवभ्यः संख्या । ततः 'परितारं' नि परि-  
हारिकाः संख्येयगुणास्ते गामुत्कृष्टतः सहस्रपृथक्त्वमानत्वात् । ततो यथाख्यातचारित्रिण उपशा-  
न्तमोह-क्षीणमोह-स्योगि-भवस्था-ऽयोगिनः संख्यातगुणाः । यत उपशान्तमोहर्क्षाणमोहानां  
मिलितानामुत्कृष्टतः शतपृथक्त्वम् । एतच्च तु पञ्चादिशतरूपम् । यन्वग्रे केवलानां क्षीणमो-  
हानां शतपृथक्त्वं वक्ष्यते, तद् द्वयादिशतरूपं मन्तव्यम् । सयोगिनां कोटिपृथक्त्वम् । भवस्था-  
ऽयोगिनां 'अहसयमेगसमयो सिज्जे' इतिवचनाद् अष्टोत्तरं शतं प्राप्यते । एतेभ्यश्छेदोपर्यापनीय  
चारित्रिणः संख्यातगुणाः, तेषामुत्कृष्टतः कोटीशतपृथक्त्वमानत्वात् । ततः सामायिकचारित्रिणः  
संख्यातगुणाः, तेषामुत्कृष्टतः कोटीसहस्रपृथक्त्वमानत्वात् । ततो देशयता=देशविरता अमंख्या-  
तगुणाः, असंख्यातत्रादेशविरततिरश्चाम् । ततोऽयता आद्यगुणास्थानचतुष्कवर्चिनोऽनन्ताः,  
अनन्तकायिकप्रक्षेपात् ॥५६॥

इय औहिचक्खुकेवलअचक्खुदंसी कमेण विन्नेया ।

थोवा अस्संखगुणा अणन्तगुणिया अणन्तगुणा ॥६०॥

(यशो०) इत्यमृतोच्छेखेन विन्नेया इति संदृक्कः । अवभिना चक्षुषा केवलेनाऽचक्षुषा च  
पश्यन्तीत्येवं शीला अवध्यादिदर्शिनोऽवधिदर्शनवदादयः । तत्रावधिदर्शिनः स्तोकाः, अवधिदर्शन-  
स्य करणापर्याप्तपर्याप्तानां संक्षिपञ्चेन्द्रियाणां केषांचिदेव भावात् । तेभ्यश्चक्षुर्दर्शनवन्तोऽसंख्यात-  
गुणाः, केवलिवर्जमवर्षपर्याप्तचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियव्यापकत्वाच्चक्षुर्दर्शनस्य । ततोऽनन्तगुणिताः  
केवलदर्शिनः, अनन्त-सिद्धकेवलप्रक्षेपात् । ततोऽनन्तगुणा अचक्षुर्दर्शिनः, सर्वे केवलिवर्जा  
एकेन्द्रियादयः, अनन्तगुणत्वमनन्तवनस्पतिप्रक्षेपात् ॥६०॥

सुकका पम्हा तेऊ काऊ नीला य किण्हलेमा य ।

थोवा दो संखगुणाऽणन्तगुणा दो विसेमहिया ॥६१॥

(यशो०) इह गुणगुणिनोरभेदात् शुक्लादिलेश्याशब्देन शुक्लादिलेश्यावन्तो ग्राह्याः । तत्र  
शुक्ललेश्यावन्तः स्तोकाः, असंख्याता अप्युत्तरापेक्षया कतिपयमहर्दिकञ्चल्लोकदेवसंख्यात्तायु-  
र्गर्मजनरतिरश्चां तथा लान्तकाद्यनुत्तरान्तविमानवासिनामेव शुक्लायाः सद्भावात् । ततः पद्मले-  
श्यावन्तः संख्यातगुणाः, कतिपयसन्तुक्कारदेवसंख्यातायुर्गर्मजनरतिरश्चां माहेन्द्रदेवानां भूयसां

च ब्रह्मलोकदेवानां पद्माया भावात् । अधस्तना हि यथाक्रमं वैमानिका बहवः । ततस्तेजो-  
 लेश्यावन्तः संख्यातगुणाः, ज्योतिष्क-सौधर्मेज्ञानवासिदेवानां कतिपयसनत्कुमारवासिदेव-  
 मवनपतिव्यन्तरसंख्याता-ऽसंख्यातायुर्गर्मजनरतिर्यगपर्याप्तवादरपृथिव्यप्रत्येकवनस्पतिकायानां  
 तैजस्याः सम्भवात् । ततः कापोतलेश्यावन्तोऽनन्तगुणाः, कतिपयतृतीयनरकनारकमवनपति-  
 व्यन्तरसम्भूञ्जसंख्यातासंख्यातायुर्नरतिर्यगपर्याप्तपृथिव्युदकतेजोवायुप्रत्येकाऽनन्तवनस्प-  
 तिविकलेन्द्रिया-ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामाद्यद्वितीयनरकनारकाणां च सर्वेषां कापोत्याः सम्भवात् ।  
 ततो नीललेश्यावन्तो विशेषाधिकाः । ततोऽपि कृष्णलेश्यावन्तः । कथमेतद्भावता-ऽनन्तराभिहि-  
 तनरकनारकवर्जेष्वेव कापोतलेश्यावत्सु नीलकृष्णलेश्ये प्राप्येते, यस्तु कतिपयतृतीयपञ्चम-  
 नरकनारकेषु चतुर्थनरकनारकेषु च नीललेश्या कतिपयपञ्चमनरकनारकेषु षष्ठसप्तमनरकनारकेषु  
 च कृष्णलेश्येति विशेषः, स प्रत्युताधिकत्वप्रतिकूलः, अधस्तनाधस्तननरकवासिनो हि नारकाः  
 स्तोकाः, सत्यम्, किन्तु येषु प्रथमं लेश्यात्रयं प्राप्यते तेषु कापोतलेश्यावद्भ्यः संक्लिष्टत्वेन  
 नीललेश्यावन्तः किञ्चदधिकास्तेभ्योप्यतिसंक्लिष्टत्वेन कृष्णलेश्यावन्तः । यदुक्तम्—एकेन्द्रि-  
 यानाश्रित्य भगवतीसप्तदशशतकद्वादशोद्देशके—“गोयमा सव्वत्थोवा एगिन्दिया तेज्जेसा  
 काज्जेसा अणन्तगुणा नील्लेसा विसेसाहिया किण्हलेसा विसेसाहिये”ति ॥ ६१ ॥

थोवा जहन्नजुत्ताणंतयतुल्लत्ति इह अभव्वजिया ।

तेहिंतोऽणन्तगुणा भव्वा निव्वाणगमणऽरिहा ॥ ६२ ॥

(यशो०) स्तोका इह संसारे-ऽमव्यजीवाः । किंप्रमाणाः ? जघन्यं च तद्युक्तानन्तकं च तेन  
 तुल्याः । परित्युक्तनिजपदोपाधिवशाद्धि त्रिविधमप्यऽनन्तकं जघन्यमव्यमोत्कृष्टमेदान्नवविधम् ।  
 तच्च जीवसमास-साद्धंशतकादिभ्योऽभ्युद्यम् । इह तु विस्तारमिया नाविर्भाव्यते । तेभ्यो-  
 ऽभव्येभ्योऽनन्तगुणा भव्याः । अभव्याः सिद्धानामनन्तभागे, भव्यास्तु सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणा  
 इति ध्यागममुद्रा । ते पुनः कीदृशाः, निर्वाणगमनमवश्यप्राप्यत्वेनार्हन्ति ये, त इह भव्याः, न पुनः  
 सामग्गिअमावाओ ववहारगरासिअण्वेसाओ । भव्वावि ते अणन्ता जे सिद्धिसुहं न पावेति ॥  
 गाथोक्तस्वरूपा अपि ॥ ६२ ॥

सासाणउवसमियमिस्सवेयगक्खइगमिच्छदिट्ठीओ ।

थोवा दो संखगुणा असंखगुणिया अणन्ता दो ॥ ६३ ॥

(यशो०) सास्वादना उत्कृष्टतः क्षेत्रपन्थोपमासंख्येयभागवर्त्या-ऽऽकाशप्रदेशप्रमाणत्वेना-  
 ऽसंख्याता अपि औपशमिकाऽपेक्षया स्तोकाः । सास्वादनत्वं हि औपशमिकं त्यजतां मिथ्यात्वं  
 चाऽप्राप्नुवतां प्राप्यते । तत्र यावन्त औपशमिकं प्राप्नुवन्ति न तावन्तः सर्वेऽपि सास्वादनत्व-

स्पृशः, किन्तु केचिदेवाऽनन्तानुबन्ध्युदयादिति सास्वादनाः स्तोत्राः । अत एवाऽर्मीभ्य औपशमिकसम्यक्त्वभाज उपशमाः संख्यातगुणा उच्यताः । ते हि

“असंख्यारयतिरिया विमाणिणो पढमपुढविनेरइया । मणुया य तिसंमत्ता चेषगउवमामगा सेमा ॥”

इत्युक्तेर्वहवः तृतीयनरके ऽपि कृष्णवन्नारकाणां क्षायिकसम्यक्त्ववतां सद्भावेन ‘पढमपुढविनेरइया’

ति न व्यभिचारित्वम्, तेषां तद्वतां कादाचित्कत्वेनाल्पत्वादविवक्षितया जीवममासवृत्त्युक्तयेति ।

औपशमिकेभ्यो मिश्राः=सम्यग्मिथ्यादृशः संख्यातगुणाः । ते ह्यौपशमिकसम्यक्त्वभाग्भ्यो बहवो

भवन्ति, यदा स्युः, मिश्रपरिणामस्य ह्येकस्मिन्नपि भवे एकस्यापि जीवरय सर्वगतिष्वपि पुनः

पुनः सम्भवः । औपशमिकं त्वनादिमिथ्यादृष्टीनां ग्रन्थिभेदे भवत्युपशमश्रेणीं चाधिरोहतां कति-

पयानामित्युपपन्नमौपशमिकसम्यक्त्ववद्भ्यो मिश्राणां संख्यातगुणत्वम् । कादाचित्कत्वं सास्वाद-

नौपशमिकसम्यग्दृशोरपि समानम् । यद्वोचाम-

‘अप्पज्जसमणुस्सा वेउन्विमिस्समीसन्दिट्ठी य । तह सुहुमसम्पराया परिहारियेयचारित्ता ॥  
अप्पुव्वकरणअणियट्ठिवायरा तहुवसन्तमोहा य । आहारगमिस्सोवि य सामणदिट्ठी य भयणिज्जा ॥’

इत्येते एकादशापि “भयणिज्जे” ति कदाचिद्भवन्ति, कदाचिन्नेत्यर्थः । तथाहि-

पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च गर्भजमनुजाः सदाभाविन इति लब्धितः करणतश्चाऽपर्याप्ताः सम्मूर्च्छजा

मनुजा अपर्याप्तमनुष्या मिश्राः सास्वादनाश्चैते त्रयः सर्वस्मिन्लोके कदाचित्पत्न्योपमाऽसं-

ख्येयभागं यावन्न भवन्ति । नरकदेवगतौ द्वादश मूहूर्त्ता उत्पादविरहकाल उक्त इति

नारकदेवानामुत्पत्तिसमयभाविनो वैक्रियशरीरानिष्पत्तौ वैक्रियमिश्रयोगाः कादाचित्काः ।

एतच्छेषयोगास्तु सदाभाविनः । लब्धिप्रत्ययतिर्यग्मनुष्यवैक्रियमिश्रयोगाः पुनरिह न

विवक्षिताः । सुक्ष्मसम्पराया उत्कृष्टतः षण्मासान्यावन्न भवतीति कादाचित्काः । यतः क्षपक-

श्रेणिं षण्मासान्यावन्न कोऽपि कदाचित्प्रतिपद्यते । एवमपूर्वकरणाऽनिवृत्तिवादराणांमिहोक्ता-

नामनुक्तानां च क्षपकश्रेण्यारम्भक्षीणमोहायोगिनामप्युत्कृष्टमन्तरं वाच्यम् । मिथ्यादृष्टयऽवि-

रतदेशविरतप्रमत्ताऽप्रमत्तसयोगिनां सदैव लोके सद्भावेन च विरहकालासम्भवः । पारिहारिका

अवसर्पिण्यामादित एव एकविंशतिवर्षसहस्रप्रमाणं पञ्चकं षष्ठं चारकं उत्सर्पिण्यां तावत्प्रमाणं

प्रथमं द्वितीयं चारकं यावद्भरतैरावतेषु जघन्यतो न भवन्ति । छेदोपस्थानीयचारित्रिणोऽव-

सर्पिण्या उक्तप्रमाणं षष्ठमरकश्रुत्सर्पिण्या उक्तप्रमाणं प्रथमं द्वितीयं चारकं यावद् भरतैरा-

वतेषु जघन्यतो न भवन्ति । उभयेपि पारिहारिकाः छेदोपस्थापनीयचारित्रिणश्चाष्टादशसागरो-

पमकोटीकोटीर्यावन्न प्राप्यन्ते । उत्सर्पिण्या आदित एव सागरोपमकोटीकोटिद्वयप्रमाणं चतुर्थं

सागरोपमकोटीकोटित्रयमानं पञ्चमं सागरोपमकोटीकोटिचतुष्टयप्रमितं षष्ठं चारकं यावन्न

भवन्ति, अवसर्पिण्यामपि सागरोपमकोटीकोटिचतुष्कप्रमाणं प्रथमं सागरोपमकोटीकोटित्रय-



परिच्छिन्नं द्वितीयं सागरोपमकोटीकोटिद्वयावच्छिन्नं तृतीयं चारकं यावन्न भवन्ति । यः पुनरुत्स-  
 षिण्याश्चतुर्थारकस्यादाववसर्षिणास्तृतीयारकस्य पर्यन्ते कियन्तमपि कालं उभयेपामपि सद्भावः  
 सोऽल्पकालत्वेन न विवक्षित इति न तेन न्यूनता उत्कृष्टविरहकालस्य । उपशान्तमोहा उपश-  
 मश्रेणिवर्त्तिनश्चोत्कृष्टतो वर्षपृथक्त्वं यावन्न भवन्ति । एवमाहारकमिश्रयोगोऽपि । प्रयोजना-  
 भावेनाहारकशरीरस्या-ऽऽरम्भाभावेनाहारकमिश्राभावात् । “अहाराइं लोए छम्मासं जा न हुन्ति उ  
 कयाइं”ति प्रज्ञापनावचनं तु मतान्तरेण । एतेषां च मिश्रादीनां यथावसरमूत्तरत्रापि कादाचित्क-  
 त्वं भावनीयम् । मिश्रम्यः क्षायोपशमिकभाजो-ऽसंख्यातगुणाः । एते हि सर्वदैवा-ऽसंख्यातगुणाः  
 प्राप्यन्ते । मिश्रास्तु कदाचिदेव, कादाचित्कत्वं त्वनन्तरमेव प्रत्यपादि । वेद्यन्ते=ऽनुभूयन्ते  
 शुद्धसम्यक्त्वपुञ्जपुङ्गला अस्मिन्निति वेदकं=क्षायोपशमिकसुपचारात् तद्वन्त उक्ताः । एवं  
 क्षायिकशब्देन क्षायिकवन्तो मन्तव्यास्ततः क्षायोपशमिकवद्म्यः क्षायिका अनन्तगुणाः ।  
 सिद्धानामपि क्षेयात् । क्षायिकवद्म्यो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । एते ह्यनन्तास्तूत्सर्षिण्यवस-  
 र्षिणीषु यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणाः । क्षायिकवन्तस्तु एकनिगोदजीवानामप्यनन्तभाग एव  
 वर्तन्ते ॥६३॥

सन्नी थोत्रा ततो अणन्तगुणिया असन्निणो 'हुन्ति ।

थोत्राणाहारजिया तदसंखगुणा सआहारा ॥६४॥

(यशो०) संज्ञिनो मनोविज्ञानान्वितास्ते च पर्याप्तपञ्चेन्द्रिया एवेत्यसंख्यातमात्रत्वेना-  
 ऽसंज्ञिम्यः स्तोकाः । ततः संज्ञिम्योऽसंज्ञिनोऽनन्तगुणिताः, पृथिव्याद्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तजन्तु-  
 व्यापित्वादसंज्ञित्वस्य । स्तोका आहारका-ऽपेक्षयाऽनाहारकजीवास्तेषां विग्रहगतिमापन्नानामन-  
 न्तानां सिद्धानां चाऽनन्तानां सद्भावादानन्त्येऽपि तेभ्योऽसंख्यातगुणास्तदसंख्यातगुणाः,  
 के ? सहाहारेण वर्तन्ते इति साहारा=आहारका इत्यर्थः । अनाहारका हि एकस्यापि निगोद-  
 स्यासंख्येयभागवर्त्तिनोऽमिहिताः, अतोऽनाहारकेभ्योऽसंख्यातगुणा आहारकाः ॥६४॥

उक्तं मार्गणास्थानगताभिधेयपदपट्टकमिदानीं गुणस्थानेषु जीवस्थानाद्यभिधेयपददशकं  
 प्ररूपयितुकामो जीवस्थानानि तावदाह—

मिच्छे सवे छ अपज्ज सन्निपज्जत्तगो य सासाणे ।

सम्मे दुविहो सन्नी सेसेसुं सन्निपज्जत्तो ॥६५॥

(यश०) मिथ्यात्वे सर्वानि जीवस्थानानि । सर्वत्रैकेन्द्रियादौ मिथ्यात्वस्य सम्भवात् । सूक्ष्मै-

केन्द्रियवर्जाण्यपर्याप्तरूपाणि पट् संज्ञिपर्याप्तश्चेति गारवादनं सप्त सारवादनस्य हि संज्ञिपर्याप्त-  
त्वं निर्विवादसिद्धम् । संज्ञिपर्याप्तस्य च वादरैकेन्द्रियादिषु पूर्वं बद्धायुषः पर्यन्तगमय औपशमिकं  
प्राप्य तदेव वमतो मिथ्यात्वं चाप्राप्तुवतस्तेष्वेवोत्पद्यमानस्योत्कृष्टतोऽपि पडावलिकामादन्वेना-  
ऽपर्याप्तदशायामेव सास्वादनत्वं भवतीति सास्वादनस्याऽपर्याप्तरूपमेव वादरैकेन्द्रियादिर्जावस्था-  
नषट्कम्, न तु पर्याप्तरूपम् । सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु बद्धायुष औपशमिकं न लभत इति तत्र सास्वादनः चा-  
भावः । सम्यक्त्वे=उपचारादधिरतसम्यग्दृष्टौ द्विविधः करणपर्याप्तापर्याप्तरूपः मंजी, न शेषाणि ।  
शेषेषु सम्यक्त्वाभाव एवोत्पत्तेः । शेषेपूक्तोद्धिरितेषु मिश्रदेशरिस्तादिषु संज्ञिपर्याप्तः, एकादशसु  
शेषाभावस्तु सुज्ञानः ॥६५॥

इय जियठाणा गुणठाणगेषु जोगा य वोच्छमेत्ताहे ।

जोगाहारदुगूणा मिच्छे सासणअविरए य ॥६६॥

(यशो०) इत्यष्टनोलेखेन जीवस्थानानि गुणस्थानकेपूक्तानीति शेषः । योगाश्चेत्तः परं वक्ष्ये  
तानेवाह—योगा मिथ्यात्वे सास्वादानेऽविरते च संयमाभावादाहारकद्विकस्य च संयमप्रत्ययक-  
त्वादाहारकद्विकेनोनास्तदन्ये त्रयोदशेत्यर्थः ॥६६॥

उरलविउ विवइमणा दम मीसे ते विउविमीमजुया ।

देमजए एक्कारस साहारदुगा पमत्ते ॥६७॥

(यशो०) मिश्रे=मिश्रगुणस्थानके औदारिक-वैक्रियौ काययोगौ वागमनसे च विशेषानिर्देशात्  
प्रत्येकं चतुर्द्धाऽपीति दश । मिश्रे हि संयमाभावादाहारकद्विकाभावः । कर्मणौदारिकमिश्र-वैक्रि-  
यमिश्राणामभावे कारणं “सचिउवा मीसे” त्यत्रोक्तम् । ते पूर्वोक्ता दश वैक्रियमिश्रयुक्ता एका-  
दश देशयते=देशविरते । तत्र वैक्रियद्विकं वैक्रियलब्धौ सत्याम् । अपर्याप्तत्वे भवान्तराले च देश-  
विरतेरभावाद् औदारिकमिश्रकर्मण्युक्तौ नास्याऽपि स्तः । सर्वविरतेरभावाच्चाऽऽहारकद्विका-  
भावः । ते पूर्वोक्ता एकादश सहाहारकद्विकेन वर्तन्ते साहारकास्त्रयोदशेत्यर्थः, प्रमत्ते=  
प्रमत्तसंयते । इह हि “संयमेणाहार” इति वचनादाहारककाययोगः, आहारकाश्रयत्वाच्चाहारकमिश्र-  
योगः । कर्मणौदारिकमिश्राभावस्तु भवान्तरालेऽपर्याप्तदशायां च सर्वविरतेरभावात् । यत्तु  
केचिद्देशविरत-प्रमत्तसंयतयोर्वैक्रियद्विकं न प्रतिपद्यन्ते, तदम्बुहश्रावक-विष्णुकुमार-स्थूलन्द्रादि-  
मिथ्यमिचरतीत्युपेक्षितमाचार्येण ॥६७॥

एक्कारसऽपमत्ते, मणवइआहारगुरलवेउवा ।

अप्पुवाइसु पंचसु नव ओरालो मणवई य ॥६८॥

(यशो०) अप्रमत्ते=ऽप्रमत्तसंयते मनश्चतुष्कं वाक्चतुष्कमाहारकौदारिकवैक्रियाश्चेत्येकादश । इह कर्मणौदारिकमिश्राभावः पूर्ववत् । वैक्रियमिश्राऽऽहारकमिश्रयोस्त्वऽभावोऽप्रमत्तत्वादेव । तथा ह्ये तौ वैक्रियाहारकयोरारम्यमाणयोस्त्यज्यमानयोर्वा प्राप्येते । तत्रारम्भकाले लब्धेरुपजीवनौत्सुक्याच्यागकाले च त्यागौत्सुक्यान्नाप्रमत्तत्वम् । आरम्भत्यागकालान्तराले चौत्सुक्याभावादऽप्रमत्तताऽपीत्यप्रमत्तस्याऽपि वैक्रियाहारकावुक्तौ । कैश्चित्तु सर्वथा नोक्तौ, अप्रमत्तस्य लब्धेरनुपजीवनात् । अपूर्वादिषु=निवृत्त्यादिषु पञ्चसु क्षीणामोहान्तेष्वित्यर्थः, नवौदारिककायमनश्चतुष्टयवाक्चतुष्टयलक्षणाः । इहौदारिकमिश्रकर्मणाभावः प्रागिव । अतिविशुद्धत्वादेव वैक्रियाहारककरणासम्भवाद्वैक्रियस्याहारकद्विकस्य चाभावः ॥६८॥

संप्रति योगसमर्थनापुरस्सरमुपयोगप्रस्तावनामाह—

चरमाइममणवद्दुगकम्पुरद्दुगन्ति जोगिणो सत् ।

गयजोगो य अजोगी वोच्छमओ वारसुवओगे ॥६९॥

(यशो०) चरममसत्यामृषमादिप्रं च सत्यं मन इति द्विकमेवं चरमादिमा च वागिति द्विकं कर्मणमौदारिकद्विकं चेति सप्त योगिनः=सयोगिकेवलिनः । तत्र मनोद्विकं दवीयोदेशव्यवस्थितमनःपर्ययज्ञानिप्रभृतिषु द्रव्यमनोव्यापारणाद्, वाग्द्विकं देशनादौ, कर्मणौदारिकमिश्रयोगौ यथाक्रमं तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमसमयेषु द्वितीय-षष्ठ-सप्तमसमयेषु च समुद्घाते वाच्यौ, औदारिकः प्रतीतः । अयोगी च गतयोगो=ऽपगतयोगः । अतो=योगचिन्तानन्तरमुपयोगान्वक्ष्ये, 'गुणस्थानेष्विति प्रकृतम् 'द्वादशे' ति स्वरूपपरम् ॥६९॥

तानेवाह—

अच्चक्खुवक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छमासाणे ।

अविरयसम्मे देसे तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥७०॥

(यशो०) कर्मप्रकृतिमतेनाऽवधिदर्शनाऽनङ्गीकारादचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च वचनव्यत्ययान्मिथ्यात्वसास्त्रादनयोः । शेषास्तु सम्यक्त्वाविनाभाविन इत्यनयोर्न भवन्ति । अविरतसम्यग्दृष्टौ चशब्दलोपादेकदेशे समुपायोपचाराच्च देशविरते च त्रीण्याद्यानि ज्ञानानि दर्शनानि चेति पट् । अज्ञानत्रिकं मिथ्यात्वाविनाभावि मनःपर्यवज्ञानकेवलद्विकं च चारित्र्याव्यमिचारीत्यनयोर्न भवन्ति ॥७०॥

मीसे तिच्चिय मीसा सत्त पमत्ताइसुं समणनाणा ।

केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

(यशो०) मिश्रे=मिश्रदृष्टौ त एव प्राचिनाः पट् मिश्रा अज्ञानेनेति शेषः । अत्र भावार्थो  
“भीसे अनाणमीसं तं” इत्यत्र योऽभिहितः स एवानुसर्त्तव्यः । शेषोपयोगाभावः पूर्ववत् । प्रमत्तादिपु  
सयोग्यऽयोगिनोः पार्थक्येन चिन्तनात् क्षीणमोहान्तेषु इत्यनुवृत्तेर्मतिज्ञानादयः पट् मह मनो-  
ज्ञानेन=मनःपर्यवज्ञानेनेति सप्त । शेषाभावः प्रतीतः । केवलज्ञानदर्शनोपयोगो सयोग्ययोगिनोः,  
अत्र केवलद्विकस्य शेषोपयोगाऽपायेनैव भवाच्छेषाभावः ॥७१॥

साम्प्रतमागममाप्नातानामपि केषांचिदर्थानामत्रानधिकृतत्वमाह—

मामणभावे नाणं विउव्विगाऽऽहाग्गे उरलमिस्सं ।

नेर्गिदिसु 'सासाणोत्ति नेहहिगयं सुयमयंपि ॥७२॥

(यशो०) सास्वादनत्वे सति ज्ञानं=मत्यादि श्रुतमतमपि सास्वादनो हि किल सम्यग्दृष्टिः  
सम्यग्दृष्टेश्च ज्ञानमेवेति सैद्धान्तिकैः=प्रज्ञापनादिभिः आश्रितमपि नात्र प्रकरणेऽधिकृतं=मम्यूपगत-  
मपि त्वज्ञानमेवेति योगः । कर्मग्रन्थिका-(ऽह्गी)कृतस्यैवेहाश्रितत्वादिति भावः । कर्मग्रन्थिकैर्हि  
कर्मप्रकृत्यनुसारिभिः सास्वादनभावेऽनन्तानुध्वंस्युदयाद्वाऽल्पकालभाविवाद्वा ज्ञानं न विवक्षि-  
तम् । वचनव्यत्ययाद्वैक्रियाहारकयोस्त्यज्यमानयोरौदारिकमिश्रं शरीरं श्रुतमतमपि नाधिकृतमित्य-  
त्रापि योगः । सिद्धान्ते हि प्रज्ञापनादौ (वैक्रि)यलब्धमर्ता वादरवायुतिर्यग्मनुष्याणां वैक्रियस्या-  
ऽऽरम्भकाले वैक्रियमिश्रकाययोगस्त्यागकाले पुनरसा औदारिकमिश्र उक्तः । आहारकस्याप्या-  
ऽऽरम्भकाल आहारकमिश्रः त्यागकाले पुनरौदारिकमिश्रोऽभिहितः । इह तु कर्मग्रन्थिकाश्या-  
श्रयणाद्वैक्रियाहारकयोरारम्भकाल इव त्यागकालेऽपि वैक्रियमिश्राहारकमिश्रावुक्तावित्यर्थः ।  
तथैकेन्द्रियेषु न सास्वादन इति यत् श्रुतमतं तदप्यत्र नाधिकृतमित्यत्रापि योगः । अयं चार्थः  
'पढमगुणा दी बायर' इत्यत्र निर्णीतः ॥७२॥

अथ गुणस्थानेष्वेव लेश्याः प्रतिपादयति—

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊ पम्हा य अप्पमत्तंता ।

सुक्का जाव सजोगी निरुद्धलेसो अजोगित्ति ॥७३॥

(यशो०) आद्यस्तिस्रो लेश्याः प्रमत्ते=प्रमत्तगुणस्थानेऽन्तस्तत्र सद्भाव उत्तरप्राभावरूपो  
व्यवच्छेद आसामिति । प्रमत्तान्ताः प्रमत्तं यावत्सदपि, तद्दूर्ध्वं तूत्तरास्तिस्र इत्यर्थः । यथा च  
प्रमत्तयतेर्विशुद्धस्या-ऽप्यविशुद्धमाद्यलेश्यात्रयं भवति । तथा “गश्याऽसु छावि सेसेस्वि” त्यत्रोक्तम् ।  
एवं तैजसीपद्मे अप्रमत्तान्ते । अप्रमत्ते-ऽन्त्यास्तिस्र इत्यर्थः । निवृत्तिगुणस्थानमादितः कृत्वा  
सयोगिकेवलिनं यावच्छुक्ला, अयोगी तु व्यवच्छिन्नलेश्याः, लेश्योच्छेद एवा-ऽयोगित्वप्राप्तेः ।

१ “सासाणो नेहाहिगयं” इत्यपि पाठः ।

(यशो०) अप्रमत्ते=उप्रमतसंयते मनश्चतुष्कं वाक्चतुष्कमाहारकौदारिकवैक्रियाश्चैत्येकादश । इह कर्मणौदारिकमिश्राभावः पूर्ववत् । वैक्रियमिश्राऽऽहारकमिश्रयोस्त्वऽभावोऽप्रमत्तत्वादेव । तथा ह्येतौ वैक्रियाहारकरोरारम्यमाणयोस्त्यज्यमानयोर्वा प्राप्येते । तत्रारम्भकाले लब्धेरुपजीव-  
नौत्सुक्याच्यागकाले च त्यागौत्सुक्यान्नाप्रमत्तत्वम् । आरम्भत्यागकालान्तराले चैत्सुक्याभावा-  
दऽप्रमत्तताऽपीत्यप्रमत्तस्याऽपि वैक्रियाहारकावृक्तौ । फौश्चित्तु सवथा नोक्तौ, अप्रमत्तस्य लब्धे-  
रनुपजीवनात् । अपूर्वादिषु=निवृत्त्यादिषु पञ्चसु क्षीणामोहान्तेष्वित्यर्थः, नवौदारिककायम-  
नश्चतुष्टयवाक्चतुष्टयलक्षणाः । इहौदारिकमिश्रकर्मणाभावः प्रागिव । अतिविशुद्धत्वादेव  
वैक्रियाहारकरणासम्भवाद्वैक्रियस्याहारकद्विकस्य चाभावः ॥६८॥

संप्रति योगसमर्थनापुरस्सरमुपयोगप्रस्तावनामाह—

चरमाहममणवद्दुगकम्पुरद्दुगन्ति जोगिणो सत् ।

गयजोगो य अजोगी वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(यशो०) चरममसत्यामृपमादिमं च सत्यं मन इति द्विकमेवं चरमादिमा च वागिति द्विकं  
कर्मणमौदारिकद्विकं चेति सप्त योगिनः=सयोगिकेवलिनः । तत्र मनोद्विकं दधीयोदेशव्यवस्थित-  
मनःपर्ययज्ञानिप्रमृतिषु द्रव्यमनोव्यापारणाद्, वागिद्विकं देशनादौ, कर्मणौदारिकमिश्रयोगौ  
यथाक्रमं तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमसमयेषु द्वितीय-पट-सप्तमसमयेषु च समुद्घाते वाच्यौ, औदारिकः  
प्रतीतः । अजोगी च गतयोगो=ऽपगतयोगः । अतो=योगचिन्तानन्तरमुपयोगान्वक्ष्ये,  
'गुणस्थानेष्वि'ति प्रकृतम् 'द्वादशे' ति स्वरूपपरम् ॥६९॥

तानेवाह—

अच्चक्खुचक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छमासाणे ।

अविरयसम्मे देसे तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥७०॥

(यशो०) कर्मप्रकृतिमतेनाऽवधिदर्शनाऽनङ्गीकारादचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च  
वचनव्यत्ययान्मिथ्यात्वसास्त्रादनयोः । शेषास्तु सम्यक्त्वाविनाभाविन इत्यनयोर्न भवन्ति ।  
अविरतसम्यग्दृष्टौ चशब्दलोपादेकदेशे समुपायोपचाराच्च देशविरते च श्रीण्याधानि ज्ञानानि  
दर्शनानि चेति षट् । अज्ञानत्रिकं मिथ्यान्वाविनाभावि मनःपर्यवज्ञानकेत्रलद्विकं च चारित्र्याच्य-  
भिचारीत्यनयोर्न भवन्ति ॥७०॥

मीसे तिच्चिय मीसा सत्त पमत्ताइसुं समणनाणा ।

केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

तस्य क्रिया सम्भवतीति वक्तुं शीलानामक्रियावादिनां चतुरशीतेरः, अज्ञानेन चरतामज्ञानप्र-  
योजनानां वाऽज्ञानिकानां सप्तषष्टेः, विनयेन चरतां विनयप्रयोजनानां वा वैनयिकानां  
द्वात्रिंशत्तश्च, मीलनेन त्रिषष्ट्यधिकं शतत्रयविधम् । तत्र जीवाजीवपुण्यपापाश्रवसंवरनिर्जगवन्ध-  
मोक्षाभिधाना नवपदार्थाः, स्वपरभेदाभ्यां क्रमेण काले-श्वरा-ऽऽत्म-नियति-रत्रभावभेदान्निता-  
भ्यामस्तित्वेन चिन्त्यमाना अशीत्युत्तरं शतं विकल्पानाविर्भावयन्ति । अस्ति जीवः स्यतो  
नित्यः कालतः १, तथास्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतः २, इति स्वतो भङ्गद्वयम् । एवं  
परतोऽपि भङ्गद्वयम् । सर्वेऽपि चत्वारः कालेन लब्धाः । एवमीश्वरादिभिश्चतुभिरपि प्रत्येकं  
चत्वारो लभ्यन्ते । ततः पञ्चभिश्चतुष्कैर्विंशतिर्जाता । सा च जीवपदेन लब्धा । एवम-ऽजीवादि-  
भिरष्टाभिः पृथग्विंशतिर्लभ्यते इति नव विंशतयो मीलिताः क्रियावादिनामशीत्युत्तरं शतं भवति ।  
तथा जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षाभिधानाः सप्त पदार्थाः स्वपरभेदाभ्यां प्रत्येकं काले-  
श्वरात्मनियतिस्वभावयदृच्छासम्बन्धिताभ्यां नास्तित्वेन चिन्त्यमानाश्चतुरशीतिविकल्पा-  
न्जनयन्ति । यथा नास्ति जीवः स्वतः कालतः, १, नास्ति जीवः परतः कालत इति द्वौ । एव  
मीश्वरादिभिः पञ्चभिः प्रत्येकं द्वौ द्वौ लभ्येते । सर्वेऽपि द्वादश । एते च जीवादिसप्तकेन गुणिताश्च-  
तुरशीतिरक्रियावादिनाम् । तथा जीवादयो नव पदार्थाः सन् १, असन् २, सदसन् ३, अवक्तव्यः  
४, सदवक्तव्यः ५, असदवक्तव्यः ६, सदसदवक्तव्यः ७, इत्येतैः सप्तभिः प्रकारैर्नैते ज्ञातुं  
शक्यन्ते । ज्ञातैर्वा किमेभिः प्रयोजनमिति बुद्ध्या व्यासितैस्त्रिषष्टिमाज्ञानिकानां भेदान्प्रसुवते ।  
यथा सन् जीव इति को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन प्रयोजनम् । असन् जीव इति को वेत्ति किं  
वा तेन ज्ञातेन प्रयोजनमित्यादयः सप्त जीवेन लब्धाः । एवमजीवादिभिरपि सप्तभिः पदैः  
प्रत्येकं सप्त लभ्यन्ते इति नव सप्तकास्त्रिषष्टिः । एतन्मध्ये चामी चत्वारः क्षिप्यन्ते । यथा सती भावो-  
त्पत्तिरिति को वेत्ति किं वा तथा ज्ञातया । एवमसती सदसती अवक्तव्या भावोत्पत्तिरिति को  
वेत्ति किं वा ज्ञातयेति सर्वत्र योज्यते । सदवक्तव्यादिकं तु विकल्पत्रयमुत्तरं कालं भावावय-  
वाऽपेक्षम्, अतोऽत्र न सम्भवतीति नोक्तम् । इत्थं च सप्तमङ्गी सूत्रकृदादिदृष्ट्यनुष्ठया दर्शिता ।  
विशेषावश्यकादौ त्ववक्तव्य इति तृतीयेन सदसन्निति चतुर्थेन मङ्गेन सेति । तदेवं सप्तषष्टिरा-  
ज्ञानिकानां भवति । सुरनृपतियतिजातिस्थिविरावममातृपितृणामष्टाणां स्थानानां प्रत्येकं कायेन  
चचसा मनसा दानेन च विनय इत्यष्टभिश्चतुष्कैर्द्वात्रिंशद्द्वैतनयिकभेदाः सर्वेषां च मीलनेन त्रिष-  
ष्ट्यधिकश्चतत्रयविधं मिथ्यात्वम् ।

'जावइया नयवाया तावइया चेव हुन्वि परसमया । जावइया परसमया तावइया चेव मिच्छत्तं' ॥  
न्यायादपरिमितभेदं वेति ॥७५॥

बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकायवहो ।

सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥

इतिशब्दो लेश्याद्वारसमाप्त्यर्थः ॥७३॥

इदानीं गुणस्थानेषु ज्ञानावरणादिकर्मणा बन्धहेतून् दर्शयितुकामः प्रथमं तानेव भेदत आह-

बन्धस्स मिच्छअविरइकमायजोगति हेयवो चउरो ।

पंच 'दुवाल पणुवीस पन्नरस कमेण भेया सिं ॥७४॥

(यशो०) ज्ञानावरणादिकर्मणां बन्धस्य हेतवः=कारणानि=मिथ्यात्वाविरक्तिकाययोग इत्येवंरूपाश्रित्वारः, एतांश्च मूलभेदानाहुः, न तु प्रमादरूपं पञ्चममिति । तद्भेदानां मद्यादीनां मिथ्यात्वशेषेऽप्येव यथायोगमः तर्भावात् । तत्र मिथ्यात्वमेकस्मिन्नेव गुणस्थान इत्यादौ निर्देष्टम् । ततो यथोत्तरं बहुगुणस्थानाश्रयत्वेना-ऽविरत्यादयः । तथाहि-मिथ्यात्वं मिथ्या(दृष्टा)वेत्र, अविरतिराद्यपञ्चगुणस्थानव्यापिनी, कषाया आद्यगुणस्थानदशकव्यापिनः, योगास्तु अयोगिवर्जगुणस्थानव्यापिनः । एषामेव क्रमेण पञ्च द्वादश पञ्चविंशति पञ्चदशेति संख्या-ऽवच्छिन्ना भेदाः, सर्वे वा मीलितः सप्तपञ्चाशत् । एतांश्चोत्तरभेदानाचक्षते ॥७४॥

अथैतानेव क्रमेण विवृणोति ॥

आभिग्गहियं अणभिग्गहियं च तइ अभिनिवेशियं चैव ।

संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पत्रहा एवं ॥७५॥

(यशो०) अभिग्रहः परोपदेशादिप्रभवः कदाग्रहस्तरमाद् यातमाभिग्रहिकम् येन बोटिकादिदर्शनानामन्यतमदभिगृह्णाति । तद्विपरीतमनाभिग्रहिकमज्ञानां गवादीनामिव । यद्वेषन्माध्यस्थ्यात्सर्वदर्शनानि शोभनानीत्येवंरूपा यतः प्रतिपत्तिः तदाभिग्रहिकम् । यद्यपि चाभिग्रहिकविपर्यस्त-रूपतया-ऽभिनिवेशिकाद्यप्य-ऽनाभिग्राहिके-ऽन्तर्भवति । तथा-ऽप्य-ऽपवादविषयं परिहृत्योत्सर्गाः प्रवर्तन्त इति न्यायादाभिनिवेशिकादिभ्यो भिन्नविषयमनाभिग्रहिकं बोद्धव्यम् । अभिनिवेशो=ऽव-लेपः, यद्वशीभूत एकेन वस्तुतत्त्वे प्ररूपिते मात्सर्यादिना वस्तुत्वमन्यथा कथयति । उत्सृजप्र-रूपणं वा त्वयं कृतमात्मलाघवमिया समर्थयते । वस्तुतत्त्वमज्ञानानो वाऽन्येन पृष्टो मा मामज्ञं ज्ञासीदयमिति यथाकथञ्चिदुत्तरयति । तस्माद् यातमाभिनिवेशिकम् । यथा गोष्ठामाहिलादीनाम् । यदर्हता जीवादितत्त्वमभिहितं तन्न जाने किं तथैव भवेदुता-ऽन्यथेत्येवंभूतात्संशयाद् यातं सांशयि-कम् । आभोगो=विशिष्टज्ञानम्, स न विद्यते यत्र तदनाभोगं पृथिव्यादीनाम् । एवमिति काक्वापा-ठस्तत एव=ममृना प्रकारेण पञ्चधा मिथ्यात्वम् । अन्यथा तु विपर्यस्तबोधरूपत्वेनैकविधम् । आमो-गा-ऽनाभोगप्रभवतया द्विविधम् । संशयाऽऽभोगाऽनाभोगोद्भवतया त्रिविधम् । सावधारणजीवा-द्यस्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणानां क्रियावादिनामशीत्यधिकशतस्य । न कस्यचित्क्षणिकत्वादनवस्थि-

तस्य क्रिया सम्भवतीति वक्तुं शीलानामक्रियावादिनां चतुरशीतिरः, अज्ञानेन चरनामज्ञानप्र-  
योजनानां वाऽज्ञानिकानां सप्तपष्टेः, विनयेन चरतां विनयप्रयोजनानां वा वैनयिकानां  
द्वात्रिंशत्, मीलनेन त्रिपष्टयधिकं शतत्रयविधम् । तत्र जीवाजीवपुण्यपापाश्रवसंवरनिर्जावन्ध-  
मोक्षाभिधाना नवपदार्थाः, स्वपरभेदाभ्यां क्रमेण काले-धरा-ऽऽत्म-नियति-रभभावभेदान्निता-  
भ्यामस्तित्वेन चिन्त्यमाना अशीत्युत्तरं शतं विकल्पानाविर्भावयन्ति । अस्ति जीवः स्वतो  
नित्यः कालतः १, तथास्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतः २, इति स्वतो भङ्गद्वयम् । एवं  
परतोऽपि भङ्गद्वयम् । सर्वेऽपि चत्वारः कालेन लब्धाः । एवमीश्वरादिभिश्चतुर्भिरपि प्रत्येकं  
चत्वारो लभ्यन्ते । ततः पञ्चभिश्चतुष्कैर्विंशतिर्जाता । सा च जीवपदेन लब्धा । एवम-ऽजीवादि-  
भिरष्टाभिः पृथग्विंशतिर्लभ्यते इति नव विंशतयो मीलिताः क्रियावादिनामशीत्युत्तरं शतं भवति ।  
तथा जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जावन्धमोक्षाभिधानाः सप्त पदार्थाः स्वपरभेदाभ्यां प्रत्येकं काले-  
श्वरात्मनियतिस्वभावयदृच्छासम्बन्धिताभ्यां नास्तित्वेन चिन्त्यमानाश्चतुरशीतिविकल्पा-  
न्जनयन्ति । यथा नास्ति जीवः स्वतः कालतः, १, नास्ति जीवः परतः कालत इति द्वौ । एव  
मीश्वरादिभिः पञ्चभिः प्रत्येकं द्वौ द्वौ लभ्येते । सर्वेऽपि द्वादश । एते च जीवादिसप्तकेन गुणिताश्च-  
तुरशीतिरक्रियावादिनाम् । तथा जीवादयो नव पदार्थाः सन् १, असन् २, सदसन् ३, अवक्तव्यः  
४, सदवक्तव्यः ५, असदवक्तव्यः ६, सदसदवक्तव्यः ७, इत्येतैः सप्तभिः प्रकारैर्नैते ज्ञातुं  
शक्यन्ते । ज्ञातैर्वा किमेभिः प्रयोजनमिति बुद्ध्या व्यासितैस्त्रिपष्टिमाज्ञानिकानां भेदान्प्रसुवते ।  
यथा सन् जीव इति को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन प्रयोजनम् । असन् जीव इति को वेत्ति किं  
वा तेन ज्ञातेन प्रयोजनमित्यादयः सप्त जीवेन लब्धाः । एवमजीवादिभिरपि सप्तभिः पदैः  
प्रत्येकं सप्त लभ्यन्ते इति नव सप्तकास्त्रिपष्टिः । एतन्मध्ये चामी चत्वारः क्षिप्यन्ते । यथा सती भावो-  
त्पत्तिरिति को वेत्ति किं वा तथा ज्ञातया । एवमसती सदसती अवक्तव्या भावोत्पत्तिरिति को  
वेत्ति किं वा ज्ञातयेति सर्वत्र योन्यते । सदवक्तव्यादिकं तु विकल्पत्रयमुत्तरं कालं भावावय-  
वाऽपेक्षम्, अतोऽत्र न सम्भवतीति नोक्तम् । इत्थं च सप्तमङ्गी सूत्रकृदादिवृत्त्यनुवृत्त्या दर्शिता ।  
विशेषावश्यकदादौ त्ववक्तव्य इति तृतीयेन सदसन्निति चतुर्थेन मङ्गेन सेति । तदेवं सप्तपष्टिरा-  
ज्ञानिकानां भवति । सुरनृपतियतिजातिस्थविरावममातृपितृणामष्टाणां स्थानानां प्रत्येकं कायेन  
चक्षुसा मनसा दानेन च विनय इत्यष्टभिश्चतुष्कैर्द्वात्रिंशद्वैनयिकभेदाः सर्वेषां च मीलनेन त्रिप-  
ष्टयधिकसप्तत्रयविधं सिध्यात्वम् ।  
'जावइया नयवाया तावइया चैव हुन्वि परसमया । जावइया परसमया तावइया चैव मिच्छत्तं' ॥  
न्यायादपरिमितभेदं वेति ॥७५॥

बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकायवहो ।

सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥



(यशो०) अविरतिर्द्वादशविधा कथमित्याह—मनस इन्द्रियाणां च पञ्चानामनियमो=ऽनियन्त्रणं शब्दादिषु विषयेषु मनोज्ञा—ऽमनोज्ञेषु रागद्वेषप्रवृत्तेरनिवारणमिति षोडश तथा षण्णां कायानां पृथिव्यादीनां वधो = हिंसेति च षोडशेति द्वादशविधेति मध्यमां वृत्तिमवलम्ब्योक्तमन्यथा सामान्येन सावद्ययोगा-ऽनिवृत्तिरूपत्वेनैकविधैव । व्यक्त्याश्रयणेन यावन्ति हिंसादीनां पापस्थानानि तदनुवृत्तिरूपत्वेनापरिमितविधा । षोडश नव चेति कषायाः पञ्चविंशतिः । षोडश नव च कषाया इति सामान्योक्तावपि षोडश कषाया नव नोकषाया इति दृश्यम् । तत्र कषायाः प्राग्निर्णीतार्थाः क्रोधादयश्चत्वारोऽनन्तानुबन्ध्यऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनात्मकमेदचतुष्टयेन प्रत्येकं मिथ्यमानाः षोडश भवन्ति । तत्रानन्तं=संसारमनुबन्धन्ति=प्राणिभिः संबद्धं कुर्वन्ती-येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः । यद्यप्यमीषां शोककषायोदयशून्यानामृदयो नास्ति । तथाऽ-प्यनन्तमवमूलकारणस्य मिथ्यात्वोदयस्या-ऽऽक्षेपकत्वादेतेषामेवानन्तानुबन्धित्वव्यपदेशः । शेषास्तु कषाया न नियमेन मिथ्यात्वोदयमाक्षिपन्ति । ते चाऽनन्तानुबन्धिनः क्रोध-मान-माया-लोभा यथाक्रमं शैलरेखाशैलस्तम्भवंशीशूलकृमिरागसंनिभा जीवपरिणतिविशेषा अवगन्तव्याः । नवो-ऽल्पार्थत्वादल्पमपि प्रत्याख्यानं देशविरतिरूपमावृण्वन्तीत्यप्रत्याख्यानावरणा एवंप्रत्याक्ष क्रोधादयः क्रमेण पृथिवीरेखा-ऽस्थिमेषशृङ्गकर्मरागसदृशा मन्तव्याः । प्रत्याख्यानं सर्वविरतिरूपमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणा एवमात्मनश्च क्रोधादयो यथासंख्यं रेणुरेखाकाष्ठगोमृत्रिकाखञ्जन-रागसमाना ज्ञेयाः । समृद्धस्येवार्थत्वात्परीषहादिपरिचये चारित्रिणमपीपज्ज्वलयन्तीति संज्वलना एवंप्रत्याक्ष क्रोधादयः क्रमेण जलरेखातिणिशलतावंशावलोखाहरिद्रारागसमा षोडश इति । तथा नोद्धस्य साहचर्यवाचित्वात्कषायैः सहचरा नोकषायाः, तेषां हि केवलानां प्राधान्यम्, किन्तु तेषां यैः सहोदयमायान्ति कषायविपाकसममेव च विपाकमुपदर्शयन्ति । ते च स्त्रीपुं-नपुंसकात्मकवेदत्रयहास्यरत्य-ऽरतिशोकभयजुगुप्सालक्षणहास्यादिषट्करूपत्वेन नवधा । तत्र वेदत्रयं प्रागुक्तस्वरूपम् । यदुदये सहेतुकमहेतुकं वा हसति स हासः । यदुदये रमणीये वस्तुनि रमते=प्रमोदते सा रतिः । तद्विपरीताऽरतिः । येन प्रियविप्रयोगाद्याकुलः शोचना-ऽऽक्रन्दनादि विषत्ते-स शोकः । येन स बीजमबीजं वा विमेति तद् भयम् । येन सकृदादिविरूपपदार्थात् जुगुप्सन्ते, सा जुगुप्सति कषायाः पञ्चविंशतिः । योगाः पञ्चदशेति मनश्चतुष्टय-वाञ्चतुष्टय-कायसप्तकरूपाः प्रागुक्तार्थाः । एते च मिथ्यात्वादयः सस्वमेदा मीलिताः सप्तपञ्चाशत्कर्मणां बन्धहेतव उक्ताः ॥७६॥

अथैतान् क्रमेण गुणस्थानेषु योजयति—

पणपन्नपन्नतियद्धियचत्तगुणचत्तछचउदुगवीसा ।

सोलस दस नव नव सत्त हेउणो न व अजोगिति ॥७७॥

(यशो०) नत्रयोगिनीति वचनात्पञ्चपञ्चाशदादिसंख्याऽवच्छिन्नाः क्रमेण मिथ्यादृष्ट्यादिषु बन्धहेतवो भवन्तीति शेषः । “तिग्रहहि पचत्ते”ति त्रिचत्वारिंशत्पट्टचत्वारिंशदित्यर्थः । “लुच-  
 वदुगवीसे”ति षड्विंशतिश्चतुर्विंशतिर्द्वाविंशतिरित्यर्थः । तत्र मिथ्यादृष्टेः संयमाभावेना-ऽऽहारक-  
 द्वयाऽभावाच्छेषा पञ्चपञ्चाशत् । पञ्चपञ्चाशतश्च मध्यान्मिथ्यात्वपञ्चकोत्सारणेन साम्वादनस्य  
 पञ्चाशत् । पञ्चाशतश्च मध्यान्मिश्रत्वे कालकरणामावेन कार्मणौदारिकमिश्र-वैक्रियमिश्ररूपयोग-  
 त्रया-ऽपगमेऽनन्तानुबन्धिना च निपिद्वत्त्वेनाऽनन्तानुबन्धिचतुष्टयोत्सारणेषु मिथ्यदृष्टेःस्यधिका  
 चत्वारिंशत् । त्रिचत्वारिंशतः कालकरणसम्भवेन कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रात्मकयोगत्रिके  
 प्रक्षिप्तेऽविरतसम्यग्दृष्टेः षड्विंशतिश्च चत्वारिंशत् । षट्चत्वारिंशतश्चा-ऽप्रत्याख्यानावरणोदये  
 चिग्रहगतावपर्याप्तदशायां च देशविरतेरभावादप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य कार्मणौदारिकमिश्रयोग-  
 द्वयस्य चोत्सारण आरम्भत्रसाऽविरत्यविवक्षया संकल्पजत्रसा-ऽविरतेनिवृत्त्या त्रसा-ऽविरतौ चाप-  
 नीतायां देशविरतस्यैकोनचत्वारिंशत् । एकोनचत्वारिंशतश्च मध्यात् प्रत्यानावरणोदयस्या-ऽविरतेश्च  
 सर्वविरतेः प्रतिपन्थित्वादेकादशमेदा-ऽविरति-प्रत्याख्यानावरणचतुष्का-ऽपनयने संयमप्रत्ययकत्वा-  
 दाहारकलब्धेराहारकद्विकप्रक्षेपे च प्रमत्तसंयतस्य षड्विंशतिः । तस्याश्च मध्यात्पूर्वोक्तयुक्त्या वैक्रि-  
 यमिश्रा-ऽऽहारकमिश्रद्वये-ऽपनीतेऽप्रमत्तसंयतस्य चतुर्विंशतिः । चतुर्विंशतेर्मध्यादपूर्वकरणस्या-  
 त्तिविशुद्धत्वादा-ऽऽहारकवैक्रियापसारणे द्वाविंशतिः । द्वाविंशतेर्मध्यादपूर्वकरण एव व्यवच्छिन्नस्य  
 हास्यादिषट्कस्यापगमेऽनिष्टुत्तिबादरस्य षोडश । एतच्च यावदद्या-ऽप्यऽसौ वेदत्रयं क्रोधमानमाया-  
 रूपं संज्वलनत्रयं च न क्षपयति तावद् द्रष्टव्यम् । तत्त्रये तु यथासम्भवं वाच्यम् । षोडशानां च  
 मध्यादनिष्टुत्तिबादर एव व्यवच्छिन्नयोर्वैदत्रिकसंज्वलनक्रोधादित्रिकयोरपसारणे सूक्ष्मसम्परायस्य  
 दश । दशम्यो लोमस्योपशान्तत्वेनोत्सारण उपशान्तमोहस्य नव । क्षीणत्वेन लोमस्यापनयने  
 क्षीणमोहस्य नव । नवम्यो मृयामिश्रात्मकयोर्मनोद्वय-त्रागूद्वययोगपनयने कार्मणौदारिकमिश्रयोः  
 प्रक्षेपे च सयोगिनः सप्त हेतवः कर्मबन्धस्येति गम्यम् । एषामपि सप्तानामभावात् तु = नैवा-  
 ऽयोगिनो बन्धहेतवः ।

कलिकालानुचितसमाचाराधारपरमाराध्यास्मद्गुरुश्रीश्रीलभद्रत्तुरिविरचित्ताः “पणान्ने”  
 तिगाथाऽद्याकरूपास्त्विमा गाथाः ।

पणपन्नबन्धहेतु मिच्छद्विद्विस्त उदयओ होमि । आहारगदुगरहिया जेणं तं संजयन्त भवे ॥१॥  
 पन्नासा (सा)सायापि पंचगमिच्छत्ताधिरहिया होइ । मिस्से पुण तेयाळा अणकम्मणमिस्सदुगरहिया ॥२॥  
 तुरियंमि उ छायाळा कम्मणमिस्सदुगसंजुया जाण । एगूणचत्ता वेसे वीयकसायाण मावाओ ॥३॥  
 अधिरयन्नरळगमिस्सं कंमइणं जेण तस्य नो सत्ता । छव्वीसा य पमत्तो संजळणा नोकसाया य ॥४॥  
 कम्मपन्नालमिस्सं वग्गित्ता सब्बजोगसवभावा । चव्वीसं अपमत्तो वेत्तव्वाहारमिस्सविणा ॥५॥

बाध्नीसात् अपुञ्चे वेउञ्चाहारधिरहिया होइ । अनियट्टीए सोलस हासच्छक्केण रहियाओ ॥६॥  
सुद्धमे दसगं जाणामु तिषेयतिकसायधिरहियं काउ । सवसंते स्त्रीणे षण जोगा नव बन्धहेउम्मि ॥७॥  
सज्जोगिकेवलम्मि सच्चमसच्चामुसा षड्मणो य । उरलं कंमणमिस्सा जोगा सत्तेव बन्धस्स ॥८॥”

अधुना येषामेते बन्धहेतवस्तेषां कर्मणां बन्धोदयोदीरणासत्ता गुणस्थानेषु चिन्तयितुकामः  
संख्याविशेषितानि सहेतुकानि तावत्तान्याह—

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।

आउयनामं गोयंतरायमिय अट्ट कम्माणि ॥ ७८ ॥

(यशो०) “तो” इति तेभ्यो=मिथ्यात्वादिभ्यो हेतुभ्यः सकाशात् ज्ञानावरणादीनि अन्तरायान्तानि कर्माण्यष्टौ मूलभेदाऽपेक्षया भवन्तीति शेष इति समुदायार्थः । अवयार्थस्त्वयम्-ज्ञानं पूर्वोक्तस्वरूपं मत्यादि, दर्शनं च चक्षुर्दर्शनादि, तयोरावरणं=आवरणस्वभावे ज्ञानावरणं दर्शनावरणं चेत्यर्थः । आरोग्यविषयोपमोगादिजनितेनाल्हादात्मकत्वात्सुखरूपेणानारोग्यादिजनितेनानान्हादात्मकदुःखरूपेण च विपाकेन वेद्यत इति वेदनीयम् । मुह्यन्ति=सत्कृत्येभ्यः पराङ्मुखा भवन्तीति मोहनीयम् । आयाति भवाद् भवान्तरे संक्रामतां जन्तूनां निश्चयेनोदयमित्यायुः । यद्वाऽनुमू [यं](त)मेति, अनुभूतं च [जा](या)तीत्यायुः । यद्यपि च सर्वं कर्मैवंभूतमेव तथापि पङ्कजादिशब्दवद् रूढिविषयत्वादायुःशब्देन पञ्चममेव कर्माभिधीयते । व्युत्पत्तिद्वये-ऽप्या-ऽऽद्युरिति-शब्दसिद्धिर्नैरूक्ती । नमयति=परिणमयति संसारिणं गत्यादिभिः पर्यायैरिति नाम । यद्वा सुरोऽयं नरोऽयमित्यादिकं नाम यद्वशाजन्तुराशादयति तत्कर्माप्युपचारात्तम । गूयते=संशब्धते प्रधाना-ऽप्रधानरूपतया तेनोच्चैर्नचैः कुलोत्पत्त्यादिलक्षणेन पर्यायेणेति गोत्रं, तादृशविपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रम् । आत्मानं चार्थसाधनं चान्तरायते=पततीत्यन्तरायं लिङ्गानुशासनेऽन्तराय-शब्दस्य पुस्त्वे-ऽप्यागमेषु नपुंसकत्वं दृश्यते । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विष्नीभूयान्तरापततीत्यर्थः । भेदास्तेषां ज्ञानावरणादीनां प्रस्तुतानुपयोगित्वात् प्रपञ्चिताः । इह च ज्ञानदर्शनस्वभावत्वेन आत्मनो ज्ञानदर्शन एवान्तरङ्गे इत्यादौ तदावरणोपादानम्, तुल्येपि च तयोरन्तरङ्गत्वे ज्ञानमेव विशेषांशग्राहित्वेन विशिष्टार्थक्षममिति ज्ञानावरणमादावुपादायि । ततो दर्शनावरणम् । एतयोश्च व्यवस्थितिकत्वेनैतदनन्तरं वेदनीयम् । इष्टानिष्टविषया-ऽप्यितसुखदुःखरूपे च वेदनीये सति जीवः सत्कृत्येषु मूढत्वतीत्यतोऽनन्तरं मोहरूपं मोहनीयम् । तदप्यायुपि सति भवतीत्यतः पृष्ठत आयुः । नराधोयुःसहितश्च जन्तुर्नरकगत्यादिपर्यायानासाद्यतीत्यतः प्राग्नरकगत्यादिपर्यायपरिणमनरूपं नाम । नाम्ना च लब्धनरकगत्यादिपर्याय 'उच्चैर्गोत्रवतोऽपि जन्तोर्दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्यद्विचनः सम्पद्यते तदन्तरायकर्ममाहात्म्यमिति ज्ञापनाय गोत्रानन्तरमन्तरायमुक्तम् ॥७८॥

अथैतेषां बन्धादिस्थानसंख्यामाह—

सत्तट्टुष्टेगबन्धा सन्तुदया अट्ट सत्त चत्तारि ।

सत्तट्टुष्टपंचदुगं तुदीरणाठाणसंख्येयं ॥७९॥

(यशो०) सप्ताष्टपडेकसंख्याश्चत्वारो बन्धा=बन्धस्थानानि । अष्टसप्तचतुःसंख्या-  
ऽङ्किताः प्रत्येकं सत्तोदयाः=सत्तास्थानान्युदयस्थानानि चेत्यर्थः । सप्ताष्टपट्पञ्चद्विकरूपा  
पुनरुदीरणास्थानानामियं संख्या । इह च बन्धादीनां प्रत्येकमेकप्रकारन्वेऽपि सप्ताष्टादिकर्मा-  
पेक्षया सप्ताष्टादिसंख्यात्वम् । तदयमर्थोऽष्टानामायुर्वर्जानां तु सप्तानां मोहनीयायुःशेषाणां  
षण्णां वेदनीयस्यैकस्य कर्मणो बन्धः । तथाष्टानां मोहरहितानां तु सप्तानां वेदनीया-ऽऽयुर्नाम-  
गोत्राणां चतुर्णां प्रत्येकं सत्तोदये । तथाष्टानामायुर्वर्जितानां तु सप्तानां वेदनीयायुःशेषाणां  
षण्णां वेदनीयायुर्मोहरहितानां पञ्चानां द्वयोर्वा नामगोत्रयोरुदीरणेति ॥७९॥

अथैतेषां बन्धस्थानानि गुणस्थानेषु योजयति—

अपमर्त्ता सत्तट्टु मीसअप्पुव्ववायरा सत्त ।

बन्धंति छ सुहुमा एगमुवरिमाऽबन्धगोऽजोगी ॥८०॥

(यशो०) अप्रमत्तान्ता मिश्ररहिता मिथ्यादृष्ट्यादयः पद्, सप्तायुर्वर्जानि, आयुःसहितानि  
त्वष्टौ कर्माणि बध्नन्ति । आयुर्हि एकमत्रमध्य एकदैव बध्यत इति न सदा तद्बन्धः । मिश्रा-ऽपू-  
र्वकरणा-ऽनिवृत्तिबादरास्त्रयोऽपि सप्तैव बध्नन्ति । तथाहि—मिश्रदृष्टित्वे वर्त्तमानो न म्रियते, ना-  
ऽप्या-ऽऽयुर्वध्नाति, तत्स्वभावत्वात् । अपूर्वकरणानिवृत्तिबादरौ त्वतिविशुद्धत्वाच्चायुर्वध्नीतः ।  
सूक्ष्मसम्पराया मोहनीयायुःशेषाणि षड् बध्नन्ति । मोहनीयबन्धो हि बादरसम्परायहेतुकः ।  
सूक्ष्मसम्परायाणां तु बादरसम्परायो नास्तीति मोहनीयबन्धाभावः । आयुर्वन्धाभावस्तु  
घोलनापरिणामाभावाद् ; आयुर्हि घोलनापरिणामनिर्वर्त्यम् । उपरितना = उपशान्तमोहक्षीण-  
मोह-सयोगिकेवलिनो योगव्यापारादेकमेव सातात्मकं वेदनीयं बध्नन्ति, न शेषाणि; तद्बन्ध-  
हेत्वभावात् । अयोगिकेवली पुनरबन्धकः, योगव्यापारस्या-ऽप्यभावात् ॥८०॥

अथ गुणस्थानेष्वेव उदयस्थानानि लाघवार्थं तत्समानसंख्याकानि सत्तास्थानानि च  
युगपद्योजयति—

जा सुहुमो ता अट्ट वि उदये संते य 'हुन्ति पयडीओ ।

सप्तऽट्ट व संते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु' ॥८१॥

भावीसाठ अपुञ्जे वेउव्वाहारविरहिया होइ । अनियट्टीए सोलस हासच्छक्केण रहियाओ ॥६॥  
सुहुमे दसगं जाणामु तिवेयतिकसायविरहियं काउ । उवसंते खीणे षण जोगा नव बन्धहेउम्मि ॥७॥  
सज्जोगिकेवलम्मि सच्चममच्छामुसा षड्मणो य । उरलं कंमणमिस्सा जोगा सत्तेव बन्धस्स ॥८॥”

अधुना येषामेते बन्धहेतवस्तेषां कर्मणां बन्धोदयोदीरणासत्ता गुणस्थानेषु चिन्तयितुकामः  
संख्याविशेषितानि सहेतुकानि तावत्तान्याह—

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।

आउयनामं गोयंतरायमिय अट्ट कम्माणि ॥ ७८ ॥

(यशो०) “तो” इति तेभ्यो=मिथ्यात्वादिभ्यो हेतुभ्यः सकाशात् ज्ञानावरणादीनि अन्तराया-  
न्तानि कर्माण्यष्टौ मूलमेदा-ऽपेक्षया भवन्तीति शेष इति समुदायार्थः । अवयार्थस्त्वयम्-ज्ञानं  
पूर्वोक्तस्वरूपं मत्यादि, दर्शनं च चक्षुर्दर्शनादि, तयोरवरणो=आवरणस्वभावे ज्ञानावरणं दर्शनावरणं  
चेत्यर्थः । आरोग्यविषयोपभोगादिजनितेनाल्हादात्मकत्वात्सुखरूपेणानारोग्यादिजनितेनानल्हा-  
दात्मकदुःखरूपेण च विषाकेन वेद्यत इति वेदनीयम् । मुह्यन्ति=सत्कृत्येभ्यः पराङ्मुखा  
भवन्तीति मोहनीयम् । आयाति भवाद् भवान्तरे संक्रामतां जन्तूनां निश्चयेनोदयमित्यायुः ।  
यद्वाऽनुभू [य](त)मेति, अनुभूतं च [जा](या)तीत्यायुः । यद्यपि च सर्वं कर्मैवंभूतमेव तथापि पङ्क-  
जादिशब्दवद् रूढिविषयत्वादायुःशब्देन पञ्चममेव कर्माभिधीयते । व्युत्पत्तिद्वये-ऽप्या-ऽऽयुरिति-  
शब्दसिद्धिर्नैरुक्ती । नभयति=परिणमयति संसारिणं गत्यादिभिः पर्यायैरिति नाम । यद्वा सुरो  
ऽयं नरोऽयमित्यादिकं नाम यद्दशाजन्तुराशादयति तत्कर्माप्युपचारात्नाम । गूयते=संशब्धते  
प्रधाना-ऽप्रधानरूपतया तेनोच्चैर्नीचैः कुलोत्पत्त्यादिलक्षणेन पर्यायेणेति गोत्रं, तादृशविषाकवेधं  
कर्मापि गोत्रम् । आत्मानं चार्थसाधनं चान्तरायते=पततीत्यन्तरायं लिङ्गानुशासनेऽन्तराय-  
शब्दस्य पुस्त्वे-ऽप्यागमेषु नपुंसकत्वं दृश्यते । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विष्नीभूया-  
न्तरापततीत्यर्थः । मेदास्त्वेषां ज्ञानावरणादीनां प्रस्तुतानुपयोगित्वात् प्रपञ्चितताः । इह च ज्ञान-  
दर्शनस्वभावत्वेन आत्मनो ज्ञानदर्शन एवान्तरङ्गे इत्यादौ तदावरणोपादानम्, तुल्येपि च तयोर-  
न्तरङ्गत्वे ज्ञानमेव विशेषांश्राहित्वेन विधिष्टार्थक्षममिति ज्ञानावरणमादावुपादायि । ततो दर्शनाव-  
रणम् । एतयोश्च व्यवस्थितिकत्वेनैतदनंतरं वेदनीयम् । इष्टानिष्टविषया-ऽप्यितसुखदुःखरूपे च वेदनीये  
सति जीवः सत्कृत्येषु मुह्यतीत्यतोऽनन्तरं मोहरूपं मोहनीयम् । तदप्यायुपि सति भवतीत्यतः पृष्ठत  
आयुः । नराधायुःसहितश्च जन्तुर्नरकगत्यादिपर्यायानासादयतीत्यतः प्राग्नरकगत्यादिपर्यायपरि-  
णमनरूपं नाम । नाम्ना च लब्धनरकगत्यादिपर्याय 'उच्चैर्गोत्रवतोऽपि जन्तोर्दानादिकमर्थं सिसा-  
धयिषोर्थद्विध्नः सम्पद्यते तदन्तरायकर्ममाहात्म्यमिति ज्ञापनाय गोत्रानन्तरमन्तरायमुक्तम् ॥७८॥

१ “उष्णवर्चश्चैर्गूयते इति ततो गोत्रम् ।” इत्यादिमावात्मकः पाठोऽत्र लुप्तः सम्भाव्यते ।

दर्शनावरणान्तरायकर्माण्यनुदीरयन्नेव क्षपयत्यावलिकागतानामुदीरणाया असम्भवादिति ।  
द्वे नाम गोत्राख्ये उदीरयति । योगी=सयोगिकेवली पुनर्द्वे एव नामगोत्रे उदीरयति । सयोगि-  
केवलिनो ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहनीयानां क्षीणमोहत्वेन नोदीरणा, वेदनीयायुषोः पुनरुदी-  
रणा प्रागेवोपरता । अयोगी=अयोगिकेवली नोदीरयति, योगाभावात् । उदीरणा हि योगसच्य-  
पेक्षा, यत एवं कस्यापि कर्मणो नोदीरकस्तत एव प्रत्यासन्नसनातनानन्दपरपरमपदसमृद्धिकत्वेन  
भगवानिति विशेषितः । ८२-८३॥

अथ गुणस्थानेष्वेवाल्पवहुत्वमाह—

उवसन्तजिणा थोवा संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।

सुहुमनियट्टनियट्टी तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥८४॥

जोगिअपमत्तइयरं संखगुणा देससासणा मिससा ।

अविरयअजोगिमिच्छा असंखवउरो दुवेऽनन्ता ॥८५॥

(यश्चो०) उपशान्तजिना = उपशान्तमोहाः क्षीणमोहापेक्षया स्तोकाः । तथा ह्यन्तर्मुहूर्त्त-  
प्रमाणोपशमश्रेणिस्तस्यां च कदाचित्को-ऽपि न प्रविशति, तदन्तरकालस्योत्कर्षतो वर्षपृथक्त्व-  
मानस्योक्तत्वात्, यदा तु प्रविशति तदैको द्वौ वा यावदुत्कर्षत एकसमये चतुःपञ्चाशत् ।  
यथैकस्मिन्समयेषु गुणपदुत्कृष्टतश्चतुःपञ्चाशत् प्रविशति, तथा परा-ऽपरेष्वपि समयेष्विति नाना-  
समयप्रविष्टा अपि पञ्चदशस्वपि कर्मभूमिषु उत्कृष्टतः संख्याता एव भवन्ति । अथ कथमेवं यावतै-  
कस्मिन्प्यन्तर्मुहूर्त्ते समया असंख्याताः, तत्र यदि प्रतिसमयमेकैकोपि प्रविशति, तथाऽप्यन्तर्मुहूर्त्त-  
कालेऽसंख्याताः, किमुत चतुःपञ्चाशत्प्रवेशे । सत्यम्, किन्तु न प्रतिसमयगुणपशमश्रेण्यां प्रवि-  
शन्ति, केषुचिदेव समयेषु तत्प्रवेशस्य समयेऽभ्यनुज्ञानात् । किञ्च गर्भजमनुष्या अपि संख्याताः  
सम्भवन्ति, किं पुनश्चारित्रिणः । क्षीणमोहजिनाः पुनः संख्यातगुणाः, पूर्वमेव इति गम्यम्, एवमुत्त-  
रत्रापि । तत्र क्षपकश्रेणिरप्यन्तर्मुहूर्त्तमाना, तस्यां च को-ऽपि कदाचिन्नाधिरोहति; । तदन्तरालस्यो-  
त्कृष्टतः षण्मासमानत्वात् । यदा त्वधिरोहति तदैको द्वौ वा यावदुत्कृष्टत एकसमयेऽष्टोत्तरं शतम् ।  
एवं च यथैकस्मिन्समयेऽष्टोत्तरं शतं तामधिरोहति, तथा-ऽपरेष्वपीति नानासमये-ऽधिरूढा उत्कृष्टतः  
शतपृथक्त्वमानाः क्षीणमोहाः प्राप्यन्ते । क्षपकश्रेणिमपि न प्रतिसमयं अधिरोहन्ति, किन्तु केषुचि-  
देव समयेष्विति पूर्ववत् ना-ऽसंख्यात्वमाशङ्कनीयम् । यदत्रोपशान्तमोहेभ्यः क्षीणमोहानां  
संख्यातगुणत्वमुक्तम्, तद्यदैते द्वयेऽप्युत्कृष्टपदे लभ्यन्ते तदा द्रष्टव्यम् । अन्यथा कदाचित्क्षीण-  
मोहाः स्तोका । उपशान्तमोहास्तु बहव इत्यपि भवति । स्रक्ष्मसंपरायनिवृत्तिनिवृत्तिवादरा-  
स्त्रयो-ऽपि प्रत्येकं पूर्वमेव विशेषाधिकाः, स्वस्थाने तु तुल्याः । एते हि त्रयो-ऽपि

(यशो०) मिथ्यादृष्टेरारभ्य यावत्सूक्ष्मसम्परायास्तावदष्टावपि प्रकृतयः कर्मण्युदये सत्तायां च भवन्ति । “सत्तद्धे”ति यथासंख्यमुदयसत्ताभ्यां योज्यते । तत् उपशान्तगुणस्थाने सप्तकर्माण्युदये । उपशान्तमोहस्य हि मोहोदयो नास्त्युपशान्तमोहत्वादेव । शेषाणां तु सप्तानामप्युदयः । सत्तायां त्वष्टौ, उपशान्तस्य हि मोह उपशान्तो न क्षीण इति मोहनीयस्यापि सत्ता । क्षीणमोहे मोहनीयन्यूनाः सप्तोदये सत्तायां च । अस्य हि मोहनीयस्योदयवत्सत्तापि नास्ति, तस्य सर्वथा क्षीणत्वात् । चत्वार्यघातिकर्माणि वेदनीयायुर्नामगात्राख्यानि शेषयोः = सयोग्ययोगिनोरुदये सत्तायां च शेषाणां तु क्षय एव केवली भवतीति शेषाभावः ॥८१॥

अथ तेष्वेवोदीरणास्थानानि योजयति—

सत्तऽट्ट पमत्ता कम्मे उइरिन्ति अट्ट मीसो उ ।

वेयणियाउ विणा छ उ अपमत्तअपुव्वअणियट्ठी ॥८२॥

सुहुमो छ पंच उइरेइ पंच उवसंतु पंच दो खीणो ।

जोगी उ नामगोए अजोगिअणुदीरणो भयवं ॥८३॥

(यशो०) मिथ्यादृष्ट्यादयः प्रमत्तान्ताः सामर्थ्यान्मिश्रदृष्टिर्जा अष्टौ सप्त वा कर्माण्युदीरयन्ति । तत्र यावदद्या-ऽप्येपाभावलिकाशेषमात्मीयात्मीयमायुर्न भवति तावदेते सर्वे-ऽपि सततमष्टौ कर्माण्युदीरयन्ति, सर्वेषामपि तदा तदुदीरणायोग्या-ऽध्यवसायस्य भावात् । आवलिकाशेषे त्वायुषि सप्तैवा-ऽऽयुर्वर्जितानि । आवलिकाशेषं ह्यायुरनुदीर्यमाणमेव वेद्यते, तत्स्वभावात् । एवमुच्चत्रा-ऽपि विमर्शनीयम् । मिश्रदृष्टिरष्टावेव, तुल्यव्यवहारस्य व्यवहितस्य योजितत्वात्, मिश्रदृष्ट्यायुषि आवलिकाशेषताया अभावात् । स ह्यन्तर्मुहूर्त्ता-ऽवशेष एवायुषि मिश्रदृष्टित्वमपहाय सम्यग्दर्शनं मिथ्यात्वं वा नियमेना-ऽऽसादयति । अप्रमत्ता-ऽपूर्वकरणा-ऽनिवृत्तिवादरा विभक्तिलोपाद्वेदनीयायुर्म्यां विना तच्छेषाणि षडुदीरयन्ति । तेषामपि विशुद्धत्वेन वेदनीयायुषोरुदीरणाप्रायोग्या-ऽध्यवसायाभावान्नोदीरणा । सूक्ष्मसम्परायाः प्रागुक्तानि षडुदीरयन्ति । तावद्यावन्मोहनीयमावलिकाशेषं न भवति । आवलिकाशेषे तु तस्मिन्पञ्चैवोदीरयति । तस्य तदा वेदनीयायुर्वन्मोहनीयस्या-ऽप्युदीरणा नास्तीत्यर्थः । उपशान्तमोहः पूर्ववत्पञ्चैवोदीरयति, तस्य हि मोहनीयोपशान्तत्वेनोदयाभावान्नोदीरणा । यदुक्तम्— “वेद्यमानमेवोदीर्यते” इति । वेदनीया-ऽऽयुषोः पुनरनुदीरणाकारणं प्राग्वत् । क्षीणमोहः पञ्च द्वे वा कर्मणी उदीरयति । तत्र यावत् ज्ञानावरणदर्शनावरणा-ऽन्तरायकर्मण्येवावलिकाशेषाणि न भवन्ति तावत्पूर्वोक्तानि पञ्च । तस्य हि क्षीणमोहनीयोदयाभावान्नोदीरणा, शेषं प्रागिव । यदा तु ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मणां केवलौत्पत्तिप्रत्यासत्ता ऽऽवलिकाशेषाणि स्युस्तदा द्वे एवोदीरयन्ति । तदा हि ज्ञान-

दर्शनावरणान्तरायकर्माण्यनुदीरयन्नेव क्षपयत्यावल्लिकागतानामुदीरणाया असम्भवादिति ।  
द्वे नाम गोत्राख्ये उदीरयति । योगी=सयोगिकेवली पुनर्द्वे एव नामगोत्रे उदीरयति । सयोगि-  
केवलिनो ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहनीयानां क्षीणमोहत्वेन नोदीरणा, वेदनीयायुषाः पुनरुदी-  
रणा प्रागेवोपरता । अयोगी=अयोगिकेवली नोदीरयति, योगाभावात् । उदीरणा हि योगसच्य-  
पेक्षा, यत एवं कस्यापि कर्मणो नोदीरकस्तत एव प्रत्यासन्नसनातनानन्दपरपरमपदसमृद्धिकन्वेन  
भगवानिति विशेषितः । ८२-८३॥

अथ गुणस्थानेष्वेवाल्पवहुत्वमाह—

उवसन्तजिणा थोवा संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।

सुहुमनियट्टनियट्टी तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥८४॥

जोगिअपमत्तइयरं संखगुणा देससासणा मिस्सा ।

अविरयअजोगिमिच्छा असंखचउरो दुवेऽनन्ता ॥८५॥

(यशो०) उपशान्तजिना = उपशान्तमोहाः क्षीणमोहापेक्षया स्तोकाः । तथा ह्यन्तर्मुहूर्त्त-  
प्रमाणोपशमश्रेणिस्तस्यां च कदाचित्को-ऽपि न प्रविशति, तदन्तरकालस्योत्कर्षतो वर्षपृथक्त्व-  
मानस्योक्तत्वात्, यदा तु प्रविशति तदैको द्वौ वा यावदुत्कर्षत एकसमये चतुःपञ्चाशत् ।  
यथैकस्मिन्समयेषु युगपदुत्कृष्टतश्चतुःपञ्चाशत् प्रविशति, तथा परा-ऽपरेष्वपि समयेष्विति नाना-  
समयप्रविष्टा अपि पञ्चदशस्वपि कर्मभूमिषु उत्कृष्टतः संख्याता एव भवन्ति । अथ कथमेवं यावतै-  
कस्मिन्नप्यन्तर्मुहूर्त्ते समया असंख्याताः, तत्र यदि प्रतिसमयमेकैकोपि प्रविशति, तथाऽप्यन्तर्मुहूर्त्त-  
कालेऽसंख्याताः, किमुत चतुःपञ्चाशत्प्रवेशे । सत्यम्, किन्तु न प्रतिसमयगुणोपशमश्रेण्यां प्रवि-  
शन्ति, केषुचिदेव समयेषु तत्प्रवेशस्य समयेऽभ्यनुज्ञानात् । किञ्च गर्भजमनुष्या अपि संख्याताः  
सम्भवन्ति, किं पुनश्चारिषिणः । क्षीणमोहजिनाः पुनः संख्यातगुणाः, पूर्वैभ्य इति गम्यम्, एवमुत्त-  
रत्रापि । तत्र क्षपकश्रेणिरप्यन्तर्मुहूर्त्तमाना, तस्यां च को-ऽपि कदाचिन्नाधिरोहति; । तदन्तरालस्यो-  
त्कृष्टतः षण्मासमानत्वात् । यदा त्वधिरोहति तदैको द्वौ वा यावदुत्कृष्टत एकसमयेऽष्टोत्तरं शतम् ।  
एवं च यथैकस्मिन्समयेऽष्टोत्तरं शतं तामधिरोहति, तथा-ऽपरेष्वपीति नानासमये-ऽधिरूढा उत्कृष्टतः  
शतपृथक्त्वमानाः क्षीणमोहाः प्राप्यन्ते । क्षपकश्रेणिमपि न प्रतिसमयं अधिरोहन्ति, किन्तु केषुचि-  
देव समयेष्विति पूर्ववत् ना-ऽसंख्यात्वमाशङ्कनीयम् । यदत्रोपशान्तमोहेभ्यः क्षीणमोहानां  
संख्यातगुणत्वमुक्तम्, तद्यदैते द्वयेऽप्युत्कृष्टपदे लभ्यन्ते तदा द्रष्टव्यम् । अन्यथा कदाचित्क्षीण-  
मोहाः स्तोका । उपशान्तमोहास्तु बहव इत्यपि भवति । सूक्ष्मसंपरायनिवृत्तिनिवृत्तिवादा-  
स्त्रयो-ऽपि प्रत्येकं पूर्वैभ्यो विशेषाधिकाः, स्वस्थाने तु तुभ्याः । एते हि त्रयो-ऽपि



क्षपक्रोपशमकमेदार्या द्वैधं भवति तत्र ये क्षपकास्ते क्षीणमोहवत् पूर्वोक्तरीत्या शतपृथक्त्वमानाः । ये चोपशमकास्ते प्रागुक्तान्यायेनोपशान्तवत्संख्याताः । तथा योगिनः=सयोगिकेवलिनोऽप्रमत्ता इतरे च=प्रमत्ताः सूक्ष्मसम्परायादिभ्यः संख्यातगुणाः । अत्र सयोगिभ्यः परेणाऽप्रमत्तानामप्रमत्तेभ्यश्च प्रमत्तानामुपादानात्सयोगिभ्योऽप्रमत्तास्तेभ्यश्च प्रमत्ताः संख्यातगुणा इत्यनुक्तमपि दृश्यम् । अयं च न्याय उत्तरत्रापि वाच्यः । तत्र सयोगित्वं प्रतिपद्यमाना जघन्यत एकादया उत्कृष्टतोऽष्टोत्तरं शतम् । पूर्वप्रतिपन्ना जघन्यत उत्कृष्टतश्च कोटिपृथक्त्वमानाः । अप्रमत्तप्रमत्तास्तु प्रत्येकं सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहार-विशुद्धिकसंयमवस्त्वेन त्रिधा । तत्र सामायिकं प्रतिपद्यमाना जघन्यत एकादय उत्कृष्टतः सहस्र-पृथक्त्वमानाः । पूर्वप्रतिपन्ना जघन्यत उत्कृष्टतश्च कोटिसहस्रपृथक्त्वमानाः । तच्चात्र द्वित्रादिकोटीरूपमेवाऽवगम्यते, न तु नवकोटीरूपम्, सर्वसंयतानामेव कोटीसहस्रपृथक्त्वस्य श्रूय-माणत्वात् । च्छेदोपस्थापनीयवन्तश्च यदा भवन्ति तदा तत्प्रतिपद्यमाना जघन्यत एकादय उत्कृष्टतः शतपृथक्त्वमानाः । पूर्वप्रतिपन्ना उत्कृष्टतः कोटीशतपृथक्त्वमानाः । जघन्यतो प्येतावन्त एव भगवत्याममिहिताः । एतच्च सम्यग्भावगम्यते । यतो दुषमान्ते भरतादिषु दशसु क्षेत्रेषु प्रत्येकं च्छेदोपस्थापनीयवत्प्रमत्ता-ऽप्रमत्तद्वयस्य भावाद् विंशतिरेव श्रूयत इत्येके । प्रथमतीर्थकरतीर्थकालापेक्षमिदमित्यपरे । पारिहारिकविशुद्धिकवन्तो यदा स्युस्तदा तत्प्रतिप-द्यमाना जघन्यत एकादय उत्कृष्टतः शतपृथक्त्वमानाः । पूर्वप्रतिपन्ना जघन्यत एकादय उत्कृष्टतः सहस्रपृथक्त्वमाना इति । यद्यप्येषामपि समानतैव तथाप्यप्रमत्तकालान्तर्मुहूर्त्तमात्रत्व साधर्म्येऽपि प्रमत्तकालस्य बहुत्वादप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ताः संख्यातगुणा उक्ताः । अप्रमत्तान्तर्मुहूर्त्ता-ऽपेक्षया हि प्रमत्तान्तर्मुहूर्त्तानि महान्तीति । तथा प्रमत्तेभ्यो देशविरतास्तेभ्यः सास्वादन-सम्यग्दृशस्तेभ्यो मिश्रदृशस्तेभ्योऽप्यविरतसम्यग्दृश इति चत्वारोऽसंख्याताः । अविरतेभ्योऽयो-गिकेवलिनस्तेभ्यश्च मिथ्यादृश इति द्वयेऽनन्ताः । ततः प्रमत्तेभ्यो देशविरता असंख्याताः, तिर्य-क्प्रक्षेपात् । देशविरता हि नरास्तिर्यञ्चश्च । तत्र तिर्यञ्चोऽसंख्याताः । सास्वादनारतु कदाचिन्न भवन्ति, यदा तु भवन्ति, तदोत्कृष्टतो गतिचतुष्कलसंभवित्वेन देशविरतेभ्योऽसंख्याताः । मिश्रा अपि कदाचिन्न भवन्ति, यदा तु भवन्ति, तदोत्कर्षतः सास्वादनेभ्योऽसंख्याताः स्युः । सास्वादनाद्वाया उत्कृष्टतोऽपि पडावलिकामानत्वेनाल्पकालिकत्वान्मिश्राद्वायास्तु जघन्तोऽ-प्यन्तर्मुहूर्त्तमानत्वेन बहुकालमावित्वात् । अविरतसम्यग्दृशरतु सर्वदैव सर्वास्वपि गतिषु प्राप्यन्त इति मिश्रदृष्टिभ्योऽऽसंख्याताः । अयोगिनस्तु भवस्थाः सिद्धाश्च तत्र सिद्धानामानन्त्यादविरते-भ्योऽनन्तगुणाः । मिथ्यादृष्ट्यपेक्षयाऽनन्ता अपि सिद्धा अनन्तभाग एव वर्तन्त इत्य-ऽयोगिभ्यो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । आनन्त्यं चामीयामनन्तोत्सर्पिव्यवसर्पिणीषु

यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणं मन्तव्यम् । इत्युक्तं गुणस्थानेषु जीवस्थानाद्यभिधेयपददशकम् ।  
एवं च यथाप्रतिज्ञातं मूला-ऽदर्शितमप्यभिधेयजातमभिहितम् ॥८४-८५॥

संप्रति श्रोतृणामाशीर्वचनव्याजेन प्रकरणार्थसम्पूर्णतामाविष्कर्तुं माह—

जिणवल्लहोवणीयं जिणवयणामयसमुद्भविंदुमिमं ।

हियकंखिणो बुहजणा निसुणंतु गुणंतु जाणंतु ॥८६॥

(यज्ञो०) जिन एव = रागादिजैतैवोपचाराज्जिनाज्ञैश्च वा जिनः स वल्लभो यस्येति सान्त्व-  
यजिनवल्लमामिधानः प्रकरणकारस्तेनोपनीत = मितस्ततो विकीर्णानामर्थानामेकत्र मीलेनेन  
सामीप्येन प्रापितं जिनवचनमेव जरामरणादिवक्लेशपरम्परापहारकारितया परैरलब्धमध्यतयाऽमृत-  
समुद्रस्य विन्दुरतिस्तोक्तवसाधर्म्येण इममिति यदा प्रकरणवशाल्लब्धस्य प्रकरणस्येदमिति  
(इ)दमा परामर्शस्तदा प्रकरणस्य जिनवचनामृतसमुद्रविन्दुत्वेन निरूपणम् । यदा त्वतिशयोक्ति-  
मङ्ग्या-ऽस्य प्रकरणस्य जिनवचनामृतसमुद्रविन्दुत्वेनाऽत्यन्ता-ऽभेदाध्यवसायस्तदेममिति  
जिनवचनामृतसमुद्रविन्दोर्विशेषणम् । अनेन चागममूलता-ऽऽविर्भावनपरेणास्य प्रकरणस्य विशेषे-  
णोपादेयता प्रतिपादिता । हितकाङ्क्षण इति मोक्षामिलापिणो मोक्ष एव हि प्राणिनां  
परमार्थतो हितम् । हितकाङ्क्षणश्च तत्त्वज्ञानशून्या अपि स्वबुद्ध्या भवन्तीत्याह-  
बुधजनाः=तत्त्वविदः नितरामुपविधव्यावधानपरतया श्रृण्वन्तु । परावर्त्तनं च पठनपूर्वकमिति  
पठन्त्विति सामर्थ्याद् गम्यते । तथा ज्ञानं तु संशयविपर्ययपराकरणद्वारेण निश्चिन्वन्तु ।  
इह च प्रकरणमिदमीदृशमिति प्रवादाधिकसत्कौतुकास्तत्प्रथमं श्रृण्वन्ति । श्रवणे  
चा-ऽवधारितप्रकरणस्य परमोपादेयत्वात्पठित्वा परावर्त्तयन्ति । परावर्त्तेन प्रसादेन च सम्यग्  
जानन्तीति श्रवणादीनामेवं क्रमः ॥८६॥

॥ इत्यागमिकवस्तुविचारसारप्रकरणं धिवरणम् ॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

× शब्दैककारणतया-ऽद्भुतवैभवेन, सद्भावमूषिततया ध्रुवतानुबुद्ध्या ।

पुष्पात्यखंडमिह यद्गमनेन संख्यं, चान्द्रं कुलं तदधनावविगीतमस्ति ॥१॥

× तत्रोदितः प्रतिदिनं स्मरमत्सरादि-दैतेय निर्दयधिमर्दनकेलिलोलः ।

विश्वेऽप्यधृष्यमहिमा सवितेव स्ररिः, श्रीशीलमद्र इति विश्रुतनामधेयः ॥२॥

△ बहुपरिमवातिदीना येन स्वात्मनि गुणाः सवहुमानं ।

न्यस्ताः सम्प्रतिकृतयुगलुनिविषयविवाददलनाय ॥३॥

× असंवल्लका । △ आर्या ।



इति

श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवप्रणीते

श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे  
द्वितीया श्रीयशोभद्रसूक्तिका टीका समाप्ता



श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे  
तृतीया श्रीयशोभद्रसूक्तिका टीका समाप्ता

इति  
श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवप्रणीते



॥ ॐ ह्रीं श्रीं अहं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥  
 न्यायाम्मोनिधिश्रीमद् विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥  
 सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यत्रिजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥  
 कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यत्रिजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवप्रणीतः

## षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ।

( अपरनाम—आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरणम् )

“श्रीमद्रामदेवगणिविवृतविवरणेन विभूषितः ॥”

ॐ नमो जिनागमाय ॥

॥ नमो जिनागमाय ॥

सिरिपासजिणं नमिउं, वत्थुवियारस्स विवरणं भणिमो ।

इह आयसुमरणत्थं, गुरुवएसा समासेणं ॥१॥

तत्थ ताव पगरणकारो इद्वदेवयानमोक्कारपुब्बं अभिधेयं पयोजणं च गाहादुरेण भरेइ-

निच्छिन्नमोहपासं पसरियविमलोरुकेवलपयासं ।

पणयजणपूरियासं पयओ पणमित्तु जिणपासं ॥ १ ॥

वोच्छामि जीवमग्गणगुणठाणुवओगजोगलेसाई ।

किंचि सुगुरुवएसा सन्नाणसुद्धानहेउत्ति ॥ २ ॥

(राम०) निच्छिन्नो=तोद्धिओ मोहलक्ष्णो पासो=बंधणं जेण तं, पसरिओ=वित्थरिओ विमलो=निम्मलो उरू=वृहत्तरो केवलनाणस्स पयासो=अवलोयणं जस्स तं, पणयजणणं=स्ता-  
 वकलोकानां पूरिया=पयच्छिया आसा=इहल्लोणे परलोए य जा कावि वंछिया जेण तं,  
 एवंविहविसेसणजुत्तं 'पयओ' उज्जमपरो पासजिणं 'पणमित्तु' नमिय वोच्छामि जीव-  
 द्वाणाइ । तत्थ जीवद्वाणोसु मग्गणद्वाणोसु गुणद्वाणोसु जे उवओगा जोगा लेसा, आइसहाओ  
 जीवद्वाणोसु गुणद्वाणाणि मूलपयडीविसओ बंधो उदओ उदीरणा सत्ता य, तहा मग्गणद्वाणोसु  
 जीवद्वाणगुणद्वाणाणि अप्पबहुत्तं च; तहा गुणद्वाणोसु जीवद्वाणाणि बंधहेयवो मूलपयडीसु



अथ  
श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवप्रणीते  
श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे  
चतुर्थी श्रीरामदेवगणिविहिता टीका प्रारभ्यते

(राम०) सन्निपज्जत्तगस्स तिन्नि-मिच्छद्दिट्ठी सासायणो अविरयसम्मद्दिट्ठी य । सासायण-  
स्स पुव्वुत्तो विही । अविरओ कहं ? अपरिवडियसम्मत्तो कोइ एएसु उववज्जइ ति काउं ।  
सन्निपज्जत्तयस्स सव्वे गुणट्ठाणा, जओ सव्वेसिं गुणट्ठाणाणं भायणोत्ति 'मिच्छं संसेसु  
सत्तसु वि' सुहुमअपज्जत्तपज्जत्तगस्स वायरएगिदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपज्ज-  
त्तगेसु एगो मिच्छत्तगुणो । सुहुमअपज्जत्तगस्स 'सासायणो कहं न होइ ? 'सासायणो जीवो  
जओ तेषु न उववज्जइ ति काउं ॥५॥

इयाणि जोगमग्गणा, ते य पन्नरस, तं जहा-सच्चं मणं १, मोसं मणं २, मीसं मणं ३,  
अमच्चमोसं मणं ४, सच्चभासा १, असच्चभासा २, मीसभासा ३, असच्चमोसा भासा ४,  
ओरालियं १, ओरालियमीसं २, वेउव्वियं १, वेउव्वियमीसं २, आहारगं १, आहारगमीसं २,  
कम्मणं १, एवं जोगा १५ ।

एत्थ पमंगागयं भासाचउकस्स विवरणमाह—

“एगा सहावसखा मोसा दुइया तहेव नायव्वा । तइया सखा मोसा, अपच्चमोसा चउत्थी उ ॥२॥  
जणवयसम्मयठवणा नामे रुवे पडुष सचचे य । वषहारमावजोणे, दसमे ओदम्मसचचे य ॥३॥  
जणवयसच्चं एत्थं देसियमामाएँ जत्थ जं रुढं । जह कुं कणे पसिहो पयसहो पाणिण चेव ॥४॥  
नामरसकुवळउपलपट्टमाणं पंकसंभवम्मि समे । तामरसमेव गोवाइमम्मयं सम्मया एसा ॥५॥  
अक्खरमुह माईहिं मासकाहावणे सहस्समिणं । जं ठाविज्जइ जियकप्पणाएँ तं ठापणे सच्चं ॥६॥  
अत्थापक्खो पक्खो अबुद्धिठकारी वि कुलघपाईणं । तव्वठणो ति मन्नइ, नामेणऽभिहःणसच्चं तं ॥७॥  
अगुणरण्हा वेसं, कवढेण व दंसणाइरुवं वा । तग्गुणहीणो विरयइ मन्नइ त रुवसच्चं ति ॥८॥  
हीण हिएसु दुइएण वत्थुणा लहुय-गरुयमावेण । निच्छिज्जइ ओ अत्थो, पडुक्क सच्चं तयं होइ ॥९॥  
गिरिगतणाइवाहे. वि पच्चओ ख्खामिओ ति वषहारे । भायणगलणमगुदरा क.प्रा नीरो मुरवमा य । १०॥  
पंचन्ह वि वभाणं, विज्जंते संभवम्मि तहेहे । सेया बलाहिया एत्थ भावमच्चं निपयत्वं ॥११॥  
दंढाईणं जोगा, दंढी तं होइ जोगसच्चं ति । उवमामरुचं तु मवे समुइतुल्लं तळायं ति ॥१२॥  
एसा सहावसक्खा दस भेया मासओ अबोसा य । एत्तो एगंतमुसं, तपरिहारट्टया वेमि ॥१३॥  
कोहे माणे माया, लोभे पेज्जे तहेव बोसे य । हासमए अक्खाइय उवघाए निस्सिया दसमा ॥१४॥  
कोहामिभूयचित्तो, असंमवावणवकुं जिअऊणं वा । पक्कायंतो अन्नं कयाइ सचचे धि मोसे व ॥१५॥  
माणम्मि अणणुभूयं ईसरियं अत्ताणो पयासेइ । मायाए सगडाई, मुहपक्खेवा नयणामोहो ॥१६॥  
कूउपमाणसकेयजोगवाणिज्जओ उ लोभगया । पेम्मि वि वासोहं, अत्यविहूणं मुसं होइ ॥१७॥  
जं पुण अवन्नवाओ, तित्थगराण वि पओसियं एसा । नम्मेण हासमोसा चोक्खेएण भयजणया ॥१८॥  
संभवरहियं मासइ, कहासु अक्खाइ आगया होइ । उवघायनिस्सिया तह, अन्नक्खारुणुअभा जाओ ॥१९॥  
एत्तो उ तइयभासा, सच्चामोसा ति दसविहा होइ । सम्मं वियारिऊणं, परिहरिव्वा विवेईहिं ॥२०॥  
उपरत्तिविगमवमया जीवाजीवुमयणंतयपरित्ता । अखा अखटा तह संगहमेत्तेण दोढव्वा ॥२१॥  
अम्ममरणोभयाणं, संखा बालाइयाण जा नगरे । हीणाहिगा व तत्थ उ विसंबयती उ सच्चमुपा ॥२२॥

१ 'सासणो' इत्यपि । २ 'ससासणो' इत्यपि । ३ 'कम्मणं' इत्यपि । ४ 'चउत्था' इत्यपि ।  
५ 'अगुकर' इत्यपि ।

बंधाद् अप्यबहुत्तं च मणामि चि संबंधो 'किंचि' चि सुयसागराओ विंदुमेत्तं 'उद्धरिय,  
सुगुरूवएसा न समईए विगप्पियं किं निमित्तं 'सन्नाणसज्झाणहेउ चि' चि तत्थ नाणं  
वत्थुगओ बोहो जीवाइपयत्येसु ज्झाणं असुहमणवयणकायनिरोहो, जओ वुत्तं—

“भंगियसुयं गुणंतो, वट्टइ तिचिहे वि ज्ञाणम्मि ॥

अत्थोहाए तस्सेव मणो संभासणेण पुण वयणं । होइ चिय सुनिरुद्धो तल्लिहणाईहि पुण काओ ॥”

सोहणं जं नाणज्झाणं तस्स हेऊ तप्पओयणं जेण तं पयट्टइ चि ॥१-२॥

पुत्तं “जीवट्टाणाईसु गुणट्टाणाई वोच्छामि” चि वुत्तं, अओ पढमं ताव जीवट्टाणाणि  
सरूवओ मणोइ—

इह सुहुमबायरेगिंदिवितिचउअसन्निसन्निपंचिंदी ।

अपजत्तापज्जत्ता कमेण चउदस जियट्टाणा ॥ ३ ॥

(राम०) सुहुमा एगिंदिया बायरा एगिंदिया वेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया असन्नि-  
पंचिंदिया सन्निपंचिंदिया । एवं सत्त, सत्त वि दुविहा अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य एए  
चउदस जीवट्टाणा ॥३॥

एएसु गुणट्टाणाईणं कमेण मग्गणा कीरइ । तत्थ पढमं गुणट्टाणमग्गणा, जस्स जत्तिया  
गुणट्टाणा तं भन्ति—

सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाइ ता भणिमो ।

पढमगुणा दो बायरवितिचउरअसन्निअपजत्ते ॥ ४ ॥

(राम०) इह पणणे जे केइ अत्था मणियव्वा तेसिं सव्वेसिं जीवा मूलं, तेण “सव्वभणि-  
यव्वमूलेसु” चि वुच्चइ । अतो तेसु गुणठाणाईणि ताव भन्ति । आइसहाओ बोगा उवओगा  
जेसा, बंधो उदओ उदीरणा सत्ता य मूलपयहीणं । पढमगुणा दो-मिच्छत्तं सासायणं च, बायर-  
एगिंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियअसन्निअपज्जत्ते<sup>३</sup>सु एएसु पंचसु दो गुणट्टाणा लब्भंति ।  
अपज्जत्तगाण सासायणो कइं ? भइइ,—सन्निपंचिंदिया पुत्थि एएसु बद्धाउया अंते उवसमसम्मत्तं  
उप्पाइंति, अंते य नियमा वमेति, तेसिं कोइ सासायणभावेण एएसु उववज्जइ, तओ किंचि-  
कालं सासायणभावो लब्भति ॥४॥

सन्निअपजत्ते मिच्छदिट्ठिसासाणअविरया तिन्नि ।

सव्वे सन्निपजत्ते मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि ॥ ५ ॥

१. 'उद्धरियं सुगुरूवएसाओ' इत्यपि । २- स्वमत्या । ३ “सु पंच०” इति “सु पञ्चसु एए दो” इति वा  
पाठः । ४ “सासणभावो” इति वा ।

(राम०) सन्निपज्जत्तगस्स तिन्नि-मिच्छद्दिही सासायणो अविरयसम्महिद्धी य । सामायण-  
स्म पुब्बुत्तो विही । अविरओ क्हं ? अपरिवडियसम्मत्तो कोह एएसु उववज्जइ चि काउं ।  
सन्निपज्जत्तयस्स सव्वे गुणट्टाणा, जओ सव्वेसिं गुणट्टाणाणं भायणोत्ति 'मिच्छं ससेसु  
सत्तसु वि' सुहुमअपज्जत्तपज्जत्तगस्स वायरएगिदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपज्ज-  
त्तगेषु एगो मिच्छत्तगुणो । सुहुमअपज्जत्तगस्स 'सासायणो क्हं न होइ ? 'सामायणो जीवो  
जओ तेषु न उववज्जइ चि काउं ॥५॥

इयाणिं जोगमग्गणा, ते य पन्नरस, तं जहा-सच्चं मणं १, मोसं मणं २, मीसं मणं ३,  
असच्चमोसं मणं ४, मच्चभासा १, असच्चभासा २, मीसभासा ३, असच्चमोसा भासा ४,  
ओरालियं १, ओरालियमीसं २, वेउव्वियं १, वेउव्वियमीसं २, आहारगं १, आहारगमीसं २,  
कम्मणं १, एवं जोगा १५ ।

एत्थ पमंगागयं भासाचउकस्स विवरणमाह—

"एगा सहावसळा मोसा दुइया तहेव नायक्या । तइया सच्चामोसा, असच्चमोसा 'चउत्था' ३॥२॥  
जणययसम्मयठवणा नामे रूवे पडुष सचचे य । षवहारभावजोगे, दसमे ओइम्मसचचे य ॥३॥  
जणययसच्चं एत्थं देसियभामाएँ जत्थ जं रुढं । जह कुंक्रणे पसिहो पयसहो पाणिग चेव ॥४॥  
तामरसकुवल उ' लपउमाणं पंकसंभवम्मि समे । तामरसमेव गोवाइसम्मयं सम्मया एसा ॥५॥  
अक्खरसुइ माईहिं मासकाहावणे सहस्समिणं । जं ठाविज्जइ जियकप्पणाएँ तं ठापणे मरुचं ॥६॥  
कत्थायकलो पकसो अवुद्धिदकारी वि कुलवणाईणं । तच्चदणो चि मजइ, नामेणऽभिहःणसच्चं तं ॥७॥  
'अणुगरणट्ठा वेसं, कषडेण व वंसपाइरूवं वा । तग्गुणाहीणो विरयइ मन्नइ तं रूवसच्चं ति ॥८॥  
हीण.हिणेषु दुइएण वत्थुणा लहुय-गरुयभावेण । निच्छिज्जइ ओ अत्थो, पडुक्क सच्चं तयं होइ ॥९॥  
गिरिगयतणाइवाहे. वि पव्वओ आमिओ चि षवहारे । भायणागलणामणुदरा व.वा नीरो सुरन्मा य । १०॥  
पंचन्ह वि वक्काणं, विज्जंते संमधम्मि तहं हे । सेया वलाहिया एत्थ मात्रसच्चं निदयव्वं ॥११॥  
इंहाईणं जोगा, दंछी तं होइ जोगसच्चं ति । उवमामच्चं तु भवे समुहलुल्लं तलायं ति ॥१२॥  
एमा सहावसक्का दस मेया मासओ अवोसा य । एत्तो एगंतमुसं, तपरिहारट्टया वेमि ॥१३॥  
काहे माणे माया, लोभे पेज्जे तहेव बोसे य । हासभए अक्खाइय उवघाए निस्सिया दसमा ॥१४॥  
कोहामिभूयचित्तो, असंमवावणवयु'ज्जइणं वा । पक्कायंतो अन्नं कयाइ सचचे वि मोसे व ॥१५॥  
मायम्मि अणुभूय ईसरिचं अत्ताणो पयासेइ । मायाए सगडाई, सुहपक्खेवा नयणमोहो ॥१६॥  
कुउपमाणसंकेयजोगवापिउज्जओ उ लोभगया । पेम्मि वि दासोहं, अत्थविइणं मुसं होइ ॥१७॥  
जं पुण अन्नवधाओ.वित्थगराण वि पओसिचं एसा । नम्मेण हासओसा चोक्खेएण भयजणया ॥१८॥  
संमवरहियं मासइ, कइसु अक्खाइ भागया होइ । उववायनिस्सिया तह, अन्नकखाणुउभवा जाओ ॥१९॥  
एत्तो उ वइयभासा, सच्चामोसा चि दसविहा होइ । सम्मं वियारिउणं, परिहरिवन्वा विवेईहिं ॥२०॥  
उपसिधिमठमया जीवाजीवुभयणंतयपरित्ता । अद्धा अद्धा तह.संगहमेत्तेण बोद्धया ॥२१॥  
अम्ममरणोभयाणं,संखा बालाइयाण जा नगरे । हीणाहिगा व तत्थ उ विसंवरयती उ सच्चमुमा ॥२२॥

१ "सासणो" इत्यपि । २ "सासायणो" इत्यपि । ३ "कम्मणं" इत्यपि । ४ "चउत्था" इत्यपि ।  
५ "अणुकर" इत्यपि ।

बंधाद् अप्यब्रह्मं च मणामि त्ति संबधो 'किंचि' त्ति सुयसागराओ विंदुमैर्त्त 'उद्धरिय,  
सुगुरुवपसा न 'समईए विगर्पियं किं निमित्तं 'सन्नाणसज्झाणहेउ त्ति' त्ति तत्थ नाणं  
वत्थुगओ वोहो जीवाइपयत्थेसु ज्झाणं असुहमणवयणकायनिरोहो, जओ वुत्तं—

“भंगियसुयं गुणंतो, वट्टह निविहे वि ज्ञाणम्मि ॥

अत्थोहाए तस्सेव मणो संमासणेण पुण वयणं । होइ भिय सुनिरुद्धो तल्लिहणाईहि पुण काओ ॥”

सोहणं जं नाणज्झाणं तस्स हेऊ तप्पओयणं जेण तं पयट्टइ त्ति ॥१-२॥

पुत्तं “जीवट्ठाणाईसु गुणट्ठाणाई वोच्छामि” त्ति वुत्तं, अओ पढमं ताव जीवट्ठाणाणि  
सरूवओ मणेइ—

इह सुहुमवायरैगिंदिवितिचउअसन्निपञ्चिदी ।

अपजत्तापज्जत्ता कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥ ३ ॥

(राम०) सुहुमा एगिंदिया वायरा एगिंदिया वेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया असन्नि-  
पञ्चिदिया सन्निपञ्चिदिया । एवं सत्त, सत्त वि दुविहा अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य एए  
चउदस जीवट्ठाणा ॥३॥

एएसु गुणट्ठाणाईणं कमेण मग्गणा कीरइ । तत्थ पढमं गुणट्ठाणमग्गणा, जस्स जत्तिया  
गुणट्ठाणा तं मन्ति—

सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाइ ता भणिमो ।

पढमगुणा दो वायरवितिचउरअसन्निअपजत्ते ॥ ४ ॥

(राम०) इह पगणे जे केइ अत्था मणियव्वा तेसिं सव्वेसिं जीवा मूलं, तेण “सव्वभणि-  
यव्वमूलेसु” त्ति वुच्चइ । अतो तेसु गुणठाणाईणि ताव मन्ति । आइसदाओ जोगा उवओगा  
ल्लेसा, बंधो उदओ उदीरणा सत्ता य मूलपयडीणं । पढमगुणा दो-मिच्छत्तं सासायणं च, वायर-  
एगिंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियअसन्निअपज्जत्तगे”सु एएसु पंचसु दो गुणट्ठाणा लब्धंति ।  
अपज्जत्तगाण सासायणो कइं ? मरुइ,—सन्निपञ्चिदिया पुत्तं एएसु बद्धाउया अंते उवसमसम्मत्तं  
उप्पाइंति, अंते य नियमा वमेत्ति, तेसिं कोइ सासायणभावेण एएसु उववज्जइ, तओ किंचि-  
कालं सासायणभावो लब्धंति ॥४॥

सन्निअपजत्ते मिच्छदिट्ठिसासाणअविरया तिन्नि ।

सव्वे सन्निपजत्ते मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि ॥ ५ ॥

१. 'उद्धरियं सुगुरुवपसाओ' इत्यपि । २. स्वमत्या । ३. "सु पंच०" इति "सु पंचसु एए दो" इति वा  
पाठः । ४. "सासणभावो" इति वा ।

(राम०) सन्निपज्जत्तगस्स तिन्नि-मिच्छदिट्ठी सासायणो अविरयसम्मदिट्ठी य । सामायण-  
स्स पुब्बुत्तो विही । अविरओ क्हं ? अपरिवडियसम्मत्तो कोइ एएसु उववज्जइ चि काउं ।  
सन्निपज्जत्तयस्स सव्वे गुणट्ठाणा, जओ सव्वेसिं गुणट्ठाणाणं भायणोत्ति 'मिच्छं संसंस्तु  
सत्तस्तु वि' सुहुमअपज्जत्तपज्जत्तगस्स वायरएगिंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउगिंदिय अमन्निपज्ज-  
त्तगेषु एगो मिच्छत्तगुणो । सुहुमअपज्जत्तगस्स 'सासायणो क्हं न होइ ? 'सामायणो जीवो  
जओ तेषु न उववज्जइ चि काउं ॥५॥

इयाणि जोगमग्गणा, ते य पन्नरस, तं जहा-सच्चं मणं १, मोसं मणं २, मीसं मणं ३,  
अमच्चमोसं मणं ४, सच्चभासा १, असच्चभासा २, मीसभासा ३, असच्चमोसा भासा ४,  
ओरालियं १, ओरालियमीसं २, वेउच्चियं १, वेउच्चियमीसं २, आहारगं १, आहारगमीसं २,  
कम्मणं १, एवं जोगा १५ ।

एत्थ पमंगागयं भासाचउक्कस्स विवरणमाह—

"एगा सहावसक्खा मोसा दुइया तहेव नायत्त्वा । तइया सक्खामोसा, अमच्चमोसा चउत्थी उ ॥२॥  
जणवयसम्मयठवणा नामे रूवे पडुक्ख सक्खे य । ववहारभावजोगे, दसमे ओवम्मसक्खे य ॥३॥  
जणवयसक्खं एत्थं देसियमामाए जइय जं रूढं । जइ कुंकणे पसिहो पयसहो पाणिण चैव ॥४॥  
तामरसक्खवलउलपउमाणं पंकसंभवम्मि समे । तामरसमेव गोवाइसम्मयं सम्मया एसा ॥५॥  
अक्खरमुह माईहिं मासकाहावणे सहस्समिण । जं ठाविज्जइ जियकप्पणाए तं ठापणे मक्खं ॥६॥  
अत्थापक्खो पक्खो अवुद्धिठकारी विक्खलघणाईणं । तव्वढणो ति मन्नइ, नामेणउभिहाणसक्खं तं ॥७॥  
अरुणगरणट्ठा वेसं, कषडेण व वंसणाइरूवं वा । तग्गुणहीणो विरयइ मन्नइ त रूवसक्खं ति ॥८॥  
हीण.हिंएसु दुइएण वत्थुणा लहुय-गरुयभावेण । निच्छिज्जइ जो अत्थो, पडुक्ख सक्खं तयं होइ ॥९॥  
गिरिगयतणाइदाहे. विपव्वओ च्छामिओ ति वषहारे । भायणगलणमरुणुदरा क.न्ना नीरो मुरव्वा य । १०॥  
पंचन्ह वि वझाणं, विज्जंतो संभवम्मि तहं हे । सेया बलाहिया एत्थ भावमक्खं निएयव्वं ॥११॥  
दंडाईणं जोगा, दड्डी तं होइ जोगसक्खं ति । उववमामक्खं तु मवे ससुइतुल्लं तलायं ति ॥१२॥  
एमा सहावसक्खा दस भेया मासओ अदोसा य । एत्तो एगंतमुसं, तएपरिहारट्ठया वेमि ॥१३॥  
काहे माणे माया, लोभे पेज्जे तहेव दोसे य । हासभए अक्ख्खाइय उवघाए निस्सिया दसमा ॥१४॥  
कोहामिभूयचित्तो, असंमवावणवधुच्चिउणं वा । पक्खायंतो अन्नं कयाइ सक्खे वि मोसे व ॥१५॥  
माणम्मि अणणुभूयं ईसरिं अत्ताणो पयासेइ । मायाए सगडाई; सुहपक्खेया नयणमोहो ॥१६॥  
कूउपमाणसंकेयजोगवापिज्जओ उ लोमगया । पेम्मि वि दासोहं, अत्थविहूणं मुसं होइ ॥१७॥  
जं पुण अघन्नवाओ, तित्थगराण वि पओसिं एसा । नम्मेण हासमोसा चोरुच्चैएण भयजणया ॥१८॥  
संमवरहियं मासइ, कहस्सु अक्ख्खाइ भागया होइ । उवघायनिस्सिया तह, अम्मक्खारुणुभवा जाओ ॥१९॥  
एत्तो उ तएयभासा, सक्खामोसा ति दसविहा होइ । सम्मं वियारिउणं, परिहरियव्वा विवेईहिं ॥२०॥  
उपनिविगमवमया जीवाजीवुमयणंतयपरित्ता । अद्धा अद्धा तह. संगहमेत्तेण षोद्धउवा ॥२१॥  
अम्ममरणोमयाणं, संक्खा बालाइयाण जा नगरे । हीणाहिगा व तत्थ उ विसंवयती उ सक्खमुमा ॥२२॥

१ 'सासणो' इत्यपि । २ 'ससासणो' इत्यपि । ३ 'कम्मणं' इत्यपि । ४ 'चउत्था' इत्यपि ।  
५ 'अरुणर' इत्यपि ।

एस गुरुजीवरासी संखाई दंसणेण थोषाणं । तत्थ मयाणं मावा जीवविमिस्ता इमा नेया ॥२३॥  
 एत्येव मया बहवो थोवा जीवति सव्वमयभणणा । मिस्ता इमा अजीवेहि होइ मासा उसच्चमुसा ॥२४॥  
 सव्वं मयममयं वा, उमयं नियमेण वागरंतस्स । जं तत्थ विसंवइयं, तमुमयमिस्सं निपयव्वं ॥२५॥  
 अण्णेण पंडुपत्तेण वा वि मीसं तु मूलगाईयं । दट्ठुं अणंतभणणे साहारणमीसिया होइ ॥२६॥  
 तं चेतुकख्यमेत्तं मिताणममिताणमेगरासिगयं । सव्व परितामेयं, भणओ मिस्ता परित्तेण ॥२७॥  
 तूरंतो अन्नजणं, विज्जंते चेव विवसकालम्मि । जाया निसा पयट्टसु वयओ अट्ठाए मिस्सेयं ॥२८॥  
 पढमम्मि चेव जामे, रयणिए वासरस्स वा वेइ । जायं इयं निसीहं, मज्झन्हो वा वि अट्ठद्धा ॥२९॥  
 इन्ही असच्चमासा, तिण्हं पीमाण लक्खणा जोगा । नाअण विगयदीसं, तिभासगातो पवंजंति ॥३०॥  
 आमंतणि आणवणी, जायणि तह पुच्छणी य पन्नवणी । पच्चक्खाणी मासा, मासा इच्छाणुलोमा य ॥३१॥  
 अणमिग्गहिया मासा, मासा य अमिग्गहम्मि बोधव्वा । संसयकरणी मासा, वोगइअवोगडा चेव ॥३२॥  
 जीए पवित्तिनिवित्तीउ नेय जायति भासियाए वि । संबोहमेत्ताकरणी आमंतणिया भव मासा ॥३३॥  
 आणवणी कज्जनिओयणाए तह मगणेण जायणिया । संदेइविगमहेत्तं, चोयणओ पुच्छणी होइ ॥३४॥  
 पाणिअहोओं नियत्ता, दीहाऊरुवगुणजुया हुंति । एषं विणेयवगस्स देसणा होइ पणवणी ॥३५॥  
 अण्णम्मि जायमाणे, पच्चक्खाणी न देमि मासंते । तह चोयणा पडिच्छण ममअणुमयमिणं ति अणु-  
 लोमा ॥३६॥

अभिधेयविगलसहो, हासपलावाइओ णमिग्गहिया । घइपडगाई 'अत्यो विधेयमासा अभिग्गहिया ॥३७॥  
 नाणाविहृत्यगहणी, सिंघवसहो व्व संसयकरीओ । नरथत्थतुरयपभिईसु वच्चमाणा जहिच्छाए । ३८ ।  
 सगडघडाइपसिद्धो, सहो सा वोगडा उ बोधव्वा । लल्लक्खरदुज्जोहा, अवोगडा होइ गंभीरा ॥३९॥ इति ।

तत्थ—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्ता दो ।  
 वेउव्वियमीसजुया सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(राम०) सन्निअपज्जत्तगवज्जेसु छसु अपज्जत्तगेषु जोगा दो-कम्मइगं ओरालमीसं च ।

<sup>२</sup> ^ कम्मइगं विग्गहगईए पढमचरमविग्गहं मोत्तुं, ओरालमिस्सं सरीरपज्जत्तीए अपज्जत्तगस्स ।

△ सण्णअपज्जत्तगस्स तिन्नि वेउव्वियमीसं १ ओरालियमिसं २ कम्मगं ३ च, जओ देवनेरइया सन्निओ उप्पत्तिकाले वेउव्वियमीसा ॥६॥

बित्ति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।  
 बायरपज्जत्ते तिन्नि उरलवेउव्वियदुगं च ॥ ७ ॥

(राम०) पज्जत्तीओ छ होंति । तं जहा—<sup>३</sup> आहारपज्जत्ती १, शरीरपज्जत्ती २, इंदियपज्जत्ती ३, आणुपाणुपज्जत्ती ४, मापापज्जत्ती ५, मणपज्जत्ती ६ ।

१ "अत्योभिधेयमासा" इत्यपि पाठः । २ △ एतच्चिह्नद्वयमध्यगतः पाठः प्रत्यन्तरादर्शे नास्ति ।  
 ३ "आहारपज्जत्ती एगा" इत्यपि ।

१ ५ आहारसरीरिन्दियउरसासवओमणोभिनिव्वत्ती । होइ जओ दलियाओ, करणं पद मा उ पञ्जत्ती ॥

पञ्जत्ती नाम सत्तीविसेसो । सो दलिओपचयाओ ओपञ्जद्द, जओ आहारियस्स दव्वस्स खलरसपरिणामणसत्ती आहारपञ्जत्ती १ । सत्तधाउतया रमस्स परिणामणसत्ती सरीरपञ्जत्ती २ । रस १ श्रोणित २ मांस ३ स्नायु ४ अस्थि ५ मज्जु ६ रेतु ७ इति सप्त धातवः । इंदियपञ्जत्ती= पंचणहमिंदियाजं जोगपुग्गले विचिणिय तव्भावनयणसत्ती, अत्थाववोहसत्ती य इंदियपञ्जत्ती ३ । आणुपाणुजोगे बाहिरे पुग्गले घेतूण आणापाणुत्ताए परिणामित्ता ऊसासनीसासत्ताए निसरणसत्ती आणापाणुपञ्जत्ती ४ । वयणजोगे पोग्गले घेतूण भासत्ताए परिणामित्ता वयणजोगत्ताए निसरणसत्ती भासापञ्जत्ती ५ । मणजोगे पोग्गले धित्तूण मणत्ताए परिणामित्ता मणोजोगत्ताए निसरणसत्ती मणपञ्जत्ती ६ । एयाओ पञ्जत्तीओ पञ्जत्तगनामकम्मोदएण निव्वत्तिज्जन्ति, तं जेसिं अत्थि ते पञ्जत्तगा । एयाओ चेव पञ्जत्तीओ अपञ्जत्तनामकम्मोदए ण निव्वत्तिज्जन्ति, तं जेसिं अत्थि ते अपञ्जत्तगा । ५

तत्थ आइल्ला चत्तारि एगिंदियाणं, आइल्ला पंच विगलिंदियअराण्णीणं, छावि सण्णीणं । तत्थ १ नियनियाहिं असमत्तीयाहिं अपञ्जत्तगा समत्तियाहिं पुण पञ्जत्तगा । सत्तसु अपञ्जत्तगेसु सरीरपञ्जत्तीए पञ्जत्तगेसु ओरालियसरीरं बेंति केई । तेसिं मएण तिन्नि जोगा-ओरालियं १ ओरालियमीसं २ कम्मगं च ३ । सन्निअपञ्जत्तगस्स देव-नेरइए पडुच्च वेउव्वियं कहां न होइ ? म०-वेउव्वियसरीराणं सरीरपञ्जत्ती अंतोमुहुत्तिया, सेसा पंच एगेगसामइगीओत्ति, तेण अप्प-कालियस्स न विवक्खा कया । “बायरपञ्जत्ते तिन्नि” ति वायरएगिंदियपञ्जत्तगे तिन्नि जोगा-ओरालियं १ वेउव्वियं २ वेउव्वियमीसं च ३ । वेउव्विदुगं वाउकाइए पडुच्च ॥७॥

उरलं सुहुमे चउसु य भासजुयं पनरसा वि सन्निमि ।

उवओगा दससु तओ अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(राम०) सुहुमस्स पञ्जत्तगस्स एगं ओरालियं । ‘चउसु य भासजुयं’ ति चउसु ठाणेसु वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-असण्णपञ्जत्तगेसु तं चेव ओरालियं असत्तमोसा भासा य । ‘पण-रसावि सन्निमि’ ति सण्णपञ्जत्तगस्स पनरसावि जोगा, जओ सव्वेसिं अहिगारि ति । कहां ? मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियं वेउव्वियं एए दस सभावत्थाणं मणुयतिरियनेरइयदेवाणं जहासं-मवं लभंति । वेउव्वियमिस्सं देवनेरइयाणं उप्पत्तिकाले, जओ लद्धीए पञ्जत्तगा चेव उववज्जं-ति । तहा सव्वेसिं उत्तरवेउव्वियारंमकाले कम्मणा सह, जओ ते वेउव्वियकरणकाले वेउव्विय-समुग्घायं समोहन्ति, समोग्घाए य कम्मणसरीरेण वेउव्वियपोग्गले आदायंति, आदाईएसु

१ स्वस्तिवक्कद्विकान्तवैसीं पाठः प्रत्यन्वरे नास्ति । २ “नियनिजाहिं” इत्यपि । ३ “लद्धीपञ्जत्त-” इत्यापि । ४ “अहवा सव्वेसिं” इत्यपि । ५ “समोहन्ति”=संखेब्बाइं जोगणाइं निसिरिति, समो० इत्यपि ।



एस गुरुजीवरासी संखाई दंसणेण थोवाणं । तत्थ मयाणं मावा जीवविमिस्सा इमा नेया ॥२३॥  
 एत्थेव मया बह्वो थोवा जीवति सब्भमयभणणा । मिस्सा इमा अजीवेहि होइ मासा उसच्चसुसा ॥२४॥  
 सब्भं भयममयं वा, उमयं नियमेण वागरंतस्स । जं तत्थ विसंवइयं, तसुमयमिस्सं निपयञ्चं ॥२५॥  
 अपणेण पंहुपत्तेण वा वि मीसं तु मूलगाईयं । दट्ठु<sup>२</sup> अणंतभणणे साहारणमीसिया होइ ॥२६॥  
 तं चेवुक्खयमेत्तं मिलाणममिलाणमेगरासिगय । सब्भ परित्तामेयं, भणओ मिस्सा परित्तेण ॥२७॥  
 तूरंतो अन्नजणं, विज्जंते चेव दिवसकालम्मि । जाया निसा पयट्टसु वयओ अट्ठाए<sup>३</sup> मिस्सेयं ॥२८॥  
 पढमम्मि चेव जामे. रयणिए वासरस्स वा वेइ । जायं इयं निसीहं, मञ्जन्हो वा वि अट्ठट्ठा ॥२९॥  
 इन्ही असच्चमासा, विण्हं पीमाण लक्खणा जोगा । नाऊण विगयदोसं, तिभासगातो पंजंति ॥३०॥  
 आमंतणि आणवणी, जायणि तइ पुच्छणी य पन्नवणी । पच्चक्खाणी मासा, मासा इच्छाणुलोमा य ॥३१॥  
 अणमिगहिया मासा, मासा य अमिगहम्मि बोधव्वा । संसयकरणी मासा, षोडशबोगडा चेव ॥३२॥  
 जीए पधित्तिनिविचीठ नेय जायति भासियाए वि । संबोहमेत्ताकरणी अमंतणिया भव मासा ॥३३॥  
 आणवणी ऋज्जनिभोयणाए तइ मगणेण जायणिया । संडेह्विगपडेत्तं, चोयणओ पुच्छणी होइ ॥३४॥  
 पाणिप्राओ<sup>४</sup> नियत्ता, दीहाऊरुवरुणजुया हुंति । एवं विणेयवग्गस्स वेसणा होइ पणवणी ॥३५॥  
 अणम्मि जायमाणे, पच्चक्खाणी न देमि मासंते । तइ चोयणा पडिच्छण ममऽणुमयमिणं ति अणु-  
 लोमा ॥३६॥

अभिषेयविगलसहो, हासपलावाइओ णमिगहिया । षडपडगाई<sup>५</sup> अत्थो विषेयमासा अमिगहिया ॥३७॥  
 नाण, विहत्थगहणी, सिंघवसहो<sup>६</sup> व्व संसयकरीओ । नरत्थतुरयपभिईसु वच्चमाणा जहिच्छाए । ३८ ।  
 सगडघडाइपसिद्धो, सहो सा वोगडा उ बोधव्वा । तल्लक्खवरुव्वोहा, अबोगडा होइ गंभीरा ॥३९॥ इति ।

तत्थ—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।  
 वेउव्वियमीसजुया सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(राम०) सन्निअपज्जत्तगवज्जेसु छसु अपज्जत्तगेषु जोगा दो—कम्मइगं ओरालमीसं च ।  
<sup>२</sup> ^ कम्मइगं विगगाहगाईए पढमचरमविगगहं मोत्तु<sup>७</sup>, ओरालमिस्सं सरीरपज्जत्तीए अपज्जत्तगस्स ।  
 △ सण्णअपज्जत्तगस्स तिन्नि वेउव्वियमीसं १ ओरालियमिसं २ कम्मगं ३ च, जओ देवनेरइया सन्निणो उप्पत्तिकाले वेउव्वियमीसा ॥६॥

विंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।  
 वायरपज्जत्ते तिन्नि उरलवेउव्वियट्टुगं च ॥७॥

(राम०) पज्जत्तीओ छ होंति । तं जहा—<sup>८</sup> आहारपज्जत्ती १, शरीरपज्जत्ती २, इंदियपज्जत्ती ३, आणुपाणुपज्जत्ती ४, भायापज्जत्ती ५, मणपज्जत्ती ६ ।

१ “अत्थोभिषेयमासा” इत्यपि पाठः । २ △ एतच्छब्दद्वयमव्यगतः पाठः प्रत्यन्तरादर्शो नास्ति ।  
 ३ “आहारपज्जत्ती एगा” इत्यपि ।

५ आहारसरीरिन्दियवत्सासवओमणोमिनिव्वत्ती । होइ जओ दलियाओ, करणं पइ मा ३ पज्जत्ती ॥  
 पज्जत्ती नाम सत्तीविसेसो । सो दलिओपचयाओ ओपज्जइ, जओ आहारियस्स दव्वस्म  
 खलरसपरिणामणसत्ती आहारपज्जत्ती १ । सत्तधाउतया रमस्स परिणामणसत्ती सरीरपज्जत्ती २ ।  
 रस १ श्रोणित २ मांस ३ स्नायु ४ अस्थि ५ मज्जु ६ रेतु ७ इति सप्त धातवः । इंदियपज्जत्ती=  
 पंचण्हमिंदियाणं जोगपुग्गले विचिणिय तवभावनयणसत्ती, अत्थाववोहसत्ती य इंदियप-  
 ज्जत्ती ३ । आणुपाणुजोगे बाहिरे पुग्गले धेतूण आणापाणुत्ताए परिणामित्ता  
 ऊसासनीसासत्ताए निसरणसत्ती आणापाणुपज्जत्ती ४ । वयणजोगे पोग्गले धेतूण भासत्ताए  
 परिणामित्ता वयणजोगत्ताए निसरणसत्ती भासापज्जत्ती ५ । मणजोगे पोग्गले धित्तूण  
 मणत्ताए परिणामित्ता मणोजोगत्ताए निसरणसत्ती मणपज्जत्ती ६ । एयाओ पज्जत्तीओ  
 पज्जत्तगनामकम्मोदएण निव्वत्तिज्जन्ति, तं जेसिं अत्थि ते पज्जत्तगा । एयाओ चेव पज्जत्तीओ  
 अपज्जत्तनामकम्मोदए ण निव्वत्तिज्जन्ति, तं जेसिं अत्थि ते अपज्जत्तगा । ५

तत्थ आइल्ला चत्तारि एगिंदियाणं, आइल्ला पंच विगल्लिंदियअराण्णीणं, छावि सण्णीणं ।  
 तत्थ ३नियनियाहिं असमत्तीयाहिं अपज्जत्तगा समत्तियाहिं पुण पज्जत्तगा । सत्तसु अपज्जत्तगेसु  
 सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तगेसु ओरालियसरीरं वेत्ति केहं । तेसिं मएण तिन्नि जोगा-ओरालियं १ ओरा-  
 लियमीसं २ कम्ममं च ३ । सन्निअपज्जत्तगस्स देव-नेरइए पइच्च वेउव्वियं कहं न होइ १  
 भ०-वेउव्वियसरीराणं सरीरपज्जत्ती अंतोमुहुत्तिया, सेसा पंच एगेगसामइगीओत्ति, तेण अप्प-  
 कालियस्स न विवक्खा कया । “वायरपज्जत्तं तिन्नि” ति वायरएगिंदियपज्जत्तगे तिन्नि  
 जोगा-ओरालियं १ वेउव्वियं २ वेउव्वियमीसं च ३ । वेउव्विदुगं वाउकाइए पइच्च ॥७॥

उरलं सुहुमे चउसु य भासजुयं पनरसा वि सर्णिमि ।

उवओगा दससु तओ अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(राम०) सुहुमस्स पज्जत्तगस्स एगं ओरालियं । ‘चउसु य भासजुयं’ ति चउसु ठाण्णेषु  
 वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-असण्णपज्जत्तगेसु तं चेव ओरालियं असच्चमोसा भासा य । ‘पण-  
 रसावि नन्निमि’ ति सण्णपज्जत्तगस्स पनरसावि जोगा, जओ सव्वेसिं अहिगारि ति । कहं १  
 मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियं वेउव्वियं एए दस सभावत्थाणं मणुयतिरियनेरइयदेवाणं जहासं-  
 मवं लभंति । वेउव्वियमिस्सं देवनेरइयाणं उप्पत्तिकाले, जओ ३लद्धीए पज्जत्तगा चेव उववज्जं-  
 ति । तहा सव्वेसिं उच्चवेउव्वियारंभकाले कम्मणा सह, जओ ते वेउव्वियकरणकाले वेउव्विय-  
 समुग्घायं ३समोहन्ति, समोग्घाए य कम्मणसरीरेण वेउव्वियपोग्गले आदायंति, आदाईएसु

१ स्वस्तिकद्विकान्तवर्षेती पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति । २ “नियनियाहिं” इत्यपि । ३ “लद्धीपज्जत्तं” इत्यपि । ४ “अहवा सव्वेसिं” इत्यपि । ५ “समोहन्ति”=संखेब्बाइं जीयणाइं निसिरिंति, समो० इत्यपि ।

वि जाव सरीरपज्जत्ती न पूइ ताव वेउव्वियमिस्सं सन्निस्स लब्भइ । अन्ने आयरिया भणंति-मणुय-  
तिरियाणं ओरालियेण सह विउव्वियमिस्सं विउव्वियारंभकाले, जओ ओरालि'यस्स, पयत्तो । तओ बुत्त-  
'जोगो विरियं धामो उच्छाहपरकमो तथा चिट्ठा । सत्ती सामत्थं ति य जोगस्स ह्वंति पज्जाया ।"  
तहा देवनेरइयाणं वि विउव्वियमीसं वेउव्विएण सह । आहारगमिस्सं एवं चेव,  
नवरं चोइस'पुव्वधरस्स आहारगारंभ'काले, तओ आहारगं निप्फज्जइ । ओरालियमिस्सं  
केवलिस्स सपुग्घायगयस्स वीय-छट्ट-सत्तमसमएसु । कम्मणसरीरं च तस्सेव ति-चउत्थ-पंचम-  
समएसु । एवं सन्निपज्जत्तगे सव्वे जोगा लब्भंति । अण्णेसिं मएण वेउव्वियाऽऽहारगसंहरणकाले  
ओरालियमिस्सं लब्भति । परं एयस्स सत्थयारेण न विवक्खा कया ॥

इयाणि उवओगमग्गणा । ते य वारसविहा । तं जहा—मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं  
मणपज्जवनाणं केवलनाणं ५, मइअन्नाणं सुयअन्नाणं विमंगनाणं ३, चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं  
ओहिदंसणं केवलदंसणं ४ एवं वारस उवओगा । 'इससु तओ' ति जीवट्ठाणेषु चउरिंदिय-  
पज्जत्तगअसण्णपज्जत्तग—सन्निपज्जत्ता—ऽपज्जत्तगवज्जेसु तिण्णि उवओमा मइअन्नाणं सुयअ-  
न्नाणं अचक्खुदरिसणं च ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्निपज्जत्तएसु ते चउरो ।

मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥ ९ ॥

(राम०) चउरिंदियपज्जत्तगस्स असन्निपज्जत्तगस्स य ते पुव्वुत्ता तिभि चक्खुजुया  
चत्तारि उवओगा । सण्णपज्जत्तगस्स मणपज्जवनाणचक्खुदरिसणकेवलदुगवज्जा अट्ट  
उवओगा । एत्थ पढमं नाणतिगं ओहिदंसणं अविरयसम्महिट्ठिं पडुच्च, अन्नाणतिगं मिच्छादिट्ठिं  
पडुच्च, अचक्खुदंसणं दोसु वि एवं अट्ट ॥६॥

सव्वे सन्निसु एत्तो लेसाओ छावि दुविहसन्निमि ।

चउरो पढमा वायरअपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(राम०) सन्निपज्जत्तगस्स 'सव्वे' वारस वि उवओगा, जओ सव्वेसिं अहिगारि ति ।  
इओ लेसामग्गणा मणइ—ताओ छन्नेसाओ, तं जहा—किन्हेसा—नीललेसा—काउलेसा  
तेउलेसा—पम्हेलेसा—सुकलेसा 'लेसाओ छावि दुविहसन्निमि' सन्निपज्जत्ता-ऽपज्जत्त'गेषु  
छावि लेसाओ होंति । चउरो लेसा 'पढमा' आइमा वायरएगिंदियअपज्जत्तगस्सु, जओ पुढवि-  
आउवणस्सइकाएसु देवा वि ईसाणंता तेउलेसासमभिया उववज्जंति, तेण किंचिकालं तेउलेसा

१ "यंपयत्तो" इत्यपि । २ " " पुव्विस्स" इत्यपि । ३ " "काले मिस्सं, तओ" इत्यपि । ४  
"तत्थ" इत्यपि । ५ "वायरऽपज्जत्ते" इत्यपि । ६ " "गे छावि" इत्यपि ।

संभ्रति । इह सासण-नाणतिग-विभंग-अवहिदंसण-सम्मत्तिग तेउ-पम्हसुक्कलेसाओ 'अपज्जत्त-गेसु वि=करणअपज्जत्तगेसु लद्धीए पज्जत्तगेसु दड्डुवाओ । 'सेसा एकारस जीवट्टाणा, तेगु तिभि लेसा पढमा-किन्हलेसा नीललेसा काउलेसा ॥१०॥

इयाणि मंदमइविवोहणत्थं सुत्ते अभणियमवि किंचि मग्गणट्टाण-बंधहेउमग्गणालक्खणं जीवट्टाणेषु वुच्चइ । तत्थ ताव मग्गणमूलमेया सन्वेसिं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दस वि होंति । उत्तर-मेया वासट्ठी । ते य कस्स जीवटाणस्स केत्तिया ? तन्निरुवणत्थं भणणइ-

सुहुमअपज्जत्तगस्स उत्तरमेया । तं जहा-तिरियगई १ एगिदियत्तं १ तसवज्जा पंच थावरकाया ५ कायजोगं १ नपुंसगवेयं १ कसायचउक्कं ४ मइअन्नाणं १ सुयअन्नाणं १ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १ पढमलेसतिगं ३ भव्वाभव्वदुगं २ मिच्छत्तं १ असण्णी १ आहार-अणाहार-दुगं २, एवं छव्वीसं मेया । सेसा छत्तीसं असंभविया । सुहु<sup>१</sup>मपज्जत्तगस्स वि एवं । णवरं अणा-हारगो न होइ, तेण पणवीसं मेया २५ ।

बादरअपज्जत्तगस्स उत्तरमेया । तं जहा-तिरियगई १ एगिदियत्तं १ तसवज्जा पंच थावरकाया ५ कायजोगं १ नपुंसगवेयं १ कसायचउक्कं ४ मइअण्णाणं १ सुयअण्णाणं १ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १ पढमलेसचउक्कं ४ भव्वाभव्वदुगं ३ सासायणं १ मिच्छत्तं १ असण्णी १ आहारदुगं २; एवं अट्टावीसं । सेसा चउत्तीसं असंभविया । वायरपज्जत्तगस्स एए । नवरं सासायणो तेउलेसा अणाहारगो न होइ चि पणवीसा ।

बेहंदियअपज्जत्तगस्स उत्तरमेया । तं जहा-तिरियगई १ बेहंदियत्तं १ तसकायं १ काय-जोगं १ नपुंसगं १ कसायचउक्कं ४ अन्नाणदुगं २ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १ पढमलेस-तिगं ३ भव्वाभव्वदुगं २ सासणो १ मिच्छद्विट्ठी १ असण्णी १ आहारदुगं २ तेवीसं मेया । सेसा अउणयालीसं असंभविया । बेहंदियपज्जत्तस्स एवं । नवरं सासणो अणाहारगो न होइ, भासाव्वोगो य होइ बावीसा ।

तेहंदिय-चउरिंदिय अपज्जत्ताण वि बेहंदिय अपज्जत्तवुत्ता तेवीसा । पज्जत्तगाणं पज्ज-त्तवावीसा, नवरं चउरिंदियस्स चक्खुदरिसणं तेवीसइमं । एत्थ य इंदियवुद्धी आलावगो भाणियव्वो ।

असण्णिपंचिदियस्स अपज्जत्तगस्स उत्तरमेया । तं जहा-मणुयगई १ तिरियगई १ पंचिदियत्तं १ तसकायं १ कायजोगं १ वेयतिगं ३ कसायचउक्कं ४ अन्नाणदुगं २ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १

१ "एपसु बारससु ठाणेसु अपज्जत्ता" इत्यपि । २ 'सेसेसु' एकारसजीवट्टाणेषु तिभि" इत्यपि ।  
३ "मस्स पज्ज" इत्यपि ।

षडमलेसतिगं ३ भव्वाभन्वादुगं २ सासणो १ मिच्छद्दिट्ठी १ असन्नी आहारदुगं २ छव्वीसं मेया ।  
पज्जत्तगस्स सासणो अणाहारगो मणुयगई न होइ च्चि, चव्वखुदरिसणं भासा य होइ  
सि पणवीसा ।

सन्निपंचिदियस्स अपज्जत्तगस्स उत्तरमेया । तं जहा-गइचउक्कं ४ पंचेदियत्तं १ तसकायं १  
कायजोगं १ वेयतिगं ३ कसायचउक्कं ४ नाणतिगं ३ अन्नाणतिगं ३ असंजमो १ अचक्खुद-  
रिसणं १ ओहिदरिसणं १ लेसछक्कं ६ भव्वाऽ-भव्वदुगं २ सम्मत्तपंचगं ५ मिस्साभावाओ  
सन्नी १ आहारदुगं २ उणयालीसं मेया, सेसा तेवीसं असंभविया ।

सन्निपज्जत्तगस्स उत्तरमेया । तं जहा-गइचउक्कं ४ पंचिदियत्तं १ तसकायं १ जोगतिगं  
वेयतिगं ३ कसायचउक्कं ४ नाणपंचगं ५ अणाणतिगं ३ संजमसत्तगं ७ दंसणचउक्कं ४ लेस-  
छक्कं ६ भव्वाभव्वदुगं २ सम्मत्तछक्कगं ६ सन्नी १ आहारदुगं २ बावन्नं मेया, सेसा दस-  
असंभविया ।

उत्तरबंधहेयवो तं जहा—

तेत्तीसा बन्नीसा, तेत्तीसा तिण्ह होइ चउतीसा । वो दो एगुत्तरिया, उणयाला चत्त दुग एगे ॥१॥  
मिच्छत्तामणामोगं, अजतो छक्काय एगअक्खे य । तह सोलस य कसाया, हासईछक्क अपुमं च ॥२॥  
धुवहेऊ इगतीसं, सामण्णेणं तु जीवठाणेसुं । सेमा व अधुवहेऊ, षोच्छं जा जस्स संभविया ॥३॥  
सत्तसु वि अपज्जेसुं ओराळियमीस कम्मइग जोगा । इय इगतीसे पक्खिन्न, इंदियवुड्ढी य संभविया ॥४॥  
अस्सन्नीसन्नीसुं, पुरिसं थीवेय खिषसु असमत्ते । नवरं सन्निअज्जे, वेउत्थियमीसयं खिषसु ॥५॥  
उरलं सुहुमसमत्ते, वेउत्थिदुगेण संजुमं थूत्ते । उरलं भासा इंदियवुड्ढी सेसं अपज्जसमं ॥६॥  
परभविया मिच्छत्ता संभविया तेसु हुंति सव्वेसु । मणविन्नाणअमाथा एककस्स कया विवक्खा व ॥७॥  
१इह बारस जीवठाणोसु अन्नं वि वेत्ति वेयदुगं । तं छस्सिसंभवेणं, तणुपज्जत्तीए ओरालं ॥८॥  
इह हेउमग्गणा इह, मणिया तेरससु जीवठाणेसु । सन्नीपज्जत्ते पुण, गुणठाणकमेण नायव्वा ॥९॥

संपयं मूलपयद्दीसुं बंधट्टाणाइं आह—

सत्तऽट्ट अट्ट सत्तऽट्ट अट्ट बन्धुदउदीरणा सत्ता ।

तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्ताए ओधो ॥११॥

(राम०) तेरससु जीवठाणेसु बंधे अट्ट कम्माणि, अहवा सत्त, आउकम्मं विणा । उदए अट्ट  
कम्माणि । उदीरणाए वि अट्ट, अहवा सत्त आउकम्मं विणा । सत्ताए अट्ट वि कम्माणि ।  
सण्णिपज्जत्ताए ओधो । सो य इमो—

आउविहूणा सत्त व, मोहणिया-ऽऽउयविण्ण व छव्वबंधे । वेयणियएगबंधे, चत्तारि य बंधटाणाइं ॥  
मोहविहूणा सत्त व, उदए चत्तारि वाइकम्मविणा । तिन्नेव उदयथाणा, एवं सत्ताइ तिन्नेव ॥

६ ] जीवस्थानेषु मार्गणास्थानानि बन्धहेतवो बन्धस्थानानि च तथौधतो मूलोत्तरमार्गणास्थानानि

'अद्यावत्तियासेसे सत्त उदीरिति आलकम्मविणा । वेयणियाऽऽऽ विणा छ उ, मोहविहूणा उ पंचेव ॥  
दो चेष नाम-गोए, उदीरणाठाण ह्योति पंचेव । ओघेण ठाणसंखा, सन्नीपज्जत्तए ह्योइ ॥" ॥११॥

भणियाणि जीवट्ठाणेषु गुणट्ठाणाईणि । इयाणि मग्गणाठाणेषु जीवट्ठाणाईणि दंसेउं  
मग्गणाठाणाणि ताव दंसेइ-

एत्तो गइइंदियकायजोयवेए कसायनाणेषु - ।

संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे ॥१२॥

(राम०) संपयं सयमेव सुत्तकारो इमां दारगाहां विवरेइ—

सुरनरतिरिनिरयगई इगि-बि-ति-चउरिंदिया य पंचेदी ।

पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणसइतसा काया ॥१३॥

(राम०) देवगई मणुयगई तिरियगई निरयगई ४ दारं । एगिदियं वेइंदियं तेइंदियं चउरि-  
दियं पंचिदियं ५ दारं । पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणस्सइतसा काया ६ दारं ॥१३॥

मणवइकाया जोगा इत्थी पुरिसो नपुंसगो वेया ।

कोहो माणो माया लोभो चउरो कसायत्ति ॥१४॥

(राम०) मणजोगो वइजोगो कायजोगो ३ दारं । इत्थिवेओ पुरिसवेओ नपुंसगवेओ  
३ दारं । कोहो माणो माया लोभो ४ दारं ॥१४॥

मइसुयओहीमणकेवलाणि मइसुयअनाणविब्भंगा ।

सामइयछेयपरिहारसुहुमअहस्त्रायदेसजइअजया ॥१५॥

(राम०) मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं मणयज्जवनाणं केवलनाणं मइअन्नाणं सुयअन्नाणं  
विभंगनाणं ८ दारं । सामाइयं छेओवट्ठावणियं परिहारविसुद्धियं सुहुमसंपरायं अहक्खायं देस-  
विरओ अविरओ ७ दारं ॥१५॥

अच्चखु-चक्खु-ओही-केवलदंसणमओ य अल्लेसा ।

किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥१६॥

(राम०) अच्चक्खुदरिसणं चक्खुदरिसणं ओहिदरिसणं केवलदरिसणं ४ दारं । किण्हेसा  
नील्लेसा काउलेसा तेउलेसा पम्हेलेसा सुक्कलेसा ६ दारं ॥१६॥

१ "अप्पप्पणो आठगअट्ठाए आवत्तियासेसे सत्त उदीरिति, कम्हा ? आठगं आवत्तियागयं न उदीरिति सि  
काठं" इति प्रत्यन्तरे टिप्पणकम् ॥

भव-अभवा खउवसम-खइय-उवसमिय-मीस-सासाणा ।

मिच्छो य सन्नसन्नी आहारणहार इय भेया ॥१७॥

(राम०) भवो अभवो २ दारं । खाओवसमियं सम्मत्तं खाइयं सम्मत्तं उवसमियं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासायणं मिच्छदिङ्गी ६ दारं । सण्णी असण्णी २ दारं । आहारगो अण्णाहारगो २ दारं ॥१७॥

एए उत्तरमेया वावड्डी, एएसु जीवट्टाणा कस्स केत्तिया १ तं भण्णइ—

सुरनरए सन्निदुगं नरेसु तइओ असन्निपज्जत्तो ।

तिरियगईए चउदस एगिंदिसु आइमा चउरो ॥१८॥

(राम०) देवगईए निरयगईए य दो जीवठाणा-सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । मणुयगईए तिन्नि जीवट्टाणा-सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो असण्णी अपज्जत्तगो य । तिरियगईए चउदस, सव्वे<sup>३</sup>सिं तिरियगइसंभवाओ । एगिंदिएसु 'आइमा चउरो' सुहुम-वायरा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य ॥१८॥

वित्तिचउरिंदिसु दो दो अंतिमचउरो पर्णिदिसु हवन्ति ।

थावरपणगे पढमा चउरो चरमा दस तसेसु ॥ १९॥

(राम०) वेइंदिएसु दो-वेइंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । तेइंदिएसु दो-तेइंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । चउरिंदिएसु दो जीवठाणा-चउरिंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । अंतिमचउरो पर्णिदिसु हवन्ति-असन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । 'थावर-पणगे पढमा चउरा' ति पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया थावरा पंच, तत्थ पत्तेयं पत्तेयं पढमा चउरो-सुहुम-वायरा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । 'चरमा' अंतिमा दस तसकाए, ते य इमे-वेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया असन्निपंचिंदिया सन्नी य पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा य ॥१९॥

विगलतिअसन्निसन्नी पज्जत्ता पंच हुंति वइजोगे ।

मणजोगे सन्निक्को पुमित्थिवेए चरमचउरो ॥२०॥

(राम०) वेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया एए विगला, असन्निपंचिंदिया सण्णिपंचिंदिया य पज्जत्ता पंच जीवट्टाणा वइजोगे हुंति । मणजोगे एगो सण्णी पज्जत्तगो । पुरिसवेए इत्थीवेए

'चरमचउरो' असन्नी सन्नी य पज्जत्तगा-ऽपज्जत्तगमेण' चउरो । असण्णिपज्जत्तापज्जत्तगाणं कइं पुरिसित्थिवेयसंभवो । जओ नपुंसगा एव सुत्ते पढिया । भन्नइ-आकारमात्रमाश्रित्य ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खू ।

आइतिलेसा भव्वियरमिच्छआहारगे सव्वे ॥ २१ ॥

(राम०) <sup>१</sup>काओगो १ नपुंसगवेओ २ कसायचउक्कं ६ मइअन्नार्णं ७ मुयअण्णार्णं ८ अविरओ ९ अचक्खुदरिसर्णं १० किन्हेलेसा ११ नील्लेसा १२ काउलेसा १३ भव्वो १४ अमव्वो १५ मिच्छहिट्ठी १६ आहारगो १७ य एएसिं सत्तरसण्हं दाराणं जीवट्ठाणा चउदस वि, जओ सव्वेसिं संभवो ॥२१॥

मइसुयओहिदुगविभंगपम्हेसुकासु तिसु य सम्मेषु ।

सन्निम्मि य दो ठाणा सन्निअपज्जत्तापज्जत्ता ॥ २२ ॥

(राम०) मइनाणं १ सुयनाणं २ ओहिदुगं ४ विभंगनाणं ५ पम्हेलेसा ६ सुकलेसा ७ 'तिसु य सम्मेषु' ति वेयगसम्मत्तं ८ र्वाइयसम्मत्तं ९ उवसमसम्मत्तं १० सण्णओ ११ य एएसिं एक्कारसण्हं दाराणं दो जीवट्ठाणा-सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य ॥२२॥

एत्थ चोयगो मणइ-<sup>१</sup>उवसमसम्मदिट्ठिस्स एगं चैव जीवट्ठाणं संभवइ, जओ पढममुत्तसमसम्मत्तं उप्पाइंतस्स तिपुं जीकरणकाले सञ्जी पज्जत्तगो चैव, अपज्जत्तगस्स तिपुं जीकरणनिसेहाओ । अह मणिस्ससि उवसंतो पढंतो कालं करेइ सो अणुत्तरसुरेसु उववज्जइ ति तत्थ देवो लभइ, तं न; जओ कम्मपयञ्चोए मणियं-<sup>२</sup>पढमसमए वि देवेसु उववज्जंतस्स करणाणि उग्घादियाणि होवि<sup>३</sup> इह वयणाओ करणेहि उग्घादिएहि वेयगो चैव, न <sup>४</sup>उवसंतस्स अपज्जत्तगस्स संभवो । तइजुत्तं, अभिज्यायाऽपरिन्नाणाओ । जओ पंचसंगहे सव्वकम्माणं उदयट्ठाणेषु भूओगार-अप्पयर-अवट्ठिय-अव्वत्तोदयविचारे मोहस्सेव अव्वत्तोदया मणिया न सेसकम्माणं ते य सव्वहा उवसंतस्स मोहणीयस्स <sup>५</sup>अद्दाक्खयस्स व वेयपरिवट्ठिया पढमसमए <sup>६</sup>उदया अव्वत्तोदया <sup>७</sup>जओ धोत्तं-

"एगादहिगे पढमो, एगाई ऊणाम्मि बीओ य । तत्थियमित्तो वइओ पढमे समए अव्वत्तव्वो ॥" <sup>८</sup>

नाणाजीवापेक्खया पंच, तं जहा-एकोदओ, छलोदओ, सत्तोदओ, अट्ठोदओ, नवोदओ । तत्थ एकोदओ लोमस्स एकस्स सो य अद्दाक्खए परिवहंतस्स सुहुमसंपरायपढमसमए लभइ सेसा चत्तारि भवक्खए व सव्वट्ठिसिद्धे देवस्स पढमसमए उववज्जंतस्स

१ 'णं पत्तयं पत्तयं चउरो' इत्यपि । २ काययोगः । ३ "उवसमसम्मत्तास्स अप०" इत्यपि पाठः । ४ एतच्छिद्वाहयमभ्यगतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति ।



भव्-अभवा स्वउवसम-स्वइय-उवसमिय-मीस-'सासाणा ।  
मिच्छो य सन्नसन्नी आहारणहार इय भेया ॥१७॥

(राम०) भवो अभवो २ दारं । खाओवसमियं सम्मत्तं खाइयं सम्मत्तं उवसमियं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासायणं मिच्छद्दिट्ठी ६ दारं । सण्णी असण्णी २ दारं । आहारगो अण्णाहारगो २ दारं ॥१७॥

ए ए उत्तरमेया बावट्ठी, एएसु जीवट्ठाणा कस्स केत्तिया १ तं मण्णइ—

सुरनरए सन्निदुगं नरेसु तइओ असन्निपज्जत्तो ।  
तिरियगईए चउदस एगिंदिसु आइमा चउरो ॥१८॥

(राम०) देवगईए निरयगईए य दो जीवट्ठाणा-सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । मणुयगईए तिन्नि जीवट्ठाणा-सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो असण्णी अपज्जत्तगो य । तिरियगईए चउदस, सव्वे<sup>२</sup>सिं तिरियगइसंभवाओ । एगिंदिएसु 'आइमा चउरो' सुहुम-बायरा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य ॥१८॥

बित्तिचउरिंदिसु दो दो अंतिमचउरो पणिंदिसु हवन्ति ।  
थावरपणगे पढमा चउरो चरमा दस तसेसु ॥ १९॥

(राम०) बेइंदिएसु दो-बेइंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । तेइंदिएसु दो-तेइंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । चउरिंदिएसु दो जीवट्ठाणा-चउरिंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । अंतिमचउरो पणिंदिसु हवन्ति-असन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । 'थावर-पणगे पढमा चउरो' त्ति पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया थावरा पंच, तत्थ पत्तेयं पत्तेयं पढमा चउरो-सुहुम-बायरा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । 'चरमा' अंतिमा दस तसकाए, ते य इमे-बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया असन्निपंचिंदिया सन्नी य पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा य ॥१९॥

विगलतिअसन्निसन्नी पज्जत्ता पंच हुंति वइजोगे ।  
मणजोगे सन्निको पुमिथिवेए चरमचउरो ॥२०॥

(राम०) बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया एए विगला, असन्निपंचिंदिया सण्णिपंचेदिया य पज्जत्ता पंच जीवट्ठाणा वइजोगे हुंति । मणजोगे एगो सण्णी पज्जत्तगो । पुरिसवेए इत्थीवेए

'चरमच्चडरो' असन्नी सन्नी य पञ्जत्तगा-ऽपञ्जत्तगमेण' चडरो । असण्णिपञ्जत्तापञ्जत्तगाणं कइं पुरिसित्थिवेयसंभवो । जओ नपुंसगा एव सुत्ते पढिया । भन्नइ-आकारमात्रमाश्रित्य ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खू ।

आइतिलेसा भव्वियरमिच्छआहारगे सव्वे ॥ २१ ॥

(राम०) काओगो १ नपुंसगवेओ २ कसायचउक्कं ६ मइअन्नार्णं ७ सुयअण्णार्णं ८ अविरओ ९ अचक्खुदरिसर्णं १० किन्हलेसा ११ नीललेसा १२ काउलेसा १३ भव्वो १४ अभव्वो १५ मिच्छदिट्ठी १६ आहारगो १७ य एएसिं सत्तरसण्हं दाराणं जीवट्ठाणा चउदस वि, जओ सव्वेसिं संभवो ॥२१॥

मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु य सम्भेसु ।

सन्निम्मि य दो ठाणा सन्निअपञ्जत्तापञ्जत्ता ॥ २२ ॥

(राम०) महनाणं १ सुयनाणं २ ओहिदुगं ४ विभंगनाणं ५ पम्हलेसा ६ सुक्कलेसा ७ 'तिसु य सम्भेसु' ति वेयगसम्मत्तं ८ र्वाइयसम्मत्तं ९ उवसमसम्मत्तं १० सण्णो ११ य एएसिं एकारसण्ह दाराणं दो जीवट्ठाणा-सन्नी पञ्जत्तगो अपञ्जत्तगो य ॥२२॥

एत्थ चोयगो भणइ-"उवसमसम्मदिट्ठिस्स एगं चेव जीवट्ठाणं संभवइ, जओ पढममुवसमसम्मत्तं उप्पाइंतस्स तिपुंजीकरणफाले सभ्बी पञ्जत्तगो चेव, अपञ्जत्तगस्स तिपुंजीकरणनिसेहाओ । अइ भणिस्ससि उवसंतो पढंतो कालं करेइ सो अणुत्तरसुरेसु उववज्जइ ति तत्थ देवो लब्भइ, तं न; जओ कम्मपयञ्चीए भणियं-"पढमसमए वि देवेषु उववज्जंतस्स करणाणि उग्घाडियाणि होति" इइ वयणाओ करणेहिं उग्घाडिएहिं वेयगो चेव, न "उवसंतस्स अपञ्जत्तगस्स संभवो । तदजुत्तं, अमिज्यायाऽपरिन्नाणाओ । जओ पंचसंगहे सव्वकम्माणं उदयट्ठाणेषु भूओगार-अप्पयर-अवट्ठिय-अव्वत्तोदयविचारे मोहस्सेव अव्वत्तोदया भणिया न सेसकम्माणं ते य सव्वहा उवसंतस्स मोहणीयस्स ^ अद्वाखयस्स ववेयपरिवडिया पढमसमए ^ उदया अव्वत्तोदया △ जओ धोसं-

"एगावहिगे पढमो, एगाई ऊणाम्मि बीओ य । तत्थियमित्तो तइओ पढमे समए अव्वत्तव्वो ॥" △

नाणाजीवापेक्खया पंच, तं जहा-एक्कोदओ, छलोदओ, सचोदओ, अट्ठोदओ, नवोदओ । तत्थ एक्कोदओ लोमस्स एकस्स सो य अद्वाक्खए परिवडंतस्स सुहुमसंपरायपढमसमए लब्भइ सेसा चत्तारि भवक्खए व सव्वट्ठसिद्धे देवस्स पढमसमए उववज्जंतस्स

१ 'णं पत्थं पत्थं चडरो' इत्यपि । २ काययोगः । ३ "उवसमसम्मत्तास्स अप०" इत्यपि पाठः ।  
 ४ एतच्चिह्नद्वयमध्यगतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति ।

लब्धमिति जओ “उषसंतो कालगओ सव्वट्टे जाइ”ति मगवईसिट्टं । तत्थ छलोदओ अणंताणु-  
 बंधिवज्जकसाया तिंभि हासो रई य पुरिसवेओ य । सत्तोदओ मएण वा दुगुंछाए वा  
 वेयगसम्मचे वा छुढे तिहा होइ । अट्टोदओ वि तिहा भयदुगुंछाए भयवेयगेण दुगुंछावेयगेण  
 व छुढे । नवोदओ भयदुगुंछावेयगेण तिहि वि छुढेहि संभवइ । तत्थ एक्को छलोदओ दो  
 य सत्तोदया वेयगरहिया एको अट्टोदओ सो वि वेयगरहियो एए चत्तारि उदया उवसमसम्म-  
 दिट्ठीणं ३ तहा एए चत्तारि उदया खाइगसम्मदिट्ठीणं च लब्धमिति । तत्थ करणेषु उग्घाडिएसु  
 वि कोइ कस्सइ जीवस्स उदयमागच्छइ । ते पुण पढमसमए अण्वत्तोदया । बीयाइसु अवट्ठिय-  
 ४ भूओगाराईणि । तओ तत्थ उवसंतो कालगओ उवसमसम्मदिट्ठी अपज्जत्तगो लब्धइ । △अह  
 भणिस्ससि क्खाइगदिट्ठिस्सेव वेयगरहिया उदया, तन्न, जओ पुढो विवक्खामावो △ । जं पुण  
 भणियं कम्म पगखीए पढमसमए करणाणि ‘पढमसमए करणाणि उग्घाडियाणि’ तं पि न विट्ठइ ।  
 जओ कस्सवि जीवस्स सत्तोदओ अट्टोदओ नवोदओ वेयगसम्मचेण समं उदयमागच्छंति तं तं  
 जीवं पट्टुच्च तदपि घट्टः-अन्नं च सत्तरीसुखीए भणियं— “पणवीससत्तावीओदया वेण्णेरइए  
 वेचंविए पट्टुच्च नेरइया वेयगखाइयत्तिट्ठी वेवा तिधिहसम्मदिट्ठीवि । एए य पणवीससत्तावीओदया  
 अपज्जत्तोदयातेसु वि अपज्जत्तगो वेवो उवसमसम्मदिट्ठी लब्धइ ति । अतो जुत्तमुत्तं सुत्तयारेण ‘उव  
 समसम्मदिट्ठिस्स दो वि जीवट्ठाणा’ । पज्जत्तं वित्थरेण ॥२२॥

पगयं भणामो—

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजइभीसदिट्ठीसु ।

सन्नी पज्जो चक्खुंमि तिन्नि छ व पज्जियरचरमा ॥२३॥

(राम०) मणनाणं ‘केव ऋगं’ केवलनाणं केवलंदसणं च, संजया पंच—सामाइयं छेओव-  
 ट्ठावणियं परिहारविसुद्धीयं सुहुमसंपरायं अहक्खायं, देसविरओ सम्मामिच्छदिट्ठी य एएसिं  
 दसणहं दाराणं एगं जीवट्ठाणं सन्नी पज्जत्तगो । चक्खुदंसणे—चउरिंदिय-असण्णिपंचेदिय-सन्नि-  
 पंचेदिया पज्जत्तगा तिन्नि । केसिचि मएण “छज्जीवट्ठाणाणि—तिन्नि पज्जत्तगा “इयरे’  
 लद्धीए पज्जत्तगा करणेण अपज्जत्तगा य तिण्णि एवं छ ॥२३॥

सत्त उ मामाणे वायराइ छ अपज्जसन्निपज्जो य ।

तेउल्लेमे वायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥२४॥

१ ‘तिण्णि त न्हं जुयत्ताणं पगयं पुरिस’ इत्यपि पाठन्तरम् । २ “छुढे ति संभवइ” इत्यपि ।  
 ३ “तहा”इति ग्रन्थन्तरे नास्ति । ४ “भूओगाराइ ति” इत्यपि पाठः । ५ “छ जीव” इत्यपि । ६ “इयरे  
 अपज्जत्तगा य” इत्यपि । △ एतच्चिह्नद्वयान्तर्गतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति ।

(राम०) सासायणसम्मत्ते सत्त जीवट्टाणा—सुहुमपज्जत्तगवज्जा छ अपज्जत्तगा सन्नी पज्जत्तगो य । अपज्जत्तगेषु सासणो क्हं ? मण्णइ—अपज्जत्तगा दुविहा-करणअपज्जत्तगा लद्धिअपज्जत्तगा य, लद्धिअपज्जत्तगेषु सासणो न लब्भइ, करणअपज्जत्तगेषु लद्धीए पज्जत्तगेषु सासणो जहण्णेणं एकं समयं; उक्कोसेणं किंचिउणं छावलियकालं लब्भइ । किं निमिच्चं कालनियमणं ? जओ एएसु  $\Delta$  छसु अपज्जत्तगेषु  $\Delta$  पुच्चं वद्धाउया उववज्जंति, तत्थ चायररेगिंदिएसु देवा ईसाणंता तिरियमणुया य कम्मभूमिजा उववज्जंति, चिगलअसन्नीसु तिरियमणुया चैव  $\Delta$  सण्णी  $\Delta$  कम्मभूमिजा उववज्जंति, सन्नीसु चउगइया वि उववज्जंति, न पुण एए सु अपज्जत्तगेषु । सन्नीपज्जगस्स पुण उक्कोसेणं छावलियकालो वि लब्भइ । जओ सम्मत्तूपत्ती सासणभावो वि अत्थि । <sup>१</sup> तेउत्तेसे तिन्नि जीवट्टाणाणि—चायरएगिंदिओ अपज्जत्तगो पुच्चुत्तविहीए सन्नी पज्जत्तोऽपज्जत्तगो य ।

अस्सन्नि याइ बारस अण्हारे अट्ट सत्त अपजत्ता ।

सन्नी पज्जत्तो तह इय गइयाइसु जियट्टाणा ॥२५॥

(राम०) असण्णिम्मि आहमा बारस जीवट्टाणा—सण्णिपज्जत्तापज्जत्तगवज्जा । अणाहारे अट्ट जीवट्टाणा—सत्त अपज्जत्तगा अंतरगईए, अट्टमो केवलीसम्वघाए तिचउत्थपंचमसमएसु ॥२५॥

गइयाइसु <sup>२</sup> जीवट्टाणा मग्गिया । इयाणि गुणठाणा मग्गिज्जंति, तत्थ ताव गुणठाणा दंसेइ—

मिच्छे सासणमिस्से अविरयदेसे पमत्ताअपमत्ते ।

नियटिअनियट्टिसुहुमुवसमखीणसजोगजोगिगुणा ॥२६॥

(राम०) मिच्छदिट्ठिगुणट्टाणं सासायणगुणट्टाणं सम्ममिच्छदिट्ठीगुणट्टाणं अविरयमम्मदिट्ठिगुणट्टाणं देसविरयगुणट्टाणं पमत्तसजयगुणट्टाणं अपमत्तसंजयगुणट्टाणं अपुच्चकरणगुणट्टाणं अनियट्टिचायरसंपरायगुणट्टाणं सुहुमसंपरायगुणट्टाणं उवसंतमोहगुणट्टाणं खीणमोहगुणट्टाणं सजोगिकेवल्लिगुणट्टाणं अजोगिकेवल्लिगुणट्टाणं ॥२६॥

एए गुणट्टाणा कस्स मग्गणट्टाणस्स केत्तिया तं मन्नइ—

चत्तारिं देवनरएसु पंच तिरिएसु चउदस नरेसुं ।

इगिविगलेसुं दो दो पंचिदीसुं चउदस वि ॥२७॥

(राव०) देवगईए निरयगईए पढमा चत्तारि गुणट्टाणा । तिरियगईए पंचमो देसविरओ ।

$\Delta$  एतच्चिचक्षुष्यमध्यगतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति । १ “एए छ अपज्जत्तगा” इत्यपि पाठः । २ “छसु सम्मत्तूपत्तो संभवइ ।” इति पाठोऽप्यत्राधिकृतयोपलभ्यते किन्तु सोऽत्र सगतो न भवतीति । ३ “जियट्टाणा” इत्यपि ।

मणुयगईए चउदस वि । सव्वेसिं अहिगारि ति काउं । एगिंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं  
दो दो गुणट्टाणा-मिच्छदिट्ठी सासायणो य । सासणस्स पुव्वुत्तो विही । पंचिदिएसु चउदस  
वि । मणुस्साणं अंतव्मावाओ ॥२७॥

भूदगतखुसु दो एगमगणिवाऊसु चउदस तसेसुं ।

जोए तेरस वेए तिकसाए नव दस य लोभे ॥२८॥

(राम०) भू=पुढवी दग=आयुकाओ तरु=वणस्सइकाओ एएसिं दो गुणट्टाणा-  
मिच्छदिट्ठी सासायणो य । तेउकाए वाउकाए एगो मिच्छदिट्ठी, तेसिं गुणांतरअसंभवाओ ।  
तसकाए चउदस वि । मणुयगइअंतव्मावओ । जोए=जोगतिगे तेरस गुणट्टाणा अजोगिवज्जा ।  
वेए=वेयतिगे तिकसाए=कोहे माणे मायाए एएसिं छण्हं पढमा नव गुणट्टाणा । लोमस्स एए  
नव, दसमो सुहुमसंपराओ ॥२८॥

मइसुयओहिदुगे नव अजयाइ जयाइ सत्त मणनाणे ।

केवलदुगंमि दो तिन्नि दो व पढमा अनाणतिगे ॥२९॥

(राम०) मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं ओहिदरिसणं एएसिं चउण्हं नव गुणट्टाणा-  
अविरयसम्मत्ताओ आरब्भ जाव खीणमोहो । मणपज्जवनाणे सत्त गुणट्टाणा-पमत्तसंजयाओ  
जाव खीणमोहो । केवलनाणे केवलदरिसणे दो गुणट्टाणा-सजोगी अजोगी य । अन्नाणतिगे=  
मइअन्नाणे सुयअन्नाणे विमंगलक्खणे पढमा तिन्नि गुणट्टाणा अहवा दोन्नि गुणट्टाणा-मिच्छदिट्ठी  
सासायणो य । केसिं मएण मिस्सो वि अन्नाणी भन्नइ, नाणकज्जाकरणाओ ॥२९॥

सामाइयछेएसुं चउरो परिहार दो पमत्ताई ।

देससुहुमे सगं पढमचरमचउअजयअइखाए ॥३०॥

(राम०) सामाइए छेओवट्टावणिए य चत्तारि गुणट्टाणा-पमत्तअपमत्तअपुव्वकरणअनियट्ठि-  
षायरो । परिहारविसुद्धीए दो-पमत्तो अपमत्तो य । देसे देसविरओ । सुहुमे सुहुमसंपराओ । पढमा  
चत्तारि गुणट्टाणा अविरयस्स । चरिमा उवसंतमोहाइया चत्तारि गुणट्टाणा अइखायचरिस्स ॥३०॥

बारस अचक्खुचक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त ।

सुक्काएँ तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(राम०) बारस गुणट्टाणा सजोगि-अजोगिवज्जा पढमा चक्खुस्स अचक्खुस्स य । लेसासु  
तिसु किन्हनीलकाऊसु पढमा छ गुणट्टाणा । तेउपम्हाए सत्तमो अप्पमत्तो । सुक्कलेसाए सव्वे  
अजोगिवज्जा तेरस । भव्वस्स चउदस वि गुणट्टाणा । अभव्वस्स एगं मिच्छत्तं ॥३१॥

वेयग खड्ग उवसमे चउरो एक्कारसट्ट तुरियाई ।  
सेसतिगे सट्टाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(राम०) वेयगसम्महिद्धिस्स चत्तारि-अविरयसम्महिद्धी देसविरओ पमत्तो अपमत्तो य ।  
खाड्गसम्महिद्धिस्स एगारस-अविरयसम्माओ जाव अजोगिगुणट्टाणं । उवसमसम्महिद्धिस्स अट्ट-  
अविरयसम्मत्ताओ जाव उवसंतगुणट्टाणं, अट्ट गुणट्टाणा उवसमसम्मत्ते । तत्थ अविरय-देशचि-  
स्य-पमच्च-अपमत्ता उवसमसेट्ठिं आरुहंति, कहं उवसमसम्मत्तं ? भन्नइ-मिच्छदिद्धी अनियद्धिकरण-  
द्धिओ तहाविहविसुद्धिसमन्निओ उवसमसम्मत्तं चउणहमेगयरं च पडिवज्जेइ । अविरओ देसो पमत्तो  
अपमत्तो वा । एवं उवसमसम्मत्तं । उक्कतं च-

“सोलस मंदणुमागं संजमगुणवट्ठिओ जयइ । सोलस थीणगिद्धित्तिगमिच्छत्तापढमकसाया ॥”

‘सेसतिगे सट्टाणं’ मीसेमीसं, सासायणे सासायणं, मिच्छे मिच्छत्तं । सन्नियं चेंदियस्स  
चउदस वि गुणट्टाणा । असन्निस्स दो-मिच्छदिद्धी सासायणो य ॥३२॥

आहारगेषु पठमा तेरसणाहारगेषु पंच इमे ।  
‘पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(राम०) आहारगेषु सव्वे अजोगिकेवल्लिवज्जा तेरस । अणाहारगेषु पंच इमे पढमा दो=मिच्छ-  
दिद्धी सासायणो य, अंतिमा दो=सजोगिकेवली सण्णघाए अजोगिकेवली य, अविरयसम्महिद्धी  
पंचमो य, विग्गहगईण पढमविग्गहं मोत्तुं ।

गइयाइसु वासट्ठिमेएसु इय भणियपयारेण गुणठाणा ‘मग्गियत्ति सेसो ॥३३॥

इयानि जोगा मग्गिज्जंति । अओ पढमं ताव ते निदंसेइ—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य ।  
उरलचित्ठवाहार मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(राम०) पुच्चमणिया जोगवियारणा इह दट्ठव्वा ॥३४॥

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।  
जोगा तिरियगईए तेरस आहारगदुगूणा ॥३५॥

(राम०) देवगईए निरयगईए एक्कारस जोगा, ओरालियदुगआहारदुगूणा एएस्सि  
असंभवाओ । तिरियगईए तेरस जोगा, आहारगदुगूणस्स असंभवाओ ॥३५॥

मणुयगईए चउदस वि । सव्वेसिं अहिगारि ति काउं । एगिंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं  
दो दो गुणट्टाणा-मिच्छदिट्ठी सासायणो य । सासणस्स पुच्चुत्तो विही । पंचिंदिएसु चउदस  
वि । मणुस्साणं अंतम्भावाओ ॥२७॥

भूदगतरूसु दो एगमगणिवाउसु चउदस तसेसुं ।

जोए तेरस वेए तिकसाए नव दस य लोभे ॥२८॥

(राम०) मू=पुढवी दग=आयुकाओ तरु=त्रणस्सइकाओ एएसिं दो गुणट्टाणा-  
मिच्छदिट्ठी सासायणो य । तेउकाए वाउकाए एगो मिच्छदिट्ठी, तेसिं गुणांतरअसंभवाओ ।  
तसकाए चउदस वि । मणुयगइअंतम्भावओ । जोए=जोगतिगे तेरस गुणट्टाणा अजोगिवज्जा ।  
वेए=वेयतिगे तिकसाए=कोहे माणे मायाए एएसिं छण्हं पढमा नव गुणट्टाणा । लोभस्स एए  
नव, दसमो सुहुमसंपराओ ॥२८॥

मइसुयओहिदुगे नव अजयाइ जयाइ सत्त मणनाणे ।

केवलदुगंमि दो तिन्नि दो व पढमा अनाणतिगे ॥२९॥

(राम०) महनाणं सुयनाणं ओहिनाणं ओहिदरिसणं एएसिं चउण्हं नव गुणट्टाणा-  
अविरयसम्मत्ताओ आरब्भ जाव खीणमोहो । मणपज्जवनाणे सत्त गुणट्टाणा-पमत्तसंजयाओ  
जाव खीणमोहो । केवलनाणे केवलदरिसणे दो गुणट्टाणा-सजोगी अजोगी य । अन्नाणतिगे=  
मइअन्नाणे सुयअन्नाणे विमंगलक्खणे पढमा सिन्धि गुणट्टाणा अहवा दोन्धि गुणट्टाणा-मिच्छदिट्ठी  
सासायणो य । केसिं मएण मिस्सो वि अन्नाणी मरुइ, नाणकज्जाकरणाओ ॥२९॥

सामाइयछेएसुं चउरो परिहार दो पमत्ताई ।

देससुहुमे सगं पढमत्रमत्रउअजयअहखाए ॥३०॥

(राम०) सामाइए छेओवट्टावणिए य चत्तारि गुणट्टाणा-पमत्तअपमत्तअपुच्चकरणअनियट्ठि-  
षायरा । परिहारविसुद्धीए दो-पमत्तो अपमत्तो य । देसे देसविरओ । सुहुमे सुहुमसंपराओ । पढमा  
चत्तारि गुणट्टाणा अविरयस्स । चरिमा उवसंतमोहाइया चत्तारि गुणट्टाणा अहखायचरित्तस्स ॥३०॥

बारस अचक्खुचक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त ।

सुक्काएँ तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(राम०) बारस गुणट्टाणा सजोगि-अजोगिवज्जा पढमा चक्खुस्स अक्खुस्स य । लेसासु  
तिसु किन्हनीलकाउसु पढमा छ गुणट्टाणा । तेउपम्हाए सत्तमो अप्पमत्तो । सुक्कलेसाए सव्वे  
अजोगिवज्जा तेरस । भव्वस्स चउदस वि गुणट्टाणा । अभव्वस्स एगं मिच्छत्तं ॥३१॥

वेयग खड्ग उवसमे चउरो एक्कारसट्ट तुरियाई ।  
सेसतिगे सट्टाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(राम०) वेयगसम्मदिट्ठिस्स चत्तारि—अविरयसम्मदिट्ठी देसविरओ पमत्तो अपमत्तो य ।  
खाइगसम्मदिट्ठिस्स एगारस—अविरयसम्माओ जाव अजोगिगुणट्टाणं । उवसमसम्मदिट्ठिस्स अट्ट-  
अविरयसम्मत्ताओ जाव उवसंतगुणट्टाणं, अट्ट गुणट्टाणा उवसमसम्मत्ते । तत्थ अविरय-देशवि-  
स्य-पमत्त-अपमत्ता उवसमसेट्ठिं आरुहंति, कइं उवसमसम्मत्तं ? भन्नइ-मिच्छदिट्ठी अनियट्ठिकरण-  
ट्ठिओ तहाविह्विसुद्धिसम्मत्तिओ उवसमसम्मत्तं चउण्हमेगयरं च पडिवज्जेइ । अविरओ देसो पमत्तो  
अपमत्तो वा । एवं उवसमसम्मत्तं । उक्तं च—

“सोळस मंदणुभागं संजमगुणवट्ठिओ जयइ । सोळस धीणगिट्ठित्तिगमिच्छत्तापढमकसाया ॥”

‘सेसतिगे सट्टाणं’ मीसे मीसं, सासायणे सासायणं, मिच्छे मिच्छत्तं । सन्नपंचेदियस्स  
चउदस वि गुणट्टाणा । असन्निसु दो-मिच्छदिट्ठी सासायणो य ॥३२॥

आहारगेषु पठमा तेरसणाहारगेषु पंच इमे ।  
‘पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(राम०) आहारगेषु सच्चवे अजोगिकेवलिवज्जा तेरस । अणाहारगेषु पंच इमे पढमा दो=मिच्छ-  
दिट्ठी सासायणो य, अंतिमा दो=सजोगिकेवली सधुग्घाए अजोगिकेवली य, अविरयसम्मदिट्ठी  
पंचमो य, विग्गाहर्गण पढमविग्गहं मोत्तुं ।

गइयाइसु बासट्ठिमेएसु इय भणियपयारेण गुणठाणा ‘मग्गियत्ति सेसो ॥३३॥

इयाणि जोगा मग्गिज्जंति । अओ पढमं ताव ते निदंसेइ—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य ।

उरलविउव्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(राम०) पुव्वमणिया जोगवियारणा इह दट्टच्चा ॥३४॥

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।

जोगा तिरियगईए तेरस आहारगदुगूणा ॥३५॥

(राम०) देवगईए निरयगईए एक्कारस जोगा, ओरालियदुगआहारदुगणां एएसिं  
असंभवाओ । तिरियगईए तेरस जोगा, आहारगदुगस्स असंभवाओ ॥३५॥



नरगइपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।

अच्चक्खुल्लेसाभवसम्मदुगसन्निसु य सव्वे ॥ ३६ ॥

(राम०) मणुयगईए १ पंचिदिए २ तसकाए ३ कायजोगे ४ पुरिसवेए ५ नपुसंगवेए ६ कसायचउक्के वि १० मइनाणे ११ सुयनाणे १२ ओहिनाणे १३ ओहिदरिसणे १४ अच्चक्खुदरिसणे १५ लेसछक्के २१ भव्वे २२ वेयगसम्मत्ते २३ खाइगसम्मत्ते २४ सन्निए य २५, एएसिं पणवीसाए दाराणं पणरस वि जोगा । सव्वेसिं मणुयगईसंभवाओ ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।

कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(राम०) एगिंदिएसु पंच जोगा-कम्मइगं ओरालियदुगं वेउव्वियदुगं च । वेउव्वियदुगं वाउए पडुच । कम्मइगं ओरालियदुगं असच्चमोसभासां य चत्तारि जोगा वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएसु ॥३७॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।

पढमंतिमणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥३८॥

(राम०) कम्मणं ओरालियदुगं च तिन्नि जोगा थावरकाए । थावरकाओ पंचहा पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइ-कासो । वाए विउव्विदुगेण जुया ते चैव जोगा पंचेव । पढमं सच्चमणं सच्चभासा अंतिमं असच्चमोसमणं असच्चमोसा भासा य, कम्मणं ओरालियदुगं च सत्त जोगा केवलदुगंमि ॥३८॥

थीवेयअनाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।

तेरस मणवइमणनाणछेयसामइयचक्खुसु य ॥३९॥

(राम०) थीवेओ १ अन्नाणतिगं ४ उषसमसम्मत्तं ५ अविरओ ६ सासायणं ७ अमव्वं ८ मिच्छं ९ च, एएसु नवसु दारेसु तेरस जोगा । जओ आहारदुगस्तासंभवो । मणजोगो १ वइजोगो २ मणपज्जवनाणं ३ छोओवट्टावणियं ४ सामाहयं ५ चक्खुदरिसणं ६ च एएसिं छण्हं दाराणं ओरालियमिस्सकम्मइगवज्जा तेरस जोगा । अपडिपुन्नो मिस्सो इति कठं वेउच्चाहास्गामिस्सेसु चक्खुदरिसणं १ भाविनि मूतवदुपचारात् । भणियं च—  
“थीमाइनवसु तेरस जोगांहारेसु हारगदुगणा । कम्मुरलमीसरुणा मणमाईणं तु छण्हं पि ॥” ॥३९॥

परिहारे सुहुमे नत्र उरलवइमणा सकम्मुरलमिस्सा ।  
अहक्खाए सविउव्वा मीसे देसे सविउवदुगा ॥ ४० ॥

(राम०) परिहारविसुद्धीए सुहुमसंपराए य नव नव जोगा मणचउक्कं वइचउक्कं ओरा-  
लियसरीरं च । ते य नवजोगा अहक्खाए ओरालियमीसकम्मगसरीरेण सह एक्कारस इवंति ।  
अहक्खाए चारिने चत्तारि गुणट्टाणा । तत्थ अजोगी अजोगो । उवसंतमोहखीणमोहे पडुच्च  
नव नव जोगा । सजोगिकेवल्लिस्स केवल्लनाणभणिया सजोगे सत्त पुच्चुत्ता मिलिया अहक्खाए  
एक्कारस । ते नव पुच्चुत्ता वेउच्चियसरीरेण दस जोगा मीसे । नव पुच्चुत्ता वेउच्चियदुगेण एक्का-  
रस जोगा देसविरअस्स ॥४०॥

कम्मुरलविउवदुगाणि चरम भामा य छ उ असन्निम्मि ।  
जोगा अकम्मगाहारगेषु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥

(राम०) कम्मगं ओरालियदुगं वेउच्चियदुगं असच्चमोसा भासा य छ जोगा असन्निस्म ।  
जओ सन्वे असन्धिपंचिदियविगलिं 'दियादओ असन्निगहणेण गहिया । जोगा चउदस आहारगस्स  
कम्मइगविणा । अणाहारगे एगो कम्मणजोगो । मग्गणठाणेषु जोगा मग्गिया ॥४१॥

इयाणि उत्रओगा मग्गिज्जंति । अओ पढमं ते चेव निदंसेइ—

नाणं पंचविहं तइ अन्नाणतिगं ति अट्ट सागारा ।  
चउदंसणमणगारा बारस जियलक्खणुवओगा ॥४२॥

(राम०) पंच नाणाणि, तिभि अन्नाणाणि; एए अट्ट सागरोवओगा । चत्तारि दंसणाणि  
अणागारोवओगा । एवं बारस । एए जीवस्स लक्खणं=जीवावबोहस्स कारणं, एएहिं जीवो  
जाणिज्जइ ति जीवलक्खणुवओगा ॥४२॥

मणुयगईए बारस मणकेवल्लदुरहिया नवऽन्नासु ।

थावरइगवितिहंदिसु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥ ४३ ॥

(राम०) मणुस्सगईए बारस वि उवओगा । जओ सन्वेसिं संभवो । मणपज्जवनाणकेव-  
ल्लदुगवज्जिया नव अण्णासु तिसु गईसु । एएसिं तिण्हं उवओगाणं असंमवाओ । थावरकाया  
पंच, एगिदिय-वेहंदिय तेहंदियाण य, एएसिं अट्टण्हं दाराणं तिभि उवओगा—अचक्खुदंसणं  
मइअण्णाणं सुयअन्नाणं च ॥४३॥

नरगइपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।

अच्चक्खुल्लेसा भवसम्मदुगसन्निसु य सव्वे ॥ ३६ ॥

(राम०) मणुयगईए १ पंचिंदिए २ तसकाए ३ कायजोगे ४ पुरिसवेए ५ नपुसंगवेए ६ कमायचउक्के वि १० मइनाणे ११ सुयनाणे १२ ओहिनाणे १३ ओहिदरिसणे १४ अच्चक्खुदरिसणे १५ लेसछक्के २१ भव्वे २२ वेयगसम्मत्ते २३ खाइगसम्मत्ते २४ सन्निए य २५, एएसिं पणवीसाए दाराणं पण्णरस वि जोगा । सव्वेसिं मणुयगईसंभवाओ ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।

कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(राम०) एगिंदिएसु पंच जोगा—कम्मइगं ओरालियदुगं वेउच्चियदुगं च । वेउच्चियदुगं वाउए पडुच । कम्मइगं ओरालियदुगं असच्चमोसभासा य चत्तारि जोगा वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएसु ॥३७॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।

पढमंतिमणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥३८॥

(राम०) कम्मगं ओरालियदुगं च तिन्नि जोगा थावरकाए । थावरकाओ पंचहा पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइ-कायो । वाए विउव्विदुगेण जुया ते चैव जोगा पंचेव । पढमं सच्चमणं सच्चभासा अंतिमं असच्चमोसमणं असच्चमोसा भासा य, कम्मणं ओरालियदुगं च सत्त जोगा केयलिदुगम्मि ॥३८॥

थीवेयअनाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।

तेरस मणवइमणनाणछेयसामहयचक्खुसु य ॥३९॥

(राम०) थीवेओ १ अन्नाणतिगं ४ उवसमसम्मत्तं ५ अविरओ ६ सासायणं ७ अभव्वं ८ मिच्छं ९ च, एएसु नवसु दारेसु तेरस जोगा । जओ आहारदुगस्तासंभवो । मणजोगो १ वइजोगो २ मणपज्जवनाणं ३ छोओवट्टावणियं ४ सामाहयं ५ चक्खुदरिसणं ६ च एएसिं छण्हं दाराणं ओरालियमिस्सकम्मइगवज्जा तेरस जोगा । अपडिपुन्नो मिस्सो इति क्हं वेउच्चाहास्सामिस्सेसु चक्खुदरिसणं १ भाविनि भूतवदुपचारात् । भणियं च—  
“थीमाइनवसु तेरस जोगाहारेसु हारगदुग्णा । कम्मुरलमीसऊणा मणमाइणं तु छण्हं पि ॥” ॥३९॥

परिहारे सुहुमे नव उरलवइमणा सकम्मुरलमिस्सा ।

अहक्खाए सविउव्वा मीसे देसे सविउवदुगा ॥ ४० ॥

(राम०) परिहारविसुद्धीए सुहुमसंपराए य नव नव जोगा मणचउक्कं वइचउक्कं ओरा-  
लियसरीरं च । ते य नवजोगा अहक्खाए ओरालियमीसकम्मगसरीरेण सह एक्कारस हवंति ।  
अहक्खाए चारिणे चत्तारि गुणड्डाणा । तत्थ अजोगी अजोगो । उचसंतमोहखीणमोहे पडुच्च  
नव नव जोगा । सजोगिकेवलस्स केवलनाणमणिया सजोगे सत्त पुव्वुत्ता मिलिया अहक्खाए  
एक्कारस । ते नव पुव्वुत्ता वेउच्चियसरीरेण दस जोगा मीसे । नव पुव्वुत्ता वेउच्चियदुगेण एक्का-  
रस जोगा देसविरक्खस ॥४०॥

कम्मुरलविउव्वदुगाणि चरम भामा य छ उ असन्निम्मि ।

जोगा अकम्मगाहारगेषु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥

(राम०) कम्मगं ओरालियदुगं वेउच्चियदुगं असच्चमोसा भासा य छ जोगा असन्निम्मि ।  
जओ सन्वे असन्निपंचिदियविगल्लिं 'दियादओ असन्निगहणेण गहिया । जोगा चउदस आहारगस्स  
कम्मइगविणा । अणाहारगे एगो कम्मणजोगो । मग्गणठाणेषु जोगा मग्गिया ॥४१॥

इयाणि उवओगा मग्गिज्जंति । अओ पढमं ते चेव निदंसेह—

नाणं पंचविहं तह अन्नाणतिगं ति अट्ट सागारा ।

चउदंसणमणगारा बारस जियलक्खणुवओगा ॥४२॥

(राम०) पंच नाणाणि, तिक्खि अन्नाणाणि, एए अट्ट सागरोवओगा । चत्तारि दंसणाणि  
अणागारोवओगा । एवं बारस । एए जीवस्स लक्खणं=जीवावबोहस्स कारणं, एएहिं जीवो  
जाणिज्जइ त्ति जीवलक्खणुवओगा ॥४२॥

मणुयगईए बारस मणकेवलदुरहिया नवऽन्नासु ।

थावरइगवितिइंदिसु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥ ४३ ॥

(राम०) मणुस्सगईए बारस वि उवओगा । जओ सन्वेसि संभवो । मणपज्जवनाणकेव-  
लदुगवज्जिया नव अण्णासु तिसु गईसु । एएसिं तिण्हं उवओगाणं असंभवाओ । थावरकाया  
पंच, एगिदिय-वेइंदिय तेइंदियाण य, एएसिं अट्टण्हं दाराणं तिक्खि उवओगा-अचक्खुदंसणं  
मइअण्णाणं सुयअन्नाणं च ॥४३॥

चक्खुजुया चउरिंदिसु तं चिय बारस पणिंदितसकाए ।  
जोए वेए सुक्काए भव्वसन्नीसु आहारे ॥ ४४ ॥

(राम०) "तं चिय"ति ते चेव तिन्नि चक्खुजुया चउरिंदिसु चउरो होंति । बारस उवओगा, पंचिंदिए १ तसकाए २ जोगतिगे ५ वेयतिगे ८ सुक्कलेसाए ९ भव्वे १० सणिणए ११ आहारगे य १२ । एएसिं बारसण्हं दाराणं सव्वे वि उवओगा । जओ सव्वेसिं अहिगारिणो चि । कहं ? वेयतिगे बारस वि उवओगा, जाव दस एव संभवन्ति, जओ वेयत्तिगस्स अनियद्धिवायरे उदयवोच्छेओ, सच्चमेयं, परमाकारमात्रमाश्रित्य न दोषः ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।  
केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(राम०) कसायचउक्के ४ लेसापणगे ६ चक्खु १० अचक्खुसु य ११, एएसिं एगारसण्हं दाराणं दस उवओगा, केवलदुगअभावाओ । केवलदुगे दो उवओगा, केवलनाणं दंसणं च । खइगे=खाइगसम्मत्ते नव उवओगा, अन्नाणतिगाभावाओ ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।  
नाणचउदंमणतिगं केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(राम०) पढमनाणचउक्कं ४ पढमसंजमचउक्कं ८ वेयगसम्मत्तं ६ उवसमसम्मत्तं १० ओहिदंसणं च ११, एएसिं एगारसण्हं दाराणं सत्त उवओगा, नाणचउक्कं दंसणतिगं च । अहक्खायचारित्ते एए सत्त केवलदुगं च नव उवओगा ॥४६॥

नाणतिगदंमणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।  
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(राम०) महनाणं सुयनाणं ओहिनाणं ३ चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं ६ च एए छ उवओगा देसविरयस्स । मीसे दंसणतिगं नाणतिगं अन्नाणमीसं । एवं केवलनाणदंसणं मणपज्जवनाणं विणा अविरए नव उवओगा । अविरओ सम्मद्धिटी वा मिच्छद्धिटी वा । सम्मद्धिस्स नाणतिगं दंसणतिगं च एए छ । मिच्छद्धिस्स अन्नाणतिगं दो दंसणा य । एवं नव ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।  
दोदंमणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(राम०) अन्नाणतिगे ३ अभव्वे ४ सासायणे ५ मिच्छे य ६, एएसिं छण्हं दाराणं . पंच

उवओगा, अन्नाणतिगं अचक्खुदंसणं चक्खुदंसणं च । एए चेव विभंगनाणं विण असण्णिस्स चत्तारि उवओगा ॥४८॥

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेषु उवओगा ।

इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेषु ॥ ४९ ॥

(राम०) मणपज्जवनाणचक्खुदंसणरहिया अणाहारे दस उवओगा । जओ नाणतिगं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं च अविरयसम्मदिट्ठिस्स विग्गहगईए, अचक्खुदंसणं अन्नाणतिगं मिच्छदिट्ठिस्स विग्गहगईए लब्भइ । नखु विभंगनाणस्स अपज्जत्ते निसेहो दीसइ, कइं ? एत्थ तं भणियं । भइइ-“विभंगस्स मत्तद्धि” इइ वयगाओ भणियविवाहपन्नत्तिमएण । जओ तत्थ वुत्त-“अवहिं वा विभंगं वा अविग्गहे लब्भइ”त्ति वयणाओ न दोसो केवलदुगं केवलिसभुग्धाते तइय-चउत्थ-पंचमसमएसु लब्भइ । एवं अणाहारगस्स दस उवओगा ।

इय भणियपयारेण गइयाइएसु उवओगा मग्गिया ॥४९॥

इयाणि पुण नयमएण मयंतरेण नाणत्तं इमं वक्खमाणं जोगेषु दट्ठव्वं । तमेव दंसेइ-

तणुवइमणेषु कमसो दुचउत्तिपंचा दुअट्ठुचउचउरो ।

तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(राम०) कायजोगे दो गुणट्ठाणा-मिच्छदिट्ठी सासायणो य । चत्तारि जीवट्ठाणा-सुद्धमभायरएगिदिया पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । तिन्नि उवओगा-मइअन्नाणं सुयअन्नाणं अचक्खुदंसणं च । पञ्च जोगा-कम्मणं ओरालियदुगं वेउव्वियदुगं च, वाउकाइए पड्ठुच्च; जओ कायजोगस्स विवक्खा कया एगस्स । दारं । वइजोगे दो गुणट्ठाणा-मिच्छदिट्ठी सासायणो य । अट्ठ जीवट्ठाणा-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपंचिदिया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य । एए चत्तारि वि अपज्जत्तगा करणेण चेव दट्ठव्वा । न उण लद्धीए । एवं अट्ठ जीवट्ठाणा । चत्तारि उवओगा-दो दंसणा दो अन्नाणा । एवं चत्तारि जोगा-कम्मइगं ओरालियदुगं असच्चमोसमासा य । एसा वइजोगस्स विवक्खा कया । दारं । मणजोगे तेरस गुणट्ठाणाअजोगिं विणा । दो जीवट्ठाणा-एगो सण्णी पज्जत्तगो, बीओ सो चेव करणअपज्जत्तगो लद्धीए पज्जत्तगो गहिओ । उवओगा बारस वि । जोगा तेरस-कम्मइगओरालियमीसरहिया । कइं ? केवलिसस्स दव्वमणा-अविवक्खाओ । एवं मणवइकायविवक्खा कया । मणजोगो वइजोगो करणअपज्जत्तगाण कइं ? मण्णइ-भाविनि मूत्तवदु उपचारात् ॥५०॥

इयाणि लेसामग्गणा मण्णइ । ताओ पुण मग्गणट्ठाणमज्जे वि भणियाओ । संपयं तेसिं चेव मग्गिज्जंति ।

चक्खुजुया चउरिंदिसु तं चिय बारस पणिंदितसकाए ।

जोए वेए सुक्काए भव्वसन्नीसु आहारे ॥ ४४ ॥

(राम०) "तं चिय"ति ते चेव तिभि चक्खुजुया चउरिंदिसु चउरो होंति । बारस उवओगा, पंचिंदिए १ तसकाए २ जोगतिगे ५ वेयतिगे ८ सुक्कलेसाए ९ भव्वे १० सण्णिए ११ आहारगे य १२ । एएसिं बारसण्हं दाराणं सव्वे वि उवओगा । जओ सव्वेसिं अहिगारिणो चि । क्हं १ वेयतिगे बारस वि उवओगा, जाव दस एव संमवति, जओ वेयत्तिगस्स अनियट्ठिचायरे उदयवोच्छेओ, सव्वमेयं, परमाकारमात्रमाश्रित्य न दोषः ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।

केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(राम०) कसायचउक्के ४ लेसापणगे ६ चक्खु १० अचक्खुसु य ११, एएसिं एगारसण्हं दाराणं दस उवओगा, केवलदुगअभावाओ । केवलदुगे दो उवओगा, केवलनाणं दंसणं च । खइगे=खाइगसम्मत्ते नव उवओगा, अन्नाणतिगामावाओ ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।

नाणचउदंमणतिगं केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(राम०) पढमनाणचउक्कं ४ पढमसंजमचउक्कं ८ वेयगसम्मत्तं ६ उवसमसम्मत्तं १० ओहिदंसणं च ११, एएसिं एगारसण्हं दाराणं सत्त उवओगा, नाणचउक्कं दंसणतिगं च । अहक्खायचारित्ते एए सत्त केवलदुगं च नव उवओगा ॥४६॥

नाणतिगदंमणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।

केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजर्यमि नव ॥४७॥

(राम०) मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं ३ चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं ६ च एए छ उवओगा देसविरयस्स । मीसे दंसणतिगं नाणतिगं अन्नाणमीसं । एवं केवलनाणदंसणं मणपज्जवनाणं विणा अविरए नव उवओगा । अविरओ सम्महिट्ठी वा मिच्छहिट्ठी वा । सम्महिट्ठिस्स नाणतिगं दंसणतिगं च एए छ । मिच्छहिट्ठिस्स अन्नाणतिगं दो दंसणा य । एवं नव ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।

दोदंमणनिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(राम०) अन्नाणतिगे ३ अमव्वे ४ सासायणे ५ मिच्छे य ६, एएसिं छण्हं दाराणं पंच

उवओगा, अन्नाणतिगं अचक्खुदंसणं चक्खुदंसणं च । एए चेव विभंगनाणं विण असण्णिस्स चत्तारि उवओगा ॥४८॥

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेषु उवओगा ।

इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेषु ॥ ४९ ॥

(राम०) मणपज्जवनाणचक्खुदंसणरहिया अणाहारे दस उवओगा । जओ नाणतिगं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं च अविरयसम्महिडिस्स विग्गहगईए, अचक्खुदंसणं अन्नाणतिगं मिच्छदिडिस्स विग्गहगईए लब्भइ । नणु विभंगनाणस्स अपज्जत्ते निसेहो दीसइ, कहं ? एत्थ तं भणियं । मन्नइ-“विभंगस्स मन्नट्ठि” इइ वयणाओ भणियविवाहपन्नत्तिमएण । जओ तत्थ वुत्त-“अवहिं वा विभंगं वा अविग्गहे लब्भइ”त्ति वयणाओ न दोसो केवलदुगं केवलिससुग्घाते तइय-चउत्थ-पंचमसमएसु लब्भइ । एवं अणाहारगस्स दस उवओगा ।

इय भणियपयारेण गइयाइएसु उवओगा मग्गिया ॥४९॥

इयाणि पुण नयमएण मयंतरेण नाणत्तं इमं वक्खमाणं जोगेषु दट्ठव्वं । तमेव दंसेइ-

तणुवइमणेषु कमसो दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।

तेरसदुवारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(राम०) कायजोगे दो गुणट्ठाणा-मिच्छदिड्डी सासायणो य । चत्तारि जीवट्ठाणा-सुहुमवायरएगिदिया पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । तिन्नि उवओगा-मइअन्नाणं सुयअन्नाणं अच-क्खुदंसणं च । पञ्च जोगा-कम्मणं ओरालियदुगं वेउच्चियदुगं च, वाउकाइए पडुच्च; जओ काय-जोगस्स विवक्खा कया एगस्स । दारं । वइजोगे दो गुणट्ठाणा-मिच्छदिड्डी सासायणो य । अट्ठ जीवट्ठाणा-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपंचिंदिया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य । एए चत्तारि वि अपज्जत्तगा करणेण चेव दट्ठव्वा । न उण लद्धीए । एवं अट्ठ जीवट्ठाणा । चत्तारि उवओगा-दो दंसणा दो अन्नाणा । एवं चत्तारि जोगा-कम्महंगं ओरालियदुगं असच्चमोसमासा य । एसा वइजोगस्स विवक्खा कया । दारं । मणजोगे तेरस गुणट्ठाणाअजोगिं विणा । दो जीवट्ठाणा-एगो सण्णी पज्जत्तगो, बीओ सो चेव करणअपज्जत्तगो लद्धीए पज्जत्तगो गहि-ओ । उवओगा वारस वि । जोगा तेरस-कम्महंगओरालियमीसरहिया । कहं ? केवलिसस्स दव्वमणा-अविवक्खाओ । एवं मणवइकायविवक्खा कया । मणजोगो वइजोगो करणअपज्जत्तगाण कहं ? मण्णइ-भाविनि भूतवद् उपचारात् ॥५०॥

इयाणि लेसामग्गणा मण्णइ । ताओ पुण मग्गणट्ठाणमज्जे वि मणियाओ । संपयं तेसिं चेव मग्गिज्जंति ।



लेसा उ तिन्नि पढमा नारगविगलग्गिवाउकाएसु ।  
एग्गिदिभूतरूदगअसन्निसुं पढमिया चउरो ॥५१॥

(राम०) निरयगईए विगलतिगे तेउकाएवाउकाए य पढमाओ तिन्नि लेसाओ । एग्गि-  
दिय-पुढविकाय-वणस्सइकाय-आउकायअसन्नीणं पढमा चत्तारि लेसाओ । “असन्नीणं” ति  
वायर-एग्गिदियअपज्जत्तगहणं, तस्स तेउलेससंभवो ॥५१॥

केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेषु सुक्कलेसेव ।  
लेसासु छसु सठाणं गइयाइसु छावि सेसेसु ॥५२॥

(राम०) केवलनाणे केवलदंसणे अहक्खायचारित्ते सुहुमसंपरायचारित्ते एगा सुक्कलेसा ।  
लेसासु छसु सट्टाणं=स्वकीयं स्वकीयं स्थानम् । गइयाईणं सेसाणं एगचत्तालीसाए दाराणं सन्वेसिं  
छ लेसाओ । नणु जइ एगचत्तालीसाए दाराणं छ लेसा कहिया, कइं सामाइयाइसु किण्हाइलेसा ?  
जओ गुणलामो सुहलेसाए न अबहा संभवो । भण्णइ- जओ एक्केकीए तारतमपरिणाममेएणं  
मेया असंखेज्जा । तेहिंतो जे मंदतरा परिणामविसेसा ते पडुच्च सामाइयाइसु वुत्ता । अओ  
भण्णइ मणपज्जवनाणसामाइयच्छेओवट्टावणियपरिहारविसुद्धियदेसविरयाईसु वि ठाणेसु असुद्धले-  
साणं न विरोहो उप्पत्तिकालं मोत्तूण । उक्तञ्च—

सन्मत्तासुयं सव्व सु लहइ सुद्धासु तिसु य चारित्तं । पुब्बपड्विवण्णओ पुण, अप्पाथरीए उ लेसाए ॥५२॥

इयाणिं अप्पावहुयं मन्नइ

गइयाइसु अप्पवहुं भणामि सामन्नओ सठाणे वि ।  
नरतिरयदेवतिरिया थोवा दुअसंखण्तगुणा ॥५३॥

(राम०) गइयाइसु चउइससु मग्गणट्टाणेसु पत्तेयं पत्तेयं सदूठाणे अप्पावहुयं भणामि ।  
सव्वथोवा मणुयगइजीवा, निरयगईए असंखगुणा, तओ देवगईए असंखेज्जगुणा, तिरियगईए  
अणंतगुणा जीवा । दारं ॥५३॥

पणचउत्तिटुएगन्दी थोवा तिन्नि अहिया अणन्तगुणा ।  
तमतंउपुढावजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥५४॥

(राम०) थोवा पंच्चिदिया १, । चउरिंदिया विसेसाहिया २, तेइंदिया विसेसाहिया  
३, वेइंदिया विसेसाहिया ४, तओ एग्गिदियजीवा अणंतगुणा ॥५४॥

थोवा असंखगुणिया तिनन्ति विसेसाहिया अणंतगुणा ।

मणत्रयणकायजोगी थोवअसंखगुणन्तगुणा ॥५५॥

(राम०) थोवा तसकाइया १, तेउकाइया असंखगुणा २, पुढविकाइया विसेसाहिया ३, आउकाइया विसेसाहिया ४, वाउकाइया विसेसाहिया ५, वणस्सइकाइया अणंतगुणा ६ दारं । थोवा मणजोगी १, वइजोगी असंखगुणा १, कायजोगी अणंतगुणा ३ । दारं ॥५५॥

पुरिसेहितो इत्थी संखेज्जगुणा नपुंसणन्तगुणा ।

माणी कोही मायी लोभी कमसो विसेसाहिया ॥५६॥

(राम०) सन्वथोवा पुरिसवेया, इत्थिवेया संखेज्जगुणा । उक्तञ्च—

तिगुणा तिरुवअहिया तिरियाओ इत्थिओ सुणेयन्वा । सत्तावीमगुणा पुण मणुयाणं तदहिगा चेत्त ।  
वत्तीमगुणा वत्तीसरुवअहिया य तद्द य देवीओ । देवानं इह वोत्तं सुत्ते जीवाभिगमनामे ॥  
तेहितो नपुंसगा अणंतगुणा, जओ पंचेदिया केई, एगिदियविगल्लिदिया सन्वे नपुंसगा  
। दारं । सन्वथोवा माणकसाई १, कोहकसाई विसेसाहिया २, मायाकसाई विसेसा-  
हिया लोभकसाई कमसो विसेसाहिया ४, सन्वजीवाणं कसाया पत्तेयं पत्तेयं अत्थित्ति कहं  
ऊणाहियत्तं ? भन्नइ,—उदयं पडुच्च माणोदए वइमाण थोवा, सेसा कमेण विसेसाहिया,  
तेण अप्पबहुयं न दोसो । दारं ॥५६॥

मणपज्जविणो थोवा ओहीनाणी तओ असंखगुणा ।

मइसुयनाणी तत्तो विसेसाहिया समा दोवि ॥५७॥

(राम०) सन्वथोवा मणपज्जवनाणी, जओ ते मणुस्सा चरित्तिणो य; ओहिनाणी तओ  
असंखगुणा, जओ चउगहएसु वि ओहिनाणमत्थि; तओ मइनाणी सुयनाणी दो वि तुल्ला,  
पुन्वेहितो विसेसाहिया, जओ तिरियमणुया सम्महिदिउणो ओई विण्ण केइ अत्थि, तेहिं  
साहिया ॥५७॥

विम्भंगिणो असंखा केवलनाणी तओ अणन्तगुणा ।

तत्तोऽणन्तगुणा दो मइसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥५८॥

(राम०) तओ विम्भंगनाणी असंखगुणा, एए वि चउगहया वि अत्थि, तओ केवलनाणी  
अणंतगुणा, जेण सिद्धा वि लम्भन्ति; तत्तो अणंतगुणा मइअन्नाणिसुयअन्नाणी, जओ एगिदिया  
सन्वे वि लम्भन्ति; दोन्नि वि सट्ठणओ तुल्ला । दारं ॥५८॥

सुहुमपरिहारअहखायछेयसामइयदेमजयअजया ।

थोवा संखेजगुणा चउरो अस्संखणन्तगुणा ॥५९॥

(राम०) सव्वथोवा सुहुममंपरायचारिची, जेण उवमामग खन्नगा सुहुमलोमकिट्टिवैयगा धिप्पंति १, तओ संखेयगुणा परिहारविसुद्धीया, जओ विसिट्ठतवपडिवन्नगा भरहेरवय-दससु खिचेसु चरिमाइमतिथयरतित्थेसु नवकगणट्टिया धिप्पंति २, तओ अहक्खायचारिची संखेजगुणा, जओ उवसंतखीणमोहे केवली य सव्वे भवत्था धिप्पंति ३, तओ छेओवट्टावणिय-चारिची संखेजगुणा, जओ पंचभरहे पंचएरवये पढमंतिमतिथयरतित्थट्टिया छेओवट्टावणि-यचारित्तपडिवन्ना धिप्पंति ४, तओ संखगुणा सामाइयचारिची, जओ भरहएरवयमहाविदेहेसु सामाइयचारित्तट्टिया धिप्पंति ५, देसविरया असंखेजगुणा, जओ तिरिएसु देसविरई अत्थि ६, तओ अविरया अणंतगुणा, जओ सव्वे एगिंदियादओ धेप्पंति, । दारं ॥५९॥

इय ओहिचक्खुकेवलअचक्खुदंसी कमेण विन्नेया ।

थोवा अस्संखगुणा अणन्तगुणिया अणन्तगुणा ॥६०॥

(राम०) सव्वथोवा ओहिदंसी १, चक्खुदंसी असंखगुणा २, केवलदंसी अणंतगुणा ३, सिद्धाणं पि दंसणमत्थित्ति । अचक्खुदंसी अणंतगुणा ४, एगिंदियाणं पि गहणाओ । दारं ॥६०॥

सुक्का पम्हा तेऊ काऊ नीला य किण्हलेमा य ।

थोवा दो संखगुणाऽणन्तगुणा दो विसेसाहिया ॥६१॥

(राम०) सव्वथोवा सुक्कलेसा १, पम्हलेसा संखेयगुणा २, तेउलेसा संखेयगुणा ३, तओ काउलेसा अणंतगुणा ४, जओ एगिंदियादओ धेप्पंति, तओ नील्लेसा विसेसाहिया ५, किण्ह-लेसा विसेसाहिया ६ । दारं ॥६१॥

थोवा जहणजुत्ताऽणंतयतुल्ल त्ति इह अभव्वजिया

तेहिंतोऽणंतगुणा भव्वा निव्वाणगमणरिहा ॥६२॥

(राम०) सव्वथोवा अभव्वा, ते य जहणं जुत्ताणंतयं, नवविहस्स अणंतस्स चउत्थं, तेण तुल्ला=समा इह=अप्पबहुत्ते, तेहिंतो भव्वा अणंतगुणा, केरिसा भव्वा ? आह—'निव्वाण गमणरिह' त्ति निव्वाणं=मोक्खो तत्थ गमणं अरिहंति=जोग्गा हुंति । जे ते निव्वाण गमणा-रिहा । दारं । ॥६२॥

सासाणउवसमियमिस्सवेयगक्खइग्गमिच्छदिट्ठी उ ।

थोवा दो संखगुणा असंखगुणिया अणंता दो ॥६३॥

(राम०) सव्वथोवा सासायणसम्मदिट्ठी १, उवसमसम्मदिट्ठी संखेप्रगुणा २, सम्मामिच्छदिट्ठी संखेयगुणिया ३, जं पुण उवरि सासायणाहिंतो मिस्सा असेखगुणिया भणिया तं गंधंतरमएण संभाविज्जइ. वेयगसम्मदिट्ठी असेखगुणा ४, खाइगसम्मदिट्ठी अणंत-गुणा ५, सिद्धा वि गहिया, तओ मिच्छदिट्ठी अणंतगुणा ६, एगिंदियादओ गहिया । दारं । ॥६३॥

सन्नी थोवा तत्तो अणन्तगुणिया असन्निणो 'हुन्ति ।

थोवाणाहारजिया तदसंखगुणा सआहारा ॥६४॥

(राम०) सव्वथोवा सण्णी १, असण्णी अणंतगुणा २. जओ असन्निपंचेदिया चउरिंदिया तेइंदिया वेइंदिया एगिंदिया य असन्निगहणेण गहिया । दारं । थोवा अणाहारजिया ३, जओ विग्ग-इगइणो पढमविग्गहं मोत्तु तहा केवलीसम्मघायगया सेलेसीपडिवन्ना य तहा सिद्धा अणाहारा, नो अन्ने, आहारगा असेखेज्जगुणा, जओ पुब्बुत्ता मोत्तूण सेसा सव्वे सआहारा जीवा । दारं ।

भणियं मग्गणठाणेषु अप्पबहुत्तं ॥६४॥

इयाणिं सीसमईबोहणःथं सयमेव मग्गणट्ठाणेषु मग्गणट्ठाणमग्गणा वंधुत्तरहेउमग्गणा य कीरति—

तत्थ मूलमेया मग्गणाट्ठाणाण चउदस विउत्तरमेएसु वासट्ठीए पाएणं संभवन्ति ।

उत्तरमेया पत्तयं पत्तयं कस्स वि केत्तिया १, तं मग्गणइ—

तत्थ गइदारे-देवगईए देवगई पंचिदियत्तं तसत्तं जोगतिगं पुरिसित्थिदेओ कसायचउक्कं नाणतिगं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणतिगं लेसल्लक्कं भव्वदुगं सम्मत्तल्लक्कं सन्नी आहारदुगं एवं एगुणचत्ता । मणुयगईए गइतिगं एगिंदिय विगलजाइचउक्कं थावरपणगं एए धारस वज्जिच्चा पंचासा । तिरियगईए केवलदुगं गइतिगं मणपज्जवनार्ण संजमपंचगं एए एक्कारस वज्जिच्चा एक्कावन्ना । निरयगईए जहा देवगईए नवरं नपुंसवेओ एगो 'सा य गई सुमलेसतिगं थीपुमं वज्जिच्चा पणतीसा ।

इंदियदारे-एगिंदिएसु तिरियगई एगिंदियत्तं थावरपणगं कायजोओ नपुंसवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो अचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं मिच्छत्तसासणे असण्णी आहारदुगं एवं अट्ठापीसा । विगलतिगे तिरियगई वेइंदियत्तं तसं कायजोगो वइजोगो नपुंसवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो अचक्खुदंसणं पढमलेसतिगं भव्वदुगं

सासणमिच्छते असन्नी आहारदुगं एए चउवीसा । नवरं चउरिंदिए चक्खुदंसणं पणवीसा । पंचिंदिएसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं एए नव वज्जित्ता तेवन्ना होइ ।

कायदारे-पुढविकाए तिरियगई एगिंदियत्तं पुढविकाओ कायजोगो नपु'सगवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो अचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं सासणमिच्छते असन्नी-आहारदुगं एया चउवीसा । एवं सेसेसु वि आउतेउवाउवणस्सईसु । नवरं तेउवाउकाए सासणतेउलेसे वज्जित्ता वावीसा । तहा आउकाए' इच्चाइ भाणियव्वं । तसकाए थावरपणगं एगिंदियजाई वज्जित्ता छप्पन्ना ।

जोगदारे-मणजोगे एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं असण्णी अणाहार एए एककारस वज्जित्ता एककावन्ना । वइजोगे विगलतिगेण असन्नी पणवन्ना । कायजोगे सव्वे ।

वेयदारे-पुरिसवेए एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं सुहुमसंपरायअहक्खायचारित्तं इत्थिनपु'सगवेयं असन्नी नरयगई वज्जित्ता पणयालीसा होइ । एवं इत्थिवेए वि । नवरं इत्थिवेओ भाणियव्वो पुरिसनपु'गवे यपरिहारविसुद्धिनिसेहो कायव्वो ४४ । नपु'सगवे इत्थिपुरिसवेओ केवलदुगं सुहुमसंपरायअहक्खायचारित्ते देवगई वज्जित्ता पणवन्ना ।

कसायदारे-कसायचउक्के वि पत्तेयं पत्तेयं तिष्णि कसाए केवलदुगं सुहुमसंपराय-अहरवायचारित्ते वज्जित्ता पणपन्ना होइ । नवरं लोमे सुहुमो वि होइ, एवं छप्पन्ना ।

नाणदारे-महसुयओहिसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं अन्नाणतिगं मिच्छत्तसासणे अमव्वं असन्नी एए वज्जित्ता सेसा चोयालीसा । मणनाणे मणुयगई पंचिंदियत्तं तसत्तं जोयतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमपणगं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं सत्ततीसा होइ । केवलनाणे मणुयगई पंचिंदियत्तं तसत्तं जोगतिगं केवलनाणं अहक्खायचारित्तं केवलदंसणं सुक्कलेसा भव्वत्तं खाइगं सम्मत्तं सण्णी आहारगदुगं पनरस हुंति । महअन्नाणसुयअन्नाणोसु नाणपंचगं संजमछक्कं केवलदंसणं ओहिदंसणं पढमसम्मत्तचउक्कं वज्जित्ता सेसा पणयालीसा । विभंगे एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं नाणपंचगं पढमसंजमछक्कं ओहिकेवलदंसणे पढमसम्मत्तचउक्कं असन्नी एए वज्जित्ता पणतीसा ।

संजमदारे-सामाइयच्छेओवट्ठावणियपरिहारगेसु पत्तेयं पत्तेयं मणुयगई पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं स्वं स्वं चारित्रं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं नवरं परिहारविसुद्धीए उवसमसम्मत्ते भयणा सन्नी आहारगं तेचीसा । नवरं परिहारविसुद्धिगे थीवेओ न होइ तओ षचीसा । सुहुमसंपराए मणुयगई पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं लोहकसाउं ।

नाणचउक्कं सुहुमसंपरायं दंसणतिगं केवलं विणा सुवकलेसा भच्चं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगं एकवीसा । अहखाए लोमं वज्जिता केवलदुगेण अनाहारगेण य तेवीसा । देसविराए मणुयतिरिय-गईओ पंचिदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं मइसुयओहिनाणाणि देसविरई दंसणतिगं लेसाछक्कं भच्चं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एए तेचीसा । अविराए केवलदुगं मणपज्जवनाणं संजमछक्कं एए वज्जिता तेवन्ना ।

दंसणदारे-चक्खुदंसणे एगिदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-थावरपणगं केवलदुगं अणाहारं एए वज्जिता एककावन्ना । अचक्खुदंसणे केवलनाणदंसणे वज्जिता सट्ठी । ओहिदंसणे ओहिनाणवत् । केवलदंसणे केवलनाणवत् ।

लेसादारे-पढमलेसतिगे पत्तेयं पत्तेयं केवलदुगं अहखायं सुहुमसंपरायं विवक्खलेसापणगं वज्जिता तेवन्ना होइ । एवं तेउलेसे नवरं विगलजाइतिगं तेउकायवाउकाए निरयगई वज्जिता सत्तालीसा । पम्हसुक्कलेसाए वि एगिदियपुढविआउवणस्सइअसणी वज्जिता वायालीसा । परं सुक्कलेसाए अहखायं सुहुमसंपरायं केवलदुगं पक्खिविय छायालीसा ।

भव्वदारे-भव्वे अभच्चं विणा सव्वे । अभव्वे नाणपंचकं संजमछक्कं दंसणदुगं भव्वं सम्मत्तपंचगं वज्जिता तेयालीसा ।

सम्मत्तदारे-वेयगउवसमसम्मत्तेसु एगिदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं अन्नाणतिगं सुहुमसंपरायअहक्खायचारित्रमीससासणमिच्छत्ताणि सम्मत्तदुगं विवक्खं असन्नी अभच्चं वज्जिता पत्तेयं पत्तेयं उगचत्ता । नवरं उवसमसम्मत्ते सुहुमअहक्खायचारित्तेहि एकचत्ता । एवं खाइग-सम्मत्ते वि । परं केवलदुगे पक्खित्ते तेयालीसा । मिस्से गइचउक्कं पंचिदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं नाणमीसं असंजमो दंसणतिगं लेसाछक्कं भच्चं मीसं सम्मत्तं सन्नी-आहारगं तेचीसा । सासणे वि नवरं एगिदियजाइविगलिदियजाइचउक्कं पुढविआउवणस्सइ-असन्नी अणाहारगं च पक्खिविय वायालीसा । मिच्छदिट्ठस्स नाणपंचगं संजमछक्कं ओहिकेवल-दंसणे सम्मत्तपंचकं वज्जिता चउयालीसा ।

सन्निदारे-सन्निसु एगिदियजाई विगलतिगं थावरपणगं असन्नी दस वज्जिता वावन्ना । असणिसु मणुयतिरियगई जाइपंचगं छक्काया कायजोगो वइजोगो नपुंसगवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो चक्खुअचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं सासणमिच्छत्ते असन्नी आहा-रदुगं छचीसा ।

आहारदारे-आहारे अणाहारगं विणा एगसट्ठी । अणाहारे संजमचत्तारि अहखायं विणा मीसदेसविरई मणनाणं आहारगं चक्खुदंसणं वज्जिता तेवन्ना ।

मणिया मग्गणट्ठाणेषु मग्गणठाणमग्गया ।

सासणमिच्छते असन्नी आहारदुगं एए चउवीसा । नवरं चउरिदिए चक्खुदंसणं पणवीसा । पंचिदिएसु एगिदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं एए नव वज्जित्ता तेवन्ना होइ ।

कायदारे-पुढविकाए तिरियगई एगिदियत्तं पुढविकाओ कायजोगो नपुंसगवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो अचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं सासणमिच्छते असन्नी आहारदुगं एया चउवीसा । एवं सेसेसु वि आउतेउवाउवणस्सईसु । नवरं तेउवाउकाए सासणतेउलेसे वज्जित्ता वावीसा । तहा आउकाए इच्चाइ भाणियव्वं । तसकाए थावरपणगं एगिदियजाई वज्जित्ता छप्पन्ना ।

जोगदारे-मणजोगे एगिदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं असण्णी अणाहार एए एक्का-रस वज्जित्ता एक्कावन्ना । वइजोगे विगलतिगेण असन्नी पणवन्ना । कायजोगे सव्वे ।

वेयदारे-पुरिसवेए एगिदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं सुहुमसंपरायअहखाय-चारित्तं इत्थिनपुंसगवेयं असन्नी नरयगई वज्जित्ता पणयालीसा होइ । एवं इत्थिवेए वि । नवरं इत्थिवेओ भाणियव्वो पुरिसनपुंसगवे यपरिहारविसुद्धिनिसेहो कायव्वो ४४ । नपुंसगदे इत्थिपुरिसवेओ केवलदुगं सुहुमसंपरायअहखायचारित्ते देवगई वज्जित्ता पणवन्ना ।

कसायदारे-कसायचउक्के वि पत्तेयं पत्तेयं तिन्नि कसाए केवलदुगं सुहुमसंपराय-अहरवायचारित्ते वज्जित्ता पणवन्ना होइ । नवरं लोमे सुहुमो वि होइ, एवं छप्पन्ना ।

नाणदारे-मइसुयओहिसु एगिदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं अन्नाणतिगं मिच्छत्तसासणे अमव्वं असन्नी एए वज्जित्ता सेसा चोयालीसा । मणनाणे मणुयगई पंचिदियत्तं तसत्तं जोयतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमपणगं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं सत्ततीसा होइ । केवलनाणे मणुयगई पंचिदियत्तं तसत्तं जोगतिगं केवलनाणं अहखायचारित्तं केवलदंसणं सुक्कलेसा भव्वत्तं खाइगं सम्मत्तं सण्णी आहारगदुगं पनरस हुंति । मइअन्नाणसुयअन्नाणोसु नाणपंचगं संजमछक्कं केवलदंसणं ओहिदंसणं पढमसम्मत्तचउक्कं वज्जित्ता सेसा पणयालीसा । विमंगे एगिदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं नाणपंचगं पढमसंजमछक्कं ओहिकेवलदंसणे पढमसम्मत्तचउक्कं असन्नी एए वज्जित्ता पणतीसा ।

संजमदारे-सामाइयक्खेओवट्ठावणियपरिहारगेसु पत्तेयं पत्तेयं मणुयगई पंचिदियत्तं तसं जोग-तिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं स्वं स्वं चारित्रं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं नवरं परिहारविसुद्धीए उवसमसम्मत्ते भयणा सन्नी आहारगं तेत्तीसा । नवरं परिहारविसुद्धिगे थिवेओ न होइ तओ वत्तीसा । सुहुमसंपराए मणुयगई पंचिदियत्तं तसं जोगतिगं लोहकसाटे ।

नाणचउक्कं सुहुमसंपरायं दंसणतिगं केवलं विणा सुवकलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगं एकवीसा । अहखाए लोभं वज्जिता केवलदुगेण अनाहारगेण य तेवीसा । देसविरए मण्युतिरिय-गईओ पंचिदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं मइसुयओहिनाणाणि देसविरई दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एए तेत्तीसा । अविरए केवलदुगं मणपज्जवनाणं संजमछक्कं एए वज्जिता तेवन्ना ।

दंसणदारे-चक्खुदंसणे एगिंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-थावरपणगं केवलदुगं अणाहारं एए वज्जिता एकवाव्वा । अचक्खुदंसणे केवलनाणदंसणे वज्जिता सट्ठी । ओहिंदंसणे ओहिनाणवत् । केवलदंसणे केवलनाणवत् ।

लेसादारे-पढमलेसतिगे पत्तेयं पत्तेयं केवलदुगं अहखायं सुहुमसंपरायं विवक्खलेसापणगं वज्जिता तेवन्ना होइ । एवं तेउलेसे नवरं त्रिगलजाइतिगं तेउकायवाउकाए निरयगई वज्जिता सत्तालीसा । पम्हसुक्कलेसाए वि एगिंदियपुढविआउवणस्सइअसण्णी वज्जिता वायालीसा । परं सुक्कलेसाए अहक्खायं सुहुमसंपरायं केवलदुगं पक्खिविय छायालीसा ।

मव्वदारे-मव्वे अभव्वं विणा सव्वे । अभव्वे नाणपंचकं संजमछक्कं दंसणदुगं भव्वं सम्मत्तपंचगं वज्जिता तेयालीसा ।

सम्मत्तदारे-वेयगउवसमसम्मत्तेसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं अक्षाणतिगं सुहुमसंपरायअहक्खायचारित्रमीससासणमिच्छत्ताणि सम्मत्तदुगं विवक्खं असन्नी अभव्वं वज्जिता पत्तेयं पत्तेयं उणचत्ता । नवरं उवसमसम्मत्ते सुहुमअहक्खायचारित्तेहि एकचत्ता । एवं खाइग-सम्मत्ते वि । परं केवलदुगे पक्खित्ते तेयालीसा । मिस्से गइचउक्कं पंचिदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अक्षाणतिगं नाणमीसं असंजमो दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं मीसं सम्मत्तं सन्नी-आहारगं तेत्तीसा । सासणे वि नवरं एगिंदियजाइविगलिंदियजाइचउक्कं पुढविआउवणस्सइ-असन्नी अणाहारगं च पक्खिविय वायालीसा । मिच्छदिट्ठस्स नाणपंचगं संजमछक्कं ओहिक्केवल-दंसणे सम्मत्तपंचकं वज्जिता चउयालीसा ।

सन्निदारे-सन्निसु एगिंदियजाई विगलतिगं थावरपणगं असन्नी दस वज्जिता वावन्ना । असणिसु मण्युतिरियगई जाइपंचगं छक्काया कायजोगो वइजोगो नपुंसगवेओ कसायचउक्कं अक्षाणदुगं असंजमो चक्खुअचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं मव्वदुगं सासणमिच्छत्ते असन्नी आहा-रदुगं छत्तीसा ।

आहारदारे-आहारे अणाहारगं विणा एगसट्ठी । अणाहारे संजमचत्तारि अहखायं विणा मीसदेसविरई मणनाणं आहारगं चक्खुदंसणं वज्जिता तेवन्ना ।

भणिया मग्गणट्ठाखेसु मग्गणट्ठाणमग्गणा ।



(राम०) इयाणि बंधहेउमगणा गाहाहिं कीरइ—

मणुगइ १ पर्षिदि २ तस ३ तणु ४ अचक्खु ५ सनी यद आइच उलेसा १० ।  
 तह मव्वे ११ सज्जे वि हु ५७ सत्तावन्ना इगारससु ॥ १ ॥  
 ओराला २ हारदुगं २ मिच्छणाभोग १ नपुंस १ देवसु ।  
 १ चय ५१ नारएसु ५० एवं नवरं नपुं खिवसु थीपुमं चयसु ॥ २ ॥  
 तिरियगइ १ अमव्व २ मिच्छे ३ अन्नाणतिगे यद हारदुगरूणा ५५ ।  
 आहारि कम्मणूणा ५६ अणहारे ३ जोगचवदमहिं ४३ ॥ ३ ॥  
 वेयतिग ५५ चउकसाए ५४ पडिबक्खे मुत्तु संसंसंभविआ ।  
 ३ आहारगं तु थीसुं ५३ मीसा ४३ साणा य ५० गुणगहिया ॥ ४ ॥  
 अण ४ मिच्छे ९ परिषज्जिय मद्दमुय २ ओहिदुग ४ रवहुग ५ रववसमे ६-४८ ।  
 आहारगं च उवसमि ४६ गुणगहिओ देसवरिओ य ३९ ॥ ५ ॥  
 मणवइरवक्खुसु ३ हेऊ ५५ ओरालियमीसकम्मइगवज्जा ।  
 △ नवर मणजोगि तइयं अणमोगं मिच्छ चउपभा ॥ ६ ॥  
 एगिदिएसु हेऊ १ धाउवमा तत्य होति छत्तीसा । △  
 सव्वे वि सुक्कपन्हसु २ अणमोगं मिच्छ १ वज्जा हि ५६ ॥ ७ ॥  
 संजलण ४ जोगनवगं ६ हासाई ६ पुरिस १ अपुम २ वेयं च ।  
 परिहारि बंधहेऊ इगवीसं २१ जेण पुव्ववरौ ॥ ८ ॥  
 वेव्ववाहारदुगं ४ थीवेयं पक्खिवाहि इगवीसे २६ ।  
 मण १ सामइए २ छेए ३ छव्वीसं तिसु वि पत्तोयं ॥ ९ ॥  
 केवलदुग, ७ अहव्वाए ११ ३ सुहुमसरगे १० य जोगपुव्वुत्ता ।  
 नवरं सुहुमसरगे वसमो लोमो य हेउ त्ति ॥ १० ॥  
 छक्कायवहो ६ फासो ७ हासाई १३ नपुम १४ सोलस कसाया ३० ।  
 अणमोगामिच्छ ३१ धुवया थावर ५ इगिदि विगल ९ अमणार्ण १० ॥ ११ ॥  
 कम्मणओगलदुगं थावरकाए ३४ १ विचठिवजुय ५ वाए ३६ ।  
 १ भासामणविगल णं, इंदियवुहठी य संभविआ ॥ १२ ॥  
 इह अथिरयन्मि हेऊ पण मिच्छा विरइ बारस कसाया ।  
 पणणीमं तह जोगा तेरस आहारगदुगणा ॥ १३ ॥  
 संसइय अमिनित्रेसा मणुए य पडुच्च पायसो होति ।  
 अह सव्वेमु वि एए इह भविआ अन्नभविआ य ॥ १४ ॥

इयाणि गुणदूठाणेषु जीवदूठाणाईणं मगणा मणणइ—

१ "त्यज" इति टिप्पनकम् । २ "न्यूता" इति टिप्पनम् । ३ "आहारदुगं थीसु" इति जेसलमेर प्रती । ४ "धातोपमा" इति टिप्पनकम् । ५ "द्विकं गृहीतव्यम्" इति टिप्पनकम् । ६ "भासा विगलमणार्ण" इति जेसलमेरप्रती । △ एतच्चिचक्रद्वयगतः पाठो जेसलमेरप्रती नास्ति, तथा "सव्वे वि" इति स्थाने "मणजोग" इति पाठो दृश्यते ।

मिच्छे सव्वे छ अपज्ज सन्निपज्जत्तगो य सासाणे ।  
सम्मं दुविहो सन्नी सेसेसुं सन्निपज्जत्तो ॥६५॥

(राम०) मिच्छदिद्विठस्स जीवट्ठाणा चउदस वि । सामायणस्स जीवट्ठाणा सत्त । छ अप-  
ज्जत्ता वायराई सन्निपज्जो य । सम्मो=अविरयसम्मद्विठ्ठी, तस्स दो जीवट्ठाणा-सन्नी पज्जत्तगो  
अपज्जत्तगो य । सेसेसु एगारसमु गुणट्ठाणगेषु एगं जीवट्ठाणं सन्नी पज्जत्तओ ॥६५॥

इय जियठाणा गुणठाणगेषु जोगा य वोच्छमेत्ताहे ।  
जोगाहारदुगूणा मिच्छे सासणअविरए य ॥६६॥

(राम०) मिच्छदिद्विठसासायणअविरयसम्माद्विठ्ठीणं जोगा तेरस आहारगदुगूणा ॥६६॥

उरलविउव्ववइमणा दस मीसे ते विउव्विमीसजुया ।  
देसजए एक्कारस साहारदुगा पमत्तेत्ते ॥६७॥

(राम०) ओरालियं विउव्वियं मणचउक्कं वइचउक्कं एए दसजोगा सम्मामिच्छदिद्विस्स । देस-  
विरयस्स ते दस वेउव्विमीसजुया इक्कारस जोगा । पमत्तस्स ते इक्कारस आहारगदुगजुया जोगा  
तेरस ॥६७॥

एक्कारसप्पमत्ते, मणवइआहारगुरलवेउव्वा ।  
अप्पुव्वाइसु पंचसु नव ओरालो मणवई य ॥६८॥

(राम०) एक्कारस अप्पमत्ते मणचउक्कं वइचउक्कं आहारगं ओरालियं वेउव्वियं मिस्स-  
विरहेण । अप्पुव्वकरणे जाव खीणमोहो ताव पंचणह वि नव नव जोगा ओरालियं मणचउक्कं वइ-  
चउक्कं च ॥६८॥

चरिमाइमणवइदुगकम्मुरलदुगन्ति जोगिणो सत्त ।  
गयजोगो य अजोगी वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(राम०) चरिमं असच्चमोसमणं आइमं सच्चमणं, एवं वई वि, चत्तारि, ओरालियं ओरा-  
लियमीसं कम्मइगसरीरं च, एए सत्त जोगा सजोगिकेवलिस्स । “गयजोगो य अजोगि”  
त्ति जोगनिरोहाओ अजोगिम्मि जोगा न होंति ॥६९॥

उवओगमगणा सन्नति-

अच्चक्खुच्चक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छमासाणे ।

अविरयसम्मे देसे तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥७०॥

(राम०) अच्चक्खुदंसणं चक्खुदंसणं अन्नाणतिगं च पंच उवओगा मिच्छे सासायणे य ।  
अविरयसम्मे देसविरय य नाणतिगं दंसणतिगं छ उवओगा ॥७०॥

मीसे ते च्चिय मीमा सत्त पमत्ताइसुं ममणनाणा ।

केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

(राम०) मिस्से ते च्चिय अण्णाणमिस्सा छच्चेव । सत्त पमत्ताइसु, एए छ मणनाणजुया  
सत्त उवओगा पमत्ताओ जाव खीणमोहो । सजोगिअजोगिकेवलीणं दो उवओगा-केवलनाणं  
केवलदंसणं च ॥७१॥

इयाणि जे भावा सुये भणिया वि इह न अहिगरिज्जंति ते दंसेइ—

सासणभावे नाणं विउच्चिवाऽऽहारगे उरलमिस्स ।

नेगिंदिसु 'सासाणोत्ति नेहहिगयं सुयमयंवि ॥७२॥

(राम०) इमाए गाहाए अयं भावत्यो-जहा- "सम्यग्दृष्टेर्ज्ञान" मिति वचनात् सत्त्वार्थादौ  
सासायणस्स वि नाणं भणियं, सासायणसम्मत्ताओ । तथा सुत्ते वेउच्चियलद्धिजुयतिरियमणुयागं  
वेउच्चियारंभकाले वेउच्चियमीसं, संवरणकाले उ ओरालियमीसं भणियं, तथा आहारगकाले  
आहारगमीसं, संहरणकाले पुण ओरालियमीसं । तथा आघस्सए "उभायामावो एगिंदिए" ति  
वचनाद् एगिंदिएसु सासाणसम्मत्तं निसिद्धं; एयं पुण वक्ख्वाणं आगमे भणियमवि न अहिगयं-  
नादरियं इह पगरणे । कुतः ? जओ सासणस्स नाणं अणंताणुबंधिसियत्ताओ अप्पकालीणत्ताओ  
य न विवक्खियं, विउच्चियाहारउरलमिस्सं पुण सयगञ्जुअभिप्पाएणं न विवक्खियं । तथा  
एगिंदिसु सासणभावो इह पगरणे भणियो जीवस्समासाऽभिप्पाएण, जओ तत्थ एगिंदियस्स  
वि सासणभावो भणियो ॥७२॥

लेसाओ मयेइ ।

लेसा तिन्नि पमत्तां तेऊ पम्हा उ अप्पमत्तांता ।

सुक्का जाव सजोगी निरुद्धलेसो अजोगिच्चि ॥७३॥

(राम०) मिच्छदिट्ठीओ जाव पमत्तसंजओ ताव छ लेसाओ, तिरहं असुहलेसाणं पमत्ते  
अंतो । अप्पमत्तसंजयस्स लेसाओ तिण्णि, दोण्हं लेसाणं अपमत्तसंजओ अंतो । उवरिं सुक्कलेसा  
जाव सजोगिकेवली । अजोगी अलेसो ॥७३॥

इयाणि गुणट्ठाणगेषु पसंगागया मग्गणट्ठाणमग्गणा सयमेव भण्णइ—

तत्थ सामन्नेण सव्वे मूलभेया पाएण सव्वेसु गुणट्ठाणगेषु संभवन्ति, उत्तरभेया पुण कस्म वि कित्थियप्पमाणा । अओ उत्तरभेयनिदंसणत्थं भन्नइ मिच्छादिट्ठिगुणट्ठाणइसु । ते य भन्न्ति— तत्थ मिच्छदिट्ठस्स उत्तरभेया—गइचउवकं 'इंदियपणं कायछक्कं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउवकं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणदुगं लेसाछक्कं भव्वाभव्वदुगं मिच्छत्तं सच्चिअसन्निदुगं आहारअणाहारदुगं एवं चउयालीसा ४४, सेसा अट्टारसा-५संभविया ।

सासायणस्य उत्तरभेया—गइचउवकं जाइपणं तैउकायवाउकायवज्जं कायचउवकं जोग- तिगं वेयतिगं कसायचउवकं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणदुगं लेसछक्कं भव्वं सासायणसम्म- दिट्ठी सन्नी असन्नी आहारगं अणाहारगं च एवं एगयालीसं ४१, इगवीसमसंभविया ।

सम्मामिच्छादिट्ठस्स उत्तरभेया—गइचउवकं पंचिदियजाई तसकाओ जोगतिगं वेयतिगं कसायचउवकं नाणतिगं अन्नाणमिस्सं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मामिच्छ- दिट्ठी सन्नी आहारगं च एवं तेत्तीसा ३३, एगुणतीसं असंभविया ।

अविरयस्स उत्तरभेया—गइचउवकं पंचिदियजाई तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउवकं नाणतिगं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारअणाहारदुगं च एवं छत्तीसं ३६, छव्वीसं असंभविया ।

देसविरयस्स उत्तरभेया—गइदुगं पंचिदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउवकं नाणतिगं देससंजमो दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एवं एते तेत्तीसं ३३, उगतीसं असंभविया ।

पमत्तसंजयस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउवकं नाणचउवकं संजमतिगं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एवं पणतीसं ३५ सत्तावीसं असंभविया ।

अपमत्तसंजयस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउवकं नाणचउवकं संजमतिगं दंसणतिगं लेसतिगं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगो एवं वत्तीसं ३२, तीसं असंभविया ।

अपुव्वकरणस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेदियं तसकाओ जोगतिगं वेयतिगं कसायचउ- वकं नाणचउवकं संजमदुगं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगो एवं अट्ठावीसं २८, सेसा चउत्तीसं असंभविया । एवं अनियट्ठीए वि ।

सुहुमसंपरायस्स-मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिगं वेयसुन्नं लोभं नाणचउवकं सुहुमसंपराय-

१ "जाइपणं" इत्यपि पाठः । २ "०निदंसणत्थं मि०" इत्यपि । ३ 'चउयालीसं' इति । ४ "तेत्ती- सं" इत्यपि ।

अच्चक्खुच्चक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छमामाणे ।

अविरयसम्मे देसे तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥७०॥

(राम०) अच्चक्खुदंसणं चक्खुदंसणं अन्नाणतिगं च पंच उवओगा मिच्छे सासायणे य ।  
अविरयसम्मे देसविरए य नाणतिगं दंसणतिगं छ उवओगा ॥७०॥

मीसे ते च्चिय मीसा सत्त पमत्ताइसुं ममणनाणा ।

केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

(राम०) मिस्से ते च्चिय अण्णाणमिस्सा छच्चेव । सत्त पमत्ताइसु, एए छ मणनाणजुया  
सत्त उवओगा पमत्ताओ जाव खीणमोहो । सजोगिअजोगिकेवलीणं दो उवओगा-केवलनाणं  
केवलदंसणं च ॥७१॥

इयाणिं जे मावा सुये भणिया वि इह न अहिगरिज्जंति ते दंसेइ—

सासणभावे नाणं विउव्विगाऽऽहारगे उरलमिस्सं ।

नेगिंदिसु 'सासाणोत्ति नेहहिगयं सुयमयंपि ॥७२॥

(राम०) इमाए गाहाए अयं भावत्यो-जहा- "सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानं" मिति वचनात् तत्त्वार्थावै  
सासायणस्स वि नाणं भणियं, सासायणसम्मत्ताओ । तहा सुत्ते वेउव्वियलद्धिजुयतिरियमणुयागं  
वेउव्वियारंभकाले वेउव्वियमीसं, संवरणकाले उ ओरालियमीसं भणियं, तहा आहारगकाले  
आहारगमीसं, संहरणकाले पुण ओरालियमीसं । तहा आवस्सए "वभायभावो एगिंदिए" ति  
वचनाद् एगिंदिएसु सासाणसम्मत्तं निसिद्धं; एयं पुण वक्खाणं आगमे भणियमवि न अहिगयं-  
नादरियं इह पगरणे । कुतः ? जओ सासणस्स नाणं अणंताखुवंधिदूसियत्ताओ अप्पकालीणत्ताओ  
य न विवक्खियं, विउव्वियाहारउरलमिस्सं पुण सयगञ्जुअभिप्पाएणं न विवक्खियं । तहा  
एगिंदिसु सासणभावो इह पगरणे भणियो जीवस्समासाऽभिप्पाएण, जओ तत्थ एगिंदियस्स  
वि सासणभावो भणियो ॥७२॥

लेसाओ भयेइ ।

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊ पम्हा उ अप्पमत्तंता ।

सुक्का जाव सजोगी निरुद्धलेसो अजोगिति ॥७३॥

(राम०) मिच्छदिट्ठीओ जाव पमत्तसंजओ ताव छ लेसाओ, तिरहं असुहलेसाणं पमत्ते  
अंतो । अप्पमत्तसंजयस्स लेसाओ तिण्णि, दोण्हं लेसाणं अपमत्तसंजओ अंतो । उवरिं मुक्कलेसा  
जाव सजोगिकेवली । अजोगी अलेसो ॥७३॥

इयाणि गुणट्टाणगेषु पसंगागया मग्गणट्टाणमग्गणा सयमेव भण्णइ—

तस्य सामन्नेण सव्वे मूलमेया पाएण सव्वेसु गुणट्टाणगेषु संभवन्ति, उत्तरमेया पुण कत्तस वि क्खित्थियप्पमाणा । अओ उत्तरमेयनिर्दसणत्थं भन्नइ मिच्छादिद्विगुणट्टाणाईसु । ते य भन्न्ति—

तस्य मिच्छदिद्विठस्स उत्तरमेया—गइचउक्कं पंचेदियपणं कायछक्कं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणदुगं लेसाछक्कं भव्वाभव्वदुगं मिच्छत्तं सन्निअसन्निदुगं आहारअणाहारदुगं एवं चउयालीसा ४४, सेसा अट्टारसा-उसंभविया ।

सासायणस्य उत्तरमेया—गइचउक्कं जाइपणं तेउकायवाउकायवज्जं कायचउक्कं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणदुगं लेसछक्कं भव्वं सासायणसम्मदिद्विठी सन्नी असन्नी आहारगं अणाहारगं च एवं एगयालीसं ४१, इगवीसमसंभविया ।

सम्मामिच्छादिद्विठस्स उत्तरमेया—गइचउक्कं पंचेदियजाई तसकाओ जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणतिगं अन्नाणमिस्सं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मामिच्छदिद्विठी सन्नी आहारगं च एवं तेचीसा ३३, एगूणतीसं असंभविया ।

अविरयस्स उत्तरमेया—गइचउक्कं पंचेदियजाई तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणतिगं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्तिगं सन्नी आहारअणाहारदुगं च एवं छचीसं ३६, छव्वीसं असंभविया ।

देसविरयस्स उत्तरमेया—गइदुगं पंचेदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणतिगं देससंजमो दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं सम्मत्तिगं सन्नी आहारगं एवं एते तेचीसं ३३, उणतीसं असंभविया ।

पमत्तसंजयस्स उत्तरमेया—मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमतिगं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्तिगं सन्नी आहारगं एवं पणतीसं ३५ सत्तावीसं असंभविया ।

अपमत्तसंजयस्स उत्तरमेया—मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमतिगं दंसणतिगं लेसतिगं भव्वं सम्मत्तिगं सन्नी आहारगो एवं वत्तीसं ३२, तीसं असंभविया ।

अपुव्वकरणस्स उत्तरमेया—मणुयगई पंचेदियं तसकाओ जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमदुगं दंसणतिगं दुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगो एवं अट्टावीसं २८, सेसा चउचीसं असंभविया । एवं अनियट्टीए वि ।

सुहुमसंपरायस्स-मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिगं वेयसुन्नं लोभं नाणचउक्कं सुहुमसंपराय-

१ "जाइपणं" इत्यपि पाठः । २ "निर्दसणत्थं मि०" इत्यपि । ३ "चउयालीसं" इति । ४ "तेचीसं" इत्यपि ।

चरित्रं दंसणतिर्गं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगं एवं एगवीसं २१, सेसा असंभविया ।

१० उवसंतस्स उत्तरमेया—मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिर्गं वेयमुन्नं कसायसुन्नं नाण-  
चउक्कं उवसमियं चरित्तं दंसणतिर्गं सुक्कलेसा भव्वं सम्मदुगं सन्नी आहारगं एवं वीसं २०,  
सेसा असंभविया ।

११ खीणभोहस्स य—मणुयगई पंचेदियत्तं तसकायं जोगतिर्गं वेयकसायमुन्नं नाणचउक्कं  
अहंक्खायसंजमं दंसणतिर्गं सुक्कलेसा भव्वं खाइयसम्मत्तं सन्नी आहारगं एवं ऊणवीसा १९, सेसा  
असंभविया ।

१२ सजोगिकेवलस्स उत्तरमेया—मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिर्गं वेयकसायसुन्नं  
नाणे केवलनाणं संजमं खाइयं दंसणं केवलदंसणं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तं खाइयं सन्नी  
आहारणाहारं एवं पनरस १५, सेसा असंभविया ।

अजोगिकेवलस्स उत्तरमेया—मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगवेयकसायसुन्नं केवलनाणं  
खाइयं संजमं केवलदंसणं लेसासुण्णं भव्वं खाइयं सम्मत्तं सन्नी अणाहारगं एवं दस १०,  
सेसा असंभविया ।

इयाणि गुणट्ठाणगेषु बंधहेउ मणिउकामो पढमं ताव बंधरस मूलमेया उत्तरमेया य दंसेइ-  
बन्धस्स मिच्छअविरइकमायजोगत्ति हेयवो चउरो ।

पंच दुवालस पणुवीस पनरम क्रमेण भेया सिं ॥७४॥

(राम०) बंधो=कम्मबंधो, तस्स चत्तारि हेऊ, मिच्छत्तं ५, अविरई १२, कसाया २५,  
जोग १४ त्ति । एएसि चउणहं पि क्रमेणं जहासंखं पंच दुवालस पणुवीस पनरस मेया होंति ॥७४॥

ते य उत्तरमेए विवरेइ—

आभिग्गहियं अणभिग्गहं च तट्ठ अभिनिवेशियं चैव ।

संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥७५॥

(राम०) मिच्छत्तं पंचविहं—आभिग्गहियं मिच्छत्तं, अणभिग्गहियं मिच्छत्तं, अभिनिवेशियं  
मिच्छत्तं, संसइयं मिच्छत्तं, अणाभोगं मिच्छत्तं च ।

इयाणि पंचविहस्स मिच्छत्तस्स वक्खाणं गथाणुसारेण कीरइ मुत्ते अभणियमवि परो-  
वयारनिमित्तं ।

तत्थ आभिग्गहियं कुदिट्ठिठदिक्खियाणं गाढतरमेयं जीवाणं दीहसंसारियाणं पायसो होइ ॥१॥

अणभिग्गहियं पुण असंपत्तसम्मत्ताणं कुदिट्ठिठदिक्खियाणं मणुयत्तिरियाणं ॥२॥

अभिनिवेशियं तु संपत्तजिणवयणाणं एणेण सहावपरूपणाए कयाए मच्छराइणा तमन्नहा

वागरेमाणानं कम्मि कारणे उस्सुत्ते वा पन्नविण्णं पडिनिघेसेण वा मया एस्स अथो मम-  
त्थणीओत्ति अणाभोगेण परूविण्णं वा पच्छा नाए वि वत्थुत्ते सभणियपडिप्पदेसेण वा अजा-  
णंतो वा भावत्थं पन्नवेह, वारिओ वा न चिरूठ्ठ, एएसिं जीवाणं अभिनिवेसियं मिच्छत्तं ॥३॥

संसइयं पुण सुत्ते वा अत्थे वा उभयाम्म वा संकिओ परूवेह । सो अन्नं न पुच्छइ ।  
कहमहमेहइपरिवारो वि अन्नं पुच्छामि । पुच्छिज्जमाणो वा जाणेज्जा, एस्स एयं न जाणइ त्ति ।  
अहवा जे मह भत्ता ते जाणिज्जा, एयाहिंतो वि एस्स वरतरओ, तत्तो पुच्छिज्जइ, तओ मं मोत्तूण  
एए इयं भइस्समि, अओ अन्नं न पुच्छइ । तस्स संमइयं मिच्छत्तं ॥४॥

अणाभोगं एविंदियाईणं । जम्हा आभोगो=नाणं=उवओगो भण्णई । एयं केरिमं एयं व  
त्ति एसो पुण तेसिं नत्थि, तेण तेसिं अणाभोगं मिच्छत्तं । अहवा सुद्धं परूवइस्सामि अणुवओ-  
गाओ असुद्धं परूवियं तं पि अणाभोगं परेसिं मिच्छत्तकारणेण ॥५॥

एयं पुण पंचविहं पि मिच्छत्तं थूलभावेण । परमत्थओ विवज्जासो सो पुण एयं न  
मए न मम पुच्चपुरिसेहिं वा कारियं एयं जिणाययणं; किं मम एत्थ पूयासवकाराइआयरेणं ।  
अहवा मए एयं जिगविंवं कारियं मम पुच्चपुरिसेहिं वा; ता इत्थ पूयाइयं निव्वत्तेमि ।  
किं मम परकीएसु अन्नायरेणं । एवं तस्स न सव्वन्नुपच्चया पवित्ती । अन्नहा सव्वेसु वि विवेसु  
अरहं चेव ववइसिज्जइ । सो अरिहा जइ परकीओ ता पत्थरत्तेप्पपित्तलाइयं अप्पणिज्जयं, न  
पुण पत्थराईसु वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ । किंतु तित्थयरगुणपक्खवाएणं । अन्नहा संकरा-  
इविंवेसु वि वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ होज्जा । मच्छरेण वा परकारियचेइयाए विग्धं आय-  
रंतस्स महामिच्छत्तं न तस्स गंदिठमेओ वि संभाविज्जइ । जे पासत्थाइकुदेसणाए वि मोहिथा  
सुविहिंथाणं वा वाहाकरा भवति । तेसिं पि महामिच्छत्तं । एयम्मि य विवज्जासरूवे मिच्छत्ते सइ  
सुवहुं पि पढंतो अन्नाणी चेव । न हि विवरीयमइणो नाणं फज्जसाहगं, तओ अन्नानां, एएसु  
य हुंतेसु अइदुक्करा वि तवचरणकिरिया न मोक्खसाहिगा । जम्हा सो जीवरवखायुसावायाहर-  
क्खणं करंतो वि अविरओ कहिज्जइ, पंचमगुणठाणे देसविरई, छट्ठगुणट्ठाणे सव्वविरई, न  
पढमगुणट्ठाणे, तस्स य अणंताणुवंधिपमुहा सोलस वि कसाया वंज्जति उइज्जति य । तन्निमि  
त्ताओ असुहाओ दीहदिठयाओ तिन्वाणुभागाओ कम्मपयडीओ वज्जति । अओ मिच्छत्तं पढंतो  
वंधहेऊ ॥७५॥

चारसविहा अत्रिरई मणइंदियअनियमो छकायवहो ।

सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥

१ "अहकारेण" इति टिप्पनकम् । २ "स्वमणितप्रतिमणितप्रद्वेषेण" इति टिप्पनकम् । ३ "परूवेह"  
इति वा पाठः । ४ "संकराइवेसु" इत्यपि । ५ विपर्यासरूपेषु टिप्पनकम् । ६ "होतेसु" इत्यपि ।



चरित्रं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगं एवं एगवीसं २१, सेसा असंभविया ।

१' उवसंतस्स उत्तरमेया-मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगतिगं वेयसुन्नं कसायसुन्नं नाण-  
चउक्कं उवसमियं चरित्तं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मदुगं सन्नी आहारगं एवं वीसं २०,  
सेसा असंभविया ।

१७' खीणमोहस्स य-मणुयगई पंचिदियत्तं तसकायं जोगतिगं वेयकसायसुन्नं नाणचउक्कं  
अहंकेखायसंजमं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं खाइयसम्मत्तं सन्नी आहारगं एवं उणवीसा १९, सेसा  
असंभविया ।

१८' सजोगिकेवलस्स उत्तरमेया-मणुयगई पंचिदियं तसकायं जोगतिगं वेयकसायसुन्नं  
नाणे केवलनाणं संजयं खाइयं दंसणं केवलदंसणं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तं खाइयं सन्नी  
आहारणाहारं एवं पनरस १५, सेसा असंभविया ।

अजोगिकेवलस्स उत्तरमेया-मणुयगई पंचेदियं तसकायं जोगवेयकसायसुन्नं केवलनाणं  
खाइयं संजयं केवलदंसणं लेसासुणं भव्वं खाइयं सम्मत्तं सन्नी अणाहारगं एवं दस १०,  
सेसा असंभविया ।

इयाणि गुणट्ठाणगेषु बंधहेउ भणित्तामो पढमं ताव बंधरस मूलमेया उत्तरमेया य दंसेइ-

बन्धस्स मिच्छअविरइकमायजोगत्ति हेयवो चउरो ।

पंच दुवालस पणुवीस पनरम क्रमेण मेया सिं ॥७४॥

(राम०) बंधो=कम्मबंधो, तस्स चत्तारि हेऊ, मिच्छत्तं ५, अविरई १२, कसाया २५,  
जोग १४ त्ति । एएसिं चउणहं पि कमेणं जहासंखं पंच दुवालस पणुवीस पनरस मेया होंति ॥७४॥

ते य उत्तरमेए विवरेइ—

आभिग्गहियं अणभिग्गहं च तह अभिनिवेशियं चेव ।

संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥७५॥

(राम०) मिच्छत्तं पंचविहं-आभिग्गहियं मिच्छत्तं, अणभिग्गहियं मिच्छत्तं, अभिनिवेशियं  
मिच्छत्तं, संसइयं मिच्छत्तं, अणाभोगं मिच्छत्तं च ।

इयाणि पंचविहस्स मिच्छत्तस्स वक्खाणं गथाणुसारेण कीरइ मुत्ते अमणियमवि परो-  
वयारनिमित्तं ।

तत्थ आभिग्गहियं कुदिट्ठिदिकिखयाणं गाढतरमेयं जीवाणं दीहसंसारियाणं पायसो होइ ॥१॥

अणभिग्गहियं पुण असंपत्तसम्मत्ताणं कुदिट्ठिअदिकिखयाणं मणुयत्तिरियाणं ॥२॥

अभिनिवेशियं तु संपत्तजिणवयणाणं एगेण सहावपरूपणाए कयाए मच्छराइणा तमन्नहा

वागरेमाणानं कम्मि कारणे उस्मुत्ते वा पन्नविण्ण 'पडिनिवेसेण वा मया एस्स अथो सम-  
त्थणीओत्ति अणामोणेण परूविण्ण वा पच्छा नाए वि वत्थुत्ते 'सभणियपडिप्पदेसेण वा अजा-  
णंतो वा भावत्थं 'पन्नवेइ, वारिओ वा न चिट्ठइ, एएसि जीवाणं अभिनिवेसियं मिच्छत्तं ॥३॥

संसइयं पुण मुत्ते वा अत्थे वा उभयम्मि वा संकिओ परूवेइ । सो अन्नं न पुच्छइ ।  
कहमहमेइहपरिवारो वि अन्नं पुच्छामि । पुच्छिःजमाणो वा जाणेज्जा, एम एयं न जाणइ त्ति ।  
अहवा जे मह भत्ता ते जाणिज्जा, एयाहिंतो वि एस्स वरतरओ, तत्तो पुच्छिज्जइ, तओ मं मोत्तूण  
एए इयं महस्मंति, अओ अन्नं न पुच्छइ । तस्स संसइयं मिच्छत्तं ॥४॥

अणामोर्गं एगिंदियाईणं । जम्हा आभोगो=नाणं=उवओगो भण्णई । एयं केरियं एयं व  
त्ति एसो पुण तेसिं नत्थि, तेण तेसिं अणामोर्गं मिच्छत्तं । अहवा सुद्धं परूवइस्सामि अणुवओ-  
गाओ असुद्धं परूवियं तं पि अणामोर्गं परेसिं मिच्छत्तकारणेण ॥५॥

एयं पुण पंचविहं पि मिच्छत्तं थूलभावेण । परमत्थओ विवज्जासो सो पुण एयं न  
मए न मम पुच्चपुरिसेहिं वा कारियं एयं जिणाययणं; किं मम एत्थ पूयासक्काराइआयरेणं ।  
अहवा मए एयं जिगविं वं कारियं मम पुच्चपुरिसेहिं वा; ता इत्थ पूयाइयं निच्चत्तेमि ।  
किं मम परकीएसु अच्चायरेणं । एवं तस्स न सत्त्वनुपच्चया पवित्ती । अन्नहा सच्चेसु वि विन्नेसु  
अरहं चेव ववइसिज्जइ । सो अरिहा जइ परकीओ ता पत्थरत्तेप्पपित्तलाइयं अप्पणिज्जयं, न  
पुण पत्थराईसु वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ । किंतु तित्थयरगुणपक्खवाएणं । अन्नहा 'संकरा-  
इविंवेसु वि वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ होज्जा । मच्छरेण वा परकारियचेइयालए विग्घं आय-  
रंतस्स महामिच्छत्तं न तस्स गंदिठ्ठमेओ वि संभाविज्जइ । जे पासत्थाइक्कुदेसणाए वि मोहिया  
सुविहियाणं वा वाहाकरा भवन्ति । तेसिं पि महामिच्छत्तं । एयम्मि य विवज्जासरूवे मिच्छत्ते सइ  
सुबहुं पि पढंतो अन्नाणी चेव । न हि विवरीयमहणो नाणं कज्जसाहरं, तओ अन्नानं, 'एएसु  
य 'हुंतेसु अइदुक्करा वि तवचरणकिरिया न मोक्खसाहिगा । जम्हा सो जीवरवस्सासुसावायाइर-  
क्खणं करंतो वि अविरओ कहिज्जइ, पंचमगुणठाणे देसविरई, छट्ठगुणट्ठाणे सच्चविरई, न  
पढमगुणट्ठाणे, तस्स य अणंताणुबंधिपमुहा सोलस वि कसाया बंज्जति उइज्जंति य । तन्निमि  
त्ताओ असुहाओ दीहदिठ्ठयाओ तिच्चाणुमागाओ कम्मपयहीओ बज्जंति । अओ मिच्छत्तं पढंमो  
बंधेऊ ॥७५॥

वारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकायवहो ।

सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥

१ "अहकारेण" इति टिप्पनकम् । २ "स्वमणितप्रतिमणितप्रद्वे वेण" इति टिप्पनकम् । ३ "परूवेइ"  
इति वा पाठः । ४ "संकराइवेसु" इत्यपि । ५ विपर्यासरूपेषु टिप्पनकम् । ६ "हुंतेसु इत्यपि ।

(राम०) पंचणहं इंदियाणं मणस्स य अनियमो छण्हं कायाणं वहे अविरई एवं अविरइ वीओ बंधहेउ ॥२॥ सोलस कसाया नव नोकसाया पणवीसं एए तइओ बंधहेऊ ॥३॥ पणगरस जोगा चउत्थो बंधहेऊ ॥४॥ एए सामन्नेण । उत्तं च-

“चउगणइओ वंधो, पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ । मीसगवीओ उवरिमदुगं च देसिक्क देसम्मि ॥१॥ उवरिल्लपंचगे पुण दुपच्चओ जोगच्चओ तिण्हं ।” ति ।

एए मूलहेऊ गुणट्ठाणगेसु । संपयं पुण सुत्तकारो तेसु चैव उत्तरबंधहेऊ दंसेइ—

पणपन्नपन्नतियच्चहियचत्तगुणचत्तल्लवउदुगवीसा ।

सोलस दस नव नव सत्त हेउणो न व अजोगि'म्मि ॥७७॥

(राम०) पंचविहं मिच्छत्तं, बारसविहा अविरई, पणवीसं कसाया, जोगा तेरस, आहागदुगूणा, एए पणपणं मिच्छाद्दिट्ठिस्स बंधहेवो १ । सासायणस्स मिच्छत्तं विणा पण्णासं २ । बारसविहा अविरई अणंताणुबंधिवज्जा एगवीसं कसाया मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियं वेउव्वियं च सम्मामिच्छस्स तेयालीसं हेऊ ३ । वेउव्वियमीसओरालियमीसकम्मइग-जोगतिगे छूढे तेयालीसाए छायालीसं अविरयस्स ४ । तसविरइवज्जा एगारसविहा अविरई पढमवीयकसायट्ठगवज्जा सत्तरस कसाया मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालं सरीरं वेउव्वियदुगं च एए ऊणयालीसं देसविरयस्स ५ । संजलणचउक्कं नोकसायनवगं मणचउक्कं वइचउक्कं आहार-दुगं विउव्वियदुगं ओरालियं च छव्वीसं पमत्तसंजयस्स ६ । एसा चैव छव्वीसा वेउव्वियमीस-आहारगमिस्सवज्जा चउवीसं अप्रमत्तस्स । संजलणचउक्कं नोकसायनवगं मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियसरीरं एवं वावीसं अपुव्वकरणस्स ८ । संजलणचउक्कं वेयतिगं जोगनवगं एवं सोलस वायरसंपरायस्स ९ । संजलणलोहं जोगनवगं दस सुहुमसंपरायस्स १० । उवसंतमोहक्खीण-मोहाणं नव नव जोगा बंधहेऊ ११-१२ । सजोगिस्स सत्त जोगा दट्ठव्वा १३ । अजोगिस्स बंधहेयवो न संति १४ ॥७७॥

एएथ गाहाओ-

पणपण्णबंधहेऊ मिच्छद्दिट्ठिस्स \*उवयओ होति । आहारगदुगरहिया जेणं तं संजयस्स मवे १ ॥१॥ पन्नासा सासणे पंचगमिच्छत्तविरहिया होइ २ । मिरसे पुण तेयःळा अणकम्मणमिस्सदुगरहिया ३ ॥२॥ तुरियम्मि उ छायाळा कम्मणमिस्सदुगसंजुया जाण ४ । एगूणचत्त वेसे वीयकसायाण भावाओ ॥३॥ तसअधिरइउरलगामिस्सं कम्मइगजेण तत्थ ना सत्ता ५ । छव्वीसा य पमत्ते संजलणा ४ नोकसाया य ॥४॥ कम्मण उरलगामिस्सं वज्जित्ता सव्वजोगसव्वमावे १३-६ । चउवीसं अपमत्ते वेउव्वाहारमिस्सविणा ७ ॥५॥ वावीसा उ अपुव्वे वेउव्वाहारविरहिया होइ ८ । अनियट्ठीए सोलस हासच्छक्केण रहिया उ ९ ॥६॥ सुहुमे दसगं जाणसु विवेयतिकसायविरहियं कासं १० । उवसंते व्वीयो पुण जोगा नव बंधहेउ त्ति ११-१२ ॥७॥ सजोगिकेवळिमि सक्कवसक्कासुसावइमणो य । \*कम्मं उरल्लदुगेणं जोगा सत्तेव बंधस्स १३ ॥८॥

१. “त्ति” इत्यपि पाठः । २ “वय” इत्यपि । ३ “वेउव्विय” इत्यपि । ४ “ओइओ” इत्यपि । ५ “कम्मणसुरल्लदुग तह, जोगा” इति जे० ।

भणिया गुणट्टाणगेषु बंधहेऊणं उत्तरमेया । बंधहेऊहिं पुणं कम्मं वज्झइ, अओ तस्स नामाणि संखं च निर्दंसेइ—

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।

आउयनामं गोयंतरायमिय अट्ट कम्माणि ॥ ७८ ॥

(राम०) कंठा । एएसिं कम्माणं बंधो ह्वइ बंधे कडे सति उदयाइणा वि भवितव्वम् । जओ वुत्तं—

“बंधस्सुवयो उदए उदीरणा 'तदवसेसयं संतं । तम्हा बंधविहाणे, मन्न्ते इइ मरोयव्वं ॥” ॥७८॥

अओ बंधस्स उदयस्स उदीरणा संतस्स वि ठाणाणि गुणठाणगेषु दंसेइ—

सत्तट्टुछेगबन्धा सन्तुदया अट्ट सत्त चत्तारि ।

सत्तट्टुछपंचदुगं तुदीरणाठाणसंखेयं ॥७९॥

(राम०) पुव्वमेव जीवट्टाणेषु बंधोदओदीरणसंताणं ठाणाणि वक्खाणियाणि । तमेव वक्खणं इत्थ दट्टव्वं ॥७९॥

मिच्छदिट्ठपमीईणं बंधट्टाणपमाणमाह—

अपमत्तंता सत्तट्ट मीसअप्पुव्वबायरा सत्त ।

बन्धंति छ सुहुमा एगमुवरिमाऽबन्धगोऽजोगी ॥८०॥

(राम०) मिच्छदिट्ठिसासणअविरयदेसविरयपमत्तअपमत्तेसु एएसु छसु ठाणेषु अट्टविहबंधगा अहवा आउयं मोत्तुं सत्तविहबंधगा । तद्वा सम्मामिच्छदिट्ठी अपुव्वकरणअनियदिट्ठकरण आउयं मोत्तूण सत्तविहबंधगा । सुहुमसंपराया मोहाउयं मोत्तूण छविहबंधगा । उवसंतखीणमोहसजोगिकेवली एगविहवेयणियबंधगा । अबंधगो अजोगी ॥८०॥

मिच्छदिट्ठपमिईणं उदयसत्ताट्टाणपमाणमाह—

जा सुहुमो ता अट्ट वि उदये संते य हुन्ति पयडीओ ।

सत्तट्टु व संते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसुं ॥८१॥

(राम०) मिच्छदिट्ठीउ जाव सुहुमसंपराओ ताव उदए संते य अट्ट कम्माणि । उवसंते उदए सत्त, मोहं मोत्तूण; सत्ताए अट्ट कम्माणि । खीणमोहे उदए सत्ताए य मोहं मोत्तूण सत्त कम्माणि । सजोगिअजोगिकेवलीणं उदए सत्ताए य चत्तारि चत्तारि कम्मा अघाइणो ॥८१॥

(राम०) पंचपहं इंदियाणं मणस्स य अनियमो छण्हं कायाणं वहे अविरई एवं अविरइ वीओ बंधहेउ ॥२॥ सोलस कसाया नव नोकसाया पणवीसं एए तइओ बंधहेऊ ॥३॥ पणगरस जोगा चउत्थो बंधहेऊ ॥४॥ एए सामन्नेण । उत्तं च-

“चउत्थइओ वंधो, पढमे उवरिमतिगे तिपुचइओ । मीसगवीओ उवरिमदुगं च देसिकक देसम्मि ॥१॥ उवरिल्लपंचगे पुण दुगुचओ जोगगुचओ तिण्हं ।” ति ।

एए मूलहेऊ गुणट्ठाणगेसु । संपयं पुण सुत्तकारो तेसु चेव उत्तरबंधहेऊ दंसेइ—

पणपन्नपन्नतियच्छहियचत्तगुणचत्तछवउदुगवीसा ।

सोलस दस नव नव सत्त हेउणो न व अजोगि'म्मि ॥७७॥

(राम०) पंचविहं मिच्छत्तं, वारसविहा अविरई, पणवीसं कसाया, जोगा तेरस, आहागदुगूणा, एए पणपणं मिच्छादिट्ठस्स बंधहयेवो १ । सासायणस्स मिच्छत्तं विणा पण्णासं २ । वारसविहा अविरई अणंताणुबंधिवज्जा एगवीसं कसाया मणचउक्कं वहचउक्कं ओरालियं वेउव्वियं च सम्मामिच्छस्स तेयालीसं हेऊ ३ । वेउव्वियमीसओरालियमीसकम्मइग-जोगतिगे छूढे तेयालीसाए छायालीमं अविरयस्स ४ । तसविरइवज्जा एगारसविहा अविरई पढमवीयकसायट्ठगवज्जा सत्तरस कसाया मणचउक्कं वहचउक्कं ओरालं सरीरं वेउव्वियदुगं च एए ऊणयालीसं देसविरयस्स ५ । संजलणचउक्कं नोकसायनवगं मणचउक्कं वहचउक्कं आहार-दुगं विउव्वियदुगं ओरालियं च छव्वीमं पमत्तसंजयस्स ६ । एसा चेव छव्वीसा वेउव्वियमीस-आहारगमिस्सवज्जा चउवीसं अपमत्तस्स । संजलणचउक्कं नोकसायनवगं मणचउक्कं वहचउक्कं ओरालियसरीरं एवं वावीसं अपुव्वकरणस्स ८ । संजलणचउक्कं वेयतिगं जोगनवगं एवं सोलस वायरसंपरायस्स ९ । संजलणलोहं जोगनवगं दस सुहुमसंपरायस्स १० । उवसंतमोहक्खीण-मोहाणं नव नव जोगा बंधहेऊ ११-१२ । सजोगिस्स सत्त जोगा दट्ठव्वा १३ । अजोगिस्स बंधहेयो न संति १४ ॥७७॥

एत्थ गाहाओ-

पणपणबंधहेऊ मिच्छादिट्ठस्स ववयओ होति । आहारगदुगरहिया जेणं तं संजयस्स मये १ ॥१॥ पन्नासा सासणे पंचगमिच्छत्तविरहिया होइ २ । मिस्से पुण तेयाळा अणकम्मणमिस्सदुगरहिया ३ ॥२॥ तुरियम्मि उ छायाळा कम्मणमिस्सदुगसंजुया जाण ४ । एगूणवत्त देसे वीयकसायाण भावाओ ॥३॥ तसभविरइवरल्लगमिस्सं कम्मइग जेण तत्थ ना सत्ता ५ । छव्वीसा य पमत्ते संजलणा ४ नोकसाया ५ ॥४॥ कम्मण उरलगमिस्सं षड्जित्ता सव्वजोगसव्वावे १३-६ । चउवीसं अपमत्ते वेउव्वाहारमिस्सविणा ७ ॥५॥ वावीसा उ अपुव्वे वेउव्वाहारविरहिया होइ ८ । अनियट्ठीए सोलस हासच्छक्केण रहिया उ ९ ॥६॥ सुहुमे दसगं जाणसु विवेयतिकसायधिरहियं कासं १० । उवसंते खीयो पुण जोगा नव बंधहेउ त्ति ११-१२ ॥७॥ सव्वजोगिकेवल्लिमि सक्कअसक्कासुसावइमणो य । कम्मं उरल्लदुगेणं जोगा सत्तेष बंधस्स १३ ॥८॥

१. “त्ति” इत्यपि पाठः । २ “वय” इत्यपि । ३ “वेउव्विय” इत्यपि । ४ “ओहओ” इत्यपि । ५ “कम्मणसुरल्लदुग वह, जोगा” इति जे० ।

भणिया गुणट्टाणगेषु बंधहेऊणं उत्तरमेया । बंधहेऊहिं पुणं कम्मं बज्झइ, अओ तस्स नामाणि संखं च निदंसेइ—

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।

आउयनामं गोयंतरायमिय अट्ट कम्माणि ॥ ७८ ॥

(राम०) कंठा । एएसिं कम्माणं बंधो हवइ बंधे कडे सति उदयाइणा वि भवितव्वम् । जओ वुत्तं—

“बंधस्सुदयो उदए उदीरणा तदवसेसयं संतं । तम्हा बंधधिहाणे, मन्तंते इइ मण्येयव्वं ॥” ॥७८॥

अओ बंधस्स उदयस्स उदीरणा संतस्स वि ठाणाणि गुणठाणगेषु दंसेइ—

सत्तट्टुछेगबन्धा सन्तुदया अट्ट सत्त चत्तारि ।

सत्तट्टुछपंचदुगं तुदीरणाठाणसंखेयं ॥७९॥

(राम०) पुच्चमेव जीवदूठाणेषु बंधोदओदीरणसंताणं ठाणाणि वक्खाणियाणि । तमेव चक्खणं इत्थ दट्ठव्वं ॥७९॥

मिच्छदिट्ठपभिईणं बंधदूठाणपमाणमाह—

अपमत्तंता सत्तट्टु मीसअप्पुव्ववायरा सत्त ।

बन्धंति छ सुहुमा एगमुवरिमाऽबन्धगोऽजोगी ॥८०॥

(राम०) मिच्छदिट्ठसासणअविरयदेसविरयपमत्तअपमत्तेसु एएसु छसु ठाणेषु अट्ठविहबंधगा अहवा आउयं मोत्तुं सत्तविहबंधगा । तहा सम्मामिच्छदिट्ठी अपुव्वकरणअनियदिट्ठकरणा आउयं मोत्तूण सत्तविहबंधगा । सुहुमसंपराया मोहाउयं मोत्तूण छविहबंधगा । उवसंतखीणमोहसजोगिकेवली एगविहवेयणियबंधगा । अबंधगो अजोगी ॥८०॥

मिच्छदिट्ठपभिईणं उदयसत्तादूठाणपमाणमाह—

जा सुहुमो ता अट्ट वि उदये संते य हुन्ति पयडीओ ।

सत्तऽट्ट व संते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसुं ॥८१॥

(राम०) मिच्छदिट्ठीउ जाव सुहुमसंपराओ ताव उदए संते य अट्ठ कम्माणि । उवसंते उदए सत्त, मोहं मोत्तूण; सत्ताए अट्ठ कम्माणि । खीणमोहे उदए सत्ताए य मोहं मोत्तूण सत्त कम्माणि । सजोगिअजोगिकेवलीणं उदए सत्ताए य चत्तारि चत्तारि कम्मा अघाइणो ॥८१॥

उदीरणाठाणपमाणमाह—

सत्तऽट्ट पमत्तंता कम्मे उहरिन्ति अट्ट मीमो उ ।  
 वेयणियाउ विणा छ उ अपमत्तअपुच्चअणियट्टी ॥८२॥  
 सुहुमो छ पंच उहरेइ पंच उवसंतु पंच दो खीणो ।  
 जोगी उ नामगोए अजोगिअणुदीरणो भयवं ॥८३॥

(राम०) मिच्छद्दिट्ठी सासायणो अविरओ देसविरओ पमत्तो य एए पंच ठाणा अट्टण्हं कम्माणं उदीरगा । अहवा अद्वावलियासेसाउया सत्तण्हं उदीरगा । जओ आवलियागयं कम्मं करणाई न भवइ । सम्मामिच्छद्दिट्ठी अट्टण्हं उदीरणो । जओ "न सम्मामिच्छो कुगइ कालं" इइ वयणाओ । तहा अपमत्तअपुच्चकरणअनियट्टिद्वादरा वेयणियआउए मोत्तूण छण्हं कम्माणं उदीरगा । तहा सुहुमो वेयणियआउए मोत्तुं छण्हं उदीरणो, तहा मोहे अद्वावलियासेसे पंचण्हं उदीरणो । जओ मोहोदीरणा लोहे किट्टीकए अद्वावलियासेसे थक्कइ ति । मणुयाउयवेयणियाणं पुण उदीरणा पमत्तविरए थक्कइ ति । तहा नाणावरणदंसणावरणअंतरायनामगोयाणं पंचण्ह उवसंतो उदीरणो । खीणमोहो वि एएसिं चैव पंचण्हं उदीरणो । तहा नाणावरणदंसणावरणविग्घेहि अद्वावलियासेस'मेत्तेहिं नामगोयाणं खीणमोहो चैव दोण्हं उदीरणो । सजोगिकेवली दुण्हं नामगोयाणं उदीरणो । अजोगिअणुदीरणो भयवं ॥८२-८३॥

गुणट्ठाणगेमु अप्पबहुत्तमाह—

उवसन्तजिणा थोवा संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।  
 सुहुमनियट्टनियट्टी तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥८४॥  
 जोगिअपमत्तइयरे संखगुणा देससासणा मिस्सा ।  
 अविरयअजोगिमिच्छा असंखचउरो दुवेऽनन्ता ॥८५॥

(राम०) सब्बत्थोवा उवसंतजिणा । तओ खीणमोहजिणा संखेज्जगुणा २ । सुहुमो अनियट्ठी नियट्ठी तिन्नि वि तुल्ला, पुच्चेहितो विसेसाहिया । तओ सजोगिकेवली संखेज्जगुणा । तओ अपमत्तसंजया संखेज्जगुणा । तओ पमत्तसंजया संखेज्जगुणा । तओ देसविरया असंखेज्जगुणा । जओ तिरिया वि गहिया । तओ सासायणा असंखेज्जगुणा । तओ सम्मामिच्छाद्दिट्ठी असंखेज्जगुणा । तओ अविरय-सम्मदिट्ठी असंखेज्जगुणा । तओ अजोगिकेवली अणंतगुणा । जओ सिद्धा वि गहिया । तओ मिच्छद्दिट्ठी अणंतगुणा ॥८४-८५॥





४१३

चत्वारः प्राचीनाः कर्मग्रन्थाः  
साम्ब्राह्मणः

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

॥ ॐ ह्रीं श्रीं अर्धं श्रीशंखेश्वरान्धर्वानाथाय नमः ॥

न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ।

सद्धर्मसंरक्षकश्रीमदाचार्यविजयकमलसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

परमगीतार्थश्रीमदाचार्यविजयहीरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्रीमच्चिरन्तनाचार्यप्रणीता

## ❀ सप्ततिका ❀

(सित्तरी)

“श्रीमद्रामदेवगणिना कृतेन टिप्पनकेन समलङ्कृता”

सिद्धपरहिं महत्थं बन्धोदयसंतपगडिठाणाणं ।

षोच्छं सुण संखेवं निस्संबं दिडिवायस्स ॥सू०-१॥ (१)<sup>२</sup>

कइ बचंतो वेयइ कइ कइ वा पगडिठाणकम्मंसा ।

मूलुत्तरपयडोसुं भंगविगप्पा बोद्धवा ॥सू०-२॥ (२)

सुगइगमसरलसरणिं, वीरं नमिउण मोहतमतरणिं ।

सत्तरिणटिप्पेमी, किंची चुभीउ अणुसरिउं ॥१॥ (३) [१]<sup>३</sup>

संखेवा मंगाणं, सुमरणहेउ तह पगडिठाणाणं ।

पत्तेयं पगडीणं, नामग्गाहं च काहामि ॥२॥ (४) [२]

आउसमं अट्ट मवे, आउविहूणा य सत्त बंधम्मि ।

मोहणियाऽऽउविणा छ उ, एगो वेयणियबंधो उ ॥३॥ (५) [३]

अट्टुदओ बहुयाणं, मोहं मोत्तूण केसि सत्तुदओ ।

घाइविहूणा चउरो, तह सचाए वि तियठाणा ॥४॥ (६) [४]

१ महावतनामाचार्यः शिता इत्यर्थः, न पुनश्चिरन्तनामिधाचार्यविहिता इति । २ ( ) एतच्चिह्नान्त-  
गतगाथाक्रमः ससूत्रकः L. D. (बालमाइ दल्पत्तमाइ विद्यामंदिर) प्रत्यनुसारी । सूत्ररहितगाथाक्रमः  
पुनः J. (जेसलमेर) प्रतिप्रेसकोप्यपेक्षः । ३ [ ] एतच्चिह्नान्तर्गतगाथाक्रमः ससूत्रकः J. प्रतिप्रेसकोप्य-  
धिष्ठन । ४ “संखेवेणं इत्यरि ।

सामन्ना १ जीव २ गुणा ३, पत्तेयं मूलपयडिविसओ उ ।

नियनियमंगेहि समं, सुत्तऽणुसारउ तं च इमं । ५॥ (७) [५]

मूलप्रकृतौ सत्तास्थानानि-

अट्टविह-सत्त-छब्बंअएसु अट्टेव उदयसंताइं ।

एगविहे तिविगप्पो, एगविगप्पो अवंधम्मि ॥सू०-३॥ (८) [६]

पढमद्ध कंठं ।

सत्तऽट्ट १ सत्त सत्त य २, चउरो चउरो य ३ उदयसंतंसा ।

एगविहवंधगे इह, तह य अवंधम्मि चउ चउरो ॥६॥ (९) [७]

सामन्ने ठवणा-

बन्धो	८	७	६	१	१	१	०
उदयो	८	८	८	७	७	४	४
सत्ता	८	८	८	८	७	४	४

जीवस्थानेषु मूलप्रकृतीनां बन्धोदयसत्तास्थानानि-

सत्तऽट्टवंध अट्टुदयसंत तेरससु जीवठाणेषु ।

एगम्मि पच भगा दो भंगा होंति केवल्लिणो ॥सू०-४॥ (१०) [८]

पढमद्धं कंठं । 'एगम्मि' सन्नित्ठाणे ।

अहसत्तछेगवंधा, उदए संते य पढमत्तिसु अट्ट ।

एगम्मि सत्त अट्ट य, तह सत्त य सत्त उदयंसा ॥७॥ (११) [९]

सण्णिस्स ठवणा-

बन्धो	८	७	६	१	१
उदयो	८	८	८	७	७
सत्ता	८	८	८	८	७

तेरससु जीवठाणेषु ठवणा-

ब०	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८
उ०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
स०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
जीव- ट्टाणा	सू. अप.	सू. प.	वा. अर.	वा. प.	वे. अप.	वे. प.	त्रि० अप	त्रि० प०	च. अ	च. प.	असं. अप.	असं. प.	सं. अप.

१ "संतंसा" इति वा पाठः । २ "हुंति" इत्यपि ।

द्वैधलिठवणा—

बन्धो	१	०
उदयो	४	४
सत्ता	४	४

गुणस्थानकेषु मूलप्रकृतीनां बन्धोदयसत्तास्थानानि—  
 अद्वसु एगविगप्पो, लस्सु <sup>१</sup>उ गुणसन्निएसु दुविगप्पो ।  
 पत्तेय पत्तेयं, बंधादय—संतकम्माणं ॥सू०-५॥ (१२) [१०]  
 मिस्सअपुन्ना <sup>२</sup>वायर, सगबंधा छच्च बंधए सुहमो ।  
<sup>३</sup>उवसंताई ३ एगं, अबंधगोऽजोगि एगेगं ॥८॥ (१३) [११]  
 मिच्छासामणअविरय—देसपमत्तअपमत्तया चैव ।  
 सत्तऽद्वबंधगा इह, उदया संता य पुण एए ॥९॥ (१४) [१२]  
 जा सुहमो ता अद्व उ, उदए संते य होति पयडीओ ।  
<sup>४</sup>सत्तऽद्व उवसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु ॥१०॥ (१५) [१३]

ठवणा—

गुणठाणाणि	मिच्छ	सा०	मि०	अदि०	देम०	पम०	अपम.	अपू०	अणि.	सु०	उव०	खीण.	मजो.	अजो.
बंधो	८	७	७	८	७	८	७	७	७	६	१	१	१	०
उदयो	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
सत्ता	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	४	४
	२	२	१	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१

मूलपयडीसु मणिया बन्धोदयसंतठाणसविगप्पा ।  
 उत्तरपयडीसु तथा ते धिय पयडेमि पत्तेयं ॥ (१६)

उत्तरप्रकृतिषु बन्धोदयसत्तास्थानानि—

बंधोदयसंतंसा, नाणाधरणंतराए पंच ।  
 बंधोधरमे वि तथा, <sup>५</sup>उदयंसा होति पंचेव ॥सू०-६॥ (१७) [१४]

१ “वि” इत्यपि । २ “वावर” अनिष्टुप्तिः । ३ उपशान्तकषायश्रीणकषायसयोगिकेवलिनः । ४ ‘सत्त-  
 ऽद्वुवसंते’ इति L. D. प्रती । ५ ‘उदसंता हुंति’ इति ।

नाणावरणं महेशसुय२ओहि३मणोनाण४केवलवरणा ५ ।

विग्धं दाणे १लाभे २, भोगु३वभोगे४ य विरिए य ५ ॥११॥ (१८) [१५]

सामन्तेणं गुणदृाणगेसु य बंधाइवोच्छेदमाह-

नाणंतरायबंधो, सुहुमे संतुदय 'खीणचरिमम्मि ।

वोच्छिन्ना य कमेणं, दो दो भंगा उ दोण्हं पि ॥१२॥ (१९) [१६]

ठवणा-

	नाणावरण०		अंतगाय०	
	५	०	५	०
बंधो	५	०	५	०
उदओ	५	५	५	५
सत्ता	५	५	५	५

दर्शनावरणन्योत्तरप्रकृतीनां बन्धोदयसत्तास्थानानि-

बंधस्स य संतस्स य, पगइहाणाणि तिल्लि तुल्लाइं ।

उदयहाणाहं कुवे, चउ पणगं वंसणावरणे ॥१०-७॥ (२०) [१७]

नयणेयरोहि-केवल-दंसणआवरणयं भवे चउहा ।

निहा-पयलाहि छाहा, निहाइ<sup>२</sup>दुरुत्त थीणद्धी ॥१३॥ (२१) [१८]

सामण्णे ठवणा-

वंसणावरण०			
बंधो	१	६	४
उदओ	४		५
सत्ता	१	६	४

१ एतत्प्रतिपादनं सप्ततिकाचूर्णि-टीकाभ्यां समं (न) विरुध्यते, तद्यथा-'बो होंति दोसु ठाणेसु' त्ति उदयसंताणि दोण्णि, एयाणि उवसंतखीणकसायेसु दोसु भवंति, सुहुमरागचरिमसमप बंधो वोच्छिण्णो, छ उमत्थत्ताओ उदयसंता अत्थि । ते य खीणकसायचरिमसमप दोषि स्खिञ्जति ।' (सप्ततिकाचूर्णिपत्र ३५ पृष्ठि २) । तथा 'द्वयोः पुनर्गुणस्थानकयोः उपशान्तमोह-क्षीणमोहरूपयोः 'द्वे' उदयसत्ते स्तः. न बन्ध, बन्धस्य सूक्ष्मसम्पराये व्यवच्छिन्नत्वात् । एतदुक्तं भवति बन्धामावे उपशान्तमोहे क्षीणमोहे च ज्ञानावरणीयाऽन्तराययोः प्रत्येकं पञ्चविध उदयः पञ्चविधा च सत्ता भवतीति परत उदय-सत्तयोरप्यभ.वः । (कर्म-ग्रन्थद्वितीयविभागः पृ० २०७) २ आदिशब्दात् प्रचला ज्ञातव्या ।

- नव छच्चउहा बंधे, तह 'संता पंच चउर उदयम्मि ।  
 'सामणमिणं वीए, भंगा पुण 'होति 'एक्कारा ॥१४॥ (२२) [१६]  
 बीयावरणे नव बंधएसु चउ पंच उदय नव संता ।  
 छ च्चउबंधे चेषं, चउबंधुदए छलंसा य ॥सू०-८॥ (-३) [२०]  
 उवरयबंधे चउ पण, नवंस चउरुदय छच्च चउ संता ।  
 वेयणिया-ऽऽउय-गोए, विमञ्ज मोहं परं वोच्छं ॥सू०-९॥ (२४) [२१]  
 नव छ च्चउविहबंधे, उदए चउ पंच संत नव छसु वि ।  
 चउबंधुदए 'संता, 'छच्चेव य होति खवगस्स ॥१५॥ (२५) [२२]  
 बंधोवरमे चउ पंच उदय नव संत होति उवसंते ।  
 खीणे उदयचउकम्मि छ च्च चत्तारि 'संताओ ॥१६॥ (२६) [२३]

ठवणा-

बंधो	६	६	६	६	४	४	४	०	०	०	०
उवसो	५	४	५	४	५	४	४	५	४	४	४
सत्ता	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	४

'वेदणीयाऽयगोए विमञ्ज मोहं परं वोच्छं ।

वेदनीया-ऽऽयुर्गोत्राणा सुत्तरप्रकृतीनां बंधोदयसत्तास्थानसंवेधभङ्गाः-

'गोयम्मि सत्त भंगा, अट्ट य भंगा भवन्ति वेयणिए ।

पण नव नव पण भंगा, आउ चउक्के वि कमसो उ ॥सू०-०॥ (२७) [२४]

नीयं बंधं नीयस्स उदय नीयस्स चेष संताओ ।

अनिलाऽनलजीवाणं इयरेसु अणंतरुव्वट्टे ॥१७॥ [२५]

अनला-ऽनिलजीवाणं एगो इय एसु केसिं चि ॥ (२८)

उद्वालियउच्चागोए तेउवालण णीयमिह संतं ।

इयरेसु च उव्वट्टे पज्जत्ती जा न पूरेइ ॥ (२९)

१-५-७ "सत्ता" इति L. D. प्रतौ । २ 'सामञ्ज' इति L. D. प्रतौ । ३ "हुंति" इति L. D. प्रतौ । ४ अत्र प्राचीनकर्मस्तषकारादिभिः श्रयोश्चमङ्गाः प्रतिपाद्यन्ते । यतस्तेः क्षपकाणामपि निद्राद्विकोदयं स्वीक्रियते । दृश्यतां प्राचीनकर्मस्तवे त्रयस्त्रिंशत्तमगाथापूर्वार्धं तट्टीका च ६ क्षपकाणां स्थानद्वित्रिक-क्षयानन्तरं षड्विधा सत्ता बोद्धव्या । ८ अर्थ पाठः J० प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । L. D. प्रतौ चास्ति । ९ 'किनाऽपि विदुषा सप्ततिकामूलप्रकरणेऽर्थांनुसन्धानार्थं प्रक्षिप्तमिदं गाथासूत्रम्, न तु मूलप्रकरणस्येद-मिति । एवमप्येऽपि श्लेषम् ।

नाणावरणं म३१सुय२ओहि३मणोनाण४केवलवरणा ५ ।  
विग्धं दाणे १लामे २, भोगु३वभोगे४ य विरिए य ५ ॥११॥ (१८) [१५]

सामन्तेणं गुणट्टणगेसु य वंधाडवोच्छेदमाह-

नाणंतरायबंधो, सुहुमे संतुदय 'खीणचरिमम्मि ।  
वोच्छिन्ना य कमेणं, दो दो भंगा उ दोणहं पि ॥१२॥ (१९) [१६]

ठवणा—

	नाणावरण०		अंतराय०	
	५	०	५	०
बंधो	५	०	५	०
उदयो	५	५	५	५
सत्ता	५	५	५	५

दर्शनावरणन्योत्तरप्रकृतीनां बन्धोदयसत्तास्थानानि-

बंधस्स य संतस्स य, पगइडाणाणि तिन्नि तुल्लाहं ।  
उदयडाणाहं दुवे, चउ पणगं दंसणावरणे ॥सू०-७॥ (२०) [१७]

नयणेयरोहि-केवल-दंसणावरणयं भवे चउहा ।  
निहा-पयलाहि छहा, निहाइ<sup>३</sup>दुरुत्त थीणद्धी ॥१३॥ (२१) [१८]

सामण्णे ठवणा-

दंसणावरण०			
बंधो	१	६	४
उदयो	४		५
सत्ता	१	६	४

१ एतत्प्रतिपादनं सप्ततिकाचूर्णि-टीकाभ्यां समं (न) विरुध्यते, तद्यथा-‘वो होंति दोसु ठाणेसु’ त्ति उदयसंताणि दोणिण, एयाणि उवसंतखीणकसायेसु दोसु भवन्ति, सुहुमरागचरिमसमए बंधो वोच्छिण्णो, छ उमत्यत्ताओ उदयसंता अत्थि । ते य खीणकसायचरिमसमए दोत्रि विवज्जंति ।’ (सप्ततिकाचूर्णिपत्र ३५ पृष्ठि २) । तथा ‘द्वयोः पुनर्गुणस्थानकयोः उपशान्तमोह-क्षीणमोहरूपयोः ‘द्वे’ उदयसत्ते स्तः. न बन्ध-, बन्धस्य सूक्ष्मसम्पराये व्यवच्छिन्नत्वात् । एतदुक्तं भवति बन्धाम’वे उपशान्तमोहे क्षीणमोहे च ज्ञानावरणीयाऽन्तराययोः प्रत्येकं पञ्चविध उदयः पञ्चविधा च सत्ता भवतीति परत उदय-सत्तयोरप्यम.वः । (कर्मग्रन्थद्वितीयविभागः पृ० २०७, २ आदिशब्दात् प्रचला ज्ञातव्या ।

मिच्छं कसायसोलस, मय कुच्छा तिण्ह वेयमन्नयरे ।  
 हाम-रइ इयरजुयलं च वंधपयडी य वावीसं ॥२२॥ (३५) [३१]  
 इगवीसा 'मिच्छविणा, 'नपुबंधविणा उ सासणे वंधे ।  
 अणरहिया 'सत्तरस न बंधि थिहं 'तुरिअठाणम्मि । २३॥ (३६) [३२]  
 वियसंपरायऊणा, तेरस तह तइयऊण नव वंधे ।  
 मय-कुच्छ-जुगलचाए, पण वंधे वायरे ठाणे ॥२४॥ (३७) [३३]  
 तह पुरिस-कोह-ऽहंकार-'माय-लोभस्स वंधवोच्छेए ।  
 चउ-ति-दुग-एगबंधे, कमेण मोहस्स दम ठाणा ॥२५॥ (३८) [३४]

ठवणा-२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ ॥ एवं वंधे १० ॥

मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानानि नव-

एगं च दो य चउरो, एत्तो एगाहिया दसुक्कोसा ।  
 ओहेण मोहणिज्जे, उदयट्टाणाणि नव 'होति ॥सू०-११॥ (३९) [३५]  
 एगयरसंपरायं, वेयजुयं 'दोणिण जुयलजुयचउरो ।  
 पच्चदखाणोगयरे, छूदे पंचेव पयडीओ ॥२६॥ (४०) [३६]  
 छ बिहय ४ एगयरेणं, छूदे सत्त य दुगुंछि मय अट्ट ।  
 अणि नव मिच्छे दसगं, सामन्नेणं तु 'नव उदया ' ॥२७॥ (४१) [३७]

ठवणा-१, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९ १० ।

मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनां सत्तास्थानानि पञ्चदश-

'धट्टग-सत्तग-छ-चउ-तिग दुग एगाहिया मवे वीसा ।

तेरस 'वारेक्कारस, एत्तो पंचाइएकूणा ॥सू०-१२॥ (४२) [३८]

१ "मिच्छूणा" इति L. D. प्रती । "मिच्छोणा" इति वा पाठः । २ अत्र पुं-स्त्रीवेदयोरन्यतरस्य  
 अन्वः प्रक्षिप्यते । ३ "सत्तरसं न बंधि थिहं" इति L. D. प्रती । अत्र केवलं पुं-वेदो षष्प्यते । ४ उप-  
 लक्षणात्तृतीयगुणस्थानके-ऽपि । ५ "माया०" इति वा । ६ "हुंति" इत्यपि । ७ वेदत्रिकादन्यतरवेदयुतम् ॥  
 ८ "दस" इति तु ७० प्रतिप्रेसकोप्याम् । तेनोदयपदेन नवापेक्षयोदयस्थानानि, दशापेक्षया तूदयप्रकृ-  
 तय इति सम्भाव्यते । ९ अत्राचार्यश्रीमच्छयगिरिपादाः सप्ततिकाटीकायामित्थं क्रमभेदेन व्याख्यानयन्ति  
 "तत्र तत्र चतुर्णां संवलनानामन्यतमस्योदये एकमुदयस्थानम्, तदेव वेदत्रयान्यतमवेदोदयप्रक्षेपे  
 द्विकम्, तत्रापि हास्यरविरूपयुगलप्रक्षेपे चतुष्कम्, तत्रैव मयप्रक्षेपात् पञ्चकम्, जुगुप्ताप्रक्षेपात् षट्कम्,  
 तत्रैव चतुर्णां प्रत्याख्यानानावरणकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपे सप्तकम्, तत्रैव चाऽप्रत्याख्यानानावरणकषाया-  
 णामन्यतमस्य प्रक्षेपेऽष्टकम्, तत्रैव चतुर्णामनन्तानुबन्धिकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपे नवकम्, तत्रैव  
 मिथ्यात्वप्रक्षेपे दशकम् ॥" (कर्मग्रन्थ द्वितीयविभागपत्र १६२) १० 'अद्वयसत्तय" इति । ११ "वारि-  
 ककारस" इति L. D. प्रती ।



नीउच्चं बंधुदए, विगप्प चत्तारि दोहि संतेहि ।  
बंधोवरमे उच्चस्स उदय दो-एक्कसंताओ ॥१८॥ (३०) [२६]

ठषणा—

बंधो	नीयं	नीयं	नीय	उच्चं	उच्चं	०	०
उदओ	नीयं	नीयं	उच्चं	नीयं	उच्च	उच्चं	उच्चं
सत्ता	नीयं	२	२	२	२	२	उच्चं

सायाऽसाये दोसुं, 'चउभंगा बंध-उदइ दु दु संता ।  
बंधोवरमे चउरो, संता दुसु दोन्नि दुसु एगं ॥१९॥ (३१) [२७]

ठषणा—

बंधो	असा- यं	असा- यं	सायं	सायं	०	०	०	०
उदओ	असा- यं	सायं	असा- यं	सायं	असा- यं	सायं	असा- यं	साय
सत्ता	२	२	२	२	२	२	१	१

एगो अ बंधपुव्वे, बंधे बंधुत्तरे य चउ चउरो ।  
नरतिरियाणं आउयचउक्कबंधुदय-संतेहि ॥२०॥ (३२) [२८]  
सुर-नरयाणं पण पण, बंधे बंधुत्तरे य दो दुन्नि ।  
जम्हा न तेसिं बंधो, सुर-निरयाउण संभवइ ॥२१॥ (३३) [२९]

ठषणा—

देषाणं भंगा					मणुयाणं भंगा					तिरियाणं भंगा					नेरइयाणं भंगा													
बंध.	०	म.	ति	०	०	०	वे	म	ति	नि	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०		
उद.	वे	वे	वे	वे	वे	म.	म	म.	म	म.	म.	म.	म.	म.	ति.	ति	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	
सत्ता	१	२	२	२	२	१	२	२	२	२	२	२	२	२	१	२	२	२	२	२	२	२	२	१	२	२	२	२
कुल	१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५

भोहनीयस्थोत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानानि षष्—

षावीस एक्कवोसा, सत्तरसा तेरसेष नष पंच ।

षडतिगदुगं च एक्क, बंध'ट्टाणाणि मोहस्स ॥सू०-१०॥ (३४) [३०]

१ "चउभंगो" इति ०० प्रतिप्रेसकोप्यम् । २ "ट्टाण.इ" इति L. D. प्रती ।

मिच्छं कसायसोलस, भय कुच्छा तिण्ह वेयमन्नयरं ।  
 हास-रइ इयरजुयलं च बंधपयडी य चावीसं ॥२२॥ (३५) [३१]  
 इगवीसा 'मिच्छविणा, 'नपुबंधविणा उ सासणे बंधे ।  
 अणरहिया 'सत्तरस न बंधि थिहं 'तुरिअटाणम्मि । २३॥ (३६) [३२]  
 वियसंपरायऊणा, तेरस तह तइयऊण नव बंधे ।  
 मय-कुच्छ-जुगलचाए, पण बंधे वायरे ठाणे ॥२४॥ (३७) [३३]  
 तह पुरिस-कोह-ऽहंकार-'माय-लोमस्स बंधवोच्छेए ।  
 चउ-ति-दुग-एगबंधे, कमेण मोहस्स दस ठाणा ॥२५॥ (३८) [३४]

ठवणा-२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ ॥एवं बंधे १०॥  
 मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानानि नव-

एवं च दो य चउरो, एत्तो एगाहिया दसुक्कोसा ।  
 ओहेण मोहणिज्जे, उदयट्टाणाणि नव' होंति ॥ख०-११॥ (३६) [३५]  
 एगयरसंपरायं, वेयजुयं 'दोणिण जुयलजुयचउरो ।  
 पच्चक्खाणेगयरे, छूदे पंचेव पयडीओ ॥२६॥ (४०) [३६]  
 छ बिइय ४ एगयरेणं, छूदे सत्त य दुगुंछि मय अट्ट ।  
 अणि नव मिच्छे दसगं, सामन्नेणं तु 'नव उदया ॥२७॥ (४१) [३७]

ठवणा-१, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९ १० ।

मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनां सत्तास्थानानि पञ्चदश-

'अट्टग-सत्तग-छ-चउ-तिग दुग एगाहिया भवे वीसा ।

तेरस' 'बारेक्कारस, एत्तो पंचाइएक्खणा ॥ख०-१२॥ (४२) [३८]

१ "मिच्छूणा" इति L. D. प्रती । "मिच्छोणा" इति वा पाठः । २ अत्र पुं-स्त्रीवेदयोरन्यतरस्य बन्धः प्रक्षिप्यते । ३ "सत्तरसं न बंधि थिहं" इति L. D. प्रती । अत्र केवलं पुं-वेदो बध्यते । ४ सप-लक्षणात्तृतीयगुणस्थानके-ऽपि । ५ "माया०" इति वा । ६ "हुंति" इत्यपि । ७ वेदत्रिकाइत्यतरवेदयुतम् ॥ ८ "दस" इति तु १० प्रतिप्रेसकोप्याम् । तेनोदयपदेन नवापेक्षयोदयस्थानानि, दशापेक्षया तूदयप्रकृ-तय इति सम्भाव्यते । ९ अत्राचार्यश्रीमल्लयगिरिपादाः सप्ततिकाटीकायामित्थं क्रमभेदेन व्याख्यानयन्ति "तत्र तत्र चतुर्णां संभ्रलनानामन्यतमस्योदये एकमुदयस्थानम्, तदेव वेदत्रयान्यतमवेदोदयप्रक्षेपे द्विकम्, तत्रापि हास्यरतिरूपयुगलप्रक्षेपे चतुष्कम्, तत्रैव मयप्रक्षेपात् पञ्चकम्, जुगुप्साप्रक्षेपात् षट्कम्, तत्रैव चतुर्णां प्रत्याख्यानाघरणकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपे सप्तकम्, तत्रैव चाऽप्रत्याख्यानाघरणकषाया-णामन्यतमस्य प्रक्षेपेऽष्टकम्, तत्रैव चतुर्णांमन्तानुबन्धिकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपे नवकम्, तत्रैव मिथ्यात्वप्रक्षेपे दशकम् ॥" (कर्मग्रन्थ द्वितीयविभागपत्र १६२) १० 'अट्टयसत्तय" इति । ११ "बारि-क्कारस" इति L. D. प्रती ।

संतस्स पयडिठाणाणि ताणि मोहस्स 'होति पन्नरस ।  
 बंधोदयसंते पुण, भंगविगप्पे बहू जाण ॥२०-१३॥ (४३) [३९]  
 नव नोकसाय सोलस, कसाय दंसणतिगं ति अडवीसा ।  
 सम्मत्तुच्चलणेणं, मिच्छे मीसे य सगवीसा ॥२८॥ (४४) [४०]  
 छवीसा पुण दुविहा, मीसुच्चलणे अणाइमिच्छत्ते ।  
 सम्म'दिट्ठ'डवीसा, अण ४ कलए होइ चउवीमा । २६॥ (४५) [४१]  
 मिच्छे मीसे सम्मे ३, खीणे ति-दुवीस एककवीसा य ।  
 अडकसाए तेरस, नपुक्खए होइ वारसगं ॥३०॥ (४६) [४२]  
 'थीवेयि खीणिगारस, हासाई ६ पंच चउ पुरिसखीणे ।  
 कोहे माणे माया, लोमे खीणे य कमसो उ ॥३१॥ (६७) [४३]  
 'तिग दुग एग असंतं, मोहे पन्नरस संतठाणाणि ।  
 बंधोदयसंवेहे भंगविगप्पे बहू जाण ॥३२॥ (४८) [४४]  
 ठषणा-२८, २७ २६, २४ २३, २२, २१ १३, १२, ११, ५, ४ ३ २, १।  
 'बंधंसुदए पडुच्चा, जइवि पुणो मोहविवरणं वुत्तं ।  
 तह वि य सुहगुणणत्थं सुहसुमरणहेउ एगत्थ ॥३३॥ (४९) [४५]  
 मोहनीयस्य बन्धस्थानानां मङ्गल -  
 लुब्धावोसे षउ इगवीसे सत्तरसतेरसे दो दो ।  
 नवबंधए 'उ दोन्नि उ, एककेक्क'मओ परं भंगा ॥३४॥ (५०) [४६]  
 वेयइजुयलेहि चरिया, भंगा छच्चेव चउर नपुरुणा ।  
 जुयलेहि चउसु दो दो, सेसा एककेक्क संभविया ॥३४॥ (५१) [४७]

गुण - ठाणाणि	१	२	३	४	५	६	७	८	९ अनिष्टत्ति०				
	मि.	सा.	मि.म.	अवि.	वेश.	प्र०	अप्र	अपू०	१	२	३	४	५
बंधुठाणाणि	२०	२१	१७	१७	१३	६	६	६	५	५	३	२	१
भंगा०	६	४	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१

१ 'हुन्ति' इति । २० 'दिट्ठिडवी०' इति प्रती । ३ "थीवेयिखीणिगारस" इत्यपि । ४ "तिगदुगएग-  
 असंत" इति वा, 'तिग दुग य संतं' इति L. D. प्रती । ५ "बंधंसुगुणं पडु" इति प्रती । "बंधुरयगुणं"  
 इति L D प्रती । ६ "मि दुणिग २" इति । ७ "मकारस्त्वलाक्षणिः" इति सप्ततिरामिकायाम् ।

मोहनीयस्य सत्तास्थानानि, वन्धस्थानभङ्गाः, वन्धस्थानेपूदयस्थानानि, उदयस्थानभङ्गाश्च [ ६

मिच्छाह पमत्तंता जुयलगया वेयभंग उट्टंति ।  
 बुच्छिन्नअरइसोगा पमत्ति उवरि तु एगेगा ॥ (५२)  
 १एवं गुणद्व्याणोसु वंधभंगा ॥२५॥ इयाणि उदयठाणां उदयगगइविवरणमाह-

मोहनीयस्य वन्धस्थानेपूदयस्थानानि-

वस वावीसे नव इगवीसे सत्ताह उदयठाणाणि ।  
 छाई नव सत्तरसे तेरे पंचाह अट्टेव ॥सूत्र-१५॥ (५३) [४८]  
 अस्तारि आह नवबंधएसु उक्कोस सत्त उदयसा ।  
 पंचविहबंधए पुण, उदओ दोणहं सुणेयव्वो ॥सूत्रम्-१६॥ (५४) [४६]  
 एसो चउबंधाई, एक्केकुदया हवंति सव्वे वि ।  
 बंधोवरमे वि तहा, उदयाभावे वि वा होज्जा ॥सू०-१७॥ (५५) [५०]

ठवणा-

बंध	२२	२१	१७	१३	६	५	४	३	२	१०
उदय	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

मिच्छ-तिकसाय-वेयं, जुयलभयरेण २ सत्तगं तत्थ ।  
 वेयतिग-चउकसाए, जुयलभयरेण चउवीसा ॥३५॥ (५६) [५१]  
 वेएसु चउकसाया, कोहाहकमेण उदयओ होंति ।  
 एक्केक्कम्मि चउचउरो, तिग-चउगुणिया उ वारसगं ॥३६॥ (५७) [५२]  
 ते हास-ईउदए, अरई-सोगपरियत्तउदए वा ।  
 दो मिलिया चउवीसं, उदयगया मोहणीयस्स ॥३७॥ (५८) [५३]  
 एवं सव्वत्थ चउवीसिया चारणा ।  
 सत्तोदयम्मि एगा, अण-भय-कुच्छाण एगयरखेवे ।  
 अट्टुदओ तिञ्जि तहिं, दुगसंजोगम्मि तह नवए ॥३८॥ (५९) [५४]  
 तिगपक्खेव दसेगा, चउसु वि उदएसु अट्ट चउवीसा (मिच्छे) ।  
 सासणमीसे तिगतिग भयक्कुच्छदुगेहि चउचउरो ॥३९॥ [५५]  
 तिगयक्खेव दसेगा चउसु वि उदएसु अट्टचउवीसा ।  
 मिच्छम्मि गुणद्व्याणे सेसगुणाणं च एस कम्मो ॥ (६०)  
 तिगतिग उदयद्व्याणा सासणमिस्से य सत्तज्जहन्वर्ग ।

१ अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोट्यां नास्ति, L. D प्रतौ चास्ति । २ “उदयकम्मंसा” इति ॥ ३ “उद-यविगया य मोहस्स ॥५५॥” इति L. D प्रतौ ।

- एगदुगएगकमसो चउरो चउरो च पत्तेअं ॥ (६१)
- छलउदयम्मी एगा मय-कुच्छा-सम्मखेवएगयरे ।  
सत्तोदयम्मि तिन्नि उ, दुग-तिगपक्खेव मिच्छसमा ॥४०॥ (६२) [५६]
- पत्तेय अट्ट अट्ट उ अविरय-देसे पमत्त-अपमत्ते ।  
अप्पुन्वे पुण चउरो, सन्वे चावन्नमिच्छाई ॥४१॥ (६३) [५७]
- चोयगो आह-
- अणउदयरहियमिच्छो कम्मि जिए कित्तियं च से कालं ।  
आह-त्तदुवलगसम्मदिट्ठिरस मिच्छुदयआवलियकालं ॥४२॥ (६४) [५८]
- चउवीससंतकम्मी, मिच्छत्तगओ अणंतिणो वंधे ।  
मुत्तु अवाहाकालं तदु उवरिं निक्खिखेवे दलियं ॥४३॥ (६५) [५९]
- कहणंतवंधिउदओ आवलियाउवरि वुच्चए एवं ।  
सव्वं पट्ठिग्गहंते अन्नकसायाण संकमणे ॥४४॥ (६६) [६०]
- जं पढमसमयदलियं, संकंतं तं च आवलियउवरिं ।  
उदयंसे आगच्छह, तम्मी से अट्ट उदओ उ ॥४५॥ (६७) [६१]
- अन्नं च तम्मि समए, उदीरणोवट्टणागयं दलियं ।  
उदयम्मि खिवह जीवो, अणंतिणो तेण आवलिआ ॥४६॥ (६८) [६२]
- तं चेव सत्तगं मय-दुगुं-च्छ-अणसहिय अट्टनवदसगं ।  
इत्थं चउवीसा होंति तिन्नि तन्नेग जहसंखं ॥४७॥ (६९) [६३]
- चउवीसा पुच्चकमा कमेण उदएण जहसंखं ॥ (६९)
- पुन्नुत्तसत्तगा मिच्छफेडणे खेवणे यऽणंताणं ।  
सत्त य सासाणे तह-ऽह नव य मयकुच्छपक्खेवे ॥४८॥ (७०) [६४]
- वेयतिकसायमीसं, जुयलन्नयरेण सत्त मीसम्मि ।  
मयकुच्छाणन्नयरे, एगदुगेणं च अट्ट नव ॥४९॥ (७१) [६५]
- तिगसंपराय ३ वेयं १ जुयलन्नयरेण छञ्च पयडीओ ।  
मयकुच्छसम्मखेवे अविरयसत्तऽट्ट नव 'होंति ॥५०॥ (७२) [६६]
- <sup>१</sup>अजउदयठाणचउरो (व्व) देसविरए य सव्वविरए य ।  
नवरं कसायहाणी एक्केक्कं जाण जहसंखं ॥५१॥ (७३) [६७]



एगदुगएगकमसो चउरो चउरो च पत्तेअं ॥	(६१)	
छलउदयम्मी एगा भय-कुच्छा-सम्मखेवएगयरे ।		
सत्तोदयम्मि तिन्नि उ, दुग-तिगपक्खेव मिच्छसमा ॥४०॥	(६२)	[५६]
पत्तेय अट्ट अट्ट उ अविरय-देसे पमत्त-अपमत्ते ।		
अप्पुव्वे पुण चउरो, सव्वे वावन्नमिच्छाई ॥४१॥	(६३)	[५७]
चोयगो आह-		
अणउदयरहियमिच्छो कम्मि जिए किच्चियं च से कालं ।		
आह-तदुवल्लगसम्मदिट्ठिस्स मिच्छुदयआवलियकालं ॥४२॥	(६४)	[५८]
चउवीससंतकम्मी, मिच्छत्तगओ अणंतिणो वंधे ।		
मुत्तु अवाहाकालं तदु उवरिं निक्खिस्सवे दलियं ॥४३॥	(६५)	[५९]
कहणंतवंधिउदओ आवलियाउवरि वुच्चए एवं ।		
सव्वं पडिग्गहंते अन्नकसायाण संकमणे ॥४४॥	(६६)	[६०]
जं पढमसमयदलियं, संकंतं तं च आवलियउवरिं ।		
उदयंसे आगच्छह, तम्मी से अट्ट उदओ उ ॥४५॥	(६७)	[६१]
अन्नं च तम्मि समय, उदीरणोवट्टणागयं दलियं ।		
उदयम्मि खिवइ जीवो, अणंतिणो तेण आवलिआ ॥४६॥	(६८)	[६२]
तं चेव सत्तगं भय-दुगुंच्छ-अणसहिय अट्टनवदसगं ।		
इत्थं चउवीसा होंति तिन्नि तन्नेग जहसंखं ॥४७॥		[६३]
चउवीसा पुव्वकमा कमेण उदएण जहसंखं ॥	(६९)	
पुव्वुत्तसत्तगा मिच्छफेहणे खेवणे यणंताणं ।		
सत्तय सासाणे तह-उह नव य भयकुच्छपक्खेवे ॥४८॥	(७०)	[६४]
वेयतिकसायमीसं, जुयलन्नयरेण सत्त मीसम्मि ।		
भयकुच्छाणन्नयरे, एगदुगेणं च अट्ट नव ॥४९॥	(७१)	[६५]
तिगसंपराय ३ वेयं १ जुयलन्नयरेण छच्च पयट्ठीओ ।		
भयकुच्छसम्मखेवे अविरयसत्तउट्ट नव होंति ॥५०॥	(७२)	[६६]
अजउदयठाणचउरो (व्व) देसधिरए य सव्वविरए य ।		
नवरं कसायहाणी एक्केक्कं जाण जहसंखं ॥५१॥	(७३)	[६७]

इगसंपरायवेयं जुयलन्नयरेण चउरउदओ उ ।  
 अप्पुन्वे भयक्कुच्छा एगदुगेणं च पण छक्कं ॥५२॥ (७४) [६८]  
 इगवेयइगकसाए उदओ 'दोण्हं तु वायरकसाए ।  
 एफक्कुदयवेयखीणे वायरसुहुमाणं <sup>३</sup>दोण्हं पि ॥५३॥ (७५) [६९]  
<sup>३</sup>उदया इच्चाइ पए मणिया उवसंति तिन्नि संताओ ।  
 अहचउवीसउवसमे इगवीसं खंडसेदीए ॥५४॥ (७६) [७०]  
 घावन्नं ५२ चउवीसा गुणठाण पडुच्च इत्थ उट्टविया ।  
 वंधुदए पुण चत्ता ४० सामन्न पडुच्च उट्टंते ॥ (७७)

मोहनीयस्योदयस्थानानां मन्त्राः—

एक्कगल्लक्केक्कारस दस सत्तचउक्कइक्कगं चेष ।  
 एए चउवीसगया वारदुगिक्कम्मि एक्कारा ॥५०-१८॥ (८१) [७१]

एईए विवरणं जंतगाहाओ—

एगो <sup>५</sup>दसोदओ ननुदयचउर तह अह पंच सग छक्कं ।  
 छत्तिग पण दुग चउएग हुन्ति उदएसु ठाणाइं ॥५५॥ (८२) [७२]  
 दसगम्मि एग तिग पढमनवगि सेसेसु नवसु ३ एगेणं ।  
 पढमे अट्टगि तिन्नि उ दुग दुग तिग एग चउवीसा ॥५६॥ (८३) [७३]  
 तिसु सचगेसु एगेग तिन्नी तिन्नि उ छट्टए एगा ।  
<sup>५</sup>सन्वुदए चउवीसा, तह एग तिगं तिगं छट्टगे ॥५७॥ (८४) [७४]  
 पणउदइ एग १ वीयम्मि, तिन्नि चउरोदयम्मि एगा उ ।  
 वार दुगोदयमंगा एकोदय होति एक्कारा ॥५८॥ (८५) [७५]

ठवणा—

गुणठाणा	मि.	मि.	सा.	मी.	अवि.	मि.	सा.	मी.	अवि.	दे.	मि.	सा.	मी.	अवि.	दे.	सं.
उदयठाणा	१०	६	६	६	६	८	८	८	८	७	७	७	७	७	७	७
चउवीसिया	१	३	१	१	१	३	२	२	३	१	१	१	१	३	३	१

१-२ "दुन्हं" इति L. D. प्रती । अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति, ३ "उदयाभावे वि वाहि-  
 ज्जिते-इइ सुचाओ मणिया उवसंते तिन्नि चेष संताओ" इति L.D. प्रती । ४ "दसोदउ नवोदय" इति  
 वा । ५ "सन्वुदए ..... छट्टगे ॥" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । "सत्तुदए" इत्यपि वा L. D. प्रती भाति ।  
 तथा J. प्रवाषपि स्यात् ।



- एगदुगएगक्रमसो चउरो चउरो च पत्तेअं ॥ (६१)
- छलउदयम्मी एगा भय-कुच्छा-सम्मखेवएगयरे ।  
सचोदयम्मि तिन्नि उ, दुग-तिगपक्खेव मिच्छसमा ॥४०॥ (६२) [५६]
- पत्तेय अट्ट अट्ट उ अविरय-देसे पमत्त-अपमत्ते ।  
अप्पुव्वे पुण चउरो, सव्वे वावन्नमिच्छाई ॥४१॥ (६३) [५७]
- चोयगो आह-
- अणउदयरहियमिच्छो कम्मि जिए कित्तिं च से कालं ।  
आह-तदुवल्लगसम्मदिट्ठिरस मिच्छुदयआवलियकालं ॥४२॥ (६४) [५८]
- चउवीससंतकम्मी, मिच्छत्तगओ अणंतिणो वंधे ।  
मुत्तु अवाहाकालं तदु उवरिं निक्खिस्सवे दलियं ॥४३॥ (६५) [५९]
- कहणंतवंधिउदओ आवलियाउवरि वुच्चए एवं ।  
सव्वं पडिग्गहंते अन्नकसायाण संकमणे ॥४४॥ (६६) [६०]
- जं पढमसमयदलियं, संकंतं तं च आवलियउवरिं ।  
उदयंसे आगच्छइ, तम्मी से अट्ट उदओ उ ॥४५॥ (६७) [६१]
- अन्नं च तम्मि समए, उदीरणोवट्टणागयं दलियं ।  
उदयम्मि खिवइ जीवो, अणंतिणो तेण आवलिआ ॥४६॥ (६८) [६२]
- तं चेव सत्तगं भय-दुगुं च्छ-अणसहिय अट्टनवदसगं ।  
इत्थं चउवीसा होंति तिन्नि तन्नेग जहसंखं ॥४७॥ [६३]
- चउवीसा पुव्वकमा कमेण उदएण जहसंखं ॥ (६९)
- पुव्वुत्तसत्तगा मिच्छफेहणे खेवणे यडणंताणं ।  
सत्तय सासाणे तह-ऽह नव य भयकुच्छपक्खेवे ॥४८॥ (७०) [६४]
- वेयतिकसायमीसं, जुयलन्नयरेण सत्त मीसम्मि ।  
भयकुच्छाणन्नयरे, एगदुगेणं च अट्ट नव ॥४९॥ (७१) [६५]
- तिगसंपराय ३ वेयं १ जुयलन्नयरेण छच्च पयहीओ ।  
भयकुच्छसम्मखेवे अविरयसत्तऽट्ट नव 'होंति ॥५०॥ (७२) [६६]
- <sup>३</sup>अजउदयठाणचउरो (व्व) देसविरए य सव्वविरए य ।  
नचरं कसायहाणी एक्केक्कं जाण जहसंखं ॥५१॥ (७३) [६७]

इगसंपरायवेयं जुयलन्नयरेण चउरउदओ उ ।  
 अप्पुन्वे मयक्कुच्छा एगदुगेणं च पण छक्कं ॥५२॥ (७४) [६८]  
 इगवेयइगकसाए उदओ 'दोण्हं तु त्रायरकसाए ।  
 एफक्कुदयवेयखीणे वायरसुहुमाण 'दोण्हं पि ॥५३॥ (७५) [६९]  
 'उदया इच्चाइ पए मणिया उवसंति तिन्नि संताओ ।  
 अहचउवीसउवसमे इगवीसं खंडसेठीए ॥५४॥ (७६) [७०]  
 वावन्नं ५२ चउवीसा गुणठाण पडुच्च इत्थ उट्टविया ।  
 बंधुदए पुण चत्ता ४० सामन्न पडुच्च उट्ठंते ॥ (७७)

मोहनीयस्योदयस्थानानां मङ्गाः—

एक्कगळक्केक्कारस दस सत्तचउक्कइक्कगं चेव ।  
 एए चउवीसगया बारदुगिक्कम्मि एक्कारा ॥६०-१८॥ (८२) [७१]

एईए विवरणं जंतगाहाओ—

एगो 'दसोदओ ननुदयचउर तह अह पंच सग छक्कं ।  
 छत्तिग पण दुग चउएग हुन्ति उदएसु ठाणाइं ॥५५॥ (८२) [७२]

दसगम्मि एग तिग पढमनवगि सेसेसु नवसु ३ एगेणं ।  
 पढमे अट्टगि तिन्नि उ दुग दुग तिग एग चउवीसा ॥५६॥ (८३) [७३]

तिसु सचगेसु एगेग तिन्नी तिन्नि उ छट्टए एगा ।  
 'सन्वुदए चउवीसा, तह एग तिगं तिगं छट्टगे ॥५७॥ (८४) [७४]

पणउदइ एग १ वीयम्मि, तिन्नि चउरोदयम्मि एगा उ ।  
 बार दुगोदयमंगा एकोदय होंति एक्कारा ॥५८॥ (८५) [७५]

ठषणा—

गुणठाणा	मि.	मि	सा.	मी.	अधि.	मि.	सा.	मी.	अधि.	दे.	मि.	सा.	मी.	अधि.	दे.	सं.
उदयठाणा	१०	६	६	६	६	८	८	८	८	८	७	७	७	७	७	७
चउवीसिया	१	३	१	१	१	३	२	२	३	१	१	१	१	३	३	१

१-२ "दुन्हं" इति L. D. प्रतौ । अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति, ३ "उदयामावे वि वाहि-  
 ल्लिते-इइ सुचाओ मणिया उवसंते तिन्नि चेव संताओ" इति L.D. प्रतौ । ४ "दसोदउ नवोदय" इति  
 वा । ५ "सन्वुदए ..... छत्तिगे ॥" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । "सत्तुदए" इत्यपि वा L. D. प्रतौ भाति ।

अधि.	दे.	सं.	दे.	सं.	सं.	दुगीदए भंगा १२
६	६	६	५	५	४	एकीदए भंगा ११
१	३	३	१	३	१	एवं चतुर्वीसा ४०+भंगा २३

इय मोहरायसेन्ने चालीसकुडंबं ४०वगा किल मिच्चा ।

वग्गे वग्गे य तहा चउवीसकुडुं विया अत्थि ॥५९॥ (५८) [७६]

तेहि य जगद्धिज्जंतं सव्वजगं कलकलेइ अणवरयं ।

<sup>१</sup>मोत्तुमपमत्तसिद्धा इय एवं मोहिया जीवा ॥६०॥ (७६) [७७]

<sup>२</sup>उदयपया य कुडुंवी माणुससंखा य इत्थ किल विंदा ।

सूरा य पयइमेया इयरि असंखा मुणेयन्वा ॥६१॥ (८०) [७८]

गुणठाणा	मिच्छ०	सासण०	मिस्स०	अधिरय०	देस०
बंधठाणा	२२	२१	१७	१७	१३
उदयठाणा	७ ८ ९ १०	७ ८ ९	७ ८ ९	६ ७ ८ ९	५ ६ ७ ८
चउवीसिया	१ ३ ३ १	१ २ १	१ २ १	१ ३ ३ १	१ ३ ३ १
चउवीसियमंखा	८	४	४	८	८

प्रमत्त०	अपमत्त०	अपुव्व०	अनिवृत्ति०	सू.	उप०
६	६	६	५ ४ ३ २ १	०	०
४ ५ ६ ७	४ ५ ६ ७	४ ५ ६	२ १ १ १ १	१	०
१ ३ ३ १	१ ३ ३ १	१ २ २	१ २ ४ ३ २ १	१	
८	८	४			

<sup>३</sup>उदयपए पयविंदसंखामाह—

१ "मुत्तु अ०" इति L. D. प्रती । २ "उदयपयपयकुडुंवी" इति L. D. प्रती । ३ L. D. प्रसाधयं पाठः, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

मोहनीयस्योदयस्थानमङ्गाः

नवतेसोयसएहिं उदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा - ७६  
उणहत्तरि सीयाला पयविंदसएहिं विन्नेया ॥सू०-१६॥ [७६]  
चत्ता चउवीसाणं चउवीसगुणा य 'होंति नवसद्धा ।  
तेवीसमंग मिलिया तेसीया नवसया 'होंति ॥६२॥ (८७) [८०]  
वेयतियचउकसाए अन्नयरुदएण भंगवारसंगं ।  
पणबंधे दुगउदओ चउबंधाई उ एक्कुदया ॥६३॥ (८८) [८१]  
चउबंधे चउमंगा तिगमंगाईण भंगया छक्कं ।  
उवरयबंधे एगो एक्कुदएक्कारमंगाओ ॥६४॥ [८२]  
जे बंधइ ते वेयइ बंधे य पडुच्च इय दसंगं ॥ (८६)  
पयाणं संखा वुत्ता । इयाणि पयविंदाणं संखा कदिञ्जइ-  
उवरयबंधे एगो तुरियकसायस्स सुहुमकिट्टुदए ।  
संखा विवक्खिया इह एक्कुदएक्कारमंगाओ ॥ (९०)  
जत्थुदए चउवीसा जत्तियसंखा स एव गुणकारो ।  
चउराइदसंतुदया गुणिनियचउवीससंखाए ॥६५॥ (६१) [८३]  
दस१०चउपञ्च४४ट्टासी८८सत्तरि७०वायाल४२वीसर०चउ४संखा ।  
दुगउदयस्मी एगा एक्कुदइक्कारमंगाओ ॥६६॥ (९२) [८४]  
चउवीसगुणा काउं पत्तेयं तेसि होइ इय संखा ।  
चालीसा 'दोभि सया२४०वारस छन्नउय १२६६ तह अन्ने ॥६७॥ (६३) [८५]  
वारहिया इगवीसं२११२सोल्लस आसी य१६८०<sup>५</sup>सहस अट्टहिया१००८  
चउअसिया ४८०छन्नवई१६चउवीसि२४कार११भंगा ॥६८॥ (६४) [८६]  
एवं सच्चविसुत्तेण ६६४७ ।  
'उणहत्तरि छत्तीसा, एक्कारसमंग मिलिय सीयाला ।  
अन्ने उ चउरबंधे दुगोदयं बिंति किल किंचि ॥६९॥ (६५) [८७]  
' नवपंचाणुसएहिं उदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा ।  
अउणत्तरि एगुत्तरि पयविंदसएहिं विन्नेया ॥सूत्रम्-२०॥ (६६) [८८]  
पुंवेयबंधवोच्छेय आवली एक्क दोण्ह उदओ उ ।

१-२ 'हुंति' इति L. D. प्रती । ३ "दुभि" इति L. D. प्रती । ४ "दस य अट्टहिया १००८ । इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ५ 'उणहत्तरि सीयाला पयविंदाणं तु हुन्ति मोहस्स' इति L. D. प्रती । ६ "नवपंचाणुसएहिं उदय" इत्यपि ।

- तेसि मए पयवारसविंदा चउवीस 'तइ अहिया । ७१॥ (९७) [८९]  
 मोहनीयस्य बन्धस्थानेषु सत्तास्थानानि-  
 तिन्नेव उ षावीसे इगवीसे अहवीससत्तरसे ।  
 छुच्चेव तेरनवबंधएसु पंचेव ठाणाणि ॥सूत्रम्-२१॥ (९८) [९०]  
 २ संतङ्गाणा संखा वंधे वंधे पडुच्च इह भणिया ।  
 तह वि य सुहगुणणत्थं गुणउदय पडुच्च संवेहो ॥७२॥ (९९) [९१]  
 बंधगुणठाणणेषु उदयट्ठाणाउ सुत्तभणियमवि ।  
 पुणरवि सुमरणहेउं, तह उदए संतसंखाओ ॥७३॥ (१००) [९२]  
 चउठाणा मिच्छते सामणमिस्से य तिगतिगं जाण ।  
 अजयाह अप्पमत्तं चउचउठाणा उ उदयाणं ॥७४॥ (१०१) [९३]  
 सत्तोदय अहवीसा सेसेसुदएसु तिगतिगं जाण ।  
 अहसत्तछक्कमहिया वीसा वावीसबंधम्मि ॥७५॥ (१०२) [९४]  
 इगवीसे अहवीसा एक्का सत्ताइतिसु वि पत्तेयं ।  
 मीसम्मि संतठाणा अहसगचउअहियवीसाउ ॥७६॥ [९५]  
 मीसम्मि संतठाणा तिगतिग उदएसु पत्तेयं ॥ -(१०३)  
 अहवीसा सगवीसा सम्पुञ्जलणे य मीसउदयम्मि ।  
 चउवीससंतठाणं सेट्ठि उवरिं पढंतस्स ॥ (१०४)  
 अजओदयम्मि पढमे अहचउइगअहियवीस २८, २४, २१, ठाणाहं ।  
 बीए तहए ते च्चिय तिवीसवावीसंजुत्ता २८, २४, २३, २२ २१ ॥७७॥ (१०५) [९६]  
 इगवीस वज्ज तुरिए २८, २४, २३, २२ जेणं सो वेयगस्स उदओ उ ।  
 एवं देस-पमत्ता-उपमत्तयाणं च दडुच्चं ॥७८॥ [९७]  
 इगवीसवज्जतुरिए २८, २४, २३, २२ चउरो ठाणा उ तत्थ संतम्मि ।  
 सो वेयगदिट्ठीणं इगवीसा खवगदिट्ठीणं ॥ (१०६)  
 तिगपणपणचउसंता सच्चे सत्तरसठाणसंखाए ।  
 एवं देसपमत्तापमत्तयाणं च दडुच्चं ॥ (१०७)  
 देसविरओ य दुविहो तिरिमणुसामन्नपंचठाणाहं ।  
 अहवीसा चउवीसा तिरियाणं देसविरयाणं ॥७९॥ (१०८) [९८]  
 इगवीसा वावीसा तिरियाणं भोगभूमि संभवह ।

१. "इत्थहिया" इति L. D. प्रती । २. "संतसठाणसंखा" इति L. D. प्रती । ३. "सुत्तभणियमवि" इति, J. प्रतिप्रेस कोप्याम् । ४. "उदया" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् ।

बोहनीयस्य बन्धस्थानेषु सत्तास्थानानि गुणस्थानानि प्रतीत्य बन्धोदयसत्तासंवेधश्च [ १४

'जत्य न विरईभावो ते वि य मणुखवगआयाआ ॥८०॥ (१०९) [१९]  
अहचउइगेण अहिया वीसा अप्पुच्चि तिसु य पत्तेयं ।

उदएसुं सत्ताओ, वायररागे अओ वोच्छं ॥८१॥ (११०) [१००]

पंचविहचउविहेसुं ललक्कसेसेसु जाण पंचेव ।

पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि य बंधवोच्छेए ॥सुत्रम्-२२॥ (१११) [१०१]

पणगाइ५,४,३,२,१एगु संते तह य अवंधम्मि तिन्नि पत्तेयं ।

चउरडुहक्कवीसा २४,२८, २१,उवसमसेहिं पडुच्चेए ॥८२॥ (११२) [१०२]

इगवीसा खवगम्मि वि पणगे वंधम्मि किंचि कालमिह ।

मज्झिइल्लडुक्कसाएक्खयतेरस १३नपुमि वारसर्ग १२ ॥८३॥ (११३) [१०३]

थीवेयखीणिगारस पणगे किंची चउक्कबंधेविं ।

हासाइखीणि पणगं चउरो पुरिसम्मि चउवंधे ॥८४॥ (११४) [१०४]

तियबन्धे वि य संता संजलणचउक्क आवलिदुगूणा ।

कोहे खयम्मि तिन्नि उ ते चेव दुगम्मि खणमित्तं ॥८५॥ (११५) [१०५]

माणे खयम्मि तिन्नि उ तत्थेव दुगम्मि जाव अंतमुहू ।

ते चेव एक्कबंधे जाव न खीणा तिजयमाया ॥८६॥ (११६) [१०६]

मायाए खीणाए लोभो बंधम्मि लोभसंता य ।

अब्वंधम्मि वि लोभो सन्वे तियजुत्तठाणाइं ॥८७॥ (११७) [१०७]

सत्ताठाण०	३				१			३			५				५			
गुणट्टाण०	मिच्छहिदि.				सासण०			मिस्स०			अविरय०				देसविरय०			
बन्धट्टाण०	२२				२१			१७			१७				१३			
उदयट्टाण०	७	८	९	१०	७	८	९	७	८	९	६	७	८	९	५	६	७	८
सत्ताठाणाणि	२८	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	२७	५	५	५				२७	५	५	२७	५	५	५	५	५	५	५
	२६	५	५	५				२६	५	५	२६	५	५	५	५	५	५	५
सव्वाणि	१०				३			६			१७				१७			

१ "तत्य" इति L. D. प्रती । २ "चउअट्टएक्क" इति L. D प्रती । ३ "लोभे" इति L. D. प्रती ।

सत्ताठाण०	५				९				३			६	६	५	५	५	४	३		
गुणद्व्याण	पमत्त				अपमत्त०				अपुञ्ज			अनियद्वि०					सु	उ०		
बंधद्व्याण०	१				१				६			५	४	३	२	१	०	०		
उदयद्व्याण०	४	५	६	७	४	५	६	७	४	५	६	२	१	१	१	१	१	१	०	
सत्ताद्व्याणाणि	०५	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	०४	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	०३	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	०२	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	०१	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
सव्वाणि	१७				१७				६			२७					४	३	१३२	

गुणठाणगउदएसु संतद्व्याणाण संख इय वुत्ता ।  
गुणठाणगपत्तेयं, 'सव्वसंखा य इय मणिमो ॥८८॥ (११८) [१०८]  
दसतिगनवमिच्छाइसु, अजयाई पंचगम्मि सगसयरी ।  
छच्छक्क पणचउक्कम्मि पणपण सेसेसु चउतिग अबंधे ॥८९॥ (११९) [१०९]  
'मोहे संवेहमणणा तेचीससयं तु संतठाणाणं ।  
गुणठाणगे पडुच्चा बंधे पुग अट्ट'नउई य ॥९०॥ (१२०) [११०]  
दसतिगवीसा सचरस दुसु य पत्तेय संतठाणाइं ।  
सगवीस पंचगाई चउर अबंधम्मि य ठाणाइं ॥९१॥ (१२१) [१११]  
सगवीस मीसगम्मी सेसा सामन्न चउसु उदएसु ।  
इय अजयमीसगाणं वीसं सचरसबंधम्मि ॥९२॥ (१२२) [११२]  
दसनवपन्नरसाई बंधोदयसंनपग्रहिठाणाणि ।  
अणियाणि मोहणिज्जे एसो नामं परं षोच्छं ॥९३॥ (१२३) [११३]

१ "सव्वसंखं" इति L. D. प्रती । २ "मोहसंवे" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ३ "नवई ॥१२०॥" इति L. D. प्रती ।

दसनवपण्णरसाई इच्चाई विवरियं समासेण ।

'इत्तो य नामबंधा तेवीसाईणि विवरेमि ॥९२॥ (१२४) [११४]

नाम्न उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानानि

तेवीसपण्णवीसा छव्वीसा अट्टवीसगुणतीसा ।

तीसेगतीसमेगं बंध'ट्टाणाई नामस्स ॥सू०-॥२४॥ (१२५) [११५]

ठवणा-२३, २५-२६, २८ २६, ३०, ३१, १,

बन्ध'रस'गंध'फासा' तेयग'कम्मइग'अगुरु'उवघायं ।

निम्मेण'१-नाम-धुवया' सेसा अट्टवन्नअधुवाओ ॥९३॥ (१२६) [११६]

गइ'४ अणुपुव्वीचउ २ छ उ संघयणा'दगी'दतसाइवीसं'२०'च ।

जाइ'५सरीरं'३ गतिगं'३ परघाचउ'४ तित्थ विहगदुगं (१२७)

'अट्टवन्नं अधुवाओ-

तगगयणुपुव्विजाई थावरमाई उ दूसरविहूणा ।

धुवबंध'१हुं'डउरलं तेवीसअपज्जथावरण ॥९४॥ (१२८) [११७]

सासपरघायखेवे पणवीसा सुहुमवायरारणं तु ।

छव्वीस आयवेणं उज्जोअपत्तिं बंधतिगं ॥९५॥ [११८]

अपजत्तं अवणिच्चा पज्जत्तगखेव पज्जपाओगा ।

सासपरघायखेवे सो बंधो पज्जपाओगो ॥९६॥ [११९]

अपजत्तं अवणिच्चा पज्जत्तगखेव सा उ तेवीसा ।

सासपरघायखेवे पणवीसा होइ पगईणं ॥ (१२९)

पुढवाइवायरारणं पज्जाणं सुहुमवायरारणं तु ।

छव्वीस आयवेणं अहवा उज्जोयपरियत्तो ॥ (१३०)

'थायरएगि'दिपाठग्गा पसा ॥ बंधतिगं थावरणेयं ॥

'सेसा बंधा य इय नेया ॥

गइजाइछेयपुव्वी धुवबंधा हुं'डउरलदुगधूलं ।

दूसररहिया अथिराइ ५ तसअपज्जत्तपत्तेयं ॥९७॥ (१३१) [१२०]

वीया पणवीसेसा तसपाउग्गा तहा य सरसासे ।

विहगपरघायखेवे उणतीसा तीस उज्जोय ॥९८॥ (१३२) [१२१]

१ "एत्तो य" इति L. D. प्रती । २ "टाणाणि" इति वा । ३-४ "अयं पाठः L. D. प्रस्तावदित्त J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । ५ "अयं पाठः L. D. प्रती नास्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।



सत्ताठाण०	५	५	३	६	६	५	५	५	४	३	
गुणट्टाण	पमत्त.	अपमत्त०	अपुच्च	अनियट्टि०					सु	उ०	
बंधट्टाण०	९	९	६	५	४	३	२	१	०	०	
उदयट्टाण०	४	५	६	७	४	५	६	७	४	५	६
सत्ताट्टाणाणि	०५	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
	२४	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
	२१	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
	२३	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
	२२	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
सव्वाणि	१७	१७	६	२७					४	३	१३२

गुणठाणगउदएसुं संतट्टाणाण संख इय वुत्ता ।

गुणठाणगपत्तेयं, 'सव्वसंखा य इय मणिमो ॥८८॥ (११८) [१०८]

दसतिगनवमिच्छाइसु, अजयाई पंचगम्मि सगसयरी ।

छच्छक्क पणचउक्कम्मि पणपणसेसेसु चउतिग अवंधे ॥८९॥ (११६) [१०६]

'मोहे संवेहभणणा तेचीससयं तु संतटाणाणं ।

गुणठाणगे पडुच्चा बंधे पुग अट्ट'नउई य ॥९०॥ (१२०) [११०]

दसतिगवीसा सत्तरस दुसु य पत्तेय संतटाणाहं ।

सगवीस पंचगाई चउर अवंधम्मि य टाणाहं ॥९१॥ (१२१) [१११]

सगवीस मीसगम्मी सेसा सामन्न चउसु उदएसु ।

इय अजयमीसगाणं वीसं सत्तरसबंधम्मि ॥९२॥ (१२२) [११२]

दसनवपन्नरसाई बंधोदयसंनपयडिटाणाणि ।

भणियाणि मोहणिज्जे एत्तो नामं परं वोच्छं ॥९३॥ (१२३) [११३]

१ "सव्वसंखं" इति L. D. प्रती । २ "मोहसंवे०" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ३ "नवई ॥१२०॥" इति L. D. प्रती ।

दसनवपण्णरसाई इच्चाई विवरियं समासेण ।

'इत्तो य नामबंधा तेवीसाईणि विवरेमि ॥९२॥ (१२४) [११४]

नाम्न उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानानि

तेवीसपण्णवीसा छ्वीसा अड्वीसगुणतीसा ।

तीसेगतीसमेगं बंध<sup>२</sup>ट्टाणाई नामस्स ॥सू०-॥२४॥ (१२५) [११५]

ठवणा-२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १,

बन्न<sup>१</sup>रस<sup>१</sup>गंध<sup>१</sup>फासा<sup>१</sup> तेयग<sup>१</sup>कम्मइग<sup>१</sup>अगुरु<sup>१</sup>उवघायं ।

निम्मेण<sup>१</sup>-नाम-धुवया<sup>६</sup> सेसा अडवन्नअधुवाओ ॥९३॥ (१२६) [११६]

गइ<sup>४</sup>अणुपुच्चीचउ<sup>२</sup> छ उ संघयणा<sup>६</sup>गी<sup>६</sup>तसाइवीसं<sup>२०</sup>च ।

जाइ<sup>५</sup>सरीरं<sup>३</sup> गतिगं<sup>३</sup> परघाचउ<sup>४</sup> तित्थ विहगदुगं (१२७)

<sup>१</sup>अडवन्नं अधुवाओ-

तग्गयणुपुच्चीजाई थावरमाई उ दूसरविहूणा ।

धुवबंध<sup>१</sup>हुंडउरलं तेवीसअपञ्जथावरण ॥९४॥ (१२८) [११७]

सासपरघायखेवे पणवीसा सुहुमबायरारणं तु ।

छ्वीस आयवेणं उज्जोअपत्ति बंधतिगं ॥९५॥ [११८]

अपजत्तं अवणिप्ता पज्जत्तगखेव पज्जपाओगा ।

सासपरघायखेवे सो बंधो पज्जपाओगो ॥९६॥ [११९]

अपजत्तं अवणिप्ता पज्जत्तगखेव सा उ तेवीसा ।

सासपरघायखेवे पणवीसा होइ पगईणं ॥ (१२९)

पुढवाइबायरारणं पञ्जाणं सुहुमबायरारणं तु ।

छ्वीस आयवेणं अहवा उज्जोयपरियत्तो ॥ (१३०)

<sup>१</sup>बायरपरिणिपासग्गा पसा ॥ बंधतिगं थावरारण्यं ॥

<sup>२</sup>सेसा बंधा य इय नेया ॥

गइजाइछेयपुच्ची धुवबंधा हुंडउरलदुगथूलं ।

दूसररहिया अधिराइ<sup>५</sup> तसअपज्जत्तपचेयं ॥९७॥ (१३१) [१२०]

वीया पणवीसेसा तसपाउग्गा तहा य सरसासे ।

विहगपरघायखेवे उणतीसा तीस उज्जोय ॥९८॥ (१३२) [१२१]

१ "एत्तो य" इति L. D. प्रती । २ "टाणाणि" इति वा । ३-४ "अयं पाठः L. D. प्रस्तावदिव J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । ५ "अयं पाठः L. D. प्रती नास्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

सन्ताठाण०	५				५				३				६	६	५	५	५	४	३
गुणट्टाण	पमत्त				अपमत्त०				अपुव्व				अनियट्टि०				सु	उ०	
बंधट्टाण०	९				९				६				५	४	३	२	१	०	०
उदयट्टाण०	४	५	६	७	४	५	६	७	४	५	६	७	२	१	१	१	१	१	०
सत्ताट्टाणाणि	२५	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	२४	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	२१	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	२३	"	"	"	"	"	"	"					१३	११	१०	९	९		
	२२	"	"	"	"	"	"	"					१२	५	३	२	१		
													११	५					
सन्वाणि	१७				१७				६				२७				४	३	१३२

गुणठाणगउदएसुं संतट्टाणाण संख इय बुत्ता ।

गुणठाणगपत्तेयं, 'सन्वसंखा य इय भणिमो ॥८८॥ (११८) [१०८]

दसत्तिगनवमिच्छाइसु, अजयाई पंचगम्मि सगसयरी ।

छच्छक्क पणचउक्कम्मि पणपण सेसेसु चउत्तिग अवंधे ॥८९॥ (११९) [१०९]

'मोहे संवेहमणणा तेत्तीससयं तु संतठाणाणं ।

गुणठाणगे पडुच्चा बंधे पुण अट्ट'नउई य ॥९०॥ (१२०) [११०]

दसत्तिगवीसा सत्तरस दुसु य पत्तेय संतठाणाइं ।

सगवीस पंचगाई चउर अवंधम्मि य ठाणाइं ॥९१॥ (१२१) [१११]

सगवीस मीसगम्मी सेसा सामन्न चउसु उदएसु ।

इय अजयमीसगाणं वीसं सत्तरसबंधम्मि ॥९२॥ (१२२) [११२]

दसनवपन्नरसाई बंधोदयसंतपयट्टिठाणाणि ।

भणियाणि मोह्णिज्जेएसो नामं परं वोच्छं ॥९३॥ (१२३) [११३]

१ 'सन्वसंख' इति L. D. प्रती । २ 'मोहसंवे' इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ३ 'नवई ॥१२०॥' इति L. D. प्रती ।

दसनवपण्णरसाई इच्चाई विवरियं समासेण ।

'इत्तो य नामबंघा तेवीसाईणि विवरेमि ॥९२॥ (१२४) [११४]

नाम्न उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानानि

तेवीसपण्णवीसा छव्वीसा अट्टवीसगुणतीसा ।

तीसेगतीसमेगं बंघेद्वाणाई नामस्स ॥सू०-॥१२४॥ (१२५) [११५]

ठवणा-२३, २५ २६, २८ २९, ३०, ३१, १,

वन्न१रस१गंध१फासा१ तेयग१कम्मइग१अगुरु१उवघायं ।

निम्मेण१-नाम-धुवया६ सेसा अहवन्नअधुवाओ ॥९३॥ (१२६) [११६]

गइ४ अणुपुव्वीचउ २ छ उ संघयणा६गी६तसाइवीसं२०च ।

जाइ५सरीरं३ गतिगं३ परघाचउ४ तित्थ विहगदुगं (१२७)

\*अहवन्नं अधुवाओ-

तगयणुपुव्विजाई थावरमाई उ दूसरविहूणा ।

धुवबंघ१हुंडउरलं तेवीसअपज्जथावरण ॥९४॥ (१२८) [११७]

सासपरघायखेवे पणवीसा सुहमवायराणं तु ।

छव्वीस आयवेणं उज्जोअपत्ति बंघतिगं ॥९५॥ [११८]

अपज्जत्तं अवणित्ता पज्जत्तगखेव पज्जपाओगा ।

सासपरघायखेवे सो बंघो पज्जपाओगो ॥९६॥ [११९]

अपज्जत्तं अवणित्ता पज्जत्तगखेव सा उ तेवीसा ।

सासपरघायखेवे पणवीसा होइ पगईणं ॥ (१२९)

पुढवाइवायराणं पज्जाणं सुहमवायराणं तु ।

छव्वीस आयवेणं अहवा उज्जोयपरियत्तो ॥ (१३०)

\*वायरपगिणिपाठग्गा एसा ॥ बंघतिगं थावरानेयं ॥

\*सेसा बंघा य इय नेया ॥

गइजाइछेयपुव्वी धुवबंघा हुंडउरलदुगथूलं ।

दूसररहिया अथिराइ ५ तसअपज्जत्तपत्तेयं ॥९७॥ (१३१) [१२०]

वीया पणवीसेसा तसपाउग्गा तहा य सरसासे ।

विहगपरघायखेवे उणतीसा तीस उज्जोए ॥९८॥ (१३२) [१२१]

१ "एत्तो य" इति L. D. प्रती । २ "ठाणाणि" इति वा । ३-४ "अयं पाठः L. D. प्रवावदित्ति J. प्रतिप्रेसकोर्पा नास्ति । ५ "अयं पाठः L. D. प्रती नास्ति, J. प्रतिप्रेसकोर्पा नास्ति ।

पणवीम अपज्जाणं उणतीसा तीस पज्जपाओगा ।  
 वित्तिचउरिंदियपंचिदियाण तिरियाण बंधे उ ॥१९६॥ (१३३) [१२२]  
 पणवीसा गुणतीसा तिरियसमा तीस तित्थसंजुत्ता ।  
 बंधतिगं मणुजोगं नेरइयअसुद्धअडवीसा ॥१००॥ (१३४) [१२३]  
 सा चैयं—

नरयदुगं २ परघायं १ सासं १ दुहखगइ १ सयल १ हुंढं च १ ।  
 धुवबंधि ६ तमचउक्कं २ वेउव्विदुगं २ च अधिराई ६ ॥१०१॥ (१३५) [१२४]  
 देवदुगं २ परघायं १ सासं १ सुमखगइ १ सयल १ चतुरंसं १ ।  
 धुवबंधी ६ तसदमगं १ वेउव्विदुगं २ च अडवीसा । १०२॥ (१३६) [१२५]  
 मा तित्थे उणतीसा ऽऽहारदुगे तीस तिसु य इगतीसा ।  
 चउठाणा देवाणं सेदिदुगे एग जसकित्ती ॥१०३॥ (१३७) [१२६]  
 षउ पणवीसा सोलस नव षाणउई सया उ अडयाला ।  
 ईयालोत्तर छायालसया एककेक्क बंधविही ॥सू०-२५॥ (१३८) [१२७]

३ टवणा—

बंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२६	३०	३१	१
मंगा	४	२५	१६	६	६२४८	४६४१	१	१

बायरपत्तेगियरे मंगा चत्तारि बंधतेवीसे ।  
 पणवीसे पणवीसा छव्वीसे मंगसोलसगं ॥१०४॥ [१२८]

ठवणा—

वा	वा.	सु.	सु.
प०	सा	प.	सा
१	२	३	४

एस गमो सव्वेसि मंगाणं चारणे होइ ॥ (१३६)  
 बायर-थिर-पत्तेया सुम-जस-पडिवक्खमंगववीसा ।  
 साहार-सुहमि जसवज्ज वीस बारस असंभविआ ॥१०५॥ (१४०) [१२६]

१ 'अ' इति वा । २ 'इयलीसोत्तर' इति L. D. प्रतौ । ३ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति ।

वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर	वादर
पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	साधा.	साधा.	साधा.	साधा.	साधा.	साधा.	सा.	सा.
धिर	धिर	धिर	धिर	अधिर	अधिर	अधिर	अधिर	धिर	धिर	धिर	धिर	अधिर	अधिर	अधिर	अधिर	
सुम	सुम	असुम	असुम	सुम	सुम	असुम	असुम	सुम	सुम	असुम	असुम	सुम	सुम	असुम	असुम	
जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	
१	२	३	४	५	६	७	८	०	९	०	१०	०	११	०	१२	

सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम	सुहम
पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	सा-	सा-	सा-	सा-	सा-	सा-	सा-	सा-
धिर	धिर	धिर	धिर	अधिर	अधिर	अधिर	अधिर	धिर	धिर	धिर	धिर	अधिर	अधिर	अधिर	अधिर
सुम	सुम	असुम	असुम	सुम	सुम	असुम	असुम	सुम	सुम	असुम	असुम	सुम	सुम	असुम	असुम
जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस
०	१३	०	१४	०	१५	०	१६	०	१७	०	१८	०	१९	०	२०

१ साहारणस्स वा सुहमस्स वा दोण्हं वा जसेण सह बंधो न भवइ ।

असमत्तमणुय [तह] वित्तिचउपणिदित्तिरियाण बंधि पणवीसे ।

असुहपयहीण जेणं न तेसि परियत्ति एक्केक्को ॥ (१४१)

असमत्तमणुयवित्तिचउपणिदित्तिरि पणवीसि तह पंच ।

असुमपयहीण जेणं न तेसि परियत्ति संभवइ ॥ १०६ ॥ [१३०]

उज्जोय—आयवेणं धिरसुमजससेयरेहि सोलसगं ।

उज्जोवेणं अहु उ आयवपरियत्ति अट्ठेव ॥ १०७ ॥ (१४२) [१३१]

ठवणा—

धिर	धिर	धिर	धिर	अधिर	अधिर	अधिर	अधिर
सुम	सुम	असुम	असुम	सुम	सुम	असुम	असुम
जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस
१	२	३	४	५	६	७	८

एसा वि ठावणा इह चायरएगिदिविगलदेवाणं ।

तह तीसे मणुजोगे पत्तेयं जस्त संभविया ॥१०८॥ (१४३) [१३२]

धिरसुमजसइयरेहि वितिचउरिदीण अट्ट पत्तेयं ।

उणतीसतीसबंधे अट्टवीसे अट्ट देवाणं ॥१०९॥ (१४४) [१३३]

ठवणा—

बंधठा०	२५	२८	२६	३०
वेइं०	१		८	८
तेइं०	१		८	८
चर०	१		८	८
देव०		८		

तीसा य मणुयजोगा उणतीसा तीस एगतीसा य ।

देवाण अट्ट अट्ट य एक्केक्को मंगमेएसु ॥११०॥ (१४५) [१३४]

ठवणा—

जोगा.	मणु	देव०		
बंधो	३०	२९	३०	३१
मंगा	८	८	१	१

धिरछक्कं सुमखगई सप्पडिवक्खेहि चारिया संता ।

गुणिया संघयणा-ऽऽगीहि मंगया सयलतिरियाणं ॥१११॥ (१४६) [१३५]

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति । २ "संघयण तद्गिहिहि [मंगया] (मंगा य) सयलतिरियाणं ॥१४६॥" ति L. D. प्रती ।

चत्वारि सहस्रा छस्सयाउ अट्टत्तराउ गुणतीसे ।  
 एवं उज्जोयतीसे मणुए 'उणतीसि' ते चेव ॥११२॥ (१४७) [१३६]

धिर	सुम	सुमग	सुसर	आइज्ज	जस	सुमख०	संघ०	संठा.	बंधठा०	२५	२६	३०
अधिर	सुम	दुमग	दूसर	अणाइज्ज	अजस	असुमख०	१२८ ×६	७६८ ×६	तिरि०	१	४६०८	४६०८
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	७६८	४६०८	मणु०	१	४६०८	०

नारय अढवीसेगो एगो किच्चीए सेणिमासज्ज ।  
 तेरससहस्सनवसयपणयाला सव्वपयडीणं ॥११३॥ (१४८) [१३७]  
 तेवीसाई ठाणा सवियप्पा अट्ट विवरिया बंधे ।  
 एत्तो य सव्वजियबंधठाण पत्तेय मंगजंतइयं ॥ (१४९)

ठवणा—

नामबंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	सव्वसंख्या
बंधठाणमंगा	४	२५	१६	६	६२४८	४६४१	१	१	१३६४५
एगिदिय०	४	२०	१६	०	०	०	०	०	४०
धिगलिदिय	०	३	०	०	२४	२४	०	०	५१
पंतिरिय०	०	१	०	०	४६०८	४६०८	०	०	६२१७
मणुयपाठ०	०	१	०	०	४६०८	८	०	०	४६१७
नरयपाठ०	०	०	०	१	०	०	०	०	१
देवपाठग०	०	०	०	८	८	१	१	०	१८
अपाठग०	०	०	०	०	०	०	०	१	१

एत्तो य उदयठाणा सव्वजियाणं च इति सामन्नं ।  
 ते चारस वीसाई जाव य अट्टेव पज्जंता ॥ (१५०)

नाम्न उदयस्थानानि —

१ "उणतीसे" इति L. D. प्रती । २ "सव्वपियेणं ॥१४८॥" इति L. D. प्रती । ३ इदं यन्त्रं L. D. प्रसावस्ति ।



ठवणा—

थिर	थिर	थिर	थिर	अथिर	अथिर	अथिर	अथिर
सुम	सुम	असुम	असुम	सुम	सुम	असुम	असुम
जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस
१	२	३	४	५	६	७	८

एसा वि ठवणा इह वायरएगिदिविगलदेवाणं ।

तह तीसे मणुजोगे पत्तेयं जस्स संभविया ॥१०८॥ (१४३) [१३२]

थिरसुमजसइयरेहिं वित्तिचउरिदीण अट्ट पत्तेयं ।

उणतीसतीसबंधे अहवीसे अट्ट देवाणं ॥१०९॥ (१४४) [१३३]

ठवणा—

बंधठा०	२५	२८	२६	३०
वेहं०	१		८	८
तेहं०	१		८	८
चउ०	१		८	८
देव०		८		

तीसा य मणुयजोगा उणतीसा तीस एगतीसा य ।

देवाण अट्ट अट्ट य एक्केक्को मंगमेएसु ॥११०॥ (१४५) [१३४]

ठवणा—

जोग.	मणु	देव०	
बंधो	३०	२९	३०
मंगा	८	८	१

थिरछक्कं सुमखगई सप्पडिवक्खेहि चारिया संता ।

गुणिया संघयणा-SSगीहिं मंगया सयलत्तिरियार्ण ॥१११॥ (१४६) [१३५]

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति । २ "संघयणतद्वागिईहि [मंगया] (मंगा य) सयलत्तिरियार्ण ॥१४६॥" ति L. D. प्रतौ ।

चत्वारि सहस्रा छस्स्यात् अट्टत्तरात् गुणतीसे ।  
एवं उज्ज्वीयतीसे मणुए 'उणतीसे' ते चैव ॥११२॥ (१४७) [१३६]

धिर	सुम	सुमग	सुसर	आइज्ज	जस	सुमख०	संघ०	संठा.	बंधठा०	२५	२६	३०
उधिर	सुम	दुमग	दूसर	अणाइज्ज	उजस	उसुमख०	१२८ ×६	७६८ ×६	तिरि०	१	४६०८	४६०८
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	७६८	४६०८	मणु०	१	४६०८	०

नारय अहवीसेगो एगो किच्चीए<sup>१</sup> सेणिमासज्ज ।  
तेरससहस्सनवसयपणयाला<sup>२</sup> सव्वपयडीणं ॥११३॥ (१४८) [१३७]  
तेवीसाईं ठाणा सवियप्पा अट्ट विवरिया बंधे ।  
एत्तो य सव्वजियबंधठाण पत्तेय मंगजंतइयं ॥ (१४९)

ठवणा—

नामबंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	सव्वसंखा
बंधठाणमंगा	४	२५	१६	६	६२४८	४६४१	१	१	१३६४५
एगिंदिय०	४	२०	१६	०	०	०	०	०	४०
विगळिंदिय	०	३	०	०	२४	२४	०	०	५१
पंनिरिय०	०	१	०	०	४६०८	४६०८	०	०	६२१७
मणुयपाठ०	०	१	०	०	४६०८	८	०	०	४६१७
नरयपाठ०	०	०	०	१	०	०	०	०	१
केषपाठग०	०	०	०	८	८	१	१	०	१८
अपाठग०	०	०	०	०	०	०	०	१	१

एत्तो य उदयठाणा सव्वजियाणं च इति सामन्नं ।  
ते बारस वीसाईं जाव य अट्टेव पज्जंता ॥ (१५०)

नाम्न उदयस्थानानि —

१ "एणतीसे" इति L. D. प्रती । २ "सव्वपिडेणं ॥१४८॥" इति L. D. प्रती । ३ इव यन्त्रं L. D. प्रस्तावस्ति ।

वीसिगवीसाष्वउषीसगा'इ इगतीसगत्ति एगहिया ।

उदयडाणाणि भवे नव अट्टय 'हुंति नामरस॥सू.-२६॥ (१५१) [१३८]

तेवीसाई ठाणा सविगप्पा अट्ट विवरिया वंधे ।

तह वारस उदयगया वीसाई अट्ट पज्जंता ॥११४॥ [१३६]

ठवणा- २० । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ ।

३० । ३१ । ६ । ८ ॥

उट्टएसुं जे सामी कित्तय उदया उ कस्स पत्तेयं ।

भंगा वि य पत्तेयं तेसिं 'संखाइयं भणिमो ॥११५॥ (१५२) [१४०]

निम्मेण'थिरा'सथिर'तेय'कम्म'वन्नाइ'अगुरु'सुह'समुहं' ।

नामधुवोदय वारस १२ सेसा अधुवा उ पणपन्नं ॥११६॥ (१५३) [१४१]

तस'थावराइ'चउ चउ, तह सुभगा'दुभग'आगि'संघयणा' ।

गइ'अणुपुच्ची'य तहा, परघाचउ' तित्थ' उवघायं' (१५४)

जाइ'सरीरो'श्वंगा' विहदुग' सव्वा वि पंचवन्नाओ ५५ ।

वारुइयठाणनामे पत्तेयं पयट्ठि विवरेमि ॥ (१५५)

तसतिग-सुभगा-SSइज्जा मणुगइ-सगल-जसकित्ति 'तह धुवया ।

वीसा उ समुघाए 'सेसा उ कमेण पक्खेवा ॥११७॥ (१५६) [१४२]

ओरालियदुग'समुसभं १ पत्ते'उवघाय'इयरसंठाणं ६ ।

छव्वीस सजोगिकेवलि ओरालियमीसि समुघाए ॥११८॥ [१४३]

ओरालियदुग'समुसभं १ पत्तेयु'वघाय'इयरसंठाणा ६ ।

वि य छक्क सत्तसमए छूटे छव्वीस समुघाए ॥ (१५७)

परघाय-सास-विहदुग-सरदुग-एगयरखेवि तीसुदओ ।

सामन्नकेवलि 'तिगं तित्थयरे तित्थसंजुत्ता ॥११९॥ (१५८) [१४४]

सामन्नकेवलिउदया-२०, २६, २८, २९, ३०, ८ ॥

तित्थयरउदया-२१, २७, २९, ३०, ३१, ६ ॥

सदनिरोहे तीसा उणतीसा सासरोहि तित्थयरे ।

१ "उ एगहिया य इगतीसा" इति वा पाठः । २ "होति" इति L. D. प्रतौ । ३ "संखा य इय" इति L. D. प्रतौ । ४ "धुवउदया" इति L. D. प्रतौ । ५ "तइए चउपंचमे समए ॥११६॥" इति L. D. प्रतौ । ६ "दुग" इति J. प्रतिश्रेसकोप्यामस्ति । किन्तु स सम्यग् न प्रतिभाति ।

उणतीसद्वावीसा केवलि तह मयंतरेण इमं ॥१२०॥ [१४५]  
 तह सच्चरोहि नवगं छद्वाणा हुन्ति उदएसु ॥ (१४९)  
 उणतीसद्वावीसा केवलि तह सच्चरोहिं अडपयडी ।  
 अन्ने उ अड उदया मयंतरेणं तु उदएसु ॥ (१६०)  
 'सर-सास-परघा-रोधा विहगइ-पत्तेय-कमनिरोहेणं ।  
 तीसुदया गुणतीसाइ जाव पणवीसउदएणं ॥१२१॥ (१६१) [१४६]  
 उवघाए चउवीसा ओरालदुगेण होइ वावीसा ।  
 'उसभा-ऽऽगीण निरोहे वीसा धुवरोहि अट्टेव ॥१२२॥ (१६२) [१४७]  
 सेलेसी आरंमे उदयद्वाणाउ अड केवलिणो ।  
 सेलेसी पड्विन्ने अड्डण्हं पयडिउदए उ ॥१२३॥ (१६३) [१४८]  
 एए सामणो केवलम्मि तित्थयरि तित्थजुयठाणा ।  
 लिहियाउ पंचसंगह-विचरण-अप्पयरठाणाउ ॥१२४॥ (१६४) [१४९]  
 गइजाइआणुपुव्वी थावरसुहुमं अपज्जधुवउदया ।  
 दुमगाणाइअजस विग्गहगइ पगइइगवीसा ॥१२५॥ (१६५) [१५०]  
 सा आणुपुव्विरहिया अपज्जएगिदिसुहुमइयरणं ।  
 हुंइ-वघा-पत्तेएहि 'उरलदेहेहि चउवीसा ॥१२६॥ (१६६) [१५१]  
 पणवीसा छव्वीसा सत्तावीसा य 'होइ सा चेव ।  
 परघाय-सास-आयव कमेण एगिदुदयठाणा ॥१२७॥ (१६७) [१५२]  
 गइजाइआणुपुव्वी तसत्तिगणाइअजसदुभगं च ।  
 धुवउदया सग्गे वि हु अंतरगइ पगइइगवीसा ॥१२८॥ (१६८) [१५३]  
 सा आणुपुव्विरहिया संघयण-तहा-ऽऽगि-एगयरखेव ।  
 तह पत्ते-उवघाए ओरालदुगेण छव्वीसा ॥१२९॥ (१६९) [१५४]  
 'एसा पुण छव्वीसा मणु-तिरि-विगलाण उदयपाओगा ।  
 लद्धिअपज्जापज्जाण करणे नियमा अपज्जाण ॥१३०॥ (१७०) [१५५]  
 परघाय जत्थ खेवे उदए जीवाण ते उ पज्जाण ।

१ "सर-सास-परघायं विहगइ" इति L. D. प्रतौ । २. 'वज्जससंघयणसमच्चतुरस्रसंस्थानयोर्नि-  
 रोधे' इत्यर्थः । ३ "उरलपरदेहि" इति L. D. प्रतौ । ४ "हुन्ति ता" इति L. D. प्रतौ । ५ "एए उ दुवे  
 उदया" इति L. D. प्रतौ ।

वीसिगवीसाचउपीसगा'इ एगतीसगत्ति एगहिया ।

उदयद्याणाणि भवे नव अट्टयं हुंति नामस्स ॥२६॥ (१५१) [१३८]

तेवीसाई ठाणा सविगप्पा अट्ट विवरिया बंधे ।

तह बारस उदयगया वीसाई अट्ट पज्जंता ॥११४॥ [१३६]

ठवणा- २० । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ ।

३० । ३१ । ६ । ८ ॥

उट्टएसुं जे सामी कित्तय उदया उ कस्स पत्तेयं ।

भंगा वि य पत्तेयं तेसिं संखाइयं भणिमो ॥११५॥ (१५२) [१४०]

निम्मेणश्थिराश्थिराश्तेयश्कम्मश्चनाइअगुरुसुहमसुहं ।

नामधुवोदय बारस १२ सेसा अधुवा उ पणपत्तं ॥११६॥ (१५३) [१४१]

तसअथावराइअचउ चउ, तह सुभगाअदुभगाअगिअसंधयणाइ ।

गइअणुपुञ्जीअ य तहा, परघाचउअ तित्थिश् उवघायंश् (१५४)

जाइअसरीरोअवंगाअ विहदुगअ सव्वा वि पंचवन्नाओ ५५ ।

बारुदयठाणनामे पत्तेयं पयडि विवरेमि ॥ (१५५)

तसतिग-सुभगा-अअइज्जा मणुगइ-सगल-असकित्ति तह धुवया ।

वीसा उ समुघाए \*सेसा उ कमेण पक्खेवा ॥११७॥ (१५६) [१४२]

ओरालियदुगअसुसमं १ पत्तेश्उवघायश्इयरसंठाणं ६ ।

छव्वीस सजोगिकेवलि ओरालियमीसि समुघाए ॥११८॥ [१४३]

ओरालियदुगअसुसमं १ पत्तेयुश्वघायश्इयरसंठाणा ६ ।

वि य छक सत्तसमए छूढे छव्वीस समुघाए ॥ (१५७)

परघाय-सास-विहदुग-सरदुग-एगयरखेवि तीसुदओ ।

सामअकेवलि \*तिगं तित्थयररे तित्थसंजुचा ॥११९॥ (१५८) [१४४]

सामअकेवलिउदया-२०, २६, २८, २६, ३०, ८ ॥

तित्थयरउदया-२१, २७, २९, ३०, ३१, ६ ॥

सइनिरोहे तीसा उणतीसा सासरोहि तित्थयररे ।

१ "उ एगाहिया य इगतीसा" इति वा पाठः । २ "होसि" इति L. D. प्रती । ३ "संखा य इय" इति L. D. प्रती । ४ "धुवउदया" इति L. D. प्रती । ५ "तइए चउपंचमे समए ॥११६॥" इति L. D. प्रती । ६ "दुग" इति J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति । किन्तु ससम्यग् न प्रतियामि ।

- उणतीसद्वावीसा केवलि तह मयंतरेण इमं ॥१२०॥ [१४५]  
 तह सन्वरोहि नवर्ग छद्वाणा हुन्ति उदएसु ॥ (१२१)  
 उणतीसद्वावीसा केवलि तह सन्वरोहिं अडपयडी ।  
 अन्ने उ अड उदया मयंतरेणं तु उदएसु ॥ (१६०)  
 'सर-सास-परधा-रोधा विहगह-पत्तेय-कमनिरोहेणं ।  
 तीसुदया गुणतीसाइ जाव पणवीसउदएणं ॥१२१॥ (१६१) [१४६]  
 उवधाए चउवीसा ओरालदुगेण होइ वावीसा ।  
 'उसमा-SSगीण निरोहे वीसा धुवरोहि अट्टेव ॥१२२॥ (१६२) [१४७]  
 सेलेसी आरंमे उदयद्वाणाउ अड केवलिणो ।  
 सेलेसी पडिवन्ने अट्टणहं पयडिउदए उ ॥१२३॥ (१६३) [१४८]  
 एए सामण्णे केवलम्भि तित्थयरि तित्थजुयठाणा ।  
 लिहियाउ पंचसंगह-विवरण-अप्पयरठाणाउ ॥१२४॥ (१६४) [१४९]  
 गइजाइआणपुव्वी थावरसुहुमं अपज्जधुवउदया ।  
 दुमगाणाइजाजस विग्गइगह पगइइगवीसा ॥१२५॥ (१६५) [१५०]  
 सा आणपुव्विरहिया अपज्जएग्गिदिसुहुमइयरणं ।  
 हुंहु-वधा-पत्तेएहि 'उरलदेहेहि चउवीसा ॥१२६॥ (१६६) [१५१]  
 पणवीसा छव्वीसा सत्तावीसा य 'होइ सा वेव ।  
 परघाय-सास-आयव कमेण एग्गिदुदयठाणा ॥१२७॥ (१६७) [१५२]  
 गइजाइआणपुव्वी तसतिगणाइअजसदुमगं च ।  
 धुवउदया सव्वे वि हु अंतरगह पगइइगवीसा ॥१२८॥ (१६८) [१५३]  
 सा आणपुव्विरहिया संघयण-तहा-SSगि-एगयरखेव ।  
 तह पत्ते-उवधाए ओरालदुगेण छव्वीसा ॥१२९॥ (१६९) [१५४]  
 'एसा पुण छव्वीसा मणु-तिरि-विगलाण उदयपाओगा ।  
 लद्धिअपज्जापज्जाण करणे नियमा अपज्जाण ॥१३०॥ (१७०) [१५५]  
 परघाय जत्थ खेवे उदए जीवाण ते उ पज्जाण ।

१ "सर१सास १ परघायं विहगह" इति L. D. प्रतौ । २. 'धअर्षमसंघयणसमधतुरससंस्थानयोर्नि-  
 रोवे' इत्यर्थः । ३ "उरलपरदेहि" इति L. D. प्रतौ । ४ "हुन्ति ता" इति L. D. प्रतौ । ५ "एए उ दुवे  
 उदया" इति L. D. प्रतौ ।

तणुपज्जत्ती नियमा इयरा 'उ कमेण पज्जत्ती ॥१३१॥ (१७०) [१५६]

विहगह-परघायजुया अट्टावीसा ससासउणतीसा ।

उज्जोएणं तीसा सरेण सा एगतीसा उ ॥१३२॥ (१७१) [१५७]

संघयणूणा सन्वे तएव तिरिओदया य देवेसु ।

पढमं चिय संठाणं वेउच्चिदुगं च इट्टखगइसरा ॥१३३॥ (१७२) [१५८]

एगिदियाण पंच उ छक्क सुरविगलसगलतिरियाणं ।

मणुए उज्जोऊणा उदयट्टाणाउ <sup>३</sup>सन्वेवि ॥१३४॥ (१७४) [१५९]

एगिदियाणं-२१, २४, २५, २६, २७ । देवाण-२१, २५, २७, २८, २९, ३० ।

विगलसगलानं-२१, २६, २८, २९, ३०, ३१ । मणुयाण उदयठाणा-२१, २६, २८, २९, ३० ॥

इगवीसूणा पंच उ तिरिजइवेउच्चिहारगाणं च ।

अविरयमणुवेउच्चिय उज्जोऊणा य चत्तारि ॥१३५॥ (१७५) [१६०]

नेरहयाणं <sup>३</sup>तिरिसम संघयणुज्जोयवज्ज पंचेव २५, २७, २८, २९, ३०

असुहपयहीण उदया अविवक्खा भंगया पंच ॥१३६॥ (१७६) [१६१]

जे उदएसुं सामी उदयप्पयहीण विवरणं विहियं ।

इत्तो <sup>५</sup>पत्तेय इहं भंगगाणं चारणं <sup>५</sup>भणिमो ॥१३७॥ (१७७) [१६२]

अप्पज्जसुहुमअजसा सेयरमिलिएहि<sup>५</sup>अट्ट उ विगप्पा ।

सुहुमअपज्जे य जसं वज्जिचा पंच संभविया ॥१३८॥ (१७८) [१६३]

ठषणा—

अप.	अप.	अप.	अप.	प.	प.	प.	प.
सु.	सु.	वा.	वा.	सु.	सु.	वा.	वा.
अज.	ज.	अज.	ज.	अज	ज.	अज.	ज.
५	०	४	०	३	०	२	१

अप्पज्जसुहुमसाहार अजसइयरेहि भंगसोलसगं ।

सुहुमअपज्जे जसउदयवज्ज छक्कं असंभवियं ॥१३९॥ (१७९) [१६४]

१ "जे अस्थ संभविया ॥१७२॥" इति L. D. प्रती । २ "पक्केव ॥१७४॥" इति L. D. प्रती । ३ "सुरसमच्चोऊणा य उदयपक्केव ।" इति L. D. प्रती । ४ "कुणिमो" इति L. D. प्रती ।

एगिदिचठवणा—

ऽप.	ऽप.	ऽप.	ऽप.	ऽप.	ऽप.	ऽप.	ऽप.	पञ्ज.	पञ्ज.	पञ्ज.	पञ्ज.	पञ्ज.	पञ्ज.	पञ्ज.	पञ्ज.
सु.	सु.	सु.	सु.	वा.	वा.	वा.	वा.	सु.	सु.	सु.	सु.	वा.	वा.	वा.	वा.
सा.	सा.	प.	प.	सा.	सा.	प.	प.	सा.	सा.	प.	प.	सा.	सा.	प.	प.
ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.
१०	०	१	०	८	०	७	०	६	०	५	०	४	३	२	१

वायरपत्तेयजसा सप्पडिवक्खेहि अट्ट उ विगप्पा ।

सुहुमे वज्जेज्ज जसं उदए छच्चेव संभविया ॥१४०॥ (१८०) [१६५]

एगिदिशपणुत्रीसाठवणा—

वायर	वायर	वायर	वायर	सुहुम	सुहु.	सुहु.	सुहु.
पत्ते.	पत्ते.	साहारण	साहा.	पत्ते.	पत्ते.	साहा.	साहा.
ऽजस	जस	ऽजस	जस	ऽजस	जस	ऽजस	जस
१	२	३	४	५	०	६	०

छन्वीसा वि य तिविहा सासुज्जोए य आयवेगयरे ।

सासे छा पुव्वुत्ता पत्तेयजसेयरेहि चउजोए ॥१४१॥ (१८१) [१६६]

ठवणा—

उज्जोय	उज्जो.	उज्जो.	उज्जोय
पत्तेय	पत्तेय	साहा	साहा.
जस	ऽजस	जस	ऽजस
१	२	३	४

आयवछन्वीसाए पत्तेयजसाजसेहिं दो चेव ।

वाए विउव्विकरणा चउवीसाइसु य एक्केक्कं ॥१४२॥ (१८२) [१६७]

सास छवीसे छूढे आयवसगवीस अहव उज्जोए ।

पुव्वुत्ता छम्मंगा पिढे एगिदिनायाला ॥१४३॥ (१८३) [१६८]



एगिंदिय उदयठवणा—

उदय०→	२१	२४	२५	२६	२७	
↓						
सामन्न०	५	१०	६	६	०	मं०
उज्जोय०	०	०	०	४	४	
आयव०	०	०	०	२	२	
त्रिउत्तिव०	०	१	१	१	०	एवं
कुलभङ्गा→	५	११	७	१३	६	४२

वेहंदियइगवीसे पज्जत्तजसेयरेहिं चत्तारि ।  
 अपजत्ते जसवज्जा तिन्नि उ छन्वीसि एमेव ॥१४४॥ (१८४) [१६६]  
 पज्जत्तजसजसेहिं अट्ठावीसम्मि भंगया दोन्नि ।  
 एव गुणतीसतीसे एकक्कीसे य ते चेव ॥१४५॥ (१८५) [१७०]  
 नवरं दो अणुतीसा सासे छूढे य अहव उज्जोए ।  
 तह तीसाओ तिन्नि उ सरदुगउज्जोयएगयरे ॥१४६॥ (१८६) [१७१]  
 सरदुगएगयरेणं दो इगतीसाउ भंगवावीसं ।  
 वेहंदिय-तेहंदिय-चउरिंदिय मिलिय छावट्ठी ॥१४७॥ (१८७) [१७२]

विगळठवणा-

उदय	२१	२६	२८	२९	३०	३१	एव ↓
मं०	६	९	६	१२	१८	१२	६६

सुभगाइज्जजसेहिं सप्पट्ठिवक्खेहि अट्ठ उ विगप्पा ।  
 अप्पज्जदुभगणाइज्जअजस एगो य इय नवगं ॥१४८॥ (१८८) [१७३]  
 पज्जत्तसुभगाइज्जक्कित्ति तह सेयराहिं सोलसगं ।  
 असमत्ते य सुभत्तिगं वज्जिय नव होंति संमविया ॥१४९॥ [१७४]

इयाणि पंचिद्विक्खारणाठवणा-

SPज्ज ↓	पज्जत्त→	सुभग	सुभग	सुभग	सुभग	दुभग	दुभग	दुभग	दुभग
दुभग		आइज्ज	आइज्ज	एणाइज्ज	एणाइज्ज	आइज्ज	आइज्ज	एणाइ	अणाइज्ज
अणाइ		जस	जस	जस	जस	जस	जस	जस	जस
जस	→								
१	←मं०	२	३	४	५	६	७	८	९

इग्वीसुदयविगप्पा संघयण तहागि गुणिय छ्वीसे ।  
 एग असयत्तमंगो अट्टासीया सया 'दोन्नि ॥१५०॥ (१८६) [१७५]  
 विहदुगपरियत्तेणं <sup>२</sup>अट्टावीमम्मि सुद्धया दुगुणा ।  
<sup>३</sup>सासुज्जोउणतीसे वावन्नेक्कारस मया उ ॥१५१॥ (१६०) [१७६]  
 सुरदुगउज्जोएणं <sup>४</sup>एगयरेण परिवत्ति तीसुदए ।  
 पंचसया छावत्तर तिगुणा सत्तरस अट्टवीसा ॥१५२॥ (१६१) [१७७]  
 सरदुगएगयरेणं छूढे इगतीसि मंगया एए ।  
 एक्कारसबावण्णा पणिदितिरिउदयठाणेसु ॥१५३॥ (१६२) [१७८]  
 नव उणनउया दोसय छावत्तरपंच दुगुण तह तिगुणा ।  
 दुगुणा इगतीसाए उणवन्न छलुत्तरा पिंढे ॥१५४॥ (१६३) [१७९]

पणिदितिरियठवणा-

उदय	२१	२६	२८	२९	३०	३१	एवं
मंगा	६	२८६	२८८	५७६	५७६	५७६	४९०६

एवं मणुयगईए मणुयगई इत्थ होइ वत्तच्चा ।  
 नवरं उज्जोयराहया उदया पंचेव सवियप्पा ॥१५५॥ (१६४) [१८०]  
 नव उणनउया दोसय छावत्तरपंच दुसु य पत्तेयं ।  
<sup>५</sup>वावण्णेक्कारउया छ्वीसदुरुत्तरा पिंढो ॥१५६॥ (१६५) [१८१]

मनुयठवणा-

उदय	२१	२६	२८	२९	३०	एवं ↓
मंगा	९	२८६	२८८	५७६	५७६	२६०२

वीसोदयम्मि एगो छच्च छ्वीसे य तीसच्चउवीसा ।  
 'विहगा सरसंठाणेहि' एगो अट्टोदए मंगो ॥१५७॥ (१९६) [१८२]  
 पढपंतिमदोमंगा गहिया सेसाउ मणुयगहणेण ।  
 तित्योदय एक्कोक्को सन्वे तित्थयरि छन्मंगा ॥१५८॥ (१९७) [१८३]

१ "दुम्मि" इति L. D. प्रती । २ "छावत्तरपंच उदयमखवीसा ।" इति L. D. प्रती । ३ "सासु-ज्जोयुणातीसे" इति L. D. प्रती । ४ "एगोययरपरि०" इति L. D. प्रती । ५ "वावन्ने०" इति L. D. प्रती । ६ "विह १-सर१-संठाणेहि एगो" इति L. D. प्रती ।

केवलित्थयरठवणा—

उदय.→	२०	२१	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	८	भगा ↓
वेव०	१	०	(६)	(१२)	(१२)	०	(२४)	०	०	१	२(५६)
त्त्थ.	०	१	०	१	०	१	१	१	१	०	६

दूमगणाइज्जाजससेयरमिलिएहिं अट्ट उ विगप्पो ।

पत्तेयं पत्तेयं उदएसुं छसु वि देवाणं ॥१५९॥ (१६८) [१८४]

ठवणा-

दूमग	दुमग	दुमग	दुमग	सुमग	सुमग	सुमग	सुमग
अणाइज्ज	अणाइज्ज	आइज्ज	आइज्ज	अणाइज्ज	अणाइज्ज	आइज्ज	आइज्ज
अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस
१	२	३	४	५	६	७	८

सासुज्जोएगयरे तह सरउज्जोयएगयरसहिया ।

अट्टावीसुणतीसे दुगुणा चउसट्ठि सव्वे वि ॥१६०॥ (१९६) [१८५]

एवं विउन्वित्तिरिए इगवीसुणेसु मंगछप्पन्ना ।

तह मणुए वेउत्वि य उज्जोयविणा उ वत्तीसं ॥१६१॥ (२००) [१८६]

उज्जोयरहियतीसा मोत्तणं चउसु उदएसुं ।

ठवणा-

उदय०→	२१	२५	२७	२८	२९	३०	मरुवे ↓
देवभंगा	८	८	८	१६	१६	८	६४
वेउन्वियत्ति.	०	८	८	१६	१६	८	५६
” म	०	८	८	८	८	०	३२

आहारगउदएसुं मंगा सत्तेव तिरियसारिच्छा ।

आहारदुगं खिवित्तं वेउन्विदुगं तु अवणेहिं ॥१६२॥ (२०१) [१८७]

१. J. प्रतिप्रेसकोप्यां २७-८ उदयस्थानद्वये केवलिसत्का मङ्गा न दर्शिता । L. D. प्रतौ पुनः ६-६ पङ् पङ् मङ्गा दर्शिता । तथा उप्यत्रा-उन्यतरविहायोगतेरुदयत्वाद् द्वादशानां मङ्गानां सम्भव इति हेतोर्द्वादश मङ्गा निरूपिताः, तथैवा-उन्यत्र दर्शितत्वात् ।

तिरियसरिच्छा जैणं दुभगऽणाइज्ज अजसपयडीओ ।  
 अविरयवोच्छिष्ठा ते न तेसि उदओ जईणं तु (२०२)  
 एवं जइवेउव्वे नवरं उज्जोयभंगया तिण्णि ।  
 सेसा उ मणुयगहणे नेरइयअसुद्धपंचेव ॥१६३॥ (२०३) [१८८]

ठषणा—

उदय.	२१	२५	२७	२८	२९	३०	सव्वे
आहारग०	०	१	१	२	२	१	७
जति०	०	१	१	२	२	१	७
नारकिय०	१	१	१	१	१	०	५

नाम्न उदयस्थानानां भङ्गाः—

एगबियालिकारस तेत्तीसा छस्सया थ तेत्तीसा ।  
 बारससत्तरससयाणऽह्णिगाणि<sup>१</sup> विपंचसीईहि ॥घ.२७॥ (२०४) [१८६]  
<sup>२</sup>उणतीसेक्कारसयाणऽह्णिगा सत्तरसपंचसइही ।  
 एककेक्कगं थ वीसावट्टुदयंतेसु उदयविही ॥घ.२८॥ (२०५) [१९०]

ठषणा—

उदय	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	८
मंगा	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२६१७	३१६५	१	१

एपसिं विषरणं—

पण नव नव नव अट्टग एगं एग इह उदयइगवीसे ।  
 इगिविगलतिरियमणुए सुरनारयतित्थि चायाला ॥१६४॥ (२०६) [१६१]  
 छच्चत्तारि य एगं बायरसुहुमे य पवणवेउव्वे ।  
 एगिदियाण मंगा एककारस<sup>३</sup> होंति चउवीसे ॥१६५॥ (२०७) [१६२]  
 सत्तऽट्ट अट्ट अट्ट य एगो एग तह उदयपणवीसे ।  
 एगिदिसुरविउच्चियतिरियमणुआहारनेरइए ॥१६६॥ (२०८) [१९३]  
 तेरस नव इगि विगले दोसय उणनउय मणुय तह तिरिए ।  
 छच्च सया छव्वीसे उदए मंगाण एगत्य ॥१६७॥ (२०९) [१६४]

१ “दुपंच०” इत्यपि । २ “उणतीसेक्कारस” इत्यपि । ३ “हुंति” इति L. D. प्रती ।

छञ्चट्ट अट्ट अट्ट य एगो एग तह एग सगवीसे ।  
 एगिदिविक्रितिरिनरसुरनारयतित्थआहारे ॥१६८॥ (२१०) [१६५]  
 छक्कं पणसयछावत्तराहँ दुसु तह य दुसु य सोलसगं ।  
 नव दुग एगं भंगा अट्टावीसम्मि उदयम्मि ॥१६९॥ (२११) [१६६]  
 विगलतिरिमणुयदेवा तिरिनरवेउव्विहारनेरइए ।  
 इह बारसय दुरुत्तर मिलिया एगत्थ पिडेणं ॥१७०॥ (२१२) [१६७]  
 एक्कारस बावन्ना छावत्तरपंच 'दुसु य सोलसगं ।  
 नवबारसदुगभंगा इक्केक्ककमेण उणतीसे ॥१७१॥ (२१३) [१६८]  
 तिरिनरदेवा तिरिनर 'वेउव्वियविगलहारगजईण ।  
 तित्थे नाग्यकमसो मिलिया सत्तारपणसीया ॥१७२॥ (२१४) [१६९]  
 सतरस सय अट्टवीसा अट्टारस तह इगार बावन्ना ।  
 अट्टट्ट एग एगं तह एगं तीसउदयम्मि ॥१७३॥ (२१५) [२००]  
 तिरिविगलमणुयदेवा तिरिनरवेउव्विहारतित्थयरे ।  
 इय मिलिया भंगार्ण उणतीससयाउ 'सत्तरस ॥१७४॥ (२१६) [२०१]  
 एक्कारस बावन्ना वारस एक्को य भंग इगतीसे ।  
 तिरिविगलतित्थमिलिया सन्वे पणसट्ट'इक्कारा ॥१७५॥ (२१७) [२०२]  
 वीस नव अट्ट उदएसु भंग'मेक्केक्क ते य केवल्लिणो ।  
 इय संखा उदएसु' वारमसु कमेण पत्तेयं ॥१७६॥ (२१८) [२०३]  
 बायाला छावट्टी उणवणसया छल्लुत्तरविगप्पा ।  
 इगिविगलतिरिपणिदिसु छव्वीस दुरुत्तरा मणुए ॥१७७॥ (२१९) [२०४]  
 चउसट्टी पण सुरनारयाण छप्पणण तिरियवेउव्वे ।  
 पणतीस मणुविउव्विसु सत्तट्ट य हारकेवल्लिणो ॥१७८॥ (२२०) [२०५]  
 इय सन्वुदयविगप्पा एक्काणउया सया उ सगसयरी ७७६१ ।  
 एत्तो संतट्टाणा ते वारस होंति नामस्स ॥१७९॥ (२२१) [२०६]

१ "दुवुसु" इति J. प्रतिप्रसक्तोप्यां किन्तु स सम्यग् न भाषि । २ "विउव्वि सह विगल्ल" इति जे. प्रतिप्रसक्तोप्याम् । ३ "सत्तार" इति L. D. प्रतौ । ४ "एक्कारा" इति L. D. प्रतौ ; ५ "एक्केक्क" इति L. D. प्रतौ ।

मन्वुदयविगणपठवणा —

नामउदयस्थाणा →	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	मंग- संख्या
उदय सन्ध्यामङ्गा →	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१	१	७७६१
एगिदियमङ्गा →	०	५	११	७	१३	६	०	०	०	०	०	०	४२
विगलिदिय ,, →	०	६	०	०	९	०	६	१२	१८	२	०	०	६६
पंविदियतिरिय " →	०	६	०	०	२८९	०	५७६	११५२	१७२८	११५२	०	०	४९०६
मनुज ,, →	०	९	०	०	२८६	०	५७६	५७६	११५२	०	०	०	२६०२
वेउन्वियतिरिय " →	०	०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	५६
,, मणुज ,, →	०	०	०	८	०	८	८	८	०	०	०	०	३२
देषाण ,, →	०	८	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	६१
तित्थयर ,, →	०	१	०	०	०	१	०	१	१	१	१	०	६
केवलीण ,, →	१	०	०	०	(म.६)	०	(म.) ६	(म.) ६	(म.) ६	०	०	१	२
वेउन्वियजइ ,,	०	०	०	०	०	०	१	१	१	०	०	०	३
आहारण ,, →	०	०	०	१	०	१	२	२	१	०	०	०	७
नारक ,, →	०	१	०	१	०	१	१	१	०	०	०	०	५

नाम्नः समास्थानानि-  
 तिहुणउई 'उगुणउई अहकळसो असोइ उगुसीई ।  
 अहकळपपक्षरि नव अह य नामसंताणि॥ सुखम्-२६॥ (२२२) [२०७]  
 ठवणा- ३३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८७, ७६, ७८, ७६, ७५, ६, ८ ।  
 गइ-अणुपुष्वी चउ चउ वंघण-संघाय-जाइ-वक्क-रसा ५ ।  
 तणु ५ पत्तेयं पण पण अंगतिगं अह फासा य ॥१८१॥ (२२३) [२०८]  
 छागी छस्संघयणा विहदुग-दुगगंध सेयरा वीसं ।  
 पत्तेया अह भवे तेणउई नामसंताओ ॥१८२॥ (२२४) [२०९]

१ "इगुणउई" इति वा, "गुणतउई । अइसी छळसी असोइ गुणसीई । महुयं" इति वा ।

तित्थूणा वाणउई तेणउई चेवहारचउऊणा ।  
 सत्ताए गुणनउई अट्टासी होइ तित्थूणा ॥१८२॥ (२२५) [२१०]  
 नेरइयसुरदुगाणं एगयरूव्वलणि होइ छासीई ।  
 'तत्तो त्रिउव्विचउसुरदुगाण आसीइ उव्वलणो ॥१८३॥ (२२६) [२११]  
 मणुदुगउव्वलणेणं अट्टत्तरि तेउवाउसंतमिणं ।  
 पढमचउक्का तेरस—खएण चत्तारि खवगस्स ॥१८४॥ (२२७) [२१२]  
 साहारसुहुमचउजाइ थावरं आयवं च निरयदुगं ।  
 तिरियदुगं उज्जोयं तेरस अनियट्टिवोच्छेए ॥१८५॥ (२२८) [२१३]  
 मणुयगइजाइतसवायरं च पज्जत्तसुमगआएज्जं ।  
 जसकित्ती तित्थयरं अजोगि जिणसंति नव होंति ॥१८६॥ (२२९) [२१४]  
 ता तित्थूणा अट्ट उ केवलिसामन्नसंतए होंति ।  
 'इत्तो बंधुदयाणं संतट्टाणाण संवेहो ॥१८७॥ (२३०) [२१५]  
 बंधुदयसंतटाणा एगत्य परूविया वि सव्वत्थ ।  
 न विसेमो पगईसुं कायव्वो ठाणमासज्ज ॥१८८॥ (२३१) [२१६]  
 नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानानि—  
 नव पंच उदयसंता तेवीसे पन्नवीस छवीसे ।  
 अट्ट चउरइवीसे नवसत्तुगुणीसतीसम्मि ॥सूत्रम्-३१॥ (२३२) [२१७]

ठवणा-

बन्ध०	२३	२५	२६	२८	२९	३०
उदय०	६	६	९	८	६	९
सत्ता.	५	५	५	४	७	७

तेवीस पन्नवीसा छवीसुणतीसतीस<sup>१</sup>बंधम्मि ।  
 नव नव उदयट्टाणा वीसा नव अट्ट 'मोत्तुणं ॥१८९॥ (२३३) [२१८]  
 ठवणा—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१,  
 इगिविगला सविगप्पा तिरिमणु सामन्न तह सवेउव्वा<sup>२</sup> ।  
 नियनियउदयविगपेहि सव्वे बंधंति संभविया ॥१९०॥ (२३४) [२१९]

१ "णिसुरदुगचचधिक्रियअट्टासी असीइ उव्वलणे ॥ (२२६)" इति L. D. प्रती । २ "हुत्ति" इति L. D. प्रती । ३ "एत्तो" इति L. D. प्रती । ४ "अगि गुण ती०" इत्यपि । ५ "बंधेसु" इति L. D. प्रती । ६ "सुत्तुण" इति L. D. प्रती ।

नवरं इह पडिसेहो तिरिमणुयार्ण च भोगमूमीर्ण ।  
 तणुयकसायत्तणओ अट्टावीसं च बंधंति ॥१९१॥ (२३५) [२२०]  
 ते पज्जत्ता एत्थ य अपज्जि गुणतीसमवि य बंधंति ।  
 जम्हा ते देवेसुं न अन्नगइ जंति पाएर्ण ॥१९२॥ (२३६) [२२१]  
 तह ईसाणंतसुरा पज्जत्तेगिंदियाण पाओगा ।  
 बंधंति मिच्छदिट्ठी पणवीसा तह य छवीसा ॥१९३॥ (२३७) [२२२]  
 गुणतीसतीसबंधा सन्वे देवा य तह य नेरइया ।  
 नियनियउदयविगप्पेहिं 'सम्ममिच्छाइ जहजोगं ॥१९४॥ (२३८) [२२३]

ठषणा-

बंधट्टाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०
उदयट्टाणा	६	६	९	८	६	६
सत्ताट्टाणा	५	५	५	४	७	७

नव नव उदयट्टाणा बंधे बंधे य हुंति पत्तेयं ।  
 'सवियप्पाई बुत्ता अट्टावीसम्मि पुण एए ॥१९५॥ (२३९) [२२४]  
 अट्टावीसे बंधे उदयट्टाणा उ अट्ट नायब्बा ।  
 केवलितिगचउवीसं चउरो 'भोत्तूण सवियप्पा ॥१९६॥ (२४०) [२२५]  
 इगवीसे छवीसे उदए जे वट्टमाणया जीवा ।  
 खाइगवेयगदिट्ठी नियमा बंधंति न उ अन्ने ॥१९७॥ (२४१) [२२६]  
 सेसेसुं उदएसुं सम्मदिट्ठि तह मिच्छदिट्ठी य ।  
 अज्झत्थवसा बंधहि सुरनारयजोग्गनरतिरिया ॥१९८॥ (२४२) [२२७]  
 २८ बंधे ८ उदयट्टाणा-२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।  
 उदएसुं जे जीवा वट्टंता बंधगा उ ते भणिया ।  
 तेसिं तु संतठाणा कित्थिय के कस्स तं भणिमो ॥१९९॥ (२४३) [२२८]  
 (१)इगि(२)विगल ३)सगल पंचसिगा उ चत्तारि आइए उदया ।  
 (१)उणवीस(२)उट्टारस(३)दुसयअट्टनउया उ न उ अन्ने

(सुभ्रीगाहा) ॥२००॥ (२४४) [२२९]

(१)उणवीस(२)उट्टारस(३)दुसय अट्टनउया य हुन्ति मंगाणं ।



(१)इगि (२)विगल(३)सगलतिरिण पणतीसा तिन्नि सन्वे वि ३३५॥२०१॥ (२४५) [२३०

ठवणा-

उदय	२१	२४	२५	२६	सन्वे मंगा		
सू० अप०	१	२			३		परिदिश्य
सू० प०	१	२	१	१	५	१६	
वा अ०	१	२			३		
वा. प०	२	४	१	१	८		
वि०अप०	३			३	६	१८	विगत०
वि० प०	६			६	१२		
पं०ति०अप०	१			१	२		परिदिति०
पं०ति०प०	८			२८	०६	२६	
सत्ताठा०	५	५	५	५	२०	३३५	

१सेसा उ सन्वमंगा अट्टत्तरिसंतवज्जिया नेया ।

चउगइ जियसंभविया ७४५६ पणसंतट्टाण पुण एए ॥२०२॥ (२४६) [२३१]

वाणउई अट्टासी, अट्टत्तरि असि य होइ छासीइ ।

चउपढमेसुदएसु अट्टत्तरिवज्ज सेसेसु ॥२०३॥ (२४७) [२३२]

इय एवं संवेहो बंधट्टाणोसु पंचसु वि मणिओ ।

नव पंच उदयसंता वुत्ता सेमं च वोच्छामि ॥२०४॥ (२४८) [२३३]

नव पंच उदय संतगाण २

ठवणा-

बंधट्टाणा	२३	२५	२६	२६	३०
उदयट्टाणा	६	६	६	९	६
संतट्टाणा	४०	४०	४०	४०	४०

१ इदं ग्रन्थं L. D. प्रतावस्ति । J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । २ “सेसा अट्टत्तरि संतवज्जिया मंगा ७४५६ ॥ इय एव सन्वमंगा अट्टत्तरिसंतवज्जिया नेया” इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ३ “छासीया” इति L. D. प्रतौ । ४ “वुच्छामि” इति L. D. प्रतौ ।

उणतीसतीसबंधे संतट्टाणा उ सत्त पत्तेयं ।

पण पण इह पुब्बुत्ता तित्थजुया दुन्नि पुण एए ॥ (२४६)

चउवीसं इगतीसं उदए 'मोत्तु उणतीसबंधम्मि ।

दो दो य संतटाणा तेणउई अउणनउई य ॥२०५॥ (२५०) [२३४]

एवं तीसे बंधे नवरं छवीस मुत्तु छट्टाणा ।

इय संवेहो बुत्तो नव सत्तुगतीसतीसम्मि ॥२०६॥ (२५१) [२३५]

बंधट्टाणा	२९	३०	दो दो संतट्टाणा-६३-८६
ववयट्टाणा	७	६	
सत्ताठाणा	१४	१२	

अट्टावीसे बंधे संवेहो अट्ट उदय चउसंता ।

बाणउई अट्टासी छासी तह अउणनउई य ॥२०७॥ (२५२) [२३६]

छसु आइएसु दो दो बाणउई अट्टासी य ठाणाइं ।

तीसे चउरो ठाणा उणनउई मुत्तु इगतीसे ॥२०८॥ (२५३) [२३७]

अट्टवीसबंधट्टाणे  
ठवणा-

उदयठाणाणि	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	एवं
सत्ताठाणाणि	१२	६२	६२	१२	६२	६२	१२	६२	१६
	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	
							८८	८६	
							८६		

तीसोदय उणनउई अट्टावीसे कइं मवे बंधे ।

आचार्यः प्राह-मणुतित्थसंतगम्मी मिच्छगए निरयमिमुहम्मि ॥२०९॥ (२५४) [२३८]

तित्थयरसंतकम्मी सम्मदिट्ठी उ बंधए णियमा ।

उणतीसं तित्थजुयं वेयगबंधा उ नो अन्ने ॥ (२५५)

वेयगसम्भदिद्धी गिरयाभिग्रहो वमेइ सम्मत्तं ।  
तेण मुहुत्तं भिन्नं उणनउई मिच्छसंता उ ॥ (२५६)

संतट्टाणाण संखामाह-

आइतिए वीमसयं उणवीसा तह य होइ चउपण्णा ।  
वावन्ना वि य कमसो सत्ताठाणाइं छण्हं पि ॥२१०॥ (२५७) [२३९]

ठषणा-

बंधट्टाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०
उदयट्टाणा	६	६	६	८	६	६
सत्ताठाणा	४०	४०	४०	१६	५४	५२

एगेगमेगतोसे एगे एगुदय अट्ट संतम्मि ।  
उवरयबंधे दस दस वेयगसंतंमि ठाणाइं । सूत्रम् ३२॥ (२५८) [२४०]

इगतीसे बंधम्मी उदओ तीसन्ह तेणवइसत्ता ।  
तह एगबंधि उदयं ३० संतट्टाणाइं तहि अट्ट ॥२११॥ [२४१]

जसक्कित्ति बंधु तीसन्ह उदय तह संतठाण अट्टे व ॥ (२५९)

पढमा चउरो ठाणा ते चिय पत्तेय तेरसविहूणा ।  
इय अट्ट संतठाणा जसक्कित्तीबंधसंवेहो ॥२१२॥ (२६०) [२४२]

उवरयबंधे दस उदयठाण तह दस य संतठाणाइं ।  
चउवीसा पणवीसा छलसी अट्टचरी मुत्तुं ॥२१३॥ (२६१) [२४३]

ठषणा-

बधठा०	३१	१	०
उदय०	१	१	१०
सत्ता०	१	८	१०

वीसछवीसा तीसा केवल्लिणो पुन्ववुत्त उदयाउ ।  
सरसाससन्वरोहे नवअट्टयअहियवीस अट्टेव ॥२१४॥ (२६२) [२४४]

दो दो य संतठाणा उणसी पन्नचरी य सन्वेसु ।  
अट्टोदयम्मि संतं ते चिय अट्टेव संतम्मि ॥२१५॥ (२६३) [२४५]

एए केवल्लिउदया तित्थजुया ते य छच्च तित्थयरे ।  
दो दो संतट्टाणा आसी छाहत्तरी तह य ॥२१६॥ (२६४) [२४६]  
छट्टुदए नवपयडी ते चिय संतम्मि चरिमसमयम्मि ।  
तित्थयरकेवल्लिस्सा तइयं ठाणं तु संतम्मि ॥२१७॥ (२६५) [२४७]  
उवसंते चउ पढमा तीसे उदयम्मि तह य तित्थयरे ।  
रसणं केवल्लिनियरे उवरयबंधम्मि संवेहो ॥२१८॥ [२४८]  
तेरस तेरस भेया केवल्लित्थयर तह य उवसंते ।  
चउ पढमा तीसुदए उवरयबंधम्मि संवेहो ॥ (२६६)

\* उवरयवंधे  
ठषणा—

उदयठाण०	२०	२१	२६	२७	२८	२९	३०	३१	६	८	सव्वे
सत्ताठाण०	२	२	२	२	२	४	८	२	३	३	३०

सामान्येन नाम समाप्तम् ॥

मूळुत्तरपगईसुं बंधोदयसंतठाण इय भणिया ।  
जीवगुणठाणगेसुं तह उत्तरपगईसुं भणिमो ॥२१६॥ (२६७) [२४९]  
तिविगप्प पगइठाणेहि जीवगुणसणिएसु ठाणेसुं ।  
भंगा पउंजियव्वा जत्थ जहासंभवो भवइ ॥सू.०-३३॥ (२६८) [२५०]  
तिविगप्पा बोधव्वा बंधं उदयं च संतठाणतिगं ।  
भंगा पउंजियव्वा जियगुणठाणाण संभविया ॥२२०॥ (२६९) [२५१]  
चतुर्दशजीवस्थानेषु ज्ञानावरणान्तराययोर्बन्धोदयसत्तास्थानभङ्गाः-  
तेरससु जीवसंखेवएसु भाणंतरायतिविगप्पो ।  
एक्कम्मि तिवुविगप्पो करणं पइ 'एत्थ अविगप्पो ॥सू.-३४॥(२७०) [२५२]

\* ज्ञानावरणंतरायठषणा—

जीवट्टाणा	१३	सण्णी	
बंध.	५	५	०
उदय.	५	५	५
सत्ता.	५	५	५

१. 'तहाहारचरहिया' इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । २-४ इत्वं यन्त्रं L. D. प्रवावस्ति, J. प्रतिप्रेस-कोप्यां नास्ति । ३ "इत्थ" इति L. D. प्रवौ ।

करणं पइत्ति जोगी मणमाईणि उ हवंति करणाइं ।

सञ्चखओ दुण्हं पि हु करणं पइ तेण अविगप्पो ॥२२१॥ (२७१) [२५३]

जीवस्थानेषु दर्शनाघरणीयस्य वन्धोदयसत्तास्थानमङ्गा-

तेरे नव चउ पणगं नवसएगम्मि भंग 'मेक्कारा ।

२वेयणियाउं गोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥सू.-३५॥ (२७२) [२५४]

नवबंधं नवसंतं चउपण उदयम्मि दंसणावरणे ।

३तेरससु आइमेसुं सण्णी पुव्वुत्तएक्कारा ॥२२२॥ (२७३) [२५४]

१ठवणा-

बंधठाणा	१	६	६	६	४	४	४	०	०	०	०
उदयठाणा	४	५	४	५	४	५	४	४	५	४	४
सत्ताठाणा	६	६	६	६	९	६	६	६	६	६	४

जीवस्थानेषु वेदनीयगोत्रयोर्वन्धादिस्थानानां मङ्गाः-

पज्जत्तगसन्नियरे अट्ट चउक्कं च वेयणियमंगा ।

सत्तग तिगं च गोए पक्षेयं जीवठाणेसु ॥ सूत्रम्-०॥ (२७४) [२५६]

ठवणा-

बंधो	अ-सा०	अ-सा०	सा-य०	सा-य०	०	०	०	०
उदयो	अ-सा०	सा-य०	अ-सा०	सा-य०	अ-सा०	सा-य०	अ-सा०	सा-य०
सत्ता	२	२	२	२	२	२	१	१

पढमा दुग तह तुरिओ गोए वेयणियमंगचत्तारि ।

तेरससु आइमेसुं सञ्चीपज्जत्ति पुव्वुत्ता ॥२२३॥ (२७५) [२५७]

३तेरससु जीवठाणेसु ठवणा-

बंध०	नी	नी	उच्च.
उदय०	नी	नी	नी
सत्ता	नी	२	२

१ 'मिक्कारा' इति L. D. प्रती । २ 'वेयणियाउय गोए' इति L. D. प्रती । ३ 'तेरससुं पि इमासुं' इति L. D. प्रती । ४ 'इक्कारा' इति L. D. प्रती । ५-६-७ इवं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

१सन्निपञ्जसगस्स ठवणा—

बंधो	नीय०	नीय०	नोय०	उच्च	उच्च	०	०
उद्धो	नीय०	नीय०	उच्च०	नीय	उच्च	उच्च	उच्च
सत्ता	नीय०	२	२	२	२	२	१

सण्णिम्मि सत्त मंगा पढमो क्ह जेण तेउवाउगं ।

१मण्ह पढम्भुववण्णे तेहिंतो तिरियसण्णिम्मि ॥२२४॥ (२७६) [२५८]

जीवस्थानेष्वायुषो बन्धादिस्थानमङ्गाः

पञ्जसा-ऽपञ्जसगसमणे पञ्जसाअमण-सेसेसु ।

अट्ठावीसं दसगं नवगं पणगं च आउस्स ॥सू.- ०॥ (२७७) [२५९]

सण्णिअपञ्जमणुतिरिय मणुतिरिजोगं च आउ वंधंति ।

१एक्केक्कु बंधपुव्वे बंधु४त्तर४ चउर इय दसओ ॥२२५॥ (२७८) [२६०]

सन्नी पज्जे मंगा अट्ठावीसं पुव्ववुत्त आउम्मि ।

पज्जाऽमण तिरियसमा पण १इक्कारे य ५ देवसमा ॥२२६॥ (२७९) [२६१]

१ठवणा—

११ जीवठा०	५
प० असं०	६
अप० सं०	१०
प० सं०	२८

जीवस्थानेषु मोहनीयबन्धादिस्थानमङ्गाः-

अट्ठसु पंधसु एगे एगदुगं दस च मोहबंधगए ।

तियचउनचउदयगए तिग तिग पण्णरससंतम्मि ॥सू.- ३६॥ (२८०) [२६२]

१-६ इदं यन्त्रं L. D. प्रवाषस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति, २ 'भन्नइ' इति L. D. प्रती । ३ '०धवन्ने' इति L. D. प्रती । ४ "एगे अबंधपुव्वे" इति J. प्रतिप्रेसकोप्यात् । ५ "एक्कारे" इति L. D. प्रती ।



श्रीप्रह्लादौ-ते णं भंते ? असन्नपिंचिंदितिरिक्खजोणिया किं इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा ? नो इत्थिवेयगा नो पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा” इति । एतत्सिद्धान्ताभिप्रायेण च श्रीमन्मलयगिरिपादः सप्ततिकायाः षड्विंशत्तमगाथावृत्तौ पर्याप्तासंज्ञिनि नपुंसकवेद एव दर्शितं, तत्रापि चूर्णिकारामि-प्रायेण वेदत्रयम्, एवं सप्ततिकामाष्यपञ्चशत्तमगाथावृत्तौ श्रीमेरुतुङ्गाचार्यैरपि । तेनाकारमात्रमङ्गी-कृत्य कार्मप्रन्थिकमताभिप्रायेण लब्धपर्याप्तासंज्ञिनि वेदत्रयं संभवति, तथैव बहुमिर्दृष्टि कारैः समर्थित-त्वात् । चूर्णिकारास्तु विपाकोदयापेक्षया वेदत्रयमसंज्ञिनि लब्धपर्याप्ते स्वीकुर्वन्ति, न पुनः केवलमाका-रमात्रेणेति विशेषः । न पुनर्लब्धपर्याप्तसंज्ञिसंज्ञिनोरपि ।

न च “षड्वच पुमिस्थिवेए” इति पञ्चमसंग्रहवचनम्, “पुमिस्थिवेए चरम चउरो ॥” इति प्राचीनपद्दगी-तिवचनम्, “थीणारपणिदि चरमाचउ” इति नव्यषट्शतीति वचनम्, इत्यादिवचनैस्तथा श्रीरामदेवगणि-नैव प्राचीनषट्शतीतिदशमगाथाविषरणे जीवस्थानेषु मार्गणास्थानानि दर्शयता-“असण्णिअपज्जत्तगस्स उत्तरभेया । तं जहा ..... वेयतिगं ..... । सन्नपिंचिंदियस्स अपज्जगस्स उत्तरभेया । तं जहा-गइ चउक्कं ..... वेयतिगं ॥” इत्यादिना पर्याप्ता-ऽपर्याप्तसंज्ञिद्वया-ऽसंज्ञिद्वयलक्षणेषु चतुर्ष्वपि जीवस्थानेषु वेदत्रयं प्रतिपादितम्, अतः कथं लब्धपर्याप्तसंज्ञिसंज्ञिनोस्तन्निषिध्यते भवतेति वाच्यम्, अभिप्राया-ऽपरिज्ञानात्, यतस्तत्र सर्वत्रा-ऽप्यपर्याप्तः करणेना-ऽपर्याप्ता विवक्षित इति न कश्चिदपि दोषः, भवत्वत्रा-ऽपि करणा-ऽपर्याप्त इति चेत्, सत्यम्, तदेहा-ऽप्यदोष एव, किन्तु सो-ऽत्र विवक्षितो नास्ति, यतो लब्धपर्याप्तस्यैवा-ऽत्र विवक्षितत्वेन सप्तस्वप्यपर्याप्तेषु प्रथमगुणस्थानादिकमेव दर्शितम्, अन्यथा द्विती-यगुणस्थानादिकमपि दर्शितं स्यात् ।

ननु यथा माववेदमाभित्य सप्ततिकामाष्य-४६-५७ तमगाथावृत्तौ मेरुतुङ्गाचार्यैर्विपाकोदयतो देव-नारकाणां वेदत्रयस्य संभवो दर्शितः तथा च तद्ग्रन्थ-“यद्यप्याकृत्या देवानां क्लीषवेदो नारकाणां च पुंस्त्रीवेदो न स्वस्तया-ऽपि विपाकोदयतो वेदत्रयमपि संभवति” इति । तथा लब्ध्या-ऽपर्याप्तयोः संज्ञ्य-संज्ञिनोरपि स्यादिति चेत्, न, तत्रैव सप्ततिकामाष्य ५५ तमगाथावृत्तौ तैरेव मेरुतुङ्गाचार्यैर्लब्धपर्याप्त-ज्ञातिरिक्तानां त्रयोदशानामपि जीवभेदानां केवलस्य नपुंसकवेदस्यैवोदयस्य प्रतिपादनात्, एवमन्य-त्रा-ऽपि । अन्यथा यथा “उदयविगपा जे जे उदीरणए वि होति ते ते उ । अंतमुहुत्तियउदया समया-दारवम भंगा य ॥३३॥” इति पञ्चसंग्रहसत्कसप्ततिकागाथास्वोपज्ञवृत्तौ-“युग्मेन वेदेन वा-ऽवश्यमन्तमुहुर्ता-दरतः परावर्तितव्यम्” (पञ्चसंग्रहप्रथमभागपत्र-२४३-१) इति स्ववचनमाहृत्य पञ्चसंग्रहकारैर्जीवस्थानेषु बन्धहेतुर्न दर्शयद्भिन्नतुर्देशस्वपि जीवस्थानेषु वेदत्रयं प्रतिपादितम्, (पञ्चसंग्रहप्रथमभागपत्र-१७६-१८२) तथा चूर्णिकार-माष्यवृत्तिकारादिभिरपि चतुर्देशस्वपि जीवभेदेषु वेदत्रयस्य विधानं कृतं भवेत्, तुल्यन्यायत्वात्, न च तैस्तथा विहितम्, एवं प्रस्तुतग्रन्थे-ऽपि, तथा श्रीमन्मलयगिरिपादैरपि ‘उदय-विगपा ..’ (पञ्चसंग्रहसप्ततिका ३३ गाथा प्रथमभागपत्र-२४२-२) इति गाथावृत्तौ ‘युग्मेन वेदेन वाऽवश्यं मुहुत्तादारतः परावर्तितव्यम्” इति पञ्चसंग्रहकारवचनं पुरस्कृत्य मावनाया विहितत्वे-ऽपि जीवभेदेषु बन्धनिरूपणावसरे तदनाहृतम्” उक्तं च तैस्तत्र-“इह संज्ञिपठ्चेन्द्रियव्यतिरिक्ताः शेषाः सर्वे-ऽपि संसारिणो जीवाः परमार्थतो नपुंसकाः, केवलमसंज्ञिपठ्चेन्द्रियाः स्त्रीपुं लिङ्गाकारमात्रमधिकृत्य पुंस्त्रीवेदे प्राप्यन्ते” (पञ्चसंग्रह प्रथमभागपत्र १८३-) इति । ततो वेदत्रयपरावृत्तिमतमप्रधानं प्रतिभाति । किञ्च लब्धपर्याप्तः सर्वो-ऽपि नपुंसक एवेति हेतोरेव लब्धपर्याप्तसंज्ञिसंज्ञिनोर्वेदत्रयस्य यत्प्रतिपादनं तद् विधारणीयम् ।





श्रीप्रह्लादौ-ते णं भंते ? असन्निपंचिदितिरिक्खजोणिया किं इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा ? नो इत्थिवेयगा नो पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा” इति । एतत्सिद्धान्ताभिप्रायेण च श्रीमन्मलयगिरिपादैः सप्ततिकायाः षड्विंशत्तमगाथावृत्तौ पर्याप्तासंज्ञिनि नपुंसकवेद एव दर्शितं, तत्रापि चूर्णिकाराभि-  
प्रायेण वेदत्रयम्, एवं सप्ततिकामाष्यपञ्चरत्नाशतमगाथावृत्तौ श्रीमेरुतुङ्गाचार्यैरपि । तेनाकारमात्रमङ्गी-  
कृत्य कार्मभ्रन्धिक्रमताभिप्रायेण लब्धिपर्याप्तासंज्ञिनि वेदत्रयं संभवति, तथैव बहुमिर्वृत्तिहारैः समर्थित-  
त्वात् । चूर्णिकारास्तु विपाकोदयापेक्षया वेदत्रयमसंज्ञिनि लब्धिपर्याप्ते स्वीकुर्वन्ति, न पुनः केवलमाका-  
रमात्रेणेति विशेषः । न पुनर्लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिसंज्ञिनोरपि ।

न च “चउ चउ पुमिस्थिवेए” इति पञ्चमसंग्रहवचनम्, “पुमत्थिवेए चरम चउरो ॥” इति प्राचीनपड्डी-  
विवचनम्, “शीणरपणिदि चरमाचउ” इति नव्यषट्शीति वचनम्, इत्यादिष्वचनैस्तथा श्रीरामदेवगणि-  
नैव प्राचीनषट्शीतिदशमगाथाविषरणे जीवस्थानेषु मार्गणास्थानानि दर्शयन्ता-“असणिणभपज्जत्तगस्स  
उत्तरभेया । तं जहा ..... वेयतिगं ..... । सन्निपंचिदियस्स भपज्जगस्स उत्तरभेया । तं जहा-गइ  
चउक्कं .... वेयतिगं ॥” इत्यादिना पर्याप्ता-ऽपर्याप्तसंज्ञिद्वया-ऽसंज्ञिद्वयलक्षणेषु चतुर्ष्वपि जीवस्थानेषु  
वेदत्रयं प्रतिपादितम्, अतः कथं लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिसंज्ञिनोस्तन्निधिभ्यते भवतेति वाच्यम्, अभिप्राया-  
ऽपरिज्ञानात्, यतस्तत्र सर्वत्रा-ऽप्यपर्याप्तः करणेना-ऽपर्याप्ता विवक्षित इति न कश्चिदपि दोषः, भवत्वत्रा  
ऽपि करणा-ऽपर्याप्त इति चेत्, सत्यम्, तदेहा-ऽप्यदोष एव, किन्तु सो-ऽत्र विवक्षितो नास्ति, यतो  
लब्ध्यपर्याप्तस्यैवा-ऽत्र विवक्षितत्वेन सप्तस्वप्यपर्याप्तेषु प्रथमगुणस्थानादिकमेव दर्शितम्, अन्यथा द्विती-  
यगुणस्थानादिकमपि दर्शितं स्यात् ।

ननु यथा माषवेदमाश्रित्य सप्ततिकाभाष्य-५६-५७ तमगाथावृत्तौ मेरुतुङ्गाचार्यैर्विपाकोदयतो देव-  
नारकाणां वेदत्रयस्य संभवो दर्शितः तथा च तदग्रन्थः-“यद्यप्याकृत्या देवानां क्लीबवेदो नारकाणां च  
पुंस्त्रीवेदौ न स्तस्तथा-ऽपि विपाकोदयतो वेदत्रयमपि संभवति” इति । तथा लब्ध्या-ऽपर्याप्तयोः संज्ञ्य-  
संज्ञिनोरपि स्यादिति चेत्, न, तत्रैव सप्ततिकाभाष्य ५५ तमगाथावृत्तौ तैरेव मेरुतुङ्गाचार्यैर्लब्धिपर्याप्त-  
‘ज्ञ्यातिरिक्तानां त्रयोदशानामपि जीवभेदानां केषलस्य नपुंसकवेदस्यैवोदयस्य प्रतिपादानात्, एवमन्य  
त्रा-ऽपि । अन्यथा यथा “उदयविगपग जे जे उदीरणाए वि होंति ते ते उ । अंतमुहुत्तियउदया समया-  
हारम मंगा य ॥३३॥” इति पञ्चसंग्रहसत्कसप्ततिकागाथाश्लोपङ्कवृत्तौ-“युग्मेन वेदेन वा-ऽधश्यमन्तमुहुत्ता-  
दरतः परावर्णितव्यम्” (पञ्चसंग्रहप्रथममागपत्र-२४३-१) इति स्ववचनमाहृत्य पञ्चसंग्रहकारैर्जीवस्थानेषु  
धन्वहेतून् दर्शयन्निश्चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु वेदत्रयं प्रतिपादितम्, (पञ्चसंग्रहप्रथममागपत्र-१७६-१८२)  
तथा चूर्णिकार-भाष्यवृत्तिकारादिभिरपि चतुर्दशस्वपि जीवभेदेषु वेदत्रयस्य विधानं कृतं भवेत्,  
तुल्यन्यायत्वात्, न च तैस्तथा विहितम्, एवं प्रस्तुतग्रन्थे-ऽपि, तथा श्रीमन्मलयगिरिपादैरपि ‘उदय  
विगपग . . .” (पञ्चसंग्रहसप्ततिका ३३ गाथा प्रथममागपत्र-२४२-२) इति गाथावृत्तौ ‘युग्मेन वेदेन  
वाऽवश्यं मुहुत्तादारतः परावर्णितव्यम्” इति पञ्चसंग्रहकारवचनं पुरस्कृत्य माषनाया विहितत्वे-ऽपि  
जीवभेदेषु धन्वनिरूपणावसरे तदनाहृतम्” उक्तं च तैस्तत्र-“इह संक्षिपञ्चेन्द्रियव्यतिरिक्ताः शेषाः,  
पुंस्त्रीवेदे प्राप्यन्ते” (पञ्चसंग्रह प्रथममागपत्र १८३-) इति । ततो वेदत्रयपरावृत्तिमतमप्रधानं  
यत्प्रतिपादनं तद् विचारणीयम् ।

इग्वीसे ते पणरस सत्तरसयं तु वंधि वावीसे ।

बत्तीसं संतसयं सत्ती सामन्नगहशेण ॥२३९॥ (२६८) [२७५]

ठवणा—

बंध०	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
उदय.	८ ६ १०	८ ९ १०	८ ६ १०	८ ६ १०	८ ६ १०	८ ९ १०	८ ६ १०	८ ६ १०	८ ९ १०
सत्ता	२७ ३ ३	६	६	९	६	६	६	९	६

२२	२२	२२	२२	२१	२१	२१	२१	२१
८ ६ १०	८ ६ १०	८ ६ १०	८ ९ १०	७ ८ ९	७ ८ ६	७ ८ ९	७ ८ ९	७ ८ ९
६	९	९	६	३	३	३	३	३

इति जीवस्थानेषु मोहः समाप्तः ॥

जीवस्थानेषु नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानानि-

⊙ पणकुगपणगं पणचउ पणगं पणगा ह्वंति तिन्नेव ।

पणलुपपणगं लुलुपपणगं अट्टदसगं 'च ॥सू.-२७॥ (२६६) [२७६]

⊙ एतद्गाथाद्वयस्य विवरणे L. D. प्रतौ गाथाप्रतीकानुसारेण पूर्वं सप्तत्वप्यपर्याप्तजीवभेदेषु नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानानि प्रतिपाद्य ततः पर्याप्तसूक्ष्मजीवभेदे, पर्याप्तबादरजीवभेदे, पर्याप्तविकलेन्द्रियभेदत्रये पर्याप्ताऽसंज्ञिजीवभेदे च क्रमेण मणितानि । J. प्रतिप्रेसकोप्यां पुनः प्राक् त्रयोदशस्वपि जीवभेदेषु बन्धस्थानानि, तत उदयस्थानानि त्रयोदशजीवभेदेषु, ततः सत्तास्थानान्यपि त्रयोदशसु जीवभेदेषु प्रतिपादितानि इति गाथाभेदः गाथाक्रमभेदश्च J. प्रतिप्रेसकोप्यपेक्षया विवरणगाथा-२४१ तः २८३ सन्ति । L. D. प्रतौ विवरणगाथा-३०१ तः ३५० भवन्ति ।

तथा L. D. प्रतौ त्रयोविंशतिबन्धकत्वं वैक्रियोदयवतां पञ्चविंशति-सप्तविंशत्युदयस्थानद्वयगतानां प्रतिषिद्धम्, J. प्रतिप्रेसकोप्यां न निषिद्धम्, नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने एकविंशतिषड्विंशत्युदयस्थानयोस्त्रिनवतिसत्स्थानं J. प्रतिप्रेसकोप्यां निषिद्धमपि L. D. प्रतौ न प्रतिषिद्धम् । तेन J. प्रतिप्रेसकोप्यपेक्षया L. D. प्रतौ त्रयोविंशतिबन्धस्थाने पञ्चविंशतिषड्विंशत्युदयस्थानयोः प्रत्येकं द्वे द्वे सत्तास्थाने इति चत्वारि सत्तास्थानानि न्यूनानि, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थान एकविंशति-षड्विंशत्युदयस्थानयोः प्रत्येकं त्रिनवतिसत्स्थानमिति द्वे सत्कर्मस्थाने अधिके । ततः पर्याप्तसंज्ञिजीवभेदे बन्धाऽबन्धस्थानवर्त्युदयस्थानगतानि समुदितानि सर्वाणि सत्तास्थानानि L. D. प्रतौ अष्टोत्तरशतद्वयम् २०८, J. प्रतिप्रेसकोप्यां दशाधिकद्विशते २१० सन्तीति विशेषः ।

१ "ति" इत्यपि पाठः ।

सत्तेव अपज्जत्ता सामी 'सुहुमो व वायरो चेव ।

विगल्लिदिया उ तिल्लि य तह य असन्नी य सन्नी य ॥सू.-२८॥ (३००)[२७७]

पणदुगपणगंति एएसि विवरणं ॥ पणवंघट्टाणा ते य इमे—

तिग २ ३पणवीस २५ छवीसा २६ गुणतीसा २ ९तीस ३ ०वंघटाणा उ ।

पढमम्मि जीवठाणे इय नेयं जाव तेरससु ॥२२०॥ [२७८]

पढमम्मि जीवठाणे इय णेयं जाव सत्तसु य । (३०१)

मंगा इह मिच्छसमा चारणाहिट्ठा उ कया ॥

चउ ४ पणवीसा २५ सोलस १६ वाणवइसया वि हुंति चालीसा ९२४०

छायालं बत्तीसा ४६३२ सत्तअपज्जेसु पत्तेयं ॥ (३०२)

अमणम्मि पज्जत्ते 'छट्ठा अढवीसवंधिमागच्छे ।

सन्नी पज्जत्ते पुण अट्ठेव य होंति पुव्वुत्ता ॥२४१॥ [२७९]

मंगा इह पुव्वुत्ता सव्वत्थ वि जीवठाणवंघेसु ।

पत्तेयं जोइज्जा जे जत्थ व होंति संभविआ ॥२४२॥ [२८०]

इगचउवीसेगिंदिसु २१२४ छवीसइगवीस २६२१ पंचसु तसेसु ।

दो दो उदयअपज्जे[सु] मंगा सव्वे वि 'पंचंसा ॥२४३॥ (३०३) [२८१]

इगवीसे दो मंगा वायरसुहुमेहि 'एक्कइक्केण ।

'वायरपत्तेगियरे चउरो चउवीसि अजसेण ॥२४४॥ (३०४) [२८२]

अप्यज्जपणतसाणं सव्वासुमपगइमिलिय'मेक्केक्कं ।

इगवीसे छव्वीसे पण . पण पत्तेय 'दुण्हं पि ॥२४५॥ (३०५) [२८३]

नवरं मणुअपज्जे मंगा चउ चउरसंतकम्मंसा ।

अट्ठचरी न तेसि सेसा चत्तारि संभविआ ॥२४६॥ (३०६) [२८४]

एत्थ अपज्जत्ताणं असन्निसन्नीण मंगया दो दो ।

इगवीसे छव्वीसे मणुजोगे चउरए हुंति ॥२४७॥ [२८५]

पणचउपणगं सुहमे वंघे मंगा अपज्जसमसव्वे ।

उदएसुं पुण मंगा चउसु वि उदएसु पत्तेयं ॥ (३१०)

१ "तह सुहमवायरा चेव" इत्यपि, "सुहमा य वायरा चेव" इत्यपि, "सुहुमो य वायरो चेव" इत्यपि, वा पाठः । २ अयं पाठः L. D. प्रतावस्ति, J. प्रसिप्रेसकोप्यां नास्ति । ३ "छट्ठा" इति वा । ४ "पणसंना ॥ (३०३)" इति L. D. प्रतौ । ५ "एक्कमेक्केण" इति L. D. प्रतौ । ६ "तह पत्तेगियरेहि दो दो" इति L. D. प्रतौ । ७ "एक्कोक्को" इति L. D. प्रतौ । ८ "मंगा उ" इति L. D. प्रतौ ।

पञ्जत्त'सुहुम एगो इगवीसे दुगदुगं च इयरेसु' ।  
 साहारणइयरेहि मंगा पण पंचसंतंसा ॥२४८॥ (३११) [२८६]  
 इगवीसे चउवीसे इग दुग पणसंतमंगया तिन्नि ।  
 तह पणवीसछवीसे इक्केक्को अजसउदएणं ॥२४९॥ [२८७]  
 पणवीसे छवीसे इक्केक्को पंच संतंसो ॥ (३१२)  
 ३दो इह मंगा अन्ने साहारणि ४पणवीस छवीसे ।  
 अट्टचरी न तेसि तेऊवाऊण संभवइ ॥२५०॥ (३१३) [२८८]  
 सुहमे पज्जे उदया चउरो पत्तेय पंच संतंसा ।  
 चउ पंचा इह वीसं वंधे वंधे य पत्तेयं ॥ (३१४)

५सुहमेगिदियपञ्जत्तठवणाजंतइयं-

सुहमे पज्जे पणचउपणां ति पणवंधा चउउदया पणसंता					बंधठाणा	बंधमंगा	उदय- मंगा	सत्ता- ठाणा
उदयठा०	२१	२४	२५	२६	२३	४	७	२०
पणसंता	१	२	प्र.१	प्र.१	२५	२५	७	२०
चउसंता	०	०	सा.१	सा.१	२६	१६	७	२०
सत्तठाणा-	१२	१२	१२	१२	२६	६२४०	७	२०
पणसंता	८८	८८	८८	८८	३०	४६३२	७	२०
चउमंगा,	८६	८६	८६	८६	सठवे-	१३६१७	३५	१००
चउसंता	८०	८०	८०	८०	सुहुसपञ्जत्तबंधमंगसंसा १३६१७			
दुन्निमंगा।	७८	७८	७८	७८				

पण्णा तिन्नेष त्ति ।

तिविगप्प वायरणं वंधोदयसंतं पणग पत्तेयं ।  
 वंधा उ अपञ्जसमा उदया पंचेव पुण एए ॥ (३१५)  
 बायरइगवीसाए दो मंग जसेयरेहि पणसंता ।  
 जसपत्तेइयरेहि चउरो चउवीसि तह चेव ॥२५१॥ (३१६) [२८६]

१ "सुहुमि" इति L. D. प्रतौ । २ "अरण्ये" इति L. D. प्रतौ । ३ "दो मंगा इह" इति ।  
 ४ "पञ्जवीसि" इति च L. D. प्रतौ । ५ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

ते पणवीसछवीसे चउरो चउरो य एसि 'दुगमंगा ।  
 पत्तेयअजसचरिया पण संता 'हुंति नायच्चा ॥२५२॥ (३१७) [२९०]  
 एगिदिअपज्जाणं छम्मंगा सुहमि पज्जि पंचेव ।  
 अह बायरपज्जत्ते सन्वे उणवीस 'पंचसा ॥२५३॥ (३१६) [२६१]  
 'सेसा उज्जोयचरिया चउरो दो आयवेण मंगा उ ।  
 छवीसे सगवीसे तिगवाउविउच्चि पुव्वुत्ता ॥२५४॥ (३१५) [२९२]  
 पंचेव उदयठाणा चउरो पणसंत एगु पणसंतो ।  
 चउवीससंतमेया बंधे बंधे य पत्तेयं ॥ (३२०)  
 उणवीसं पणसत्ता सेसा तेवीस चउरसंता उ ।  
 बायालीसविगप्पा एगिदियसयलउदएसुं ॥२५५॥ [२९३]  
 पज्जत्तजसजसेहिं 'दो दो इगवीसि तह य छवीसे ।  
 वेहंदिगतियचउरिंदियाण पण पण संतंस पत्तेयं ॥२५६॥ [२६४]  
 विगलअपज्जत्ताणं तिगतिग इगवीसि तह य छवीसे ।  
 पुव्वुत्ता मंगा बारस पुण एए (त्ति) अट्टारा ॥२५७॥ [२६५]  
 स्रमगआएज्जजसेयरेहिं अट्टेव पज्जइगवीसे ।  
 संघयणागिह भणिया उदए छवीसए मंगा ॥२५८॥ [२९६]  
 इय सन्निअसणीणं तिरियाणं पंच अंसिया नेया ५७६ ।  
 सेसा उ सन्वमंगा अट्टत्तरिवज्ज संभविया ॥२५९॥ [२६७]  
 नामे इह संवेहे जीवठाणेषु बंधसंखाओ ।  
 बंधेषु उदयसंखा उदएसु य संतसंखा उ ॥२६०॥ (३०९) [२९८]

१ "एक्केक्के" इति L. D. प्रती । २ "सेसचवसंता" इति L. D. प्रती । ३ "पणसंता" इति L. D. प्रती । ४ "अन्ने" इति L. D. प्रती । ५ "हुंसु वि चवएसु दुभि पत्तेयं" इति L. D. प्रती ।

सत्तमपञ्जेसु ठवणा—

सत्तमपञ्जेसु पण दुग पणगं ति, पण वंधठाणा, दो उदयठाणा, पण संतठाणा ।

जीवठाणा	सुहु० अ०	धाद० अ०	वेहं० अ०	तेहं० अ०	चउ० अ०	असं० अ०	सं० अ०
उदयठाणा	२१	२४	२१	२४	२१	२६	२१
उदयभंगा	१	२	१	२	१	१	१
सत्ताठाणा	६२	६२	६२	६२	९२	९२	६२
पंचसत्ता	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८
	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६
	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०
	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८
						ति.१ म.१	ति.१ म.१
						ति.१ म.१	ति.१ म.१

बंधठाणा	बंधभंगा	उदय- ठाणा	उदय- भंगा	सत्ता- ठाणा
२३	४	२	१६	७०
२५	२५	२	१६	७०
२६	१६	२	१६	७०
२६	६२४०	२	१६	७०
३०	४६३२	२	१६	७०
सठ्वे →	१३९७		८०	३५०
सत्तमपञ्जेसु पत्तेयबंधभंगा १३९१७				

तिगपणवीसछवीसे उणतीसे तीसबंधठाणेसु ।

नव नव उदयठाणा केवलिए उदय मुत्तूर्ण ॥२६१॥

[२६६]

इगिवित्तिचउरपणिदियतिरिमणुसधिउच्च पाय बंधंति ।

नियनियउदयविगप्पे सठ्वे जे जस्स संभविया ॥२६२॥

[३००]

एगिदित्तिरित्तसेसुं

तेऊवाऊणर्णतरूप्यन्ना ।

पज्जत्तीअसमत्ता

अट्टत्तरिसंत

केसिं वि

॥२६३॥ (१२१) [३०१]

'पत्त्वत्तवायरेगिदियठवणा जंतइयं—

भायरपज्जे पणगा ह्वंति तिन्येव पण बंधा, पण उदया. पण संता ।						बंधठाणा	बंधमंगा	उदय- मंगा	सत्ता- ठाणा
उदयठाणा	२१	२५	२५	२६	२७	२३	४	२६	२४
पणसंतमंगा	२	४	१	१	०	२५	२५	२६	२४
चवसंतमंगा	०	१	४	१०	६	२६	१६	२६	२४
सत्ताठाणा	५	५	५	५	४	२९	६२४०	२६	२४
अट्टमंगा पणसंता अट्टारस चवसता, वेचठिवमंगा ३ तिमंता						३०	४६३२	२६	२४
						(सञ्चे →	१३६१७	१४५	१२०)
						भायरपगिदियपज्जत्ताबंधमंगा ॥१३९१७॥			

पण छप्पण विगलाणं तिविगप्पा एसि हुंति पत्तेयं ।

पण बंध अपज्जसमा उदया छच्चेव पुच्चुत्ता ॥ (३२२)

पज्जत्तनसजसेहिं दुस्सु वि उदएसु दुन्नि पत्तेयं ।

नवरं दो उणतीसा सामुज्जोयाण एगयरे ॥ (३२३)

तह तीसाओ तिन्नि उ सरदुगउज्जोयएगयरखेवे ।

सुरदुगएगयरेणं इगतीसा दुन्नि उदएसु ॥ (३२४)

छहुगुणा बारसगं दो गुणतीसे य चउर तीसुदए ।

दो इगतीसे अहिया सञ्चे विगलाण सट्टि ति ॥ (३२५)

वित्तिचउरिदियपज्जे दो दो पत्तेय मंगा छच्छक्कं ।

इगवीसे छच्चीसे पणसंता सेसचउसंता ॥ (३२६)

एए वित्तिचउरिदिय उदया सञ्चे वि हुंति पत्तेयं ।

दो पढमा पणसंता चउरुदया चउरसंता उ ॥ (३२७)

बंधेसुं जे मंगा उदया मंगा उ जे उ बंधम्मि ।

उदएसुं जे सत्ता पत्तेयं मग्गणा होइ ॥ (३२८)



सत्तम्पञ्जेसु ठवणा—

सत्तम्पञ्जेसु पण दुग पणं ति, पण वंधठाणा, दो उदयठाणा, पण संतठाणा ।														
जीवठाणा	सुद्ध० अ०		बाद० अ०		वेइं० अ०		तेइं० अ०		चउ० अ०		असं० अ०		सं० अ०	
उदयठाणा	२१	२४	२१	२४	२१	२६	२१	२६	२१	२६	२१	२६	२१	२६
उदयभंगा	१	२	१	२	१	१	१	१	१	१	ति.१ म.१	ति.१ म.१	ति.१ म.१	ति.१ म.१
सत्ताठाणा	६२	६२	६२	६२	९२	९२	६२	६२	६२	६२	६२	६२	९२	९२
पंचसत्ता	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८
	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६
	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०
	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८
											७८ ति.	७८ ति.	७८ ति.	७८ ति.

बंधठाणा	बंधभंगा	उदय- ठाणा	उदय- भंगा	सत्ता- ठाणा
२३	४	२	१६	७०
२५	२५	२	१६	७०
२६	१६	२	१६	७०
२६	६२४०	२	१६	७०
३०	४६३२	२	१६	७०
सन्वे →	१३९७		८०	३५०
सत्तम्पञ्जेसु पत्तियबंधभंगा १३९१७				

तिगपणवीसछवीसे उणतीसे तीसबंधठाणेसु ।

नव नव उदयठाणा केवलिय उदय मुत्तूर्ण ॥२६१॥ [२६६]

इगिवितिचउरपणिंदियतिरिमणुसविउद्वि पाय बंधंति ।

नियनियउदयविगपे सन्वे जे जस्स संभविया ॥२६२॥ [३००]

एगिदितिरितसेसु'

तेरुवाऊणणतरूपपन्ना ।

पज्जत्तीअसमत्ता

अट्टत्तरिसंत केसि वि

॥२६३॥ (३२१) [३०१]

'पञ्जत्तवायरेगिदियठवणा जंतइयं--

वायरपज्जे पणगा ह्वति तिन्नेव पणा बंधा, पण प्रदया, पण संता ।						बंधठाणा	बंधमंगा	उदय- मंगा	सत्ता- ठाणा
उदयठाणा	२१	२४	२५	२६	२७	२३	४	२६	२४
पणसंतमंगा	२	४	१	१	०	२५	२५	२६	२४
अचसंतमंगा	०	१	४	१०	६	२६	१६	२६	२४
सत्ताठाणा	५	५	५	५	४	२९	६२४०	२६	२४
अट्टमंगा पणसंता अट्टारस चउसता, वेसत्तिवमंगा ३ तिसंता						३०	४६३२	२६	२४
						(सन्वे →	१३६१७	१४५	१२०)
						वायरएगिदियपज्जत्तबंधमंगा ॥१३९१॥			

पण छप्पण विगलाणं तिविगप्पा एसि हुंति पत्तेयं ।

पण बंध अपज्जसमा उदया छन्वेव पुव्वुत्ता ॥ (३२२)

पज्जत्तजसजसेहिं दुस्सु वि उदएसु दुब्धि पत्तेयं ।

नवरं दो उणतीसा सासुज्जोयाण एगयरे ॥ (३२३)

तइ तीसाओ तिभि उ सरदुगउज्जोयएगयरखेवे ।

सुरदुगएगयरेणं इगतीसा दुब्धि उदएसु ॥ (३२४)

छहुगुणा वारसगं दो गुणतीसे य चउर तीसुदए ।

दो इगतीसे अहिया सन्वे विगलाण सट्ठि ति ॥ (३२५)

वित्तिचउरिंदियपज्जे दो दो पत्तेय मंग छच्छक्कं ।

इगवीसे छन्वीसे पणसंता सेसचउसंता ॥ (३२६)

एए वित्तिचउरिंदिय उदया सन्वे वि हुंति पत्तेयं ।

दो पढमा पणसंता चउरुदया चउरसंता उ ॥ (३२७)

बंधेसुं जे मंगा उदया मंगा उ जे उ बंधम्मि ।

उदएसुं जे सत्ता पत्तेयं मग्गणा होइ ॥ (३२८)

१ ठवणा-	पण छप्पण विगळणं ति । पण वंधा छ उदया पणसंतठाणा विगल्लेसु						बंधठाणा	बंधमंगा	उदय- मंगा	सत्ता- ठाणा
	उदयठा०	२१	२६	२८	२९	३०				
	२१	२६	२८	२९	३०	३१	२३	४	२०	२६
	पणसंता	२	२	०	०	०	२५	२५	२०	२६
	चउसंता	०	०	२	४	६	२६	१६	२०	२६
	विगळमंगा	६	६	६	१२	१८	२६	१२४०	२०	२६
	सत्ताठाणा	५	५	४	४	४	३०	४६३२	२०	२६
	एवं वेईदिय-तेईदिय-चउदियाण पञ्जाण पत्तेयं						(सञ्चे→	१३९१७	१००	१३०)
	बंधे पत्तेयविगळमंगा ॥१३९१७॥									

छ छप्पणं ति ॥

पञ्जामण विगळसमा उदयविगप्पा उ सन्निसारिच्छा ।

बंधेसु संतसंखा विगलाण व तस्स तीससयं (३२६)

तह अडवीसा अन्ना सवियप्पा बंध अमणाणं ।

देवनिरयगइजुग्गा अंतिल्लेहिं दोहिं उदएहिं ॥ (३३०)

अट्टासी वाणउई सत्ताठाणा उ दोन्नि पुव्वुत्ता ।

छासीई होइ तहिं दोसु वि उदएसु छस्संता (३३१)

१ ठवणा-	छ छप्पणं ति छ बंधा, (छ) उदया (पण)सत्ताठाणा छ अमणपञ्जे						बंधठाणा	बंधमंगा	उदयमंगा	संतठाणा	
	उदयठाणा→	२१	२६	२८	२९	३०					३१
	उदयठाणा→	२१	२६	२८	२९	३०	३१	२३	४	४६०४	२६
	पणसंतमंगा→	८	३८	०	०	०	०	२५	२५	४६०४	२६
	चउसंतमंगा→	०	०	५७६	११५२	१७२८	११५२	२६	१६	४६०४	२६
	सत्ताठाणा→	५	५	४	४	४	४	२८	६	२८८०	६
								२९	१२४०	४६०४	२६
								३०	४६३२	४६०४	२६
								(सञ्चे→	१३६२६	२७४००	१३६)

अप्यज्जे पणबंधा दुग्दुग उदयाउ पंच'सत्तंसा ।  
 पंचुदया दसठाणा बंधे बंधे य पत्तेयं ॥२६४॥ (३०७) [३०२]  
 पंचगुणा पंचासा सत्त अपज्जत्त तेहि गुणकारो ।  
 तिन्नि सया पन्नासा संतट्टाणाण उदएसुं ॥२६५॥ (३०८) [३०३]  
 सुहुमेयर पज्जार्ण ठाणा चउ १००पंच१२०उदयसंखाए ।  
 चउ चउ पणसंतंसा एगे चउसंतकम्मंसो ॥२६६॥ [३०४]  
 बेहंदियाइपज्जत्तयाण छच्छुदयठाण जा अमणा ।  
 आइमदुग पणसंता अट्टत्तरि वज्जिया सेसा ॥२६७॥ [३०५]  
 दुसु दस चउ सोलसगं बंधे बंधे य मिलिय तीससयं ।  
 बेहंदियाइ अमणे मिलिया सयपंच वीसहिया ॥२६८॥ [३०६]  
 तह अट्टवीसबंधे अमणाणं दुब्धि उदयअंतिल्ला ।  
 वाणउई अट्टासी छलसी पत्तेय दोसु छट्टाणा ॥२६९॥ [३०७]  
 तिणिण सया पंचासा सयमेगं तह सयं च वीसहियं ।  
 अप्यज्जसुहुमवारे विगलामण पंचछव्वीसा ॥२७०॥ [३०८]  
 छन्नउय सहस्सेगं संतट्टाणाणि जीवठाणेसुं ।  
 तेरससु आइमेसुं अट्टट्टदसगाण ई भणिमो ॥२७१॥ [३०९]  
 पुव्वुचबंधठाणा अट्ट उ उदया उ चउर मुत्तूण ।  
 केवलित्तिगचउवीसं दस संता अट्ट नव मुत्तु ॥२७२॥ (३३२) [३१०]  
 एगंदियवायाला विगले छावट्टि केवलीणट्टु ।  
 चउरो य अपज्जार्ण मोत्तुं सेसा उ ७६७१ सणिणस्स ॥२७३॥ (३३३) [३११]  
 विगलसमा सन्धीसुं छस्सु वि उदएसु संतट्टाणाइं ।  
 पणवीसे सगवीसे दुग दुग । १२ । ८८ । एए विउव्वीणं ॥२७४॥ (३३४) [३१२]

\* ठवणा-

उदय- ठाणा →	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	संखा ↓
उदयमंगा→	२५	२६	५७६	२६	११६६	१७७२	२८६८	११५२	७६७१
सत्ताठाणा→	५	२	५	२	४	४	४	४	३०

१ "संतंसा" इति L. D. प्रती । २ "तेहि" इति L. D. प्रती । ३ "पंचासा" इति L. D. प्रती ।  
 ४ 'संता दस' इति L. D. प्रती । ५ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिभ्रेसकोप्यां नास्ति ।

तेवीसबंधगाणं छव्वीसा हुंति संतठाणाणि ।  
 पणसगवीसे वज्जिय सेसा उदया जओ तेसिं ॥ (३३५)  
 तेवीसे छव्वीसं तीसं वंधेसु चउसु पत्तेयं ।

१'ठषणा-

बंधठाणा	२३	२५	२६	२६	३०
बंधमंगा	४	२५	१६	१२४८	५६४१ (१३९३४)
सत्ताठाणा	२६	३०	३०	३०	३० (१४६)

एवं सत्ता ॥१४६॥

उणवीसा पुव्वुत्ता सत्ताठाणा उ अडवीसे ॥ (३३६)  
 तीसं तु संतठाणा पंचसु वंधेसु ङोति पत्तेयं ।

१५० उणवीसा पुव्वुत्ता १९ सत्ताठाणा उ अडवीसे ॥७५॥ [३१३]  
 तह उणतीसे वंधे सत्त उ उदया उ मणुयमासज्ज ।

तेणवई उणनवई पत्तेयं संतठाणाइं ॥२७६॥ (३३७) [३१४]  
 मणुत्तित्थसंतियाणं सत्तसु उदएसु वट्टमाणाणं ।

उणतीस बंधठारणं पंचसु दो । ६३ ८६ । Δदोसु उणनवई ॥२७७॥ [३१५]

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यो नास्ति ।

Δ नाम्न एकोनत्रिशद्वन्धस्थाने मनुष्याणामेव २५-२७-२८-२९-३० प्रकृत्यात्मकेषु परचस्वेवोदय-  
 स्थानेषु वर्तमानानां त्रिनवतिसत्तास्थानस्थानं प्राप्यते, नेनरोदयस्थानेषु वर्तमानानाम्, यतो नार-  
 केषु जिननामा-SSहारकसप्तकोमययुगपत्सकर्मकामावात्तिर्यसु जिननामसत्ताया एवा-SSमावाह्वेषु  
 नाम्नस्त्रिनवतिसत्कर्मणामेकोनत्रिशद्वन्धस्थानस्या-SSभावान्मनुष्या-SSतिरिक्त्वगतिप्रयगतानां जीवानां  
 नाम्न एकोनत्रिशद्वन्धस्थाने नाम्नस्त्रिनवतिसत्कर्मस्थानं ना-SSवाप्यते, चतुर्विंशत्युदयस्थानस्य केवला-  
 नामेकेन्द्रियाणामेव प्रायोग्यत्वेन मनुष्यप्रायोग्याण्युदयस्थानान्येकावश, तत्रा-SSनव-विंशत्येकत्रिशत्प्रकृ-  
 त्यात्मकोदयस्थानचतुष्कस्य केवलनामेव सम्भवाभ्रान्त एकोनत्रिशद्वन्धस्थाने वा त्रिनवतिसत्कर्मणि  
 वा तदुदयस्थानचतुष्कं नैव प्राप्यते, ततो नाम्न एकोनत्रिशद्वन्धस्थाने २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०  
 प्रकृत्यात्मकानि सप्तैवोदयस्थानानि, सन्ति. तत्रा-SSपि २१-२६, एकविंशति-षट्त्रिंशतिप्रकृत्यात्मकषट्शेषेषु  
 स्थानद्वये त्रिनवतिसत्कर्मता कथं न प्राप्यते इति चेत्, लक्ष्यते-जिननामा-SSहारकसप्तकोमयसत्कर्मणां  
 मनुष्याणां नियमतो वैमानिकद्वेष्वेवोत्पादो ऽस्ति । तेषाञ्च सम्यग्दृष्टित्वेन जघन्यतोऽपि साधिक-  
 पमतो न्यूनस्मितेरनुत्पादा-“SSहारकसप्तकोद्वलनं कृत्वैव” पुनर्मनुष्येषूत्पादो भवति, तेन तदानीम-  
 पर्याप्ताऽवस्थायामेकविंशति-षट्त्रिंशतिप्रकृत्यात्मकोदयस्थानयोर्वर्तमानानां मनुष्याणामेकोनत्रिशद्वन्ध-  
 स्थाने त्रिनवतिसत्ता नामकर्मणो नैव भवति, आहारकसप्तक-जिननामोमयसत्कर्मताया अभावात्, आहा-  
 रकसप्तकस्य जिननाम्नो वा नूतनबन्धस्य तत्रा-SSसत्तावाच्च ।

देवगईपाउगं

उणतीसं

बंधमाणाणं

॥ (३३८)

१ सत्ता सव्वेसु दो दो १३, ८६ ॥  
ठवणा—

२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०
२	२	२	२	२	२	२

एवं तीसे बंधे नवर सुग मणुयजोग बंधंति ।

छसु निएसु उदएसु बारसठाणाइं संतस्स १२ ॥२७८॥ (३३६) [३१६]

२ ठवणा—

उदयठाणा	२१	२५	२७	२८	२९	३०
सत्ताठाणा	२	२	२	२	२	२

बंधम्मि एगतीसे उदओ ३ तीसाइ तिणवई ४ संता ।

तह एगबंधि उदओ सत्ताठाणाइं अट्टेव ॥२७९॥ (३४०) [३१७]

छायालं सयमेगं छव्वीसुणवीस तह य नव ठाणा ।

अब्वंधि अट्ट सन्निसु दो सय अट्टत्तरा सव्वे २०८॥ (३४१)

४ ठवणा—

बंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	०
उदयठाणा	८	८	८	८	८	८	१	१	१
सत्ताठाणा	२६	३०	३०	१९	३०	३०	१	८	८ (२०८)

छव्वीस केवलीणं तिगतिग सत्ता नवऽट्ट उदएसु ।

तित्था-ऽतित्थगराणं दो दो सेसेसु सव्वेसु ॥ (३४२)

मत्तान्तरेण सिद्धान्ता-ऽभिप्रायेण पुनः सम्यग्दृष्टीनां पल्लोपमाऽसद्वृत्त्येयमागादिन्यूनस्थितेष्वपि भवनपत्यादिदेवेषूपत्यादोऽस्ति, ततस्तत्रा-ऽऽहारकसप्तकजिननामोमयसत्कर्मा मनुष्यवृत्त्या-ऽऽहारकसप्तकेऽनुद्वलिते सत्त्वेव पुनर्मेनुष्यो भवति, तदा तस्य नाम्न एकोनत्रिंशद्वन्धे एकविंशति-षड्विंशत्युदयस्थानद्वये त्रिनवतिसत्कर्मता लभ्यते, एतदभिप्रायेणैव सप्ततिकामूल-चूर्णि वृत्तिषु तथा-ऽत्रैव ग्रन्थे प्राग् ॥२०६॥ उदयस्थानद्वये (२५०) तमगाथायामनन्तरं ॥२०६॥ तमगाथायाश्च नाम्न एकोनत्रिंशद्वन्धस्थाने सप्तोदयस्थानेषु त्रिनवतिसत्कर्मता प्रतिपादितेति सम्भाव्यते । L. D. प्रतौ पुनरत्राऽपि-त्रिनवतिसत्कर्मता एकविंशति षड्विंशत्युदयस्थानद्वये निषिद्धा । १-२-५ इदं यन्त्रं L. D. प्रतौ । ३ "तीसन्ध" इति L. D. प्रतौ । ४ "संतं" इति L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रोसकोप्यां नास्ति ।

तेवीसबंधगाणं छव्वीसा हुंति संतठाणाणि ।  
पणसगवीसे वज्जिय सेसा उदया जओ तेसिं ॥ (३३५)  
तेवीसे छव्वीसं तीसं बंधेसु चउसु पत्तेयं ।

'टवणा-

बंधठाणा	२३	२५	२६	२६	३०	एवं सत्ता ॥१४६॥
बंधमंगा	४	२५	१६	१२४८	५६४१	
सत्ताठाणा	२६	३०	३०	३०	३०	(१४६)

उणवीसा पुव्वुत्ता सत्ताठाणा उ अडवीसे ॥ (३३६)

तीसं तु संतठाणा पंचसु बंधेसु होंति पत्तेयं ।

१५० उणवीसा पुव्वुत्ता १९ सत्ताठाणा उ अडवीसे ॥७५॥ [३१३]

तह उणतीसे बंधे सत्त उ उदया उ मणुयमासज्ज ।

तैणवई उणनवई पत्तेयं संतठाणाहं ॥२७६॥ (३३७) [३१४]

मणुतित्थसंतियाणं सत्तसु उदएसु वट्टमाणणं ।

उणतीस बंधठाणं पंचसु दो । ६३ ८६ ।  $\Delta$ दोसु उणनवई ॥२७७॥ [३१५]

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

$\Delta$  नाम्न एकोनत्रिंशद्वन्धस्थाने मनुष्याणामेव २५-२७-२८-२९-३० प्रकृत्यात्मकेषु पञ्चरवेषुदय-स्थानेषु वर्तमानानां त्रिनवतिसत्तास्थानस्थानं प्राप्यते, नेतरोदयस्थानेषु वर्तमानानाम्, यतो नार-केषु जिननामा-ऽऽहारकसप्तकोभययुगपत्सकर्मकाभावात्तिर्येच्छु जिननामसत्ताया एवा-ऽऽभावाद् वेषु नाम्नस्त्रिनवतिसत्कर्मणामेकोनत्रिंशद्वन्धस्थानस्या-ऽभावान्मनुष्या-ऽतिरिक्तगतिप्रयगतानां जीवानां नाम्न एकोनत्रिंशद्वन्धस्थाने नाम्नस्त्रिनवतिसत्कर्मस्थानं ना-ऽवाप्यते, चतुर्विंशत्युदयस्थानस्य केवला-नामेकेन्द्रियाणामेव प्रायोग्यत्वेन मनुष्यप्रायोग्याण्युदयस्थानान्येकादश, तत्राऽष्टमव-धिशत्ये-कत्रिंशत्प्रकृत्यात्मकोदयस्थानषतुष्कस्य केवलनामेव सम्भवात्नाम्न एकोनत्रिंशद्वन्धस्थाने वा त्रिनवतिसत्कर्मणि वा तदुदयस्थानचतुष्कं नैव प्राप्यते, ततो नाम्न एकोनत्रिंशद्वन्धस्थाने २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० प्रकृत्यात्मकानि सप्तौदयस्थानानि, सन्ति. तत्रा-ऽपि २१-२६, एकविंशति षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकवर्जशेषेषु पञ्चत्वेषुदयस्थानेषु नाम्नस्त्रिनवतिसत्ता प्राप्यते, २१-२६ एकविंशति षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकोदय-स्थानद्वये त्रिनवतिसत्कर्मता कथं न प्राप्यते इति चेत्. उच्यते-जिननामा-ऽऽहारकसप्तकोभयसत्कर्मणां मनुष्याणां नियमतो वैमानिकवेदेष्वेवोत्पादो ऽस्ति । तेषाञ्च सम्यग्दृष्टित्वेन जघन्यतोऽपि साधिक-पत्योपमस्थितिकेष्वेवोत्पादस्य सम्भवेन वैमानिकभवस्थितेरपि जघन्यतः पत्योपमपमाणत्वेन च पत्यो-पमतो न्यूनस्थितेरनुत्पादादा-“ऽऽहारकसप्तकोद्वलनं कृत्वैव” पुनर्मनुष्येषुत्पादो भवति, तेन तदानीम-पर्याप्ताऽवस्थायामेकविंशति-षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकोदयस्थानयोर्वर्तमानानां मनुष्याणामेकोनत्रिंशद्वन्ध-स्थाने त्रिनवतिसत्ता नामकर्मणो नैव भवति, आहारकसप्तक-जिननामोभयसत्कर्मताया अभावात्, आहा-रकसप्तकस्य जिननाम्नो वा नूतनवन्धस्य तत्राऽसद्भावाच्च ।

देवगईपाउगं

उणतीसं

बंधमाणाणं

॥ (३३८)

\*सत्ता सव्वेसु दो दो १३, ५३ ठवणा ॥

२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०
२	२	२	२	२	२	२

एवं तीसे बंधे नवर सुग मणुयजोग बंधंति ।

छसु नियसु उदएसु वारसठाणाहं संतस्स १२ ॥२७८॥ (३३६) [३१६]

\*ठवणा—

वदयठाणा	२१	२५	२७	२८	२९	३०
सत्ताठाणा	२	२	२	२	२	२

बंधम्मि एगतीसे उदओ \*तीसाह तिणवई \*संता ।

तह एगबंधि उदओ सत्ताठाणाहं अट्टेव ॥२७९॥ (३४०) [३१७]

छायालं सयमेगं छवीसुणवीस तह य नव ठाणा ।

अब्बंधि अट्ट सच्चिसु दो सय अट्टतरा सव्वे २०८॥ (३४१)

\*ठवणा—

बंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	०
वदयठाणा	८	८	८	८	८	८	१	१	१
सत्ताठाणा	२६	३०	३०	१९	३०	३०	१	८	८ (२०८)

छवीस केवलीणं तिगतिग सत्ता नवउट्ट उदएसु ।

तित्था-उत्तित्थगराणं दो दो सेसेसु सव्वेसु ॥ (३४२)

मत्तान्तरेण सिट्ठान्ता-उमिप्रायेण पुनः सम्यग्दृष्टीनां पत्थोपमाऽसत्त्वय्येयमागादिन्यूनस्थितेष्वपि मधनपत्त्यादिदेवेपूत्पादोऽस्ति, ततस्तत्रा-ऽऽहारकसप्तकजिननाभोमयसत्कर्माभिन्युष्यत्पद्मा-ऽऽहारकसप्तकेऽ-नुद्धक्षिते सत्येव पुनर्मनुष्यो मभवति, तदा तस्य नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धे एकविंशति-षड्विंशत्युदयस्थानद्वये त्रिनवतिसत्कर्मता लभ्यते, एतदभिप्रायेणैव सप्ततिकामूला-धूर्णि वृत्तिषु सथा-ऽत्रैव प्रत्ये प्राग् ॥२०६॥ दयस्थानद्वये (२५०) तमगाथायामनन्तरं ॥२०६॥ तयगाथायाञ्च नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने सप्तोदय-स्थानेषु त्रिनवतिसत्कर्मता प्रतिपादितेति सम्भाव्यते । L. D. प्रतौ पुनरत्राऽपि-त्रिनवतिसत्कर्मता एकविंशति षड्विंशत्युदयस्थानद्वये निषिद्धा । १-२-५ इवं यन्त्रं L. D. प्रतौ । ३ "तीसन्हु" इति L. D. प्रतौ । ४ "संतं" इति L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रे सकोप्यां नास्ति ।



'ठवणा—

अद्वयदसग नि अद्वयवधटागा अद्वयउदयद्वृणा सत्ताठाणा दस सन्निभि									बंधठाणा	बंधमंगा	उदय मंगा	सत्ता- ठाणा
उदयठाणा	०१	०५	०६	०७	०८	०९	३०	३१	२३	४	७५६८	२६
सन्नित्तिरिमंगा	८	०	०८	०	५७६	११५८	७२८	११५२	२५	२५	७६५६	३०
मणुयमंगा	८	०	०८	०	५७६	५७६	११५२	०	२६	१६	७६५६	३०
विठवित्तिरिय.	०	८	०	८	१६	१६	८	०	२८	६	४१२३	१६
आहारकमंगा	०	१	०	१	१	२	१	०	२६	६२४८	७६७१	४४
वेवाण मंगा	८	८	०	८	१६	१६	८	०	३०	४६४१	७६६७	४२
नारकाण मंगा	१	१	०	१	१	१	०	०	३१	१	(१४४)	१
विउठिवमणु,	०	८	०	८	१	६	१	०	१	१	७२	८
सत्ताठाणा	५	२	५	२	४	४	४	४	(सव्ये→)	१३७४५	४२- ५८१	२००)
सत्तित्थयरसंता	६३	१३	६३	१३	६३	६३	६३		साम्प्रत्तिरियमणुयचत्तसु उवत्तसु मंगा चुत्तीर न मणियत्ति न लिहिया			
	८६	८९	८६	८६	८६	८६	८६					

अद्वयीसं बंधं बंधहि त्तिरिमणुय निययउदयहि ।

सुरनिरगइपाउगं विमुद्ध तह किस्समाणा उ । (३४३)

करणि अपज्जत्ता उण आइमचउउदय वट्टमाणा उ ।

सुद्धिगया अद्वयीसं इयरा उणतीस बंधंति ॥ (३४४)

इह आइम चउउदया इगवीसछवीस तह य अद्वयीसा ।

उणतीसा विय कमसो वियप्प जे जस्स संमविया ॥ (३४५)

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रो मकोप्यां नास्ति । अत्र L. D प्रती "उदयहू" इति पाठो दृश्यते किन्तु सम्यग् न ज्ञायते इति कृत्वा-उत्तमिरेकत्रिशदुबन्धसत्कमेकं त्रिशत्प्रकृत्यात्मकमुदय-स्थानमाश्रित्य मङ्गाः १४४ दशिता इति ज्ञेयम् । यदि केषाञ्चिद्वाचार्याणामभिप्रायेण पुनरुत्तरवैक्यियमनु-ष्या आहारकमनुष्याश्चापि प्रकृतबन्धकतया विवक्ष्यन्ते तर्हि कौनत्रिशदुदयस्थानमप्यधिकतया लभ्येत, तथैकोनत्रिशदुदयस्थानसत्कमङ्गद्वयं त्रिशदुदयस्थानसम्बन्धिमङ्गद्विकमिति चतुर्णां मङ्गानामधिकतया सामात्सर्धे उदयमङ्गाः १४८ स्युः ।

न य विवरियं पुढो इह मंगा अहवीमि उदयसंभविया ।  
 चुम्बिदुगे वि हु लहुए अहवा न हु अवगया सम्भं ॥ (३४६)  
 तेण न भंगपमाणं अहवीसम्मि चउउदयसंभवियं ।  
 तिरिमणुसामन्नाणं इयरुदएसुं च पुण एए ॥ (३४७)  
 पणतीसमणुविउत्त्रिसु छप्पन्नं तह तिरिक्खमंगा ।  
 तीसिगतीसे उदए तिरिमणुसामन्न जे मंगा ॥ (३४८)  
 पणतीसं छप्पना चालीससया उ अहिय वत्तीसा ।  
 ४०३२ मंगाणं तु पमाणं विउच्चिदुगउदयअंतेसु ॥ (३४९)  
 अट्टावीसबंधजंतइयं-

१ ठषणा-

उदय- ठाणा	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	मंगा- संत्वा
माणुस०	०	०	०	०	०	०	११५२	०	(११५२)
तिरिय०	०	०	०	०	०	०	१७२८	११५२	(२८८०)
मणुवे उच्चिय०	०	८	०	८	६	६	१	०	(३५)
तिरिवे- उच्चिय०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	(५६)

सामन्नमणुयतिरियमंगा सम्भग् न ज्ञा(यन्)ते चउसु उदएसु ॥  
 जीवस्थानेषु नाम समाप्ताम् ॥

चउपढमट्टाणाहं ४ तेरसहीणाहं ४ ज्ञाव पत्तेयं । [३१८]  
 एवं उवरयबंधे सक्कीपज्जत्तसंवेहो ॥२८०॥  
 पंचासं सयमेगं चउवीसणुवीस तहय सत्तरस ।  
 दुम्बि सया य दहोत्तर सक्कीपज्जत्तठाणाणि ॥२८१॥ [३१९]  
 भणियाउ जीवठागे बंधोदयसंतविवरणं किंचि ।  
 गुणठाणगेसु १ तं चिय भणामि किंचि समासेणं ॥२८२॥ (३५०) [३२०]  
 गुणस्थानकेषु ज्ञानावरणा-ऽन्तराययोर्दर्शनावरणस्य बन्धोदयसत्तास्थानानां भङ्गाः-  
 नाणंतरायतिविहमवि दससु वो होंति दोसु ठाणेषु ।

१ 'मिच्छासाणे बोए नव चउ पण नव य संतंसा ॥४०-३६॥ (३५१) [३२१]

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रताषस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । २ "जीवठाणेषु" इति J. प्रतिप्रेस-  
 कोप्याम् । ३ "तिरिय" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ४ 'हुंति' इति L. D. प्रती । ५ "मिच्छासाणां"  
 इति L. D. प्रती ।

'मीमाह्नियट्टीओ छञ्चउ पण नव य सन्तकम्मंसा ।

चउबंधतिगे चउपणनवंस दुसु जुयल छस्संता ॥सू.-४०॥ (३५२) [३२२]

उवसंते चउपणनव खीणे चउरुदय छञ्च चउसंता ।

वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं पर वोच्छं ॥सू.-४१॥ (३५३) [३२३]

नाणंतरायगाहातिगस्स विवरणं पुब्बुत्तं ॥

दुसु जुयले छस्संता एएण पएण सइया खवगा ।

तेसि विसेसं विवरे किंची गाहानुसारेण ॥२८३॥ (३५४) [३२४]

अच्चंतविसुद्धत्ता निहाउदओ न खवगसेटीए ।

अप्पुन्वाई चउबंधगेसु चउरोदओ तेण ॥२८४॥ (३५५) [३२५]

अप्पुन्वपढमभागे छक्कं उवरिं तु चउरवंधुदए ।

जा सुहुमो सत्ताए वायरसंखंस नवसंता ॥२८५॥ (३५६) [३२६]

थीणतिगखविय उवरिं छस्संता जाव सुहुमरागंतो ।

बंधोवरमे चउरुदय खीणि संता उ छञ्चउरो ॥२८६॥ (३५७) [३२७]

गुणस्थानकेपु वेदनीयगोत्रयोर्वन्धस्थानादिमङ्गाः

चउ छस्सु दोन्नि सत्तसु एगे चउ गुणिसु वेयणियभंगा ।

गोए पणचउ दो तिसु एगट्ठसु दोन्नि एगम्मि ॥सू.-०॥ (३५८) [३२८]

छसु आइमेसु पढमा चउरो वंधे य अंतिमा दो दो ।

वेयणिए इय सत्तसु बंधोवरमे चउर एगे ॥२८७॥ (३५९) [३२९]

बंधोवरमि अजोगे सायासायाण उदउ को कस्स ।

जाव दुचरिमो दो दो चरिमे एक्केक्क संताओ ॥२८८॥ (३६०) [३३०]

सायं वंधं तह उदय साय तह सायबंधि दुक्खुदओ ।

दो दो संता दोसु वि इय भंगा सत्तसु गुणेषु ॥२८९॥ (३६१) [३३१]

पढमम्मि पढम पंच उ वीए पढमं विवज्जिया चउरो ।

उच्चं वंधं नीच्चुच्च उदय दो संत भंगदुगं ॥२९०॥ (३६२) [३३२]

एगेसि मयं नीयं वयगहणे नेव होइ उदयम्मि ।

नीया वि हु जइजाई तह वि य ते उच्च वेयंति ॥२९१॥ (३६३) [३३३]

संजयपमत्तठाणाउ जा चरिमो सुहुमरागसमओ उ ।

'बंधोदयम्मि उच्चं संता दुस उच्च-नीषाणं ॥२९२॥ (३६३) [३३४]

उत्तरयबंधे उच्चं उदए "संताइ दो वि जाजोगी ।

अज्जोगि चरमसमए उदए संता य उच्चस्स ॥२६३॥ (३६१) [३३५]

गुणस्थानकष्वायुषो बन्धादिस्थानभङ्गा -

अट्टच्छाह्मिगवीसा सोलस वीसं च वार छदोसु ।

दो चउसु तीसु एककमिच्छाह्सुआउगे भंगा ॥सू.-०॥ (३६६) [३३६]

अट्टावीसं २८ पठमे २६ वीए नरयाउ नरतिरि न बंधे ।

तइए बंधविचक्षा १६ चउन्धए वीस इय "होति ॥२९४॥ (३६७) [३३७]

अविरयसम्मा जीवा तिरिमणु देवाउ[एक]मेव बंधंति ।

नारयसुर मणुयाउं अट्ट उ भंगा असंभविया ॥२६५॥ (३६८) [३३८]

"नरतिरियदेसविरया देवाउं एकमेव बंधंति ।

'पुब्बुत्ता दस जुत्ता भंगविगप्पा उ वारस उ ॥२६६॥ (३६९) [३३९]

"मणुसरिस पमदत्तियरे ६ उवरिं मणुउदयमणुयसंताओ ।

खवगे पडुच्च एगं वि य सेढी चउसु सुरसंता ॥२६७॥ (३७०) [३४०]

११ ठषण -

गुणठाणा	०	मि०	सा०	मी०	अ०	दे०	प०	उप०
नानावरण० अंतराय०	बंध	५	५	५	५	५	५	५
	उदय	५	५	५	५	५	५	५
	सत्ता	५	५	५	५	५	५	५
देसणारण०	बंध	६	६	६	६	६	६	६
	उदय	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५
	सत्ता	६	९	६	६	६	६	६
वेदनीय०	भंगा	४	४	४	४	४	४	२
गोत्र०	भंगा	५	४	२	२	२	१	१
आउय०	भंगा	२८	२६	१६	२०	१२	६	६

१ "बंधे उदए" इति L. D. प्रती । २ "दो" इति L. D. प्रती । ३ "सत्ताए" इति L. D. प्रती । ४ "चरिमं" इति L. D. प्रती । ५ "उदओ" इति L. D. प्रती । ६ "बन्धामावा" इति L. D. प्रती । ७ "हुंति" इति L. D. प्रती । ८ "अविरयसम्मा [जीवा] तिरिमणु देवाउं एगमेव" इति L. D. प्रती । ९ "पुब्बुत्तदसं जुत्त" इति L. D. प्रती । १० 'मणुभंग' इति L. D. प्रती । ११ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

'भीमाहनियट्टीओ छच्चउ पण नव य सन्तकम्मंसा ।  
 चउबंधतिगे चउपणनवंस दुसु जुयल छस्संता ॥सू.-४०॥ (३५२) [३२२]  
 उवसंते चउपणनव खीणे चउरुदय छच्च चउसंता ।  
 वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं पर वोच्छं ॥सू.-४१॥ (३५३) [३२३]  
 नाणंतरायगाहातिगस्स विवरणं पुव्वुत्तं ॥  
 दुसु जुयले छस्संता एएण पएण सुइया खवगा ।  
 तेसि विसेसं विवरे किंची गाहानुसारेण ॥२८३॥ (३५४) [३२४]  
 अच्चंतविसुद्धत्ता निहाउदओ न खवगसेटीए ।  
 अप्पुम्वाई चउबंधगेसु चउरोदओ तेण ॥२८४॥ (३५५) [३२५]  
 अप्पुच्चपढमभागे छक्कं उवरिं तु चउरबंधुदए ।  
 जा सुहुमो सत्ताए वायरसंखंस नवसंता ॥२८५॥ (३५६) [३२६]  
 यीणतिगखविय उवरिं छस्संता जाव सुहुमरागंतो ।  
 बंधोवरमे चउरुदय खीणि संता उ छच्चउरो ॥२८६॥ (३५७) [३२७]

गुणस्थानकेषु वेदनीयगोत्रयोर्वन्धस्थानादिमङ्गाः

चउ छस्सु दोन्नि सत्तसु एगे चउ गुणिसु वेयणियभंगा ।  
 गोए पणचउ दो तिसु एगट्ठसु दोन्नि एगम्मि ॥सू.-०॥ (३५८) [३२८]  
 छसु आइमेसु पढमा चउरो बंधे य अंतिमा दो दो ।  
 वेयणिए इय सत्तसु बंधोवरमे चउर एगे ॥२८७॥ (३५९) [३२९]  
 बंधोवरमि अजोगे सायासायाण उदउ को कस्स ।  
 जाव दुचरिमो दो दो चरिमे एक्केक्क संताओ ॥२८८॥ (३६०) [३३०]  
 सायं बंधं तह उदय साय तह सायबंधि दुक्खुदओ ।  
 दो दो संता दोसु वि इय भंगा सत्तसु गुणेषु ॥२८९॥ (३६१) [३३१]  
 पढमम्मि पढम पंच उ वीए पढमं विवज्जिया चउरो ।  
 उच्चं बंधं नीजुच्च उदय दो संत मंगदुगं ॥२९०॥ (३६२) [३३२]  
 एगेसि मयं नीयं वयगहणे नेव होइ उदयम्मि ।  
 नीया वि हु जइजाई तह वि य ते उच्च वेयंति ॥२९१॥ (३६३) [३३३]

संजयपमत्तठाणाउ जा चरिमो सुहुमरागसमओ उ ।

बंधोदयम्मि उच्चं संता दुस उच्चनीयाणं ॥२९२॥ (३६३) [३३४]

उवरयबंधं उच्चं उदए संताइ दो वि जाजोगी ।

अज्जोगि चरमसमए उदए संता य उच्चस्स ॥२९३॥ (३६४) [३३५]

गुणस्थानकष्वायुषो बन्धादिस्थानभङ्गा -

अट्टच्छाहिगवीसा सोलस वीसं च धार छद्दोसु ।

दां चउसु तीसु एककमिच्छाइसु आउगे भगा ॥सू.-०॥ (३६६) [३३६]

अट्टावीसं २८ पढमे २६ वीए नरयाउ नरतिरि न बंधे ।

तइए बंधविवज्जा १६ चउत्थए वीस इय होंति ॥२९४॥ (३६७) [३३७]

अविरयसम्मा जीवा तिरिमणु देवाउ[एक]मेव बंधंति ।

नारयसुर मणुयाउं अट्ट उ मंगा असंभविया ॥२९५॥ (३६८) [३३८]

नरतिरियदेसविरया देवाउं एकमेव बंधंति ।

पुब्बुत्ता दस जुत्ता मंगविगप्पा उ वारस उ ॥२९६॥ (३६९) [३३९]

मणुसरिस पमदत्तियरे ६ उवरिं मणुउदयमणुयसंताओ ।

खवगे पड्डच्च एगं वि य सेढी चउसु सुरसंता ॥२९७॥ (३७०) [३४०]

१ ठषण -

गुणठाणा	०	मि०	सा०	मी०	अ०	दे०	प०	उप०
नानाकरण० अंतराय०	वध	५	५	५	५	५	५	५
	उदय	५	५	५	५	५	५	५
	सत्ता	५	५	५	५	५	५	५
दसणारण०	बंध	६	६	६	६	६	६	६
	उदय	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५
	सत्ता	६	९	६	६	६	६	६
वेदनीय०	मंगा	४	४	४	४	४	४	२
गोत्र०	मंगा	५	४	२	२	२	१	१
आउय०	मंगा	२८	२६	१६	२०	१२	६	६

१ "बंधे उदए" इति L. D. प्रती । २ "दो" इति L. D. प्रती । ३ "सत्ताए" इति L. D. प्रती । ४ "चरिम०" इति L. D. प्रती । ५ "उदओ" इति L. D. प्रती । ६ "बन्धाभावा" इति L. D. प्रती । ७ "हुति" इति L. D. प्रती । ८ "अविरयसम्मा [जीवा] तिरिमणु देवाउं एगमेव" इति L. D. प्रती । ९ "पुब्बुत्तदसं जुत्तं" इति L. D. प्रती । १० "मणुमंग" इति L. D. प्रती । ११ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिभेसकोप्यां नास्ति ।

नि०	ऽनि०	सु०	उ०	खी०	स०	अजो.	०
५	५	५	०	०	०	०	०
५	५	५	५	५	०	०	०
५	५	५	५	५	०	०	०
६/४	४	४	०	०	०	०	०
४/५	४/५	४/५	४/५	४	०	०	०
६	९/६	९/६	६	६/४	०	०	०
२	२	२	२	२	२	४	०
१	१	१	१	१	१	२	०
२	२	२	२	१	१	१	०

गुणस्थानकेषु मोहनीयस्य बन्धस्थानानि-

गुणठाणोसु अट्टसु एककेक्कं मोहबंधठाणं तु ।

पंचानियट्ठिठाणे बंधोवरमो परं ततो ॥सूत्रम्-४२॥ (३७१) [३४१]

गुणस्थानकेषु मोहनीयोदयस्थानानि-

सत्ताह वस उ मिच्छे सासायणमोसए नवुक्कोसा ।

छाई नव उ अविरए देसे पंचाह अट्ठेव ॥सूत्रम्-४३॥ (३७२) [३४२]

विरए खभोधसमिए चउराई सत्त छब्बपुच्चम्मि ।

अनिअट्ठिवायरे पुण एक्को व कुवे व उदयंसा ॥सू.-४४॥ (३७३) [३४३]

एगं सुद्धमसरारो वेएह अवैयगा भवे सेसा ।

अंगाणं च पमाणं पुच्चुद्धिद्वेण नायच्चं ॥सूत्रम् ४५॥ (३७४) [३४४]

“गुणठाणोसु अट्टसु” इत्याङ्गाहाचउक्कस्स त्रिवरणं पुच्चं व उदुच्चं ॥

अहं वि इह मोहविवरण गुणठाण पडुच्च हिद्वओ भणियं !

संपह पुण कमपचं तस्सऽणुसारेण जंतइयं ॥ (३७५).

ठषणा-

गुणठाणा	मिच्छद्विट्ठि	सासादन	मीस.	अधिरयसम्भ	देसवि.	पसत्त.
बंधुठाणा	२२	२१	१७	१७	१३	६
बंधमंगा	६	४	२	२	२	२
उदयठाणा	७	८	९	१०	११	१२
चउवीसिया	१	३	३	१	१	२
उदयपद	११२	६६	९६	१६२	११२	१६२

ठषणा-

अयमस्त	अपुञ्च०	अनियद्विवायर०	सु०
६	९	५ ४ ३ २ १ ० ०	
१	१	१ १ १ १ १ ० ०	
४	५	६ ७ ४ ५ ६ २ १ १ १ १ १ ०	
१	३	३ १ १ २ १ १ २ १ १ १ १ १ ०	
१६२	६६	१२०	मोहिया जीवा

मिच्छाद् गुणठाणोसु उदयसंख्यामाह-

ठषणा-

उदय- ठाणा	चउ- वीसि	मि०	सा०	मी०	ऽवि०	दे०	प०	ऽप०	नि०	ऽनि०	सु०
१०	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	३	१	१	१	०	०	०	०	०	०
८	११	३	२	२	३	१	०	०	०	०	०
७	११	१	१	१	३	३	१	१	०	०	०
६	११	०	०	०	१	३	३	३	१	०	०
५	६	०	०	०	०	१	३	३	२	०	०
४	३	०	०	०	०	०	१	१	१	०	०
२	१२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
१	५	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३

एवं षाषष्ठ चउवीसिया। उदयपया चउवीस-  
गुणा १२४८ ॥ दुगोदयपगोदयपया १५॥  
दुगोदयमं० १२  
एगोदयमं० ५

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रवाषस्ति, J. प्रतिप्रैयकोत्यां नास्ति ।



पत्तयं गुणठाणे पदुच्च मोहोदयपयविंदसंखामाह—

१ ठवणा—

गुणठाणा	मिच्छ	सा. मा०	मीस०	ऽवि- रत०	देम- वि०	पमत्त	ऽपम०	निय.	ऽनियट्टि०					सु०
मोहोदय.	१६२	६६	९६	१६२	१६२	१९२	१६२	६६	१२	१	१	१	१	१
पयविंद चउवीसिया	६८	३२	३२	६०	५२	४४	४४	२०	१	मं. १	मं. १	मं. १	मं. १	मं. १
पयविंदा	१६३२	७६८	७६८	१४४०	१२४८	१०५६	१०५६	४८०	२८					१

एवं मोहोदय १२६५॥ एवं पयविंदचउवीसिया ३५२॥ पयविंदा २६॥ एवं सव्वे पयविंदा ८४७७॥

ठवगा—

गुणठाणा	मिच्छ०	सा०	मी०	ऽविरय०	देमवि०	पमत्त०	ऽपम०
पदचउवीसिया	८	४	४	८	८	८	८
पदविंदचउ- वीसिया	६८	३२	३२	६०	५२	४४	४४
पदविंदा	१६३२	७६८	७६८	१४४०	१२४८	१०५६	१०५६
सत्ताठाणा	२८, २७, २६	२८	२८, २७	२८, २४	२८, २४	२८, २४	२८, २४
			२४	२३, २२, २१	२३, २२, २१	२३, २२, २१	२३, २२, २१

२ ठवणा—

नि०	'अनियट्टि०'						सु.	व.	
४	१२	१	१	१	१	१	०	०	उदयपया १२६५॥
२०	मं २४	१	१	१	१	१	१	०	पयविंदचउवीसिया ३५२, मंगा २६॥
४८०	२४	१	१	१	१	१	१	०	पयविंदा ८४७७॥
२८, २४	२८, २४, २१,	१३,	१२, ११,	५	२८	२८	२४	२४	
२१	४, ३, २, १				२१	२१	२१	१	

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्या नास्ति । २ इदं यन्त्रं J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति, L. D. प्रतौ नास्ति ।

मोहनीयस्योदयस्थानमङ्गाः-

एक'छडेकारेकारेसेव इकारसेव नवतित्रि ।  
एए चउवीसगया वारदुगे पंच एगम्मि ॥सूत्रम्-४६॥ (३७६) [३४५]  
वारसपण'सडिसया उदयविगप्पेहि मोहिया जीवा ।  
'सुलसीयसत्तसत्तरिपयविंदसएहि विन्नेया ॥सू-०॥ (३७७) [३४६]

गुणास्थानेषु मोहनीयोदयस्थानमङ्गाः-

अट्टगचउच्चउचउरट्टगा य चउरो य 'हं'ाने चउवी ना ।  
मिच्छाह अपुच्चंता वारसपणगं च अनियट्टी ॥सू-०॥ (३७८) [३४७]  
दसगम्मि एग मिच्छे तिग तिग नवअट्टगम्मि सत्तेगा ।  
एगदुग एग साणे नवअट्टगसत्तेगे कमसो ॥२६८॥ (३७९) [३४८]  
तह मीसगम्मि एवं अविरयसम्मे छडेग चउवीसा ।  
तिगतिग सत्तग अट्टग एगा नवगम्मि बोधच्चा ॥२९९॥ (३८०) [३४९]  
पंचोदयम्मि एगा तिगतिग छस्सत्तेगे य अट्टेया ।  
देसविरयम्मि एवं अट्टग चउवीस उदएसु ॥३००॥ (३८१) [३५०]  
चउरोदयम्मि एगा तिग तिग पणछक्कगम्मि सत्तेगा ।  
संजयपमत्तउदए अपमत्ते तह य एवं तु ॥३०१॥ (३८२) [३५१]  
अप्पुन्वे चउरेगा पणगे दो छक्कगम्मि एका उ ।  
मिच्छाह अपुच्चंते वावभा सन्वचउवीसा ॥३०२॥ (३८३) [३५२]  
चउवीसगुणा एए वारस अहयाल हुंति मोहुदया ।  
दुग एग उदयमंगा नवमे ते जाण सोलसंगं ॥३०३॥ (३८४) [३५३]  
बंधोवरमे सुहुमे एगुदओ लोभसुहुमकिट्टीणं ।  
इय सन्वुदयविगप्पा वारसपणसट्ट मोहस्स ॥३०४॥ (३८५) [३५४]  
आह कह एक उदए 'हेट्टा एकारमंग नणु चुत्ता ।  
इह पुण पंचेव कहं पुच्चिं वंधो इहं उदओ ॥३०५॥ (३८६) [३५५]  
जे वंधइ ते वेयइ वंधविवक्खाइ मंगएकारा ।  
उदयविवक्खाइ पुणो एककुदए पंच मंगा उ ॥ (३८७)

ठवणा-पेज नं० ५६ ॥

१. "०छडिक्का०" इति L.D प्रती । २. "एकम्मि" इति L.D. प्रती । ३. "सट्टु०" इति L. D. प्रती । ४. "सुलसीइ सत्तुत्तरिपय०" इति । ५. "हुंति" इति वा । ६. "उवरिं" इति L. D. प्रती ।

अद्विती 'बत्तीसा बत्तीसा सद्धिमेव वावन्ना ।  
 चोयाल दोसु 'वीसा मिच्छामार्हसु सामन्ने ॥सू.-०॥ (३५५) [३५६]  
 मिच्छे जो चउवीसा उदयगुणा ते उ मिलिय अद्विती ।  
 वत्तीसाइ कमेणं एस गमो जा अपुव्वंते ॥३०६॥ (३५६) [३५७]  
 'एए सव्वेगद्धा चउवीसाए गुणित्तु कयरासी ।  
 उणतीसमंगसहिया चुलसी सतहत्तरा एवं ॥३०७॥ (३६०) [३५८]  
 ठवणा-पेज नं० ६० ॥  
 जोगोवओगलेसाइएहि गुणिया हवन्ति कायच्चा ।  
 जे जत्थ गुणट्ठाणे हवन्ति ते तत्थ गुणकारा ॥सू.-४७॥ (३६१) [३५९]  
 \*मोहुदयजोगपयविदाणं च विवरणमाह—  
 मोहुदयपयविगप्पा गुणि(आ) गुणठाणजोगसंखाए ।  
 सामन्नं नव जोगा सव्वेसिं अहिय केसिचि ॥३०८॥ (३६२) [३६०]  
 नव गुणिया उदयपया इक्कारसहस्स तिन्नि पणसीया ११३८५ ।  
 अन्ने वि चउर जोगा मिच्छे साणे य सम्मम्मि ॥३०९॥ (३६३) [३६१]  
 तह मीसपमत्तेसुं एगो दो जोगअहियया कमसो ।  
 इत्थ वि लद्धविगप्पा खेप्पिज्जा पुव्वरासिम्मि ॥३१०॥ (३६४) [३६२]  
 वेउव्विय तह वेउव्विमीसओरालमीसकम्मइया ।  
 मिच्छम्मि सासणम्मि य अविरयसम्मम्मि ए अहिया ॥३११॥ (३६५) [३६३]  
 अहचउवीसा वेउव्वियम्मि चउचउरसेसतिगमिच्छे ।  
 अणउदयरहियउदया न 'होति सत्ताइनवगेसुं ॥३१२॥ (३६६) [३६४]  
 ॥जओ 'बुत्तं॥  
 अणउदयरहियमिच्छे जोगा दस कुणइ जं न सो कालं ।  
 अणणुदओ पुण तदुवल्लग सम्महिट्ठिस्स मिच्छुदए ॥३१३॥ (३६७) [३६५]  
 सासणमीसे चउरो वेउव्वियजोगि दुसु य पत्तेयं ।  
 तह उरलमीसकम्मणि सासणभावम्मि चउचउरो ॥३१४॥ (३६८) [३६६]  
 वेउव्विमीसनरए अहोमुहो नेव सासणो गच्छे ।  
 देवा न संढवेया -विउव्विमीसम्मि नपुऊणा ॥३१५॥ (३६९) [३६७]

१ "बत्तीसं बत्तीसं" इति । २ "वीसा वि अमिच्छमा०" इति । ३ "एसव्वे एगहया" इति L. D. प्रती J प्रतिप्रेसकोप्यामपि । ४ "अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति, किन्तु L. D. प्रताषट्ठि । ५ 'हुन्ति' इति L. D प्रती । ६ "बोत्तं" इति L. D. प्रती ।

सोलहया तेण चत्तारि ॥

अविरयसम्मे अट्ट उ वेउच्चियकायजोगि चउवीसा ।  
 तह मीसकम्मणेषुं नवरं धीवेयपडिसेहो ॥३१६॥ (४००) [३६८]  
 इह सम्मदिट्ठिजीवो न थीसु उववज्जइत्ति ववहारे ।  
 अच्छेरउत्ति होज्जा अहवा सुत्तस्स बाहुल्ला ॥३१७॥ (४०१) [३६९]  
 नपुवेय कहं मअह वेयगरहियाउ जेण तिन्नुदया ।  
 तह वेयणेण तिभि उ नरएसुववज्जमाणार्णं ॥३१८॥ (४०२) [३७०]  
 इत्थ य नपुंसवेओ इयरगईउ पुमवेय संमविया ।  
 संमावयामि इत्थं नपुंसथीवेयपडिसेहो ॥३१९॥ (४०३) [३७१]  
 ओरालमीसि सम्मे पुरिसवेएण चेव उववाओ ।  
 अह तित्थं थीवेए इत्थं वि अच्छेरसंमवओ ॥३२०॥ (४०४) [३७२]  
 अट्टु य सोलहया वेउच्चियमीसकम्मइगजोगे ।  
 ओरालमीसि चउरो वेउच्चिय अट्ट चउवीसा ॥३२१॥ (४०५) [३७३]  
 आहारयदुगजोगे सोलहया अट्टअट्टउदएसु ।  
 जम्हा पुच्चघरी वा चिक्कियलद्धी य नो इत्थी ॥३२२॥ (४०६) [३७४]  
 इय वीसं २० तह वारस १२ चउरो अट्टे च <sup>१</sup>मिलिय चउवीसा ।  
 मिच्छाइ अविरयंते तह सासणि चउर सोलहिया ॥३२३॥ (४०७) [३७५]  
 अविरयसम्मे वीसं पमत्तधिरियम्मि सोलसोल हया ।  
 चउवीससोलहेहिं गुणिया खिव पुच्चरासिम्मि ॥३२४॥ (४०८) [३७६]  
 तेरससहस्स तह इक्कसी य जोग<sup>१</sup>पयसच्चपिंढेण ।  
 (१३०८१) इय अणुसारा विदा गुणिज्ज इह सच्चजत्तेणी ॥३२५॥ (४०९) [३७७]  
 पुच्चं ष जोगगुणिया पयविदा ते इवंति इह दंढा ।  
 तेणउया <sup>२</sup>दोभि सथा सहस्सछावचरी नवहि (७६२६३) ॥३२६॥ (४१०) [३७८]  
 वेउच्चियअट्टुठी वत्तीसा इयरजोग पत्तेयं ।  
 छावचरसयमेगं चउवीसियमिच्छदिट्ठिम्मि ॥३२७॥ (४११) [३७९]  
 सासायण वेउच्चियओरालियमीसकम्मइगजोगे ।  
 वत्तीसं पत्तेयं वेउच्चियमीस सोलहया ॥ (४१२)

१ "व" इति L. D. प्रती । २ "मेळि" इति L. D. प्रती । ३ "मय०" इति L. D. प्रती । ४ "दुधि" इति L. D. प्रती ।

अदृष्टी 'बत्तीसा बत्तीसा सद्धिमेव भावना ।  
 बोयाल दोसु 'बोसा मिच्छामाईसु सामन्ने ॥सू.-०॥ (३८८) [३५६]  
 मिच्छे जो चउवीसा उदयगुणा ते उ मिलय अदृष्टी ।  
 बत्तीसाइ कमेणं एस गमो जा अपुञ्चंते ॥३०६॥ (३८६) [३५७]  
 'एए सन्वेगद्धा चउवीसाए गुणित्तु कयरासी ।  
 उणतीसमंगसहिया चुलसी सतहत्तरा एवं ॥३०७॥ (३८०) [३५८]  
 ठवणा-पेज नं० ६० ॥

जोगोवओगलेसाइएहि गुणिघा ह्वंति कायच्चा ।  
 जे जत्थ गुणट्ठाणे ह्वंति ते तत्थ गुणकारा ॥सू.-४७॥ (३६१) [३५६]

\*मोहुदयजोगपयविंदाणं च विवरणमाह—

मोहुदयपयविगप्पा गुणि(आ) गुणठाणजोगसंखाए ।  
 सामन्नं नव जोगा सन्वेसिं अहिय केसिचि ॥३०८॥ (३६२) [३६०]  
 नव गुणिया उदयपया इक्कारसहस्स तिन्नि पणसीया ११३८५ ।  
 अन्ने चि चउर जोगा मिच्छे साणे य सम्मम्मि ॥३०९॥ (३६३) [३६१]  
 तह मीसपमत्तेसुं एगो दो जोगअहियया कमसो ।  
 इत्थ वि लद्धविगप्पा खेप्पिज्जा पुच्चरासिम्मि ॥३१०॥ (३६४) [३६२]  
 वेउच्चिय तह वेउच्चियमीसओरालमीसकम्महया ।  
 मिच्छम्मि सासणम्मि य अविरयसम्मम्मि ए अहिया ॥३११॥ (३६५) [३६३]  
 अहचउवीसा वेउच्चियम्मि चउचउरसेसतिगमिच्छे ।  
 अणउदयरहियउदया न 'होति सत्ताइनवगेसुं' ॥३१२॥ (३६६) [३६४]  
 ॥जओ 'वुत्तं॥

अणउदयरहियमिच्छे जोगा दस कुणइ जं न सो कालं ।  
 अणणुदओ पुण तदुवल्लग सम्महिद्धिस्स मिच्छुदए ॥३१३॥ (३६७) [३६५]  
 सासणमीसे चउरो वेउच्चियजोगि दुसु य पत्तेयं ।  
 तह उरलमीसकम्मणि सासणमावम्मि चउचउरो ॥३१४॥ (३६८) [३६६]  
 वेउच्चियमीसनरए अहोमुहो नेव सासणो गच्छे ।  
 देवा न संढवेया -विउच्चियमीसम्मि नपुञ्जणा ॥३१५॥ (३६९) [३६७]

१ "बत्तीसं बत्तीसं" इति । २ "बीसा चि अमिच्छमा०" इति । ३ "एसन्वे एगत्था" इति L. D. प्रती J प्रतिप्रेसकोप्यामपि । ४ "अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति, किन्तु L. D. प्रतावस्ति । ५ 'हुन्ति' इति L. D. प्रती । ६ "बोत्तं" इति L. D. प्रती ।

सोलहया तेण चत्तारि ॥

अविरयसम्मे अट्ट उ वेउच्चियकायजोगि चउवीसा ।  
 तह मीसकम्मणेसुं नवरं थीवेयपडिसेहो ॥३१६॥ (४००) [३६८]  
 इह सम्मदिट्ठिजीवो न थीसु उववज्जइत्ति ववहारे ।  
 अच्छेरउत्ति होज्जा अहवा सुत्तस्स बाहुल्ला ॥३१७॥ (४०१) [३६९]  
 नपुवेय क्हं भक्कइ वेयगरहियाउ जेण तिन्नुदया ।  
 तह वेयणेण तिभि उ नरएसुववज्जमाणार्णं ॥३१८॥ (४०२) [३७०]  
 इत्थ य नपुंसवेओ इयरगईउ पुमवेय संमविया ।  
 संभावयामि इत्थं नपुंसथीवेयपडिसेहो ॥३१९॥ (४०३) [३७१]  
 ओरालमीसि सम्मे पुरिसवेएण चैव उववाओ ।  
 अह तित्थं थीवेए इत्थं चि अच्छेरसंमवओ ॥३२०॥ (४०४) [३७२]  
 अट्टइ य सोलहया वेउच्चियमीसकम्मइगजोगे ।  
 ओरालमीसि चउरो वेउच्चिय अट्ट चउवीसा ॥३२१॥ (४०५) [३७३]  
 आहारयदुगजोगे सोलहया अट्टअट्टउदएसु ।  
 जम्हा पुच्चवरी वा विक्कियलद्धी य नो इत्थी ॥३२२॥ (४०६) [३७४]  
 इय वीसं २० तह बारस १२ चउरो अट्टे व १ मिलिय चउवीसा ।  
 मिच्छाइ अविरयंतै तह सासणि चउर सोलहिया ॥३२३॥ (४०७) [३७५]  
 अविरयसम्मे वीसं पमत्तविरियम्मि सोलसोल हया ।  
 चउवीससोलहेहिं गुणिया स्खिव पुच्चरासिम्मि ॥३२४॥ (४०८) [३७६]  
 तेरससहस्स तह इक्कसी य जोग<sup>३</sup>पयसच्चपिण्डेण ।  
 (१३०८१) इय अणुसारा विंदा गुणिज्ज इह सच्चजत्तेणं ॥३२५॥ (४०९) [३७७]  
 पुच्चं व जोगगुणिया पयविंदा ते इवंति इह दंडा ।  
 तेणउया दोक्खिसया सहस्सछावचरी नवहि (७६२६३) ॥३२६॥ (४१०) [३७८]  
 वेउच्चियअट्टट्टी वत्तीसा इयरजोग पत्तेयं ।  
 छावत्तरसयमेगं चउवीसियमिच्छदिट्ठिम्मि ॥३२७॥ (४११) [३७९]  
 सासायण वेउच्चियओरालियमीसकम्मइगजोगे ।  
 वत्तीसं पत्तेयं वेउच्चियमीस सोलहया ॥ (४१२)

१ "व" इति L. D. प्रती । २ "मेलि" इति L. D. प्रती । ३ "भय०" इति L. D. प्रती । ४ "दुक्खि" इति L. D. प्रती ।

मीसे विउच्चिजेगे बत्तीसं होंति विंदचउवीसा ।  
 अविरयसम्मे सट्टी वेउच्चियकायजोगम्मि ॥ (४१३)  
 तह मीसकम्मणोसु सोलहया सट्टि होंति पत्तेयं ।  
 ओरालियमीसम्मी तंसट्टी अट्टया जाण ॥ (४१४)  
 आहारग तह आहारमीस संजयपमत्तउदयम्मि ।  
 चोयालं पत्तेयं सोलहया दोसु जोगेसु ॥ (४१५)  
 एए गुणित्तु सन्वे नियनियठणेहि पुच्चरासिम्मि ।  
 पक्खिवसु सम्वउत्तो संपुत्ता जेण सा रासी ॥ (४१६)  
 मोहोदयपयविंदा गुणजोगवियारणाअ उवउत्तो ।  
 संखा पुण उणनवई सहस्स तह तिन्नि उणपत्ता ॥ (८६३५६) (४७)

ठवणा—

गुणठाणा→	मि०	सा.	मी.	अत्रि.	देस.	मत्त.	उपम.	उपुव्व	उनिय.	सु.	
जोगठाणा→	१३	१३	१०	१३	९	११	९	९	९/१६	६/१	(सन्वे) ↓
जोगपया→	२२०८	१२१६	६६०	२२४०	१७८	१६८४	१७२८	८६४	१४४	६	१३०८१
जोगपयविंदा	१८- ६१२	६७२८	७६८०	१६- ८००	११२- ३२	१०६- १२	६५०४	५३२०	२५२	६	८९३४६

मोहोदयपयविंदा गुणजोगवियारणा तहयमंखा ।  
 जाया सहस्स उणनवई तिण्णि सया अउणपण्णा य ८६३४६ ॥३२८॥ [३८०]  
 मणिया जोगपयदंडमग्गणा, इयाणि उवओगपयदंडमग्गणा २ मण्णाइ-  
 पढमे वीए पंच उ तहए चउ पंचमे व छच्च भवे ।  
 सेसे सत्तुवओगा मोहुदएहि गुणिज्जाहि ॥३२६॥ (४१८) [३८१]  
 मिच्छे जा चउवीसा उवओगगुणा हंति तेस पया ।  
 नवसयसट्टा ९६० सन्वे सेसेसु य एस होइ कमो ३३० । (४१६) [३८२]  
 जइवि चउवीमसंखा गुणिया उवओग इत्थ पयवुत्ता ।  
 तहवि य चउवीसगुणा मोहपया एत्थ दडुत्ता ३३१ । (४२०) [३८३]

१ इयं यन्त्र L D प्रतावस्ति, J प्रतिप्रेमकोप्यां नास्ति । २ 'मग्गइ' इति L D प्रती । ३ 'सेस-  
 गुणाणं च एस कमो । ४ "पुव्वुत्ता" इति L D प्रती । ५ 'इत्थ' इति L D प्रती ।

साणे चउसयसीया ४८० मीसे छावत्तरा य पंच भवे ५७६ ।

अविरयसम्मे ११५२ ढंसे ११५२ ककारसवावण्ण इक्केक्के। ३३२॥ (४२१) [३८४]

उत्रओगपय पमत्ते तेरस चोयाल १३४४ तहय इयरे य १३४४ ।

छन्वावत्तरपुव्वे ६७२ अनियट्टिसयं तु वारहियं ११२॥ ३३३॥ (४२२) [३८५]

सुहमे बंधोवरमे एक्कुदए सत्त हुंति उवओगा ।

सव्वे सत्त सहस्सा नवनउया होंति सत्तसया (७७९९) ॥ ( २३ )

अट्टुडी बत्तीसा इय अणुसारेण सेसचउवीसा ।

नियउवओगगुणा ते पयदंढा हुंति सव्वे वि ॥ (४२४)

चउवीस पंचमंगा सत्तगुणा ते वि खिवसु रासिम्मि ।

एक्कावन्नसहस्सा तेसीया हुंति सव्वे वि ॥ (५१०८३) (४२५)

उपयोगपयदंढा—

१ ठवणा—

गुणठाणा →	मि-	सा.	मी.	अवि०	देम.	प.	अप.	अपु.	अनि.	सु.	
उवओगा →	५/८ चो.	५/४	६/४	६/८	६/८	७/८	७/८	७/४	७/१६मं	७/१ मं०	(सव्वे) ↓
उपओगपया →	६६०	४८०	५७६	११५२	११५२	१३४४	१३४४	६७२	११२	७	७७६६
उपओगपय- विंदा →	८१६०	३८४०	४६०८	८६४०	७४८८	७३६२	७३९२	३३६०	१६६	७	५१०८३

इयाणि लेसपया लेसदंढा य मन्नति—

पढमचउक्के छक्कं उवरि तिगे तिभि होंति लेसाओ ।

सेसेसु सुक्कलेसा मोहुदएहि गुणिज्जाहि ॥ (४२६)

मिच्छम्मि लेसउदया इक्कारसया इवन्ति वावन्ना ११५२ ।

अविरयसम्मे तेच्चिय लेसगुणा होंति ते उदया ११५२ ॥ ३३४॥ (४२७) [३८६]

सासण ५७६ मीसे ५७६ देसे इयरे य होंति लेसुदया ।

छावत्तरपंचसया ५७६ पत्तेयं पुच्चि छन्नउई ६६ ॥ ३३५॥ (४२८) [३८७]

सोलस १६ अनियट्टिम्मी सुहुमे एक्को य संखसव्वे वि ।

नउया वावन्नसया सत्त उ मंगा उ पिंहेण ५२६७ ॥ ३३६॥ (४२९) [३८८]

अट्टुडी इच्चाई गुणिया सव्वे वि लेसदंढाओ ।

अट्टुत्तीससहस्सा दोन्नि सया सत्ततीसाउ ३८२३७ ॥ ३३७॥ (४३०) [३८९]



'ठवणा—

गुणठाणा →	मि.	सा.	मी.	अधि.	द्वैस.
लेसा →	६	६	६	६	३
लेसापया →	११५२	५७६	५७६	११५२	५७६
लेसापयदंढा →	१७९२	४६०८	४६०८	८६४०	३७४४
स-ठा-संख्या।	३	१	३	५	५
सत्ताठाणा →	२८,२७,२६	२८	२८,२७,२४	२८,२४,२३ २१,२१.	२८,२४,२३ २२,२१,

पमत्त	अप०	अपु०	अनि०	सु.	उ.
३	३	१	१	१	१
५७६	५७६	९६	१६	१	सर्वसंख० ↓ → (५२९७)
३१९८	३१६८	४८०	२८	१	→ ३८२३७
५	५	३	११	५	३
२८,२४,२३ २२,२१,	२८,२४,२३ २२,२१,	२८,२४ २१,	२८,२४,२१ १३,१२,११ ५,४,३,२,	२८,२४ २१,१	२८,२४,२१

गुणस्थानकेषु मोहनीयसत्तास्थानानि

१ गुणठाणगेषु सत्तासंखामाह—

तिन्नेगे एगेगं तिगमिस्से पंच चउसु तिगपुन्वे ।

एक्कारषायरम्मो सुद्धुमे चउ तिल्लि उवसंते ॥सू.-४८॥ (४३१) [३९०]

तिन्नेगे एगेगं गाहा पुब्बभणिया सत्तट्टाणा च १ मोहे गुणट्टाणामासज्ज—

इयाणि नामस्स भग्गइ—

गुणस्थानकेषु नाम्णो बन्धोदयसत्तास्थानानि—

छन्नवच्छक्कं, तिगसत्तदुगं दुगतिगदुगं, तिगट्टचउ ।

दुगल्लच्चउ दुगपणचउ चउदुगचउ पणगएगचउ ॥सू.-४९॥ (४३२) [३९१]

एगेगमट्ट एगेगमट्ट छउमत्थकेवल्लिजिणाणं ।

एगं चउ एमं चउ अट्ट चउ दुल्लक्कमुदयंसा ॥सू.-५०॥ (४३३) [३९२] ।

एएसि विवरणं भण्णइ—

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J प्रतिप्रेसकाप्यां नास्ति . २ 'अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।  
३ 'मोहमासज्ज' इति L. D. प्रती । ४ "जंतइयं" इति L. D. प्रती ।

गुणस्थानेषु मोहनीयस्य लेश्या आश्रित्योदयस्थानमङ्गास्तथा मोहनीयसत्तास्थानानि तथा [ ६७  
 नास्नो बन्धोदयसत्तास्थानमङ्गाः

ठवणा—

गुणठाणा→	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बंधट्टाणा→	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उदयठाणा→	६	७	३	८	६	५	२	१	१	१	१	१	८	२
संतट्टाणा→	६	२	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

तीसंत छच्च बंधा उदया नव केवलीण मोत्तूण ।

पणसंता पुव्वुत्ता उणनवई मिच्छदिट्ठिस्स ॥३३८॥ (४३४) [३९३]

बंधमंगा—

खड पणवीसा सोलस नव षाणउई सया य चत्तोला ।

बत्तीसुत्तरछायालसया मिच्छस्स बंधविही ॥सू.-०॥ (४३५) [३९४]

बंधमंगा १३९२६॥

सत्तट्टहारकेवल्लि भंगतिगं जह विउव्वि संभविया ।

मोत्तूण सेस सव्वे मिच्छदिट्ठिस्स संभविया ॥३३६॥ (४३६) [३९५]

संवेहो उदएसु' बंधे बंधे य संतचालीसा ।

नवर उणतीसबंधे नेरइय पडुच्च उणनउइ ॥३४०॥ (४३७) [३९६]

इगवीसे पणवीसे सगवीसे अट्टवीसउणतीसे ।

उणतीसबंधगा ए पंचसु उदएसु नेरइया ॥ (४३८)

तित्थयरसंतकम्मी नरण बंधाउ अंतरसुहुत्तं ।

मिच्छच्चवेयगो सो पंचसु नेरइयउदएसु ॥३४१॥ (४३९) [३९७]

अट्टावीसे बंधे अंतिल्ला दोन्नि उदय मिच्छस्स ।

चउत्तिगसत्ताठाणा पुव्वुत्ता सत्त सव्वेवि ॥३४२॥ (४४०) [३९८]

पणबंधेसु' दोसय अट्टवीसे सत्त पंच उणतीसे ।

दोन्नि सय वारसुत्तर सत्ताट्टाणाई मिच्छम्मि ॥३४३॥ (४४१) [३९९]

ठवणा—

बंध०	२३	२५	२६	२८	२९	३०	२१२ ।
सत्ता०	४०	४०	४०	७	४०/५	४०	
उदय०	६	९	९	८	६	६	

(छन्नवच्छकं ति गयं ॥१॥ इति प्रथमगुणस्थानके)

१ "वीस अट्ट नव सुत्तु" इति L. D. प्रती । २ "मंगा तिग" इति L. D. प्रती । ३ "मुत्तूण" इति L. D. प्रती । ४ "अट्टिया चणनवइ पणमेया ॥४३५॥" इति L. D. प्रती ।

अद्वीसुगुतीसतीसा वंधा सागन्मि वंधभंगा उ ।

अद चउसद्विसयाइं वत्तीससयाइं कमसो उ ॥३४४॥ (४४२) [४००]

बंधट्टाणा	२८	२६	३०
भंगा	८	६४००	३२००

छेवट्टहुंढ मुत्तं पणपणणेणं गुणिज्ज थिरगाई ॥३२८॥

जम्हा न सासणम्मी हुंढं छेवट्ट वज्जंति ॥३४५॥ (४४३) [४०१]

तेण उणतीसबंधे चउसद्विसया उ मणुयतिरिएसु ।

उज्जोयतीसि भंगा वत्तीससया उ तिरियाणं ॥३४६॥ (४४४) [४०२]

चउपढम तिन्नि चरिमा मिच्छगनवगाउ सासणे सत्त ।

अट्टासी वाणउई सत्ताट्टाणा उ साणम्मि ॥३४७॥ (४४५) [४०३]

पढमा उ चउरउदया इगिविगलपणिदिलद्विपज्जाणं ।

पुव्वभवायायाणं करणि अपज्जाण संभविआ ॥३४८॥ (४४६) [४०४]

चउ पढमा एगिदिसु चउवीसं मुत्तु ते च्चिय तसेसु ।

णवरि पणवीसउदओ सुरेसु पुव्वुत्त एगिदी ॥ (४४७)

तिण्णुदया जे चरिमा उवसमसम्मम्मि अणउदय भणिया ।

पज्जत्तचउगईसुं जे नस्स य केइ संभविआ ॥३४९॥ (४४८) [४०५]

भंगा उवएसु के कस्स तं मन्नइ-

वत्तीस १ दोन्नि अट्ट य वासो य सया य पच नव उदया ।

वारहिगा तेवीसं वावन्नेकारस १ सया य ॥सूत्रम्-०॥ (४४९) [४०६]

दो २ छक्क ६ अट्ट ८ अट्टग ८ तह अट्टग ८ सासणम्मि इगवीसे ।

इगि १ विगल २ सगल ३ मणु ४ सुर ५ पज्जत्ताणं च संभविआ

॥३५०॥ (४५०) [४०७]

बायरपत्तेयवणे पज्जत्तजसाजसेहि दो भंगा ।

इगवीसे चउवीसे २४ अट्टय ८ पणवीसि देवाणं ॥३५१॥ (४५१) [४०८]

दोसय अट्टासीया मणु तह तिरियाण छच्च विगलाणं ।  
 पंचसया बासीया ५८२ उदए छव्वीसि सन्वे वि ॥३५२॥ (४५२) [४०६]  
 एगो य अट्टमंगा नारयदेवाण उदइ उणतीसे ।  
 तीसुदइ तिरियमणुसुर तेवीससया उ वारहिया ॥३५३॥ (४५३) [४१०]  
 उज्जोयतीसि अट्ट उ कारसवावन्न ते य सरतीसे ।  
 देव तह तिरिय मंगा ते च्चिय मणुयाण तिरियसमा ॥३५४॥ (४५४) [४११]  
 उज्जोयतीसउदओ मिच्छदिट्ठिस्स न उण साणस्स ।  
 उज्जोयएगतीसा सासणभावम्मि कइ एवं ॥३५५॥ (४५५) [४१२]  
 जं मिच्छदिट्ठिमणियं सासणुतीसम्मि तस्स पक्खेवा ।  
 अपजत्ति संभवो तहि साणं भासाइपज्जत्ते ॥३५६॥ (४५६) [४१३]  
 इगतीसा तिरिउदए सासणभावम्मिकार वावण्णा ।  
 चउसहससत्तनवई ४०९७ सासणगुणसव्व पिडेण ॥३५७॥ (४५७) [४१४]  
 संवेहो य ह्याणि सासणभावम्मि वंधि अट्टवीसे ।  
 दो उदया अंतिल्ला तिगसंत न तिरिय वाणउई ॥३५८॥ (४५८) [४१५]  
 मणुतीसुदए सत्ता वाणवई जेण कोइ सेढोओ ।  
 चुयहारगकम्मंसी सासणभावम्मि गच्छेज्जा ॥३५९॥ (४५९) [४१६]  
 अट्टसी तिरिमणुयाणं नियनियउदएसु वट्टमाण्णं ।  
 अट्टवीसबंधगाणं तिगठाणा संत संवेहो ॥३६०॥ (४६०) [४१७]  
 उव्वलियसेसहारगउवसमसम्मं लहित्तु जेसि मयं ।  
 तत्तो सासणभावं वाणवई तिरिय न विरोहो ॥३६१॥ (४६१) [४१८]  
 कइं भअइ —  
 जो गंठि ता पढमो गंठि समईअओ भवे वीयं ।  
 अनियट्टीकरणं पुण सम्मत्तपुरक्खडे जीवे ॥ (४६२)  
 तस्स य अंते उवसमसम्मं तिगपुंज कुणइ मिच्छस्स । (४६३)  
 वेयगसम्मदिट्ठी अणंतरं सव्वविरइ लहित्तुण ।  
 तत्तो विसुज्झमाणो आहारचऊ समज्जेइ ॥ (४६४)  
 अट्टवीससंतकम्मी मोहे वाणवइ नाम संतंसी ।

१ "सासुणती०" इति L. D. प्रती । २ "०वावन्ना" इति L. D. प्रती । ३ "एषा गाथा-उपूर्णा लेखकदोषात् L. D. प्रतावस्तीति सम्भाव्यते । एतद्वाथोत्तरार्धम्—"तव्वदिओ पुण गच्छइ सम्मे मीसांइ मिच्छे वा ॥ (४६३)" इत्येवंविधं स्यादन्यथा वेत्यपि संभावना क्रियते ।

परिवह्निं मिच्छत्तं तद् गच्छद् चउसु वि गर्हसु ॥ (४६५)  
 मिच्छत्तगओ तिन्नि वि सम्मं मीसं च हारचउपयडी ।  
 उव्वलिउं आढवेई उव्वलइ च संखपल्लंसे ॥ (४६६)  
 छव्वीससंतकम्मी पुण स च करणेहिं उवसमं पावे ।  
 तस्संते अणउदए सासायणभाव गच्छेज्जा ॥ (४६७)  
 आहारचउव्वलिए अट्टासी संतकम्म णामस्स ।  
 अहवा वि पढमसम्मे अंते साणो व अट्टासी ॥ (४६८)  
 अन्नेसि मयं तिन्निवि उव्वलियं आढवेइ समकालं ।  
 उव्वलइ कमेण तहा पल्लासंखंसभागेण ॥ (४६९)  
 उव्वलिए दिट्ठिदुगे हारगसंतम्मि उव्वलियपाए ।  
 इत्थंतरम्मि उवसमकरणेहिं उवसमइ पावं ॥ (४७०)  
 तस्संते अणउदए पढमं साणो व बुच्चए सो च ।  
 बाणवइसंतकम्मं साणे तिरियाण न विरोहो ॥ (४७१)  
 जे उणतीसं बंधहि सासायणमणुयतिरियपाउग्गं ।  
 अडसीइसंतठाणं सत्तसु उदएसु तद् 'तीसे ॥३६२॥ (४७२) [४१६]  
 नवं तिरिपाउग्गं उज्जोयसहियं तु बंधमाणणं ।  
 तिगअट्टअट्टाणा सन्वे उणवीस पिंहेण ॥३६३॥ (४७३) [४२०]  
 उणतीसतीसबंधे नियनियउदएसु संत बाणउई ।  
 पुव्वं व भणियविहिणा तिरिमणुय मयंतरेणेह ॥३६४॥ (४७४) [४२१]  
 तिगसत्तदुगं ति गयं ॥ २॥ (इति द्वितीयगुणस्थानके)  
 उणतीसअट्टवीसा बंधे उदएसु तीसउणतीसा ।  
 तद् एगतीस उदए दो ठाणा संत मीसस्स ॥३६५॥ (४७५) [४२२]  
 बंधेसु मंगसोल्ल उदए चउतीस 'होति पणसट्टा ।३४६५।  
 मंगा इह संभविआ चउगइयाणं च पज्जाणं ॥३६६॥ (४७६) [४२३]  
 एगं अट्ट य मंगा नारयदेवाण अउणतीसम्मि ।  
 तेवीसं चउरुत्तर २३०४ नरतिरियाणं च तीसुदए ॥३६७॥ ४७७ [४२४]  
 इगतीसा तिरियाणं तिरिय विगप्पा 'इकार बावभा ।११५२।  
 एवं चउतीससया पणसट्टा मिस्समंगाणं ॥३६८॥ (४७८)[४२५]

संवेहो बंधेसु उदयं उदयं पडुच्च दो ठाणा १२९९ ।  
 अडवीसि दुअंतिष्ठा ह्यरे उणतीसउदओ उ ॥३६६॥ (४७९) [४२६]  
 एवं संतट्टाणा<sup>२</sup> ६ ॥ दुगतिगदुगं ति गयं ॥३॥ (इति तृतीयगुणस्थानके)  
 तिगबंधठाण अजए अडवीसु गुतीसु तह य तीसा य ।  
 थिरसुमन्नसह्यरेहि भंगा अट्टट्ट पत्तेयं ॥३७०॥ (४८०) ४२७]  
 अट्ट उ उदयट्टाणा जे पुव्वुत्ता उ बंधि अडवीसे ।  
 उदयविगप्पा सव्वे जे जेसि हुंति संभविया ॥३७१॥ (४८१) [४२८]  
 चउगई उ पडुच्च संतठाणसामित्तसंभवमाह-  
 संतट्टाणा चउरो पढमा तेणवइ मणुयदेवाणं ।  
 अपमत्तसंजओ बंधिळण अजसो मणुस्सदेवो वा ॥३७२॥ (४८२) [४२६]  
 तं च क्हं अपमत्तो अपुव्वकरणो य बंधि इगतीसं ।  
 परिवडिळण असंजय मणुओ देवो व मरिउ उव्ववन्नो ॥३७३॥ (४८३) [४३०]  
 चाणउइ संतकम्मी आहारग बंधिळण चउगइया ।  
 ते उव्वलित्ति अजया अणउव्वलिए य चाणउई ॥३७४॥ (४८४) [४३१]  
 उणनवइ देवमणुए नेरइयाणं च सम्मदिट्ठीणं ।  
 तिरिए न तित्थिसंता निरिमणुमिच्छाण अंतमुहू ॥३७५॥ (४८५) [४३२]  
 अडसीइ संतठाणं चउसुं वि गईसुं सम्ममिच्छाणं ।  
 मणुतिरियाणं सेसा जा जस्स य होइ संभविया ॥३७६॥ [४३३]  
 तेरसहीणा चउरो पढमाइकमेण खवगाणं ॥ (४८६)  
 नव तित्थि अट्ट केवल्लि सत्ता पयडी अजोगिगुणठाणे ।  
 छासी तह सीई तिरिमणु अट्टचरि गइत्तसाणं च ॥ (४८७)  
 संवेहो भन्नइ ।  
 अट्टावीसे बंधे अट्ट उ उदया उ संत दो ठाणा ।  
 अट्टासी चाणउई दुग दुग पत्तेय उदएसु १६ ॥३७७॥ (४८८) [४३४]  
 उणतीसबंधगाणं सामन्नेणं तु सत्त उदया उ ।  
 इगतीसं वज्जेत्ता तिरियाण न मणुयपाउग्गा ॥३७८॥ (४८९) [४३५]  
 दुविहोणुतीसबंधो मणुगइपाउग्गा तह सुराणं च ।  
 देवगईपाउग्गं मणुया बंधंति तित्थजुयं ॥३७९॥ (४९०) [४३६]

१ "तिन्नेव" उदया उ" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । २ "य" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् ।

परिवडिउं मिच्छत्तं तह गच्छइ चउसु वि गईसु ॥ (४६५)  
 मिच्छत्तगओ तिन्नि वि सम्मं मीसं च हारचउपयडी ।  
 उच्चलित्तं आढवई उच्चलइ च संखपल्लंसे ॥ (४६६)  
 छव्वीससंतकम्मी पुण स च करणेहिं उवसमं पावे ।  
 तस्संते अणउदए सासायणभाव गच्छेज्जा ॥ (४६७)  
 आहारचउच्चलिए अट्टासी संतकम्म णामस्स ।  
 अहवा वि पढमसम्मे अंते साणो व अट्टासी ॥ (४६८)  
 अन्नेसि मयं तिन्निवि उच्चलियं आढवेइ समकालं ।  
 उच्चलइ कमेण तहा पल्लासंखंसभागेण ॥ (४६९)  
 उच्चलिए दिट्ठिदुगे हारगसंतम्मि उच्चलियपाए ।  
 इत्थंतरम्मि उवसमकरणेहिं उवसमइ पावं ॥ (४७०)  
 तस्संते अणउदए पढमं साणो व बुच्चए सो च ।  
 बाणवइसंतकम्मं साणे तिरियाण न विरोहो ॥ (४७१)  
 जे उणतीसं बंधहि सासायणमणुयतिरियपाउग्गं ।  
 अट्टसीइसंतठाणं सचसु उदएसु तह तीसे ॥३६२॥ (४७२) [४१६]  
 नवं तिरिपाउग्गं उज्जोयसहियं तु बंधमाणार्णं ।  
 तिगअट्टअट्टाणा सव्वे उणवीस पिंहेण ॥३६३॥ (४७३) [४२०]  
 उणतीसतीसबंधे नियनियउदएसु संत बाणउई ।  
 पुच्चं व भणियविहिणा तिरिमणुय मयंतरेणेह ॥३६४॥ (४७४) [४२१]  
 तिगसत्तदुग्गं ति मयं ॥ २॥ (इति द्वितीयगुणस्थानके)  
 उणतीसअट्टवीसा बंधे उदएसु तीसउणतीसा ।  
 तह एगतीस उदए दो ठाणा संत मीसस्स ॥३६५॥ (४७५) [४२२]  
 बंधेसु मंगसोल्ल उदए चउतीस ३होति पणसट्टा ।३४६५।  
 मंगा इह संभविआ चउगइयाणं च पज्जाणं ॥३६६॥ (४७६) [४२३]  
 एगं अट्ट य मंगा नारयदेवाण अउणतीसम्मि ।  
 तेवीसं चउरुत्तर २३०४ नरतिरियाणं च तीसुदए ॥३६७॥ (४७७) [४२४]  
 इगतीसा तिरियाणं तिरिय विगप्पा ३कार बावभा ।११५२।  
 एवं चउतीससया पणसट्टा मिस्समंगाणं ॥३६८॥ (४७८) [४२५]

संवेहो बंधेषु उदयं उदयं पद्भुच्च दो ठाणा १२१९ ।  
 अहवीसि दुअंतिष्ठा इयरे उणतीसउदओ उ ॥३६६॥ (४७९) [४२६]  
 एवं संतट्टाणा<sup>२</sup> ६ ॥ दुगतिगद्दुगं ति गथं ॥३॥ (इति तृतीयगुणस्थानके)  
 तिगबंधठाण अजए अहवीसु गुतीसु तह य तीसा य ।  
 थिरसुभनसइयरेहिं भंगा अट्टट्ट पत्तेयं ॥३७०॥ (४८०) ४२७]  
 अट्ट उ उदयट्टाणा जे पुण्वुत्ता उ बंधि अहवीसे ।  
 उदयविगप्पा सन्वे जे जेसिं हुंति संभविआ ॥३७१॥ (४८१) [४२८]  
 चउगई उ पद्भुच्च संतठाणसामित्तसंभवमाह-  
 संतट्टाणा चउरो पढमा तेणवइ मणुयदेवाणं ।  
 अपमत्तसंजओ बंधिऊण अजसो मणुस्सदेवो वा ॥३७२॥ (४८२) [४२६]  
 तं च कहं अपमत्तो अपुच्चकरणो य बंधि इगतीसं ।  
 परिवडिऊण असंजय मणुओ देवो व मरिउ उववओ ॥३७३॥ (४८३) [४३०]  
 चाणउइ संतकम्मी आहारग बंधिऊण चउगइया ।  
 ते उच्चलित्ति अजया अणउच्चलिए य चाणउई ॥३७४॥ (४८४) [४३१]  
 उणनवइ देवमणुए नेरइयाणं च सम्मदिट्ठीणं ।  
 तिरिए न तित्थसंता निरिमणुमिच्छाण अंतसुहू ॥३७५॥ (४८५) [४३२]  
 अहसीइ संतठाणं चउसुं वि गईसुं सम्ममिच्छाणं ।  
 मणुतिरियाणं सेसा जा जस्स य होइ संभविआ ॥३७६॥ [४३३]  
 तेरसहीणा चउरो पढमाइकमेण खवगाणं ॥ (४८६)  
 नव तित्थि अट्ट केवल्लि सत्ता पयडी अजोगिगुणठाणे ।  
 छासी तह सीई तिरिमणु अट्टत्तरि गइतसाणं च ॥ (४८७)  
 संवेहो भङ्गइ ।  
 अट्टावीसे बंधे अट्ट उ उदया उ संत दो ठाणा ।  
 अट्टासी चाणउई दुग दुग पत्तेय उदएसु १६ ॥३७७॥ (४८८) [४३४]  
 उणतीसबंधगाणं सामन्नेणं तु सत्त उदया उ ।  
 इगतीसं वज्जेत्ता तिरियाण न मणुयपाउग्गा ॥३७८॥ (४८९) [४३५]  
 दुविहोणुतीसबंधो मणुगइपाउग्गा तह सुराणं च ।  
 देवगईपाउग्गं मणुया बंधंति तित्थजुयं ॥३७९॥ (४९०) [४३६]

१ "तिन्नेव" उदया उ" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । २ "य" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् ।



इह पंचसु उदएसु तेणउई ६३ तहय होइ उणनवई ।  
 इगवीसे १ छर्वासे १ उणनवई संतएगाउ ॥३०॥ (४६१) [४३७]  
 कई भन्नइ ॥

इह आहारचउक्कं अविरइ[ए]पत्तो य उव्वलेमाणो ।  
 उव्वलइ कमेण तहा पलियासंखंमभागेण ॥३८१॥ (४६२) [४३८]  
 तित्थयरमंतकम्मी देवा मणुएसु चविउ उववण्णा ।  
 नाहारसंतकम्मं वंधाभावउ इह तेसिं ॥३८२॥ (४६३) [४३९]  
 इगवीसा छव्वीसा दुब्धि उ उदया सरीरअसमत्ते ।  
 उणतीसबंधगाणं सम्महिद्धीण मणुयाणं ॥३८३॥ (४६४) [४४०]  
 मण्यगईपाउग्गं सुरनेरइया य सम्महिद्धी य ।  
 अट्टासी वाणउई नियनियउदएसु दो ठाणा १२ ॥३८४॥ (४६४) [४४१]  
 एवं सुरनेरइया तित्थजुया तीसठाण वंधंति ।  
 तित्थाहारगसंता जेणं वंधि त्ति उववन्ना ॥३८५॥ (४६५) [४४२]  
 मणुगइजोगं तीमं सुरनेरइया उ तित्थजुयबंधे ।  
 तित्थाहारगसंता जेणं वंधे त्ति उववन्ना ॥ (४६५)  
 तेणवई उणनवई उदयं उदयं पडुच्च देवाणं ।१३॥  
 निरये नोमयसंता तेणं उणनवइ उदएसुं ॥३८६॥ (४६६) [४४३]  
 सोलस तह चउवीसा वारसठाणा उ तीसु वि कमेण ।  
 बावन्न संतठाणा अविरयसम्मस्स वंधेसुं ॥३८७॥ (४६७) [४४४]  
 त्तिअट्टुच्चउ त्ति गयं ॥४॥ (इति चतुर्थगुणस्थानके)

अहवीसा उणतीसा वंधा उदया उ चउर वेउव्वे ।  
 इगतीसतीसउदया सामन्नं देसविरयाणं ॥३८८॥ (४६८) [४४५]  
 पुव्वुत्तबंधमंगा उदयविगप्पा उ सरखगइ चरिया ।  
 संध्यणतहागिहया चोयालसयं तु पत्तेयं ॥३८९॥ (४६९) [४४६]  
 तीसोदयम्मि तिरिमणु इगतीसे तिरियदेसविरयाणं ।  
 १पणुउदयतिरिविउव्विय ५, चउरो मणुयाण४ इवकेवकं  
 ४४१ ॥३९०॥ (५००) [४४७]

ठक्पा—

उदयठाणा →	२५	२७	२८	२९	३०	३१
उच्चित्तिरि. →	१	१	१	५	१	०
वेउच्चिमणु० →	१	१	१	१	०	०
सा. तिरि. →	०	०	०	०	१४४	१४४
सा. मणु. →	०	०	०	०	१५४	० ४४१

इय संवेहो भङ्ग इ अट्टावीसा य तिविह वंधंति ।  
 मणुतिरियकम्मभूमग पलिभागिय देसविरया य ॥३९१॥ (५०१) [४४८]  
 छच्चेव उदय इत्थं दो दो ठाणाडसी य वाणउई ।  
 इगतीस न मणुएसुं बारस ठाणा उ उदएसु । ३९२॥ (५०२) [४४९]  
 तह देसविरयमणुया अट्टावीसा तित्थसहिय उणतीसा ।  
 तेणवई उणनवई पंचसु उदएसु पत्तेयं ॥ (५०३)  
 बारस तह दस सत्ता सच्चे बावीस देसविरयाणं ।  
 दुग छच्चत्ति न्ति गयं ॥५॥ (इति पञ्चमगुणस्थानके)  
 अब्भो उदयविसेसो सत्तय वेउच्चि तह य आहारे ।  
 चोयालसयं तेरस अट्टावन्नं सयं १५८ संखा ॥ (५०५)  
 दुगपणचत्ति न्ति गयं ॥६॥ (इति षष्ठगुणस्थानके)  
 चउचंधा अपमत्ते अट्टावीसाइ जाव इगतीसा ।  
 'इक्केक्कमंगमेसिं दो उदया तीसउणतीसा ॥३९३॥ (५०६) [४५०]  
 'इक्केक्कं च विउच्चिसु तह 'इक्केक्कं च हारगजईणं ।  
 चोयालसयं तीसे अट्टयालसयं तु पिंहेणं ॥३९४॥ (५०७) [४५१]  
 संवेहसंतसंखा दो दो उदया उ बंधि पत्तेयं ।  
 'इक्केक्क संतठाणं सच्चे अट्टेव उदएसुं ॥३९५॥ (५०८) [४५२]  
 तित्थाहारगसंता ष्हेउसमावा तमेव वंधंति ।  
 सम्मअपमत्तसंजय इक्केक्कं तेण उदएसु ॥३९६॥ (५०९) [४५३]

ठवणा—

बंधाणा→	२८		२६		३०		३१	
उदयठाणा →	२६	३०	२६	३०	२६	३०	२९	३०
सत्ताठाणा →	८८	८८	८९	८६	६२	९२	६३	६३

चउदुगचउत्ति गयं ॥७॥ (इति सप्तमगुणस्थानके)

बंधा जहाऽपमत्ते अपुच्चकरणि जसकित्तिपंचमिया ।  
 तीसुदओ तह भंगा ७२ पढमतिसंधयणसंभविया ॥३६७॥ (५१०) [४५४]  
 एगयरे संठाणे सरदुगखगईहिं होइ चउवीसा ।  
 पढमतिसंधयणहया वाहत्तरि भंग सन्वे ॥ (५११)  
 चउपढम संतठाणा अपुच्चकरणस्स एकउदयम्मि ।  
 एत्तो य नवरि वोच्छं जसकीत्ती बंधउदएसुं ॥३९८॥ (५१२) [४५५]  
 जसकित्तीए धंधे उदओ तीसन्ह चउर सत्ताओ ।  
 एवं सत्ताठाणा अट्टेव अपुच्चकरणम्मि ॥ (५१३)

एगएगचउ त्ति गयं ॥८॥ (इत्यष्टमगुणस्थानके)

एगोगमट्ट एयं वायरसुहुमाण दुण्ह पत्तेयं ।  
 जसकित्तिबंधु तीसण्ह उदउ तह संतठाणाइं ॥३९६॥ (५१४) [४५६]  
 चउपढमा उवसामग खवगा य पडुच्च वायरकसाए ।  
 तह तेरस खविएहिं चउरो खवगाण अट्टट्ट ॥४००॥ (५१५) [४५७]  
 एगोगमट्ट त्ति गयं ॥९-१०॥ (इति नवम-दशमगुणस्थानकयोः)

बंधोवरमे उवसंत खीण तीसण्ह उदय पत्तेयं ।  
 चउचउरसंतठाणा उवसमखीणम्मि पुव्वुत्ता ॥४०१॥ (५१६) [४५८]  
 सरखगइविवक्खेहिं चउरो चउवीस आगिई गुणिया ।  
 ते संघयणतिगेणं वाहत्तरि 'होति उवसंते ॥४०२॥ (५१७) [४५९]  
 सरखगइविवक्खेहिं चउरो चउवीस आगिई गुणिया ।  
 खीणम्मि भंगमंखा नेया पढमम्मि संघयणे ॥ (५१८)

(एग चउ त्ति ॥११-१२॥ इत्येकादश-द्वादशगुणस्थानकयोः)

केवलिसुजोगिसु अट्ट उ दो उदयठाण जहसंखं ।  
 दो दो संतेहाणा तित्थातित्थाण जोगिस्स ॥४०३॥ (५१९) [४६०]  
 जे चउरो इह संता आसी छावत्तरी य दो तिभि ।

सामञ्जकेवल्लिदुगं उणसी 'पणत्तरी दुन्नि ॥४०४॥ (५२०) [४६१]  
 पण पण उदएसु इहं संतडाणाइ वीस जोगिस्स ।  
 अज्जोगिकेवल्लिम्मी पगई नव अट्ट उदओ उ ॥४०५॥ (५२१) [४६२]  
 नवउदए दो संता तित्थजुया नव य संत इइ तिन्नि ।  
 अट्टोदयम्मि एए तित्थविहूणा य इय (६) छच्च ॥४०६॥ (५२२) [४६३]  
 (अट्ट चउ त्ति दुल्लक्कं ति य गयं ॥१३-१५॥ (इति त्रयोदश-चतुर्दशगुणस्थानकयोः)  
 चउतीससंतठाणा उवरयबंधम्मि सच्चउदएसु ।  
 मणियाउ विवरणा इह गुणठाणगगाहदुगनामे ॥४०७॥ (५२३) [४६४]  
 दोल्लक्कड्डचउक्कं इच्चाई मग्गणा उ चोइस वि ।  
 इह[य] इह सत्थयारेण तेसिं पि करेज्ज अणुसारा ॥४०८॥ (५२४) [४६५]  
 दोल्लक्कड्डचउक्कं पणनघएक्कारल्लक्क क्युदया ।  
 नेरइयाइसु संता ति पंच एक्कारस चउक्कं ॥सूत्रम्-५१॥ (५२५)

ठषणा—

जीवभेदा →	निरि.	तिरि.	मणु.	देव
बंधठाणा →	२	६	८	४
उदयठाणा →	५	६	११	६
सत्ताठाणा →	३	५	११	४

निरयगइ दुन्नि बंधा उणतीसा तीस तिरियमणुजोगा ।  
 मंगा इह पुच्चुत्ता संघयणतहागिगुणियाउ ॥ (५२६)  
 अट्टुत्तर छायाला उणतीसे दुन्ह तीसि जोयजुये ।  
 तह तीसे तित्थजुये मणुजोगे अट्ट मंगा उ ॥ (५२७)

ठषणा—

बंधठाणा →	२६	३०	(सर्व्वे) ↓
तिरिजोगा मं	४६०८	४६०८	(६२१६)
मणु जोगा मं०	४६०८	८	(४६१६)
			(१३८३२)

ठवणा—

बंधाणा→	२८		२९		३०		३१	
उदयठाणा →	२९	३०	२९	३०	२९	३०	२९	३०
सत्ताठाणा →	५८	५८	५९	५९	६२	६२	६३	६३

चउदुगचउत्ति गयं ॥७॥ (इति सप्तमगुणस्थानके)

बंधा जहाऽपमत्ते अपुव्वकरणि जसकित्तिपंचमिया ।  
 तीसुदओ तह भंगा ७२ पढमतिसंधयणसंभविया ॥३६७॥ (५१०) [४५४]  
 एगयरे संठाणे सरदुगखगईहिं होइ चउवीसा ।  
 पढमतिसंधयणहया वाहत्तरि भंग सव्वे ॥ (५११)  
 चउपढम संतठाणा अपुव्वकरणस्स एक्कउदयम्मि ।  
 एत्तो य नवरि वीच्छं जसकीत्ती बंधउदएसुं ॥३९८॥ (५१२) [४५५]  
 जसकित्तीए बंधे उदओ तीसन्ह चउर सत्ताओ ।  
 एवं सत्ताठाणा अट्ठेव अपुव्वकरणम्मि ॥ (५१३)

पणएगचउ त्ति गयं ॥८॥ (इत्यष्टमगुणस्थानके)

एगेगमट्ट एयं वायरसुट्टमाण दुण्ह पत्तेयं ।  
 जसकिच्चिबंधु तीसण्ह उदउ तह संतठाणाइं ॥३९६॥ (५१४) [४५६]  
 चउपढमा उवसामग खवगा य पडुच्च वायरकसाए ।  
 तह तेरस खविएहिं चउरो खवगाण अट्टट्ट ॥४००॥ (५१५) [४५७]

एगेगमट्ट त्ति गयं ॥९-१०॥ (इति नवम-वशमगुणस्थानकयोः)

बंधोवरमे उवसंत खीण तीसण्ह उदय पत्तेयं ।  
 चउचउरसंतठाणा उवसमखीणम्मि पुव्वुत्ता ॥४०१॥ (५१६) [४५८]  
 सरखगइविपक्खेहिं चउरो चउवीस आगिई गुणिया ।  
 ते संघयणतिणेणं वाहत्तरि 'होति उवसंते ॥४०२॥ (५१७) [४५९]  
 सरखगइविपक्खेहिं चउरो चउवीस आगिई गुणिया ।  
 खीणम्मि भंगमंखा नेया पढमम्मि संघयणे ॥ (५१८)

(एयं चउ त्ति ॥११-१२॥ इत्येकादश-द्वादशगुणस्थानकयोः)

केवलिसुजोगिजोगिसु अट्ट उ दो उदयठाण जहसंखं ।  
 दो दो संतठाणा तिथ्यातिथ्याण जोगिस्स ॥४०३॥ (५१९) [४६०]  
 जे चउरो इह संता आसी छावत्तरी य दो तिभि ।

सामन्त्रकेवलदुगं उणसी 'पणत्तरी दुन्नि ॥४०४॥ (५२०) [४६१]  
 पण पण उदएसु इहं संतट्ठाणाइ वीस जोगिस्स ।  
 अज्जोगिकेवलिम्मी पगई नव अट्ट उदओ उ ॥४०५॥ (५२१) [४६२]  
 नवउदए दो संता तित्थजुया नव य संत इइ तिन्नि ।  
 अट्टोदयम्मि एए तित्थविहूणा य इय (६) छच्च ॥४०६॥ (५२२) [४६३]  
 (अट्ट चच त्ति दुल्लक्कं ति य गयं ॥१३-१५॥ (इति त्रयोदश-चतुर्दशगुणस्थानकयोः)  
 चउतीससंतठाणा उवरयबंधम्मि सच्चउदएसु ।  
 मणियाउ विवरणा इह गुणठाणगगाहदुगनामे ॥४०७॥ (५२३) [४६४]  
 दोल्लक्कट्टुचउक्कं इच्चार्इ मग्गणा उ चोइस वि ।  
 सइ[य] इह सत्थयारेण तेसिं पि करेज्ज अणुसारा ॥४०८॥ (५२४) [४६५]  
 दोल्लक्कट्टुचउक्कं पणनवएक्कारल्लक्क वधुदया ।  
 नेरइयाइसु संता ति पंच एक्कारस चउक्कं ॥सूत्रम्-५१॥ (५२५)

ठषणा—

जीवभेदा →	निरि.	तिरि.	मणु.	देव.
बंधठाणा →	२	६	८	४
चव्यठाणा →	५	६	११	६
सत्ताठाणा →	३	५	११	४

निरयगइ दुब्धि बंधा उणतीसा तीस तिरियमणुजोग्गा ।  
 भंगा इह पुच्चुत्ता संघयणत्तहागिगुणियाउ ॥ (५२६)  
 अट्टुत्तर छायाला उणतीसे दुन्ह तीसि जोजुये ।  
 तह तीसे तित्थजुये मणुजोगे अट्ट मंगा उ ॥ (५२७)

ठषणा—

बंधठाणा →	२६	३०	(सर्वे) ↓
तिरिजोग्गा सं.	४६०८	४६०८	(६२१६)
मणु जोग्गा सं०	४६०८	८	(४६१६)
			(१३८३२)

तिरियगई छव्वन्धा तेवीसाई य तीसपज्जंता ।  
मंगा इह मिच्छसमा मणुगइ अट्टेव ओघुत्ता ॥ (५२८)

ठषणा—	बंधटाणा→	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	(सन्वे)
	तिरियबंधठाणमं.	४	२५	१६	६	६२४०	४६३३	०	०	(१३६२६)
	मणुयबंधठाणमं.	४	२५	१६	६	६२४०	४६३३	१	१	(१३६३७)

पणवीसा छव्वीसा उणतीसा तीस चउर सुग्ंधा ।  
आइदुगिगिदिवायरइयरे मणुतिरियपाउग्गा ॥ (५२९)  
पणवीसे अह मंगा छव्वीसे दुगुण आयवुज्जोए ।  
वायरएगिदिगया दोसु य नरयव्व उट्टंति ॥ (५३०)

ठषणा—

बंधटाणा	२५	२६	२६	३०	सन्वे ↓
तिरियजोगमं.	८	१६	४६०८	४६०८	(६२४०)
मणुयजोगमं	०	०	४६०८	८	(४६१६)
					(१३८५६)

दोळककठुचउक्कं ति गयं ॥ (इति नरकादिगतित्तुष्के नाम्नाो बन्धस्थानानि)  
इगवीसा पणवीसा सगवीसा अट्टवीस उणतीसा ।  
नेरइय पंच उदया एककेको भंगमेएसु ॥ (५३१)

ठषणा—

उदयठाणा→	२१	२५	२७	२८	२९
भंगा →	१	१	१	१	१

पण उदया एगिदिसु विगले सगले य छच्च पत्तेयं ।  
सामभतिरि विउच्चिय देवुदया पंच न य पढभो ॥ (५३२)  
बायाला छावट्टी इगविगले निययनिययउदएसु ।  
सगलेसु' छच्चुदया उणपन्न छच्चुरा पिंढे ॥ (५३३)  
छप्पन्न तिरिविउच्चिसु पिंढे पणसहससयरिजुयउदया ।  
तिरियगइ सव्वभंगा ठावणसिचं तु जंतइयं ॥ (५३४)

ठषणा	उदयठाणा →	२१	२२	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	(सन्धे) ↓
	एगिदिभं →	५	११	७	१३	६	०	०	०	०	४२
	विगलभं. →	६	०	०	९	०	६	६	१८	१२	६६
	सगल निग्भिं.	६	०	०	२८६	०	५७६	५७६	५७६	५७६	४६०६
	वेवन्धितिरि.	०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	५६

सामभमणुयउदया इगवीस छवीस तह य अहवीसा ।  
 उणतीसा तीसा तह छवीस दुउचरा पिंडे ॥ (५३५)  
 सेसा उ छच्च ठाणा केवलिआहार तह विउव्वाणं ।  
 अह सत्तरा पणतीसा मंगा पुव्वुत्त मणुउदए ॥ (५३६)

ठषणा—

उदयठाणा →	२०	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	६	८	सन्धे मंगा ↓
मणुमंगं →	०	६	०	२८६	०	५७६	५७६	११५२	०	०	०	२६०२
आहारमंगं →	०	०	१	०	१	२	२	१	०	०	०	७
सामन्नके →	१	०	०	म. ६	०	म. १२	म. १२	म. २४	०	०	१	शेष ० २
तित्थयरं →	०	१	०	०	१	०	१	१	१	१	०	६
वेवन्धिं	०	०	८	०	८	९	९	९	०	०	०	३५

इगवीसा पणवीसा सत्तावीसाइ जाव तीसुदओ ।  
 छच्चुदया देवेसुं मंगा चउसट्ठि सन्धेवि ॥ (५३७)

ठषणा—

उदयठाणा →	२१	२५	२७	२८	२९	३०
उदयमंगा →	८	८	८	१६	१६	८
सन्धेमंगा	६४॥					



तिरियगई छव्वन्धा तेवीसाई य तीसपज्जंता ।

भंगा इह मिच्छसमा मणुगइ अट्टेव ओघुत्ता ॥ (५२८)

ठवणा—	बंधट्टाणा→	२३	२४	२६	२८	२९	३०	३१	१	(सञ्चे)
	तिरियबंधठाणभं.	४	२५	१६	६	६०४०	४६३३	०	०	(१३६२६)
	मणुयबंधठाणभं.	४	२५	१६	६	६०४८	४६३३	१	१	(१३६३७)

पणवीसा छव्वीसा उणतीसा तीस चउर सुग्ंधा ।

आइदुगिगिदिवायरइयरे मणुतिरियपाउग्गा ॥ (५२९)

पणवीसे अह भंगा छव्वीसे दुगुण आयवुज्जोए ।

वायरएगिदिगया दोसु य नरयव्व उट्टंति ॥ (५३०)

ठवणा—

बंधट्टाणा	२५	२६	२६	३०	सञ्चे ↓
तिरियजोग्गभं.	८	१६	४६०८	४६०८	(६२४०)
मणुयजोग्गभं	०	०	४६०८	८	(४६१६)
					(१३८५६)

दोछक्कट्टुचउक्कं ति गयं ॥ (इति नरकादिगतिसत्तुष्के नाम्नो बन्धस्थानानि)  
इगवीसा पणवीसा सगवीसा अट्टवीस उणतीसा ।

नेरइय पंच उदया एक्केको भंगमेएसु ॥ (५३१)

ठवणा—

उदयठाणा—	२१	२५	२७	२८	२९
भंगा →	१	१	१	१	१

पण उदया एगिदिसु विगले सगले य छच्च पत्तेयं ।

सामन्नतिरि विउव्विय देवुदया पंच न य पढमो ॥ (५३२)

वायाला छावट्टी इगविगले निययनिययउदएसु ।

सगलेसुं छच्चुदया उणपन्न छल्लुत्तरा पिंहे ॥ (५३३)

छप्पन्न तिरिविउव्विसु पिंहे पणसहससयरिजुयउदया ।

तिरियगइ सव्वभंगा ठावणसिचं तु जंतइयं ॥ (५३४)

ठषणा	उदयठाणा →	२१	२२	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	(सर्वे) ↓
	एगिदिभं →	५	११	७	१३	६	०	०	०	०	४२
	विगलमं. →	६	०	०	९	०	६	६	१८	१२	६६
	सगल निग्भिं.	६	०	०	२८	०	५७६	५७६	५७६	५७६	४६०६
	वेरन्वितिरि.	०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	५६

सामन्नमणुयउदया इगवीस छवीस तह य अहवीसा ।  
 उणतीसा तीसा तह छवीस दुउचरा पिंडे ॥ (५३५)  
 सेसा उ छच्च ठाणा केवलिआहार तह विउन्वारण ।  
 अह सत्ता पणतीसा मंगा पुब्बुत्त मणुउदए ॥ (५३६)

ठषणा—

उदयठाणा →	२०	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	६	८	सव्व मंगा ↓
मणुमंगं →	०	६	०	२८	०	५७६	५७६	११५२	०	०	०	२६०२
आहारमंगं →	०	०	१	०	१	२	२	१	०	०	०	७
सामन्नके →	१	०	०	म. ६	०	म. १२	म. १२	म. २४	०	०	१	शेषं २
तित्थयरं →	०	१	०	०	१	०	१	१	१	१	०	६
वेरन्विं	०	०	८	०	८	१	१	१	०	०	०	३५

इगवीसा पणवीसा सत्तावीसाइ जाव तीसुदओ ।  
 छच्चुदया देवेसुं मंगा चउसट्ठि सव्वेवि ॥ (५३७)

ठषणा—

उदयठाणा →	२१	२५	२७	२८	२९	३०
उदयमंगा →	८	८	८	१६	१६	८
सव्वमंगा	६४॥					

पण नव एकार छक्क ति गयं ॥ (इति नरकादिगतिचतुष्के नाम्न उदयस्थानानि)  
बाणउई अट्टासी उणनवई निरय तिन्रि संताओ ।

तिरियगइ पंच संता सामन्नेणं तु इय एवं ॥ (५३८)

बाणउई अट्टासी छलसी अट्टत्तरी य चत्तारि ।

तह पंचमिया आसी अट्टत्तरिचज्ज मणुएसु ॥ (५३९)

मणुयसत्ताठाणा— ६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७६, ७५, ६, ८ ।

देवगइ चउर संता तिणवइ बाणवइ तह य अट्टासी ॥

उणनवई संत भवे 'इओ(त्तो) संवेहु एएसु ॥ (५४०)

(तिपंचएक्कारसचउक्कं ति गयं ॥ इति गनिचतुष्के नाम्नः सत्तास्थानानि)

(अथ गतिमार्गणाचतुष्के नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानसंबंधः)

उणतीसे बंधम्मी पंचसु उदएसु निरय दुगसंतं ।

बाणवई अट्टासी तिरिजुगो संतया दस उ ॥ (५४१)

तह तीसे उओए उणतीसे तह य मणुयजुगम्मि ।

दस दस संतट्टाणा उणनवई दोसु पणपणगं ॥ (५४२)

तित्थयरसंतकम्मी मिच्छदिट्ठी उ अंतमुहुकालं ।

उणतीसबंध संतं उणनवइ नेरइयउदएसुं ॥ (५४३)

तह तीसबंध एवं सम्मदिट्ठी उ निरयबंधेसुं ।

आयमचउअंतमुहु चरिमे निरयाइयं संतं ॥ (५४४)

इय संवेहो वुत्तो नारयबंधुदयसंत चालीसं ।

तिरियगई संवेहो इय अणुसारेण वोच्छामि ॥ (५४५)

ठषणा—

बंधठाणे ८६, उदएसु संतठाणा तु एवं सठ्ठा २५॥	बंधठाणे ३०, उदएसु संतठाणा									
उदयठाणा	२१	२५	२७	२८	२९	२१	२५	२७	२८	२९
सगलतिरिजुगो	६२	६२	९२	६२	६२	९२	६२	६२	६२	९२
	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८
मणुयगइजुगो	२	२	२	२	२	८९	८९	८९	८९	८९
तित्थयरसंतकम्मी	१	१	१	१	१	एवं सठ्ठेवि १५॥				

तिरियगइसंवेहो मज्झ-

पणबंधा हिट्टसमा बंधे बंधे य नव उदयठाणा ।

आइमचउ पणसंता चरिमा नियमा उ चउसंता ॥ (५४६)

चालीससंतठाणा बंधे बंधे य ह्येति पत्तेयं ।  
 दुभिसय संतमेया अट्टावीसम्मि पुण एए ॥ (५४७)  
 अट्टावीसे बंधे उदयट्टाणा उ अट्ट पुण्वुत्ता ।  
 इह कम्मभोगभूमियवेउन्वियतिरियमासज्ज ॥ (५४८)  
 दो दो संतट्टाणा अट्टसु उदएसु ह्येति पत्तेयं ।  
 नवरं दोअंतिल्लिसु छलसी अट्टार सन्वेवि ॥ (५४९)

मणुयगइसंवेहमाह-

मणुउदया पुण सत्त उ उदए उदए य चउर संताउ ।  
 षाणवई अट्टानी छलसी तहऽसीइ तुरिया उ ॥ (५५०)  
 नवरं दो वेउन्विय दो दो पढमाउ संतमेया उ ।  
 षाणउई अट्टासी पणवीसे तह य सगवीसे ॥ (५५१)  
 संवेहो बंधेसुं बंधे बंधे य सत्त सन्वुदया ।  
 चउवीस संतठाणा पंचसु बंधेसु पत्तेयं ॥ (५५२)  
 पढमतिगबंधु मिच्छे उणतीसा तीस सम्म तह मिच्छे ।  
 सन्वेसु संतठाणा चउवीसे पंच गुणिया उ ॥ (५५३)  
 तित्थयरसंतियाणं तिणवइ उणनवइ दुभि उदएसु ।  
 उणतीस बंधठाणे सत्तसु उदएसु पत्तेयं ॥ (५५४)  
 अट्टावीसे बंधे सत्तसु उदएसु संतसोलसगं ।  
 तीसे तह इगतीसे षाणउई तह य तेणउई ॥ (५५५)  
 नसक्किच्चिबंध अट्ट उ उवरयबंधम्मि तीस पुण्वुत्ता ।  
 नउयसयसंतसंखा मणुयगई नामसंवेहो ॥ (५५६)

(देवगइसंवेहमाह-)

देवगई संवेहो बंधे बंधे य सन्वुदयठाणा ।  
 षाणउई अट्टासी दो दो संता उ उदएसुं ॥ (५५७)  
 तित्थयरसंतिया जे मणुयगईजोगतीस बंधंता ।  
 तेणउई उणनवई छसुंवि उदएसु पत्तेयं ॥ (५५८)  
 तेणवइसंतकम्मं पलियासंखंसआउवोलीणे ।  
 न षडइ देवगईए आहारचउक्क उन्वलइ ॥ (५५९)  
 केसिंचि मए एवं आहारुव्वलिय सचरमखंडस्स ।  
 संता अहिया विहु तेणवई तेण षडुकालं ॥ (५६०)

पण नव एकार छक्क ति गयं ॥ (इति नरकादिगतिचतुष्के नाम्न उदयस्थानानि)  
 बाणउई अट्टासी उणनवई निरय तिभि संताओ ।  
 तिरियगइ पंच संता सामन्नेणं तु इय एवं ॥ (५३८)  
 बाणउई अट्टासी छलसी अट्टत्तरी य चत्तारि ।  
 तह पंचमिया आसी अट्टत्तरिवज्ज मणुएसु ॥ (५३९)

मणुयसत्ताठाणा— ६३, ६२, ८६, ८८, ८६, ८०, ७६, ७६, ७५, ६, ८ ।

देवगइ चउर संता तिणवइ बाणवइ तह य अट्टासी ॥  
 उणनवई संत भवे 'इओ(त्तो) संवेहु एएसु ॥ (५४०)  
 (तिपंचएक्कारसचउक्कं ति गयं ॥ इति गनिचतुष्के नाम्नः सत्तास्थानानि)  
 (अथ गतिमार्गणाचतुष्के नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानसंवेध.)

उणतीसे बंधम्मी पंचसु उदएसु निरय दुगसंतं ।  
 बाणवई अट्टासी तिरिजुग्गे संतया दस उ ॥ (५४१)  
 तह तीसे उओए उणतीसे तह य मणुयजुग्गम्मि ।  
 दस दस संतट्टाणा उणनवई दोसु पणपणगं ॥ (५४२)  
 तित्थयरसंतकम्मी मिच्छदिट्ठी उ अंतमुहुकालं ।  
 उणतीसबंध संतं उणनवइ नेरइयउदएसुं ॥ (५४३)  
 तह तीसबंधि एवं सम्मदिट्ठी उ निरयबंधेसुं ।  
 आयमचउअंतमुहु चरिमे निरयाइयं संतं ॥ (५४४)  
 इय संवेहो वुचो नारयबंधुदयसंत चालीसं ।  
 तिरियगई संवेहो इय अणुसारेण वोच्छामि ॥ (५४५)

ठषणा—

बंधठाणे २६, उदएसु संतठाणा तु एषं सठ्वा २५॥						बंधठाणे ३०, उदएसु संतठाणा				
उदयठाणा	२१	२५	२७	२८	२९	२१	२५	२७	२८	२९
सगलतिरिजुग्गे	६२ ८८	६२ ८८	९२ ८८	६२ ८८	६२ ८८	९२ ८८	६२ ८८	६२ ८८	६२ ८८	९२ ८८
मणुयगइजुग्गे	२	२	२	२	२	८९	८६	८९	८६	८६
तित्थयरसंतकम्मी	१	१	१	१	१	एषं सठ्ठवेधि १५॥				

तिरियगइसंवेहो मअइ-

पणबंधा हिट्टसमा बंधे बंधे य नव उदयठाणा ।

आइमचउ पणसंता चरिमा नियमा उ चउसंता ॥ (५४६)

चालीससंतठाणा बंधे बंधे य ह्येति पत्तेयं ।  
 दुभिसय संतमेया अट्टावीसम्मि पुण एए ॥ (५४७)  
 अट्टावीसे बंधे उदयट्टाणा उ अट्ट पुव्वुत्ता ।  
 इह कम्ममोगभूमियवेउच्चियतिरियमासज्ज ॥ (५४८)  
 दो दो संतट्टाणा अट्टसु उदएसु ह्येति पत्तेयं ।  
 नवरं दोअंतिल्लिसु छलसी अट्टार सन्वेवि ॥ (५४९)

मणुयगइसंवेहमाह-

मणुउदया पुण सत्त उ उदए उदए य चउर संताउ ।  
 षाणवई अट्टानी छलसी तहऽसीइ तुरिया उ ॥ (५५०)  
 नवरं दो वेउच्चिय दो दो पढमाउ संतमेया उ ।  
 षाणउई अट्टासी पणवीसे तह य सगवीसे ॥ (५५१)  
 संवेहो बंधेसु बंधे बंधे य सत्त सव्वुदया ।  
 चउवीस संतठाणा पंचसु बंधेसु पत्तेयं ॥ (५५२)  
 पढमतिगबंधु मिच्छे उणतीसा तीस सम्म तह मिच्छे ।  
 सन्वेसु संतठाणा चउवीसे पंच गुणिया उ ॥ (५५३)  
 तित्थयरसंतियाणं तिणवइ उणनवइ दुभि उदएसु ।  
 उणतीस बंधठाणे सत्तसु उदएसु पत्तेयं ॥ (५५४)  
 अट्टावीसे बंधे सत्तसु उदएसु संतसोलसगं ।  
 तीसे तह इगतीसे षाणउई तह य तेणउई ॥ (५५५)  
 जसकित्तिबंध अट्ट उ उवरयबंधम्मि तीस पुव्वुत्ता ।  
 नउयसयसंतसंखा मणुयगई नामसंवेहो ॥ (५५६)

(देवगइसंवेहमाह-)

देवगई संवेहो बंधे बंधे य सव्वुदयठाणा ।  
 षाणउई अट्टासी दो दो संता उ उदएसु ॥ (५५७)  
 तित्थयरसंतिया जे मणुयगईजोगतीस बंधंता ।  
 तेणउई उणनवई छसुंवि उदएसु पत्तेयं ॥ (५५८)  
 तेणवइसंतकम्मं पलियासंखंसआउवोलीणे ।  
 न घडइ देवगईए आहारचउक उव्वलइ ॥ (५५९)  
 केसिंचि मए एवं आहारुव्वलिय सचरमखंडस्स ।  
 संता अहिया विहु तेणवई तेण बहुकालं ॥ (५६०)

दोषकट्टचउक्कं	इच्चाइट्टाण	गइचउक्कस्स		
बंधोदयसवियप्पा	संतट्टाणा	य इय बुत्ता		(५६१)
इय अणुसारेण	तहा	नेया इह मग्गणाण	तेरससु	
बंधोदयसंतगया	भेयवियप्पाउ	सव्वत्थ		(५६२)
इय एउ सुमरणत्थं	टिप्पणमित्तं	पि किंचि	उद्धरियं	
लक्खणछंदवियारो	न य कायव्वो	य को पि इहं		(५६३) [६६६]
इत्थ य सुत्तविवन्नं	मइमोहा	किंचि उद्धरिय	होज्जा	
सोहितु	जाणमाणा	मज्झ य मिच्छुककडं	होउ	(५६४) [४६७]
सिरिजिणवल्लहसूरी	आसी	सूरुव्व	भुवणविक्खाओ	
तस्सेव	विशेयणं	उद्धरियं	रामदेवेणं	(५६५)

॥ इति श्रीरामदेवगणिकृतं सप्ततिकाटिप्पनकं समाप्तम् ॥



इगिविगलिंदिय सगले पण पंच य अट्टु बंधठाणाणि ।  
 पण छवकेकारुदया पण पण धारसगसंताणि ॥सूत्रम्-५२॥  
 इय कम्मपगळिठाणाणि सुट्टु बंधुदयसंतकम्मंसा ।  
 गइआइएहि अट्टसु चउप्पगारेण नेयाणि ॥सूत्रम्-५३॥  
 गइ १ईदिए २य काए ३जोए ४वेए ५कसाय ६नाणे य ।  
 संजम ८ वंसण ९ लेसा १० भव ११ सम्मे १२ सन्नि  
 १३ आहारे १४ ॥सूत्रम्-०॥  
 संतपयपरूषणया १ दव्वपमाणं च २ खेत ३ फुसणा य ।  
 कालं ५ तरं च ६ भावो ७ अप्पाबहूयं च ८ दाराइं ॥सूत्रम्-०॥  
 ×उदयस्सुदीरणस्स य सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।  
 मुत्तूणं ईयालं सेसाणं सव्वपयडोणं ॥सूत्रम्-५४॥  
 ×नाणंतरायदसगं १० वंसण नव ९ वेयणिज्ज मिच्छत्तं ।  
 सम्मत्त १ लोम १ वेया ३ उयाणि ४नवनाम ९ उच्चं १ च ॥सूत्रम्-०॥  
 मणुयगइजाइतसबायरं च पज्जत्तसुभगमाइज्जं ।  
 जसकित्ती तिथ्यगरं नामस्स ह्वंति नव एया ॥सूत्रम्-०॥  
 तिथ्यराहारगविरहिया उ अज्जेइ सव्वपयडोओ ।  
 मिच्छत्तवेयगो सासणो वि उगवीससेसाओ ॥सूत्रम्-५६॥  
 छायालसेस मीसो अविरयसम्मो तियालपरिसेसं ।  
 तंषन्न देसविरओ विरओ सगवन्नसेसाओ ॥सूत्रम्-५७॥  
 उगुसट्टिमप्पमत्तो बंइ देवाउगस्स इयरो वि ।  
 अट्टावन्नमपुव्वो छप्पन्नं धावि छव्वीसं ॥सूत्रम्-५८॥  
 बावीसा एगूणं बंधइ अट्टारसत्ति अनियट्टो ।  
 सत्तर सुट्टुमसरागो, सायममोहो सजोगि ति ॥सूत्रम्-५९॥

× उदयस्सु गाहा ॥ नाणंतरायगाहा ॥ निहापणगाणं सरीरपञ्जत्तीए पञ्जयाणं वीयसमयाउ आढ-  
 वित्तु उदओ इषइ उदीरणाए विणा ताव जाव इंदियपञ्जत्तीए पञ्जत्तगु ति तओ वीयसमयपमिइ दोवि  
 हुंति ति ॥ मिच्छत्तस्स पढमसम्मत्तमुप्पइतेण अंतरकरणं कयं तत्थ पढमठिईअ आवलियसेसाए  
 उदीरणा नत्थि उदओ चेव ॥ सम्मत्तस्स बावीससंतकम्मे आवलियसेसे उदओ चेव ॥ अहवा  
 उवसमसेठिं पडिबज्जंतस्स अंतरकरणे कए पढमठिईए आवलियसेसाए उदओ चेव ॥ तिण्हं वेयाणं  
 जेण वेपण सेठिं पडिबज्जंतस्स अंतरकरणे कए पढमठिईए आवलियासेसाए उदओ चेव ॥



एसो उ धंघसामित्तोघो गह्याइएसु वि तहेव ।  
 ओहाओ साहिज्जा जत्थ जहा पयडिसव्भावो ॥सूत्रम्-६०॥  
 तित्थयरदेवनिरयाउयं च तिसु तिसु गईसु बोधवं ।  
 अवसेसा पयडोओ ह्वंति सव्वासु वि गईसु ॥सूत्रम्-६१॥  
 पढमकसायचउक्कं दंसणतिगसत्तया वि उवसंता ।  
 अविरयसम्मत्ताओ जावऽनियट्टित्ति नायव्वा ॥सूत्रम्-६२॥  
 सत्तड नव य पन्नरस सोलस अट्टारसेव इगुवीसा ।  
 पगाहिदुचउवीसा पणवीसा धायरे जाण ॥सूत्रम्-०॥  
 सत्तावीसं सुद्धमे अट्टावोसं वि मोहपयडोओ ।  
 उवसंतवीयरगे उवसता हुंति नायव्वा ॥सूत्रम्-०॥  
 पढमकसायचउक्कं एत्तो मिच्छत्तमोससम्मत्तं ।  
 अविरयसम्मे देसे 'पमत्तअपमत्त खीयंति ॥सूत्रम्-६३॥  
 अनियट्टिधायरे धीणगिद्धित्तिगनिरयतिरियनामाउ ।  
 संखिज्जइमे सेसे तप्पाओगा उ खीयंति ॥सूत्रम्-०॥  
 एत्तो हणइ कसायड्ढगं पि पच्छा णपुंसगं इत्थो ।  
 तो णोकसायल्लक्कं पि लुहइ संजलणकोहम्मि ॥सूत्रम्-०॥  
 पुरिसं कोहे कोहं माणं माणं च लुहइ मायाए ।  
 मायं च लुहइ लोमे लोमं सुद्धमं पि तो हणइ ॥सूत्रम्-६४॥  
 खीणकसायदुचरिमे निहं पयलं च हणइ छउमत्थो ।  
 आवरणमंतराए छउमत्थो चरिमसमयम्मि ॥सूत्रम्-०॥  
 संभिन्नं पासंतो लोगमलोगं य सव्वधो सव्वं ।  
 तं नत्थि जं न पासइ भूयं भव्वं भविस्सं य ॥सूत्रम्-०॥  
 देवगइसहगयाओ दुष्परिमसमयभविस्सि खीयंति ।  
 सविवागेयरनामा नीयागोयंपि तत्थेव ॥सूत्रम्-६५॥  
 अन्नयरवेयणिज्जं मणुयाऊ उच्चगोय नामे य ।  
 वेएइ अजोगिज्जिणो उक्कोस जहन्न एकारं ॥सूत्रम्-६६॥  
 मणुयगइजाइतसधायरं च पज्जत्तसुभगमाएज्जं ।  
 जसक्खि तित्थयरं नामस्स ह्वंति नव एया ॥सूत्रम्-६७॥

तच्चाणुपुब्बिसहिया तेरस भवसिद्धियस्स चरिमम्मि ।  
 सन्तंसगमुक्कोसं जहन्नयं धारस हवन्ति ॥सूत्रम्-६८॥  
 मणुयगइसहगयाओ भवखित्तविवागजीववागत्ति ।  
 वेयणिअन्नयरुच्चं ष चरिमसमयम्मि खीयंति ॥सूत्रम्-६९॥  
 अह सुच्चिरसथलजयसिहरमरुयनिरुवमसहावसिद्धिसुहं ।  
 अणिहणमन्वावाहं तिरयणसारं अणुहवंति ॥सूत्रम्-७०॥  
 दुरह्मिगमणिउण परमत्थरुइलबहुभंगदिट्ठिवायाओ ।  
 अत्था अणुसरियन्वा बंधोदयसंतकम्माणं ॥सूत्रम्-७१॥  
 जो जत्थ अपट्ठिपुत्तो अत्थो अप्पागमेण बद्धोत्ति ।  
 तं खमिऊण बहुसुया पूरेऊणं परिकर्हितु ॥सूत्रम्-७२॥  
 गाहृग्गं सयरीए चंदमहत्तरयथाणुसारीए ।  
 टीकाएँ नियमियाणं पग्गणा होइ नउईओ ॥सूत्रम्-०॥

॥ सप्ततिका समाप्ता ॥



---

इति

श्रीप्राचीनाचार्यप्रणीते

श्रीसप्ततिकाशिक्षे षष्ठे कर्मग्रन्थे

श्रीरामदेवगणिविरचितं

दृष्टनकं समाप्तम्

---

॥ ॐ ह्रीं श्रीं अहं श्रीशंखेश्वरपार्वनाथाय नमः ॥

न्यायाम्मोनिधिः श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदिः श्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

कर्मसाहित्यनिष्णातः श्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवविरचितं

# सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

( अपरनाम—सार्धशतकप्रकरणम् )

श्रीमद्रामदेवगणिकृतटिप्पनकेन विराजितम् ॥



॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

सिद्धत्यसुखं नमिउं सुहृत्सुखवियारटिप्पणं किञ्चि ।

सुगुरुवपुसेण अहं मणामि सरणत्थमप्पस्स ॥

तत्थ पगरणकारो मंगलामिधेयाणं पडिपायणनिमित्तं इमां गाहामाह—

मयलंतरारिवीरं वंदिय वरनाणलोयणं वीरं ।

वोच्छं जहासुयमहं कम्माइवियारसारलवं ॥१॥

सयला=सव्वे अंतरा=कायमज्जसवचिणी जे अरिणो=वेरिणो केवलनाणाइगुणपरमपाण-  
घायगत्तेण, अन्नाणरागदोसकोहमाणमायालोमाइणो, तेसिं वीरो=सूरो, जहा वीरपुत्तिसो  
कोइ पभूयवलजुत्तो वेरिणो निज्झिणाइ अप्पपरकम्मेण, तहा भगवया वि ते अंतरवेरिणो  
अन्नाणई या निज्झिया इइ कट्टू सयलंतरारिवीरो, तं, वंदिय=पणमिय वीरं=चरमत्तित्थयरं उत्तर-  
पण संबंधो । तहा 'वरनाणलोयणं' ति, वरे=प्रधाने अशेषाऽऽवरणकयात्, नाणं=केवलनाणं  
लोयणं=केवलदंसणं च, "लोइ दर्शने" इति वचनात्, वरनाणलोयणो जस्स, तं तहा,  
वोच्छं=मणिस्सामि, कहं ? जहासुयं=सुयाणुसारेण 'अहं' ति, अप्पनिहेसो, किं  
मणिहिसि ? कम्माणि वक्खमाणाणि । आइसहाओ गुणसेट्ठि-पुग्गलपरावचाइया । तेसिं  
वियारो=पन्नवणा, तस्स सारो=पहाणो अहो, तस्सेव लओ=अंसो, तं वोच्छामिच्चि संबंधः ॥१॥

इयाणि पदमं ताव कम्मं परूवेइ—

कीरइ जिएण हेअहि पयइठिहरसपएसओ जं तं ।

मूलुत्तरुट्ट अडवन्नसयपभेयं भवे कम्मं ॥२॥

कीरइ=निष्पाइज्जइ, जीवेण=संसारिणा 'हेअहि' त्ति मिच्छत्त५-अविरइ१२-कसाय-  
२५-जोगे१५हिं वंधहेअहिं चउहिं कम्मं वज्झइ । तं च कम्मवग्गणाहिं कज्जलसमुग्गउच्च  
निचिओ लोगो ते य कम्मत्ताए जीवेण गहिया कम्मंति वुच्चंति । जओ वुत्तं—  
“जीवन्त्वसायाओ कम्मत्ता पोग्गल। परिणमति । पुग्गलकम्मनिमित्तं जीवो वि तहेव परिणमइ ॥”

तं च चउविहं, पगइबंधो ठिइबंधो अणुभागबंधो पएसबंधो । तत्थ आईए पगइबंधो उदिट्ठो ।  
तं पुण दुविहं, मूलपगइविसयं उत्तरपगइविसयं च । मूलपगइविसयं अट्टविहं । उत्तरपगइ-  
विसयं अडवन्नसयपभेयं ॥२॥

मूलपगइणं नामाणि एक्केक्काए मूलपयडीए उत्तरपयडिसंखं च दंसेइ—

दंसण १ नाणा २ वरणंतराय ३ मोहा ४ उ ५ गोय ६ वेयणियं ७ ।

नामं ८ च नव १ पण २ पण ३ ऽट्टवीस ४ चउ ५ दु ६ दु ७ बियालविहं ८ ॥३॥

दंसणाइपयाणं नवाइसंखाए सह जहसंखं संबंधो कायच्चो । तं जहा—दंसणावरणं  
नवविहं १, नाणावरणं पंचविहं २, अंतराइयं पंचविहं ३, मोहणीयं अट्टावीसविहं ४,  
आउयं चउविहं ५, गोयं दुविहं ६, वेयणियं दुविहं ७, नामं बायालीसविहं ८ ॥३॥

सव्वासिं मूलपयडीणं उत्तरपयडिनामाणि दंसेइ—

नयणेयरोहिकेवलदंसणआवरणयं भवइ चउहा ।

निहापयलाहि छहा निहाइदुरुत्तथीणद्धी ॥४॥

नयणं ति चक्खुदंसणं, इयरं ति अचक्खुदंसणं, तं पुण चत्तारि इंदियाइं चक्खुवज्जाइं,  
मणो य, आवरणसहो पत्तेयं संबज्झइ, तओ चक्खुदंसणावरणं १, अचक्खुदंसणावरणं २,  
ओहिदंसणावरणं ३, केवलदंसणावरणं ४, निहा ५, पयला ६, निहाइदुरुत्तति, निहानिहा ७,  
आइसहाओ पयलापयला ८, थीणद्धि ९, त्ति ॥४॥

नाणावरणं महसुयओहिमणोनाणकेवलावरणं ।

विग्घं दाणे लाभे भोगुवभोगेसु विरिए य ॥५॥

नाणावरणं पंचविहं । महनाणावरणं, सुयनाणावरणं, ओहिनाणावरणं, मणपज्जव-  
नाणावरणं, केवलनाणावरणं । विग्घं ति अंतरायकम्मं पंचहा । दाणंतराइयं, लाभंतराइयं,  
भोगंतराइयं, उपभोगंतराइयं, वीरियंतराइयं ॥५॥

सोलसकसाय-नवनोकसाय-दंसणतिगं ति मोहणियं ।

निरयतिरिनरसुराऊ नीउच्चं सायमस्सायं ॥६॥

कसाया अणंताणुबंधिणो कोहमाणमायालोभा चत्तारि, एवं अपच्चक्खाणावरण ४,  
पच्चवख्खवरण ४, संजलण ४, एए चत्तारि चउक्का सोलस । नव नोकसाया, पुरिसवेओ,  
इत्थीवेओ, नपुंसगवेओ, हासं, रई, अरई, सोगो, मयं, दुगुंछत्ति । दंसणतिगं ति, मिच्छत्तं,  
सम्मामिच्छत्तं, सम्मत्तं, मोहणीयं अट्टावीसविहं ।

निरियाऊ तिरिवाऊ मणुयाऊ देवाऊ त्ति, आउकम्मं चउब्भेयं । नीयागोयं उच्चा-  
गोयं ति, गोयं दुविहं । सायावेयणियं असायावेयणियं ति, वेयणियं दुविहं ॥६॥

गइ १ जाइ २ तणु ३ उवगा ४ बंधण ५ संघायणाणि ६ संघयणा ७ ।

संठाण ८ वन्न ९ गंध १० रस ११ फास १२ अणुपुव्वि १३ विट्ठगगई १४ ॥७॥

पिंडपयडि त्ति, चउदस परघा १ उज्जोय २ आयवु ३ स्सायं ४ ।

अगुरुलहु ५ तित्थ ६ निमिणो ७ वघाय ८ मिय अट्ट पत्तेया ॥८॥

गइनामं १, जाइनामं २, सरीरनामं ३, अंगोवंगनामं ४, बंधणनामं ५, संघायनामं ६,  
संघयणनामं ७ संठाणनामं ८, वन्ननामं ९, गंधनामं १०, रसनामं ११, फासनामं १२, अणु-  
पुव्विनामं १३, विहायगइनामं ॥१४॥ पिंडपयडि त्ति, त्ति, पिंडो=त्रहुपयडिसमुदाओ,  
पिंडपहाणा पगईओ पिंडपगईओ चउदस=चउदससंखाओ, एएसि चउदसण्हं पयडिभेयाणं  
त्ति त्ति गब्भत्थो । परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, ऊसासनामं, अगुरुलहुनामं,  
तित्थयरनामं, निम्माणनामं, उवघायनामं, एए अट्ट पत्तेया, पडिभेयाभावाओ नापि  
सविवक्खाओ वक्खमाणा इव ॥७-८॥ पिंडपयडीओ पत्तेयपयडीओ य दंसियाओ ।

इयाणि सविवक्खाओ पगईओ दंसेह—

तसवायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।

सुसराइज्ज जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

इयाणि पदमं ताव कम्मं परूवेह—

कीरइ जिएण हेऊहि पयइठिइरसपएसओ जं तं ।

मूलुत्तरुट्ट अडवन्नसयपभेयं भवे कम्मं ॥२॥

कीरइ=निष्ठाइज्जइ, जीवेण=संसारिणा 'हेऊहि' त्ति मिच्छत्त५-अविरइ१२-कसाय-  
२५-जोगे१५हिं बंधहेऊहिं चउहिं कम्मं वज्झइ । तं च कम्मवग्गणाहिं कज्जलसम्यग्गउव्व  
निचिओ लोगो ते य कम्मत्ताए जीवेण गहिया कम्मंति बुच्चंति । जओ बुत्तं—  
“जीवज्झवसायाओ कम्मत्ता पोग्गला परिणमंति । पुग्गलकम्मनिमित्तं जीवो वि तहेव परिणमइ ॥”

तं च चउविहं, पगइबंधो ठिइबंधो अणुभागबंधो पएसबंधो । तत्थ आईए पगइबंधो उइट्टो ।  
तं पुण दुविहं, मूलपगइविसयं उत्तरपगइविसयं च । मूलपगइविसयं अट्टविहं । उत्तरपगइ-  
विसयं अडवन्नसयपभेयं ॥२॥

मूलपगइणं नामाणि एक्केक्काए मूलपयहीए उत्तरपयडिसंखं च दंसेह—

दंसण १ नाणा २ वरणंतराय ३ मोहा ४ उ ५ गोय ६ वेयणियं ७ ।

नामं ८ च नव १ पण २ पण ३ ऽट्टवीस ४ चउ ५ दु ६ दु ७ बियालविहं ८ ॥३॥

दंसणाइपयाणं नवाइसंखाए सह जहसंखं संबंधो कायव्वो । तं जहा—दंसणावरणं  
नवविहं १, नाणावरणं पंचविहं २, अंतराइयं पंचविहं ३, मोहणीयं अट्टावीसविहं ४,  
आउयं चउविहं ५, गोयं दुविहं ६, वेयणियं दुविहं ७, नामं बायालीसविहं ८ ॥३॥

सव्वासिं मूलपयहीणं उत्तरपयडिनामाणि दंसेह—

नयणेयरोहिकेवलदंसणआवरणयं भवइ चउहा ।

निहापयलाहि छहा निहाइदुरुत्तथीणद्धी ॥४॥

नयणं ति चक्खुदंसणं, इयरं ति अचक्खुदंसणं, तं पुण चत्तारि इंदियाइं चक्खुवज्जाइं,  
मणो य, आवरणसहो पत्तेयं संबज्झइ, तओ चक्खुदंसणावरणं १, अचक्खुदंसणावरणं २,  
ओहिदंसणावरणं ३, केवलदंसणावरणं ४, निहा ५, पयला ६, निहाइदुरुत्तति, निहानिहा ७,  
आइसहाओ पयलापयला ८, थीणद्धि ९, चि ॥४॥

नाणावरणं महसुयओहिमणोनाणकेवलावरणं ।

विग्घं दाणे लाभे भोगुवभोगेसु विरिए य ॥५॥

नाणावरणं पंचविहं । महनाणावरणं, सुयनाणावरणं, ओहिनाणावरणं, मणपज्जव-  
नाणावरणं, केवलनाणावरणं । चिग्घं ति अंतरायकम्मं पंचहा । दाणंतराइयं, लाभंतराइयं,  
भोगंतराइयं, उपभोगंतराइयं, वीरियंतराइयं ॥५॥

सोलसकसाय-नवनोकसाय-दंसणतिगं ति मोहणियं ।

निरयतिरिनरसुराऊ नीउच्चं सायमस्सायं ॥६॥

कसाया अणंताणुबंधिणो कोहमाणमायालोभा चत्तारि, एवं अपच्चक्खाणावरण ४,  
पच्चवख वरण ४, संजलण ४, एए चत्तारि चउक्का सोलस । नव नोकसाया, पुरिसवेओ,  
इत्थीवेओ, नपुंसगवेओ, हासं, रई, अरई, सोगो, मयं, दुगुं छत्ति । दंसणतिगं ति, मिच्छत्तं,  
सम्मामिच्छत्तं, सम्मत्तं, मोहणीयं अट्टावीसविहं ।

निरियाऊ तिरिबाऊ मणुयाऊ देवाऊ त्ति, आउकम्मं चउब्भेयं । नीयागोयं उच्चा-  
गोयं ति, गोयं दुविहं । सायावेयणियं असायावेयणियं ति, वेयणियं दुविहं ॥६॥

गइ १ जाइ २ तणु ३ उवगा ४ बंधण ५ संघायणाणि ६ संघयणा ७ ।

संठाण ८ वन्न ९ गध १० रस ११ फास १२ अणुपुव्वि १३ विहगगई १४ ॥७॥

पिंडपयडि त्ति, चउदस परघा १ उज्जोय २ आयवु ३ स्सायं ४ ।

अगुरुलहु ५ तित्थ ६ निमिणो ७ वघाय ८ मिय अट्ट पत्तेया ११ ॥८॥

गइनामं १, जाइनामं २, सरीरनामं ३, अंगोवंगनामं ४, बंधणनामं ५, संघायनामं ६,  
संघयणनामं ७ संठाणनामं ८, वन्ननामं ९, गंधनामं १०, रसनामं ११, फासनामं १२, अणु-  
पुव्विनामं १३, विहायगइनामं १४ ॥१४॥ पिंडपयडि त्ति, त्ति, पिंडो=वहुपयडिसमुदाओ,  
पिंडपहाणा पगईओ पिंडपगईओ चउदस=चउदससंखाओ, एएसिं चउदसहं पयडिमेयाणं  
ति त्ति गब्भत्थो । परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, उत्तासनामं, अगुरुलहुनामं,  
तित्थयरनामं, निम्माणनामं, उवघायनामं, एए अट्ट पत्तेया, पडिमेयामावाओ नापि  
सविवक्खाओ वक्खमाणा इव ॥७-८॥ पिंडपयडीओ पत्तेयपयडीओ य दंसियाओ ।

इयाणिं सविवक्खाओ पगईओ दंसेह—

तसनायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।

सुसराइज्ज जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥



थावरसुहुमअपज्जं माहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।

दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

तसं १ बायरं २ पज्जत्तगं ३ पत्तेयं ४ थिरं ५ सुभं ६ सुभगं ७ दूसरं = आदेयं  
६ जसं १० एयं तसदसगं; थावरदसगं पुण एयं-थावरं १ सुहुमं २ अपज्जत्तगं ३ साहारणं  
४ अथिरं ५ असुभं ६ दूमगं ७ दूसरं = अणादेयं ६ अजसं १० इति; नामे = नामकम्माणि  
सेयर ति, सविवक्खा वीसं=वीससंखाउ पगईओ, पिह-पत्तेय तसथावरदसग-पगईओ मिलिया  
बायालीमं नामकम्माणि पगईओ होंति ॥ ९-१० ॥

संपयं एयासु तसाइसविवक्खाइपगईसु पुच्चायरियमणियाओ सच्चाओ दंसेइ—

तसचउथिरछकं अथिरछकसुहुमतिगथावरचउकं ।

सुभगतिगाइविभासा पयडीण तदाइसंखाहिं ॥११॥

तसचउकं, थिरछकं, अथिरछकं, सुहुमतिगं, थावरचउकं, सुभगतिगं । आइसहाओ  
दुभगतिगं । सुभपंचगं पुच्चुत्तमेव तसदसगं थावरदसगं च । एवं रूवा जा विभामा सच्चाऽभिद्विय-  
लक्खणा सा सच्चा किं ? तदाइसंखाहिं ति, सा=तसथिराइया पयडी, आइ=पढमा जामिं  
संखाणं चउकगाईण, ता तद्गाइयाओ संखाओ । ताहिं तदाइसंखाहिं भाणियच्चा । तत्थ तसं  
बायरं पज्जत्तं पत्तेयमिति तसचउकं । थिरं सुहं सुभगं दूसरं आएज्जं जसकित्ती-  
त्ति थिरछकं । अथिरं असुहं दूमगं दूसरं अणाएज्जं अज्जसं ति अथिरछकं ।  
सुहुमं अपज्जत्तं साहारणं सुहुमतिगं । थावरं सुहुमं अपज्जत्तगं साहारणं ति थावरचउकं ।  
सुभगं दूसरं आदेयं ति सुभगतिगं । दूमगं दूसरं अणाएज्जं दुभगतिगं । सुभपंचगं  
पुण सुभं सुभगं दूसरं आएज्जं जसकित्ती ति ॥११॥

इयाणि चोदसण्हं पिहपगईणं पत्तेयं पत्तेयं उत्तरभेयसंखा निरूवणत्थं भइइ—

गइयाईण य कमसो चउ १ पण २ पण ३ ति ४ पण ५ पंच ६ छ ७ च्छकं ८ ।

पण १ दुग १० पण—११ ऽट्ट १२ चउ १३ दुग १४ मिय उत्तरभेयपणमट्टी ॥१२॥

एसा य दारगाहा, अणंतरमेव गाहाछकेण सुत्तकारो ववखाणिरसइ ति, न  
वक्खाणिज्जइ ॥१२॥

निरयतिरिनरसुरगई इगिविय १ तियचउपणिदि जाईओ ।

ओरालियवेउव्वियआहारगतेय २ कम्मइया ॥१२॥

निरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई, ॥ दारं ॥ ण्गिंदियजाई, वेडंदियजाई, तेदंदिय-  
जाई, चउरिंदियजाई, पंचिंदियजाई ॥ दारं ॥ ओरालियसरीरं, वेउन्वियसरीरं, आहारगसरीरं,  
तेयगसरीरं, कम्मगसरीरं ॥१३॥

पढमतितणुण्वंगा बंधणसंघायणा य तणुनाम ।

सुत्तां सात्तविसेमो संघयणमिहऽट्टिनिचउत्त ॥१४॥

पढमाणं तिन्हं तणुणं षचंग त्ति अंगोवंगाणि भवंति । न पृण तेयसकम्मइमाणं । त जहा  
ओरालियअंगोवंगं वेउन्वियअंगोवंगो आहारगअंगोवंगं ॥ दारं ॥ बंधणसंघायणा य तणु  
नामस्ति, तणुणं=सरीरणं एगदेसअणुसरणाओ नाम=अभिहाणं जेसिं बंधणसंघायणाणं ते तहा  
भाणियच्चा । जहा ओरालिययसरीरबंधणं एवं वेउन्वियबंधणं, आहारगबंधणं, तेयगबंधणं,  
कम्मइगबंधणं ॥ दारं ॥ तहा ओरालियसरीरसंघायं, वेउन्वियसंघायं, आहारगसंघायं, । तेयग-  
सरीरसंघायं । कम्मणसरीरसंघायं ॥ दारं ॥ संघयणे मयविसेसं दंसेइ-सुत्ते=जीवाभिगमाइआगमे  
सात्तविसेमो=सामत्थमेओ संघयणं इह=कम्मावियारे अट्टिनिचओ=अट्टिसंठाणं त्ति ॥१४॥

छद्धा संघयणं वज्जरिसमनारायं<sup>१</sup> वज्जनारायं<sup>२</sup> ।

नागायं<sup>३</sup> मद्धनारायं<sup>४</sup> खीलिया<sup>५</sup> तह य छेवट्टं ॥१५॥

वज्जरिसमनारायं, वज्जनारायं, नारायं, अद्धनागायं, खीलिया, छेवट्टं संघयणं ॥ दारं ॥१५॥

ममचउरंसं नग्गोहसाइखुज्जाणि वामणं हुंडं ।

संठाणा वच्चा किन्हेनीललोहियहालइसिया ॥१६॥

समचउरंसं संठाणं, नग्गोहसंडलसंठाणं, साइसंठाणं खुज्जसंठाणं, वामणसंठाणं, हुंड-  
संठाणं ॥ दारं ॥ किणहवओ, नीलवओ, लोहियवओ, हालिइवओ, सुकिलवओ, ॥दारं॥ ॥१६॥

सुरभिदुरभी रसा णुण तित्तकडुकमायअंबिला महुगा ।

फासा गुरुलहुमिउखरसीउण्हमिणिद्धरुक्खऽट्ट ॥१७॥

सुरभिगंधो, दुरभिगंधो ॥ दारं ॥ तित्तरसो, कडुयरसो, कसायरसो, अंबिलरसो,  
महुररसो ॥ दारं ॥ गरुयफासो, लहुफासो, मिउफासो, कक्कसफासो, सीयफासो । उन्ह-  
फासो, निद्धफासो, रुक्खफासो ॥ दारं ॥ ॥१७॥

चउहगइव्वणुपुव्वी दुविहा य सुहासुहा य १ विहयगई ।  
गइअणुपुव्वीओ दुगं तिगं तु तं चिय नियाउजुअं ॥१८॥

निरयाणुपुव्वी, तिरियाणुपुव्वी, मणुयाणुपुव्वी, देवाणुपुव्वी ॥ दारं ॥ सुहविहायगई  
दुहविहायगई ॥ दारं ॥ दारगाहा वक्खाणिया ।

संपयं कित्तियाणं पगईणं मिलियाणं सन्नाविसेसं दंसेइ—

गइआणुपुव्वीओ दुगंति अप्पणीया गई आणुपुव्वी य एया दो वि निरयदुगं  
तिरियदुगं मणुयदुगं देवदुगसदेहिं वुच्चंति । तिगं पुण तं चिय नियनियाउजुयं, तत्थ देवगई  
देवाणुपुव्वी देवाउयं तिगं वुच्चइ ॥१८॥ एवं सव्वत्थ नामपगईओ एयाओ केणावि संखाविसेसेण  
कत्थ वि सत्थंतरे ववहरिज्जंति । तओ तमवि संखा विसेसं दंसेइ—

इय तेणवई संते बंधणपन्नरसगेण तिसयं वा ।

वन्नाइभेयबंधणसंघायविणा उ सत्तट्ठी ॥१९॥

पिंडपगईणं चउदसन्हं पडिमेया पणसट्ठी पत्तेय अट्ठगेण तदसेण थावरदसगेण य तेणवई  
संजाया । संति त्ति, सा संते=सत्ताहिगारे उवजुज्जइ । सा वि तेणवई बंधणपन्नरसगेण  
वेउव्वाहारोरा लियाइ इच्चाइ गाहाए वक्खमाणेण पक्खिणेण तिसयं=तिउत्तरं सयं संजायं । एयं  
संते उदए उदीरणए य कम्मपयडिसंगहणीए अहिगिज्जइ । इह पुण बंधुदए सत्तट्ठी ॥१९॥

सा सयं चेव सुत्तयारो दंसेइ —

सा बंधुदए बंधण-संघाया नियतणुग्गहणगहिया ।

वन्नाइविगप्पा वि हु न य बंधे सम्ममीसाइं ॥२०॥

सा सत्तट्ठी नामपयडीण बंधे=बंधाहिगारे उदए=उदयाधिगारे य उवजुज्जइ ति ।  
बंधणं ति बंधणाणि पंच पन्नरस वा, संघाया य पंच, नियतणुग्गहणेण गहिया । जस्स  
ओरालियाइसरीरस्स बंधणसंघाया ते तेणेव सरीरेण सह गहिया । तहा वक्खंधरस-  
फासाणं जे सोलमविगप्पा ते वि वण्णाइमामणेण गहिया । बंधणपत्थावादेव जेसिं कम्माणं  
बंधो न हवइ, ताणि निदंसेइ बंधे=बंधाहिगारे न सम्मं मीसं च । जओ बंधे विसुत्तरसयमेव होइ ॥

उत्तरं च—बंधे विसुत्तरसयं सयभाषीसं च होइ उदयस्मि । एवं उदीरणए अहयालसयं तु सत्तमि ॥

तत्थ तेवन्ना सेसकम्माणं सम्ममीसणा, जओ मिच्छत्तस्सेव बंधो, न सम्मत्तसम्म-  
मिच्छत्तारणं । तहाहि—तेसिं उप्पत्ती जीवेणं विसुद्धज्जवसायपरिणएणं करणपओगाइपओणेणं

अनियङ्गीकरणचरमसमये षड्माणेणं ते चैव मिच्छत्तपोग्गला तिहा कया सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं  
मिच्छत्तं च वुच्चन्ति । सच्चट्टीए नामस्स विसुत्तरं सयं होइ । उदयाइसु पुण सम्ममीसे वि होंति,  
तओ बावीसं सयं । अहयालं सयं पुण पणपन्नाए तेणउईए य होइ ॥२०॥

संपयं बंधणपन्नरसगं वक्खाणेइ—

वेउव्वाहारोरालियाण सगतेयकम्मजुत्ताणं ।

नव बंधणाणि इयरदुसहियाणं तिन्नि तेसिं च ॥२१॥

वेउव्वाहारोरालियाणं सरीराणं सगेणं=अप्पणा सह तेयगेणं कम्मणा य सरीरेणं जुत्ताणं  
नवबंधणाणि होंति, जहा-वेउव्वियपुग्गलमईयस्स वेउव्वियपोग्गलेहिं सह बंधणं वेउव्वियवेउव्विय-  
बंधणं १, एवं वेउव्वियतेयबंधणं २, वेउव्वियकम्मगबंधणं ३, तथा आहारगआहारग-  
बंधणं एवं तेयगकम्मणा वि ३, तथा ओरालियओरालियबंधणं एवं तेयकम्मेहिं ३, तथा  
इयरेहिं कम्मगतेयगेहि दोहि सहियाणं ओरालियाइसरीराणं पत्तेयं पत्तेयं एकेक्कं एयं एयाणि  
तिन्नि होंति, जहा वेउव्वियतेयकम्मगबंधणं १, आहारगतेयकम्मबंधणं २, ओरालियतेयकम्मग-  
बंधणं ३, तेसिं च तेयकम्माणं तिन्नि बंधणाणि जहा तेयगतेयगबंधणं १, तेयगकम्मबंधणं २,  
कम्मगकम्मगबंधणं ३, सव्वाणि पन्नरस ॥२१॥

संपयं वन्नाईणं लाघवत्थं सुमासुमाणं सन्नाविसेसं करेइ—

नीलकसिणं दुगंधं तित्तं<sup>१</sup> कहुअ गुरुं खरं रुक्खं ।

सीयं च असुभनवगं एक्कारसगं सुभं सेसं ॥२२॥

नीलो कसिणो य दो वन्ना, 'दुगंधो=असुहगंधो एगो, तिच्चो कहुओ य रसा दो, गरुयं खरं  
रुक्खं सीयं चत्तारि फासा, एए नव असुहनवगं भन्ति । सेसा मेया एक्कारसगं (सुहं)भन्ति ।  
तं जहा-लोहियहालिइसुक्किला वन्ना तिन्नि, सुरभिगंधो एगो, कसायअंबिलमहुररसा तिन्नि, मिउ-  
लहुयनिद्धउण्हासा चत्तारि ॥२२॥

इयाणि ध्रुवबंधि-अध्रुवबंधि-उदयाइवियारं सुत्तयारो निदंसेइ—

ध्रुवबंधो<sup>१</sup> दय<sup>२</sup> संता<sup>३</sup> सव्वेयरधाइ<sup>४</sup> सुभ<sup>५</sup> अपरियत्ता<sup>६</sup> ।

छद्धा वि सपड्विवक्खा चउहविवागा य पयडीओ ॥२३॥

ध्रुवो सव्वकालमवड्ढिओ बंधो मिच्छत्ताविरईकसायजोगेहि जीवपएसाणं कम्मवग्गणा-  
पुग्गलेहिं सह खीरनीरनाएण संबंधो बंधो । उदओ तेसिं चैव विवागपत्ताणं कम्मपुग्गलाणं

विवागेण निज्जरणं अणुमधो वा एगद्धा । सत त्ति जं कम्मं वंधागयं संकमागयं वा जाव  
उज्ज वि केणइ परिणामविसेसेण न खेज्जइ, ताव तस्म कम्मस्स संत त्ति वुच्चइ । जओ दुत्तं—

‘कम्ममसुइ सुइ वा बद्ध पि न जाव वेइय अहवा । करणंतरेण न विजो जियं ति तं मन्नई संत ॥’ त्ति ।

धुवसद्वो पत्तेयं संवज्जइ तओ धुवबंधिणीओ सत्तचालीसा पगईओ भाणियव्वाओ । तहा  
छद्धा वि सपड्विवक्ख त्ति वयणाओ अधुवबंधिणीओ वि तिहत्तरी भाणियव्वाओ त्ति एयं पयं  
सव्वत्थ दट्टव्वं । अधुवधुवाण सरूवं—

“नियहेउसमवेधि ह्नु भयणिज्जो ज ण होइ पयड्डीणं । वधो ता अधुवाओ धुवा अभयणिज्जबंधाओ ॥”

तहा धुवोदया सत्तावीसा, अधुवोदया पंचाणउई । एएसिं सरूवं—

“अवुच्छिन्नो उदओ जाणं पयड्डी ता धुवोदइया । वोच्छिन्नो वि ह्नु संभवइ जाण अधुवोदया ताओ ॥”

तहा धुवसत्ताओ पगईओ तीसअहियं सयं, अधुवसत्ताओ अट्टावीसं । एएसिं सरूवं—  
“कम्ममसुभं सुभं वा बद्ध पि न जाव वेइयं अहवा । करणंतरेण न विजोइयं ति तं मन्नइ संतं ॥”  
सव्वं कसिणं घायंति सव्वघायणीओ वीसं, इयर त्ति देसं घायंति देसघायणीओ पंचवीसं ।  
एएसिं सरूवं—

पयड्डीओ विचित्ताओ देसं सव्वं ह्णांति घाईओ । एयासि नियसरूवं सकज्जकरणाओ विण्णेयं ।  
पड्विवक्खे अघायणीओ पंचहत्तरी

तहा सुभाओ पुण्णसरूवाओ, वायालीसं असुभाओ पावसरूवाओ वासीई । उक्कं च—  
“वायालीसा पयड्डीण सुहसरूवाण पुन्नमक्खायं । वायासी असुहाओ पावं दुहहेउमावाओ ॥”  
तहा अपरियत्तमाणीओ जाओ पगईओ वज्झमाणाओ वेइज्जमाणाओ वा न अक्कासि  
पगईणं बंधं उदयं वा खलंति, तेसिं च अक्काए पगईए न वंधो उदओ वा पड्विखलिज्जइ तओ  
अपरियत्तमाणीओ अउणतीसं । परियत्तमाणीओ पुण जाओ पगईओ विवक्खभूयाणं बंधं उदयं  
वा निरुंघित्ता बंधे उदए य आगच्छंति, ताओ मन्नंति । जहा साए वज्झमाणे असायं निरुज्झइ  
त्ति, असाए वज्झमाणे सायं निरुज्झइ । वुत्तं च—

“विणिसारिय जा गच्छइ बंधं उदयं च अन्नपगईणं । सा ह्नु परियत्तमाणी अणिसारिती अपरियत्ता ॥”

तहा चउहविवागा य पयड्डीओ त्ति चउहविवागे=पोग्गलमवखेत्तजीवरूवो जासिं पयड्डीणं  
ताओ भाणियव्वा उत्ति ॥ तत्थ पुग्गलेसु=ओरालियाइसरीररूवेसु विवागेण वेयणं जासिं ताओ  
पोग्गलविवागिणीओ छत्तीसं । मवे=देवाइलक्खणे विवागे जासिं ताओ मवविवागिणीओ  
चत्तारि । खेत्ते=परमवगमणकालमावि वक्कलक्खणे विवागे जासिं ताओ खेत्तविवागिणीओ  
चत्तारि । जीवे जीवपएसेसु विवागे जासिं ताओ जीवविवागिणीओ अट्टहत्तरी ॥२३॥

इयाणि इमा दारगाहा छत्तीसाए गाहाई विवरेइ । तत्थ ताव “जहोइसं निहोस”  
इति धुवबंधिणीओ मणेइ—

ध्रुवबंधी भयकुच्छाकसाय<sup>१६</sup> मिच्छंतराय आवरणा<sup>१४</sup> ।

वन्नत्रउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणोवधाया य ४७ ॥२४॥

ध्रुवो बंधो विवक्त्रियगुणद्वानं च पडुच्च जासि निरंतरं होइ, ताओ ध्रुवबंधिणीओ । ताओ इमाओ-मयं, 'कुच्छ' त्ति दुगंच्छा, कसाया सोलस, मिच्छत्तं, अंतरायपणगं, नाणावरण-पणगं, दंसणावरणनवगं, वन्नगंधरसफासा चत्तारि, तेयगं, कम्मइगं, अगुरुलहुयं, निम्मेणं । उवघायं च । पडिवम्खे अधुवबंधिणीओ । ताओ इमाओ गाहादुगेण भणिज्जंति—

“चरलविउच्चाहारगदुगाणि<sup>६</sup> गइ<sup>४</sup>जाइ<sup>५</sup>खगइ<sup>२</sup>अणुपुब्बी<sup>४</sup> ।  
संघयणागीदितसवीसु १०सासत्तिथायवुज्जोर्थ ॥  
परघायवेयणीयाउगोयहासाइदुजुयलतिवेयं ।  
विग्घावरण विणा इय तेवत्तरिमधुवबंधाओ ॥”

संपयं बंधपत्थावादेव जाओ जे जीवा न बंधंति, ताओ तेसिं दंसेइ—

बंधंति न इगि विगला वेउव्वियच्छकदेवनरयाउं ।

तिरिया तित्थाहारं गइतसा नरतिगुच्चं च ॥२५॥

जइवि विगलाण गइणं पढमा पंविदिय त्ति वत्तव्वा । तित्थाहारदुगूणा ओघा (१२०) अट्टन्ह परिहाणी ॥

बंधंति न एगिदिया बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिया वेउव्वियच्छकं, तच्चेत्तत् देवदुगं २ नरयदुगं २ वेउव्विसरीरं ५ अंगुवंगं च ६ वेउव्वियच्छकमेयं, निरयसुराऊहिं सह अट्ट, तथा देवाउयं निरयाउयं च । तओ तेसिं बंधे नवोत्तरं सयं १०६ । तथा तिरिया तित्थयरं आहारदुगं च न बंधंति, तेसिं बंधे सत्तरुत्तरसयं ११७ । तथा गइतसा=तेउवाऊ नरतिगं=नरगइ-नराणुपुब्बी-नराउ-लक्खणं उच्चागोयकम्मं च न बंधंति, तेसिं बंधे पंचोत्तरसयं १०५ । एए सव्वे भवपच्चयादेव एयाओ पगईओ न बंधंति ॥२५॥ तथा—

नरयसुरसुहुमविगलत्तिगाणि आहारदुगविउव्वियदुगं ।

बंधहि न सुरा सायावथावरेगिंदि नेरइया ॥२६॥

नरयतिगं=नरयगइ-नरयाणुपुब्बि-नरयाउलक्खणं, एवं सुरतिगं, सुहुमं अपज्जत्तं साहारणं सुहुमतिगं, बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय विगलतिगं, आहारदुगं आहारसरीरं अंगोवंगलक्खणं, एवं वेउव्वियदुगं १६ बंधंति न सुरा=देवा; भवपच्चयाओ तेसिं बंधे चउरुत्तरसयं १०४ ।

तथा एयाओ सोलसपयडीओ सह आयावथावरएगिंदियजाईए उणवीसं नेरइया भवपच्चएणं न बंधंति; तेसिं बंधे एकोत्तरसयं १०१॥२६॥

बंधपत्थावादेव जेसिं पयडीणं बंधकालो अवंधकालो य तं दंसेइ—

विवागेण निज्जरणं अणुभवो वा एगट्ठा । सत त्ति जं कम्मं वंधागयं संकमागयं वा जाव  
उज्ज वि केणइ परिणामत्रिसेसेण न खेज्जइ, ताव तस्स कम्मस्स संत त्ति वुच्चइ । जओ दुत्तं—

‘कम्ममसुइ सुइ वा वद्ध पि न जाव वेइय अहवा । करणंतरेण न विजोजियं ति तं मन्नइ संत ॥’ त्ति ।

ध्रुवसद्रो पत्तेयं संवज्जइ तओ ध्रुवबंधिणीओ मत्तचालीसा पगईओ भाणियव्वाओ । तहा  
छद्धा वि सपड्विवक्ख्व त्ति वयणाओ अधुवबंधिणीओ वि तिहत्तरी भाणियव्वाओ त्ति एयं पर्यं  
सव्वत्थ दट्ठव्वं । अधुवधुवाण सरूवं—

“नियहेउसमवेधि ह्नु भयणिज्जो ज ण होइ पयडीणं । वधो ता अधुवाओ ध्रुवा अमयणिज्जबंधाओ ॥”

तहा ध्रुवोदया सत्तावीमा, अनुवोदया पंचाणउई । एएसिं सरूवं—

“अवुच्चिन्नो उदओ जाणं पयडी ता ध्रुवोदइया । वोच्चिन्नो वि ह्नु संभवइ जाण अधुवोदया ताओ ॥”

तहा ध्रुवसत्ताओ पगईओ तीसअहियं सयं, अधुवसत्ताओ अट्ठावीसं । एएसिं सरूवं—  
“कम्ममसुभं सुभं वा वद्ध पि न जाव वेइयं अहवा । करणंतरेण न विजोइयं ति तं मन्नइ संतं ॥”  
सव्वं कसिणं घायंति सव्वघायणीओ वीसं, इयर त्ति देसं घायंति देसघायणीओ पंचवीसं ।

एएसिं सरूवं—

पयडीओ विचित्ताओ देसं सव्वं हणंति घाईओ । एयासि नियसरूवं सकज्जकरणाओ विण्णेयं ।  
पड्विवक्खे अघायणीओ पंचहत्तरी

तहा सुमाओ पुणसरूवाओ, वायालीसं असुमाओ पावसरूवाओ घासीई । उक्खं च—  
“वायालीसा पयडीण सुहसरूवाण पुन्नमक्खायं । वायासी असुहाओ पावं दुहहेउभावाओ ॥”  
तहा अपरियत्तमाणीओ जाओ पगईओ वज्झमाणओ वेइज्जमाणओ वा न अन्नासि  
पगईणं बंधं उदयं वा खलंति, तेसिं च अन्नाए पगईए न बंधो उदओ वा पडिखलिज्जइ ताओ  
अपरियत्तमाणीओ अउणतीसं । परियत्तमाणीओ पुण जाओ पगईओ विवक्खभूयाणं बंधं उदयं  
वा निरुंधित्ता बंधे उदए य आगच्छंति, ताओ मन्नंति । जहा साए वज्झमाणे असायं निरुज्झइ  
त्ति, असाए वज्झमाणे सायं निरुज्झइ । वुत्तं च—

“विणिवारिय जा गच्छइ बंधं उदयं च अन्नपगईणं । सा ह्नु परियत्तमाणी अणिवारिती अपरियत्ता ॥”

तहा चउहविधागा य पयडीओ त्ति चउहविवागो=पोग्गलमवखेत्तजीवरूवो जासिं पयडीणं  
ताओ भाणियव्वा उत्ति ॥ तत्थ पुग्गलेसु=ओरालियाइसरीररूवेसु विवागेण वेयणं जासिं ताओ  
पोग्गलविवागिणीओ छत्तीसं । भवे=देवाइलक्खणे विवागो जासिं ताओ भवविवागिणीओ  
चत्तारि । खेत्ते=परभवगमणकालभावि वकलक्खणे विवागो जासिं ताओ खेत्तविवागिणीओ  
चत्तारि । जीवे जीवपएसेसु विवागो जासिं ताओ जीवविवागिणीओ अट्ठहत्तरी ॥२३॥

इयाणि इमा दारगाहा छत्तीसाए गाहाहिं विवरेड । तत्थ ताव “अहोदेसं निदेस”  
इति ध्रुवबंधिणीओ मणेइ—

ध्रुवबंधी भयकुच्छाकसाय १६ मिच्छंतराय आवरणा १४ ।

वन्नचउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणीवधाया य ४७ ॥२४॥

ध्रुवो बंधो विवस्त्रियगुणद्वारं च पदुच्च जासिं निरंतरं होइ, ताओ ध्रुवबंधिणीओ । ताओ इमाओ-मयं, 'कुच्छ' ति दुगंछा, कसाया सोलस, मिच्छत्तं, अंतरायपणगं, नाणावरण-पणगं, दंसणावरणनवगं, वन्नगंधरसफासा चत्तारि, तेयगं, कम्मइगं, अगुरुलहुयं, निम्मेणं । उवघायं च । पडिचस्से अपुवबंधिणीओ । ताओ इमाओ गाहादुगेण भणिज्जंति—

“उरलधित्त्वाहारगदुगाणि ६ गइ ४ जाइ १ खगइ २ अणुपुच्ची ४ ।

संघयणागी ६ तसवीसु ५० सासित्थायवुज्जोयं ॥

परघायवेयणीयाउगोयहासाइदुजुयलतिवेयं ।

विग्घावरण विणा इय तेवत्तरिमधुवबंधाओ ॥”

संपयं बंधपत्यावादेव जाओ जे जीवा न बंधंति, ताओ तेसिं दंसेइ—

बंधंति न इगि विगला वेउव्वियल्लकदेवनरयाउं ।

तिरिया तित्थाहारं गइतसा नरतिगुच्चं च ॥२५॥

जइवि विगलाण गइणं पढमा पंविदियं चि वत्तन्वा । तित्थाहारदुगूणा ओघा (१२०) अट्ट्ह परिहाणी ॥

बंधंति न एगिदिया वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिया वेउव्वियल्लकं, तच्चेतत् देवदुगं २ नरयदुगं २ वेउव्विसरीरं ५ अंगुवंगं च ६ वेउव्वियल्लकमेयं, निरयसुराऊहिं सह अट्ट, तहा देवाउयं निरयाउयं च । तओ तेसिं बंधे नवोत्तरं सयं १०६ । तहा तिरिया तित्थयरं आहारदुगं च न बंधंति, तेसिं बंधे सत्तरुत्तरसयं ११७ । तहा गइतसा=तेउवाऊ नरतिगं=नरगइ-नराणुपुच्ची-नराउ-लक्खणं उच्चागोयकम्मं च न बंधंति, तेसिं बंधे पंचोत्तरसयं १०५ । एए सन्वे भवपच्चयादेव एयाओ पगईओ न बंधंति ॥२५॥ तहा—

नरयसुरसुहुमविगलत्तिगाणि आहारदुगविउव्विदुगं ।

बंधहि न सुरा सायावथावरिगिदि नेरइया ॥२६॥

नरयतिगं=नरयगई-नरयाणुपुच्ची-नरयाउलक्खणं, एवं सुरतिगं, सुहुमं अपज्जत्तं साहारणं सुहुमतिगं, वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय विगलतिगं, आहारदुगं आहारसरीरं अंगोवंगलक्खणं, एत्तं वेउव्वियदुगं १६ बंधंति न सुरा=देवा; भवपच्चयाओ तेसिं बंधे चउरुत्तरसयं १०४ ।

तहा एयाओ सोलसपयडीओ सह आयावथावरएगिदियजाईए उणवीसं नेरइया भवपच्चएणं न बंधंति; तेसिं बंधे एकोत्तरसयं १०१ ॥२६॥

बंधपत्यावादेव जेसिं पयडीणं बंधकालो अवंधकालो य तं दंसेइ—



तिरिनिरयतिगुञ्जोयाण सचउपल्लं तिसड्ढमयरसयं ।

इगिविगलजाइआयवथावरचउसुं तु पणसीयं ॥२७॥

तिरियतिगस्स नरयतिगस्स उञ्जोयस्स चउहिं पल्लेहिं अहियं तिसड्ढीए सागरोवमाण य अहियं सयं अवंधकाओ । तथा एगिंदिय वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजाईणं आयवस्स थावरसुहुम-अपञ्जसाहारणाणं च पणसीए सागरोवमाणं अहियं सचउपल्लं सागरोपमाणं सयं । सव्वेसि अंतरालभाविनरमवा य अवंधकालो होइ, वक्खमाणगाहाए संवज्जइ ॥२७॥ तथा—

बत्तीसं सासाणंतबंधसेसपणुवीसपयडीणं ।

नरभवसहियं परमो पणिंदिसु अवंधकालो सिं ॥२८॥

बत्तीसाए अहियं सयं सागरोवमाणं अवंधकालो सासाणंतसेसपणुवीसपयडीणं होइ । तथा—“मिच्छनपुंसगवेयं निरयाहं तह य चेव निरयदुगं” इच्चाइगाहाचउक्केण मिच्छदिट्ठि-सासणेसु दोसु गुणट्ठाणगेसु वोच्छिन्ना जाओ पयडीओ, ताओ सासाणंता बुच्चंति । सासणे अंतो=बंधवुच्छेओ तेसिं ति कट्ठू । ताओ एकचत्तालीसं । तासिं मज्झाओ “तिरिनिरयतिगुञ्जोयाण” इच्चाइगाहाए मणिया जाओ तासिं अन्ना सेसा पणुवीसा पयडी । तासिं बत्तीसं सयं नरभव-सहियं ति=नरभवे जाओ पुव्वकोडीओ पुहत्तपमाणाओ ता अहियं परमो=उक्किट्ठो पणिंदिसु=पंचेदिएसु अवंधकालो होइ । ताओ पुण पंचवीसाओ इमाओ—

“थीणत्तिग३ दुमगत्तिग३ अपढमसंठाण५खगइ १संधयणं ५ ।

अणनीय१नपुंसित्थी मिच्छंति य सेसपणुवीसा ॥” ॥२८॥

संपयं जहा एसो अवंधकालो निप्फज्जइ तथा दंसेइ—

बत्तीसं विजयाइसु गेवेज्जाईसु तेसु तेसट्ठं ।

तमपुढविजुएसु गयस्स तेसु पणसीयमयरसयं ॥२९॥

इह कोइ जीवो अहापवत्ताइणा करणेण सम्मत्तं सव्वविरइं लभिय विजएसु विवज्जइ; तत्थ तेत्तीसं सागरोवमाइदेवाउयं परिपालइ, तओ उवाट्ठित्ता, चरणं परिपालिय, पुणो वि तहेव परिवालइ; तओ छासट्ठी होइ; भविय मणुस्सो, मिस्सं अंतोपुहत्तं, पुणो वि सम्मत्तं सव्वविरइं च, अच्चुयदेवलोए उववज्जइ; तत्थ बावीसं सागरोवमाइं, एवं पुणो वि सम्मत्तं सव्वविरइं च, अच्चुयदेवलोए उववज्जइ; तत्थ बावीसं सागरोवमाइं, तओ चोयालीसा, पुणो वि तेगेव रूवेण अच्चुए, तओ वीया छावट्ठी होइ । उक्तं च—

“दोवारे विजयाइसु गयस्स तिअच्चुए अहव ताइं । अइरेणं नरभवयिं नाणाब्बिवेहिं सव्ववत्तं ॥१॥

एवं बत्तीसं सागरोवमसयं । सम्मत्तस्स मिस्संतरियस्स उक्कोसो ढ्ठीकालो, भोग-  
भूमिअबंधकालो पल्लतियं भवपच्चएण, तथा पल्लोवमं १ सोहमे, गुणपच्चएणं, नवमे गेविज्जे  
सागरएगत्तीसं भवपच्चएणं, अबंधिय पुव्वुत्तं बत्तीसं सागरोवमसयं चउपल्लाहियं सव्वं तिसइ  
सागरोवमसयं । अओ बुत्तं—“गेविज्जाईसु तेसु तेसइ” ति “तमपुढविज्जुएसु” ति,

तहा—कोइ जीवो छट्टपुढवीए बावीसं सागरोवमाइं परिवालिय, उव्वट्टिता, देसविरइं  
पड्विज्जिय, तओ सोहम्मे, तओ पुव्वकम्मेण नवमगेविज्जे सागरो एगत्तीसं अबंधित्ता, तओ  
अणुत्तराइसु सागरोवमसयं बत्तीसं अबंधित्ता, एवं पंचासीयं सचउपल्लं । अयं अबंधकालो  
एगचत्तालीसाए पयडीणं । उक्कं च—

भवपच्चओ बंधो न भोगभूमिसु तिपलिय सत्तण्हं । अंते सम्मत्तेण पलियसुरो चविय मणुएसु ॥१॥  
सव्वविरइं पवविज्जिय पालिय मणुयाउ नवमगेविज्जे । इगतीससागराऊ मिच्छत्तेणं वसे तत्थ ॥२॥  
चरिमे अंतमुहुत्ते सम्मत्तं लहिय चविय मणुएसु । सम्मत्तं च अल्लइय अच्चुयसुरमणुयवारतिगं ॥३॥  
छावट्टी मणुपालिय अंतमुहुत्तं च मीसभावेण । पुणरथि सम्मत्तेणं विज्जियदुवारं च छावट्टिं ॥४॥  
चउपल्ला इगतीसा इग छावट्टी पुणो वि छावट्टी । तेवट्टं उदहिसयं अहियं पुण चउहिं पल्लेहिं ॥५॥  
छट्टीए नेरइओ बावीसं सागराईं पालेइ । भवपच्चओ न बंधो थावरचउजाइभायावे ॥६॥  
तत्तो उव्वट्टित्ता सम्मत्तं देसविरइ सोहम्मे । चउपलिय मणुय विरइं पालिय देवत्तइगतीसा ॥७॥  
तत्तो पुव्वकमेणं दो छावट्टी च पालए सम्मे । अहरेगा मणुयमभा पंचासीयं सचउपल्लं ॥८॥  
अहवा गेवेज्जाणुत्तरेसु छावट्टि पालए सम्मे । पच्छा य अच्चुयसुरो छावट्टी पूरए एवं ॥९॥  
सत्तसु नवपयडीसुं गुणभवपच्चय अबंधु उक्कोसो । अहियं न होइ आणाळिहियं पुण कम्मपयडीए ॥१०॥  
पगुवीसाए अबंधो उक्कोसो होइ सम्मगुणजुत्तो । बे छावट्टी ते पुण अहिया सव्वत्थ मणुयमभा ॥११॥  
एसि अबंधकालो सुहपयडीणं च बंधकालो य । पणसीयं बत्तीसं उदहिसयं होइ केसिं च ॥१२॥  
एसो अबंधकालो य बंधकालो य होइ सण्णिस्स । उक्कोसो धिण्णेओ न य सेसजियाण एस विही ॥१३॥

इयाणि निरंतरं बंधकालो अधुवबंधिणीणं भणणइ—

समयादसंखकालं जा परमो नीयतिरयदुगबंधो ।

सुरदुगविउव्वियदुगे तिपल्लमाउसु मुहुत्तं तो ॥३०॥

नीयागोयस्स तिरियदुगस्स जइअओ समयं, उक्कोसओ असंखकालमिति निरंतरं बंधकालो  
हवइ । तेउकायवाउकाइयाणं एसो; जओ तेउवाउकाइयाणं कायट्टिई असंखकालपमाणा,  
तीए एयतिगस्स न परावत्तो होइ । सुरदुगस्स देवगइ-देवाणुपुव्वीसरूवस्स वेउव्वियदुगस्स  
सरीरअंगोवंगलक्खणस्स जहण्णओ समओ, उक्कोसो पलिओवमतिगं; जओ देवक्कलउत्तरक्कलसु  
देवगइपाउगं बंधं वज्झइ, नो अन्नं । आउचउक्के उक्कोसओ वि अंतोमुहुत्तं ॥३०॥

तसचउपणिदिपरघाउस्सासेसु पणसीयमुदहिसयं ।

वत्तीसं सुभगतिगुचपुरिससुभखगइचउरंसे ॥३१॥

तसचउक्कपणिंदिजाइपरघायनामऊसासनामाणं सययं वंधकालो । जघन्यः समयः । उक्कोसं सागरोवमसयं पण्णासीयं पल्लचउक्कं च । जओ पडिवक्खस्स अवंधकालो सो एएसि वंधकालो । उस्सासपरघाया पत्तेया कहं पडिवक्खा ? भण्णइ, परघायनामं उत्सासनामं च पज्जत्तगेण समं वज्झंति, एएण कारणेणं पज्जत्तगो पडिवक्खो । तहा सुभगतिगं उच्चागोयं पुरिसवेयं सुहविहायगई चउरंसंठाणं, एएसि वंधकालः जघन्यः समयः, उक्कोसं सागरोवमसयं वत्तीसं; पडिवक्खसंभवाओ ॥३१॥

उरले असंखपोग्गलपरियट्टा साय पुव्वकोड्डणा ।

तेत्तीसयरा नरदुगतित्थुमहउरालुवंगेसु ॥३२॥

ओरालियसरीरे वंधकालो जघन्यः समयः, उक्कोसो सततं असंखपुग्गलपरियट्टा । उक्कतं च-“एगिदिय हरियंतिय पुग्गलपरियट्टया असंखिज्जा” इत्यादि । सायावेयणियस्स वंधकालो जघन्यः समयः, उक्कोसं देसूणा पुव्वकोडी; जओ केवलि सायावेयणियं चैव वंधइ, तस्स । मण्णयदुगं तित्थयरनामं वज्जरिसभसंधयणं ओरालियअंगोवंगं एएसि तित्थयरवज्जाणं वंधकालो जघन्यः समयः, तित्थयरस्स अंतोमुहुत्तं जघन्यः, उक्कोसं पंचणह वि सागरोवमतेत्तीसं 'अणुत्तरविमाणेसु ॥३२॥

समयादंतमुहुत्तं सेसाणं ४३ तह जहण्णबंधो वि ।

तित्थाउसु अंतमुहू धुवबंधीणं ४७ तु भंगतिगं ॥३३॥

जओ नेहत्तरी अधुवबंधणीओ तासि वंधकालो वत्तीसं अणंतरमेव पन्नवियाओ । “सेसाणं” ति अभासि एक्कचत्तालीसाए पगईणं वंधकालो जघन्यः समयः । उक्कोसं अंतोमुहुत्तं । ता य इमाओ

थिरसुमजसथावरदस १ असुभागी ५ खगइ १ जाइ ४ संघयणा ५ ।

निरया २हारदु-रगायव १ असाय १ अपुमि १ तिथि १ दुजुयल्लु ४ उज्जोयं १ ॥

थिरनामं सुहनामं जसनामं थावरदसगं असुहसंठाणपंचगं असुहविहायगइ असुहजाइ-चउक्कं असुहसंधयणपंचगं निरयदुगं आहारगदुगं आयवनामं असायवेयणीयं नपुंसगवेयं इत्थिवेयं हासरइजुयलं अरइसोगजुयलं उज्जोयं च । एवं एक्कत्तालीसं ४१ । तथा तित्थयरनामस्सआउचउक्कस्स जहन्नबंधकालो अंतोमुहुत्तं । तित्थयरनामस्स जघन्यः वंधकालो कहं लब्भइ ? भन्नइ-तित्थयरनामबंधगो उवसमसेटिं आरुहइ, अनियट्टी जावउवसंतो अवंधगो, परिवडिओ, पुणो वंधइ अंतोमुहुत्तं, पुणो सेटिं आरुहइ, पुणो वि अनियट्टी अवंधगो, परिवडिओ पुणो वंधइ । उक्कतं च—“एगमवे दुक्खुत्तो चरित्तमोहं उवसमिज्जा”

१ अत्रौदारिकाङ्गोपाङ्गानान्तेऽनुत्तरसुरापेक्षया सम्पूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणो बन्धकालः प्राप्यमाणोऽप्युत्कृष्टबन्धकालचिन्तायां तु सप्तमनरकनारकापेक्षयाऽन्तमुहुत्ताभ्यधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानः स लभ्यते, सप्तमनरकान्निर्गतस्याऽप्यन्तमुहुत्तं यावत्तद्बन्धलाभात् ।

एवं अधुवबंधिणीर्णं साहसंतो य बंधो धुवबंधिणीर्णं का वार्ता इत्याह—“धुवबंधीणं तु मंगतिर्णं” कं १, अणादिअपज्जवसिओ १ अभव्वाणं, अणादिसपज्जवसिओ २ भव्वाणं, साहअपज्जवसिओ बंधं पइ असंभविओ, सादिसपज्जवसिओ ३ प्राप्तगुणानां, स च जघन्येन अंतोसुहृत्तं, उकोसेणं देसूणं अवहूणुगलं । एयं मंगतिर्णं धुवबंधिणीर्णं । इयरासिं च भणिओ भव्वाणं जोग्गार्णं बंधकालो । ३३॥

संपयं धुवोदयाणं इयरासिं च उदयविभागो भन्नेह—

निम्मेणथिराथिर तेय कम्मवण्णाइ अगुरुसुहुमसुहं ।

नाणंतरायदसगं दंसणचउ मिच्छ धुवउदया ॥३४॥

निम्माणनामं थिरनामं अथिरनामं तेयगसरीरं कम्मगसरीरं वण्णाइचउक्कं अगुरुलहुनामं सुहनामं असुहनामं नाणावरणपणगं अंतरायपणगं दंसणचउक्कं मिच्छत्तं च, एए धुवोदया सत्तावीसं । पड्विक्खोऽधुवोदया, ताओ इमाओ—

“गइ४ माणुपुव्वि ४

सुभगा ४ दुभगा ४ आउचउ ४ थावर ४ चउक्कं । संघयणा ६ गी ६ विहदुगनीउक्कं सायमस्सायं ॥१॥ चज्जोयायवपरघाउसचउक्कासत्तिथउवघायं । उल्लविउव्वाहारगदुग ६ पणजाई पणनिहं ॥२॥ सोदसकसायनवनोचरित्तमोह तह सम्ममीसं च । अधुवोदयपणनउई सत्तावीसं धुवोदइया ॥३॥” ॥३४॥

इयाणिं धुवोदयाणं अधुवोदयाणं च मंगविभागं निदंसेह—

उदयो धुवउदयाणं अणायणंतो अणाहसंतो य ।

अधुधाण साहसंतो मिच्छस्स उ मंगतिगमेयं ॥३५॥

जहा—अणाहअणंतो १, अणाहसंतो १, अणाहओ अपज्जवसिओ अभव्वाणं १, अणाहओ सपज्जवसिओ भव्वाणं होइ छव्वीसाए धुवोदयाणं । अधुवोदयाणं ६५ पुण साहओ संतो होइ जहाग्भवं भव्वाणमभव्वाण य । मिच्छस्स पुण मंगतिगं एयं अर्णतरुत्तं, साहसंतो य ॥३५॥

भणिया धुवोदया अधुवोदया य ।

इयाणिं धुवसंतदारं भणिउक्कामो थोवत्ताओ अधुवसंताओ भणेह—

वेउव्वेकारससम्ममीसत्तित्थुच्चमणुदुगाउचउक्क ।

आहारसत्त अधुवा २८ धुवसंता सेस तीससयं ॥३६॥

निरयदुगं २, देवदुगं ३, वेउव्वियसरीरं १, अंगोवंगं १, संघायं १, वेउव्वियचउवंधणं ४, वेउव्विकारसयं, सम्मत्तं, सम्मासिच्छत्तं, तित्थयरनामं, उच्चागोयं, मणुयदुगं, आउचउक्कं, आहारगसरीरं, आहारगअंगोवंगं, आहारगसंघायं, आहारगबंधणचउक्कं, एवं आहारगसत्तगं; एए अहावीसं अधुवसंताओ । पड्विक्खो धुवसंताओ । ता य इमा—

“संघयणउक्कतिरिदुगतेथग ७ ओराजसत्तयदुगं च । वण्णाई ९० संठाणा ६ तसाइवीसा य नायव्वा ॥१॥ सायासायं विहदुगनीयं पणजाइ अत्तित्थपत्तियं । पणयालघाइपय्थी धुवसंते तीससयमेवं । २॥” ॥३६॥

संपयं जेसु गुणट्टाणगेसु जाओ मोहनामपगईओ नियमेण विगप्पेण य संभवति, ताओ दसेइ-  
 तिसु मिच्छत्तं नियमा अट्टसु गुणठाणएसु भयणिज्जं ।  
 सामायणम्मि नियमा संतं सम्मं दससु भज्जं ॥३७॥

मिच्छदिट्ठिसासायणसम्मामिच्छत्तेसु मिच्छत्तं संतं नियमेण हवइ । “अट्टसु गुणठाण-  
 गेसु भयणिज्जं”ति अविरयाइ जाव उवसंतकसाओ ताव भयणिज्जं=भजनीयं, कयाइ होइ,  
 कयाइ न होइ । कइं भयणिज्जं ? जया तेवीससंतकम्मिओ वात्रीससंतकम्मिओ एगवीससंतकम्मिओ  
 जहासंभवं एएसु गुणट्टाणगेसु आरुहइ, तया नो मिच्छत्तसंतकम्मी हवइ । जया पुण अट्टावीस-  
 संतकम्मिओ चउवीससंतकम्मिओ एएसु गुणट्टाणगेसु आरुभइ, तया मिच्छत्तसंतकम्मिओ  
 जीवो । एवं मिच्छत्तस्स भयणा होइ । अहवा “तिसु मिच्छत्तं नियम” त्ति तिसु गुणट्टाण-  
 गेसु मिच्छत्तं नियमा अत्थि तं मिच्छदिट्ठि सासायण-सम्मामिच्छदिट्ठीसु । अट्टसु अविरयाओ  
 जाव उवसंतकसाओ ताव भइयव्वं=होइ, वा नवा । उवसमसेणि पडुच्च होइ, खाइगसम्मदिट्ठिं  
 पडुच्च न होइ । “सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं”ति ॥ सासायणसम्मदिट्ठिम्मि सम्मत्तं  
 नियमा अत्थि जेण उवसनसम्मत्तं एसासायणो सो य अट्टावीससंतकम्मिओ “दससु  
 भ[यणि]ज्जं” ति आइमेसु सासायणवज्जेसु जाव उवसंतकसाओ एएसु दससु सम्मत्तं  
 भयणिज्जं । कइं ? भइइ,—मिच्छदिट्ठिणि उव्वलियं अणुप्पाइयं वातं पडुच्च नत्थि, अट्टावीस-  
 संतकम्मियस्स अत्थि । सम्ममिच्छदिट्ठिम्मि उव्वलियं पडुच्च नत्थि, जओ सम्मत्ते उव्वलिए  
 वि सम्मामिच्छदिट्ठी लभइ; अणुव्वलियसम्मत्तस्स अत्थि । सेसेसु खाइगसम्मदिट्ठिं पडुच्च  
 नत्थि, इहरहा अत्थि ॥३७॥

सासणमीसे मीसं संतं नियमेण नवसु भइयव्वं ।

नियमा मिच्छासाणे पढमकमाया नवसु भज्जा ॥३८॥

सासायणे मीसे य सम्मामिच्छत्तं नियमा अत्थि । कइं ? भइइ,—सासायणे नियमा  
 अट्टावीससंतकम्मिओ । सम्मामिच्छदिट्ठी पुण सम्ममिच्छत्तेण विणा न होइ त्ति काउं । गुणठाण-  
 नवगम्मि भयणिज्जं=मिच्छदिट्ठी असंजयसम्मदिट्ठी जाव उवसंतकसाओ एएसु नवसु होज्ज वा नवा ।  
 कइं ?, भइइ,—मिच्छदिट्ठिस्स अट्टावीससंतकम्मियस्स सत्तावीससंतकम्मियस्स अत्थि, छव्वीससं-  
 तकम्मियस्स नत्थि । सेसेसु खाइगसम्मदिट्ठीं पडुच्च नत्थि, इयरहा अत्थि । तहा नियमा  
 मिच्छदिट्ठिस्स सासणस्स य पढमकसाया अणंताणुबंधिणो होंति, जेण एए अणंताणुबंधिणो  
 नियमा बंधंति । ‘नवसु भज्जं’त्ति सम्ममिच्छदिट्ठी जाव उवसंतकसाओ एएसु नवसु ठाणेसु  
 अणंताणुवधे संतं भइयव्वं । कइं ?, भइइ,—उव्वलियं पडुच्च नत्थि, अन्नहा अत्थि । अन्ने

आयरिया पंचसु भयणिज्जं, इह व्याख्यायन्ति । जओ तेसिं मएण अट्टावीससंतकम्मिओ न उवसमसेटी(अ) आरुहइ, तओ अपमत्तं जाव भयणिज्जा अणंताणुबंधिणो होंति ॥३८॥

सव्वगुणे साहारं सासणमिस्सरहिणसु वा नित्थं ।

नोभयसंते मिच्छे अंतमुहुत्तं भवे तित्थे ॥३९॥

सव्वेसु गुणद्वान्णोसु आहारसत्तगस्स संतं संभवइ । तित्थयरनामं पुण मीससासायणवज्जेसु संतं होइ । वासदाओ केसु वि गुणद्वान्णोसु भवइ वा नया । तित्थयरस्स आहारसत्तगस्स य उभय-संता हवइ, तथा मिच्छत्तं न गच्छइ । ‘‘अंतमुहुत्तं भवे तित्थे’’ त्ति, तित्थयरनामसंतं मिच्छदिट्ठिमि अंतमुहुत्तं लभइ । कहं १, भन्नइ—नए वद्धाउओ वेयगसम्मत्तं पडिचज्जइ विसु-ज्जमाणो तित्थयरनामं वंधइ, अंतफाले सम्मत्तं धमेइ, मिच्छत्तं गच्छइ, नएसु उववज्जइ, पज्ज-चिमावं गओ सम्मत्तं पडिवज्जइ; एवं मिच्छदिट्ठिमि तित्थयरनामं अंतोमुहुत्तं संता लभइ ॥३९॥

संपयं धुवबंधोदयसंताइ भणियं ।

संपयं सव्वेयरघाइदारं सपडिवक्खं भन्नइ । तत्थ ताव पढमं सव्वघाइणीओ, ता य इमा-

केवलियनाणदंसणआवरणं बारसाइमकसाया ।

मिच्छत्त निद्वपणगं इय वीसं सव्वघाइओ ॥४०॥

केवलनाणावरणं १, केवलदंसणावरणं २, आइमा अणंताणुबंधिअपच्चक्खणाणपच्चक्खणाण लक्खणा कसाया बारस, मिच्छत्तं, निद्वपणगं च, इय वीसं सव्वघाइओ ॥४०॥

संपयं सव्वघाइत्तं देसघाइत्तं मावेइ—

सम्मत्तनाणदंसणचरित्तघाइत्तणाउ घाइओ ।

तस्सेस देसघाइत्तणाउ पुण देसघाइओ ॥४१॥

सम्मत्तनाणदंसणचरित्तस्स य सव्वहा हणणसीलत्तणेण सव्वघाइणीओ । तत्थ मिच्छत्तं अणंताणुबंधिणो य सम्मत्तस्स जीवाजीवाइसइहणरूवस्स घाइगा । केवलनाणकेवलदंसणावरणे पुण केवलनाणकेवलदंसणाणं सव्वहा घाइगे । उक्खत्तं च—‘‘परं सुदुट्ठ वि मेइसमुदए होइ पहा चंदसूराणं’’॥ ति वचनात् जीवलक्खणभूयस्स अणंतिमकेवलभागस्स अणावरणमेव । अन्नहा जीवो अजीवत्तणं पावेज्ज त्ति । निद्वपणगं खाओवसमच्चक्खुदंसणाईण घाइगं, धीयकसाया देसविरईए, तइय-कसाया सव्वविरईए चरित्तस्स घाइगा ॥४१॥

संजलणनोकसाया चउनाणत्तिदंसणावरणविग्घा ।

पणवीसदेसघाइ सेसअघाइ सरूवेण ॥४२॥

संपयं जेषु गुणट्टाणगेषु जाओ मोहनामपगईओ नियमेण विगर्पेण य संभवन्ति, ताओ दंसेइ-  
तिसु मिच्छत्तं नियमा अट्टसु गुणट्टाणएसु भयणिज्जं ।

सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं दससु भज्जं ॥३७॥

मिच्छदिट्ठिसासायणसम्मामिच्छत्तेसु मिच्छत्तं संतं नियमेण हवइ । “अट्टसु गुणट्टाण-  
गेषु भयणिज्जं”ति अविरयाइ जाव उवसंतकसाओ ताव भयणिज्जं=भजनीयं, कयाइ होइ,  
कयाइ न होइ । कइं भयणिज्जं ? जया तेवीससंतकम्मिओ वावीससंतकम्मिओ एगवीससंतकम्मिओ  
जहासंभवं एएसु गुणट्टाणगेषु आरुहइ, तथा नो मिच्छत्तसंतकम्मी हवइ । जया पुण अट्टावीस-  
संतकम्मिओ चउवीससंतकम्मिओ एएसु गुणट्टाणगेषु आरुभइ, तथा मिच्छत्तसंतकम्मिओ  
जीवो । एवं मिच्छत्तस्स भयणा होइ । अहवा “तिसु मिच्छत्तं नियम” त्ति तिसु गुणट्टाण-  
गेषु मिच्छत्तं नियमा अत्थि तं मिच्छदिट्ठि सासायण-सम्मामिच्छदिट्ठीसु । अट्टसु अविरयाओ  
जाव उवसंतकसाओ ताव भइयव्वं=होइ, वा नवा । उवसमसेणि पडुच्च होइ, खाइगसम्मदिट्ठी  
पडुच्च न होइ । “सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं”ति ॥ सासायणसम्मदिट्ठिम्मि सम्मत्तं  
नियमा अत्थि जेण उवसनसम्मत्तं ऽद्वाए सासायणो सो य अट्टावीससंतकम्मिओ “दससु  
भ[यणि]ज्जं” ति आइमेसु सासायणवज्जेसु जाव उवसंतकसाओ एएसु दससु सम्मत्तं  
भयणिज्जं । कइं ? भअइ,—मिच्छदिट्ठिणि उव्वलियं अणुप्पाइयं वातं पडुच्च नत्थि, अट्टावीस-  
संतकम्मियस्स अत्थि । सम्ममिच्छदिट्ठिम्मि उव्वलियं पडुच्च नत्थि, जओ सम्मत्ते उव्वलिए  
वि सम्मामिच्छदिट्ठी लभइ; अणुव्वलियसम्मत्तस्स अत्थि । सेसेसु खाइगसम्मदिट्ठी पडुच्च  
नत्थि, इहरहा अत्थि ॥३७॥

सासणमीसे मीसं संतं नियमेण नवसु भइयव्वं ।

नियमा मिच्छासाणे पढमकमाया नवसु भज्जा ॥३८॥

सासायणे मीसे य सम्मामिच्छत्तं नियमा अत्थि । कइं ? भअइ,—सासायणे नियमा  
अट्टावीससंतकम्मिगो । सम्मामिच्छदिट्ठी पुण सम्ममिच्छत्तेण विणा न होइ त्ति काउं । गुणट्टाण-  
नवगम्मि भयणिज्जं=मिच्छदिट्ठी असंजयसम्मदिट्ठी जाव उवसंतकसाओ एएसु नवसु होज्ज वा नवा ।  
कइं ? भअइ,—मिच्छदिट्ठिस्स अट्टावीससंतकम्मियस्स सत्तावीससंतकम्मियस्स अत्थि, छव्वीससं-  
तकम्मियस्स नत्थि । सेसेसु खाइगसम्मदिट्ठीं पडुच्च नत्थि, इयरहा अत्थि । तथा नियमा  
मिच्छदिट्ठिस्स सासणस्स य पढमकसाया अणंताणुवंधिणो होंति, जेण एए अणंताणुवंधिणो  
नियमा वंधंति । ‘नवसु भज्जं’त्ति सम्ममिच्छदिट्ठी जाव उवसंतकसाओ एएसु नवसु ठाणेसु  
अणंताणुवधे मंतं भइयव्वं । कइं ? भअइ,—उव्वलियं पडुच्च नत्थि, अन्नहा अत्थि । अन्ने

नाणंतरायदंसणचउक्कपरघायतित्थउस्सासं ।

नामधुवबंधिनवमिच्छभयदुगुच्छा अपरियत्ता ॥४७॥

नाणावरणपणं, अंतरायपणं, दंसणावरणचउक्कं, परघायं, तित्थयरनामं, उस्सासं नामं, धुवबंधिणीओ य नवसंखाओ, ता इमा-वण्णचउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणोवघाया य, मिच्छत्तं, भयं, दुगुच्छा य । एयाओ अपरियत्तमाणीओ अउणतीसं ।

परियत्तमाणीओ पुण इमाओ-

“गइ४ जाइ५ तित्तणुश्वंगा३ संघयणाश्वीइइविहग२अणुपुव्वी४ । तसथावराइवीसं आउचऊ सायमस्सायं ॥१॥ सोळसकसायनवनोभयकुच्छविणा उ निहपणं च । उज्जोआयवनीउक्क होंति परियत्तइगनउई ॥२॥” ॥४७॥

अह च ओहविवागा पयहीओ दंसेइ गाहादुगेण—

संठाणा संघयणा सरीरुवंगाणि आयवुज्जोया ।

नामधुवोदय साहारणियरउवघायपरघाया ॥४८॥

उदइयभावा पोग्गलविवागिणो आउभवविवागीणि ।

खेत्तविवागणुपुव्वी जीवविवागीओ सेसाओ ॥४९॥

संठाणछक्कं, संघयणछक्कं, सरीरतिगं, अंगोवंगतिगं, आयवं, उज्जोयं, नामधुवोदया य, ता उ इमाओ-निम्मेणथिराथिरतेयकम्मवण्णाइचउअगुरुलहुसुहमसुहं १२; साहारणं, पत्तेयं, उवघायं, परघायं च, एयाओ छत्तीसं । “उदइयभावा” उदओ=विवागो तओ उदओ जस्स अत्थि सो उदओ, उदइओ भावो जासिं ताओ उदइयभावाओ । तहा एयाओ चेव पोग्गल-विवागिणीओ वुच्चंति । आऊणि पुण चत्तारि भवविवागीणि भन्न्ति । आणुपुव्वीओ चत्तारि खेत्तविवागिणीओ वुच्चंति । सेसाओ सव्वाओ वि जीवविवागिणीओ होंति । ता इमा—

“खउगइ४विहदुग२जाई५ तसतिग३उस्साससुभग४दुभगचउ ४ । थावरसुहमअपञ्चं नीउक्कं सायमस्सायं ॥१॥ तित्थं सम्मं मीसं पणयालीसं च घायपयहीओ । इय अट्टत्तरिपयही जीवविवागा मुणोयव्वा ॥२॥”

जा वि पोग्गलाइविवागिणीओ ता वि जीवविवागिणी खेव । परं पोग्गलाण संजोणेण विवागं देंति, अओ पोग्गलविवागचाइनामेण मणियाउ सि न दोसो । पोग्गलविवागाइ-सइत्थो दारगाहाए सूचिओ ॥४८-४९॥

इयाणि उदयभावाहिंगारादेव सव्वे मावे परूवेइ—

भावा छच्चोवसमिय १ खइय २ खओवसम ३ उदय ४ परिणामा ५ ।

दु १ नव २ ऽट्टारि ३ गवीसा ४ तिग ५ भेया सन्निवाओ य ॥५०॥



संजलणचउवकं, नोकसायनवगं, महनाणावरणं, सुयनाणावरणं, ओहिनाणावरणं, मणपज्जवनाणावरणं, चक्खुदंसणावरणं, अचक्खुदंसणावरणं, ओहिदंसणावरणं, अंतरायपणगं च, एए पणवीसं देसघाइणीओ । सेसाओ उद्धरियाओ अघायणीओ, सरूवेण=सहावेण । ता यइमा ७५-

“तसवीसं२०पत्तेयात्, वेयणिप्रदुगं च२, आउ चत्तारि४ ।

गइ४ जाइ४ तणु उवंगावे संवयणादि गीय ६ नी१उच्चं १॥

वन्नरसगंधफासा४ देवनरतिरियनिरियपुब्बीओ ।

सुहअसुहा विहगगई अघाइ पयडीओ पणसयरी ॥१-२॥”

इयाणि सुभासुभाओ पयडीओ दंसेइ—

नरतिरिसुराउमुच्च सायं परघायआयवुज्जोयं ।

तित्थोसासनिमेणं पणिंदिवइरुसभचउरसं ॥४३॥

मणुयाउयं, देवाउयं, तिरियाउयं तं सुभं पुण भोगभूमी पडुच्च संभवियं, उच्चागोयं, सायावेयणियं, परघायनामं, आयवनामं, उज्जोयनामं, तित्थयरनामं, उस्सासनामं, निम्माणनामं, पणिदिजाई, वज्जरिसभनारायं संघयणं, समचउरंससंठाणं ॥४३॥

तसदस चउवण्णाई सुरमणुदुगपंचतणुउवंगतिगं ।

अगुरुलहुपढमखगई बायालीसं ति सुहपयडी ॥४४॥

तसदसगं, वण्णाइचउक्कं, देवदुगं, मणुयदुगं, सरीरपंचगं, उवंगतिगं, अगुरुलहुयं, सुमखगई, एया बायालीसं, इतिशब्दः समाप्तौ. सुहपयडीओ मन्न्ति ॥४४॥

सेसा पडिक्खओ असुहपयडीओ निदंसेइ—

थावरदसचउजाई अपठमसंठाणखगइसंघयणा ।

तिरिनरयदुगुवघायं वन्नचऊ नामचउतीसा ॥४५॥

थावरदसगं, पंचिदिजाइवज्जाओ चत्तारि जाईओ; असुमसंठाणपंचगं, असुमा खगई असुमसंघयणपंचगं, तिरियदुगं, निरयदुगं. उवघायं, असुमपयडीओ दोसु वि वण्णाइचउक्कगहणेण असुभवण्णाइचउक्कं, एवं नाम चउतीसा । ४५॥

निरयाउनीयअस्सायघाइपणयालसहियवासीई ।

असुमपयडी उ दोसु वि वन्नाइचउक्कगहणेण ॥४६॥

निरयाउयं, नीयगोयं, असायवेयणीयं, पणयालीसं घाइपयडीओ, एवं असुमपयडी वियासी । दोसु वि वन्नाइचउक्कं; सुमासु सुभं; असुमासु असुमं ति ॥४६॥  
इयाणि अपरियत्तमाणीओ परियत्तमाणीओ य मन्न्ति—

नाणंतरायदंसणत्रउक्कपरघायतित्थउस्सासं ।

नामधुवबंधिनवमिच्छभयदुगुञ्छा अपरियत्ता ॥४७॥

नाणावरणपणगं, अंतरायपणगं, दंसणावरणचउक्कं, परघायं, तित्थयरनामं, उस्सासं नामं, धुवबंधिणीओ य नवसंखाओ, ता इमा-वण्णचउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणोवघाया य, मिच्छत्तं, भयं, दुगुञ्छा य । एयाओ अपरियत्तमाणीओ अउणतीसं ।

परियत्तमाणीओ पुण इमाओ-

“गइ४ जाइ५ तित्तणुइधंगं३ संघयणाइगीइ६ विइगरअणुपुञ्ची४ । तसथावराइवीसं आउचऊ सायमस्सायं ॥१॥ सोळसकसायनवनोमयकुच्छविणा उ निइपणगं च । उज्जोआयवनीउक्क ह्येति परियत्तइगनउई ॥२॥” ॥४७॥

अह च ओहविवागा पयडीओ दंसेइ गाहादुगेण-

संठाणा संघयणा सरीरुवंगाणि आयवुज्जोया ।

नामधुवोदय साहारणियरउवघायपरघाया ॥४८॥

उदइयभावा पोग्गलविवागिणो आउभवविवागीणि ।

खेत्तविवागणुपुञ्ची जीवविवागीओ सेसाओ ॥४९॥

संठाणछक्कं, संघयणछक्कं, सरीरतिगं, अंगोवंगतिगं, आयवं, उज्जोयं, नामधुवोदया य, ता उ इमाओ-निस्सेणधिराथिरतेयकम्मवण्णाइचउअगुरुलहुसुइमसुहं १२; साहारणं, पत्तेयं, उवघायं, परघायं च, एयाओ छत्तीसं । “उदइयभावा” उदओ=विवागो तओ उदओ जस्स अत्थि सो उदइओ, उदइओ भावो जासिं ताओ उदइयभावाओ । तथा एयाओ चैव पोग्गल-विवागिणीओ बुच्चंति । आऊणि पुण चत्तारि भवविवागीणि मन्न्ति । आणुपुञ्चीओ चत्तारि खेत्तविवागिणीओ बुच्चंति । सेसाओ सव्वाओ वि जीवविवागिणीओ ह्येति । ता इमा-

“अउगइ४ विइदुगं२ जाइ५ तसतिगं३ उस्साससुभग४ तुभगचउ ४; थावरसुहुमअपञ्जं नीउक्कं सायमस्सायं ॥१॥ तित्थं सम्मं मौसं पणयालीसं च घायपयडीओ । इय अट्टत्तरिपयडी जीवविवागा मुणोयञ्जा ॥२॥”

जा चि पोग्गलाइविवागिणीओ ता वि जीवविवागिणी चैव । परं पोग्गलाण संजोणेण विवागं देति, अओ पोग्गलविवागत्ताइनामेण मणियाउ चि न दोसो । पोग्गलविवागाइ-सइत्थो दारगाहाए सूचिओ ॥४८-४९॥

इयाणि उदयभावाहिंगारादेव सव्वे भावे परूवेइ-

भावा छच्चोवसमिय १ खइय २ खओवसम ३ उदय ४ परिणामा ५ ।

दु १ नव २ ऽट्टारि ३ गवीसा ४ तिग ५ भेया सन्निवाओ य ॥५०॥

भवंति=संपञ्जंति भावा=जीवपरिणामविसेसा ते य छसंखा समन्त्रिया । तत्थ उवसमिओ १, खाइओ २, खओवसमिओ ३, उदइओ ४, पारिणामिओ ५, एए पंचेव जहसंखं दुमेय-नवमेय-अट्टारसमेय-इगवीसमेय-तिमेया होंति । छट्टो पुण सन्निवाओ=मेलावओ ॥५०॥

इयाणि जे सम्मत्ताइगुणा जत्थ भावे संभवंति ते तत्थ दंसेइ—

सम्मचरणणि पढमे, बीए वरनाणदंसणचरित्ता ।

तह दाणलाभभोगोवभोगविरयाणि सम्मं च ॥५१॥

उवसमियं चरित्तं, उवसमियं सम्मत्तं; एए पढमे होंति । केवलनाणं १, केवलदरिसणं १, खाइयं चरणं १, दाणलद्धी १, लाभलद्धी १, भोगलद्धी १, उवभोगलद्धी १, वीरियलद्धी १, एए सन्वक्खएण पंचलद्धीओ, खाइयसम्मत्तं १, एए बीए खाइयभावे ॥५१॥

चउनाणऽन्नाणतिगं दंसणतिगपंचदाणलद्धीओ ।

सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजमो तइए ॥५२॥

नाणचउक्कं, अन्नाणतिगं, दंसणतिगं, पंचदाणलद्धीओ, एए देसखएणं, सम्मत्तं, चारित्तं, “संजमासंजमो” त्ति देसविरओ एए तइए खाओवसमियभावे ॥५२॥

चउगइचउक्कसाया लिंगतिगं लेसछकमण्णाणं ।

मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमो चोत्थभावमि ॥५३॥

गइचउक्कं, कसायचउक्कं, वेदतिगं, लेसछकं, अन्नाणं, मिच्छत्तं, “असिद्धत्तं” त्ति संसारित्तं “असंजमो” त्ति देसओ सन्वओ वा अनियमो १, एए चउत्थे=उदइयभावे एगवीसं ॥५३॥

पंचमगम्मि य भावे जीवाभवत्तभव्वयाईणि ।

पंचण्ह वि भावाणं भेया एमेव तेवण्णा ॥५४॥

जीवत्तं भव्वत्तं अभव्वत्तं आइसहाओ असंखेयपए सत्ताइया ।

इयाणि पुव्वमेयाणं संपिड्डियाणं संखा निदंसेइ—पंचण्ह वि भावाणं तेवण्णं भेया होंति । एवं पुव्वकम्मणेण दोण्हं नवण्हं अट्टारसण्हं एगवीसाए तिन्हं च संजोयणेण ॥५४॥

संपयं सन्निवाइयभावे मेए संभविणो असंभविणो य दंसेइ—

उदइयखाओवसमियपरिणामेहिँ चउरो गइचउक्के ।

खइयजुएहिँ वि चउरो तदभावे उवसमजुएहिँ ॥५५॥

उदइयं मणुयत्तं, खाओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामियं जीवत्तं, एस तिगजोगो १ एक्को; अन्ने तिगजोगा नेरइयतिरिक्खदेवत्तणे पक्खित्ते मणुयत्ते उस्सारिए होंति । गइभेएण चत्तारि तिगजोगा । तथा एए उदइयखाओवसमियपरिणामियभेया खइयसम्मत्तेण चउजोगो । सो वि चउगइभेएण चत्तारि चउजोगा । अहवा खाइयं उस्सारिय उवसमसम्मत्तेण पक्खित्तेण चउजोगो ३ । ते वि गइचउकभेएण चत्तारि चउजोगा । एवं सव्वे वारस होंति ॥५५॥

एक्केको उवसमसेटिसिद्धकेवलिसु एवमविरुद्धा ।

पन्नरस सन्निवाइयभेया वीसं असंभविणो ॥५६॥

उवसमिय-खाइय-खाओवसमिय-ओदइय-पारिणामिएहिं पणजोगे उवसमसेटीए भंगेको मणुस्साणं १ । खाइय-पारिणामिएहिं दुगजोगे भंगेको य सिद्धाणं २ । खाइय-ओदइय-पारिणामिएहिं तिगजोगे भंगेको केवलीणं ३ । एवं एए भंगा संभविया पुट्टुत्ता भंगा वारस उवसमसेटि-सिद्ध-केवलिसंगा तिन्नि ३ । एवं सन्निवाइगभावे पणरस भंगा । वीसं असंभविया । ते य इमे-उवसमियं खाइयं १, उवसमियं खाओवसमियं २, उवसमियं उदइयं ३, उवसमियं पारिणामियं ४, खाइयं खाओवसमियं ५, खाइयं उदइयं ६, खाइयं परिणामियं, (१) सिद्धभंगो; उवसमियं उदइयं ७, खाओवसमियं पारिणामियं ८, उदइयं पारिणामियं ९ दुगजोगे नव भंगा, असंभविया; उवसमियं खाइयं खाओवसमियं १, उवसमियं खाइयं ओदइयं २, उवसमियं खाइयं पारिणामियं ३. उवसमियं खाओवसमियं उदइयं ४, उवसमियं खाओवसमं पारिणामियं ५, उवसमियं उदइयं पारिणामियं ६, खाइयं खाओवसमियं उदइयं ७, खाइयं खाओवसमं पारिणामियं ८, तिगजोगे अट्ट असंभविया । खाइयं उदइयं पारिणामियं (२) केवलिभंगो सुद्धो, खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (३) गइचउकभंगो ४, एवं तिगजोगे भंगा अट्ट असंभविया, उवसमियं खाइयं खाओवसमियं उदइयं १, उवसमियं खाइयं खाओवसमियं पारिणामियं २, उवसमियं खाइयं उदइयं पारिणामियं ३, उवसमियं खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (४) गइचउकभंगो ४, खाइयं खाओवसमं उदइयं पारिणामियं (५) गइचउकभंगो ४ । एवं चउकजोगे तिन्नि असंभविया । सव्वे वि वीसं असंभविया । उवसमियं खाइयं खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (६) उवसमसेटिभंगो । एवं भंगा २६ । संभविया भंगा ६ । असंभविया भंगा २० ॥५६॥

इयाणि संभविणो जे छम्भंगा ते विसेसओ दंसेइ—

दुगजोगो सिद्धाणं केवलिसंसारियाण तिगजोगो ।

चउजोगजुयं चउसु वि गईसु मणुयाण पणजोगो ॥५७॥

भवन्ति=संपञ्जन्ति भावा=जीवपरिणामविसेसा ते य छसंखा समन्धिया । तत्थ उवसमिओ १, खाइओ २, खओवसमिओ ३, उदइओ ४, पारिणामिओ ५, एए पंचेव जहसंखं दुमेय-नवमेय-अट्टारसमेय-इगवीसमेय-तिमेया होंति । छट्ठो पुण सन्निवाओ=मेलावओ ॥५०॥

इयाणिं जे सम्मत्ताइगुणा जत्थ भावे संभवन्ति ते तत्थ दंसेइ—

सम्मचरणाणि पढमे, बीए वरनाणदंसणचरित्ता ।

तह दाणलाभभोगोवभोगविरयाणि सम्मं च ॥५१॥

उवसमियं चरित्तं, उवसमियं सम्मत्तं; एए पढमे होंति । केवलनाणं १, केवलदरिसणं १, खाइयं चरणं १, दाणलद्धी १, लाभलद्धी १, भोगलद्धी १, उवभोगलद्धी १, वीरियलद्धी १, एए सव्वक्खएण पंचलद्धीओ, खाइयसम्मत्तं १, एए बीए खाइयभावे ॥५१॥

चउनाणऽन्नाणतिगं दंसणतिगपंचदाणलद्धीओ ।

सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजमो तइए ॥५२॥

नाणचउक्कं, अन्नाणतिगं, दंसणतिगं, पंचदाणलद्धीओ, एए देसखएणं, सम्मत्तं, चारित्तं, “संजमासंजमो” त्ति देसविरओ एए तइए खाओवसमियभावे ॥५२॥

चउगहचउक्कसाया लिंगतिगं लेसछकमण्णाणं ।

मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमो चोत्थभावम्मि ॥५३॥

गहचउक्कं, कसायचउक्कं, वेदतिगं, लेसछकं, अन्नाणं, मिच्छत्तं, “असिद्धत्तं” ति संसारित्तं “असंजमो” त्ति देसओ सव्वओ वा अनियमो १, एए चउत्थे=उदइयभावे एगवीसं ॥५३॥

पंचमगम्मि य भावे जीवाभवत्तभव्वयाईणि ।

पंचण्ह वि भावाणं मेया एमेव तेवण्णा ॥५४॥

जीवत्तं भव्वत्तं अमव्वत्तं आइसहाओ असंखेयपए सत्ताइया ।

इयाणिं पुव्वमेयाणं संपिडियाणं संखा निदंसेइ—पंचण्ह वि भावाणं तेवण्णं मेया होंति । एवं पुव्वकम्मेण दोण्हं नवण्हं अट्टारसण्हं एगवीसाए तिन्हं च संजोयणेण ॥५४॥

संपयं सन्निवाइयभावे मेए संभविणो असंभविणो य दंसेइ—

उदइयखाओवसमियपरिणामेहिं चउरो गहचउक्के ।

खइयजुएहिं वि चउरो तदभावे उवसमजुएहिं ॥५५॥

उदइयं मणुयत्तं, खाओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामियं जीवत्तं, एस तिगजोगो १ एक्को; अन्ने तिगजोगा नेरइयतिरिक्खदेवत्तणे पक्खित्ते मणुयत्ते उस्सारिए होंति । गइमेएण चत्तारि तिगजोगा । तहा एए उदइयखाओवसमियपरिणामियमेया खइयसम्मत्तेण चउजोगो । सो वि चउगइमेएण चत्तारि चउजोगा । अहवा खाइयं उस्सारिय उवसमसम्मत्तेण पक्खित्तेण चउजोगो ३ । ते वि गइचउक्कमेएण चत्तारि चउजोगा । एवं सच्चे वारस होंति ॥५५॥

एक्केको उवसमसेठिसिद्धकेवलिसु एवमविरुद्धा ।

पन्नरस सन्निवाइयमेया वीसं असंभविणो ॥५६॥

उवसमिय-खाइय-खाओवसमिय-ओदइय-पारिणामिएहिं पणजोगे उवसमसेटीए मंगेक्को मणुस्साणं १ । खाइय-पारिणामिएहिं दुगजोगे मंगेक्को य सिद्धाणं २ । खाइय-ओदइय-पारिणामिएहिं तिगजोगे मंगेक्को केवलीणं ३ । एवं एए मंगा संभविया पुच्चुत्ता मंगा वारस उवसमसेठि-सिद्ध-केवलिमंगा तिन्नि ३ । एवं सन्निवाइयभावे पण्णरस मंगा । वीसं असंभविया । ते य इमे-उवसमियं खाइयं १, उवसमियं खाओवसमियं २, उवसमियं उदइयं ३, उवसमियं पारिणामियं ४, खाइयं खाओवसमियं ५, खाइयं उदइयं ६, खाइयं परिणामियं, (१) सिद्धमंगो; उवसमियं उदइयं ७, खाओवसमियं पारिणामियं ८, उदइयं पारिणामियं ९ दुगजोगे नव मंगा, असंभविया; उवसमियं खाइयं खाओवसमियं १, उवसमियं खाइयं ओदइयं २, उवसमियं खाइयं पारिणामियं ३, उवसमियं खाओवसमियं उदइयं ४, उवसमियं खाओवसमं पारिणामियं ५, उवसमियं उदइयं पारिणामियं ६, खाइयं खाओवसमियं उदइयं ७, खाइयं खाओवसमं पारिणामियं ८, तिगजोगे अट्ट असंभविया । खाइयं उदइयं पारिणामियं (२) केवलिमंगो सुद्धो, खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (३) गइचउक्कमंगो ४, एवं तिगजोगे मंगा अट्ट असंभविया, उवसमियं खाइयं खाओवसमियं उदइयं १, उवसमियं खाइयं खाओवसमियं पारिणामियं २, उवसमियं खाइयं उदइयं पारिणामियं ३, उवसमियं खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (४) गइचउक्कमंगो ४, खाइयं खाओवसमं उदइयं पारिणामियं (५) गइचउक्कमंगो ४ । एवं चउक्कजोगे तिन्नि असंभविया । सच्चे वि वीसं असंभविया । उवसमियं खाइयं खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (६) उवसमसेठिमंगो । एवं मंगा २६ । संभविया मंगा ६ । असंभविया मंगा २० ॥५६॥

इयाणि संभविणो जे छन्मंगा ते विसेसजो दंसेह—

दुगजोगो सिद्धाणं केवलिसंसारियाण तिगजोगो ।

चउजोगजुयं चउसु वि गर्इसु मणुयाण पणजोगो ॥५७॥

तत्थ खाइय-पारिणामिएहिं दुहिं जोगो सिद्धाणं । उदइय-खाइय-पारिणामिएहिं केवलीणं । संसारियाणं पुण चउगइयाण वि तिगजोगो उदइय-खाओवसमिय-पारिणामिएहिं । चउजोगो दुविहो चउसु वि गईसु । तत्थ एसो तिगजोगो खाइएण वा उवसमिणण वा चउजोगो । मणुयाण खाइगसम्मदिद्धीणं उवसमसेदिपज्जंतपत्ताणं पंचन्ह वि भावाणं जोगो लब्भइ ॥५७॥

इयाणिं छण्हं भावाणं अट्टकम्मेषु जो जहिं संभवइ तं दंसेइ—

मोहस्सेव उवसमो खाओवसमो चउण्ह घाईणं ।

उदयक्खयपरिणामा अट्टन्ह वि होंति कम्माणं ॥५८॥

मोहणीयस्सेव ओवसमिओ भावो, न पुण अन्नेसिं कम्माणं । नाणवरणदंसाणवरणमोह-णीयअंतराइयाणं धाइकम्माणमेव खाओवसमिओ भावो । उदइयखाइयपारिणामिया तिन्नि भावा अट्टण्ह वि होंति कम्माणं ॥५८॥

इयाणिं गुणट्ठाणगेषु मिच्छदिद्धिपभिईसु एए चेव भावे दंसेइ—

सम्माइचउसु तिगचउभावा चउपणुवसामगुवसंतै ।

चउ खीणेऽपुव्वे तिन्नि सेसगुणठाणगेगजिए ॥५९॥

अविरयसम्मदिद्धिदेसविरयपमत्तअपमत्तेसु चउसु वि खाओवसम-उदइय-पारिणामिया भावा तिन्नि । अहवा उवसमिय-खाइयाणं एगयरे छूदे चत्तारि भावा । “चउपणउवसाम-गुवसंतै” ति । अनियद्धिसुहुमसंपराया उवसामगा, उवसंतमोहो उवसंतो । एएसिं तिण्हं उवसमियं खाओवसमियं उदइयपरिणामा भावा चत्तारि । अहवा पंच खाइयसम्मत्तेण । चउ खीणेऽपुव्वे” ति उदइय-खाओवसमिय-परिणामा खीणमोहस्स अपुव्वकरणस्स य तिन्नि भावा । खीणे चउत्थो खाइओ । अपुव्वकरणस्स पुण चउत्थो खाइगो उवसमिओ वा । “तिन्नि सेस०” ति । तिन्नि भावा सेसाणं गुणट्ठाणगाणं होंति । तत्थ सजोगिअजोगिकेवलीणं खाइय-उदइय-पारिणामिया भावा मिच्छसासणसम्ममिच्छाणं उदइय-खाओवसमिय-पारिणामिया तिन्नि हवंति । “एगजिए” ति एक्केक्कस्स जीवस्स एए सव्वे वि भावा । न उण तग्गुणट्ठाणगयाण अणेगजीवाणं ।

संपयं गुणट्ठाणगेषु पत्तेयं उत्तरभावमेयसंखा भण्णइ । ते पुण एए—

“पपाअंतरायअन्नाणतिन्नि अरुक्कसुवक्खु दस एए । मिच्छे साणे य हवंति मीसए अंतरायपण ॥१॥ नापाविगदंसपातिगं ३मीसं सम्मं च वारस हवंति । एवं च अविरयंमि वि नवरं तहिं दंसणं सुद्धं ॥२॥ देसे ३देसठिवरई तेरसमा तह पमत्तअपमत्ते । मणपक्खवपक्खेवा चउदस अपुव्वकरणे य ॥३॥

१ “मीसगसम्मं” इत्यपि पाठः । २ “य देसविरई तेरसमं” इत्यपि पाठः ।

वेद्यगसम्मेण विणा तेरस जा सुहुमसंपराठ त्ति । ते च्चिय उवसमखीणे चरित्तधिरहेण वारम उ ॥४॥  
 खाओवसमिगमावाण कित्तणा गुणए पडुच्च कया । ओदइयभावमिणिह ते चेष पडुच्च दत्तेमि ॥५॥  
 १ चउगइयाइगवीसं मिच्छे साणे य होंति वीसं च । मिच्छेण विणा मीसे इगुणीसमनाणधिरहेण ॥६॥  
 एमेव अधिरयस्मी सुरनारयगइ वियोगओ देसे । मत्तरम होंति २ते च्चिय तिरियगइ असंजप.मावा ॥७॥  
 पन्नरस पमत्तस्मी अपमत्ते आइलेसतिगधिरहे । ३ते च्चिय धारस सुक्केगलेसओ दस अपुच्चम्मि । ८॥  
 एवं अनियट्टम्मि वि सुहुमे संजळणलोममणुयगई । अंतिमलेसअसिद्धत्ताभावओ जाण चउभावा ॥९॥  
 संजळणलोमधिरहा उवसंतक्खीणकेवलीण तिगं । लेसाभावा जाणसु अजोगिणो भावदुगमेव ॥१०॥  
 अधिरयस्समा उवसंतु जाव उवसमगखइयगा सम्मा । अनियट्टीओ उवसंतु जाव उवसामियं चरणं ॥११॥

५परं उपशमश्रेणिं प्रतिपततो न चटतः ॥

खीणम्मि खइयसम्मं चरणं च दुगं पि जाण समकालं । नव नय खइगा भावा ४जाण सजोगे अजोगे य ॥१२॥  
 जीवत्तामभवत्तं भवत्तं पि हु ५मुणाहि मिच्छम्मि । साणाई खीणते ६दोन्नि अमव्वत्तावज्जा उ ॥१३॥  
 सजोगि अजोगिम्मी जीवत्तं चेष मिच्छमाईण । ससभावमीलणाओ ७भावे मुण सन्निवायम्मि ॥१४॥  
 चउदुगतिगपणचउतिगतीसा वीसा सगदुगवीसा । वीसिगुणवीस तेरस धारस मुण सन्निवायम्मि ॥१५॥ ५६॥

इयाणि एए चेष भावे अजीवेसु भणित्तामो पढमं ताव अजीवट्टाणाणि चउदस भणेइ-

धम्माधम्मनभा तिन्नि दव्वदेसप्पएसओ तिविहा ।

गइठाणअवगाहगुणा अरूविणो कालसमओ य ॥६०॥

धम्मत्थिकायदव्वे पडिपुओ धमत्थिकाओ १, धम्मत्थिकायदव्वदेसे तस्सेव दुभागति-  
 मागाई २, धम्मत्थिदव्वे पएसो निव्विभागा भागा २ । एवमन्नेसु वियाणियव्वं । अधम्मत्थि-  
 कायदव्वे १, अधम्मत्थिकायदव्वदेसे २, अधम्मत्थिकायदव्वप्पएसे ३ । आगासत्थिकायदव्वे  
 १, आगासत्थिकायदव्वदेसा २, आगासत्थिकायदव्वपएसो ३ । “गइठाणअवगाहगुण” त्ति  
 जहासंखं संबंधो गुणपरिणामः । धम्मत्थिकाए गइगुणे । अधम्मत्थिकाए ठाणगुणे । आगासत्थि-  
 काए अवगाहगुणे । “अरूविणो” त्ति अरूविया रूवरसगंधफासरहिया एए नव अजीव-  
 ठाणा तद्वा “कालसमओ” काललक्खणो समओ कालसमओ अरूवी एवं १०॥६०॥

संपयं कालसरूवं रूविअजीवसरूवं च भणेइ —

सो वत्तणाइलिंगो रूविअजीवा उ हुंतिमे चउरो ।

१ “चउगइयाई इगवीस मिच्छसा(स)णे य हुंति” इत्यपि पाठः । २-३ ‘विचिय’ इत्यपि । ४ “यद्य-  
 प्युपशान्तमोहगुणस्थानक औपशमिकं चारित्रमस्ति, तत्रैव सर्वथा चारित्रमोहोपशमात्, तथा-ऽपि  
 नवम-दशमगुणस्थानकद्वये कतिपयचारित्रमोहनीयप्रकृत्युपशमाद् “राजार्हो कुमारो राजा” इति माव्यु-  
 पचाराहोपशमश्रेणिं चटतो जीवत्या-ऽपि नवम-दशमगुणस्थानद्वय औपशमिकं चरणं संभवति, तथा-  
 ऽप्यत्र प्रतिपततो जीवस्य चारित्रमोहनीयस्य नियमत उपशमितत्वेन केवलं भूतोपचारन्यायमाश्रित्यैतदुक्तं  
 सम्मान्यते । ५ “जिणे” इत्यपि । ६ “गुणेसु” इत्यपि । ७ “दु त्ति” इत्यपि पाठः । ८ “भावं मुण संनिवायं  
 ॥१४॥” इत्यपि ।



तत्थ खाइय-पारिणामिएहिं दुहिं जोगो सिद्धाणं । उदइय-खाइय-पारिणामिएहिं केवलीणं । संसारियाणं पुण चउगइयाण वि तिगजोगो उदइय-खाओवसमिय-पारिणामिएहिं । चउजोगो दुविहो चउसु वि गईसु । तत्थ एसो तिगजोगो खाइएण वा उवसमिएण वा चउजोगो । मणुयाण खाइगसम्महिद्धीणं उवसमसेट्ठिपज्जंतपत्ताणं पंचन्ह वि भावाणं जोगो लब्भइ ॥५७॥

इयाणिं छण्हं भावाणं अट्टकम्मेषु जो जहिं संभवइ तं दंसेइ—

मोहस्सेव उवसमो खाओवसमो चउण्ह घाईणं ।

उदयक्खयपरिणामा अट्टन्ह वि होंति कम्माणं ॥५८॥

मोहणीयस्सेव ओवसमिओ भावो, न पुण अन्नेसिं कम्माणं । नाणवरणदंसणावरणमोहणीयअंतराइयाणं घाइकम्माणमेव खाओवसमिओ भावो । उदइयखाइयपारिणामिया तिन्नि भावा अट्टण्ह वि होंति कम्माणं ॥५८॥

इयाणिं गुणट्ठाणगेषु मिच्छदिट्ठिपभिईसु एए चेव भावे दंसेइ—

सम्माइचउसु तिगचउभावा चउपणुवसामगुवसंते ।

चउ खीणेऽपुव्वे तिन्नि सेसगुणठाणगेगजिए ॥५९॥

अविरयसम्महिद्धिदेसविरयपमत्तअपमत्तेसु चउसु वि खाओवसम-उदइय-पारिणामिया भावा तिन्नि ; अहवा उवसमिय-खाइयाणं एगयरे बूढे चत्तारि भावा । “चउपणउवसामगुवसंते” त्ति । अनियट्ठिसुहुमसंपराया उवसामगा, उवसंतमोहो उवसंतो । एएसिं तिण्हं उवसमियं खाओवसमियं उदइयपरिणामा भावा चत्तारि । अहवा पंच खाइयसम्मत्तेण । चउ खीणेऽपुव्वे” त्ति उदइय-खाओवसमिय-परिणामा खीणमोहस्स अपुव्वकरणस्स य तिन्नि भावा । खीणे चउत्थो खाइओ । अपुव्वकरणस्स पुण चउत्थो खाइगो उवसमिओ वा । “तिन्नि सेस०” त्ति । तिन्नि भावा सेसाणं गुणट्ठाणगाणं होंति । तत्थ सजोगिअजोगिकेवलीणं खाइय-उदइय-पारिणामिया भावा मिच्छत्तासणसम्मभिच्छाणं उदइय-खाओवसमिय-पारिणामिया तिन्नि हवंति । “एगजिए” त्ति एके कस्स जीवस्स एए सव्वे वि भावा । न उण तग्गुणट्ठाणगायाण अणेगजीवाणं ।

संपयं गुणट्ठाणगेषु पत्तेयं उत्तरभावमेयसंखा भण्णइ । ते पुण एए—

“पणअंतरायअन्नाणतिन्नि अरुचक्खुचक्खु वस एए । मिच्छे साणे य हवंति मीसए अंतरायपण ॥१॥ नाणतिगदंसणतिगं मीसं सम्मं च बारस हवंति । एवं च अधिरयमि वि नवरं तहिं दंसणं सुद्धं ॥२॥ देसे देसिधिरई तेरसमा तह पमत्तअपमत्ते । मणपत्तवपक्खेवा चउवस अपुव्वकरणे य ॥३॥

वेद्यगसम्प्रेण विणा तेरस जा सुहुमसंपराउ त्ति । ते श्विय उवसमखीणे चरित्तविरहेण वारम उ ॥४॥  
 खाओषसमिगमावाण कित्तणा गुणए पडुच्च कया । ओदइयमावमिण्ह ते चैय पडुच्च दसेमि ॥५॥  
 'चउगइयाइगवीसं मिच्छे साणे य होति वीसं च । मिच्छेण विणा मीसे इगुणीसमनाणधिरहेण ॥६॥  
 एमेव अविरयम्मी सुरनारयगइ वियोगओ देसे । मत्तरम होति ते श्विय तिरियगइ भसंजम.भावा ॥७॥  
 पन्नरस पमत्ताम्मी अपमत्ते आइलेसतिगविरहे । ते श्विय वारस सुक्केगलेसओ दस अपुव्वम्मि । ८॥  
 एवं अनियट्टम्मि वि सुहुमे संजणल्लोममणुयगई । अंतिमलेसअसिद्धत्तामावओ जाण चउभावा ॥९॥  
 संजलणल्लोभविरहा उवसंतक्खीणकेवलीण तिगं । लेसाभावा जाणसु अजोगिणो भावदुगमेव ॥१०॥  
 अविरयसम्मा उवसंतु जाव उवसमगखइयगा सम्मा । अनियट्टीओ उवसंतु जाव उवसामियं चरणं ॥११॥

\*परं उयशमश्रेणिं प्रतिपत्ततो न चटतः ॥

खीणम्मि खइयसम्मं चरणं च दुगं पि जाण समकालं । नव नव खइया भावा जाण सज्जोने अजोने य ॥१२॥  
 जीवत्ताममव्वत्तां मव्वत्तां पि हुं मुणाहिं मिच्छम्मि । साणाई खीणते दोअि अभव्वत्तावजा उ ॥१३॥  
 सज्जोगि अजोगिम्मी जीवत्तां चैव मिच्छमाईण । ससभावमीलणाओ भावे मुण सन्निवायम्मि ॥१४॥  
 चउदुगतिगपणचउतिगतीसा तीसा सगट्टुदुगवीसा । वीसिगुणवीस तेरस वारस मुण सन्निवायम्मि ॥१५॥१५॥

इयाणि एए चैव भावे अजीवेषु भणित्तामो पढमं ताव अजीवट्टाणाणि चउदस मणेइ-  
 धम्माधम्मनभा तिन्नि दव्वदेसप्पएसओ ति विहा ।

गइठाणअवगाहगुणा अरुविणो कालसमओ य ॥६०॥

धम्मत्थिकायदव्वे पट्टिपुत्रो धरमत्थिकाओ १, धम्मत्थिकायदव्वेसे तस्सेव दुभागति-  
 मागाई २, धम्मत्थिदव्वे पएसो निव्विभागा भागा २ । एवमन्नेसु वियाणियव्वं । अधम्मत्थि-  
 कायदव्वे १, अधम्मत्थिकायदव्वेसे २, अधम्मत्थिकायदव्वप्पएसे ३ । आगासत्थिकायदव्वे  
 १, आगासत्थिकायदव्वेसा २, आगासत्थिकायदव्वपएसो ३ । "गइठाणअवगाहगुण" ति  
 जहासंखं संबंधो गुणपरिणामः । धम्मत्थिकाए गइगुणे । अधम्मत्थिकाए ठाणगुणे । आगासत्थि-  
 काए अवगाहगुणे । "अरुविणो" ति अरुविया रुरसगंधफासरहिया एए नव अजीव-  
 ठाणा तहा "कालसमओ" काललव्वखणो समओ कालसमओ अरुवी एवं १०॥६०॥

संपयं कालसरुवं रूविअजीवसरुवं च मणेइ —

सो वचनाइलिंगो रूविअजीवा उ हुंतिमे चउरो ।

१ "चउगइयाई इगवीस मिच्छसा(स)णे य हुंति" इत्यपि पाठः । २-३ 'तिश्विय' इत्यपि । ४ "यद्य-  
 प्युपशान्तमोहगुणस्थानक एवौपशमिकं चारित्रमस्ति, तत्रैव सर्वथा चारित्रमोहोपशमात्, तथा-ऽपि  
 नवम-दशमगुणस्थानकद्वये कविपयचारित्रमोहनीयप्रकृत्युपशमाद् "राजार्हः कुमारो राजा" इति मान्यु-  
 पचाराद्वोपशमश्रेणिं चटतो जीवस्या-ऽपि नवम-दशमगुणस्थानद्वय औपशमिकं चरणं संभवति, तथा-  
 ऽप्यत्र प्रतिपत्ततो जीवस्य चारित्रमोहनीयस्य नियमत उपशमितत्वेन केवलं भूतोपचारन्यायमाश्रित्यैतदुक्तं  
 सम्मान्यते । ५ "जिणे" इत्यपि । ६ "गुणेषु" इत्यपि । ७ "हुं ति" इत्यपि पाठः । ८ "भावं मुण संनिवायं  
 ॥१४॥" इत्यपि ।

खंधा देसपएसा केवलअणवो य ते य पुण ॥६१॥

सोत्ति कालो वत्तणाइल्लिगो=परावत्तणाइल्लक्खणो । आइसद्दाओ अईयाणागयाइ लब्भइ । रूविणो अजीवा चत्तारि । ते य इमे-खंधो दुपएसाइ अणंतपएसिओ जाव, देसपएसा पूर्ववत् केवलं खंधपरिणामरहिया अणवो परमाणवो चउत्थो । पुच्चेहिं सह सव्वे चउदस ॥६१॥

तद्वा चउविहा त्रि रूविणो अजीवा किं गुणा १, इइ जाणत्थं गाहा दंसेइ—

वण्णाइगुणा वंधाइकारणं इय अजीवचउदसगं ।

सव्वे वि हु परिणामे भावे खंधा उदइए वि ॥६२॥

“वन्नाइगुण” त्ति वन्नगंधरसफासपरिणया वंधाइकारणं क्हं ?, भन्नइ, कम्मजोग्गत्ताए परिणयाखंधा जीवा वंधंति ? आइसद्दाओ उदए उदीरणाए सत्ताए य ठविति । एवं वंधाइकारणं । एए चउदस वि अजीवट्टाणा कम्मि भावे वट्टंति?, भण्णइ, सव्वे वि हु पारिणामिए भावे, खंधा उदइए वि भावे वट्टंति । क्हं खंधा एव न सेसा ? भन्नइजओ खंधसंधंधिणो अद्धस्स तिभागस्स वा चउत्थभागस्स वा देसविक्खवा, पएसा निट्ठिभागगा भागा, तस्सेव न जुया देसपएसविक्खवा । कोहोदए जीवस्स कम्मखंधा एव पडिपुत्ता उदए आगच्छंति, न देसपएसा । परमाणवो पुण न कम्मत्ताए परिणमंति । एवं खंधा उदइए भावे, न सेसा । तद्वा अविस्सद्दाओ खयखओवसम-उवसमेसु वि कम्मखंधा वट्टंति कम्मरूपपरिणया । एवं पगइबंधो । पसंगागयं च भणियं ॥६२॥

पोग्गला कम्मबंधकारणं भणिया, अओ तेसिं मूलपगडिच्चेण उत्तरपगतित्तेण बद्धाणं ठिईं जहण्णुकोसं भणित्तामो पढमं ताव मूलपगडिणं उक्कोसठिईं भण्णइ—

मोहे कोडाकीडीउ सत्तरिं वीम नामगोयाणं ।

तीमियराण चउण्हं तेत्तीसयराइँ आउस्स ॥६३॥

मोहणीयस्स सत्तरिकोडाकोडी उक्कोसो ठीह बंधो, नामस्स गोयस्स य वीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो. तीसं पुण इयराणं नाणावग्णीयवेयणीयअंतरायाणं उक्कोसो ठिइबंधो, “तेत्तीस-यराइँ”त्ति, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि “आउस्स”त्ति आउकम्मस्स उक्कोसो ठिइबंधो ॥६३॥

इयाणि मूलपगडिणं जहन्ना ठिईं दंसइ—

मोत्तु मकसाय दस्सा ठिइ वेयणियस्म बारस मुहुत्ता ।

अट्टट्ट नामगोयाण सेसयाणं मुहुत्तंतो ॥६४॥

अकसाइणो=उवसंतमोह-खीणमोह सजोगिकेवल्लिणो मृत्तुं=परिवज्जिय एएसिं वेयणियठिईं, सेसयाणं बंधगाणं वेयणीयस्स ठिईं दस्सा=जहन्ना बारस मुहुत्ता । जओ तेसिं सामइओ बंधो । एसा य पुण जहन्नाइईं बंधगरस मुहुमसंपरायस्स अंते लब्भइ । नामस्स गोयस्स य अट्टट्टमुहुत्त ॥

सेसाणं नाणावरणदंसणावरणअंतरायमोहणीयआयुष्कार्णां अंतमुहुत्तं जहन्नो तिइबंधो ॥६४॥

इयाणि पत्तेयं पत्तेयं उक्कोसा ठिई उत्तरपयडीणं भन्नइ—

तीसं कोडाकोडी असायआवरणअंतरायाणं ।

मिच्छे सत्तरि मित्थीमणुदुगसायाण पन्नरस ॥६५॥

असायवेयणीयस्स नाणावरणपणगस्स दंसणावरणनवगस्स अंतरायपणगस्स य तीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो । इत्थीवेयस्स मणुयदुगस्स सायावेयणीयस्स य पन्नरस कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो ॥६५॥

संघयणे संठाणे पढमे दस उवरिमेसु दुगवुड्ढी ।

चालीस कसाएसु अट्टारस विगलसुहुमतिगे ॥६६॥

पढमाणं वज्जरिसभनारायसमचउरंसाणं कोडाकोडी दस उक्कोसो ठिइबंधो । उवरिमेसु दुगेण सागरोवमाण कोडाकोडीणं वुड्ढी फायव्वा । जहा वज्जनारायनग्गोहारणं कोडाकोडी वारस । नारायसंघयणसाइसंठाणाणं कोडाकोडी चउदस । अट्टनारायसंघयणखुज्जसंठाणाणं कोडाकोडी सोलस । खीलियसंघयणवामणसंठाणाणं तथा उत्तरद्वनिद्धिटाणं विगलसुहुमतिगाणं कोडाकोडी अट्टारस उक्कोसो ठिइबंधो । सोलसणं कसायाणं पुण कोडाकोडीओ चालीसं ॥६६॥

दस दस सुक्किलमहुराण सुरभिनिद्धुण्हमिउलहूणं च ।

अड्ढाइज्जपवुड्ढा ते हालिइबिलार्इणं ॥६७॥

सुक्किलवण्णमहुरससुरभिगंधनिद्धफासउण्हफासमउयफासलहुयफासाणं दस दस कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो । “अड्ढाइज्जपवुड्ढ” ति अड्ढाइज्जाहि सागरोवमकोडाकोडीहिं पवुड्ढि-मागया ‘ते’ ति सुक्किलार्इणं ठिइविसेसा दससागरोवमलक्खणा, हालिइअंबिलार्इणं दुण्हं ॥ उक्कोसा ठिई भवइ । तथाहि—हालिइवन्नअंबिलरसाणं कोडाकोडी सड्ढुवारस उक्कोसा ठिई । लोहियवन्नकसायरसाणं कोडाकोडी पन्नेरस नीलवन्नकड्डयरसाणं कोडाकोडी सड्ढुसचरस ॥६७॥

हासरइपुरिसउच्चे सुमखगइथिराइल्लकदेवदुगे ।

दस सेसाणं वीसा एवइयाबाहवाससया ॥६८॥

हासरइ पुरिसवेओ उच्चागोयं सुमखगई, थिराइल्लकं, देवदुगं, एएसिं दसकोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो । एए तियासी पगइओ ।

इयाणि उद्धरियपगईणं उक्कोसो ठिइबंधो दंसेइ—“सेसाणं धीस” ति सेसाणं तस-चउक्काईणं वीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो होइ । ता य पगईओ इमाओ—

तसचठ ४ तिरि ९ निरयदुगा तेयविउवुरलसत्तगा हुंढं । पढमंतजाइर कुवगाइ कुन्ननवगं अकडुनीलं ॥  
पत्तेया य अतित्या थावरअथिराःछक्कञ्चट्टं । सोगारइमयकुच्छानपुंसनिगसट्टिवीसिष्का ॥

‘नि’ त्ति नीयागोयं, ‘इगसट्टिसिष्क’ त्ति एयाए एगसट्टीए पयडीणं वीसं सागरोवम-  
कोडाकोडी उक्कोसो ठिइवंधो । “एवइयाथाहवाससय” त्ति जस्स जत्तियाओ सागरोवम-  
कोडाकोडीओ उक्कोमा ठीई तस्स कम्मस्स तेत्तिया वाससया अवाहा=अणुदयकालो । एस  
उक्कोसो वुच्चइ । अन्नहा पओगोदये तस्सेव बंधावल्लियाए गयाए उदीरणाकरणेण उदय-  
संभवाओ ॥६८॥

अंतोकोडाकोडी तित्थाहाराण जेट्टिठिइवंधो ।

अतमुहुत्तमवाहा इयरो संखेज्जगुणहीणो ॥६९॥

तित्थयरनामस्स आहारसत्तगस्स य अंतो=मज्जे कोडाकोडीए उक्कोसो ठिइवंधो ।  
“अंतमुहुत्तं” त्ति अवाहा पुण अंतोमुहुत्तमेव । तथा इयरो=जहन्नो बंधो पुण एसो य अंतो-  
कोडाकोडीरूवो संखेज्जगुणकारेण हीणो कओ होइ । नणु तित्थयरनामस्स अंतोमुहुत्तं कइं  
अवाहा ? । ‘याव ता बज्जइ तं तु भगवओ तइयभवोसक्कइत्ताणं मि’ त्ति वचनात् , संख्यातोऽसंख्या-  
तोऽपि कालो लहइ त्ति कइं ? मच्चइ-तित्थयरनामस्स पओगेण उदिन्नस्स आणाईसरियाइओ  
लद्धीओ, अन्नजीवेहिंतो विरेसतराओहोति त्ति एएण कारणेण संभवइ । अन्नहा कइं अंतोमुहुत्तं  
अवाहा । अओ संभाविज्जइ वद्धस्स अणुदीरणा कालो अवाहा । अन्नो अभिप्पाओ सुयकेव-  
लिणो मुणंति । तित्थयरस्स उक्कोसो अविरए । अपमत्ते पुण उक्कोसो आहारस्स जहन्नो  
दोणइ वि अपुव्वकरणे ठिइवंधो ॥६९॥

तेत्तीसुदही सुरनारयाउ नरनिरियआउ पल्लतिगं ।

निरुवकमाण छ मासा अन्नाह सेसाण भवतंसो ॥७०॥

तेत्तीसं सागरोवमाइं उक्कोसो ठिइवंधो सुराणं नारयाणं होइ । नराणं तिरियाणं च आउस्स  
उक्कोसो ठिइवंधो पल्लतिगं=तिन्नि पलिओवमाणि । तथा निरुवकमाणं=सुरनारयाणं असंख-  
वासाउणं मणुयतिरियाणं च परभवियआउयस्स बद्धस्स छमासा यावत् अन्नाहाकालो । सेसाणं=  
नरतिरियाणं संखिज्जवासाउयाणं पुण नियनियभवस्स तंसो=चतुर्थभागः । अवाहाकालो  
उक्कोसो ॥७०॥

संपयं असन्निपंचेंदियाई जे जीवा परमवियं आउं बंधंति, तं दंसेइ—

तह पुव्वकोडिपरओ इगिविगलिंदी न बंधए आउं ।

आउचउ परमबंधो पल्लासंखंसममणेषु ॥७१॥





मिच्छत्तठिईए भागे हरिए, लद्धा टोभि सागरसत्तभागा ३ । एसो य मिच्छत्तठिईभागलद्धो ठीवंधो एगिंदियाणं मणिओ उक्कोसो, जहन्नगो पलिओवमस्स असंखेजइभागेण उणगो, १३३ सच्चिस्स उक्कोसो जहन्नो, एगिंदियस्स उक्कोसजहन्नो मणिओ' ॥७३॥

इयाणि तेवीसाए मणियसेसाए तहा विगल्लिंदियअसच्चिपज्जवसाणाणं जेण कम्मणेण उक्कोसो जहन्नओ य होइ तं दंसेइ—

एसेगिंदियजिट्ठो पलियाऽसंखंमहीण लहुबंधो ।

पणुवीसा पन्नामा सयं सहस्सं च गुणकारो ॥७४॥

कमसो विगलअसन्नीण पल्लसंखंसउणओ डहरो ।

सुरनरयाउ समा दस सहस्स सेसाउ खुड्डुभवं ॥७५॥

तहा "एसो"त्ति उवलक्खणं । जओ जासिं पुच्चं खवगमासज्ज "वंसणच्चउविग्घावरण" इच्छाइ वावीसं पयडी मणियाओ. तासिं एगिंदियाणं पि मिच्छत्तठिईए भागे हरिए जं लच्चमइ, सो उक्कोसजहन्नो ठिइवंधो हवइ । तत्थ दंसणच्चउक्कस्स उक्कोसो ठिइवंधो तीसं कोडाकोडीओ मिच्छत्तठिईए भागे हरिए लद्धा तिभि सागरसत्तभागा ३ । अंतरायनाणावरणाणं पुण तीसं कोडाकोडीओ तेसिं मिच्छत्तठिईए भागे हरिए लद्धा तिभि सागरसत्तभागा ३ । संजलनच्चउक्कस्स पुच्चुत्ता चत्तारि भागा कसायदारेण पुरिसवेयजसक्किच्चिउच्चगोयाणं दसकोडाकोडीओ उक्कोस-ठिईवंधो, तस्स भागे हरिए लद्धो एगो सत्तभागो ३ सायरस्स पन्नरसकोडाकोडीओ, तीसे भागे हरिए लद्धो एगो सत्तभागो. जहिं वीसहिं भागेहिं सागरसत्तभागो होइ, ते दस भागा ३ । ३३ । तहा एसो चैव एगिंदियजेट्ठो ठिइवंधो, पणुवीसाए पन्नासाए सएण सहस्सेण गुणिओ कमसो परिवाडीए वेइंदियतेइंदियच्चउरिंदियअसन्नीणं उक्कोसो ठिइवंधो हवइ । तत्थ पणुवीसाए गुणिओ वेइंदियाणं; तत्थ जे चत्तारि सागरसत्तभागा, ते पंचवीसाए गुणिया जायं सयं सागरसत्तभागाणं १००; तओ सत्तहिं भागे हरिए लद्धाणि चउदस सागरोवमाणि दो सत्तभागा १०३ । जत्थ पुण तिभि, तत्थ पंचवीसाए गुणिया जाया पंचहत्तरी ७५; तओ सत्तहिं भागे हरिए लद्धाणि दस सागरोवमाणि पंच सागरसत्तभागा १०३ । जत्थ सत्त सत्तभागा, ते वि पणुवीसाए गुणिया जायं पंचहत्तरं सयं; तओ भागे हरिए जायाणि पंचवीसं सागरोवमाणि २५ । तहा सत्त-दसण्हं पयडीणं जो सागरसत्तभागो सो पणुवीसाए गुणिओ जाया पणुवीसं २५; तओ सत्तहिं भागे हरिए लद्धाणि तिभि सागरोवमाणि चत्तारि सत्तभागा ३३ । जत्थ पुण एगो सत्तभागो चत्तारि सागरसत्तभागस्स वीसभागा संति; तत्थ ताव एगो भागो पणुवीसाए गुणिय सत्तहिं



हरियाः लद्वाणि सागरोवमाणि तिन्नि चत्तारि सत्त भागा य । तहा वीस चत्तारि भागा गुणिया जायं सयं; तओ वीसाए भागे हरिए लद्वा पंच सागरसत्तभागा; तओ पुव्वुव्वरिय चउहिं सह नव सव्वे तओ सत्तहि भागे एगंसागरोवमं दो य सत्तभागेण द्विया सव्वं मिलियं चत्तारि सागरोवमाणि दो सागरसत्तभागा ५३ । एवं एएण कमेण जत्थ एगो सत्तभागो सत्तभागस्स वीसभागा य अट्ठ; तत्थ पंचसागरोवमाणि होंति ५ । तहा जत्थ एगो सत्तभागो सत्तभागस्स वीसभागा वारस; तत्थ पंचसागरोवमाणि पंच सत्तभागा ५३ । तहा जत्थ एगो सत्तभागो सत्तभागस्स सोलसवीसभागा; तत्थ छ सागरोवमाणि तिन्नि सत्तभागा ५३ । जत्थ पुण एगो सत्तभागो सत्तभागस्स वीसभागा पंच; तत्थ चत्तारि सागरोवमाणि तिन्नि भागा, सत्तभागस्य वीसभागा पंच ५३ । ५३ । जत्थ पुण एगो सत्तभागो दस वीसभागा; तत्थ पंच सागरोवमाणि दोन्नि सत्तभागा दस वीसभागा ५३ । ३३ । जत्थ पुण एगो सत्तभागो पन्नरस वीसभागा; तत्थ छ सागरोवमाणि एगो सत्तभागो पन्नरस वीसभागा ५३ । ३३ । तहा जत्थ दोण्णि सत्तभागा; तत्थ सत्त सागरोवमाणि एगो सत्तभागो ७३ । तहा जत्थ एगो सत्तभागो तत्थ तिन्नि सागरोवमाणि चत्तारि सत्तभागा ७३ । एवं एएसु वि सागरोवमसत्तभागेसु सागरोवमसत्तभागवीसभागेसु वा पन्नासाए सएण सहसेण य गुणिएसु जे रासीओ उप्पज्जंति, जहासंभवं भागे पाडिए; ते गणियगणनकुसलेण सयमेव उप्पाइयव्वा । तहा सुराणं नारयाणं च आउयं जहन्नं दसवरिससहस्साणि । सेसाणं नरतिरियाणं आउयस्स जहन्नो वंधो खुब्भवो वक्खमाणो ॥७४-७५॥

संपयं वेउव्विच्छक्कस्स मयंतरेणं तित्थाहाराणं च जहन्नियं ठिइं दंसेइ-

सहसगुणेगिंदिठिई विउव्विच्छक्के जओ अमन्निसु तं ।

केसिं च सुराउसमं तित्थं आहारगंतमुहू ॥७६॥

एयाए गाहाए वक्खाणं इह जह वि 'सेसाणुक्कोसाओ विच्छत्तठिईए जं लद्धं ॥७३॥' ति वयणाओ वेउव्वियच्छक्कस्स सामन्नेण एगिंदियाणं ठिइवंधो लब्भइ, तहा वि सो एगिंदियठिईवंधो सहस्सगुणो होंति "वेउव्वियच्छक्करस" ति वेउव्वियएकारसगस्स हवइ । कम्हा ? जओ "असन्निसु" ति संमुच्छिमेसु तं वेउव्वियएकारसं वंधमागच्छइ, न एगिंदियाणं । तत्थ देवदुगस्स एगम्मि सत्तभाए सहस्सेण गुणिए सत्तहि भइए लद्धं सयमेगं विचत्तालं सागरोवमाणं छच्च सत्तभागा य सागरस्स १४२ । ३ । निरयदुगस्स वेउव्वियसत्तगस्स य दोसु सत्तभागेसु सहस्सगुणिए सत्तहिं भइएसु लद्धं एयं चेव दुगुणं २५५ । ३ । तहा केसिं च आयारियाणं मएणं सुराउसमं=देवाउत्तुल्लं=दसवरिससहस्स ति गमत्थो, तित्थंकरनामगुचं वज्झइ । आहारगस्स "अंतमुहुत्तं" ति, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ठिई होइ ति ॥७६॥

इयाणि ठिइबंधो जहन्नओ नस्स अवाहाकालो जो होइ तं दंसेइ-

भिन्नमुहुत्तमबाहा सव्वासिं सव्वहिं डहरबंधे ।

आउसु जेट्ठे वि जओ संखेप्पद्धा भवइ तेसु ॥७७॥

‘भिन्नमुहुत्त’ ति अंतोमुहुत्तं अबाहा=अणुदओ सव्वासिं=पूलुत्तरपगईणं ‘सव्वहिं’ ति सव्वेसु जीवट्टाणाईसु “डहरबंधे” ति जहन्नबंधे पुव्वभणिण । आउए पुण अवाहाह “आउसु जेट्ठि” ति आऊणं जेट्ठे वि=उकोसे वि ठिइबंधे अंतोमुहुत्तं कम्हा ? जओ “असंखेप्पि” ति असंखेप्पा=संकोचिउमशयया अद्धा=कालो भवइ तेसु=आउसु । तहाहि=इह परभवियाउस्स बंधो इहमवाउयतिभागे तदभावे सेसस्स तिभाए एवं तिभागा तिभागा कप्पणाए जाव अंतो तिभागो सो य असंखेप्पद्धा मन्नइ ॥७७॥

तिरियमणयाणं ठिइबंधो जहन्नो खुड्ढभवप्पमाणो मणिओ । अओ इयाणि खुड्ढभवं पन्नवेइ-

खुड्ढभवा साहीया सत्तरस भवंति एगपाणुम्मि ।

पाणू एगमुहुत्ते तिसत्तरीसत्ततीससया ॥७८॥

खुड्ढभवा=खुड्ढागभवलक्षणया, सत्तरससंखा समन्निया किंचित्, साहिया चउणवइ-आवलएहिं किंचि अहिएहिं, कत्थ ?, “एगपाणुम्मि” ति एगे ऊसासनिसासे । तहा “पाणू” ति ऊसासनिसासा एकम्मि मुहुत्ते दुवडियपमाणे “तिसत्तरि” ति तिसत्तरीए अहियाणि सत्ततीसं सयाणि भवंति ॥७८॥

संपयं मुहुत्ते खुड्ढभवप्पमाणमाह—

पणसट्ठिसहसपणसय छत्तीसा इगमुहुत्तखुड्ढभवा ।

दो य सया छप्पन्ना आवलियाणेगखुड्ढभवे ॥७९॥

एगम्मि मुहुत्ते पणसट्ठिसहससा पंचसया छत्तीसा य खुड्ढभवा होंति । तहा दो य सया-छप्पन्ना आवलियाणं एकस्मिन् खुड्ढभवे होंति ।

इयाणि जहा एगम्मि पाणुम्मि सत्तरस खुड्ढभवा साहिया होंति, तहा कहिज्जइ-इह कहियस्स एयस्स ६५५३६ मुहुत्ते ठियखुड्ढगमवगहणरासिस्स सत्ततीसाए सएहिं तिहत्तरेहिं ऊसासाणं भागो हीरइ । तत्थ लब्भहिं सत्तरसखुड्ढभवा । सेसं उव्वरियं तेरस सया पंचाणउया अंसाणं । इह अयं भावत्थो-जेसिं अंसाण तिहिं सहस्सेहिं सत्तहिं सएहिं तिहत्तरीए य खुड्ढगमवगहणं होइ ते एए अंसा । तत्र स्थापना १०३३३३ । तओ एए अंसा दोहिं सएहिं छप्पन्नेहिं खुड्ढ-भवप्पमाणेहिं आवलियाणं गुणिय आवलियाओ कीरंति । ३५७१२० । मुहुत्तऊसासेहिं भागो

हीरह । लद्धा आवलि ६४ । आवलिमागा ३५५६ । एवं सत्तरस भवा साहीया हवंति । मुहुत्ता-  
वलियाओ मुहुत्तरुद्धभवावलियाहि गुणिया । ताओ दो सयाणि सोलहुत्तराणि सत्तहत्तरि  
सहस्सा सत्तपद्दी लक्खा एगा कोडी य १६७७७२१६ हवंति । उक्तं च-

“सोलुत्तरवोन्निसया सत्तत्तरिसहसलक्खसयसद्दी । एगा कोडी आवलियाणं मणिया मुहुत्तम्मि ॥१॥”

संपयं स्थितिप्रस्तावादेव किंपि गुणद्वान्गेषु मणोइ—

अयरंतकोडिकोडीओ अहिगो सासणाइसु न वंधो ।

हीणो न अपुव्वंतेसु नेव य अभव्वसन्निम्मि ॥८०॥

अयराणं=सागरोवमाणं अंतोकोडाकोडीओ=कोडाकोडीमज्जाओ अहिओ कोडाकोडीरूवो  
न हवइ वंधो सासायणपमुहगुणद्वान्गेषु, विसोहिवसेण तहाविहट्ठिइवंधाभावाओ । कोइ  
मणिज्जा अंतोकोडाकोडीए वि न हवेज्जा, अओ निसेहइ । हीणो=पडिओ अंतोकोडाकोडीओ  
न होइ । तहा विसोहिवसओ कमेण संखेज्जगुणहीणो पायसो मविज्जा । सो वि अंतोकोडा-  
कोडीओ चेव । अपुव्वंतेसु=अपुव्वकरणगुणद्वान् जाव, तहा “नेव य अभव्वसन्निम्मि”  
त्ति अभव्वसन्निपज्जेवि अंतोकोडाकोडीओ हीणो वंधो न होइ । सो वि अन्नेसि संखेज्जगुणो  
पाएण ॥८०॥

संपयं संजयाणं उक्कोसओ देसविरयाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं अविरयसम्मदिट्ठीणं सन्नीयं  
च ठिइवंधो जहन्नो उक्कोसो य भिन्नो भिन्नो भन्नइ-

अमणुक्कोसाओ विरयउक्कोसो देसविरयहस्सियरो ।

चउसम्मसन्निचउरो ठिइवंधाऽणुकमसंखगुणो ॥८१॥

“अमणुक्कोसाओ” इइ मणंतेण सुत्तकारेण अन्ने वि ठिईओ जहन्नुक्कोसठिईवंधगा सव्वे  
वि सुइया । जहा कम्मपयदीए छत्तीसं पयाणं कम्मस्स ठिइवंधो उक्कोसजहन्नओ मणिओ । इत्थ पुण  
सुत्तयारेण अंतिल्लाण एकारसन्हं चेव पयाणं उक्कोसो जहन्नो वि ठिइवंधो मणिओ । अओ पढमं  
ताव आइल्लाणि पणवीसपयाणि दंसिज्जंति । तओ पच्छा गाहा वक्खाणेज्जिही सो य इमो—

“धोवो इइ ठिइवंधो संजयजीवस्स सो य अंतमुहु १, तत्तो असंखगुणिओ भायरएणिदियजहन्नो ॥१॥  
तत्तो सुहमि समत्ते ३, भायर ४, सुहमे अपज्जय ५, जहन्नो । कम्मो विसेसअहिओ सुहुमि ६, यरि ७, अपज्जजेट्टो य ॥२॥  
सुहुमे ८, यर ९, पज्जेसुं कम्मसो विसेसअहिओ ठिई वंधो । तत्तो संखेज्जगुणो बेदिय १० पज्जत्तयजहन्नो ॥३॥  
अपज्जत्त ११, जहन्नो तस्सेवुक्कोसगो य १२, ठीवंधो । पज्जत्तोसुक्कोसो कम्मसो अहिओ य तिण्हंपि ॥४॥  
एवं तिचउ अमणिधियाण पढमे पयम्मि संखगुणो । सेसेसु विसेसअहिओ नेयन्नो जाव पणवीसं ॥५॥”

पसंगागयं सव्वजीवद्वान्गेषु सव्वासिं जहन्नुक्कोसठिईणं अप्पावहुगं भन्न—

तत्थ सव्वत्थोवो संजयस्स जहन्नगो ठिइबंधो सो य अंतमुहुत्तपमाणो १, एगिंदियवायर पज्जत्तगस्स जहन्नओ ठिइबंधो असंखेज्जगुणो २, सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहन्नगो ठिइबंधो विसेसाहिओ ३, वायरअपज्जत्तगस्स जहन्नो विसेसाहिओ ४, सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नगो विसेसाहिओ ५, तस्सेवुक्कोसठिइबंधो विसेसाहिओ ६, वायरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ ७, सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ ८, वायरस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ ९ तत्थ वेइंदिय पज्जत्तगस्स जहन्नगो संखेयगुणो १०, अपज्जत्तगस्स जहन्नगो विसेसाहिओ ११. तस्सेव य उक्कोसगो विसेसाहिओ १२, वेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसओ विसेसाहिओ १३, तेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नो संखिअगुणो १४, तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहन्नगो विसेसाहिओ १५, तस्सेव य उक्कोसो विसेसाहिओ १६, तेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ १७, चउरिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नो संखेज्जगुणो १८, अपज्जत्तगस्स जहन्नो विसेसाहिओ १९, तस्सेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ २०, चतुरिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ २१, असन्निपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नगो ठिइबंधो संखेज्जगुणो २२, तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहन्नो विसेसाहिओ २३, तस्सेवुक्कोसगो विसेसाहिओ २४, असन्निपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो ठिइबंधो विसेसाहिओ २५ ।

इयाणि गाहा वक्खाणिज्जइ—

तत्थ अमणाणं=अमन्नीणं पज्जत्ताणं 'उक्कोसठिइबंधा विरयरस्स=संजयस्स ठिइबंधो उक्कोसगो संखेज्जगुणो २६, देसविरयइस्सिपरो' ति संजयठिइबंधाओ देसविरयस्स हस्सो=जहन्नो संखेज्जगुणो २७, 'इयरो' ति तस्सेव देसविरयस्स इयरो=उक्कोसो संखेज्जगुणो २८, 'सम्मच्चउ' ति असंजयसम्मदिट्ठी पज्जत्तअपज्जत्तगाणं जहन्नुक्कोसगं ति मणियं होइ, देसविरयउक्कोसओ असंजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स जहन्नो ठिइबंधो संखेज्जगुणो २९, तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहन्नो संखेज्जगुणो ३०, तस्सेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसओ संखेज्जगुणो ३१, तओ असंजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो संखेज्जगुणो ३२, सन्निचउरो ति पज्जत्तापज्जत्तसन्नीणं उक्कोसजहन्नमेएण चउण्हं, तओ, असंजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसगाओ ठिइबंधाओ सन्निपज्जत्तस्स जहन्नो ठिइबंधो संखेज्जगुणो ३३, तओ तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहन्नो संखेज्जगुणो ३४, तओ तस्सेव अपज्जउक्कोसो संखेज्जगुणो ३५, कोडाकोडीए अन्निंतरे चैव जइ वि कमेण बुद्धिमागओ तहा वि सन्निस्स पज्जत्तगस्स अपज्जत्तुक्कोसाओ उक्कोसो संखेज्जगुणो ३६, एवं संजयस्स उक्कोसाओ आढत्तो कोडाकोडीओ अन्निंतरो भवइ पणतीसं नाव उक्कोसो सन्निस्स होइ पज्जत्तग-

स्सेवत्ति । पुव्वं सामन्नेण जो उक्कोसगो ठिइबंधो भणियो, सो सन्निस्स पज्जत्तगस्स मिच्छ  
द्विट्ठिस्स चेव भवइ ॥८०॥

ठिईबंधयरूपणा भणिया । ताणं उक्कोसाणं जहन्नाणं जे सामिणो ते इयाणिं भन्नांति-

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणां कुणंति ठिई ।

एगिंदिया जहन्नं असन्निखवगा य काणं पि ॥८२॥

सव्वाण वि सुभाणं असुभाणं पयडीणं मूलुत्तराणं उक्कोमं ठिइबंधं सन्निणो कुणंति=निव्व-  
त्तंति, न सेमा जीवा । भणियं च- 'उक्कोसो सन्निस्म होइ पज्जत्तगस्सेव' जओ तेसिं चेव तहाविह-  
परिणामसम्भावो । तहा जहन्नं पुण ठिइबंधं एगिंदियपज्जत्तगा निव्वत्तिति एगारसुत्तरपयडि-  
सयस्स छप्पन्नसयस्स मज्झाओ । तहा "असन्निणो" ति "काणंपि" ति संबज्झइ सव्वत्थ । तओ  
असन्निणो पंचेदिया वेउव्विककारसगस्स पुव्वभणियस्स जहन्नं ठिई, तहा खवगा "दंसण-  
चउव्विग्घावरण" इच्चाइवावीसपयडीणं जहन्नं ठिई कुणंति । चकारात् तु अपुव्वकरणो आहार-  
सत्तगस्स तित्थयरनामस्स य, तिरिमणुया आउयचउकस्स जहन्नठिइबंधगा । उक्तं च-

"आहारयतित्थयरं नियट्ठि अन्नियट्ठि पुरिससंजलणा । बंधइ सुहमसरागो सायजसुष्वावरणधिग्घं ॥ १ ॥  
'छन्द्मसन्नी कुग्गइ जहन्नठिइमात्तगाणमन्नयरो । सेसाणं पज्जत्तो वायरएगिंदियविसुद्धो ॥२॥" ॥८२॥

संपयं एयासिं ठिईणं जेण परिणामेण सुभाणं वा असुभाणं वा सम्भावो तं भन्नइ-

सव्वाणुक्कोमठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेणं ।

इयराउ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मुत्तुं ॥८३॥

सव्वाणं पुन्नरूपाणं पावरूवाणं च उक्कोसा जा ठिई सा सव्वा असुभा । जं अइसंकिलेसेण=  
अइतिव्वकसाउदएण असुभा वज्झइ । जओ मिच्छद्विट्ठी आहारगसत्तगस्स तित्थयरनामदेवा-  
उयमणुयतिरियाउत्तज्जाणं सव्वपयडीणं सुभाणं असुभाणं वा उक्कोसं संकिलिट्ठो ठी बंधइ । तत्थ  
असुमपयडीणं ठिई तिव्वरसा कइविवागा असुमफलरसेणेव कइविवागवत् । सुभाणं पुण बालुय  
कवल्लोपमा नीरसा तत्तओ असुभा चेव तहा तित्थयरनामस्स अविरयसम्मद्विट्ठी, आहारसत्तगस्स  
अपमत्तसंजओ तप्पाओगसंकिलिट्ठो उक्कोसठिई बंधइ । संकिलेसो=कसाओदओ सो असुभो चेव ।  
इयरा पुण जहन्ना ठिई, सा य विसोहीए बंधं पइच्च कसायहासरूवा एसा सुभा । असुभाणं  
असुभा चेव तहा वि विसोहीए निवरसवहुओउदगमीसरसलववत् सुभा इव लक्खिज्जइ । अओ  
सुमासुभाणं सुभा चेव । इक्खुरसवहुपाणियरसवत् "सुरनरतिरियाउए मुत्तुं" ति देवमणुयति-

रियाउआण विवरीयं, कंहं विवरीयं ? मन्नइ,—एएसिं जा जा उ ठिई उक्कोसा सा विसोहीए चैव भवइ । जहन्ना पुण संक्खिसेण त्ति । देवाउयस्स सन्वद्दुठे, मणुयतिरियाउयाणं उत्तरकुरुभोग-भूमीए, सा सुमा चैव; अओ वुत्तं, सुरनरतिरियाउए मुत्तुं=परिवज्जिय ॥८३॥

पसंगागयं मन्नइ । एयाउ ठिईओ योगसहिएणं जीवनियवीरिएणं वज्जंति । अओ जीव-ठाणेषु जस्स जेत्तिया जोगवुद्धी, तस्स अप्पवहुत्तं दंसेइ—

सुहुमनिगोयाइखणे जोगो थोवो तओ असंखगुणो ।

वायर'बितियचउरमणसन्निअपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥

पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा ।

असमत्तसुक्कोसो पज्जत्तजहन्नजेट्ठो य ॥८५॥

सुहुमनिगोयस्स=साहारणसुहमस्स लद्धीए अप्पज्जत्तगस्स आइक्खणे=पढमसमए वड्डमा-णस्स अप्पविरियलद्धिस्स जहन्नओ जोगो सो य थोवो । तओ वायरएगिंदियस्स अप्पज्जत्तगस्स जहन्नो जोगो असंखेज्जगुणो । तओ वेइंदियस्स अप्पज्जत्तगजहन्नो असंखेज्जगुणो । तओ तेइंदियस्स अप्पज्जत्तगस्स जहन्नो असंखगुणो । एवं चउरिंदियअप्पज्जत्तगस्स असन्धिपंचिंदियस्स अप्पज्जत्तगस्स सन्धिपंचिंदियस्स अप्पज्जत्तगस्स भाणियच्चं पढमदुगुक्कोस त्ति पढमदुगं जाइदुगं सुहुमवायरएगिंदिया अप्पज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो । तओ परिवाहीए सन्धिअप्पज्जत्तजहन्नाओ सुहुमस्स अप्पज्जत्तगस्स उक्कोसो जोगो असंखेज्जगुणो । तओ वायरस्स अप्पज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो । “सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा”त्ति तेसिं चैव सुहुमवायराणं पज्जत्तगाण करणं पडुच्च जहन्नो इयरो=उक्कोसो य क्रमेण असंखेज्जगुणो । जहा तओ सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहन्नओ जोगो असंखेज्जगुणो । (तओ) वायरस्स पज्जत्तगस्स जहन्नओ असंखेज्जगुणो । तओ सुहुम-पज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो । तओ वायरपज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो । “अस्स-मत्तसुक्कोसु” त्ति असमत्ता=अपर्याप्ता जे तसा=वेइंदियतेइंदियाणो तेसिं उक्कोसो नहक्कमं असंखेज्जगुणो नेयव्वो । जहा वायरपज्जत्तगस्स उक्कोसाओ वेइंदियअप्पज्जत्तगस्स उक्कोसाओ जोगो असंखेज्जगुणो । एवं तेइंदियअप्पज्जत्तगचउरिंदियअप्पज्जत्तगअसन्धिपंचिंदियअप्पज्जत्तग-सन्धिपंचिंदियअप्पज्जत्ताणं क्रमेण असंखेज्जगुणो उक्कोसो जोगो होइ । एए सव्वे लद्धिपज्जत्तगा चैव गहिया । “पज्जत्तजहन्नजेट्ठो य”त्ति तेषामेव वेइंदियाईणं पज्जत्ताणं जहन्नो ‘जेट्ठो य’ त्ति उक्कोसो जोगो क्रमेण असंखेज्जगुणो फायव्वो । जहा सन्धिपंचेइंदियअप्पज्जत्तउक्कोसाउ वेइंदियपज्जत्तस्स जहन्नजोगो असंखेज्जगुणो । तओ तेइंदियपज्जत्तजहन्नो असंखेज्जगुणो ।

१. “दियवियचउमण” इत्यपि ।

स्सेवति । पुत्रं सामन्नेण जो उक्कोसगो ठिइबंधो भणियो, सो सन्निसस पज्जत्तगस्स मिच्छ-  
द्विट्ठिस्स चेव भवइ ॥८०॥

ठिइबंधपरूपणा भणिया । ताणं उक्कोसाणं जहन्नाणं जे सामिणो ते इयाणिं भन्नेति-

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणां कुणंति ठिइ ।

एगिंदिया जहन्नं असन्निखवगा य काणं पि ॥८२॥

सव्वाण वि सुभाणं असुभाणं पयडीणं मूलुत्तराणं उक्कोसं ठिइबंधं सन्निणो कुणंति=निव्व-  
त्तंति, न सेसा जीवा । भणियं च- 'उक्कोसो सन्निसम होइ पज्जत्तगस्सेव' जओ तेसिं चेव तहाविह-  
परिणामसम्भावो । तहा जहन्नं पुण ठिइबंधं एगिंदियपज्जत्तगा निव्वत्तिति एगारसुत्तरपयडि-  
सयस्स छप्पन्नसयस्स मज्झाओ । तहा "असन्निणो" ति "काणंपि" ति संबज्झइ सव्वत्थ । तओ  
असन्निणो पंचेदिया वेउव्विक्कारसगस्स पुव्वभणियस्स जहन्नं ठिइ, तहा खवगा "दंसण-  
चउविग्वावरण" इच्चाइवावीसपयडीणं जहन्नं ठिइ कुणंति । चकारात् तु अपुव्वकरणो आहार-  
सत्तगस्स तित्थयरनामस्स य, तिरिमणुया आउयच्चउकस्स जहन्नठिइबंधगा । उक्तं च-

"आहारयतित्थयरं नियट्ठि अन्नियट्ठि पुरिससंजलणा । बंधइ सुइमसरागो सायजसुष्वावरणविग्वं ॥ १ ॥  
'छन्दमसन्नी कुगइ जहन्नठिइमाउगाणमन्नयरो । सेसाणं पज्जत्तो वायरएगिंदियविसुद्धो ॥२॥" ॥८२॥

संपयं एयासिं ठिइणं जेण परिणामेण सुभाणं वा असुभाणं वा सम्भावो तं भवइ-

सव्वाणुक्कोमठिइ असुभा सा जमइसंकिलेसेणं ।

इयराउ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मुत्तुं ॥८३॥

सव्वाणं पुत्ररूपाणं पावरूवाणं च उक्कोसा जा ठिइ सा सव्वा असुभा । जं अहसंकिलेसेण=  
अइतिव्वकसाउदएण असुभा वज्झइ । जओ मिच्छद्विट्ठी आहारगसत्तगस्स तित्थयरनामदेवा-  
उयमणुयतिरियाउवज्जाणं सव्वपयडीणं सुभाणं असुभाणं वा उक्कोसं संकिलिट्ठो ठी बंधइ । तत्थ  
असुभपयडीणं ठिइ तिव्वरसा कइविवागा असुभफलरसेणेव कइविवागवत् । सुभाणं पुण वाळय  
कवलोपमा नीरसा तत्तओ असुभा चेव तहा तित्थयरनामस्स अचिरयसम्मद्विट्ठी, आहारसत्तगस्स  
अपमत्तसंजओ तप्पाओगसंकिलिट्ठो उक्कोसठिइ बंधइ । संकिलेसो=कसाओदओ सो असुभो चेव ।  
इयरा पुण अइष्ठा ठिइ, सा य विसोहीए 'बंधं पइच्च कसायहासरूवा एसा सुभा । असुभाणं  
असुभा चेव तहा वि विसोहीए निबरसबहुओउदगमीसरसल्लववत् सुभा इव लक्खिज्जइ । अओ  
सुभासुभाणं सुभा चेव । इक्खुरसवहुपाणियरसवत् "सुरनरतिरियाउए मुत्तुं" ति देवमणुयति-

१ देवद्विरु-नरकद्विरु वैक्रियद्विररूपाणां वण्णां प्रकृतीनम् । २ स्वकीयं बन्धमाभित्य ।

रियाउआण विचरीयं, कहां विचरीयं ? भन्नइ,—एएसि जा जा उ ठिई उक्कोसा सा विसोहीए चैव भवइ । जहन्ना पुण संक्खिसेण त्ति । देवाउयस्स सव्वदूटे, मणुयतिरियाउयाणं उत्तरकुरुभोग-भूमीए, सा सुभा चैव; अओ वुत्तं, सुरनरतिरियाउए मुत्तुं=परिवज्जिय ॥८३॥

पसंगागयं भन्नइ । एयाउ ठिईओ योगसहिएणं जीवनियवीरिएणं वज्जंति । अओ जीव-ठायेसु जस्स जेत्तिया जोगवुद्धी, तस्स अप्पवहुत्तं दंसेइ—

सुहुमनिगोयाइखणे जोगो थोवो तओ असंखगुणो ।

बायर'बितियत्रउरमाणसन्निअपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥

पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा ।

असमत्ततसुक्कोसो पज्जत्तजहन्नजेट्ठो य ॥८५॥

सुहुमनिगोयस्स=साहारणसुहमस्स लद्धीए अप्पज्जत्तगस्स आइक्खणे=पढमसमाए वड्डमा-णस्स अप्पविरियलद्धिस्स जहन्नओ जोगो सो य थोवो । तओ बायरएगिदियस्स अप्पज्जत्तगस्स जहन्नो जोगो असंखेज्जगुणो । तओ बेइंदियस्स अप्पज्जत्तगजहन्नो असंखेज्जगुणो । तओ तेइंदियस्स अप्पज्जत्तगस्स जहन्नो असंखगुणो । एवं चउरिंदियअप्पज्जत्तगस्स असन्निपंचिंदियस्स अप्पज्जत्तगस्स सन्निपंचिंदियस्स अप्पज्जत्तगस्स भाणियव्वं पढमदुगुक्कोस त्ति पढमदुगं जाइदुगं सुहुमबायरएगिदिया अप्पज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो । तओ परिवाहीए सन्निअपज्जत्तजहन्नाओ सुहुमस्स अप्पज्जत्तगस्स उक्कोसो जोगो असंखेज्जगुणो । तओ बायरस्स अप्पज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो । “सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा”त्ति तेसिं चैव सुहुमबायराणं पज्जत्तगाण करणं पड्डच्च जहन्नो ह्यरो=उक्कोसो य कमेण असंखेज्जगुणो । जहा तओ सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहन्नओ जोगो असंखेज्जगुणो । (तओ) बायरस्स पज्जत्तगस्स जहन्नओ असंखेज्जगुणो । तओ सुहुम-पज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो । तओ बायरपज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो । “अस्स-मत्ततसुक्कोसु” त्ति असमत्ता=अपर्याप्ता जे तसा=बेइंदियतेइंदियाइणो तेसिं उक्कोसो जहन्नमं असंखेज्जगुणो नेयव्वो । जहा बायरपज्जत्तगस्स उक्कोसाओ बेइंदियअप्पज्जत्तगस्स उक्कोसाओ जोगो असंखेज्जगुणो । एवं तेइंदियअप्पज्जत्तगचउरिंदियअप्पज्जत्तगअसन्निपंचिंदियअप्पज्जत्तग-सन्निपंचिंदियअप्पज्जत्तगाणं कमेण असंखेज्जगुणो उक्कोसो जोगो होइ । एए सव्वे लद्धियज्जत्तगा चैव गहिया । “पज्जत्तजहन्नजेट्ठो य”त्ति तेषामेव बेइंदियाइणं पज्जत्तगाणं जहन्नो ‘जेट्ठो य’ त्ति उक्कोसो जोगो कमेण असंखिज्जगुणो कायव्वो । जहा सन्निपंचेइंदियअप्पज्जत्तउक्कोसाउ चेइंदियपज्जत्तस्स जहन्नजोगो असंखेज्जगुणो । तओ तेइंदियपज्जत्तजहन्नो असंखेज्जगुणो ।



तओ चउरिंदियपज्जत्तगजहन्नो असंखेज्जगुणो । तओ असन्निपंचिंदियस्स पज्जत्तगजहन्नो असंखे-  
ज्जगुणो । तओ सन्निपंचिंदियपज्जत्तजहन्नो जोगो असंखेज्जगुणो । एए सव्वे करणपज्जत्तीए  
पज्जत्तगा दट्टव्वा । तओ सन्निपंचिंदियपज्जत्तगजहन्नजोगाउ वेइंदियपज्जत्तगउक्कोसगो असंखे-  
ज्जगुणो । तओ तेइंदियपज्जत्तगउक्कोसो असंखेज्जगुणो । तओ चउरिंदियपज्जत्तगउक्कोसो  
असंखेज्जगुणो । तओ पंचिंदियअसन्निपज्जत्तगउक्कोसो असंखेज्जगुणो । तओ सन्निपंचिंदिय-  
पज्जत्तगउक्कोसो जोगो असंखेज्जगुणो ॥८४-८५॥

इयाणिं ठिइठाणाणं अप्पवहुत्तं भन्नइ । एयाओ ठिईओ कसायसहिएणं जीवेणं निव्वत्ति-  
ज्जंति । अओ चउदसण्हं जीवठाणाणं विसेसं दंसेइ—

एवं त्रियं ठिइठाणा अपज्जपज्जक्कमेण संखगुणा ।

नवरमसमत्ताबिंदिय एकपए ते असंखगुणा ॥८६॥

“एवं चिय”त्ति जोगपरूवणानाएण “ठिइठाण”त्ति ठिईणं जहण्णक्कोसमेयभिन्नाणं  
बंधठाणाणं जहन्निगं ठिइं आइं काउं जाव उक्कोसिगा ठिई तेसिं मज्जे जत्तिया ठिईविगप्पा  
ते उक्कोसियाए ठिईए समं ठीठाणाणि वुच्चंति । “अपज्जपज्जक्कमेण”त्ति अपज्जत्तगपज्जत्तग-  
परिवाहीए संखगुणा होंति । “नवरं”त्ति केवलं असमत्ते=अपर्याप्ते वेइंदियठाणे एगत्य पए  
ताणि ठिईबंधठाणाणि असंखगुणाणि होंति । तत्थ ताव सव्वस्थोवाणि ठिइबंधठाणाणि  
सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स । तओ वायरस्स अपज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि । तओ सुहुमस्स पज्जत्त-  
गस्स संखेज्जगुणाणि । तओ वायरस्स पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि, पलिओवमस्स असंखेज्ज-  
भागमित्ताणि । तओ वायरपज्जगठिइबंधठाणेहिंतो वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स ठिईबंधठाणाणि  
असंखेज्जगुणाणि । कइं ? भन्नइ,—वेइंदियाण ठिइबंधठाणाणि पलिओवमस्स असंखेज्जभाग-  
मित्ताणि त्ति काउं । तस्सेव पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणियाणि । तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स संखेज्ज-  
गुणाणि । तस्सेव पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि । तओ चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स संखेज्ज-  
गुणाणि । तस्सेव पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि । असन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स संखेज्ज-  
गुणाणि । तस्सेव पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि । तओ सन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तठिइठाणाणि  
संखेज्जगुणाणि । तस्सेव पज्जत्तगस्स ठिइठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥८६॥

एएसिं चैव पज्जत्तापज्जत्ताणं अन्नं किं पि विसेसं दंसेइ—

सव्वे वि अपज्जत्ता होंति पइक्खणमसंखगुणविरिया ।

संखगुणूणा सुहुमेसु वायरेसु य असंखगुणा ॥८७॥

जीवस्थानेषु स्थितिस्थ.नवीर्याल्पबहुत्वं प्रत्येकस्थितिवन्ध्वेध्वयसायप्रमाणं तथा-ऽध्ययसायेनवाऽ- [ ३५  
नुमागस्य प्ररूपणम्

सन्वे वि=सत्त वि अपज्जत्ता पइक्खणं=पढमसमयादारब्धसमए समए असंखगुणवीरिय-  
बुद्धीए वट्ठंति जाव अपज्जत्तचरमसमओ । पज्जत्तेन नियमो । जओ सो अवट्ठियवीरिओ होइ  
हीणवीरिओ वा, अहियवीरिओ वा । तहा अपज्जत्तगाणं अप्पवट्ठयं भन्इ-“संखगुणा  
सुहुमेसु”त्ति संखेज्जगुणेणं उणा=हीणा सुहुमेसु=पज्जत्तगेसुं तो सुहुमअपज्जत्तगा जीवा ।  
वायरेसु पुण असंखगुणा अपज्जत्ता जीवा पज्जत्तेहिंतो हुंति ॥८७॥

जीवट्ठाणेषु परुवियाणि ठिइबंधठाणाणि । ताओ कसाओदयमेएसु निच्चत्तिज्जंति । अओ  
तेसिं चैव संखानिरुवणत्थं मणेइ—

ठिइबंधे ठिइबंधे अज्झवसाया असंखलोगसमा ।

कमसो विसेसअहिया सत्तासु आउसु असंखगुणा ॥८८॥

तत्थ सन्वकम्माण जहन्नियाओ ठिइबंधाओ आरब्ध जाव उक्कोसिया ठिई, तासिं मज्जे  
जाओ समयबुद्धीए ठिईओ तासिं एककेकम्मि ठिइबंधे एगिदियाइजीवपाओग्गे अज्झवसाया संकिलेसा  
असंखलोगसमा=असंखलोगेसु जेत्तिया आगासपएसा तेत्तियपमाणा होंति । कालमेएण एगजीवं  
पडुच्च, एगम्मि वि कालो अणेगजीवे पडुच्च लब्धंति । एए गुणअज्झवसाया कमसो=परिवाहीए  
सत्तसु नाणावरणाइकम्मेसु जे जहन्नाओ ठिइबंधाओ उत्तरोत्तरा ठिइबंधा तेसु विसेसेण किंचित्सा-  
धिकत्वेनाधिका भवंति । अज्झवसायठाणाणं दुविहा बुद्धिपरुवणा । तं जहा-अणंतरोवणिहियाए,  
परंपरोवणिहियाए । तत्थ अणंतरोवणिहियाए हस्सा विसेसवट्ठित्ति सत्तन्हं कम्माणं पढमाए  
ठिईए ठिइबंधज्झवसाया थोवा । विइयाए विसेसाहिया । एवं तइयाए जाव उक्कोसा ठिइत्ति ।  
परंपरोवणिहियाए सत्तन्हं कम्माणं पद्दासंखेज्जभागं २, गंतुं दुगुणाणि, पुणो पद्दाअसंखेज्जइभागं  
गंतुं दुगुणवट्ठियाणि; एवं जाव उक्कोसिया ठिइत्ति । आउसु दुविहा वि असंखगुणा “आउसु  
असंखगुण”त्ति आउणं पुण विसेसो, जओ चउसु वि आउसु जहन्ने ठीबंधे जे बंधज्झव-  
सायट्ठाणा, ते सन्वे थोवा, असंखेज्जलोगागासपएसमेत्ता । तेहिं वि समयाणं उत्तराए ठिईए  
असंखेज्जगुणा । एवं ताव नेयं जाव नियनिया उक्कोसिया ठिइत्ति ॥८८॥

संपयं दंसणावरणाईणं असुमसुभाणं कम्माणं जारिसेण अज्झवसाएण जारिसो अणुभागो  
उप्पाइज्जइ तं कहेइ—

असुहाण संकिलेसेण होइ तिन्वे सुहाण सोहीए ।

अणुभागो मंदो पुण विवज्जए सन्वपयहीणं ॥८९॥

असुहाणं=पावपगईणं संकिलेसेण=कसाओदएण “अणुभागो”त्ति संबज्झइ होइ=भवइ  
तिन्वो=उक्कोसो महाविसोवमो । सुमाणं पुण=पुष्पगईणं विसोहीए=कसायपरिहाणीए अणुभागो

तिन्वो अमयरसोवमो होइ । तह 'मंदो'त्ति जहन्नअणुभागो सच्चपयडीणं सुमासुभाणं विवज्जएण विवरीयचयेण भवइ । तहाहि-असुमपगईणं विसोहीए मंदो, सुमपगईणं संकिलेसेण मंदरसो ॥८९॥

इयाणि जाओ पयडीओ जेत्तियरसविसेससमन्नियाओ ताओ दंसेइ-

सतरस पयडी संजलण ४ विग्ध ५ पुं देसधाइआवरणा ७ ।

चउठाणरसपरिणया दुत्तिचउठाणा उ सेसाओ ॥९०॥

सत्तरसपयडीओ संजलणचउक्कं अंतरायपणगं पुरिसवेयं केवलनाणवज्जा चत्तारि नाणा-  
वरणा केवलदंसणावरणवज्जा तिन्नि दंसणावरणरूवाओ चउठाणरसपरिणयाओ नायच्चा ।  
तत्थ चत्तारि ठाणाणि एगट्टाणदुट्टाणाईणि वक्खमाणाणि जस्स सो चउठाणो रसो, तेण एगाइमे-  
यमिन्नेण चउट्टाणेण परिणयाओ । एगट्टाणिओ वा दुट्टाणिओ वा तिट्टाणिओ वा चउट्टाणिओ  
वा । कइं सत्तरस संखा एव चउट्टाणिओ, न सेसाणं ? भन्नइ, -अनियट्टिअइक्कंते बंधो एयाण  
सुहुमरागे य । अन्नेसिं न असुमाणं तेणिगठाणाणि सत्तरस, सेसाओ पुण पयडीओ वायालीसं  
पुन्नपगईओ, पणसट्टी पावपगईओ य दुत्तिचउठाणाओ=दुइज्जतिइज्जचउत्थरसठाणपरिणयाओ  
हैंति ॥९०॥

इयाणि जारिसेहिं कसाएहिं एगठाणाइया रसविसेसा निप्फज्जंति तं भन्नइ-

पव्वयभूमी वालुयजलरेहासरिससंपराएहिं ।

चउठाणाई असुहाण वच्चयाओ सुहाणं तु ॥९१॥

असुमपयडीणं चउट्टाणाइया रसविसेसा हैंति । एएहिं संपराएहिं जहा पव्वयरेहास-  
रिसकोहेणं चउठाणिओ रसो वज्जइ । भूमीरेहासरिसेण तिट्टाणिओ, वालुयरेहासरिसेण दुट्टाणि-  
ओ रसो वज्जइ । जलरेहासरिसकोहेण य एगठाणिओ । सेसाणं माणमायालोमाणं उवलक्खणं  
दट्ठच्चं । तहा थंम-वंसिमूल-किमरागसरिसेहिं जहासंखं माण-माया-लोमेहिं चउठाणिओ, अट्टि-  
मिठसिंण-कइमरायसरिसेहिं तिट्टाणाइओ, कट्ट-गोमुत्तिया-खंजणरायसन्निमेहिं दुट्टाणियो, तिणस-  
लय-अवालहिय-हल्लिदरागसन्निमेहिं एगट्टाणिओ असुमाणं रसो वज्जइ । सुमाणं=पुन्नपगईणं  
“वच्चयाउ”त्ति विवज्जएण अणुभागो होइ जलरेहासरिसेण चउट्टाणिओ, वालुयरेहासरिसेण  
तिट्टाणिओ, भूमिरेहासरिसेण दुट्टाणिओ, पव्वयरेहा सरिसेण एगट्टाणिओ । एवं माणमाया-  
लोमेहिं पुच्चुत्तं विवरीयं भणियच्चं ॥९१॥

इयाणि एगठाणाईणं रसाणं दिट्ठेण सरूवं सुमासुमपयडीसु दंसेइ-

घोसाइइनिबुवमो असुहाण सुहाण स्वीरखंडुवमो ।

एगट्टाणो उ रसो अणंतगुणिया कमेणियरे ॥९२॥

घोसाढइ-निवेहिं उवमा=सरिसत्तं जस्स सो घोसाढइ-निवोवमो रसो असुभाणं एगट्टाणिओ रसो । सुहाणं खीरखंडेहिं उवमा जस्स रसस्स सो खीरखंडोवमो रसो एगट्टाणिओ होइ । इयरं पुण दुट्टाणाइया कमेण अणंतगुणिया । एगट्टाणियाओ दुट्टाणिओ अणंतगुणो । एवं दुट्टाणियाओ तिट्टाणिओ अणंतगुणो । तिट्टाणियाओ चउट्टाणिओ अणंतगुणो । नए पुच्चं सुभाणं एगट्टाणिओ निसिद्धो, कहां पुणरवि भणिओ ? भन्नइ,—दुट्टाणाइरससाहणनिमित्तं न पुण एएसिं एगट्टाणो वंधमागच्छइ ॥६२॥

संपयं एगट्टाणियरसाओ जहा दुट्टाणाइया रसा उववज्जंति, तहा भन्नइ-

निबुच्छुरसाईणं दुतिचउभागा पुढो कटिज्जंता ।

किर एकभागसेसा दुतिचउठाणा रसा कमसो ॥९३॥

निबाईणं उच्छाईणं च जो सभावत्थो रसो, सो एगट्टाणिओ; तस्सेव दुन्नि भागा तिन्नि मागा चउरो भागो “पुढो” ति पत्तेयं २ कटिज्जंता “किर”ति आत्तसंघचकार्थः, एगो भागो जो सो उच्चरिओ जेसु दुतिचउभागेसु ते एकभागसेसा दुतिचउभागा रसा होंति कमसो । जहा दोहि भागेहिं कटिज्जमाणेहिं एगे उच्चरिए दुट्टाणिओ । एवं तिहि एगे भागे उच्चरिए तिट्टाणिओ । चउहिं कटिज्जमाणेहिं एगे उच्चरिए चउट्टाणो ॥६३॥

अणुभागबंधो सम्भत्तो ।

इयाणि पएसबंधं भणित्कामो पढमं ताव वर्गणासरूवं वंमणेइ-

इगदुअणुगाइ जा अभवणंतगुणसिद्धणंतभागाणू ।

खंधा उरलोचियवर्गणाओ तह अगहणंतरिया ॥९४॥

कमसो विउव्वियाहारतेयभासाणुपाणुमणकम्मे ।

इय वर्गणावगाहो ऊणूणंगुलअसंखंसो ॥९५॥

एगणूणं दच्चारणं वर्गणा सा अगहणपाउग्गा एगा । दुयऽणुगाणं खंधाणं वर्गणा सा वि अगहणपाउग्गा एगा तिअणुगाणं खंधाणं वर्गणा सावि अगहणपाउग्गा । एवं एगे-गपएसवुड्डीए ताव खंधा भाणियव्वा, जाव “अभवणंतगुणसिद्धणंतभागाणु” ति अभव्वेहितो अणंतगुणा सिद्धाणं अणंतभागपमाणा अणवो=परमाणवो जेसु ते भवंति अभव्वारण-तगुणसिद्धाणंतभागाणू । एयारिसा खंधा किम् ? इत्याह—“उरलोचियवर्गणाउ”ति ओरा-लियसरीरजोग्गाओ वर्गणाओ भवंति । वर्गणा नाम एगजाईयदव्वसमुदायरूवा । किं भणियं होइ ? परमाणवो पोग्गलाणं एगपएसदव्ववर्गणा अगहणपाउग्गा । एवं दुपएसियाण वि,

तिपएसियाण वि, चउपएमियाण वि, जाव दयपएसियाण वि । एवं चेव संखेज्जपएसियाण वि, संखेज्जाओ वग्गणाओ सच्चाउ वि अग्गहणपाउग्गाओ । असंखेज्जपएमियाण वि असंखेज्जाउ वग्गणाओ सच्चाओ अग्गहणपाउग्गाओ । अणंतपएसियाणं अणंताओ वग्गणाओ सच्चाओ अग्गहणपाउग्गाओ चेव । अणंतार्णतपएसियाणं अणंतार्णताओ वग्गणाओ, ताउ किं गहणपाउग्गाउ अग्गहणपाउग्गाउ वा ? भन्नइ—काओ वि गहणपाउग्गाओ, काओ वि अग्गहणपाउग्गाउ । तासिं अणंतार्णतपएसियाणं दव्ववग्गणाणं अग्गहणपाउग्गाणं उवरिं एगे रूवे छूढे ओरालियसरीरवग्गणा । जाणि दव्वाणि घेत्तूण जीवा ओरालियसरीरत्ताए परिणमंति, ताणि य दव्वाणि सिद्धाणमणंतभागो अभव्वसिद्धियाणं अणंतगुणाणि एवइयाणं परमाणुणं समुदाओ एगो खंधो । सा ओरालियदव्ववग्गणा जहन्ना । ताओ एगपएसुत्तरा बीया वग्गणा । एवं एगेगपएसुत्तराओ अणंताओ वग्गणाओ जाव उक्कोसा ओरालियसरीरदव्ववग्गणा । जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो जहन्नाए चेव अणंतिमो भागो त्ति । “तह” त्ति वत्तव्वं-तरसूयणत्थो । “अग्गहणंतारिय” त्ति अग्गहणवग्गणाविरहियाओ । किम् ? इत्याह,—कमसो=परिवाहीए वेउव्वियआहारगतेयभासा आणुपाणमणकम्मे विसयभूए । “इय” त्ति एवं वग्गणा माणियव्वा । किं मणियं होइ ? ओरालियसरीरउक्कोसवग्गणाउ उवरिं एगे रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना । तेसिं जहन्नाईणि एगेगपएसुत्तराणि अणंतार्णताणि ठाणाणि जाव उक्कोसा ओरालियसरीरअग्गहणवग्गणा । जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा । को गुणाकारो ? भन्नइ—अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणं अणंतभागो त्ति । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे जहन्ना वेउव्वियसरीरवग्गणा । वेउव्वियसरीरवग्गणा नाम जाणि दव्वाणि घेत्तूणं वेउव्वियसरीरत्ताए परिणमंति जीवा । तेसिं अणंतार्णं ताओ वग्गणाओ एगेगपएसुत्तराओ । जहन्नाओ वेउव्वियसरीरदव्ववग्गणाओ उक्कोसिया वेउव्वियसरीरवग्गणा विसेसाहिया । को विसेसो ? तीसे चेव अणंतिमो भागो । तओ तस्स उवरिं एगे रूवे छूढे जहन्निया वेउव्वियअग्गहणवग्गणा । तासिं जहन्नाईणि उक्कोसपज्जवसाणाणि अणंतार्णताणि अग्गहणवग्गणाठाणाणि । जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा । गुणकारो भन्नइ—अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणं अणंतिमो भागो । ताए उवरिं एगे रूवे छूढे जहन्नाआहारयसरीरवग्गणा तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अणंतार्णताणि ठाणाणि जाव उक्कोसा । जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो त्ति । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे जहन्निया आहारयसरीरअग्गहणा वग्गणा । तासिं अणंतार्णताण वग्गणाठाणाणि । जाव उक्कोसा आहारयसरीरअग्गहणवग्गणा । जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा । को गुणाकारो ? अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणमणंतभागो त्ति । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे तेयसदव्ववग्गणा जहन्ना । तेजसदव्ववग्गणा नाम जाणि दव्वाणि घेत्तूणं

तेजससरीत्ताए परिणामंति जीवा । तेषिं अर्णतार्णताथो वग्गणाओ पएसुत्तराओ । जाव उक्कोसा तेजोदव्ववग्गणा । जहन्नाओ उक्कोसा केवइया ? विसेसाहिया । को विसेसो ? भन्नइ, -तस्सेव अर्णतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे तेयगसरीरअग्गहणदव्ववग्गणा जहन्ना । तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अर्णतार्णताणि वग्गणाठाणाणि । जाव उक्कोसा तेजोअग्गहणदव्ववग्गणा । जहन्नाओ उक्कोसा अर्णतगुणा । को गुणकारो ? भन्नइ, अभव्वसिद्धिएहिं अर्णतगुणो, सिद्धाणअर्णतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे भासादव्ववग्गणा जहन्ना । तस्य भासा चउव्विहा । तं सच्चामोसा, मीसा, असच्चामोसा । जाई दव्वाइं घेत्तूण सच्चदिमासत्ताए परिणामेउं तीरंति जीवा, ताणि दव्वाणि भासादव्ववग्गणा । तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अर्णतार्णताणि ठाणाणि । जाव उक्कोसा । जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो तस्सेवअर्णतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे भासाअग्गहणदव्ववग्गणा जहन्ना । भासाअग्गहणदव्ववग्गणा नाम भासावग्गणं अतिच्छिया आणापाणुवग्गणं अपत्ता । तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अर्णतार्णताणि भासाअग्गहणदव्ववग्गणाठाणाणि । जाव उक्कोसा भासाअग्गहणदव्ववग्गणा । जहन्नाओ उक्कोसा अर्णतगुणा । को गुणकारो?, भन्नइ, अभव्वसिद्धिएहिं अर्णतगुणो, सिद्धाणअर्णतभागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे आणापाणुदव्ववग्गणा जहन्ना । (जहा) भासादव्ववग्गणा परूविया तहा आणापाणुवग्गणा वि परूवेयच्चा । जाव जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो ? तस्सेव अर्णतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे आणापाणुअग्गहणदव्ववग्गणा जहन्ना । तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अर्णतार्णताणि आणापाणुअग्गहणदव्ववग्गणाठाणाणि जाव उक्कोसा आणापाणुदव्ववग्गणा । जहन्नाओ उक्कोसा अर्णतगुणा । को गुणकारो ? भन्नइ, -अभव्वसिद्धिएहिं अर्णतगुणो, सिद्धाणमर्णतभागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे मणदव्ववग्गणा जहन्ना । जहा आणापाणुवग्गणा परूविया तह मणदव्ववग्गणा वि परूवेयच्चा । जाव जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो ? भन्नइ-तस्सेवअर्णतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे मणअग्गहणदव्ववग्गणा जहन्ना । मणअग्गहणदव्ववग्गणा नाम मणदव्ववग्गणं अतिच्छिया, कम्मइगवग्गणा अपत्ता । तासिं जहन्नाईणि जहा ओरालियअग्गहणदव्ववग्गणाए तहा माणियच्चाणि । जाव तस्स उवरिं एगे रूवे छूढे कम्मइगदव्ववग्गणा जहन्ना । कम्मइगसरीरदव्ववग्गणा नाम जाणि दव्वाणि घेत्तूण नाणावरणिज्जत्ताए जाव अंतराइयत्ताए परिणामंति जीवा । ताणि दव्वाणि कम्मइगसरीरदव्ववग्गणा । जां जहन्नाई एगेणपएसुत्तरा । जाव उक्कोसा । जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो ? भन्नइ-तस्सेव अर्णतिमो भागो । एयासिं च वग्गणाणं ओरालियाइगहणपाओग्गणं अग्गहणपाउम्वारणं च अवगाहनिरूपणत्थं भन्नइ । अवगाहो=अवगाहस्सेत्तं "ऊण्णुं गुलअस्संत्वं सो"ति ओरालियाइवग्गणाणमइहं

सत्तन्द् च अंतरालगयाणं कमेण उणो उणो अंगुलस्स असंखेज्जइभागो उत्तरउत्तराणं वग्गणा-  
ठाणाणं बहुवहुतरवहुतमपएसनिप्फन्नत्तणेण सुहुमसुहुमतरसुहुमतमसरूवत्ताउत्ति ॥९४-६५॥

संपयं एसु चैव वग्गणाठाणेषु जहन्नुक्कोसाणं वग्गणाणं विसेसं सयमेव निरूवेतो भणेइ-  
एगुत्तरा अभव्वाणंतगुणा अंतरेषु अग्गहणा ।

सव्वहि जोगजहन्ना नियणंतंसाहिया जेट्ठा ॥९६॥

एसा य गाहा वग्गणापरूवणापत्थावे भावियत्था न पुणो वि भाविज्जइ । नवरं  
“सव्वहिं जोगजहन्ना नियणंतंसाहिया जेट्ठा” ति । सव्वेषु वग्गणाठाणेषु जा जहन्न-  
गहणपाउग्गवग्गणा सा निययनियएण अणंतभागेण अब्भहिया उक्कोसिया गहणपाउग्गवग्गणा  
होइ ति ॥९६॥

इयाणि वग्गणादव्वाणं उप्पत्ति दंसेइ-

जोगणुरूवं गेन्हिय सोत्तियदलियं जिओ परिणमेइ ।

भासाणुपाणुमणोचियं च अवलंबए दव्वं ॥९७॥

जस्स जीवस्स जावइओ जहन्नाइमेयभिन्नो जोगो=वीरियं तस्स अणुरूवं गेन्हिय “सोचिय”  
त्ति ओरालियाइसरीरस्य दंसणावरणाइअट्टविहकम्मस्स य जस्स जस्स अप्पणुप्पणो उचियं=पाउग्गं  
दलियं तस्स तं जीवो परिणामेइ । जीवपएसेहिं सह तहभावत्ताए परिणामेइ । जहा अग्गणी  
इंधणं पक्खित्तं अग्गणित्ताए परिणामेइ, तहा भासाए आणुपाणूणं मणस्स य जं उचियं दलियं तं  
अवलंबते=अवट्ठं भइ; न उण जीवपएसेहिं सह तहभावत्ताए परिणामेइ । जहा पायाइविगलो  
उट्टाणचंक्रमणाईणि काउकामो लट्ठिं अवलंबइ म्यइ य कारणं पट्टुच्च । एवं जीवो वि भासाईणि  
दव्वाणि अवलंबित्ता भासाआणुपाणुमणत्तेण य परिणामिय म्यइ ति मणियं होइ ॥९७॥

संपयं दंसणावरणाईणं उक्कोसजहन्नाणं पएसबंधाणं अट्टुन्हं कम्मार्णं पएसबंधं निदंसेइ-

अप्पयरपयडिबंधी उक्कडजोगी य सन्निपज्जत्तो ।

कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नयं तस्स वच्चासो ॥९८॥

“अप्पयरपयडिबंधी” सव्वजहन्नमूलुत्तरविसयपयडिबंधी “उक्कडजोगी” सव्वुक्को  
सजोगी सन्निपज्जत्तो एयविसेसणजुत्तो जीवो “कुणइ पएसुक्कोसं” ति उक्कोसं पएस-  
बंधं करेदि । जहन्नयं पुण पएसबंधं तस्स=पुव्वुत्तजीवस्स वच्चासो=विवरीओ ॥ उक्कत्तं च—  
“सुट्टमनिगोया पज्जत्तगस्स पढमे जहन्नगे जोगे । सत्तण्हं पि जहन्नो आउग्गबंधो वि आवस्स” ॥९८॥”

संपयं जुगवमेव दंसणाईणं अट्टुन्हं वि वज्जमाणाणं पएसबंधागयस्स दलियस्स कस्स  
केत्तिओ भागो होइ ति दंसेइ—

गहियदलियस्स भागो बहुठिक्कम्मेसु होइ कमवुट्ठो ।

वेयणिए सव्वोवरि तस्स फुडत्तं न जेणऽपे ॥९९॥

गहियस्स दलियस्स वज्झमाणपगडिसंखाए विभज्जमाणरस भागो=अंसो "बहुठो-  
कम्मेसु" ति बहुट्टियाणि जाणि कम्माणि तेषु कमवुट्ठी=परिघाडीए वुट्ठिमागओ भवइ ।  
नवरं वेयणीए दुविहे वि सव्वेसिं कम्मार्णं "उवरि" ति बहुवुट्ठो भवइ, जेण कारणेण तस्स  
वेयणियस्स फुडत्तं सकज्जसाहणत्तं न होइ, अप्पे=थोवे सति दुहं वा सुहं वा । अप्पदलिएण न  
वेइज्जइ ति । तत्थ अट्टुविहबंधगे आउस्स थोवो भागो । तओ नामगोयार्णं दोण्ह वि भागो तुल्लो,  
आउयभागओ विसेसाहिओ । तओ नाणावरणीयदंसणावरणीयअंतराहयाणं तिन्ह वि कम्माणं  
तुल्लो भागो, पुच्चभागओ विसेसाहिओ । तओ मोहणीयस्स विसेसाहिओ । तओ वेयणीयस्स  
विसेसाहिओ ॥९९॥

इयाणिं हममेव कम्मदलियं दंसणावरणाइउत्तरपयडीसु विभज्जइ—

पयडीण सव्वघाईण होइ नियजाइदलअणंतंमो ।

बज्झंतीण विभज्जइ सेसं सेमाणमणुममयं ॥१००॥

सव्वघाइपयडीणं केवलदंसणावरणाईणं वीससखाणं नियजाइदलस्स दंसणावरणाइभागा-  
गयस्स अणंतमो अंसो होइ । परं बज्झंतीणं वंधे आगच्छंतीणं विभज्जइ=विभागमावज्जइ । "सेसं"  
ति उच्चरियं सेसाणं=देसघाईणं पयडीणं "अणुसमयं" ति निरंतरं । तत्थ दंसणावरणीयस्स  
नव उत्तरपयडीओ, छ सव्वघाईओ, ताहिं लद्धं अणंतिमो भागो; देसघाइणीओ तिन्धि, सेसं तेसिं  
अणंतगुणं । नाणावरणस्स पयडीओ पंच, केवलनाणावरणं सव्वघाई, तीए लद्धं सव्वथोवं; सेसं  
मइनाणावरणाईण चउहिं भागेहिं अणंतगुणं । अंतराए पयडीओ पंच, सव्वाओ देसघाइणीओ,  
सव्वेसिं तुल्लो भागो । मोहणीयस्स उत्तरपयडीओ छव्वीसं; सव्वघाईओ तेरस, ताहिं भाग-  
लद्धं अणंतिमो भागो; कहं? भइइ,—सव्वकम्मपएसाणं जे निद्धयरा पुग्गला सव्वकम्मद-  
व्वाणंतुत्ति, एएण कारणेण अणंतिमो भागो, ते सव्वघाइजोग्गा नियनियसव्वघाईसु उवजु-  
ज्जंति; देसघाइणीओ तेरस, तेसिं भागो अणंतगुणो । आउयस्स पयडीओ चत्तारि, बज्झंतियस्स  
भागो । एवं गोयवेयणीयार्णं पि बज्झंतीणं भागो । नामस्स अट्टु बंधठाणाणि—तेवीसा, पणवीसा,  
छव्वीसा, अट्टावीसा, गुणतीसा, तीसा, दगतीसा, एगा जसकित्ती । जं बंधट्टाणं जया बज्झइ  
तस्स भागो दट्टुव्वो । नवरं वण्णाईणं विसेसो । वणस्स पंचभागा सलद्धभागस्स । गंधस्स दो ।  
एवं रसफासाईणं वि संभवियमेएसु भाणियव्वं ॥१००॥



मणिओ पगइठिईरसपएसजुत्तो कम्मवियारसारलवो । पएसवंधो वुत्तो । ते य पएसा  
गुणसेढीकमेण पायसो बहुतरा निज्जरिज्जंति । अओ गुणसेढीओ इकारस, ते य दंसेइ--

सम्मत्तदेस२संपुन्नविरइ३उप्पत्तिअणविसंजोए ४ ।

दंमणखवगे ५ मोहस्स समग६उवसंत७खवगे य = ॥१०१॥

खीणाइतिसु य ११ 'संखगुणूणं अंतोमुहुत्तकालाओ ।

गुणसेढीओ इगारस कमादसंखगुणदलियाओ ॥१०२॥

उप्पत्तिसटो तिसु संबज्झइ, तओ सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढी १, देसविरयउप्पत्तिगुणसेढी  
२, "संपुन्नविरय" ति सच्चविरयउप्पत्तिगुणसेढी ३, अणंताणुबंधिविसंजोयणगुणसेढी ४,  
इह अणंताणुबंधिविसंजोयणं अपमत्तस्स अइसयसुद्धिमावन्नस्स धिवविखयं; अन्नहा अविरयप्रमत्त-  
जया वि अणंताणुबंधि विजोर्जिति दंसणतिगं खवंति ति न तेसिं तारिसा विसुद्धी; नारिसा  
अपमत्तस्म; जओ अणंताणुबंधिगुणसेढीनिज्जराओ दंसणतिगुणसेढिनिज्जरा असंखगुणा  
दिट्ठा; दंसणमोहखवगगुणसेढी ५, एमा वि अपमत्तस्स, परं अणंताणुबंधिअणंतरं विसुद्धिमागओ  
खवइ; एयाओ पंचगुणसेढीओ असेढिगयस्स लब्भंति । "मोहस्स समगउवसंत" ति मे.हो  
=चरित्तमोहो पत्तेयं संबज्झइ, तओ चरित्तमोहउवसामगगुणसेढी ६, एसा अनियट्टिकरणाईसु ।  
तओ चरित्तमोहउवसंतगुणसेढी७, एसा उवसंतमोहे । खवगगुणसेढी ८, एसा वि अनियट्टिकरणाईसु ।  
"खीणाइतिसु य" ति खीणमोहसजोगिकेवल्लिअजोगिसु, तिसु कमेण, जहा खीणमोहगुणसेढी  
९, सजोगिकेवल्लिगुणसेढी १०, अजोगिकेवल्लिगुणसेढी ११ । संखगुणेण उणो अंतोमुहुत्तकालो  
पढमाए गुणसेढीए जाव संखगुणूणं अंतोमुहुत्तं । जहा सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढीए पभूओ कालो ।  
इयरा सेसा कमेण संखगुणहीणा ठवणा एसा पढमा, सेसाउ एत्तो उव्वत्तेणं संखेज्जगुणंहीणाओ  
संखेज्जगुणहीणाओ उवरि पुहुत्तेणं विसालाओ कायच्चाओ जाव अजोगिगुणसेढीए ।  
"गुणसेढीओ" ति वक्खमाणलक्खणाओ, ताओ एगारससंखा, ओघकमेण=परिवाडीए असंख-  
गुणं दलियं जासु ताओ । तहा सच्चत्थोवं सम्मत्तुप्पायगुणसेढीए दलियं तओ देसविरइउप्पाय-  
गुणसेढीए असंखेज्जगुणं । एवं ताव नेयं जाव अजोगिगुणसेढी । कहं असंखगुणं असंखगुणं  
दलियं ? भन्नइ, -उवरिं उवरिं विसुज्झमाणत्ताओ ॥१०१-१०२॥

इयाणि पुच्चुद्धिणाणं गुणसेढीणं रूवं फलं च दंसेइ--

गुणसेढी दलरयणाऽणुसमयमुदयादसंखगुणणाए ।

एयगुणा पुण कमसो असंखगुणनिज्जरा जीवा ॥१०३॥

१. "संखगुणूणंतोमुहुत्तकालओ । गुणसेढी इकारस" इत्यपि ।

गुणेण=असंखेज्जगुणकारेण बुद्धिमागया जा सेढी=उत्तरोत्तरपरिवाडी, सा य गुणसेढी, कम्मदलरयणा=कम्मपएसाणं विरयणा, अणुसमयं=पइक्खणं उदयाओ=उदयक्खणाओ उवरिं उवरिं असंखगुणाए=असंखेज्जगुणकारेण असंखगुणकारेण दलरयणा ।

उक्तं च सम्यक्त्वाऽधिकारे सत्तरोवृहत्चूण्यं गुणसेणिलक्खणम्—

“उवरिंछठिईहिंतो घेत्तणं पोगगले उ सो खिवइ । उदयसमयम्मि थोवा तत्तो य असंखगुणिया उ ॥१॥  
 वीयम्मि खिवइ समए तइए तत्तो असंखगुणियाओ । एवं समए समए अंतमुहुत्तं तु जा पुन्नं ॥२॥  
 दलियं पि गिण्हमाणो पढमे समयम्मि थोवयं गिन्दे । उवरिंछठिईहिंतो वीयम्मि असंखगुणियं तु ॥३॥  
 गिण्हइ समए दलियं तइए समए असंखगुणियं तु । एवं समए समए जा चरमो अंतसमउत्ति ॥४॥  
 सेढीए कालमाणं दुन्दुहि करणाण समहियं जाण । खिजइ सा उदएणं जं सेसं तम्मि निक्खेवो ॥५॥”

सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढी अधिकारे वृहत्सत्तरीचूण्यो उच्चरियं ।

“एस क्को सेसाण धि दलरयणाए गुणाण सेढीणं । अत्थि धिसेसो कत्थधि सो पुण सुत्ताउ विन्नेओ । ६ ॥”  
 एयगुणाओ=गुणसेढिगुणाओ पुण कम्मसो=परिवाडीए असंखेज्जगुणेण कम्मपुग्गले निज्जरिज्जंति जे, ते असंखगुणनिज्जरा जीवा होंति, सम्मत्तलद्धाणो अजोगिपज्जवसाणा ॥१०३॥

इयाणि गुणद्वानाणं जहन्नुक्कोसमंतरं निदंसेह—

पलियासंखंतमुहू सासणइयरगुणअंतरं हस्सं ।

मिच्छस्स वेछसट्ठी इयरगुणे 'पोगगलद्धंतो' ॥१०४॥

इह अहासंखं संवंधो कायच्चो । पलिओवमस्स असंखिज्जं भागं अंतरं 'जहण्णं' ति, जहण्णं सासयगुणद्वानाणस्स । अंतमुहुत्तं इयराणं मिच्छदिट्ठिपमिईणं उवसंतमोहपज्जवसाणाणं दसण्ह जहन्नं अंतरं । सासायणस्स क्हं पलियस्स असंखेज्जइभागो अंतरं ? भच्चइ,—कोइ जीवो मिच्छदिट्ठी छवीससंतकम्मिओ जहापवत्ताइकरणेहिं सम्मत्तुप्पतिकाले तिपुंजं करिय, तओ उव-समसम्मत्तद्वाए छावलियसेसाए उक्कोसिएणं जहन्नेणं एक्कं समयं सासायणगुणो । तओ मिच्छत्तं गच्छइ । तओ मिच्छत्तं गओ अणंतरं सम्मत्तपुंजं उव्वलेउं आढवेइ । तओ उव्वलणकमेण पलि-ओवमस्स असंखिज्जइभाएणं उव्वलेइ । एवं सम्मामिच्छत्तपुंजंपि । तओ छवीससंतकम्मिओ जाओ पुणो वि अहापवत्तकरणाणा उवसमसम्मदिट्ठी एसो वीयाए जाओ पुव्वुत्तो “पुव्वं व सासणं” ति । पुव्वं व सासणभावं गच्छइ । एवं सासयणस्स पलिओवमस्स असंखिज्जइभागो जहन्नं अंतरं । तहा मिच्छदिट्ठिस्स उक्कोसं अंतरं दो छावट्ठीओ सागरोवमाणं । क्हं ? उक्कोससम्मत्तकालो । इयरगुणाणं सासायणसम्मदिट्ठिपमिईणं दसण्हं उक्कोसअंतरं पोगगलपरियव्वस्सदं ॥१०४॥

पुव्वं “पुग्गलद्धंतो” ति वुत्तं, अओ पुग्गलपरावत्तरूपमेव मणेह—

१. “पुग्गलद्धंतो” इत्यपि । २. मिअगुणस्य कान्तरितसम्यक्त्वोत्कृष्टकालो बोध्यः, सम्यक्त्वोत्कृष्ट-कालस्य षट्षष्टिसागरोपमप्रमाणत्वात् ।

दब्बे खेत्ते काले भावे चउह द्दुह बायरो सुहुमो ।

होइ अणंतुस्सप्पिणिपरिमाणो पोग्गलपरट्टो ॥१०५॥

दब्बओ पोग्गलपरियट्टो, खेत्तओ पोग्गलपरियट्टो, कालओ पोग्गलपरियट्टो, भावओ पोग्गलपरियट्टो । एवं चउच्चिहो पोग्गलपरियट्टो । एसो चउच्चिहो वि दुविहो बायरो सुहुमो य । तथा एसो कालपमाणेणं अणंताओ उस्सप्पिणीओ । उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ विणा न हीति । अओ ताओ वि अणंताउ तत्तियपमाणो पुग्गलपरियट्टनामो ॥१०४॥

इयाणि एसो जहा चउच्चिहो बायरसुहुमभेयमिच्चो ह्वइ, तथा भणेइ—

चउतणुमणवइपाणुत्तणेण परिणमिय मुयइ मव्वअणू ।

एगजिओ भवभमिरो जत्तियक्कालेण सो थूलो ॥१०६॥

“चउतणु” ति चत्तारि सरीराणि । तं जहा ओरालियसरीरं, वेउच्चियसरीरं, तेयगसरीरं, कम्मगसरीरं । आहारगसरीरं न धेप्पइ । जओ उक्कोसेण चत्तारि वारा होइ । मणं वयणं ‘पाणु’ ति ऊसासा एएणं चउतणुत्ताईण परिणामेण परिणमिय=परिणामित्ता “मुयइ” ति छइइ । “सव्वअणु” ति सव्वलोयपोग्गले एगो जीवो विवक्खियकालाओ भवेसु नरनरगाइलक्खणेसु भमिओ=भममाणो जावइयक्कालेण अणंतोसप्पिणलवखणेण सो कालो थूलो नायव्वो पोग्गलपरियट्टो ॥१०६॥

सत्तण्हउण्यरेण उ इय फुसणे सुहुमदव्वपरियट्टो ।

अण्णे चउतणुसु कमेणिमेण तं वेत्ति दुविहं पि ॥१०७॥

“सत्तण्ह” ति चउण्हं तणुणं तिण्हं मणाईणं मज्झाओ अण्यरेण=एकतरेण एगजीवो परिणामेत्ता ‘इय’ ति थूलपोग्गलपरियट्टनाएण फुसणे सव्वदव्वपोग्गलाणं “सुहुमदव्वपरियट्टो” ति सुहुमो दव्वओ पोग्गलपरियट्टो ह्वइ । अन्ने आयरिया पुण चउसु तणुसु ओरालियाइवट्टमाणेण कमेणिमेण पुव्वमणियपोग्गलपरियट्टनाएण जया चउहिं सरीरेहि सव्वे पोग्गला परिणामित्ता मुक्का हवंति, तथा बायरो दव्वपुग्गलपरियट्टो जया उ चउण्ह एग्यरेणं तथा तं सुहुमपोग्गलपरियट्टं वेत्ति=मर्णति ॥१०७॥

लोगपएसोसप्पिणिसमया २ अणुभागबंधाणा ३ य ।

पुट्टा मरणेण जया कमुक्कमा बायरोत्ति तथा ॥१०८॥

लोगो चउदसरज्जुपमाणो तस्स आगासपएसो, तथा उसप्पिणित्ति उस्सप्पिणिगहणेण अवसप्पिणि वि गहिया । जहा दिवसे गहिए राई वि गहिज्जइ तेसिं जेत्तिया समया, तथा अणु-

भागबंधठाणाणि वक्खमाणाणि । एए सव्वे पुट्टा फासिया एगजीदेण चाउरंतसंसारं भमन्तेण जया कममरणेण अकममरणेण य विवक्खियमग्गठाणं पडुच्च तथा वायरो जहासंभवं खेत्तकाल-  
भावपोग्गलपरियट्ठो हवइ ॥१०८॥

पुट्टाणंतरमरणेण पुण जया ते तथा भवे सुहुमो ।

पोग्गलपरियट्ठो खेत्त २ कालभावेहिं ३ इय नेयो ॥१०९॥

जया पुण ते चेव लोगपएसा उस्सप्पिणिसमयं अणुभागबंधट्टाणा अणंतरमरणेण कममरणे-  
णेव फासिया होंति, तथा सुहुमो जहासंखं खेत्तकालभावपोग्गलपरियट्ठो हवइ । भावणा--जहा  
एगो आगासपएसो विवक्खिज्जइ, तत्थ पएसे जीवो मओ पुणो जइ तरसेव अणंतरे मरेइ, तओ  
लेक्खए गणिज्जइ, अन्नत्थ मओ न गणिज्जइ, एवं अणंतरमरणेण जया सव्वलोगासपएसा य  
फासइ, तथा खेत्तओ सुहुमो पोग्गलपरियट्ठो । तथा उस्सप्पिणीउ पढमसमए मओ तओ समय-  
उणाओ वीसयागरोवमकोडाकोडीओ अइक्कंताओ वीयसमए जइ मरइ तथा तत्थ लेक्खए  
लगइ । अणोसु समयसु मओ न उ गणिज्जइ । एवं अणंतरमरणेण जया उस्सप्पिणिअवस-  
प्पिणिसमया पुट्टा होंति तथा कालओ सुहुमो ।

इयाणि भावपोग्गलपरियट्ठस्स भावणावसरो । सो य वक्खमाणगाहाए वक्खणियाए  
जाणिज्जइ । जओ तत्थ अणुभागबंधठाणाणं माणं मणियं । अणुभागबंधठाणेसु य भावपोग्गल-  
परियट्ठो परूविओ । अओ पढमं ताध सा गाहा इत्थ वक्खणिय भाविज्जइ । सा य एसा-  
समयमवसुहुमअगणी. असंखकोगा तओ असंखगुणा । तेउ तक्कायटिई कमसो अणुभागठाणा य ॥१११॥

एगसमए भवा=जाया=उप्पन्ना एगट्ठं असंखेज्जाणं लोगायं जत्थिया आगासपएसो  
तत्थिया, के सुहुमअगणिकाइया ते य थोत्रा विवक्खिया तेहिंती तेउकाइया जीवंतगा असंखे-  
ज्जगुणा । तओ तेहिंती "तक्काटिइ" चि तेउकाइयाणं कायटिई पुणो तत्थेव काए उप्पन्नाणं  
ठीइलक्खणा सा य असंखेज्जोस्सप्पिणिओसप्पिणिसमयपमाणा असंखेज्जगुणा । तओ कमसो=  
परिवाहीए तेउकाइयटिईहिंती अणुभागबंधट्टाणा असंखेज्जगुणा । तओ अणुभागट्टाणसइस्स को  
अत्थो ? , भइइ, एगसमए जे जीवेण कम्मपएसखंधा गइया, तेसि जो रसो तं अणुभागट्टाणं तु  
बुच्चइ, एएसि तु अणुभागबंधट्टाणाणं जं जइअगं अणुभागवन्धज्जसवसाणाणाणं तं विव-  
क्खिज्जइ, तओ तस्सोदए मओ पढमं, ताव वीयं अणुभागट्टाणं पुच्चाओ अणुभागपलिच्छेएहिं  
विसेसियतरं, तओ जइ तत्थ अणंतरमेव मओ तो लेक्खए गणिज्जइ, अन्नत्थ मओ न गणिज्जइ ।  
एवं वीयाओ तइयं अणुभागबंधट्टाणं अणुभागपलिच्छेएहिं विसेसियतरं । एवं तइयाओ चउत्थं ।  
चउत्थाओ पंचमं । जाव उक्कोसं अणुभागबंधट्टाणं । एवं अणुभागबंधज्जसवसायायायोहिं अणंतरमरणेण

जया फासियाणि ह्वन्ति, तथा सुहुमो पोग्गलपरियट्टी भावओ होइ । पोग्गलपरियट्टो नाम “खेतकालभावेहिं इय नेउ”त्ति, खेतओ कालओ भावओ य इय भणियपयारेण पोग्गलपरियट्टो नेयो=जाणेयव्वो । एक्केको वि अणंताहिं उस्सप्पिणिअवसप्पिणीहिं निप्फज्जइ । भणिया पोग्गलपरियट्टपरूवणा ॥१०६॥

इयाणि भावे पोग्गलपरियट्टे ठिइवंधज्जवसायठाणा भणिया । ते य केहितो बहुया, केहितो थोवा, तप्पसंगेण जोगठाणाईणं सत्तण्हं पयत्थारणं अप्पात्रहुयं भणिउकामो गाहाजुयलेण भणेइ—

जोगट्टाणा 'सेढीअसंखभागो तओ असंखगुणा ।

पयढीमेया तत्तो 'ठीमेयाणुकमेण तओ ॥११०॥

'ठीवंधज्जवसाया तत्तो अणुभागवंधठाणाणि ।

तोऽणंतगुणा 'कम्मपएमा तत्तो रमच्छेया ॥१११॥

“जोगट्टाणा सेढी असंखभागो” त्ति ।

“जोगो धिरियं थामो उच्छाहपरकमो तहा चेट्टा । सत्ती सामत्थं ति य जोगस्स ह्वन्ति पज्जाया । ॥”

तस्स ठाणाणि जोगठाणाणि सहावओ चेव अप्पवीरियलद्धिगस्स साहारणसुहुमअप्पज्जत्तस्स तब्भवपढमसमयगस्स सव्वजहन्नाओ जोगट्टाणाओ आठवेत्तु अणंतगणंतराणं विसेसाहियं जोगट्टाणं । एयाए जोगवुट्टीए ताव गयं जाव उक्कोसगं जोगठाणं पज्जत्तगस्स सण्णिणो सव्वमहल्लविरियलद्धिस्स । ते य जोगठाणा “सेढीअसंखभागो”त्ति, घणीकयलोयस्स तिरियंपि सत्तरज्जुप्पमाणीए एगपएसिगाए सेढीए जावइओ असंखेज्जइमो भागो तावइया भवन्ति । किं भणियं होइ ? लोगसेढीए असंखेज्जइमे भागे जत्तिया आगासपएसा, तत्तियाणि जोगट्टाणाणि ह्वन्ति “तओ असंखगुणा पयढीमेया”त्ति तेहिं जोगठाणेहितो असंखेज्जगुणा पयढीमेया=पयढीणं विगप्पा । कइं ?, भन्नइ.—

पयढीओ असंखेज्जा जं ओहिदुगे वि तारतस्सेण । अस्संखल्लोगखएसपमाणा हुंति त्ति ल मेया ॥११४॥

ओहिनाणओहिदंसणारणं मेया असंखेज्जलोगागासपएससित्ता । अओ तदावारगाणं नाणावरणदंसणावरणाण वि तत्तिया चेव पयढीमेया । जओ तक्खओवसमेण ते लभन्ति त्ति । चउण्हं आणुपुच्चीनामारणं असंखेज्जाओ पगईओ लोगस्स संखेइज्जमे भागे जेत्तिया आगासपएसा तत्तियाओ, सेसारणं मेया पसिद्धा, एए अहिगिच्च जोगठाणेहितो असंखेज्जगुणा पगइ

१. “सेढीअसंखभागो” इति मुद्रितप्रती । २. “ठिइ” इति खंभातशान्तिनाथभंडारसत्कहन्तल्लिखितसाहप्रती । तथैव मुद्रितप्रतावपि । ३. “ठिइ” इत्यपि । ४. “कम्मपएमा तत्तो य रसच्छेया ॥” इति मुद्रितप्रती ।

मेया । एक्केक्के जोगट्टाणे वट्टमाणो सव्वाओ एयाओ वंधइ त्ति काउं । “तत्तो ठोभेयाणुक्कमेणं”  
त्ति पयडीमेएहिंतो कम्मठीमेया अणुक्कमेण=परिवाडीए असंखेज्जगुणा हवंति । कहां ? भन्नइ—  
आज्जिठ्ठिईभो हस्सठिई समउत्तरा ठिईठाणा । सव्वपयडीसु एवं सव्वजियणं पि ठिइमेया ॥११५॥

एक्केक्काए पगईए जहन्नाओ ठिइठाणाओ आढवित्तु ताव जाव उवकोसिया ठिई एयासि  
मज्जे तत्तियाणि तरतमजोगेण समउत्तरवट्टियाणि ठीठाणाणि ताणि पगइसमूहेहिंतो असंखे-  
ज्जगुणाणि । एक्केक्कम्मि असंखेज्जा मेया लब्भंति त्ति काउं । तओ=ठिइमेएहिंतो “ठीबंध-  
ज्जवसाय”त्ति, ठीबंधज्जवसायठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । कहां ? भन्नइ—

ठिइठाणे ठिइठाणे कसायउदया असंखल्लोगसमा । अणुभागबंधठाणा इय इक्केक्के कसाउदए ॥११६॥

ठिइं निव्वचंति जाणि अज्जवसाणठाणाणि ताणि ठीबंधज्जवसाणठाणाणि; कसाउदया  
वि वुच्चंति । ताणि अंतोमूहुत्तमित्तकालपरिमाणठीईणि । ताइं च जहन्ने ठिइठाणे असंखेज्ज-  
लोगागासपएसमेत्ताणि । तत्थ वि सव्वजहण्णे सव्वो थोवो संक्खिसो । तओ आढवेत्तु  
उवरिमाणि छट्टाणवट्टियाणि । एवं समउत्तराए ठिईए ठीबंधज्जवसाणठाणाणि अन्नाणि  
असंखेज्जलोगागासपएसमित्ताणि । तओ विसेसाहियाणि । तओ विसमउत्तराए ठीबंधज्जवसाण-  
ठाणाणि अपुच्चाणि असंखेज्जलोगागासपएसमित्ताणि । तेहिंतो विसेसाहियाणि । एवं कमेण  
नेयव्वा जाव उक्कोसिया ठिई । जेण कारणेण एक्केक्के ठीठाणे असंखेज्जलोगागासपएसमि-  
त्ताणि ठीबंधज्जवसाणठाणाणि लब्भंति । तेण ठीविसेसेहिंतो ठीबंधज्जवसायठाणाणि असंखेज्ज-  
गुणाणि । “तत्तो अणु भागबंधठाणाणि”त्ति ठीबंधज्जवसाणठाणेहिंतो अणुभागबंधठाणाणि  
असंखेज्जगुणाणि कहां ? भन्नइ—ठीबंधज्जवसायठाणं हि नाम कसाउदयपरिणामो गामनगराइ-  
परिणामवत् । तेसु ठीबंधज्जवसाणठाणेसु तिव्वमंदमज्झिमपरिणामाणि अणेगमेयभिन्नाणि  
जहन्नेणेकसमयपरिमाणाणि उक्कोसेण अट्टसमयपरिमाणाणि अणुभागबंधज्जवसाणठाणाणि  
वुच्चंति, गामनगराइ चेत्र उष्णनीयमज्झिमक्कुटुंबविभवविशेषवत् । ताणि असंखेज्जलोगागास-  
पएसमेत्ताणि । एक्केक्कम्मि ठीबंधज्जवसाणठाणे तेण अणुभागबंधज्जवसाणठाणाणि असंखे-  
ज्जगुणाणि भवंति त्ति । “तोऽणंतगुणा कम्मपएस”त्ति अणुभागबंधज्जवसाणठाणेहिंतो  
कम्मपएस=कम्मपोग्गला अणंतगुणा । कहां ? भन्नइ,—कम्मपोग्गलागहणसमए जो परिणामो  
सो अणुभागबंधज्जवसाणठाणबंधु वुच्चति । किं कारणं ? भन्नइ,—तओ परिणामविसेसाओ  
तेसु पोग्गलेसु रसविसेसो भवइ त्ति, कम्मपोग्गला अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाण-  
मणंतभागमेत्ता एक्कम्मि समए गहणम्मि च । एवमणुसमयं एक्केक्कम्मि परिणामे

अणंतार्णता कम्मपोग्गला लब्धंति चि काउं, अज्झवसाणठाणेहितो कम्मपोग्गला अणंतगुणा भवन्ति चि । “तत्तो रसच्छेय” चि कम्मपोग्गलेहितो रसपलिच्छेया अणंतगुणा । कहं ? भन्नइ-जहा अद्दहणविसेसाउ सित्थेसु रमविसेसो दिट्ठो, तथा अज्झवसाणविसासाउ कम्मखंधेसु रसविसेसो भन्नइ । अज्झवसाणाइं अद्दहणतुल्लाइं, तंदुलत्थाणीया कम्मप्पएमा, जो एक्कम्मि सित्थे रसो विभज्जमाणो भागं न देइ सो अविभागपलिच्छेओ । एवं कम्मखंधेसु जो अणु-भागरसो सो केवलनाणेण विभज्जमाणं विभज्जमाणो भागं न देइ चि अविभागपलिच्छेओ बुच्चइ । तारिसा अविभागा पलिच्छेया एक्केक्कम्मि कम्मप्पए म्मि सब्बजीवाणं अणंतगुणा लब्धंति । तेण कम्मपएसेहितो अविभागपलिच्छेया अणंतगुणा सिज्जंति ॥१११॥

पुब्बं “जोगट्ठणा सेढीअमंखमागो” चि भणियं । अओ सेढीमेव पन्नवेउकामो । आगास-पएसाणं अईवसुहुमत्तं ताव दंसेइ-

‘खेत्तं सुहुमं कालाउ जेग अंगुलपएसमेठीए ।

समयपएसववहारे असंखओसप्पिणी हुंति ॥११२॥

खेत्तं आगाससुहुमकालाओ अद्धाकालळक्खणाओ । कोऽत्र हेतुरित्युच्यते । जेण कारणेण अंगुलपमाणाए पएससेढीए संबंधिणे जे पएस तेसि मज्झाओ समयपएसववहारे=समए एक्के-कपएसववहारे किज्जमाणे असंखओसप्पिणीहंति । असंखेज्जासु ओसप्पिणीसु जावइयसमया तावइया तत्थ पएस हवंति ॥११२॥

चउदसरज्जुलोगो बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो ।

तदीहेगपएमा सेढी पयरो य तव्वग्गो ॥११३॥

सुगमा चेव एसा गाहा । परं ‘पयरो य तव्वग्गो’ चि सेढी सेढीए चेव गुणिया पयरो भवइ । एसो य एत्थ अणुवज्जमाणो वि पसंणेण भणिओ चि ॥११३॥

पयडीउ असंखेज्जा जं ओहिदुगे वि तारतम्मणं ।

अस्संखलोगखपएमपमाणा हंति किल भेया ॥११४॥

आजेट्ठिठई हस्सट्ठिठईउ समउत्तरा ठिठैठाणा ।

सव्वपयडीसु एवं सव्वजियाणं पि ठीभेया ॥११५॥

ठीठाणे ठीठाणे कसायउदया असंखलोगसमा ।

१. “सिद्धं” इत्यपि । २. “हुति” इत्यपि । ३. “ठिभेया” इत्यपि । ४. “ठिठैठाणे ठिठैठाणे” इत्यपि ।

अणुभागबंधाणा इय 'एक्केक्के कसाउदए ॥११६॥

एयाओ तिभि वि शाहाओ पुव्वुत्ताणं चेव पयडिभेयाईणं चउण्हं अत्थाणं सरुवनिवगाऊ पुव्वमेव भावियत्याओ त्ति न वक्खाणिज्जंति ॥११४-११५-११६॥

पुव्वं एक्केक्के कसाउदए ठीवंधज्झवसाणलक्खणे अदंखेज्जलोगागासप्पएसप्पमाणा अणुभागबंधज्झवसाणठाणा मणिया ! ते किं सव्वत्थ समा ? अह अन्नह ? त्ति मण्णइ,—  
अन्नहा, जओ—

थोवाऽणुभागठाणा जहन्नठिइपढमबंधहेउम्मि ।

बीयाइ विसेसाहिया जा चरमाए चरमहेऊ ॥११७॥

नाणावरणीयस्य जहण्णठिईए निव्वत्तगो जो सव्वजहचो कसायउदयभेओ सो जहन्नठिईए पढमो बंधहेऊ वुच्चइ । तत्थ थोव.अणुभागबंधज्झवसायठाणा । “थोवाइ विसेसाहिया”त्ति । बीयाए वि हेऊए विसेसाहिया । तइयाए हेऊए विसेसाहिया । चउत्थाए हेऊए विसेसाहिया । एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव नाणावरणीयस्स जहन्नठिईए चरमो हेऊ । (तत्थ विसेसाहिया चरिमाओ बीयाठीईए पढमो हेऊ तत्थ विसेसाहियो एवं जाव निरंतरं विसेसाहियो जाव बीया-ठीईए चरमो हेऊ एवं निरंतरं विसेसाहियो विसेसाहियो जाव नाणावरणस्स उक्कोसठिईए जो चरिमो ठीमेओ तत्थ जो चरिमो बंधहेऊ । ) तत्थ विसेसाहियो ॥११७॥

इय असुभाण सुभाण उ विवरीयं जेट्ठिइचरमहेऊ ।

आरब्भ निज्ज आउसु ठिइं ठिइं पइ असंखगुणा ॥११८॥

एवं असुमपयडीणं, सुहपयडीण “विचरीयं”त्ति किं विवरीयं ? मन्नइ,—“जेट्ठिइईए”त्ति उक्कोसं कसाओदयं आरब्भ=आइं काउं नेज्जा ताव जाव जहन्नठिईए पढमो बंधहेऊ कसाओदओ जहा सायावेयणियस्स पन्नरससागरोवमकोडाकोहीओ उक्कोसा ठिईं तस्स जो चरिमो ठीमेओ तस्स य जो चरिमो बंधहेऊ तत्थ सव्वथोवा अणुभागबंधज्झवसाणठाणा । दुचरिमे विसेसाहिया तिचरिमे विसेसाहिया । एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जा चरिमाए ठिईए पढमो बंधहेऊ एवं दुचरिमाए ठिईए जो चरिमो बंधहेऊ । तत्थ विसेसाहिया । एवं विसेसाहिया २, जाव तस्सेव पढमो हेऊ । एवं कमेण ओसरमाणाओ ओसरमाणाओ जाव सायावेयणीयस्स जहन्नाए ठिईए पढमो बंधहेऊ, तत्थ सव्वुक्कोसं अणुभागबंधठाणा । एवं सुहपयडीसु । आउयस्स “ठिइं



ठिहं पइ असंखगुण'त्ति आउयठिईएँ एगअणुभागठाणस्स वीयं असंखगुणं, न उण विसेसाहियं । एवं सव्वाण विसेसाहियाइं ॥११८॥

संपयं अणुभागठाणपरिमाणनिमित्तं इयं गाहा—

समयभवसुहुमअगणी असंखलोगा तओ असंखगुणा ।

तेऊ तक्कायठिई कमसो अणुभागठाणा य ॥११९॥

एसा पुव्वं चेव चउत्थपोग्गलवक्खाणसमए वक्खाणिय त्ति न पुणो वक्खाणिज्जइ ॥११६॥

इयाणिं जीवो मिच्छत्ताइकारणेहिं केरिसं दलियं कम्मत्ताए परिणामेइ तं भन्नइ—

अंतिमचउफासदुगंधपंचवण्णरसकम्मइगखंधे ।

अभवियअणंतगुणिए गेण्हइ तत्तियअणू समए ॥१२०॥

एककं दव्वं अणंतपएसियं अणंतपरमाणूणं संघाओ कियत्परिमाण इत्ति चेत् १, अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा, सिद्धाण अणंतिमो भागो, एत्तियाणं परमाणूणं समुदाओ एगो खंधो । अंतिमफासा चत्तारि, अट्ठहं फासाणं अंतिल्ला णिद्धलुक्खसीयउसिणा, दो गंधा, पंचवन्ना रसा य, जेसु कम्मइगखंधेसु अंतिमचउफासदुगंधपंचवन्नरसकम्मइगखंधा ते य संखाए अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता खंधा एगसमएणं गहणकम्मत्ताए इत्ति । एवं अणुभाग-वंधज्झवसाणठाणेहिंतो कम्मपएसा अणंतगुणा ॥१२०॥

एएसु कम्मखंधेसु पइपएसं जीवो रसाणू कियंतो निव्वत्तेइ त्ति दंसेइ—

गहणसमए य जीवो नियपरिणामेण जणयइ रसाणू ।

सव्वजियाणंतगुणे कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥१२१॥

कम्मपुग्गलेहिंतो अविभागपलिच्छेया अणंतगुणिया । कहं १ भन्नइ—जहा अहणविसेसाओ सित्थेसु रसविसेसो दिट्ठो, तथा अज्झवसाणविसेसाओ कम्मखंधेसु रसविसेसो हवइ । अज्झवसाणाइं अहणतुल्लाइं, तंदुलथाणीया कम्मपएसा, जो एगम्मि सित्थे रसो सो विमज्जमाणो विमज्जमाणो मागं न देइ, सो अविभागपलिच्छेओ वुच्चइ । एवं कम्मखंधेसु जो अणुभागरसो सो केवल्लनाणेणं विमज्जमाणो २, मागं न देइत्ति सो अविभागपलिच्छेओ वुच्चइ । तारिसा अविभागपलिच्छेया एक्केक्कम्मि कम्मपएसम्मि सव्वजीवाणंतगुणा लब्भंति । अओ भन्नइ—गहणसमए=कम्मखंधगहणसमए जीवो नियपरिणामेण सव्वाणं जीवाणं अणंतगुणा-रसाणू जणयइ=उप्पाएइत्ति सव्वेसु वि कम्मपएसेसु=कम्मपुग्गलेसु, तेण कम्मपएसेहिंतो अविभागपलिच्छेया अणंतगुणा ॥१२१॥

एए जोगठाणाईया सत्त पयत्था अप्पवहुत्तसंखाए भणिया ।

अओ संखेज्ज असंखेज्जअणंतमेयजाणावणत्थं गणणासंखाणं परूवेइ—

संखिज्जेगमसंखं परित्तियुत्तनियपयजुयं तिविहं ।

एवमणंतं पि तिहा जहन्नमज्झुकसा सव्वे ॥१२२॥

संखेज्जं एगविहं । एगविहं पि तिविहं “जहन्नमज्झुकसा सव्वे ॥१२२॥” त्ति वयणाओ । तं जहा—जहण्णा मज्झिमं उक्कोसं ३ । असंखेज्जं तिविहं । परिचासंखेज्जं, जुत्तासंखेज्जं असंखा-संखेज्जं एक्केक्कं पि य तिविहं । एवं अणंतं पि तिहा । “जहन्नमज्झुकसा सव्वे” एक्केक्कं पुण तिविहं । जहन्नयं मज्झिमं उक्कोसं ॥१२२॥

पढमं ताव संखिज्जगं उदिट्ठं, तं चेव जहन्नमज्झिमुक्कोससरूवओ भणेइ—

संखेज्जगं जहन्नं 'दोच्चिय मज्झिममओ परं बहुहा ।

जा उक्कोसं तं पुण चउपल्लपरूवणाइ इमं ॥१२३॥

संखेज्जयं दुविहं । गणणासंखेज्जयं, उवमासंखेज्जयं । गणणासंखेज्जयं अणेगविहं । तत्थ जहणयं दो चिय, मज्झिममओ परं बहुहा—अणेगमेयमिन्नं जाव सयं सहस्सा लक्खं जाव चुलसीई लक्खा पुच्चंगं भवइ । पुच्चंगगुणिया कमेण पत्तेयं २, सत्तावीसं ठाणा । ते य इमे-पुच्चंगं १ पुच्चं २ तुहियंगं ३ तुहियं ४ अडहंगं ५ अडहं ६ अवयवंगं ७ अवयवं ८ हुहुयंगं १ हुहुयं १० उप्पलंगं ११ उप्पलं ११ पउमंगं १३ पउमं १४ नल्लिगं १५ नल्लिं १६ अत्थनिउरंगं १७ अत्थनिउरं १८ अउयंगं १९ अउयं २० नउयंगं २१ नउयं २२ मउयंगं २३ मउयं २४ चूलियंगं २५ चूलियं २६ सीसपहेलियंगं २७ नाव सीसपहेलियं २८ । गणणासंखाणयं चउणउयं अंकट्टाणसयं । अओ परं उवमासंखेज्जयं अणेगविहं जाव उक्कोसंगं संखेज्जयं । तं पुण चउपल्लपरूवणाइ इमं वक्खमाणं ॥१२३॥

जंबुद्दीवपमाणा चउरो जोयणसहस्समोगाढा ।

रयणपहरयणकंडं भिंदिय पुट्ठा वहरकंडं ॥१२४॥

जंबुद्दीवपमाणा चचारि पल्ला ठविज्जंति जोयणसहस्सं अवगाहो रयणप्पहाए पढमं रयण-कंडं जोयणसहस्सं भिंदित्ता रयणप्पहाए वीयं वयरकंडं तरुस उवरित्तलं पुट्ठा ॥१२४॥

पल्ला ऽणवद्विय १ सलाग २ पडिमलागा ३ महासलागकखा ।

सव्वे सवेइयंता उवरिं ससिहा य भरियव्वा ॥१२५॥

पल्लसदो पत्तेयं संबज्झह, अणवद्वियपल्लो १, सलागपल्लो २, पडिसलागपल्लो ३, महासलागपल्लो ४, “सव्वे”त्ति चत्तारि वि जोयणलक्खं आयामविक्खंमेण तिउणं सविसेसं परिरणं, जोयणसहस्सं ओगाहेणं, “सवेइय”त्ति, अट्टजोयणियाए वेइयाए उच्चत्तेणं, उवरि मिहा [पउम] (पुण्णा) भरियव्वा ॥१२५॥

तो कप्पणाइ केणइ सुरेण पढमो धरित्तु वामकरे ।

एक्केक्कं दीवुदहीसु सरिमवं खिविय निट्टविओ ॥१२६॥

“तो”त्ति चउपल्लपरूवणाणंतरं कप्पणाए केणइ सुरेण पढमं अणवद्वियपल्लं मरित्ता वामहत्ये धरित्ता ओखित्ता एगा सलागा दीवे एगा समुहे पुणो एगा सलागा दीवे एगा सलागा समुहे ताव पक्खिविया जाव एक्केक्काए निट्टविओ ॥१२६॥

दीवे जत्थुदहिम्म 'व तदंतमेव पढमं व तं भरियं ।

पुरओ खिव एक्केक्कं दीवुदहिसु निट्टिए तम्मि ॥१२७॥

दीवे वा समुहे वा जत्थ चरिमा सलागा ठिया तं चेव तत्तियपमाणं अणवद्वियपल्लं, जोयणसहस्सं ओगाहेणं, अट्टजोयणाणि उच्चत्तेणं, तदंतमेव=निट्टाणपत्तदीवसमुहपेरंतमेव, पढमं व=जंबुदीवपमाणपढमपल्लमिव भरित्ता “पुरओ खिव एक्केक्कं”त्ति जत्थ दीवे वा समुहे वा चरिमा सलागा ठिया, तओ पुरओ एगा सलागा दीवे एगा सलागा समुहे पक्खिव जाव एक्केक्काए निट्टिओ । १२७॥

खिवसु सलागा पल्ले सरिसवमेगं पुणो तदंतं तं ।

पुव्वं व भरसु खिवसु य पुरओ पुण तम्मि निट्टविए ॥१२८॥

सलागापल्ले एगं सरिसवं खिव, पुणो तदंतं तं दीवे वा समुहे वा जत्थ चरिमा सलागा ठिया पुणो तत्तियपमाणं अणवद्वियपल्लं, पुव्वं व=पढमवारमिवं भरसु सरिसवाणं खिवसु य पुरओ जत्थ चरिमा सरिसवसलागा ठिया तओ पुरओ तओ तम्मि निट्टविए पल्ले किं ? ॥१२८॥

बीयं सलागपल्ले खिव सरिसवमेवमेव पुण तइयं ।

इय पुणरुत्तणवद्वियभरणविरेयणसलागाहिं ॥१२९॥

वीर्यं सरिसवं सलागपल्ले खिवसु । एवमेव पुणो तइयं 'इय'त्ति एवं 'पुणरुत्तणघ-  
द्वियभरणविरेयणसलागाहिं' ति, पुणरुत्तं=पुणो पुणो अणवद्वियभरणविरेयणं तेण  
जाओ सलागाओ ताहिं सलागाहिं ॥१२९॥

पुन्नो सलागपल्लो पुव्वकमागयणवट्ठिओ य तओ ।

'सो च्चिय सलागपल्लो उक्खिप्पइ खिप्पइ य पुरओ ॥१३०॥

सलागपल्लो पुन्नो भरिओ, पुव्वकमेण य आगओ जो अणवद्वियपल्लो सो वि भरिओ, जाहे  
सलागपल्लो सरिसवं न पडिच्छइ, ताहे सो च्चिय सलागपल्लो उक्खिप्पइ, वामकरे संठविय  
खिप्पइ य, तग्गओ सरिसवरासी अणवद्वियपल्लस्स य पुरओ जत्थ सलागा न पयडिया ॥१३०॥

पुव्वकमनिट्ठिए तद्धिमेगं खिव सरिसवं तइयपल्ले ।

पुव्वं व निट्ठियंते अणवद्वियपल्लमेव खिव ॥१३१॥

पुव्वकमनिट्ठिए सलागपल्ले "तइय"त्ति पडिसलागपल्ले एगा रुलागा खिवसु, "पुव्वं  
व निट्ठियंते" ति जत्थ चरिमा सलागा ठिया सलागापल्लस्स तत्तियपमाणं अणवद्वियपल्लं  
भरित्ता खिवसु ॥१३१॥

पुण तम्मि निट्ठिए खिव सलागपल्लम्मि सरिसवं 'एक्कं' ।

अण्णोण्णऽणवद्वियओ सलागपल्लं पुणो भरसु ॥१३२॥

पुण तम्मि अणवद्वियपल्ले निट्ठिए खिवसु सलागपल्ले एगं सरिसवं । "अण्णोण्ण-  
ऽणवद्वियओ"त्ति, अण्णोणाओ अणवद्वियपल्लोओ सलागपल्लं सरिसवेहिं पुणो भरसु=वीयवारं  
पडिपुणं क्कुणसु ॥१३२॥

तेण पुण पडिसलागपल्ले भरियम्मि दोसु य तमेव ।

उद्धरिय पुव्वविट्ठिणा सरिसवमेगं खिव चउत्थे ॥१३३॥

तेण सलागपल्लेण कमेण पडिसलागपल्ले तइयठाणठिए भरियम्मि समाणे "दोसु य"  
त्ति, अणवद्वियपल्लसलागपल्लेसु वि भरिएसु, तओ "तमेव" ति पडिसलागपल्लं भरिय,  
उद्धरिय, वामकरे संठविय, पुव्वविट्ठिणा=जत्थ न पडिया सलागा तस्स पुरओ निक्खिवणेण ।  
एगं सरिसवं चउत्थे महासलागपल्ले खिवसु ॥१३३॥

इय पढमेहिं वीर्यं 'तेहि य तइयं तु तेहि य चउत्थं' ।

भरणुद्धरणविकरणं ता कज्जं जाफुढा चउरो ॥१३४॥

१ "सुषिय" इत्यपि । २ 'इक्कं' इत्यपि । ३ "तेहिं वइयं तु तेहि अ" इत्यपि ।



इत्याह—अक्षोन्नभासे कए किं निष्कञ्जइति ॥१३८॥ अओ भणेइ—

सत्तमअसंखपढमचउसत्तमाऽणंतया य होंति कमा ।

रूवजुया ते मज्झा रूवूणा पच्छिमुक्कोसा ॥१३९॥

“सत्तमअसंख”ति सत्तमं असंखिज्जगं तं च जहन्नं असंखेज्जासंखेज्जगं भन्नं ।  
 “पढमचउसत्तमाणंतया य होंति कमा ।” ति पढमं अणंतकं तं च परिताणंतनामगं । “चउ”  
 ति चउत्थं जहणगं जुत्ताणंतं । “सत्तमाणंतया य”ति सत्तमं जहन्नमणंतानंतं वासहो  
 उवत्तसमुच्चये होंति=संपज्जंति कमेण=परिवादीए । तहा “रूवजुय”ति एगेण रूवेण जुया  
 ‘ने’ ति जहन्नगजुत्तासंखेज्जाइया पुव्वरासिणो अण्णोन्नभाससमुपपणा “भउद्ध”ति  
 मज्झिमसनामगा होंति । “रूवूणा पच्छिमुक्कोस”ति ते चैव अक्षोन्नभासकया चउत्थाइया  
 रूवेण उणा कया पच्छिमुक्कोसा होंति । एसंसि चैव संखाठाणाणं जे पच्छिमासंखाठाणा ते उक्कोसा  
 होंति । किं भणियं होइ—जहा जहन्नपरित्तासंखेज्जगं नियमवपमाणेसु ठाणेसु, ठावेउण तो  
 तेसिं रासीणं अक्षोन्नभासो कज्जइ. तओ चउत्थं जहन्नजुत्तासंखेज्जं होइ । तं चैव रूवजुत्तं  
 मज्झिमं जुत्तासंखेज्जगं । रूवूणं पुण तं चैव किं ? होइ पच्छिमं जं परितासंखेज्जगं तं उक्कोसं  
 होइ । एवं सव्वत्थ भावणा सयं कायच्चा । नवरं अणंतानंतं उक्कोसो न होइ ति ॥१३९॥

‘इत्तियमुत्तं सुत्ते अण्णमयमओ चउत्थयमसंखं ।

वग्गियमिक्कसि जायइ जहन्नयमसंखयासंखं ॥१४०॥

इत्तियं सुत्ते=आगसे उत्तं । अक्कस्स आयरियस्स मएणं चउत्थं असंखेज्जं ति । जहन्नं  
 जुत्तासंखेज्जगं एकवारवग्गियं सत्तमं जहन्नं असंखासंखं भवइ ॥१४०॥

रूवजुय तं मज्झं सव्वीहं रूवूणमाइमुक्कोसं ।

तं वग्गिउं तिवारं दस पक्खेवे खिवसु एए ॥१४१॥

पुव्वद्वं पढिअसिद्धं । नवरं तत्थ जहन्नं असंखेज्जासंखेज्जं तं कप्पणाए सयं १००,  
 एकवारवग्गियं जाया दससहस्ता १००००, बीयवारवग्गियं १००००००००, तइयवारवग्गियं  
 १०००००००००००००००० । तह वि उक्कोसं न भवइ । तओ दस पक्खेवा खिप्पयंति । तेय इमे—

लोगागासपएसा १ धम्मा २ धम्मे ३ गजीवदेसा य ४ ।

दव्वट्ठिया निगोया ५ पत्तेया चैव ६ बोद्धव्वा ॥१४२॥

ठिडबंधज्ज्ञवसाया ७ अणुभागा ८ जोगच्छेयपलिभागा ९ ।

'दोण्ह समाण य समया १० असखपक्खेवया दसउ ॥१४३॥

चउदसरज्जू लोगो तस्स पएसा पढमं १, धम्मत्थिकत्थपएसा वीयं २, अधमत्थिकाय-  
पएसा तहयं ३, एगजीवपएसा चउत्थं ४, एए चत्तारि वि तुह्मा पत्तेयं लोगपएमपमाणा ।  
“द्व्वद्विय”त्ति, द्व्वद्विवायरसुहुमनिगोयपज्जत्तगचउक्कसरीररासी पंचमं “पत्तेय” त्ति  
पत्तेयसरीरा, ते य अट्ठावीसाए जीवट्ठाणेषु जीवरासी च्छट्ठं ६, ‘ठीडबंधज्ज्ञवसाय’त्ति कसा-  
उदयमेदा सत्तमं ७ “अणुभागा”त्ति अणुभागबंधज्ज्ञवसाया अट्ठमं ८ । “जोगच्छेयपलि-  
भागा”त्ति जोगो=जीववीरियंसो बुद्धीए च्छिज्जमाणो जाहे भागं न देइ ताहे सो जोगपलिभागे  
बुच्चइ त्ति । ते य एगजीवस्स असंखेज्जाणं लोगाणं जावइया आगासपएसा तावइया अवि-  
भागा=पलिच्छेया दिट्ठा । उक्तं च-

‘पल्लाच्छेयणिच्छिन्ना लोगासंखेज्जाणपएसममा । अविभागा एकट्ठेके होंति पएसे जहन्नेण ॥’

नवमं ९ ‘दोह समाण य’त्ति दोण्ह समो उस्सप्पिणिओसप्पिणीओ तासि समयरासी=  
एस दसमो १०, एए दस पक्खेवा पक्खित्ता तह वि उक्कोसं न भवइ ।

पुण वग्गिए तिकखुत्तो तम्मि भवे लहुपरित्तयाऽणंतं ।

तो तत्तियवाराओ तत्तियमेत्ते ठवसु रासी ॥१४४॥

तो पुव्वकमेण त्तिन्नि वारा वग्गिज्जइ, तओ तं उक्कोसं असंखिज्जासंखिज्जगं लंघिउण्ण  
जहन्ने च परित्तयाणंतए पडियं ।

ताणऽण्णोण्णन्भासे जुत्ताऽणंतं जहन्नयं भवइ ।

एवइयअभवजिया रासिम्मि य वग्गिए तम्मि ॥१४५॥

ताण=तत्तियपमाणरासीणं अन्नोक्कन्भासे जुत्ताणंतयं जहण्णयं होइ । अणंतगपक्खवण्णाए चउ-  
त्थं अणंतगं । एवइयत्ति एतत्प्रमाणा अमव्वा=निव्वाणगमणअजोग्गा जीवा होंति । तह्हा रासि-  
म्मि यत्ति पुणरवि वग्गिए कयवग्गे तम्मि जहन्नजुत्ताणंतगपमाणे किं होइ? ॥१४५॥ अओ भणेइ-

जायमणंणाणं तं जहन्नयं त च वग्गसु तिवारं ।

तह वि परं तं न भवे ता खिवसु इमे छ पक्खेवे ॥१४६॥

जायं=संपन्नं अणंताणं तं सत्तमं संखागणं जहन्नं तं च पुणरवि वग्गसु त्तिन्नि वाराओ ।  
तहवि वग्गिए वि परं उक्कोसं अणंतारणंतगं न भवे=न होइ । ‘तो’त्ति तयणंतरं खिवसु पक्खि-  
व छपक्खेवा वक्खमाणा ॥१४६॥

सिद्धा १, निगोयजीवा २, वणस्सई ३, काल ४, पोग्गला ५ चेव ।  
सव्वम'लोयागासं ६, छप्पेणंतपक्खेवा ॥१४७॥

सिद्धा अणंता तेसिं रासी पढमो पक्खेवो १, "निगोयजीव"ति सुद्धमवायरनिगोय  
पञ्जचापञ्जत्तरासी चउक्कजीवरासी वीओ पक्खेवो २, "वणस्सई"ति निगोयचउक्कजीवा  
पत्तियवणस्सईउया वणस्सई वुच्चंति एस तइओ पक्खेवो ३, "काल"ति अईयाणागयभेयभिन्नो  
चउत्थो पक्खेवो ४, "पोग्गल"ति सव्वो पोग्गलरासी पंचमो ५, "सव्वमलोयागासं"  
ति लोयस्स अलोयस्स य जे आगासपएसा एस छट्ठो पक्खेवो ६ । एए अणंताणं रासीणं  
पक्खेवा ॥१४७॥

पुण तिव्वुत्तो वग्गिय केवलवरनाणदंसणे खित्ते ।

भवइ अणंताणंतं जेट्ठं ववहरइ पुण मज्झं ॥१४८॥

पुणरवि तिभि वाराओ वग्गिय पुव्वक्कमेण एवं छपक्खेवजुत्तं रासिं तओ तत्थ केवलवर-  
वापकेवलदंसणाणं जो नेयविसओ सो सव्वो खिप्पइ । तओ खित्ते सइ अणंताणंतं जेट्ठं हवइ ।  
ववहरइ पुण सव्वेसु ववहारेसु मज्झं=मज्झिमं; जेट्ठान्तगपमेयस्स रासिस्सेवाभावाउ ॥१४८॥

॥१४९॥ अंसंखाणंतपक्खवणाएऽण्णायरियमएण किंचि विसेसं भणेइ-

अन्नोन्नन्नाससमं वग्गियसंवग्गियं ति तो केइ ।

सत्तमऽसंखअणंते तिवग्गठाणे तमाहु तिहा ॥१४९॥

जो पुव्विच्छेसु परित्तजुत्तसिंभिएसु असंखेज्जगठाणेषु अणंतगसंखाठाणेषु य अन्नोन्नन्नासो  
भणिओ तस्स इमं तुल्लं वग्गियसंवग्गियं भअइ-ताणं दोणइ रासीणं परोप्परगुणणं "ति" समाप्तौ  
"तो"ति तओ केइ आयरिया सत्तमे असंखेज्जगे जहअए असंखेज्जसंखेज्जनामगे तथा सत्तमे  
अणंतगे जहअणंतगनामगे । तिवग्गठाणे सो चेव रासी तेण रासिणा गुणिओ वग्गो  
हवइ । एवं दुइज्जतिइज्जेवारासु वग्गे केए तिंभि वग्गां होति । तेसिं तिन्हं वग्गाणं उवरिं तिअन्नो-  
न्नन्नासं आहु=भणंति "तिइ"ति तिसु ठाणेषु । भावणा-जहा जे पुव्वि कया दस पक्खेवा  
पक्खेवा तओ ते पुणरवि तिभि वारकयां एवं छसु ठाणेषु पत्तयं २ अन्नोन्नन्नासं कारयंति ।  
एवं अणंते वि परं तत्थ छच्चेव पक्खेवा ॥१४९॥



इयार्णि पगरणकारो पणिहारणं करेइ—

नेयअइगहणयाए निबिडजडत्तेण नियमईएँ तथा ।

जमिहुस्सुत्तं 'वोत्तं मिच्छामिह दुक्कडं तस्स ॥१५०॥

नेयस्स=कम्माइवियारस्स अइगहणयाए=अइगंभीरत्तयाए तथा “निबिडजडत्तेण”ति

निबिडजडत्तं=अणववोहसत्ती तेण, नियमईएँ=मम पण्णाए जं इह पगरणे उस्सुत्तं=सुत्तवज्जं  
वुत्तं=भणियं मिच्छा=अलियं होइ मम दुक्कडं=आगमासायणाइदोसरूवं तस्स उस्सुत्तभणण-  
संबंधि ॥१५०॥

संपयं पगरणकारो नामं कहितो विसेसेण पणिहारणं करेइ—

जिणवल्लहगणिलिहियं सुहमत्थवियारलवमिणं सुयणा ।

निसुणंतु मुणंतु सयं परे वि 'वोहंतु सोहंतु' ॥१५२॥

जिणवल्लहगणिनामणेण पगरणकारेण लिहिअं सुआ=आगमसमूहाओ उद्धरियं । सुहमा=

सुहुमद्धिगम्मा जे अत्था, तेसिं वियारो=परुवणं, तरस लवो=अंसो तं इमं पुच्चपरुवियं अहो  
सुयणा निसुणंतु सवणगहणाइणा, मुणंतु=ईयापोहलक्खणनाणविसेसवावारेण अत्थओ जाणंतु  
सयं=अप्पणा, परेवि=अन्नेवि भव्वा वोहंतु=एयपगरणत्थवियारा य कुच्चंतु । तथा जं किंचि  
अणामोगओ अणुचियं लिहियं तं सोहंतु=अवणेत्तु, अन्नं च संजोजयंतु एयस्स उचियं ति ॥१५१॥

॥ इति सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणस्य टिप्पनकं समाप्तमिति ॥ ग्रन्थार्थं १४५० ॥

॥ श्रीरामदेवगणिकृतटिप्पनकेन समलङ्कृतं ॥

॥ श्रीमञ्जिनवल्लभगणिरचितं ॥

॥ श्री सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणं समाप्तम् ॥

शत  
श्रीमज्जिनवल्लभगणिरचिते

श्रीसूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणे

(अपरनाम-सार्धशतकप्रकरणे)

श्रीमद्रामदेवगणिराप्रणीतं टिप्पणकं समाप्तम्

अथ

श्रीमज्जिनवह्नभगणिपुद्गवह्कते

श्री लक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणे

(अपरनाम-सार्धशतकप्रकरणे)

अज्ञातकतुका टीका प्रारभ्यते

ॐ ह्रीं श्रीं महं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

न्यायाम्भोनिधि श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपत्रेभ्यो नमः ॥  
सद्धर्मसंरक्षकश्रीमदाचार्यविजयकमलसूरीश्वरपादपत्रेभ्यो नमः ॥  
सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरपादेभ्यो नमः ॥  
कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरपादेभ्यो नमः ॥  
परमगीतार्थश्रीमदाचार्यविजयहार्सूरीश्वरपादपत्रेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणपुङ्गवविहितं

❀ श्री सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम् ❀

(अपरनाम—सार्धशतकप्रकरणम्)

अज्ञातकतृकया टीकया विभूषितम्

~\*~\*~\*~

॥ ॐ नमः सर्वज्ञाय ॥

सयलंतरारिवीरं वंदिय वरनाणालोयशां वीरं ।  
वोच्छं जहासुयमहं कम्माइवियारसारलवं ॥१॥  
कीरइ जिण्ण हेऊहि पयइठिइरसपएसओ जं तं ।  
मूलुत्तरट्ट अडवन्नसयपभेयं भवे कम्मं ॥२॥

एयं वक्खमाणं—जीवेण तहाविइअज्झवसाणपरिणएण कीरइ चि जं तं कम्मं । तं च अंजणत्तुण्णपुन्नसमुग्गाउच्च सुहुमधूलाइअणेगविहपरिणामपरिणएहिं अणतेहि पोग्गालेहि निरं-  
तरं निविडल्लोगो । परिच्छिन्ना एव पोग्गला कम्मपरिणामणजोग्गा वज्झमाणा जीवपरिणाम-  
पञ्चएण चा-उट्ट, नाणाइलद्धिवाइणो ३ सुहदुक्ख ४ सुमासुमाउ ५ नाम ६ उच्चनीयगोचंउतराय ८  
पोग्गला कम्मं ति बुच्चई ।

१ यद्यपि चैषा टीका-अज्ञातकट्टका मणित्वा तथा-ऽपि श्रीमद्वारामदेवगणिकृता टीकैवाऽपि सम्मा-  
व्यते । अतः श्रीमद्वारामदेवगणिविहितपत्रश्रीतिप्रकरणवृत्तिप्रशस्ती या प्रथमगाथा विद्यते सैव गाथा-  
ऽत्रा-ऽपि प्रशस्तिरतयाऽन्ते विद्यते ।

“जीवपरिणामहेऊ कम्मट्टा पोग्गला परिणमंनि । पोग्गलकम्मणिमित्तं जीवो वि तहा विपरिणमइ ॥”  
तमद्वविहं कम्मं केहिं हेऊहिं वज्झइ ति

तत्थ कम्मबन्धहेयवो चत्तारि । तं जहा-मिच्छत्तं ५, अत्रिरई १२, कसाया २५, जोगा १५ । मिच्छत्तं पंचविहं ५-अभिग्गहियमिच्छत्तं १, अणभिग्गहियमिच्छत्तं २, आभिणिवेसिय-मिच्छत्तं ३, संसइयमिच्छत्तं ४, अणाभोगमिच्छत्तं ५ । तत्थ आभिग्गहियं कुदिट्ठिदिक्खियाणं हवइ । गोढयरमेयं च जीवाणं दीहतरसंसारियाण पायसे संभवइ ॥१॥ अणभिग्गहियं पुण असंपत्तसम्मत्ताणं कुदिट्ठअदिक्खियाणं मणुयतिरियाईणं ॥२॥ आभिनिवेसियं तु संपत्तजिण-चय(णा)णं एगेण सव्भावप्परूवणाए कयाए मच्छराइणा तमण्णहा वागरेमाणेणं पडिनिवेसेण वामया एसो अत्थो समत्थणीउत्ति । अणभोगपरूविए वा पच्छा नाए वि सच्चतत्ते सभणिय-पडिप्पवेसेण, अजाणं वा भावत्थं, परूवेइ; वारिओ वि न चिड्ढई । एएसिं नीवाणं आभिणिवेसियं मिच्छत्तं ॥३॥ संसइयं पुण सुत्ते वा अट्ठे वा उभयम्मि वा संकिओ परूवेइ, सो य अन्नं न पुच्छइ; कहमहमेइहपरिवारो वि अन्नं पुच्छामि, पुच्छिज्जमाणो वा जाणिज्जा एस एयं न याणइत्ति, अहवा जे मह भत्ता जाणिज्जा, एयाहिंतो वि एस वरतरओ, जओ पुच्छिज्जाइ, तओ मं मोत्तूण एए एयं भइसंते, अओ अन्नं न पुच्छइ; तस्स संसइयमिच्छत्तं ॥४॥ अणाभोगं एगिदियाईणं, जम्हा आभोगो=नाणं=उवओगो मण्णइ; एयं केरिसं एयं व ति एसो पुण तेसिं नत्थि, तेण तेसिं अणाभोगमिच्छत्तं । अहवा सुद्धं परूवइस्सामि, अणुवओगाउ असुद्धं 'पक्खियं, तं वि अणाभोगं परेसिं मिच्छत्तकारणत्तेण ॥५॥

एयं पुण पंचविहं मिच्छत्तं थूएभावेण । परमत्थओ विवज्जासो । सो पुण-एयं न मए न मम पुव्वपुरिसेहिं वा कारियं एयं जिणाययणं, किं मम एत्थ पूयासत्काराई आयरेणं । अहवा मया एयं जिणविंवं कारियं मम पुव्वपुरिसेहि वा, ता एत्थ पूया-इयं निव्वत्तेमि, किं मम परकीएसु अञ्चयरेणं । एवं च तस्स न सव्वन्नुपच्चया पवित्ती; अन्नहा सव्वेसु (वि विवेसु) अरिहं चेव ववइसिज्जइ; सो भरहा जइ परकीओ तो पत्थर-त्तेप्पपित्तलाइयं अप्पणिज्जं, न पुण पत्थराईसु वंदिज्जमाणेसु, कम्मक्खओ, किंतु तित्थ-यरगुणपक्खवाएणं; अन्नहा संकराइविवेसु वि पासाणाइसव्भावाओ तेसु वि वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ होजा । मच्छरेण वा परकारियचेहयालए विग्घं आयरंतस्स महामिच्छत्तं; न तस्स गंठ्ठिमेओ वि संभाविज्जइ । जे पासत्थाइकुदेसणाए वि मोहिया सुविहियाणं वा वाहाकरा मवन्ति, ते वि; जे वि जाइनाइपक्खवाएण साहुवंदणाइसु पयट्ठंति, न गुणागुणाचिंताए, ते वि;

तदेव महामिच्छदिद्वी ; एवं विवक्षासरूवे मिच्छते सह सुवहुं पि पदंतो अन्नाणी चैव ।  
न हि विवरीयमहणो नाणं कज्जसाहगं, अतो अन्नाणं तं, एएसु हंतैसु अइदुकरा वि तवचरण-  
किरिया न मोक्खसाहिगा । जम्हा सो जीवरक्खामुसावायाइवज्जणं करंतो वि अविरओ कहिज्जइ ।  
पंचमगुणट्टाणे देसविरई, छट्टगुणट्टाणे सच्चविरई, न पढमगुणट्टाणे । तस्स च अणंताणुचंधि-  
पमुहा सोलस वि कसाया वज्जंति उइज्जंति य । तन्निमित्ताओ असुहाओ दीहट्टिईओ तिच्चाणु-  
भागाओ पयडीओ वज्जंति । तासिं च उदए नरयतिरियकुमाणुसत्तदेवगइरूवो संसारो तन्निबन्ध-  
णाणि य भूरिदुक्खाइं पिट्टओ अणुसज्जंति । एवं च संविग्गामुणिगणग्गेसरसिरिस्सरिजिणेसर-  
विरइयकहाणयकोसाओ लिहियमिणं एवं मिच्छत्तं बन्धहेऊ ॥१॥

१'बारसविहा अविरई, तं जहा— २'मणइंदियअनियमो छकायवहो ॥२॥

३'पणवीस कसाया, तं जहा—सोलस कसाया नवनोकसाय पणवीसं ॥३॥

जोगा य पन्नरस, तं जहा—मणचउक्कं, वइचउक्कं, ओरालियं ओरालियमीसं, वेउ-  
च्चियं, वेउवियमीसं, आहारगं, आहारगमीसं, कमइगं च; एवं पण्णरस जोगा ॥४॥  
एवं बंधहेयवो चउरो ।

कम्मबंधो चउव्विहो । पगइबंधो ठिईबंधो रसबंधो पएसबंधो य । तत्थ पगइबंधो  
दुविहो, मूलपयडीबंधो उत्तरपगइबंधो य । मूलपगइबंधो अट्टविहो । उत्तरपगइबंधो अट्टवन्नसय-  
पमेओ । तत्थ जहासुयाणुसारेण कम्मवियारसरूवमित्तपरिकहणेणं आयसुमरणं पत्थणामि, नेह  
सदावसदाइछलो धेत्तव्वो ॥१-२॥

दंसणा १ नाणा २ वरणांतराय ३ मोहा ४ उ ५ गोय ६ वेयणीयं ७ ।

नामं च नव १ पणा २ पणा ३ ऽट्टवीस ४ चउ ५ दु ६ दु ७ बियालविह ८ ॥३॥

दंसणावरणं नवविहं १, नाणावरणं पंचविहं २, अंतराण्यं पंचविहं ३, मोहणिज्जं अट्टावीस-  
विहं ४, आउयं चउव्विहं ५, गोयं दुविहं ६, वेयणिज्जं दुविहं ७, नामं बायालीसविहं ८ ॥३॥

एयाओ मूलपयडीओ उत्तरपयडिमेयेणं विसैसिज्जमाणीओ अणेगविहाओ भवंति ।

तत्थ पढमं ताव दंसणावरणस्स नाणाइप्पडिणीयादिभावोवचियाओ पावपोगलनिप्फन्नाओ  
दरिसणोवच्चायकारियाओ नव उत्तरपयडीओ भवंति । तं जहा—

नयणोयरोहिक्केवलदंसणात्रावरणायं भवइ चउहा ।

निदापयलाहि ङहा निदाइदुरुत्थीणाद्धी ॥४॥

१-२ अविरतादिबन्धहेतुभेदप्रतिपादका गाथा चेमा—“बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छका-  
यवहो । सोलस नव य कसाया पणावीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥” । प्रथौ “सोलसकसाया तं जहा—नवनोक-  
साय पणवीसं” इति पाठः । किन्तु स सम्यग् न भाति ।

“जह इत्थ कुंभयारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ निंद पावइ अकए वि मज्जन्मि ।  
जह एत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ पूयं पावइ इह पुण्णकलसाई ॥  
एवं कुञ्जालसमाणं गोयं कम्मं तु एत्थ जीवस्स । उच्चानीय<sup>१</sup> विभागो जहा होइ तथा निसामेह ॥  
अधणी बुद्धि(विउत्तो रूव)विहूणो वि जस्स उदएणं । लोमम्मि लहइ पूयं उच्चगोयं तयं होइ ॥  
सघणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिठणो वि जस्स उदएणं । लोमम्मि लहइ निन्दं एय पुण इहोइ नीयं तु ॥”

तत्थ वेयणियस्स दो उत्तरपयडीओ । तं जहा-सायं असायं च । अणुकम्पाइसुसुद्ध-  
भावोवचियं सुभलक्खणं (सायं) । तच्चिवरियभावोवचियं दुहलक्खणं असायं । भणियं च-  
“महुलित्तनिसियकरवाल धारजीहाइ जारिस लिहणं । तारिसयं वेयणियं सुहदुइउप्पायगं<sup>२</sup> भणियं ॥”

कहं ?

“महुभासायणसरिसो सायावेयस्स होइ<sup>३</sup> परिणामो । जं असिणा तहि छिज्जइसो<sup>४</sup> परिणामो असायस्स” ॥६॥

नामं बायालीसविहं, अहवा तेणवइमेयं, अहवातिउत्तरसयमेयं, अहवा सत्तसद्धिमेयं ।

गइ१जाइ२तणु३उवंगा४बंधणा५संघायणाणि ६संघयणा७ ।

सठाण८वन्न९गंध१०रस११फास१२अणुपुब्बि१३विहगगइ१४ ॥७॥

गइनामं, जाइनामं, सरीरनामं, अंगोवंगनामं, बंधणनामं, संघायनामं संघयणनामं,  
संठाणनामं, वण्णनामं, गंधनामं, रसनामं, फामनामं, आणुपुब्बिनामं, (विहायोगइनामं) ।  
एवं पिंडपयइ ति च चउदस ॥७॥

पिंडपयडि ति, चउदस परघा१उज्जोय २आयवु३सासं४ ।

अगुरुलहु ५तित्थ ६निमिणो ७ वघाय ८मिय अट्ट पत्तेया ॥८॥

परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, (उस्सासनामं,) अगुरुलहुनामं, तित्थयरनामं,  
निम्माणनामं, उवघायनामं, एवं अट्ट पत्तेया ॥८॥

तसबायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।

सुसराइज्जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

तसनामं, १ बादरनामं २, पज्जत्तनामं ३, पत्तेयनामं ४, थिरनामं ५, सुहनामं ६,  
सुमगनामं ७, सुसरनामं ८, आदेयनामं ९, जसकित्तिनामं च १० ॥९॥

थावरसुहुमअपज्जं साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।

दूसरणाएजाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥





“जह इत्य कुंभयारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ निंद पावइ अकए वि मज्जम्मि ।  
जह एत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ पूयं पावइ इह पुण्णकलसाई ॥  
एवं कुञ्जालसमाणं गोयं कम्मं तु एत्थ जीवस्स । उच्चानीय<sup>१</sup>विभागो जहा होइ तहा निसामेह ॥  
अधणी बुद्धि(विउत्तो रूव)विहूणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ पूयं उच्चगोयं तयं होइ ॥  
सघणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिउणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ निन्दं एयं पुण इहोइ नीयं तु ॥”

तत्थ वेयणियस्स दो उत्तरपयडीओ । तं जहा-सायं असायं च । अणुकम्पाइसुसुद्ध-  
भावोवचियं सुभलक्खणं (सायं) । तच्चिवरियभावोवचियं दुहलक्खणं असायं । भणियं च-  
“महुलित्तनिसियक्खणाल धारजीहाइ जारिस लिहणं । तारिसयं वेयणियं सुहदुहउप्पायगं<sup>२</sup> भणियं ॥”  
कहं ?

“महुआसायणसरिसो सायावेयस्स होइ<sup>३</sup> परिणामो । जं असिणा तहि छिज्जइसो<sup>४</sup> परिणामो असायस्स” ॥६॥

नामं बायालीसविहं, अहवा तेणवइमेयं, अहवातिउत्तरसयमेयं, अहवा सत्तसद्धिमेयं ।

गइ १ जाइ २ तणु ३ उवंगा ४ वंधण ५ संघायणाणि ६ संघयणा ७ ।

सठाण ८ वन्न ९ गंध १० रस ११ फास १२ अणुपुव्वि १३ विहगगइ १४ ॥७॥

गइनामं, जाइनामं, सरीरनामं, अंगोवंगनामं, वंधणनामं, संघायनामं संघयणनामं,  
संठाणनामं, वण्णनामं, गंधनामं, रसनामं, फासनामं, आणुपुव्विनामं, (विहायोगइनामं) ।  
एवं पिंडपयइ त्ति च चउदस ॥७॥

पिंडपयडि त्ति, चउदस परघा १ उज्जोय २ आयवु ३ सासं ४ ।

अगुरुलहु ५ तित्थ ६ निमिणो ७ वघाय ८ मिय अट्ट पत्तेया ॥८॥

परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, (उस्सासनामं,) अगुरुलहुनामं, तित्थयरनामं,  
निम्माणनामं, उवघायनामं, एवं अट्ट पत्तेया ॥८॥

तसवायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।

सुसराइज्जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

तसनामं, १ वादरनामं २, पल्लत्तनामं ३, पत्तेयनामं ४, थिरनामं ५, सुहनामं ६,  
सुमगनामं ७, छसरनामं ८, आदेयनामं ९, जसकित्तिनामं च १० ॥९॥

थावरसुद्धमअपज्जं साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।

दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

थावरनामं १, सुहुमनामं २, अपञ्जत्तनामं ३, साहारणनामं ४, अथिरनामं ५, अमुभ-  
नामं ६, दूमगनामं ७, दूसरनामं ८, अणादेयनामं ९, अजसकित्तिनामं १०, इय नामे  
सेयरा वीसं ॥१०॥

तसचउथिरछक्कं अथिरछक्कसुहुमतिगथावरचउवकं ।

सुभगतिगाइविभासा पयडीण तहाइसंखाहिं ॥११॥

तसं, बादरं, पञ्जत्तगं, पत्तेयं; एयं तसचउक्कं । थिरं, सुभं, सुभगं, सूसरं,  
आदेयं, जसं; एवं थिरछक्कं । अथिरं, असुभं, दूमगं, अणाइज्जं, अजसं; एवं अथिरछक्कं ।  
सुहुमं, अपञ्जत्तगं, साहारणं; एवं सुहुमतिगं । अहवा थावरेण समं, थावरचउक्कं । सुभगतिगाइ  
विभासा, विविधा भासा विभासा । जहा सुभगं, सूसरं, आदेयं; एवं सुभगतिगं । विवरीयं  
दूमगतिगं आइपयडीविवक्खया तिगं चउक्कं पंचगं वा नेअं ॥११॥

एवं त्रायालीसविहं नामं । अहुणा तेणवइ भण्णइ—

गइयाईण य कमसो चउ १पण २पण ३ति ४पण ५पंच ६इ ७च्छक्कं ८ ।

पण ९दुग १०पण ११इ १२चउ १३दुग १४मिय उत्तरभेयपणसट्ठी ॥ १२॥

गइ ४, जाइ ५, सरीर ५, अंगोवंग ३, बंधण ५, संघाय ५, संघयण ६, संठाण ६,  
चण ५, गंध २, रस ५, फास ८, अणुपुच्ची ४, विहायगइ ५, एवं पणसट्ठी ६५ ॥१२॥

एएसिं विवरणं—

निरयतिरिनरसुरगई इगिवियतियचउपणिंदिजाईओ ।

ओरालियवेउ व्वियआहारगतेयकम्मइया ॥१३॥

निरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई जीए उदएण जीवो नेरइओ होइ नरयपुढवीए  
सा भणिया नरयगई । सेसगईउ त्रि एमेव । जाइनिप्फत्तिअभिहाणकारणं जाइनामं । तं  
जहा—एगिंदियजाई, वेइंदियजाई, तेइंदियजाई, चउरिंदियजाई, पंचिंदियजाई ति । एएसिं  
मेया—एगिंदियजाइनामं पंचहा भवइ । तं जहा—पुढविकाइ एगिंदियजाइनामं । एएसिं  
एक्केकीए अणेगमेया जहा पन्नवणाए । एवं वेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचिंदियजाइनामाण  
य अणेगा मेया जहा पणवणाए । एवमेयं जाइनामं विवरणओ अणेगकोडिसो भणियच्चं ।  
अणेगा उ कुलकोडीओ संक्खेवेण पुण पंच उत्तरपगईओ वणिज्जिंहिति ।

“एगिंदिएसु जीवो व्विस्सइ कम्मस्स होइ उदएणं । सा एगिंदियजाई बहुमेओ तीळ परिणामो ॥”

एवं वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाइओ पंचिंदियाण वि तहा बहवो मेया होंति एक्केकाए ॥

“अह इत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ निदं पावइ अकए वि मज्जम्मि ।  
जह एत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ पूयं पावइ इह पुण्णकलसाई ॥  
एवं कुञ्जालसमाणं गोयं कम्मं तु एत्थ जीवस्स । उच्चानीय<sup>१</sup>विभागो जहा होइ तहा निसामेह ॥  
अधणी बुद्धि(विउत्तो रूव)विहूणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ पूयं उच्चगोयं तयं होइ ॥  
सधणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिवणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ निन्दं एयं पुण होइ नीयं तु ॥”

तत्थ वेयणियस्स दो उत्तरपयडीओ । तं जहा—सायं असायं च । अणुकम्पाइसुसुद्ध-  
भावोवचियं सुमलक्खणं (सायं) । तच्चिवरियभावोवचियं दुहलक्खणं असायं । भणियं च—  
“महुलित्तनिसियकरवाल धारजीहाइ जारिसं लिहणं । तारिसयं वेयणियं सुहदुहउप्पायगं<sup>२</sup> भणियं ॥”  
कहं ?

“महुआसायणसरिसो सायावेयस्स होइ<sup>३</sup> परिणामो । जं असिणा तहि छिज्जइसो<sup>४</sup> परिणामो असायस्स” ॥६॥

नामं वायालीसविहं, अहवा तेणवइमेयं, अहवातिउत्तरसयमेयं, अहवा सत्तसट्ठिमेयं ।

गइ<sup>१</sup>जाइ<sup>२</sup>तणु<sup>३</sup>उवंगा<sup>४</sup>वंधणा<sup>५</sup>संघायणाणि<sup>६</sup>संघयणा<sup>७</sup> ।

सठाणा<sup>८</sup>वन्न<sup>९</sup>गंध<sup>१०</sup>रस<sup>११</sup>फास<sup>१२</sup>अणुपुब्बि<sup>१३</sup>विहगगइ<sup>१४</sup> ॥७॥

गइनामं, जाइनामं, सरीरनामं, अंगोवंगनामं, वंधणनामं, संघायनामं संघयणनामं,  
संठाणनामं, वण्णनामं, गंधनामं, रसनामं, फासनामं, आगुपुब्बिनामं, (विहायोगइनामं) ।  
एवं पिंढपयइ त्ति च चउदस ॥७॥

पिंढपयइ त्ति, चउदस परघा<sup>१</sup>उज्जोय<sup>२</sup>आयवु<sup>३</sup>सासं<sup>४</sup> ।

अगुरुलहु<sup>५</sup>तित्थ<sup>६</sup>निमिणो<sup>७</sup>वघाय<sup>८</sup>मिय अट्ट पत्तेया ॥८॥

परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, (उस्सासनामं,) अगुरुलहुनामं, तित्थयरनामं,  
निम्माणनामं, उवघायनामं, एवं अट्ट पत्तेया ॥८॥

तसबायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।

सुसराइज्जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

तसनामं, १ वादरनामं २, पज्जत्तनामं ३, पत्तेयनामं ४, थिरनामं ५, सुहनामं ६,  
सुभगनामं ७, सुसरनामं ८, आदेयनामं ९, जसक्कित्तिनामं च १० ॥९॥

थावरसुहुमअपज्जं साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।

दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

थावरनामं १, सुहुमनामं २, अपञ्जत्तनामं ३, साहारणनामं ४, अथिरनामं ५, अमुभनामं ६, दूमगनामं ७, दूसरनामं ८, अणादेयनामं ९, अजसक्तिनामं १०, इय नामे सेयरा वीमं ॥१०॥

तसचउथिरछवकं अथिरछकसुहुमतिगथावरचउवकं ।

सुभगतिगाइविभासा पयडीणा तहाइसंखाहिं ॥११॥

तसं, बादरं, पञ्जत्तगं, पत्तेयं; एयं तसचउवकं । थिरं, सुभं, सुभगं, सुसरं, आदेयं, जसं; एवं थिरछकं । अथिरं, असुभं, दूमगं, अणाइज्जं, अजसं; एवं अथिरछवकं । सुहुमं, अपञ्जत्तगं, साहारणं; एवं सुहुमतिगं । अहवा थावरेण समं, थावरचउवकं । सुभगतिगाइ विभासा, विविधा भासा विभासा । जहा सुभगं, सुसरं, आदेयं; एवं सुभगतिगं । विवरीयं दूमगतिगं आहपयडीविवक्खया तिगं चउवकं पंचगं वा नेअं ॥११॥

एवं चायालीसविहं नामं । अहुणा तेणवइ भण्णइ—

गइयाईणा य कमसो चउ १पणा २पणा ३ति ४पणा ५पंच ६छ ७च्छकं ८ ।

पणा ९दुग १०पणा ११ट्ट १२चउ १३दुग १४मिय उत्तरभेयपणासट्टी ॥ १२॥

गइ ४, जाइ ५, सरीर ५, अंगोवंग ३, वंधण ५, संघाय ५, संघयण ६, संठाण ६, चण्ण ५, गंध २, रस ५, फास ८, अणुपुव्वी ४, विहायगइ ५, एवं पणसट्टी ६५ ॥१२॥

एएसिं विवरणं—

निरयतिरिनरसुरगई इगिवियतियचउपणिंदिजाईओ ।

ओरालियवेउ व्वियआहारगतेयकम्मइया

॥१३॥

निरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई जीए उदएण जीवो नेरइओ होइ नरयपुढवीए सा मणिया नरयगई । सेसगईउ त्रि एमेव । जाइनिप्फत्तिअभिहाणकारणं जाइनामं । तं जहा—एगिंदियजाई, वेइंदियजाई, तेइंदियजाई, चउरिंदियजाई, पंचिंदियजाई ति । एएसिं मेया—एगिंदियजाइनामं पंचहा भवइ । तं जहा—पुढविकाइ एगिंदियजाइनामं । एएसिं एक्केकीए अणेगमेया जहा पञ्चवणाए । एवं वेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचिंदियजाइनामाण य अणेगा मेया जहा पणवणाए । एवमेयं जाइनामं विवरणओ अणेगकोडिसो मणियच्चं । अणेगा उ कुलकोडीओ संक्खेवेण पुण पंच उत्तरपगईओ वणिणञ्जिहिंति ।

“एगिंदिएसु जीवो अस्सिह कम्मस्स होइ उदएणं । सा एगिंदियजाई बहुमेओ तीअ परिणामो ॥”

एवं वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाइओ पंचिंदियाण वि तहा बहवो मेया होंति एक्केकाए ॥

ओरालियसरीरं, वेउव्वियसरीरं, आहारगसरीरं, तेजइगसरीरं, कम्मगसरीरं । तत्थ उदारपोग्गल-  
निप्फण्णं उदारं, (उदारं) नाम धूरं । त्रिविहप्पकारकारयं वेउव्वियं जं अपमत्तसंजएण उवचियं  
पमत्तभंजयस्स उदयगयं भवइ । उक्कोमदलियणिप्फयमाणं संदेहाइपुच्छनिमित्तं सव्वण्णुसमीवं  
गमणजोगं आहारगसरीरं, चउदसपुव्वधरस्सेव । आहारपागतेयनिस्सग्गकारि तेयगसरीरं । कम्म-  
पुग्गलमयं कम्मगसरीरं । भणिय च—

“ओरालियं सरीरं उदएणं होइ जस्म कम्मस्स । तं ओरालियनामं <sup>१</sup>वहुभेओ तस्स परिणामो ॥  
एवं विउव्वहारगतेयगकम्मे य होइ जइकमसो । होति विसेसिज्जंते एक्केक्के वहुविहा भेया ॥” ॥१३॥

पढमत्तितगुणुवंगा वंधणसंधायणा य तगुणामा ।

सुत्ते सत्तिविसेसो, संघयणमिहअट्टिनिचउत्ति ॥१४॥

ओरालियअंगोवंगं, वेउव्वियअंगोवंगं, आहारगअंगोवंगं । तत्थ इमाणि अट्ट अंगाणि,  
“दोहत्था दोपाया सीसं पट्टी उरं च उदरं च । एए अट्टंगा खलु सेसाणि उ होति वंगाणि ॥”  
भणियं च—“अंगोवंगविभागो उदएणं होइ जस्स कम्मस्स । तं अंगुवंगनामं <sup>२</sup>तस्स वहुभेया इमे होति ॥  
सीसमुरो य <sup>३</sup>पट्टी दो वाहू ऊरुया य अट्टंगा । अगुलिमाइ उवंगा अंगोवंगाइं सेसाइं” ॥  
ओरालियबंधणं, वेउव्वियबंधणं, आहारगबंधणं, तेयगबंधणं, कम्मगसरीरबंधणं । उक्तं च—

“ओरालपुग्गला इह वद्धा जीवेण जे उरालत्ते । अन्ने उ वज्जमाणा ओरालियपुग्गला जे य ॥  
तेसि जं संबंधं अवरोधरपुग्गलाणमिह कुणइ । तं जउसरिसं जाणसु ओरालियबंधणं पढमं ॥”

एवं सव्वत्थ नामे नाणत्तं ॥ ओरालियसंधायं, वेउव्वियसंधायं, आहारगसंधायं, तेयग-  
घायं, कम्मइगसंधायं । उक्तं च—

“ओरालाई जे देहपुग्गला होति जस्मि ठाणस्मि । <sup>४</sup>त्तिट्ठंति तस्मि ठाणे संघायणकम्मणो उदए ॥६॥”

सुत्ते वा आगमे सत्तिविसेसो संघयणं । तं च देवा किर वज्जरिसमसंधयणी । इह अट्टि-  
निचओ=अट्टिसंधाओ । अट्टियं अट्टिसंधायबंधनिव्वत्तजणगं, तं संघयणनामं ॥१४॥

छद्धा संघयणां वज्जरिसहनारायं वज्जनारायं २ ।

नारायं ३ मद्धनारायं ४ कीलिया ५ तह य छेवट्ठं ॥१५॥

वज्जरिसमनारायं, नारायं अद्धनारायं स्त्रीलियसंधयणं, छेवट्ठं । उवत्तं च—

“अंगलियपट्टक्रीलियपट्टरिए. पट्टकोलियारहियं । एगडुव्वे य तहा छट्ठं पुण कोट्टिए मिलियं ॥” ॥१५॥

जं संठाणनिव्वत्तिजणगं तं संठाणनामं—

१ प्राचीनप्रथमकर्मग्रन्थे पुन “सेससरीरा वि एसेव ॥” । इति पाठः २ प्राचीनप्रथमकर्मग्रन्थे पुनः “तस्स  
विभागो इमो होइ ॥” इति पाठः । ३ ‘पिट्टी’ इत्यपि । ४ “ते ठंति” इति, “ते हुंति” इत्यपि वा पाठः ।

समचउरंसं नग्गोहसाइखुज्जाणि वामणां हुंडं ।  
संठाणा वन्ना किन्हनीललोहियहलिहसिया ॥१६॥

समचउरंसं, नग्गोहमंडलं, साइसंठाणं, खुज्जसंठाणं वामणसंठाणं, छेवट्टसंठाणं ।

“जस्सुदएणं जीवे चउरंसं नाम होइ संठाणं । तं वहुविहप्पगारे देइ विघागं सरीरस्मि ॥”

एवं नग्गोहाईसु पसत्थापसत्थवण्णजणगं वण्णनामं । एवं गंधरसफासा वि भाणियव्वा ।

किण्हवण्णं नीलवण्णं लोहियवण्णं हालिहवण्णं सुक्किलवण्णं । भणियं च—

“किण्हा नीला लोहिय हालिहा सुक्किला य चन्नेगं । एयाणुदए जीवो होइ सरीरेण तव्वन्नो ॥

जस्सुदएणं जीवे सरीरगं होइ किण्हवण्णं तु । तं किण्हवण्णनामं सेसगवन्ना वि एमेव ॥” ॥१६॥

सुरभिदुरभी रसा पणा तित्तकट्टकसायत्रंबिला महुरा ।

फासा गुरुलहुमिउखरसीउगहसिणिद्धरुक्खट्ट ॥१७॥

सुरभिगंधं, दुरभिगंधं ।

“जस्सुदएणं जीवे दुग्गंधं अहव सुरभिगंधं वा । होइ सरीरं सो इह परिणामो गंधनामस्स ॥”

रसा पण—तित्तरसं, कड्डयरसं, कसायरसं, अंबिलरसं, महुரசं ।

“जस्सुदएणं जीवो तित्तं साएण होइ हु शरीरं । तं तित्तनामकम्मं सेसा उ रसा उ एमेव ॥”

फासा—गरुयफासं, लहुयफासं, मउयफासं, ककसफासं, सीयफासं, उण्हफासं, निद्ध-  
फासं, रुक्खफासं ।

“जस्सुदएणं जीवे गरुयं लहुयं च तह य मिउ कठिणं । होइ सरीरे फासं सुहमसुहं तं मवे दुविहं ॥

जस्सुदएणं जीवे निद्धं रुक्खं च तह य सीउण्हं । फासं होइ सरीरे सुहमसुहं तं मवे दुविहं ॥” ॥१७॥

चउहगइव्वग्गुपुव्वी दुविहा य सुहासुहा य१विहयगई ।

गइअग्गुपुव्वीअो दुगं तिगं तु तं चिय नियाउजुअं ॥१८॥

निरयाणुपुव्वी, तिरियाणुपुव्वी, मणुयाणुपुव्वी, देवाणुपुव्वी । जं अंगोवंगादीणं  
सरीरावयवविसेसाणं विणिवेसकारयं भवंतरे य वड्डमाणस्स जीवस्स जीवपएसाणुपुव्विववत्थावगं  
तं आणुपुव्विनामं । भणियं च—

“अंगोवंगावयवा कुण्ह विसेसाउ जं सरीरस्स । कुण्ह अणुपुव्विपएसो निरयाई आणुपुव्वीओ ॥  
नारयतिरियनरामरमवेसु अंतस्स अतरगईए । भवइ हु जस्स विघागो तं अणुपुव्वी हवइ कम्मं ॥”

सिक्खालद्धिद्विपञ्चयस्स आगासगमणस्स जणगं विहाइगइनामं । तं दुविहं; सुहविहाय-  
गई, दुहविहायगई । भणियं च—

१ ‘ तं चउरंसं नामं सेसा वि हु एव संठाणा ॥’ इति प्राचीन प्रथमकर्मग्रन्थे पाठः । ( गा० १२३ )

“जस्सुदणं जीवो षरवसमगईय गच्छइ गईए । सा सुहया विहयगई तीइ विवागो सरीरम्मि ॥”  
पञ्जत्तगस्सेव,

“जस्सुदणं जीवो अमणिट्ठाए उ गच्छइ गईए । सा असुहया विहगई तीइ विवागो सरीरम्मि ॥”  
पञ्जत्ते गइअणुपुच्चीदुगं तु देवगई देवाणुपुच्ची, एवं मणुयदुगं, तिरियदुगं, नरयदुगं ।  
“तिगं” ति तं चैव निययाउयजोगा तिगं ति भक्षइ ॥१८॥ भणियं च पिडपयडिविवरणं ।

पत्तेयविवरणं कीरइ— परेसिं घायजणगं परघायनामं । जओ एयं पुग्गलविवागी । भणियं च-  
“देहम्मि वट्टमाणो अंगावयवो उ जो उ ‘अण्येहिं । जीवाण कुणइ घायं तं परघायं हवइ कम्मं ॥”  
अण्णे भणंति—परघायनामं जं परेण आउहाइणा हणिउणं खेयं अरुगं वा [अरुगं  
सुखसुखःप्रहारस्तामदादीनां (१)] कीरइ तं पराघायनामं ।

पगासजणगं उज्जोयनामं । जहा अग्गिमणीदिणयरचन्दविमाणखज्जोयमाइयाणं उज्जोओ ।  
अण्णे भणंति—अणुसिणो पगासो जस्सोदयाउ भवइ तं उज्जोयनामं खज्जोय-  
माइयाणं; न तु अग्गिस्स आइच्चस्स वा । जओ अग्गिस्स फासो उसिणनामोदयाउ, रूवं  
लोहियनामं ति । भणियं च—

“जस्सुदणं जीवो अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं । तं उज्जोयं नामं जाणसु खज्जोयमाइणं ॥”  
आयवनामं जहासत्ती तावकरी । जहा अग्गिदिणयरविमाणमाइयाणं आयावो ।  
अण्णे भणंति—आइच्चमंडलपुढविकाइएसु चैव विवागो नन्नत्थ । भणियं च—

“जस्सुदणं जीवे होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ । त आयवमिह नामं तस्स विवागो उ रविदिंवे ॥”  
ऊसासो=अणुपाणु । भणियं च—

“जस्सुदणं जीवे निष्फत्ती होइ आणुपाणूणं । तं ऊसासं नामं तस्सुदओ पञ्जत्तजीवम्मि ॥”  
सरीराईसु अगुरुलहुपरिणामकारयं अगुरुलहुनामं । भणियं च—

न य गरुयं न य लहुयं उदणं होइ जस्स कम्मस्स । जीवस्स इह शरीरं तं नामं अगुरुलहुगं तु ॥  
जं तित्थयरसिद्धपवयणपरिपथेरवहुस्सुयत्तवस्सिभत्तिवच्छल्लो अभिक्खनाणोवओगा दंसण-  
विणयआवस्सचरिउ निरयारखणलवतवरामतित्थपमावणा अपुव्वनाणग्रहणं सुयमत्ती वेयावच्चं  
समाहिसंवेगवरमावोवचियं तं पुक्कपुग्गलनिष्फणं तित्थयरमावगं तित्थयरनामं । जओ आह-  
उदए जस्स सुरासुरनरवइनिघहेहिं पूइओ क्षोए । तं तित्थयरं कम्मं केवळिणो तस्स उदओ उ ॥६॥

जाइलिंगआगीववत्थावनं निम्माणनामं । जओ आह-  
वेहंगावयवाणं लिंगागीजाइ नियमणं जेण । तं सुत्तहारसरिसं निमेणनामं वियाणाहि ॥  
अप्पणोवघायणगमा उवघायनामं । जओ एसो पुग्गलविवागी । भणियं च—  
वेहम्मि वट्टमाणो अंगावयवो उ अप्पणो जो उ । वट्टइ इह उवघाए तं उवघायं भवइ कम्मं ॥

एवं पत्तेयविवरणा ।

ह्याणिं सेयरविवरणा भन्इ-तसभावनिव्वत्तयं तसनामं । थावरभावनिव्वत्तयं थावरनामं । तसकम्ममुदए जीवो वेइन्दियमाइजाइजीवेसु । थावरकम्ममुदएणं पुढवीमाईसु सो जाइ । बायरसरीरनिव्वत्तयं बायरनामं । सुहुमसरीरनिव्वत्तयं सुहुमनामं । भणियं च—  
“बायरकम्ममुदएणं बायरकाएसु होइ सो नियमा । सुहमेण सुहमकाए अंतमुहुत्ताउओ होइ ॥”  
पज्जत्तजीवसरीरभावनिव्वत्तयं पज्जत्तनामं । अपज्जत्तभावनिव्वत्तयं चापज्जनामं ।

जओ आह—

आहारसरोरिंदियपज्जत्ती आणपाणुमासमये । चत्तारि पंच छप्पिय एगिंदियविगलसणीणं ॥ एयासिं निप्फत्ती उदएणं होइ जस्स कम्मस्स । तं पज्जत्तयनामं इयरुदए नत्थि निप्फत्ती ॥  
जं एगमेगं जीवं पइ सरीरनिव्वत्तयं तं पत्तेयसरीरनामं । जं अणेगजीवसामणसरीर-  
मिवत्तयं तं माहाणसरीरनामं ।

जओ आह—

“(एक्केक्कयम्मि जीवे) एक्केक्कं जस्स होइ उदएणं । ओरालियं सरीरं तं नामं होइ पत्तेयं ॥ जीवाणमणंताणं एक्कं ओरालियं इह सरीरं । इवइ हु जस्सुदएणं तं साहारं इवइ नामं ॥”  
देहावयवाणं थिरभावजणगं थिरनामं । जओ आह—

“दंतट्टाइथिराणं अंगावयवाण जस्स उदएणं । निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ थिरनामं ॥ अीहामसुहाईणं अंगावयवाण जस्स उदयेणं । निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं अथिरनामं तु ॥”

नामं तु पुग्गलविवागी । जओ आह—

सिरमाईण सुहाणं अंगावयवाण जस्स उदएणं । निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुहनामं ॥ पायाई असुहाणं अंगावयवाण जस्स उदएणं । निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं असुहनामं तु ॥  
सोहग्गजणगं सुमगनामं । दोहग्गजणगं दुमगनामं । जओ आह—

“सूमगकम्ममुदएणं इवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो । दूमगकम्ममुदएणं पुण दुमगो सो सव्वल्लोयस्स ॥”  
सूसरत्तभावं दूसरनामं । दूसरत्तभावं दूसरनामं । जओ आह—

“सूसरकम्ममुदएणं सूसरसदो उ होइ इह जीवो । दूसरउदए विसरो जंपंतो होइ जणावेसो ॥”  
उज्जभावजणगं आदेयनामं । अणुज्ज(भावज)णगं अणादेयनामं । अहवा आदेज्जं पमाणी-  
करणं । अणाइज्जं (अपमाणीकरणं) । जओ आह—

“आइज्जकम्मउदए चिट्ठा जीवाण मासणं जं च । तं बहु मण्णाइ लोओ अबहुमयं इयरउदएणं ॥”

कित्तिभावगं जसकित्तिनामं । अजसकित्तिभावगं अजसकित्तिनामं । जओ आह—

“जस्सुदएणं जीवो लइइ हु कित्ती जसं च लोंगम्मि । तं जसनामं कम्मं विवरीयं लइइ इयरुदए ॥”  
एवं सेयरविवरणा कया ।



इय तेणउई संते वंधणपन्नरसगेण तिसयं वा ।

वन्नाइभेयबंधणसंघायविणा उ सत्तडी ॥१६॥

एवं पणसट्टी पिंडुत्तरपगई । अट्ट पत्तेया । सेयरा वीमं । एवं तेणउई । वंधणपन्नरस-  
गेण तिसयं वा । वंधणपन्नरसगे छूढे तेणउई तित्ततरमयं भवइ । वण्णाइभेया वीमं एककेककं  
मुत्तूणं सेसा सोलस, तहा वंधणपण्णरसावि, संघायपञ्चवि, एवं छत्तीसाए, तित्ततरसयाओ  
अवणीआ सत्तडी ॥ १॥

सा वंधुदए वंधण-संघाया नियतगुग्गहणगहिया ।

वन्नाइविगप्पा वि हु न य वंधे सम्ममीसाई ॥२०॥

एवं नामकम्मपयही । सत्तडी वंधे उदए उदीरणाए य वंधणपण्णरसगं संघायपणगं  
नियनियसरीरगहणेण गहिया । वण्णाइविगप्पा सोलस सजाइगहणेण गहिया । उक्तं च—

“ससरीरंतरभूया वंधणसंघायणा य वंधुदए । वन्नाइविगप्पा वि हु वन्वे नो सम्ममीसाई ॥”

“न य वंधे सम्ममीसाई” एएण सुइयं सेसाणं सत्तण्हं कम्माणं उत्तरपयही वंधे य  
तेवन्नं, उदए उदीरणाए सत्ताए य पणवन्नं । उक्तं च—

“बंधे वीसोत्तरसयं वाधीससयं तु होइ उदयम्मि । एवं उदीरणाइ वि अहयाडसयं तु संतम्मि ॥”

	वन्ध.	उदय.	उद रणा	सत्ता.
नामकम्मस्स	६७	६७	६७	६३
सेसकम्माण	५३	५५	५५	५५

॥२०॥

बंधणपण्णरस इति कहं ? -

वेउव्वाहारोरालियाण सगतेयकम्मजुत्तारां ।

नव बंधणाणि इयरदुसहियाणां तिन्नि तेसिं च ॥२१॥

वेउव्वियवेउव्वियं १, वेउव्वियतेयगं २, वेउव्वियकम्मगं ३; आहारगआहारगं १,  
आहारगतेयगं २, आहारगकम्मगं ३, (ओरालिय)ओरालियं १, ओरालियतेयगं (२, ओरालिय-  
कम्मगं) ३। एवं नव बंधणाणि ६। “इयरदुसहियाणां” ति वेउव्वियतेयगकम्मगं १, आहारग-  
तेयगकम्मगं २, ओरालियतेयगकम्मगं ३। एवं “तिण्णि तेसिं च” ३ तेयगतेयगं १,  
तेयगकम्मगं २, कम्मगकम्मगं ३। एवं पन्नरस बंधणाणि १५ ॥२१॥

नीलकशिशां दुग्ंधं तितं कडुत्रं गुडं खरं रुक्खं ।

सीयं च असुभनवगं एकारसगं सुभं सेसं ॥२२॥

नीलवण्णं, कसिणवण्णं; दुग्ंधं; तित्तरगं, कडुयरसं; गुरुफामं, ककसफासं, रुक्खफामं, सीयफासं; एवं कुवण्णनवगं । लोहियवन्नं, हालिद्वण्णं, सुक्किलवन्नं; सुग्भिगंधं; कसायग्ं, अंबिलरसं, महुररसं महुफासं, लहुयफामं, निद्वफासं, उण्हफासं; एवं सुभवण्णेकारसगं ॥२२॥

धुवबंधो १ दय २ सता ३ सञ्जेयरघाइ ४ सुम ५ अपरियत्ता ६ ।

छद्धा वि सपड्विवक्खा चउहविवागा य पयडीयो ॥२३॥

दारगाहा ॥ धुवबंधिनी ४७, धुवउदया २७, धुवसत्ता १३०, सञ्जघाई २०, देमघाई २५, सुमपयडी ४२, अपरियत्ता २६ । “छद्धा वि सपड्विवक्ख”त्ति, अधुवबंधिनी ७३, अधुवउदया ६५, अधुवसत्ता २८, अघाई पयडी ७५, असुभा ८२, परिवत्तमाणी ६१ । एवं सपड्विवक्खा ६ ।

“चउहविवागा य पयडीओ” पुग्गलविवागिणी ३६, खेत्तविवागिणी ४, भवविवागिणी ४, जीवविवागिणी ७८ ॥२३॥

एएसिं नामग्गहणेण, विवरणा कीरइ--

“नियहेउसम्भवे वि ह्नु भयणिल्लो जाण होइ पयडीणं । बंधो ता अधुवाओ, धुवा भयणिल्लज्जबंधाओ॥”

धुवबंधी भय १ कुच्छा १ कसाय १ ६ मिच्छं १ तराय ५ आवरणा १ ४ ।

वन्नचउ ४ तेय १ कम्मा १ गुरुल्लहु १ निमिणो १ वघाया १ य ४७ ॥२४॥

भयमोहं १, दुग्ुच्छामोहं १, कसायमोहं १६, मिच्छत्तमोहणीयं १, अंतरायपणगं ५, नाणा-रणपणगं ५, दंसणावरणनवगं ६, नामधुवबंधी ९, -वण्णाहचउक्कं ४, तेजह्गं १, कम्मणं १, अगरुल्लहुर्यं १, निम्माणनामं १, उवघायं १ । एवं धुवबंधी ४७ ॥२४॥

पड्विवक्खे अधुवबंधिणीओ । ताओ च इमा-

उरलविउव्वाहारगदुगाणि ६ गइ ४ जाइ ५ खगइ २ अणुपुब्बी ४ ।

संघयणागी ६ तसवीसु २० सासत्तियायवुज्जोयं ॥२५॥ (प्रत्तेपगाथा)

ओरालदुगं वेउव्विदुगं आहारदुगं गइचउक्कं जाइपंचगं विहायगइदुगं अणुपुब्बीचउक्कं संघयणछक्कं संठाणछक्कं तसाइदसगं थावराइदसगं ऊत्तासं तित्थयरं आयवं उज्जोयं च ॥२५॥

परघायवेयणीयाउगोयहासाइदुजुयलतिवेयं ।

विग्घावरणा विणा इय तेवत्तरिमधुवबंधाओ ॥२६॥ (प्रत्तेपगाथा)

परघायं वेयणियदुर्गं गीयदुर्गं आउचउक्कं हासरइदुर्गं अरुसोर्गं च वेयतिर्गं । एवं तेवत्तरि अधुवबंधाओ ॥२६॥

बंधाधिकारे गईसु बंधसंखामाह-

बंधंति न इगिविगला वेउव्वियदुर्गकदेवनरयाउं ।

तिरिया तित्याहारं गईतसा णरतिगुच्चं च ॥२५॥२७॥१

मणुयगईए बंधे वीसोत्तरसयं; सन्वेसिं गुणाणं भयणा त्ति काउं । तिरियगईए बंधे सत्तर-  
होत्तरसयं; तित्थयरस्स गइपच्चएणं, आहारदुगस्स संजमाभावात्, तित्थयरनाम आहारग-  
दुर्गं न बंधति । एगिंदियविगलिंदियजाइ बंधे नवुत्तरसयं; देवदुर्गं निरयदुर्गं वेउव्वियदुर्गं,  
एवं वेउव्विच्छक्कं देवाउयं निरयाउयं न बंधति । गईतसा=तेऊवाऊ बंधे पंचोत्तरसयं; मणुय-  
तिर्गं उच्चागोयं न बंधति ॥२५॥२७॥

नरयसुरसुहमविगलत्तिगाणि आहारदुगविउव्वियदुर्गं ।

बंधहि न सुरा सायावथावरेगिंदि नेरइया ॥२६॥२८॥

देवगईए बंधे चउरुत्तरसयं; देवतिर्गं निरयतिर्गं सुहुमविगलतिर्गं आहारदुर्गं वेउ-  
व्वियदुर्गं न बंधति । निरयगईए बंधे एकोत्तरसयं; आयवनामं थावरनामं एगिंदियजाई  
देवसोलसर्गं न बंधति ॥२६॥२८॥

बंधाधिकारे अबंधकालो एगयालीसाए पगईणं मणुइ-

तिरि ३ नरय ३ तिगुज्जोयाण सचउपल्लं तिसट्टमयरसयं ।

इग १ विगलजाइ ३ आयव १ थावरचउगेसु पणसीयं ॥२७॥२९॥

तिरियतिर्गं निरयतिर्गं उज्जोयं च एवं, अबंधकालो सागरोवमतिसट्टसयं पल्लचउक्कं  
च । तहा इगिविगलजाइचउक्कं आयवं थावरचउक्कं एवं नव, अबंधकालो सागरोवमणसीयसयं  
पल्लचउक्कं च ॥२७॥२९॥

वेत्तीसं सासाणांतबन्धसेसपणावीसपयडीणां ।

नरभवसहियं परमो पणिंदिसु अबंधकालो सिं ॥२८॥३०॥

मिच्छसोलस-पणवीससासणाइबंधवोच्छेओ एए एक्कचचालीसं ४१ ॥ सोलस पुव्व-  
मणियाउ सेसा पणवीसं २५ ॥२८॥३०॥ ता य इमा-

थीणातिगं ३ दुभगतिगं ३ अपढमसंघयण ५ खगइ १ संटाणा ५ ।

अणा ४ नीय १ नपुंसि १ स्त्री १ मिच्छं १ ति अ सेसपणुवीसा ॥ ३ १ ॥ (प्रक्षेपगाथा)

थीणतिगं दुभगतिगं अपढमसंघयणपणगं कुखगइ अपढममंटाणपणगं अणंताणुबंधी  
चउक्कं नीयगोयं नपुंसगइत्थिवेयं मिच्छत्तं एवं पणवीसं, अवंधकालो सागरोवमसयं  
बत्तीसं ॥ ३ १ ॥

बत्तीसं विजयाइसु गेविज्जाईसु तेसु तेसट्टं ।

तमपुढविज्जुएसु गरुम तेसु पणसीयमुदाहिसयं ॥ २ ६ ॥ ३ २ ॥

उक्तं च-

“दो वारे विजयाईसु गयस्स तिण्णच्चुए अहवा ताइं । अइरेगं नरमवियं नाणाजीवेहिं सव्वट्टं ॥”

एवं बत्तीसं सयं सागरोवमाणं अवंधकालो । एवं बत्तीसं सागरोवमसयं सम्मत्तस्स मिस्सं-  
तरियस्स उक्कोसो ठीकालो, तहा भोगभूमिअवंधकालपल्लतियं भवपच्चएणं, पल्लोवमं सोहम्मो  
गुणभवपच्चएणां, नवमगेवेज्जे सागरएगत्तीसं भवपच्चएणं, अवंधे य पुव्वुत्तं बत्तीसं सागरो-  
वमसयं, अवंधिय, एवं गेविज्जाईसु तिसट्टसयं सागरोवमाणं । “तमपुढविज्जुएसु” त्ति,  
छट्टपुढवीए सागरोवमवावीसं भवपच्चएणं, तओ मणुओ देसविरइ पलियचउठिपढमकप्पे गुण-  
भवपच्चएहिं, तओ पुव्वकम्मणेण नवमगेवेज्जे सागरएगत्तीसं अवंधित्ता, तओ अणुत्तराईसु  
सागरोवमसयं बत्तीसं अवंधित्ता; एवं पञ्चासीयं सचउपल्लं । एवं (अ)वंधकालो एगचत्तालीसाए ॥

अहवा-“पल्लियाइ तिण्णि मोगाषणिम्मि मषपच्चयं पलियमेयं । सोहम्मो सम्मत्तेण नरभवे सव्वविरइए ॥ १ ॥

मिच्छो मषपच्चयओ गेवेज्जे सागराइं इगत्तीसं । अंतमुहुत्तणाइं सम्मत्तं तम्मि ल्हिउण ॥ २ ॥  
विरयनरभवंतरिओ अचु(अ)वेधो उ अयरछासट्टी । मिस्सं मुहुत्तमेगं फासिय मणुओ पुणो विरओ ॥ ३ ॥  
छासट्टी अयरणं अणुत्तरे विरयनरभवंतरिओ । तिरिनरयतिगुज्जोयाण एस फालो अबंधम्मि ॥ ४ ॥  
छट्टीए नेरइओ मषपच्चयओ उ अयरवावीसं । देसविरइओ मविओ पलियचउक्कं पढमकप्पे ॥ ५ ॥  
पुव्वुत्तकालजोगा पंचासीयं सयं सचउपल्लं । आयवथावरचउधिगल्लतियगएगिंदियअबंधो ॥ ६ ॥  
पणवीसार्थं अबंधो उक्कोसो होइ सम्मगुणजुत्ते । बत्तीसं सयमयरणं हुंति अहिवा मणुस्समवा ॥ ७ ॥  
आसिं अबंधकालो सुहपयढीणं तु बंधकालो उ । पणसीयं बत्तीसं उवहिसयं होइ कासिं चि ॥ ८ ॥  
बंधाबंधववत्था जुत्तिनिओगाउ आसि संठविया । इदूण पंचसंगहो नियचविअप्पी न संठवो । ९ ॥  
एवमिह बंधकालो अबंधकालो वि होइ सभित्थिस्स । उक्कोसो चिन्नेओ न उ सव्वजिअण एस विही ॥ १० ॥”

॥ २ ६ ॥ ३ २ ॥

बंधाधिकारे एव बंधकालो अधुवबंधिणीणं मण्णइ-

समयादसंखकालं जा परमो नीयतिरियदुगबंधो ।

सुरदुगविउव्वियदुगे तिपल्लमाउसु मुहुत्ततो ॥ ३० ॥ ३ ३ ॥

नीयागोयस्स तिरियदुगस्स य सययं वंधकालो समयं १ जघन्यं, उक्कोसं जाव तेउवाउ-  
कायड्डीह एवं असंखकालं । सुग्दुगविउन्नियदुगे पलिओवमतिगं; जओ देवदुरुसु देवगइपाउग्गं  
बंधंति न अण्णं । आउचउक्के वि उक्कोसं अंतोमुहुत्तं ॥३०॥३३॥

तसचउपणिंदिपरघाउस्सासेसु पणसीयमुदहिसयं ।

वत्तीसं सुभगतिगुच्चपुरिससुअखगइचउरसे ॥३१॥३४॥

तसचउक्कं पणिंदिजाइ परघायनामं उसासनामं च । सययं वंधकालो जघन्नं समयं  
१, उक्कोसो सागरोवमसयं पंचामीयं पल्लचउक्कं च । जत्थ परिपवस्स (अ)बंधकालो सो  
एएसिं वंधकालो । आयवनामं थावरेण समं, परघायनामं उसासनामं पज्जत्तगेण वध्नन्ति । एवं  
पड्विवक्खविक्खा । तथा सुभगतिगुच्च(गोयं) पुग्गिसवेयं च सुभविहायगइ चउरंसंठाणं; एएसिं  
बंधकालः जघन्यः समयः, उक्कोसो सागरोवमसयं वत्तीसं; पड्विवक्खसंभवाओ ॥३१॥३४॥

उरले असंखपुग्गलपरियट्टा साय पुव्वकोड्डणा ।

तेत्तीसयरा नरदुगतित्थुसभउरालुवंगेसु ॥३२॥३५॥

ओरालियसरीरबंधकालो जघन्यः समयः, उक्कोसो सययं असंखपुग्गलपरियट्टा । उक्तं च—  
“एणिंदियह रियंतियपोग्गलपरियट्टया असंखेज्जा” इत्यादि । सायावेयणियस्स वंधकालो जघन्यः  
समयः, उक्कोसं देखुणपुव्वकोड्डी, केवली सायावेयणियं चैव वंधइ । मणुयदुगं तित्थयरनामं  
वज्जरिसमंघयणं ओरालियअंगोवंगं, एएसिं वंधकालो जघन्यः समयः । तित्थयरस्स अंतोमुहुत्तं  
जघन्यः, उक्कोसं पंचणह वि सागरोवमतेत्तीसं, अणुत्तरविमाणेसु । एवं वत्तीसं पगईओ ॥३२॥३५॥

समयादंतमुहुत्तं सेसाणां तह जहन्नबधो वि ।

तित्थाउसु अंतमुहु धुववधीणां तु भंगतिगं ॥३३॥३६॥

सेसाणं एकवत्तालीसाए पगईणं वंधकालो जघन्यः समयः १, उक्कोसं अंतोमुहुत्तं ॥३३॥३६॥

थिरसुभजसथावरदस १० अस्सुभागी ५ खगइ १ जाइ ४ संघयणा ।

थिरया २ हारदुगायव १ असाय १ अपुमि १ थि १ दुजुयल्ल ४ ज्जोयं

१॥३७॥ (प्रक्षेपगाथो)

थिरनामं, सुभनामं, जसनामं, थावरदसगं, असुभसंठाणपंचगं, असुभविहायगई,  
असुभजाइचउक्कं, असुभसंघयणपंचगं, निरयदुगं, आहारदुगं, आयवनामं, असायवेय-  
णीयं, नपुंसगवेयं, इत्थिवेयं, हासरदुजुयलं, अरइत्तोगजुयलं, उज्जोयं च; एवं एकवत्तालीसं ।

“तद् जहन्नबंधो वि ।” तित्थयरनामस्स आउचउक्कस्स जहण्णबंधकालो अंतोमुद्दुत्तं ।

तित्थयरनामस्स जघन्यः बंधकालो कहां?—तित्थयरनामबंधगो उवसमसेठि आरुहइ, अनियट्टीओ नाव उवसंतो तावाऽबंधगो, परिवड्ढिओ, पुणो बंधइ अंतोमुद्दुत्तं, पुणो रोठि आरुहइ, अबंधगो, परिवड्ढिओ पुणो बंधइ । उक्तं च—“एगमवे दुक्खुत्तो चरित्तमोहं उवसमिज्जा” इति श्रुतिः ।

“धुवबधोणं तु भंगतिगं” कहां ? अणादिअपज्जवसियं १, अणादिसपज्जवसियं २, सादिअपज्जवसियं बंधं पइ असंभविंयं, सादिसपज्जवसियं ३, एयं भंगतिगं ॥३७॥ दारं ॥ “अव्वोच्छिन्नो उदओ जाणं पयहीण ता धुवोदथिया । वोच्छिन्नो वि ह्नु संभवइ जाण अधुवोदयाताओ भ वध्वं खेतं कालं भव च माष च हेयधो पंच । हेउसमासेणुदओ जाचइ सव्वाण पयहीणं ॥”

निम्मेण्णथिराथिरनेयकम्मवन्नाइ अगुरुसुहमसुहं ।

नारांतरायदसगं दंसणचउ मिच्छ धुवउदया ॥३४॥३८॥

निमाणनामं, थिरनामं, अथिरनामं, तेयगसरीरं, कम्मगसरीरं, वण्णाइचउक्कं, अगरु-लहुनामं, सुभनामं, असुभनामं, नाणावरणपणगं, अंतरायपणगं, दंसणचउक्कं, मिच्छत्तं च; एए धुवोदया सत्तावीसं ।

पडिचक्खे अधुवोदया । ता य इमा-गइचउक्कं, जाइपणगं, सरीरतिगं, अंगोवंगतिगं, संघयणछक्कं, संठाणछक्कं, तसचउक्कं, थावरचउक्कं, आणुपुव्वीचउक्कं, सुभगाइचउक्कं, दुभगाइचउक्कं, आउचउक्कं, निहापणगं, चरित्तमोहं पणवीसं, विहाइगइदुगं, गोअदुगं, वेयणियदुगं, परघायं, उज्जोयं, आयवं, उसासं, तित्थयरं, उवघायं, सम्मत्तं, मीसं च । एवं अधुवोदयाणं ॥३४॥३८॥

उदओ धुवोदयाणं अणाइणंतो अणाइसंतो य ।

अधुवाण साइसंतो मिच्छस्स उ भंगतिगमेयं ॥३५॥३९॥

अणादिअपज्जवसियं १, अणादिसपज्जवसियं २, एवं भंगदुगं छव्वीसाए धुवोदयाणं । सादिसपज्जवसियं एगं भंगं अधुवोदयाणं ६५। मिच्छस्स तिण्णेव भंगाओ ॥३५॥३९॥दारं॥

“कम्ममसुभं सुभं वा वधं णि न जाव वेइयं अहवा । करणंतरेण वि बियोचियं न ता मअए संतं ॥”

वेउव्विकारससम्ममीसतित्थुच्चमण्णुदुगाउचउ

आहारसत्त अधुवा धुवसंता सेस तीससयं ॥३६॥४०॥

देवदुगनिरयदुगं, वेउव्वियसरीरं, वेउव्वियअंगोवंगं, वेउव्वियसंधायं, वेउव्वियबंधण-चउक्कं, एवं वेउव्विएकारसं; सम्मत्तं, सम्मामिच्छत्तं, तित्थयरनामं, उच्चागोयं, मणुयदुगं, आउचउक्कं, आहारगसरीरं, आहारगअंगोवंगं, आहारगसंधायं, आहारगबंधणचउक्कं, एवं आहारगसत्तगं; एवं अट्टावीसं अधुवसंताओ ।

पडिवक्खे धुवसंताओ । ता य इमा-संघयणछक्कं, तिरियदुगं, ओरालियसत्तगं, तेजइ-सत्तगं, वण्णाइवीसं, संठाणछक्कं, तमाइदसगं, थावराइदसगं, घाइपयडीउ पणयालं, वेयणीयदुगं, विहायगइदुगं, नीयागोयं, जाइपंचगं, अतिथपत्तेयसत्तगं; एवं धुवसंततीसमयं ॥३६॥४०॥

गुणठाणगेसु विसेससत्तामाह—

तिसु मिच्छत्तं नियमा अट्टसु गुणठाणएसु भयणिज्जं ।

आसाणे सम्मत्तं नियमा भज्जं दससु होइ ॥३७॥४१॥

मिच्छदिट्ठिसासायणसम्मामिच्छत्ताणं मिच्छत्तं संतं नियमेण हवइ । “अट्टसु गुणठाण-गेसु भयणिज्जं” कहं ? अट्ट=अविरयसम्माउ जाव उवसंतं । जया तेवीससंतकम्मिगो वावीस-संतकम्मिओ एगवीससंतकम्मिओ जहामंभवं एए(सु) गुणठाणगेसु हवइ । तथा नो मिच्छत्तसंत-कम्मिओ चउवीससंतकम्मिओ एए(सु) गुणठाणगे(सु) आरुहइ तथा मिच्छत्तसंतकम्मिओ सो णीवो एवं । अट्टसु गुणठाणगेसु भयणिज्जो । अहवा “तिसु मिच्छत्तं नियम”त्ति, तिसु ठाणगेसु मिच्छत्तं नियमा अत्थि । तं मिच्छदिट्ठिसासायणसम्मामिच्छदिट्ठीसु । “अट्टसु ठाणगेसु भइयव्वं” ति, असंजयाइ जाव उवसंतकसाओ ताव होज्ज वा नवा । खाइय-सम्मदिट्ठि पडुच्च नत्थि, सेसेसु अत्थि । “आसाणे सम्मत्तं नियम”त्ति सासायणसम्म-दिट्ठिम्मि सम्मत्तं नियमा अत्थि । तेण उवसमसम्मत्ताद्वाए सासायणो हवइ । “भज्जं दससु होइ”त्ति आइमेसु सासायणवज्जेसु जाव उवसंतकसाओ एएसु दससु सम्मत्तं भयणिज्जं । कहं ? मण्णइ,—मिच्छदिट्ठिम्मि उव्वलियं न उप्पाइयं व तं पडुच्च नत्थि । अट्टावीससंतकम्मियस्स अत्थि । सम्मामिच्छदिट्ठिम्मि उव्वलियं पडुच्च नत्थि । सम्मत्ते उव्वलिए वि सम्मामिच्छदिट्ठी लमइ । अणुव्वलियस्स अत्थि । सेसेसु खाइगसम्मदिट्ठि पडुच्च नत्थि । इहरहा अत्थि ॥३७॥४१॥

सासाणमिस्से मिस्सं संतं नियमेण नवसु भइयव्वं ।

नित्रमा मिच्छासाणे पढमकसाया नवसु भज्जा ॥३८॥४२॥

“बोयतइएसु मीसं नियम”त्ति सासायणमीसेसु सम्मामिच्छत्तं नियमा अत्थि । कहं ? मण्णइ,—सासायणे नियमा अट्टावीससंतकम्मिगो । सम्मामिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छत्तेण विणा न होइ सि काउं । “ठाणनवगम्मि भयणिज्जं” मिच्छदिट्ठी, असंजयसम्मदिट्ठी जाव उवसंतकसाओ; एएसु नवसु होज्ज वा नवा । कहं ? मण्णइ,—मिच्छदिट्ठिस्स अट्टावीस-

१. “अट्टसु ठाणगेसु भइयव्वं ।” इत्यपि पाठः सम्मान्यते । एतत्पाठानुसारेण “अहवा” इत्यादिना-द्वितीयक्याख्यावसरे क्वाक्यातम् । २. “सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं दससु भज्जं ॥” इत्यपि पाठः । ३. क्वाक्या पुनः “बीअतइएसु मीसं नियमा ठाणनवगम्मि भयणिज्जं । संजोयणा च नियमा दुसु पंचसु होइ भइयव्वं ॥” इति गाथापाठानुसारेण ।

संतकम्मियस्स सत्तावीससंतकम्मियस्स अत्थि । छव्वीससंतकम्मियस्स नत्थि । सेसेसु खाइग-  
सम्महिद्धिं पडुच्च नत्थि । इयरहा अत्थि । “संजोधणा उ नियमा द्दुसु”त्ति अणंताणु-  
बंधिणो मिच्छदिद्धिसासायणेषु अत्थि नियमा; जेण एए अणंताणुबंधिणो नियमा बंधति ।  
“पंचसु होइ मह्यव्वं”त्ति, सम्मामिच्छदिद्धी जाव अपमत्तसंजओ एएसु पंचसु ठाणेषु  
अणंताणुबंधिसंतं मह्यव्वं । कंहं?, मण्णइ,—उव्वलियं पडुच्च नत्थि, अण्णहा अत्थि ।

अण्णे—नवसु भयणिज्जं । तेसिं मएणं अट्ठावीससंतकम्मिओ वि उवसमसेढां  
आरुहइ । तेसिं मएण अत्थि अणंतानुबंधि, उव्वलिएसु नत्थि । एवं गज्जं ॥३८॥४२॥

सव्वगुणोसाहारा सासणमिस्सरहिएसु वा तित्थं ।

नोभयसंते मिच्छो अंतमुहुत्तं भवे तित्थे ॥३९॥४३॥

सव्वेषु गुणेषु आहारसत्तगस्स संतं संभवइ । तित्थयरनामस्स मीससायणवज्जेसु  
संतं वियप्पेण भवइ । जया आहारगतित्थयरस्स उभयसंता हवइ, तथा मिच्छत्तं न गच्छइ ।  
“अंतमुहुत्तं भवे तित्थे” कंहं?, मण्णइ,—नरयबंधाउओ वेयगसम्मत्तं पडिवज्जइ । विसुज्झ-  
माणो तित्थयरनामं बंधइ । अंतकाले सम्मत्तं ठवेइ । नरएसु उववज्जइ । पज्जत्तिभावं गओ  
सम्मत्तं लहइ । एवं मिच्छदिद्धिस्स तित्थयरनामं अंतोमुहुत्तं सत्ता लब्भइ ॥३९॥४३॥ दारं ॥  
“पयहीओ विचत्ताओ देसं सव्वं हणंति घाईओ । एयासि निरसरुवं सकज्जकरणाओ विन्नेयं ॥”

केवलियनाण १ देसण १ आवरणो बारसाइमकसाया ।

मिच्छत्त १ निहापणगं ५ इय वीसं सव्वघाईओ ॥४०॥४४॥

केवलनाणावरणं, केवलदंसणावरणं पढमं कसायबारसगं मिच्छत्तं निहापणगं च; इय  
वीसं सव्वघाईओ ॥४०॥४४॥

सम्मत्तनाणदंसणाचरित्तघाइत्तणाउ घाईओ ।

तस्सेस देसघाइत्तणाउ पुण देसघाईओ ॥४१॥४५॥

मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचउक्कं सम्मत्तस्स घाई । केवलनाणावरणं केवलनाणस्स घाई । केवल-  
दंसणावरणं केवलदंसणस्स घाई । निहापणगं खाओवसमदंसणस्स घाई । वीयकसाया देसविर-  
इवाई । तइयकसाया सव्वविरइचरित्तघाई । “तस्सेस”त्ति, सव्वघाईउव्वरियं तं घाएइ देसघाई ।

उक्तं च—“सुदु वि मेहसमुप होइ पहा चंबसूराणं ।” तस्स कुदडिदुगाई आवारगा ॥४१॥४५॥

संजलण ४ नोकसाया ९ चउनाण ४ तिदंसणावरण ३ विग्घा ५ ।

पणुवीस देसघाई, सेस अघाई सरुवेण ॥४२॥४६॥



संजलणचउक्कं, नोकसायनवर्गं, मइनाणावरणं, सुयनाणावरणं, ओहिनाणावरणं, मणपज्जवनाणावरणं, चङ्खुदंसणावरणं, अचक्खुदंसणावरणं, ओहिदंसणावरणं, अंतरायपणगं च; एवं पणवीस देसघाई ।

“सेस अघाई सरूवेण” कहे १, “पलिभाग”त्ति, अघाइपयईओ घाइणीसहचरिओ घाइत्तं पडिचज्जंति; जह अचोरो वि चोरवसा ।

पडिक्खम्मि अघाई । ता य इमा-गइचउक्कं, जाइपणगं, सरीरपणगं, अंगोवंगतिगं, संघयणछक्कं, संठाणछक्कं वण्णाइचउक्कं, आणुपुव्विचउक्कं, विहायगइदुगं, तसदसगं, थावराइ-दसगं, पत्तेयअदुगं, आउचउक्कं, वेयणियदुगं, गोयदुगं च; आघाइपयडी पणसयरी ७५ ॥४२॥४६॥ दारं ॥

“वायालीसं पयडीण सुहसरूवाण पुण्णमक्खायं । वायासी असुमाओ पावं दुहहेउमावाओ ।”

नरतिरिसुराउमुच्चं सायं परघायत्रायवुज्जोयं ।

तित्थुस्सासनिमेणं पणिंदिवइरुसहचउरंसं ॥४३॥४७॥

तसदस चउवराणाई सुरमाणुडुगपचताणुउवंगतिगं ।

अगुरुलहुपढमखगई वायालीस ति सुहपयडी ॥४४॥४८॥

मणुयाउं, देवाउं, तिरियाउं; उच्चागोयं, सायावेयणियं, परघायनामं, आयवनामं, उज्जोयनामं, तित्थयरनामं, उस्तासनामं, निम्माणनामं, पणिंदिजाइ, वज्जरिसमसंघयणं, समचउरंसंठाणं तसदसगं; वण्णाइचउक्कं, देवदुगं, मणुयदुगं, सरीरदंचगं, उवंगतिगं, अगरुलहुयं, सुमखगइ, वायालीसं ति सुहपयडी ॥४३-४४॥४७-४८॥

पडिपक्खे असुहपयडी । ता य इमा-

थावरदस चउजाई अपढमसंठाणखगइसंघयणा ।

तिरिनरयदुगुवघायं वन्नचऊ नामचउतीसा ॥४५॥४९॥

थावरदसगं, असुमजाइचउक्कं, असुमसंठाणपंचगं, असुमखगई, असुमसंघयणपंचगं, तिरियदुगं, निरयदुगं, उवघायनामं, असुमवण्णाइचउक्कं; एवं नामचउतीसा ॥४५॥४९॥

नरयाउनीयमस्सायघाइपणयालसहियवासीइ ।

असुहपयडी उ दोसु वि वन्नाइचउक्कगहणेण ॥४६॥५०॥

असायवेयणियं, नीयगोयं, निरयाउयं, पणयालीसं घाइपयडीओ; एवं असुमपयडी-वायासी।दोसु वि वण्णाइचउक्कं सुमं सुमियाण, असुमं असुमियाण य गहणेण ॥४६॥५०॥ दारं ॥  
“पडिपक्खे जा गच्छइ धं च दयं च अण्णपगईय । सा हु परिमत्तमाणी, अनिवारिती अपरिमत्ता ॥”

नारांतरायदंसणाचउक्कपरघायतित्यमुस्सासं ।

नामधुवबन्धिनवमिच्छभयदुगंछा अपरियत्ता ॥४७॥५१॥

नाणावरणपणगं, अंतरायपणगं, दंसणावरणचउक्कं, परघायतित्थयरनामं, उस्सासं, नामधुवबंधी नव, मिच्छत्तं, भयं, दुगुं च्छा य; अपरियत्तामाणीउ उणतीसं ।

पडिवक्खे परियत्तामाणीओ । ता य इमा--गइचउक्कं, जाइपणगं, सरीरतिगं, अंगोदंगतिगं, संघयणछक्कं, विहायगईदुगं, आणुपुच्चिचउक्कं, तसदसगं, थावरदसगं, आउचउक्कं, वेयणि-यदुगं, कसायसोलसगं, हासरइदुगं, अरइसोगदुगं, वेयतिगं, निहापणगं, उज्जोयआयवं, गोयदुगं च; परियत्तामाणीओ इगनउई ॥४७-५१॥ दारं ॥

“चउह्विवागा य पयडीउ”त्ति, पुग्गलविवागिणीओ, जीवविवागिणीओ, खित्त-भवविवागिणीओ -

संघयणा ६ संठाणा ६ सरीरु ३ वंगाणि ३ आयवु १ ज्जोया १ ।

नामधुवोदय १२ साहार१णियर१उवघाय१परवाया १ ॥४८॥५२॥

संघयणछक्कं, संठाणछक्कं, सरीरतिगं, तेयगकम्मइगे धुवोदयगहणेण गहिया; अंगोवं-गतिगं, आयवं, उज्जोयं, नामधुवोदया, साहारणं, पत्तेयं, उवघायं, परघायं च; छचीसा । एवं पुग्गलविवागीणि ॥४८॥५२॥

उदइयभावा पुग्गलविवागिणो आउ भवविवागीणि ।

खित्तविवागणुपुव्वी जीवविवागी उ सेसाउ ॥४९॥५३॥

भवविवागी आउयचउक्कं । खेतविवागी अणुपुव्वीचउक्कं । जीवविवागीओ सेसाओ । ता य इमा--गइचउक्कं, विहायगइदुगं, जाइपणगं, तसतिगं, थावरतिगं, उस्सासं, सुमगाइचउक्कं, दुमगाइचउक्कं, गोयदुगं, वेयणियदुगं, तित्थयरं, सम्मत्तं, सम्मामिच्छत्तं, घाइपयडीओ पणयालं; एवं अदुहत्तरि जीवविवागीणि ॥४९॥५३॥

“उदइयभावा पुग्गलविवागिणो”इत्ति, भावा कच्चिया कित्थियमेया य तं जाण-णत्थं मण्णइ—

भावा छच्चोवसमिय १ स्वइय २ स्वओवसम ३ उदय ४ परिणामा ५ ।

दु १ नव २ द्वारि ३ गवीसा ४ तिग ५ मेया सन्निवाओ य ६ ॥५०॥५४॥

उवसमियं २, खाइयं ६, खाओवसमिओ १९, ओदइयं २१, परिणामियं ३, सण्णिवायं च ५३ ॥५०॥५४॥

सम्मचरणाणि पढमे वीए वरनाणदंसणचरित्ता ।

तह दाणलाभभोगोवभोगविरियाणि सम्मं च ॥५१॥५५॥

उवसमियं चरित्तं, उवसमियं सम्मत्तं, एए दुगमेया ॥ दारं ॥ केवलनानाणं १, केवलदरिसणं १, खाइयं चरणं १; दाणलद्धी १, लाहलद्धी १, भोगलद्धी १, उवभोगलद्धी १, वीरियलद्धी १, खाइयसम्मत्तं १; एए नव खाइयभावा ॥५१॥५५॥ दारं ॥

चउनाणाऽन्नाणतिगं दंसणतिगपंचदाणलद्धीओ ।

सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजमो तइए ॥५२॥५६॥

नाणचउक्कं, अन्नाणतिगं, दंसणतिगं, पंचदाणद्धीओ, सम्मत्तं, चरित्तं, देसविरयं च । एवं अट्टारस खाओवसमियभावा ॥५२॥५६॥ दारं ॥

चउगइचउकसाया लिगतिगं लेसच्छक्कराणां ।

मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमो चोत्थभावम्मि ॥५३॥५७॥

गइचउक्कं, कसायचउक्कं, वेदतिगं, लेसच्छक्कं, अण्णाणं, मिच्छत्तं असिद्धत्तं, असंजमो चोत्थभावम्मि । एवं उदइयभावा एगवीसं ॥५३॥५७॥ दारं ॥

पंचमगम्मि य भावे जीवाभवत्तभव्याईणि ।

पंचराह वि भावारां मेया एमेव तेवन्ना ॥५४॥५८॥

जीवत्तं, भवत्तं, अभवत्तं; एवं पारिणामिया भावा ३ ॥ दारं ॥ सन्निवायस्स मेया तेवण्णं सव्वं भावाणं ॥५४॥५८॥ दारं ॥

उदइयखाओवसमियपरिणामेहिं चउरो गइचउवके ।

खइयजुएहिं वि चउरो तदभावे उवसमजुएहिं ॥५५॥५९॥

उदयं १, खाओवसमियं २, पारिणामियं ३; एवं तिगजोगो चउसु गईसु भंगो १। खाइयं १, ओदइयं २, खाओवसमियं ३, पारिणामियं ४; एवं चउक्कजोगो चउगईसु भंगो २। अहवा उवसमियं १, उदयं २, खाओवसमियं ३, पारिणामियं ४; एवं चउक्कजोगो चउसु गईसु भंगो ३ ॥५५॥५९॥

इक्किओ उवसमसेदिसिद्धकेवलिसु एवमविरुद्धा ।

पन्नरस सन्निवाइअमेया वीसं असंभविणो ॥५६॥६०॥

उत्तरमात्रानां, साञ्जि गति क्रमावे संभविता-ऽसंभवितभेदानां च, तथा मूलकर्मसु गुणस्थानेषु च [ २३  
मूलमात्रानां प्ररूपणम्

उवसमियं १, (खाडअं २,) खाओवसमियं (३, ओदइअं)४, पारिणामियं ५, एवं पंचजोगो,  
उवसमसेदीए भंगेक्को मणुत्साणं ४। खाइयं १, पारिणामियं २; एवं दुगजोगो भंगेक्को य  
सिद्धाणं ५। खाइयं १, (ओदइयं २,) पारिणामियं ३, एवं तिगजोगे भंगेक्को केवलीणं ६। एवं एए  
छमंगा संभविया । भंगतिगे चउसु गईसु भंगा वारस, उवसमसेदीभंगेक्को १, सिद्धभंगेक्को १,  
केवलीभंगेक्को १; एवं साञ्जिवाइयभावा पण्णरस । भंगा वीमं असंभविया ॥ ते य इमे-उवसमियं  
खाइयं १, उवसमियं खाओवसमं २, उवसमियं ओदइयं ३, उवसमियं पारिणामियं ४, खाइयं  
खाओवसमियं ५, खइयं ओदइयं ६, खाइयं पारिणामियं, सिद्धमंगो (१); खाओवसमियं ओदइयं ७,  
खाओवसमियं पारिणामियं ८, ओदइयं पारिणामियं ९; दुगजोगे नवभंगा असंभविया ॥  
उवसमियं खाइयं खाओवसमियं १, उवसमियं खाइअं ओदइयं २, उवसमियं खाइअं पारिणामियं  
३, उवसमियं खाओवसमियं ओदइयं ४, उवसमियं खाओवसमं, पारिणामियं ५, उवसमियं  
ओदइयं पारिणामियं ६, खाइयं खाओवसमं, ओदइयं ७, खाइयं खाओवसमं पारिणामियं ८,  
खाइयं ओदइयं पारिणामियं, केवलीभंगो सुद्धो (२); खाओवसमं ओदइयं पारिणामियं, गहचउ-  
क्कभंगो (३); एवं तिगजोगे भंगा अडु असंभविया ॥ उवसमियं खाइयं खाओवसमियं  
ओदइयं १, उवसमियं खाइयं खाओवसमियं पारिणामियं २, उवसमियं खाइयं ओदइयं  
पारिणामियं ३, उवसमियं खाओवसमियं ओदइयं पारिणामियं, गहचउक्कभंगो (४); खाइयं  
खाओवसमं ओदइयं पारिणामियं, गहचउक्कभंगो (५), चउक्कजोगे भंगा तिञ्जि असंभ-  
विया ॥ उवसमियं खाइयं खाओवसमियं ओदइयं पारिणामियं (६), उवसमसेदीभंगो ॥  
एवं भंगा २६ । संभविया भंगा ६ । असंभविया भंगा २० । एवं वीस असंभविया ॥५६॥६०॥

दुगजोगो सिद्धाणं केवलिसंसारियाणं तिगजोगो ।

चउजोगजुगं चउसु वि गईसु मणुयाणं पणजोगो ॥५७॥६१॥

कंठा ॥५७॥६१॥

मोहस्सेव उवसमो खाओवसमो चउराह घाईयां ।

उदयक्खयपरियाणामा अट्टराह वि ट्ठंति कम्मणां ॥५८॥६२॥

मोहणीयस्स उवसमिओ भावो ॥१॥ नाणावरणं, दंसणावरणं, मोहणीयं, अंतराइयं च;  
एए वाइक्कमा खाओवसमिए भावे । ओदइयं, खाइयं, पारिणामियं एए तिण्णि भावा अट्टण्हं वि  
होति कम्मणां ॥५८॥६२॥

सम्माइचउसु तिगचउभावा चउपणुवसामगुवसंते ।

चउ खीरोऽपुन्वे तिञ्जि सेसगुण्णणगेगजिए ॥५९॥६३॥

अविरयसम्मद्दिट्ठि देसविरयं पमत्तं अपमत्तं च चउसु वि खाओवसम-उट्ठय-पारिणामिय-  
भावा तिण्णि । अहवा उवसमिय-खाइआण एगयरे छूटे, चत्तारि भावा । “वउपणउव-  
सामग’त्ति, अनियट्ठिसुहुममंपराया उवसामगा, उवसंतोहो उवसंतो, एएसि भावा चत्तारि  
पुव्वुत्ता । अहवा पंच, तिन्नि पुव्वुत्ता, उवसमिय-खाइया खिप्पंति; एवं वंच । खीणमोहस्स  
भावा तिण्णि पुव्वुत्ता; खाइयं चउत्थं । अपुव्वकरणस्स चत्तारि पुव्वुत्ता । सजोगि-अजोगि-  
केवलीणं खाइय-ओदइय-पारिणामिया तिण्णि भावा । मिच्छसासणसम्मामिच्छस्स तिण्णि  
पुव्वुत्ता ॥५६॥६३॥

एएसु गुणट्ठाणगेसु पत्तेयं पत्तेयं उत्तरभावा भेया कस्स किच्चिया तं भण्णइ-

पण अंतराय अन्नाण तिण्णि अचक्खुचक्खु दस एण । मिच्छे साणे य हवंति मीसए अंतराय पण ॥१॥  
नाणतिगदंसणतिगं मीसं सम्मं च । वारस हवंति । एवं च अविरयस्मि वि नवरं तहिं दंसणं सुद्धं ॥२॥  
देसे देसव्विरई तेरसमा तह पमत्तअपमत्ते । मणपज्जवपक्खेवे चउदस अप्पुव्वकरणे य ॥३॥  
वेयगमस्सेण विणा तेरस जा सुहुमसंपराओत्ति । तेत्थिचय उवसमवीणे चरित्तविरहेण वारस उ ॥४॥  
खाओवसमिगभावाण कित्तिणा गुणए पडुच्च कया ओदइयभावमिण्हि ते चैव पडुच्च दंसेमि ॥५॥  
चउगइयाई इगवीस मिच्छे साणे य होति वीसं च । मिच्छेण विणा, मिस्से इगुणीसमनाणविरहेण । ६॥  
एमेव अविरयस्मी सुरनारयगइविओगओ देसे । सत्तारस होति ते च्चिय तिरियगइअसंजमामावा ॥७॥  
पण्णरस पमत्तस्मी अपमत्ते धाइलेसतिगधिरहे । ते च्चिय वारस सुक्केगल्लेसओ दस अपुव्वस्मि ॥८॥  
एवं अनियट्ठस्मि वि सुहमे संजलणत्तोममणुयगई । अंतिमलेसवसिद्धत्ताभावओ जाण चउमावा ॥९॥  
संजलणत्तोमविरह! उवसंतक्खीणकेवलीण विगं लेसाभावा जाणसु अजोगिणो भावदुगमेव ॥१०॥  
अविरयसम्मा उवसतु जाव उवसमिगखइयगा वा वि । अनियट्ठी उवसंतो जाणसु उवसमिय चरणं ॥११॥  
खीणस्मि खइयसम्मं चरणं च दुगं पि जाण समकालं । नथ नथ खइगा भावा जाण सजोगे अजोगे या ॥१२॥  
जीवत्तममवत्तं भवत्तं वि हु मुणाहि मिच्छस्मि । साणाई खीणंते दोण्णि अमवत्तवज्जाओ ॥१३॥  
सजोगि अजोगिस्मी जीवत्तं चैव मिच्छमाईणं । ससभावभीलणाओ भावे पुण सन्निवायस्मि ॥१४॥

तिसु ठाणगेसु भावा चत्तारि । अहवा पंच । कइं ? ओदइयो खाओवसमियं पारिणामिओ,  
एवं तिण्णि भावा ठप्पा । खाइयं सम्मत्तं, एए चत्तारि भावा खीणमोहस्स १। भावा ३,  
खाइयं सम्मत्तं, उवसमियं चरित्तं; एए पंच भावा उवसंतस्स सेटीए पढंतस्स वा । भंग २ । भावा  
३, उवसमियं सम्मत्तं, खाइयं चरणं; एए भंगो असंमविओ ३। भावा तिन्नि, उवसमियं सम्मत्तं,  
उवसमियं चरणं; एए चत्तारि भावा उवसंतस्स सेटीए पढंतस्स वा । एए चत्तारि भंगा सम्माइ-  
चउसु गाहा-उणुसारेण भणियन्वा ॥ “कम्माइ” आइसहाओ अजीवट्ठाणाइ भणिज्जंति ।

धम्माधम्मनभा तिन्नि दव्वदेसप्पएसओ तिविहा ।

गइठाणवगाहगुणा अरुविणो कालसमओ य ॥६०॥६४॥

गुणस्थानेषु मूलोत्तरभावानां धर्मास्तिकायादेर्मूलप्रकृत्युत्कृष्टजघन्यस्थितिवन्धमानस्य च निरूपणम् [ २५

धम्मत्थिकायदव्वे १, धम्मत्थिकायदव्वदेसे २, धम्मत्थिकायदव्वपएसा ३ । अधम्म-  
त्थिकायदव्वे १, अधम्मत्थिकायदव्वदेसे २, अधम्मत्थिकायदव्वपएसा ३ । आगासत्थिकाय-  
दव्वे १, आगासत्थिकायदव्वदेसे २, आगासत्थिकायदव्वपएसा ३ । धम्मत्थिकाए गइगुणो,  
अधम्मत्थिकाए ठाणगुणे, आगासत्थिकाए अषगाइगुणे । अरूविया एए नव अजीवट्टाणा,  
कालसमओ वि अरूवी, एवं दस ॥६०॥६४॥

सो वत्तणाइलिंगो रूविअजीवा उ हुंति मे चउरो ।

खंधा देसपएसा केवलअणवो य ते य पुणो ॥६१॥६५॥

कालो वत्तणाइगुणो । रूविणो अजीवा वि चत्तारि । ते य इमे—खंधा, खंधदेसा,  
खंधपएसा, एगे परमाणू ॥६१॥६५॥

वरणाइगुणा बंधाइकारणां इय अजीवचउदसगं ।

सव्वे वि हु परिणामे भावे खंधा उदइए वि ॥६२॥६६॥

वण्णाइगुणा=वण्णगंधरसफासपरिणया चत्तारि वि दव्वा बंधाइकारणं । कंहं? भण्णइ-  
कम्मजोगत्ताए परिणया खंधा जीवा बंधति बंधे; उदये उदीरणाए य इंति; सत्ताए पट्टचित्तिः  
एवं बंधाइकारणं । एए चउदस वि अजीवट्टाणा कम्मि य भावे वट्टंति?, भण्णइ—सव्वे  
वि हु पारिणामिए भावे; खंधा उदइए वि । खंधा उदए कंहं?, भण्णइ—खंधस्स अद्धस्स  
तिभागस्स वा चउत्थभागस्स वा देसविवक्खा । पएसा निव्विमागा मागा तस्सेव । न विभिन्ना  
देसपएसविवक्खा । कोहोदए जीवस्स कम्मखंधा उदए । एगे परमाणू न कम्मत्ताए परिणमइ ।  
एवं खंधा ओदइए भावे न सेसा ॥६२॥६६॥ एव पगइबंधो पसंगागड त्ति भणिधो ॥

इयाणि ठीबंधो । सो दुविहो, मूलपगइठीबंधो य उत्तरपगइट्टिबंधो य । एववेक्को य  
दुविहो उक्कोसठीबंधो जहण्णठीबंधो य । मूलपयडीठीबंधो भण्णइ—

मोहे कोडाकोडीउ सत्तरी वीस नामगोयाणां ।

तीसयराण चउगहं तितीसयराइँ आउस्स ॥६३॥६७॥

मोहणीयस्स सत्तरिकोडाकोडी उक्कोपो ठीइबंधो । नाणावरणीयदंसणावरणीयअंतरायाण  
य वेयणीयस्स य तीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठीइबंधो । नामगोयाण य वीसं कोडाकोडी  
उक्कोसो ठीइबंधो । आउयस्स तेचीसं सागरोवमाइ उक्कोसो ठीइबंधो ॥६३॥६७॥

मोत्तुमकसाई हस्सा ठिइ वेयणियस्स वारसमुट्टत्ता ।

अट्टट्ट नामगोयाणां सेसयाणां मुट्टत्ततो ॥६४॥६८॥

अकसाई=उवसंतमोहा सजोगकेवली, एए मोत्तु, जओ एसि इरियावहपण्णओ सामइगो  
ठिइबंधो, सेसाणं संपरायगो वि, तओ अकसाई मुत्तूण वेयणीयस्स वारस मुट्टत्ता; नामस्स य

गोयस्स य अट्टु मुहुत्ताः सेसाणं पंचण्हं अंतोमुहुत्तं जहण्णट्टिइवंधो ॥६४॥६८॥

इयाणि उत्तरपयडीणं भच्च-

तीसं कोडाकोडी असायआवरणअंतरायाणं ।

मिच्छे सत्तरिमिथीमणुदुगसायाण पन्नरस ॥६५॥६९॥

असायवेयणीयस्स नाणावरणपणगस्स दंसणावरणनवगस्स अंतरायपणगस्स य तीसं कोडाकोडी उ उक्कोसो ठीइवंधो । मिच्छादंसणस्स सत्तरिकोडाकोडी उक्कोसो ठीइवंधो । इत्थीवेयस्स मणुयदुगस्म सायावेयणीयस्स पण्णरसकोडाकोडी उक्कोसो ठीइवंधो ॥६५॥६९॥

संघयणे संठाणे पढमे दस उवरिमेसु दुगवुट्ठी ।

चालीसकसाएसु अट्टारस विगलसुहुमतिगे ॥६६॥७०॥

वज्जरिसमनाराय-समचउरंसस्स य कोडाकोडी दस । वज्जनाराय-नगोहस्स य कोडाकोडी वारस । नाराचसंघयण-साइसंठाणस्स य कोडाकोडी चउदस । अट्टनारायसंघयण-खुज्जसंठाणस्स य कोडाकोडी सोलस, खीलियसंघयण-वामणसंठाण-सुहुमतिग-विगलतिगाणं कोडाकोडी अट्टारस उक्कोसो ठीइवंधो । कसायसोलसगे कोडाकोडीओ चालीसं ॥६६॥७०॥

दस दस सुक्किलमहुराण सुरभिनिग्धुराहमिउलहूणं च ।

अट्टाइज्जपवुट्ठा ते हालिदंबिलाईणं ॥६७॥७१॥

सुक्किलवण्ण-महुररस सुरभिगंध-निद्धफास-उण्हफास-मउयफास-लहुयफासाण य दस कोडाकोडी उक्कोसो ठीइवंधो । हालिद्वन्न-अंबिलरसस्स कोडाकोडी सट्टवारस उक्कोसो ठीइवंधो । लोहियवण्ण-कसायरसस्स कोडाकोडी पण्णरस । नीलवण्ण-कडुयरसस्स कोडाकोडी सट्टसत्तरस ॥६७॥७१॥

हासरइपुरिसउच्चे सुभखगइथिराइक्कदेवदुगे ।

दस सेसाणं वीसा एवइयावाहवाससया ॥६८॥७२॥

हासरइ-पुरिसवेय-उच्चागोय-सुभखगइ-थिराइक्क-देवदुगस्स य दस कोडाकोडी उक्कोसो ठीइवंधो । एए तियासी पगईओ । सेसाणं वीसकोडाकोडी उक्कोसो ठीइवंधो । ता य इमा-तिरियदुगं किण्हवन्नं तित्तरसं दुगंघ गुरुफासं कक्कसफासं सीयफासं रुक्खसफासं अतित्थपत्तेय-सत्तगं तेज्जगसत्तगं ओरालियसत्तगं तसाइचउक्कं अथिराइक्कं थावरनामं एगिदियजाई पंचिदियजाई हुंसंठाणं छेवडुसंघयणं भयं दुगंछा अरई सोगा य नीयगोयं नपुंसगवेयं असुभखगई वेउव्वियसत्तगं निरयदुगं य । एए एगसट्टिपयट्ठीओ । जस्स जेत्तिया सागरोवम-कोडाकोडीओ उक्कोसा ठी, तस्स तेत्तिया दामसया अवाहा ॥६८॥७२॥

अंनोकोडाकोडी तित्थाहाराण जिट्टुठिइबंधो ।

अंतमुहुत्तमबाहा इयरो संखिजगुणहीणो ॥६१॥७३॥

तित्थयरनामस्स आहाग्गमत्तगस्स य, अंतोकोडाकोडी उक्कोसो ठीइबंधो । अंतमुहुत्तं अबाहा । इयरा जहण्णा सा संखेजगुणहीणा । सा वि अंतोकोडाकोडी । तित्थयरनामस्स क्हमंतोमुहुत्तमेत्तमबाहा १, जओ—“बच्चइ तं तु भगवओ तइअमयोसक्कइत्ताणं” ति । भण्णइ— तित्थयरनामस्स पओगओ उइण्णस्स आणेसरियाइलद्धीओ अण्णजीवेहिंतो विसोसियतराओ रंभवन्ति । तेणेवं होइत्ति संभावयामि ॥६१॥७३॥

तेत्तीसुदही सुरनारयाउ नरतिरियाउ पल्लतिगं ।

निरुक्कमाण छ मासा अबाह सेसाण भवतंसो ॥७०॥७४॥

देवाउयस्स निरयाउयस्स य तेत्तीमं सागरोवमाइं उक्कोसो ठीइबंधो । निरुक्कमाणं पर-  
मवाउयं वद्धं छहिं मासेहिं उदयं एइ । एवइया अबाहा । सेसाणं मणुयतिरियाणं संखेजवासा  
उयाणं भवतंसो भवस्स तिभागो उक्कोसिया अबाहा ॥७०॥७४॥

तह पुव्वकोडिपरओ इगविगलिंदी न बंधए आउं ।

आउचउ परमबंधो पल्लासंखंसममणोसु ॥७१॥७५॥

एगिदिया विगलिंदिया परमवाउयं पुव्वकोडि उक्कोसं ठीइं बंधति; न परओ । तिरिय-  
मणुयाउमेव बंधति त्ति काउं । असाण्णपंचिदियस्स आउ(चउ)क्के वि पलिओवमस्सासंखेज्जमागं  
उक्कोसो ठीइबंधो । एवं तियासी ८३ एगसद्धि ६१ आहारसत्तगं ७ तित्थयरनामं १ आउचउक्कं च ।  
एवं छप्पणपयडिसयस्स ड्ढीइबंधो मणिओ । न य बंधे सम्ममीसाइं ॥७१॥७५॥ उक्कोसड्ढीइबंधो  
समत्तो ॥ इयाणि जहन्नड्ढीबंधो मण्णइ—

दंसणाचउविग्घावरणालोहसंजलणाहस्सठिइबंधो ।

अंतमुहुत्तं ते अट्ट जसुच्चे वारस य साए ॥७२॥७६॥

दंसणावरणचउक्कं अंतरायपणगं नाणावरणपणगं लोमसंजलणस्स य अंतोमुहुत्तं जहण्ण-  
ड्ढीइबंधो । जसकित्तीउ उच्चगोयस्स य अट्ट मुहुत्ता जहण्णट्ढीइबंधो । सायावेयणियस्स  
वारस मुहुत्ता ॥७२॥७६॥

दो मासा अद्धद्धं संजलणातिगे पुमट्ट वरिसाणि ।

सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिइअ जं लद्धं ॥७३॥७७॥

कोहसंजलणाए दो मासा, माणसंजलणाए एगो मासो, मायामंजलणाए पण्णरसदिणाणि,  
पुरिसवेयस्स अट्टवरिसाणि जहन्नड्ढीइबंधो । “सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिइअ जं लद्धं”



कहं ? मण्णइ-मिच्छत्तस्स सत्तरिकोडाकोडी उक्कोमा ठीई तीए सत्तरीए भागो हरिज्जइ । लद्धा सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा । कसायाणं चालीसं कोडाकोडी उ उक्कोसो ठीवंधो; सत्तरीए भागे पाडिए लद्धा चत्तारि सत्तभागा सागरोवमस्स । नाणावरण-दंसणावरण-वेर्याणयाणं अंतरायस्स य तीमं कोडाकोडी उक्कोसो ठीवंधो । तीसे सत्तरीए भागे पाडिए लद्धा तिन्नि सत्तभागा सागरोवमस्स । नामगोयाण य वीमं कोडाकोडी उक्कोसो ठीईवंधो वीसाए सत्तरीए भागे पाडिए लद्धा दुण्णिण सत्तम.गा सागरस्म ॥७३॥७७॥

एसेगिंदियजेठो पलियासंखंसहीणालहुबंधो ।

पणुवीसं पन्नासा सयं सहस्सं य गुणकारो ॥७४॥७८॥

एगिंदियस्स उक्कोसगो ठीईबंधो सच्चकम्माणं जहण्णगो पल्लोवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगो । एयं सामन्नेण जहण्णबंधो ।

एवं मूलपयडीणं । उत्तरपयडीणं य एयाणुसारेण । जहा मणुयदुगस्स पण्णरससागरोवमकोडा-कोडीओ, उक्कोसा ठीई । जहन्ना तस्सेव सत्तरिभागे पाडिए लद्धं सागरोवमस्स दिवड्डुं सत्तभागां । एवं सागरोवमस्स सहस्सं । एवं सच्चवेसिं अणुसारो वि भइयच्चो । एवं एगिंदियस्स ठीईबंधो । एयाउ वेइंदियस्स पणुवीसगुणो, एगिंदियाउ तेइंदियस्स पन्नासगुणो, एगिंदियाउ चउरिंदि स्स सयगुणो, एगिंदियाओ असण्णिपंचिंदियस्स सहस्सगुणो ॥७४॥७८॥

कमसो विगलत्रसरणीण पल्लसंखंसऊण्णओ डहरो ।

सुरनिरयाउ समा दस सहस्स सेसाउ खुड्डुभवं ॥७५॥७९॥

पल्लोवमस्स संखेयभागूणो जहन्तो चउणहं पि । देवाउयनरयाउयस्स य जहन्नट्ठीबंधो दसवरिससहस्साणि । “सेसाउ” मणुयाउयं तिरियाउयं जहण्णट्ठीबंधो खुड्डुगभवं ॥७५॥७९॥

सहसगुणो गिंदिठिई विउच्चिच्चके जओ असन्निसु तं ।

केसिंचि सुराउसमं तित्थं आहारगंतमुहू ॥७६॥८०॥

वेउच्चियच्छगस्स एगिंदियाओ सहस्सगुणा वन्नइ । जओ असन्नपंचिंदियस्स जहन्नेण वि वेउच्चियच्छक्कगस्स बंधो; न एगिंदिय-विगलिंदियाणं । केसिंचि आयरियाणं मएण तित्थयर-नामस्स दसवाससहस्साइं जहण्णो ठीईबंधो; आहारगस्स अंतमुहूचं ॥७६॥८०॥

भिन्नमुहूत्तमवाहा सच्चवासिं सच्चहिं डहरबंधे ।

आउसु जिट्ठे वि जओ संखेप्पद्धा भवे तेसुं ॥७७॥८१॥

अंतोमुहूचं आवाहा सच्चवासिं पयडीणं सच्चहिं जहण्णठीबंधे । आउयस्स विवरियं; जओ जेट्ठे वि जहण्णा अवाहा, जहण्णे विउक्कोसा अवाहा; एत्थ चउमंगो ॥७७॥८१॥

खुड्भवा साहीया सत्तरस हवंति एगपाणुमि ।

पाणू एगमुहुत्ते तिसत्तरा सत्ततीससया ॥७८॥

पाणू=ऊसासनीसासो । तत्थ एगे ऊसासे खुड्भवा सत्तरसा साहिया, केत्तिएण १. आवलियाए चउणवईए साहियाए । "पाणू" एगमुहुत्ते सत्ततीससया तिहत्तरा पाणूणं भवंति ॥७८॥८२॥

पाणूसट्टिसहस पाणूसय छत्तीसा इगमुहुत्त खुड्भवा ।

दोय सया छप्पन्ना आवलियाणेगखुड्भवे ॥७९॥८३॥

मुहुत्ते दो नालिआओ । तत्थ खुड्भवग्रहणा पणसट्टिसहसस पंचसया छत्तीसा भवंति । एगमि खुड्भवग्रहणे आउमाणं दोसया छप्पणाए आवलियाणं । पणसट्टीसहस्साणं पंचहं सयाणं छत्तीसाणं खुड्भवग्रहणेणं । दोहि सएहिं छप्पणेहिं गुणित्तु आवलियाओ कीरंति । पुणो सत्ततीसाए सएहिं तिहत्तरेहिं ऊसासाणं भागो हीरइ । लद्धाओ चउणवइआवलियाओ साहियाओ । एवं सत्तरस खुड्भवा साहिया ऊसासे हवंति ॥७९॥८३॥

अयरंतकोडिकोडीओ अहिगो सासणाइसु न बंधो ।

हीणो ण अपुव्वंतेसु गोव य अभवसन्निमि ॥८०॥८४॥

आसायणाइ जाव अपुव्वकरणो अंतोकोडाकोडिड्डीईबंधो तारतम्मेण नाहिगो न हीणो अपुव्वंतेसु । अभवसणिगस्स अंतोकोडाकोडी डीबंधो जहण्णो विं न हीणयरो ॥८०॥८४॥

अमणुक्कोसाओ विरउक्कोसो देसविरयहस्सियरो ।

सम्मचउसन्निचउरो ठिइबंधाणुक्कमसंखगुणा ॥८१॥८५॥

पसंगागयं सव्वजीवट्टाणेसु सव्वासिं जहण्णुक्कोसट्टिईणं अप्पाबहुगं भण्णइ । तत्थ सव्व-  
त्थोवो संजयस्स जहण्णगो ट्टित्तिबंधो १ । (एगिदिबायरपज्जत्तगस्स जहण्णओ ठिइबंधो असंखेज्ज-  
गुणो २ । सुहमस्स पज्जत्तगस्स जहण्णओ विसे० ३) एगिदियबादरस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णो वि-  
विसेसा० ४ । सुहुमस्स ५० जहं० विसे० ५ । तस्सेवुक्कस्सट्टितीबंधो विसे० ६ । बादरस्स अप-  
ज्जत्तगस्स उक्को० विसे० ७ । सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्को० विसे० ८ । बादरस्स पज्जत्तगस्स  
उक्को० विसे० ९ । ततो बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहं० संखेज्जगु० १० । तस्सेव अपज्जत्तगस्स  
जहं० विसेसा० ११ । तस्सेवुक्कस्स विसे० १२ । बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्को० विसे० १३ ।  
तेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णो संखेज्जगुणो १४ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहण्णगो विसेसाहिओ  
१५ । तस्सेव उक्कोसो विसेसाहिओ १६ । तेइंदियपज्जत्तगस्स उक्को० विसेसा० १७ । चउरिंदि-  
यस्स पज्जत्तस्स जहण्णो संखेज्जगुणो १८ । अपज्जत्तगस्स जहं० विसेसाहिओ १९ । तस्सेव  
अपज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ २० । चउरिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्को० विसे० २१ ।

असण्णपंचेदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २२ । तस्सेव अप० जहं० वसेसो० २३ । तस्सेवुक्कस्सगो विसे० २४ । असण्णपंचेदियस्स पज्जत्तगस्स (उक्क०) ठिईवंधो विसेसाहिओ २५ । ततो संजयस्स उक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २६ । “विरए देसज्जहुणे सम्मचउक्केय संवगुणे” त्ति, ततो देसविरयस्स जहण्णओ ठिईवंधो संखेज्जगुणो २७ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २८ । “देमज्जतिहुणे” त्ति, देसविरयस्स जहण्णुक्कोस्स त्ति भणियं होइ । “सम्मचउक्केय” त्ति, अस्संजयसम्मदिट्ठी । पज्जत्तापज्ज तयाणं जहण्णुक्कोसगं त्ति भणियं होति । देसविरयस्स उक्कोस्साओ ठितिवंधाओ असंजयसम्मादिट्ठिस्सपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो २६ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो ३० । तस्सेवुक्कस्सओ ठितिवंधो संखेज्जगुणो ३१ । असंजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो ३२ । ‘सण्णीपज्जत्तियरेसु’ त्ति । अस्संजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाओ ठितिवंधाओ सण्णपंचेदियपज्जत्तगस्स जहण्णओ ठितीवंधो० (संखगुणो) ३३ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० संखेज्ज० ३४ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो ३५ । “अट्ठिमतरो उ कोडाकोडीए” त्ति । एवं संजयस्स उक्कोसाओ आढत्तं कोडाकोडीओ अढंमंतरओ भवंति । “उक्कसो सण्णस्स होइ पज्जत्तगस्सेव” त्ति पुब्बं सामण्णेण उक्कोसगो भणियो, सो सण्णयस्स पंचेदियस्स पज्जगस्स मिच्छादिट्ठिस्स चैव भवइ ३६ ॥ ॥८१॥८५॥ ठितिवंधाणपरूवणा भणिया ॥

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणांति ठिई ।

एगिदिया जहणं असन्निखद्दगा य काणां वि ॥८२॥८६॥

सव्वासिं पयडीणं उक्कोसो ठिईवंधो सण्णस्स; न सेसाणं । उक्कत्तं च-“उक्कसो सण्णस्स होइ पज्जत्तगरसेव” । “एगिदिया जहणं” जहणं=जहण्णठीवंधं एगिदियाइ नवोत्तरपयडि-सयस्स । असण्णपंचेदिया वेउव्वियएकारसगस्स जहण्णट्ठिह्वन्धगा । खवगा बावीसाए पयडीणं जहण्णट्ठीवन्धगा । चकारात् अपुव्वकरणो आहारसत्तगस्स तित्थयरनामस्स य; तिरियमणुया आउयचउक्कस्स जहण्णट्ठीवन्धगा । उक्कत्तं च-

“आहारगतित्थयरं त्थिट्ठि अनियट्ठि पुरिससख्खलणा । बन्धइ सुहुमसरागो सायजसुक्खावरणविग्घं ॥१॥ छण्हमसण्णी कुणइ जहणं ठीमाडगाणमण्णयरौ । सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिदियधिसुद्धो ॥२॥”

सव्वाणुक्कोसठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेयां । ॥८२॥८३॥

इयरा उ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मोत्तुं ॥८३॥८७॥

सव्वाणं वि पयडीणं उक्कोसा ठिई असुभा । जओ सव्वसंकिलिट्ठो मिच्छदिट्ठी आहारसत्तग-तित्थयरनाम-देवाउय-मणुयाउय-तिरियाउयवज्जाणं सव्वपयडीयां उक्कोसंठाई वंधइ । नवरं सुम-पयडीणं तप्पाउगसंकिलिट्ठो । सा असुभा असुमरुक्खफलविवागवत् असुमपयडीणं सुमपय-डीणं बाह्वयकषलोवमानीरसा तओ असुभा । तित्थयरनामस्स अविरयसम्मदिट्ठी आहारसत्तगस्स

३१ ] जीवभेदेषु स्थितिवन्धाल्पबहुत्वस्योत्कृष्टजन्यस्थितिस्वामिनो जीवस्थानेषु योगवृद्ध्यल्पबहुत्वस्य च दर्शनम्

अपमत्तसंज्ञो तप्पाओगसंक्लिष्टो उक्कोसं ठीहं बंधइ । संक्लिसे=कसाओदओ सो अमुभो । देवाउस्स विसुद्धो उक्कोसं ठीहं बंधइ । जओ सुहपरिणामेण देवाउयस्स बंधो । मणुयतिरिया-उयाण वि विसोहीए उक्कोसो ठीबंधो जओ तप्पाओगविसुद्धा बंधइ । इयरा जहण्णं विसुद्धो सच्च-पयदीणं ठीहं बंधइ । आउयविवरीयं आउगाणं तप्पाओगसंक्लिष्टो जहण्णद्धीं बंधइ ॥८३॥८७॥

पसंगागयं मणह—

सुहुमनिगोयाइस्वगो जोगो थोवो तत्रो असंखगुणो ।

बायरवियतियचउमणासणिणअपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥८८॥

साहारणस्स सुहुमस्स लद्धीए अपज्जत्तगस्स पढमसमए वट्टमाणस्स अप्पवीरियलद्धिस्म जहण्णओ जोगो सच्चथोवो । “बायरवियतिगचउमणअसणिणअपज्जत्तगजहण गो” त्ति ततो बादरएगिदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स असन्निपंचिंदियस्स सन्नि-पंचिंदियाणं पज्जत्तअपज्जत्तगाणं जहन्नगो जोगो कमसो असंखेज्जगुणो ॥८४॥८८॥

पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो अ कमा ।

असमत्तसुक्कोसो पज्जत्तजहन्नजिट्ठो य ॥८५॥८९॥

आविदुगुक्कोसो त्ति, आदिदुगं=सुहुमबायरएगिदिया अपज्जत्तगा, तेसि उक्कोसो । ततो परिवाहीए असंखेज्जगुणो । सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । बादरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो अ । “सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कमा” त्ति, तेसि चैव सुहुमबायराणां पज्जत्तगाणं करणं पडुच्च जहण्णुक्कोसगा जोगा कमेण असंखेज्जगुणा । तओ सुहुमस्स य पज्जत्तगस्स जहण्णजोगो असंखेज्जगुणो । बादरस्स पज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । ततो सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसगो असंखेज्जगुणो । बादरपज्जत्तउक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । “उक्कस्मजहण्णियरो असमत्तियरे असंखेज्ज[क]गुणो” त्ति, ‘उक्कोसगं’ त्ति वेइंदियाईणं अपज्जत्तगाणं उक्कोसो, ‘जहन्नियरो’ त्ति तेसि चैव पज्जत्तग जहन्नगो ‘इयरो’ उक्कोसो ‘असमत्तियरेसु’ त्ति अपज्जत्तगपज्जत्तगोसु असंखेज्जगुणो नेयव्वो । बादरएगिदिय-त्ति पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाउ वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सगो जोगो असंखेज्जगुणो । तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगोऽसंखेज्जगुणो । चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्ज० । असणिपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । सन्निपंचिंदियअपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगो असंखगुणो । एते सच्च लद्धीए पज्जत्तगा गहिया ।

१ व्याख्यानं पुन. “अविदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कमा । उक्कस्सजहण्णियरो असमत्तियरे असंखगुणो ॥८५॥८९॥” इति गायानुसारेण कृतम् ।

असण्णपंचेदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २२ । तस्सेव अप० जहं० वसेसो० २३ । तस्सेवुक्कस्सगो विसे० २४ । असण्णपंचेदियस्स पज्जत्तगस्स (उक्क०) ठिईवंधो विसेसाहिओ २५ । ततो संजयस्स उक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २६ । “विरण देसजइदुगे सम्मचउक्के य संखगुणे” त्ति, ततो देसविरयस्स जहण्णओ ठिईवंधो संखेज्जगुणो २७ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २८ । “देमजतिदुगे” त्ति, देसविरयस्स जहण्णुक्कोस्स त्ति भणियं होइ । “सम्मचक्के य” त्ति, अस्संजयसम्मदिट्ठी । पज्जत्तापज्ज तयाणं जहण्णुक्कोसगं ति भणियं होति । देसविरयस्स उक्कोसाओ ठितिवंधाओ असंजयसम्मादिट्ठिस्सपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो २९ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो ३० । तस्सेवुक्कस्सओ ठितिवं० संखेज्जगुणो ३१ । अमंजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो ३२ । ‘सण्णीयज्जत्तियरेसु’ त्ति । अस्संजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाओ ठितिवंधाओ सण्णिपंचेदियपज्जत्तगस्स जहण्णओ ठितीवंधो० (संखगुणो) ३३ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० संखेज्ज० ३४ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो ३५ । “अट्ठिमंतरओ उ कोडाकोडीए’ त्ति । एवं संजयस्स उक्कोसाओ आढत्तं कोडाकोडीओ अमंतरओ भवंति । “उक्को सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव” त्ति पुब्बं सामण्णेण उक्कोसगो भणिओ, सो सण्णियस्स पंचेदियस्स पज्जगस्स मिच्छादिट्ठिस्स चैव भवइ ३६ ॥ ॥८१॥८५॥ ठितिवंधाणपरूषणा भणिया ॥

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणांति ठिई ।

एगिंदिया जहन्नं असन्निखइगा य काणं वि ॥८२॥८६॥

सव्वासिं पयडीणं उक्कोसो ठिइवंधो सण्णिस्स; न सेसाणं । उक्कत्तं च-“उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगरसेव” । “एगिंदिया जहण्णं” जहण्णं=जहण्णठीवंधं एगिंदियाइ नवोत्तरपयडिसयस्स । असण्णपंचेदिया वेउच्चियएकारसगस्स जहण्णडिइवन्धगा । खवगा बावीसाए पयडीणं जहण्णड्डीवन्धगा । चकारात् अपुब्बकरणो आहारसत्तगस्स तित्थयरनामस्स य; तिरियमणुया आउयचउक्कस्स जहण्णड्डीवन्धगा । उक्कत्तं च-

“आहारगतित्थयरं न्निद्यट्ठि अनियट्ठि पुरिससख्खण्णा । बन्धइ सुहुमसरागो सायज सुक्खवावरणविग्घं ॥१॥ छण्हमसण्णी कुणाइ जहण्णं-ठीमात्तगाणमण्णायरो । सेसाणं पज्जत्तो वायरएगिंदियविसुद्धो ॥२॥”

सव्वाणुक्कोसठिई असुमा सा जमइसंकिलेसेणं । ॥८२॥८३॥

इयरा उ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मोत्तुं ॥८३॥८७॥

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसा ठिई असुमा । जओ सव्वसंकिलिट्ठी मिच्छदिट्ठी आहारसत्तग-तित्थयरनाम-देवाउय-मणुयाउय-तिरियाउयवज्जाणं सव्वपयडीणं उक्कोसंठाई वंधइ । नवरं सुमपयडीणं तप्पाउगसंकिलिट्ठी । सा असुमा असुमरुक्खफलविवागवत् असुमपयडीणं सुमपयडीणं वाज्जयक्कवलोवमानीरसा तओ असुमा । तित्थयरनामस्स अविरयसम्मदिट्ठी आहारसत्तगस्स

अपमत्तसंज्ञो तप्पाओगसंकलिद्धो उक्कोसं ठीइं वंधइ । मंक्ल्लोसो=कमाओदओ सो अमुभो ।  
देवाउस्स विसुद्धो उक्कोसं ठीइं वंधइ । जओ सुहपरिणामेण देवाउयम्म वंधो । मणुयनिग्गिया-  
उयाण वि विसोहीए उक्कोसो ठीवंधो जओ तप्पाओगविसुद्धा वंधइ । इयग जहण्णं विमुद्धो मन्व-  
पयहीणं ठीइं वंधइ । आउयविचरीयं आउगाणं तप्पाओगमंक्ल्लिद्धो जहण्णट्ठीं वंधइ ॥८३॥८७॥

पसंगागयं मण्णइ—

सुहुमनिगोयाइखणो जोगो थोवो तयो असंखगुणो ।

बायरवियतियचउमण्णसरिण्णअपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥८८॥

साहारणस्स सुहुमस्स लद्धीए अपज्जत्तगस्स पढमसमए वट्टमाणस्स अप्पवीग्गियलद्धिम्म  
जहण्णओ जोगो सन्वत्थोवो । “बायरविगतिगचउमणअसण्णिअपज्जत्तगजहण्णो” त्ति  
ततो बादरएग्गिदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स  
जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स असन्निपंचिदियस्स सन्नि-  
पंचिंदियाणं पज्जत्तअपज्जत्तगाणं जहन्नगो जोगो कमसो असंखेज्जगुणो ॥८४॥८८॥

‘पढमदुगुकोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो अ कमा ।

असमत्तसुकोसो पज्जत्तजहन्नजिट्ठो य ॥८५॥८९॥

आदिदुगुकोसो त्ति, आदिदुगं=सुहुमबायरएग्गिदिया अपज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो । ततो  
परिवाहीए असंखेज्जगुणो । सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । बादरस्स  
अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो अ । “सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कम” त्ति,  
तेसिं चेव सुहुमबायराणां पज्जत्तगाणं करणं पडुच्च जहण्णुक्कोसगा जोगा कमेण असंखेज्जगुणा ।  
तओ सुहुमस्स य पज्जत्तगस्स जहण्णजोगो असंखेज्जगुणो । बादरस्स पज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो  
असंखेज्जगुणो । ततो सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसगो असंखेज्जगुणो । बादरपज्जत्तउक्कोसगो  
जोगो असंखेज्जगुणो । “उक्कस्सजहण्णियरो असमत्तियरे असंखेज्जगुणो” त्ति, ‘उक्कोसगं’  
त्ति वेइंदियाईणं अपज्जत्तगाणं उक्कोसो, ‘जहन्नियरो’ त्ति तेसिं चेव पज्जत्तग जहन्नगो “इयरो”  
उक्कोसो “असमत्तियरेसु” त्ति अपज्जत्तगपज्जत्तगोसु असंखेज्जगुणो नेयन्वो । बादरएग्गिदिय-  
त्ति पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाउ वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सगो जोगो असंखेज्जगुणो ।  
तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो । चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो  
जोगो असंखेज्जगुणो । असण्णिपंचिदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो ।  
सन्निपंचिदियअपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगो असंखगुणो । एते सन्वे लद्धीए पज्जत्तगा गहिया ।

१ व्याख्यानं पुनः “आदिदुगुकोसो सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कम । उक्कस्सजहण्णियरो असमत्ति-  
यरे असंखगुणो ॥८५॥८९॥” इति गायानुसारेण कृतम् ।

असण्णिपंचेदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २२ । तस्सेव अप० जहं० वसेसो० २३ । तस्सेवुक्कस्सगो विसे० २४ । असण्णिपंचेदियस्स पज्जत्तगस्स (उक्क०) ठिईवंधो विसेसाहिओ २५ । ततो संजयस्स उक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २६ । “विरए देसज्जदुगे सम्मचक्केय संखगुणे” त्ति, ततो देसविरयस्स जहण्णओ ठिईवंधो संखेज्जगुणो २७ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो २८ । “देमजतिदुगे” त्ति, देसविरयस्स जहण्णुक्कोस्स त्ति भणियं होइ । “सम्मचक्केय” त्ति, असंसंजयसम्मदिट्ठी । पज्जत्तापज्ज तयाणं जहण्णुक्कोसगं त्ति भणियं होति । देसविरयस्स उक्कोस्साओ ठितिवंधाओ असंजयसम्मादिट्ठिस्सपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो २६ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो ३० । तस्सेवुक्कस्सओ ठितिवंधो संखेज्जगुणो ३१ । असंजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो ३२ । ‘सण्णीपज्जत्तियरेसु’ त्ति । असंसंजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाओ ठितिवंधाओ सण्णिपंचेदियपज्जत्तगस्स जहण्णओ ठितिवंधो (संखगुणो) ३३ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० संखेज्ज० ३४ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिवंधो संखेज्जगुणो ३५ । “अद्विमतरओ उ कोडाकोडीए’ त्ति । एवं संजयस्स उक्कोसाओ आढत्तं कोडाकोडीओ अद्विमतरओ भवंति । “उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव” त्ति पुवं सामण्णेण उक्कोसगो भणियो, सो सण्णियस्स पंचेदियस्स पज्जगस्स मिच्छादिट्ठिस्स चैव भवइ ३६ ॥ ॥८१॥८५॥ ठितिवंधाणपहवणा भणिया ॥

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणांति ठिई ।

एगिंदिया जहणं असन्निखदगा य काणां वि ॥८२॥८६॥

सव्वासिं पयडीणं उक्कोसो ठिईवंधो सण्णिस्स) न सेसाणं । उक्कत्तं च-“उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव” । “एगिंदिया जहणं” जहणं=जहणगठीबंधं एगिंदियाइ नवोत्तरपयडिसयस्स । असण्णिपंचेदिया वेउच्चियएकारसगस्स जहण्णाट्ठिइवन्धगा । खवगा वावीसाए पयडीणं जहण्णट्ठीवन्धगा । चकारात् अपुव्वकरणो आहारसत्तगस्स तित्थयरनामस्स य; तिरियमणुया आययचउक्कस्स जहण्णट्ठीवन्धगा । उक्कत्तं च-

“आहारगतित्थयरं निचट्ठि अनियट्ठि पुरिससख्खणा । बन्धइ सुहुमसरागो सायजसुक्खावरणविग्घं ॥१॥ छण्हमसण्णी कुणाइ जहणं टीमात्तगणमण्णयरो । सेसाणं पज्जत्तो वायरएगिंदियविमुद्धो ॥२॥”

सव्वाणुक्कोसठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेणां । ॥८२॥८३॥

इयरा उ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मोत्तुं ॥८३॥८७॥

सव्वाणं वि पयडीणं उक्कोसा ठिई असुभा । जओ सव्वसंकिलिट्ठो मिच्छदिट्ठो आहारसत्तग-तित्थयरनाम-देवाउय-मणुयाउय-तिरियाउयवज्जाणं सव्वपयडीणं उक्कोसंठाई वंधइ । नवरं सुम-पयडीणं तप्पाउगसंकिलिट्ठो । सा असुभा असुभरुक्खफलविवागवत् असुभपयडीणं सुभपय-डीणं वात्तुयकवल्लोवमानीरसा तओ असुभा । तित्थयरनामस्स अविरयसम्मदिट्ठी आहारसत्तगस्स

३१ ] जीवभेदेषु स्थितिग्रन्थाल्पबहुत्वस्योत्कृष्टजगन्व्यतिस्वामिनो जीवग्रन्थानेषु यो वृद्धयत्नवद्वयम्  
च दर्शनम्

अपमत्तसंज्ञो तप्पाओगसंकिलिद्धो उक्कोसं ठीइं वंधइ । मंकिलेसो=कमाओदओ सो अमुभां ।  
देवाउस्स त्रिसुद्धो उक्कोसं ठीइं वंधइ । जओ सुहपरिणामेण देवाउयम्म वंधो । मणुयानिरिया-  
उयाण वि त्रिसोहीए उक्कोसो ठीवंधो जओ तप्पाओगविसुद्धा वंधइ । इयरा जहण्णं त्रिसुद्धो मच्च-  
पयहीणं ठीइं वंधइ । आउयविवरीयं आउगाणं तप्पाओगमंकिलिद्धो जहण्णट्ठीं वंधइ ॥=३॥=७॥

पसंगागयं भण्णइ—

सुहुमनिगोयाइखरो जोगो थोवो तथो असंखगुणो ।

बायरवियतियत्रउमणासणिअपज्जत्तगजहन्नो ॥=४॥=८॥

साहारणस्स सुहुमस्स लद्धीए अपज्जत्तगस्स पढमसमए वड्डमाणस्स अप्पवीगियलद्धिम्म  
जहण्णओ जोगो सन्वथोवो । “बायरविगतिगचउमणअसणिअपज्जत्तगजहण गो” ति  
ततो वादरएगिदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स  
जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स असन्निपंचिदियस्स सन्नि-  
पंचेदियाणं पज्जत्तअपज्जत्तगाणं जहन्नगो जोगो कमसो असंखेज्जगुणो ॥=४॥=८॥

‘पढमदुगुकोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो अ कमा ।

असमत्तसुकोसो पज्जत्तजहन्नजिद्धो य ॥=५॥=९॥

धादिदुगुकोसो ति, आदिदुगं=सुहुमबायरएगिदिया अपज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो । ततो  
परिवाहीए असंखेज्जगुणो । सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । वादरस्स  
अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो अ । “सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कमा” ति,  
तेसिं चेव सुहुमबायरणां पज्जत्तगाणं करणं पडुच्च जहण्णुक्कोसगा जोगा कमेण असंखेज्जगुणा ।  
तओ सुहुमस्स य पज्जत्तगस्स जहण्णजोगो असंखेज्जगुणो । वादरस्स पज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो  
असंखेज्जगुणो । ततो सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसगो असंखेज्जगुणो । वादरपज्जत्तउक्कोसगो  
जोगो असंखेज्जगुणो । “उक्कस्सजहण्णियरो असमत्तियरे मसंखेज्जगुणो” ति, ‘उक्कोसगं’  
ति वेइंदियाईणं अपज्जत्तगाणं उक्कोसो, ‘जहन्नियरो’ ति तेसिं चेव पज्जत्तग जहन्नगो “इयरो”  
उक्कोसो “असमत्तियरेसु” ति अपज्जत्तगपज्जत्तगेषु असंखेज्जगुणो नेयन्वो । वादरएगिदिय-  
सिं पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाउ वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सगो जोगो असंखेज्जगुणो ।  
तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो । चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोस्सगो  
जोगो असंखेज्जगुणो । असण्णिपंचिदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो ।  
सन्निपंचिदियअपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगो असंखगुणो । एते सन्वे लद्धीए पज्जत्तगा गहिया ।

१ व्याख्यानं पुनः “अविदुगुकोसो सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कमा । उक्कस्सजहण्णियरो असमत्तियरे मसंखगुणो ॥=५॥=९॥” इति गायानुसारेण कृतम् ।





जीवस्थानेषु योग-स्थितिस्थानात्पञ्चदशस्य योगवृद्धिविशेषस्य स्थितिस्थानगताध्यवसायप्रमाणस्य । ३३  
 तथा अनुभागबन्धस्य निरूपणम्

कमसो विसेसग्रहिया सत्तसु आउसु असंखगुणा ॥८८॥१२॥

तत्थ पगणाए “ठितिवधे ठिइवधे अञ्जवसाणाणऽसंखिया लाग्” त्ति, नाणावरणिज्जस्स जहणियाए ठिईए ठितिवंधज्जवसाणाणं ठाणाणि असंखलोगागासपएसमेत्ताणि । वितियाए ठिईए जाव असंखेज्जलोगागासपएसमेत्ताणि । ततियाए वि असंखेज्जलोगागासपएसमेत्ताणि । एवं जाव उक्कसिया ठिति त्ति । एवं आउगवज्जाणं सत्तण्ह वि कम्माणं । तैसिं अञ्जवसाणट्टाणाणं द्विहा वड्ढिपरूवणा । तं (जहा-)अणंतरोवणिहिया परंपरोवणिहिया य । तत्थ अणंतरोवणिहियाए “हम्म। विसेसवड्ढि” त्ति नाणावरणिज्जस्स जहणियाए ठिईए ठितिवंधज्जवसाणट्टाणाणि थोवाणि । वितियाए ठिईए ठितिवंधज्जवसाणट्टाणाणं विसेसाहियाणि । ततियाए वि विसेसा० । एवं विसेसा० २ जाव उक्कस्सिगा ठिति त्ति । एवं आउगवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं । “आउणमसंखगुणरट्ठि” त्ति, आउगस्स जहणियाए ठिईए ठितिवंधज्जवसाणट्टाणाणि थोवाणि । वितियाए असंखगुणाणि । ततियाए असं० । एवं असंखेज्जगुणाणि २ जाव उक्कस्सिया ठिति त्ति । “परंपरोवणिहियाए । पक्कासंखियमगं गंतुं दुगुणाणि जाव चक्कस्स ॥” त्ति । परंपरोवणिहियाए नाणावरणिज्जस्स जहणियाए ठिईए ठितिवंधज्जवसाणट्टाणेहितो पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं गंतूणं दुगुणवड्ढियाणि अञ्जवसायट्टाणाणि । तओ पुणो पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं गंतूणं दुगुणवड्ढि० । एवं दुगुणवड्ढिया २ जाव उक्कसिया ठिति त्ति ॥८८॥१२॥ “ठीबंधो पसंगाणओ वि समत्तो ॥ इयाणि अणुभागबंधो मण्णइ-

असुभाण संकिलेसेण होइ तिव्वो सुहाण सोहीए ।

अणुभागो मंदो पुण विवज्जए सव्वपयडीणं ॥८९॥१३॥

असुमपयडी बायासीई । सव्वसंकिलिहो सव्वुक्कोसं अणुभागबंधं बंधइ असुमपयडीणं । सुमपयडी बायालीसा । सव्वविसुद्धो सव्वुक्कोसं अणुभागं बंधंति । अणुभागो मंदो पुण विवज्जए सव्वपयडीणं । असुहाण विसोहीए मंदो, सुहाण संकिलेसेण जहन्नं अणुभागं बज्जइ ॥८९॥१३॥

सतरस पयडी संजलण ४ विग्घ ५ पुं देसघाइ आवरणा ७ ।

चउठाणरसपरिणया दुत्तिचउठाणा उ सेसा उ ॥९०॥१४॥

संजलणचउक्कं अंतरायपंचगं पुरिसवेयं देसवाइआवरणा=नाणचउक्कं दंसगतिगं; एवं सत्तरस, चउट्टाणरसपरिणया । कहं १, चउट्टाणणियं वा, तिट्टाणियं वा, दुट्टाणियं वा, एगट्टाणियं वा रसं बंधति । सेमाणं पयडीणं दुट्टाणं वा, तिट्टाणं वा, चउट्टाणं वा ॥९०॥१४॥

पव्वयभूमी वालुयजलरेहासरिससंपराएहि ।

चउठाणाई असुहाण वचयाओ सुहाणां तु ॥९१॥१५॥

असुहपयडीणं, पव्वयसरिससंपराएहि चउट्टाणिओ, भूमीसरिसत्तिट्टाणिओ.

वालयसरिसदुद्वाणिओ, जलरेहासरिससंपराएहिं एगद्वाणिओ । उक्तं च—“एयाओ सत्तरसकम्मपयहीओ च उविहभाषपरिणय” त्ति, एगद्वाण-दुद्वाण-तिद्वाण-चउद्वाणभावसंजुत्ता । कइं? अनियट्टिअद्वाए संखेज्जेसु भागेसु गएसु एसिं कम्माणं एगद्वाणिगो रसबंधो हवइ । भेसा तिणिण वि संसारत्थाणं । पच्चयरायसमाणकोहस्स चउठाणिगो रसो । भूमीराइसमाणस्स तिद्वाणिगो रसो । वालुयउदगराइसरिसस्स दुद्वाणिगो ॥ त्रिवरीयं सुहपयहीणं जलरेहा-वालय-रेहामरिसचउठाणिओ रसबंधो भूमीरेहासरिसतारतम्मेन तिठाणिओ रसबंधो पच्चयरेहासरिस-दुद्वाणिओ रसबंधो । असुहपयडिपणसहीणं एवं चेव; नवरं विवरीयं भाणियच्चं ॥९१॥६५॥

घोसाडइनिंबुवमो असुभाण सुभाण खीरखंडुवमो ।

एगद्वाणो उ रसो अणंतगुणिया कमेणियरे ॥६२॥६६॥

असुभपयहीणं घोसाहीरसं निंबरसं अहहणे निदरिसणं । सुभपयहीणं इच्छुरसं माहिसं खीरं अहहणे निदरिसणं । विवागेण सच्चथोवो विवागो एगद्वाणिए १ । दुद्वाणिए अणंतगुणो २ । तिद्वाणिए अणंतगुणो ३ । चउद्वाणिए अणंतगुणो ४ । उक्तं च—घोसाडइनिंबाण जाइरसतुल्लो एग-ठाणिरसो । तस्स वि य योगभेया । जहा पाणीयदुमागतिभागचउभागसंभित्साइ जाव भंतिमो रसलघो बहुपाणीर्यामस्सो ष ॥९३॥९६॥

निंबुच्छुरसाईरां दुतिचउभागा पुढो कढिज्जंता ।

किल इक्कभागसेसा दुतिचउठाणा रसा कमसो ॥६३॥६७॥

निंबरसो उच्छुरसो समावत्थो एगद्वाणिओ । दो भागा कढिज्जंति, एगभागसेसो दुद्वाणिओ । तयो भागा कढिज्जंति, एकभागसेसो तिद्वाणिओ रसो । चत्तारि भागा कढिज्जंति एकभागसेसो चउद्वाणिओ ॥६३॥६७॥ अणुभागबंधो समत्तो ॥

इयाणि पएसबंधो मण्ह—

इगदुगणुगाइ जा अभवरांतगुणसिद्धरांतभागारू ।

खंधा उरलोचियवग्गणाउ तह अगहरांतरिया ॥६४॥६८॥

एगपरमारू, दो परमारू, तिणिण परमारू, जाव दसपरमारू खंधो; संखेज्जपरमारू असंखेज्जपरमारू खंधो; अणंतपरमारू खंधो । ते सच्चे अग्गहणजोगा । अणंतानंतपरमारू खंधो अग्गहणजोगा जाव अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो खंधो । सा उरालियगहणजोगा वग्गणा जहण्णा परमारूषुट्टीए अणंतओ वग्गणाओ जाव उक्कोसो । तस्सुवरिं ओरालियअग्गहणवग्गणा एगोत्तरियाओ जाव अणंतओ ॥६४॥६८॥

कमसो विउव्विआहारतेअभासाणपाणामणकम्मे ।

इय वग्गणाऽवगाहो ऊण्णांगुलत्रसंखंसो ॥६५॥६६॥

तस्सुवरिं वेउच्चियगहणवग्गणा । तस्सुवरिं वेउच्चियअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं  
आहारगहणवग्गणा । तस्सुवरिं आहारगअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं तेयगसरीरगहणवग्गणा ।  
तस्सुवरिं तेयगमरीरअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं भासागहणवग्गणा । तस्सुवरिं भासाअग्गहणव-  
ग्गणा । तस्सुवरिं आणपागुग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं आणुपाणुअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं मण-  
जोगगहणवग्गणा । तस्सुवरिं मणअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं कम्मणमरीरजोगा गहणवग्गणा ।  
इय वग्गणा । 'इयवग्गणावगाहो'त्ति, ओरालियवग्गणाणं अंगुलअग्गहणवग्गणां  
अवगाहो । सेसाणं ऊणयगे, जाव कम्मइगसरीरवग्गणाओ ॥६५॥६६॥

एगोत्तरा अभव्वाणंतगुणा अंतरेसु अग्गहणा ।

सव्वहि जुग्गजहन्ना नियरांतसाहिया जिट्ठा ॥६६॥१००॥

“एगोत्तर”त्ति, ते ओरालियसरीरजहणवग्गणं आदिं काऊण एगोत्तरबुद्धीए ताव गया जाव  
कम्मणसरीरउक्कोसा वग्गणा । ‘अ भव्वाणंतगुण’त्ति, अंतरंतरे य अग्गहणपाउग्गाओ वग्गणाओ  
जहण्णाओ वग्गणा उक्कोसा अणंतगुणा । को गुणक्रोरो ? अभवसिद्धिगहिं अणंतगुणो, सिद्धाण-  
मणंतिमो भागो । एवं सव्वत्थ । “सव्वहिं जोगजहण”त्ति, सव्वेसिं जोगवग्गणाणं जहण्णाओ  
उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो । एवं सव्वत्थ । उक्तं च—“जाव  
तस्सुवरिं एगे रूवे छुट्ठे । कम्मगसरीरदव्ववग्गणा जहन्नाइएसोत्तरा जाव उक्कोसा । जहण्णा उक्कोसा  
विसेसाहिया । को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो ।” कम्मइगसरीरदव्ववग्गणा नाम अट्टविहस्स  
कम्मस्स गहणं पवत्तइ । तं जहा—नाणावरणीयस्स दंसणादरणीयस्स, वेयणीयस्स, मोहणीयस्स,  
आउयस्स, नामस्स, गोयस्स, अंतरायस्स जाणि य दव्वाणि वेतूण नाणावरणीयत्ताए जाव  
अंतराइताए परिणामिति जीवा ताणि दव्वाणि कम्मगसरीरदव्ववग्गणा ॥६६-१००॥

‘जोगाणुरूवं गिरिहय सुच्चिय दलियं जित्रो परिणामेइ ।

भासाणापाणुमणोचियं च अवलंबए दव्वं ॥६७॥१०१॥

जोगेहिं पुव्वुत्तेहिं । मवणरूवं ति, तेसिं अणुरूवं तदणुरूवं ति भण्णमाणा ओरालियादओ  
संबज्जंति । अइथा जोगेहिं तदणुरूवं ति उक्कोसाणुक्कोसजहणजोगे पुग्गले वा । किं भणियं  
होइ ? भण्णइ,—जहणजोगजोगिस्स थोवा पुग्गला गहणमिति । उक्कोसजोगिस्स बहुगा पुग्गला  
गहणमैतित्ति भणियं होइ । ‘परिणामिय गिण्हऊण पंचत्तणु’त्ति “परिणामिइ”त्ति तवभाव-  
त्ताए परिणामेइ । जोगेहिं तेसिं अणुरूवे पोग्गले वेतूण ओरालाईहिं सरीरेहिं परिणामेइ; जहा

१ विवरणं पुनः ‘जोगेहिं तदणुरूवं परिणामिय गिण्हऊण पंचत्तणु । पामोगे चालवइ भासा-  
णुपाणुमणत्तयो खंधे ॥६७॥१०१॥’ इति मायापाठमनुसृत्य कृतम् ।

अगणिवर्णं पखित्तं अगणित्ताए परिणामेइ, तहा जीवो वि जोगेहिं तप्पाश्रांगे पोग्गले घेतूणं ओरालियाइसरीरत्ताए परिणामेइ । “पाओगे चालंघह” ति, भासाइपाउग्गे पोग्गले अवलंघइ । जहा पायाइविगलो उट्टाणचंकमणाईणि काउकामो लट्ठिं अवलंघइ मुयइ य कारणं पडुच्च; एवं जीवो वि “भासाणुपाणुमणत्तणं खंघे” ति, भासाआणुपाणुमणुजोगे य खंघे अवलंघित्ता भामाआणुपाणुमणत्ते य पारिणामिय ह्युंइ ति भणियं होइ ॥१७॥१०१॥

अप्पयरपयडिंघी उक्कडजोगी अ सन्निपजत्तो ।

हुणइ पएसुक्कोसं, जहणयं तस्स वच्चासे ॥१८॥१०२॥

मूलपयडी वा उत्तरपयडी वा जो थोवाउ वंधइ, उक्कडजोगी=उक्कोसजोगी सण्णी पज्जत्तगो सव्वविसुद्धो उक्कोसगं पएसं वंधइ । जहणयं तस्स विवरीयं । उक्तं च —

“सुहमनिगोया पज्जत्तगस्स पदमे जहणगे जोगे। सत्तहं पि जहणो आउगवंघे वि भाउस्स ॥१८॥१०२॥

अट्टविहवंधगस्स अट्टहिं भागेहिं दलियं कीरइ । तस्स अप्पावहुयं—

गहियदलियस्स भागो बहुठिइकम्भेसु होइ कमवुट्ठो ।

वेयणिए मव्वोवरि तस्स फुडुत्तं न जेणप्पे ॥१९॥१०३॥

आउयस्स थोवभागलद्धं । जओ तेत्तीसं सागरोवमाइं उक्कोसडी । नामस्स गोयस्स दोण्हावि तुल्लो विसेसाहिओ । जओ वीसं मागरोवमकोडाकोडी उक्कोसा ठिई । नाणावरणीयस्स दंसणावरणीयस्स अंतरागस्स तिण्ह वि तुल्लो विसेसाहिओ । जओ तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ उक्कोस-टीई । मोहणीयस्स विसेसाहिओ । जओ सत्तरिकोडाकोडी उक्कोसा ठीई । वेयणीयस्स विसेसाहिओ । जओ तस्स फुडुत्तं न जेण अप्पा । सुहं वा दुहं वा अप्पदलिण न अणुर्हावज्जइ ॥१९॥१०३॥

उत्तरपयडीणं भणइ—

पयडीण सव्वघाईण होइ नियजाइदलअणत्तंसो ।

बज्जंतीण विभज्जइ सेसं सेसाणमणुसमयं ॥१००॥१०४॥

दंसणावरणीयस्स नव उत्तरपयडीओ; सव्वघाई छ पयडीओ, भागलद्धं दलियं सव्वत्थोवं; देसघाई तिण्णि पयडीओ, भागलद्धं दलियं अणंतगुणं । नाणावरणीयस्स उत्तरपयडीओ पंच; एगा पयडी सव्वघाई, भागलद्धं दलियं सव्वत्थोवं देसघाइपयपी चत्तारि, भागलद्धं दलियं अणंतगुणं । अंतरायस्स उत्तरपयडीओ पंच; पंच वि देसघाई, पंचण्हं पि भागो । मोहणीयस्स उत्तरपयडीओ छवीसं; सव्वघाई तेरइ, भागलद्धं दलियं सव्वत्थोवं; देसघाई वि तेरइ, भागलद्धं दलियं अणंतगुणं । “बज्जंतीणं” ति, आउयस्स उत्तरपयडीओ चत्तारि; बज्जंतियस्स य भागो । नामस्स अट्टवंधट्टाणा । तेवीसा, पणवीसा, छवीसा, अ, वीसा, उगुणतीसा, तीसा, एगतीसा एगा जसक्किची १। बज्जंतस्स भागो ॥१००॥१०४॥

धीरइ जिएण हेऊहि पगईठइरसपएसओ जं त । मूलुत्तरदृ थडवणमयपभेयं भवे कम्म ॥”  
एयं जहाजोगं पाए वक्खायं ।

इयाणि जहावगमेण पसंगागयं आइमदेसे व लखियं सम्मत्तदेमविरयाइ भण्णइ—

सम्मत्त १ देस २ संपुन्नविरइउप्पत्ति ३ त्रयाविसजोए ४ ।

दंसणखवए ५ मोहरस समग ६ उवसंत ७ खवगे य ८ ॥ १०१ ॥ १०५ ॥

सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढी १, सावगगुणसेढी २, संजयगुणसेढी ३, अणंताणुबंधिविजोअण  
गुणसेढी ४, दंसणमोहखवगगुणसेढी ५, चरित्तउवसामगगुणसेढी ६, उवसंतकसायगुणसेढी ७,  
खवगगुणसेढी ८ ॥ १०१ ॥ १०५ ॥

खीणाइत्ति सु य ११ संखगुणाणां तोमुहुत्तकालाउ ।

गुणसेढी इक्कारस कमादसंखगुणादलियाउ ॥ १०२ ॥ १०६ ॥

खीणमोहगुणसेढी ९, सजोगिकेवल्लिगुणसेढी १०, अजोगिकेवल्लिगुणसेढी ११। “असंख-  
गुणसेडिउदय”त्ति, सन्वत्थोवं सम्मत्तुप्पायगुणसेढीए दलियं । सावगगुणसेढीए असंखेज्जगुणं,  
जाव सजोगिकेवल्लिगुणसेढीए असंखेज्जगुणं, अजोगिकेवल्लिगुणसेढीए दलियं असंखेज्जगुणं ।  
तम्हा उदयं पि पडुच्च असंखेज्जगुणं । एवं “तन्विवरीओ कालो भसंखेज्जगुणसेडि” त्ति,  
कालं पडुच्च विवरीयाउ । सन्वत्थोवो अजोगिकेवल्लिगुणसेडिकालो । सनोगिकेवल्लिगुणसेडिकालो  
संखेज्जगुणो । एवं संखेज्जगुणो । संखेज्जगुणो जाव सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेडिकालो । ठवणा-★  
एसा पढमा । सेसाओ एत्तो उच्चत्तेणं संखेज्जगुणहीणाओ संखेज्जगुणहीणाओ; उवरि पोढत्तेण  
विसालाओ विसालाओ कायव्वाओ; जाव अजोगिकेवल्लिस्स । ठवणा-(१) । कहं ? असंखेज्जगुणं २  
दलियं । भण्णइ,—सम्मत्तउप्पाइनो मिच्छद्दिट्ठी सो कम्मदच्चं थोवं थोवं खवेइ सम्मत्तनिमित्तं ।  
सम्मत्तं पडिवन्नस्स तओ असंखेज्जतमाए सेढीए भवइ । तओ देसविरयगुणसेढी अरंखेज्जगुणा,  
देसोवरयत्ताओ । तओ संजयगुणसेढी असंखेज्जगुणा, सन्वोवरमत्ताओ । अणंताणुबंधिगुणसेढी  
असंखेज्जगुणा । हेट्ठिल्लानं तिण्हं । तत्थ संजमं पडुच्च तिगरणसहिओ अणंताणुबंधिणो खवेइ त्ति  
काउं । तओ दंसणमोहखवगगुणसेढी असंखेज्जगुणा । जेण अणंताणुबंधिणो खचित्तु विसुद्धयरो  
दंसणतिगं खवेइ । एए सन्वे असेडिगयस्स लब्भंति । कसायउवसामगस्स गुणसेढीपडिवण्णा  
समए समए अणंतगुणविसोहीए चटंति । उवसंतगुणसेढी असंखेज्जगुणा । सन्वठीइउच्चट्टणाए  
लद्धमिति काउं । गुणसेढीणं परूवणा भणिया कम्मपयडिसंगहणिच्चुण्णीओ ॥ १०२-१०६ ॥

गुणसेढी दलरयणाणासमयमुदयादसंखगुणायाए ।

एयगुणा पुणा कम्मसो असंखगुणानिज्जरा जीवा ॥ १०३ ॥ १०७ ॥

एवं गुणसेढीदलरयणविहिमाइ—उक्तं च—

रुत्तराहयरेण उ इय फुसरो सुहुमद्व्यपरियट्टो ।

अरगो चउतणुसु कमेणिमेण तं विंति डुविहं पि ॥१०७॥१११॥

चउण्हं सरीराणं, तिण्हं मणवइपाणए, एगयरेणं सच्चल्लोयपुग्गला परिणामित्ता एगजीवेणं मुक्का ठवेज्जा तथा सुहुमो दच्चपरियट्टो । 'अण्णं चउतणुसु' अण्णे आघरिया जया चउहि सरीरेहि सच्चपुग्गला परिणामिय २ मुक्का हवेज्जा, तथा वायरो दच्चपरियट्टो । जया चउण्ह एगयरेणं, तथा सुहुमपोग्गलपरियट्टो ॥१०७॥१११॥

लोगपएसो १ सप्पिणिसमया २ अणुभागबंधटाणा य ३ ।

पुट्टा मरगोरा जया कमुक्कमा वायरुत्ति तथा ॥१०८॥११२॥

लोगो चउइसरज्जू, तस्स आगासपएसो । ओसप्पिणिगहणतो अवसप्पिणि वि गहिया । जहा दिवसे गहिए राई वि गहिया । तेसिं जत्तिया समयो । अणुभागबंधज्जवसाणट्टाणा । लोगपएसो अणंतरपरंपरअणुरुत्तं जया मरणेण फासिया ठवेज्जा, तथा वायरो खेत्तपुग्गलपरियट्टो । एवं ओसप्पिणिसमया फासिया हवेज्जा, तथा वायरो कालपुग्गलपरियट्टो । एवं अणुभागट्टाणा वि । नवरं सन्वेसु अणुभागबंधटाणेषु अणंतरपरंपरअणुरुत्तं उदए चट्टमाणो मरिज्जा, तथा वायरो भावपुग्गलपरियट्टो ॥१०८॥११२॥

पुट्टागंतरमरणेण पुरा जया ते तथा भवे सुहुमे ।

पोग्गलपरियट्टो खितकालभावेहिं इय नेत्थो ॥१०९॥११३॥

'अणंतरमरणेणं' ति एसो आगासपएसो विवक्खिज्जइ । तत्थ पएसे स उ पुणो तस्सेव अणंतरं जइ मरइ, तओ तस्स लेखए गणिज्जइ । अणत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं अणंतरमरणेण सच्चल्लोगआगासपएसो फासिया हवेज्जा; तओ सुहुमो खेत्तपोग्गलपरियट्टो । "ओसप्पिणिसमय" ति ओसप्पिणीए पढमसमओ विवक्खिज्जइ । तओ समउणाओ वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ अइक्कंताओ वीयसमए मरणवारओ जइ तत्थ तओ लेखए गणिज्जइ । अत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं अणंतरमरणेण वीसाणं सागरोवमकोडाकोडीणं जत्तिया समयो । जया सन्वे अणंतरमरणेण फासिया हवेज्जा; तओ सुहुमो कालपुग्गलपरियट्टो । उवणा (१) ॥१०९॥११३॥

समयभवसुहुमअगणी असंखलोगा तओ असंखगुणा ।

तेऊ तक्कायठिई कमसो अणुभागटाणा य ॥१११॥१२३॥

एगसमए मवा=जाया=उप्पणा एगट्टं । असंखेज्जाणं लोगाणं अत्तिया आगासपएसो, तत्तिया सुहुमअगणिकाइया एगसमएण उप्पज्जंति मरंति य; ते विवक्खया थोवा १ । तेहिंतो तेओकाइया जीवंतगा असंखेज्जगुणा २ । तओ तेउकायकायठिई असंखेज्जगुणा ३ । तओ अणुभागबंधज्जवसायट्टाणा असंखेज्जगुणा ४ । तेसिं जहण्णगमज्झिमउक्कोसमेयाणं अणेगा

मेया । कर्हं १, भण्णइ—वाहुल्लओ । चउसमयट्ठाई, तओ अहिया जाव अट्टममयट्ठाई । तओ  
हीणा जाव उक्कोसगा दुसमयट्ठाई । उवत्तं ८—

धर्राई जावट्टामेत्तो जावं दुगं तु समयाणं । पज्जत्तजहण्णाइ जावुक्कोसं ति उक्कोसं ॥ १ ॥

चउसमयट्ठाई अमंखेज्जा पत्तेयं पत्तेयं जाव दुसमयट्ठाई वि असंखेज्जा । अओ भण्णइ अणेगा  
मेया । एएभिं जो जहण्णगो अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो सो विवस्सिज्जइ । तस्सोदए मओ;  
वीओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो अणुभागपल्लिच्छेएहिं विसेसियरो; जइ तत्थ मओ; लेखए गणि-  
ज्जइ; अणत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं वीयाउ तइओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो अणुभाग-  
पल्लिच्छेएहिं विसेसियरो । एवं तइयाओ चउत्थो, चउत्थाओ पंचमो, जाव उक्कोसगो अणुभागबंध-  
ज्झवसायट्ठाणो । एवं अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा अणंतरमरणेण जया फामिया हवंति, तया सुट्टमो  
भावपुग्गलपरियट्टो । एककेवको अणंताहिं उवसप्पिणिअवसप्पिणीहिं निट्ठाइ ॥ ११६ ॥ १२३ ॥

मणिया पुग्गलपरियट्टपरूवणा लेसओ किंचि । इयाणि पसंगागयं जोगट्ठाणा भण्णइ—

जोगट्ठाणा सेटीअसंखभागो तत्रो असंखगुणा ।

पयडीमेया तत्तो ठिइमेयाणुक्कमेण तत्रो ॥ ११० ॥ ११४ ॥

सव्वत्थोवा जोगट्ठाणा १ । तओ पयडीमेया असंखगुणा २ । तओ ठीमेया असंखगुणा ३ ॥ ११० ॥ ११४ ॥

ठिइबंधज्झवसाया तत्तो अणुभागबंधठाणाणि ।

तोऽजांतगुणा कम्मपएसा तत्तो य रसत्थेया ॥ १११ ॥ ११५ ॥

तओ ठीबंधज्झवसायट्ठाणा अमंखगुणा ४ । तओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा अमंखगुणा  
५ । तओ कम्मपएसा अणंतगुणा ६ । तओ अणुभागपल्लिच्छेया अणंतगुणा ॥ १११ ॥ ११५ ॥ ढार-  
गाहाओ । जोगट्ठाणा कर्हं १—

खेत्तं सुट्टमं कालाउ जेण अंगुलपएससेटीए ।

समयपएसवहारे असंखत्रोसप्पिणी हुंति ॥ ११२ ॥ ११६ ॥

सुगमा ॥ ११२ ॥ ११६ ॥

चउदसरज्जू लोगो बुद्धिकत्रो होइ सत्तरज्जुघणो ।

तहीहेगपएसा सेटी पयरो य तव्वग्गो ॥ ११३ ॥ ११७ ॥

सुगमा । सेटीए असंखेयभागो जोगट्ठाणाणि सव्वाणि ति ।

जोगो धिरिय थामो उक्काइपरक्कमो तहा चेट्ठा । सत्ती सामत्थं ति य जोगस्म हवंति पक्खाया ॥ ' ॥

तेसिं ठाणाणि जोगठाणाणि । सव्वजहण्णाओ जोगठाणाओ आढवित्तु अणंतररणंतं  
विसेसाहियं जोगठाणं । एयाए जोगबुद्धीए ताव गयं जाव उक्कोसगं जोगठाणं ति । “सेडिअ  
संखेज्जइमो” ति, ताणि सव्वाणि जोगठाणाणि केसियाणि १, लोमसेटीए असंखेज्जइमे भागे



जत्तिया आगासपएसा तत्तियाणि जोगठाणाणि सञ्चाणि वि ॥११३॥११७॥ दारं ।

पयडीउ अयंखिज्जा जं थोहिदुगे वि तारतम्भेरां ।

असंखलोगखपएसपमाणा हुंति किल भेत्रा ॥११४॥११८॥

“जोगो हि जीवविरियं, तं मेया हंति फुडमसंखेज्जा । ततो वि पगडिभेया असंखगुणिया त्रिणिदिट्टा । जम्हा ओहिदिसभो उक्कोमो सञ्चबहुयसिदिसूइं । जेत्तिभेत्तं फुपड तेत्तथमेत्तपणमममा ॥ तत्तारतम्भेया जेण बहू हंति भावरणजणिया । तेणासंखगुणत्तं पयडीणं जोगाओ जाण ।”

उक्तं च-“सञ्चबहुभगणिजीवा निरंतरं जत्तियं भवेज्जासु । खेत्तं सञ्चदिस गं परमोहीत्तनिदिट्टा ।”

॥११४॥११८॥ दारं ।

आ जिट्ठिई हस्सट्ठिईउ समउत्तरा टिईटाणा ।

सञ्चपयडीसु एवं सञ्चजियारां, पि टिइभेया ॥११५॥११९॥

कहं ? एक्केक्काए पगईए जहण्णट्ठीउ आढवेत्तु, ताए जाव उक्कोसिया ठीई । एएमि मज्जे जत्तियाणि तारतम्भजोगेण समउत्तरवहियाणि ठीठाणाणि, ताणि पगइसमूहेहितो असंखेज्जगुणाणि । एक्केक्कम्मि असंखेया मेया लब्भंति त्ति काउं ॥११५॥११९॥ दारं ।

टिइठागो टिइठागो कसायउदया असंखलोगसमा ।

अणुभागबंधठाणा इअ इक्केक्के कसाउदए ॥११६॥१२०॥

नाणावरणीयस्स जहभियाए ठीईए ठीइनिव्वत्तगा कसायउदयमेया असंखेज्जाण लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया । वीयाए ठीईए ठीनिव्वत्तगा कसायउदयमेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासापएसा तत्तिया । पुव्वेहितो विसेसहिया । तहयाए ठीईए ठीनिव्वत्तगा कसाउदयमेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तियागासपएसा तत्तिया । पुव्वेहितो विसेसहिया । एवं ठीईए ठीईए निव्वत्तगा नाणावरणीयस्स जाव उक्कोसियाए ठीए ठीनिव्वत्तगा कसाउदयमेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया; कमसो विसेसाहिया । एवं सञ्चकम्माणं सञ्चपयडीणं जहण्णटीइं आइं काउण समउत्तराए समउत्तराए जाव उक्कोसियाए ठीईए ठीनिव्वत्तगा कसायउदयमेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया कमसो विसेसाहिया । नवरं आउयस्स ठीए ठीए असंखेज्जगुणा । एवं ठीएहितो ठीबंधज्जवसाया असंखेज्जगुणा ॥दारं॥

“अणुभागबंधठाणा इअ एक्केक्के कसाउदए”त्ति, नाणावरणीयस्स जहण्णट्ठीनिव्वत्तगो जो सञ्चजहण्णो कसाउदओ; तत्थ अणुभागबंधठाणा असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया । वीइए कसायउदए अणुभागबंधठाणा असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया । तइए कसाओदए असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तियं आगासपएसमाणं तत्तिया । एवं जहण्णट्ठीनिव्वत्तगाणां व.भमेण कसाउदयमेयाणं जाव उक्कोसओ कसायउदयमेओ । तत्थ

मेया । कहं १, भण्णइ-वाहुल्लओ । चउसमयट्ठाई, तओ अहिया जाव अड्डममयट्ठाई । तओ  
हीणा जाव उक्कोसगा दुसमयट्ठाई । उवत्तं = -

चउराई जावट्ठगमेत्तो जाव दुगं तु समयानं । पज्जत्तज्जहण्णाइ जावुक्कोसं ति उक्कोसं ॥ १ ॥

चउसमयट्ठाई अमंखेज्जा पत्तेयं पत्तेयं जाव दुसमयट्ठाई वि असंखेज्जा । अओ भण्णइ अणेगा  
मेया । एएमिं जो जहण्णगो अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो सो विवक्खिज्जइ । तस्सोदए मओः  
बीओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो अणुभागपल्लेएहिं विसेमियरो; जइ तत्थ मओ; लेखए गणि-  
ज्जइ; अण्णत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं वीयाउ तइओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो अणुभाग-  
पल्लेएहिं विसेसियरो । एवं तइयाओ चउत्थो, चउत्थाओ पंचमो, जाव उक्कोसगो अणुभागबंध-  
ज्झवसायट्ठाणो । एवं अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा अणंतग्मरणेण जया फामिया हवंति, तथा सुहुमो  
भावपुग्गलपरियट्ठो । एककेवको अर्णाताहिं उवसप्पिणिवसप्पिणीहिं निट्ठाइ ॥ ११६ ॥ १२३ ॥

भणिया पुग्गलपरियट्ठपरूवणा लेसओ किंचि । इयाणि पसंगागयं जोगट्ठाणा भण्णइ-

जोगट्ठाणा सेदीअसंखभागो तत्रो असंखगुणा ।

पयडीमेया तत्तो ठिइभेयाणुक्कमेण तत्रो ॥ ११० ॥ ११४ ॥

सव्वत्थोवा जोगट्ठाणा १ । तओ पयडीमेया असंखगुणा २ । तओ ठीमेया असंखगुणा ३ ॥ ११० ॥ ११४ ॥

ठिइबंधज्झवसाया तत्तो अणुभागबंधठाणाणि ।

तोअंतांगुणा कम्मपएसा तत्तो य रसत्थेया ॥ १११ ॥ ११५ ॥

तओ ठीइबंधज्झवसायट्ठाणा अमंखगुणा ४ । तओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा अमंखगुणा  
५ । तओ कम्मपएसा अणंतगुणा ६ । तओ अणुभागपल्लेएया अणंतगुणा ॥ १११ ॥ ११५ ॥ दर-  
गाहाओ । जोगट्ठाणा कहं १—

खेत्तं सुहुमं कालाउ जेण अंगुलपएससेदीए ।

समयपएसवहारे असंखत्रोसप्पिणी हुंति ॥ ११२ ॥ ११६ ॥

सुग्गमा ॥ ११२ ॥ ११६ ॥

चउदसरज्जू लोगो बुद्धिकत्रो होइ सत्तरज्जुघणो ।

तदीहेगपएसा सेदी पयरो य तव्वग्गो ॥ ११३ ॥ ११७ ॥

सुग्गमा । सेदीए असंखेयभागो जोगट्ठाणाणि सव्वाणि ति ।

जोगो विरिय धामो उक्काहपरक्कमो तहा चेट्ठा । सत्ती सामत्थं ति य जोगस्स हवंति पज्जाया ॥ १ ॥

तेमिं ठाणाणि जोगठाणाणि । सव्वजहण्णाओ जोगठाणाओ आटवित्तु अणंतराणतरं  
विसेसाहियं जोगठाणं । एयाए जोगवुट्ठीए ताव गयं जाव उक्कोसगं जोगठाणं ति । “सेदिअ-  
संखेज्जइमो” ति, ताणि सव्वाणि जोगठाणाणि केत्तियाणि १, लोगसेदीए असंखेज्जइमे भागे

असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगामप्पएसा तत्तिया । एवं नाणावरणीयस्स जहण्णट्ठीहं आदिं काऊणं सव्वठीइठाणेसु जाव उक्कोमिया ठी । ठीईए जहण्णकसायउदयं आहं काऊण जाव उक्कोसियाए ठीईए उक्कोमओ क्रमाउदओ । तत्थ अणुभागबंधज्झवसाणदूठाणा असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगामप्पएसा तत्तिया । एवं मव्वकम्मपयडीणं । अओ भण्णइ—ठीबंधज्झवसाण-दूठाणेहिंतो अणुभागबंधज्झवमाणदूठाणा असंखगुणा ॥११६॥१२०॥दारां॥

थोवाणुभागठाणा जहराणुठिइपढमबंधहेउग्मि ।

वीयाइ विसेसहिया जा चरमाए चरमहेऊ ॥११७॥१२१॥

नाणावरणीयस्स जहण्णट्ठीईए निव्वत्तगो जो सव्वजहन्तो कसाउदयभेओ सो जहण्णट्ठी-ईए पढमो बंधहेऊ वुच्चइ । तत्थ थोवाणुभागबंधज्झवसायदूठाणा 'थोवाइ विसेसहिय' त्ति, वीयहेउए विसेसहिया (तइअए) चउत्थए हेउए विसेसाहिया विसेसाहिया जाव नाणावरणीयस्स जहण्णट्ठीईए चरमो हेऊ । तत्थ विसेसाहिया । चरिमाओ वीयट्ठीईए पढमो हेऊ । तत्थ विसेसाहिया । एवं जाव निरंतरं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव वीयट्ठीईए चरमो हेऊ । एवं निरंतरं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव नाणावरणस्स उक्कोसट्ठीईए जो चरिमो ठीभेओ । तत्थ जो चरिमो बंधहेऊ । तत्थ विसेसाहिया ॥११७॥१२१॥

इय असुभाण सुभाण उ विवरीयं जिट्ठिइचरमहेऊ ।

आरव्व निज्ज आउसु ठिइं ठिइं पइ असंखगुणा ॥११८॥१२२॥

एवं असुभपयडीणं । 'सुहपयडीणं विवरीयं' त्ति, सायावेयणीयस्स पण्णरस सागरोवम-कोडाकोडी उक्कोसा ठीई । तस्स जो चरिमो ठीभेओ । तस्स य जो चरिमो बंधहेऊ । तत्थ य सव्वत्थोवा अणुभागबंधज्झवसाणदूठाणा । दुचरिमाए विसेसाहिया, तिचरिमाए विसेसाहिया, एवं विसेसाहिया जाव चरिमाए पढमो बंधहेऊ । एवं दुचरिमाए ठीईए जाव चरिमो बंधहेऊ । तत्थ विसेसाहिया । एवं विसेसाहिया २ जाव तस्सेव पढमहेऊ । एवं कमेण ओसरमाणा ओसरमाणा जाव सायावेयणीयस्स जहण्णाए ठीईए पढमबंधहेऊ । तत्थ सव्वुक्कोसा अणुभागदूठाणा । एवं सव्वसुहपयडीसु । आउयस्स ठीईए ठीईए असंखेज्जगुणा । अओ भअइ ठिइबंधज्झवसायदूठाणेहिंतो अणुभागबंधज्झवसायदूठाणा असंखगुणा ॥११८॥१२२॥

अंतिमचउफासदुगंधपंचवन्नरसकम्मइगखंधे ।

अभविअत्राणंतगुणिए गिराहइ तत्तियत्राणु समए ॥१२१॥१२४॥

निद्धइण्हं निसीयलं, छुक्खुण्हं, छुक्खसीयलमिति अंतिमचउफासाई दुभि गंधाई, पंच वण्णाई, पंच रसाई । 'दविय' त्ति, एक्कं बद्धं अणंतपएसियं अणंतपरमाणुं संघायं । तं

क्रियत्परिमाणमिति चेत्, -अभवियसिद्धिर्गृहि अणंतगुणा, मिद्वाणमणंतिमो भागो, एतियाणं परमाणुं समुदाओ एए खंधे सन्वे वि तल्लखणा भणिया । कित्तिया ने ? । अभवियाणं अणंतगुणा, सिद्धानमणंतभागमेत्तखंधा एगम्ममणं गहणं कम्मत्ता इति । एवं अणुभाग-बंधज्झवसाणट्ठाणाहितो कम्मपएमा अणंतगुणा ॥१२०॥१२४॥दारां॥

गहरासमए अ जीवो निअपरिणामेण जणयइ रसाण् ।

सव्वजियाणंतगुणो कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥१२१॥१२५॥

कम्मपुगलेहितो वि अविभागपरिच्छेया अणंतगुणिया । क्हं ?, भणइ, -जहा अट्ठण-विसेसाओ सित्थेसु रसविसेसो दिट्ठो, तथा अज्झवसाणविसेसाओ कम्मखंधेसु रसविसेसो इवइ । अज्झवसाणाइं अट्ठणतुल्लाइं । तंदुल्लेधाणिया कम्मपएसा । लो एगम्मि मित्थे रसो विभ-ज्जमाणो २ मागं न देइ सो अविभागपरिच्छेओ । एवं कम्मखंधेसु जो अणुभागसो सो केवलना-णेणं विभज्जमाणो भागं न देइ त्ति सो अविभागपरिच्छेओ वुच्चइ । तारिसा अविभागपरिच्छेया एककेक्कम्मि कम्मपएसम्मि सव्वजीवाणंतगुणा लभंति । उक्तं च—

गहणसमयस्मि जीवो उपाएइ उ गुणे सपच्चयओ । सव्वजियाणंतगुणे कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥

तेण कम्मपएसेहितो अविभागपरिच्छेया अणंतगुणा ॥१२१॥१२५॥ दारां॥

इयाणि गणणासंखाणमाह—

संखिज्जेगमसंखं परित्तजुत्तनिअपयजुयं तिविहं ।

एवमाणंतं पि तिहा जहरामज्झुक्कसा सव्वे ॥१२२॥१२६॥

संखेज्जं एगविहं । एगविहं पि तिविहं । तं जहा-जहणं मज्झिमं उक्कोसं । असंखेज्जं तिविहं । परित्तासंखेज्जं, जुत्तासंखेज्जं, असंखासंखेज्जं । एक्केक्कं पि य तिविहं । जहणयं मज्झिमं उक्कोसं । एवं अणंतं पि तिविहं । परित्तार्णतयं, जुत्तार्णतयं, अणंतार्णतयं । एक्केक्कं पुण तिविहं । जहणयं मज्झिमं उक्कोसं च ॥१२२॥१२६॥

संखेज्जगं जहराणं दुच्चिअ मज्झिममथो परं बहुहा ।

जा उक्कोसं तं पुण चउपल्लपरवणाइ इमं ॥१२३॥१२७॥

संखेज्जयं दुविहं । गणणासंखेज्जयं, उवमासंखेज्जयं । गणणासंखेज्जयं अणोगविहं । तत्थ जहणयं दोच्चिय । मज्झिममओ परं बहुहा अणोगमेयमिन्नं जान सयं सहस्सं लक्खं जाव चुलसी लक्खा पुव्वंगं मवइ । पुव्वंगगुणिया कमेण पचेयं पचेयं सचावीसं ठाणा । ते य इमे-पुव्वं २ तुडि-यंगं ३, तुडियं ४, अट्ठंगं ५, अट्ठं ६, अवयवंगं ७, अवयवं ८, हुहुयंगं-९, हुहुयं १०, उप्पलंगं ११, उप्पलं १२, पउमंगं १३, पउमं १४, णत्तिणंगं १५, णत्तिणं १६, अत्थानिउरंगं १७, अत्थ-निउरं १८, अउयंगं १९, अउयं २०, नउयंगं २१, नउयं २२, मउयंगं २३, मउयं २४,

चूलियंगं २५, चूलियं २६, सीसपहेलियंगं २७, जाव भीमपहेलियंते गणणासंखाणयं चउणउयं  
अंकट्टाणसयं । अओ परं उअमाम्बेज्जयं अणेगगिहं जाव चउपल्लपरूवणाइ इयं ॥१२३॥१२७॥

जंबुद्दीवपमाणा चउरो जोयणसइस्समोगाढा ।

रयणपहरयणकंडं भिदित्र पुट्टा वइरकंडं ॥१२४॥१२८॥

जंबुद्दीवपमाणा चत्तारि पल्ला ठविज्जंति । जोयणसइस्सं अवगाहो रयणप्पहाए पढमं  
रयणकंडं जोयणसइस्सं भिदित्रा रयणप्पडाए वीयं वइरकंडं तस्स उवरितलं पुट्टा ॥१२४॥१२८॥

पल्लाणवट्टियसलागपडिमलागामहासलागक्खा ।

सव्वे सवेइयंता उवरिं ससिहा य भरियव्वा ॥१२५॥१२९॥

अणवट्टियपल्लं १।सलागापल्लं २।पडिसलागापल्लं ३।महासलागापल्लं ४ । “सव्वे”त्ति,  
चत्तारि वि जोयणलक्खं आयामविक्खंमेणं तिउणं सविसेसं परिरएणं, जोयणसइस्सं ओगाहेणं,  
“सवेइय”त्ति, अट्टजोयणियाए वेइयाए उच्चत्तेणं उवरिं सिहाए समं भरियव्वा ॥१२५॥१२९॥

तो कप्पणाइ केणइ सुरेण पढमो धरेत्तु वामकरे ।

इक्किक्कं दीवुदहीसु सरिसवं खिविच्य णिट्ठविच्यो ॥१२६॥१३०॥

तओ कप्पणाए केणइ सुरेण पढमं अणवट्ठियपल्लं भरित्ता, वामहत्थे धरित्ता, उक्खित्तो ।  
एगा सलागा दीवे, एगा समुद्दे, पुणा एगा सलागा दीवे, एगा समुद्दे, जाव एक्केक्केण निट्ठिओ  
॥१२६॥१३०॥

दीवे जत्थुदहिम्मि य तदंतमेव पढमं व तं भरिउं ।

पुरओ खिव इक्किक्कं दीवुदहिंसु निट्ठिए तम्मि ॥१२७॥१३१॥

दीवे वा समुद्दे वा जत्थ चरिमा सलागा ठिया तं चेव तत्तियपमाणं अणवट्ठियपल्लं जोयणसइस्सं  
ओगाहेणं, अट्टजोयणाणि उच्चत्तेणं, “तदंतमेव पढमं व तं भरिउं”त्ति, तं चेव अणवट्ठिय  
पल्लं पढमं भरित्ता पुरओ खिवइ । “एक्केक्के”त्ति, जत्थ दीवे वा समुद्दे वा चरिमा सलागा ठिया ।  
तओ परओ एगा सलागा दीवे एगा समुद्दे जाव एक्केक्केण निट्ठिओ ॥१२७॥१३१॥

खिवसु सलागापल्ले सरिसवमेगं पुणो तदंतं तं ।

पुल्लं व भरिसु खिवसु अ पुरओ पुण तम्मि निट्ठिविए ॥१२८॥१३२॥

सलागापल्ले एगं सरिसवं खिव । “पुणो तदंतं” दीवे वा समुद्दे वा जत्थ चरिमा सलागा  
ठिया पुणो तत्तियपमाणं अवट्ठियपल्लं भरिसु खिवसु य पुरओ । जत्थ चरिमा सरिसवा ठिया  
ताओ पुरओ खिव । तम्मि निट्ठिए ॥१२८॥१३२॥

वीयं सलागपल्ले खिव सरिमवमेवमेव पुगा तइयं ।

इय पुगारुत्तगावट्टियभरणविरेयणसलागाहि ॥१२६॥१३३॥

वीयं सरिसवं सलागपल्ले खिवसु । एवमेव पुणो तइयं पुणरुत्तं अणवट्टियं, मलागा, पुणरुत्तं अणवट्टियं, सलागा, पुणरुत्तं अणवट्टियं भरणविरेयणमलागाहि ॥१२९॥१३३॥

पुगणो सलागपल्लो पुव्वकमागयणावट्टियो अ तयो ।

सुविअ सलागपल्लो उक्खिप्पइ खिप्पइ अ पुरयो ॥१३०॥१३४॥

सलागपल्लो भरिओ । पुव्वकमेण आगओ अणवट्टिओ वि भरिओ । जाहे सलागपल्लो सरिसवं न पडिच्छइ, ताहे सो वि य सलागपल्लो उक्खिप्पइ खि पइ य पुरओ जन्थ मलागा न पडिया ॥१३०॥१३४॥

पुव्वकमनिट्ठिए तहिमेगं खिव सरिसवं तइयपल्ले ।

पुव्वं व निट्ठिअंते अणावट्टियपल्लमेव खिव ॥१३१॥१३५॥

पुव्वकमनिट्ठिए सलागपल्ले, पडिसलागापल्ले एगा सलागा खिवसु "पुव्वं व निट्ठियत्ते" जत्थ चरिमा सलागा ठिया (तओ परओ) [तत्तियपमाणं] अणवट्टियपल्लं [भरित्ता] खिवसु ॥१३१॥१३५॥

पुगा तम्मि निट्ठिए खिव सलागपल्लम्मि सरिसवं इक्कं ।

अन्नुत्तणावट्टियओ सलागपल्लं पुगो भरह ॥१३२॥१३६॥

पुव्वकमेण निट्ठिए, सलागा सलागपल्ले खिवसु । एवं अणवट्टिओ । सलागपल्लो पुणो भरसु । तदंतं अणवट्टियपल्लं भरित्ता खिवसु, सलागा खिवसु । पुणो तदंतं अणवट्टियपल्लं भरित्ता खिवसु । एवं पुणरुत्तं जाव पुणं ॥१३२॥१३६॥

तेगा पुगा पडिसलागापल्ले भरियम्मि दोसु अ तमेव ।

ऊद्धरिअ पुव्वविहिणा सरिसवमेवं खिव चउत्थे ॥१३३॥१३७॥

तेण सलागापल्लेण कमेण पडिसलागापल्लं भरियं । "दोसु अ"त्ति अणवट्टियपल्लं सलागापल्लं च दो वि भरिया । "ऊद्धरिय"त्ति ताहे पडिसलागापल्लं, उक्खिप्पइ पुव्वकमेण जत्थ न पडिया सलागा, तस्स परओ खिप्पइ, पुव्वकमेण निट्ठिए, एगा सलागा खिव चउत्थपल्ले ॥१३३॥१३७॥

इअ पढमेहिं बीअं तेहिं तइअं तु तेहि अ चउत्थं ।

भरणुद्धरणाविकिरणां ता कज्जं जा फुडा चउरो ॥१३४॥१३८॥

पढमेहिं=अणवट्टिठयपल्लेहिं एककेक्काए सलागाए सलागापल्लं भरसु । वीएहिं सलागापल्लेहिं एककेक्काए सलागाए पडिसलागापल्लं भरसु । तइएहिं पडिसलागापल्लेहिं एककेक्काए सलागाए महासलागापल्लं भरसु । भरित्ता उक्खिप्पंति उक्खिवित्ता एगा दीवे एगा समुदे विक्किरिज्जंति, जाव कमेण चत्तारि वि पुण्णा । १३४॥१३८॥

पढमतिपल्लुद्धरिया दीवुदही पल्लचउमरिसवा च ।

सव्वो वि एस रासी रूवूणो परमसंखिज्जं ॥१३५॥१३९॥

पढमे तिहिं तिहिं पल्लेहिं दीवसमुद्देसु जे पडिखत्ता सरिसवा, ते उद्धरिया, चउपल्लमरिसवा च । “सव्वो वि एस रासी रूवूणो परमसंखेज्जो” एस मरिसवनिचओ रूवूणो परमसंखेज्जयं जेट्ठं । एमेव रूवजुओ परित्ताऽसंखयं जहण्णं ॥१३५॥१३९॥

‘तं विवरिय इक्किक्के ठाणो ठवेसु तत्तिअं रासिं ।

अराणुणाअभासे ताण होइ चउत्थं असंखिज्जं ॥१३७॥१४०॥

जावइया सरिसवा तावइया पत्तेयं पत्तेयं रासीओ ठविज्जंति । ताओ कप्पणाए दस दस सरिसवा उ दस रासीओ कीरंति । अणुणुणाअभासे ताण होइ कोडीसहस्सं तु ॥१३७॥१४०॥

तं पुण जहराणुत्तं आवलियाए वि एत्तिआ समया ।

एअकमा बित्तिचउपंचमे अ अराणुणाअभासे ॥१३८॥१४१॥

चउत्थं । “एअकमा बित्तिचउपंचमे अ अणुणुणाअभासे”, चउत्थस्स अणुणुणाअभासे सत्तमं असंखासंखयं होइ । सत्तमस्स अणुणुणाअभासे पढमं परित्ताणंतयं होइ । पढमस्स अणुणुणाअभासे चउत्थं जुत्ताणंतयं होइ । चउत्थस्स अणुणुणाअभासे सत्तमं अणंतानंतयं होइ ॥१३८॥१४१॥

‘एत्तियमुत्तं सुत्ते अन्नमयमत्तो चउत्थयमसंखं ।

वग्गियमिक्कसि जायइ जहन्नयमसंखयासंखं ॥१४०॥१४२॥

एत्तियं मुत्ते । अणुणस्स आयरियस्स मएणं चउत्थं असंखेज्जं एकवारवग्गियं सत्तमं असंखासंखयं भवइ ॥१४०॥१४३॥

रूवजुअं तं मज्झं सव्वहि रूवूणामाइमुक्कोसं ।

तं वग्गिउं तिवारं दस पक्खेवे खिवसु एए ॥१४१॥१४३॥

१. “इय ति विहं संखेज्जं असंखयमिओ उ जेट्ठसंखेज्जं रूवजुयं संत्रायइ जहणुणयपरित्तासंखं ॥१३६॥ इति गाथा-ऽन्यत्रास्ति, इह पुनवृत्तौ नाधिकृतेति । २. ‘सत्तममसंखपढमचउसत्तमा-ऽणंतया य । होति कमा रूवजुया ते मज्झा रूवूणा पडिउसुक्कोसा ॥१३६॥ इति गाथा-ऽन्यत्र विद्यते, अत्र वृत्तौ नाधिकृतेति ।





पढमेहिं=अणवदिठयपल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए सलागापल्लं भरसु । वीएहिं सलागापल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए पडिसलागापल्लं भरसु । तइएहिं पडिसलागापल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए महासलागापल्लं भरसु । भरित्ता उक्खिप्पंति उक्खिवित्ता एगा दीवे एगा समुदे विक्किरिज्जंति, जाव कमेण चत्तारि वि पुण्णा । १३४॥१३८॥

पढमतिपल्लुद्धरिया दीवुदही पल्लचउसरिसवा च ।

सव्वो वि एम रासी रूवूणो परमसंखिज्जं ॥१३५॥१३६॥

पढमे तिहिं तिहिं पल्लेहिं दीवसमुदेसु जे पण्णित्ता सरिसवा, ते उद्धरिया, चउपल्लसरिसवा च । “सव्वो वि एस रासो रूवूणो परमसंखेज्जो” एस सरिसवनिचओ रूवूणो परमसंखेज्जयं जेदुठं । एमेव रूवजुओ परित्ताऽसंखयं जहण्णं ॥१३५॥१३९॥

‘तं विवरिय इक्किक्के ठाणो ठवेसु तत्तिअं रासिं ।

अरण्णुण्णवभासे ताण होइ चउत्थं असंखिज्जं ॥१३७॥१४०॥

जावइया सरिसवा तावइया पत्तेयं पत्तेयं रासीओ ठविज्जंति । ताओ कप्पणाए दस दस सरिसवा उ दस रासीओ कीरंति । अण्णुण्णवभासे ताण होइ कोडीसहस्सं तु ॥१३७॥१४०॥

तं पुण्ण जहराण्णुत्तं आवलियाए वि एत्तिआ समया ।

एअकमा वित्तिचउपंचमे अ अरण्णुण्णवभासे ॥१३८॥१४१॥

चउत्थं । “एअकमा वित्तिचउपंचमे अ अण्णुण्णवभासे”, चउत्थस्स अण्णुण्णवभासे सत्तमं असंखासंखयं होइ । सत्तमस्स अण्णोण्णवभासे पढमं परित्ताणंतयं होइ । पढमस्स अण्णोण्णवभासे चउत्थं जुत्ताणंतयं होइ । चउत्थस्स अण्णोण्णवभासे सत्तमं अण्णताणंतयं होइ ॥१३८॥१४१॥

‘एत्तियमुत्तं सुत्ते अन्नमयमओ चउत्थयमसंखं ।

वग्गियमिक्कसि जायइ जहन्नयमसंखयासंखं ॥१४०॥१४२॥

एत्तियं मुत्ते । अण्णस्स आयरियस्स मएणं चउत्थं असंखेज्जं एक्कवारवग्गियं सत्तमं असंखासंखयं भवइ ॥१४०॥१४३॥

रूवजुअं तं मज्जं सव्वहि रूवूणामाइमुक्कोसं ।

तं वग्गितं तिवारं दस पक्खेवे खिवसु एए ॥१४१॥१४३॥

१. “इय ति विहं संखेज्जं असंखयमिओ स जेदुसंखेज्जं रूवजुयं संजायइ जहण्णयारित्तासखं ॥१३६॥ इति गाथा-ऽन्यथास्ति, इह पुनवृत्ती नाधिकृतेति । २. ‘सत्तममसंखपढमचउत्तमा-ऽणंतया च । होति कमा रूवजुया ते मज्जा रूवूणा पच्छिमुक्कोसा ॥१३६॥ इति गाथा-ऽन्यत्र विद्यते, अत्र वृत्ती नाधिकृतेति ।





---

अथ

✽ प्रथमे परिशिष्टे ✽

षडशीतिप्रकरणसत्कान्येकादश यन्त्रकानि

---

स्थान योगोपयोग-लेश्या-बन्धो-द्वयो दीरणा-सस्तास्थान-बन्धहेत्व-ऽल्पवृत्त्वप्रदर्शियन्त्रकम् (प्रा० ४ कर्म गाथा

योगाः	१२	उपयोगाः	६	लेश्याः	बन्ध- स्था०	उदय- स्था०	नदीर- गाभ्या	सत्ता- स्था०	बन्धहेतवः →	५७
घो०मि० कर्मण०	३	पत्यप्रान० श्रुनाज्ञान० अचक्षुर्दर्शन०	३	अशुभाः	७-८	८	७-८	८	घृव० ३१ +२ योग० *	३३
"	३	"	४	३+संजर्मी	"	"	"	"	" + ० "	३३
"	३	"	३	अशुभा.	"	"	"	"	" + २ ,, + १ उन्द्रिय०	३४
"	३	"	३	"	"	"	"	"	" + ० ,, + २ "	३४
"	३	"	३	"	"	"	"	"	" + ० ,, + ३ "	३६
"	३	"	३	"	"	"	"	"	" + ० ,, + ४ ,, + २ वेद. ▽	३६
२+ वे० मि०	८	ज्ञानत्रयमज्ञान त्रय नक्षरचक्षु.	६	सर्वा	"	"	"	"	" + ३ ,, + ४ ,, + ० "	४०
घोदा- रि०	३	अज्ञानत्रयम- चक्षुर्दर्शनम्	३	अशुभा	"	"	"	"	" + १ "	३२
घोदा ०+ वेक्रि०२	३	"	३	"	"	"	"	"	" + ३ "	३४
३+वचो	३	"	३	"	"	"	"	"	" + ४ ,, + १ "	३४
"	३	"	३	"	"	"	"	"	" + ४ ,, + ० "	३४
"	४	३+चक्षुर्द०	३	"	"	"	"	"	" + ४ ,, + ३ "	३६
"	४	"	३	"	"	"	"	"	" + ४ ,, + ४ ,, + २ वेद० ▽	३६
सर्वे	१२	सर्वे	६	सर्वाः	७-८- ६-१	८-७- ४	८-७-६ ५-२	८-७- ४	सर्वे	५७
६-७-८		८-७-१०		१०	११	११	११	११	१०-श्रीरामदेवगणिकृतवृत्ती	

१, पट्कायस्पर्षोन्मियाविरतिसप्तक ७, षोडशकसायाः १६, हास्यपट्टक ६ नपुंसकवेदस्त्रेये कृत्रिणाद् घृवबन्धहेतवोऽत्र बोध्याः ।  
 २, ज्ञेयम् । प्रस्तुतचतुर्भक्तमंत्रये तस्याऽश्वितत्वात् । ▽ सस्माकभागनगाठस्यानुपलम्भात् । ▽ पर्याप्तेऽपर्याप्ते चासन्निति वेदद्वयमाकार



पुणस्थान योगोपयोग-लेख्या-बन्धी-दयो-दीर्घा-सत्तास्थान-बन्धहेत्व-ऽरूपवृत्त्वप्रदर्शियन्त्रकम् (प्रा० ४ कर्म गाः

१५	योगाः	१२	उपयोगाः	६	लेख्याः	बन्ध- स्थानं	उच्य- स्थानं	उदीर- स्थानं	सत्ता- स्थानं	बन्धहेत्वः →	५७
२	प्री०पि० कामंभ०	३	मत्स्यज्ञान० भूनाज्ञान० ग्रन्थदर्शनं	३	अशुभाः	७-८	८	७-८	८	ध्रुव० ३१ +२ योग० *	३३
०	"	३	"	४	२+तंजमी	"	"	...	...	" + २ "	३३
२	"	३	"	३	अशुभा.	...	...	...	...	" + २ ,,+ १ इन्द्रिय०	३४
२	"	३	"	३	"	"	"	"	"	" + २ ,,+ २ "	३५
२	"	३	"	३	"	"	"	"	"	" + २ ,,+ ३ "	३६
२	"	३	"	३	"	"	"	"	"	" + २ ,,+ ४ ,,+ २ वेद. ▽	३६
३	१२+ वै० मि०	८	ज्ञानत्रयमज्ञान त्रय चक्षरवक्ष.	६	सर्वा	...	...	...	...	" + ३ ,,+ ४ ,,+ २ "	४०
१	प्रीदा- रि०	३	अज्ञानवृथम- चक्षदर्शनम्	३	अशुभा.	...	...	"	...	" + १ "	३३
३	प्रीदा ०+ वैकि०२	३	"	३	"	...	"	"	...	" + ३ "	३३
४	३+वचो०	३	"	३	"	...	"	"	...	" + ४ ,,+ १ ,,	३३
४	"	३	"	३	"	...	"	"	...	" + ४ ,,+ २ ,,	३३
४	"	४	३+चक्षुर्दं०	३	"	...	"	"	...	" + ४ ,,+ ३ ,,	३३
४	"	४	"	३	"	...	"	"	...	" + ४ ,,+ ४ ,,+ २ वेद० ▽	३३
१५	सर्वे	१२	सर्वे	६	सर्वाः	७-८- ६-१	८-७- ४	८-१-६ ५-२	८-७- ४	सर्वे	५०
६-७-८			८-१-१०	१०		११	११	११	११	१०-श्रीरामदेवगणिकृतवृत्ती	

अस्यात् १, षट्कायस्पर्धेन्द्रियाविरतिसप्तक ७, षोडशाकसायाः १६, हास्यषट्क ६, नपुंसकवेदस्वरयेकत्रिंशद् ध्रुवबन्धहेत्वोऽत्र वोढ  
रेणोक्तं ज्ञेयम् । प्रस्तुतचतुर्ष्वं मंत्रये तस्याऽर्थचित्तत्वात् । ▽ अस्माकमागनपाठस्यानुपसम्भात् । ▽ पर्याप्तेऽपर्याप्ते चासंज्ञिनि वेदद्वया





मार्गणास्थानेषु जीवस्थानप्रदक्षियन्त्रकम् (चतुर्थप्राचीनकर्मग्रन्थे गा० १८ तः २४)

यम्	कायः	योगः	वेदः	कपा- यः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्याः	भव्यः	सम्य- क्त्वम्	संज्ञी	आहा- री
					ज्ञान. ३ विमङ्ग ४		भवधि. १	पप० शुक्ला० २		उप कायो का० ३	संज्ञी १	
		काययो० १	नपुं स. १	सर्वे ४	मज्ञानद्वय० २	प्रविरत० १	भवसु० १	मशुमाः ३	मध्या- मव्यी२	मिथ्या० १		माहा. १
इय. १	पृषिम्या- दि ५											
इय० १												
य. १												
न्द्रय. १												
य. १			स्त्रीपुं- मी २									
	पसका. १											
		मनोयो० १			मन ५० केवल० २	शेष० ६	केवल० १			मिय० १		
		वचोयो० १										
							वक्षुद० १					
								तेजो० १				
										मास्वादन. १		
											मस १	
												मना- हा. १

विद्वाद्दशमार्गणसु संज्ञयपर्याप्तः करणत एव बोध्यः, न तु लब्धितः । \* मनुष्यगती लब्धित एवापर्याप्तासङ्गी विशेषः । × स्त  
त एव । ∇ तेजोलेख्यामार्गणायामपर्याप्तो बादरंकेन्द्रियसङ्गिनी करणत एव । !\* सास्वाद्ने पठप्यऽपर्याप्ता. करणापर्याप्ता म  
। ।



मार्गणास्थानेषु योगप्रदर्शिन्यत्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गा० ३४ तः ४१)

१-ऽमत्या-ऽमृषामनश्चतुष्कवचश्चतुष्कौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाह।रकद्विकवार्मणकाययोगलक्षणाः पञ्चदश योगाः (गा

इन्द्रियम्	कायः	योगः	वेदः	कपा- यः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्या	मठ्यः	सम्य- वत्यम्	संज्ञी	आहा- रक.	मागणा संख्या	श्र
													२	
			स्त्री० १		अज्ञान० ३	प्रसयम०१			प्रभ- व्य १	मिथ्या. ३ सास्वा० उपशम०			१०	
पञ्च०१	प्रस. १	काय. १	शेष०२	सर्वे ४	ज्ञान० ३		अचक्षुर- वधि २	सर्वाः६	मठ्यः १	सा०, क्षायो०२	संज्ञा १		२५	
एके०१	वायु. १												२	
शेष० ३													३	
	शेष०४												४	
		शेष०२			मन.पर्यव. १	सामा० खेटो०२	चक्षु० १						६	
					केवल० १		केवल०१						२	
						परिहार० मूकम०२							२	
						यथास्वात्. १							१	
						द्वेष०१							१	
										मिथ्य० १			१	
											प्रस जी १		१	
												माहा. १	१	
												प्रना.१	१	

मार्गणास्थानेपूजयोग-लेख्यप्रादक्षिण्यक्रम (प्राचीनचतुर्थकर्ममध्ये गाथा ४२ तः ४२)

शोधतो ज्ञानपञ्चक-उद्धान्तिकदर्शनचतुष्कल्प हादश उपयोगाः कुष्ण-नील कापोत-नेत्रः-पद्म शंकरलेख्यलक्षणः पद्द लेख्याश्च

संख्या	मार्गणां- -उपयोगाः ↓ सर्वे	गतिः मनु०१	द्वित्रयम् पर्व. १	कायः नस०१	योगाः सर्वे ३, मधु ३,	वेदः सर्वे ३,	कपा- यः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	निर्याः शुक्रा १	भन्धः भन्ध. १	सन्धम्	संज्ञी नज्ञी १	आदि- रक. प्राडा १	सर्वा. १३	गाथा- क्रः ४३-४४
१२	१२-केवल०२, मना- १, प०,	शेष० ३							प्रसंयम० १						४	४२- ४७	
३	मथानद्वयमचरु० प्रज्ञान०२ चक्रु- १, चक्र०	शेष० ३	शेष० ३	शेष० ५											२	४३- ४८	
१०	१२-केवलतिक०						सर्वे ४								११	४५	
७	ज्ञान०४ सर्वान०४							ज्ञान०४	सयमाः ४	चक्रु-चक्रु २	योगा. ५		वदक. तप. २		११	४६	
२	केवलतिकम् या चक्रु							केवल०१		केवल १					१२	४५	
५	प्रज्ञान०३ चक्रु- चक्रु							प्रज्ञानत्रय. ३					मथ- नत्र		५	४८	
३	ज्ञानपञ्चक, सर्वान०३								मथास्थान०१				ज्ञायिक. १		२	४६	
६	ज्ञान०३, सर्वान० ३								देश० १						१	४७	
५	५ (प्रज्ञानमिश्र०) १२-मना.प०, चक्र०														१	४७	
१०	← लेख्याः ↓																
३	मशुभा सर्वाः	नरक०१	विकसि. ३	सिद्धोपा. २	सर्वे ३	सर्वे ३			शेष० ५	शान०२					४	४०	
६	पद्मशुक्रवर्जाः	शेष० ३	पञ्च०१	मधु०१	सर्वे ३	सर्वे ३									५	४१	
४															५	४२	
१	शुक्ला								सूत्रम० पथास्थान० २	शेष० १					५	४२	
१	स्वीया									नरक० १					६	४३	

मार्गणास्थानेष्वल्पवहुत्वप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा ५३ तः ६४)

यम्	कायः		योगः		वेदः		कपायः		त्रा
सर्वाल्पाः	त्रसकायाः	सर्वाल्पाः	मनो०	सर्वाल्पाः	पुरुषाः	मर्वाल्पाः	मानिनः	सर्वाल्पाः	मन पर्य०
विशेषा- धिका	तेजःकायाः	असंख्यगुणाः	वचो०	असंख्यगुणाः	स्त्रियः	मह्यगुणाः	क्रोभवन्तः	विशेषा- त्रिकाः	भवधि.
"	पृथ्वीकायाः	विशेषाधिकाः	काष्ठ०	अनन्तगुणाः	नपुंसकाः	अनन्तगुणाः	मायिनः	"	मनि०
"	अप्कायाः	"					लोभवन्तः	"	ध्रुव०
अणन्तगु०	वायुकायाः	"							विभक्त०
	वनस्पति०	अणन्तगुणाः							केत०
									मन्य०
									अना०
	५४-५५		५५		५६		५६		५७-
निम्	लोश्या		मव्य.		सम्यक्त्वम्		मंजी		आः
सर्वाल्पाः	शुक्रः	सर्वाल्पाः	अम.	सर्वाल्पाः	मास्वादन०	मर्वाल्पाः	मजिनः	सर्वाल्पाः	प्रनाहारकाः
असहस्य- गुणाः	पद्म.	संख्यगुणाः	भव्याः	अनन्तगुणाः	उपशम०	मह्यगुणाः	प्रसंज्ञिनः	अनन्त गुणाः	प्राहारका
अनन्त- गुणाः	तेजो.	"			मिश्र०	"			
"	कापोत०	अनन्तगुणाः			यदक०	असंख्यगुणाः			
	नील०	विशेषाधिकाः			क्षायिक०	अनन्तगुणाः			
	कुष्ण०	"			मिथ्या०	"			
	६१		६२		६३		६४		



मार्गणास्थानेष्वल्पबहुत्वप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा २३ तः ६४)

श्रु	कायः		योगः		वेदः		कपायः		ज्ञान
	त्रसकायाः	सर्वांग	मनो०	सर्वाल्पा.	पुरुषा०	सर्वाल्पाः	मानिन.	सर्वाल्पाः	मन पर्य०
विशेषा- धिका	तेजःकायाः	असह्यगुणा	वचो०	असह्यगुणाः	स्त्रिय.	सह्यगुणा०	क्रोधवन्त.	विशेषा- धिकाः	भवधि.
१	पृथ्वीकायाः	विशेषाधिकाः	काय०	अनन्तगुणाः	नपुंसकाः	अनन्तगुणा.	मायिनः	..	मति०
२	अप्कायाः	..					लोभवन्तः	..	श्रुत०
अनन्तगु०	वायुकाया.	..							विवमज्ञ०
	वनस्पति०	अनन्तगुणाः							केवल०
									मत्य०
									श्रुता०
	५४-३५		५५		५६		५६		५७-२०
३	लेख्या		मन्त्र.		सम्यक्त्वम्		मंजरी		आहार
वर्त्याः	शुक्ल	सर्वाल्पाः	अभ.	सर्वाल्पा.	साम्वादन०	मवाल्पा.	सजिन.	सर्वाल्पा	अनाहारकाः
सहस्य- गुणा.	पद्म.	सह्यगुणाः	भव्याः	अनन्तगुणाः	उपशम०	सह्यगुणाः	असंज्ञिनः	अनन्त गुणाः	आहारका
अनन्त- गुणाः	तेजो.	..			मिश्र०	..			
४	कापोत०	अनन्तगुणा.			वदक०	असह्यगुणा			
	नील०	विशेषाधिकाः			कार्याक०	अनन्तगुणा०			
	कृष्ण०	..			मिथ्या०	..			
	६१		६२		६३		६४		६५

ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेखाः	भव्यः	सम्यक्त्वम्	संज्ञी	आहारी	संभ-विना.	अभम-विना.
ज्ञान०३, प्रज्ञा०३, ६	प्रसंयम० १	केवल० विना ३	प्रशुभाः ३	सर्व० २	सर्वाणि ६	संज्ञी	सर्व० २	३५	२७
" " ६	" + देहासं० २	" " ३	सर्वाः ६	" २	" ६	सर्व० २	" २	५१	११
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	" ६	" २	" ६	" २	" २	५०	१२
ज्ञान०३, प्रज्ञा०३, ६	प्रसंयम० १	केवल० विना ३	" ६	" २	" ६	संज्ञी १	" २	३६	२३
प्रज्ञानद्विक० २	" १	प्रचक्षु० १	प्रथमाः ४	" २	मास्वा० मिथ्या० २	प्रसंज्ञी १	" २	२८	३४
" " २	" १	" १	प्रथुमा ३	" २	" " २	" १	" २	२४	३८
" " २	" १	चक्षुरचक्षु० २	" " २	" २	" " २	" १	" २	२५	३७
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	सर्वाः ६	" २	सर्वाणि ६	सर्व० २	" २	५३	९
प्रज्ञानद्वय० २	प्रसंयम० १	प्रचक्षु० १	प्रथमाः ४	" २	सास्वा० मिथ्या० २	प्रसंज्ञी १	" २	२४	३८
" २	" १	" १	प्रशुभा. ३	" २	मिथ्या० १	" १	" २	२२	४०
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	सर्वाः ६	" २	सर्वाणि ६	सर्व० २	" २	५६	६
" ८	" ७	" ४	" ६	" २	" ६	संज्ञी १	आहा० १	५१	११
" ८	" ७	" ४	" ६	" २	" ६	सर्व० २	" १	५५	७
" ८	" ७	" ४	" ६	" २	" ६	" २	सर्व० २	६२	०
ज्ञान०४, प्रज्ञा. ३, ७	सूक्ष्म. यथा. विना ५	केवल० विना ३	" ६	" २	" ६	संज्ञी १	" २	४५	१७
" " ७	परि० सू० यथा० ३, ४	" " ३	" ६	" २	" ६	" १	" २	४४	१८
" " ७	सूक्ष्म० यथा० विना ५	" " ३	" ६	" २	" ६	सर्व० २	" २	५५	७
" " ७	" " ५	" " ३	" ६	" २	" ६	" २	" २	५५	७
" " ७	X " ६	" " ३	" ६	" २	" ६	" २	" २	५६	६
" X ४	सर्वे ७	" " ३	" ६	मध्य. १	सम्यक्त्वत्रिक. मिथ्या० ४	संज्ञी १	" २	४४	१८
" X ४	सयमपचक्षु० ५	" " ३	" ६	" १	सम्यक्त्वत्रिक. ३	" १	आहारी १	३५	२५
केवल०	यथाख्यात० १	केवल० १	शुक्ल० १	" १	आधिक० १	" १	सर्व० २	१५	४७
प्रज्ञानत्रिकम् ३	प्रसंयम० १	चक्षुरचक्षु० २	सर्वाः ६	सर्व० २	सास्वा० मिथ्या० २	सर्व० २	" २	४५	१७
" ३	"	" २	" ६	" २	" " २	संज्ञी १	" २	३५	२७



मूलं →	संख्या	मार्गणास्थानानि उत्तरं ↘	गतिः	इन्द्रियम्	कायः	योगः	वेदः	कषायः
गतिः	१	नरकं	स्वीया० १	पञ्च० १	प्रस० १	मर्वे ३	नपुं० १	सर्वे ४
	१	तिर्यग्गति०	" १	सर्वाणि ५	सर्वे ६	" ३	सर्वे ३	" ४
	१	मनुष्य०	" १	पञ्च० १	प्रस० १	" ३	" ३	" ४
	१	देव०	" १	" १	" १	" ३	स्त्रीपुंसी०	" ४
इन्द्रियम्	१	एकेन्द्रिय०	तिर्य० १	स्वीयम् १	प्रस० विना ५	काय १	नपुं० १	" ४
	२	द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय	" १	" १	प्रस० १	काय-वचो० २	" १	" ४
	१	चतुरिन्द्रिय०	" २	" १	" १	" २	" १	" ४
	१	पञ्चेन्द्रिय०	सर्वाः ४	" १	" १	सर्वे ३	सर्वे ३	" ४
कायः	३	पृथ्व्य० धनस्पति०	तिर्य १	एकेन्द्रिय० १	स्वीयः १	कायः १	नपुं० १	" ४
	२	तेजोवायु०	" १	" १	" १	" १	" १	" ४
	१	प्रस०	सर्वाः ४	एके० विना ४	" १	सर्वे ३	सर्वे ३	" ४
योगः	१	मनो०	" १	पञ्च० १	प्रस० १	" ३	" ३	" ४
	१	वचो०	" १	एके० विना ४	" १	" ३	" ३	" ४
	१	काय०	" १	सर्वाणि ५	सर्वे ६	" ३	" ३	" ४
वेदः	१	पुष्य० ×	नरक० विना ३	पञ्च० १	प्रस० १	" ३	स्वीयः १	" ४
	१	स्त्री० ×	" " ३	" १	" १	" ३	" १	" ४
	१	नपुं०	देव० " ३	सर्वाणि ५	सर्वे ६	" ३	" १	" ४
कषायः	३	क्रोध-मान माया०	सर्वाः ४	" ५	" ६	" ३	सर्वे ३	स्वीयः १
	१	लोभ०	" ४	" ५	" ६	" ३	" ३	" १
ज्ञानम्	३	मतिभ्रुवावधि. Δ	" ४	पञ्च० १	प्रस० १	" ३	" ३	सर्वे ४
	१	मन.पर्यव०	मनुष्य० १	" १	" १	" ३	" ३	" ४
	१	केवल०	" १	" १	" १	" ३	" ३	" ४
	२	भ्रह्मानुष्ठय०	सर्वाः ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	" ३	सर्वे ३	सर्वे ४
	१	विमङ्ग०	" ४	पञ्च० १	प्रस० १	" ३	" ३	" ४

केवलोन ज्ञान ० ४	स्वीयः १	केवल ० विना ३	६	भय १	मम्यगम्यत्रय २	१	प्राहा ० १	३३	३६
" " ४	" १	" ३	" ६	" १	" ३	" १	" १	३०	३७
" " ४	" १	" ३	शुक्ला ० १	" १	उप. प्रागि ०	" १	" १	२५	४१
सर्वज्ञानानि ५	" १	सर्वाणि ४	" १	" १	" " २	" १	मवं ० २	२३	३१
ज्ञान ० ३,	" १	केवल ० विना ३	सर्वाः ६	" १	मम्यवत्वत्रिक. ३	" १	प्राहा ० १	२३	३६
ज्ञान. २ मज्ञा. ३. ६	" १	" " ३	" ६	सर्व ० ०	सर्वाणि ६	सर्व ० ०	मवं ० ०	५३	९
ज्ञान ० ४ " ७	सर्व ७	" " ३	" ६	" ०	" ६	" २	" २	५०	५५
" " ७	" ७	" " ३	" ६	" २	" ६	" २	" ०	६०	२
" X ५	" ७	" " ३	" ६	भयः १	त्रोणि सम्य- वत्वानि मिश्र.	संज्ञी १	" २	५५	१८
केवल ०	यथावयात ० १	केवल ० १	शुक्ला ० १	" १	क्षाधिक ० १	" १	" २	१५	४७
ज्ञान ४, मज्ञा ० १, सूक्ष्म. यथा. विना ७	" " ५	केवल ० विना ३	स्वीया १	मवं ० २	सर्वाणि ६	मवं ० २	" २	५३	९
" " ७	" " ५	" " ३	" ५	" २	" ६	" २	" २	५७	१५
" " ७	" " ५	" " ३	" १	" २	" ६	संज्ञी १	" ०	५०	२०
सर्वाणि ८	सर्व ७	सर्वाणि ४	" १	" ०	" ६	" १	" २	५६	१६
" ८	" ७	" ४	सर्वा ६	भय ० १	" ६	सर्व ० २	" २	६१	१
मज्ञानत्रय ० ३	मसंयम ० १	चक्षुरचक्षु ० २	" ६	ममन्य ०	मिध्यात्व ० १	" ०	" २	४३	१६
केवलोन ज्ञान ० ४	सूक्ष्म ० यथा ० विना ५	केवल ० विना ३	" ६	भय ० १	स्वीय १	संज्ञी १	" २	३६	२३
" ४	" ७	" " ३	" ६	" १	" १	" १	" २	४१	२१
ज्ञानपञ्चक ० ५	सर्व ७	सर्वाणि ४	" ६	" १	" १	" १	" २	४३	१९
ज्ञानमिध्याज्ञान ३	मसंयम ० १	केवलचवं ० ३	" ६	" १	" १	" १	प्राहा ० १	३३	२६
मज्ञानत्रय ० ३	" १	" ३	" ६	" १	" १	" २	सर्व ० २	४२	२०
" " ३	" १	चक्षुरचक्षु ० २	" ६	सर्व ० २	" १	सर्व ० २	" २	४४	१८
सर्वाणि ८	सर्व ७	सर्वाणि ४	" ६	" २	सर्वाणि ६	संज्ञी	" २	५२	१०
मज्ञानद्विक ० २	मसंयम ० १	चक्षुरचक्षु ० २	प्रथमा ४	" २	सात्वा ० मिध्या ० २	मसंज्ञी १	" २	३६	२६
सर्वाणि ८	सर्व ७	सर्वाणि ४	सर्वा. ६	" २	सर्वाणि ६	सर्व ० २	प्राहादि. १	६१	१
मनःप ० विना ७ यथा. सं. मसं ० २		चक्षुर्वचं ० ३	" ६	" २	मिध्या ० विना ५	" २	मनाहा ० १	५३	१६

ॐ मनुष्यगती मसान्तरेणा-ऽसंज्ञी नास्ति । X मत्र वेदद्वयेऽसंज्ञी स्त्रीपुरुषवेदाकारमाभित्यैव ।

संयम	२	सामा० छेदोप०	मनु० १	" १	" १	" ३	" ३	" ४
	१	परिहासवशाद्	" १	" १	" १	" ३	तृ० ३	" ४
	१	सूक्ष्मसंपराय०	" १	" १	" १	" ३	०	लोभ
	१	यथास्यात्	" १	" १	" १	" ३	०	०
	१	देश०	तिर्यग्मनु० २	" १	" १	" ३	मर्वे ३	मर्वे ४
दर्शनम्	१	असयम०	मर्वा ४	मर्वाणि ५	मर्वे ६	३	" ३	" ४
	१	नक्षु०	" ४	नत्त० पञ्चे० २	प्रम० १	" ३	" ३	" ४
	१	अवक्षु०	" ४	मर्वाणि ५	मर्वे ६	" ३	" ३	" ४
	१	अवक्षि० Δ	" ४	पञ्चे० १	प्रम० १	" ३	" ३	" ४
	१	केवल०	मनुष्य० १	" १	" १	" ३	०	०
क्षेत्र्या	३	अप्राम्ताः	सर्वा ४	मर्वाणि ५	मर्वे ६	" ३	सर्वे ३	सर्वे ४
	१	तेजो०	नरक० विना ३	एके० पञ्चे० २	त्रयोवायु वि. ४	" ३	" ३	" ४
	१	पशु०	" " ३	पञ्चे० १	प्रम० १	" ३	" ३	" ४
	१	शुक्ल०	" " ३	" ४	" १	" ३	" ३	" ४
	१	भक्ष्य०	सर्वा ४	सर्वाणि ५	मर्वे ६	" ३	" ३	" ४
सम्यक्त्वम्	१	अभक्ष्य०	" ४	" ५	" ६	" ३	" ३	" ४
	१	वेदक०	" ४	पञ्चे० १	प्रम० १	" ३	" ३	" ४
	१	उपशम०	" ४	" १	" १	" ३	" ३	" ४
	१	सायिक०	" ४	" १	" १	" ३	" ३	" ४
	१	मिश्र०	" ४	" १	" १	" ३	" ३	" ४
संज्ञी	१	सास्वादन०	" ४	सर्वाणि ५	त्रयोवायु० ४ विना ५	" ३	" ३	" ४
	१	मिथ्यात्व०	" ४	" ५	मर्वे ६	" ३	" ३	" ४
	१	संज्ञि०	" ४	पञ्चे० १	प्रम० १	" ३	" ३	" ४
	१	असंज्ञि	तिर्यग्मनु० २	सर्वाणि ५	मर्वे ६	काय-वक्षो० २	नपुं० १	" ४
	आहारि	१	आहारि०	सर्वाः ४	" ५	" ६	सर्वे ३	सर्वे ३
१		अनाहारि० १	" ४	" ५	" ६	" ३	" ३	" ४

Δ मति-भूता-ऽवधिज्ञानत्रया-ऽवधिवर्द्धनमार्गणात्पुष्के, मिश्रदृष्टेर्ज्ञानित्वस्वीकृतमसामिप्रायेण मिश्रसम्यक्त्वं दर्शितं ज्ञेयम् । अन्वयाऽज्ञानमिश्रत्वेन तस्य ज्ञानित्वास्वीकृताभिप्रायेण पुनर्मिश्रसम्यक्त्वं विना त्रिभस्वारिषान्मार्गणा-स्थानान्युक्तमार्गणात्पुष्टये भवन्ति ।

केवलोन ज्ञान ० ५	स्त्रीयः १	केवल० विना ३	६	भ०य १	मध्यमप्रयत्न	१	प्राहा० १	३३	२६
" ५	" १	" ३	" ६	" १	" ३	" १	" १	३०	३०
" ४	" १	" ३ शुक्ला० १	" ६	" १	उप. क्षागि ०	" १	" १	२५	४१
सर्वज्ञानानि ५	" १	सर्वाणि ४	" १	" १	" २	" १	मर्व० ०	२३	३१
ज्ञान ० ३,	" १	केवल० विना ३	सर्वाः ६	" १	मध्यमत्वप्रिग.	" १	प्राहा० १	२३	२६
ज्ञान.२ भजा.३.६	" ५	" ३	" ६	सर्व० ०	सर्वाणि ६	मर्व० ०	मर्व० ०	५३	९
ज्ञान ४ " ७	सर्वे ७	" ३	" ६	" ०	" ६	" २	" २	५१	५५
" " ७	" ७	" ३	" ६	" २	" ६	" २	" ०	६०	२
" X ५	" ७	" ३	" ६	मध्यः	श्रीणि सम्य- वत्त्वानि मिश्र.	संज्ञी १	" २	५५	५८
केवल०	यथाख्यात० १	केवल० १	शुक्ला० १	" १	क्षाधिक० १	" १	" २	१५	५७
ज्ञान ४, भजा० १, सूक्ष्म. यथा. विना ७		केवल० विना ३	स्वीया १	मर्व० २	सर्वाणि ६	मर्व० २	" २	५३	९
" " ७	" " ५	" " ३	" १	" ०	" ६	" २	" २	५७	५५
" " ७	" " ५	" " ३	" १	" २	" ६	संज्ञी १	" ०	५०	२०
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	" १	" २	" ६	" १	" २	५६	५६
" ८	" ७	" ४	सर्वा. ६	मध्य० १	" ६	सर्व० २	" २	६१	१
भजानत्रय० ३	भसंयम० १	षक्षुरचक्षु० २	" ६	भमध्य०	मिध्यात्व० १	" २	" २	४३	१६
केवलोनज्ञान० ४	सूक्ष्म० यथा० विना ५	केवल० विना ३	" ६	मध्य० १	स्वीयं १	संज्ञी १	" २	३६	२३
" ५	" ७	" ३	" ६	" १	" १	" १	" २	४१	२१
ज्ञानपञ्चक० ५	सर्वे ७	सर्वाणि ४	" ६	" १	" १	" १	" २	४३	१९
ज्ञानमिध्याज्ञान ३	भसंयम० १	वेवलवर्ज० ३	" ६	" १	" १	" १	प्राहा० १	३३	२६
भजानत्रय० ३	" १	" ३	" ६	" १	" १	" २	सर्व० २	४२	२०
" " ३	" १	षक्षुरचक्षु० २	" ६	सर्व० २	" १	सर्व० २	" २	४४	१८
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	" ६	" २	सर्वाणि ६	संज्ञी	" २	५२	१०
भजानद्विक० २	भसंयम० १	षक्षुरचक्षु० २	प्रथमा ४	" २	सास्वा० मिध्या० २	भसंज्ञी १	" २	३६	२६
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	सर्वा. ६	" २	सर्वाणि ६	सर्व० २	प्राहारि. १	६१	१
मनःप० विना ७ यथा.स., भसं० २		षक्षुर्वर्ज० ३	" ६	" २	मिध्या० विना ५	" २	प्राहा० १	५३	१६

ॐ मनुष्यगतौ भवत्तरेणा-ऽसंज्ञी नास्ति । X भव वेदव्येऽसंज्ञी स्त्रीपुरुषवेदाकारमाभित्थैव ।

संयम	२	सामा० छेदोप०	मनुष्य० १	" १	" १	" ३	" ३	" ४
	१	परिहारगवष्टादिक०	" १	" १	" १	" ३	पुनर्प० ३	" ४
	१	सूक्ष्मसपराय०	" १	" १	" १	" ३	०	नाम
	१	यथात्यात०	" १	" १	" १	" ३	०	०
दर्शनम्	१	देश०	तियंमनु० २	" १	" १	" ३	मर्वे ३	मर्वे ४
	१	असयम०	मर्वा ५	नर्वाणि ५	मर्वे ६	३	" ३	" ४
	१	चक्षु०	" ४	चक्षु० पञ्चे० २	प्रस० १	" ३	" ३	" ४
	१	अचक्षु०	" ४	मर्वाणि ५	मर्वे ६	" ३	" ३	" ४
	१	अवधि० Δ	" ४	पञ्चे० १	प्रस० १	" ३	" ३	" ४
	१	केवल०	मनुष्य० १	" १	" १	" ३	०	०
श्रेया	३	अप्रामत्ताः	सर्वा ४	मर्वाणि ५	मर्वे ६	" ३	सर्वे ३	सर्वे ४
	१	तेजा०	नरक० विना २	एके० पञ्चे० २	तेजोवायु० वि. ४	" ३	" ३	" ४
	१	पद्म०	" " ३	पञ्चे० १	प्रस० १	" ३	" ३	" ४
	१	शुक्ल०	" " ३	" ४	" १	" ३	" ३	" ४
भव्यः	१	भव्य०	सर्वा ४	सर्वाणि ५	मर्वे ६	" ३	" ३	" ४
	१	अभव्य०	" ४	" ५	" ६	" ३	" ३	" ४
	१	वेदक०	" ४	पञ्चे० १	प्रस० १	" ३	" ३	" ४
	१	उपशम०	" ४	" १	" १	" ३	" ३	" ४
सम्यक्त्वम्	१	क्षायिक०	" ४	" १	" १	" ३	" ३	" ४
	१	मिथ०	" ४	" १	" १	" ३	" ३	" ४
	१	सास्वादन०	" ४	सर्वाणि ५	तेजोवायु० ४ विना ५	" ३	" ३	" ४
	१	मिथ्यात्व०	" ४	" ५	सर्वे ६	" ३	" ३	" ४
संज्ञी	१	संज्ञि०	" ४	पञ्चे० १	प्रस० १	" ३	" ३	" ४
	१	असंज्ञि	तियंमनु० २	सर्वाणि ५	मर्वे ६	काय-वचो० २	नपु० १	" ४
आहारि	१	आहारि०	सर्वाः ४	" ५	" ६	सर्वे ३	सर्वे ३	" ४
	१	अनाहारि० १	" ४	" ५	" ६	" ३	" ३	" ४

Δ मति-भूता-ऽवधिज्ञानत्रया-ऽवधिवर्धनमार्गेणावबुद्धेः मिश्रदृष्टेर्ज्ञानित्वास्वीकृतमताभिप्रायेण मिश्रसम्यक्त्वं दणितं श्रेयम् । अन्वयाऽज्ञानमिश्रत्वेन तस्य ज्ञानित्वास्वीकृतमभिप्रायेण पुनर्मिश्रसम्यक्त्वं विना त्रिविधस्वार्थिज्ञानमार्गेणा-स्थानान्युक्तमार्गेणावबुद्धये भवन्ति ।



गुणस्थानानि ↓	१४	जीवस्थानानि	१५	योगाः	१२	उपयोगा	६	लेश्याः
मिथ्यात्व०	१४	सर्वाणि	१३	आहारकद्विकोनाः	५	प्रज्ञानत्रय० चक्षुर- चक्षुदं०	६	सर्वाः
सास्वादन०	७	सू०विना षडपर्या. ४ पर्या. सञ्ज्ञि० ४	१३	"	५	▽ "	६	"
मिश्रदृष्टि०	१	पर्या० सञ्ज्ञि०	१०	मन०४, वचो० ४ श्रीदा०, वै०	६	ज्ञानत्रय० दर्शनत्रय० (प्रज्ञानमिश्र)	६	"
अविरतसम्य०	२	द्विविध सञ्ज्ञि.	१३	आहारकद्विकोनाः	६	ज्ञानत्रय० दर्शनत्रय०	६	"
देशविरत०	१	पर्या. सञ्ज्ञि.	११	मन०४ वचो०४ श्री०, वै० २	६	"	६ Δ	"
प्रमत्तसंयत०	१	"	१३	श्री. मि. काम०विना	७	ज्ञान० ४ दर्शन० ३	६ Δ	"
अप्रमत्तसं०	१	"	११	मनो०४, वचो०४, श्री०, वै०, श्री०,	७	"	३	कुमाः
अपूर्वकरण०	१	"	६	मनो०४, वचो०४ श्री०	७	"	१	शुक्लाः
अनिवृत्तिबाधर०	१	"	६	"	७	"	१	"
सूक्ष्मसपराय०	१	"	६	"	७	"	१	"
सपसान्तकषाय०	१	"	६	"	७	"	१	"
क्षीणकषाय०	१	"	९	"	७	"	१	"
सयोगिकेव०	१	"	७	सत्य०, व्य० मनो० २ " " वचो० २ श्री० २ काम०	२	केवलज्ञानम् " दर्शनम्	१	"
अयोगिकेव०	१	"	०	०	२	"	१	"
गाथाङ्का →		६५		६६-६७-६८-६९		७०-७१		७२

४ इहा-ऽपर्याप्ता' करणापेक्षया श्रेयाः, लक्ष्यपेक्षया पुन. पर्याप्ता एव । ४ सिद्धान्तमतेऽर्चकेन्द्रिया न भवन्ति ।

▽ सिद्धान्तमते ज्ञानत्रयमिह स्वीकृतम् ।





मार्गणा गुणस्थानानि	शक्तिः	शान्द्र- यम	कायः	योगः	वेदः	कपा- याः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेखा	भद्रयः	सम्यक्त्वम्	संज्ञी	आहारकः	सम- विताः	असम- विताः
विद्युत्त्व०	सर्वा- श्रीणि ५	सर्वा- श्रीणि ५	सर्वे ६	सर्वे ३	सर्वे ३	सर्वे ४	भ्रान्तिविक्रम ३,	भ्रतयमः	चक्षुरचक्षुः २	सर्वा ६	सर्वं ०	मिथ्या ० १	सर्वं ०	सर्वं ०	४४	१८
सत्त्वात्त्व०	"	"	तेजोवायुं विना ५	"	"	"	"	"	"	"	मध्यं १	साक्षात् ५	"	"	४१	२१
मिथु०	"	पञ्चै० १	द्रव्यं	"	"	"	भ्रान्तानामश्री- ज्ञान ३	"	केवलं विना ३	"	"	मिथुं १	संज्ञी १	आहार ० १	३३	२६
भक्तिरसस्यत्वं	"	"	"	"	"	"	मतिशून्यवाचि- ३	"	"	"	"	सध्यते-व- त्रयम् ३	"	सर्वं ० २	३६	२५
देह० Δ	विष- मनु २	"	"	"	"	"	"	देवसत् १	"	"	"	"	"	आहार ० १	३३	२६
प्रमत्त० Δ	मनु जा० १	"	"	"	"	"	केवलं जात ४	मामांक्षीरं परि० ३	"	"	"	"	"	१	३५	२७
अप्रमत्त०	"	"	"	"	"	"	"	"	३	बुधाः ३	"	"	"	"	३२	३०
अपूर्वत्वं	"	"	"	"	"	"	"	मांसांक्षीरं २	३	गुणात् ०	"	उप०धावि० २	"	"	२८	३४
अनिवृत्ति०	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	२८	३४
सुखम०	"	"	"	"	०	रोम १	"	सुखमत् १	"	"	"	"	"	"	२१	४१
उपशान्तमो०	"	"	"	"	०	०	"	यापाश्यात् ० १	"	"	"	"	"	"	२०	४२
श्रीयामो०	"	"	"	"	०	०	"	"	"	"	"	आयिक १	"	"	११	४३
मयोनि०	"	"	"	"	०	०	केवलं १	"	केवलं	"	"	"	"	सर्वं ०	१५	४७
अयोनि०	"	"	"	"	०	"	"	"	"	०	"	"	"	मना १	१०	५२

\* इह सास्वानुगुणस्थानके सिद्धास्त्वामिप्रायेणुकेन्द्रिया न सन्ति, शान्तिक्वचस्त्विति; न स्वज्ञानिकम् । जीवसमासादिमयाभिप्रायेणुकेन्द्रियविकलेन्द्रिया-स-  
विनो न सन्ति । Δ यस्तत्त्वेण देशपरित प्रमत्तस्यतगुणस्थानत्वेऽशुभकेश्याद्य नास्ति ।

---

अथ

# द्वितीये परिशिष्टे

प्राचीनकर्मग्रन्थषट्कमूलगाथा-द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठकर्मग्रन्थमाप्यगाथाः सप्ततिका-  
सारगाथास्तथा सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणमूलमाप्यगाथाः ।

---

गुणस्थानकेसु मार्गणास्थानप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मप्रन्थं) गायत्री ७३ तमायां श्रीरामदेवगणिकृतपृथो पृष्ठ २९-३०)

मार्गणा गुणस्थानानि	पारि.	शब्द ग्रम	काव्यः	योगः	वेदः	क्या- या	ज्ञानम	संगम	दर्शनम्	नेरथा	भन्दाः	मन्थकत्वम्	संज्ञी	आहारकः	मभ- वित्ताः	अभय- वित्ताः
साक्षात्तन्त्रं #	"	"	सर्वे ६ विता ७	"	"	"	"	"	"	"	मन्थ १	मन्थ १	"	"	४१	२१
मिथुनं	"	पञ्चमं	मर्वे ३ मर्वे ३	"	"	"	मन्थान्त्रिकम- ज्ञान ३	"	केवलं विता ३	"	"	मन्थ १ सर्ववत्- तगम ३	मन्थी १	याहार १	३३	०६
मार्गस्तमस्य	"	"	"	"	"	"	मार्गान्त्रिकम- ज्ञान ३	"	"	"	"	"	"	मन्थ ० २	३६	२६
देशं Δ	विद्य- पत्तु २	"	"	"	"	"	"	देश ० १	"	"	"	"	"	मार्ता ० १	३३	२६
प्रसक्तं Δ	मर्तु प्रा. १	"	"	"	"	"	केवलविना ज्ञान ४	मार्गात्कृतं पति ३	"	"	"	"	"	"	३५	२७
मध्यमस्त	"	"	"	"	"	"	"	"	"	गुणाः ३	"	"	"	"	३२	३०
मार्तु २	"	"	"	"	"	"	"	गामांश्रुतां २	"	गुणाः ३	"	"	"	"	२८	३४
मार्निर्मुक्त	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	२८	३५
सूक्ष्म २	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	२१	३१
उपगालस्यो	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	२०	४२
क्षीयमाण	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	२१	४३
मयोपि	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	१५	४७
योपि	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	१०	५०

\* इह साक्षात्तगुणस्थानके सिद्धास्तामिप्रयेयुंकेतिवया न सन्ति, शान्तिविकल्पास्तः, न स्वशान्तिप्रकम् । कीचसमासादिभन्थाभिप्रायेणैनेन्द्रियविकल्पेन्द्रया-उभ-  
ने न सन्ति । Δ मर्गान्त्रिके देशान्त्रिके प्रसक्तमयसगुणस्थानवदेऽस्तुयस्येवमप्रय न्ति ।

---

अथ

# द्वितीये परिशिष्टे

प्राचीनकर्मग्रन्थषट्कमूलगाथा-द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठकर्मग्रन्थभाष्यगाथाः सप्तिका-  
सारगाथास्तथा सूक्तार्थविचारसारप्रकरणमूलभाष्यगाथाः ।

---

॥ श्री आश्विनानन्द-कमल-दान-प्रेमसुरिसदगुरुभ्यो नमः ॥

॥ अहंम् ॥

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्भगवद्गोपविचित्रितः

# कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

— ❦ —

ववगयकम्मकलंके, वीरं नमिउण कम्मगइकुसले ।  
वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइट्ठं समासेणं ॥१॥  
कीरइ जओ जिणं, मिच्छचारईहिं चउगइगएणं ।  
नेणिह भणइ कम्मं, अणाइयं तं पवाहेणं ॥२॥  
नरस उ चउरो मेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।  
मोयगदिट्ठंतेणं पगईमेओ इमो होइ ॥३॥  
मूलपयडीउ अडु उ, उच्चरपयडीण अडुवभसयं ।  
तासिं सभावमेया, हुंति इ मेया इमे सुणह ॥४॥  
पढमं नाणावरणं, वीयं पुण दंसणस्स आवरणं ।  
तइयं च वेयणीयं, तथा चउत्थं च मोहणियं ॥५॥  
आऊ नामं गोयं, अडुमयं अंतराइयं होइ ।  
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ॥६॥  
पंचविहनाणवरणं, नव मेया दंसणस्स दो वेए ।  
अट्ठावीसं मोहे, चचारि य आउए हुंति ॥७॥  
नामे तिउत्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।  
एएसिं मेयाणं, होइ विवागो इमो सुणह ॥८॥  
पडपडिहारसिमआइडिचित्तकुलालमंडगारीणं ।  
जह एएसिं भावा, कम्माण विजाण तह वेव ॥९॥  
सरउग्गयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायाणं जमिह ।  
नाणावरणं कम्मं, पढोवमं होइ एवं तु ॥१०॥

॥ इत्यपि पाठः । २ “पुण होइ दंसणावरणं” । ३ “आउ य नामं” । ४ “अरिमं पुण अंत०”  
मेया इमे सुणह” । ६ “कम्माणं तह सुजेयव्वा” इत्यपि । ७ “भावा” इति ।

॥ श्री आत्मानन्द-कमल-दान-प्रेमसुरिसदगुरुभ्यो नमः ॥

॥ अहम् ॥

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

# कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

— ❦ —

त्रवगयकम्मकलेके, वीरे नमिऊण कम्मगइकुसले ।  
वोच्छं कम्मविवागं, गुरुवइदुं समासेणं ॥१॥  
कीरइ जओ जिणं, मिच्छचईइ चउगइगणं ।  
नेणिह भणइ कम्मं, अणाइयं तं पवाहेणं ॥२॥  
नस्स उ चउरो मेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।  
मोयगदिदुंतेणं पगईमेओ इमो होइ ॥३॥  
मूलपयडीउ अडु उ, उत्तरपयडीण अडुवभसयं ।  
तासि सभावमेया, हुंति इ मेया इमे सुणइ ॥४॥  
पढमं नाणावरणं, वीयं पुण दंसणस्स आवरणं ।  
नइयं च वेयणीयं, तथा चउत्थं च मोहणियं ॥५॥  
आऊ नामं गोयं, अडुमयं अंतराइयं होइ ।  
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेसि ॥६॥  
पंचविहनाणवरणं, नव मेया दंसणस्स दो वेए ।  
अट्टावीसं मोहे, चत्तारि य आउए हुंति ॥७॥  
नामे तिउत्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।  
एएसि मेयाणं, होइ विवागो इमो सुणइ ॥८॥  
पडपडिहारसिमआइडिचिचकुलालमंडगारीणं ।  
जइ एएसि भावा, कम्माण वि जाण तइ वेव ॥९॥  
सरउगयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायाणं जमिह ।  
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥१०॥

। २ “पुण होइ दंसणावरणं” । ३ “आउ य नामं” । ❦ “चरिमं पुण अंत”  
” । ६ “कम्माणं तइ सुणेयव्वा” इत्यपि । ७ “भावा” इति ।

॥ श्री आत्मानन्द-कमल-दान-प्रेमसूरिसदगुरुभ्यो नमः ॥

॥ अर्हम् ॥

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

# कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

— ७६ —

ववगयकम्मकलंके, वीरं नमिऊण कम्मगइकुसले ।  
वोच्छं कम्मविवागं, गुरुवइदुं समासेणं ॥१॥  
कीरइ जओ जिणं, मिच्छचइइदि चउगइगणं ।  
नेणिह भणइ कम्मं, अणाइयं तं पवाहेणं ॥२॥  
तस्स उ चउरो भेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।  
मोयगदिदुंतेणं पगईमेओ इमो होइ ॥३॥  
मूलपयडीउ अट्ट उ, उत्तरपयडीण अट्टवन्नसयं ।  
तासिं सभावमेया, हुंति द्दु मेया इमे सुणइ ॥४॥  
यदमं नाणावरणं, वीरं पुण दंसणस्स आवरणं ।  
तइयं च वेयणीयं, तथा चउत्थं च मोहणियं ॥५॥  
आऊ नामं गोयं, अट्टमयं अंतराइयं होइ ।  
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेसि ॥६॥  
पंचविहनाणवरणं, नव भेया दंसणस्स दो वेए ।  
अट्टावीसं मोहे, चत्तारि य आउए हुंति ॥७॥  
नामे तिउत्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।  
एएसिं मेयाणं, होइ विवागो इमो सुणइ ॥८॥  
पडपडिहारसिमआहडिचित्तकुलालभंडगारीणं ।  
अह एएसिं भावा, कम्माण विजाण तह च्वेव ॥९॥  
सरउग्गयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायाणं जमिह ।  
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥१०॥

१ “सुणइ” इत्यपि पाठः । २ “पुण होइ दंसणावरणं” । ३ “आउ य नामं” । ४ “चरिमं पुण अंत०”  
५ “हुंति द्दु मेया इमे सुणइ” । ६ “कम्माणं तह सुजेयव्वा” इत्यपि । ७ “भावा” इति ।

॥ श्री आत्मालन्द-कमल-दान-प्रेमसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ अहम् ॥

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्महर्षिविरचितः

## कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

— ❦ —

व्रगयकम्मकलंकं, वीरं नमिऊण कम्मगइकुसलं ।  
वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइदुठं समासेणं ॥१॥  
कीरइ जओ जिण्णं, मिच्छचारईहिं चउगइगएणं ।  
नेणिह भण्णइ कम्मं, अणाइयं तं पचाहेणं ॥२॥  
तस्स उ चउरो मेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।  
मोयगदिदुठंतेणं पगईमेओ इमो होइ ॥३॥  
मूलपयडीउ अहु उ, उत्तरपयडीण अहुवमसयं ।  
तासिं सभावमेया, हुंति इ मेया इमे सुणइ ॥४॥  
पढमं नाणावरणं, वीर्यं पुण दंसणस्स आवरणं ।  
तइयं च वेयणीयं, तथा चउत्थं च मोहणियं ॥५॥  
आऊ नामं गोयं, अहुमयं अंतराइयं होइ ।  
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ किंतेमि ॥६॥  
पंचविहनाणवरणं, नव मेया दंसणस्स दो वेए ।  
अट्टावीसं मोहे, चत्तारि य आउए हुंति ॥७॥  
नामे तित्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।  
एएसिं मेयाणं, होइ विवागो इमो सुणइ ॥८॥  
पढपडिहारसिमआइडिचिचकुलालमंडगारीणं ।  
जइ एएसिं मावा, कम्माण विजाण तह वेव ॥९॥  
सरउग्गयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायाणं जमिह ।  
नाणावरणं कम्मं, पढोवमं होइ एवं तु ॥१०॥

१ "सुणइ" इत्यपि पाठः । २ "पुण होइ दंसणावरणं" । ३ "आउ य नामं" । ४ "चरिमं पुण अंत" ।  
५ "इ" । ६ "हुंति इ मेया इमे सुणइ" । ६ "कम्माणं तह सुणेयव्वा" इत्यपि । ७ "मावा" इति ।





शौणद्धी पुण दिणचितियस्स अत्थस्स साहणी पायं ।  
 सा संकिलिद्धकम्मस्स उदयओ होइ नियमेण ॥२४॥  
 निहापणं एयं, चक्खु आवरइ चक्खुआवरणं ।  
 सेसिंदियआवरणं, होइ अचक्खुस्स आवरणं ॥२५॥  
 सामन्नुवओगं जं, वरेइ तं ओहिदंसणावरणं ।  
 केवलसामन्नं जं, वरेइ तं केवलस्स भवे ॥२६॥  
 भणियं दंसणवरणं, तइयं कम्मं तु होइ वेयणियं ।  
 तं असिघारासरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥२७॥  
 महुलित्तनिसियकरवाल्लधारजीहाइ 'जारिसं लिहणं ।  
 तारिसयं वेयणियं, सुहदुहउप्पायगं मुणह ॥२८॥  
 महुआसायणसरिसो, सायावेयस्स होइ हु विवागो ।  
 जं असिणा वहि छिज्जइ, सो उ विवागो असायस्स ॥२९॥  
 'एयं सुहदुक्खकरं अउगइमावन्नयाण जीवाणं ।  
 सामन्नेणं भणिमो, सुहदुक्खं दुसु दुसु गइसु ॥३०॥  
 देवेषु य मणुएसु य, तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेषु ।  
 जं 'उवहु'जइ जीवो, सो उ विवागो 'उ सायस्स ॥३१॥  
 'नरएसु य तिरिएसु य, तेसु य दुक्खाइं णेगरूवाइं ।  
 जं 'उवहु'जइ जीवो, सो उ विवागो असायस्स ॥३२॥  
 एयमिह वेयणीयं, अउत्थकम्मं तु होइ मोहणियं ।  
 तं मज्जपाणसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥३३॥  
 जह मज्जपाणमूढो, लोए पुरिसो परव्वसो होइ ।  
 सह मोहेणवि मूढो, जीवोवि परव्वसो होइ ॥३४॥  
 मोहेइ मोहणीयं, तं पि समासेण 'मणणए दुविहं ।  
 दंसणमोहं पढमं, अरित्तमोहं भवे बीयं ॥३५॥  
 दंसणमोहं तिविहं, सम्मं मीसं अ तह य मिच्छत्तं ।  
 सुद्धं अद्धविसुद्धं, अविमुद्धं तं जहाकमसो ॥३६॥

१ "जारिसयलिहणं" इति "जारिसं लेहणं" इत्यपि दृश्यते । २ "एयं" इत्यपि । ३-६ "तं सु'जइ"  
 इति "वहिं सु'जइ" इत्यपि । ४-७ "अ" इति । ५ "तिरिएसु य नरएसु य तेसिं" । ८ "होइ दुविहं तु ।" इति

जह निम्मलावि चक्खु, पडेण केणावि छाइया संती ।  
१दं मंदतरागं, पिच्छइ सा निम्मला जइवि ॥११॥  
तह मइसुयणाणाणं, 'ओहीमणकेवलाण आवरणं ।  
जीवं निम्मलरूवं, आचरइ इमेहिं भेएहिं ॥१२॥  
अट्टावीसइमेयं, मइनाणं इत्थ वणिणयं समए ।  
तं आवरेइ जं तं, मइआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥  
'चोइसभेएसु गयं, सुयनाणं इत्थ वणिणयं सम्मए ।  
तरसावरणं जं पुण, सुयआवरणं हवइ वीयं ॥१४॥  
अणुगामिवड्डुनाणयमेयाइसु वणिणओ इहं ओही ।  
तं आवरेइ 'जं तं अवहीआवरणयं जाण ॥१५॥  
रिउमइविउलम'ईहिं, मणपज्जवनाणव'ण्णणं समए ।  
तं आवरिय जेणं, 'तं पि ह्हु मणपज्जवावरणं ॥१६॥  
'ल्लोयालीयगएसु', भावेसु' जं गयं महाविमलं ।  
तं आवरियं जेणं, केवलआवरणयं 'तंपि ॥१७॥  
'एवं पंचविअप्यं, नाणावरणं समासओ भणियं ।  
वीयं दंसणवरणं, नवभेयं भण्णए सुणह ॥१८॥  
दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।  
तं पडिहारसमाणं, दंसणवरणं भवे वीयं ॥१९॥  
जह रन्नो पडिहारो, अणमिप्पेयस्स सो उ लोगस्स ।  
रण्णो तहिं दरिसावं, न देइ ददूठु' पि कामस्स ॥२०॥  
जह राया तह जीवो, पडिहारसयं तु दंसणावरणं ।  
तेणिह विबंधणं, न पिच्छए सो 'घट्टाईयं ॥२१॥  
निदापणगं तत्थ उ, चउमेया दंसणस्स आवरणे ।  
'सुहपडिबोहो निदा, बीया पुण 'निदनिदा य ॥२२॥  
सा दुक्खबोहणीया, पयला पुण जा ठियस्स उट्टाइ ।  
पयलापयल चउत्थी, तीए उदओ उ चंकमणे ॥२३॥

१ "ओहिमणोके" इति । २ "चक्खु" इति ३ "जं पि य, ओहीआवरणयं तंपि" "जं पुण ओ" इति वा पाठः । ४ "चमईहि य" इति ५ "भियं समए ।" इति । ६ "तं पुण" । ७ "तं सु" । ८ "एयं" । ९ "पट्टाईयं" । १० "सुहपडिबोहा" ११ । "निदनिदत्ति" ।

धीणद्धी पुण दिणचिंतियस्स अत्थस्स साहणी पायं ।  
 सा संकिलिद्धकम्मस्स उदयओ होइ नियमेणं ॥२४॥  
 इनिहापणगं एयं, चक्खु आवरइ चक्खुआवरणं ।  
 सेसिदियआवरणं, होइ अचक्खुस्स आवरणं ॥२५॥  
 सामन्नुवओगं जं, वरेइ तं ओहिदंसणावरणं ।  
 केवलसामन्नं जं, वरेइ तं केवलस्स भवे ॥२६॥  
 भणियं दंसणवरणं, तइयं कम्मं तु होइ वेयणियं ।  
 तं असिधारासरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥२७॥  
 महुलित्तनिसियकरवाल्लधारजीहाइ 'जारिसं लिहणं ।  
 तारिसयं वेयणियं, सुहदुहउप्पायगं मृणह ॥२८॥  
 महुआसायणसरिसो, सायावेयस्स होइ हु विवागो ।  
 जं असिणा वहि छिअइ, सो उ विवागो असायस्स ॥२९॥  
 'एयं सुहदुक्खकरं चउगइमावन्नयाण जीवाणं ।  
 सामन्नेणं भणिमो, सुहदुक्खे दुसु दुसु गईसु ॥३०॥  
 देवेसु य मणुएसु य, तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेसु ।  
 जं 'उवमु'जइ जीवो, सो उ विवागो 'उ सायस्स ॥३१॥  
 'नरएसु य तिरिएसु य, तेसु य दुक्खाईं णेरूवाईं ।  
 जं 'उवमु'जइ जीवो, सो 'उ विवागो असायस्स ॥३२॥  
 एयमिह वेयणीयं, चउत्थकम्मं तु होइ मोहणियं ।  
 तं मअपाणसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥३३॥  
 जह मअपाणमूढो, लोए पुरिसो परव्वसो होइ ।  
 सह मोहेणवि मूढो, जीवोवि परव्वसो होइ ॥३४॥  
 मोहेइ मोहणीयं, तं पि समासेण 'मणए दुविहं ।  
 दंसणमोहं पढमं, चरित्तमोहं भवे बीयं ॥३५॥  
 दंसणमोहं तिविहं, सम्मं मीसं च तह य मिच्छत्तं ।  
 सुद्धं अद्धविसुद्धं, अविसुद्धं तं जहाकमसो ॥३६॥

१ "जारिसयलिहणं" इति "जारिसं लेहणं" इत्यपि दृश्यते । २ "एयं" इत्यपि । ३-६ "तं मु'जइ" इति "वहिं मु'जइ" इत्यपि । ४-७ "च" इति । ५ "तिरिएसु यनरएसु य तेसि" । ६ "होइ दुविहं तु ।" इति ।

जह निम्मलावि चक्खु, पडेण केणावि छाइया संती ।  
१११॥ मंदतरागं, पिच्छइ सा निम्मला बह्वि ॥११॥  
तह मइसुयणाणाणं, ओहीमणकेवलाण आवरणं ।  
जीवं निम्मलरूवं, आवरइ इमेहिं भेएहिं ॥१२॥  
अट्टावीसइभेयं, महनाणं इत्थ वण्णियं समए ।  
तं आवरेइ जं तं, मइआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥  
चोदसभेएसु गयं, सुयनाणं इत्थ वण्णियं सम्मए ।  
तस्सावरणं जं पुण, सुयआवरणं हवइ वीयं ॥१४॥  
अणुगामिवडूनाणयमेयाइसु वण्णो ओही ।  
तं आवरेइ जं तं अवहीआवरणयं जाण ॥१५॥  
रिउमइविउलम ईहिं, मणपज्जवनाणवण्णणं समए ।  
तं आवरिय जेणं, तं पि हु मणपज्जवावरणं ॥१६॥  
लोयालोयगएसु, भावेसुं जं गयं महाविमलं ।  
तं आवरियं जेणं, केवलआवरणयं तंपि ॥१७॥  
एवं पंचविअप्यं, नाणावरणं समासओ भणियं ।  
वीयं दंसणवरणं, नवभेयं भण्णए सुणह ॥१८॥  
दंसणसीलो जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।  
तं पडिहारसमाणं, दंसणवरणं मवे वीयं ॥१९॥  
जह रन्नो पडिहारो, अणभिप्पेयरस सो उ लोगस्स ।  
रण्णो तहिं दरिसावं, न देइ दट्टुं पि कामस्स ॥२०॥  
जह राया तह जीवो, पडिहारसमं तु दंसणावरणं ।  
तेणिह विवंधएणं, न पिच्छए सो घडाईयं ॥२१॥  
निहापणगं तत्थ उ, चउमेया दंसणस्स आवरणे ।  
सुहपडिबोहो निहा, वीया पुण निहनिहा य ॥२२॥  
सा दुक्खबोहणीया, पयला पुण जा ठियस्स उद्धाइ ।  
पयलापयल चउत्थी, तीए उदओ उ चंकमणे ॥२३॥

१ "ओहिमणोके" इति । २ "चहवस" इति ३ "जं पि य, ओहीआवरणयं तंपि" "जं पुण ओ" इति वा पाठः । ४ "मईहि य" इति ५ "अभियं समए" इति । ६ "तं पुण" । ७ "तं तु" । ८ "एयं" । ९ "पडाईयं" । १० "सुहपडिबोहा" ११ । "निहनिहत्ति" ।

नव नोकसाय भणिमो, वेया तिन्नेव हासछकं च ।  
 इत्थीपुरिसनपुंसग, तेमि सरूवं इमं होइ ॥५०॥  
 पुरिसं पइ अहिलासो, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।  
 सो कुं कुमदाहससो, इत्थीवेयस्स उ विवागो ॥५१॥  
 इत्थीए पुण उवरिं, जस्मिह उदएण रागमुप्पजे ।  
 सो तणदाहसमाणो, होइ विवागो पुरिसवेए ॥५२॥  
 इत्थीपुरिसानुवरिं, जस्सिह उदएण रागमुप्पजे ।  
 नगरमहादाहससो, सो उ विवागो अपुमवेए ॥५३॥  
 तिण्ह वि होइ विवागो, मिच्छाओ जाव चापरो ताव ।  
 हासरईअरइभयं, सोगदुगुच्छा उ अह भणिमो ॥५४॥  
 सनिमित्तंनिमित्तं वा, जं हासं होइ इत्थ जीवस्स ।  
 सो हासमोहणीयस्स होइ कम्मस्स उ विवागो ॥५५॥  
 सच्चिचाचित्तेसु, य बाहिरदब्बेसु जस्स उदएणं ।  
 होइ रई रहमोहे, सो उ विवागो वियाणाहि ॥५६॥  
 सच्चिचाचित्तेसु य, बाहिरदब्बेसु जस्स उदएणं ।  
 अरई होइ हु जीवे सो उ विवागो अरइमोहे ॥५७॥  
 मयवस्त्रियंमि जीवे, जस्सिह उदएण हुंति कम्मस्स ।  
 मच्चवि भयठाणाहं, मयमोहे सो विवागो उ ॥५८॥  
 सोगरहियंमि जीवे, जस्सिह उदएण होइ कम्मस्स ।  
 अक्कंदणाइसोगो, तं जाणह सोगमोहणियं ॥५९॥  
 दुग्गंधमल्लिण्णोसु य, अर्द्धिमतारवाहारेसु दब्बेसु ।  
 जेण विलीयं जीवे उप्पअइ सा दुगुच्छा उ ॥६०॥  
 छण्हवि होइ विवागो, मिच्छाओ जा अपुव्वकरणस्स ।  
 चरमसमउ चि परओ, नत्थि विवागो उ छण्हं पि ॥६१॥  
 भणिओ मोहविवागो, आउयकम्मं तु पंचमं भणिमो ।  
 तं होइ चउपयारं, नरतिरिमणुदेवमेएहि ॥६२॥

१-४ "जस्सुदएणं तु" इति २-५ "राग उप्पजे" इति । ३ "उ पुमवेए" इति । ६ "होइ" इति 'आण' इति वा ७- "नपुंसस्स" इति । ८ "तिण्हवि जाण विवागो" इति । ९-१६-१८ "च" इति । १० "एत्थ" इति । ११ "तं तु विवागं वियाणाहि" "सो उ विवागो मुण्येयव्वो" इति । १२ "जस्स उ" इति । १३ "आणसु" इति । १४ "सत्थिमर" इति । १५ "दुगुच्छा" इति । १७ "जाण" इति । १९ "च" । २० "नपि हु चउपयारं" इति ।

कैवलनाणुवलद्रे, जीवाइपयत्थ मद्दे जेणं ।  
 तं संमत्तं कम्मं, सिवगुहमंपत्तिपरिणामं ॥३७॥  
 रागं नवि जिणधम्मो, नवि दोसं जाइ जस्स उदएणं ।  
 सो मीसस्स विवागो, अंतमुहुत्तं भवे कालं ॥३८॥  
 जिणधम्मंमि पओसं, वद्दे य हियएण जस्म उदएणं ।  
 तं मिच्छत्तं कम्मं, संकिट्ठो तस्स उ विवागो ॥३९॥  
 जं पि य चरित्तमोहं, तं पि हु दुविहं समासओ होइ ।  
 सोलस जाण कसाया, नव भेया नोकसायाणं ॥४०॥  
 कोहो माणो माया, लोभो चउरो वि हुंति चउभेया ।  
 अणअप्पच्चक्खाणा, पच्चक्खाणा य संजलणा ॥४१॥  
 कोहो माणो माया लोभो पढमा अणंतवधी उ ।  
 एयाणुदए जीवो, इह संमत्तं न पावेइ ॥४२॥  
 जं परिणामो किट्ठो मिच्छाओ जाव सासणो ताव ।  
 संमामिच्छाईसु, एसि उदओ अओ नत्थि ॥४३॥  
 कोहो माणो माया, लोभो वीया अपच्चक्खाणा उ ।  
 एयाणुदए जीवो, विरयाविरइं न पावेइ ॥४४॥  
 एसि जाण विवागो, मिच्छाओ जाव अविरओ ताव ।  
 परओ देसजयाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४५॥  
 कोहो माणो माया, लोभो तइया उ पच्चक्खाणा उ ।  
 एयाणुदए जीवो, पावेइ न सच्चविरइं तु ॥४६॥  
 एसि जाण विवागो, मिच्छाओ जाव विरयविरओ उ ।  
 परओ पमत्तमाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४७॥  
 कोहो माणो माया, लोभो चरिमा उ हुंति संजलणा ।  
 एयाणुदए जीवो, न लेहइ अहखायचारित्तं ॥४८॥  
 एसि जाण विवागो, मिच्छाओ जाव वायरो तिण्हं ।  
 लोमस्स जाव सुहुमो, होइ विवागो न परओ उ ॥४९॥

१ "न य" इति । २ "इवइ" इति । ३ "जिणधम्मस्स पओसं वद्दे उदएण जस्स कम्मस्स" ।  
 ४ "तं पि समासेण होइ दुविहं तु ।" इत्यपि । "तं पि समासेण दुविहं भणियं तु ।" इत्यपि । ५ "अणंतवधी" इति । ६ "अओ" इति । ७-९-११ "जेण" इति । ८ "सच्चविरइं व" इति । १०/१२ "य" इति ।

केवलनाणुवलद्वे, जीवाइपयत्थ सहहे जेणं ।  
 तं संमत्तं कम्मं, सिवगुहमंपत्तिपरिणामं ॥३७॥  
 रागं नवि जिणधम्ममे, 'नवि दोसं जाइ जस्स उदएणं ।  
 सो मीसस्स विवागो, अंतमुहूत्तं भवे कालं ॥३८॥  
 'जिणधम्ममि पओसं, वहइ य हियएण जस्म उदएणं ।  
 तं मिच्छत्तं कम्मं, संकिट्ठो तस्स उ विवागो ॥३९॥  
 जं पि य चरित्तमोहं, 'तं पि हु दुविहं समासओ होइ ।  
 सोलस जाण कसाया, नव मेया नोकसायाणं ॥४०॥  
 कोहो माणो माया, लोभो चउरो वि हुंति चउमेया ।  
 अणअप्पच्चक्खाणा, पञ्चक्खाणा य संजलणा ॥४१॥  
 कोहो माणो माया लोभो पढमा 'अणंतवधी उ ।  
 एयाणुदए जीवो, इह संमत्तं न पावेइ ॥४२॥  
 जं परिणामो किट्ठो मिच्छाओ जाव सासणो ताव ।  
 संमामिच्छाईसुं, एसि उदओ 'अओ नत्थि ॥४३॥  
 कोहो माणो माया, लोभो वीया अपञ्चखाणा उ ।  
 एयाणुदए जीवो, विरयाविरहं न पावेइ ॥४४॥  
 एसि 'जाण विवागो, मिच्छाओ जाव अविरओ ताव ।  
 परओ देसजयाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४५॥  
 कोहो माणो माया, लोभो तइया उ पञ्चखाणा उ ।  
 एयाणुदए जीवो, पावेइ न 'सच्चविरहं तु ॥४६॥  
 एसि 'जाण विवागो, मिच्छाओ जाव विरयविरओ 'उ ।  
 परओ पमत्तमाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४७॥  
 कोहो माणो माया, लोभो चरिमा उ हुंति संजलणा ।  
 एयाणुदए जीवो, न लहइ अहखायचारित्तं ॥४८॥  
 एसि 'जाण विवागो, मिच्छाओ जाव षायरो तिण्हं ।  
 लोमस्स जाव सुहुमो, होइ विवागो न परओ 'उ ॥४९॥

१ "न य" इति । २ "इवइ" इति । ३ "जिणधम्मस्स पओसं वहई उदएण जस्स कम्मस्स" ।  
 ४ "तंपि समासेण होइ दुविहं हु ।" इत्यपि । "तं पि समासेण दुविहं मणियं तु ।" इत्यपि । ५ "अणंतवधी" ।  
 इत्यपि । ६ "जओ" इति । ७-९-११ "जेण" इति । ८ "सच्चविरहं च" इति । १०/१२ "य" इति ।



नव नोकसाय भणिमो, वेया तिन्नेव हासछकं च ।  
 इत्थीपुरिसनपुंसग, तेमि सरुवं इमं होइ ॥५०॥  
 पुरिसं पइ अहिलासो, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।  
 सो पुं'कुमदाहसमो, इत्थीवेयस्स उ विवागो ॥५१॥  
 इत्थीए पुण उवरिं, 'जस्मिह उदएण 'रागमुप्पञ्जे ।  
 सो तणदाहसमाणो, होइ विवागो 'पुरिसवेए ॥५२॥  
 इत्थीपुरिसाणुवरिं, 'जस्सिह उदएण 'रागमुप्पज्जे ।  
 नगरमहादाहसमो, 'सो उ विवागो 'अपुमवेए ॥५३॥  
 'तिण्ह वि होइ विवागो, मिच्छाओ जाव वायरो ताव ।  
 हासरईअरइभयं, मोगदुगु'च्छा 'उ अह भणिमो ॥५४॥  
 सनिमित्त'निमित्तं वा, जं हासं होइ 'इत्थ जीवस्स ।  
 सो हासमोहणीयस्स होइ कम्मस्स उ विवागो ॥५५॥  
 सच्चित्ताचित्तेसु, य बाहिरदब्बेसु जस्स उदएणं ।  
 होइ रई रइमोहे, 'सो उ विवागो वियाणाहि ॥५६॥  
 सच्चित्ताचित्तेसु य, बाहिरदब्बेसु जस्स उदएणं ।  
 अरई होइ हु जीवे सो उ विवागो अरइमोहे ॥५७॥  
 भयवञ्जियंमि जीवे, जस्सिह उदएण हुंति कम्मस्स ।  
 मत्तवि भयठाणाइं, भयमोहे सो विवागो उ ॥५८॥  
 सोगरहियंमि जीवे, 'जस्सिह उदएण होइ कम्मस्स ।  
 अक्कंदणाइसोगो, तं 'जाणह सोगमोहणियं ॥५९॥  
 दुगंथमलिणगेसु य, 'अब्भितरबाहिरेसु दब्बेसु ।  
 जेण विलीयं जीवे उप्पज्जइ सा' दुगु'च्छा 'उ ॥६०॥  
 छण्हवि 'होइ विवागो, मिच्छाओ जा अपुव्वकरणस्स ।  
 चरमसमउ सि परओ, नत्थि विवागो 'उ छण्हं पि ॥६१॥  
 भणिओ मोहविवागो, आउयकम्मं 'तु पंचमं भणिमो ।  
 'तं होइ चउपयारं, नरतिरिमणुदेवमेएहि ॥६२॥

१-४ "जस्सुदएणं तु" इति २-५ "राग उप्पज्जे" इति । ३ "उ पुमवेए" इति । ६ "होइ" इति 'जाण'  
 इति वा ७- "नपुंसस्स" इति । ८ "तिण्हवि जाण विवागो" इति । ९-१६-१८ "च" इति । १०  
 "पत्थ" इति । ११ "तं तु विवागं वियाणाहि" "सो उ विवागो मुणेयव्वो" इति । १२ "जस्स उ" इति ।  
 १३ "जाणसु" इति । १४ "सब्भितर" इति । १५ "दुगंछा" इति । १७ "जाण" इति । १९ "च" ।  
 २० "तं पि इ चउपयारं" इति ।

दुक्खं न देइ आउं 'नेय सुहं देइ चउसुवि गईसु ।  
 दुक्खसुहाणाहारं, धरेइ देहद्वियं जीवं ॥६३॥  
 जं नेरइयं नारयभवम्मि तहिं धरइ उच्चियंतं पि ।  
 जाणसु तं निरयाउं हडिसरिसो तस्स उ विवागो ॥६४॥  
 एवं तिरियं मणुयं देवं तिरियाइएसु 'भावेसु ।  
 जं धरइ तच्चभवगयं तं तेसिं आउयं भणियं ॥६५॥  
 भणियं आउयकम्मं, छट्टं कम्मं 'तु मण्णए नामं ।  
 तं चित्तगरसमाणं, 'जह होइ तद्वा निसामेह ॥६६॥  
 जह चित्तयरो निउणो, अणेग'रूवाइँ कुणइ रूवाइँ ।  
 सोहणमसोहणाइँ, 'चुक्खाचुक्खेहिँ वण्णेहिँ ॥६७॥  
 तह नामं पि य कम्मं, अणेगरूवाइँ कुणइ जीवस्स ।  
 सोहणमसोहणाइँ, इट्ठाणिट्ठाइँ लोयस्स ॥६८॥  
 गइयाइए'सु जीवं, नामह भेएसु जं तओ नामं ।  
 तस्स 'उ वायालीळं, भेया अहवावि सत्तही ॥६९॥  
 अहवावि 'हु तेणउई, भेया पयडीण 'हुँति नामस्स ।  
 अहवा तिउत्तरसयं, सञ्चेवि जहकम्मं भणिमो ॥७०॥  
 पढमा वायालीसा, गइजाइसरीरअंगुवणे य ।  
 बंधणसंघायणसंघयणसंठाणनामं च ॥७१॥  
 तह वण्णगंधरसफासनामअगुरुलहुयं च चोधव्वं ।  
 उववायपराभायणुणुच्चिउस्सासनामं च ॥७२॥  
 आयावुज्जोयविहायगई तसथावराभिहाणं च ।  
 वायरसुहुमं पज्जत्तापज्जत्तं च नायव्वं ॥७३॥  
 पत्तेयं साहारण, थिरमथिर'सुभासुभं च नायव्वं ।  
 'सुभगदूमगनामं, सुसर तह दूसरं चैव ॥७४॥  
 आइज्जमणइज्जं, जसकित्तोनाममजसकित्ती य ।  
 निस्साणं तित्थयरं, भेयाणवि हुँतिमे भेया ॥७५॥

१ "नेव" इति "न विय" इति वा पाठः । २ "भेएसु" इति । ३ "उ" । ४ "अणेगरूव्वं जियं कुणइ" इति । ५ "भेयाइ" । ६ "चुक्खवम चोक्खेहिँ" "चोक्खाचोक्खेहिँ" इत्यपि वा पाठः । ७ "-सु" य जियं" इति । ८ "य" इति । ९ "उ तेणउइ वि" इति । १० "हुँति" इति । ११ "सुहासुहं" इति । १२ "सुहगवूहग" इति ।



दुक्खं न देइ आउं 'नेय सुहं देइ चउसुवि गइसु ।  
 दुक्खसुहाणाहारं, धरेइ देहद्वियं जीवं ॥६३॥  
 जं नेरइयं नारयभवम्मि तहिं धरइ उच्चियंतं पि ।  
 जाणसु तं निरयाउं हडिसरिसो तस्स उ चिवागो ॥६४॥  
 एवं तिरियं मणुयं देवं तिरियाइएसु भावेसु ।  
 जं धरइ तवभवगयं तं तंति आउयं भणियं ॥६५॥  
 भणियं आउयकम्मं, छट्टं कम्मं तु भणए नामं ।  
 तं चित्तगरसमाणं, जह होइ तहा निसामेह ॥६६॥  
 जह चित्तयो निउणो, अणेगं रूवाइं कुणइ रूवाइं ।  
 सोहणमसोहणाइं, चुक्खाचुक्खेहिं वण्णेहिं ॥६७॥  
 तह नामं पि य कम्मं, अणेगरूवाइं कुणइ जीवस्स ।  
 सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइं लोयस्स ॥६८॥  
 गइयाइएसु जीवं, नामइ भेएसु जं तओ नामं ।  
 तस्स उ वायालीं, भेया अहवावि सत्तही ॥६९॥  
 अहवावि हु तेणउई, भेया पयडीणं हुंति नामस्स ।  
 अहवा तिउत्तरसयं, सव्वेवि जहकम्मं भणिमो ॥७०॥  
 पढमा वायालीसा, गइजाइसरीरअंगुवंगे य ।  
 वंधणसंधायणसंधयणसंठाणनामं च ॥७१॥  
 तह वण्णगंधरसफासनामअगुरुलहुयं च बोधव्वं ।  
 उवघायपराघायाणुण्विउस्सासनामं च ॥७२॥  
 आयावुओयविहायगई तसथावराभिहाणं च ।  
 बायरसुहुमं पज्जत्तापज्जत्तं च नायव्वं ॥७३॥  
 पत्तेयं साहारण, थिरमथिरं सुमासुभं च नायव्वं ।  
 सुमगदमगनामं, सुसर तह दूसरं चैव ॥७४॥  
 आइजमणाइज्जं, जसकित्तीनाममजसकित्ती य ।  
 निम्माणं तित्थयरं, भेयाणावि हुंतिमे भेया ॥७५॥

१ "नेव" इति "न धिय" इति वा पाठः । २ "भेएसु" इति । ३ "ह" । ४ "अणेगरूवं जियं कुणइ" इति । ५ "भेयाइ" । ६ "चुक्ख वम बोक्खेहिं" "चोक्खाचोक्खेहिं" इत्यपि वा पाठः । ७ "सु" य जियं" इति । ८ "य" इति । ९ "उ तेणउई वि" इति । १० "होति" इति । ११ "सुहासुइ" इति । १२ "सुहगदुहण" इति ।



ओरालियं सरीरं, उदणं होइ जस्म कम्मस्म ।  
 तं ओरालियनामं, सेससरीग वि एमेव ॥८६॥  
 अंगोवंगविभागो, उदणं होइ जस्म कम्मस्म ।  
 तं अंगुवंगनामं, तस्म विवागो इमो होइ ॥९०॥  
 मीससुरोयरपिट्ठी दो वाह उरुया य अहुंगा ।  
 अंगुलिमाइउवंगा, अंगोवंगाइं सेसाइं ॥९१॥  
 आइल्लाणं तिण्हं, हुंति सरीगण अंगुवंगाइं ।  
 'नो तेयगकम्माणं, वंधणनामं इमं होइ ॥९२॥  
 ओरालियओरालिय ओरालियतंयबंधणं वीयं ।  
 ओरालकम्मबंधण, तिण्हवि जोगे चउत्थं तु ॥९३॥  
 ओरालपुग्गला, इह, बद्धा जीवेण जे उरालत्ते ।  
 अन्ने उ बज्झमाणा, ओरालियपुग्गला जे य ॥९४॥  
 तेसिं जं संबंधं, अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।  
 तं जउसरिसं जाणसु, ओरालियबंधणं पढमं ॥९५॥  
 एवोरालियतेयग, ओरालियकम्मबंधणं तह य ।  
 ओरालतेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥९६॥  
 वेउच्चियवेउच्चिय, वेउच्चियतेयबंधणं वीयं ।  
 वेउच्चिकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥९७॥  
 वेउच्चिपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे विउच्चित्ते ।  
 अन्ने य बज्झमाणा, वेउच्चियपुग्गला जे उ ॥९८॥  
 तेसिं जं संबंधं, अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।  
 तं जउसरिसं जाणसु, वेउच्चियबंधणं पढमं ॥९९॥  
 एवं विउच्चितेयग, वेउच्चियकम्मबंधणं तह य ।  
 वेउच्चितेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥१००॥  
 आहारगआहारग, आहारगतेयबंधणं वीयं ।  
 आहारकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१०१॥  
 आहारपुग्गला इह, आहारत्तेण जे निबद्धा उ ।  
 अन्ने य बज्झमाणा, आहारगपुग्गला जे उ ॥१०२॥

तेसिं जं संबंधं, 'अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।  
तं जउसरिसं जाणसु, आहारगबंधणं पढमं ॥१०३॥  
एवाहारगतेयग, आहारगकम्मबंधणं तह य ।  
आहारतेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥१०४॥  
एवं तेयगतेयग, तेयग 'कम्मे य बंधणं तह य ।  
'कम्मइगं कम्मइगं, बंधण'नामं पि पनरसभं ॥१०५॥  
संघायनाम'महुणा, संघायइ जेण तेण संघायं ।  
ओरालियसंघायं, वेउन्विय जाव 'कम्मइगं ॥१०६॥  
ओरालाई जे देहपुग्गला 'होति जंमि ठाणंमि ।  
ते 'ठंति तंमि ठाणे, संघायण'कम्मणो उदए ॥१०७॥  
वज्जरिसहनारायं, 'रिसहं नारायमद्धनारायं ।  
कीलिय तह छेवट्ट', तेपि सरूवं इमं होइ ॥१०८॥  
रिसहो 'य होइ पट्टो, वज्जं पुण कीलिया मुणेयव्वा ।  
उमओ 'मकडबंधं, नारायं तं वियाणाहि ॥१०९॥  
जस्सुदएणं जीवे, संघयणं होइ वज्जरिसहं तु ।  
तं वज्जरिसहनामं सेसावि हु एव संघयणा ॥११०॥  
समचउरंसे नग्गोहमंडलं साइवामणे खुज्जे ।  
हुंढे वि य 'संठाणे, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१११॥  
तुल्लं वित्थडवहुलं, उस्सेइवहुं च मडइ 'कोट्टं च ।  
हिड्डिल्लकायमडहं, सब्बत्थासंठियं हुंढं ॥११२॥  
जस्सुदएणं जीवे, चउरंसं नाम होइ संठाणं ।  
तं चउरंसं नामं, सेसावि हु एव संठाणां ॥११३॥  
किण्हा नीला लोहिय, हालिइ तह य हुंति 'सुकिलया ।  
जियदेहाणं वण्णा, उदएणं वण्णनामस्स ॥११४॥  
गंधेण सुरभिगंधं, अहवा गंधेण दुरभिगंधं तु ।  
होइ जिया'णं देहं, उदएणं गंधनामस्स ॥११५॥

१ "अवरुप्परपोग्गलाण" इत्यपि । २ "कम्मयगबंधणं" इत्यपि । ३ "कम्मइयं कम्मइयं" इत्यपि ।  
४ "नामं तु पन्नरसं" इति । ५ "अहुणा" इत्यपि । ६ "कम्मइय" इत्यपि । ७-८ "हुंति" । ९ "कम्मणो"  
इत्यपि । १० "पढमं धीयं च रिसहनारायं । नारायमद्धनारायकीलिया तह य छेवट्टं" ॥" इति पाठः ।  
११ "अ" इति वा । १२ "मकडबंधो;" इति ॥ १३ "संठाणा जीवाणं छ मुणेयव्वा" इत्यपि । १४ "कुट्टं"  
इति वा । १५ "सुक्का य" इति । १६ "ण सरिं" इति ।

भोरालियं सरिरं, उदणं होइ जस्म कम्मम्म ।  
 तं ओरालियनामं, सेममरीग वि एमेव ॥८६॥  
 अंगोवंगविभागो, उदणं होइ जस्म कम्मस्स ।  
 तं अंगुवंगनामं, तरम विवागो इमो होइ ॥९०॥  
 मीससुरोयरपिड्डी दो वाह उरुया य अहुंगा ।  
 अंगुलिमाइउवंगा, अंगोवंगाइं सेमाइं ॥९१॥  
 आइल्लाणं तिण्हं, हुंति मरीगण अंगुवंगाइं ।  
 नो तेयगकम्माणं, वंधणनामं इमं होइ ॥९२॥  
 ओरालियओरालिय ओरालियतेयबंधणं वीयं ।  
 ओरालकम्मबंधण, तिण्हवि जोगे चउत्थं तु ॥९३॥  
 भोरालपुग्गला, इह, बद्धा जीवेण जे उरालत्ते ।  
 अन्ने उ बज्झमाणा, ओरालियपुग्गला जे य ॥९४॥  
 तेसिं जं संबंधं, अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।  
 तं जउसरिसं जाणसु, ओरालियबंधणं पढमं ॥९५॥  
 एवोरालियतेयग, ओरालियकम्मबंधणं तह य ।  
 ओरालतेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥९६॥  
 वेउन्वियवेउन्विय, वेउन्वियतेयबंधणं वीयं ।  
 वेउन्विकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥९७॥  
 वेउन्वियपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे विउन्वित्ते ।  
 अन्ने य बज्झमाणा, वेउन्वियपुग्गला जे उ ॥९८॥  
 तेसिं जं संबंधं, अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।  
 तं जउसरिसं जाणसु, वेउन्वियबंधणं पढमं ॥९९॥  
 एवं विउन्वितेयग, वेउन्वियकम्मबंधणं तह य ।  
 वेउन्वितेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥१००॥  
 आहारगआहारग, आहारगतेयबंधणं वीयं ।  
 आहारकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१०१॥  
 आहारपुग्गला इह, आहारसेण जे निबद्धा उ ।  
 अन्ने य बज्झमाणा, आहारगपुग्गला जे उ ॥१०२॥



तेषां जं संबन्धं, 'अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।  
 तं जउसरिसं जाणसु, आहारगबंधणं पढमं ॥१०३॥  
 एवाहारगतेयग, आहारगकम्मबंधणं तह य ।  
 आहारतेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥१०४॥  
 एवं तेयगतेयग, तेयग 'कम्मे य बंधणं तह य ।  
 'कम्मइयं कम्मइयं, बंधण'नामं पि पनरसभं ॥१०५॥  
 संघायनाम'महुणा, संघायइ जेण तेण संघायं ।  
 ओरालियसंघायं, वेउव्विय जाव 'कम्मइयं ॥१०६॥  
 ओरालाई जे देहपुग्गला 'होति जंमि ठाणमि ।  
 ते 'ठंति तंमि ठाणे, संघायण'कम्मणो उदए ॥१०७॥  
 वज्जरिसहनारायं, 'रिसहं नारायमद्धनारायं ।  
 कीलिय तह खेवट्ट', तेपि सरूवं इमं होइ ॥१०८॥  
 रिसहो 'य होइ पट्टो, वज्जं पुण कीलिया मृणोयव्वा ।  
 उमओ 'मक्कडबंधं, नारायं तं वियाणाहि ॥१०९॥  
 जस्सुदएणं जीवे, संघयणं होइ वज्जरिसहं तु ।  
 तं वज्जरिसहनामं सेसावि ह्नु एव संघयणा ॥११०॥  
 समचउरंसे नग्गोहमंडलं साइवामणे खुज्जे ।  
 हुंहे वि य 'संठाणे, तेषि सरूवं इमं होइ ॥१११॥  
 तुल्लं वित्थडवहुलं, उस्सेहवहुं च मडह'कोट्टं च ।  
 विट्ठिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंढं ॥११२॥  
 जस्सुदएणं जीवे, चउरंसं नाम होइ संठाणं ।  
 तं चउरंसं नामं, सेसावि ह्नु एव संठाणा ॥११३॥  
 किण्हा नीला लोहिय, हालिहा तह य हुंति 'सुकिलया ।  
 जियदेहाणं वण्णा, उदएणं वण्णनामस्स ॥११४॥  
 गंधेण सुरमिगंधं, अहवा गंधेण दुरमिगंधं तु ।  
 होइ जिया'णं देहं, उदएणं गंधनामस्स ॥११५॥

१ "अवरोप्परपुग्गलाण" इत्यपि । २ "कम्मयगबंधणं" इत्यपि । ३ "कम्मइयं कम्मइयं" इत्यपि ।  
 ४ "'नामं तु पनरसं" इति । ५ "महुणा" इत्यपि । ६ "कम्मइय" इत्यपि । ७-८ "हुंति" । ९ "कम्मणो"  
 इत्यपि । १० "पढमं वीयं च रिसहनारायं । नारायमद्धनारायकीलिया तह य खेवट्टं ॥" इति पाठः ।  
 ११ "अ" इति वा । १२ "मक्कडबंधो;" इति ॥ १३ "संठाणा जीवाणं च मृणोयव्वा" इत्यपि । १४ "कुट्टं"  
 इति वा । १५ "सुक्का य" इति । १६ "'ण सरीर" इति ।

१ 'तित्तकहुयकसाया, अंवलमहुरा २ रसावि ३ पंच भवे ।  
 तेवि ह्नु जियदेहाणं, रसनामृदएण खज्जंता ॥११६॥  
 गुरुलहुमिउकटिणावि य. निद्धा लुक्खा य होंति सीउण्हा ।  
 जियदेहाणं फासा, उदएणं फासनामस्स ॥११७॥  
 गुरुअं न होइ देहं, न य लहुयं होइ सच्चजीवाणं ।  
 होइ ह्नु अगुरुयलहुयं, अगुरुलहुयनामउदएणं ॥११८॥  
 अंगावययो पड्डिजिन्धिया ४ इ जो अप्पणो उवग्घायं ।  
 कुणइ ह्नु देहंमि ठिओ, सो उववायस्स उ विवागो ॥११९॥  
 तयविसदंतविमाई, अंगावयवो ५ य जो उ अन्नेसिं ।  
 जीवाण कुणइ घायं, सो परवायस्स उ विवागो ॥१२०॥  
 नारयतिरियनरामरभवेसु जंतस्स अंतरगईए ।  
 अणुपुच्चीए उदओ, सा चउहा ६ सुणसु जह होइ ॥१२१॥  
 नरयाउयस्स उदए, नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।  
 नरयाणुपुच्चियाए, ७ तहि उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥  
 एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।  
 तेसिमणुपुच्चियाणं, ८ तहि उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥  
 जस्सुदएणं जीवे, निप्फत्ती होइ आणपाणूणं ।  
 तं ९ ऊसासं नामं, तस्स विवागो सरीरम्मि ॥१२४॥  
 जस्सुदएणं जीवे, होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ ।  
 सो आयवे विवागो, जह रविंविंवे तहा जाण ॥१२५॥  
 १० न भवइ तेयसरीरे, जेण उ तेयस्स उसिणफासस्स ।  
 होइ ह्नु उदओ नियमा, तह लोहियवण्णनामस्स ॥१२६॥  
 जस्सुदएणं जीवो, अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं ।  
 तं उज्जोयं नामं, जाणसु खज्जोयमाईणं ॥१२७॥  
 जस्सुदएणं जीवो, वर ११ वसमगईए गच्छइ गईए ।  
 १२ सा सुहया विहगगई, इंसाईणं भवे सा उ ॥१२८॥

१ "तित्तकहुया कसाया" इत्यपि पाठः । २ "रसा व" इति । ३ "पंचविहा" इति । ४ "य जो अप्पणो उवग्घाय" इति वा । ५ "य जो उ अन्नेसिं" इति वा । ६ "सुणइ" इति । ७ "उदओ तहि" इति वा । ८ "ऊसासं" इति । ९ "किं नचि तेवसरीरेः मण्णइ तेयस्स" इति पाठः "किञ्च ह्नु" इति वा । १० "वसह" इति वा । ११ "सा य सुहा" इति ।

जस्सुदणं जीवो, 'अमणिट्टाए उ गच्छइ गईए ।  
 सा असुहा विहगगई, उट्टाईणं भवे सा उ ॥१२६॥  
 तस-वायर-पज्जत्तं, पत्तेय-थिरं सुभं च सुभगं च ।  
 सूसर-आइज्ज-जसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥१३०॥  
 आइम्मि तसचउक्कं, थिराइछक्कं तु उवरिभं होइ ।  
 थावरदसगं अहुणा, 'थावर-सुहुमं अपज्जत्तं ॥१३१॥  
 होइ तहा साहारं, अधिरं असुभं च द्भगं चैव ।  
 दूसरणाइज्जेहिँ अ, अजसेहिँ य वीयदसगं तु ॥१३२॥  
 आइम्मि थावरचऊ, सुहुमतिगं उवरिभं भवे इत्थ ।  
 अधिराइछक्कमुवरिं, 'विवागभेअं अओ भणिमो ॥१३३॥  
 तसनामुदए जीवो, वेइदियमाइ जाइ 'जीवेसु ।  
 थावरनामुदए 'पुण, पुढवीमाईसु सो जाइ ॥१३४॥  
 चायरनामुदएणं, वायरकाओ 'उ होइ सो नियमा ।  
 सुहुमेण सुहुमकाओ, अंतमुहुत्ताओ होइ ॥१३५॥  
 आहारसरीरिंदियपज्जत्तीआणपाणभसमणे ।  
 चत्तारि पंच छप्पि य, एगिंदियविगलसन्धीणं ॥१३६॥  
 एयासिं निष्फत्ती, उदएणं जस्स होइ कम्मस्स ।  
 तं पज्जत्तं नामं, इयरुदए नत्थि निष्फत्ती ॥१३७॥  
 इक्किक्कयंमि जीवे, इक्किक्कं जस्स होइ उदएणं ।  
 'ओरालाइसरीरं, तं नामं होइ पत्तेयं ॥१३८॥  
 जीवाणमणंताणं, इक्कं ओरालियं इह सरीरं ।  
 हवइ 'हु जस्सुदएणं, तं साहारं 'हवइ नामं ॥१३९॥  
 दंतट्टाइथिराणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।  
 निष्फत्ती उ सरीरे, 'जायइ तं होइ थिरनामं ॥१४०॥  
 नीहाभमुहाईणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।  
 निष्फत्ती उ सरीरे, जायइ तं अधिरनामं तु ॥१४१॥

१ 'अमणीट्टाए य' इति । २ 'थावरसुहुमं च साहारं ॥१३१॥ तह होइ अपज्जत्तं' इति ॥ ३ 'विवा-  
 गभेओ इमो मणिओ' इति, 'विवागभेओ इमो होइ' इति वा पाठः । ४ 'जाईसु' इति । ५ 'णं' इति ।  
 ६-८ 'य' इति । ७ 'ओरालियं सरीरं' इति । ८ 'मवे' इति ॥ १० 'जायं' इत्यपि पाठः ।

'तित्तगकहुयकसाया, अंवलमहुरा रसावि पंच भवे ।  
 तेवि हु जियदेहाणं, रसनामुदएण खज्जंता ॥११६॥  
 गुरुलहुमिउकढिणावि य. निद्धा लुक्खा य हांति सीउण्हा ।  
 जियदेहाणं फासा, उदएणं फासनामस्स ॥११७॥  
 गुरुअं न होइ देहं, न य लहुयं होइ सच्चजीवाणं ।  
 होइ हु अगुरुयलहुयं, अगुरुलहुयनामउदएणं ॥११८॥  
 अंगावययो पडिजिच्चिमया इ जो अप्पणो उवग्घायं ।  
 कुणइ हु देहंमि ठिओ, सो उववायस्स उ विवागो ॥११९॥  
 तयविसदंतविमाई, अंगावयवो य जो उ अन्नेसिं ।  
 जीवाण कुणइ घायं, सो परवायस्स उ विवागो ॥१२०॥  
 नारयतिरियनरामरभवेसु जंतस्स अंतरगईए ।  
 अणुपुञ्चीए उदओ, सा चउहा सुणसु जह होइ ॥१२१॥  
 नरयाउयस्स उदए, नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।  
 नरयाणुपुञ्चियाए, तहि उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥  
 एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।  
 तेसिमणुपुञ्चियाणं, तहि उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥  
 जस्सुदएणं जीवे, निप्फत्ती होइ आणपाणूणं ।  
 तं ऊसासं नामं, तस्स विवागो सरीरम्मि ॥१२४॥  
 जस्सुदएणं जीवे, होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ ।  
 सो आयवे विवागो, जह रविंविंवे तहा जाण ॥१२५॥  
 न भवइ तेयसरीरे, जेण उ तेयस्स उसिणफासस्स ।  
 होइ हु उदओ नियमा, तह लोहियवण्णनामस्स ॥१२६॥  
 जस्सुदएणं जीवो, अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं ।  
 तं उज्जोयं नामं, जाणसु खज्जोयमाईणं ॥१२७॥  
 जस्सुदएणं जीवो, वर वसमगईए गच्छइ गईए ।  
 सा सुहया विहगगई, हंसाईणं भवे सा उ ॥१२८॥

१ "तित्तगकहुया कसाया" इत्यपि पाठः । २ "रसा व" इति । ३ "पंचविहा" इति । ४ "य जो अप्पणो उ वग्घायं" इति वा । ५ "उ" इति वा । ६ "सुणइ" इति ७ "उवग्घो तहि" इति वा । ८ "ऊसासं" इति । ९ "किं नपि तेवसरीरेः मण्णइ तेयस्स" इति पाठः "किञ्च हु" इति वा । १० "वसइ" इति वा । ११ "सा य सुहा" इति ।

'सघणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिउणो वि जस्स उदएणं ।  
 १' लोयंसि लहइ निंदं, एयं पुण होइ नीयं तु ॥१५५॥  
 २' गोयं भणियं अहुणा, अट्टमयं ३' अंतराययं होइ ।  
 तं भंडारियसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥१५६॥  
 जह राया इह भंडारिएण विणिएण कुणइ ४' दाणाई ।  
 तेण उ पडिक्खेणं, न कुणइ सो ५' दाणमाईणि ॥१५७॥  
 जह राया तह जीवो, भंडारी जह ६' तहंतरायं ७' च ।  
 तेण उ विबन्धएणं, न कुणइ सो ८' दाणमाईणि ॥१५८॥  
 तं दाणलामभोगोवभोगविरियंतराय ९' पंचमयं ।  
 एएसिं तु विवागं, १०' वोच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥१५९॥  
 सह फासुयंसि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई ११' अउलं ।  
 बंभच्चेराइजुयं, पत्तं पि य विअए १२' तत्थ ॥१६०॥  
 दाउं नवरि न सकइ, दाणविधायस्स १३' कम्मणो उदए ।  
 दाणंतरायमेयं, लामे वि य मण्णए विग्घं ॥१६१॥  
 जइ वि पसिद्धो दाया, जायणनिउणो वि जायगो जइ वि ।  
 न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लामविग्घं तु ॥१६२॥  
 मणुयत्ते वि १४' य पत्ते, लद्धे वि १५' हु भोगसाहणे विमवे ।  
 १६' भुत्तुं नवरि न सकइ, विरइविहूणो वि जस्सुदए ॥१६३॥  
 १७' भोगस्स विग्घमेयं, उवभोगे आवि १८' विग्घमेवेव ।  
 भोगुवभोगाणेसिं, नवरि विसेसो इमो होइ ॥१६४॥  
 सह भुअइ ति भोगो, सो १९' पुण आहारपुप्फमाईओ ।  
 उवभोगो २०' य पुणो पुण, उवभुअइ भवणविलियाई ॥१६५॥

१ "सघणी" इति । २ "लोगम्मि" इत्यपि पाठः । ३ "गुप्त" इत्यपि । ४ "अंतराहयं मणिमो" इति ।  
 ५ "दाणाई" इत्यपि । ६ "दाणमाई उ" इति । ७ "तहंतराईयं" इति । ८ "तु" इत्यपि । ९ "दानमाई उ"  
 इति । १० "पंचविहं" इति । ११ "वुच्छाणि" इति, "मणासि य" इत्यपि वा । १२ "विउलं" इति । १३  
 "इत्थ" इति । १४ "कम्मणो" इत्यपि । १५ "हु" इति वा । १६ "य" इति । १७ "उवभुं जितं न  
 सकइ" इति । १८ "उवभोगविग्घमेयं, भोगेवि हु एवमेव विग्घं तु" इति पाठः । १९ "विग्घ एमेव" इति ।  
 २० "पुगु आहारपुप्फमाईणं" इत्यपि । २१ "उ" इत्यपि ।

सिरमाईण सुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।  
 निष्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुभनामं ॥१४२॥  
 पायाई असुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।  
 निष्फत्ती उ सरीरे जायइ तं असुभनामं तु ॥१४३॥  
 दूमगकम्मदएणं <sup>१</sup>हवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो ।  
<sup>२</sup>दूहगकम्मदए पुण, दुहओ सो <sup>३</sup>सयललोयस्स ॥१४४॥  
 सूसरकम्मदएणं, सूसरसदो <sup>४</sup>य होइ इह जीवो ।  
 दूसरउदए <sup>५</sup>विसरो जंपंतो होइ जणवेसो ॥१४५॥  
 आयज्जकम्मउदए चिट्ठा जीवाण भासणं जं च ।  
 तं बहु मन्नइ लोओ, <sup>६</sup>अवहुमयं इयरउदएणं ॥१४६॥  
 जस्सुदएणं जीवो लहइ हु <sup>७</sup>कित्ति जसं च लोगम्मि ।  
 तं जसनामं कम्मं अजसुदए लहइ विवरीयं ॥१४७॥  
 देहंगावयवाणं लिंगागिइ जाइ नियमणं जं च ।  
 तहिं सुत्तहारसरिसो निम्माणे होइ हु विवागो ॥१४८॥  
 उदए जस्स सुरासुरनरवइनिवहेहिं पूहओ होइ ।  
 तं तित्थयरं नामं तस्स विवागो <sup>८</sup>उ केवल्लिणो ॥१४९॥  
 भणियं नामं कम्मं अहुणा गोयं तु सत्तमं भणिमो ।  
 तं पि कुलालसमाणं दुविहं जह होइ <sup>९</sup>तह भणिमो ॥१५०॥  
 जह इत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं ।  
 जं लोयाओ पूयं, पावइ इह पुण्णकलसाई ॥१५१॥  
 भुंभुलमाई अन्नं. सो खिय पुढवीए कुणइ रूवं तु ।  
 जं लोयाओ निदं, पावइ अकएवि मज्जंमि ॥१५२॥  
 एव कुलालसमाणं, गोयं कम्मं तु <sup>१०</sup>होइ जीवस्स ।  
 उख्खानीयविवागो जह होइ तथा निसामेह ॥१५३॥  
<sup>११</sup>अघणी बुद्धिविउत्तो, रूवविहूणोवि जस्स उदएणं ।  
<sup>१२</sup>लोयंमि लहइ पूयं, उच्चागोयं तयं होइ ॥१५४॥

१ "होइ हु" इति । २ "दूमगकम्मदएणं, दुम्मगओ" इति "दूमगकम्मदएणं दुम्मगो सो सव्वल्लोगहस" इति वा । ३ "सव्वल्लोगहस" इति । ४ "उ" इति । ५ "विसरो" इति । ६ "अवहुमइ" इति । ७ "कित्तीजस" इत्यपि पाठः । ८ "लोए" इति । ९ "य" इति । १० "तं" इत्यपि । ११ "इत्थ" इति । १२ "अघणो" इति पाठः । १३ "ल्लोगम्मि" इति ।

१सघणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिउणो वि जस्स उदएणं ।  
 २लोयंमि लहइ निंदं, एयं पुण होइ नीयं तु ॥१५५॥  
 ३गोयं भणियं अहुणा, अट्टमयं ४अंतराययं होइ ।  
 तं मंडारियसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥१५६॥  
 जह राया इह मंडारिएण विणिएण कुणइ ५दाणाई ।  
 तेण उ पडिकूलेणं, न कुणइ सो ६दाणमाईणि ॥१५७॥  
 जह राया तह जीवो, मंडारी जह ७तहंतरायं ८च ।  
 तेण उ विवन्धएणं, न कुणइ सो ९दाणमाईणि ॥१५८॥  
 तं दाणलाभभोगोवभोगविरियंतराय १०पंचमयं ।  
 एएसिं तु विवागं, ११वोच्छामि अहाणुपुब्बीए ॥१५९॥  
 सह फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई १२अउलं ।  
 बंभच्चेराइजुयं, पत्तं पि य विअए १३तत्थ ॥१६०॥  
 दाउं नवरि न सकइ, दाणविषायस्स १४कम्मणो उदए ।  
 दाणंतरायमेयं, लामे वि य भणए विग्घं ॥१६१॥  
 जइ वि पसिद्धो दाया, जायणनिउणो वि जायगो जइ वि ।  
 न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥  
 मणुयत्ते वि १५ य पत्ते, लद्धे वि १६हु भोगसाहणे विभवे ।  
 १७भुत्तुं नवरि न सकइ, विरइविहूणो वि जस्सुदए ॥१६३॥  
 १८भोगस्स विग्घमेयं, उवभोगे आवि १९विग्घमेवेव ।  
 भोगुवभोगाणेसिं, नवरि विसेसो इमो होइ ॥१६४॥  
 सह भुज्जइ ति भोगो, सो २०पुण आहारपुप्फमाईओ ।  
 उवभोगो २१य पुणो पुण, उवभुज्जइ भवणविलियाई ॥१६५॥

१ "सघणी" इति । २ "लोगम्मि" इत्यपि पाठः । ३ "गुण" इत्यपि । ४ "अंतराहयं भणिमो" इति ।  
 ५ "दाणाई" इत्यपि । ६ "दाणमाई उ" इति । ७ "तहंतराईयं" इति । ८ "तु" इत्यपि । ९ "दानमाई उ"  
 इति । १० "पंचविहं" इति । ११ "वोच्छाणि" इति, "मणामि य" इत्यपि वा । १२ "विउलं" इति । १३  
 "इत्य" इति । १४ "कम्मणो" इत्यपि । १५ "हु" इति वा । १६ "य" इति । १७ "उवभुज्जितं न  
 सकइ" इति । १८ "उवभोगविग्घमेयं, भोगेवि हु एवमेव विग्घं तु" इति पाठः । १९ "विग्घ एमेव" इति ।  
 २० "पुणु आहारपुप्फमाईणं" इत्यपि । २१ "उ" इत्यपि ।

सिरमाईण सुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।  
 निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुभनामं ॥१४२॥  
 पायाई असुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।  
 निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं असुभनामं तु ॥१४३॥  
 सुभगकम्मदएणं <sup>१</sup>हवइ हु जीवो उ सच्चजणइट्ठो ।  
<sup>२</sup>दूहगकम्मदए पुण, दुहओ सो <sup>३</sup>सयललोयस्स ॥१४४॥  
 सुसरकम्मदएणं, सुसरसहो <sup>४</sup>य होइ इह जीवो ।  
 दूसरउदए <sup>५</sup>विसरो जंपतो होइ जणवेसो ॥१४५॥  
 आएज्जकम्मउदए चिट्ठा जीवाण भासणं जं च ।  
 तं बहु मन्नइ लोओ, <sup>६</sup>अवहुमयं इयरउदएणं ॥१४६॥  
 जस्सुदएणं जीवो लहइ हु <sup>७</sup>कित्ति जसं च लोगम्मि ।  
 तं जसनामं कम्मं अजसुदए लहइ त्रिवरीयं ॥१४७॥  
 देहंगावयवाणं लिंगागिइ जाइ नियमणं जं च ।  
 तहिं <sup>८</sup>सुत्तहारसरिसो निम्माणे होइ हु विवागो ॥१४८॥  
 उदए जस्स सुरासुरनरवइनिवहेहिं <sup>९</sup>पूइओ होइ ।  
 तं तित्थयरं नामं तस्स विवागो <sup>१०</sup>उ केवल्लिणो ॥१४९॥  
 भणियं नामं कम्मं अहुणा गोयं तु सत्तमं भणिमो ।  
 तं पि कुलालसमाणं दुविहं जह होइ <sup>११</sup>तह भणिमो ॥१५०॥  
 जह इत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं ।  
 जं लोयाओ पूयं, पावइ इह पुण्णकलसाई ॥१५१॥  
 सुं सुलमाई अन्नं. सो च्चिय पुढवीए कुणइ रूवं तु ।  
 जं लोयाओ निंदं, पावइ अकएवि मज्जंमि ॥१५२॥  
 एव कुलालसमाणं, गोयं कम्मं तु <sup>१२</sup>होइ जीवस्स ।  
 उच्चानीयविवागो जह होइ तहा निसामेह ॥१५३॥  
<sup>१३</sup>अघणी बुद्धिविउत्तो, रूवविहूणोवि जस्स उदएणं ।  
<sup>१४</sup>लोयंमि लहइ पूयं, उच्चागोयं तयं होइ ॥१५४॥

१ "होइ हु" इति । २ 'दूमगकम्मदएणं, दुम्मगओ' इति "दूमगकम्मदएणं दुमगो सो सव्वल्लोगस्स" इति वा । ३ "सव्वल्लोगस्स" इति । ४ "उ" इति । ५ "विसरो" इति । ६ "अवमन्नइ" इति । ७ "कित्तीजस" इत्यपि पाठः । ८ "लोए" इति । ९ "य" इति । १० "तं" इत्यपि । ११ "इत्थ" इति । १२ "अघणो" इति पाठः । १३ "लोगम्मि" इति ।



॥ अहम् ॥

## ॥ कर्मस्तवाख्यः द्वितीयः कर्मग्रन्थः ॥

—

नमिऊण जिणवरिंदे, तिहुयणवरनाणदंसणपईवे ।  
बंधुदयसंतजुत्तं, वोच्छामि थयं निसामेह ॥१॥  
कमिच्छदिट्ठी सासायणे य तह सम्ममिच्छदिट्ठी य ।  
अविरयसम्मदिट्ठी, विरयाविरए पमत्ते य ॥२॥  
तत्तो य अप्पमत्ते, नियड्ढिअनियड्ढिवायरे सुहुमे ।  
उवसंतखीणमोहे, होइ सजोगी अजोगी य ॥३॥  
मिच्छे सीलस पणुवीस सासणे अविरए य दस पयडी ।  
चउछकमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिआ ॥४॥  
दुगतीसचउरपुन्वे, पंच नियड्ढिमि बंधवोच्छेओ ।  
सोलस सुहुमसरागे, साय सजोगी जिणवरिंदे ॥५॥  
पण नव १इग सत्तरसं, अह पंच य चउर छक छ च्चेव ।  
२इग दुग सोलस तीसं, बारस उदए अजोगंता ॥६॥  
पण नव ३इग सत्तरसं, अहुहु य चउर छक छ च्चेव ।  
४इग दुग सोल गुयालं, उदीरणा होइ जोगंता ॥७॥  
अणमिच्छमीससम्मं, अविरयसम्माहअप्पमसंता ।  
सुरनरयतिरियआउं, निययभवे सच्चजीवाणं ॥८॥  
सोलस ५अट्ठेक्केक्कं, ६छक्केक्केक्कक्क खीणमनियट्ठी ।  
एगं सुहुमसरागे, खीणकसाए य सोलसगं ॥९॥  
भावत्तरिं दुचरिमेः तेरस चरिमे अजोगिणो खीणे ।  
अहयालं पयडिसयं, खविय जिणं निच्चुयं वंदे ॥१०॥  
नाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।  
आउयनामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥११॥  
पंच नव ७दोभि अट्ठावीसा चउरो तहेव थायाला ।  
८दोणिण य पंच य मणिया, पयडीओ उत्तरा च्चेव ॥१२॥

क २ ३ एतद्वाथायुग्मं टीकाग्रन्थेषु विवृत्तं न दृश्यते । १-२-३-४ "इगि" इत्यपि । ५ "अट्ठिक्क" इत्यपि । ६ "छक्किक्किक्क" इत्यपि । ७-८ "दुभि" इत्यपि ।



॥ अहम् ॥

## ॥ कर्मस्तवाख्यः द्वितीयः कर्मग्रन्थः ॥

—२३२—

नमिऊण जिणवरिंदे, तिहुयणवरनाणदंसणपईवे ।  
 बंधुदयसंतजुत्तं, वोच्छामि थयं निसामेह ॥१॥  
 क्मिच्छदिट्ठी सासायणे य तह सम्ममिच्छदिट्ठी य ।  
 अविरयसम्मदिट्ठी, विरयाविरए पमत्ते य ॥२॥  
 तत्तो य अप्पमत्ते, नियट्ठिअनियट्ठिवायरे सुहुमे ।  
 उवसंतखीणमोहे, होइ सजोगी अजोगी य ॥३॥  
 मिच्छे सीलस पणुवीस सासणे अविरए य दस पयडी ।  
 चउछकमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना ॥४॥  
 दुगतीसचउरपुन्वे, पंच नियट्ठिमि बंधवोच्छेओ ।  
 सोलस सुहुमसरागे, साय सजोगी जिणवरिंदे ॥५॥  
 पण नव 'इग सत्तरसं, अह पंच य चउर छक छ च्चेव ।  
 'इग दुग सोलस तीसं, बारस उदए अजोगंता ॥६॥  
 पण नव 'इग सत्तरसं, अट्टट्ट य चउर छक छ च्चेव ।  
 'इग दुग सोल गुयालं, उदीरणा होइ जोगंता ॥७॥  
 अणमिच्छमीससम्मं, अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।  
 सुरनरयतिरियआउं, निययमवे सव्वजीवाणं ॥८॥  
 सोलस 'अट्ठेक्केक्कं, 'छक्केक्केक्कक्क खीणमनियट्ठी ।  
 एगं सुहुमसरागे, खीणकसाए य सोलसगं ॥९॥  
 भावत्तरिं दुचरिमे; तेरस चरिमे अजोगिणो खीणे ।  
 अहयालं पयडिसयं, खविय जिणं निच्चुयं वंदे ॥१०॥  
 नाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।  
 आउयनामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥११॥  
 पंच नव' दोमि अट्ठाधीसा चउरो तहेव धायाला ।  
 'दोमिण य पंच य मणिया, पयडीओ उत्तरा चव ॥१२॥

१ २ ३ एतद्वाथायुगं टीकाग्रन्थेषु विवृतं न दृश्यते । १-२-३-४ "इगि" इत्यपि । ५ "अट्ठिक्कं"  
 इत्यपि । ६ "छक्किक्किक्क" इत्यपि । ७-८ "दुमि" इत्यपि ।

मिच्छन्नपुंसगवेयं, नरयाउं तह य चैव नरयदुगं ।  
 इगविगलिंदिय<sup>१</sup>जाई, हुंडमसंपत्तमायावं ॥१३॥  
 थावर सुहुमं च तहा, साहारणयं तहा अपज्जत्तं ।  
 एया सोलस पयडी; मिच्छंमि य वंधवोच्छेओ ॥१४॥  
 थीणत्तिगं इत्थी वि य. अण तिरियाउं तहेव तिरियदुगं ।  
 मज्झिम चउ संठाणं, मज्झिम चउ चैव संघयणं ॥१५॥  
 उज्जोयमप्पसत्था, विहायगइ दूमगं अणाएज्जं ।  
 दूसर नीयागोयं; सासणसम्मंमि वोच्छिन्ना ॥१६॥  
 वीयकसायचउक्कं, मणुयाउं मणुय<sup>३</sup>दुग य ओरालं ।  
 तस्स य अंगोवंगं, संघयणाई अविरयंमि ॥१७॥  
 तइयकसायचउक्कं, विरयाविरयंमि वंधवोच्छेओ ।  
 अस्सायमरइ सोयं, तइ चैव य अथिरमसुभं च ॥१८॥  
 अज्जसकित्ती य तहा, पमत्तविरयंमि वंधवोच्छेओ ।  
 देवाउयं च एगं, नायव्वं अप्पमत्तंमि ॥१९॥  
 निहापयला य तहा, अपुव्वपढमंमि वंधवोच्छेओ  
 देवदुगं पंचिदिय उरालवज्जं चउसरीरं ॥२०॥  
 समचउरं वेउच्चियआहारयअंगुवंगनामं च ।  
 वण्णचउक्कं च तहा, अगुरुयलहुयं च चत्तारि ॥२१॥  
 तस चउ पसत्थमेव य, विहायगइ थिर सुभं च नायव्वं ।  
 सुहयं सुस्सरमेव य आएज्जं चैव निमिणं च ॥२२॥  
 तित्थयरमेव तीसं, अपुव्वछब्भाग वंधवोच्छेओ ।  
 हासरइमयदुगुंछा, अपुव्व<sup>५</sup>चरमंमि वोच्छिन्ना ॥२३॥  
 पुरिसं चउसंजलणं, पंच य पयडीओ पंच भागंमि ।  
 अनियट्ठीअद्धाए, जहक्कमं वंधवोच्छेओ ॥२४॥  
 नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि उच्च जसकित्ती ।  
 एया सोलस पयडी, सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥२५॥

१ "जाई" इत्यपि । २ "विहायगइदूमयं" इत्यपि । ३ "उदुवय" इत्यपि । ४ "अस्साइ अरइ सोग"  
 इत्यपि । ५ "वेवाधगं च एगं" तहापमत्तंमि नायव्वं" इत्यपि । ६ "अचरिमंमि" इत्यपि । ७ "सुहमसरा-  
 गमि" इत्यपि ।

उवसेतखीणमोहे, जोर्गिमि उ सायबंधवोच्छेओ ।  
नायव्वो पयडीणं, बंधस्सेतो अणंतो य ॥२६॥  
॥ बंधो सम्मत्तो ॥

मिच्छत्तं आयावं, सुहुम अपज्जत्तया य तह चेव ।  
साहारणं च पंच य, मिच्छंमि य उदयवोच्छेओ ॥२७॥  
अण एगिंदियजाई, विगलिंदियजाइमेव थावरयं ।  
एया नव पयडीओ, सासणसम्मंमि वोच्छिन्ना ॥२८॥

सम्मामिच्छत्तेगं, सम्मामिच्छंमि उदयवोच्छेओ ।  
चीयकसायचउकं, तह चेव य नरयदेवाऊ ॥२९॥  
अणुयतिरियाणुपुञ्जी, वेउव्वियछक्क 'दूहयं' चेव ।  
अणएज्जं चेव तहा, अज्जसकित्ती अविरयंमि ॥३०॥

तहयकसायचउकं, 'तिरियाऊ तह य चेव तिरियगई ।  
उज्जोय 'नीयगोयं, विरयाविरयंमि वोच्छिन्ना ॥३१॥  
थीणतिगं चेव तहा, आहारदुगं पमत्तविरयंमि ।  
सम्मत्तं संघयणं, अंतिमतिगमप्पमत्तंमि ॥३२॥

तह नोकसायछक्कं, अपुव्वकरणंमि उदयवोच्छेओ ।  
चेयतिगकोह'माणामायसंजलणमनियट्ठी ॥३३॥  
संजलणलोभमेगं, 'सुहुमकसायंमि उदयवोच्छेओ ।  
तह 'रिसहं नारायं, नारायं चेव उवसेते ॥३४॥

निहा पयला य तहा, खीणदुचरिमंमि उदयवोच्छेओ ।  
नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि चरिमंमि ॥३५॥  
'अन्नयरवेयणीयं, ओरालिय-तेय-कम्मनामं च ।  
छ च्चेव य संठाणा, ओरालियअंगुवंगं च ॥३६॥

आइमसंघयणं खल्ल, वण्णचउकं च दो विहायगती ।  
अगुरुयल्लहुयचउकं, पत्तेय थिराथिरं चेव ॥३७॥

१ "दूहिय" इत्यपि । २ "तिरियावं तह य चेव तिरियगई" इत्यपि । ३ "निच्छं" इत्यपि ।  
४ "माणयं" इत्यपि । ५ "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि । ६ "रिसहनां" इत्यपि । ७ "अन्नयरं वेमणीयं"  
इत्यपि ।

सुभसुस्सरजुयला वि य, निभिर्णं च तहा हवंति नायच्वा ।  
 एया तीसं पयडी, सजोगिचरिर्ममि वोच्छिन्ना ॥३८॥  
 'अन्नयरवेयणीयं, मणुयाऊ मणुयगइ य वोद्धच्वा ।  
 पंचिदियजाई वि य, तस सुमगा<sup>३</sup>एज्ज पज्जत्तं ॥३९॥  
 यायर जसक्किची वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चैव ।  
 एया वारस पयडी, अजोगिचरिर्ममि वोच्छिन्ना ॥४०॥  
 । उदओ सम्मत्तो ॥

उदयस्सुदीरणाए, सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।  
 मोत्तूण तिन्नि ठाणे, पमत्त-जोगी अजोगी य ॥४१॥  
 तीसं वारस उदए, केवल्लिणो मेलणं च काऊण ।  
 सायासायं च तहा. मणुयाउं अवणियं किच्चा ॥४२॥  
 सेसं इगुयालीर्मं, <sup>३</sup>जोगिमि उदीरणा य वोद्धच्वा ।  
 अवणीय तिन्नि पयडी, <sup>५</sup>पमत्तउदर्यमि पक्खित्ता ॥४३॥  
 तह चैव अट्ट पयडी, पमत्तविरए उदीरणा होइ ।  
 नत्थि त्ति अजोगिज्जिणे, उदीरणा होइ नायच्वा ॥४४॥  
 ॥ उदीरणा सम्मत्ता ॥

अणमिच्छमीससम्मं <sup>५</sup>अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।  
 सुरनरयतिरियआउं, निययमवे सच्चजीवाणं ॥४५॥  
 थ्रीणतिगं चैव तहा, नस्यदुगं चैव तह य तिरियदुगं ।  
 इगिविगल्लिदियजाई, आयावुज्जोयथावरयं ॥४६॥  
 साहारण सुहुमं <sup>५</sup>चिय, सोलस पयडीओ <sup>५</sup>होंति नायच्वा ।  
 बीयकसायचउक्कं, तइयकसायं च <sup>५</sup>अट्टेव ॥४७॥  
 एग नपुंसगवेयं, इत्थीवेयं तहेव एगं च ।  
 तह नोकसायछकं, पुरिसं <sup>५</sup>कोहं च माणं च ॥४८॥  
 मायं चिय अनियट्ठीमाणं गंतूण संतवोच्छेओ ।  
 लोहं चिय संजलणं, <sup>५</sup>सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥४९॥

१- "अन्नयरं वेक्कणीयं मणुयाउं मणुयगती य" इत्यपि । २ "०इज्ज०" इत्यपि । ३ "सजोगमि"  
 इत्यपि । ४ "पमत्तविरयम्मि" इत्यपि । ५ "अविरइ" इत्यपि । ६ "वि य" इत्यपि । ७ "हुंति" इत्यपि ।  
 ८ "अट्टेव" इत्यपि । ९ "कोहा य माणा य" इत्यपि । १० "सुहुमसरागमि" इत्यपि ।

स्त्रीणकसायदुचरिमे, 'निदं पयलं च हणइ छउमत्थो ।  
 नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि चरियंमि ॥५०॥  
 देवदुग पणसरीरं, पंचसरीरस्स बंधणं चैव ।  
 यंचेव य संधाया, संठाणा तह य छकं च ॥५१॥  
 इतिन्नि य अंगोवंगा, संघयणं तह य होइ छकं च ।  
 पंचेव य वण्णरसा, दो गंधा अट्ट फासा य ॥५२॥  
 अगुरुयलहुयचउक्के, विहायगइदुग थिराथिरं चैव ।  
 सुहसुस्सरज्जुयला वि य, पत्तेयं दूमगं अजसं ॥५३॥  
 अणएज्जं निमिणं चिय, अपजत्तं तह य नीयगोये च ।  
 अन्नयरवेयणियं, अज्जोगिदुचरिमेमि वोच्छिण्णा ॥५४॥  
 अन्नयरवेयणीयं, मणुयाऊ मणुयदुवय धोद्धव्वा ।  
 पंचिदिसजाई वि य, तससुभगाएज्जपज्जत्तं ॥५५॥  
 चायरजसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चैव ।  
 एया तेरस पयडी, अज्जोगिचरिमेमि वोच्छिण्णा ॥५६॥

॥ सत्ता सम्मत्ता ॥

सो मे तिहुयणमहिओ, सिद्धो बुद्धो निरंजणो निच्चो ।  
 दिसउ वरणाणलंमं, दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५७॥

॥ इति कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः समाप्तः ॥

१ "निदा पयला हणइ" इत्यपि । २ "वण्णरसा" इत्यपि । ३ "सुभसुस्सरज्जुगलदुगं पत्तेयं दूमगं" इत्यपि । ४ "नीयगुत्तं च" इत्यपि । ५ "अन्नयरं वेवणीयं अज्जोगिदुचरिमेमि वोच्छिण्णा" इत्यपि । ६ "अन्नयरं" इत्यपि ।

सुभसुस्सरजुयला वि य, निर्मिणं च तद्वा ह्वन्ति नायच्वा ।  
 एया तीसं पयडी, सजोगिचरिममि वोच्छिन्ना ॥३८।  
 'अन्नयरवेयणीर्यं, मणुयाऊ मणुयगइ य वोद्ध्वा ।  
 पंचिदियजाई वि य, तस सुमगा<sup>१</sup>एज पज्जत्तं ॥३९।  
 वायर जसकिची वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चैव ।  
 एया वारस पयडी, अजोगिचरिममि वोच्छिन्ना ॥४०।  
 । उदओ सम्मत्तो ॥

उदयस्सुदीरणए, सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।  
 मोत्तूण तिन्नि ठाणे, पमत्त-जोगी अजोगी य ॥४१।  
 तीसं वारस उदए, केवल्लिणो मेलणं च काऊण ।  
 सायासार्यं च तद्वा. मणुयाउं अवणिर्यं किच्चा ॥४२।  
 सेमं इगुयालीमं, <sup>३</sup>जोगिमि उदीरण य वोद्ध्वा ।  
 अवणीय तिन्नि पयडी, <sup>५</sup>पमत्तउदयमि पक्खित्ता ॥४३।  
 तह चैव अट्ट पयडी, पमत्तविरए उदीरण होइ ।  
 नत्थि ति अजोगिज्जिणे, उदीरण होइ नायच्वा ॥४४।  
 ॥ उदीरण सम्मत्ता ॥

अणमिच्छभीससम्मं <sup>५</sup>अविरयसम्माइअप्पमत्तता ।  
 सुरनरयतिरियआउं, निययमवे सच्चजीवाणं ॥४५।  
 थीणतिगं चैव तद्वा, नस्यदुगं चैव तह य तिरियदुगं ।  
 इगिविगल्लिदियजाई, आयावुज्जोयथावरयं ॥४६।  
 साहारण सुहुमं <sup>१</sup>चिय, सोलस पयडीओ <sup>३</sup>होति नायच्वा ।  
 वीयकसायचउक्कं, तइयकसायं च <sup>५</sup>अट्टेव ॥४७।  
 एग नपुंसगवेयं, इत्थीवेयं तहेव एगं च ।  
 तह नोकसायछक्कं, पुरिसं <sup>१</sup>कोहं च माणं च ॥४८।  
 मायं चिय अनियट्ठीमार्गं गंतूण संतवोच्छेओ ।  
 लोहं चिय संजलणं, <sup>१</sup>सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥४९।

१- "अन्नयरं वेअणीर्यं मणुयाउं मणुयगती य" इत्यपि । २ "०इस्स०" इत्यपि । ३ "सजोगिमि"  
 इत्यपि । ४ "पमत्तविरयम्मि" इत्यपि । ५ "अविरइ" इत्यपि । ६ "वि य" इत्यपि । ७ "हुंति" इत्यपि ।  
 ८ "अट्टेव" इत्यपि । ९ "कोहा य माणा य" इत्यपि । १० "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि ।



स्त्रीणकसायदुचरिमे, 'निहं पयलं च हणइ छउमत्थो ।  
नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि चरिमंमि ॥५०॥  
देवदुग पणसरीरं, पंचसरीरस्स वंधणं चेव ।  
पंचेव य संघाया, संठाणा तह य छक्के च ॥५१॥  
इतिमि य अंगोवंगा, संघयणं तह य होइ छक्के च ।  
पंचेव य वण्णरसा, दो गंधा अट्ट फासा य ॥५२॥  
अगुरयलहुयचउक्के, विहायगइदुग थिराथिरं चेव ।  
सुहुसुस्सरजुयला वि य, पत्तेयं दूमगं अजसं ॥५३॥  
अणएज्जं निमिणं चिय, अपजत्तं तह य नीयगोयं च ।  
अन्नयरवेयणियं, अजोगिदुचरिमंमि वोच्छिण्णा ॥५४॥  
अन्नयरवेयणीयं, मणुयाऊ मणुयदुवय वोद्धव्वा ।  
पंचिदियजाई वि य, तससुभगाएज्जपज्जत्तं ॥५५॥  
चायरजसकिची वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चेव ।  
यया तेरस पयढी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥५६॥

॥ सत्ता सम्मत्ता ॥

सो मे तिहुयणमहिओ, सिद्धो बुद्धो निरंजणो निच्चो ।  
दिसउ वरणाणलेमं, दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५७॥

॥ इति कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः समाप्तः ॥

१ "निहा पयला हणइ" इत्यपि । २ "वण्णरसा" इत्यपि । ३ "सुभसुस्सरजुगलदुगं पत्तेयं दूमगं"  
इत्यपि । ४ "नीयगुत्तं च" इत्यपि । ५ "अन्नयरं वेमणीयं अजोगिदुचरिमंमि वोच्छिन्ना" इत्यपि ।

॥ अहम् ॥

## ॥ बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नमिऊण वद्धमाणं, 'गहयाईठाणदेसयं सिद्धं ।  
गहयाइएसु 'वोच्छं, बंधस्सामित्तमोधेणं ॥१॥  
गह ४ इंदिए ५ य काए ६, जोए १५ वेए ३ कसाय ४ नाणे ८ य ।  
संजम १७ दंसण ४ लेसा ६, भव २ सम्मे ३ सण्णि २ आहारे ॥२॥  
गुणठाणा सुरनिरए, चउ पण 'तिरिएसु चउदस नरेसु ।  
जीवट्टाणा तिरिए, चउदस सेसेसु 'दुग दुगं जाण ॥३॥-  
निरयतिगं मिच्छत्तं, नपुंस 'इगविगलजाइअयावं ।  
'छेवट्ट थावरचउ, हुंढं चिय मिच्छदिट्ठिमि ॥४॥  
थीणतिगित्थी अण तिरितिग 'कुविहगई य नीयमुज्जोयं ।  
'दूमगतिग पणुवीसा, मज्झिमसंठाणसंधयणा ॥५॥  
थावरचउ जाई चउ, विउवाहारदुग सुरनिरतिगाणि ।  
आयवजुयाऽऽहिं उणं, एगहियसयं नरयबंधे ॥६॥  
तित्थोणं सय मिच्छा, साणा नपुहुंढ'छेयमिच्छोणं ।  
मीसा नराउपणुवीसोणं सम्मा नराउतित्थजुयं ॥७॥  
पंकाइसु तित्थोणं, नराउहीणं सयं तु सत्तमिए ।  
मणुदुगउषे हिं विणा, मिच्छा बंधंति 'छण्णउहं ॥८॥  
हुंढाईचउरहियं, साणा तिरियाउणा य 'इगनउहं ।  
इगुणपणुवीसरहिया, सनरदुगुच्चा सयरि मीसे ॥९॥  
तित्थाहारदुगूणा, तिरिया बंधंति सच्चपयट्ठीओ ।  
पज्जत्ता तह मिच्छा, 'साणा उण सोलसविहीणा ॥१०॥

१ 'गहयाइट्टा०' इत्यपि । २ 'वुच्छं' इत्यपि । ३ 'तिरिये चउदस' इत्यपि । ४ 'जाण दुगं' इत्यपि । ५ 'इगि' इत्यपि । ६ 'सेषट्ट' इत्यपि । ७ 'कुविहगगई' इत्यपि । ८ 'दुमगतिगं' इत्यपि । ९ 'छेव०' इत्यपि । १० 'छन्नउई' इत्यपि । ११ 'इगनउई' इत्यपि । १२ 'सासा उण सोलसविहूणा' इत्यपि ।

नरतिगसुराउउसमं, उरलदुगं 'मोत्तु पण्णवीसं च ।  
 अणुहत्तरिं तु मीसा, सुराउणा सत्तरी सम्मा ॥११॥  
 'बीयकसायूणा देस अपञ्जत्ता सयं नवग्गं तु ।  
 मोत्तूणमोघबन्धा, निरसुरआउं विउव्विच्छक्कं च ॥१२॥  
 तिरिया व नरा पयड्डी, बंधंती मिच्छमाइया पंच ।  
 अजयाइ पंच तित्थं, अपमत्तनियट्ठि आहारं ॥१३॥  
 कम्मत्थयबंधसमो, पमत्तमाईण होइ बन्धो उ ।  
 अप्पञ्जत्ता मणुया, तिरिया व सयं 'नवग्गं तु ॥१४॥  
 वेउव्वाहारदुगं, नारयसुरसुहुमविगलजाइतिगं ।  
 'मोत्तु' चउरग्गसयं, देवा बंधंति ओहेणं ॥१५॥  
 तित्थोणं तं मिच्छा, साणा छेवट्ठहुं'हनपुमिच्छं ।  
 एगिंदिथावरायवपयड्डी 'मोत्तूण छन्नउइं ॥१६॥  
 ओघुत्तं पणुवीसं, नराउजुत्तं विवञ्जित्तं मीसा ।  
 बंधंति सयरिमजया, तित्थनराऊहिं विगसयगी ॥१७॥  
 मिच्छाइअविरयंता, देवोघं तित्थहीण बंधंति ।  
 भवणवणजोइदेवा, देवीओ चैव सच्चाओ ॥१८॥  
 सामभदेवमंगो, सोहम्मीसाण मिच्छमाईणं ।  
 सहसारंता इगिथावरायवोणं सणंकुमाराई ॥१९॥  
 रयणानारयसरिसा, सहसारंता सणंकुमाराई ।  
 इगिथावरायवतिरितिगुओऊणं तु आणयाईया ॥२०॥  
 तित्थं 'नपुच्चउ तिरितियउओऊण 'पणुवीस सनराउ' ।  
 मोत्तूण मिच्छमाई, नराउतित्थेहि अजया उ ॥२१॥  
 तित्थाहारं निरयसुराउं 'मोत्तु' विउव्विच्छक्कं च ।  
 'इगविगलिंदी बंधहि, नपुत्तरं ओघ मिच्छा य ॥२२॥

१ "मुत्तु" इत्यपि । २ "बीयकसायविहूणा देसअपञ्जत्तसयनवग्गं तु । मुत्तूण ..... "इत्यपि । ३  
 "नवन्महियं" इत्यपि । ४ "मुत्तु" इत्यपि । ५ "मुत्तूण" इत्यपि । ६ "नपुंसच्चउ" इत्यपि । ७ पणुवीस-  
 सनराओ । मुत्तूण" इत्यपि । ८ "मुत्तु" इत्यपि । ९ "इगि" इत्यपि ।

साणा बंधहिँ सोलस, १निरतिगहीणा य २मोत्तु छन्नउई ।  
 ओघेणं वीसुत्तरसयं च पंचिदिया बंधे ॥ २३ ॥  
 ३इगिविगलिंदी साणा, तणुपज्जत्तिं न जत्ति जंतेण ।  
 निरतिरियाउअबंधा, मयंतरेणं तु ४चउणउई ॥ २४ ॥  
 भूदगवणकाया एगिंदिसमा मिच्छसाणदिहीओ ।  
 मणुयतिगुच्चं ५मोत्तुं, सुहुमतसा ओघ धूलतसा ॥२५॥  
 मणवइजोगचउक्के, ओघो उरले वि ओघनरभंगो ।  
 निरतिगसुराउआहारगं ६तु हिच्चा उ ७तंमीसे ॥२६॥  
 सुरदुगं ८विउच्चियदुगं, तित्थं हिच्चा सयं नवगं तु ।  
 बंधंति उरलमिस्से, मिच्छा उ सजोगिणो सायं ॥२७॥  
 निरतिगहीणा सोलस, तिरिनरआउं पि ९मोत्तु साणा वि ।  
 तिरियाउविहीणं पणवीसमुज्झित्तु अविरए १०बंधे ॥२८॥  
 तित्थं वेउच्चियदुगं, सुरदुगसहियं उरलमिस्से ।  
 सामन्नदेवनारयबंधो नेओ विउच्चियजोगे वि ॥२९॥  
 वेउच्चियमीसम्मि वि, तिरियनराऊहिँ वज्जियासेसा ।  
 तित्थोणा ता मिच्छा, बंधहिँ साणा उ चउणउई ॥३०॥  
 एगिदिधावरायवसंठाइचउक्कवज्जिया सेआ ।  
 तिरियाऊणं पणवीस ११मोत्तु अजया सतित्था उ ॥३१॥  
 तेवट्टाहारदुगे, जहा पमत्तस्स कम्मणे बंधो ।  
 आउतिगं निरयतिगं, आहारय वज्जिउं ओघो ॥३२॥  
 सुरदुगतित्थविउच्चियदुगाणि १२मोत्तूण बंधहिँ मिच्छा ।  
 निरतिगहीणा सोलस, वज्जित्ता सासणा कम्मे ॥३३॥  
 तिरियाऊणं पणवीस १३मोत्तु सुरदुगविउच्चियदुगजुत्तं ।  
 अजया तित्थेण समं, सजोगि सायं समुग्घाए ॥३४॥

१ "निरि०" इत्यपि । २ "मुत्तु छन्नउई" इत्यपि । ३ "इग०" इत्यपि । ४ "चउणउई" ५ "मुत्तु" इत्यपि । ६ "मणवय०" इत्यपि । ७ "च" इत्यपि । ८ "उरलमिस्से" इत्यपि । ९ "वेउच्चियदुगं" १० "मुत्तु" इत्यपि । ११ "बंधो" इत्यपि । १२ "मुत्तु" इत्यपि । १३ "मुत्तूण" इत्यपि । १४ "मुत्तु" इत्यपि ।

देयति एवोषेणं, बंधो जा वायरो हवइ ताव ।  
 कोदाइसु चउसोघो, मिच्छाओ जाव 'अनियट्टि ॥३५॥  
 अण्णाणति एवोघो, मिच्छासाणेसु नवसु नाणति ए ।  
 मणपज्जवे वि सत्तसु ओघं दुसु 'केवलिस्सावि ॥३६॥  
 सामाइयच्छेएसु', पमत्तमाईसु चउसु ओघो त्ति ।  
 परिहारस्स पमत्ते, अपमत्ते सुहुम सट्टाणे ॥३७॥  
 उवसंताइसु अहखाय देसविरयस्स होइ सट्टाणे ।  
 'मिच्छाईसु' चउसु', ओघो अस्संजयरसावि ॥३८॥  
 चक्खुअचक्खु ओघो, मिच्छाई खीणमोह ओहिस्स ।  
 अजयाइनवसु केवलदंसण केवलिट्ठगे चव ॥३९॥  
 छच्चउसु तिण्णि तीसु', छण्हं सुक्का अजोगि अल्लेसा ।  
 आहारूणा आइतिलेसी बंधंति सच्चपयडीओ ॥४०॥  
 मिच्छा तित्थोणा ता, साणा उण सोलसविहूणा ।  
 सुरनरआऊ 'पणवीस मोत्तु बंधंति मीसा उ ॥४१॥  
 सुरनरआउयसहिया. अविरयसम्मा उ 'होति नायच्चा ।  
 तित्थयरेण जुया तह, तेउल्लेसे 'परं वोच्छं ॥४२॥  
 विगलतिगंनिरयतिगंसुहुमतिगूणं सयं तु 'एक्कारं ।  
 तित्थाहारूणा मिच्छ साण इगितिगनपुचउणा ॥४३॥  
 मीसाई पंचगुणा, ओघं बंधंति पम्हलेसावि ।  
 विगलतिगं निरयतिगं, सुहुमतिगेगिदिथावरायावं ॥४४॥  
 हिच्चा सयमट्टहियं, तित्थाहारदुगहीण मिच्छाओ ।  
 संढाइचउक्कोणं, साणा मीसाइ पणगओघं तु ॥४५॥  
 बंधंति सुक्कलेसा, नारयतिरिसुहुमविगलजाइतिगं ।  
 'इगिथावरायसुओय वज्जिय सयं तु चउरहियं ॥४६॥  
 तित्थाहारदुगूणं, एगहियसयं तु बंधही मिच्छा ।  
 संढाइचउक्कोणं, साणा बंधंति 'सगनउहं ॥४७॥

१ "अनियट्टी" इत्यपि । २ "केवलस्सावि ॥" इत्यपि । ३ "मिच्छाईसु चउसु" इत्यपि । ४ "पणु-  
 वीस मुत्तु" इत्यपि । ५ "हुंति" इत्यपि । ६ "परे वुच्छं" इत्यपि । ७ "इक्कारं" इत्यपि । ८ "इगं" इत्यपि ।  
 ९ "सगणवई" इत्यपि ।





॥ अहम् ॥

# ॥ षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

— ❦ —

निच्छिन्नमोहपासं, पसरियविमलोरुकेवलपयासं ।  
पणयजणपूरियासं, पयओ पणमित्तु जिणपासं ॥१॥  
वोच्छामि जीवमग्गणठाणुवओगजोगलेसाई ।  
किंचि सुगुरुवएसा, सन्नाणसुझाणहेउत्ति ।२॥  
'इह सुहुमवायरेगिदिवित्तिचउअसन्निअसन्निपंचिदी ।  
अपजत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥३॥  
सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाइ ता भणिमो ।  
पढमगुणा दो वायरवित्तिचउरअसन्नि अपजत्ते ॥४॥  
सन्निअपज्जत्ते मिच्छदिट्ठिसासाणअविरया तिन्नि ।  
सव्वे सन्निअपजत्ते, मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि ॥५॥  
जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्ता दो ।  
वेउन्वियमीसजुया, सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥  
बिंति अपज्जत्ताण वि, तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।  
वायरपज्जत्ते तिन्नि उरल वेउन्वियदुगं च ॥७॥  
उरलं सुहुमे चउसु य, भासजुयं पनरसावि सन्निम्मि ।  
उवओगा दससु तओ, अचक्खुदंसणमत्ताणदुगं ॥८॥  
चक्खुजुया चउरिंदियअसन्निअपज्जत्तएसु ते चउरो ।  
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥९॥  
सव्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविहसन्निमि ।  
चउरो पढमा वायर-अपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥  
सत्तट्ठ १ अट्ठ २ सत्तट्ठ ३ अट्ठ ४ वंधु १ दयु २ दीरणा ३ संता ४ ।  
तेरससु जीवठाणेसु सन्निअपज्जत्तए ओघो ॥११॥

१ चउदसन्नियठाणोसुं गुणजोगुवओगलेसबंधुदया । वदीरणया सत्ता वत्तव्वा अट्ठपयकमसो ॥३॥  
इत्यधिका प्रक्षिप्तगाथा इत्थं लिखितप्रश्नो दृश्यते । २ "सत्ता" इत्यपि ।



एत्तो गइइंदियकायजोयवेए कसायनाणेसु ७ ।  
 संजमदंसणलेसाभवसम्ममे सन्निआहारे ॥ १२ ॥  
 सुरनरतिरिनरयगई, 'इगचित्तिचउरिंदिया य 'पंचिंदी ।  
 पुढवीआऊतेऊवाऊवणसइतसा काया ॥ १३ ॥  
 मण<sup>१</sup>वइकाया जोगा, इत्थी पुरिसो <sup>२</sup>नपुंसगो वेया ।  
 कोहो माणो माया, लोभो चउरो कसाय त्ति ॥ १४ ॥  
 मइसुयओहीमणकेवलाणि मइसुयअनाणविन्मंगा ।  
 सामाइयछेयपरिहारसुहुमअहखायदेसजयअजया ॥ १५ ॥  
 अन्चक्खुचक्खुओही, केवलदंसणमओ य छल्लेसा ।  
 विण्हा नीला काऊ, तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥ १६ ॥  
 भव्वअभव्वा खउवसमखइयउवसमियमीस<sup>५</sup>सासाणं ।  
 मिच्छो य 'सन्नसन्नी, आहारणहार इय भेया ॥ १७ ॥  
 सुरनिरए सन्निदुगं, नरेसु तइओ असन्निअपजत्तो ।  
 तिरियगईए चउदस, एगिंदिसु, आइमा चउरो ॥ १८ ॥  
 वित्तिचउरिंदिसु दो दो, अंतिम चउरो पणिंदिसु 'मवंति ।  
 थावरपणगे पढमा, चउरो चरमा दस तसेसु ॥ १९ ॥  
 विगलतिअसन्निसन्नी, पज्जत्ता पंच हौंति 'वइजोगे ।  
 मणजोगे 'सन्निको, पुमित्थिवेए चरम चउरो ॥ २० ॥  
 काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचवस्सु ।  
 आइतिलेसा भन्वियरमिच्छ आहारगे सन्वे ॥ २१ ॥  
 मइसुयओहिदुगविमंगपम्हसुक्कासु तिसु 'य सम्मेसु ।  
 सन्निम्मि 'य दो ठाणा, सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥ २२ ॥  
 मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।  
 सन्नी पओ चवस्सुंमि तिन्नि छ व पज्जि<sup>३</sup>यरचरमा ॥ २३ ॥

१ "इगि०" इत्यपि । २ "पंचिंदी" इत्यपि । ३ "वस०" इत्यपि । ४ "नपुंसगो" इत्यपि । ५ "सासा-  
 णा" इत्यपि । ६ "सन्नि०" इत्यपि । ७ "इवंति" इत्यपि । ८ "वय०" इत्यपि । ९ "सन्नेच्छो" इत्यपि ।  
 १० "वि" इत्यपि । ११ "उ" इत्यपि । १२ "०अर०" इत्यपि पाठः ।

सत्त उ सासाणे वायराइ छ अपज्ज सन्निपज्जो य ।  
 तेउन्लेसे वायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥ २४ ॥  
 अस्सन्नि आइ वारस, अणहारे अट्ट सत्त अपजत्ता ।  
 सन्नी पज्जत्तो तह, इय 'गइयाइसु जियट्ठाणा ॥ २५ ॥  
 मिच्छे सासण<sup>१</sup>भीसे, अविरयदेमे पमत्तअपमत्ते ।  
<sup>२</sup>नियट्ठि अनियट्ठिसुहुमुवसमखीणसजोगजोगिगुणा ॥ २६ ॥  
 चत्तारि देवनरएसु पंच तिरिएसु चउदस नरेसु ।  
 इगिक्खिलेसुं दो दो, पंचिदीसुं चउदस वि ॥ २७ ॥  
<sup>३</sup>भूदगतरूसु दो एगमगणिवाऊसु चउदस तसेमु ।  
 जोए तेरस वेए, तिक्काए नव दस य लोमे ॥ २८ ॥  
 महमुयओहिदुगे नव, अजयाइजयाइ सत्त मणनाणे ।  
 केवलदुगंमि दो तिक्क दो व पढमा अनाणतिगे ॥ २९ ॥  
 सामाइयच्छेएसुं, चउरो परिहार दो पमत्ताई ।  
 देससुहुमे सगं पढमचरमचउ अजयअहखाए ॥ ३० ॥  
 वारस अक्खुचक्खुसु, पढमा लेसामु तिसु छ दुसु सत्त ।  
 सुक्काए तेरस गुणा, सव्वे मव्वे अमव्वेगं ॥ ३१ ॥  
 वेयगखइगउवसमे, चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।  
 सेसतिगे सट्ठाणं, सन्धिसु चउदस अमन्धिसु दो ॥ ३२ ॥  
 आहारगेसु पढमा, तेरसण्णाहारगेसु पंच इमे ।  
<sup>४</sup>पढमंतिमदुगअविरय, गइयाइसु इय गुणट्ठाणा ॥ ३३ ॥  
 सच्चं मोसं मीसं, असच्चमोसं मणं तह वई य ।  
 उरलविउव्वाहारा, मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥ ३४ ॥  
 एक्कारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।

१ "गइयाईसु जियट्ठाणा" इत्यपि । २ "मिस्से" इत्यपि । ३ "नियट्ठिअनियट्ठिसुहुमुवसमखीणसजोगिगुणा ॥ २६ ॥" इत्यपि पाठो मुद्रितप्रथो हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ च दृश्यते । किन्तु तत्र छन्दमङ्गोऽस्ति छुस्वाषगमार्थमेवंभूतः पाठः कृतः सम्भाव्यते । हस्तलिखितमशोमद्रसूरिवृत्तियुतगाथाप्रतौ पुनरस्माद्भिन्न वपरि दर्शितेन तुल्यश्च पाठो लभ्यते । ४ अत्राऽपि पूर्वेष्वमुद्रितप्रतिहस्तलिखितमूलगाथाप्रत्यादिषु 'भूद-  
 गतरूसु दो दो इगमगणिवाऊसु चउदस तसेमु ।" इत्यपि पाठः प्राप्यते । श्रीमन्मलयगिरिपादैरेतत्पाठानुसारेणैव वृत्तिर्विहितः दृश्यते । ५ "पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणट्ठाणा" इत्यपि ।

जोगा तिरियगईए, तेरस आहारगद्गूणा ॥ ३५ ॥  
नरगइपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइमुओहिदुगे ।  
'अचक्खुछ्लेसाभव्वसम्मदुगसन्निमु य मन्वे ॥ ३६ ॥  
एगिंदिएसु पंच उ. कम्मइगविउच्चिउरलजुयलाणि ।  
कम्मुरलदुगं अंतिमभासा विगलेसु चउरो च्चि ॥ ३७ ॥  
कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउच्चिजुयलजुयं ।  
पढपंतिममणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥ ३८ ॥  
'थीवेअन्नाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।  
तेरस मणवइमणनाणछेयसामइयचक्खुमु य ॥ ३९ ॥  
'परिहारे मुहुमे नव, उरलवइ'मणा सकम्मुरलमिस्सा ।  
अहखाए सविउच्चा, मीसे देसे सविउविदुगा ॥४०॥  
कम्मुरलविउच्चिदुगाणि चरमभासा य छ उ असन्निम्मि ।  
जोगा अकम्मगाहारगेमु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥  
नाणं पंचविहं तह, अन्नाणतिगं ति अड्ड सागारा ।  
चउदंसणमणगाग, वारस, जियलकखणुवश्रोगा ॥ ४२ ॥  
मणुयगईए वारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु ।  
थावरइगिवितिइंदिसु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥  
चक्खुजुयं चउरिंदिमु, तं चिय वारसपणिंदितसकाए ।  
जोए वेए सुक्काएँ भव्वस्स्नीसु आहारे ॥४४॥  
केवलदुगहीणा दस, कसायपणलेसचक्खुचक्खुसु ।  
केवलदुगे नियदुगं, खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥  
पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।  
नाणचउदंसणतिगं, केवलदुजुयं अहक्खाए ॥ ४६ ॥  
नाणतिगदंसणतिगं, देसे मीसे अनाणमीसं तं ।  
केवलदुगमणपञ्जवज्जा अस्संजयंमि नव ॥ ४७ ॥

१ "अचक्खु छ्लेसा०" इत्यपि । २ "थीवेयअनाणो०" इत्यपि । तथा "ओगाऽऽहारदुगूणा तेरस थीमाइनवसु वारेसु । ओराळमिस्सकम्मणरहिया मणमाइछण्हं षि ॥ ॥" इति प्रक्षिप्तगाथाऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ दृश्यते । ३ "परिहारसुहुम्मे" इत्यपि पाठः । ४ "०मणा ते सकम्म०" इति पाठः ।

अन्नाणतिगअभव्वे, सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।  
दोदंसणतियनाणा, ते अविभंगा असन्निम्मि ॥४८॥  
मणनाणचक्खुरहिया, दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।  
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥४९॥  
'तण्णुवइमणेसु कमसो, दुचउत्तिपंचा दुअदुत्तचउचउरो ।  
तेरसदुवारतेरस, गुणजीवुवओगजोग त्ति ॥ ५० ॥  
लेसा उ तिन्नि पढमा, नारगविगलग्गिवाउकाएसु ।  
एग्गिदिभूतरूदगअसन्निसुं पढमिया चउरो ॥ ५१ ॥  
केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेसु सुक्खेसेव ।  
लेसासु छमु सठाणं, गइयाइसु छावि सेसेसु ॥ ५२ ॥  
गइयाइसु अप्पबहुं, मणामि सामन्नओ सठाणे वि ।  
नरनिरयदेवतिरिया, थोवा दुअसंखणंतगुणा ॥ ५३ ॥  
पणचउत्तिदुएग्गिदी, थोवा तिन्न अहिया अणंतगुणा ।  
तसतेउपुढविजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥ ५४ ॥  
थोवा असंखगुणिया, तिन्न विसेसाहिया अणंतगुणा ।  
मणवयणकायजोगी, थोवा संखगुणणंतगुणा ॥ ५५ ॥  
पुरिसेहिंतो इत्थी, संखेजगुणा नपुंसणंतगुणा ।  
माणी कोही मायी, लोमी कमसो विसेसहिया ॥ ५६ ॥  
मणपज्जविणो थोवा, ओहीनाणी तओ असंखगुणा ।  
मइसुयनाणी तत्तो, विसेसअहिया समा दो वि ॥ ५७ ॥  
विभंगिणो असंखा, केवलनाणी तओ अणंतगुणा ।  
तत्तोऽणंतगुणा दो, मइसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥ ५८ ॥

१ "केवलतणुजोगंमि दो गुणचरजीवमाइसा हुंति । मइसुअमण्णाणदुगं अक्खवसू तिन्नि उवओगा ॥१॥  
वेरत्थिवरलजुयला कम्मणजोगे य पंच जोगत्ति । अमणवईए पढमा दो गुण जिय अट्ट चउ उवरिं ॥२॥  
चक्खुअक्खु मइसुयअनाण चत्तारि हुंति उवओगा । कम्मण उरालजुयलं असक्खभासा य चउ जोगा ॥३॥  
तेरस गुण मणजोगे अंतिम दो जीव वार उवओगा । तेरसजोगा य तद्दा कम्मोरलमिस्सवज्ज त्ति ॥४॥"  
एतद्वाथाचतुष्कं प्रक्षिप्ततयाऽधिकं दृश्यते हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ । २ "माई लोमी" इत्यपि ।  
३ "थोवा ओहिनाणी" इत्यपि ।

जोगा तिरियगईए, तेरस आहारगदुगूणा ॥ ३५ ॥  
नरगइपणिदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।  
<sup>१</sup>अच्चक्खुल्लेसाभच्चसम्मदुगसन्निमु य सञ्जे ॥ ३६ ॥  
एगिदिएसु पंच उ. कम्मइगविउच्चिउरलजुयलाणि ।  
कम्मुरलदुगं अंतिमभासा विगलेसु चउरो त्ति ॥ ३७ ॥  
कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउच्चिजुयलजुयं ।  
पढपंतिममणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥ ३८ ॥  
<sup>२</sup>थीवेअन्नाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।  
तेरस मणवइमणनाणञ्जेयसामइयचक्खुमु य ॥ ३९ ॥  
<sup>३</sup>परिहारे सुहुमे नव, उरलवइ<sup>४</sup>मणा सकम्मुरलमिस्सा ।  
अहखाए सविउच्चा, मीसे देसे सविउविदुगा ॥ ४० ॥  
कम्मुरलविउच्चिदुगाणि चरमभासा य छ उ असन्निम्मि ।  
जोगा अकम्मगाहारगेमु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥  
नाणं पंचविहं तह, अन्नाणतिगं ति अट्ट सागारा ।  
चउदंसणमणगाग, वारस, जियलक्खणुवश्रोगा ॥ ४२ ॥  
मणुयगईए वारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु ।  
थावरइगिवितिहंदिस्सु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥ ४३ ॥  
चक्खुजुयं चउरिंदिमु, तं चिय वारसपणिदितसकाए ।  
जोए वेए सुक्काए<sup>५</sup> भव्वसन्नीसु आहारे ॥ ४४ ॥  
केवलदुगहीणा दस, कसायपणलेसचक्खुचक्खुसु ।  
केवलदुगे नियदुगं, खइगे नव नो अनाणतिगं ॥ ४५ ॥  
पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।  
नाणचउदंसणतिगं, केवलदुजुयं अहक्खाए ॥ ४६ ॥  
नाणतिगदंसणतिगं, देसे मीसे अनाणमीसं तं ।  
केवलदुगमणपञ्जवधज्जा अस्संजयंमि नव ॥ ४७ ॥

१ “अचक्खु ल्लेसा०” इत्यपि । २ “थीवेअन्नाणो०” इत्यपि । तथा “जोगाऽऽहारदुगूणा तेरस थीमाइनवसु वारेसु । ओरालमिस्सकम्मणरहिया मणमाइच्छं धि ॥ ॥” इति प्रक्षिप्तगाथाऽधिकृतया हस्तलिखितप्रतौ दृश्यते । ३ “परिहारसुहुमे” इत्यपि पाठः । ४ “मणा ते सकम्मुं०” इति पाठः ।

अन्नाणतिगअभव्वे, सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।  
दोदंसणतियनाणा, ते अविभंगा असन्निम्मि । ४८ ॥  
मणनाणचक्खुरहिया, दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।  
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥ ४९ ॥  
'तणुवइमणेसु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।  
तेरसदुवारतेरस, गुणजीवुवओगजोग त्ति ॥ ५० ॥  
सेसा उ तिन्नि पढमा, नारगविगलग्गिवाउकाएसु ।  
एग्गिदिभूतरूदगअसन्निंसुं पढमिया चउरो ॥ ५१ ॥  
केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेसु सुक्कलेसेव ।  
सेसासु छमु सठाणं, गइयाइसु छावि सेसेसु ॥ ५२ ॥  
गइयाइसु अप्पबहुं, मणामि सामन्नओ सठाणे वि ।  
नरनिरयदेवतिरिया, थोवा दुअसंखणंतगुणा । ५३ ॥  
पणचउत्तिदुएग्गिदी, थोवा तिन्न अहिया अणंतगुणा ।  
तसतेउपुढविजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥ ५४ ॥  
थोवा असंखगुणिया, तिन्न विसेसाहिया अणंतगुणा ।  
मणवयणकायजोगी, थोवा संखगुणणंतगुणा ॥ ५५ ॥  
पुरिसेहिंतो इत्थी, संखेजगुणा नपुंसणंतगुणा ।  
माणी कोही भायी, लोमी कमसो विसेसहिया ॥ ५६ ॥  
मणपज्जविणो थोवा, ओहीनाणी तओ असंखगुणा ।  
मइसुयनाणी तत्तो, विसेसअहिया समा दो वि ॥ ५७ ॥  
विन्मंगिणो असंखा, केवलनाणी तओ अणंतगुणा ।  
तत्तोऽणंतगुणा दो, मइसुयअन्नाणिणो तुम्हा ॥ ५८ ॥

१ "केवलतणुजोगमि दो गुणाचउजीवआइसा हुंति । मइसुअअणाणुगं अक्खक्खू तिन्नि उवओगा ॥ १ ॥  
वेउत्तिवरलजुयला कम्मणजोगो य पंच जोगत्ति । अमणवईए पढमा दो गुण जिय अट्ठ चउ उवरिं ॥ २ ॥  
चक्खुअक्खू मइसुयअनाण चत्तारि हुंति उवओगा । कम्मण उरालजुयलं असक्खमासा य चउ जोगा ॥ ३ ॥  
एतद्वाथाचतुष्कं प्रक्षिप्तयाऽधिकं हरयते हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ । २ "माई लोमी" इत्यपि ।  
३ "थोवा मोहिनाणी" इत्यपि ।

सुहृमपरिहारअहखायछेयसामइयदेसजइअजया ।  
 थोवा संखेज्जगुणा, चउरो अस्संखणंतगुणा ॥ ५६ ॥  
 इय ओहिचक्खुकेवलअचक्खुदंसी कमेण विन्नेया ।  
 थोवा अस्संखगुणा, अणंतगुणिया अणंतगुणा ॥ ६० ॥  
 सुक्का पम्हा तेऊ, काऊ नीला य किण्हलेसा य ।  
 थोवा दोऽसंखगुणाऽणंतगुणा दो विसेसहिया ॥ ६१ ॥  
 थोवा जहन्नजुत्ताणंतयतुल्ल त्ति इह अभवजिया ।  
 तेहिंतोऽणंतगुणा, भव्वा निव्वाणगमणरिहा ॥ ६२ ॥  
 सासाणउवसमियमिस्सवेयगक्खइयमिच्छदिट्ठीओ ।  
 थोवा दो संखगुणा, असंखगुणिया अणंता दो ॥ ६३ ॥  
 सन्नी थोवा तत्तो, अणंतगुणिया असन्निणो 'होति ।  
 थोवाणाहारजिया, तदसंखगुणा 'सआहारा ॥ ६४ ॥  
 मिच्छे सव्वे छ अपज्ज सन्निपज्जत्तगो य सासाणे ।  
 सम्मे दुविहो सन्नी, सेसेसुं सन्निपज्जत्तो ॥ ६५ ॥  
 इय जियठाणा गुणठाणएसु जोगाइ वोच्छमेत्ताहे ।  
 जोगाहारदुगूणा, मिच्छे सासणअविरए य ॥ ६६ ॥  
 उरलविउव्व<sup>१</sup>वइमणा, दस मीसे ते विउव्विमीसजुया ।  
 देसज्जए एकारस, साहारदुगा पमत्तेते ॥ ६७ ॥  
<sup>२</sup>एकारस अपमत्ते, मणवइआहारउरलवेउव्वा ।  
 अप्पुव्वाइसु पंचसु, नव ओरालो मणवई य ॥ ६८ ॥  
 चरमाइममणवइदुगकम्मुरलदुगं<sup>३</sup>ति जोगिणो सत्त ।  
 गयजोगो य अजोगी, वोच्छमओ बारसुवओगे ॥ ६९ ॥  
 अक्खक्खुचक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छसासाणे ।  
 अविरयसम्मे देसे, तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥ ७० ॥  
 मीसे ते षिय मीसा, सत्त पमत्ताइसुं समणनाणा ।  
 केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥ ७१ ॥

१ 'हुंति' इत्यपि । २ "उ साहारा" इत्यपि । ३ 'वच०' इत्यपि । ४ एकारस-उप्पमत्ते" इत्यपि ।  
 ५ "हु" इत्यपि । ६ "तिच्छिय" इत्यपि ।

सासणभावे नाणं, विउच्चिगाहारगे उरलमिस्सं ।  
 नेगिंदिसु 'सासाणो, नेहाहियं सुयमयं पि ॥ ७२ ॥  
 लेसा तिन्नि पमत्तं, तेऊपम्हा उ अप्पमत्तंता ।  
 सुक्का जाव सजोगी, निरुद्धलेसो अजोगि ति ॥ ७३ ॥  
 वंधस्स मिच्छअविरइकसायजोग ति हेयवो चउरो ।  
 पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥ ७४ ॥  
 'आभिग्गहियं अणभिग्गहं च तह अभिनिवेशियं चव ।  
 संसइयमणाभोगं, मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥ ७५ ॥  
 धारसविहा अविरइ, मणइंदियअनियमो छकायवहो ।  
 सोलस नव य कसाया, पणुवीसं पन्नरस नोगा ॥ ७६ ॥  
 पणपन्नपन्नतियछहिय, 'चत्तउणचत्त छचउदुगवीसा ।  
 सोलसदसनवनवसत्त हेउणो न उ अजोगिम्मि ॥ ७७ ॥  
 तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।  
 आउयनामं गीयंतरायमिह अट्ठ कम्माणि ॥ ७८ ॥  
 सत्तइछेगबंधा, संतुदया अडु सत्त चत्तारि ।  
 सत्तइछपंचदुगं, उदीरणाठाणसंखेयं ॥ ७९ ॥  
 अपमत्तंता सत्तट्ठ मीसअप्पुच्चवायरा सत्त ।  
 वंधंति छ सुहुमो एगमुवरिमा वंधगोऽजोगी ॥ ८० ॥  
 वा मुहुमो ता अट्ठ वि, उदए संते य 'होति पयहीओ ।  
 सत्तट्ठुवसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु ॥ ८१ ॥  
 सत्तट्ठ पमत्तंता, कम्मे उइरिति अट्ठ मीसो उ ।  
 वेयणियाउ विणा छ उ, अपमत्तअप्पुच्चअनियद्वी ॥ ८२ ॥  
 सुहुमो छ पंच उइरेइ पंच उवसंतु पंच दो खीणो ।  
 जोगी उ नामगोए, अजोगिअणुदीरगो भयवं ॥ ८३ ॥

१ : 'सासाणो ति नेहाहियं' इत्यपि । २ 'आभिग्गहियं किल दिक्खियाणमणभिग्गहं तु इयराण । गुट्टामाहिलपाईणं अं आमिनिवेशि यं तं तु ॥१॥ संसइयं मिच्छत्तं जा संका जिणत्तरुत्तत्तेसु । विगळिंदियाणं जं पुण समणामोगं विणिदित्तं ॥२॥ इति गाथायुग्ममधिकं प्रक्षिप्तगाथात्वेन ७५-७६ गाथाद्वयमध्ये दृश्यते हस्तलिखितप्रती । ३ "चस्तिगुणत्तं" इत्यपि । ४ "हुन्ति" इत्यपि ।





॥ अहम् ॥

पूर्वधरवाचकवरश्रीशिवशर्मस्त्रिप्रणीतः

## ॥ शतकसंज्ञकः पञ्चमः कर्मग्रन्थः ॥

अरहंते भगवन्ते अणुत्तरपरकम्मे पणमिउणं ।  
बंधसयगे निबद्धं संगहमिणमो पवक्खामि ॥१॥  
सुणह इह जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।  
वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ ॥२॥  
(प्रक्षेपगाथा)

उवयोगा जोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिआ अत्थि ।  
'जप्पच्चइओ बंधो होइ 'जहा जेसु ठाणेसु ॥२॥३॥  
बंधं 'उदयमूदीरणविहिं च तिण्हं पि तेसि संजोगं ।  
बंधविहाणे य तहा किंचि समासं पवक्खामि ॥३॥४॥  
एगंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छुच्चेव ।  
पंचिंदिएसु 'वि तहा चत्तारि हवन्ति 'ठाणाणि ॥४॥५॥  
तिरियगईए 'चोइस, हवन्ति सेसासु जाण दो दो उ ।  
मग्गणठाणेसेवं, नेयाणि समासठाणाणि ॥५॥६॥  
गइइन्दिए य काए, जोए वेए कसायनाणे य ।  
संजमदंसणलोसा, भवसम्मो सन्निआहारे ॥७॥ (प्र०)  
एकारसेसु 'तिय तिय दोसु चउक्कं च वारसेगम्मि ।  
जीवसमासेसेवं उवओगविही मुणेयच्चा ॥६॥८॥  
'णवसु चउक्के एक्के जोगा एक्को य 'दोन्नि पन्नरस ।  
तन्मवगएसु एए भवन्तरगएसु काओगो ॥७॥९॥  
उवओगा जोगविही जीवसमासेसु वन्निया' एव ।  
एत्तो गुणेहि सह 'परिगयाणि ठाणाणि 'मे सुणह ॥८॥१०॥  
मिच्छदिट्ठी सासणमिस्से अजए य देसविरए य ।  
नव संजएसु 'एवं चउदस गुणनाम' ठाणाणि ॥९॥११॥

१. "जप्पच्चइव" इत्यपि । २. "जया" इत्यपि । ३. "उदयोदीरण" इत्यपि । ४. "य" इत्यपि ।  
५. "ठाणाइ" इत्यपि । ६. "चउदस" इत्यपि । ७. "तिगसिग" इत्यपि । ८. "नवसु" इत्यपि । ९. "दुक्खि"  
इत्यपि । १०. "एए" इति वा पाठः । ११. "संगयाणि" इत्यपि । १२. "मे" इत्यपि । १३. "एए" इत्यपि ।  
१४. "वेयाणि" इत्यपि ।

सुरनारएसु चत्तारि 'हुंति तिरिएसु जाण पंचेव ।  
 मणुयगईए वि तथा 'चोदम गुणनामटाणाणि ॥१०॥१२॥  
 'दोणहं पंच उ छुचेव दोसु एक्कंमि होंति वा मिस्सा ।  
 सत्तुवओगा मत्तसु दो चेव य दोसु टाणेसु ॥११॥१३॥  
 'तिसु तेरस एगे दस नवसत्तसिगम्मि हुन्ति 'एगारा ।  
 एगम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवइ एक्कं ॥१२॥१४॥  
 तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होन्ति एगारा ।  
 एगम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवइ 'एगं ॥१३॥१५॥  
 चउपच्चइओ वन्धो पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ ।  
 मीसग वीओ उवरिमदुर्ग च देसिक्कदेसम्मि ॥१४॥१६॥  
 उवरिल्लपंचके पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।  
 सामन्नपच्चया खलु अट्टण्हं होन्ति कम्माणं ॥१५॥१७॥  
 'पडिणीयअन्तराइयउवधाए तप्पओसनिन्हवणे ।  
 आवरणदुर्ग भूओ वन्धइ अच्चासणाए य ॥१६॥१८॥  
 भूयाणुकम्पवयजोगउज्जओ खन्तिदाणगुरुमत्तो ।  
 वन्धइ भूओ सायं विवरीए वन्धए हयरं ॥१७॥१९॥  
 'अरहन्त-सिद्ध-चेइअ-त्तव-सुय-गुरु-साहु-संध पडणीओ ।  
 वन्धइ दंसणमोहं अणन्तसंसारिओ जेणं ॥१८॥२०॥  
 तिच्चकसाओ बहुमोहपरिणओ रागदोससंजुत्तो ।  
 वन्धइ चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणधार्इ ॥१९॥२१॥  
 मिच्छहिट्ठी महारम्मपरिग्गहो तिच्च 'लोमनिस्सीलो ।  
 निरयाउयं निबंधइ पावमई रुहपरिणामो ॥२०॥२२॥  
 उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहिययमाइल्लो ।  
 सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं वन्धए जीवो ॥२१॥२३॥  
 पर्यईअ तणुकसायो दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।  
 मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं वन्धए जीवो ॥२२॥२४॥

१ "हुंति" इत्यपि । २ 'चउदस' इत्यपि । ३ "दुण्हं" इत्यपि । ४ "तिसु तेरस एगे दस नव योगा हुन्ति सत्तसु गुणेसु । एकारस य पमत्ते सप्त सयोगे अयोगिककं" इति पाठात्तरे । ५ "एकारा" इत्यपि । ६ "एक्कं" इत्यपि । ७ "पडिणीयमन्तराइय०" इत्यपि । ८ "अरिहन्तः" इत्यपि । ९ "लोहनीसीलो" इत्यपि ।

अणुवयमहव्वए<sup>१</sup>हि य बालतवाकामनिज्जराए य ।  
 देवाउयं निबन्धइ सम्महिट्ठी <sup>२</sup>उ जो जीवो ॥२३॥२५॥  
 मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहि पडिवट्ठो ।  
 असुहं बन्धइ <sup>३</sup>कम्मं तप्पडिवक्खेहि सुहनामं ॥२४॥२६॥  
 अरहन्ताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण-गुणपेही ।  
 बन्धइ उच्चागोयं विवरीए बन्धए इयरं ॥२५॥२७॥  
<sup>४</sup>पाणवहाईसु रओ जिणपूआमोक्खमग्गविग्घकरो ।  
 अज्जेइ अन्तरायं न लहइ जेणिच्छियं लाभं ॥२६॥२८॥  
 बंधट्ठाणा चउरो तिभि य उदयस्स हुन्ति ठाणाणि ।  
 पंच य उदीरणाए संजोयमओ परं बुच्छं ॥२६॥ (प्र०)  
 छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति तिसु य सत्तविहं ।  
 छव्विहमेगो तिन्नेगवन्धगाऽवन्धगो एगो ॥२७॥३०॥  
 सत्तट्ठविह छ (विह) बन्धगावि वेएन्ति अट्ठगं नियमा ।  
 एगविह<sup>५</sup>बन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति ॥२८॥३१॥  
 मिच्छहिट्ठिप्पभिई अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो ति ।  
 अट्ठावलियासेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति ॥२९॥३२॥  
<sup>६</sup>वेयणियाउव्वज्जे छकम्म उदीरयन्ति चत्तारि ।  
 अट्ठावलियासेसे <sup>७</sup>सुट्ठुमो उदीरेइ पञ्चेव ॥३०॥३३॥  
 वेयणियाउयमोहे वज्ज उदीरेन्ति दोन्नि पंचेव ।  
 अट्ठावलियासेसे नामं गोयं च अकसाई ॥३१॥३४॥  
 उदरेइ नामगोए छकम्मविवज्जिया सजोगो <sup>८</sup>य ।  
 वट्ठन्तो य अजोगी न किञ्चि कम्मं उदीरेइ ॥३२॥३५॥  
 अणुईरन्त अजोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो ।  
 इरियावहं न बन्धइ आसन्नपुरक्खट्ठो सन्तो ॥३३॥३६॥  
 इरियावहमाउत्ता चत्तारि व सत्त चेव वेदेन्ति ।  
<sup>९</sup>उईरन्ति दुभि पञ्च य संसारगयम्मि मयणिआ ॥३४॥३७॥

१ '०हि वा०' इत्यपि । २ "य" इत्यपि । ३ "नामं" इत्यपि । ४ "पाणि०" इत्यपि । ५ "०बन्धर" इत्यपि । ६ "वेयणियाउय०" इत्यपि वा । ७ "सुट्ठुसु उदीरेइ" इत्यपि । "सुट्ठुमोदीरेइ" इत्यपि । ८ "य" इत्यपि । ९ "उईरन्ति" इत्यपि ।

सुरनारएसु चत्तारि <sup>१</sup>हुंति तिरिएसु जाण पंचेव ।  
 मणुयगईए वि तथा <sup>२</sup>चोदस गुणनामटाणाणि ॥१०॥१२॥  
<sup>३</sup>दोण्हं पंच उ छच्चेव दोसु एककंमि होंति वा मिस्सा ।  
 सत्तुवओगा सत्तसु दो चेव य दोसु टाणेसु ॥११॥१३॥  
<sup>४</sup>तिसु तेरस एगे दस नवसत्तसिगम्मि हुन्ति <sup>५</sup>एगारा ।  
 एगम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवइ एककं ॥१२॥१४॥  
 तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होन्ति एगारा ।  
 एगम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवइ <sup>६</sup>एगं ॥१३॥१५॥  
 चउपच्चइओ वन्धो पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ ।  
 मीसग वीओ उवरिमदुगं च देसिक्कदेसम्मि ॥१४॥१६॥  
 उवरिल्लपंचके पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।  
 सामन्नपच्चया खलु अट्टण्हं होन्ति कम्माणं ॥१५॥१७॥  
<sup>७</sup>पडिणीयअन्तराइयउवधाए तप्पओसनिन्हवणे ।  
 आवरणदुगं भूओ वन्धइ अच्चासणाए य ॥१६॥१८॥  
 भूयाणुकम्पवयजोगउज्जओ खन्तिदाणगुरुमत्तो ।  
 वन्धइ भूओ सायं विवरीए वन्धए इयरं ॥१७॥१९॥  
<sup>८</sup>अरहन्त-सिद्ध-चेइअ-तव-सुय-गुरु-साहु-संध पडणीओ ।  
 वन्धइ दंसणमोहं अणन्तसंसारिओ जेणं ॥१८॥२०॥  
 तिच्चकसाओ बहुमोहपरिणओ रागदोससंजुत्तो ।  
 वन्धइ चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणघाई ॥१९॥२१॥  
 मिच्छदिट्ठी महारम्मपरिग्गहो तिच्च <sup>९</sup>लोमनिस्सीलो ।  
 निरयाउयं निबंधइ पावमई रुहपरिणामो ॥२०॥२२॥  
 उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहिययमाइल्लो ।  
 सदसीलो य ससल्लो तिरियाउं वन्धए जीवो ॥२१॥२३॥  
 पयईअ तणुक्कसायो दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।  
 मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं वन्धए जीवो ॥२२॥२४॥

१ "हुंति" इत्यपि । २ "चउदस" इत्यपि । ३ "दुण्हं" इत्यपि । ४ "तिसु तेरस एगे दस नव योगा  
 हुन्ति सत्तसु गुणेसु । एकारस य पमत्ते सप्त सयोगे अयोगिक्कं" इति पीठान्तरे । ५ "एगारा" इत्यपि ।  
 ६ "एककं" इत्यपि । ७ "पडिणीयमन्तराइय०" इत्यपि । ८ "अरिहन्तः" इत्यपि । ९ "लोमनिस्सीलो" इत्यपि ।

अणुत्रयमहृव्वए<sup>१</sup>हि य बालतवाकामनिज्जराए य ।  
 देवाउयं निवन्धइ सम्महिट्ठी<sup>२</sup> उ जो जीवो ॥२३॥२५॥  
 मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहि पडिवद्धो ।  
 असुहं वन्धइ<sup>३</sup> कम्मं तप्पडिवक्खेहि सुहनामं ॥२४॥२६॥  
 अरहन्ताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण-गुणपेही ।  
 वन्धइ उच्चागोयं विवरीए वन्धए इयरं ॥२५॥२७॥  
<sup>४</sup>पाणवहाईसु रओ जिणपूआमोक्खमग्गविग्घकरो ।  
 अज्जेइ अन्तरायं न लहइ जेणिच्छियं लामं ॥२६॥२८॥  
 बंधट्ठाणा चउरो तिन्नि य उदयस्स हुन्ति ठाणाणि ।  
 पंच य उदीरणाए संजोयमओ परं बुच्छं ॥२६॥ (प्र०)  
 छसु ठाणगेषु सत्तट्ठविहं वन्धन्ति तिसु य सत्तविहं ।  
 छव्विहमेगो तिन्नेगवन्धगाऽवन्धगो एगो ॥२७॥३०॥  
 सत्तट्ठविह छ (विह) वन्धगावि वेएन्ति अट्ठगं नियमा ।  
 एगविह<sup>५</sup>वन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति ॥२८॥३१॥  
 मिच्छदिट्ठिप्पभिई अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो त्ति ।  
 अट्ठावलियासेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति ॥२६॥३२॥  
<sup>६</sup>वेयणियाउवज्जे छकम्म उदीरयन्ति चत्तारि ।  
 अट्ठावलियासेसे<sup>७</sup>सुट्ठुमो उदीरेइ पञ्चेव ॥३०॥३३॥  
 वेयणियाउयमोहे वज्ज उदीरेन्ति दोन्नि पंचेव ।  
 अट्ठावलियासेसे नामं गोयं च अकसाई ॥३१॥३४॥  
 उहरेइ नामगोए छकम्मविवज्जिया सजोगो<sup>८</sup> य ।  
 वट्ठन्तो य अजोगी न किञ्चि कम्मं उदीरेइ ॥३२॥३५॥  
 अणुईरन्त अजोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो ।  
 इरियावहं न वन्धइ आसन्नपुरक्खडो सन्तो ॥३३॥३६॥  
 इरियावहमाउत्ता चत्तारि व सत्त चैव वेदेन्ति ।  
<sup>९</sup>उईरन्ति दुक्खि पञ्च य संसारगयम्मि मयणिज्जा ॥३४॥३७॥

१ '०हि वा०' इत्यपि । २ 'य' इत्यपि । ३ 'नामं' इत्यपि । ४ 'पाणि०' इत्यपि । ५ '०वन्धगो'  
 इत्यपि । ६ 'वेयणियाउव०' इत्यपि वा । ७ 'सुट्ठुमु उदीरेइ' इत्यपि । 'सुट्ठुमोदीरेइ' इत्यपि । ८ 'व'  
 इत्यपि । ९ 'उईरन्ति' इत्यपि ।

छप्पञ्च उदीरन्तो बन्धइ सो छव्विहं तणुकसाओ ।  
 अट्टविहमणुहवन्तो सुक्कज्झाणा 'डहइ कम्मं ॥३५॥३८॥  
 अट्टविहं वेयन्ता छविहमुईरन्ति सप्त बन्धन्ति ।  
 अनियट्ठी य नियट्ठी अपमत्तजई य ते तिन्नि ॥३६॥३९॥  
 अवसेसट्टविहकरा वेयन्ति उदीरगा वि अट्टण्हं ।  
 सप्तविहगा वि वेइन्ति अट्टगमुईरणे भज्जा ॥३७॥४०॥  
 णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं ।  
 आउयनामं गोयं तहंतरायं च पयड्डीओ ॥३८॥४१॥  
 पञ्च नव 'दोन्नि अट्टावीसा चउरो तहेव वायाला ।  
 'दोन्नि य पञ्च य मणिया पयड्डीओ उत्तरा चेव ॥३९॥४२॥  
 साइअणाई धुवअद्धुवो य बन्धो य कम्मछक्कस्स ।  
 तइए 'साइयसेसो अणाइधुवसेसओ आऊ ॥४०॥४३॥  
 उत्तरपयड्डीसु तहा धुविगाणं बन्धचउविगप्पो य ।  
 'साई अद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ ॥४१॥४४॥  
 चत्तारि पयड्ढिठाणाणि तिन्नि भूगारअप्पतरगाणि ।  
 मूलपयड्डीसु एवं अवट्ठिओ चउसु नायव्वो ॥४२॥४५॥  
 एगादहिगे पढमो एगादी ऊणगम्मि वीओ य ।  
 तत्तियमिच्चो तइओ पढमे समये अवत्तव्वो ॥४६॥(प्र०)  
 तिन्नि दस अट्ट ठाणाणि दंसणावरणमोहनामाणं ।  
 एन्थ 'य भूओगारो सेसेसेगं हवइ ठाणं ॥४३॥४७॥  
 तेवीसपण्णवीसाछ्चवीसाअट्टवीसइगुतीसा ।  
 तीसेगतीस एगं बन्धट्टाणाइ नामस्स ॥४८॥(प्र०)  
 सव्वासि 'पगईणं मिच्छदिट्ठी उ वंधओ मणियो ।  
 तित्थयराहारदुगं 'मोत्तूणं सेसपयड्डीणं ॥४४॥४६॥  
 सम्मत्तगुणानिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं ।  
 वज्जन्ति सेसियाओ मिच्छत्ताईहि हेऊहि ॥४५॥५०॥

१ "दहइ" इत्यपि । २-३ "दुन्नि" इत्यपि । ४ "साइगषज्जो" इत्यपि । ५ "साइग" इत्यपि पाठः ।  
 ६ "व" इत्यपि । ७ "पयड्डीणं" इत्यपि । ८ "मुत्तु" सतरुत्तरसयस्सा ॥" इत्यपि ।

सोलस मिच्छन्ता पणुवीसं होइ सासर्णताओ ।  
 तित्थयराउदुसेसा अविरइअंताउ मीसस्स ॥४६॥५१॥  
 अविरयअंताओ दस विरया<sup>१</sup>विरयंतया उ चत्तारि ।  
 छुच्चेव पमत्तंता एगा पुण अप्पमत्तंता ॥४७॥५२॥  
 दो<sup>२</sup>तीसं चत्तारि य, भागे भागेषु संखसम्भाए ।  
 चरमे य जहासंखं, अप्पुव्वकरणंतिया होंति ॥४८॥५३॥  
 संखेज्जइमे सेसे, आढत्ता वायरस्स<sup>३</sup>चरिमंतो ।  
 पंचसु एक्केक्कंता, सुहुमंता सोलस हवंति ॥४९॥५४॥  
 सायंतो जोगंतो एत्तो परओ उ नत्थि<sup>४</sup>बंधो य ।  
 नायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥५०॥५५॥  
 इगयाइएसु एवं तप्पाओग्गाणमोघसिद्धाणं ।  
 सामित्तं नेयव्वं पयडीणं ठाणमासज्ज ॥५१॥५६॥  
 सत्तरिकोढाकोडी अयरारणं होइ मोहणीयस्म ।  
 तीसं आइतिगंतो वीसं नामे य गोए य ॥५७॥(प्र०)  
 तेचीसुदही आउम्मि केवला होइ एवमुक्कोसा ।  
 मूलपयडीण एत्तो ठिइं जहन्नं निसामेह ॥५८॥(प्र०)  
 मूलठिईण-उजहन्नो सत्तणहं साइयाइओ बंधो ।  
 सेसतिगे दुविगप्पो आउचउक्केवि<sup>५</sup>दुविकप्पो ॥५२॥५६॥  
 अट्टारसपयडीणं अजहन्नो बंध चउविगप्पो य ।  
<sup>६</sup>साईअधुवबंधो सेसतिगे होइ चोद्धव्वो ॥५३॥६०॥  
 उक्कोसाणुक्कोसो<sup>७</sup>जहन्नमजहन्नो य ठिइबंधो ।  
<sup>८</sup>साईअधुवबंधो सेसाणं होइ पयडीणं ॥५४॥६१॥  
 सव्वासि पि ठिईओ सुभासुभाणंपिःहोंति असुभाओ ।  
 माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥५५॥६२॥  
<sup>९</sup>सव्वठिईणमुक्कोसगो उ उक्कोससंक्खित्तेसेणं ।  
 विवरीए उ जहन्नो आउगतिगवज्जसेसाणं ॥५६॥६३॥

१ "विरयंतियाउ" इत्यपि । २ "तीसा" इत्यपि । ३ "चरमंते" इत्यपि । ४ "बन्धोत्ति" इत्यपि ।  
 ५ "दुविगप्पो" इत्यपि । ६-८ "साइयअधुव" इत्यपि । ७ "जहन्नमजहन्नो" इत्यपि । ९ "सव्वठिईणं  
 उ" इत्यपि ।



सञ्चुक्कोसठिईणं मिच्छादिङ्गी उ वंधओ भणिओ ।  
 आहारगतित्थयरं देवाउं वा वि मुत्तूणं ॥५७॥६४॥  
 देवाउयं पमत्तो आहारगमपमत्तविरओ ३उ ।  
 तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ ॥५८॥६५॥  
 पन्नरसण्हं ठिइमुक्कोसं वंधंति मणुयतेरिच्छा ।  
 छण्हं सुरनेरइया ईसाणंता सुग तिण्हं ॥५९॥६६॥  
 सेसाणं चउगइया ठिइ<sup>२</sup>मुक्कस्मं करंति पगईणं ।  
 उक्कोससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि ॥६०॥६७॥  
 आहारगतित्थयरं नियड्ढिअनियड्ढि पुरिससंजलणं ।  
 वंधइ सुहुमसरागो सायजसुत्तावरणविण्वं ॥६१॥६८॥  
 छण्हमसन्नी कुणइ ४जहन्नठिइं आउगाणमन्नयरो ।  
 सेमाणं पज्जत्तो वायरएगिदियविसुद्धो ॥६२॥६९॥  
 धाईणं अजहन्नोऽणुक्कोसो वेयणीयनामाणं ।  
 ५अजहन्नमणुक्कोसो गोए अणुभागबंधम्मि ॥६३॥७०॥  
 ६साई अणाई धुवअद्धुवो य वन्धो उ मूलपयडीणं ।  
 सेसंमि उ दुविगप्पो आउचउक्के वि दुविगप्पो ॥६४॥७१॥  
 अड्ढण्हमणुक्कोसो तेयालाणमज्जहन्नगो वंधो ।  
 णेओ हि चउविगप्पो सेसतिगे होइ दुविगप्पो ॥६५॥७२॥  
 उक्कोसमणुक्कोसो जहन्नमज्जहन्नगो ७य अणुभागो ।  
 साईअद्धुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं ॥६६॥७३॥  
 सुमपयडीणं विसोहीइ तिच्चमसुहाण संकिलेसेणं ।  
 विवरीए उ जहन्नो अणुभागो सच्चपयडीणं ॥६७॥७४॥  
 वायालंपि पसत्था विसोहिगुणउक्कडस्स तिच्चाओ ।  
 वासीइमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिड्डस्स ॥६८॥७५॥  
 आयवनामुज्जोयं माणुसतिरियाउगं पसत्थासु ।  
 मिच्छस्स हुंति तिच्चा सम्मदिड्ढिस्स सेसाओ ॥६९॥७६॥

१ 'सञ्चुक्कोसं' इत्यपि । २ 'य' इत्यपि । ३ "मुक्कोसं करंति" इत्यपि । ४ "जहन्नं ठिइमां" इत्यपि । ५ "अजहन्नमणुं" इत्यपि । ६ 'साइअणाई' इत्यपि । ७ 'वि' इत्यपि ।

देवाउमप्पमत्तो तिव्वं खवगा 'करिति वत्तीसं ।  
 बन्धंति तिरयमणुया एक्कारस मिच्छभावेणं ॥७०॥७७॥  
 पंच सुरसम्मदिट्ठी सुरमिच्छो तिन्नि जयइ पयडीओ ।  
 उज्जोयं तमतमगा सुरनेरइया भवे तिण्हं ॥७१॥७८॥  
 सेसाणं चउगइया तिव्वणुभागं 'करिति पयडीणं ।  
 मिच्छदिट्ठी नियमा तिव्वकसाउक्कडा जीवा ॥७२॥७९॥  
 चोइस 'सरागचरिमे पंचगमनियट्ठि नियट्ठिएक्कारं ।  
 सोलस मंदणुभागं संजमगुणपत्थिओ जयइ ॥७३॥८०॥  
 आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो उ अरइसोगाणं ।  
 सोलस माणुसतिरिया सुरनारगतमतमा तिन्नि ॥७४॥८१॥  
 एग्गिदियथावरयं मंदणुभागं 'करेति तिगईया ।  
 परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा नेरइयवज्जा ॥७५॥८२॥  
 आसोहम्मायावं अविरइमणुओ 'य जयइ तित्थयरं ।  
 चउगइउक्कडमिच्छो पन्नरस दुवे विसोहीए ॥७६॥८३॥  
 सम्मदिट्ठी मिच्छो व अट्ठ परियत्तमज्झिमो जयति ।  
 परियत्तमाणमज्झिममिच्छदिट्ठी उ तेवीसं ॥७७॥८४॥  
 केवलनाणावरणं दंसणछक्कं च मोहचारसर्गं ।  
 ता सन्वघाइसभा हवंति मिच्छत्तवीसइमं ॥७८॥८५॥  
 नाणावरणचउक्कं दंसणतिग'अंतराइए पंच ।  
 पणुवीसदेसघाई संजलणा नोकसाया य ॥७९॥८६॥  
 अवसेसा पयडीओ अघाइया 'घाइयाहि पलिमागा ।  
 ता एव पुन्नपावा सेसा पावा मुणोयव्वा ॥८०॥८७॥  
 आवरणदेसघायंतरायसंजलणपुरिससत्तरस ।  
 चउविहभावपरिणया तिविहपरिणया भवे सेसा ॥८१॥८८॥  
 चउपच्चएगमिच्छत्तसोलसदुपच्चया य पणतीसं ।  
 सेसा तिपच्चया खल्लु तित्थयराहारवज्जाओ ॥८२॥८९॥  
 पंच य 'छत्तिभिं छं पंच दोन्नि पंच य हवंति अट्ठेव ।  
 सरिराई फासंता पयडीओ आणुपुच्चीए ॥८३॥९०॥

१ "करेति" इत्यपि । २ "कुणंति" इत्यपि । ३ "सरागचरमो" इत्यपि । ४ "करेति तेगइया" इत्यपि ।  
 "उ" इत्यपि । ६ "अंतराइयं" इत्यपि । ७ "घाइयाइपडि०" इत्यपि । ८ "छत्तिगछपंच" इत्यपि ।

१अगुरुलहुग उवघायं परघा उज्जोयआयव<sup>२</sup>निमेणं ।  
 पत्तेयथिरसुभेयरनामाणि य<sup>३</sup>पोग्गलविवागा ॥८४॥६१॥  
 आऊणि भवविवागा खित्तविवागा<sup>४</sup>य आणुपुच्चीओ ।  
 अवसेसा पयडीओ जीवविवागा मुणेयव्वा ॥८५॥६२॥  
 एगपएसोगाढं सव्वपएसेहि<sup>५</sup>कम्मणो जोगं ।  
 वंधइ जहुत्तहेउं साईयमणाइयं वा वि ॥८६॥६३॥  
 पंचरसपंचवन्नेहि<sup>६</sup>संजुयं दुविहगंधचउफासं ।  
 द्वियमणंतपएसं सिद्धेहि अणंतगुणहीणं ॥८७॥६४॥  
 आउगभागो थोत्रो णामे गोए समो तओ अहिओ ।  
 आवरणमंतराए<sup>७</sup>तुल्लो अहिगो य मोहे वि ॥८८॥६५॥  
 सव्वुवरि<sup>८</sup>वेयणीए भागो अहिगो<sup>९</sup>अ कारणं किंतु ।  
 सुहदुक्खकारणात्ता ठिईविसेसेण सेसाणं ॥८९॥६६॥  
 छणहंपि अणुक्कोसो पएसबंधो चउन्विहो बंधो ।  
 सेसतिगे दुविगप्पो मोहाउ य सव्वहिं चव ॥९०॥६७॥  
 तीसण्हमणुक्कोसो उत्तर<sup>१०</sup>पयडीसु चउविहो बंधो ।  
 सेसतिगे दुविगप्पो<sup>११</sup>सेसासु य चउविगप्पो वि ॥९१॥६८॥  
 आउकस्स पएसस्स पंच मोहस्स सत्त ठाणाणि ।  
 सेसाणि तणुक्काओ बंधइ उक्कोसगे जोगे ॥९२॥६९॥  
 सुहुमनिगोयाऽपजत्तगस्स पढमे जहन्नेगे जोगे ।  
 सत्तण्हं<sup>१२</sup>तु जहन्नं आउगबंधे वि आउस्स ॥९३॥१००॥  
<sup>१३</sup>सत्तर सुहुमसरागो पंचगमनियट्ठि सम्मगो नवगं ।  
 अजई<sup>१४</sup>वित्तिक्काए देसजई तइयए जयइ ॥९४॥१०१॥  
 तेरस बहुप्पएसं सम्मो मिच्छो व कुणइ पयडीओ ।  
 आहारमप्पमत्तो सेसपएसुक्कहं मिच्छो ॥९५॥१०२॥

१ "अगुरुलहु" । २ "निम्मेणं" इत्यपि । ३ "पुग्गळ" इत्यपि । ४ "उ" इत्यपि । ५ "कम्मणो" इत्यपि । ६ "परिणय" इत्यपि पाठः । ७ "सरिसो" इत्यपि पाठः । ८ "वेयणीयं" इत्यपि । ९ "उ" इत्यपि । १० "पयडीण" इत्यपि । ११ "सेसाणं" इत्यपि । १२ "पि जहन्णे" इत्यपि । "सत्तरस" इत्यपि । १४ "वीअक्काए" इत्यपि ।

सन्नी उक्त्वजोगी पञ्जत्तो पयडिवंधमप्पयरो ।  
 कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नगं जाण विवरीए ॥६६॥१०३॥  
 घोळणजोगिअसन्नी वंधइ चउ 'दोन्नि अप्पमत्तो उ ।  
 १पंचासंजयसम्मो भवाइ सुहुमो भवे सेसा ॥९७॥१०४॥  
 जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ ।  
 कालभत्रखित्तपेक्खो उदओ सविवागअविवागो ॥६८॥१०५॥  
 सेट्ठिअसंखेज्जइमे जोगट्टाणाणि होंति सव्वाणि ।  
 २तेसिमसंखिज्जगुणो पयड्डीणं संगहो सव्वो ॥६९॥१०६॥  
 तासिमसंखिज्जगुणा ठिइविसेसा हवंति नायव्वा ।  
 ३ठिइबंधज्जवसायाणिऽसंखगुणियाणि एत्तो उ ॥१००॥१०७॥  
 तेसिमसंखिज्जगुणा अणुभागे होंति वंधठाणाणि ।  
 एत्तो अणंतगुणिया कम्मपएसो म्भुयोयव्वा ॥१०१॥१०८॥  
 अविभाग पञ्चिच्छेया अणंतगुणिया ४भवंति एत्ता उ ।  
 सुयपवरदिट्ठिवाए चिसिद्ध ५मतओ परिकर्हिति ॥१०२॥१०९॥  
 एसो वंधसमासो ६विंदुक्खेवेण वन्निओ कोइ ।  
 कम्मप्पवायसुय ७सागरस्स णिस्संदमेत्ताओ ॥१०३॥११०॥  
 वंधविहाणसमासो रइओ अप्पसुयमंदमइणा उ ।  
 तं वंधमोक्खणिउणा पूरेऊणं ८परिकर्हिति ॥१०४॥१११॥  
 इय कम्मयडिपयं ९संखेवुद्धिं णिच्छियमहत्थं ।  
 जो १०उवजुज्जइ बहुसो सो णाहित्ति वंधमोक्खइ ॥१०५॥११२॥

१ "दुग्धि" इत्यपि । २ "पंच असं" इत्यपि । ३ "तेसि असं" इत्यपि । ४ "विंदुक्खेवेण वन्निओ" इत्यपि । ५ "सुयपवरदिट्ठिवाए चिसिद्ध" इत्यपि । ६ "हवन्ति इत्तो उ" इत्यपि । ७ "मयओ परि-  
 कर्हन्ति" इत्यपि । ८ "पण्डक्खेवेण वणिणओ" इत्यपि । ९ "सायरस्स निस्संदमित्तो उ" इत्यपि । १०  
 "परिकर्हन्तु" इत्यपि । ११ "संखेवुद्धिनिच्छियमहत्थं" इत्यपि । १२ "उ वज्जइ बहुसो सो नाहिइ वन्धमो-  
 क्खत्थ" ॥ इत्यपि ।



## \* सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

सिद्धपएहि महत्थं, वंधोदयमंत 'पयडिठाणाणं ।  
 'बुच्छं सुण संखेवं, 'नीमंदं दिड्ढिवायस्स ॥ १ ॥  
 कइ वंधंतो वेयइ, कइ कइ वा 'संतपयडिठाणाणि ।  
 मूलुत्तरं पगईसुं, भंगविगप्पा 'उ वोद्धव्वा ॥ २ ॥  
 अट्टविहसत्तछव्वंधं 'एसु, अट्टेव उदय 'संतंसा ।  
 एगविहे तिविगप्पो, एगविगप्पो अवंधंमि ॥ ३ ॥  
 सत्तट्टवंधं अट्टुदय-मंत तेरससु जीवठाणेसु ।  
 एगंमि पंच भंगा, दो भंगा 'हुंति केवल्लिणो ॥ ४ ॥  
 अट्टसु एगविगप्पो, छस्सु वि गुणसन्निएसु दुविगप्पो ।  
 पत्तेअं पत्तेअं, वंधोदयसंतकम्माणं ॥ ५ ॥  
 पंच नव' 'दुन्नि अट्टा-वीसा चउरो तहेव वायाला ।  
 ' 'दुन्नि' 'अ पंच य मणिया, पयहीओ आणुपुव्वीए ॥ ६ ॥  
 (प्रक्षेपगाथा)  
 वंधोदयसंतंसा, नाणावरणंतराइए पंच ।  
 वंधोवरमेवि 'उदय, संतंसा हुंति पंचेव ॥ ६ ॥ ७ ॥

ॐ सप्ततिकाख्यस्य षष्ठस्य कर्मग्रन्थस्य मूलगाथाः सप्ततिकाचूर्णाविकसप्ततिसङ्ख्याका गृहीताः सन्ति । ताश्चात्रा-ऽङ्कतो दर्शिताः तथा-ऽन्या अपि प्रक्षिप्तगाथा मुद्रितपुस्तकेषूपलभ्यन्ते ता अप्यत्र संगृहीताः, ताभिः प्रक्षिप्तगाथामिः सह मूलगाथानां क्रमाद् एकनवतिसङ्ख्यान्तः प्रदर्शितः स च मुद्रित-पुस्तकेषु दृश्यते । हस्तलिखितप्रतौ पुनरेकनवतिगाथोक्तक्रमानुसारेण ६६-६७ तमगाथयोर्मध्ये द्वे गाथे अधिकतया स्तः, ६२ तमगाथा नास्ति, ६८-६९ तमगाथयोर्मध्येऽधिकतयैकगाथा-ऽस्ति, तेन हस्तलिखित-प्रतौ सर्वा गाथास्त्रिनवतिर्भवति । मुद्रितपुस्तकापेक्षया हस्तलिखितप्रतौ २१-२२ तमगाथयोः, २७-२८ तमगाथयोः, ५५-५६ तमगाथयोश्च क्रमव्यत्ययोऽस्ति । ८६ तमगाथा च मिन्नेवास्ति । तथा श्रीमन्म-लयगिरिपादकृतवृत्तावपि चूर्णितमूलगाथाः सन्ति, केवलं तत्र २४-२५ तमगाथयोर्मध्ये भाष्यसत्का-ऽशीतितमा गाथा २५ तमगाथातयाऽधिका प्रक्षिप्ता विद्यते, तेन तत्र सर्वा गाथा द्वासप्ततिर्भवति ।

१. "पगइ" इति वा "पगडि" इति वा । २. "बोच्छं" इत्यपि । ३. "निस्संदं" इत्यपि । ४. "संति पगडिठाणाणि" इति वा, "पयडिसंतठाणाणि" इति वा "पयडिठाणकम्मंसा" इति वा "पयडिठाणसंतंसा" इति वा पाठः । ५. "पयहीसुं" इति वा, "पयहीणं" इति वा पाठः । ६. "उ बोधव्वा" इति वा "सुणेयव्वा" इति वा पाठः । ७. "ओसु" इति वा । ८. "संतंसा" इत्यपि । ९. "हुंति" इत्यपि । १०-११. "दोन्नि" इत्यपि । १२. "य" इत्यपि । १३. तद्वा उद-सत्ता हुंति पंचेव ॥६॥' इति वा, "तद्वा उदसंता हुंति पञ्चेव ॥६॥" इति वा, "पुणो पञ्चेव य उदयसंतंसा ॥७॥ इति वा ।

बंधस्स य संतस्स य, 'पगइट्टाणाइँ तिण्णि तुल्लाइँ ।  
 उदयट्टाणाइँ दुवे, चउ पणगं दंसणावरणे ॥ ७ ॥ ८ ॥  
 वीआवरणे नवबंध<sup>१</sup>एसु, चउपंचउदय नवसंता ।  
 छच्चउबंधे चेत्रं, चउबंधुदए छलंसा य ॥ ८ ॥ ९ ॥  
 उवरयबंधे चउ<sup>२</sup>पण, नवंस चउरुदय<sup>३</sup> छच्च चउ संता ।  
 वेअणिआउयगोए, विमज्ज मोहं परं<sup>४</sup> बुच्छं ॥ ९ ॥ १० ॥  
 गोअंमि सत्त भंगा, अट्ट य भंगा हवंति वेअणिए ।  
 पण नव नव पण भंगा, आउचउक्के वि कमसो<sup>५</sup> उ ॥ ११ ॥ (प्र०)  
 बावीस<sup>६</sup> इक्कवीसा, सत्तरमं<sup>७</sup> तेरसेव नव पंच ।  
 चउ तिग दुगं च<sup>८</sup> इक्कं, बंधट्टाणाणि मोहस्स ॥ १० ॥ १२ ॥  
 एगं व दो व चउरो, एत्तो<sup>९</sup> एगाहिआ दसुक्कोमा ।  
 ओहेण मोह<sup>१०</sup> णिज्जे, उदय<sup>११</sup> ट्टाणाणि नव हुंति ॥ ११ ॥ १३ ॥  
 अट्टय-सत्तय-छ-च्चउ-तिग-दुग-<sup>१२</sup> एगाहिआ भवे वीसा ।  
 तेरस<sup>१३</sup> वारिक्कारस, इत्तो पंचाइ<sup>१४</sup> एगूणा ॥ १२ ॥ १४ ॥  
 संतस्स<sup>१५</sup> पयडिठाणाणि, ताणि मोहस्स<sup>१६</sup> हुंति पन्नरस ।  
 बंधोदयसंते पुण, भंगं<sup>१७</sup> विगप्पा<sup>१८</sup> वहु जाण ॥ १३ ॥ १५ ॥  
 छन्वावीसे चउ इगवीसे, सत्तरस तेरसे दो दो ।  
 नवबंधगे वि<sup>१९</sup> दुण्णि उ, इक्किक्कमओ परं भंगा ॥ १४ ॥ १६ ॥  
 दस बावीसे नव<sup>२०</sup> इगवीसे, सत्ताइ उदय<sup>२१</sup> कम्मंसा ।  
 छाई नव सत्तरसे, तेरे पंचाइ अट्टेव ॥ १५ ॥ १७ ॥

१. "पगईट्टाणाणि विभि तुल्लाणि" इति वा, "पगडिट्टाणाणि तिभि सरिसाणि ।" इति वा । २. "उदयट्टाणाणि" इति वा । ३. "गेसु" इति वा । ४. "पंच उदय नवसंत छच्च चउजुयलं ।" इत्यपि पाठः । ५. "छ चउसंताइँ" इत्यपि । ६. "वोच्छं" इति वा । ७. "य" इत्यपि । ८. "एक्कवीसा" इत्यपि । ९. "सत्तरसा" इत्यपि । १०. "एक्कं" इति वा 'एगं' इति वा । ११. "एक्कं" इति वा, "एक्को" इति वा, "एक्को" इति वा, "एगं च दो य चउरो" इति वा । १२. "एक्काहिआ" इत्यपि । १३. "णिज्जा" इति वा । १४. "ट्टाणा नव हुवंति" इत्यपि । १५. "अट्टयसत्तग" इति । १६. "एक्कां" इत्यपि । १७. "वारिक्कारस" इति वा । १८. "एत्तो" इति वा । १९. "एक्कूणा" इत्यपि, "एक्कूणा" इत्यपि वा । २०. "पगडिं" इति वा, "पगइं" इति वा, "पगइट्टाणाइँ" इति वा । २१. "दोनि" इति वा । २२. "विगप्पे" इति वा । २३. "वहुं" इत्यपि । २४. "पत्रं" इत्यपि । २५. "दोनि" इत्यपि । २६. "एक्केक्कं" इत्यपि । २७. "इक्कवीस" इति वा "इगवीस" इति वा । २८. "ठाणाणि" इति वा "ठाणाइँ" इति वा ।

## \* सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

सिद्धपएहि महत्थं, वंधोदयमंत 'पयडिठाणाणं ।  
<sup>१</sup>बुच्छं सुण संखेवं, <sup>३</sup>नीमंदं दिट्ठिवायस्स ॥ १ ॥  
 कइ वंधंतो वेयइ, कइ कइ वा 'मंतपयडिठाणाणि ।  
 मूलुत्तरं पगईसु, भंगविगप्पा 'उ वोद्धव्वा ॥ २ ॥  
 अट्टविहसत्तछब्बंधं एसु, अट्टेव उदय 'संतंसा ।  
 एगविहे त्तिविगप्पो, एगविगप्पो अवंधंमि ॥ ३ ॥  
 सत्तडुबंधं अट्टुदय-मंत तेरससु जीवठाणेसु ।  
 एगंमि पंच भंगा, दो भंगा 'हुंति केवल्लिणो ॥ ४ ॥  
 अट्टसु एगविगप्पो, छस्सु त्ति गुणसन्निएसु दुविगप्पो ।  
 पत्तेअं पत्तेअं, वंधोदयसंतकम्माणं ॥ ५ ॥  
 पंच नव' 'दुत्ति अट्टा-वीसा चउरो तहेव वायाला ।  
 ' 'दुत्ति' 'अ पंच य भणिया, पयडीओ आणुणुव्वीए ॥ ६ ॥  
 (प्रक्षेपगाथा)  
 वंधोदयसंतंसा, नाणावरणंतराइए पंच ।  
 वंधोवरमेवि 'उदय, संतंसा हुंति पंचेव ॥ ६ ॥ ७ ॥

\* सप्ततिकाख्यस्य षष्ठस्य कर्मग्रन्थस्य मूलगाथाः सप्ततिकाचूर्णावेकसप्ततिसङ्ख्याका गृहीताः सन्ति । ताश्चात्रा-ऽङ्कतो दर्शिताः तथा-ऽन्या अपि प्रक्षिप्तगाथा मुद्रितपुस्तकेषूपलभ्यन्ते ता अर्धप्र संगृहीताः, ताभिः प्रक्षिप्तगाथाभिः सह मूलगाथानां क्रमाद् एकनवतिसङ्ख्यान्तः प्रवक्षितः स च मुद्रित-पुस्तकेषु दृश्यते । हस्तलिखितप्रतौ पुनरेकनवतिगाथोक्तक्रमानुसारेण ६६-६७ तमगाथयोर्मध्ये द्वे गाथे अधिकतया स्तः, ६२ तमगाथा नास्ति, ६८-६९ तमगाथयोर्मध्येऽधिकतयैकगाथा-ऽस्ति, तेन हस्तलिखित-प्रतौ सर्वा गाथास्त्रिनवतिर्भवति । मुद्रितपुस्तकापेक्षया हस्तलिखितप्रतौ २१-२२ तमगाथयोः, २५-२८ तमगाथयोः, ५५-५६ तमगाथयोश्च क्रमव्यत्ययोऽस्ति । ८६ तमगाथा च भिन्नैवास्ति । तथा श्रीमन्म-ल्लयगिरिपादकृतवृत्तावपि चूर्णितमूलगाथाः सन्ति, केवलं तत्र २४-२५ तमगाथयोर्मध्ये भाष्यसत्का-ऽशीतितमा गाथा २५ तमगाथातयाऽधिका प्रक्षिप्ता विद्यते, तेन तत्र सर्वा गाथा द्वासप्ततिर्भवति ।

१. "पगइ" इति वा "पगडि" इति वा । २. "बोच्छं" इत्यपि । ३. "निस्संदं" इत्यपि । ४. "संतं पयडिठाणाणि" इति वा, "पयडिसंतठाणाणां" इति वा "पयडिठाणकम्मंसा" इति वा "पयडिठाणासंतंसा" इति वा पाठः । ५. "पयडीसु" इति वा, "पयडीणं" इति वा पाठः । ६. "उ वोद्धव्वा" इति वा "सुणेयव्वा" इति वा पाठः । ७. "ओसु" इति वा । ८. "संतंसा" इत्यपि । ९. "होत्ति" इत्यपि । १०-११. "दोत्ति" इत्यपि । १२. "य" इत्यपि । १३. तद्वा उद-सता होत्ति पंचेव ॥६॥' इति वा, 'तद्वा उदसंता हुंति पञ्चेव ॥६॥' इति वा, "पुणे पञ्चेव य उदयसंतंसा ॥७॥ इति वा ।

वंधस्स य संतस्स य, 'पगइट्टाणाइँ तिण्णि तुल्लाइँ ।  
 उदयट्टाणाइँ दुवे, चउ पणगं दंसणावरणे ॥ ७ ॥ ८ ॥  
 वीआवरणे नवबंध<sup>१</sup>एसु, चउपंचउदय नवसंता ।  
 छच्चउबंधे चैवं, चउबंधुदए छलंसा य ॥ ८ ॥ ९ ॥  
 उवरयबंधे चउ<sup>२</sup>पण, नवंस चउरुदय<sup>३</sup> छच्च चउ संता ।  
 वेअणिआउयगोए, विमज्ज मोहं परं<sup>४</sup> चुच्छं ॥ ९ ॥ १० ॥  
 गोअंमि सत्त भंगा, अट्ट य भंगा हवंति वेअणिए ।  
 पण नव नव पण भंगा, आउचउक्के वि कमसो<sup>५</sup> उ ॥ ११ ॥ (प्र०)  
 वावीस<sup>६</sup> इक्कवीसा, सत्तरमं<sup>७</sup> तेरसेव नव पंच ।  
 चउ तिग दुगं च<sup>८</sup> इक्कं, वंधट्टाणाणि मोहस्स ॥ १० ॥ १२ ॥  
 एगं व दो व चउरो, एत्तो<sup>९</sup> एगाहिआ दसुक्कोमा ।  
 ओहेण मोह<sup>१०</sup> णिज्जे, उदय<sup>११</sup> ट्टाणाणि नव हुंति ॥ ११ ॥ १३ ॥  
 अट्टय-सत्तय-छ-च्चउ-तिग-दुग-<sup>१२</sup> एगाहिआ भवे वीसा ।  
 तेरस<sup>१३</sup> बारिक्कारस, इत्तो पंचाइ<sup>१४</sup> एगूणा ॥ १२ ॥ १४ ॥  
 संतस्स<sup>१५</sup> पयडिठाणाणि, ताणि मोहस्स<sup>१६</sup> हुंति पत्तरस ।  
 वंधोदयसंते पुण, भंग<sup>१७</sup> विगप्पा<sup>१८</sup> बहू जाण ॥ १३ ॥ १५ ॥  
 छन्वावीसे चउ इगवीसे, सत्तरस तेरसे दो दो ।  
 नवबंधगे वि<sup>१९</sup> दुण्णि उ, इक्किक्कमओ परं भंगा ॥ १४ ॥ १६ ॥  
 दस वावीसे नव<sup>२०</sup> इगवीसे, सत्ताइ उदय<sup>२१</sup> कम्मंसा ।  
 छाई नव सत्तरसे, तेरे पंचाइ अट्टेव ॥ १५ ॥ १७ ॥

१. "पगईठाणाणि तिन्नि तुल्लाणि" इति वा, "पगडिठ्ठाणाणि तिन्नि सरिसाणि ।" इति वा । २.  
 "उदयट्टाणाणि" इति वा । ३. "ओसु" इति वा । ४. "पंच उदय नवसंत छच्च चउजुयलं" इत्यपि  
 पाठः । ५. "छ चउसंताइँ" इत्यपि । ६. "वोच्छं" इति वा । ७. "य" इत्यपि । ८. "एक्कवीसा" इत्यपि ।  
 ९. "सत्तरसा" इत्यपि । १०. "एक्कं" इति वा "एगं" इति वा । ११. "एक्कं" इति वा, "एक्को" इति वा,  
 "एको" इति वा, "एगं च दो य चउरो" इति वा । १२. "एक्काहिया" इत्यपि । १३. "णिज्जा" इति वा ।  
 १४. "ट्टाणा नव हवंति" इत्यपि । १५. "अट्टयासत्तग" इति । १६. "एक्का०" इत्यपि । १७. "बारिक्कारस"  
 इति वा "वारेक्कारा" इति वा । १८. "एत्तो" इति वा । १९. "एक्कूणा" इत्यपि, "एक्कूणा" इत्यपि वा ।  
 २०. "पगडि०" इति वा, "पगइ०" इति वा, "पगइठाणाइँ" इति वा । २१. "होनि" इति वा । २२.  
 "विगप्पे" इति वा । २३. "वहुं" इत्यपि । २४. "पण०" इत्यपि । २५. "दोन्नि" इत्यपि । २६. "एक्के-  
 क्क०" इत्यपि । २७. "इक्कवीस" इति वा "पगवीस" इति वा । २८. "ठाणाणि" इति वा "ठाणाइँ" इति वा ।



चत्तारि <sup>१</sup>आइ <sup>२</sup>नवबंध <sup>३</sup>एमु <sup>४</sup>उक्क्रोम सत्तमुदयंमा ।  
 पंचविहबंधगे पुण, उदओ <sup>५</sup>दुणहं मुणेअच्चो ॥१६॥१८॥  
<sup>६</sup>इत्तो चउ <sup>७</sup>बंधाई, <sup>८</sup>इक्क्रक्कुदया हवति सन्वेवि ।  
 बंधोवरमेव तथा, उदयाभावे वि <sup>९</sup>वा <sup>१०</sup>हुज्जा ॥१७॥१९॥  
<sup>११</sup>इक्क्रग छक्क्रक्कारस, दम सत्त चउवक् <sup>१२</sup>इक्क्रगं चेव ।  
 एए चउवीमगया, <sup>१३</sup>चउवीम दुगेक्कमेक्कारा ॥१८॥२०॥  
<sup>१४</sup>नवतेसीइसएहिं, उदय <sup>१५</sup>विगप्पेहिं मोहिआ जीवा ।  
<sup>१६</sup>अउणुत्तरिसीआला, पय <sup>१७</sup>विंदमएहिं विन्नेआ ॥२०॥२१॥  
 नवपंचा <sup>१८</sup>णउअसए, उदयविगप्पेहिं <sup>१९</sup>मोहिआ जीवा ।  
<sup>२०</sup>अउणुत्तरि एगुत्तरि, पयविंदमएहिं विन्नेआ ॥१६॥२२॥  
<sup>२१</sup>तिन्नेव य वार्वासे. इगवीसे अट्टवीस <sup>२२</sup>सत्तरसे ।  
 छच्चेव तेर <sup>२३</sup>नव-बंध <sup>२४</sup>एमु पंचेव <sup>२५</sup>ठाणाणि ॥२१॥२३॥  
 पंचविहचउविहेसुं, छक्क्रक्क सेसेसु जाण पंचेव ।  
<sup>२६</sup>पत्तेअं, पत्तेअं चत्तारि <sup>२७</sup>अ बंध <sup>२८</sup>वुच्छेए ॥२२॥२४॥  
 दसनवपन्नरसाइं. बंधोदयसंतं <sup>२९</sup>पयडिठाणाणि ।  
<sup>३०</sup>भणिआणि मोहणिज्जे, <sup>३१</sup>इत्तो <sup>३२</sup>नामं परं <sup>३३</sup>वुच्छं ॥२३॥२५॥

१ "८माइ" इति वा । २ "णव०" इति वा । ३ "८गेसु" इति वा । ४ "सत्तुक्कमेण उदयंसा"  
 इति वा "उक्क्रोससत्त उदयसा" इति वा । ५. "दुण्हं" इति वा । ६ "एत्तो" इति वा ।  
 ७ "बंधादी" इत्यपि । ८ "एक्क्रक्कु" इत्यपि, "इक्क्रक्कु०" इत्यपि वा । ९. "ता होज्जा ॥१६॥"  
 इति वा । १०. "होज्जा" इत्यपि । ११. "एक्क्रग छक्क्रक्कारस" इत्यपि । १२. "एक्क्रगा" इति वा,  
 "एक्क्रग" इति वा । १३. "चउवीसदुगेक्कमिक्कारा ॥१८॥" इत्यपि, "चउवीस दुगिक्कमिक्कारा  
 ॥२०॥" इत्यपि वा, "बार दुगिक्कमि इक्कारा ॥२०॥" इत्यपि वा । १४. इयं गाथा हस्तलिखितप्रतौ  
 द्वाविंशतितमी द्वाविंशतितमी चैकविंशतितमीति व्यत्ययः । १५ "विगप्पेहिं मोहिया" इत्यपि । १६.  
 "अउणुत्तरिसीआला" इत्यपि । १७ "०वंद०" इत्यपि । १८. "०णउयसए" इति वा, "०णउइसएहुदयं०"  
 इति वा, "०णुयसएहिं" इति वा । १९. "मोहिया" इत्यपि । २०. "अउणुत्तरि" इति वा, "अउणुत्तरि  
 एगुत्तरि" इति वा । २१. "तिन्नेव च" इति वा, "तिन्नेव च" इति वा । २२. "कम्मंसा ।  
 सत्तरसे छसंते तेरस नवबंधए पच ॥२३॥" इति हस्तलिखितप्रतौ । २३ "णव०" इति वा । २४ "८गेसु"  
 इति वा । २५. "ठाणाइं ॥२१॥" इति वा २६ "पत्तेयं पत्तेयं" इत्यपि । २७ "य" इति वा, "उ" इति  
 वा । २८ "वोच्छेए" इत्यपि । २९. "०पगइ०" इति वा, "०पयइ०" इत्यपि वा । ३०. "भणियाइं"  
 इत्यपि ३१. "एत्तो" इति वा । ३२ "णामं" इति वा । ३३ "वोच्छं" इत्यपि ।

तेवीम १पणवीसा, छव्वीमा अट्टवीस २गुणतीसा ।  
 ३तीसेगतीस ४मेगं. वंध ५ट्टाणाणि नामस्म ॥२४॥२६॥  
 ६चउ पणवीसा सोलम नव वाणउईसया य अडयाला ।  
 एयालुत्तरछाया--लमया ७इक्किक्क वंधविही ॥२७॥(प्र०)  
 वीसिगवीसा चउवीसग्गा उ एगाहिआ य इगतीसा ।  
 उदयट्टाणाणि भवे नव अट्ट य ८हुंति नामस्स ॥२५॥२८॥  
 ९इक्क विआलिक्कारस, ११तित्तीसा छस्सयाणि १२तित्तीसा ।  
 वारससत्तरससयाण -हिगाणि विपंचसीईहि ॥२६॥२९॥  
 अउणत्ती १३सिक्कारससयाणिहि असतरपंचसट्टीहि ।  
 १४इक्किक्कगं च वीसा-दट्टुदयंतेसु उदयविही ॥२७॥३०॥  
 तिट्टुनउई १५गुणनउई, १६अडसी छलमी असीइ १७गुणसीई ।  
 १८अट्टयच्छप्पत्तरि, नव अट्ट य १९नामसंताणि ॥२८॥३१॥  
 अट्ट य वारस वारस, वंधोदय २०संतपयद्धि २१ठाणाणि ।  
 ओहेणाएसेण य, जत्थ जहासंभवं २२विमजे ॥२९॥३२॥  
 नव २३पणगोदयसंता, तेवीसे २४पन्नवीस छव्वीसे ।  
 अट्ट चउइट्टवीसे, नव २५सगि गुणतीस तीमंमि ॥३०॥३३॥  
 २६एगेगेमेगतीसे, एगे एगुदय अट्ट संतंमि ।  
 उवरयबंधे दस दस, वेअगसंतंमि २७ठाणाणि ॥३१॥३४॥

१. "पन्नवीसा" इत्यपि । २. "गुणतीसा" इति, "उगुतीसा" इत्यपि वा । ३. "तीसिक्कं" इत्यपि, "तीसेक्कं" इत्यपि । ४. "०मेक्कं" इत्यपि । ५. "०ट्टाणाई" इत्यपि । ६. इयं गाथा मूलगाथातया चूर्णो नास्ति, श्रीमन्मलयगिरिविहितश्रुत्युपेतसप्ततिकायां चाऽस्ति । २७-२८ तमगाथयोर्हस्तलिखितप्रतौ व्यत्ययोऽस्ति । २७ तमगाथास्थानेऽष्टाविंशतितमी गाथा, अष्टाविंशतितम्याः स्थाने सप्तविंशतितमीति । ७. "एक्केक्कं" इत्यपि । ८. "०गाड इगतीसगंत एगहिया" इत्यपि । "०गादिइगतीसगं ति एगहिया" इत्यपि, "०गाति एगहिया उ इगतीसा ।" इत्यपि, "०गाइ एगहिया उ इगतीसा" इत्यपि वा । ९. "हुंति" इत्यपि । १०. "एगवियाक्केकारस" इत्यपि, एगवियारेक्कारस" इत्यपि वा । ११-१२ "तेत्तीसा" इत्यपि । १३. "०सेक्कारससयऽहिगसत्तरस पंच०" इत्यपि, "०सेक्कारससयाहिगा सतरस-पंच०" इत्यपि, "सेक्कारससयाणहिगसतरपंच०" इत्यपि वा । १४. "इक्केक्कां" इत्यपि, "एक्केक्कां" इत्यपि वा । १५. "इगु०" इत्यपि, "उगु०" इत्यपि वा । १६. "अट्टच्छलसी" इत्यपि, "अट्टयच्छलसी" इत्यपि वा । १७. "उगु०" इत्यपि । १८. "अट्टयच्छप्पणत्तरि" इत्यपि, "अट्टच्छप्पणत्तरि" इत्यपि । १९. "गाम०" इत्यपि । २०. "सत्तपगद्धिठाणाइ" इत्यपि । २१. "०ठाणाइ" इत्यपि । २२. "विमए" इत्यपि । २३. "पंधोदय०" इत्यपि, "पंच उदय०" इत्यपि । २४. "पणवीस" इत्यपि । २५. "सत्तुगतीस०" इत्यपि, "सत्त-गुतीस" इत्यपि, "सत्तिगुतीस०" इत्यपि वा । २६. "एगेगं इगतीसे" इत्यपि । २७. "ठाणाइ" इत्यपि ।

तिविगप्पपगइठाणेहिं, जीवगुणसन्निपसु ठाणेसु ।  
 भंगा पउंजियन्वा, जत्थ जहा संभवो ँभवइ ॥३२॥३५॥  
 तेरससु जीवसंखेवएसु, नाणंतरायत्तिविगप्पो ।  
 इक्कंमि तिदुविगप्पो, करणं पइ इत्थ अविगप्पो ॥३३॥३६॥  
 तेरे नव चउ पणगं, नव मंतंगंमि भंगमिक्कारा ।  
 वेअणिआउगगोए, विमज्ज मोहं परं ५वुच्छं ॥३४॥३७॥  
 पज्जत्तगमन्निअरे, अह चउक्कं च वेअणियमंगा ।  
 सत्त य तिगं च गोए, पत्तेअं जीवठाणेसु ॥३५॥(प्र०)  
 पज्जत्ताऽपज्जत्तग, समणे पज्जत्तअमण सेसेसु ।  
 अट्ठावीसं दसमं, नवगं पणगं च आउस्स ॥३६॥(प्र०)  
 अट्ठसु पंचसु एगे, एग दुगं दस य मोहवंघगए ।  
 तिग चउ नव उदयगए, तिग तिग पन्नरस मंतंमि ॥३७॥४०॥  
 पण दुग पणगं पण चउ, पणगं पणगा हवंति तिभेव ।  
 पण छप्पणगं छच्छ, -प्पणगं अट्ठ दसगं ति ॥३९॥४१॥  
 सत्तेव अपज्जत्ता, सामी सुहुमा य वायरा चैव ।  
 विगलिदिआ उउ तिन्नि उ, तह य असन्नी १अ सन्नी २अ  
 ॥३७॥४२॥  
 नाणंतराय तिविहमवि, दससु दो १इति दोसु ठाणेसु ।  
 मिच्छा १४साणे १४वीए, नव चउपण नव य १६संतंसा ॥३८॥४३॥  
 १५मिस्साइ १८नियट्ठीओ, छ चउ पण नव य संतकम्मंसा ।  
 चउवंघ तिगे चउपण, नवंस दुसु जुअल १६छस्संता ॥३९॥४४॥  
 उवसंते चउ पण नव, खीणे चउरुदय छच्च चउ २०संता ।  
 वेअणिआउअगोए, विमज्ज मोहं परं २१वुच्छं ॥४०॥४५॥  
 चउ छस्स दुब्धि सत्तसु, एगे चउगुणिसु वेअणिअमंगा ।  
 गोए पण चउ दो तिसु, एगट्ठसु २२दुन्नि इक्कंमि ॥४६॥(प्र०)

१. "होइ" इत्यपि । २. "एक्कन्मि" इत्यपि । ३. "एत्थ" इत्यपि । ४. "वोच्छं" इत्यपि । ५. "अरे" इत्यपि । ६. "वेयं" इत्यपि । ७. "सत्तगं" इत्यपि । ८. "पत्तेयं" इत्यपि । ९. "तह सुहुमवायरा" इत्यपि । १०. "य" इत्यपि । ११. १२. "य" इत्यपि । १३. "होति" इत्यपि । १४. "सासण" इत्यपि । १५. "विइए" इत्यपि । १६. "सत्तंसा" इत्यपि । १७. "मीसाइ" इत्यपि । १८. "नियट्ठीए" इत्यपि । १९. "छस्संतं" इत्यपि । २०. "संतं" इत्यपि । २१. "वोच्छं" इत्यपि । २२. "वोक्कं" इत्यपि ।

अद्दृच्छाहिगवीसा, सोलम वीसं च वारस छ दोसु ।  
 दो चउसु तीसु इक्कं, ३मिच्छाइसु आउए भंगा ॥४७॥(प्र०)  
 गुणठाणएसु अद्दुसु, इक्किक्कं मोह वंधगाणं तु ।  
 ५पंच अनिअड्डिठाणे, वंधावरमो परं ततो ॥४१॥४८ ।  
 सत्ताइ दस उ मिच्छे, सासायणमीसए ६नवुवकोसा ।  
 छाई ७नव उ अविरए, देसे पंचाइ अदुटेव ॥४३॥४९॥  
 विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चउपुव्वंमि ।  
 अनिअड्डिवायरे पुण, ६इक्को व दुवे व उदयंसा ॥४३॥५०॥  
 एगं सुहुमसरागो, वेएइ अवेअगा भवे सेसा ।  
 भंगाणं च पमाणं, पुच्चुदिट्टेण नायव्वं ॥४४॥५१॥  
 १०इक्क छड्डिक्कारिक्का-रसेव इक्कारसेव ११नव तिन्नि ।  
 एए चउवीसगया, चार दुगे पंच १२इक्कंमि ॥४५॥५२॥  
 वारसपणसड्डिसया, उदयविगप्पेहिं १३मोहिया जीवा ।  
 चुलसीई सत्तुत्तरि, पय १४विदसएहिं १५विन्नेआ ॥५३॥(प्र०)  
 अद्दुग चउ चउ चउरद्वगा य, चउरो १६अ हुंति चउवीसा ।  
 मिच्छाइअपुव्वंता, वारस पणगं च १७अनिअड्डी ॥५४॥(प्र०)  
 १८जोगोवओगलेसा, इएहिं गुणिआ हवंति १९कायव्वा ।  
 जे जत्थ २०गुणट्टाणे, हवंति ते तत्थ गुणकारा ॥४६॥५५॥  
 अद्दुट्टी चत्तीसं, चत्तीसं सड्डिमेव २१वावन्ना ।  
 २२चोआल दोसु वीसा, २३विअ मिच्छमाईसु २४सामन्नं ॥५६॥(प्र०)

१. "च्छाहियं" इत्यपि । २. "वार छ दोसु" इत्यपि । ३. "मिच्छाइसु आउरो" इत्यपि । ४. "बंधगाणं" इत्यपि । ५. "पंचानि०" इत्यपि । ६. "णलु०" इत्यपि । ७. "णव" इत्यपि । ८. "अणि०" इत्यपि । ९. "एक्को" इत्यपि । १०. "एक्कइक्कारसेव एक्कारसेव" इत्यपि । ११. "णव" इत्यपि । १२. "एक्कम्मि" इत्यपि । १३. "मोहिया" इत्यपि । १४. "बंधसएहिं" इत्यपि । १५. "विन्नेया" इत्यपि । १६. "य" इत्यपि, "य ह्वंति" इत्यपि वा । १७. "अनियदुटे" इत्यपि, "अणियदुटे" इत्यपि वा । १८. ५५-५६ तमगाययोर्ह्रस्वलिखितप्रती न्यस्ययोऽस्ति । १९. "नायव्वा" इत्यपि । २०. "गुणट्टाणोसु हुंति" इत्यपि । "गुणट्टाणोसु ह्वंति" इत्यपि । २१. "वावण्णा" इत्यपि । २२. "चोआलु" इत्यपि । "चोआलं चोबलं वीसा विय मिच्छमाईसु ॥" इत्यपि । २३. "मिच्छामाईसु" इत्यपि । २४. "सामण्णं" इत्यपि ।

१तिन्नेगे एगेगं, तिग मीसे पंच २चउमु तिगऽपुञ्चे ।  
 ३इक्कार वायरंमि उ. मुहुमे चउ तिन्नि उवमंते ॥४७॥५७॥  
 ४छन्नव छक्कं तिग सत्त, दुगं दुग तिग दुगं ति अट्ट चउ ।  
 दुग<sup>५</sup>छच्चउदुगपणचउ, चउदुगचउपणगएगचउ ॥४८॥५८॥  
 एगेगमट्ट एगे- गमट्ट छउमत्थकेवल्लिजिणाणं ।  
 एग चऊ एग चऊ, अट्ट चऊ दु छक्कमुदयंसा ॥४९॥५९॥  
 चउ षणवीसा सोलस, नव चत्ताला सया य वाणउई ।  
 वत्तीसुत्तरछायाल-सया मिच्छस्स वंधविही ॥६०॥(प्र.)  
 अट्ट ५सया चउसट्टी, वत्तीससयाई सासणे भेआ ।  
 अट्टावासाईसुं, सच्चाणऽट्टहिग च्छन्नउई ॥६१॥(प्र.)  
 १इगचत्तिगार वत्तीस, छसय इगतीसिगारनवनउई ।  
 सतरिगसि गुतीसचउद इगारचउसट्टि मिच्छुदया ॥६२॥(प्र.)  
 वत्तीस १<sup>२</sup>दुन्नि अट्टय वासीइसया य पंच नव उदया ।  
 १<sup>३</sup>वारहिआ तेवीसा, १<sup>४</sup>वावन्निवकारस सया य ॥६३॥(प्र.)  
 दो छक्कट्ट चउक्कं, पण १<sup>५</sup>नव इक्कार छक्कगं उदया ।  
 १<sup>६</sup>नेरइआइसु १<sup>७</sup>सत्ता, ति पंच इक्कारस चउक्कं ॥५०॥६४॥  
 १<sup>८</sup>इग विगलिंदअ सगले, पण पंच य अट्ट वंधठाणाणि ।  
 पण १<sup>९</sup>छक्कक्कारुदया, पण पण बारस य संताणि ॥५१॥६५॥  
 १<sup>१०</sup>इअ कम्मपगइठाणाणि, सुट्टु वं दय संतकम्माणं ।  
 १<sup>११</sup>गइआइएहि<sup>१२</sup>अट्टसु, २<sup>०</sup>चउप्पयारेण नेयाणि ॥५२॥६६॥२?

१. तिण्णगे” इत्यपि । २. “अयमेव पाठः समीचानोऽस्ति । तथाऽप्यत्र चूर्णिकारैः टीकाकृद्भिश्च  
 “चउसु नियट्टि र तिन्नि” इति पाठो विवृतः । इत्तलिखितप्रतौ पुनः “पंच” इतिशब्दो नास्ति तथा “चउसु  
 पुण नियट्टितिगं” इति पाठो चपलभ्यते । ३. “एक्कार वायरन्मी” इत्यपि । ४. “छण्णव” इत्यपि । ५  
 “छक्क चऊ . पणेगचऊ ॥५८॥” इत्यपि । ६ “पणु” इत्यपि । ७. “य सय चोवट्टि वत्तीससया य”  
 इत्यपि । ८ “छण्णउई” इत्यपि । ९. इयं गाथा इत्तलिखितप्रतौ नास्ति सुट्टितप्रस्तकेषूपलभ्यते । १०.  
 “दोन्नि” इत्यपि । ११ “वारहिगा” इत्यपि । १२. “वावन्ने” इत्यपि । १३. “नवगेक्कार” इत्यपि ।  
 “नवएक्कार” इत्यपि वा । १४ “ओरोर” इत्यपि । १५ “संता” इत्यपि । १६ “इगि” इत्यपि । १७  
 “छक्के” इत्यपि । १८ “इय कम्मपगइठाणाणि” इत्यपि, “इय कम्मपगइठाणाणि” इत्यपि । १९ “गइयाइएसु”  
 इत्यपि, “गइयाइएहि” इत्यपि । २० “चउप्पयारेण” इत्यपि ।  
 २१ “गइइएि य काए जोए वेए कसायनायो य । संजमदंसणत्तेसा मवसन्ने सन्निआहारे ॥ ॥  
 संतपयपरुषणया दहषण्णमाणं च खित्तफुसणा य । काळंतरं च मायो अप्पावहुयं च दायध्वं । ॥  
 इति गाथाद्वयं ६६-६७ तमगाथायोर्मध्येऽधिकतया इत्तलिखितप्रतौ प्रक्षिप्त इत्यते ।

उदयस्सुदीरणाए, १सामित्ताओ न विज्जइ विसेमो ।  
 २मुत्तूण य ३इयालं, सेसाणं सन्वपयडीणं ॥५३॥६७॥  
 नाणंतरायदसगं, दंसणनच वेअणिज्जमिच्छत्तं ।  
 सम्मत्त लोभ वेआ-उआणि नवनाम उच्चं च ॥५४॥६८॥५  
 ६तित्थयराहारग ७विरहिआओ, अज्जेइ सन्वपयडीओ ।  
 मिच्छत्तध्वेअगो सा—सणो१०वि गुणवीससेसाओ ॥५५॥६९॥  
 छायालसेसमीसो, अविरयसम्मो ११तिआल१२परिसेसा ।  
 १३तेवन्न देसविरओ, विरओ १४सगवन्नसेसाओ ॥५६॥७०॥  
 १५इगुणद्धिमप्पमत्तो, वंधइ देवा१६उअस्स इअगे वि ।  
 १७अट्टावन्नमपुब्बो, १८छप्पन्नं वावि छव्वीसं ॥५७॥७१॥  
 वावीसा एगूणं, वंधइ १९अट्टारसंतमनिअट्टी ।  
 २०सत्तरस सुहुमसरागो, सायममोहो२१सजोगुत्ति ॥५८॥७२॥  
 एसो उ वंध२२सामित्त, -ओहो गइआइ२३एसु वि तहेव ।  
 ओहाओ २४साहिज्जइ, जत्थ जहा २५पगइसन्भावो ॥५९॥७३॥  
 तित्थयरदेवनिरया-२६उअं च तिसु तिसु गईसु २७बोधव्वं ।  
 अवसेसा २८पयडीओ, हवंति सन्वासु वि गईसु ॥६०॥७४॥  
 पढमकसायचउक्कं, दंसण२९तिग सत्तगा वि उवसंता,  
 ३०अविरयसम्मत्ताओ, जाव ३१निअट्टिच्चि नायव्वा ॥६१॥७५॥

१. "सामित्ताए" इत्यपि । २. "मुत्तूण" इत्यपि । ३. "ईयालं" इत्यपि, "इगुयालं" इत्यपि वा ।  
 ४ "पगडीणं" इत्यपि, 'पगईणं' इत्यपि । ५ "मणुयगइजाइतसवायरं च पञ्चत्तसुभगमाएज्जं । जसकित्ती  
 तित्थयरं नामस्स हवंति नवए य ॥ ॥" इतिगया । ६-६९ तमगाथयोर्मध्येऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ  
 प्रक्षिप्ता दृश्यते । ६ "तित्थगरा०" इत्यपि । ७ '०विरहिआओ' इत्यपि, "०वच्चियाड" इत्यपि । ८ "पग-  
 वीससेसाओ" इत्यपि, "०उणवीससेसाओ" इत्यपि वा । ९ "०वेयगो" इत्यपि । १० "वि उगुवीसेसाओ" इत्यपि "वि इगु-  
 इत्यपि । ११ 'तेवण्ण०' इत्यपि, 'तेपन्न०' इत्यपि वा । १२ "तियाल०" इत्यपि । १३ "०परिसेसं"  
 १४ 'इगुसट्ठि०' इत्यपि, "उगुसट्ठि०" इत्यपि वा । १५ "सगवण्ण०" इत्यपि, "सगपन्न०" इत्यपि ।  
 इत्यपि वा । १६ "अट्टावण्ण०" इत्यपि । १७ "०उयस्स इयरो वि" इत्यपि, "०उअं च इयरो वि"  
 'अट्टारसं ति भनियट्टी' इत्यपि वा । १८ "सत्तर" इत्यपि । १९ "सजोगित्ति" इत्यपि । २० "सामित्तोहो"  
 इत्यपि । २१ "०ए वि तह वेव" इत्यपि । २२ "साहेव्वा" इत्यपि । २३ "पगइ०"  
 इत्यपि । २४ "०उअं च" इत्यपि वा । २५ "बोधव्वं" इत्यपि । २६ "विउ सत्तया वि" त्यपि । २७ "अविरत०" इत्यपि । २८ 'नियट्टी' इत्यपि ।

१तिन्नेगे एगेगं, तिग मीसे पंच ०चउमु तिगऽपुच्चे ।  
 ३इक्कार वायरंमि उ. मुद्दुमे चउ तिन्नि उवमंने ॥४७॥५७॥  
 ४छन्नव छक्कं तिग मत्त, दुगं दुग तिग दुगं ति अट्ट चउ ।  
 दुग<sup>५</sup>छच्चउदुगपणचउ, चउदुगचउपणगएगचउ ॥४८॥५८॥  
 एगेगमट्ट एगे- गमट्ट छउमत्थक्केवल्लिजिणाणं ।  
 एग चउ एग चउ, अट्ट चउ दु छक्कमुदयंमा ॥४९॥५९॥  
 चउ धपणवीसा सोलस, नव चत्ताला मया य वाणउई ।  
 वत्तीसुत्तरछायाल-सया मिच्छस्म वंधविही । ६०॥(प्र.)  
 अट्ट ७सया चउसट्टी, वत्तीमसयाईं मामणे भेआ ।  
 अट्टावीसाईसुं, सच्चाणऽट्टहिग छन्नउई ॥६१॥(प्र.)  
 १इगचत्तिगार वत्तीस, छसय इगतीसिगारनवनउई ।  
 सतरिगसि गुतीसचउद इगारचउसट्टि मिच्छुदया ॥६२॥(प्र.)  
 वत्तीस १दुन्नि अट्टय वासीइसया य पंच नव उदया ।  
 १वारहिआ तेवीसा, १वावन्निक्कारस सया य ॥६३॥(प्र.)  
 दो छक्कट्ट चउक्कं, पण १नव इक्कार छक्कगं उदया ।  
 १नेरइआइसु १शरात्ता, ति पंच इक्कारस चउक्कं ॥५०॥६४॥  
 १इग विगलिदिअ सगले, पण पंच य अट्ट वंधठाणाणि ।  
 पण १छक्किक्कारुदया, पण पण वारस य संताणि ॥५१॥६५॥  
 १इअ कम्मपगइठाणाणि, सुदुदु वं दुदय संतकम्माणं ।  
 १इगइआइएहि<sup>१</sup> अट्टसु, २०चउप्पयारेण नेयाणि ॥५२॥६६॥२०

१. तिण्णगे” इत्यपि । २. “अयमेव पाठः समीचीनोऽस्ति । तथाऽप्यत्र चूर्णिकारैः टीकाकृद्भिश्च  
 “चउसु नियट्टि र तिन्नि” इति पाठो विवृतः । इत्तलि खितप्रतौ पुनः “पंच” इतिशब्दो नास्ति तथा “चउसु  
 पुण नियट्टिगं” इति पाठ उपलभ्यते । ३. “एक्कार वायरन्मी” इत्यपि । ४. “छण्णव” इत्यपि । ५  
 “छक्क चउ ... पणोगचउ ॥५८॥” इत्यपि । ६ “पगु” इत्यपि । ७ “य सय चोवट्टि वत्तीससया य”  
 इत्यपि । ८. “छण्णवई” इत्यपि । ९. इयं गाथा हस्तलिखितप्रतौ नास्ति मुद्रितप्रस्तकेपूपलभ्यते । १०.  
 “दोमि” इत्यपि । ११ “वारहिगा” इत्यपि । १२. “वावन्ने” इत्यपि । १३. “नवगेक्कार” इत्यपि ।  
 “नवएक्कार” इत्यपि वा । १४ “ओर” इत्यपि । १५ “संता” इत्यपि । १६ “इमि” इत्यपि । १७  
 “छक्के” इत्यपि । १८ “इय कम्मपगइ” इत्यपि, “इय कम्मपगइठाणाई” इत्यपि । १९ “गइयाइएसु”  
 इत्यपि, “गइयाइएहि” इत्यपि । २० “चउप्पयारेण” इत्यपि ।

२१ “गइएहि य काए जोए वेए कसायनाणे य । संजमदंसणलेसा मयसम्मे सन्निआहारे ॥ ॥  
 संतपयपरुक्कणया वणपमाणं च लिखत्तुसणा य । काळंतरं च मावो अप्पावहुयं च वायव्वं । ॥  
 इति गावाइव ६६-६७ इत्यधिकृतप्रतौ प्रक्षिप्तं दृश्यते ।

उदयम्सुदीरणाय, १सामित्ताओ न विज्जइ विसंभो ।  
 २मुत्तूण य ३इग्यालं, सेसाणं सञ्चपयडीणं ॥५३॥६७॥  
 नाणंतरायदसगं, दंसणनव वेअणिज्जमिच्छत्तं ।  
 सम्भत्त लोभ वेआ-उआणि नवनाम उच्चं च ॥५४॥६८॥५  
 ६तित्थयराहारग ७त्रिरहिआओ, अज्जेइ सञ्चपयडीओ ।  
 मिच्छत्तध्वेअगो सा—सणो१०वि गुणवीससेमाओ ॥५५॥६९॥  
 छायालसेसमीसो, अविरयसम्मो ११तियाल१२परिसेसा ।  
 १३तेवन्न देसविरओ, विरओ १४सगवन्नसेसाओ ॥५६॥७०॥  
 १५इगुणट्टिमप्पमत्तो, वंधइ देवा१६उअस्स इअगे वि ।  
 १७अट्टावन्नमपुब्बो, १८छप्पन्नं वावि छव्वीसं ॥५७॥७१॥  
 चावीसा एगुणं, वंधइ १९अट्टारसंतमनिअट्टी ।  
 २०सत्तरस सुहुमसरागो, सायममोहो२१सजोगुत्ति ॥५८॥७२॥  
 एसो उ वंध२२सामिच्च,—ओहो गइआइ२३एसु वि तहेव ।  
 ओहाओ २४साहिज्जइ, जत्थ जहा २५पगइसन्भावो ॥५९॥७३॥  
 तित्थयरदेवनिरया-२६उअं च तिसु तिसु गईसु २७बोधव्वं ।  
 अवसेसा २८पयडीओ, हवंति सन्वासु वि गईसु ॥६०॥७४॥  
 पढमकसायचउक्कं, दंसण२९तिग सत्तगा वि उवसंता,  
 ३०अविरयसम्मत्ताओ, जाव ३१निअट्टिचि नायव्वा ॥६१॥७५॥

१. "सामित्ताए" इत्यपि । २. "मुत्तूण" इत्यपि । ३. "ईयालं" इत्यपि, "इग्यालं" इत्यपि वा ।  
 ४. "पगडीणं" इत्यपि, "पगईणं" इत्यपि । ५. "मणुयगइजाइतसवायरं च पञ्चत्तसुभगमाएज्जं । जसकित्ती  
 तित्थयरं नामस्स हवंति नवए य ॥ ॥" इतिगथा । ६. ६६ तमगाथयोर्भेदेऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ  
 प्राक्षिप्ता दृश्यते । ६. "तित्थयराओ" इत्यपि । ७. "विरहिआओ" इत्यपि, "वव्वियाओ" इत्यपि । ८. "पग-  
 ईओ" इत्यपि, "पगडीओ" इत्यपि वा । ९. "वेयगो" इत्यपि । १०. "वि त्गुवीसेसाओ" इत्यपि "वि इगु-  
 वीससेसाओ" इत्यपि, "उ वणवीससेसाओ" इत्यपि वा । ११. "तियालं" इत्यपि । १२. "परिसेस" इत्यपि । १३. "तेवण्ण" इत्यपि, "तेपन्न" इत्यपि वा । १४. "सगवण्ण" इत्यपि, "सगपन्न" इत्यपि ।  
 १५. "इगुसट्ठि" इत्यपि, "उगुसट्ठि" इत्यपि वा । १६. "उअस्स इयरो वि" इत्यपि, "उअं च इयरो वि" इत्यपि वा । १७. "अट्टावण्णा" इत्यपि । १८. "छप्पण्णं" इत्यपि । १९. "अट्टारस सि भनियट्टी" इत्यपि,  
 "अट्टारसं ति भनियट्टी" इत्यपि वा । २०. "सत्तर" इत्यपि । २१. "सजोगित्ति" इत्यपि । २२. "सामित्तोहो" इत्यपि,  
 "सामित्तोओ" इत्यपि । २३. "ए वि तह वेव" इत्यपि । २४. "साहेज्जा" इत्यपि । २५. "पगडि" इत्यपि । २६. "उअं च" इत्यपि, "उअं च" इत्यपि वा । २७. "बोद्धव्वं" इत्यपि । २८. "पगडीओ" इत्यपि । २९. "वि सत्तया वि" इत्यपि । ३०. "अविरत" इत्यपि । ३१. "नियट्टी" इत्यपि ।



१तिन्नेगे एगेगं, तिग मीसे पंच चउसु तिगऽपुञ्चे ।  
 ३इक्कार वायरंमि उ. मुहुमे चउ तिन्नि उवमंते ॥४७॥५७॥  
 ४छन्नव छक्कं तिग सत्त, दुगं दुग तिग दुगं ति अट्ट चउ ।  
 दुग<sup>५</sup>छच्चउदुगपणचउ, चउदुगचउपणगएगचउ ॥४८॥५८॥  
 एगेगमट्ट एगे- गमट्ट छउमत्थकेवलजिणाणं ।  
 एग चऊ एग चऊ, अट्ट चऊ दु छक्कमुदयंसा ॥४९॥५९॥  
 चउ ६पणवीसा सोलस, नव चत्ताला मया य चाणउई ।  
 वत्तीसुत्तरछायाल-सया मिच्छस्स वंधविही ॥६०॥(प्र.)  
 अट्ट ७सया चउसट्टी, वत्तीससयाई सासणे भेआ ।  
 अट्टावीसाईसुं, सव्वाणऽट्टहिग छन्नउई ॥६१॥(प्र.)  
 १इगचत्तिगार वत्तीस, छसय इगतीसिगारनवनउई ।  
 सतरिगसि गुतीसचउद इगारचउसट्टि मिच्छुदया ॥६२॥(प्र.)  
 वत्तीस १दुब्धि अट्टय वासीइसया य पंच नव उदया ।  
 ११वारहिआ तेवीसा, १२वावन्निक्कारस सया य ॥६३॥(प्र.)  
 दो छक्कट्ट चउक्कं, पण १३नव इक्कार छक्कगं उदया ।  
 १४नेरहआइसु १५सत्ता, ति पंच इक्कारस चउक्कं ॥५०॥६४॥  
 १६इग विगलिदअ सगले, पण पंच य अट्ट वंधठाणाणि ।  
 पण १७छक्कक्कारुदया, पण पण बारस य संताणि ॥५१॥६५॥  
 १८इअ कम्मपगइठाणाणि, सुट्टु वं दुदय संतकम्माणं ।  
 १९गइआइहि<sup>१</sup> अट्टसु, २०चउप्पयारेण नेयाणि ॥५२॥६६॥२?

१. तिण्णने” इत्यपि । २. “अयमेष पाठः समीचीनोऽस्ति । तथाऽप्यत्र चूर्णिकारैः टीकाकृद्भिश्च  
 “चउसु नियट्टि १ तिग्नि” इति पाठो विवृतः । हस्तलिखितप्रतौ पुनः “पंच” इतिशब्दो नास्ति तथा “असु  
 पुण नियट्टितिगं” इति पाठो लपलभ्यते । ३. “एक्कार वायरन्मी” इत्यपि । ४. “छण्णव” इत्यपि । ५  
 “छक्क चऊ - पणेगचऊ ॥५८॥” इत्यपि । ६ “पणु” इत्यपि । ७ “य सय चोवट्टि वत्तीससया य”  
 इत्यपि । ८ “छण्णउई” इत्यपि । ९. इयं गाथा हस्तलिखितप्रतौ नास्ति मुद्रितप्रस्तकेषूपलभ्यते । १०.  
 “दोब्धि” इत्यपि । ११ “वारहिगा” इत्यपि । १२. “वावन्ने” इत्यपि । १३. “नवगेक्कार” इत्यपि ।  
 “नवएक्कार” इत्यपि वा । १४ “ओर” इत्यपि । १५ “संता” इत्यपि । १६ “इगि” इत्यपि । १७  
 “छक्के” इत्यपि । १८ “इय कम्मपगइठि” इत्यपि, “इय कम्मपगइठाणाई” इत्यपि । १९ “गइयाइसु”  
 इत्यपि, “गइयाइहि” इत्यपि । २० “अउप्पयारेण” इत्यपि ।  
 २१ “गइइवि य काए जोए वेए कसायनायो य । संजमवंसण्लेसा मवसम्मे सग्निआहारे ॥ ॥  
 संवपयपरुषणया ववपमाणं च खित्तफुसणा य । कालंतरं च भावो अप्पावहुयं च वायव्वं । ॥  
 इति गाथाद्वयं ६६-६७ तमगाथायोर्मध्येऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ प्रक्षिप्त दृश्यते ।

उदयस्सुदीरणाय, १मामित्ताओ न विज्जइ विसंसां ।  
 २मुत्तूण य इइगयालं, सेसाणं सन्वपयडीणं ॥५३॥६७॥  
 नाणंतरायदसगं, दंसणनव वेअणिज्जमिच्छत्तं ।  
 सम्मत्त लोभ वेआ-उआणि नवनाम उच्चं च ॥५४॥६८॥५॥  
 ६तित्थयराहारग ७विरहिआओ, अज्जेइ सन्वपयडीओ ।  
 मिच्छत्तध्वेअगो सा—सणो?०वि गुणवीससेमाअंग ॥५५॥६९॥  
 छायालसेसमीसो, अविरयसम्मो ११तिआल?०परिसंसा ।  
 १३तेवन्न देसविरओ, विरओ १४सगवन्नसेसाओ ॥५६॥७०॥  
 १५इगुणट्टिमप्पमत्तो, बंधइ देवा?०उअस्स इअरो वि ।  
 १७अट्टावन्नमपुब्बो, १८छप्पन्नं वावि छवीसं ॥५७॥७१॥  
 चावीमा एगुणं, बंधइ १९अट्टारसंतमनिअट्टी ।  
 २०सतरस सुहुमसरागो, सायममोहो२१सजोगुत्ति ॥५८॥७२॥  
 एसो उ बंध२२सामित्त, -ओहो गइआइ२३एसु वि तहेव ।  
 ओहाओ २४साहिज्जइ, जत्थ जहा २५पगइसन्मावो ॥५९॥७३॥  
 तित्थयरदेवनिरया-२६उअं च तिसु तिसु गईसु २७धोघन्वं ।  
 अवसेसा २८पयडीओ, हवंति सन्वासु वि गईसु ॥६०॥७४॥  
 पढमकसायचउक्कं, दंसण२९तिग सत्तगा वि उवसंता,  
 ३०अविरयसम्मत्ताओ, जाव ३१निअट्टित्ति नायव्वा ॥६१॥७५॥

१. "सामित्ताए" इत्यपि । २. "मुत्तूण" इत्यपि । ३. "ईयालं" इत्यपि, "इगुयालं" इत्यपि वा ।  
 ४ "०पगडीणं" इत्यपि, "पगईणं" इत्यपि । ५ "मणुयगइजाइतसवायरं च पवत्तसुभगमाएवजं । जसकिन्ती  
 तित्थयरं नामस्स हवंति नवप य ॥ ॥" इतिगथा । ६८-६९ तमगाथयोर्मध्येऽधिकतया इस्तल्लिखितप्रतौ  
 प्रक्षिप्ता दृश्यते । ६ "तित्थगरा०" इत्यपि । ७ "०विरहिआउ" इत्यपि, "०वज्जियाउ" इत्यपि । ८ "पग-  
 वीससेसाओ" इत्यपि, "०उणवीससेसाओ" इत्यपि वा । ९ "०वेयगो" इत्यपि । १० "वि उगुवीसेसाओ" इत्यपि "वि इगु-  
 इत्यपि । १३ "तेवण्ण०" इत्यपि, "तेपन्न०" इत्यपि वा । १४ "सगवण्ण०" इत्यपि, "सगपन्न०" इत्यपि ।  
 १५ "इगुसट्टि०" इत्यपि, "उगुसट्टि०" इत्यपि वा । १६ "०उयस्स इयरो वि" इत्यपि, "०उअं च इयरो वि"  
 इत्यपि वा । १७ "अट्टावण्ण०" इत्यपि । १८ "छप्पण्णं" इत्यपि । १९ "अट्टारसं त्ति अनियट्टी" इत्यपि,  
 इत्यपि, "सामित्तओवो" इत्यपि । २० "०ए वि तह चेव" इत्यपि । २१ "सजोगित्ति" इत्यपि । २२ "सामित्तोहो"  
 इत्यपि । २३ "०उअं च" इत्यपि, "०उयं च" इत्यपि वा । २४ "साहेज्जा" इत्यपि । २५ "पगइ०"  
 इत्यपि । २६ "विय सत्तया वि" इत्यपि । २७ "वोद्धव्वं" इत्यपि । २८ "अविरत०" इत्यपि । २९ "नियट्टी" इत्यपि ।

सत्तद् नव य पनरम, सोलस अट्टारसेव १गुणवीसा ।  
 एगाहि दु धउवीसा, २पणवीसा वायरे जाण ॥७६॥(प्र०)  
 सत्तावीसं सुहुमे, अट्टावीसं वेच मोह धपयडीओ ।  
 उवसंत ५वीअराए, उवमंता हंति नायच्चा ॥७७॥(प्र०)  
 पढमकसायचउक्कं, ५इत्तो मिच्छत्तमीससम्मत्तं ।  
 ८अविरयसम्मै देसे, धपमत्ति अपमत्ति खीअंति ॥६२॥७८॥  
 अनिअट्टिवायरे श्रीण-गिद्धित्तिगनिरय १-तिरिअनामाओ ।  
 ११संखिज्जइमे सेसे, तप्पाटग्गाओ १२खीअंति ॥७६॥(प्र०)  
 १३इत्तो हणइ कसाय-ट्टगंपि पच्छा १४नपुंसगं इत्थी ।  
 तो १५नोकसायच्छक्कं, १६छुहेइ संजलणकोहंमि ॥८०॥(प्र०)  
 पुरिसं कोहे कोहं, माणे माणं च छुहइ मायाए ।  
 मायं च छुहइ १७लोहे, लोहं सुहमंपि तो हणइ ॥६३॥८१॥  
 खीणकसायदुचरिमे, १८निहं पयलं च हणइ छउमत्थो ।  
 आवरणमंतराए, छउमत्थां चरममयंमि ॥८२॥(प्र०)  
 देवगइसहगयाओ, दुचरमसमयभविअंमि १९खीअंति ।  
 सविवा २०गेअरनामा, २१नीआगोअं पि तत्थेव ॥६४॥८३॥  
 अन्नयर २२वेयणीअं, मणुआ २३उअमृच्चगोअ २४नवनामे ।  
 वेएइ अजोगिजिणो, उक्कोसजह २५न्नमिक्कारा ॥६५॥८४॥  
 २६मणुअगइजाइतसवायरं च, पज्जत्तसुभग २७माहज्जं ।  
 जसकित्ती तित्थयरं, २८नामस्स हवंति नव एआ ॥६६॥८५॥

१ "इगुवीसा" इत्यपि, "उगुवीसा" इत्यपि, "उगवीसा" इत्यपि । २ "पणुवीसा" इत्यपि । ३  
 "पि" इत्यपि । ४ "पगडीओ" इत्यपि । ५ "वीयरगे" इत्यपि । ६ "हंति" इत्यपि । ७ "एत्तो" इत्यपि ।  
 ८ "अविरय देसे धिरए" इत्यपि । "अविरय देसे धिरयपमत्त उप्पमत्तो य" इत्यपि वा । ९ "पमत्त अपमत्त खीयंति"  
 इत्यपि । १० "तिरिय०" इत्यपि, "०तिरियणात्ताच" इत्यपि । ११ "सखे०" इत्यपि । १२ "खीयंति" इत्यपि ।  
 १३ "एत्तो" इत्यपि । १४ "णपु०" इत्यपि । १५ "णो०" इत्यपि । १६ "छुम्मइ" इत्यपि । १७ "लोमे  
 लोम" इत्यपि । १८ "निहा पयला य" इत्यपि । १९ "खीयंति" इत्यपि । २० "०गेयर०" इत्यपि ।  
 २१ "नीया गोयं०" इत्यपि । २२ "वेयणीयं" इत्यपि, "वेयपिज्जं" इत्यपि । २३ "०उय च्चगोय०" इत्यपि ।  
 २४ "णामं च" इत्यपि, "नाम नव" इत्यपि । २५ "०अएक्कारं ॥" इत्यपि, "अमिक्कारे ॥" इत्यपि । २६  
 'मणय०' इत्यपि । २७ "०माएज्जं" इत्यपि । २८ 'णामस्स हवंति णव एया' इत्यपि ।

१तच्चाणुपुञ्चिसहिआ, तेरस भवसिद्धिअस्स चरमंमि ।  
 संतंसगमुक्कोमं, ३जहन्नयं वारस हवंति ॥६७॥८६॥  
 ४मणुअगइसहगयाओ, भवखित्तविवाअगजिअविवागाओ ।  
 ६वेअणिअन्नयरुच्चं, ५चरमसमयंमि खीअंति ॥६८॥८७॥  
 अह सुइअसयल जगसिहर-१०मरुअ११निरुवम१२सहा-  
 वसिद्धिसुहं ।

१३अनिहणमव्वावाहं, तिरयणसारं अणुहवंति ॥६९॥८८॥  
 दुरहिगम- निउण--परमत्थ--१४रुडरवहुभंगदिद्धिवायाओ ।  
 अत्था अणुगरुच्चा, वंधोदयसंतकम्माणं ॥७०॥८९॥  
 जो जत्थ अपडिपुत्तो, अत्थो अप्पागमेण वद्धोत्ति ।  
 तं खमिउण वहु१५सुआ, पूरेउणं परि१६कहंतु ॥७१॥९०॥  
 गाहगं १७सयरीए, चंदमहत्तरमयाणुसारीए ।  
 १८टीगाइनिअमिआणं, एगूणा होइ १९नउईओ ॥९१॥(प्र.)

१ अस्या गाथायाः स्थाने हस्तलिखितप्रतौ निम्ना गाथा दृश्यते । “ता एव हुंति नेया वारस भव-  
 सिद्धिगस्स चरमंते । संतस्स उ उक्कोसं जहन्न एक्कारस हवंति । ८८॥” इति । २ “यस्स” इत्यपि,  
 ‘०गस्स’ इत्यपि वा । ३ “जहन्नग” इत्यपि । ४ “मणुय०” इत्यपि । ५ “०गजियविवागाओ ।” इत्यपि,  
 “०गजीववागुत्ति ।” इत्यपि, “०गजीववागत्ति” इत्यपि, “हवंति भवजीवपावकम्मंसा” इत्यपि । ६  
 “वेयणिय०” इत्यपि । ७ “चरिमे समयम्मि खीयंति ॥७६॥” इत्यपि, “च चरिममविथस्स खीयंति ॥६६॥  
 ६८॥” इत्यपि, “अचरिमसमयम्मि खीयंति ॥६८॥” इत्यपि । ८ “सुइय०” इत्यपि “सुइरसइजलमसिहरं ।  
 ९ “जय०” इत्यपि । १० “मरुय०” इत्यपि । ११ “णिरुवम” इत्यपि, १२ “०सभाव०” इत्यपि । १३  
 “अणि०” इत्यपि । १४ “रुइल०” इत्यपि । १५ “०सुया” इत्यपि । १६ “०कहिंतु” इत्यपि । १७ सत्तारिए”  
 इत्यपि, “सत्तारीए” इत्यपि वा । १८ “टीकाए नियमियाणं” इत्यपि, “टिक्काए णियमियाणं” इत्यपि ।  
 १९ “णउईउ” इत्यपि ।



## ❀ कर्मस्तवभाष्यम्

वंधे वीमुत्तरसयं, मयवावीमं तु होइ उदयमि ।  
 उईरणाइ एवं, अडयालसयं तु संतंमि ॥ १ ॥ १ ॥  
 वीसं वंधे वंधणमंधाया नियतणुग्गहणगहिया ।  
 वन्नाइविगप्पा वि हु. न य वंधे 'सम्ममीसाइ' ॥ २ ॥  
 सामन्नेणं एयं, सत्तरससयं 'तु होइ मिच्छस्स ।  
 तित्थयराहारदुगं, न वंधए फिड्डए तेणं ॥ ३ ॥ ३ ॥  
 सम्मामिच्छदिट्ठी, आऊणि न वंधए 'जओ ताणि ।  
 फिड्डंति 'तेण तस्स उ, अज्झवसाओ जओ नत्थि ॥ ४ ॥ ४ ॥  
 तित्थयरं पक्खिप्पइ, सम्मदिट्ठिमि वंधए जेण ।  
 सम्मत्तस्स 'गुरोण य. आऊण वि तत्थ खिप्पंति ॥ ५ ॥ ५ ॥  
 आहारमप्पमत्ते, पक्खिप्पइ जेण संजमो तस्स ।  
 उदए सत्तरससयं, मिच्छे पंचेहिं रहियं तु ॥ ६ ॥ ६ ॥  
 सम्मं सम्मामिच्छं, आहारदुगं तहेव तित्थयरं ।  
 पंच पयडी उ एया, मिच्छंमि उ जाव फिड्डंति ॥ ७ ॥ ७ ॥  
 नरयाणुपुव्वियाए, सासणसम्ममि होइ न हु उदओ ।  
 नरयंमि जं न गच्छइ, अवणिज्जइ तेण सा तस्स ॥ ८ ॥ ८ ॥  
 सम्मामिच्छत्तं पुण, पक्खिप्पइ, सम्ममिच्छठाणंमि  
 अणुपुव्वीओ फिड्डंति जेण न हु अंतरा गच्छे ॥ ९ ॥ ९ ॥  
 सम्मत्तं पक्खिप्पइ, सम्मदिट्ठिमि जेण तस्सुदओ ।  
 अणुपुव्वीण वि एवं, तेणं ताओ वि खिप्पंति ॥ १० ॥ १० ॥

❀ कर्मस्तवोपरि भाष्यद्वयं प्राप्यते । तत्र प्रथमं द्वात्रिंशद्वाधात्मकं द्वितीयं च त्रयोविंशत्या चतुर्विंशत्या च गाथाभिः संकलितम् । तत्र तादृचपत्रपुस्तकेषु पत्रमयपुस्तकेषु च द्वितीयं भाष्यं दृश्यते, प्रथमं तु केषुचित्पत्रमयेष्वेव । तथापि द्वयोर्न सर्वथा भेदः । द्वितीयं प्रथमेऽन्तर्भवति । किन्तु गाथानां मूलक्रमो मिथ्यतेऽनः प्रथमभाष्यीयगाथाक्रमेण सार्द्धं द्वितीयभाष्यगाथाक्रमो नोपेक्षितोऽस्माभिः । एका च द्वितीयभाष्यगाथा प्रथमे न दृश्यते याऽप्रे उल्लेखिष्यते । द्वयोरपि कर्त्रोर्नाम नोपलभ्यते । १ 'विसुत्तरसयं' इत्यपि । २ 'उदीरणावि' इत्यपि पाठः । ३ 'सम्ममीसाइ' इत्यपि । ४ 'तु वंधए मिच्छो' इति । ५ 'तओ' इति । ६ 'जेण' इति । ७ 'गुरोणं, आ०' इति ॥ ८ "पुव्वी वि हु एवं" इति ।

आहारदुगं खिप्पइ, पमत्तविरयम्मि जेण तस्मुदओ ।  
 तित्थयरं केवल्लिणो, उदीर'णा होइ एमेव ॥ ११ ॥ ११ ॥  
 २ नवरं पमत्तविरए, ३पयडीओ तिन्नि चेव खिप्पंति ।  
 केवल्लिउदया वित्तु', तम्मि य ४ताओऽवि वक्कंति ॥ १२ ॥ १२ ॥  
 मीसं उदयइ मीसे, सम्मत्तं चउमु अविरयाईसु ।  
 आहारं च पमत्तो, जोगिजिणिंदमि तित्थयरं ॥ १३ ॥  
 सत्तरसुत्तरमेगुत्तरं च चउहत्तरी य सगसयरी ।  
 सत्तट्ठी तिगसट्ठी, उणसट्ठी अड्डवन्ना य ॥ १४ ॥ १७ ॥  
 निददुगे छप्पन्ना, छव्वीसा नामतीसविरयंमि ।  
 हासरइभयदुगं छाविरमे वावीसऽपुव्वम्मि ॥ १५ ॥ १८ ॥  
 पुंवेयकोहमाइमु, अवज्झमाणेमु पंच ठाणाइं ।  
 वायरमुहुमे सत्तरपगईओ सायमियरेमु ॥ १६ ॥ १९ ॥

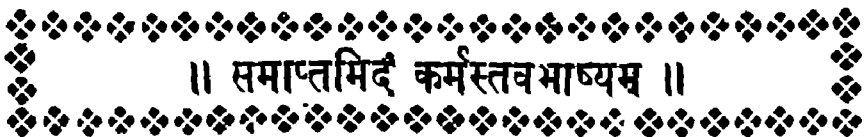
उदयसइख्यामाह-

सत्तरसं एकारं, सयमेगं चउहिं संजुयं सम्मे ।  
 सत्तासी एक्कासी, छसत्तारि विसत्तरि छसट्ठी ॥ १७ ॥ २० ॥  
 सट्ठी उणसट्ठी वि य, सगवन्न वियाल्ल वारसं उदए ।  
 मिच्छाइ जा पमत्तो, उईरणा उदयसरिसाओ ॥ १८ ॥ २१ ॥  
 तेहत्तारि गुणहत्तारि, तेवट्ठी सत्तवन्न छप्पन्ना ।  
 चउपन्ना इगुयाला, अपमत्ताओ उईरणया ॥ १९ ॥ २२ ॥  
 जाव पमत्तो ५सत्तट्ठुउईरगो वेयआउवज्जाणं ।  
 सुहुमो मोहेण य जाव स्खीणतप्परउ नामगोयाणं ॥ २० ॥  
 मिच्छे सासण अविरय देस पमत्तापमत्त सत्तट्ठ ।  
 मीस नियट्ठिऽनियट्ठि य, सग सुहुमे छच्च वंधकमा ॥ २१ ॥  
 एगविहबंध सेसा, उदओ तिसु ठाणगेसु अट्ठण्हं ।  
 एगविहबंधठाणे, सत्त य चउरो य वेयंति ॥ २२ ॥  
 मिच्छे अट्ठयाल्लसयं, सासणमीसेसु तित्थयरहीणं ।  
 सत्तयरहिंयं ६चउसुं अट्ठतीसं दोसु संतंमि ॥ २३ ॥ २३ ॥

१ "णा उदयसरिसाओ;" इति । २ एषा गाथा त्रयोविंशतिगाथात्मके भाष्ये नास्ति ततो द्वादशो  
 गाथाः त्रयोदशस्थाने । एषमत्रेऽपि न्यूनः कार्यः ॥ ३ "पयडीओ तत्थ तिमि खिप्पंति" इति । ४ "ता  
 चेव वक्कंति" इति । ५ "सत्ताट्ठुईर" इत्यपि पाठः सन्भाव्यते । ६ "चउसु वि" इति ।

सुहुमे दुरुत्तरसयं, अडयालमिगुत्तरं च पंचासी ।  
 'पंचासी य अजोगे, पयडीणं संतवोच्छेओ ॥ २४ ॥ २४ ॥  
 तित्थयरेण विहीणं, सीयालसयं तु संतए होइ ।  
 सासायणंमि उ गुणे, सम्मामिच्छे, य पयडीणं ॥ २५ ॥ \*१४ ॥  
 अणतिरिनारयरहियं वायाल'सयं चियाण संतंमि ।  
 उवमामगस्मऽपुञ्चानियद्धिसुहुमोवसं'तस्स ॥ २६ ॥ १६ ॥  
 सच्चेसु वि आहारं, मामणमिस्सेयरे न वा तित्थं ।  
 उभये संति न मिच्छे, तित्थयरे अंतरमुहुत्तं ॥ २७ ॥  
 जा सुहुममंपराओ, उइत्तसंताइ ताइ सच्चाइ ।  
 सत्तदुवसंते खीण सत्त सेसेसु चत्तारि । २८ ॥  
 संते अडयालसयं, खवगं तु पडुच्च होइ पणयालं ।  
 आउतिगं नत्थि तहिं, सत्तगखीणंमि अडतीसं ॥ २९ ॥ १३ ॥  
 मिच्छत्तअविरई तह, कसायजोगा य हेयवो भणिया ।  
 ते पंच दुवालस पन्नवीस पन्नरस भेइल्ला ॥ ३० ॥  
 पणपन्नपन्नतियछहिय चत्तगुणचत्तछचउदुगवीसा ।  
 सोलस दस नव नव सत्त हेउणो न उ अजोगंमि ॥ ३१ ॥  
 अहिनवगहणं वंधो, उदओ हु विवागवेयणं तस्स ।  
 अविवागेणणुभवणं, अणुदयपत्तस्सुईरणया ॥ ३२ ॥ १ ॥

१ "नायच्चा अणुभागे पयडीणं संतवोच्छेओ ॥ २५ ॥" इत्यपि । २ "य" इति । ऋएतद्भाष्ये या गाथा नास्ति सा चैतदनन्तरमेवा- "पणयालं अडतीसं, अधिरयसम्मामो जाव अपमत्तो । अप्पुच्चे अडतीसं, नवरं खवगंमि बोधव्वं ॥ १५ ॥" इति । ३ 'सयं तु संतए जाण' इति । ४ "तेसु" इति । ५ "चत्तिगुणं" इत्यपि ।



॥ समाप्तमिदं कर्मस्तवभाष्यम् ॥

॥ अहंम ॥

## ॥ षडशीतिभाष्यम् ॥

जीवाइपयत्येमुं, जिणोचइट्टंसु जा असइहणा ।  
मइहणा वि य मिच्छा, विवरीयपरूवणा जा य ॥ १ ॥  
संसयकरणं जं पि य, जो तेमु अणायरो पयत्येमु ।  
तं पंचविहं मिच्छं, तदिट्ठी 'मिच्छदिट्ठी य ॥ २ ॥  
उवसमअद्दाइ ठिओ, मिच्छमपत्तो तमेव गंतुमणो ।  
सम्मं आसायंतो, साम्सायणगो मुणोयच्चो ॥ ३ ॥  
जह गुडदहीणि 'विसमाइभावसहियाणि 'हुंति मिस्साणि ।  
मुंजंतस्स तहोमय, 'तदिट्ठी मिस्सदिट्ठी य ॥ ४ ॥  
तिविहे वि हु सम्मत्ते, 'थोवा वि न विरइ जस्स कम्मवसा ।  
सो अविरउ त्ति मण्णइ, 'देसो पुण देसविरईए ॥ ५ ॥  
विकहाकसायनिदासदाइरओ भवे 'पमत्तु त्ति ।  
पंचसमिओ तिगुत्तो, अपमत्तजई मुणोयच्चो ॥ ६ ॥  
अप्पुव्वं अप्पुव्वं, जहुत्तरं जो करेइ ठिइखंडं ।  
रसखंडं तग्घायं. सो होइ 'अप्पुव्वकरणु त्ति ॥ ७ ॥  
विणिवट्टंति विसुद्धिं, 'समयपविट्ठा वि जत्थ' 'अन्नुन्नं ।  
'तं तु नियदिट्ठ्ठाणं, विवरीयमओ य 'अनियट्ठी ॥ ८ ॥  
थूलाण लोमखंडाण वेयओ वायरो मुणोयच्चो ।  
सुहुमाण होइ सुहुमो, उवसंतैहिं तु उवसंतो ॥ ९ ॥  
खीणंमि 'मोहणीए, खीणकसाओ सज्जोगजोगि त्ति ।  
होइ पउत्ता य तओ, अपउत्तो होइ हु अजोगी ॥ १० ॥  
जीवाणममच्चाणं, मिच्छत्तमणाइअनिहणं नेयं ।  
मविचाणमिणमणाई संतं पत्तंमि सम्मत्तं ॥ ११ ॥

१ "मिच्छदिट्ठीओ" इत्यपि । २ "विसयामावरहियाणि" इत्यपि । ३ "हुंति" इत्यपि । ४ "दिट्ठीए मीसदिट्ठीओ" इत्यपि । ५ "थेवे" इत्यपि । ६ "देसे पुण देसविरईओ ॥" इत्यपि । ७ "पमत्तोत्ति" इत्यपि । ८ "अप्पुव्वकरणो सि ॥" इत्यपि । ९ "समगपइट्ठा" इति "समयपइट्ठा" इति वा पाठः । १० "अन्नोन्नं" इत्यपि । ११ "तत्तो" इत्यपि । १२ "अनियट्ठी" इत्यपि । १३ "मोहणिज्जे" इत्यपि ।



सासाणं छात्रलियं, तुरियं 'तित्तामसागरा अहिया ।  
 पंचममह तेरसमं, देसणा पुव्वकोडी ३य ॥ १२ ॥  
 चरिमं हस्तपणक्खरउग्गिरणपमाणयं भवत्थाणं ।  
 सिद्धाणमणंतद्धं, अंतमुहुत्तं तु सेसाणि ॥ १३ ॥  
 समओ उ जहन्नेणं, पमत्तसासणुवसंतमोहाणं ।  
 देससजोगिअमंजयमिच्छत्ताणं मुहुत्ततो ॥ १४ ॥  
 अस्मंखाउयतिरिया, विमाणिणो पढमपुढविनेरइया ।  
 मणुया य तिसम्मत्ता, वेयगउवसामगा सेसा ॥ १५ ॥  
 अप्पज्जत्तमणुस्सा, वेउव्विय<sup>३</sup>मीसमीसदिठी य ।  
 तह सुहुमसंपराया, परिहारियत्थेयचारिणा ॥ १६ ॥  
 अप्पुव्वकरणअनियट्ठिचायरा तहुवसंतमोहा य ।  
 आहारग<sup>४</sup>मीसो वि य, सासणदिट्ठी य मयणिज्जा ॥ १७ ॥  
 सामन्नेणं एवं, सत्तावन्ना विसेसहेउणं ।  
 सा आहारदुग्गणा, पणवन्ना मिच्छदिट्ठिस्स ॥ १८ ॥  
 मिच्छत्तपंचगूणा, सासणदिट्ठिस्स होइ पन्नासा ।  
 परलोगगमणविरहा, सम्मामिच्छस्स पुण एसा ॥ १९ ॥  
 ओरालमिस्सवेउव्वमिस्सकम्मणसरीरजोगेहि ।  
 तह अणंताणुवंधीहि विरहिया होइ तेयाला ॥ २० ॥  
 पुव्वुत्तजोगजुत्ता, स च्चिय पुणरवि य मरणसब्भावा ।  
 अविरयसम्मदिट्ठिस्स बंधहेउण छायाला ॥ २१ ॥  
 ओरालमिस्सकम्मणजोगा तससंजमेहि<sup>५</sup> परिहीणा ।  
 वीयकसाएहि<sup>६</sup> चिय, विरयाविरयम्मि गुणचत्ता ॥ २२ ॥  
 अविरइमिक्कारसहा, पच्चक्खाणे य चयय तत्थेव ।  
 पक्खिवियाहारदुगं, पमत्तविरयस्स छव्वीसा ॥ २३ ॥  
 वेउव्विमिस्सआहारमिस्सवज्जाऽपमत्ति चउवीसा ।  
 वेउव्वियआहारगरहिया वावीसऽपुव्वस्स ॥ २४ ॥

हामच्छक्रविमुक्ता, सोलस अनियद्विवायरस्स भवे ।  
 संजलणवेअतियवज्जियत्ति दस सुहुमरागस्स ॥२५॥  
 लोभूणा नव उवसंतगस्स ते चेव खीणमोहस्स ।  
 चरमाहमणवद्दुगक्कम्मुरलदुगं सज्जोगिस्स ॥ २६ ॥  
 अट्ठेव य संताउगरहिया छम्मोहआउयविउत्ता ।  
 सायं एगं एवं, चउरो ठाणाणि वंधस्स ॥ २७ ॥  
 अह सत्त मोहरहिया, चउरो विज्जाउनामगोया य ।  
 सत्ताए उदए च्विय, तिन्नि य ठाणाणि पत्तेयं ॥ २८ ॥  
 अह सत्ताउविणाऽणाउविज्ज छ प्पण अमोहविज्जाऊ ।  
 दो नामं गोयं तह , इय पंच उईरणा ठाणा ॥ २९ ॥  
 जीवस्स पुग्गलाण य, जुग्गाण परुप्परं अमेएणं ।  
 मिच्छाइहेउविहिया, जा घट्टणा इत्थ सो वंधो ॥ ३० ॥  
 करणेण सहावेण व, ठिइवचए तेसिमुदयपत्ताणं ।  
 जं वेयणं विवागेण सो उ उदओ विणाभिहिओ ॥ ३१ ॥  
 कम्माराणूं जाए, करणविसेसेण ठिइवचयभावे ।  
 जं उदयावलिआए, पवेसणमुदीरणा सेह ॥ ३२ ॥  
 बंधणसंकमलद्धत्तलाहकम्मस्स रूवअधिणासो ।  
 निज्जरणसंकमेहिं, सम्माओ जो य सा सत्ता ॥ ३३ ॥  
 बंधणसंकमणुव्वट्टणा य ओवट्टणा उईरणया ।  
 उवसामणा निह्वी, निकायणा च्चि करणाइं ॥ ३४ ॥  
 बन्धनकरणं बन्ध एव ।  
 पयइठिइरसपएसाणमक्कम्मत्तणेण <sup>१</sup>य ठियाणं ।  
 जं अन्नकम्मरूवत्तठावणं संकमो एसो ॥ ३५ ॥  
 तं उव्वट्टणकरणं, जं ठिइरसवुट्टिपयाच्चियपहुत्तं ।  
 ठिइरसहस्सीकरणं, करणं अपवट्टणं जाण ॥ ३६ ॥

१ “वेज्जाउनामगोयाणि” इत्यपि । २ “जोगाण” इत्यपि । ३ “च विवाण” इत्यपि ।

उदीरणोक्तैव ।

उदयनिहत्तिनिकायणउदीरणं अजोग्गअत्तेण ।  
 कम्माणं जं ठावण, उवसमणा सा विणिदिट्ठा ॥ ३७ ॥  
 उव्वट्टुणापवत्तणियरकरणा जुग्गयाइ कम्माणं ।  
 संठावणं निहत्ती, निकायणा करणणुच्चियत्तं ॥ ३८ ॥

१ "जोग्गयाए" इत्यपि पाठः ।

॥ इति षडशीतिभाष्यम् ॥



❀ शतकभाष्यम् ❀

नमिष्ण जिनं बुच्छामि वंधसयगे चउन्ह वंधाण ।  
दाराणि तहा संखामित्तनिवद्दाउ पयडीओ ॥१॥  
<sup>१</sup>पढमवए पगई १ साइआइ २ भुयगारमाइ ३ सामित्तं ४ ।  
<sup>२</sup>ठिइ १ साइआइ २ सुहअसुह पच्चयं ३ सामिणो ४ वीए ॥२॥  
तह साइआइ १ पच्चय २ <sup>३</sup>सुहासुह ३ स्सामि ४ घाइयअघाई ५ ।  
भन्नंति ठाण ६ पच्चय ७ विवाग ८ भेया य रसबंधे ॥३॥  
कम्मपएस <sup>९</sup>गहविहिं १ भागो २ तह साइआइ ३ सामित्तं ४ ।  
मन्नहि पएसबंधे ठिइबंधेऽट्टारस इमाउ ॥४॥  
संजलण४-नाण५-दंसणचउक्क४-विग्घाणि-५ पन्नरस एया ।  
नरतिरिनरयाउ३—विगल३—सुहुमतिग३—विउव्वच्छकाणि ॥५॥  
छेवट्टं उज्जोयं तिर२ओरालिय२दुगाणि छप्पयही ।  
तिस्सि पयडीउ आयवथावरएगिदिजाईओ ॥६॥  
छप्पयहीउ विउव्वियछक्कं इत्तोऽणुभागबंधम्मि ।  
अगुरुलहु-कम्म-तेयग-सुवन्नचउ-निमिण अट्ट इमा ॥७॥  
मिच्छ-कसाय १६-दुगंछा भय-दंसण ६-नाण ५-विग्घ ५-उवघाया ।  
असुमा चउवन्नाई तेयालीसा इमा होइ ॥८॥  
साय-तिरिमणुसुराउग ३-नरदुग २-सुरदुग २-पणिदि-त्तणुपणग ५ ।  
<sup>९</sup>समचउर-वज्जरिसमं-गुवंगतिग ३ पवरवन्नाई ॥९॥  
सासु-ज्जोया-ऽऽयव-तित्थ-निमिण-परघाय-उच्च-अगुरुलहु ।  
सुखगह-तसाइदसगं इय चायालीस सुहपयही ॥१०॥  
नरयाउ-नरय २-तिरिदुग २- <sup>१</sup>विगलिगजाई ४ अ दुखगहअसाया ।  
उवघायथावरदसगमपढमसंठाण ५संधयणा ५ ॥११॥  
नीयं तह सम्माभीसरहियघाईणि <sup>२</sup>णिट्टवन्नाई ।  
इय असुमा चासीई पणिदि <sup>३</sup>ऊसास देवदुगा ॥१२॥

१ “पढमपए पगइए (पगइअन्वे) साइआई भुयगारमाइ” इति सुव्रितप्रती । २ “साई आई सुइअसुहप-  
द्वयं” इति सु० प्रती । ३ “सुहासुहं सामि” इति सु० प्रती । ४ “गहणाधिहि भाग तह” इति सु० प्रती ।  
५ “(समचउरंसअगुरुलहुसुखगहपरघायवज्जोयं)॥९॥ तित्थगरोस्सासायवणिम्मणुवंगणि तह भाइसंधयणं ।  
सुपसत्थवन्नचउतसदसोक्कगोयं ति चायाळा॥१०॥ | समचउ (... )गुरुलहुसुखगहइतसाइदसगं इय चायलीस  
सुहपयही ॥ ११” इति सु० प्रती । ६ “ (इग) विगलजाइअसुहखगइऽसाया” इति सु० प्रती । ७ “तहऽ-  
निट्ट” इति सु० प्रती । ८ “उसास” इत्यपि ।

तणुअंगुवंगओरा लराहयतमदसग १० सायममचउरं ।  
 निमिणुच्चतित्थपरघायअगुरुवरखगइवन्नचउ ॥१३॥  
 इय वत्तीसेगारम नरतिरिनरयाउ २ विगल ३ मुहुमतिगा ३ ।  
 नरयदुग २ पंच ४ आइमसंघयणं मणुय द्दुउरालं ॥१४॥  
 आयवइगिदिधावर तिन्नि उ छेवदु तिरिदुगा तिन्नि ।  
 चउदस चउ दंसणनाण ५ विग्घ ५ पण पुरिम संजलणा ४ ॥१५॥  
 इकारस निदुदुगं २ कुवन्नचउ४-हास-रइ-भय-दुगुंछा ।  
 तह उवघायं सोलस मिच्छा-ऽऽइमवारसकसाया ॥१६॥  
 तह थीणतिगं ३ सोलस विउच्चिक्का-ऽऽउ४-सुहुम३-विगलतिगा ३ ।  
 सुर-नारयाण उज्जोय-उरलदुग तिन्नि ५ मंदरसा ॥१७॥  
 तिरियदुग-नीय तिन्नि उ मंदरसाओ कुणंति तमतमगा ।  
 तसचउ-सुवन्नचउ-तेय-कम्म-पंचिदि-परघाया ॥१८॥  
 अगुरुलहु-निमिणि-सासा पनरस नपु-मिच्छि दुन्नि जस-साया ।  
 थिरसुमसेयर अदु उ तेवीसं खगइ-मणुयदुगा ॥१९॥  
 आइज्ज २-सुभग २-सूसर २-सेयर-संठाण-संघयण-उच्चं ।  
 एगं सायं सोलस मिच्छम्मि उ वंधु बुच्छिण्णा ॥२०॥  
 सासण-अविरय-बुच्छिन्न-बंध पणतीस तह य सरिराई ।  
 कमसो तणु-संठाणं-गुवंग-संघयण-वन्नाई ॥२१॥  
 थीणतिगवज्जदंसण ६ अणरहियकसाय १२ भयदुगुंछा य ।  
 नाणं ५—तराय ५ तीसं पएसबंधम्मि पुण नेया ॥२२॥  
 वहुदलियाउग-मोहे धिणंति पण सग न मीससासाणा ।  
 सुहमचयजोग सतरस पण पुं-संजलण नव तित्थं ॥२३॥  
 निदुदुगं हासछगं तेरस समचउर-वज्जरिसहाणि ।  
 सुसर-सुभगा ऽऽइज्जा विउच्चि २—सुरदुग—सुरनराऊ ॥२४॥  
 सुखगइ असाय ५ चउरो सुराउ-नरयाउ-नारयदुगाणि ।  
 दुन्नि ५ उ आहारदुगं पंच सुर २-विउच्चिदुग २-तित्थं ॥२५॥

१ ' \*छियरेहि तसदसगाय०" इति सु० प्रती । २ "आयम०" इति । ह० प्रती । ३ "ण" मणुयदुदु-  
 चरालं ।" इति सुद्वितप्रती पाठान्तरम् । ४ 'मेचिरिसा (सुरनिरया) । इति सु० प्रती । ५ "चवहा" इति  
 सु० प्रती । ६ 'य' इत्यपि सु० प्रती ।

॥ समाप्तमिदं शतकभाष्यम् ॥

## \* सप्ततिकाभाष्यम् \*

णमिउण महावीरं कम्मद्वपरूवणं करिस्सामि ।  
 बंधोदयसंतेहिं सत्तरियाच्चुन्निअणूसारा ॥१॥  
 णाणंतरायदंसणवरणे वेयणियआउगोयाणं ।  
 सुगमिच्छि किंपि दंसिय सेसंपि समासओ वोच्छं ॥२॥  
 णाणंतरायदसगं 'बंधहि मिच्छाउ जाव सुहुमोत्ति ।  
 उदसंतं जा खीणो आवरणं दंसणस्सित्तो ॥३॥  
 जा सायणु नव'बंधी मिच्छा उवरिं छवंधि जाऽपुच्चो ।  
 अप्पुच्चा जा सुहुमो निदादुगविरहिचउबंधी ॥४॥  
 मिच्छा जा उवसंतं नवसंतं उदयचारिपणगं वा ।  
 खवगाण वि नवसन्तं जा वायर'भागसंखेज्जो ॥५॥  
 उवरिं खीणदुचरिमं जा छ उ चउ संति चरिमि खीणस्स ।  
 उदए पुण खवगाणं चत्तारि उ दंसणावरणे ॥६॥  
 चउपणगं वा उदए खीणदुचरिमं तु जाव अन्ने उ ।  
 मणियं दंसणवरणं संपइ पमणामि वेयणियं ॥७॥  
 जाव पमचु असायं सायं जोगंत 'जयहि मिच्छादी ।  
 अस्सायं सायं वा उदए दो संति मंगचऊ ॥८॥  
 बंधविणा उ अजोगी जाव दुचरिमं दुसंति ते बुदया ।  
 चरिमे वि ते वि उदया उदयगयं 'संति मंगचऊ ॥९॥  
 आउस्सेगं बंधे एगं उदयम्मि संति दो हुंति ।  
 जा बंधो उदएगं दो संतं बंधविरमम्मि ॥१०॥  
 एवं नरतिरियाणं दुसंत अद्वद्वमंग चउगइसु ।  
 आउचए 'जोगाणं नेरइयसुराण पुण एवं ॥११॥  
 मंगचऊ पत्तेयं जं ते बंधंति आउदुगमेव ।  
 सच्चेसिमुदयसंतं एगेगं बंधपुत्विं तु ॥१२॥

१ "बंधहिं" इत्यपि । २ "बंधा" इत्यपि । ३ "भागुसंखिज्जो" इत्यपि सुद्धितप्रती । ४ "सायहिं" इत्यपि ।  
 ५ "संत" इत्यपि । ६ "जुगाणं" इत्यपि ।

( गतिः समाप्ता )

अट्टच्छाहिगवीसा सोलस वीमं च वार छा दोसु ।  
 दो चउसु तीसु <sup>१</sup>एक्कं मिच्छाडसु आउगे भंगा ॥१३॥  
 गुणठाणेसु आउम्स भंगा इति ॥  
 आऊ अडवीसविहं भणियं पभणामि <sup>२</sup>संपयं गोयं ।  
 बंधोदयमंतेहिं णीयं तिरियाण मिच्छाण ॥१४॥  
 ते वि हु तेऊ वाऊ तत्तो वा आगया पुढविमाई ।  
 जाव न उच्चागोयं बंधहि तावेस भंगो उ ॥१५॥  
 दो संतं नीयबंधं नीउच्चं उदइ सासणो जाव ।  
 उच्चं बंधं नीयं च वेयए जाव देसोत्ति ॥१६॥  
 दो <sup>३</sup>संतमुच्चबंधं उच्चं उदयम्मि जाव सुहुमोत्ति ।  
 दो संतमुच्चमुदयं उवमंताओ अजोगंतं ॥१७॥  
 उदसंतं उच्चं चिय अजोगिचरिमम्मि सत्तमो भंगो ।  
 मणियं गोयं संपइ भणामि मोहं समासेणं ॥१८॥  
 वार्वास <sup>४</sup>एगवीसा सत्तरसं तेरसेव नव पंच ।  
 चउतिगदुगं च एगं बंधट्टाणाणि दस मोहे ॥१९॥  
 मिच्छं कसायसोलस भयं दुगंछा तिवेयअन्नयरं ।  
 हासरई इयरे वा छ भंग मिच्छस्स वावीसा ॥२०॥  
 मिच्छनपुंसगरहिया इगवीसा सासणस्स चउभंगा ।  
 अणइत्थिरहिय सतरस दो भंगा मीसअजयाण ॥२१॥  
 दुनियकसायविहूणा तेरस देसम्मि नव य विरयम्मि ।  
 दो दो भंगा नवरं अपमत्ताईण एगेगो ॥२२॥  
 जं ते हासरइदुगं बंधहि नन्नं तु जाव अप्पुव्वो ।  
 हासरइमयदुगुंछारहिया पंचेव ते हुंति ॥२३॥  
 तो पुंकोहाईणं कमेण वोच्छेइ सेसठाणाइं ।  
 अनियट्टि पंच बंधइ न सेस उदयं च एत्तो य ॥२४॥  
 एको 'व दो' 'व चउरो' एत्तो एकाहिया दसुकोसा ।  
 ओहेण मोहणिज्जे उदयट्टाणाणि नव हुंति ॥२५॥

१ "इक्क" इत्यपि । २ "संपइ" इत्यपि । ३ "संत उ" इत्यपि । ४ "इक्कवीसा सत्तरसा" इत्यपि ।  
 ५ "मन्नयरं" इत्यपि । ६ "बंधहि" इत्यपि । ७ "जाइ" इत्यपि । ८-११ "इत्तो" इत्यपि । ९-१० "य"  
 इत्यपि । ११ "इत्तो इक्काहिया" इत्यपि ।

चउ कोहाइ अणाई दुजुयल हासरइशरइसोगाणं ।  
 वेयतियं एएहिं भंगा चउवीसतिजनामा ॥२६॥  
 इति संज्ञाकरणम् ॥  
 अणविगु तिञि कसाया जुयलनयरं तिवेयअन्नयरं ।  
 मिच्छं च सत्त उ चउ मिच्छे भंगा तिजा हुंति ॥२७॥  
 चउवीस संतु सम्मी मिच्छं गंतुं अणंतचयमाणो  
 चंधावलिया पढमा तत्थुदओ नत्थि णंताणं ॥२८॥  
 भयगुच्छअणंताणं एगयरे अट्ट नव य पुण हुंति ।  
 दुगजोगतिण्हमेगयरखिवणि-तिगुणा ३ तिजा दुसुवि ॥२९॥  
 दस तिण्हं पि हु खिवणे तिजभंगा २४ अट्ट सच्चि हुंति तिजा ।  
 ॥२४-८॥  
 सत्तट्टनवा एवं सासणमिस्से य नवरं तु ॥३०॥  
 मिच्छाठाणेणंताणुबंधे मिस्सं च खिवसु जहसंखं ।  
 चउ चउ तिजा य' दोसु वि मिच्छविणासम्मि छक्कुदओ ॥३१॥  
 भयगुच्छवेयगाणेगयरे सग ७ अट्ट ८ एगदुगखिवणे ।  
 तिण्हं दुगजोगाणं<sup>२</sup> ति३ तिज २४ नव तिहिं वि एगतिजो ॥३२॥  
 सच्चट्ट तिजा २४ । एवं बिइयकसाएहिं विरहिया देसे ।  
 पंचाई अट्टंता उदया<sup>३</sup> सच्चट्ट तिज हुंति ॥३३॥  
 तइयकसायविहूणा धिरए चउराइ सत्तगंता उ ।  
 उदया<sup>४</sup> सच्चट्ट तिजा २४-८ तत्थ उ सम्मे विसेसो यं ॥३४॥  
 जा वेयगसम्मधरा उदया ताणं तु हुंति न<sup>५</sup> उ पढमा ।  
 सुइयगउवसमियाणं चउत्थउदया नवि य हुंति ॥३५॥  
 पणबंधि वार भंगा कसायवेएहिं दुन्ह उदयम्मि ।  
 पंचाओ य चउकं संकममाणस्स<sup>६</sup> ते चन्ने ॥३६॥  
 जावइया<sup>७</sup> भज्जंती तस्समभंगा य तत्थ य इवंति ।  
 एगो अवंधगस्स उ एगारस सच्चि एगुदए ॥३७॥  
 चउरो जईउ देसगउ पंच अजयाउ छा उ जाऽपुच्चा ।  
 सत्तापमच देसट्ट नव उ अजयंत मिच्छाउ ॥३८॥

१ "दो वि हु मिस्स विणा" इत्यपि । २ "ति वि तिज नव तिहिं वि" इत्यपि । ३ "सच्च-ऽट्ट"  
 इत्यपि । ४ "सच्चट्ट" इत्यपि । ५ "हु" इत्यपि । ६ "ते वन्ने" इत्यपि । ७ "बंधंती इत्यपि ।



दस मिच्छे अनियट्टी वेयइ दो एगु वा सहुमु एगं ।  
 उदया गुणेषु एवं भंगविगप्पा इमे तेसु ॥३९॥  
 अट्टु य चउचउ चउरट्टुगा य चउरो य हुंति तिज२४ नामा ।  
 चउतीस भंग ८ एगो ९ सुहुमंता हुंति जहमंखं ॥४०॥  
 उदओ सम्मत्तो ॥

अट्टग सत्तग छच्चउ<sup>१</sup> तियदुगएक्काहिया भवे वीसा ।  
 तेरस वारेक्कारस एत्तो पंचाइ एगूणा ॥४१॥  
 मोहो सव्वो अट्टवीस सम्मि<sup>२</sup> उव्वलिइ होइ सगवीसा ।  
 मिस्सुव्वलिए छव्वीस अणाइमिच्छस्स वा होइ ॥४२॥  
 जहसंखं अणचउ ४ मिच्छ<sup>३</sup>मिस्स २ सम्मं च अट्टु य कसाया<sup>४</sup> ।  
 नपु<sup>१</sup>२<sup>५</sup> मित्थिहासछप्पु<sup>६</sup> खविए मोहाउ २<sup>७</sup> जा चउरो ॥४३॥  
<sup>८</sup>एक्केक्कम्मि य खीणे संजलणे सेस संत जावेगो ।

गुणस्थानेषु सत्तास्थानान्याह—

मिच्छे जा छव्वीसा अट्टवीसा य सासाणे ॥४४॥  
 चउवीसंता छव्वीसवज्जिया मिरिस हुंति संताउ ।  
 अट्टचउत्तिदुएगाहिया वीसा अजयाइचउसुं पि ॥४५॥  
 तो अट्टचउएगाहिया वीसा<sup>१</sup> उवसंत जाव सव्वेसिं ।  
 तेराइ खवगि वायरि एगंता<sup>२</sup> एगु सुहुमम्मि ॥४६॥  
 अट्टवीससंतकम्मो सम्मं उव्वलिय जाइ मीसम्मि ।  
<sup>३</sup>मिच्छादिट्टी एवं सत्तावीसा हवइ मीसे ॥४७॥

सांप्रतं गुणास्थानविषयबन्धोदयेषु सत्तास्थानान्याह—

जे गुणठाणगसंता ते ते ताणं पि बंधउदएसु ।  
<sup>१</sup>मोत्तुं वायरखवगो अणसम्मविसेसिउदए वि ॥४८॥  
<sup>२</sup>इयवीसाई चउरो पणचइ चउचइ इगार पण चारि ।  
 तिब्बंधाइसु संतं बंधसमं एगअहियं च ॥४९॥

१ “तिगदुगएगाहिया” इत्यपि । २ “उव्वलिये” इत्यपि । ३ “०मीस०” इत्यपि । ४ “इत्थि” इत्यपि । ५ “इक्किक्कम्मि च” इत्यपि । ६ “उवसंतु” इत्यपि । ७ “एग” इत्यपि । ८ “मिच्छदि०” इत्यपि । ९ “अणसम्मविसेसुदए वायरखवगं च मुत्तणा ॥४८॥” इति मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम् । १० इयं गाथाद्वयी हस्तलिखितप्रतौ, मुद्रितप्रतौ पुनरित्थं दृश्यते । “मिच्छुदए अणरहिए अट्टावीसे च हुंति संतम्मि । सम्मजुइ उदइ इगवीस नत्थि तिदुवीससम्मिधिणा ॥४९॥ इगवीसाई चउरो पणचइ अट्टचइ इगार पण चारि । तियबंधाइसु संतं बंधसमं एगअहियं च ॥५०॥ इति ।

सम्मज्जय उदह इगवीस नत्थि तिट्ठवीस नत्थि विणा ।  
 मिच्छुदए अणरहिए अट्ठवीसेव संतम्मि ॥५०॥  
 पुं चयनपित्थिसंते जुगवं थक्के अवेह एक्कुदओ ।  
 चउबंध संतिगारस जुगवं सत्तक्खए चउरो ॥५१॥  
 पंढगपट्टवगेयं एवं थीए वि नवरि नपि खीणे ।  
 'ता इत्थिउदयसंतं पुबंधं जुगवुच्छेएइ ॥५२॥  
 पुरिसो पट्टवगो पुण सच्चिगवीसाइफासए कमसो ।  
 हासछगखवणकाले पुबंधुदया परं थक्का ॥५३॥  
 सम्म विणा उदएसु संतविभागो उ अजयमाईणं ।  
 चउरट्टवीस उवसंतसम्मि खीणम्मि इगवीसा ॥५४॥

जीवस्थानेषु बन्धादीनाह—

अट्टसु पंचसु एगे जियठाणे एग दुन्नि दस बंधा ।  
 तिग चउ नव उदयम्मि उ तिग तिग पन्नरस संतम्मि ॥५५॥  
 गतिपु बंधादीनाह—

बंधट्ठाणा तिभि उ पढमा सुरनारएसु चउ तिरिसु ।  
 सुरनारयाण छाई तिरि पंचाई दसंतुदया ॥५६॥  
 इगवीसंता तेवीसवज्जिया छावि संति तिसु गइसु ।  
 मणुयगईए सव्वे बंधोदयसंतठाणाणि ॥५७॥

मोहो सम्मत्तो ॥

तेवीसपन्नवीसा छव्वीसा अट्टवीस गुणतीसा ।  
 'तीसेगतीसमेगं बंधट्ठाणाणि नामस्स ॥५८॥  
 वक्खउतेयकम्मा निम्माणुवघायमगुरुलहुयं च ।  
 नव धुवबंधा एए सव्वत्थ मिलंति जा बंधो ॥५९॥  
 थिरसुभर सुस्सर३ सुखगह४ सुभग५ जसा६ देय७ सियरसत्तदुगा  
 संघयणा ६ संठाणा छद्दा-पिंडा हवंतेए ॥६०॥

'नवगाविरुद्धगहणे तज्जा भंगा हवंति सव्वत्थ ।

छायालसयाणि अट्टत्तराणि अविसेसिए धुवओ ॥६१॥

१ "तो इत्थिवदय सन्त पुबंधं जुगव छेएइ" इति पाठो मुद्रितप्रतो दृश्यते । किन्तु स छन्दमङ्गा-  
 दिहेतुना श्रुद्धः प्रतिभाति । २ "तिसिक्कतिसमेगं" इति मुद्रितप्रतौ पाठोऽस्ति, किन्तु सोऽशुद्धः ।  
 ३ "नवए वि०" इत्यपि ।

जत्थ य अद्दु य भंगा तत्थ य थिरसुभर जसेहिं ३ सियरेहिं ३ ।

उट्ठिति संकरहिया आयवउज्जोय 'दुगि दुगुणा ॥६२॥

बंधस्थानानि विवरयन्नाह गाथाष्टादशकेन-

नियगइदुगनियजाई उरलं हुंढं च थावरं अथिरं ।

अणएज्ज असुभदूभग अपङ्जनवधुवय अजसं च ॥६३॥

पत्तेयदुगेगयरं सुहुमदुगेगयरिगिंदितेवीसा ।

१ एगिंदियाइतिरिनर बंधहिं मिच्छेण चउभंगा ॥६४॥

सोसासपराघाए खित्ते पणवीसिगिंदियज्जस्स ।

२ पत्तेयसुहुमसुभथिर जसजुयलिहिं वीस भंगाओ ॥६५॥

विरुद्धपरित्यागेन ज्ञेयाः ।

नेरइयवज्ज मिच्छो बंधइ एसा वि होइ छव्वीसा ।

उज्जोयआयवाणं एगयरे भंगसोत्तसगं ॥६६॥

साहारणसुहुमेहिं उज्जोयजसायवा न वज्जंति ।

अपजत्तेणं च तहा पसत्थपरियत्तमाणीओ ॥६७॥

३ एगिंदिवज्जतिरिमणुअपज्ज पणवीस एत्थ पणभंगा ।

तसवायरउरलदुगं सेवडुं तह य पत्तेयं ॥६८॥

४ तेवीससेससहियं नरतिरिएगिंदियाइ बंधंति ।

नारयअहवीसेवं बंधहि तिरिमणुयपंचिंदी ॥६९॥

सा एव-

नियगइदुगनियजाईबायरपरघाय<sup>५</sup>पज्जपत्तेयं ।

नवधुव सासु तसं चिय वेउव्विदुगं च हुंढं च ॥७०॥

अपसत्थपिंडसहिया संघयणं मोत्तु मिच्छ बंधेइ ।

भंग विणा मिच्छाई पुव्वंता सा वि सुरजोग्गा ॥७१॥

नवरं भंगा अद्दु उ समचउरंसं पसत्थपिंडं च ।

सा तित्थि इगुणतीसा 'बंधहि' अजयाइणो अहवा ॥७२॥

१ "दुधि" इत्यपि ह० प्रती । २ एगिंदिया य तिरि०" इत्यपि । ह० प्रती ३ "वायरपरोयथिरासुम-  
वासि सियरेहिं वीसांसा ॥६५॥" इत्यपि सुद्धितप्रती पाठान्तरम् । ४ 'बंधंति' इति सु० प्रती । ५ "अपि-  
अत्तधिगळतिरिमणुयजुगपणवीसइत्थ पण भंगा" इति सुद्धितप्रती पाठान्तरम् । ६ "सेसतेवीस०" इति  
सुद्धितप्रती पाठोऽस्ति परं तु म छन्दमङ्गकाणेषा-ऽशुद्धो भाति । ७ "पञ्चत्त०" इति तु सुद्धितप्रती  
पाठोऽस्ति, किन्तु स न मस्यक्, छन्दोमङ्गत्वात् । ८ "मुत्तु मिच्छु" इत्यपि । ९ "बंधइ" इति सु० प्रती ।

नियगद्गुगनियजाई उरलदुगं वायरं पराघायं ।  
 पत्तेय पज्ज नव धुव नवपिंडा उ तसं सासं ॥७३॥  
 नरतिरिय 'जोग्गमिच्छाह' 'दोन्नि वंधंति पिंडजा भंगा ।  
 विगलद्वभंग हुंडं 'सेवट्ट' हीणपिंडिल्ला ॥७४॥  
 संघयणा संठाणा छावि हु मिच्छाण हुंति वंधम्मि ।  
 'सेवट्टहुंडविरहे पण सासणि तयणुभंगो उ ॥७५॥  
 'पढमं सुरनेरइया मिस्साइजया नराण पाउमं ।  
 अढभंग 'सत्थपिंडा एस विसेसो इगुणतीसे ॥७६॥  
 नरइगुणतीस तीसा तित्थेणं होइ 'अजउ वंधेइ ।  
 अहवु 'ज्जोयण तीसा तिरि गुण'तीसाइ तह सव्वं ॥७७॥  
 अहवा सुरअढवीसाSS' 'हारगदुजुया अमंग वरतीसा ।  
 तित्थेणं इगतीसा 'बंधहि अपमत्तअप्पुच्चा ॥७८॥  
 जसक्कित्तिमपुच्चाई 'बंधहि उवसंतमाइ न उ नामं ।  
 इय नामबंध'ठाणाइ भंगसंखा इमा तेसु ॥७९॥  
 चउ ४'पणवीसा २'सोलस'नव' षाणउई सया य अहयाला ।  
 'इगयाउत्तरछायालसया ४६४१' 'एक्को कबंधविही ॥८०॥

गुणस्थानेषु बन्धस्थानान्याह-

मिच्छो छ उ तीसंता सासणु'अजया य तिन्नि तीसंता ।  
 देसपमत्ता मीसा बंधहि' वीसा नवट्टहिया ॥८१॥  
 अढवीसाई चउरो बंधह अपमत्तु पंच अप्पुच्चो ।  
 एगमनियट्टिसुहुमा सेसा नामं न बंधंति ॥८२॥

जीवस्थानेषु बन्धस्थानान्याह-

एगेगतीस सक्की पज्जो अढवीस पज्जु अमणो वि ।  
 सेसा उ पंचठाणा 'बंधह सक्वे वि जियठाणा ॥८३॥

१. "जुगो" इत्यपि । २. "दुक्खि" इत्यपि । ३. "खेवट्ट" इत्यपि । ४. "खेवट्टो" इत्यपि । ५. बंधहि सुरनेरइया मिस्सा अजया य मणुयपावमं । इति सुद्धितप्रती पाठान्तरम् । ६. "पसत्थो" इति सु० प्रती । ७. "अजय" इति सु० प्रती । ८. "ज्जोयणो" इत्यपि सु० प्रती । ९. "वतीसाए" इत्यपि सु० प्रती । १०. "हारदुगजुया" इत्यपि सु० प्रती । ११-१२. "बंधहि" इत्यपि सु० । १३. "ठाणाई" इत्यपि सु० । १४. "पणु" इत्यपि सु० । १५. "इगुयालुत्तर" इत्यपि सु० । १६. "इक्को" इत्यपि सु० । १७. "अजयो" इत्यपि सु० । १८. "बंधहि" इत्यपि सु० ।

जत्थ य अट्ट य भंगा तत्थ य थिरसुभ२ जसेहिं३ सियरेहिं ३ ।  
उट्ठिति संकरहिया आयवउज्जोय 'दुगि दुगुणा ॥६२॥

बंधस्थानानि विवरयन्नाह गाथाष्टादशकेन-

नियगइदुगनियजाई उरलं हुंढं च धावरं अधिरं ।  
अणएज्ज असुभदूभग अपज्जनवधुवय अजसं च ॥६३॥  
पत्तेयदुगेगयरं सुहुमदुगेगयरिगिंदितेवीसा ।  
२एगिंदियाइतिरिनर बंधहिं मिच्छेण चउभंगा ॥६४॥  
सोसासपराधाए खित्ते पणुवीसिगिदिपज्जस्स ।  
३पत्तेयसुहुमसुभधिर जसजुयलिहं वीस भंगाओ ॥६५॥

विरुद्धपरित्यागेन ज्ञेयाः ।

नेरइयवज्ज मिच्छो बंधइ एसा वि होइ छव्वीसा ।  
उज्जोयआयवाणं एगयरे भंगसोलसगं ॥६६॥  
साहारणसुहमेहिं उज्जोयजसायवा न वज्जंति ।  
अपजत्तेणं च तहा पसत्थपरियत्तमाणीओ ॥६७॥  
४ एगिदिवज्जतिरिमणुअपज्ज पणवीस एत्थ पणभंगा ।  
तसवायरउरलदुगं सेवट्टं तह य पत्तेयं ॥६८॥  
५ तेवीससेससहियं नरतिरिएगिंदियाइ बंधंति ।  
नारयअडवीसेवं बंधहि तिरीमणुयपंचिदी ॥६९॥

सा एवं-

नियगइदुगनियजाईवायरपरघाय<sup>५</sup>पज्जपत्तेयं ।  
नवधुव सासु तसं चिय वेउव्विदुगं च हुंढं च ॥७०॥  
अपसत्थपिंडसहिया संघयणं मोत्तु मिच्छ बंधेइ ।  
भंग विणा मिच्छाई पुव्वंता सा वि सुरजोग्गा ॥७१॥  
नवरं भंगा अट्ट उ समचउरंसं पसत्थपिंडं च ।  
सा तित्थि इगुणतीसा बंधहिं अजयाइणो अहवा ॥७२॥

१ "दुक्खि" इत्यपि ह० प्रती । २ एगिंदिया य तिरि०" इत्यपि । ह० प्रती ३ "वायरपत्तेयधिरासुस-  
असि सियरेहिं वीसांसा ॥६५॥" इत्यपि मुद्रितप्रती पाठान्तरम् । ४ "बंधंति" इति सु० प्रती । ५ "अपि-  
अत्तधिगंलतिरिमणुयजुग्गपणवीसइत्थ पण भंगा" इति मुद्रितप्रती पाठान्तरम् । ६ "सेसतेवीस०" इति  
मुद्रितप्रती पाठोऽस्ति परं तु म् छन्दमङ्गकारणेणा-ऽशुद्धो भाति । ७ "पज्जत्त०" इति तु मुद्रितप्रती  
पाठोऽस्ति, किन्तु स न मस्यक्, छन्दोमङ्गत्वात् । ८ "मुत्तु मिच्छु" इत्यपि । ९ "बंधइ" इति सु० प्रती ।

नियगद्गुगनियजाई उरलदुगं वायरं पराघायं ।  
 पत्तेय पज्ज नव ध्रुव नवपिंडा उ तसं सासं ॥७३॥  
 नरतिरिय 'जोग्गामिच्छाई 'दोन्नि बंधंति पिंडजा भंगा ।  
 विगलद्दुभंग हुंडं 'सेवद्द' हीणपिंडिल्ला ॥७४॥  
 संघयणा संठाणा छावि हु मिच्छाण हुंति बंधम्मि ।  
 'सेवद्दहुंडविरहे पण सासणि तयणुभंगा उ ॥७५॥  
 'पदमं सुरनेरइया मिस्साइजया नराण पाउग्गं ।  
 अहमंग 'सत्थपिंडा एस विसेसो इगुणतीसे ॥७६॥  
 नरइगुणतीस तीसा तित्थेणं होइ 'अजउ बंधेइ ।  
 अहवु 'ज्जोयण तीसा तिरि गुण'तीसाइ तह सव्वं ॥७७॥  
 अहवा सुरअहवीसाऽऽ'हारगद्दुजुया अमंग वरतीसा ।  
 तित्थेणं इगतीसा 'बंधहि अपमत्तअप्पुच्चा ॥७८॥  
 जसक्किचिमपुच्चाई 'बंधहि उवसंतमाइ न उ नामं ।  
 इय नामबंध'ठाणाइ मंगसंखा इमा तेसु ॥७९॥  
 चउ ४'पणवीसा २'सोलस'६नव६ षाणउई सया य अइयाला ।  
 'इगयाउत्तरछायालसया'४६४'एक्के कबंधविही ॥८०॥

गुणस्थानेषु बन्धस्थानान्याह-

मिच्छो छ उ तीसंता सासणु'अजया य तिभि तीसंता ।  
 देसपमत्ता मीसा बंधहि वीसा नवहुइया ॥८१॥  
 अहवीसाई चउरो बंधइ अपमत्तु पंध अप्पुच्चो ।  
 एगमनियडिसुहुमा सेसा नामं न बंधंति ॥८२॥

जीवस्थानेषु बन्धस्थानान्याह-

एगेगतीस सन्नी पज्जो अहवीस पज्जु अमणो वि ।  
 सेसा उ पंधठाणा 'बंधइ सव्वे वि जियठाणा ॥८३॥

१. "जुगं" इत्यपि । २. "दुन्नि" इत्यपि । ३. "छेवद्द" इत्यपि । ४. "छेवद्दु" इत्यपि । ५. बंधहि सुरनेरइया मिस्सा अजया य मणुयपाउग्गं ।" इति सुद्धितप्रतौ पाठान्तरम् । ६. "पसत्थं" इति सु० प्रतौ । ७. "अजय" इति सु० प्रतौ । ८. "ज्जोयणं" इत्यपि सु० प्रतौ । ९. "वतीसार्थे" इत्यपि सु० प्रतौ । १०. "हारगद्दुजुया" इत्यपि सु० प्रतौ । ११-१२. "बंधहि" इत्यपि सु० । १३. "ठाणाई" इत्यपि सु० । १४. "पणु" इत्यपि सु० । १५. "इगुयाउत्तरं" इत्यपि सु० । १६. "इक्के" इत्यपि सु० । १७. "असो" इत्यपि सु० । १८. "बंधहि" इत्यपि सु० ।

गतिषु तान्याह-

मणुएसु सन्नि वंधा पणछन्नववीस तीस देवेसु ।  
तिरिएसु छ ६ तीसंता नरए गुणतीमतीसा य ॥८४॥  
पणयाल सन्नि नरि सत्ततीस तेरस सहस्स नव य सया ।  
तिरि पज्जि अमणि मिच्छे, ते छच्चीमा असम्मजया ॥८५॥  
ते सतरसहिय 'जियवारसेसु अट्टसय तेरस सहस्सा ।  
छप्पन्नहिय सुरेसु' वत्तीसहिया य ते नरए ॥८६॥  
छन्नवइसयट्टहिया सोलस वत्तीस सोल सोलस य ।  
चउ पंच एगमेगं साणाइसु भंग जा सुहुमो ॥८७॥

॥ इति जीवस्थानादिषु भङ्गाः ॥

॥ वंधो समन्तो ॥

वीसिगवीसा चउवीसि 'गाउ इगतीसमंत एगहिया ।  
उदयट्टाणाणि भवे नव अट्ट य हुंति नामस्स ॥८८॥  
'तेयाकम्मगुरुलहु थिरसुभजुयलाणि निम्म वन्नचउ ।  
एया वारस पयडी धुवोदया हुंति नामस्स ॥८९॥  
'संघयणा ६ संठाणा ६ सुभगं १ आदेय १ जस १ ति ३ जुयलाणि ।  
'रासीगुणेण भंगा अट्टसीया दो सया हुंति ॥९०॥ करणं ॥  
पज्जत्तजसादेयं सूभगजुयलेहि' नव य भंगाओ ।  
अपसत्थेगु अपज्जे पज्जट्ट उ करणजवडिल्लं ॥९१॥  
'साहारणे ण आयवु-जोयजसायव अपज्जसुहमेहिं ।  
साहारुज्जोयजसायवे य नोदिंति सुहुमतसे ॥९२॥  
उदयस्थानानि विवरयन्नाह त्रिंशद्भिर्गाथाभिः-  
नियगडदुगनियजाई थावरनादेय'दुहयधुवपयडी ।  
सुहुमापज्जजसाणं दुगदुग'एगयरि पणभंगा ॥९३॥  
थावरइगवीसेसा अवणिय अणुपुन्नि 'घत्तियं एयं ।  
पत्तेयदुगेयरं हुंडं उरलं 'उवघायं ॥९४॥

१. "०धारसजिएसु" इत्यपि सु० । २. "०गाइ०" इत्यपि । ३ "इयं गाथा इस्तल्लिखितप्रवौ नास्ति ।  
४ संघयणं संठाणं सूभगमा०" इति सु० प्रती । ५ "रासिगुणेण" इति सु० प्रती । ६ "साहारणे न" इति  
सु० प्रती । ७ "दुभग०" इत्यपि सु० । ८ "एगयरे य" इति ह० प्रती । ९ "घत्तियं" इत्यपि सु० प्रती ।  
१० "च उवघायं" इत्यपि सु० प्रती ।

दस भंगा 'उरलम्मी विउन्विपज्जेगु 'जाण चउवीसे ।  
 'वायरविउन्विदेहं पत्तेयं 'वित्थ य विसेमो ॥९५॥  
 पज्जचउवीस पणुवीस होइ परघाय सत्त तहिं भंगा ।  
 पत्तेय<sup>१</sup>सुहुम<sup>२</sup>जसजुयलि 'छाओ' एको य वेउव्वे ॥९६॥  
 ऊसासे छव्वीसा तत्थ वि ते सत्त अहव 'उज्जोयं ॥४।  
 अहवा वि आयवेणं २ चउरो ४ दोर गिंदि 'छव्वीसा ॥९७॥  
 सासछव्वीसमज्जे आयवउज्जोयएगयरि छूढे ।  
 सत्तावीस छ ६ भंगा एगिंदियमंगवायालं ॥९८॥  
 जा इगवीसा एगिंदियस्स विगलाण होइ सा चेव ।  
 किंतु तसवायरं चिय पाठो भंगा य 'तिन्नेवं ॥९९॥  
 अपसत्थपज्जभंगो एगो नरएसु अट्ट वि सुरेसु ।  
 नव तिरिनरेसु जवडिद्धि भंग सेसो उ विगलकमो ॥१००॥  
 विगलइग 'वीसि अणुपुन्विविरहिए खिवसु हुंढसेवट्टे ।  
 उरलदुगं उवघायं पत्तेयं चेव छव्वीसा ॥१०१॥  
 तं भंगतियं सा वि हु दुखगइ 'परघायखिवणि अडवीसा ।  
 भंगा य 'दोभि इत्थं अपज्जभंगा जओ नत्थि ॥१०२॥  
 ऊसासुज्जोयाणे<sup>६</sup>गयरे गुणतीस भंग चत्तारि ।  
 सासगुणतीसतीसा सुरदुगउज्जोय एगयरे ॥१०३॥  
 'छभंगं सर तीसा इगतीसो<sup>७</sup>ज्जोयएण भंगचरु ।  
 बेइंदियवावीसा छावट्टी सव्वविगलाणं ॥१०४॥  
 सगलाणं छव्वीसा एवं नवरं तु रासिजा भंगा २८८ ।  
 अप्पज्जभंग अप्पसत्थजुत्त<sup>१</sup> अडवीस पुण एवं ॥१०५॥  
 खगईदुगएगयरे परघाए खिचि रासिजा २८८ दुगुणा ।  
 रासिज<sup>२</sup>२८८भंग चउगुणा<sup>४</sup> गुणतीसे सासि जोए वा ॥१०६॥  
 ऊसासे गुणतीसे सरदुगउज्जोयएगयरखेवे ।

१ 'उरलम्भि उ' इत्यपि सु । २ "जाणि" इति ह. प्रती । ३ "वायरु-" इति सु । ४ "इत्थ" इत्यपि सु । ५ "छा इको उ" इति सु । ६ "उज्जोय" इत्यपि सु । ७ "छव्वीसे" इत्यपि सु । ८ "तिन्नेव" इत्यपि सु । ९ "व्वीस" इति सु । १० "परिघा०" इति सु । ११ "दुभि" इति सु । १२ "छ य" इत्यपि सु ।



१ छगुणरासिजभंगा २८८ तीसाइ पुणो वि सरतीसा ॥१०७॥  
 उज्जोएणिगतीसा चउग्गुणा ४ रासिजा उ उदयंसा ।  
 छलहियगुणवन्नसया भंगा पंचिदितिरियाणं ॥१०८॥  
 उज्जोरहियतिरिविहि सामन्नराण अत्थि सच्चो वि ।  
 दुग्गहियछव्वीससया भंगाणं ताण तो हुंति ॥१०९॥  
 वेउव्वियपणुवीसा वेउव्विदुगं समंतचउरंसं ।  
 पत्तेयं उवघायं सिगवीसणुपुव्विरहिया य ॥११०॥  
 अहमंग सत्तवीस वि सुखगइ ३ परघायसंजुय तहेव ।  
 सासुज्जोएगयरे अहवीस दु अट्ट २।८ जवडिन्त्ता ॥१११॥  
 उज्जोयसूसरेगयरि सास अहवीस होइ गुणतीसा ।  
 जवडिन्त्ता दो य अठा उज्जोए तीस जवडट्टा ॥११२॥  
 तिरि छप्पन्नं भंगा नरेसु एमेव भंगपणतीसा ।  
 जं उज्जोओ जईणं तहि ३ पसत्था य जवडिन्त्ता ॥११३॥  
 आहारसंजयाण वि एवं आहारगं तहि वच्चं ।  
 ४ एक्केको वि य भंगा सच्चत्थ वि सत्त मिलिया वि ॥११४॥  
 नरगइपणिदिजाई तसवायरपज्जसुभग्घुवपयट्टी ।  
 आदेयजसा वीसं तित्थेणिगवीस केवल्लिणो ॥११५॥  
 उरलदुगं सट्टाणं ५ पत्तेगुवघायवज्जरिसहं च ।  
 सह वीसाए छवीसा सत्तवीसा य तित्थेणं ॥११६॥  
 स च्चेव य छव्वीसा परघाउस्सासगइसरेगयरं ।  
 पक्खिविय भवे तीसा एगत्तीसा य तित्थेणं ॥११७॥  
 केवल्लिणो तीसुदए सरंमि रुद्धे भवे इग्गुणतीसा ।  
 अहवीस सासरोहे अहवा तित्थयर इगतीसा ॥११८॥  
 सररोहि तीस सासम्मि गूणिया एवमट्ट मणुयगई ।  
 तससुहयपज्जवायरपणिदिया-SS ६ एज्जयजसेहि ॥११९॥  
 नव तित्थिण केवल्लिणो सच्चे भंगट्ट पुव्वगहणेण ।  
 मणुयाण सच्चि भंगा छव्वीससया उ चावभा ॥१२०॥

१ "छगुणा" इत्यपि सु. । २ "परिघाय०" इति ह- प्रती । ३ "च सत्था" इति ह. । ४ "इक्केको  
 थिय" इत्यपि सु. । ५ "पत्तेयु०" इत्यपि सु. । ६ "इज्ज०" इत्यपि सु. ।

नियण्गवीसजुत्ता विउच्चित्तिरिसरिस ह्नुति देवुदया ।  
 चउसद्धि देचयंग्गा अपसत्था पंच नरएसु ॥१२१॥  
 उदयेपु मङ्गसंख्या ॥  
 इग बेयालिकारस तेत्तीसा छस्सयाणि तेत्तीसा ।  
 चारस सत्तरससयाणहिगाणि त्रिपंचसीईहि ॥१२२॥  
 अउणत्तीसेगारससयहियसत्तरसपंचसद्धीहि ।  
 एक्केक्कां च वीसाददुदयंतेसु उदयविही ॥१२३॥

उदयस्थान.	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३
मङ्गाः	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१०	११६५	१	१

अन्वस्थानेषु उदयानाह-

इगतीसंता इगवीसमाइणो सच्चि उदय विज्जंति ।  
 तीसंतबंधगेसु चउवीसा मोत्तु अहवीसे ॥१२४॥  
 गुणतीसतीस उदया इगतीसे एगबंधि तीसेव ।  
 चउवीसा पणवीसा मोत्तुसबंधम्मि दस सेसा ॥१२५॥

सांप्रतं सर्वोदयमङ्गसंख्यापूर्वकं सर्वस्थानेषु संभवितोदयमङ्ग-  
 संख्यामाह-

सत्तरी सयाइं एकाणउयाइं सच्चमंगाणं ७७९१।  
 जइ१८सुर६४नरय५विहूणा तेवीसे बंधि सेसुदया७७०४॥१२६॥  
 नारय५जई१८विहूणा पुण छव्वीसे य पक्खीसेय ७७६८।  
 केवल्लिरहियाउदया गुणतीसे तीसबंधे य ७७८३॥१२७॥  
 पक्खसया वासीया ५०८२ अहवीसे बंधि नमिह तिरिउरला ।  
 देहेणापडिपुक्का पढमे संघयणसंठाणे ॥१२८॥  
 अहयालं मंगसयं१४८इगतीसे एगबंधि दुगसयरी ।७२  
 अट्टाणवई सच्चे अवंधए ह्नुति उदयंसा ॥१२९॥

॥ इति अन्वस्थानेषु उदयमङ्गसंख्या ॥

सांप्रतं गुणस्थानेषु उदयस्थानान्याह-

१ "मुत्तु" इत्यपि सु । २ "उदयो" इत्यपि ह० । ३ "पणु" इत्यपि सु । ४ "मुत्तु" इत्यपि सु । ५ "नरयजइविहूणा पुण छव्वीसे पक्खीसबंधे य" । इत्यपि सुत्रिसप्रवौ । ६ "वासीती" इत्यपि सु ।

इगतीसंता इगवीसमाइणो मिच्छि सच्चि उदयाओ ।  
 २ त्तडुवीसरहिया ते चेव उ सत्त सासाणे ॥१३०॥  
 २ णतीसाई तिन्नि उ इगतीसंता उ मिस्सगुणठाणे ।  
 चउवीसरहिय अजए देसे चउछेग-२४-२६-२१-वीसूणा ॥१३१॥  
 विरए वेवं नवरं इगतीसाए य रहिय अपमत्तो ।  
 गुणतीसतीस पुच्चा जा खीणो तीस जोगेवं ॥१३२॥  
 चउपणअहिया वीसा नव अट्ट य 'मोत्तु अट्ट उदयाओ ।  
 नव अट्ट अजोगमी भंगोवाओ इमो तेसु ॥१३३॥  
 सुहुमतिगं सुहुमतसा मिच्छे इगविगल जाव सासाणे ।  
 उदया ३वि न संतेए सासाणे नरगइगवीसा ॥१३४॥  
 ३एगिदिसु छच्चीसा नरतिरि गुणतीसतीस बुजोई ।  
 सुरवज्जा पणवीसा इगतीसा तिरिसगलसेसा ॥१३५॥  
 मिश्रे विशेषमाह-  
 नरतिरिए गुणतीसा तीस वि जोएण नत्थिणमीसाण ।  
 अण ५एज्जदुहयमजसं देसाईणं न य उदेइ ॥१३६॥  
 गुणतीसंतुद ५एहिं संजयदेसा न हुंतुरलदेहा ।  
 आहारनरूजोया जइस्सऽपुच्चाऽट्ट केवल्लिणो ॥१३७॥  
 संघयणे पढमे च्चिय सेढी तिन्नाइ अन्नि उवसमगे ।  
 तित्थयरे समचउरं सरखगई सुप्पसत्थित्ति ॥१३८॥  
 नियउदयमंगसंखा अनोगगरहिया भवे निययसंखा ।  
 गुणठाणे गुणठाणे भंग च्चिय ५संपयं बुच्छं ॥१३९॥  
 सत्तत्तरितेवत्तरि ७७७३ भंगसया मिच्छसासणे एवं ।  
 चारि सहस्सा सगनउय ४०९०मीसि चउतीस पणसट्टा ३४६५  
 ॥१४०॥  
 अजए इगवन्नसया इगचत्ता ५१४१देसि चउसयतिचत्ता ४४३ ।  
 अट्टवन्नसयं छट्ठे १५८ अट्टयालसयं १४८ तु अपमत्ते ॥१४१॥

१ "मुत्तु" इत्यपि सु० । २ "य" इत्यपि सु० । ३ इयं गाथा मुद्रितप्रतावित्यम्- 'सगलतिरिसेसइ-  
 गतीस असुरपणुवीसिगिदि छच्चीसा । तिरिजोई विगलतीसा तिरिमणुयाणं च गुणतीसा" इति ।  
 ४ "अणुइज्ज" इत्यपि सु० । ५ "०एसु" इत्यपि सु० । ६ "संपयं" इत्यापि सु० ।

उवरिं जा उवसंतो विसत्तरी ७<sup>०</sup> खीणमोहि चउवीसा २४ ।  
अहचत्त ४८ सजोगम्मी दो मंगा चरिमगुणठाणे ॥१४२॥

जीवस्थानेपूदयानाह—

छव्वीसंता सुहुमे सगवीसंता य वायरे उदया ।  
इगतीसंता चउवीसहीण समणेगवीसाई ॥१४३॥  
विगलामणेसु ते वि हु पणुवीसा सत्तवीस विणु छाओ ।  
पञ्जि 'अपञ्जाणं' निज दो दो उरलोदया पढमा ॥१४४॥

जीवस्थानेषु उदयस्थानकमङ्गसंख्यामाह—

सुहमेयरेसु तिय तिय ३ अपञ्जि पज्जेसु सत्त गुणतीसं ।  
सन्नि अपज्जे चउरो दो दो सेसेसु ऽपज्जेसु ॥१४५॥  
छावत्तरि इगसत्तरि समणे विगलेसु वीस पत्तेयं ।  
असणे गुणवन्नसया चउसहिया जीवउदयंसा ॥१४६॥

गतिपूदयन्यानान्याह—

इगपणसगट्टनवहियवीसा नरगे सुरेसु तीसा वि ।  
नरुदय—चउवीसणा नवट्टवीसण—तिरिएसु ॥१४७॥  
उदयंस पंच नरए तिरिए पण सहस सयरि भंगारणं ।  
देवेसु चउसट्टी नरेसु छव्वीसवावन्ना ॥१४८॥

गुणस्थानजीवस्थानगतीनां बन्धेषूदयानतिदिशन्नाह—

गुणतीसंता उदया अहवीसे नत्थि जाव मीसोत्ति ।  
निगतीस तित्थबंधे इगतीसचयाइ ३१ गुणसरिसा ॥१४९॥  
पणसगअहिया वीसा तेवीसचए न होइ सगलारणं ।  
गुणजियगईण सरिसावसेसबंधेसु उदयाओ ॥१५०॥

मिश्रस्यैकोनत्रिंशद्बन्धे एकोनत्रिंशदुदयः ॥

॥ उदयो सम्मत्तो ॥

तदिनुवई गुणनवई <sup>१</sup>अट्टच्छट्टसी असी य गुणसी य ।  
अट्टयछप्पत्तरि नव अट्ट य नामसंताणि ॥१५१॥  
<sup>२</sup>पडिपुन्नु नाम्ण सिणवइ तित्थविणा दुणवई य सा होइ ।  
चउआहारगरहिया ता ६३-९२ गुणनवई य अहसीया ॥१५२॥

१ "अपञ्जाणं निय दो" इत्यपि । २ 'अहसी छहसी असीइ गुणसीइ ।' इत्यपि सु० । ३ "पडि-  
पुल्ल" इत्यपि सु० ।

'सुरदुगनरयदुगे वा एगयरे नासिए हवइ छासी ।  
 असइ विउच्चिचउक्के दुगअन्नयरे य उच्चलिए ॥१५३॥  
 मणुयदुगे उच्चलिए <sup>१</sup>अडसत्तरिं सत्तखवणरहियाण ।  
 खवगारुं पुण सन्वे छासी <sup>२</sup>अडसत्तरी मोत्तुं ॥१५४॥  
 तेणवइमाइयाओ चउरो नामस्स तेरसे खविए ।  
 जायंति असी गुणसी छसयरि पणसयरि जहसंखं ॥१५५॥  
 नरयदुगं तिरियदुगं विगलिगजाई य थावरं सुहुमं ।  
 आयावं उज्जोयं <sup>३</sup>साहारण तेरस इमाओ ॥१५६॥  
 दुणवइअडसीयाओ उवसंतो जाव संति मिच्छाओ ।  
 तिणवइ गुणणवईओ दो वि हु अजयाउ अट्टण्हं । १५७॥  
 गुणनवइ असी छासी <sup>४</sup>अडसत्तरि मिच्छि धूलखवगाओ ।  
 पणछन्नवहियसत्तरि असी अजोगंतऽणुवसंते ॥१५८॥  
 नव अट्ट अजोगि<sup>५</sup>मी सत्ता गुणठाणगेसु इय भणिया ।  
 गुणवंधुदएसेवं नवरं तत्थ य विसेसोयं ॥१५९॥  
 अडवीसचयं <sup>६</sup>मोत्तुं दुणवइ छडसी<sup>६</sup> असी<sup>६</sup> सन्वत्थ ।  
 छव्वीसंतुदएसुं<sup>७</sup> अडसयरी पंचमी मिच्छो ॥१६०॥  
 गुणतीसचए नरगोदएसु<sup>८</sup> २१, २५, २७, २८, २९ नवसी विबंधि अडवीसे ।  
 दुणवइ नवट्टछासी नवसी विणु एकतीसुदए ॥१६१॥  
 सासणि तीसे तुदए दुणवइ <sup>९</sup>अडसी य सेसि पुण अडसी ।  
 अजए गुणतीसचए तिनवइ नवसी छवीसुदए ॥१६२॥  
<sup>१०</sup>देसपमत्ति गुण तीसे २६ चइ अजए तीसि तिणवई नवसी ।  
 अडवीसचए दुणवइ अडसी अजयाइ तिणहंपि ॥१६३॥  
 अडसी नवसी दुणवइ तिणवइ संता कमेण बंधेसु ।  
 अपमत्तअपुव्वाणं इगतीसंतेसु चउसुं पि ॥१६४॥

१ "अस्या गाथायाः स्थाने मुद्रितप्रताषियं गाथाऽस्ति । "छासीइ असइ सुरदुगि नरगोचियछक्को  
 असइ असिई । सुरदुगि नरयदुगेण व छक्कए सइ पुणो छासी ।" इति । २ "अट्टत्तरि" इत्यपि मु० ।  
 ३ 'अडसत्तरि मुत्तुं' ॥" इत्यपि मु० । ४ "साहारण" इत्यपि मु० । ५ अडसत्तरि इत्यपि मु० । ६ "अम्मि  
 च" इत्यपि मु० । ७ "मुत्तुं दुणवई छडसी असिई" इत्यपि मु० । ८ "अडसीइ" इत्यपि मु० । ९ "देसि"  
 इत्यपि मु० । १० "अत्तिसे" इत्यपि मु० ।

तित्थविणा उदएसुं अतित्थसंताहँ हुंति केवलिणो ।  
तित्थेण सतित्थाहँ सेसा संता गुणकमेण ॥१६५॥

जीवस्थानेषु सत्तामाह-

दुणवइ अडसी छासी असीइ अडहत्तरी य तेरससु ।  
पन्नत्तरिपज्जंता दस संता सन्निपज्जत्ते ॥१६६॥

जीवस्थानविषयबन्धोदयेषु सत्तामाह-

'बन्धोदइ तेरेवं नवरं उरलोदए छवीसंते ।  
अडसयरि संति बंधे अडवीसि अतित्थि मिच्छविही ॥१६७॥  
छव्वीसंतचएसुं सन्निम्मि वि होइ विगलविहि नवरं ।  
पणसगवीसुदएसुं दुणवइ अडसी अ तेवीसा ॥१६८॥  
अडवीसाई तीसंतबंधि संताहँ निययउदएसुं ।  
अज्जयज्जुयमिच्छविहिणा छलसीमाई उरलि चेव ॥१६९॥  
इगतीसएगबंधे अबंधि उदएसु जइविही होइ ।  
करणं पइ सन्निम्मि वि विहि केवलिणो निरवसेसो ॥१७०॥

गतिषु सत्तामाह-

एगचउ पंच छहिए वीसे उदयम्मि जे तिरियउरला ।  
तेसिं चेवडसयरी तिरिज्जोग्गचईण नवरं तु ॥१७१॥  
छप्पणवीसुदएसुं अडसयरी नत्थिगिदिपज्जस्स ।  
जससाहारणआयवउज्जोएहिं तु मिस्सेसु ॥१७२॥  
दुणवइ अडसी चउगइ <sup>१</sup>असी य छासी य मणुयतिरिएसु ।  
सुरणर तिणवइ नरगे वि गुणवई पंच नरि सेसा ॥१७३॥

गतिविषयबन्धोदयेषु सत्तामाह-

बन्धोदएसु गइविहि णारयतिरिएसु णवरि अडसयरी ।  
<sup>२</sup>जीवे व्व तिरिगईए अडवीसि अतित्थि सन्निविही ॥१७४॥  
तिरि सयलि २६८ विगलि १८ सव्वे <sup>३</sup>पणंसिगा एगवीसछव्वीसे ।  
उरल्लेगिदियमंगा एवं इगवीसचउवीसे ॥१७५॥  
पत्तेयअजसमंगा दो दो छव्वीसपन्नवीसेसु ।  
एवं च पंच <sup>४</sup>सत्तिगतिभिसया 'होति पणतीसा ॥१७६॥

१ "बन्धोदय" इति मु० प्रती । २ "असीइ छासीइ" इत्यपि मु० ३ "जीवव्व" इत्यपि मु० । ४ "पण-  
सगा" इति वा । ५ "संतिग" इत्यपि मु० । ६ "हुंति" इत्यपि मु० ।

मणुएसु वि सन्निविही णवरं अडमयरि नत्थि तह तीसे ।  
 बंधे तिनवइ नवसी इगतीसुदओ नसइ बंधो ॥१७७॥  
 देवाण तीसबंधे संता चउरो वि नियमउदएसुं ।  
 दुनवइ अडसी संता सेसेसुं बंधउदएसुं ॥१७८॥  
 सच्चत्थ वि अडसयरी अन्ने तिरियाण उरलउदएसुं ।  
 पणसगवीसुदएसुं तेवीसचयं नरे विति ॥१७९॥

सामान्येन सर्ववन्धेषु सत्तास्थानान्याह—

तीसंतऽडवीसविणा बंधेसुदएसु एगतीसंते ।  
 इगवीसाइसु दुणवइ अडसी छासी असी ठवसु ॥१८०॥  
 छच्चीसंतुदएसुं अडसयरी २ पंचमी तहा ठवसु ।  
 गुणनवई तह तिणवइ ठवेसु एएसु उदएसु ॥१८१॥  
 गुणतीसबंधगस्स उ चउवीसिगतीसवज्जि सेसेसु ।  
 ३ छच्चउअहिया वीसिगतीसा वज्जिच्चु तीसचए ॥१८२॥  
 इगतीसबंधि उदया गुणतीसा तीस संति तेणवई ।  
 इगबंधिअबंधीणं तीसुदए अट्ट संताणि ॥१८३॥  
 त्तिदुनवई गुणनवई ४ अडसी य असी य तह य गुणसीया ।  
 छप्पणहत्तरि ५ एत्तो अबंधि सेसेसु उदएसु ॥१८४॥  
 वीसछवीसऽडवीसे गुणसी पन्नत्तरी य संताइं ।  
 गुणतीसे इगुणासी छप्पणसयरी ६ असी चेव ॥१८५॥  
 णवउदए संताइं असीइ छावत्तरी य नव चेव ।  
 अट्टुदए ते चेव उ एगुणा तित्थनामेणं ॥१८६॥  
 असीइ - छमयरि दुत्ति उ इगवीसिगतीससत्तवीसाए ।  
 अडवीसे पुण बंधे नवइ ७ अडसी य सच्चत्थ ॥१८७॥  
 इगतीसुदए छासी छासी गुणनवइ ८ तीसुदयअहिया ।  
 गुणनवइ कस्स भअइ मिच्छदिट्ठिस्स नअस्स ॥१८८॥

१ “तेवीसचओ वि मणुएसु ॥” इत्यपि सुद्धितप्रती पाठः । २ “पंचमं” इति सु० प्रती । ३. “छच्चउअहियावी०” इत्यपि सु० । ४ “अडसी[ई]इ असीइ तह य गुणसीइ ॥” इत्यपि सु० । ५. “इत्तो” इत्यपि सु० । ६ “अडसीइ सच्चत्थ” इत्यपि सु० । ७ “त्तिसुवए अहिया ।” इत्यपि सु० ।

गुणनवइ कंहं भन्नइ चियतित्थो 'वेयगे गओ सिच्छं ।  
 वंधेइ नरगजो'ग्गा अडवीसा तीसउदयंमि ॥१८९॥  
 पत्तस्स तस्स नगरे उदइगवीसाइ वंधि गुणतीसा ।  
 अन्तमूहुत्तं तत्तो सतित्थ'तीसा चिणइ सम्मे ॥१९०॥  
 इय सव्वकम्मबंधाइरूवणा लेसओ मए भणिया ।  
 संतंताताणंतं अत्तपुरं इच्छमाणेण ॥१९१॥

१ 'वेयगो' इत्यपि सु० । २ 'ग्गा अडवीसं' इत्यपि सु० । ३ 'तीसं' इत्यपि । 'अमयपुरं'  
 अपि ।

इति सप्ततिकामाष्यं समाप्तम्



## ॥ सप्ततिकासारम् ॥

सिरिवीरजिणं नमिऊण भणियनीसेससत्थसारत्थं ।  
 वुच्छामि सत्तरीए सारमिणं संगहेऊण ॥१॥  
 वंधे उदए संते पण पण पढमंतिमेसु कम्मसेसु ।  
 वेयणियाउयगोए वंधे उदए य एकिककं ॥२॥  
 संतम्मि दोन्नि एककं व हुज्ज अह दंसणस्स आवरणे ।  
 नव छच्चउरो वंधे संतम्मि य उदय चउ पण वा ॥३॥  
 बावीस इक्कीसा सतरस तेरस हवंति नव पंच ।  
 चउ तिग दुग एककं वि य वंधट्टाणाणि दस मोहे ॥४॥  
 मिच्छं कसायमोलस वेओ एको भयं दुगंछा य ।  
 जुयलेणेण दुवीसा इगवीसा मिच्छविगमम्मि ॥५॥  
 अणबंधविगमि सतरस तेरस विगमे अपच्चखाणाणं ।  
 पच्चक्खाणाभावे नव हासाईचउक्कस्स ॥६॥  
 वोच्छेए पणबंधे पुमवेयाविगमओ य चत्तारि ।  
 कोहाई य कसाए केवलए बंधए तत्तो ॥७॥  
 कोहे विगए बंधइ संजलणतिगं दुगं तु माणम्मि  
 मायाविगमे बंधइ अनियट्ठी लोभमेगं तु ॥८॥  
 दस नव अट्ट य सत्त य छ पंच चउ दुन्नि एक मोहुदया ।  
 मिच्छ कसायचउक्कं वेओ जुयलं भयदुगुंछा ॥९॥  
 एए दस अणविगमे भयदुगुंछाण वेगविगमम्मि ।  
 नवउदए दुगविगमे अट्ट य सत्त उ तिगाविगमे ॥१०॥  
 अणरहियकसायतिगं वेओ जुयलं छलोदए एवं ।  
 आइल्लवीयरहिया दुन्नि कसाया य पुमवेओ ॥११॥  
 जुयलेण य पणगुदए चउरुदओ पुणिकयम्मि संजलणे ।  
 वेएण य जुयलम्मि य दुगोदओ जुयलविगमम्मि ॥१२॥  
 वेयस्स पुणो विगमे संजलणकसायमेगमुदयम्मि ।  
 ह्य दिसिमिणं भणिया एगेगपगारओ उदया ॥१३॥  
 अट्टग-सत्तय-छ-च्चउ-तिग-दुग-इक्काहिया भवे वीसा ।  
 तेरस बारिक्कारस पण चउ ति दु इक्क मोहस्स ॥१४॥

संतट्टाणा पनरस अट्टवीसा ताव इत्थ सुपसिद्धा ।  
 सम्मत्ते उच्चलिए सगवीसा होइ संतम्मि ॥१५॥  
 मीसम्मि उ छव्वीसा अणाइमिच्छस्स अहविमो नेया ।  
 अणुवंधीणुव्वल्लणे चउवीसा मिच्छपुंजम्मि ॥१६॥  
 खवियंमी तेवीसा वावीसा मिस्सपुंजखवणम्मि ।  
 सम्मत्तपुंजखवणे इगुवीसा खवगसम्मस्स ॥१७॥  
 अट्टकसाए खविए तेरस चारस नपुंसवेयखए ।  
 थिवेयखएक्कारस खीणे छक्कम्मि पंचेव ॥१८॥  
 पुमवेयखए चउरो तिन्नि उ कोवम्मि दुन्नि माणम्मि ।  
 मायाखयम्मि एक्को इय भणियं सयलमोहणियं ॥१९॥  
 तेवीस पन्नवीसा छव्वीसा अट्टवीस इगुतीसा ।  
 तीसेगतीसमेगं वंधट्टाणाणि नामस्स ॥२०॥  
 तेवीसा पणवीसा छन्नवहिय वीस तीस एयाणि ।  
 मिच्छदिट्ठी वंधइ तिरियगईए निमित्ताहं ॥२१॥  
 एगिंदियपाउग्गाणि वंधठाणाणि तिन्नि पढमाणि ।  
 तत्थ च त्तेयगक्कम्मगवक्काहचउक्कयं चैव ॥२२॥  
 अगुरुलहू उवघायं निम्माणं नव इमाउ धुवबंधा ।  
 तिरियगई एगिंदियजाई ओरालियं हुंढं ॥२३॥  
 तिरियाणुपुव्विथावरवायरसुहमाण दुन्हमेगयरं ।  
 अप्पञ्जत्तगपत्तेयइयरमेगियरथिरगं च ॥२४॥  
 असुमं दूमगअणइअजसधुवबंधिणीहि सुह एसा ।  
 अप्पञ्जत्तगएगिंदियाण पाउग्गतेवीसा ॥२५॥  
 परघाउस्साससमा पञ्जत्तेगिंदिजोग्गपणवीसा ।  
 आयावुञ्जोए वा तज्जोगा चैव छव्वीसा ॥२६॥  
 पणवीसा गुणतीसा तीसा वेइंदियाण पाउग्गा ।  
 तेवीसाए पुव्वोइयाए खित्तम्मि सेवट्ठे ॥२७॥  
 अंगोवंगे य तथा अप्पञ्जत्तस्स जोग्गपणवीसा ।  
 नवरि तसं वेइंदियजाई च्चिय इत्थ भणियव्वा ॥२८॥  
 परघाउस्सासअणिड्ढगमणदूसरसमेयगुचीसा ।

नवरं एसा पज्जत्तगस्स जोग्गा मुण्येयव्वा ॥२९॥  
 एवं चिय तीसा वि ह्नु नवरं उज्जोयबंधगस्सेसा ।  
 एवं जा चउरिंदी बंधतिगं होइ एयं पि ॥३०॥  
 पंचिदियतिरियाणं मणुयाणं तह य होइ पाउग्गं ।  
 एयं चिय बंधतिगं संघयणाईहि नाणत्तं ॥३१॥  
 अन्नं चुज्जोएणं तीसा न ह्नु होइ मणुयपाउग्गा ।  
 किं तु सुरा निरया वि य तित्थयरसमं कुणंति तथं ॥३२॥  
 अहवीसे गुणतीसा तीसा इगतीसमेव एयाणि ।  
 देवाणं पाउग्गाणि बंधठाणाणि चत्तारि ॥३३॥  
 देवगई पंचिदियजाई वेउच्चियं च चउरंसं ।  
 अंगोवंगं च तहा देवणुपुच्ची य नायव्वा ॥३४॥  
 परघाउत्सासपसत्थगमणत्तसचायरं च पज्जत्तं ।  
 पत्तेयं च थिराथिरसुभासुभाणं च एगयरं ॥३५॥  
 सुभगं हुस्सरमेव य आहज्जजसाण दुन्हमेगयरं ।  
 धुवबंधिणीण नवगम्मि मीलिए होइ अहवीसा ॥३६॥  
 तित्थयरेणुगतीसा आहारदुणेण होइ पुण तीसा ।  
 तित्थयराहारदुणे य मीलिए हवइ इगतीसा ॥३७॥  
 नेइइयाणं जोग्गा एकच्चिय वज्जए उ अहवीसा ।  
 साहे सुराण भणिया नाणत्तं निरयसदाई ॥३८॥  
 वीसा एकग चउ पण छसत्त अट्ट नवसमहिया वीसा ।  
 तीसेगतीस नव अट्ट उदयठाणाणि बारस उ ॥३९॥  
 सेणउई बाणउई नवट्टछहिं समहिया असी असिई ।  
 नवअट्टछपअत्तरि नवट्ट बारस वि संताणि ॥४०॥  
 ओहेणं भणियाहं जप्पाउग्गाणि बंधठाणाणि ।  
 तह उदसत्ताणिहिं वौच्छं चउगहविसेसेण ॥४१॥  
 एगुत्तीसा तीसा वि य बंधठाणाणि दुक्खि निरयाणं ।  
 इगवीस पन्नवीसा सत्तहनवाहिया वीसा ॥४२॥

उदयट्टाणाणि इमाणि पंच संताणि हुंति पुण त्तिन्नि ।  
 बाणउई य नवासी अट्टासी तत्थ बंधदुगं ॥४३॥  
 जह पुच्चिं निदिट्ठं पंचिदियतिरियमणुयपाउगं ।  
 तह इहइं विन्नेयं उदयट्टाणाणि पुण वुच्छं ॥४४॥  
 तेयइगं कम्मइगं वन्नाइचउक्कअगुरुलहुयं च ।  
 थिरमथिरं सुभमसुमं निम्मेण धुवोदया एए ॥४५॥  
 निरयगई पंचिदियजाई निरयाणुपुच्चिं तसनाभं ।  
 बायर तह पज्जत्तग दूमग अणइज्जमजसं च ॥४६॥  
 बारस धुवोदयाओ इय इगवीसा भवंतरालम्मि ।  
 हुंइं वेउच्चिदुगं उवघायं तह य पत्तेयं ॥४७॥  
 एयाहिं पणवीसा सरीरपत्तस्स आणुपुच्चिं विणा ।  
 तत्तो सरीरपज्जत्तगस्स परघायगमणा य ॥४८॥  
 पक्खित्ते सगवीसा ऊसासे अट्टवीसं इगुतीसा ।  
 सरसहिया अह संते बाणउया ताणि वोच्छामि ॥४९॥  
 गइचउगजाइपणगं पंच सरीराणि पंच संघाया ।  
 पंचेव बंधणाइं छस्संठाणाणि तह चेव ॥५०॥  
 अंगोवंगण तिगं छस्संधयणाणि वन्नगंधरसा ।  
 फासा सव्वे वीसं विहायुदु चउरो य अणुपुच्चिं ॥५१॥  
 अगुरुलह उवघायं परघाऊसासआयवुज्जोयं ।  
 तसबायरपज्जत्तं पत्तोयथिरं सुभं सुभगं ॥५२॥  
 सुसरआइज्जजसं थावरदसगं तसाइपडिक्खो ।  
 निम्माणेणं सहिया बाणउई नामसंतम्मि ॥५३॥  
 आहारगं सरीरं बंधणसंघायअंगुवंगं च ।  
 एएहि चउहि रहिया तित्थयरसमा नवासी य ॥५४॥  
 तित्थयरनामरहिया अट्टासी अवसिया य निरयगई ।  
 इत्तो तिरियगईए वोच्छं बुंधुदयसंताणि ॥५५॥  
 तेवीस पन्नवीसा छवीसा इगुणतीस तीसा य ।  
 एयाणि पंच एगिदियाणं बंधस्स ठाणाणि ॥५६॥

नवरं एसा पज्जत्तगस्स जोग्गा सुणेयव्वा ॥२९॥  
 एवं चिय तीसा वि ह्नु नवरं उज्जोयबंधगस्सेसा ।  
 एवं जा चउरिंदी बंधतिगं होइ एयं पि ॥३०॥  
 पंचिदियतिरियाणं मणुयाणं तह य होइ पाउग्गं ।  
 एयं चिय बंधतिगं संघयणाईहि नाणत्तं ॥३१॥  
 अन्नं चुज्जोएणं तीसा न ह्नु होइ मणुयपाउग्गा ।  
 किं तु सुरा निरया वि य तित्थयरसमं कुणति तयं ॥३२॥  
 अहवीसे गुणतीसा तीसा इगतीसमेव एयाणि ।  
 देवाणं पाउग्गाणि बंधठाणाणि चत्तारि ॥३३॥  
 देवगई पंचिदियजाई वेउच्चियं च चउरंसं ।  
 अंगोवंगं च तहा देवणुपुव्वी य नायव्वा ॥३४॥  
 परघाउत्सासपसत्थगमणत्तसवायरं च पज्जत्तं ।  
 पत्तेयं च थिराथिरसुभासुमाणं च एगयरं ॥३५॥  
 सुभगं रुस्सरमेव य आइज्जजसाण दुन्हमेगयरं ।  
 धुवबंधिणीण नवगम्मि मीलिए होइ अहवीसा ॥३६॥  
 'तित्थयरेणुगतीसा आहारदुगेण होइ पुण तीसा ।  
 तित्थयराहारदुगे य मीलिए हवइ इगतीसा ॥३७॥  
 नेइइयाणं जोग्गा 'एक्कच्चिय वज्झए उ अहवीसा ।  
 साहे सुराण भणिया नाणत्तं निरयसदाई ॥३८॥  
 वीसा एक्कग चउ पण छ सत्त अट्ट नवसमहिया वीसा ।  
 तीसेगतीस नव अट्ट उदयठाणाणि बारस उ ॥३९॥  
 तेणउई बाणउई नवट्टछहिं समहिया असी असिई ।  
 नवअट्टछपन्नत्तरि नवट्ट बारस वि संताणि ॥४०॥  
 ओहेणं भणियाइं जप्पाउग्गाणि बंधठाणाणि ।  
 तह उदसत्ताणिहिं वोच्छं चउगइविसेसेण ॥४१॥  
 एगुत्तीसा तीसा वि य बंधठाणाणि दुम्भि निरयाणं ।  
 इगवीस पन्नवीसा सत्तहनवाहिया वीसा ॥४२॥

उदयद्वाणाणि इमाणि पंच संताणि हुंति पुण तिन्नि ।  
 चाणउई य नवासी अढासी तत्थ बंधदुगं ॥४३॥  
 जह पुन्वि निदिह्वं पंचिदियतिरियमणुयपाउगं ।  
 तह इहइं विन्नेयं उदयद्वाणाणि पुण वुच्छं ॥४४॥  
 तेयइगं कम्मइगं वन्नाइचउक्कअगुरुलहुयं च ।  
 थिरमथिरं सुममसुमं निम्मेण धुवोदया एए ॥४५॥  
 निरयगई पंचिदियजाई निरयाणुपुन्वि तसनामं ।  
 वायर तह पज्जत्तग दूमग अणइज्जमजसं च ॥४६॥  
 वारस धुवोदयाओ इय इगवीसा भवंतरालम्मि ।  
 हुंढं वेउन्विदुगं उवघायं तह य पत्तेयं ॥४७॥  
 एयाहिं पणवीसा सरीरपत्तस्स आणुपुन्वि विणा ।  
 तत्तो सरीरपज्जत्तगस्स परघायगमणा य ॥४८॥  
 पक्खित्ते सगवीसा ऊसासे अट्टवीसं इगुतीसा ।  
 सरसहिया अह संते चाणउया ताणि वोच्छामि ॥४९॥  
 गइचउगजाइपणगं पंच सरीराणि पंच संघाया ।  
 पंचेव बंधणाइं छस्संठाणाणि तह चेव । ५०॥  
 अंगोवंगाण तिगं छस्संघयणाणि वन्नगंधरसा ।  
 फासा सन्वे वीसं विहायुदु चउरो य अणुपुन्वी ॥५१॥  
 अगुरुलहु उवघायं परघाऊसासआयवुज्जोयं ।  
 तसवायरपज्जचं पत्तोयथिरं सुमं सुमगं ॥५२॥  
 सुसरआइज्जजसं थावरदसगं तसाइपडिक्खो ।  
 निम्माणेणं सहिया चाणउई नामसंतम्मि ॥५३॥  
 आहारगं सरीरं बंधणसंघायअंगुवंगं च ।  
 एएहि चउहि रहिया तित्थयरसमा नवासी य ॥५४॥  
 तित्थयरनामरहिया अढासी अवसिया य निरयगई ।  
 इत्तो तिरियगईए वोच्छं वुं धुदयसंताणि ॥५५॥  
 तेवीस पञ्चवीसा छन्वीसा इगुणतीस तीसा य ।  
 एयाणि पंच एगिंदियाण बंधस्स ठाणाणि ॥५६॥

इगवीसा चउवीसा पंचगछगसत्तसमहिया वीसा ।  
 उदयट्टाणाणि इमाणि पंच वाणउय अट्टासी ॥५७॥  
 छलसी असी य अट्टत्तरी य एयाणि पंच संताणि ।  
 त्तिरिमणुपाउग्गाइं बंधट्टाणाइं जहपुव्विं ॥५८॥  
 उदयट्टाणिगवीसा जहपुव्वं नारयाण निट्टिट्टा ।  
 नवरिंदिदियजाईपमुहं नाणत्तमिह नेयं ॥५९॥  
 तत्तो सरीरपत्ते ओरालसरीरहुंडउवघायं ।  
 साहारणपत्तेयाणमेगा अणुपुव्विविगमम्मि ॥६०॥  
 चउवीसुदओ तत्तो सरीरपज्जत्तगस्स परघाए ।  
 खित्तम्मि पन्नवीसा ऊसासुदयम्मि छव्वीसा ॥६१॥  
 आयावुज्जोए वा खित्ते सगवीस संतठाणेसु ।  
 वाणउई अट्टासी जह निरयाणं तहेहं पि ॥६२॥  
 देवदुगे उव्वलिए तत्तो अट्टत्तरी य संतम्मि ।  
 तेवीसपन्नवीसा छन्नवहियवीसतीसा य ॥६३॥  
 विगलिंदियाण तिण्हं पि बंधठाणाणि पंच एयाणि ।  
 इगछक्कगअडनवहियवीसा तीसा य इगतीसा ॥६४॥  
 उदयट्टाणाणि इमाणि छच्च एग्गिंदियाण जह भणिया ।  
 नवरं इगवीसाओ अणुपुव्वि विणा सरीरत्थे ॥६५॥  
 ओरालदुगे हुंडे उवघाए तह य चेव सेवट्टे ।  
 पत्तेयम्मि य खित्ते छव्वीसा होइ उदयम्मि ॥६६॥  
 परघाए गमणम्मि य अट्टावीसा तओ य उस्सासे ।  
 इगुतीसा तीसा उण सरम्मि उज्जोइ इगतीसा ॥६७॥  
 वाणउई अट्टासी छलसी य असी य अट्टसयरी य ।  
 संताग पंच एग्गिंदियाण जह पुव्वभणियाणि ॥६८॥  
 तिगपंचगछगअट्टगनवाहिया वीस तह य तीसा य ।  
 छ इमाणि बंधठाणाणि हुंति पंचिदित्तिरियाणं ॥६९॥  
 एयाणि जहा विगलिंदियाण पाएण नवरि इत्थहिया ।  
 अट्टावीसा नेया सुरनेरइयाण पाउग्गा ॥७०॥  
 एक्कगछक्कगअट्टगनवाहिया वीस तीस इगवीसा ।

उदयद्वाणा छच्चिय पागयपंचिदितिरियाणं ॥७१॥  
 एयाणि अह विगलिंदियाण नाणत्तु जाइमाईहिं ।  
 पंचगसत्तगअट्टगनवाहिया वीस तीसा य ॥७॥  
 वेउच्चियतिरियाणं उदयद्वाणाणि पंच एयाणि ।  
 अस्संधयणी वेउच्चियत्ति नो एगहीगति ॥७३॥  
 इगपंचछसत्तट्टगनवाहिया वीस तीस इगतीसा ।  
 अट्टुदया सामन्नेग हुंति पंचिदितिरियाणं ॥७४॥  
 एएसिं संताण वि पंच जहेगिंदियाण भणियाणि ।  
 सम्मत्ता तिरियगई इत्तो बुच्छामि मणुयगई ॥७५॥  
 तत्थ मणुयाण अट्ट वि बंधद्वाणाणि पुच्चभाणैयाणि ।  
 चउवीसविरहियाहं एकारस उदयठाणाणि ॥७६॥  
 अट्टत्तरिवज्जाहं एकारस हुंति संतठाणाणि ।  
 सामन्नमिणं बुच्छं विसेसओ उदयसंताणि ॥७७॥  
 इगवीसा छव्वीसा अहवीसा एणतीस तीसा य ।  
 पागयमणुयाण इमाणि उदयठाणाणि पंचेव ॥७८॥  
 पंचगसत्तगअट्टगनवाहिया वीस तीस जहपुच्चि ।  
 पंचिदियतिरियजुग्गा तहित्थ वेउच्चिमणुयाणं ॥७९॥  
 वीसेगवीस छस्सत्तअट्टनवअहिय वीस तीसा य ।  
 इगतीस नवट्ट भवे दस उदया केवल्लिजिणारणं ॥८०॥  
 मणुयगई पंचिदियजाई तसबायरं च पज्जत्तं ।  
 समगआइज्जजसं धुवोदएहिं समा वीसा ॥८१॥  
 सामन्नकेवल्लिस्स य इमा समुग्घायवट्टमाणस्स ।  
 तित्थयरस्सिगवीसा छव्वीसा देहपत्तस्स ॥८२॥  
 केवल्लिणो पक्खित्ते ओरालदुगोवघायपत्तेए ।  
 संघयणे संठाणे सत्तावीसा य तित्थयरे ॥८३॥  
 छव्वीसाए खित्ते परघाऊसासगइसररेगयरे ।  
 ओरालकायजोगे तीसा सामन्नकेवल्लिणो ॥८४॥  
 सरऊसासनरोहे तीसा उण केवल्लिस्स अहवीसा ।  
 ऊसासे अनिरुद्धे सरे निरुद्धम्मि इगुतीसा ॥८५॥





# ॥ सार्धशतकनामप्रकरणम् ॥

( अपरनाम-सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धारप्रकरणम् )

सयलंतरारिर्वीरं	वंदिय	वरनाणलोयणं	वीरं	।
'वोच्छ्रं	जहासुयमहं	कम्माइवियारसारलवं		॥१॥
कीरह जिण	हेऊहिं	पयइठिइरसपएसओ	जं तं	।
मुलुत्तरइअडवन्नसयपमेयं	भवे	कम्मं		॥२॥
दंसणनाणावरणंतरायमोहाउगोयवेयणियं				।
नामं च नव-पण-पण-उडुवीस-चउ-दु-दु-वियालविहं				॥३॥
नयणेपरोहिकेवलदंसणआवरणयं	भवे	चउहा		।
निहापयलाहिं	छहा	निहाइदुरुत्तथीणद्धी		॥४॥
नाणावरणं	मइसुयओहिमणोनाणकेवलवरणं			।
विग्घं दाणे	लामे	मोगुवमोगेसु	विरए य	॥५॥
सोलस कसाय नव नोकसाय	दंसणतिगं	ति मोहणियं		।
नरयतिरिनरसुराळ	नीउच्चं	सायमस्सायं		॥६॥
गइजाइत्तणुउवंगा	बंधणसंधायणाणि	संधयणा		।
संठाण 'वभगंधं	रसफासणुपून्विविहगगई			॥७॥
पिण्डपयइत्ति	चउदस	परघाउज्जोय	आयवुस्सासं	।
अगुरुलहुतित्थनिमिणोवघायमिइ	अडु	पत्तेया		॥८॥
तसबायरपज्जत्तं	पत्तेयथिरं	सुमं च	सुमगं च	।
सुसरा'एज्जजसं	तसदसगं	थावरदसं	तु इयं	॥९॥
थावरसुहुमअपज्जं	साहारणमथिरमसुमदुभगाणि			।
दूसरणाएज्जावसं'मिइ	नामे	सेयरा	वीसं	॥१०॥
तसचउ थिरछक्कं	अथिरछक्क	सुहुमतिग	थावरचउक्कं	।

१ "वुच्छं" इत्यपि । २ "वण्णगंधरसफास अणुं" इत्यपि । ३ "इक्कं" इत्यपि । ४ "मियं" इत्यपि ।

सुभगतिगाइविभासा पयडीण तयाइसंखार्हि ॥११॥  
 गइयाईण य कमसो चउ १ पण २ पण ३ ति ४ पण ५ पंच ६ छ ७ छक्कं ८ ।  
 पण ९ दुग १ ० पण १ १ ऽट्ट २ चउ १ ३ दुग १ ४ मिय उत्तरभेय पणमट्टी ॥१२॥  
 १ नरयतिरिनरसुरगई २ इगिवियतियचउपणिंदिजाईओ ।  
 ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइगा ॥१३॥  
 पढमत्तितणुणुवंगा ३ वंधणसंधायणा य तणुनामा ।  
 सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहऽट्ठिनिचओ त्ति ॥१४॥  
 छद्धा संघयणं वज्जरिसहनाराय १ वज्जनारायं ।  
 नाराय ३ मद्धनाराय ४ कीलिया ५ तह य छेवट्टं ६ ॥१५॥  
 समचउरंसं नग्गोह साइखुज्जाणि वामणं हुंडं ।  
 संठाणा वन्ना किण्हनीललोहियहलिद्दसिया ॥१६॥  
 सुरभिदुरभी रसा ७ पुण तित्तकडुकसायअं विला मद्दुरो ।  
 फासा गुरुलहुमिउखर सीउण्हसिणिद्ध रुक्खट्ठा ॥१७॥  
 चउह गइव्वणुपुव्वी दुविहा य सुहासुहा २ विहायगई ।  
 गइअणुपुव्वी उ दुगं तिगं तु तं चिय नियाउजुयं ॥१८॥  
 इय तेणउई संते वंधणपन्नरसणेण तिसयं वा ।  
 ३ वन्नाइभेयवंधणसंधाय विणा उ सत्तट्ठी ॥१९॥  
 सा वंधुदए वंधणसंधाया नियतणुगगहणगहिया ।  
 ४ वन्नाइविगप्पा वि हु न य वंधे सम्ममीसाइं ॥२०॥  
 वेउव्वाहारोरालियाण सगतेयकम्मजुत्ताणं ।  
 नवबंधणाणि इयरदुसहियाणं तिन्नि तेसिं च ॥२१॥  
 नीलकसिणं दुगंधं तित्तं कडुयं गुरुं खरं रुक्खं ।  
 सीयं च असुभनवगं एकारसगं सुमं सेसं ॥२२॥  
 धुवबंधोदय ५ संता सन्वेयरघाडसुमअपरियत्ता ।  
 छद्धावि सपडिवक्खा चउहविवागा च पयडीओ ॥२३॥  
 सीयालीसं धुवबंधिणीओ ६ तेवत्तरी अधुवबंधा ।  
 सत्तावीस धुवुदया अधुवुदया हुति पणनउई ॥२४॥

१ "निरय०" इत्यपि । २ "इगिवियतित्तुरपणिंदि" इत्यपि । ३ "बंधन०" इत्यपि । ४ "पण" इत्यपि । ५ "य विगहगई" इत्यपि । ६-७ 'वण्णाइ' इत्यपि । ८ "सत्ता" इत्यपि ।

ध्रुवसंता तीससयं अट्ठासीसा य अध्रुवमंता य ।  
बायालीस सुमाओ वासीई हुंति अमुभाओ ॥२५॥  
पणसत्तरि पयहीओ अघाइया घाइयाउ पणयाला ।  
पणवीस देसघाई सव्वे घाईउ वीसं तु ॥२६॥  
तेणउह परावत्ता अपरावत्ताउ अगुणतीसं तु ।  
पुग्गलविवागिणीओ छत्तीमं हुंति पयहीओ ॥२७॥  
चत्तारि मवविवागा खित्तविवागाउ हुंति चत्तारि ।  
अट्ठुत्तरि जीवविवागिणीउ पयहीउ नायव्वा ॥२८॥  
ध्रुवबंधी भयकुच्छा कसायमिच्छंतरायआचरणा ।  
वन्नचउतेयकम्मागुरुलह्हुनिमिणोवघाया य ॥२४॥२६॥  
उरलविउव्वाहारगदुगाणि ६ गइ ४ जाइ ५ खगइ २ अणुपुच्ची ४ ।  
संघयणागिइ ६ तसवीस २० सासत्तिथायबुज्जोयं ॥३०॥  
परघायं वेयणिया२ऽऽउ४गोय२ हासाइदुजुयलतिवेयं ।  
इय तेवत्तरि पयही उ अध्रुवबंधा विणिद्धिट्ठा ॥३१॥  
बंधंति न इगिविगला वेउव्वियछकदेवनर'याऊ ।  
तिरिया तित्थाहारं गइत्तसा नरतिगुच्चं च ॥२५॥३२॥  
नरयसुरसुद्धुमविगलत्तिगाणि आहारदुगविउव्विदुगं ।  
'बंधहि' न सुरा सायावथावरेग्गिदि नेरइया ॥२६॥३३॥  
तिरिनरयतिगुज्जोयाण सचउपण्लं तिसट्ठमयरसयं ।  
'इगिविगलजाइआयवथावर'चउसुं तु पणसीयं ॥२७॥३४॥  
वत्तीसं सासाणंत बंधसेस 'पणुवीसपयहीणं ।  
नरभवसहियं परमो पणिंदिसु अबंधकालो सिं ॥२८॥३५॥  
थीणतिगं दुमगतिगं ३ 'अपढमसंठाण ५ खगइ १ संघयणा ५ ।  
अण ४ नीय १ नपुंसित्थी १ मिच्छं ति य सेसपणुवीसा ॥२९॥३६॥  
वत्तीसं विजयाइसु गेविज्जाईसु तेसु तेसट्ठं ।  
तमपुढविज्जुएसु गयस्त तेसु पणसीय 'मयरसयं ॥३०॥३७॥  
समयादसंखकालं जा परमो नीयतिरियदुगबंधो ।

१ "०याडं" इत्यपि । २ "बंधहि" इत्यपि । ३ "इग०" इत्यपि । ४ "चउगेसु पणसीयं" इत्यपि ।  
५ "पणुवीस" इत्यपि । २ "अपढमसंघयण ५ खगइ १ संठाणा ६ ।" इत्यपि । ७ "०सुवहि०" इत्यपि ।

सुरदुग<sup>१</sup>वेउञ्चिदुगे तिपल्लमाउसु मुहुत्ततो ॥३१॥३८॥  
 तसचउपणिदिपरघाउस्सासेसु पणसीयमुदहिसयं ।  
 वत्तीसं सुभगतिगुच्चपुरिससुभखगइ चउरंसे ॥३२॥४६॥  
 उरत्ते असंख<sup>२</sup>पोगलपरियट्टा साय पुञ्चकोइणा ।  
 तेत्तीसयरा नरदुग<sup>३</sup>तित्थुसभउरालुवंगेसु ॥३३॥४०॥  
 थिर१सुभ१जस१थावरदस१असुभागिइ५खगइ१जाइ४ संघयणा ।  
 निरया२हारदुगायव १ असाय १ अपुमि१त्थि १ दुच्चुयलुज्जोयं ॥४१॥  
 समयादंतमुहुत्तं सेसाणं १ तह<sup>४</sup>जहन्नबंधो वि ।  
 तित्थाउसु अंतमुहू धुवबंधीणं तु भंगतिगं ॥३४॥४२॥  
 निम्मेणथिराथिरतेयकम्मवन्नाइअगुरुसुहमसुहं ।  
 नाणंतरायदसगं दंसणचउ मिच्छ धुवउदया २७॥३५॥४३॥  
 उदओ धुवोदयाणं अणाइणंतो अणाइसंतो य ।  
 अधुवाण साइसंतो मिच्छस्स उ भंगतिगमेयं ॥३६॥४४॥  
 पणनउईयममिच्छो मोहो निहाउगोयवेयणीयं ।  
 गइजाइतित्थुवंगं संघयणखुपुच्चिसंठाणा ॥४५॥  
 खगइदुगं पत्तेया अधुवुदया अगुरुनिमिणपरिहीणा ।  
 पयहीणं तसुवीसं थिराथिरसुभासुभविहीणं ॥४६॥दारं ।  
 वेउञ्चेकारससम्ममीसतित्थुच्चमणुदुगाउचऊ ।  
 आहारसत्तअधुवा धुवसत्ता सेस तीससयं ॥३७॥४७॥  
 मोहो असम्ममीसो विग्घावरणाणि नीयवेयणियं ।  
 संघयणागिइतसवन्नवीस पणजाइखगइदुगं ॥४८॥  
 तिरियदुग<sup>२</sup>तेयसत्तुअरलसत्तगा ७ तित्थिहीणपत्तेया ।  
 अट्टावन्नसयाओ धुवसत्ता एय तीससयं ॥४९॥  
 तिसु मिच्छत्तं नियमा अट्टसु गुणठाणएसु भयणिज्जं ।  
 सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं दससु भज्जं ॥३८॥५०॥  
 सासणमीसे मीसं संतं नियमेण नवसु भइयव्वं ।  
 नियमा मिच्छासासाण पढमकसाया नवसु भज्जा ॥५१॥

१ “उच्चिदुगे” इत्यपि । २ “पुगल” इत्यपि । ३ “वत्तीस” इत्यपि । ४ “जहण” इत्यपि । ५ “तित्थुसह” इत्यपि । ६ “अहण” इत्यपि ।

सञ्चगुणेसाहारं सासणमिस्सरहिएसु वा तित्थं ।  
 नोभयसंते मिच्छो अंतमुद्दुत्तं भवे तित्थो ॥४०॥ ॥५२॥ दारं ।३।  
 केवलियनाणदंसणआवरणं चारसाइमकसाया ।  
 मिच्छत्त निहपणगं इय वीसं सञ्चघाई उ ॥४१॥ ५३ ॥  
 सम्मत्तनाणदंसणचरित्तघाइत्तणाउ घाईओ ।  
 तस्सेसदेसघाइत्तणाउ पुण देसघाईओ ॥४२॥५४॥  
 संजलणनोकसाया चउनाणतिदंसणावरणच्चिग्घा ।  
 पणुवीस देसघाई सेस अघाई सरूवेण ॥४३॥५५॥ दारं ।४।  
 नरतिरिसुराउ<sup>३</sup>उच्चं सायं परघाय<sup>३</sup>आयच्चुज्जोयं ।  
 तित्थुस्सासनिमाणं पणिंदिवइरुसहचउरंसं ॥४४॥५६॥  
 तसदसचउवच्चाई सुरमणुदुगपंच तणुउवंगतिगं ।  
 अगुरु<sup>५</sup>लहुपढमखगई वायालीसं ति सुहपयही ॥४५॥५७॥  
 थावरदसचउजाई अपढमसंठाणखगइसंघयणा ।  
 तिरिनरयदुगुवघायं वञ्चचऊ नामचउतीसा ॥४६॥५८॥  
 नरयाउनीय<sup>५</sup>अस्साय घाइपणयालसहिय वासीई ।  
 असुहपयहीउ दोसु वि वञ्चाइचउकगहणेणं ॥४७॥५९॥ दारं ।  
 निहाउ ४ गोय २ वेयण २ कसाय १६ हासाइदुज्जुयल ४ तिवेयं ३ ।  
 अणुपुच्चि ४ तितणु ३ वंगा ३ गिइ ६ गइ ४ संघयण ६ जाईउ ५ ॥६०॥  
 तसवीसु २० ज्ञोयायव १ खगई २ परवत्तिणी उ इगनउई ।  
 पडिवक्खुदयं वंधं व रुंधिउ<sup>५</sup> जा उ वट्टंति ॥६१॥  
 नाणंतरायदंसणचउक्क<sup>५</sup>परिघायतित्थमुस्सासं ।  
 नामधुवंधिनवमिच्छ भयदुगंछा अपरियत्ता ॥४८॥६२॥ दारं ।  
 संठाणा संघयणा सरीरुवंगाणि आयच्चुज्जोया ।  
 नामधुवोदयसाहारणियरउवघायपरघाया ॥४९॥६३॥  
 उदइयमावा<sup>५</sup>पोग्गलविवागिणो आउ भवविवागीणि ।  
 खिचविवागणुपुच्ची जीवविवागी उ सेसाउ ॥५०॥६४॥

१“०घरयो” इत्यपि । २ “मुच्चं” इत्यपि । ३“०मायवु०” इत्यपि । ४ “०ल्लु०” इत्यपि । ५“०मस्साय” इत्यपि । ६“परघाय” इत्यपि । ७“पुग्गल०” इत्यपि ।

नाणंतरायटमगं १० दंमणनव ६ मोहणीयअड्वीमं ।  
 वेयणिय२गोयजुयला जीवविवागीउ नामे उ ॥६५॥  
 सत्त्वीमं गइ४जाइ५खगइ२भेयाउ तिन्यमुस्सामं ।  
 सैयरपत्तेयतिगं ३ मुत्तुं पडिक्कचउदसगं ॥६६॥  
 भावा छच्चोवसमिय १ खइय २ खओवसम ३ उटय ४ परिणामा ५ ।  
 दु १ नव २ ड्ढारि ३ गवीसा ४ तिगभेया सन्निवाओ य । ५१॥६७॥  
 सम्मचरणाणि पढमे वीए वरणाणदंमणचरित्ता ।  
 तह दाणलाभभोगोवभोगविरयाणि सम्मं च ॥६८॥६८॥  
 चउनाण-ऽन्नाणतिगं दंमणतिग पंच दाणलद्धीओ ।  
 सम्मत्तं चार्त्तिं च मंजमामंजमो तइए ॥६९॥६९॥  
 चउगइ चउकसाया लिंगतिगं लेसछकमन्नाणं ।  
 मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमो चउत्थभावम्मि ॥७०॥७०॥  
 पंचमगम्मि य भावे जीवाभव्वत्तभव्वयाईणि ।  
 पंचणह वि भावाणं भेया एमेव तेवन्ना ॥७१॥७१॥  
 उदइयखाओवसमियपरिणामेहिं चउरो गइचउक्के ।  
 खइय'जुएहिं व चउरो तदभावे उवसमजुएहिं ॥७२॥७२॥  
 'एक्केक्को उवममसेटिसिद्धकेवलिसु एवमविरुद्धा ।  
 पन्नरस सन्निवाइयमेया वीसं असंभविणो ॥७३॥७३॥  
 दुगजोगो सिद्धाणं केवलिसंसारियाण तिगजोगो ।  
 चउजोगजुयं चउसु वि गईसु मणुयाण पणजोगो ॥७४॥७४॥  
 मोहस्सेवोवसमो खाओवसमो चउणह घाईर्ण ।  
 उदयक्खयपरिणामा अट्टन्ह वि 'होति कम्मार्ण ॥७५॥७५॥  
 सम्माइचउसु तिगचउभावा चउ पणुवसामगुवसंते ।  
 चउ स्त्रीणापुब्बे तिन्नि सेसगुणठाणमेगजिए ॥७६॥७६॥  
 धम्माधम्मनभा तिन्नि दव्वदेसप्पएसओ तिविहा ।  
 गइठाणवगाइगुणा अरुविणो कालसमओ य ॥७७॥७७॥  
 सो वत्तणाइलिंगो रूवि अजीवा उ होति मे चउरो ।

खंधा देसपएसा केवलअणवो य ते य पुणो ॥६२॥७८॥  
 चन्नाइगुणा वंधाइकारणं इय अजीवचउदसगं ।  
 सन्वेवि हु परिणामे भावे खंधा उदइए वि ॥६३॥७९॥  
 मोहे कोडाकोडीउ सत्तरी वीस नामगोयाणं ।  
 तीसयराण चउण्हं तेतीसयरा उ आउस्स ॥६४॥८०॥  
 मोत्तुमकसायहस्सा ठिइ वेयणियस्स वारस मुहुत्ता ।  
 अट्टु नामगोयाण सेसयाणं मुहुत्ततो ॥६५॥८१॥  
 तीसं कोडाकोडी असायआवरणअंतरायाणं ।  
 मिच्छे सत्तरिमित्थीमणुदुगसायाण पन्नरस ॥६६॥८२॥  
 संघयणे संठाणे पढमे दस उवरिमेसु दुगवुड्डी ।  
 चालीस कसाएसु अट्टारस मुहुमविगलतिगे ॥६७॥८३॥  
 दस दस सुक्किलमहुराण सुरभिनिद्धण्हमिउल्लहूणं च ।  
 अट्टाइज्जपवुट्टा ते हालिहं विलाईणं ॥६८॥८४॥  
 हासरइपुरिसउच्चे सुमखगइथिराइछकदेवदुगे ।  
 दस सेसाणं वीसा एवइयावाहहवाससया ॥६९॥८५॥  
 तसचउतिरिनरयदुगा तेयविउच्चुरलसत्तगं हुंढं ।  
 पढमंतजाइक्खगइ कुवन्ननवगं अकहुन्मीलं ॥७०॥८६॥  
 पचेया (य) अत्तिथा थावरअथिराइछकछेवट्टं ।  
 सोगारइमयक्खुच्छा नपुनीए (त्ति) इगसट्टि वीसिका ॥७१॥८७॥  
 अंतोकोडाकोडी तित्थाहाराण जिट्टिठिइबंधो ।  
 अंतमुहुत्तमवाहा इयरो संखेज्जगुणहीणो ॥७२॥८८॥  
 तितीसुदही सुरनारयाउ नरतिरियआउ पल्लतिगं ।  
 निरुवकमाण छमासा अवाह सेसाण भवतंसो ॥७३॥८९॥  
 तह पुव्वकोडिपरओ इगिविगलिदी न वंधए आउं ।  
 आउचउपरमबंधो पन्लासंखंसममणोसु ॥७४॥९०॥  
 दंसणचउविग्धावरणलोहसंजलणहस्सठिइबंधो ।  
 अंतमुहुत्तं ते अट्ट जसुच्चे वारस य साए ॥७५॥९१॥  
 दो मासा अट्टं संजलणतिगे पुमट्टवरिसाणि ।  
 सेसाणुक्कोसाइ मिच्छत्तिठिईउ जं लद्धं ॥७६॥९२॥



निदापणगमसायं संजलणपुमेहि<sup>१</sup> वज्जिओ मोहो ।  
 वेउव्वेक्कारसत्तिथिक्कित्तिआहारसगरहिया ॥६३॥  
 नामस्म य तेयामिं नीएण समं सयं तु इकारं ।  
 नियनियउक्कोसाओ निच्छत्तिईए हरसु भागं ॥९४॥  
 एसेगिंदियजिट्ठो<sup>२</sup> पलियअमंखंसहीणलहुदंधो ॥  
<sup>३</sup>पणुवीसा पन्नासा सयं सहस्सं च गुणकारो ॥७५॥६५॥  
 कमसो विगलअमन्नीण पल्लमंखंसजणओ डहरो ।  
 सुर<sup>४</sup>नरयाउ समा दस सहस्स सेसाउ खुड्डभवं ॥७६॥६६॥  
 सहसगुणेगिंदिठिई विउव्विछक्के जओ असन्निसु तं ।  
 केसिंचि सुराउसमं तित्थं आहारगंतमुह ॥७७॥९७॥  
 भिन्नमुहुत्तमवाहा सव्वासिं सव्वहिं<sup>५</sup> डहरवंधो ।  
 आउसु जिट्ठो वि जओ संखिप्पद्दा भवे तेसुं ॥९८॥  
 खुड्डभवा<sup>६</sup> साहीया सत्तरस भवंति एगपाणुम्मि ।  
 पाणू एगमुहुत्ते तिसत्तरा सत्ततीससया ॥७६॥९९॥  
 पणसट्ठिसह[र]स पणसय छत्तीसा इगमुहुत्तखुड्डभवा ।  
 दो य सया छप्पन्ना आवल्लियणेगखुड्डभवे ॥८०॥१००॥  
 अयरंतकोडिकोडीओ अहिगो सासणाइसु न वंधो ।  
 हीणो न अपुव्वंतेसु नेव य अभव्वसन्निम्मि ॥८१॥१०१॥  
 अमणुक्कोसाउ विरयउक्कोसो देसविरयहसिसयरो ।  
 सम्मचउसन्निचउरो ठिइवंधाणुकमसंखगुणा ॥८२॥१०२॥

एतत् स्थितिबन्धयंत्रकं 'अमणुक्कोसाउ विरय०' इत्यादिगाथाभिर्विष्टृतम् ।

१	संयतस्य स्थितिबन्धः जघन्यः स्तोकः	७	बाद०	अप०	उ०	विशे० ।
२	बाद० प० ज० असं०गुणः ।	८	सू०	प०	उ०	विशे० ।
३	सूक्ष्म० प० ज० विशे० ।	९	बादर	पर्या०	उ०	विशे० ।
४	बा० अप० ज० विशे० ।	१०	बे०	प०	ज०	विशे० ।
५	सू० अप० ज० विशे० ।	११	बे०	अप०	ज०	विशे० ।
६	सू० अप० उ० विशे० ।	१२	बे०	अप०	उ०	विशे० ।

१ - 'पल्लियासं०' इत्यपि । २ - 'पणुवीसं' इत्यपि । ३ - 'निरयाउ' इत्यपि । ४ - 'डहरवंधे । माउसु जिट्ठे वि' इत्यपि । ५ - 'साहिया' इत्यपि इत्थस्तिस्तिवप्रतौ ।

१३	वे०	प०	उ०	विशे० ।	२५	असं.	प.	उ.	विशे. ।
१४	ते०	प०	ज०	विशे० ।	२६	संयतस्य उ०	स्थितिबन्धः	संख्ये. ।	
१५	ते०	अप०	ज०	विशे० ।	२७	देशवि.	ज.	मंख्ये. ।	
१६	ते०	अप०	उ०	विशे० ।	२८	देशवि.	उत्कृ.	संख्ये. ।	
१७	तेहं०	प०	उ०	विशे० ।	२९	अवि.	प. ज.	संख्ये. ।	
१८	चउ०	प०	ज०	विशे० ।	३०	अवि.	अप. ज.	संख्ये. ।	
१९	चउ०	अप०	ज०	विशे. ।	३१	अवि.	अप. उ.	संख्ये. ।	
२०	चउ.	अप.	उ०.	विशे. ।	३२	अवि.	प. उ.	संख्ये. ।	
२१	चउ.	प.	उ.	विशे. ।	३३	संज्ञि पंचे.	प. ज.	संख्ये. ।	
२२	असं.	प.	ज.	संख्या. ।	३४	संज्ञि पंचे.	अप. ज.	संख्ये. ।	
२३	असं.	अप.	ज.	विशे. ।	३५	संज्ञि पंचे.	अप. उ.	संख्ये. ।	
२४	असं.	अप.	उ.	विशे. ।	३६	संज्ञि पंचे.	प. उ.	संख्ये. ।	

धारस सुत्ते वुत्तो संमविमेया ह्वंति चउवीसं ।  
 तिग अमयो विरएगो वीसं एगिदिविगलाणं ॥१०३॥  
 पढमो थोवो बीओ असंखगुणो सत्तगं विसेसहियं ।  
 दसमो संखिज्जगुणो इक्कारसगं विसेसहियं ॥१०४॥  
 बावीसो संखगुणो तिभि विसेसाहिया तओ सेसा ।  
 एकारस संखगुणा छत्तीसा मंगपविमागा ॥१०५॥  
 पज्जत्तगो बहओ ततो अपज्जत्तगो जहओ य ।  
 अपज्जत्तगमुक्कोसो ततो पज्जत्तगुक्कोसो ॥१०६॥  
 सव्वाण वि पयढीणं उक्कोसं सभिणो कुणंति ठिहं ।  
 एगिदिया जहन्नं असभिखवगा य काणं पि ॥८३॥१०७॥  
 वेउव्विक्कारसगं असभिखवगाण तह य बावीसा ।  
 दंसणजसविग्घावरणसायपुरिसुन्धसंजलणा ॥१०८॥  
 सव्वाणुक्कोसठिई असुमा सा जमइसंक्लिसेण ।  
 इयरा उ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मोचुं ॥८४॥१०९॥  
 सुहुमनिगोयाइखणे जोगो थोवो तओ असंखगुणो ।  
 बायरवियतियषउमणसभिअपज्जत्तगजहओ ॥८५॥११०॥

- १ पृष्ठमद्गुकोसो सिः पञ्जत्तजहन्नगेयरो । य कमा ।  
 २ असमत्ततसुकोसो । पञ्जत्तजहन्नजिडो । य ॥८६॥१११॥  
 ३ एवं चिअ ठिइठाणो अपञ्जपञ्जा क्त्वेण संखगुणा ।  
 ४ नवरसमत्तवेदिय एकपए ते असंखगुणा ॥८७॥११२॥  
 ५ सर्वे वि अपञ्जत्ता होंति पइक्खणमसंखगुणविरिया ।  
 ६ संखगुणां सुहुमेसु वायरेसु य असंखगुणा ॥८८॥११३॥  
 ७ ठिइवंधे ठिइवंधे अज्झवसाया असंखलोगसमा ।  
 ८ कम्मसो विसेसअहिया सत्तसु आउसु असंखगुणा ॥८९॥११४॥

एतद् योगयंत्रकं "सुहुमनिगोयाइखणे" इत्यादिगाथाभिर्विधृतम् ।

१	सूक्ष्म	अप०	जघ०	स्तोक	१५	तेइं०	"	"	असं०
२	बाद०	"	"	असं०	१६	चउ०	"	"	"
३	वे०	"	"	"	१७	असं०	"	"	"
४	ते०	"	"	"	१८	संझि	"	"	"
५	चउ०	"	"	"	१९	वेइं०	पर्या०	जघ०	"
६	असं०	"	"	"	२०	तेइं०	"	"	"
७	सं०	"	"	"	२१	चउ०	"	"	"
८	सूक्ष्म	"	उत्कृष्ट	"	२२	असं०	"	"	"
९	बाद०	"	"	"	२३	संझि	"	"	"
१०	सूक्ष्म	प०	जघ०	"	२४	वेइं०	पर्या०	उत्कृ०	"
११	बाद०	"	"	"	२५	तेइं०	"	"	"
१२	सूक्ष्म	"	उत्कृ०	"	२६	चउ०	"	"	"
१३	बाद०	"	"	"	२७	असं०	"	"	"
१४	वेइं०	अप०	"	"	२८	संझि	"	"	"

असुमाण संकिलेसेण होइ तिव्वो सुहाण सोहीए ।  
 अणुमारो मंदो पुण विवज्जए सक्कपयडीणं ॥९०॥११५॥  
 सतरस पयडी संजलण ४ विग्घ ५ पुं देसवाह आवरणा ।

चउठाणरसपरिणया कुंतिचउठाणालु । सेसाउण ॥६१॥११६॥  
 पव्ययभूमिवालुयजलरेहासरिससंपराएहिं । ॥६२॥११७॥  
 चउठाणार्ह असुहाण । चञ्चआओसा सुहाणं तुं ॥६३॥११८॥  
 घोसाढहतिबुवमो । असुहाण सुहाण । खीखंडुन्नमो ॥६४॥११९॥  
 एगड्डाणो ३य रसो अणंतगुणियाः कन्नेणिसुरे ॥६५॥१२०॥  
 निबुच्छुरसाईणं । दुत्तिचउभागा पुढो कदिज्जंता ॥६६॥१२१॥  
 किर । एकभागसेसा । दुत्तिचउठाणर रसा कमसो ॥६७॥१२२॥  
 इगदुअणुगाइ जा । अभवणंतगुणसिद्धणंतभागरू ॥६८॥१२३॥  
 खंधा उरलोचियवम्माणउ तह । अगहणंतरिवा ॥६९॥१२४॥  
 कमसो विउच्चिंआहार तेयभासाणपाणमणकन्मे ॥७०॥१२५॥  
 इय वग्गाणवगाहो उरएणांगुलअसंखंसो ॥७१॥१२६॥  
 एगुत्तरा अमव्वाणंतगुणा अंतरेसु अगंहेणा ॥७२॥१२७॥  
 सव्वहिं जोग्गजहन्ना नियणंतसाहियां जिट्ठो ॥७३॥१२८॥  
 जो मणुएवं गिण्हिय सोच्चिय दलियं जिओ परिणमेइ । ॥७४॥१२९॥  
 भासाणां पाणमणोच्चियं च अवलंबए दव्वं ॥७५॥१३०॥  
 अप्पयरपयडिंबंधो उकडजोगी य सन्धिपज्जत्तो ॥७६॥१३१॥  
 कुणइ पएसुक्कोसं जहभयं तस्स वच्चासे ॥७७॥१३२॥

एतत् स्थितिस्थानयंत्रकं "एवं चिय ठिई" त्यादि गार्थयां निवृत्तम् ।

श्रुति	अप.	स्तोक	संख्या.	तेहं.	पर्या.	संख्या.
१	सूक्ष्म	अप.	स्तोक	८	तेहं.	पर्या.
२	वाद.	"	संख्या.	९	चउ.	अप.
३	सूक्ष्म	पर्या.	"	१०	"	पर्या.
४	वाद.	"	"	११	असं.	अप.
५	वेहं.	अप.	असं.	१२	"	पर्या.
६	"	पर्या.	संख्या.	१३	संधि.	अप.
७	तेहं.	अप.	"	१४	"	पर्या.

१ "असुमाणा सुमाणा" इत्यपि । २ "उ" इत्यपि । ३ "किल इच्छं" इत्यपि । ४ "तेयभासाणुं" इत्यपि । ५ "जुगं" इत्यपि । ६ "पाणुं" इत्यपि ।

गहियदलियस्स भागो वहुटिड्कम्मेसु होइ कमवुड्ढो ।  
 वेयणिए सव्वोवरि तस्स फुडत्तं न जेणप्पे ॥१००॥१२५॥  
 पयड्ढीण सव्वघाईण होइ नियजाइदलअणंतंसो ।  
 वज्जंतीण विभज्जइ सेमं सेसाणमणुसमयं ॥१०१॥१२६॥  
 सम्मत्त १ देस २ संपुत्तविरह ३ उप्पत्ति अणविसंजोए ४ ।  
 दंमण'खवगे ५ मोहस्स समग ६ उवसंत ७ खवगे य ८ ॥१०२॥१२७॥  
 'स्त्रीणाइतिसु य ११ संखगुराणणंतोमुहुत्तकालाओ ।  
 गुणसेढी'उ इगारस कमादसंखगुणदलियाओ ॥१०३॥१२८॥  
 गुणसेढी दलरयणाणुसमयमुदयादसंखगुणणाए ।  
 एयगुणा पुण कमसो असंखगुणनिज्जरा जीवा ॥१०४॥१२९॥  
 पलियासंखंतमुहु सासणइयरगुणअंतरं हस्सं ।  
 मिच्छस्स वे छसड्ढी इयरगुणे पुग्गलद्वंतो ॥१०५॥१३०॥  
 दव्वे खेत्ते काले भावे चउह दुह वायरो सुहुमो ।  
 होइ अणं'तोसप्पिणिपरिमाणो पोग्गल'परिड्ढो ॥१०६॥१३१॥  
 चउतरणुमणवइपाणुत्तरोण परिणमिय म्हुयइ सव्वारणु ।  
 एगजिओ भवममिरो जत्तियकालेण सो धूलो ॥१०७॥१३२॥  
 सत्तणहण्णयरेण उ इय फुसणा सुहुमदव्वपरियड्ढो ।  
 अन्ने चउ तणुसु कमेणिमेण तं वित्ति दुविहं'ति ॥१०८॥१३३॥  
 कम्मइयतेयओरालपाणुमणवइविउव्विएहि' कमा ।  
 पत्तेयमणंतगुणो पोग्गलपरियड्ढुकालो य ॥१३४॥  
 एगो चि निरुव्वचरिओ चि वायरो दव्वपोग्गलपरिड्ढो ।  
 वेप्पइ तत्तो सुहुमेणं वच्छदोसो छसुवयारो ॥१३५॥  
 लोगपएसोसप्पिणिसमया अणुभागवंघठाणाइं ।  
 पुट्ठा मरणेण जया कमुक्कमा वायरो चि तथा ॥१०९॥१३६॥  
 पुट्ठाणंतरमरणेण पुण जया ते तथा भवे सुहुमो ।  
 पोग्गलपरियड्ढो खेत्तकालभावेहि' इय नेओ ॥११०॥१३७॥  
 जोगट्ठाणा सेढीअसंखभागे तओ असंखगुणा ।

१ "खवए" इत्यपि । २ "स्त्रीणावितिसु" इत्यपि । ३ "इकारस" इत्यपि । ४ "उत्तस्स" इत्यपि ।  
 ५ "परड्ढो" इत्यपि । ६ "अण्यो" इत्यपि । ७ "पि" इत्यपि ।

पयडीमेया तचो ठिइमेयाणुकमेण तओ ॥१११॥१३८॥  
 ठिइबंधज्झवसाया तचो अणुमागबंधठाणाणि ।  
 तोणंतगुणा 'कम्मपएसा तचो'रसच्छेया ॥११२॥१३९॥  
 ३ खेत्तं सुहुमं कालाउ जेण अंगुलपएससेदीए ।  
 समयपएसवहारे असंखओसप्पिणी ५ होंति ॥११३॥१४०॥  
 चउदसरज्जू ५ लोको बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो ।  
 तदीहेगपएसा सेदी पयरो य तच्चग्गो ॥११४॥१४१॥  
 पयडीओ असंखेज्जा जं ओहिदुगे वि तारतम्मेणं ।  
 अस्संखलोगखपएसपमाणा हुंति ६ खल्लु मेया ॥११५॥१४२॥  
 आज्झिट्ठिठई हस्सट्ठिठईउ समउत्तरा ठिईठाणा ।  
 सच्चपयडीसु एवं सच्चजिआणं पि ठिइमेया ॥११६॥१४३॥  
 ठिइठाणे ठिइठाणे कसायउदया असंखलोगसमा ।  
 अणुमागबंधठाणा इय ७ एक्केक्के कसाउदए ॥११७॥१४४॥  
 थोवाणुमागठाणा जहम्मठिइपढमबंधहेउम्मि ।  
 ८ बीया विसेसअहिया जा चरमाए चरमहेऊ ॥११८॥१४५॥  
 इय असुमाण सुमाण उ विवरीयं जिट्ठिठिचरमहेऊ ।  
 आरम्म निज्ज आउसु ठिइं ठिइं पइ असंखगुणा ॥११९॥१४६॥  
 समयभवसुहुमअगणी असंखलोगा तओ असंखगुणा ।  
 तेऊ तक्कायठिई कमसो अणुभागठाणा य ॥१२०॥१४७॥  
 अंतिमचउफासदुगंधपंचवन्नरसकम्मइगखंधे ।  
 अभवियअणंतगुणिए गिणहइ तत्तिय ९ मणू समए ॥१२१॥१४८॥  
 गहणसमए य जीवो नियपरिणामेण ज्ञणयइ रसाणू ।  
 सच्चनियणंतगुणे कम्मपएसेसु सच्चवेसु ॥१२२॥१४९॥  
 संखेज्जेगमसंखं परिचज्जुत्तनियपयज्जुयं तिविहं ।  
 एवमणंतं पि तिहा जहम्मज्जमुक्कसा सच्चवे ॥१२३॥१५०॥  
 संखेज्जगं जहन्नं १० दोच्चिय मज्झिममओ परं बहुहा ।

१ 'कम्मपएसा' इत्यपि । २ 'य रसच्छेया' इत्यपि । ३ 'खेत्तं' इत्यपि । ४ "हुंति" इत्यपि ।  
 ५ "लोगो" इत्यपि । ६ "किण" इत्यपि । ७ "इक्केक्के" इत्यपि । ८ "बीयाह विसेसअहिया" इत्यपि ।  
 ९ "अणू" इत्यपि । १० "दुक्खिअ" इत्यपि ।

जा उक्तोसं तं पुण चउपल्लपरूवणाइ इमं ॥१२४॥१५१॥  
 जंबुद्वीवपमाणा चउरो जोयणसहस्समोगाढा ।  
 रयणपहरयणकंडं भिंदिय पुट्टा वडरकंडं ॥१२५॥१५२॥  
 पल्लाणवट्टियमलागवडिसलागामहासलागक्खा ।  
 सव्वे सवेइयंता उवरिं ससिहा य भरियन्वा ॥१२६॥१५३॥  
 तो कप्पणाइ केणइ सुरेण पढमो धरित्तु वामकरे ।  
 १एक्केक्कं दीवुदहीसु सरिसवं खिविय निट्ठविओ ॥१२७॥१५४॥  
 दीवे जत्थुदहिम्मि<sup>२</sup>व तदंतमेव पढमं व तं भरिउ ।  
 परओ खिव ३एक्केक्कं दीवुदहिसु निट्ठिए तम्मि ॥१२८॥१५५॥  
 खिवसु सलागापल्ले सरिसवमेगं पुणो तयं तं तं ।  
 पुव्वं व भरसु खिवसु य पुरओ पुण तम्मि निट्ठविए ॥१२९॥१५६॥  
 वीयं सलागापल्ले खिव सरिसवमेव (मेव) पुण तइयं ।  
 इय पुणरुत्तणवट्ठियभरणविरेयणसलागाहिं ॥१३०॥१५७॥  
 ४पुन्नो सलागापल्लो पुव्वकमागयणवट्ठिओ य तओ ।  
 ५सो चिय सलागापल्लो उक्खिप्पइ ६खिप्पई पुरओ ॥१३१॥१५८॥  
 पुव्वकमनिट्ठिए तहिमेगं खिव सरिसवं ७व तियपल्ले ।  
 पुव्वं व निट्ठियंते अणवट्ठियपल्लमेव खिव ॥१३२॥१५९॥  
 पुण तम्मि निट्ठिए खिव सलागापल्लम्मि सरिसवं ८एक्कं ।  
 अन्नन्नणव ९ट्ठियओ सलागापल्लं पुणो १०भरसु ॥१३३॥१६०॥  
 तेण पुण पडिसलागापल्ले भरियम्मि दोसु य तमेव ।  
 उद्धरियपुव्वविहिणा सरिसवमेवं खिव चउत्थे ॥१३४॥१६१॥  
 इय पढमेहिं वीयं तेहिं तइयं तु तेहिं य चउत्थं ।  
 भरसुद्धरणविकिरणं ता कज्जं जा फुहा चउरो ॥१३५॥१६२॥  
 पढमतिपल्लुद्धरिया दीवुदहीपल्लचउसरिसवा य ।  
 सव्वो वि एस रासी रूवोणो परम<sup>११</sup>संखिज्जो ॥१३६॥१६३॥

१-३ "इक्केक्कं" इत्यपि । २ "य" इत्यपि । ४ "पुणो" इत्यपि । ५ "सुक्खिक्कं" इत्यपि ।  
 ६ "खिप्प अ" इत्यपि । ७ "तहिमे" इत्यपि । ८ "एक्कं" इत्यपि । ९ "ठियाओ" इत्यपि । १० "भरसु"  
 इत्यपि । ११ "संखिज्जं" इत्यपि ।

'अन्नोन्नन्भाससमं वगियसंवगियं<sup>२</sup> तु तो केई ।  
 सत्तमअसंखणते तिवग्गठणे तमाहु तिहा ॥१५०॥१७७॥  
 नेयअइग्गहणयाए निघिडजडत्तेण नियमईए<sup>३</sup> तथा ।  
 जमिहुस्सुत्तं वुत्तं मिच्छा<sup>३</sup>मिह दुक्कइं तस्स ॥१५१॥१७८॥  
 जिणवल्लहगणिलिहियं सुहुमत्थवियारलवमिणं सुयणा ।  
 निसुणंतु मुणंतु सयं परेवि वोहंतु सोहंतु ॥१५२॥१७९॥

१ "कानुज०" इत्यपि । २ "तओ केइ" इत्यपि । ३ "मे" इत्यपि ।

समार्जं चेदं सार्धशतकनामप्रकरणं ॥





'अन्नोन्नन्माससमं वगियसंवगियं ३तु तो केई ।  
 सत्तमअसंखणते तिवग्गठाणे तमाहु तिहा ॥१५०॥१७७॥  
 नेयअह्गहणयाए निबिडजडत्तेण नियमईए तहा ।  
 जमिहुस्सुत्तं वुत्तं मिच्छा<sup>१</sup>मिह दुक्कडं तस्स ॥१५१॥१७८॥  
 जिणवल्लहगणिलिहियं सुहुमत्थवियारलवमिणं सुयणा ।  
 निसुणत्तु सुणत्तु सयं परेवि बोहिंतु सोहिंतु ॥१५२॥१७९॥

१ "अनुन्न०" इत्यपि । २ "तओ केइ" इत्यपि । ३ "मे" इत्यपि ।

समाप्तं चेदं सार्धशतकनामप्रकरणं ॥



## ॥ सार्द्धशतकभाष्यम् ॥

नियहेउसंभवे वि हु भयणिज्जो जाण होइ पयडीणं ।  
बंधो ता अधुवाओ धुवाउ अभयणिज्जबंधाउ ॥१॥  
अच्चोच्छिन्नो उदओ जाणं पयडीण ता धुवोदइया ।  
वोच्छिन्नो वि हु संभवइ जाण अधुवोदया ताओ ॥२॥  
विणिवारिय जा गच्छइ बंधं उदयं च अन्नपगईए ।  
सा हु परियत्तमाणी अणिवारिति अपरिवत्ता ॥३॥  
मिच्छत्ता संकंती अविद्धा होइ सम्ममीसेसु ।  
मीसाओ वा टं सुं सम्मामिच्छं न उण मीसं ॥४॥  
पलियाणि तिन्नि भोगावणिम्मि भवपच्चयं पलियमेगं ।  
सोहम्मे सम्मत्तेण नरमवे सच्चदिरईए ॥५॥  
मिच्छो पच्चइयाओ गेविज्जे सागराहं इगतीसं ।  
अंतमुहुत्तुणाहं सम्मत्तं तम्मि लहिट्ठाणं ॥६॥  
विरयनरमवंतरिओ अणुत्तरसुरो य अयरछावट्टी ।  
मिस्सं मुहुत्तमेगं फासिय मणुओ पुणो विरओ ॥७॥  
छासट्टी अयराणं अच्चुयए विरयनरमवंतरिओ ।  
तिरिनरयतिगुज्जोयाण एस कालो अबंधम्मि ॥८॥  
छट्टीए नेरइओ मवपच्चयओ य अयरचावीसं ।  
देसविरओ य भविउं पलियचउक्कं पढमकप्पे ॥९॥  
पुव्वुत्तकालजोगा पंचासीयं सयं सच्चउपल्लं ।  
आयवथावरचउविगलतियगएगिदियअबंधो ॥१०॥  
पणवीसाए अबंधो उक्कोसो होइ सम्मगुणजुत्तो ।  
वत्तीसं सयमयराण इति अहिया मणुस्समवा ॥११॥  
एयासिं पयडीणं अबंधकालो य होइ सभिस्स ।  
उक्कोसो विन्नेओ न उ सच्चजियाण एस विही ॥१२॥  
देवदुगं २ नरयदुगं २ विउच्चित्तिग २ तस्स बंधणा चउरो ।  
आहारसत्त एवं वेउच्चेकारसं नेयं ॥१३॥  
पण अंतरायअक्काप्पतिन्नि चक्खु अचक्खु दस एए ।

मिच्छे साणे य ह्वंति मीसए अंतराय पण ॥१४॥  
 दंसणतियनाणतियं मीसगसम्मं च वारस ह्वंति ।  
 एवं च अविरयस्मि वि नवरं तहि दंसणं सुद्धं ॥१५॥  
 देसे देसव्विरई तेरसमा तह पमत्त अपमत्तो ।  
 मणपज्जवपक्खेवा चउदस अप्पुव्वकरणाओ ॥१६॥  
 वेयगसम्मेण विणा तेरस जा सुहुमसंपराओत्ति ।  
 ति च्चिय उवसमखीणे चरित्तविरहेण वारस उ ॥१७॥  
 खाओवसमगभावाण कित्तणा गुणपए पडुच्च कया ।  
 ओदइयभावमिण्हं ते चेव पडुच्च दंसेमि ॥१८॥  
 चउगइयाई इगवीस मिच्छे साणे य हुंति वीमं च ।  
 मिच्छेण विणा मीसे इगुणीसमनाणविरहेण ॥१९॥  
 एमेव अविरयस्मी सुरनारयगइविओगओ देसे ।  
 सत्तरस हुंति ति च्चिय तिरिगइअस्संजमाभावा ॥२०॥  
 पभरस पमत्तमी अपमत्ते आइलेसतिगविरहा ।  
 ति च्चिय वारस सुक्कैगलेसओ दस अपुव्वस्मि ॥२१॥  
 एवं अनियट्ठिस्मि त्ति सुहुमे संजलणलोभमणुयगई ।  
 अंतिमलेसअसिद्धत्तभावओ जाण चउभावा ॥२२॥  
 संजलणलोभविरहा उवसंतक्खीणकेवलीण तिगं ।  
 लेसाभावा जाणसु अजोगिणो भावदुगमेव ॥२३॥  
 अविरयसम्मा उवसंत जाव उवसमगखइयगा सम्मा ।  
 अनियट्ठी उवसंतो जाव उवसामियं चरणं ॥२४॥  
 खीणस्मि खइयसम्मं चरणं च दुगं पि जाण समकालं ।  
 नव नव खइगा भावा जाण सजोगे अजोगे य ॥२५॥  
 जीवत्तमभव्वत्तं भव्वत्तं पि हु म्मुणोसु मिच्छस्मि ।  
 साणाई खीणंतो दुक्खि अभव्वत्तवज्जा उ ॥२६॥  
 सज्जोगिअजोगस्मि जीवत्तं चेव मिच्छमाईणं ।  
 ससभावमीउणाणो भावं म्मुण सन्निवार्यं तु ॥२७॥

---

इति

\* परिशिष्टद्वयं \*

॥ परिसमाप्तम् ॥

---

# शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२	३	०मुक्ता	०मुक्ती	४२	२०	भंवाति	भवति
२	२३	भूतं	भूत	४३	१६	दानं/कृत	दानं/कृतं
२	३०	अन्य	अन्य	४४	१२	यन्ति	यन्ति
६	४	खङ्गम्	खङ्गम्	४४	२६	०पङ्क०	०पङ्क०
१०	२५-२५	अप्राप्य	अप्राप्य	४५	१२	परघातम्	पराघातम्
११	२७	छुतावरणं	छुतावरणं	४५	१५	०ति' आनुपूर्वी	'ति' आनुपूर्वी
१३	२८	॥॥	॥॥	४८	१७	०रोक्या	०रोक्या
१४	२३	उक्ता०	उक्ता०	४६	२२	कर्मणाः	कर्मणाः
१५	१०	०सामानं	०समानं	५०	६	एकेन्द्रयो	एकेन्द्रयो
१५	१५	'राश्र'	'राश्रः'	५१	६	वैक्रिया०	वैक्रियादि०
१७	१९	०अङ्गमणे	०अङ्गमणे	५१	१६	०ङ्गनि/०ङ्गनि	०ङ्गानि/-ङ्गानि
१७	२७	संसि०	सेसि०	५२	१३	'नो'	'नो'
१८	६	स्त्याद्धि०	स्त्यानद्धि०	५२	१६	शरीर०	शरीरा०
१८	२६	केवलस्यैकरूपस्य	केवलस्यैकरूपस्य	५२	२५	तत्त०	तत्त०
१६	६	खङ्ग०	खङ्ग०	५२	२९	एव०	एव०
१९	९	॥२८॥	॥२८॥	५३	१२	०पापुर०	०पापु०
२१	२	प्राधान्या०	प्राधान्या०	५३	२०	(पारमा)	(पारमा०)
२२	२१	०दलाक्यने	०दालोक्यते	५४	२	तत्त०	नत्त०
२३	७	०गिमध्यास्त्र०	०गिमध्यास्त्र०	५४	१६	पुद्गल्लै	पुद्गल्लै
२४	१६	व्याख्या	व्याख्या	५६	२३	०नां	०नां
२५	१०	पस्य	टस्य	५८	३०	पठमं	पठमं
२७	२	अन्तानु०	अन्तानु०	६०	३	नाराया	नाराया
२७	८	'इह'	'इह'	६०	१७	सन्तक्य०	सन्तक्य०
२७	१६	०थी	०थी	६१	६	०उद्वारा०	०उद्वारा०
२७	१६	०छन्दस्तु	०छन्दस्तु	६३	१	०दि'र्णनम्	०दि'र्णनम्
२८	२४	०माय०	०माया०	६५	३	साष्टयं	साष्टयं
२९	११	अविरत	अविरत	६६	५	अन्यत्रः	अन्यत्रः
३०	१२	प्रत्याख्याना०	प्रत्याख्याना०	६६	२६	आपत०	आपत०
३४	७	सञ्चित्ताश्चित्ताः	सञ्चित्ताश्चित्ताः	६७	२७	०शुभे	०शुभे०
३७	६	०भेदेः	०भेदेः	७२	२१	पञ्चसित्ति'	पञ्चसित्ति' पित्ति
३६	३	०दृष्टा०	०दृष्टा०	७२	२७	गृह्णित्वा	गृह्णित्वा
३६	१३	विन्द्वानिः	विन्द्वानिः	७५	१२	०भिपत्तिः	०भिपत्तिः
४०	६	०गन्तव्यम्	०गन्तव्यम्	७७	६	सकृद्	सकृद्
४२	३	२ऽपि येने	२ऽपि येने	७६	२	उद्व० अर...	'पूहो उद्व अरस... 'पूहो
४२	१६	छ्वास०	छ्वास०	८०	६	अह	अह
४२	१९	ख०	ख०	८१	६	भंवात	भंवाति

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
८१	२३/२५/२७	सधगो/सधणी	सधणो/सधणी	१२०	१	०स्त्रा०	०स्त्रा०
८२	२०	जह	जह	१२३	२१	सन्निधि०	सन्निधि०
९०	७	मवन्ति;	मवन्ति	१०३	२५	स्त्यानद्धि	स्त्यानद्धि
६०	१२	०शुद्धिरेयं	०शुद्धिरिधा	१२५	११	०लघुाघा०	०लघुाघा०
६१	१२	चद०	चद०	१२८	७	सर्वसा सारिक०	सर्वसासारिक०
९१	२१	०निर्वाप्ति०	०निर्वन्ति	१२८	९	'लेश्यः'	'लेश्याः'
९३	६	०सङ्गम०	०सङ्गम०	१२८	१८	दृष्टन्यम्	दृष्टन्यम्
६३	१७-१८	०न्युष्टश०	०न्युष्टश०	१२८	३१	,, (?) इ०	, इ०
६४	२५	युगपद्धि०	युगपद्धि०	१२६	१०१११	१३।१४	१२ १३
९४	२६	युगपद्धि०	युगपद्धि०	१२६	१६	तिणूणु०	०तिणूणु०
९५	१२	कृत्स०	कृत्स०	१३१	२७	०दृष्टो	०दृष्टो
९५	१४	तत्र मग०	तत्र केवलिनो मग०	१३५	७	२०	१७
६५	१५	केवलिनो नेहाधिकारः	नेहाधिकारः	१३५	९	वोच्छिन्नाः॥२॥	वोच्छिन्नाः॥१॥
६६	१३	व्यपगत०	व्यपगत०	३५	३०	०ख्यानां	०ख्यान
१७	१	०सङ्ख्या	०सङ्ख्या	१३९	२२	मयतरेणं	मयंतरेणं
१०१	२	०नाक०/०समव०	नरक०/०संभव	१४०	१०	प्रय	प्रस
१०१	२१	यावद्धि०	यावद्धि०	१४०	२५	दृष्ट्या	दृष्ट्या
१०२	१	०स्त्रा०	०स्त्रा०	१४२	२३	०कायेनव	०कायेनैव
१०३	२१	०नाम०	०नामा०	१४४	२०	मत्य ज्ञान०	मत्यज्ञान०
१०५	२६	संज्ञेश	संज्ञेश	१४६	१६	सयोग्यन्तेषु ।	सयोग्यन्तेषु
१०६	२०	०विशेषात्माके	०विशेषात्माके	१४७	२१	चतुष्कं,	चतुष्कम्,
१०७	७-८	केश-व०	केशवार्द्धव०	१४६	१	०स्त्र'मित्वम	०स्त्र'मित्वम
१०८	७-८	०देतेषा०	०देतेषा०	१५०	८	०सयत०	०संयत०
१०८	२०	प्रधान्यं	प्रधान्यम्,	१५०	११	०स्त्रभोवसमं	खभोवसमं
१०६	४	इत्युक्ता	इत्युक्ता	१५१	४	२६	६२
१०६	२६	०रोषाकारि	०रोषारिकादि-	१५१	६	०भ्रेणित्त्व	०भ्रेणित्त्व
१०६	२८	०वर्गणा०	०वर्गणा०	१५२	५	कामे०	कामेण०
११०	१२	वर्ज्ये	वर्ज्ये	१५२	२०	प्रयरण	प्रकरण
१११	२२	०नेकेन्द्रियाणं,	०नेकेन्द्रियाणाम्,	१५४	२	ही	ही
१११	२६	०क्त्या शक्त्वात्	०क्त्याः शक्त्वात्	१५५	७	किञ्चि	किञ्चि
११३	१६	०शरी०	०शरीरे०	१५५	१७	प्रकान्त०	प्रकान्त०
११५	९	०चामूनिन्यप्रो-	०चामूनि न्यप्रो-	१५६	१२	चव	चैव
११५	१२	दुस्वरं	दुःस्वरं	१५७	१	मङ्गलादिकम्	मङ्गलादिकम्
११८	११	०शरी०	०शरीर०	१५७	१७	०क्षणमोह	०क्षीणमोह
११६	१२	०द्वितिय०	०द्वितिय०	१५८	२७	०वास्तां अलं	०वास्ताम् अलं
				१५८	२८	०भिधनं	०भिधानं

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१५६	१४	०नुपपत्तोः	०नुपपत्तोः	१८०	२२	०सक्तानि	०सक्तानि
१५६	२५	०वारकत्व-	वारकत्वा-	१८०	२६	स्थानानि	स्थानानि,
१६०	२	भूतानि	भूतानि	१८१	१	मर्गणा	मार्गणा
१६०	६	चिद्रूपा०प्रसंगेन	चिद्रूपा०प्रसङ्गेन	१८१	१६	पर्याप्तो	पर्याप्तो
१६०	८	गुणानां स्थानानि	जीवस्थानानि	१८१	२८	असंज्ञीनिर्दिष्ट	असंज्ञी निर्दिष्ट
१६०	११	गुणस्थानानि	गुण० गुणानां स्था- नानि गुण०	१८२	१४	दर्शने	दर्शने
१६०	१३	उपपद्यते । ०छन्दे	उपपद्यते । छेदं	१८२	१६	स्थाना, न	स्थानानि
१६०	१६	पुं नाम्नीति	'पुं नाम्नी' ति	१८२	२८	इह व श्रितपूर्व	इह व श्रितपूर्वं
१६३	२८	व्याकारयो-	व्याकरणो	१८२	२६	पाठ	पाठः
१६५	६	निनि०	विनि०	१८३	११	०योमृत्वा०	०योर्मृत्वा०
१६५	२८	०मयथा०	मयथा०	१८६	८	वस्थायां कियत्	वस्थायां वियत्
१६६	५	पर्याप्त०	पर्याप्ताऽ०	१८६	१५	समुद्घाते	समुद्घाते
१६६	१०	केवलिणी	केवलिणो	१८६	२६	समुद्घात	समुद्घात
१६८	३०	बादर	बादर	१८७	५-६	नियट्टि ८ अनि- यट्टि ६ सुहृमु १०-सुहृमुत्रममस्त्रीण	नियट्टि अनियट्टि
१७०	२२	०मिभ्रकाय०	०मिभ्रकार्मेणकाय०			वसम० ११ स्त्रीण-सजोगिऽजोगिगुण	१२ सजोगि १३ ॥२६॥
१७०	७	०सञ्ज्ञा	०संज्ञा			अजोगि १४	
१७०	१६	पंचेदि०	पंचेदि०			गुणा ॥२६॥	
१७१	३	ज्ञानात्रिका०	ज्ञानत्रिका०	१७७	७	पदसु०	पदसम्०
१७१	७	पर्याप्तत्विति	पर्याप्तत्विति	१८७	१७	अणायरा	अणायरो
१७१	१७	ओगा	ओगा	१८७	२४	सा/०करणा	सो/०करणा
१७१	२४	तेषा	तेषां	१८८	६	अत०	अंत०
१७२	१०	वह्ययः	वह्ययः	१८८	१२	०चाराद्धा०	चाराद्धा
१७२	१७	०संरादनं,	०संपादनम् ;	१८८	५	न	नः
१७३	७	सून्दः	सून्दः	१८९	४	गठि/वीय	गंठि/वीयं
१७४	२५	संयम०/संज्ञा इया)ह र'	संयम /संज्ञा (इया)हारे	१९०	३	अमज्जव०	असंजय०
१७५	५	इदियः'	'इदियः'	१९१	१५	प्रर्व०	पूर्व०
१७५	१६	०भोहीण०	०भोहीमण०	१९२	३	०ह पूर्वां	०हापूर्वां
१७७	८	अ/०गथा०	जं/०गथा०	१९२	४	ए३	एष
१७८	२	०मुत्या०	[०मुत्या०] (०मुपस्था०)	१९२	१५	०तराणी	०तराणि
१७६	३	इति	इति	१९२	१८	प्रधि०	प्रधि०
१७६	२३	शेष	शेषं	१९२	२०	०अघःथा०	०अघन्या०
१७६	३०	पाठ	पाठः	१९४	१८	उत्पृष्टा	उत्पृष्टा
१८०	१५	चररो	चररो	१९४	२९	उन्व०	उन्व०
१८०	२२	स्थावरपरुषके'	'स्थावरपरुषके'	१९४	३०	पमेव०	पमेव०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१६६	३	०भागाभात्रं	भागमात्र	२२६	७	नयनमते न	नयमतेन
१९६	२६	०व्यवच्छेदः ।	व्यवच्छेदः [ः]	२२६	२८	०द्वाया०	०द्वाया०
१६७	७	त्रिशोषाधिकः	त्रिशोषाधिकः	२२७	२०	०समुद्राता०	०समुद्रघाता०
१६७	१६	ऽन्त्र०	ऽन्त्र०	२२७	२७	द्वन्द्वः इति	द्वन्द्वः षट्म पदेसु तथैकेन्द्रियभूतरू-
१६८	१६	घन्धाना०	घन्धना०				दकासंक्षिपु इति द्वन्द्वः
२००	१५	घर्गगाः	घर्गणा				
२००	१८	घट्टवेमे	घट्टधमे०	२२६	१६	०प्याकारा०	०प्याकारा०
२०२	२२	अत्याचा०	अत्यां चा०	२३०	१०	तावद्वनी	तावद्वनी
२११	१८	। न	। न शिद्यते सत्यं यत्र	२३०	१७-१८	मात्रनासंख्येय०	मात्रनाऽसंख्येय०
			तद्भवत्यसत्यम्, न	२३१	४।११	२५७।०चतुस्त्रि०	२५६।०चतुस्त्रि०
२१७	७	तद्यथा-	तथा	२३२	३	तेइदियाणं	तेइदियाणं
२१७	१२	सुज्ञानात्वा०	सुज्ञानत्वा०	२३२	७	पश्चिदिया	पश्चिदिया
२१७	१६	तथा	तथा०	२३२	३०	पाठ ।	पाठः ।
२१७	२६	०क्त्वोपा०	३०क्त्वोत्वा०	२३३	११	धिया०	धिया०
२१७	२०	दृश्यतेहस्त	दृश्यते हस्त	२३३	१५	मानिनो	मानिनो
२१८	११	औदारिक	औदारिक	२३४	३	अन्नान्न०	अन्नान्न०
२१८	१४	समुद्राते	समुद्रघाते	२३५	१२	०चक्षुर्द०	०चक्षुर्द०
२१६	४	समुद्राव	समुद्रघाव	२३५	२०	०चक्षुर्द०	०चक्षुर्द०
२१६	७	इति	इति	२३७	२१	०लब्धैकेक०	०लब्धैकेक०
२१९	८	त	त	२३८	६	०क्रान्त०	०क्रान्ता०,
२१९	१२	०षकृच्छाम०	०षकृच्छाम०	२३८	१४-१६	०क्रान्ताद्वि०	०क्रान्ताद्वि०
२१६	१५	वैक्रिय वि	वैक्रियलक्षिमतां	२३८	२२	सर्वं	सर्वं
		।मतां क्रि०	वैक्रि०	२४०	२	इत्येवं ।	इत्येवं
२१९	२०	असंज्ञिनि	असंज्ञिनि	२४०	५	निगाया'	निगोया'
२१९	२५	समुद्राते	समुद्रघाते	२४०	२२	स्त्रीम्	श्रीम्
२१९	२७	कुर्व०	कुर्व०	२४२	६	सम्यक्त्वानां	सम्यक्त्ववतां
२२०	४-५	०यादी नामि०	०यादीनामि०	२४२	१०	तदसख०	तदसंख०
२२१	६	अथैतस्तिष्वेव	अथैनांस्तेष्वेव	२४२	१४	०समयोद्धृत०	समयोद्धृत०
२२१	७	वपयागाः	वपयोगाः	२४२	२४	संख्येया०	०संख्येय०
२२१	२५	चक्षुर्दर्शन	चक्षुर्दर्शन	२४२	२५	०समुद्रात०	०समुद्रघात०
२२४	१	नाम्नि	नाम्नि	२४३	१६	०सहित्यो०	०सहित्यो०
२२४	३	०छेपा०	०छेपो०	२४४	१०	०हयाधि०	०हृष्टयाधि०
२२४	१२	०मपा०	०मपा०	२४५	६	हारि०)	(हारि०)
२५	२१	२३ समुद्राते	समुद्रघाते	२४५	१०-११	०समुद्राते०	०समुद्रघाते०
२२६	४	०ज्ञान०	०ज्ञान०	२४५	२०	०समुद्राता०	०समुद्रघाता०
२२६	७	०क्षिप्नाह	०क्षिप्नाह	२४६	७	०समुद्राते०	०समुद्रघाते०



पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः  
 २४६ १२ ०दारिद्रिकं  
 २४६ १३-१४ ०समुद्रात्वा  
 २५० १० ०धोक्तः  
 २५० २२-२३ ०स्वरूपोः  
 २५० २६ आनामि०  
 २५० २९ विधिदिट्टं  
 २५१ १४ सम्प्रत्ययः  
 २५३ २ ०मि रूपे  
 २५३ २२ ०वेनोप०

शुद्धिः  
 ०दारिकद्विकं  
 ०समुद्रात्वा  
 ०धोक्तः  
 ०स्वरूपाः  
 अनामि०  
 विधिदिट्टं  
 ०सम्प्रत्ययः  
 मिश्ररूपे  
 ०वेनाप०

पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः  
 २५५ १४ हारि  
 २५५ २१ ज्ञाना०  
 २५५ ३० सुहुमा  
 २५८ २० पं १ दो खी णा  
 २५८ २३ गाए  
 २६० १६ पेशमाण  
 २६१ १ गुणस्थानकष्य  
 २६१ २९ जतिः

शुद्धिः  
 हारि  
 ज्ञान०  
 सुहुमा  
 पंच दो खीणो  
 गाए  
 प्रेशमाण  
 गुणस्थानकष्य  
 जातिः

श्री यशोभद्रसूरिकृतवृत्तियुतषडशीतौ

१ १४ ०सुहृद्य  
 १ २० ०छेदो०  
 १ २० ०छेदार्थं  
 १ २१ द्रवन्ध्य  
 १ २२ ०छदम०  
 १ २३ ०रयाद्वि०  
 १ २३ ०माष०  
 १ २५ ०-ऽञ्जिता"  
 २ ३ ०छेद०  
 २ १५ धृष्टीहीः  
 २ २१ शोभनं रुरध्यानं  
 ३ ११ सन्ना" ति  
 ३ १३ ०भ्यच्छा०  
 ३ २४ परिणामयति  
 ३ २६ सीर०  
 ४ १ ण्ड०  
 ४ ४ भापान०  
 ४ ५ ०प्र योग्यं  
 ४ ५ ०पालन्ध्य  
 ४ ५ मनः०  
 ४ ६ हाराणां  
 ४ ६ ०पिह पण भंत०  
 ४ १८ ०भ्यः प्रथम०  
 ५ ५ एकादश सङ्ग०

०सुहृद्य०  
 ०छेदो०  
 ०छेदार्थं  
 ०द्रवावन्ध्य०  
 ०छदपा०  
 ०रहाद्वि०  
 ०माष०  
 ०-ऽञ्जिता"  
 ०छेद०  
 धृष्टीहिः  
 शोभनरूपं ध्यानं  
 सन्ना" ति  
 ०भ्यरच्छा० मनस्त्वेन  
 परिणामयति  
 शीर०  
 षण्ड०  
 माषाणु०  
 प्रायोग्यं  
 धालन्ध्य  
 मनः०  
 हाराणां  
 ०पिह पण भंत०  
 ०भ्यः प्रथम०  
 एकादशसङ्ग०

५ ५ ०भ्यूहो  
 ५ १५ ०रंज्ञी०  
 ५ २३ ०कामयेन  
 ६ ५ ०विपया०  
 ६ ५ ०मनुष्योः  
 ६ ११ ०मूर्हीतिकी  
 ६ १२ न त्य  
 ६ १८ पूरित०  
 ७ ४ ये ग  
 ७ २२ ०समुद्राते  
 ८ ८ वचनःतं  
 ८ १२ 'मपान जे'  
 ८ २० पुनवी  
 ९ ६ ०ीरणाऽ  
 ९ १० वि ठाणाणि य  
 ९ ११ दो  
 ९ १४ हेतुभिः  
 ९ १६ ०ऽऽवाक्षिकायां  
 ९ २० ०स्ताणा  
 ९ २३ करणेणे  
 १० १३ भाद्य  
 १० २२ सम्यक्त्वः  
 १० २७ उतामार्था  
 ११ १२ प्रायोवा०  
 ११ १६ शकल०

०भ्यूहो  
 सन्नी०  
 कामयेन  
 ०विजया०  
 ०मनुष्ययोः  
 ०मूर्हीतिकी  
 नत्य  
 पूरित०  
 योगः  
 समुद्राते  
 वचनान्त  
 'मपणाणे'  
 'पुनवी  
 ०शीरणा०  
 विद्य तिभि य ठाणाणि  
 दो  
 हेतुभिः  
 ०वलिनायां  
 ०पस्तामं  
 करणेणे  
 भ्याद्य  
 सम्यक्त्वः  
 उतामार्था  
 प्रायो जन्वा०  
 शकल०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१२	१०	०चारद्वारा	०चाराद्वा	१६	११	०लोकाद्	०लोकाद्
१२	१५	न,	नु	१६	१२	नोद्धर्ष	नं दूर्ध्वं
१२	२७	०प्रकाशो	०प्रकारो	१६	१३	०मते नाहीं एषु	०मतेना ऽऽथे षु
१२	३०	०च.रकर्म०	०वारककर्म०	१६	१७	नाही बहि०	नाहिवहि०
१३	१	नंत्तर०	नोत्तर०	१६	१८	पञ्चमेत्वा	पञ्चमे त्वा
१३	६	०शेषण	०शेषेण	१६	२२	भूयनिर्जरणं	०भूय निर्जरणं
१३	१०	०कास्तदा से०	०कास्तदा-ऽऽसे०	१६	२२	शानन मित्यर्थः	शातनमित्यर्थः
१३	१०-११	निर्विष्ट०	निर्विष्ट०	१६	२३	दृढर्ष	दृढर्षं
१३	१२	०रिकाः । कल्पं	०रिकाः कल्प०	१६	२३	यदुक्तंम	यदुक्तम्
१३	२१	षण्मा०	षण्मा०	१६	२७	०द्वहिः	०द्वहिः
१३	२४	गच्छमाना गच्छन्ति गच्छमागच्छन्ति		१६	२८	क्षेत्र०	क्षेत्र०
१३	२७	०शमय०	०शमक०	१६	३१	हेम०	हेम०
१३	३६	शमय०	शमक०	१९	३१	घृत्य	घृत्य
१४	३	०मुद्ध्य/०क्खाय अह.	०मुद्ध्यं/०क्खायं अह.	२०	१०	०शरीरा०	०शरीर०
१४	६	०वु०	०वु०	२०	१७	करणं	करण
१४	६	०न्यम्ना०	०न्यम्ना०	२०	१६	शातयति	शातयति)
१४	१०	०नार्थे त ।	नार्थे तत्र थो०	२०	२७	०ये पूरि०	०ये-ऽपूरि०
१४	१४	०र्षजे०	०र्षजे०	२१	२	चाष्टमामाधिकः	च ष्टमामधिकः
१४	२१	-गम हा	पसाहा	२१	७	०ष्ट अत्वारः	०ष्टाः पञ्च
१४	२४	नीला	नील०	२१	१४	नियटा	नियटी
१५	१६	सांप्र०	संप्र०	२१	२१	०द्या	०द्याद्
१५	२४	०मेद द्वयम् ।	०मेदद्वयम्	२२	१	चतुर्थं कर्मग्रन्थ	चतुर्थे कर्मग्रन्थे
१६	२	०न्यत्र	०न्यत्र	२२	२	न् निर्मि०	०न-ऽनिर्मि०
१६	१२	बादरा०	बाधर०	२२	३	प्राप्तमत्य०	प्राप्तमित्य०
१६	१५	१६ विगलं हुति ..	१ विगलं-२ हुति	२२	४	विशेषेण	विशेषेण
		३ सन्निको	३ सन्निको	२२	४	सागरा	सागरो
१६	१७	पदेकदेशे	पदेकदेशे	२२	५	त्रशांतं	त्रिशतं
१६	१९	पञ्चवचन	पञ्चवचन०	२२	५	क्षगथ	क्षायि
१६	२५	०गो	०गो	२२	७	वार्यान्वर्ष	वार्यान्वर्ष
१६	२७	०निऊसम्मि”	०ति असम्मि”	२३	२	सम्यगृह/निष्प्या	सम्यगृह/निष्प्या
१७	२	क्षायी०	क्षायी०	२३	३	सम्यगृष्टि०	सम्यगृष्टि०
१७	२२	तत्रैकषड्दयो	तत्रैकः षड्दयो	२३	३	भूम्येव	भूम्येव
१७	२७	०२	०१-२२	२३	४	क्रमेण	क्रमेण
१८	२५	०न्यथागम०	०न्यथागम०	२३	६	सख्यं	सख्यं
१६	१०	अर्थ०	अर्थ०	२३	२७/२८	मुद्ध्यस दीर्घा	मुद्ध्यस दीर्घा
				२३	२६	० व पूर्वा	० व पूर्वा

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः

२३ ३० पृथीयसी  
 २४ ५ समनाया  
 २४ ७ सुमनां/कृता०  
 २४ १०/१३ स्थानं/ऽनेति  
 २५ २२ देशकृति  
 २५ २४ क्वेवलि०  
 २५ २५ व्यागो०  
 २५ ३० निवृत्ति  
 २६ २ समुच्छिन्न  
 २६ २ सन्नि०  
 २६ २ हम्ब  
 २६ २७ स्वास्वद्वनं  
 २७ ७/१० ह्यना०/तालो०  
 २७ १५ तत्ता०/  
 २७ १८ ज्ञानानि  
 २७ १६ ऽज्ञानत्रये  
 २७ २२ सामाहय०  
 २७ २८ ऽकिमध्या०  
 २८ ६ वर्त्तिन  
 २८ १६ ऽप्रमातास्तानि  
 २८ १८ संक्षु  
 २८ २२ पठमा  
 २८ २६ इत्याप  
 २९ ५/१४/१४ सपूर्व०/०यन्ते/  
 लपयते  
 २९ २६ वेसे  
 ३० २ वैकिय०  
 ३० ११-१२ सुखा०/सम्यते  
 ३१ १६ वज्र०  
 ३१ २१ मिश्री  
 ३१ २२ षट्  
 ३१ २२/२६/ पचमे स्र  
 ३३ ३ विशोषा०  
 ३३ ६ भेतावन्त  
 ३३ ११ ल्ये  
 ३३ २८ यम्ब०  
 ३४ २ केषलि०  
 ३४ १४ ०ष क्षी०  
 ३४ १४ ऽन्त्यु०  
 ३४ २० सम्यग०/रू  
 ३५ १ व्यागानय०

शुद्धिः

प्रथीयसी  
 शमनाया  
 सुमनां/कृत्वा०  
 ०थानम् ऽऽनेति  
 देशकृति०  
 क्वेवलि०  
 व्यागो०  
 निवृत्ति  
 समुच्छिन्न  
 तन्नि०  
 हम्ब  
 सास्वद्वनं  
 ह्यना०/तालो०  
 तत्ता०/  
 ज्ञानानि  
 ऽज्ञानत्रये  
 सामाहय०  
 किमध्या०  
 वर्त्तिन  
 ऽप्रमत्तान्तानि  
 संक्षु  
 पठमा  
 इत्यपि  
 पूर्व०/०यन्ते/  
 लप्यते  
 वेरो  
 वैकिय०  
 सुखा०/सम्यते  
 वज्र०  
 मिश्री  
 षट्  
 पचममे/स्र  
 विशोषा०  
 भेतावन्त  
 ल्ये  
 यम्ब०  
 केषलि०  
 ०ष क्षी०  
 ०न्त्यु०  
 सम्यग०/रू  
 व्यागानय०

पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः

३५ ५ जितसंभाजः,  
 ३५ ६ नायक  
 ३५ १६ व्यन्तरे-प्य  
 ३५ २० ०त्येव त्रिवा०  
 ३५ २० दर्शन  
 ३५ २६ जां  
 ३६ १ षमं  
 ३६ ६ योगे  
 ३६ ८ ०स्र०  
 ३६ १४ एगिदि०  
 ३६ १७ सुम०/०पर्याप्तना०  
 ३६ २३ व्यनि०  
 ३६ २४ शिशति  
 ३६ २७ लेश्या पट् ०/रू  
 /०गर्मज०  
 ३७ ७ राः  
 ३७ २०/२१/२३ ०स्र०/  
 ०स्त्री०/ स्र०  
 ३७ २३ ०द्यास्रस०  
 ३८ १ गन्थे  
 ३८ २ ऽनन्ता  
 ३८ ५ ०पक्षिका०/  
 ३८ ६ प्रचरन्तीति  
 ३८ १५ किंचद्  
 ३८ १८ पुष्पावकीर्ण०  
 ३८ २२ बहव कृपा  
 ३८ २३-२४ एना सू  
 ३९ १ स्थानेष्व  
 ३९ १६ इड दि  
 ३९ २३ कार्याः  
 ४० ११ भित्तिस्वरूप०  
 ४० १५ काल०  
 ४१ १२ गुणस्था०  
 ४२ १३ किंच  
 ४२ २४ पठ्वकं षट्  
 ४४ ३ ०सर्पिया०  
 ४४ ५ पृथक्त्वं  
 ४४ ८ मिश्रेभ्यः  
 (यशः)  
 ४५ ८ ०क्तोद्धिरितेषु  
 ४५ ९ ऽऽप्रमत्त०  
 ४६ ४ ०रम्ब०

शुद्धिः

सुम०/०पर्याप्तना०  
 व्यन्तरेण  
 ०त्येवमत्रिवा०  
 दर्शन  
 जां  
 कम  
 योगे  
 ०स्र०  
 एगिदि०  
 सुम०/०पर्याप्तना०  
 व्यन्तरेण  
 शिशति  
 लेश्यापट् ०/रू,  
 १०गर्मज०  
 राः  
 ०स्र०  
 ०स्त्री०/०स्र०  
 ०द्यास्रस०  
 प्रन्थे  
 ऽनन्ता  
 ०पक्षिका०  
 प्रचरन्तीति  
 किंचित्  
 पुष्पावकीर्ण०  
 बहवः कृपा  
 एना-सू  
 स्थानेष्व  
 इडादि  
 कार्या  
 भित्ति स्वरूप०  
 काल०  
 गुणस्था०  
 किंच  
 पठ्वकं षट्  
 ०सर्पिया०  
 पृथक्त्वं  
 मिश्रेभ्यः  
 (यशो०)  
 ०क्तोद्धिरितेषु  
 ०ऽऽप्रमत्त०  
 ०रम्ब०

पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः	शुद्धिः
४६ ५ आरम्भ०	आरम्भः	५२ २१ पुन्त्वे	पुंस्त्वे
४६ ७ क्षेणा०	क्षीणः	५२ २७ सप्तऽ०	सत्तऽ०
४६ १६ षष्ठः	ःषष्ठः	५४ २ कर्मण्यु०	कर्माण्यु०
४६ २४ ङगयो०	ःदायो०	५४ ७ ंरुदये	ंरुदये
४७ २ प्राचिना	प्राचीनाः	५४ २० ंदेशनं	ंवेशनं
४८ ८-६ निर्देष्टम्	निर्दिष्टम्	५५ १६ समयेपु	समये [पु]
४८ १८/२० तदामि०	तदनामि०	५५ २८ स्तोका	स्तोका.
४९ २ चतुरशीतेरः	चतुरशीतेः	५५ २८ ंनिवृत्तिभ०	ंनिवृ[त्तिभ०]
४९ १३ एष	एष-		(त्त्वः)
४९ १६ ंरेने०	ंरेने०	५६ २६ जघन्तोऽ-	जघन्यतोऽ-
५० १६ २५ ंनां प्रा० स बी०	ंनां न प्रा० सबी०	५६ ३० ंध्यत्र०	ंण्यत्र०
५० २४ सकृ०	शकृ०	५७ ४ श्रोतृ०	श्रोतृ०
५० २५ ंसति ंवाञ्च०	ंसेति। ंवाक्च०	५७ ८ मीलेनेन	मीलेनेन
५१ ४ ंश्चतुर्वि०	ंश्चतुर्वि०	५७ १६ वुव०	वुव०
५१ २ प्रत्याना०	प्रत्याख्याना०	५७ १६ ंधव्याव०	ंधाव्याव०
५१ २१ द्वय्याग०	द्वययोर०	५७ २५ दैतेय निर्दय	दैतेयनिर्दय
५२ १० अवयार्थ०	अवयवार्थ०	५८ १० धर्मो पाय	धर्मोपाय
५२ १८ ंराशा०	ंरासा०	५८ १५ सदि	स दि
		५८ २५ शार्दूल	शार्दूल

श्रीरामदेवगणिकृतटीकायुतषडशीतो

२ १२ एगिदिद्या	एगिदिद्या	२० १५ उक्तञ्च	उक्तञ्च
२ १६ पगयो	पगरयो	२३ १० पंचेदिया	पंचेदिया
४ १२ मव	मवे	२३ १८ पत्तयं	पत्तयं
५ ५ शोपित	शोपित	२३ २६ टंसर्णं	टंसर्णं
६ १८ सण्णापञ्च०	सण्णापञ्च०	२४ १३ नपुंसगवे	नपुंसगवे
८ २० अम वा	अमावा	२५ १ मागणा	मागणा
८ २६ ए १०	एग०	२५ १७ चारित्र	चारित्त
६ ३ ठण०	ठाण०	२६ ७ ंअमन्व०	ंअमन्व०
१३ ११ ।	॥२४॥	२६ २८ पण्णीसं	पण्णीसं
१३ २० स जय०	संजय०	३० २ चरित्रं	चरित्तं
१६ ११ पञ्च	पञ्च	३० १४ ।	॥७३॥
१६ ११ तेइदिय	तेइदिय	३१ २४ वञ्छति	वञ्छति
१६ २३ छंमो	छेमो	३२ १८ अममत्तस्स	अममत्तस्स
१६ २५ हासा०	हारग०	३३ १ ंसत्त०	ंसत्ता०
१७ ८ पुञ्चत्ता	पुञ्चत्ता	३३ २६ अचाइणो	अचाइणो
१७ १८ स.गरो०	सागारो०	३३ २७ ताभ्यां	"साभ्यां
१९ १ गुणस्थाना-	गुणस्थान-	३४ २२-२३ अनियट्टी नियट्टी	अनियट्टी नियट्टी
२० ६ अहकसाय०	अहकसाय०		

सप्ततिकाभिधषष्ठकमंग्रन्थटिप्पणके

पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः

३ १५ अणि।  
 ८ २४ २  
 ९ १३ ३  
 १२ १६ २।२।  
 १४ २-२८ ७१-७६।  
 १५ २-१८ ८०-८७  
 १६ १२ १३२  
 १६ १४-२२ ८८-९२  
 २६ १९ एव  
 ३१ ५ गिदिय  
 ३१ ५ ९  
 ३१ ६ २  
 ३१ ०२ १८१  
 ३१ २४ १८२  
 ३२ ०८ "एत्तो"  
 ३३ २४ विगल ३)  
 ३४ ६ वा भा.  
 ३५ ५ २ को दो  
 ३७ २३ 'व.  
 ३८ १५ ठवणा  
 ४२ ०३ चूर्णिकार'  
 ४३ ६ पञ्चमं  
 ४३ २३ ०श्यं  
 ४३ ३१ सुहुत्ता'  
 ४४ १४ २७  
 ४५ ३ २८  
 ४५ ६ २२०  
 ४८ ७ ठणा  
 ४८ १८ १३६७  
 ४६ ११ चउसवा  
 ५० ६ चठर्वियाणं  
 ५२ १० ७५

शुद्धिः

अणि। सुहुम।  
 २२  
 २  
 २।१।  
 ७०-७८ (गाथाङ्काः)  
 ७६-८६ ( " )  
 १३३  
 ८७-९१ (गाथाङ्काः)  
 एवं  
 एगिदिय  
 ६  
 १२  
 १८०  
 १८१  
 'एत्तो'  
 विगल (३)  
 वा. अप.  
 २ Δ को दो  
 वंश.  
 'ठवणा  
 चूर्णिकारं  
 पञ्चं  
 संश्यं  
 सुहुत्तां  
 ३७  
 ३८  
 २४०  
 ठाणा  
 १३६१७  
 चउसवा  
 चठर्वियाणं  
 २७५

पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः

५२ २८ पमाण  
 ५२ २९ दा-"SSहारक-  
 सप्तकोद्वलनं  
 कृत्वैव" पुनं  
 ५३ २० ०स्थितेष्वपि  
 ५३ २४ ॥२०६॥ दय-  
 स्थान (२५०)  
 ५४ ६ ७२८  
 ५४ १३ १३७४५  
 ५५ ११ भग  
 ५६ २० को कन्स।  
 ५६ २७ ॥२९१॥ (३६३)  
 ५७ १० वंशविषयत्रा  
 ५७ १७ ठवणा  
 ५७ २२ वंसणारण  
 ६२ २ तवजा  
 ६४ १५ ५७ ८  
 ६५ १ नेपुमोहं  
 ६६ ७ २३  
 ६७ ८ केवलीण  
 ६७ ३१ प्रतो  
 ६९ २३ जो  
 ७२ १० ॥३८४॥ (४६४)  
 [४४१]  
 ७२ १२ ॥३८५॥ (४६५)  
 [४४२]  
 ७३ ३ चठिवं  
 ७३ १४ ०नके) अमो  
 ७३ १६ तेरस  
 ७७ ५ ४६०६  
 ८० ७ ॥५६३॥  
 ८० ६ ॥५६४॥

शुद्धिः

प्रमाण  
 दा-SSहारकसप्तकोद्व-  
 लनं कृत्वैव पुनः  
 ०स्थितिष्वपि  
 ॥२०६॥ (२५०)  
 १७२८  
 १३७४५  
 भंग  
 २ को कन्स।  
 ॥२९१॥ (३६३)  
 ६ वंशविषयज्जा  
 ठवणा  
 वंसणावरण  
 तवजा  
 तवजा  
 १७२८  
 नेपु मोहं  
 ४२३  
 १ केवलीण  
 प्रतो  
 जा  
 ॥३८४॥ (४६४)  
 ॥३८५॥ (४६५)  
 चठिवं  
 ०नके) अमो  
 अहणा वीमं भेया.उ  
 जो तिरियो (५०४) अमो  
 तीसे  
 ४९०६  
 ॥४०५॥ (५६३)  
 ॥४१०॥ (५६४)

## सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणटिप्पणके

पृष्ठम्	पङ्क्तः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तः	अशुद्धिः	शुद्धिः
३	१	प्ररुपम्	प्ररुपणम्	३९	२४	ओर लिय	ओर, लिय
३	८	पक्चक्खा	पक्चक्खाणा	४०	२७	०गोया पज्ज०	०गोयापज्ज०
३	१४	गघ	गंघ	४१	२	०बुद्धो	०बुद्धो ।
५	७	त जहा	तं जहा	४२	२	पए ।	पएसा
८	४	वेइय	वेइयं	४३	३१	षट्	षट्
८	८	सभवे	संभवे	४४	७	१०४	१०४
१०	२२	विक्कज्जइ	विक्कज्जइ,	४५	१०	०लोगास०	०लोगागाम०
१०	२८	णात्तमवियं	णात्तमवियं	४६	२१	"तक्काठिइ"	"तक्कायठिइ"
१२	५	पज्जत्तगो	० पज्जत्तगो	४६	२	० परियट्ठी	परियट्ठी
१३	२६	३	२	४७	२३	०णि । एक्के	०णि एक्के०
१४	१६	षात्तं	षा तं	४७	२३	०ठाये तेण	०ठाणे । तेण
१६	७	निरियणु०	निरियणुणु०	४८	६	कम्म	कम्मप
१६	११	षउत्तं	षउत्तं	४८	१४	खेत्तं आगाससुद्धु-	खेत्तं=आगासं सुद्धुं
१६	२०	अपठम०	अपठम०			मकालाओअद्धा०	कालाओ=अद्धा०
१६	१४	अव-	खाओव-	४६	३	० निव०	० निरुव०
२०	२७	अविरमंमि	अविरयस्मि	५०	३	विसेसहियाइं	[विसेसाहियाइं?]
२१	३	दसेमि	दंसेमि	५०	२२	कम्म	कम्मप
२२	१३	० विक्कखा	विक्कखा	५१	२५	रयणपहाए	रयणपहाए
२३	२०	दुण्हं ।।	दुण्हं	५३	१३-१४	तत्तिअपमाणं	(तओ परओ)
२३	२२	पन्नेत्त	पअत्त			अणवद्वियपरुलं	[तत्तिअपमाणं(?)]
२४	४	इगसट्ठिसिक्क	इगसट्ठिसिक्क			मरित्ता	अणवद्वियपरुलं
२६	३०	जात्त	जाताः				[मरित्ता ?]
३५	१	स्थान	स्थान	५५	१०	० संखेज्जो	० संखेज्जो
३५	१५	कालो	काले	५५	२१	४१	१४१
३५	२०	मार्गं	मार्गं	५६	३	असत्त्व	असत्त्व
३६	१	वगणा	वगणा	५६	१२	पल्लाच्छे०	पण्णाच्छे०
३६	२२	मिठ	मिठ	५६	१३	दोह	दोण्ह
३६	२३	अवत्ते०	अवत्ते०	५६	२४	०णं तं / त	०णंतं /
३८	१	सार	सार	५६	२६	०णं तं /	०णंतं /
३६	१	वगणा	वर्गणा	५८	११	१४२	१५१
३६	४	दठवगणा	दठवगणा	६०	५	करुका	करुका

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणवृत्तौ

पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम् पङ्क्तिः अशुद्धिः	शुद्धिः
१ १०/२१ ०कलु०	०कलु०	२० १४ ०पच०	०पच०
२ ७ गोढ०	गाढ०	२१ ५ ०यत्ता०	०यत्त
३ १९ धूमावे ।	धूममावेण	२४ ५ ०वंच०	०पंच०
३ १३ वेउधिय०	वेउधिय०	२५ ७ हुंति मे	हुंतिमे
४ ३ चउवि	चउविहं	२५ १६ एव	एवं
५ ७ ०विसु	०विसुद्धं	२६ २५ दुगंध	दुगंधं
५ २८ ०घायमा०	०घायम०	२७ १६ एगिदिया	एगिदिया
६ ६ ०वाल धार०	०वाल धार०	२७ १६/१७ वंधति	बंधति
७ ८ अणा०	दुस्सरं, अणा०	२७ २६ समाणु	सेमाणु
७ १६ ५	२	३१ १९ बायराणां	घायराणां
८ ६ मणिय	मणियं	३२ ४ अमंगु०	अस वगु०
८ १४ ०मुरो य ३प०	०मुरोय ३प०	३२ २१ पंचिदि०	पंचिदि०
८ १५ आहारगं घणं	आहारगबंधणं	३३ ५ ०धवे	०धवे
८ २५ नारायं	वस्त्रनारायं नारायं	३३ २२ वंधति	बंधति
९ १२ गध,	गधं,	३५ २६ चालवइ	चालवइ
९ २६ अंतर०	अंतर०	३६ ६ सुयइ	सुयइ
१० १८ त	तं	३९ २ सत्तणहय०	सत्तणहणाय०
१० २४ निरअर०	निरइअर०	३६ २० ०आगस०	०आगास०
१० ३० छागम्मि	सोगम्मि	४० १६ ०बख०	०बंध०
१३ १ बन्धानानि	बन्धनानि	४० २७ विरिय	विरियं
१३ ६ महु	मउ०	४१ ८ ०दिस गं	दिसागं
१३ २० ०रणगणां	०वरणगणां	४१ १८ आगासा०	आगासा०
१४ २७ आरभ्यः	आरभ्य	४१ ३० कमेण	कमेण
१४ २७ गाथा म०	गाथास०	४२ २० ॥१२१॥	॥१२०॥
१५ १० विजय०	विजया०	४२ २८ मिद्धुण्डं नि०	निद्धुण्डं निद्ध०
१५ १६ ०त्तणाइ	०त्तणाइ	४३ ४ इति	इति
१६ ३ ०विउधिय०	०विउधिय०	४३ १४ पंतगुणे	पंतगुणे
१६ ११ ०समयं	०सयं	४४ १६ पुणा	पुणा०
१७ ६ ०वचीर्णं	०बंधीर्णं	४५ ६ ॥ पइ	विपइ
१८ १२ एवं ।	। एवं	४५ १४ ०यने	यं ने
२० ६ आघाइ०	अघाइ०	४६ २८ य/होति कमा य होति कमा ।	
		४७ २१ ०मिन्त	०मिन्तो
		४८ २४ आ	भी

## प्रथमं परिशिष्टे

पृष्ठम् पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम् पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१ ३	यन्त्रकानि	यन्त्रकाणि	६ ४	०द्विक	०द्विक
३ ७	,,	प्रथमा. ४	६ ४	अमव्य	अमव्यः
३ ८	प्रथमाः४	,,	६ ७	कामं	कामं
३ १५	तिग्.	तिर्य०	६ १२	चक्ष	चक्षु
३ १६	सास्वादन च दशिन	सास्वादनं च दर्शितं	६ १५	शय.	शेष० २
४ ३	स्ख्या	ः ख्या	६ १८	सञ्च	सञ्च
४ १८-२१	द्विविध	द्विविध	६ ३०	कर्मण	कर्मणं
४ २१	अस	असं०	११ ५	वृत्तौ	वृत्तौ
४ २५	अभिप्रायणे	अभिप्रायेणे	११ ८	अशुभा	अशुभाः
६/७ ७-२४/२८	असं०	असं०	१२ ७	असयम०	असंयम०
७ २४	सर्वा	सर्वाः	१२ १६	सर्वा	सर्वाः
८ ६	अणंत	अनन्त	१५ १	दशि	दशि
८ ७-८	अणान्त	अनन्त	१५ २	७-	७-८
८ १३	सर्वालपा	सर्वालपाः	१६ २	समविताः	संभविताः
६ २	कषाय	कषायः		असमविताः	असंभविताः
६ २	सर्वा	सर्वाः	१६ १७	ऽम-	ऽस-

## द्वितीये परिशिष्टे

२ ८	सगमए	ससप ।	६१ १२	०वरिमं	०चरिमं
१० ८	०षययो	०षयवो	६५ २६	प्रतो	प्रतौ
१५ ९	सीलस	सोलास	६६ २८	“अपि-	“अप-
१६ १	षाख्योः	षाख्यो	६६ ३१	ऽति	ऽस्ति
१८ २०	मठस०	मठवस०	७४ १६	८६ अमी ८८	८६-८८ असी
३१ १७	सत्तद्रु०	सत्तद्रु०	८० १९	नेइ०	ने२०
३६ २८	॥८॥	॥८१॥	८१ २७	धुंघु०	बंधु०
४० २२	नियट्टि	नियट्टि	८३ ४	॥७॥	॥७२॥
४२ १८	प्रदर्शिनः	प्रदर्शितः	८३ २२	जां	असं
४७ ७	॥४३॥४६॥	॥४२॥४६॥	३ ३०	२	६
४७ २९	चोयळं	चोयाळं	४ ४	॥४६॥	॥२६॥
४८ २६	०प्रस्तके	०पुस्तके०	४ २८	॥५१॥	॥३६॥५१॥
४६ ३१	त्यपि	इत्यपि	७ १६	०बाह्वषा०	०बाह्वषा०
५२ २५	क्रमो	क्रमो	८ १३	॥६८॥	॥७८॥१८॥
५३ १४	०सख्या०	०सख्या०			